3

१९३०-३१

चाँद

नवम्बर '३० से

अप्रैल ३१ तक

वर्ष (९) खं.१.१. से खं.१.६

* * *

विविध विषय

* * *

३—चित्र-सूची

१—तिरङ्गे

२—आर्ट-पेपर पर रङ्गीन

४—कार्टून



पनघट

फ़िदा सौ ख़ूबियाँ पनघट के इस दिल-ज़ेब मनज़र पर !
इधर घूँघट भी है रुख़ पर, उधर मटका भी है सर पर !!

—नूह नारवी

प्रवेशाङ्क



आध्यात्मिक स्वराज्य हमारा ध्येय, सत्य हमारा साधन और प्रेम हमारी प्रणाली है। जब तक इस पावन अनुष्ठान में हम अविचल हैं, तब तक हमें इसका भय नहीं, कि हमारे विरोधियों की संख्या और शक्ति कितनी है।

वर्ष ९ खण्ड १ | नवम्बर, १९३० | संख्या १ पूर्ण संख्या ९७

डॉ० राम स्वरूप आर्य, बिजनौर
की स्मृति में सादर भेंट—
हरप्यारी देवी, चन्द्रप्रकाश आर्य
संतोष कुमारी, रवि प्रकाश आर्य

प्रातःकाल

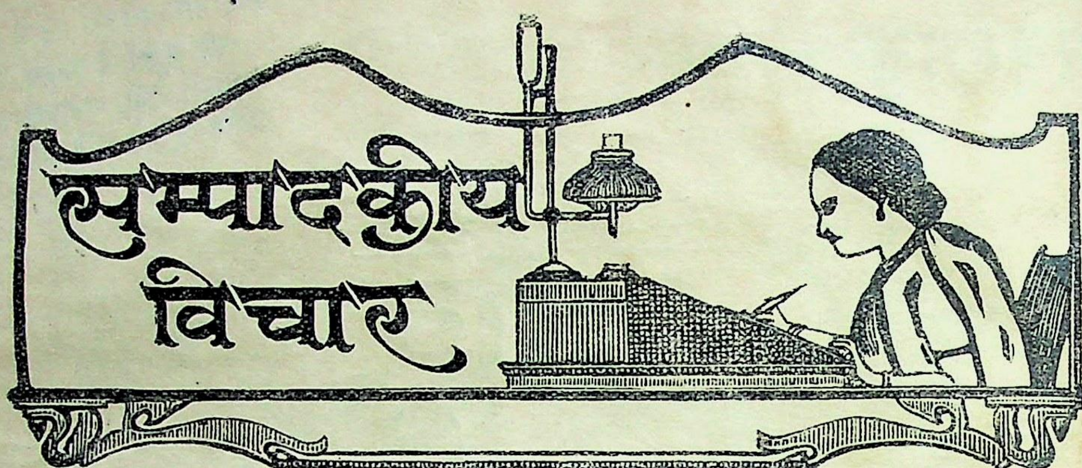
[पं० चन्द्रनाथ मालवीय "वारीश"]

'चाँद'! तुम्हारी अटल नीति ने किया देश का है कल्याण!
छोड़े गए प्राण हरने को तुम पर फिर क्यों इतने बाण??
डरे नहीं! क्यों? बढ़ते ही तुम गए सदा सङ्कट की ओर!
आ ही गया आज तो भी नव-वर्ष, तुम्हारा यह नव-भोर!!

विहँस इन्दु ने कहा (कष्ट से करुणा-भरी हँसी हँस कर)—
"जागे यह समाज तो पहले, मरने को मैं हूँ तत्पर॥
"आध्यात्मिक स्वराज्य मेरा है ध्येय, सत्य मेरा साधन।
"मेरी प्रेम प्रणाली है, यह अनुष्ठान है अति पावन॥

"मैं अविचल की भाँति अन्त तक, कभी न कर सकता परवाह!
"कितनी संख्या है विरोधियों की, कितनी है शक्ति अथाह!!"
चुए अश्रु-कण, दिए दिखाई ओस-बिन्दु सम प्रातःकाल।
"निन्दा कौन करेगा शशि की"—कहा अरुण ने होकर लाल॥







नवम्बर, १९३०

ऑर्डिनेन्स-युग



आज पूरे छः महीने के बाद भारतीय प्रेसों को थोड़ा खुल कर साँस लेने का मौक़ा मिला है। पिछले छः महीनों में प्रेस-ऑर्डिनेन्स के कारण हमारे राष्ट्रीय प्रेसों पर कैसी-कैसी भीषण विपत्तियाँ आई हैं—किस तरह देश भर के प्रायः समस्त राष्ट्रीय पत्रों का प्रकाशन बन्द हो गया है और किस तरह जो पत्र-पत्रिकाएँ निकलती भी रही हैं, वे निर्जीव और निस्तेज हो गई हैं—यह पाठकों से छिपा हुआ नहीं है। ये छः महीने वास्तव में हमारे निर्भीक राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं के लिए कठोर यातनाओं और विकट अग्निपरीक्षा के दिन रहे हैं। हर्ष की बात है कि हमारे पत्र इस परीक्षा में सच्चे वीर की तरह अपने आदर्शों पर निश्चल और सङ्कल्पों में सुदृढ़ प्रमाणित हुए हैं। परन्तु अब प्रेस-ऑर्डिनेन्स की भीषण कालरात्रि समाप्त हो गई है; सिद्धान्ततः हमारे पत्रों को सामयिक घटनाओं पर टीका-टिप्पणी करने की पूर्ववत स्वाधीनता मिल गई है। परन्तु यह सैद्धान्तिक स्वाधीनता भी हमें कितने दिनों तक प्राप्त रहेगी, यह नहीं कहा जा सकता। अतः किसी विशेष घटना या प्रसङ्ग की समालोचना करने के पूर्व हम संक्षेप में पिछले छः मास की घटनाओं पर एक विहङ्गम-दृष्टि डाल लेना आवश्यक समझते हैं।

पिछले छः महीने, राष्ट्रीय आन्दोलन और गवर्नमेण्ट की कार्रवाई दोनों की दृष्टि से, क़ानून-भङ्ग के दिन रहे हैं। इन महीनों में जहाँ राष्ट्रीय नेताओं ने गवर्नमेण्ट के नियमों को भङ्ग करके उसकी नैतिक सत्ता को एक ज़बर्दस्त आघात पहुँचाया है, वहाँ गवर्नमेण्ट ने स्वयं भी अपने नियमों और क़ानूनों की मर्यादा नष्ट करने में कुछ कम तत्परता नहीं दिखलाई है। गवर्नमेण्ट ने देश के साधारण क़ानूनों को ताक में रख कर छः महीनों के भीतर ही भीतर नौ असाधारण क़ानून या ऑर्डिनेन्स जारी कर दिए हैं। आज इन पंक्तियों के लिखे जाने के समय भी देश में ऐसे लगभग आधे दर्जन असाधारण क़ानून एक साथ ही जारी हैं। ऐसा मालूम होता है मानो भारत से साधारण क़ानून की सत्ता ही उठ गई है और हम लोग निरङ्कुश ऑर्डिनेन्सों के युग में रह रहे हैं।

सब से पहला ऑर्डिनेन्स विगत एप्रिल मास की १९ वीं तारीख़ को जारी हुआ। यह था बङ्गाल क्रिमिनल लॉ एमेण्डमेण्ट ऑर्डिनेन्स। इसके अनुसार बङ्गाल

गवर्नमेण्ट को यह अधिकार प्राप्त हो गया कि उसके कर्मचारी जिसकी चाहें बिना वारण्ट के तलाशी लें और जिसको चाहें बिना वारण्ट के पकड़ कर अनिश्चित काल के लिए जेल में बन्द कर दें। इसके ठीक आठ दिन बाद २७ एप्रिल को वह भीषण ऑर्डिनेन्स जारी किया गया, जिसने समस्त देश को राष्ट्रीय पत्रों से वीरान बना दिया। यह था इस साल का दूसरा असाधारण क़ानून प्रेस-ऑर्डिनेन्स। इसके बाद पूरे चार दिन भी न बीतने पाए कि १ ली मई को लाहौर कॉन्सपिरेसी केस ऑर्डिनेन्स नाम का एक तीसरा ऑर्डिनेन्स जारी करके गवर्नर जेनरल ने लाहौर षड्यन्त्र केस के अभियुक्तों को, उनके मुक़दमे की प्रारम्भिक जाँच समाप्त होने के पहले ही, एक विशेष अदालत के सुपुर्द कर दिया और साथ ही यह भी निश्चित कर दिया कि इनके मुक़दमे की अपील हाई-कोर्ट में न हो सकेगी। इसके दो सप्ताह बाद १५ मई को इस साल के चौथे ऑर्डिनेन्स द्वारा शोलापुर में मार्शल लॉ जारी किया गया। इसके बाद और दो सप्ताह बीतते ही बीतते गवर्नर जेनरल को पुनः नए ऑर्डिनेन्सों की आवश्यकता महसूस हुई। इस बार ३० मई के एक असाधारण गज़ट में एक साथ ही दो असाधारण क़ानूनों की घोषणा कर दी गई। ये थे अनलॉफ़ुल इन्स्टिगेशन ऑर्डिनेन्स और प्रिवेन्शन ऑफ़ इन्टिमिडेशन ऑर्डिनेन्स। ये दोनों इस साल के क्रमशः पाँचवें और छठें ऑर्डिनेन्स थे। इनमें से प्रथम द्वारा उन लोगों को दण्ड देने का उपाय किया गया, जो अन्य लोगों को गवर्नमेण्ट के टैक्स या लगान इत्यादि न देने के लिए प्रोत्साहित करते हों और दूसरे के द्वारा विदेशी कपड़ों और शराब की दूकानों पर धरना देना ग़ैरक़ानूनी क़रार दे दिया गया। इसके बाद एक महीने तक ऑर्डिनेन्सों के समुद्र में कोई ज्वार न आया। परन्तु २ जुलाई को पुनः एक नया ऑर्डिनेन्स जारी हुआ। यह इस साल का सातवाँ असाधारण क़ानून था—अन-अथराइज़्ड न्यूज़शीट्स एण्ड न्यूज़पेपर्स ऑर्डिनेन्स। इसके द्वारा लीथो से छपे हुए अन-रजिस्टर्ड परचों का दमन किया गया। इसके बाद अगस्त के मध्य में सीमा प्रान्त की स्थिति को वश में करने के लिए गवर्नमेण्ट को वहाँ मार्शल लॉ जारी करने की आवश्यकता मालूम हुई। इस बार गवर्नमेण्ट ने केवल वहीं के लिए एक ऑर्डिनेन्स न बना कर एक अत्यन्त व्यापक ऑर्डिनेन्स जारी कर दिया, जिसके अनुसार भारत के किसी भी भाग में जब चाहे मार्शल लॉ घोषित कर दिया जा सकता है। यह इस साल का आठवाँ असाधारण क़ानून—मार्शल लॉ ऑर्डिनेन्स—है, जो विगत १४ अगस्त को घोषित हुआ। इसके बाद विगत १० अक्टूबर को इस साल का नवाँ ऑर्डिनेन्स घोषित हुआ, जिसे अनलॉफ़ुल एसोसिएशन ऑर्डिनेन्स कहते हैं। इसके अनुसार गवर्नमेण्ट के कर्मचारियों को यह अनियन्त्रित अधिकार मिल गया है कि वे जिन संस्थाओं को ग़ैरक़ानूनी समझें उनका मकान, उनका सामान, उनकी धन-सम्पत्ति, रुपया-पैसा सब कुछ बिना मुक़दमा चलाए ज़ब्त कर लें।

इस अन्तिम ऑर्डिनेन्स का विरोध करते हुए महाराष्ट्र चेम्बर ऑफ़ कमर्स की कमिटी ने गवर्नमेण्ट ऑफ़ इण्डिया के सेक्रेटरी के पास एक पत्र भेजा है। इसमें कमिटी ने समस्त ऑर्डिनेन्सों की नीति की कठोर समालोचना की है। कमिटी का कहना है—"छः महीने के अन्दर ही धड़ाधड़ नौ ऑर्डिनेन्स जारी किए जा चुके हैं। इसका मतलब तो यह है कि शासन-पद्धति बिलकुल उलट दी गई है। इन ऑर्डिनेन्सों द्वारा पुलिस तथा मैजिस्ट्रेटों के हाथ में अनियमित शक्ति दे दी गई है और इसमें भी सन्देह नहीं कि कई बार उस शक्ति का भयङ्कर दुरुपयोग किया गया है। जैसे एक ओर इस आन्दोलन के आदमी क़ानून तोड़ने वाले हैं, उसी तरह गवर्नमेण्ट की ओर से भी क़ानून तोड़ने वाले सरकारी आदमी तैयार कर दिए गए हैं। इससे यह प्रत्यक्ष होता है कि क़ानून का तो नाश ही हो चुका है। गवर्नमेण्ट के पदाधिकारियों ने स्वतः क़ानून की अवहेलना करना आरम्भ कर दिया है। इधर जो सब से नया ऑर्डिनेन्स जारी किया गया है, उसके द्वारा प्रजा का एकत्रित होने का अधिकार छीन लिया गया है और व्यक्तिगत धन के अधिकार पर भी धावा बोल दिया गया है। इसमें सन्देह नहीं कि इस क़ानून से न्याय-सङ्गत तथा शान्त लोगों को भी, जो इस आन्दोलन से कुछ भी सम्बन्ध नहीं रखते, बहुत कष्ट और क्षति पहुँचेगी। अब सम्पत्ति, धन तथा व्यक्तिगत स्वतन्त्रता सभी ख़तरे में पड़ गए हैं। यह भयानक दशा आजकल के गिरे हुए व्यापार को और भी धक्का पहुँचाएगी। हमारा तो यह ख़्याल है कि

यह क़ानून शान्ति स्थापित करने के बदले मनुष्यों के हृदय में आत्म-बलिदान की भावना को और भी दृढ़ बनावेगा और उनमें स्वतन्त्रता की अग्नि को प्रज्वलित कर देगा। यह निश्चित है कि यह क़ानून प्रजा के चित्त को गवर्नमेण्ट की ओर से हटा कर सुलह में बड़ी भारी बाधा उपस्थित कर देगा।"

महाराष्ट्र चेम्बर ऑफ़ कमर्स की यह आशङ्का कहाँ तक उचित और युक्ति-सङ्गत है, इसका पता पिछले छः महीनों की देश की परिस्थिति पर विचार करने से आसानी से लग जायगा। इन महीनों में जैसे-जैसे ये ऑर्डिनेन्स, एक के बाद दूसरे और दूसरे के बाद तीसरे, जारी होते गए हैं और जैसे-जैसे इनके द्वारा राष्ट्रीय आन्दोलन को दमन करने की चेष्टा की गई है, वैसे ही वैसे यह आन्दोलन और भी उग्र रूप धारण करता गया है। इन छः महीनों के भीतर सत्याग्रहियों की शक्ति घटने के बदले बराबर बढ़ती गई है। आज की अवस्था यह है कि एक ओर अनेक भीषण से भीषण ऑर्डिनेन्स जारी हैं और दूसरी ओर सत्याग्रह आन्दोलन—बिना किसी नेता और बिना किसी कोष अथवा साधन के—निर्बाध गति से बढ़ता चला जा रहा है। आज संसार की कोई भी शक्ति इसे रोकने में असमर्थ दिखाई देती है। इस थोड़े से समय के भीतर ही भीतर इस आन्दोलन ने, अनेकों ऑर्डिनेन्सों और अनेकों दमनकारी क़ानूनों के रहते हुए भी, भारत के महिला-समाज में, भारत के सामाजिक जीवन में, भारत के स्वदेशी शिल्प और उद्योग धन्धों में जो अभूतपूर्व जागृति और जीवन फूँक दिया है, वह एकबारगी चकित करने वाला है।

भारतीय स्त्रियों की जागृति

भारतीय स्त्रियों ने इस आन्दोलन में भाग लेकर जो महान पराक्रम दिखाया है, वह मानव जाति के इतिहास में सदा स्वर्णाक्षरों में अङ्कित रहेगा। इस आन्दोलन की पद्धतियों से किसी का कितना ही मतभेद क्यों न हो, इस बात को कदापि अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि इसने कुछ महीनों के भीतर ही भीतर भारत की स्त्रियों को सदियों की पराधीनता के कठिन पाश से मुक्त कर दिया है। भारतीय महिला-सङ्घ के मुखपत्र 'स्त्री-धर्म' का तो यहाँ तक कहना है कि इस आन्दोलन में सत्य, धैर्य, तपस्या और आत्मशुद्धि आदि जिन शस्त्रों से काम लिया जा रहा है, वे वास्तव में स्त्रियों के शस्त्र हैं, पुरुषों के नहीं। ऐसी अवस्था में क्या आश्चर्य है यदि इस आन्दोलन में स्त्रियाँ प्रमुख भाग लें? इङ्गलैण्ड के मज़दूर दल के सुप्रसिद्ध पत्रकार और लेखक श्री० ब्रेल्सफ़ोर्ड, जो आजकल भारत में घूम-घूम कर यहाँ की दशा का निरीक्षण कर रहे हैं, भारतीय स्त्रियों की जागृति को देख कर अत्यन्त प्रभावित हुए हैं। वह कहते हैं—"इस आश्चर्यजनक आन्दोलन में जो सब से आश्चर्यजनक बात है, वह है भारतीय स्त्रियों की अभूतपूर्व जागृति। शताब्दियों की ग़ुलामी के बाद वे स्वाधीनता के संग्राम में आई हैं और यदि इस संग्राम द्वारा उन्होंने सम्पूर्ण भारत के लिए स्वराज्य नहीं प्राप्त कर लिया तो कम से कम अपना उद्धार तो अवश्य कर लिया है। बम्बई में स्त्रियों की दशा देख कर यह विश्वास नहीं होता कि कभी यहाँ परदे की प्रथा भी रही होगी।" केवल बम्बई तथा गुजरात में ही नहीं, स्त्रियों की यह जागृति भारत के कोने-कोने में व्याप्त गई है। पाठकों को यह जान कर आश्चर्य होगा कि इस आन्दोलन में भाग लेकर जेल जाने वाली स्त्रियों की संख्या आज जिस प्रान्त में सब से अधिक है, वह एक परदा-ग्रसित प्रान्त है—बङ्गाल। गुजरात आदि प्रान्तों में तो, जहाँ परदे की प्रथा नहीं है, स्त्रियों ने इस आन्दोलन में भाग लिया ही है, परन्तु दिल्ली, यू० पी०, बिहार और सी० पी० आदि परदा-ग्रसित प्रान्तों की स्त्रियों ने भी कुछ कम शौर्य और कम वीरत्व तथा साहस का परिचय नहीं दिया है। निस्सन्देह यह एक ऐसा दृश्य है, जिसे देख कर किसी भी सच्चे देशभक्त और सच्चे मनुष्य की आँखें तृप्त हुए बिना नहीं रह सकतीं। अब भी जो लोग स्त्रियों की शिक्षा और उनकी स्वाधीनता का विरोध किया करते हैं, वे इस स्वर्गीय दृश्य को देख कर बहुत कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं।

अछूतों की समस्या और स्वराज्य

अछूतों और दलित जातियों की समस्या भी आज उतनी विकट नहीं दिखाई देती, जितनी हमारे श्वेताङ्ग शासकगण इसे बनाने की कोशिश करते हैं। पिछले अगस्त मास में नागपुर में अखिल भारतीय दलित सम्मे-

लन के प्रथम अधिवेशन के सभापति की हैसियत से अछूतों के प्रमुख नेता डॉ० आम्बेडकर ने इस विषय पर एक ऐसा भाषण दिया है, जिसने इङ्गलैण्ड के कई धुरंधर नीतिज्ञों के कान खड़े कर दिए हैं। उन्हें अपने जीते जी अछूतों की समस्या को इतनी आसानी के साथ हल होते देख कर घोर मानसिक वेदना हो रही है। लॉर्ड समनर, लॉर्ड सिडेनहम, सर चार्ल्स श्रोमन, सर जॉर्ज मैकमुन, सर माइकेल ओडायर और सर क्लॉड जैकब, ये छः अङ्गरेज़ नीतिज्ञ डॉ० आम्बेडकर पर अत्यन्त रुष्ट हो गए हैं। इनका कहना है कि यदि डॉ० आम्बेडकर अपनी जाति वालों को इसी तरह हिन्दुओं से मिलने और ब्रिटिश शासकों में अविश्वास करने का उपदेश देते रहेंगे तो वह दिन दूर नहीं जब वह अपनी जाति का नेतृत्व खो बैठेंगे। आख़िर वह बात कौन सी है, जिसके कारण अछूतों और दलितों के ये नमकहलाल श्वेताङ्ग हितैषी इतने चिन्तित हो गए हैं? वह बात यह है कि अब तक हमारे श्वेताङ्ग प्रभुगण भारत को स्वराज्य देने के विरुद्ध जो अनेक उलटी-सीधी दलीलें दिया करते थे, उनमें अछूतों की समस्या एक बहुत बड़ी दलील थी; परन्तु डॉ० आम्बेडकर ने अपने उपरोक्त भाषण में इस दलील का पूर्णतः खण्डन करके यह अकाट्य रूप से प्रमाणित कर दिया है कि अछूतों का सच्चा हित इसी बात में है कि वे ब्रिटिश शासकों की शरण में न जाकर अपने देश-वासियों का साथ दें और भारत को शीघ्र से शीघ्र स्वराज्य दिलाने का प्रयत्न करें।

डॉ० आम्बेडकर कहते हैं कि अनेक जातियाँ, अनेक धर्म, अनेक भाषाएँ केवल भारतवर्ष में ही नहीं हैं। यूरोप के कई स्वतन्त्र देशों में भी जाति, धर्म और भाषा सम्बन्धी अनेकता पाई जाती है। विगत यूरोपीय महायुद्ध के बाद लटेविया, रूमानिया, लिथुआनिया, युगोस्लाविया, एस्थोनिया और ज़ेकोस्लोवाकिया आदि जिन अनेक छोटे-छोटे स्वतन्त्र देशों की सृष्टि की गई है, उनकी अवस्था इस मामले में भारत से किसी भी प्रकार अच्छी नहीं है। लटेविया में लेट, रूसी, यहूदी और जर्मन, इन चार जातियों के अलावे भी और कई वर्ग और छोटी-छोटी जातियाँ हैं। लिथुआनिया में लिथुनिआनियन हैं, यहूदी हैं, पोल और रूसी हैं, और इनके अलावे भी और अनेक छोटी-छोटी जातियाँ हैं। युगोस्लाविया में सर्ब, क्रोट, स्लोवनीज़, रूमानियन, हङ्गेरियन, अल्बेनियन, जर्मन आदि अनेक जातियाँ निवास करती हैं। इसी तरह एस्थोनिया में भी एस्थोनियन, रूसी, जर्मन तथा और कई छोटी-छोटी जातियाँ हैं। ज़ेकोस्लोवाकिया में ज़ेक, जर्मन, मेगर, रूथीनियन तथा हङ्गरी में मेगर, जर्मन, स्लोवाक इत्यादि अनेक जातियाँ हैं। इन जातियों में धर्म और भाषा का भेद भी भारत की अपेक्षा कम नहीं है। इनमें से कई देशों की अवस्था तो इन मामलों में भारत से भी गई-गुज़री है। फिर ये देश जब स्वतन्त्र हो सकते हैं, अपनी भीतरी और बाहरी नीति का स्वयं निर्णय कर सकते हैं, तब—डॉ० आम्बेडकर पूछते हैं—भारतवर्ष क्यों नहीं स्वतन्त्र हो सकता, भारतवर्ष अपने भाग्य का निर्णय क्यों नहीं स्वयं कर सकता? डॉ० आम्बेडकर का कहना है कि यह तर्क मूर्खतापूर्ण है कि भारत की विभिन्न जातियों में एकता होने पर स्वराज्य मिलेगा; बल्कि सीधा और सच्चा तर्क यह है कि स्वराज्य होने पर ही इन जातियों में एकता स्थापित हो सकती है।

डॉ० आम्बेडकर अपने विद्वत्तापूर्ण भाषण में बड़े ज़ोरदार शब्दों में पूछते हैं कि वे कौन से प्रयत्न हैं, जो ब्रिटिश गवर्नमेण्ट ने अपने डेढ़ सौ वर्षों के शासन में अछूतों के उद्धार के लिए किए हैं? अङ्गरेज़ों के आने के पहले अछूत लोग सार्वजनिक कुँओं से पानी नहीं भर सकते थे; क्या अङ्गरेज़ों ने अछूतों का यह दुःख दूर कर दिया? अङ्गरेज़ों के आगमन के पूर्व अछूत लोग मन्दिरों में नहीं प्रवेश कर सकते थे, क्या अब उन्हें यह अधिकार मिल गया है? अङ्गरेज़ी राज्य से पूर्व अछूत लोग पुलिस में नहीं भर्ती किए जाते थे; क्या अङ्गरेज़ी राज्य में वे पुलिस में भर्ती किए जाते हैं? अङ्गरेज़ी शासन के पहले सेना में अछूतों का प्रवेश निषिद्ध था, क्या अङ्गरेज़ी शासन में उन्हें यह अधिकार मिल गया? नहीं! नहीं!! नहीं!!! फिर किस बात के लिए हम अङ्गरेज़ी राज्य को अछूतों का हितैषी समझें? सच बात यह है कि अङ्गरेज़ लोग अछूतों की दुर्दशा का इतना बढ़ा-चढ़ा कर चित्र इसलिए नहीं खींचते कि उन्हें भारत के करोड़ों अछूतों और दलितों के साथ कोई हार्दिक सहानुभूति है और वे उनकी दुर्दशा का निवारण करना चाहते हैं, बल्कि इसका सच्चा कारण यह है कि इन बातों का बढ़ा-चढ़ा कर वर्णन करने से अङ्गरेज़ नीतिज्ञों

को भारत की राजनीतिक प्रगति के मार्ग में रोड़े अटकाने में सहायता मिलती है।

इन सभी बातों पर प्रकाश डालते हुए डॉ० आम्बेडकर ने अपने जाति-भाइयों से बड़े ही ज़ोरदार और ओजस्वी शब्दों में यह अपील की है कि वे सच्चे दिल से भारतीय स्वराज्य का समर्थन करें। क्योंकि डॉ० आम्बेडकर का कहना है कि स्वयं अछूतों के अतिरिक्त उनका उद्धार और कोई नहीं कर सकता, और वे भी अपना उद्धार तब तक नहीं कर सकते जब तक उनके हाथों में राजनीतिक शक्ति न आ जाय, और राजनीतिक शक्ति उन्हें तभी मिल सकती है, जब अङ्गरेज़ी राज्य का वर्तमान रूप बदल जाय और भारत को स्वराज्य मिल जाय। स्वराज्य ही एक मात्र ऐसी अवस्था है, जिसमें दलित लोग अपने हाथों में राजनीतिक अधिकार के आने की आशा कर सकते हैं। भारत को स्वराज्य मिले बिना अछूतों का उद्धार असम्भव है। इसलिए अछूतों को भारत की अन्य जातियों के साथ मिल कर प्राणपन से यह प्रयत्न करना चाहिए कि इस देश में शीघ्र से शीघ्र एक ऐसा शासन स्थापित हो जाय, जो यहाँ के करोड़ों ग़रीबों की आर्थिक दशा सुधारने का प्रयत्न करे। क्योंकि अछूतों के लिए सब से पहिली आवश्यकता आर्थिक सुधार की ही है। बिना आर्थिक उन्नति के वे और किसी प्रकार की उन्नति करने में सदा असमर्थ रहेंगे।

भारत की आर्थिक दुरवस्था

डॉ० आम्बेडकर ने अपने विद्वत्तापूर्ण भाषण में भारत की आर्थिक दुरवस्था का भी बड़ा ही करुणापूर्ण चित्र खींचा है। वह कहते हैं कि अङ्गरेज़ों ने हमें निस्सन्देह उन्नत सड़कें दी हैं, हमारे देश में नहरें खोदी हैं, गमनागमन के लिए रेलों का निर्माण किया है, डाक और तार का प्रबन्ध किया है, सिक्कों और माप-जोख के बटखरों को स्थिर किया है तथा देश के भीतर शान्ति और व्यवस्था स्थापित की है। इसके लिए उनकी जितनी प्रशंसा की जाय, सब थोड़ी है। परन्तु यहाँ प्रश्न तो यह है कि हम इस अनुपम शान्ति और इस स्वर्गीय व्यवस्था को लेकर क्या करें, जबकि हमारे पेट में भोजन और शरीर पर वस्त्र नहीं है? शान्ति और व्यवस्था को लेकर हम नहीं जी सकते; हमें जीने के लिए रोटी और वस्त्र चाहिए। और यही दो चीज़ें हैं, जिनका हमारे देश में आज सर्वत्र अभाव है। हमारे शासकों ने इस देश के शिल्प और कला-कौशल को इस बेरहमी के साथ कुचला है कि आज हम अपना तन-बदन ढकने और अपने नन्हें-नन्हें बच्चों तक का पेट भरने में असमर्थ हो गए हैं। ब्रिटिश शासकों की सदा यह नीति रही है कि भारत के उद्योग-धन्धों को कभी पनपने न दिया जाय और इस देश को सदा अङ्गरेज़ी माल की खपत के लिए एक खुला बाज़ार बनाए रक्खा जाय। डॉ० आम्बेडकर की सम्मति में इस शोषण-नीति का सब से घातक प्रभाव दलित जातियों पर पड़ा है, क्योंकि ये जातियाँ अधिकतर खेती-बारी अथवा अन्य उद्योग-धन्धों का ही काम करती हैं। इसीलिए डॉ० आम्बेडकर का कहना है कि दलित जातियों को सबसे पहले स्वराज्य पाने का उद्योग करना चाहिए। बिना स्वराज्य के—बिना एक ऐसी शासन-प्रणाली के, जो इस देश के शिल्प और उद्योग-धन्धों की उन्नति करने का प्रयत्न करे—दलित जातियों की अवस्था सुधरना सर्वथा असम्भव है। हमारी सम्मति में ये ऐसी बातें हैं, जिनके साथ न केवल दलित जातियों का, वरन् भारत की सभी जातियों के हित का घनिष्ट सम्बन्ध है।

ऊपर वर्णित आर्थिक दुरवस्था के साथ यदि आजकल की असाधारण आर्थिक कठिनाइयों का वर्णन और जोड़ दिया जाय तो सचमुच भारत की भीषण दरिद्रता का वर्णन सम्पूर्ण हो जाता है। आजकल नाज तथा ज़मीन की अन्य पैदावारों की सस्ती हो जाने के कारण किसानों के ऊपर एक ऐसे भयावह सङ्कट का समय उपस्थित हो गया है, जैसा पिछली एक पीढ़ी के भीतर कभी न हुआ था। आजकल बङ्गाल में जूट के पैदावार की हालत यह है कि जितने जूट को पैदा करने में सौ रुपया ख़र्च होता है, उतने को बेचने से केवल पचास ही रुपए मिलते हैं। 'टाइम्स ऑफ़ इण्डिया' का कहना है कि दक्षिण भारत के किसान खेतों की बढ़ी हुई मालगुज़ारी चुकाने के लिए अपनी स्त्रियों के बदन पर के गहने बेचने को मजबूर हो गए हैं। बम्बई प्रान्त में रूई के पैदावार की भी ऐसी ही दुर्दशा है। वहाँ एक एकड़ में रूई पैदा करने में जहाँ चालीस रुपए का ख़र्च है, वहाँ उसकी रूई को बेचने से केवल तीस ही रुपए प्राप्त हैं। इस प्रकार वहाँ के दरिद्र

किसानों को फ़ी एकड़ पूरे दस रुपए का घाटा पड़ रहा है। यदि इन चीज़ों की क़ीमत में वृद्धि न हुई तो आगे चल कर किसानों की दशा कैसी भयङ्कर हो जायगी, यह आसानी से समझा जा सकता है। ऐसे सङ्कट के समय किसानों की रक्षा का एक ही उपाय था—लगान माफ़ कर देना, कम कर देना या कुछ दिन ठहर कर वसूल करना। परन्तु बम्बई गवर्नमेण्ट इस समय सचमुच जो कर रही है वह यह है कि जिस लगान को अगली जनवरी में वसूल करना चाहिए था, उसे वह इसी समय वसूल कर लेना चाहती है। सब से बड़े दुःख की बात तो यह है कि हमारे किसानों की ऐसी दुर्दशा करने में स्वयं हमारी ही गवर्नमेण्ट की व्यापार-नीति और विनिमय नीति का बहुत बड़ा हाथ है। इस असाधारण सस्ती के कुछ ऐसे कारण भले ही हों, जो संसारव्यापी हों और जिन पर हमारी गवर्नमेण्ट का कोई प्रभुत्व न हो, परन्तु सर पुरुषोत्तमदास के इस कथन में तथ्य अवश्य है कि ब्रिटिश गवर्नमेण्ट ने रुपए का विनिमय-दर बदल कर भारत के ग़रीब किसानों की पैदावार का साढ़े बारह प्रतिशत ज़बर्दस्ती लूट लिया है।

स्वदेशी आन्दोलन की प्रगति

इस समस्त दुःखमय गाथा में स्वदेशी आन्दोलन की प्रगति ही एक ऐसी बात है, जिस पर ग़रीब भारत की आशाएँ लगी हुई हैं। पिछले कई महीनों में भारत में विदेशी माल के, ख़ासकर विदेशी कपड़े के, बहिष्कार का आन्दोलन बड़े ज़ोरों पर रहा है। इस आन्दोलन से इस देश के घरेलू उद्योग-धन्धों और शिल्प को अपूर्व प्रोत्साहन मिला है। वास्तव में स्वदेशी आन्दोलन केवल भारत तक ही परिमित नहीं है, वरन यह समस्त संसार में व्याप गया है। अब तक इस आन्दोलन का सहारा केवल पीड़ित और परतन्त्र राष्ट्र ही लेते थे, परन्तु पिछले कई महीनों में तो बड़े-बड़े साम्राज्यों और शिल्प-प्रधान देशों को भी इसकी शरण लेने के लिए बाध्य होना पड़ा है। इस समय समस्त संसार में स्वदेशी की एक लहर सी बह चली है। सभी राष्ट्र यह प्रयत्न करने लगे हैं कि अपनी जीवन-यात्रा के लिए आवश्यक तमाम वस्तुएँ अपने ही देश में पैदा की जायँ। जिन-जिन देशों में वहाँ के निवासियों के खाने के लिए यथेष्ट खाद्य पदार्थ पैदा होते हैं, वहाँ-वहाँ यह आन्दोलन बड़े ज़ोरों पर है। इससे इङ्गलैण्ड तथा जापान आदि साम्राज्यवादी देशों में खलबली सी मच गई है। इङ्गलैण्ड में इतना अन्न नहीं पैदा होता, जो वहाँ के निवासियों के खाने के लिए यथेष्ट हो। इङ्गलैण्ड के अधिकांश निवासियों की जीविका कारख़ानों और पुतलीघरों पर निर्भर है। इन कारख़ानों में बने हुए माल इङ्गलैण्ड के बाहर अन्य देशों में, जैसे भारत में, ऑस्ट्रेलिया में, दक्षिण अफ़्रीका और कनाडा आदि में, जाकर बिकते हैं और वहाँ से बदले में इङ्गलैण्ड को खाद्य पदार्थ भेजे जाते हैं। अब समस्या यह है कि यदि भारत, ऑस्ट्रेलिया, दक्षिण अफ़्रीका तथा कनाडा आदि अपनी ज़रूरत की सभी चीज़ें स्वयं ही तैयार

नवीन वर्ष का स्वागत

विगत वर्ष, जैसे देश के जीवन में वैसे ही 'चाँद' के जीवन में भी, उथल-पुथल और क्रान्ति का वर्ष रहा है। इस वर्ष 'चाँद' पर अनेक असाधारण विपत्तियाँ आई हैं। ख़ासकर जब से प्रेस-ऑर्डिनेन्स जारी हुआ तब से तो एक तरह से 'चाँद' के जीवन पर ही सङ्कट उपस्थित हो गया था। परन्तु ग्राहक-अनुग्राहकों की कृपा, पाठकों की सद्भावनाएँ और लेखकों तथा कवियों का सहयोग पाकर 'चाँद' का यह वर्ष भी सकुशल समाप्त हो गया। इस वर्ष निस्सन्देह पत्र के प्रकाशन में कुछ त्रुटियाँ हो गई हैं, परन्तु आजकल के समान युद्धकाल में इस प्रकार की त्रुटियाँ हो जाना अनिवार्य है। हमने अपनी शक्ति भर 'चाँद' को ठीक समय पर और सर्वाङ्गपूर्ण निकालने में कोई प्रयत्न उठा नहीं रक्खा है। यदि ग्राहकों और पाठकों से इसी तरह सहयोग प्राप्त होता रहा तो 'चाँद' इस वर्ष पहले की अपेक्षा अधिक सज-धज और सुन्दर लेखों तथा कविताओं के साथ प्रकाशित होगा। यही आशा और महत्वाकांक्षा लेकर हम नवीन वर्ष का हृदय से स्वागत करते हैं।

करने लगें—वे इङ्गलैण्ड का बना हुआ कपड़ा और लोहे का सामान न ख़रीदें और इन वस्तुओं को स्वयं ही बनाने लगें—तो इङ्गलैण्ड क्या करे ? यदि उसके पक्के माल की खपत इन देशों में न हो तो वह इन देशों से गेहूँ, मांस, फल, ऊन आदि कच्चे पदार्थ ख़रीदने के लिए पैसे कहाँ से ले आवे ? वास्तव में इङ्गलैण्ड जैसे राष्ट्रों के सामने, जो खाद्य पदार्थों के लिए दूसरे देशों पर निर्भर हैं, यह एक बहुत बड़ी समस्या है। ब्रिटेन के नीतिज्ञ इस कठिन समस्या को देख कर अत्यन्त व्याकुल हो गए हैं। ख़ासकर भारत में ब्रिटिश वस्तुओं के बहिष्कार का आन्दोलन उठ खड़े होने के कारण ब्रिटिश नीतिज्ञों की चिन्ता और भी बढ़ गई है।

इसी प्रकार की समस्या संसार के अन्य शिल्प-प्रधान देशों के सामने भी उपस्थित है और वे इसे हल करने का प्राणपन से उद्योग कर रहे हैं। परन्तु अभी तक कोई उपयोगी उपाय नज़र नहीं आता। ब्रिटेन का एक दल अपनी इस समस्या को इस तरह हल करना चाहता है कि ब्रिटिश साम्राज्य के स्वतन्त्र उपनिवेशों को जो माल बाहर से ख़रीदना पड़े, उसे वे अमेरिका या जर्मनी या किसी अन्य देश से न ख़रीद कर ब्रिटेन से ख़रीदें और इसके बदले ब्रिटेन उन्हें यह सुविधा दे कि उसे बाहर से जो खाद्य पदार्थ ख़रीदने पड़ते हैं, उनमें वह इन उपनिवेशों की पैदावार को पहले स्थान दे अर्थात् इनकी पैदावार पर वह, अन्य देशों की पैदावार की अपेक्षा, कम टैक्स लगावेगा। इस तरह उपनिवेशों की पैदावार को ब्रिटेन में, साम्राज्य के बाहर वाले देशों की पैदावार के मुक़ाबले, सस्ते दामों बिकने का मौक़ा रहेगा। परन्तु इस नीति में सब से बड़ी कठिनाई यह है कि ब्रिटेन को स्वतन्त्र व्यापार की नीति त्यागनी पड़ेगी। अब तक ब्रिटेन में बाहर से आने वाले खाद्य पदार्थों पर टैक्स नहीं लगाया जाता। परन्तु इस नीति को स्वीकार करने पर उसे इन पदार्थों पर न केवल टैक्स लगाना पड़ेगा, बल्कि साम्राज्य के बाहर वाले देशों के माल पर अपेक्षाकृत अधिक टैक्स लगाना पड़ेगा। इससे साम्राज्य के बाहर वाले देश भी इङ्गलैण्ड के माल पर टैक्स बढ़ाने के लिए विवश होंगे, जिससे उन देशों में इङ्गलैण्ड के माल की खपत कम हो जायगी। अब यदि ब्रिटेन स्वतन्त्र व्यापार की नीति पर दृढ़ रहता है तो ब्रिटिश उपनिवेशों और भारत में उसके माल की खपत कम होती है—क्योंकि ऐसी दशा में ये देश ब्रिटिश माल की अपेक्षा अन्य देशों का माल सस्ते दाम पर ख़रीद सकते हैं—और यदि वह इन देशों में अपने माल की खपत बढ़ाने के लिए संरक्षण की नीति अख़्तियार करता है तो साम्राज्य के बाहर वाले देशों में उसके माल के लिए बाज़ार नहीं रह जाता। दोनों हालतों में ब्रिटेन में बेकारों की संख्या बढ़ती है और ब्रिटेन के वैभव को आघात पहुँचता है। ब्रिटिश नीतिज्ञ चाहे जो प्रयत्न करें, इस विपत्ति से ब्रिटेन की मुक्ति होती नहीं दिखाई पड़ती। संसार के परतन्त्र देशों में, ख़ास कर भारत में, स्वदेशी का आन्दोलन जैसे-जैसे बढ़ता जायगा, वैसे ही वैसे ब्रिटेन की यह विपत्ति और भी भयङ्कर रूप धारण करती जायगी।

हर्ष की बात है कि पिछले कई महीनों में भारत ने इस दिशा में यथेष्ट प्रगति की है। पिछले मास के समाचारों से विदित होता है कि भारत में मैनचेस्टर के कपड़ों की खपत पचहत्तर फ़ीसदी कम हो गई है। इससे मैनचेस्टर के व्यापार को गहरा आघात पहुँचा है। यदि यही अवस्था कुछ दिन और बनी रही तो वहाँ के व्यापार का पुनरुज्जीवित होना असम्भव हो जायगा। अभी तक वहाँ के कारख़ानेदार इस ताक में बैठे हुए हैं कि भारत में स्वदेशी आन्दोलन की प्रगति शिथिल पड़े और वे इस देश के बाज़ारों को अपने यहाँ के बने सूती कपड़ों से भर दें। उनकी यह नीति कहाँ तक सफल होगी, यह बहुत कुछ इस बात पर अवलम्बित है कि भारत के स्त्री-पुरुष स्वदेशी व्रत से कहाँ तक मुख मोड़ेंगे। परन्तु भारतीय आन्दोलन के लक्षणों को देख कर बहुत से नीतिज्ञ अभी से यह कहने लग गए हैं कि मैनचेस्टर वालों को भारत के हाथ अपने कपड़े बेच कर मालामाल होने की आशा अब सदा के लिए छोड़ देनी चाहिए। जो हो, भारतवासियों को यह भली भाँति समझ लेना चाहिए कि भारत की सब प्रकार की उन्नति का रहस्य जिस एक मन्त्र के भीतर छिपा हुआ है, वह है—'स्वदेशी ! स्वदेशी !! स्वदेशी !!!' इसी महा मन्त्र को अपनाने से भारतवर्ष गुलामी की शृङ्खला से मुक्त हो सकेगा। यही वह मन्त्र है जो संसार के पीड़ित और परतन्त्र राष्ट्रों का उद्धार करेगा। तथा इसी मन्त्र के प्रचार से समस्त संसार में शान्ति का साम्राज्य फैलेगा।



मातृ-मन्दिर

[डॉक्टर धनीराम 'प्रेम', लन्दन]



उस समय मेरी अवस्था सोलह वर्ष की थी। इस आयु में हिन्दू बालिकाएँ भाँति-भाँति की कामनाएँ करती हैं, आशाएँ बाँधती हैं, सुख-स्वप्न देखती हैं। परन्तु मेरे भाग्य में यह सब कुछ न था। मेरी कामनाएँ उत्पन्न होने से पूर्व ही मर चुकी थीं। मेरी आशाओं को पनपने का अवसर न मिला था। मैं स्वप्न देखने की अधिकारिणी भी नहीं रह गई थी। मैं एक विधवा थी, बाल-विधवा। मेरे लिए दिन और रात एक समान थे। सौभाग्य मैंने देखा नहीं था, फिर वैधव्य को क्या समझती? मैं केवल इतना जानती थी और जानने के लिए विवश की गई थी कि मेरे लिए जीवन एक लम्बी यात्रा है, जिसमें न विश्राम के लिए अवकाश है, न शरण के लिए हरे वृक्ष हैं, न शान्ति के लिए मधुर जल के स्रोत। इन बातों के कारण यदि मेरे हृदय में नैसर्गिक भावनाएँ तथा सुख-दुख का परिज्ञान आदि उत्पन्न न हुए थे तो कोई आश्चर्य नहीं। उस विचार-शून्य रुखे-सूखे जीवन में यदि कभी समीक्षा के योग्य कोई विषय मेरे सम्मुख आता था तो वह केवल सास का अत्याचार था। परन्तु वह भी क्षणिक होता था। क्योंकि मैं यह समझने लगी थी कि एक विधवा के जीवन-क्रम का वह भी एक आवश्यक भाग है।

मेरे दिन किस प्रकार कट रहे थे, यह बताने की क्या आवश्यकता है? विधवाओं का जीवन जिस प्रकार व्यतीत होता है, वह किस पर अविदित है? प्रातःकाल से अर्द्ध रात्रि तक मशीन की भाँति काम करना, रूखे टुकड़े खा कर ठण्डा पानी पी लेना, औरों के उतरे हुए वस्त्र पहन लेना और नित्य प्रति नियम से सास की गालियाँ और जूतियाँ खा लेना, यही मेरी दिनचर्या थी।

उस दिन सोमवती अमावस्या थी। मेरे मुहल्ले में सभी घरों में राजघाट जाने की तैयारियाँ हो रही थीं। सास जी थीं कृपण। वे कहीं पाँच वर्ष में एक बार गङ्गा-स्नान को जाती थीं। श्वसुर जी पीछे पड़ते तो कह देतीं—"बार-बार गङ्गा नहाने में ही कौन सा पुन्य होता है? पाँच वर्ष के पाप एक बार जाकर धो आए, यह काफ़ी है। व्यर्थ ही हर बार ढाई-तीन रुपया व्यय करने से क्या लाभ?" उस रात श्वसुर जी व्यालू करने आए तो कहने लगे—"सुनती हो, रामू की माँ, अमावस्या आ पहुँची है।"

"तो कहते किससे हो, जाने की इच्छा है तो नहा आओ।"

"मेरी इच्छा नहीं है। मैं तुम्हारे लिए कह रहा था। अबकी बार कर्णवास के भी दर्शन कर आना।"

"मुझे तो अभी दो ही वर्ष हुए हैं। अभी से क्या जल्दी है। अभी मरी नहीं जाती हूँ।"

"मेरी सलाह है कि अबकी बार बहू को भी गङ्गा-स्नान करा लाओ।"

"बहू को? वह पुन्न लूट के क्या करेगी? ऐसी होती तो मेरे लाल को ही क्यों डस लेती? तुम्हें ऐसी प्यारी लगती है तो ख़ुद ले जाओ। घर में अच्छे से अच्छा खाती है, अच्छे से अच्छा पहनती है, अब तीन-चार रुपया ख़र्च करके रानी जी को गङ्गा जी ले जाओ।"

"यह सब तो ठीक है, पर जिस दिन से विधवा हुई है, बेचारी ने बाहर पैर नहीं रक्खा। मायके में भी तो कोई नहीं है, जो कुछ दिनों वहीं जी बहला आवे। बेचारी बचा उमर है, दो दिन गङ्गा मैया के किनारे खेल-खाइ आवेगी।"

सास ने मेरी ओर देख कर पूछा—"क्यों, रानी जू! गङ्गा जी चलोगी?"

मैं चुप रही। श्वसुर जी बोले—"वह बेचारी क्या बतावेगी? जाओ इस बार उसे भी गोता लगवाइ लाओ।"

मेरे लिए वर्षों के बाद घर से बाहर पैर निकालने का यह प्रथम अवसर था। घर की चहारदीवारी के बाहर क्या होता है, इसका मुझे अधिक ज्ञान नहीं था। हम लोग एक इक्के में बैठ कर स्टेशन पहुँचे। भीड़ का क्या ठीक था। जिनके घर में खाने को अन्न नहीं था, वे भी गङ्गा जी के दर्शन के लिए निकल पड़े थे। प्लेटफ़ॉर्म खचाखच भरे थे। स्टेशन के बाहर ग्रामों से आए हुए

किसान, कम्बल बिछाए, पोटरियाँ बग़ल में दबाए, बैठे थे। टिकट-घर के बाहर तो एक प्रकार का युद्ध हो रहा था। मनुष्य एक के ऊपर एक गिरे पड़ते थे। श्वसुर जी हमें स्टेशन तक पहुँचाने आना चाहते थे, परन्तु इक्के के दो आने बचाने के लिए सास जी ने उन्हें रोक दिया। अब इधर-उधर फिर रही थीं। उस भीड़ में टिकट मिलना सरल न था। एक बार उन्होंने भीड़ को चीर कर खिड़की तक जाने का प्रयत्न किया तो किसी के जूते से उनका पैर कुचल गया। रोती हुई बाहर आईं। और किसी से तो कुछ कह नहीं सकती थीं, मेरे ऊपर क्रोध उतारा। चिल्लाने लगीं—"आग लगे ऐसी गङ्गा में! सारे पैर का हलुआ हो गया! यह कम्बख़्त जहाँ जायगी, वहीं ऐसा करेगी! राँड़ को मौत भी तो नहीं आती!"

मैं अब तक तो चुप थी। मेरे मुख से केवल इतना निकल गया—"तो इसमें मैंने क्या कर दिया? देखती तो हो कि भीड़ हो रही है?" बस फिर क्या था, अङ्गार की भाँति लाल हो गईं। "राम-राम! देखो इस हत्यारी की बातें! मुझे सीख देने चली है! है तो कलजुगियाई!" इतना कह कर उन्होंने दो चाँटे भी मेरे रसीद कर दिए। जिस समय वह मुझे इस प्रकार गालियाँ दे रही थीं, मेरे पास ही एक नवयुवक अङ्गरेज़ी सूट पहने खड़ा था। अवस्था बाईस के लगभग होगी। मुख पर लावण्य था और नेत्रों में दया तथा सहानुभूति का भाव। जब गालियाँ समाप्त करके सास मुझ पर हाथ चलाने लगीं तो वह धीरे-धीरे मेरी ओर आया और सास की ओर दृष्टि फिरा कर खड़ा हो गया। सास ने उसे देख कर हाथ चलाना तो बन्द कर दिया, परन्तु आप ही आप बड़बड़ाती रहीं।

वह धीरे से सास के कन्धे को झकझोर कर बोला—"बुढ़िया! इस बेचारी को क्यों पीट रही है?"

"तू कौन, राजा कै मन्त्री? मेरी बहू है, चाहे जो कुछ करूँ।"

"तेरी बहू तो है, पर यहाँ तो तुझे उसके ऊपर हाथ नहीं उठाना चाहिए।"

"अरे भैया, तू क्या जाने, डाइन है! अब देखो कैसी सीधी बनी खड़ी है!"

"देख बुढ़िया! घर चाहे जो कुछ कर, बाहर इस बेचारी को न मारना। अगर पुलिस देख लेगी तो तू बँधी-बँधी फिरेगी। समझी?"

"वैसे तो भैया मेरी प्रान है। पर जब आपे से बाहर हो जाय तो क्या करूँ? मैं बुड्ढी हूँ। मुझसे भीड़ में टिकट लिया नहीं जायगा। इससे ज़रा टिकट ले लेने को कहा तो आग-बबूला हो गई। थोड़ी डाट-डपट न करूँ तो कैसे काम चले?"

"क्या गङ्गा जा रही है? ला, मैं तेरे लिए टिकट ला दूँ।"

"तू जुग-जुग जिए, भैया!" कह कर सास ने एक रुपया निकाल कर उसे दे दिया। नवयुवक ने अपनी टोपी मेरी ओर करके कहा—"ज़रा मेरी टोपी पकड़ना। मैं अभी टिकट लिए आता हूँ।"

वह टिकट लेने चला गया। सास अपना बचाव करने के लिए उससे सरासर झूठ बोली थीं। मैं शान्त रही। मेरी इस शान्ति और नवयुवक की सहानुभूति पर वह कुढ़ रही थीं और मन ही मन संसार के सारे कोप मेरे ऊपर गिराने की प्रार्थना कर रहीं थीं। मैं मन ही मन एक अज्ञात आनन्द का अनुभव कर रही थी। आज तक गालियों और कटु वाक्यों के अतिरिक्त और कुछ मेरे भाग में न आया था। आज यह सहानुभूति, यह दयार्द्रता! वर्षों रूखी रोटी खाकर किसी को एक गुड़ की डली खाने को मिले तो वह कितनी मधुर मालूम देती है! इसी प्रकार मैं अपने जीवन में इसे एक नवीनता और वह भी एक वाञ्छनीय नवीनता समझ रही थी। मैं अपने विचारों में मग्न थी और वृद्धा अपने विचारों में। आज तक उसने मेरे ऊपर एकतन्त्र राज्य किया था। मेरे लिए उस नवयुवक की सहानुभूति उसे कुछ खटकी। सास को शायद ऐसा प्रतीत होने लगा कि उसके निरङ्कुश राज्य के विरुद्ध एक विद्रोही खड़ा हो गया है। प्रकृति ने मनुष्य में यह भाव क्यों भर दिया है कि जब वह अपने आश्रित को किसी की सहानुभूति पाते हुए देखता है तो उसके हृदय में अत्याचार की वासना और भी प्रबल हो उठती है? वह बोली—"सुनती है, मुझे दे टोपी। बहू-बेटी के हाथ में पराए मर्द-मानस की चीज़ अच्छी नहीं लगती।"

उसने मेरे हाथ से टोपी छीन ली। वह एक साधारण बात थी। परन्तु मुझे उससे दुःख हुआ। क्या उस टोपी से मुझे कुछ अपनापन हो गया था, उस समय इसका उत्तर मेरे पास न था। नवयुवक ने लाकर टिकटें मेरी सास के हाथ में दे दीं और अपनी टोपी लेकर वह चल

दिया। मैं लम्बा घूँघट काढ़े हुए थी। उसमें से मैंने उसकी ओर एक बार देख लिया। सास अपनी पराजय समझ कर उस पर क्रोधित हो रही थीं, अतः उन्होंने धन्यवाद देना भी उचित न समझा।

जब टिकट लेने में इतनी कठिनाई उठानी पड़ी थी तो फिर गाड़ी में बैठना किस प्रकार सरल हो सकता था? गाड़ियों में मनुष्य भेड़-बकरी की भाँति भरे हुए थे। वैसे तो लोग हिन्दू सभ्यता की बड़ी डींग मारते हैं, परन्तु उस सभ्यता से स्त्रियाँ तो बिलकुल ही परे हैं। उन लम्बी-लम्बी चोटी रखानेवालों को, जो गङ्गा के तट पर धर्म का सौदा करने जा रहे थे, अबला स्त्रियों की सहायता का विचार कैसे हो सकता था? जिधर हम जाते, उधर ही लोग "आगे जा, यहाँ जगह कहाँ से आई?" कह कर हमें कुत्ते-बिल्लियों की भाँति भगा देते थे। सास निहोरे करतीं, हाथ जोड़तीं, कहतीं—"अरे भैया, हम गरीबिनी खड़ी ही रहेंगी?" परन्तु कौन सुनता था। मैं घूँघट अभी तक काढ़े हुए थी। मुख खोलना सास के शिर में तेल की कढ़ाई खौलाना था। न मुख से शब्द निकालने का ही मुझे अधिकार था। अतः मैं बिना कुछ किए अथवा सोचे, सास के पीछे-पीछे चल रही थी। अन्त में एक स्थान पर बड़ी प्रार्थनाएँ करने पर कुछ पुरुषों ने सास को बन्द द्वार की खिड़की में से भीतर खींचना स्वीकार किया। मैं अभी बाहर ही खड़ी थी कि भीड़ का एक रेला आया। मैं सास से बिछुड़ गई। मुझे यह भी पता न था कि सास किस डब्बे में चढ़ी थीं। मैं व्याकुल होकर इधर-उधर भीड़ में घूमने लगी। परन्तु पर्दा अभी मुख पर पड़ा था। हाय रे! हम हिन्दू स्त्रियों की दशा! नेत्र है, परन्तु देख नहीं सकतीं! मुख में जिह्वा है, पर बोल नहीं सकतीं! कभी समय आएगा जब हिन्दू पुरुषों को स्त्रियों को इस प्रकार गई-बीती बना देने के लिए दण्ड भोगना पड़ेगा। कभी स्त्रीत्व की आत्मा जगेगी और जब उसके अन्दर स्वाभिमान की ज्वाला प्रज्वलित हो जायगी तो पुरुषों की यह निरङ्कुशता उसमें तृण की भाँति भस्म हो जायगी।

कुछ देर तक मैं इसी प्रकार घूमती रही। न मुझे सास का पता लगा और न शायद मैं उन्हें ही दिखाई दी। इतने ही में गाड़ी ने सीटी दी। मैं हक्का-बक्का होकर इधर-उधर देखने लगी। जब कुछ न सूझा तो अपने सामने वाले डब्बे में चढ़ने के लिए बढ़ी। वह था दूसरा दर्जा। मेरे खिड़की से हाथ लगाते ही भीतर से लोग चिल्ला उठे—"यहाँ कहाँ घुसी आती है? सैकिण्ड क्लास है, दीखता नहीं?" मैंने भयभीत होकर खिड़की से हाथ हटा लिया। घबराहट के कारण मेरे आँसू निकल आए। इतने ही में मेरे कानों में वही परिचित शब्द पड़ा—"हट जाओ खिड़की के पास से, आने दो उसको अन्दर!" युवक के इतना कहते ही सब चुप हो गए। उसने खिड़की खोल कर मुझे भीतर खींचा और अपने पास एक कोने में कुछ स्थान निकाल कर मुझे बिठा लिया। मेरी घबराहट दूर हो गई। उसके पास होने से ही मुझे एक प्रकार का सन्तोष-सा हो गया। गाड़ी चल दी।

२

गाड़ी के चलते ही डब्बे में शान्ति होने लगी। जो खड़े रहे थे, उन्होंने बैठे हुओं को सरका-सरका कर अपने बैठने के लिए स्थान निकाल लिया। जिनके पास तीसरे दर्जे के टिकट थे, उन्होंने अपना डेरा फ़र्श पर लगाया। जब सब बैठ गए तो कुछ तीसरे दर्जे वाली स्त्रियों ने गङ्गा जी के गीत गाना प्रारम्भ कर दिया। कुछ इन गीतों को ध्यान से सुनने लगे, कुछ आपस में बातें करते हुए हँसी उड़ाने लगे। हमारी ओर किसी का अधिक ध्यान न था, क्योंकि, शायद, लोगों ने मुझे युवक के घर की ही स्त्री समझ लिया था। जब इस प्रकार सब किसी न किसी काम में लगे हुए थे, युवक ने मुझसे वार्तालाप करना प्रारम्भ किया—"अब तो घबराहट नहीं है?"

"नहीं।" मैं घूँघट में से ही धीरे से बोली।

"तुम्हारी सास बड़ी अत्याचारिणी दीखती है। देखो न, स्वयं तो गाड़ी में बैठ गई और तुम्हें भटकने के लिए छोड़ दिया! हिन्दू घरों की बहुओं का भाग्य सचमुच बड़ा खोटा है! अगर तुम बुरा न मानो तो मैं एक बात पूछना चाहता हूँ, उत्तर दोगी?"

"अवश्य।" मैंने बहुत ही धीरे से कहा। शायद युवक को कुछ सुनाई न दिया। अतः वह हँस कर कहने लगा—"क्षमा करना, लेकिन तुमने जो कुछ कहा वह तो तुम्हारे घूँघट ने ही पी लिया। क्या इतना लम्बा घूँघट

मारे बिना तुम्हारा काम नहीं चल सकता ? मुझे तुम अपना हितैषी समझो।"

मैंने अपना घूँघट कुछ ऊँचा कर लिया।

"क्या तुम्हारे पति.........?"—युवक ने सङ्कोच के साथ पूछा।

"पति का देहान्त हो गया।"

"ओह, भगवान ! तो क्या तुम विधवा हो ?"

"जी हाँ।"

"कितने दिन हुए ?"

"विवाह के दो मास पश्चात् ही। इस बात को चार वर्ष हो गए।"

"ब्राह्मणी हो ?"

"वैश्य, अग्रवाल।"

"अग्रवाल ?" उसने उत्सुकता से पूछा।

"हाँ, हाँ, क्यों, आप क्यों चौंके ?"

"मैं भी अग्रवाल हूँ, इसीलिए। मैं जात-पाँत का इतना भेद-भाव नहीं मानता, फिर भी संस्कार तो नहीं मिटते। अपनी बिरादरी का नाम कुछ अपनापन पैदा कर ही देता है।"

"आप भी अलीगढ़ से ही आ रहे हैं ?"

"हाँ, ऊपरकोट में हमारा मकान है।"

"मैं मानिक-चौक में रहती हूँ।"

"तुम्हारा नाम क्या है ?"

"फूल।"

"हिन्दी पढ़ी हो ?"

"हाँ।"

उसने अपने हाथ की पुस्तक को मेरी ओर कर दिया। उस पर उसका नाम लिखा था।

"इसे पढ़ो।"

मैंने पढ़ा—"मुरारीलाल गुप्त।"

"यह मेरा नाम है।"

"मुरारीलाल"—यह नाम तो मैंने कहीं सुना था। हाँ, ठीक है, एक दिन सास-श्वसुर इसी नाम के विषय में बातें कर रहे थे कि इस लड़के का दिमाग़ बिगड़ गया है। बी० ए० पास करने से पहले विवाह ही नहीं करना चाहता। मैं बोली—"क्या आप ही के विषय में बिरादरी में चर्चा हो रही थी कि आप किसी से विवाह की बात ही नहीं करना चाहते ?"

"हाँ, पर तुम्हें यह सब कैसे मालूम हुआ ?"

"बाहर की बातें कभी-कभी घरों की चहारदीवारी तक भी पहुँच जाती हैं।"

"बात यह है कि मैं आर्य-समाजी हो गया हूँ। मेरे चचा भी नौजवान हैं, परन्तु वे कट्टर सनातनी हैं। उन्हीं के रुपए से मेरा पालन-पोषण हो रहा है। विवाह आदि के ऊपर हममें झगड़ा होता रहता है, वही बात बिरादरी में भी फैल जाती है।"

"आप आर्य-समाजी हैं तो फिर गङ्गा-स्नान को क्यों जा रहे हैं ?"

"मैं पुण्य लूटने नहीं जा रहा हूँ। हमारी सेवा-समिति वहाँ जा रही है, उसीके साथ मैं जा रहा हूँ।" वह हँस कर बोला। मैं मन ही मन उसके इन भावों की सराहना करने लगी। परन्तु मुझे उसके विषय में अधिक सोचने का अधिकार कहाँ था ? मेरे मन में केवल एक विचार आया था—"वह स्त्री कितनी भाग्यशालिनी होगी, जिसे इसकी सहधर्मिणी होने का अवसर प्राप्त होगा !"

मुझे चुप देख कर वह बोला—"तुम क्या सोच रही हो ? क्या मेरा आर्य-समाजी होना तुम्हें अच्छा नहीं लगता ? शायद तुम तो कट्टर सनातनी होगी।"

"नहीं, मुझे आपकी बातों से प्रसन्नता ही होती है। मैं आर्य-समाज और सनातन-धर्म की बातें तो नहीं जानती ; हाँ इतना जानती हूँ कि मेरा धर्म सोना-उठना, खाना-पीना और काम में लगे रहना है। इसके अतिरिक्त न और कुछ मेरे जानने के लिए है और न मुझे जानने का अधिकार ही है।"

"अभागिनी फूल !" कह कर उसने वायु में एक दबी हुई निःश्वास छोड़ दी।

गाड़ी अतरौली स्टेशन पर खड़ी हुई। भीड़ में मनुष्य एक-दूसरे को कुचले जा रहे थे। मुरारी बोला—"देखती हो न फूल ! सारा हिन्दू-समाज स्वर्ग के लिए पागल हो रहा है ! कितना सस्ता स्वर्ग है ! रेल में फिर भी दो पैसे मील लगता है, परन्तु स्वर्ग गङ्गा की एक डुबकी में मिलता है !"

"परन्तु मैं स्वर्ग लूटने नहीं जा रही हूँ। जिसे पृथ्वी पर सुख नहीं, उसे स्वर्ग में क्या सुख मिलेगा ?"

"तो फिर राजघाट किस लिए जा रही हो ?"

"यह तो सास को स्वर्ग पहुँचाने को है।" मैं हँस



लाहौर-षड्यन्त्र केस के कुछ अभिनेता



श्री० सुखदेव



श्री० राजगुरु



श्री० महावीर सिंह



श्री० [illegible]



श्री० विजयकुमार सिंह



लाहौर-षड्यन्त्र केस के कुछ अभिनेता



श्री० कमलनाथ तिवारी



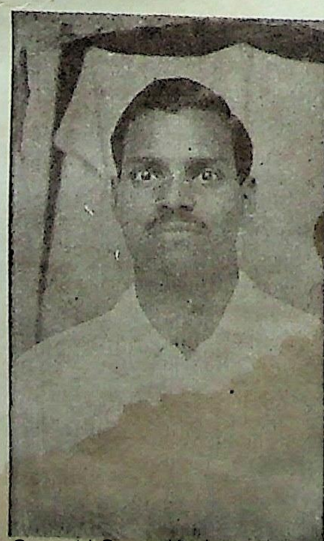
श्री० प्रेमदत्त



श्री० यतीन्द्रनाथ सान्याल



श्री० देसराज



श्री० अजयकुमार घोष

कर बोली। वह भी ख़ूब हँसा और हँसते-हँसते बोला—"यह तुमने एक ही कही। गङ्गा पर पहुँचने दो। तुम्हारी बुढ़िया को ज़रा गहरा स्वर्ग दिलवाएँगे। हाँ, तुमने कुछ कलेवा तो किया ही न होगा। पोटली तो बुढ़िया के पास है। कुछ कलाकन्द ले लूँ?"

"आप अपने लिए ले लीजिए। मैं तो खाऊँगी नहीं।"

"क्या पाप चढ़ जायगा? परन्तु वह तो गङ्गा में धो आना!" वह हँस कर बोला।

"नहीं, पाप तो नहीं, परन्तु मैं दूसरे की चीज़ किस प्रकार.........?"

"ओह हो! यह तो मैं भूल ही गया था। हमारे समाज में एक स्त्री और पुरुष में सच्ची मित्रता तो हो ही नहीं सकती। फिर भी, बिरादरी के नाते तो मैं तुम्हें यह निमन्त्रण दे ही सकता हूँ। क्या अब भी तुम मुझे बिलकुल ही ग़ैर समझती हो?"

"यदि आप बुरा मानते हैं तो मैं खा लूँगी।"

* * *

जब डिनाई का स्टेशन निकल गया तो युवक मुझसे बोला—"समय कितना शीघ्र व्यतीत होता है फूल!"

"मेरे जीवन में तो समय कभी इतना शीघ्र नहीं व्यतीत हुआ, जितना आज। परन्तु अब क्या? फिर वही दिनचर्या, वही अत्याचार, वही नीरस जीवन। दिन के बाद दिन, सप्ताह के बाद सप्ताह, मास के बाद मास, वर्ष के बाद वर्ष; महीनों, वर्षों, सारे जीवन भर वही बात, अनुल्लङ्घनीय, अपरिवर्तनीय। इसी का नाम वैधव्य है।"

"तो क्या फिर न मिलोगी?"

"आप दयालु हैं, सहृदय हैं, मेरे साथ सहानुभूति दिखा रहे हैं, यह मेरे बड़े सौभाग्य की बात है, परन्तु.........।"

'परन्तु क्या?'

"कुछ नहीं। उन सब बातों से क्या लाभ है? राजघाट कब पहुँचेंगे?"

"पाँच मिनट की देर है।"

मैं चुप रही। वह भी चुप रहा। जब हमारा स्टेशन कुछ दूर रह गया तो वह कुछ हिचकिचाहट दिखाता हुआ बोला—"बोलो फूल! क्या फिर मिलोगी?"

"नहीं।" मैंने धड़कते हुए हृदय को थाम कर कहा।

"नहीं?"

"आप नहीं समझते या नहीं समझना चाहते। एक हिन्दू विधवा को पराए पुरुष से मिलने का अधिकार कहाँ है? मैं यदि चाहूँ भी तो क्या सास मुझे आज्ञा दे सकती हैं? क्या बिरादरी इस बात को जान कर चुप रह सकती है? यदि लोग देखेंगे तो क्या कहेंगे? मैं भी बदनाम हूँगी, आप भी बदनाम होंगे। मेरा क्या है, जिसकी अधिक चिन्ता हो, परन्तु आप? आप नवयुवक हैं। आपके सामने सारा जीवन पड़ा है, जो बिरादरी में ही काटना है। नहीं, मैं नहीं मिलूँगी।"

क्या मेरे हृदय में उसके पुनर्दर्शन की लालसा न थी? सारे जीवन में जिस एक पुरुष की वाणी में माधुर्य पाया हो, हृदय में भावुकता पाई हो, नेत्रों में सहानुभूति पाई हो, जिसने दो घण्टे वार्तालाप करके जीवन की सुप्त वास्तविकताओं को जगा दिया हो, उसको फिर देखने की इच्छा किसे न होगी? मेरा हृदय दलित था, परन्तु था तो वह हृदय। मेरी भावुकता मृतप्राय थी, परन्तु थी तो वह भावुकता। मैं विधवा थी, परन्तु मेरा शरीर तो हाड़-मांस का शरीर था। फिर मैं उस आशा-स्रोत से, उस उमङ्गों के केन्द्र से, बिलकुल ही विमुख कैसे रह सकती थी? क्या ऐसा करने में मैं पतन की ओर जा रही थी? विधवा होकर एक पर-पुरुष के लिए सोचने में अधर्म कर रही थी? कह लो। धर्म तो हिन्दू समाज के पुरुषों तथा विवाहिता स्त्रियों के हिस्से में पड़ा है। क्योंकि वे अपने पापों को छिपा सकते हैं। यदि वे भी इस आयु में वैधव्य-यन्त्रणा से छटपटाते तो उन्हें धर्म और अधर्म का रहस्य प्रतीत होता।

मेरी उस भावावलि को उसने तोड़ा। वह बोला। स्वर में एक वेदना का भाव भरा था। "तुम सच कहती हो फूल! तुम अब एक अभागिनी बालिका हो?" उसने कहा।

"अब ही क्या, भाग्य लेकर कब आई थी? जो कुछ भाग्य था, वह तो उसी दिन फूट गया, जिस दिन हिन्दू समाज में उत्पन्न हुई थी।"

"परन्तु अब समाज की वह दशा नहीं है। पूरा समाज नहीं तो उसका एक अङ्ग तुम जैसी अभागिनी बालिकाओं को सुखी जीवन की ओर ले जाने का प्रयत्न अवश्य कर रहा है। इसीलिए मैं तुमसे फिर मिलना

चाहता हूँ। मेरी इच्छा है कि तुम इस योग्य हो जाओ कि अपने भाग्य का सञ्चालन स्वयं कर सको। बोलो फूल ! राजघाट-गङ्गा में एक बार मिलने दोगी ?"

"यदि आप मिलेंगे तो रोक थोड़ा ही लूँगी ?"

गाड़ी स्टेशन पर खड़ी हुई। 'गङ्गा मैया की जै, भगवती भागीरथी की जै, बोल श्रीराधे !' आदि से आकाश गूँजने लगा। लोग भेड़-बकरी की भाँति इधर-उधर भाग रहे थे। किसी का लड़का खो गया था, किसी की पर्दे वाली स्त्री नहीं मिल रही थी, किसी की पूड़ी-कचौड़ी की पोटली का पता न था।

गाड़ी से उतर कर मुरारी बोला—"तुम ज़रा इधर ही खड़ी रहो, मैं तुम्हारी सास को थोड़ा तङ्ग करूँगा।"

उसने सास को खोज कर पूछा—"कह बुढ़िया ! राज़ी-ख़ुशी चली आई न ?"

सास ने उसे देखते ही रोना मचा दिया—"ऐ भैया ! तैने कहीं बहू देखी थी ?"

"बहू ? क्यों, क्या वह तेरे साथ नहीं है ?"

"नहीं तो। न जानै अलीगढ़ रह गई क्या ! अब मैं कैसे खोज करूँ ?"

"अब बातें क्यों बना रही है ? बता उसे कहाँ मार-पीट कर छोड़ दिया ?"

सास सिटपिटा कर कहने लगीं—"भैया ! मुझसे चाहै जैसी किसम लै ले। मैं गङ्गा जी के किनारे जो झूँठ बोलूँ तौ कोढ़िन बनूँ।"

"अच्छा, देख, मैं पुलिस से कह कर पता लगवाता हूँ। जो मिल जाय तो क्या देगी ?"

"गङ्गा मैया तेरा भला करेंगी !"

"गङ्गा मैया तो भला करेंगी, तू भी कुछ खिलाएगी ? इस पोटरी में क्या लाई है ?"—वह यह कह कर पोटली को छूने लगा। त्योंही सास ने पोटली को एक ओर हटा कर कहा—"इसमें खाने-पीने की चीज़ें हैं। तू कौन जाति है ?"

"कायस्थ !"

"कायथ ? तो क्या मैं अपना खाना कायथ को छूने दूँगी ? कायथ तो आधा मुसलमान होता है !"

"पर गङ्गा जी पर तो सब शुद्ध हो जाते हैं।"

"सो नहीं। मैं अपने हाथ से निकाल कर दे दूँगी।"

"अच्छा।"

वह कुछ देर के लिए इधर-उधर घूमने निकल गया। फिर मुझे लेकर सास के पास पहुँचा और कहने लगा—ले, तेरी बहू को तलाश कर लाया हूँ। इसे अब मत खोने देना और इसे डाँटना मत।

"नहीं भैया ! डाटूँगी क्यों ? मेरे तो पिरान से प्यारी है। कुछ लड्डू खायगा ?"

"अब गङ्गा जी के किनारे !"

स्टेशन लगभग ख़ाली हो गया था। उसने हम दोनों को एक बैलगाड़ी में बिठा दिया। गाड़ी चली, सास 'गङ्गा मैया की जै' बोलीं। उसने कुछ कहा नहीं, परन्तु उसकी आँखें चुप न थीं। वे मेरे समझने लायक़ बहुत कुछ कह रही थीं। मैंने भी घूँघट में से अपनी आँखें उसकी ओर फिराईं। उन्होंने कुछ कहा या नहीं, कह नहीं सकती।

३

स्टेशन से हम लोग चले तो सास मुरारी की बड़ी प्रशंसा करने लगीं। बोलीं—"कैसा अच्छा लड़का है ! हर घड़ी हँसता रहता है। स्टेशन पर पूरी-कचौरी माँगने लगा। मेरे तो भाग फूट गए बहू ! नहीं तो मेरा कुमर भी ऐसा ही होता।"

"तो अम्माँ ! इन्हीं को अपना लड़का क्यों नहीं बना लेती हो ?" मैंने कहा।

"इसे अपना लड़का ? कायथ के जाए को अपना लड़का बना लूँ ? धरम भिरिस्ट करूँ ? तुझे कितनी बार बताया है कि कायथ निरे मुसल्ला होते हैं !"

"फिर हैं तो वे हिन्दू ही। अम्माँ ! बेचारे कितने भले-मानस हैं ! मुझे भीड़ में गाड़ी में बिठाया और तुम्हारे पास पहुँचा दिया। सेवा-समिति के कप्तान हैं।"

स्वयं तो वे मुरारी की प्रशंसा कर रही थीं, परन्तु जब मैं कुछ प्रशंसा करने लगी तो जल-भुन कर कहने लगीं—"सेवा-सम्मती का कप्तान होय चाहे लफटण्ट, है लफङ्गा। जरा सी बात पर मुझे घुड़की दे दी, मानो यही दरोगा जी हैं। कहै—'थाने में रपट कर दूँगा।' तू बहू ! बच कर रहना। मर्द बच्चा है, न जाने क्या कर बैठे।"

गङ्गा के किनारे बाज़ार लगा था। चारों ओर से गन्ध आ रही थी। हलवाइयों के थालों पर आदमी गिरे पड़ते थे। कच्ची-पक्की, जली-भुनी, तेल की पूरियाँ, कुत्ते के भी न खाने योग्य भाजियाँ, गन्दी मिठाइयाँ बेच-बेच कर हलवाई पैसा लूट रहे थे। गङ्गा के पाट पर कहीं गङ्गा

वासी पण्डों की कुटियाँ बनी थीं, कहीं साधू-सन्त (?) शारीरिक तपस्या कर रहे थे। अब तक मैंने लम्बा घूँघट मारना नहीं छोड़ा था। परन्तु यहाँ जो कुछ देखा उससे मैं अवाक् रह गई। यहाँ मुख का पर्दा ही क्या, शरीर का पर्दा भी उठ गया था। हम लोगों ने कपड़े एक ओर रख दिए, मैं उनकी रक्षा करती रही और सास स्नान करने चली गईं। वह जब लौट कर आईं तो उन्होंने एक पण्डा बुला कर उसे भोजन कराने बिठा दिया। मैं तब तक स्नान करने चली गई। एक डुबकी लगाई ही थी कि मुझे ऐसा विदित हुआ कि कोई मेरा पैर खींच रहा है। मैं चौंक कर पानी के बाहर शिर निकाल कर खड़ी हो गई। देखती हूँ तो मुरारी खड़ा मुस्करा रहा है। मैं अपने शिर का घूँघट आगे करने लगी, इतने ही में वह बोला—"ढँक लो, सारे शरीर को कम्बलों से लपेट लो। और कपड़े ला दूँ?"

मैंने मुख नहीं ढँका, केवल उधर से दृष्टि दूसरी ओर को फिरा कर बोली—"मैं तो समझी थी कि किसी कछुए ने मेरा पैर पकड़ लिया। तुमने तो मुझे बिलकुल ही डरा दिया।"

"क्या ही अच्छा होता कि मैं कछुआ होता।"

"क्यों?"

"एक तो गङ्गा जी में हर समय रहने से स्वर्ग में बड़ा ऊँचा दर्जा मिलता......।"

"और?"

"और कुछ भी नहीं।"

"कुछ था तो सही, परन्तु कहोगे काहे को!"

"नहीं मानती हो तो सुनो। तुम जब भी जल में स्नान के लिए आतीं, तुम्हारे चरणों के पास पड़ा रहता।"

"तुम तो पहेलियाँ बुझा रहे हो। मैं क्या समझूँ, इन बातों को।"

वह कुछ उत्तर न दे पाया था कि एक फूल बेचने वाली आ गई और मुरारी से बोली—"बाबू जी! एक पैसा के फूल-बतासे गङ्गा मैया पै चढ़ाइबे कूँ लै लेउ।"

"गङ्गा मैया फूल-बताशे की भूखी थोड़े ही हैं?"

"भूखी तौ नाएँ, परि पुन्न हौवै।"

"तूने कितना पुन्न लूटा है?"

"अए, तुम तौ गङ्गा जी तेऊ दिल्लगी कत्तौगे।"

मुरारी ने हँस कर उसे एक पैसा दिया और कहा—"देख री, फूल तो हमारे पास है। तू बस बताशे दे जा।" उसने हँस कर कुछ बताशे दिए और बोली—"प्यारी और प्यारी सेठानी की जोड़ी फली फूली रहे।"

जब वह चली गई तो मुरारी बोला—"देखो, तुम मेरी बातें तो नहीं समझती थीं। अब उस फूल वाली की बात तो समझी होगी?"

"क्या?"

"उसने हम दोनों को उठा कर एक कर दिया।"

"यह बातें फिर करना। पहले गङ्गा जी का चढ़ावा तो चढ़ा दो।"

"लेकिन कोई सङ्कल्प पढ़ाने वाला तो है ही नहीं।"

"और तुम कहते थे कि फूल तुम्हारे पास हैं?"

"हाँ हैं।"

"कहाँ?"

"मेरा फूल तुम्हें नहीं दीखता?"

"नहीं।"

उसने मेरी ठुड्डी हिला कर कहा—"यह है मेरा फूल।" मैं चुप रही। वह बोला—"अब देखो, बताशे गङ्गा जी के पास पहुँचते हैं।"

"किस प्रकार?"

"उसके दलाल के द्वारा।"

"दलाल कौन है?"

"देखो।" कह कर उसने बताशे अपने मुख में रख लिए। मैं हँस कर बोली—"और फूल को गङ्गा जी पर किस प्रकार चढ़ाओगे?"

"दलाल के ही द्वारा।"

"वह कैसे?"

"वह ऐसे।" कह कर उसने झट से मेरा हाथ चूम लिया।

४

उस दिन की घटना ने मेरे मानसिक जगत में एक विप्लव उत्पन्न कर दिया था। मुझे ऐसा प्रतीत होता था कि मैं एक ऐसी धारा में हूँ, जिसका बहाव दोनों ओर को है, कभी इधर और कभी उधर। मैं भी उस धारा के बहाव के साथ ही कभी इधर, कभी उधर बह रही हूँ; न इधर ही जा पाती हूँ, न उधर ही। कुछ दिनों पूर्व ही न मेरी कोई कामना थी, न कोई आशा, न कोई सुख-

स्वप्न। परन्तु अब बात और ही थी। अब मेरा हृदय ख़ाली न था, उसमें आशा थी; मेरा मन ख़ाली न था, उसमें कामना थी; मेरा मस्तिष्क ख़ाली न था, उसमें सुख-स्वप्न थे। इस थोड़े से समय में ही इतना परिवर्तन! मैंने जब अपने अन्तस्थल को टटोला तो मुझे इसका कारण यही दिखाई दिया कि मेरे जीवन में पहले वह वस्तु न थी, जिसका आश्रय पाकर यह सब बातें पनपतीं। एक हरी बेल बिना किसी सहारे के अपना विस्तार कैसे कर सकती है? मैं किसके भरोसे पर आशाओं तथा कामनाओं को जन्म देती? अब मेरे जीवन में एक सहारा दिखाई दिया था। उसीके चतुर्दिक मेरी आशाएँ, मेरी कामनाएँ आदि केन्द्रस्थ होने लगी थीं। एक ऐसा सहारा पा जाने पर मुझे हर्ष था। मैं उसके नाम पर कुछ अपना अधिकार समझने लगी थी। उसका विचार करने में मुझे आनन्द आता था। उसका स्मरण मेरे शरीर में नवीन शक्ति का सञ्चार कर देता था। झूठ क्यों बोलूँ, मैं मुरारी में लीन हो गई थी; उसे मैं प्रेम करने लगी थी।

मैं मन ही मन प्रसन्न हुई, रात्रि को शय्या पर गई। शय्या कितनी विचित्र वस्तु है, इसका पता कितनों को है? उस रात्रि से पूर्व मैं नित्य शय्या पर सोती थी, परन्तु मुझे उसमें कोई विचित्रता दिखाई न दी थी। आज ज्योंही मैं उस पर लेटी, मेरे नेत्रों के सामने भूत, वर्तमान और भविष्य सब नाचने लगे। मैंने भूत पर विचार किया, उसमें कोई विशेषता न थी। यद्यपि मेरा सर्वस्व भूत ने ही लूटा था, परन्तु मुझे उसका इतना ज्ञान न था। अतः भूत को मैंने अपने मन से शीघ्र ही निकाल दिया। वर्तमान को टटोला तो उसमें हर्ष, आशा, आमोद आदि को पाया। जब वर्तमान के उस सुखकारी चित्र के बाद भविष्य का ध्यान आया तो सामने केवल अन्धकार दिखाई दिया। उस अँधेरे पर्दे पर कल्पना ने कुछ चित्र बनाए और मैं उनकी परीक्षा करने लगी। मुरारी के साथ मैं किधर जा रही हूँ? हम दोनों नहीं मिल सकते, यह निश्चित बात है। फिर मैं इतने वेग से उसकी ओर क्यों दौड़ रही हूँ? यदि हम दोनों का विवाह हो सकता तो कोई बात नहीं थी, परन्तु एक विधवा का विवाह होने की कल्पना मेरे मन में आ ही नहीं सकती थी। वैधव्य और विवाह दोनों में तनिक भी सम्बन्ध हो सकता है, यह हिन्दू धर्म कभी सहन कर ही नहीं सकता। परन्तु मैं मुरारी की ओर विवाह के लिए ही न झुकी थी। यह तो उसका व्यक्तित्व था, जो मुझे उसकी ओर खींचे लिए जा रहा था। कदाचित वह इसलिए था कि वह एक मात्र व्यक्ति था जिसने मुझसे इतनी सहानुभूति दिखाई थी। या कदाचित वह इसलिए था कि मेरे जीवन में वह पहला पुरुष था।

रात्रि भर मैं विचार करती रही। अन्त में मैंने यही निष्कर्ष निकाला कि मैं मुरारी से मिलना छोड़ दूँगी। यह बात मुझे बेचैन बना देगी, मेरे हृदय को मसोस लेगी, परन्तु फिर भी यह करना ही पड़ेगा। दोनों के लाभ के लिए, बिरादरी के लिए, समाज के लिए मुझे दृढ़ होना ही पड़ेगा। मैंने निश्चय कर लिया कि जो बालू के क़िले बनाए थे उन्हें तोड़ डालूँगी; जो आशाओं के पुल बाँधे थे, उहें ढहा दूँगी; जो कामनाओं के बाग़ लगाए थे, उन्हें उजाड़ डालूँगी।

जिस दिन हम लोग राजघाट छोड़ रहे थे, उस दिन मैं मुरारी से मिली। मैं अनिच्छा होते हुए भी उसके सामने रूखापन दिखाने लगी। वह यह भाव देख कर बोला—"क्यों फूल! आज यह क्या बात है?"

"बात कुछ नहीं है, मुरारी! परन्तु मैं तुमसे यह कहने आई हूँ कि उस दिन हम दोनों का व्यवहार उचित नहीं था। मैं उस दिन अपने को भूल गई थी। कदाचित मैं उस समय स्वप्न देख रही थी। परन्तु स्वप्न में और वास्तविक जीवन में बड़ा अन्तर है। जब मैंने वास्तविक जीवन पर ध्यान दिया तो मुझे समझ पड़ा कि हम दोनों कैसी मूर्खता कर रहे थे।"

वह कुछ देर तक शिर नीचा किए कुछ सोचता रहा; फिर बड़ी गम्भीरता से बोला—"तुम ठीक कहती हो, फूल! मुझे दुःख है कि मैंने तुम्हारे साथ अन्याय किया। परन्तु मैं तुम्हें यह विश्वास दिलाता हूँ कि मेरे हृदय में कोई कलुषित विचार नहीं था और न है। मैं तुमसे कुछ कहना चाहता था, परन्तु तुमने सुना नहीं। मैं नहीं जानता क्यों, परन्तु मेरे हृदय में तुमने एक स्थान प्राप्त कर लिया है। मैं घण्टों यही विचार करता रहा हूँ कि तुम्हें उस स्थान पर बिठाने का किसी प्रकार अधिकार पा लूँ। परन्तु तुम उन विचारों से बहुत दूर हो। अब उन बातों से क्या लाभ है? अच्छा, फूल! शायद........।"

"परन्तु क्या तुम्हारा अर्थ यह है कि.........?"

"कि..... कि.....हम दोनों विवाह करके एक हो जाते।"

"विवाह ? मैं तो विधवा हूँ।"

"और तुम समझती हो कि एक विधवा का विवाह नहीं हो सकता ?"

"यह कभी हुआ भी है ? एक विधवा विवाह करे, यह धर्म कभी आज्ञा दे सकता है ? सारी बिरादरी में हम लोगों की बेइज़्ज़ती हो जायगी।"

"यही तो तुम नहीं जानती हो, फूल ! धर्म यह कभी नहीं कहता कि एक विधवा विवाह न करे। जब पुरुष अपने दर्जनों विवाह कर सकता है तो स्त्री को पुनर्विवाह करने का अधिकार क्यों न दिया जाय ? यह सब स्वार्थी पुरुषों की बर्बरता है। यदि तुम शास्त्रों को पढ़ो तो तुम्हें विधवा-विवाह का विधान स्पष्ट रूप में मिलेगा। यह तुम्हारा विचार तुम्हारी परिस्थितियों का फल है। तुम स्वयं सोचो। तुम एक पुरुष को चाहती हो, वह तुम्हें प्यार करता है। तुम पढ़ी-लिखी हो, समझदार हो, अपूर्व सुन्दरी हो, विवाह करके सुखी जीवन व्यतीत कर सकती हो। परन्तु केवल बिरादरी के भय से तुम यह न करके, अनिच्छा का ब्रह्मचर्य अपने ऊपर लादना चाहती हो। शायद तुममें इतना मानसिक बल हो कि तुम इन सब प्रलोभनों के होते हुए भी अटल रह ही आओ। परन्तु वे युवतियाँ जिन्हें इतना मानसिक बल प्राप्त नहीं हुआ, दुश्चरित्र होने के अतिरिक्त और क्या कर सकती हैं ? समाज, बिरादरी, धर्म-शास्त्रों की दुहाई देने वाले पण्डित, सब गुप्त व्यभिचार अथवा आत्म-हनन को सहन कर सकते हैं, परन्तु वे एक युवती विधवा को सुखी, धार्मिक जीवन व्यतीत करने की आज्ञा नहीं दे सकते। फूल ! मैं तुम्हें किसी भी कार्य के लिए विवश नहीं कर सकता। यदि तुम ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करना चाहती हो तो प्रसन्नता से करो। मेरी सदिच्छाएँ तुम्हारे साथ होंगी। परन्तु यदि तुम्हारे हृदय में प्रेम की कुछ भी चिनगारी है और तुम उसे बलपूर्वक दमन कर रही हो तो यह तुम्हारा बड़ा अत्याचार है, मेरे ही ऊपर नहीं, अपने ऊपर भी। यदि बिरादरी के कुछ नवयुवक तथा नवयुवतियाँ साहस करके आगे बढ़ें, तो बिरादरी उनके सम्मुख अवश्य ही झुकेगी। परन्तु.........।"

मैं उस समय अपनी चिन्तन-शक्ति को खो चुकी थी। मुझसे केवल इतना कहा गया—"मुरारी ! यह मुझसे न हो सकेगा। तुम मेरे लिए क्या हो, यह तुम जानते हो। परन्तु तुम जो कहते हो, वह करने का मुझमें साहस नहीं है। ओह, मुरारी ! बस अधिक न कहो। मेरी सहन-शक्ति का बाँध टूट जायगा। मुझे जाने दो, कष्ट सहने के लिए, स्वप्नों और निराशाओं का जीवन व्यतीत करने के लिए। मेरे भाग्य में और कुछ नहीं है।"

"जाओ फूल ! परन्तु याद रक्खो कि मुरारी सदा तुम्हारी सहायता के लिए तैयार रहेगा।"

"नहीं, नहीं, मुरारी ! मैं चाहती हूँ कि तुम मुझे बिलकुल भूल जाओ। प्रतिज्ञा करो कि तुम मुझसे कभी नहीं मिलोगे।"

"प्रतिज्ञा ? फूल !"

"हाँ, मुरारी !"

"अच्छा, फूल ! मैं प्रतिज्ञा करता हूँ। परन्तु यदि कभी तुम्हें अपना विचार बदलने की आवश्यकता पड़े तो मुझे लिखना।"

"शायद ऐसा अवसर न आवे।" मैंने दृढ़ता से कहा।

"तो यह अन्तिम विदा है ? क्या एक बार अन्तिम बार तुम्हारा हाथ ...."

"नहीं, मुरारी !"

वह चला गया, गङ्गा के किनारे से, परन्तु मेरे नेत्रों से नहीं, मेरे हृदय से नहीं। मेरे नेत्रों में उसकी मूर्त्ति का चित्र खिंच गया था। मेरे हृदय पर उसकी मुद्रा लग गई थी।

५

गङ्गा जी से लौट कर आने के बाद मुझमें बड़ा परिवर्तन हो गया था। जिस प्रकार राजघाट जाने से पूर्व जीवन व्यतीत हो रहा था, उसी प्रकार रहने का मैंने भरसक प्रयत्न किया, परन्तु 'मर्ज़ बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की।' मैं मुरारी को भूल न सकी। जितना ही उसे भूलने का उद्योग करती, उतना ही हृदय अधिक मचलता। अब भी मैं उसी प्रकार घर का सारा काम करती। किसी को भी अपनी आन्तरिक पीड़ा का आभास न होने देती। मन बहलाने के लिए घण्टों गीता, रामायण तथा विष्णु-सहस्र नाम पढ़ती। परन्तु कुछ फल नहीं। लोग कहते हैं

कि यह पुस्तकें मन के भावों पर विजय प्राप्त करने के लिए अनुपमेय हैं। होंगी। अपने-अपने हृदय की बात है। मेरी यह मानसिक शिथिलता हो, परन्तु मेरे हृदय के भाव गीता से शान्त न हुए। जिसकी आयु संसार में प्रवेश करने की है, उसको संसार से विरक्त होने के लिए विवश करना न्याय-सङ्गत है या नहीं, यह मैं धर्म के व्यवस्थापकों पर छोड़ती हूँ। परन्तु मैं अब मुरारी के शब्दों की सत्यता समझ रही थी। मैं उन घटनाओं पर घण्टों विचार करती। क्या सचमुच हिन्दू-शास्त्र विधवा-विवाह के विरुद्ध हैं या केवल लोकमत ही इसके विरुद्ध है? क्या विधवा का मोक्ष इसी में है कि वह अपने नैसर्गिक भावों को इतना दबाती जाय कि उस दमन में उसकी आत्मा का भी लोप हो जाय? मैंने वास्तव में मुरारी पर बड़ा अत्याचार किया था कि उससे फिर न मिलने तक की प्रतिज्ञा करा ली। यह मेरी क्रूरता थी। और कुछ न होता तो उससे कभी-कभी मिल कर कुछ शान्ति तो हो जाया करती।

जब से विधवा-विवाह का प्रश्न मैंने अपने सम्मुख उपस्थित किया था, तब से मुझे उसके विषय में प्रत्येक बात जानने की जिज्ञासा हो गई थी। उस वर्ष रामलीला का मेला हुआ तो सास बड़े आग्रह से मुझे 'भगवान' के दर्शन करने के लिए ले गईं। मैं इसलिए साथ हो ली कि शायद मुरारी का दर्शन करने को मिल जाय। मुरारी तो मुझे न मिला, परन्तु एक पुस्तकों की छोटी दूकान पर मुझे 'विधवा-विवाह' नामक पुस्तक रक्खी हुई दीख पड़ी। मैंने सास से कहा—"अम्माँ! इनमें से एक पुस्तक ख़रीद लें। तुम्हें कभी-कभी पढ़ कर सुना दिया करूँगी।"

"मुझे नहीं चाहिए तेरी पुस्तक-सुस्तक। इतने पैसे कहाँ हैं?"

"जब पुरोहित जी को बुला कर कथा कहलवाती हो तब भी तो पैसे देने पड़ते हैं। एक बार कोई धार्मिक पुस्तक ले लोगी तो पुरोहित जी का ख़र्च तो बचेगा?"

वह बात उन्हें जँच गई। बोलीं—"अच्छा पुरो-तानी! तो 'हनूमान-चालीसा' ख़रीद लो।"

उनसे तो यही कहा कि वह 'हनूमान-चालीसा' था, परन्तु मैंने ख़रीदी 'विधवा-विवाह' की पुस्तक। वहाँ से चले तो स्त्री-आर्य-समाज का उत्सव हो रहा था। मैंने सास से वहाँ जाकर कुछ व्याख्यान सुनने को कहा तो वे नाक-भौं चढ़ा कर बोलीं—"हमारी सात पुस्त में कोई आरिया नहीं हुआ और तू आरियन की सभा में जाना चाहती है? इन सबकी तो मत मारी गई है! मैं बावरी हूँ जो इनकी अधरम की बातें सुनूँ?"

मैं चुप रही। यही बहुत था कि उन्होंने पुस्तक ख़रीदने के लिए पैसे दे दिए थे। घर आकर मैंने वह पुस्तक ध्यान से पढ़ी। उसमें वही बातें थीं जो मुरारी ने मुझसे कही थीं। मुझे यह निश्चय हो गया कि शास्त्रों की दुहाई केवल स्वार्थ-साधन के लिए दी जाती है। क्या मैं ब्रह्मचारिणी का जीवन समाज के विषमय वातावरण में निभा सकूँगी? उन विधवाओं की कहानियाँ, जो औरों के साथ घरों से भाग गई थीं, मुझे याद आईं। अवसर पड़ने पर जब मैंने किसी समवयस्क विधवा से वार्तालाप किया तो मुझे यही विदित हुआ कि वे विवाह करने के लिए बिलकुल तैयार थीं। परन्तु समाज की आज्ञा न होने से वे ज़बरदस्ती से 'पवित्र जीवन' व्यतीत कर रही थीं। जब विवाह धर्म के प्रतिकूल नहीं है और मुझे अपनी ही बिरादरी का एक ऐसा नवयुवक मिल रहा है, जिसे मैं प्राणों से भी प्यारा समझती हूँ तो फिर मैं विवाह क्यों न करूँ?

मैं मुरारी से फिर मिली। एक बार, दो बार, अनेकों बार। मिलना कोई सरल बात न थी। कभी तो सप्ताह पर सप्ताह बिना मिले व्यतीत हो जाते थे। फिर भी वे मास मेरे जीवन के सब से अधिक सुखमय मास थे। मिलन जितना ही मधुर लगता था, उतने ही मधुर उस मिलन की प्रतीक्षा। मुरारी मेरे लिए मरता था। हममें यह निर्णय हो गया था कि कुछ महीनों बाद, जब मुरारी बी० ए० पास कर लेगा, तब हम इस भेद को सब पर खोलेंगे और फिर हमारा विवाह हो जायगा। इस बीच में, संसार के बिना जाने, हम पति-पत्नी के ही समान हो गए थे। मैं मुरारी में इतनी अनुरक्त हो गई थी कि मैंने अपना 'सर्वस्व' तक उसके समर्पण कर दिया।

६

सुख के दिन अधिक काल तक नहीं रहते। तीन मास व्यतीत होने पर मुझे यह प्रतीत हो गया कि मेरे पेट में कुछ है। इस बात का हम लोगों को कभी विचार तक नहीं हुआ था। मुझे इससे बड़ी चिन्ता हो गई। मुरारी की परीक्षा में कई महीने थे। बात किस प्रकार

छिपी रह सकेगी ? बहुत दिनों तक मैं घर वालों से यह बात छिपाने का प्रयत्न करती रही। परन्तु अन्त में सास को कुछ सन्देह होने लगा। मेरे व्यवहार में भी परिवर्त्तन हो गया था। सास का अत्याचार मैं अब सहन नहीं कर सकती थी। कुछ समय के बाद ही स्वतन्त्र होने की आशा से मैं निडर हो गई थी। सास को मैं कभी-कभी उत्तर भी दे दिया करती थी। उन्हें आश्चर्य तो होता था, परन्तु उनकी कर्कशता कुछ-कुछ कम अवश्य हो गई थी, वह शायद इस विचार से कि मैं अब यह समझने लग गई थी कि उनका व्यवहार अन्यायपूर्ण था और उसे मैं अधिक समय तक सहन न करूँगी।

पुरुषों से बात छिपाई जा सकती है, परन्तु स्त्रियों से कब तक ? फिर सास ठहरीं इस बात में उस्ताद ! उनकी आयु इन्हीं बातों में व्यतीत हुई थी। कुछ दिन तक तो उन्होंने सन्देह को केवल सन्देह ही समझा। परन्तु जब उन्हें विश्वास हो गया तो एक रात्रि को वह चुपचाप श्वसुर जी से कुछ सलाह करने लगीं। मेरे कान में भनक पड़ गई। मैं समझ गई वे क्या करेंगे। क्या मैं उनसे भिड़ने के लिए तैयार थी ? क्यों नहीं ? मैंने जो कुछ भी किया था, पाप समझ कर नहीं किया था, छिपाने के लिए नहीं किया था। मैं निर्भय होकर समाज पर सारा रहस्य प्रगट कर सकती थी। मुरारी तो मेरे साथ था, फिर मुझे भय किस बात का था ? मैंने उसी रात्रि को एक पत्र मुरारी के नाम लिख दिया—

"मेरे प्राण !

तुम्हारे बिना मैं कितनी व्याकुल रहती हूँ, यह तुम जानते हो। कई मास हो गए हैं, तुम्हारे दर्शन नहीं हुए। मैं यह सब इसलिए सहन कर रही थी कि तुम परीक्षा के लिए बिना किसी विघ्न के तैयारी कर सको। मैं तुम्हें उस समय तक लिखना भी नहीं चाहती थी, जब तक कि तुम्हारा परीक्षा-फल विदित न हो जाय। परन्तु अब कई घटनाएँ ऐसी हो गई हैं कि तुम्हें बिना कष्ट दिए काम नहीं चल सकता।

तुम यह जानते ही हो, मेरे हृदय-देव, कि इस घर में मैं बन्दी की भाँति पड़ी हूँ। यदि मैं गर्भवती न होती तो कोई बात न थी, परन्तु अब तो बात उतनी सरल नहीं है। शायद यह हमारी मूर्खता थी, शायद नहीं। परन्तु जो हो गया, उस पर आँसू बहाने से कोई लाभ नहीं। संसार की दृष्टि में कदाचित हम पापी हों। परन्तु परमेश्वर की दृष्टि में तो हम स्त्री-पुरुष हैं। हम उन युवक-युवतियों से तो अच्छे हैं, जो न तो समाज के नियमों से ही बद्ध हैं, न परमेश्वर के नियमों से ही, और फिर भी यह कृत्य करते हैं। वे समाज से भागते हैं। परन्तु हम तो समाज के नियमों की अपने कृत्य पर छाप लगवाना चाहते हैं।

मेरे नाथ, यहाँ वालों को सब बातों का पता लग गया है। अभी उन्होंने मुझसे कुछ कहा नहीं है, परन्तु आज नहीं तो कल चर्चा चलाई ही जायगी। मैं डरती नहीं हूँ। एक दिन घर छोड़ना तो है ही, अभी सही। मुझे आशा है कि तुम भी समाज की बदनामी से न डरोगे और इस बात को प्रत्यक्ष हो जाने दोगे। कदाचित तुम्हें कुछ असुविधा होगी, परन्तु कुछ सप्ताह बाद ही तुम बी० ए० पास हो जाओगे। विवाह तो हमें करना ही है, फिर ऐसी दशा में 'शुभस्य शीघ्रम्' ही ठीक रहेगा। मैं तो उस दिन को देखने के लिए मर रही हूँ, और तुम ? तुम क्या फूल को अपने नेत्रों से लगाने के लिए अधीर नहीं हो ? तुम अब मुख से 'हाँ' कहने के लिए तैयार नहीं होगे, परन्तु मैं तुम्हारे नेत्रों में सब कुछ पढ़ लूँगी। पुरुष होते ही ऐसे हैं। जब प्रेम का प्रारम्भ होता है तो स्त्री को स्वर्ग की देवी बना देते हैं, उसकी प्रशंसा के लिए सारे संसार की उपमाओं को चुरा लाते हैं, उसकी एक मुस्कान पर सारे संसार को बलिदान करने की बातें करते हैं ; परन्तु जब प्रेम परिपक्व हो जाता है तो स्वयं कठोर बन जाते हैं और बेचारी प्रेमिका को उलटी प्रार्थना करनी पड़ती है। परन्तु मेरे सर्वस्व ! मुझे तो प्रार्थना करने में ही आनन्द मिलता है। तुम्हारे चरणों की सेवा करने की अधिकारिणी बन सकूँ, इसके अतिरिक्त और मैं कुछ नहीं चाहती। मुझे धन की चिन्ता नहीं है, तुमसे बड़ा धन और क्या मिलेगा ? मुझे सुसज्जित प्रासादों की चाह नहीं है, तुम्हारे वक्षस्थल से अधिक सुसज्जित प्रासाद संसार में कहाँ मिलेगा ? मैं संसार का कोई भोग नहीं चाहती, मैं चाहती हूँ तुम्हें, तुम्हें, केवल तुम्हें ! और तुम मेरे हो ही, हो न ?

कल सन्ध्या को 'नादिया वाली बग़ीची' में तुम आना। मैं वहीं मिलूँगी। फिर हम अपना भावी कार्य-क्रम सोचेंगे। मैंने अभी तक तुम्हारा नाम प्रगट नहीं

होने दिया और न विवाह तक होने दूँगी। तुम्हें देखे बिना अभी ३६ घण्टे व्यतीत करने पड़ेंगे। तुम्हें उन घण्टों के लिए मेरा छत्तीस सौ बार प्यार!

सदा तुम्हारी—फूल"

यह पत्र भेज देने पर मैं सास का सामना करने की प्रतीक्षा करने लगी। मुझे विश्वास था कि मुरारी बग़ीची में मुझसे मिलने अवश्य आएगा, अतः जब दूसरे दिन सास ने इस विषय पर वार्तालाप करना प्रारम्भ किया तो मैं बड़ी दृढ़ता से मोरचा लेने लगी। क्रोध में भरी हुई वे बोलीं—"क्यों री, यह क्या है? यह छिप-छिपा के तू क्या करती रही है?"

"जो कुछ भी मैं करती रही हूँ, उसे छिपाना नहीं चाहती। मैं पेट से हूँ।"

"हाँ, अब बात छिप नहीं सकती तो तू छिपाएगी कैसे? पर किससे यह काला मुँह कराया है?"

"यह सब तुम्हें दो-चार दिन में मालूम पड़ जायगा।"

"तुझे ऐसा करते शरम न आई? ख़लक़ख़्वार! जो काम कभी इस कुल में नहीं हुआ, वह तैंने करके सारे कुल की मर्जादा में कालिख लगा दी।"

"तुम्हें अपने कुल की ऐसी चिन्ता है और मेरे भविष्य की कुछ भी चिन्ता नहीं? तुम बुढ़ापे में भी शृङ्गार करो, सुन्दर से सुन्दर वस्त्र-आभूषण पहनो, संसार के सारे भोग भोगो, और मैं युवती होते हुए भी एक भिखारिणी की भाँति तुम्हारे घर में पड़ी रहूँ, न किसी से बात करूँ, न किसी से हँसूँ? मैं तुम्हारे कुल की रत्ती भर पर्वाह नहीं करती! तुम्हें दीखे सो तुम करो, मुझे दीखेगा वह मैं करूँगी।"

"अब और कुछ करने की कसर बाक़ी है? अब हरदुआर चल कर रहने के सिवा और क्या हो सकता है?"

"हरदुआर? किस लिए?"

"गिराने के लिए।"

"हत्या करने के लिए? न, मैं ऐसा नहीं कर सकती।"

"तो क्या विधवा होकर लला खिलाने की हौस है?"

"हाँ, है।"

"तो मैं अपने घर में यह न होने दूँगी। लोग क्या कहेंगे? सारी बिरादरी जनम में थूकेगी।"

"तुम्हारे घर में यह नहीं होगा, मैं तुम्हारा घर छोड़ रही हूँ।"

"यार के साथ भागेगी?"

"भागूँगी क्यों? मैंने कोई पाप किया है जो भागूँगी? मैं सबके सामने उससे विवाह करूँगी और गृहस्थ-जीवन बिताऊँगी।"

"हाय राम! इसकी मत तो न जाने किसने हर ली! घोर कलयुग है न! एक राँड ब्याह करेगी! महारानी के लिए फिर मँड़वा छवेगा, फिर सात फिरकय्याँ पड़ेंगी! एक क्यों, रोज़ एक खसम कर और छोड़! परलै (प्रलय) आ गई न! भला तीनों तिल्लोकी में राँड़न के ब्याह सुने हैं? खिरस्तान बन जा, धरम पर आग-भूभर डाल दे। हमें क्या ख़बर थी कि तू ऐसी सीरी स्याँपिनि निकलेगी!"

"हाँ, तुम कुछ भी कहो, लेकिन अब मुझे मालूम हुआ कि छिप कर पाप करने से, अपने घर वालों से ही भ्रष्ट होने से और गर्भ गिराने से तुम्हारे कुल में दाग़ नहीं लगता, तुम सब बिरादरी में लम्बी नाक लटकाए फिर सकती हो। परन्तु यदि एक विधवा अपनी ही बिरादरी के एक नवयुवक से विवाह करके धर्म का जीवन व्यतीत करना चाहती है तो वह पाप है, अधर्म है! उस पर बिरादरी बदनामी करेगी, दुनिया हँसेगी। अच्छा है, रक्खो सँभाल कर अपनी इस कुल-मर्यादा को। मैं चली।"

*　　*　　*

सन्ध्या हो गई थी। मैं केवल एक चद्दर ओढ़ कर उस घर को सदा के लिए छोड़ बग़ीची की ओर चल दी। अन्धकार हो गया था। उस ओर लोगों का आवागमन बन्द सा हो गया था। एक वृक्ष के नीचे मैंने एक नवयुवक को खड़ा देखा। मैं प्रसन्न हो गई। पास जाकर मैंने धीरे से पुकारा 'मुरारी!' युवक मेरी ओर को बढ़ा। जब वह पास आ गया तो एक साथ मैं चौंक पड़ी। वह मुरारी न था। वह बोला—"तुम्हारा ही नाम फूल है?"

"तुम्हें इससे क्या काम? तुम कौन हो?"

"मैं मुरारी का चचा, गिरधारीलाल हूँ।"

"तुम मुरारी के चचा? तुम यहाँ किस लिए आए?"

"तुमने मुरारी को यहाँ बुलाया था?"

"हाँ! परन्तु तुम्हें यह सब किस प्रकार पता लग गया? मुरारी कहाँ है?"

"मैं तुमसे यही कहने आया हूँ कि मुरारी यहाँ नहीं आएगा।"

"तो क्या आज कोई आवश्यक कार्य लग गया था?"

"आज ही क्यों, उसे सदा के लिए आवश्यक कार्य लग गया है।"

"यानी ?"

"वह तुमसे कभी नहीं मिलेगा।"

मेरे होश उड़ गए। मुरारी मुझसे कभी नहीं मिलेगा! यह सत्य हो सकता है ? मैं इस बात पर विश्वास न कर सकी। मैं उत्तेजित होकर बोली—"मुझसे कभी नहीं मिलेगा ? मेरा मुरारी ? तुम असत्य बोल रहे हो। मुझे भुलावा दे रहे हो। मैं तुम पर विश्वास नहीं कर सकती, नहीं कर सकती!"

उसने धीरे से जेब से एक लिफ़ाफ़ा निकाला और मेरे हाथ में देकर कहा—"यदि विश्वास नहीं करती हो तो यह देखो, किसकी हस्त-लिपि है ?"

लिफ़ाफ़े पर मेरा नाम लिखा था। वह मुरारी ने अपने ही हाथ से लिखा था, इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता था। अतः मैंने कहा—"मुरारी की।"

"इसमें मुरारी का पत्र है, उसे पढ़ो।"

मैंने पत्र पढ़ा—

"फूल !

तुम्हारा पत्र मिला। तुम मेरी प्रतीक्षा कर रही होगी, परन्तु मुझे दुःख है कि घटना-चक्र ने मुझे न आने के लिए विवश कर दिया है।

तुम्हारा पत्र पाने पर मेरे सम्मुख केवल एक ही मार्ग था, अर्थात अपनी माता और चचा पर इस रहस्य का उद्घाटन कर देना। मैंने उनसे सब बातें कहीं और तुमसे विवाह करने की आज्ञा चाही। परन्तु आज्ञा मिलना तो अलग, मुझे लेने के देने पड़ गए। चचा तो इस बात के घोर विरोधी रहे हैं, परन्तु उनकी मैं इतनी पर्वाह नहीं करता। माता का विचार मुझे अवश्य करना पड़ता है। जब से उन्हें मेरे विचार विदित हुए, उन्होंने भोजन-पानी छोड़ दिया और मर जाने की धमकी दी। अन्त में विवश होकर मुझे यह प्रतिज्ञा करनी पड़ी कि मैं तुमसे विवाह नहीं करूँगा। मैं स्वयं तुमसे मिलने आता, परन्तु एक तो मुझे तुम्हें मुख दिखाने का साहस न हुआ, दूसरे चचा ने मुझ पर विश्वास न किया। तुम मुझे कायर कहोगी, फूल! हाँ, मैं हूँ। मैं वीरता की तथा साहस की डींग हाँकता रहा हूँ। परन्तु मुझे अब विदित हुआ कि एक कट्टर समाज-सुधारक भी घटनाओं से विवश होकर अपने मार्ग से विचलित हो सकता है।

वास्तव में मैंने तुम्हारे साथ बड़ा अन्याय किया है, फूल! तुम्हें इस दशा को पहुँचाने का मैं अपराधी हूँ। परन्तु चचा ने तुम्हारी सहायता करने का वचन दे दिया है। यह सन्तोष है। आशा है तुम मुझे भूल जाओगी और क्षमा करोगी।

—मुरारी"

पत्र पढ़ कर मेरी जो दशा हुई, यह वही जान सकता है, जिसने मनुष्य-जन्म लेने का इतना भारी दण्ड पाया हो। मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा कि मेरी जीवनी शक्ति मेरे शरीर से निकल गई। मैं पृथ्वी पर बैठ गई। क्या यह वही मुरारी है, जिसके साथ मैंने महीनों व्यतीत किए थे ? वह मुरारी कितना वीर, साहसी, दयालु तथा मनोरम था! यह मुरारी कितना कायर, डरपोक, क्रूर तथा अवहेलनीय है ! जो समाज-सुधार के ऊँचे-ऊँचे विशाल भवन बनावे, उन्हें सुसज्जित करे और फिर घर वालों की एक आह से, एक क्षण में, उन्हें पृथ्वी पर गिरा दे, उससे तो परमात्मा ही हिन्दू समाज को बचाए ! यही आजकल के समाज-सुधारकों का नमूना है ! यदि यह शिक्षित लोग ऐसे आचार-विचार वाले हैं तो उन अशिक्षितों का रूढ़ियों से चिपटे रहने में क्या दोष है ? कम से कम उनमें सत्यता तो है, इन सुधारकों जैसा छल-कपट तो नहीं है। मुरारी से कभी यह आशा हो सकती थी! माता के भोजन न करने से उसकी आत्मा विचलित हो गई और मेरा जीवन जो नष्ट हो गया, उसकी उसे कुछ चिन्ता नहीं ! मेरे आँसुओं की, मेरे कष्टों की, इस आने वाले बच्चे की, उसे बिलकुल ही सुध न रही ! मैंने सास-श्वसुर छोड़े, घर छोड़ा, सारे शहर की बदनामी लेने की भी परवाह न की, यह सब बातें उसे बिलकुल ही याद न आईं ! इन सबके अतिरिक्त उसे मेरे प्रगाढ़ प्रेम का किञ्चिन्मात्र भी विचार न हुआ और सब कुछ सहन कर लूँगी, परन्तु उसके बिना मेरी क्या दशा होगी ? यदि मेरे जीवन में वह न आता तो कोई बात न थी। परन्तु उसे पाकर भी खो रही हूँ ! हे भगवान ! सारी आशाओं का ख़ून हो गया ! सारी कामनाएँ उसकी क्रूरता में भस्म हो गईं ! सारे स्वप्न छाया की भाँति मिट

गए ! किस प्रकार हृदय में एक मन्दिर बनाया था, परन्तु हा ! जिसकी मूर्ति उसमें बिठाना चाहती थी, उसीने उस पर वज्र गिरा दिया ! मैं रोने लगी।

अब तक गिरधारीलाल चुपचाप खड़े थे, परन्तु अब मेरे पास आकर बोले—"मुझे दुःख है, फूलवती ! परन्तु तुम्हीं सोचो कि यह विवाह किस प्रकार हो सकता था ? तुम विधवा हो ; हमारे कुल में अभी तक ऐसा काम कभी नहीं हुआ। मुरारी तो अभी नासमझ है। कुछ आर्यसमाजियों की बातों में आकर उसका दिमाग़ फिर गया है। परन्तु हमारा कर्त्तव्य है कि उससे कोई काम ऐसा न होने दें, जो कुल के नाम पर धब्बा लगावे। फिर उसके विवाह के लिए एक रईस पीछे पड़ रहे हैं, जो उसे डिप्टी-कलक्टर बनवाने का उद्योग कर रहे हैं। तुम उसे भूल जाओ।"

"ठीक है ! तुमने अपने कुल की नाक बचा ली और मुरारी को भी डिप्टी-कलक्टर बना लिया। परन्तु एक निर्दोष बालिका का कुछ भी विचार न किया !"

"तुम्हारा क्या बिगड़ा है ? तुम विधवा हो। जिस प्रकार उससे मिलने के पूर्व जीवन व्यतीत कर रही थी, उसी प्रकार अब भी कर सकती हो।"

मेरे नेत्र लाल हो गए। मैं क्रोध से बोली—"मेरा क्या बिगड़ा है ? तुम्हें बताऊँ मेरा क्या बिगड़ा है ? मैंने सास-ससुर छोड़े, चरित्र-भ्रष्ट हुई, सारे शहर में कल पापिनी के नाम से पुकारी जाऊँगी और जिसको मैंने प्राणों से भी अधिक प्यार किया है उसे तुम छीने ले जा रहे हो, और कहते हो कि मेरा क्या बिगड़ा है ? मैं विधवा हूँ तो क्या मेरा समाज में कोई स्थान नहीं ? विधवा को चाहे जो कोई आकर बिगाड़ दे और फिर एक ओर फेंक कर चला जाय ? वह सबके भोग की सामग्री हो गई ! कैसे यह कुलीन हैं, धर्मात्मा हैं, बिरादरी के पञ्च हैं ! ....."

वह बीच ही में बोले—"सुनो, सुनो, लड़की ! इस प्रकार उत्तेजित न होओ। मुरारी ने जो मूर्खता की है, उसके लिए तुम्हारा मूल्य चुका सकता हूँ।"

"मेरा मूल्य ? मेरे प्रेम का मूल्य तुम पैसों में चुकाओगे ? तुमने मुझे वेश्या समझा है ? तुम मेरे सामने से चले जाओ, अभी चले जाओ ! मैं तुम्हारा मुख नहीं देखना चाहती; तुम्हारा, मुरारी का, किसी भी पुरुष का। मैं सारी पुरुष-जाति से घृणा करती हूँ।"

७

भविष्य के पर्दे के पीछे क्या छिपा है, यह जान जाती तो यह अनर्थ क्यों होता ? परन्तु भाग्य में तो आपत्तियाँ ही लिखी थीं। वैधव्य, कलङ्क-कालिमा और फिर प्रेम-निराशा; संसार में जीने की और क्या साध रह गई थी ? सास के पास किस मुख से लौट कर जाती ? और जाती भी तो क्या वे ग्रहण करतीं ? और फिर उस समय तक बिरादरी और मुहल्ले में मेरे निकल जाने की बात फैल ही चुकी होगी। फिर सदा के लिए समाज में एक घृण्य जीव की भाँति रह सकूँगी ? नहीं, यदि यह नहीं तो फिर दूसरा मार्ग है अचल-ताल। उसने न जाने कितनी मुझ-सी अभागिनी युवतियों को शरण दी है। फिर क्या वह मुझे भी शरण न देगा ? वह हिन्दू-समाज से तो अधिक दयालु है ही। जिसे समाज में स्थान नहीं मिलता, उसे वह स्थान देता है। निर्धन धनिक, युवती वृद्धा, भङ्गी ब्राह्मण, वह सबका एक समान स्वागत करता है। मैं उसी ओर चल दी।

मरने के लिए जा रही थी, फिर भी मुरारी का ध्यान आ रहा था। हाय ! निष्ठुर ने अन्तिम बार दर्शन भी न दिए ! संसार से विदा होने से पूर्व यदि उसे एक बार देख लेती तो हृदय की आग बुझ जाती।

पक्कीसराय की ओर जो सड़क गई है, उधर अचल-ताल पर बहुत कम मनुष्य जाते हैं। अँधेरी रात साँय-साँय कर रही थी। उस ओर उल्लू बोल रहे थे। इसके अतिरिक्त दो-एक कुत्ते और भौंक रहे थे; नहीं तो दृश्य बड़ा नीरव था। मैं अचल की सिढ़ियों पर जा बैठी। जल को देखा और फिर आकाश की ओर देखा। हृदय काँप गया। फिर साहस किया, परन्तु जिस संसार को सदा के लिए छोड़ने जा रही थी, उसे फिर एक बार देख लेने की इच्छा हुई। आकाश की ओर दृष्टि की, वह अपूर्ण रजनीपति आज कितना मधुर लगता था ! पृथ्वी पर चारों ओर दृष्टि फिराई, पीछे से सड़क पर के मकानों की खिड़कियाँ दिखाई दे रही थीं। इतने ही में एक मकान से ढोलक तथा गायन के शब्द सुनाई दिए। मैंने ध्यान से सुना, किसी के यहाँ लड़का पैदा हुआ होगा, उसीके गीत गाए जा रहे थे। मैं वहीं बैठ गई। मेरे नेत्रों के सामने मेरे अपने बच्चे के दृश्य आ गए। मैं इसे भूल गई थी। मैं कातर होकर रो पड़ी

मेरा हृदय चिल्ला रहा था—"भगवान ! मुझे जीवित रहने की शक्ति दो। अपने लिए नहीं, उस बच्चे के लिए, जो संसार में आना चाहता है। मुझे उसका जीवन लेने का कोई अधिकार नहीं है। मैं मज़दूरी करके निर्वाह कर लूँगी, भूखों रह लूँगी, परन्तु उसके लिए, अपने प्रेमी के एकमात्र चिन्ह को सुरक्षित रखने के लिए, मैं जिऊँगी।"

उस शून्य स्थान से चल कर मैं सड़क पर आई तो एक ओर को एक छोटी सी झोपड़ी दीख पड़ी। मैंने द्वार पर धक्का दिया। एक बुढ़िया ने द्वार खोला।

"मुझे आज रात भर ठहरने दोगी, माई ?"

"तुम कौन हो ?"

"एक दुखिया हूँ, और क्या बताऊँ।"

"हिन्दू हो ?"

"हाँ।"

"लेकिन मैं तो मुसलमान हूँ, बेटी ! मेरे घर में तुम कैसे रहोगी ?"

मैंने कुछ देर विचार किया और फिर बोली—"तुम कोई भी हो, मैं तुम्हारे पास रात गुज़ारूँगी। बोलो, रहने दोगी ? मैं किसी हिन्दू के घर नहीं जाना चाहती।"

बुढ़िया ने मुझे रख लिया। घर में वही अकेली थी। कुछ मेहनत करके काम चलाती थी। वह इतनी दयालु थी कि मैंने जब उससे अपनी कहानी कही, तो वह बोली—"अगर तुम रहना चाहो तो मेरा घर पड़ा है, बेटी ! जब तक बच्चा हो, तुम यहाँ रह सकती हो।"

कुछ दिनों बुढ़िया के साथ रहने पर मुझे अपने ही धर्मवालों से घृणा होने लगी। कोई हिन्दू ऐसा था जो मुझे अपने यहाँ शरण दे देता ? कोई ऐसी संस्था थी जो मेरे बच्चे की रक्षा के लिए तत्पर होती ? इन विचारों से और बुढ़िया की शिक्षा के प्रभाव से कुछ दिनों बाद ही चुपचाप मैं मुसलमान हो गई। फिर मैंने सुना कि मेरे विषय में बिरादरी में यह विख्यात हो गया है कि पेट रह जाने के कारण मैं अचल में डूब कर मर गई। मैंने किसी को अपना पता न चलने दिया। बुढ़िया को सहायता देकर कुछ कमाती और उसी से व्यय चल जाता था। बुढ़िया एक दिन बोली—"बेटी ! तू नौजवान है, किसी के साथ निकाह करके क्यों नहीं बैठ जाती ?"

"नहीं माँ, मैं इसलिए मुसलमान नहीं हुई। मैं सिर्फ़ हिन्दुओं से बदला लेने के लिए मुसलमान हुई हूँ।"

वह चुप हो गई। कुछ दिनों में ही मेरा बच्चा, मेरी आँखों का पुतला, पृथ्वी पर आ गया। लड़का है, यह जब मैंने देखा तो मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। उसकी आकृति बिलकुल मुरारी की सी थी। उसे देख कर मैं मुरारी को याद कर लेती थी। मैं मुसलमान हो गई थी, परन्तु मेरा हृदय तो मुसलमान नहीं हुआ था। हृदय-मन्दिर के केवल भग्नावशेष ही शेष थे, फिर भी ढूँढ़ने पर मेरे देवता की टूटी हुई मूर्ति भी वहाँ मिल सकती थी।

८

सोलह वर्ष व्यतीत हो गए। उन सोलह वर्षों में मैं घर से बाहर बहुत कम गई थी। बुढ़िया ने पड़ोसियों से कह दिया था कि मैं उसकी एक रिश्तेदार हूँ, अतः किसी को किसी प्रकार का सन्देह न हो पाया था। इन दिनों में मेरे सास-श्वसुर का देहान्त हो गया था और मुरारी ने अपना विवाह कर लिया था। कभी-कभी मुरारी के दर्शनों की इच्छा बहुत प्रबल हो जाती थी, परन्तु मैं अपने मन के भावों को दबा जाती। अब वह दूसरे का था। उस पर मेरा क्या अधिकार ? उसने मेरे साथ घोर अन्याय किया था, फिर भी मेरे हृदय से उसकी मङ्गल-कामना की प्रार्थना ही निकलती थी।

दो-चार बार मुझे अपने मुसलमान होने पर बड़ा पश्चात्ताप हुआ। रह-रह कर, मैं घृणा तथा क्षोभ के आवेश में जो कुछ कर बैठी थी, उस पर मुझे ग्लानि होने लगती, परन्तु कोई उपाय उस दशा से निकलने का न था। हिन्दू-धर्म के द्वार तो मेरे लिए सदा को बन्द हो गए थे। यदि फिर हिन्दू होना भी चाहती तो मुझे कौन अङ्गीकार करता ? मेरे बच्चे की क्या दशा होती ? क्या उसे अच्छे हिन्दुओं का सा दर्जा मिलता ? हिन्दू उसे जारज समझ कर उससे उपेक्षा न दिखाते ? मुसलमान रहने पर मेरे बच्चे का मार्ग तो साफ़ था, उसका भविष्य तो अन्धकारमय न था। उसके सामाजिक अधिकारों को कुचलने वाला तो कोई न था ? यही विचार थे, जो मुझे मुसलमान बनाए रहे। मुझ जैसी युवतियों की संख्या कुछ कम नहीं है, जिन्हें हिन्दुओं ने अपनी ही मूर्खता से सदा के लिए खो दिया है।

मेरा सारा प्रेम अब 'अब्दुल' पर केन्द्रस्थ हो गया था। उसे मेरे अतीत जीवन का कुछ पता न था। शायद

यह मेरी हिन्दुओं के प्रति घृणा थी कि जिसने अब्दुल के हृदय में हिन्दुओं के प्रति प्रतिहिंसा भर दी थी। वह बहुधा हिन्दू लड़कों को मार-पीट कर घर आता था। मुझे इससे बड़ा दुःख होता था, परन्तु मैं उससे कुछ भी न कहती थी, इस डर से कि कहीं वह सारा रहस्य जान न जाय।

उस वर्ष सारे संयुक्त प्रान्त में हिन्दू तथा मुसलमानों में विग्रह हो रहे थे। अलीगढ़ भी उस छूत से बचा न था। इधर-उधर हिन्दू और मुसलमान मार-काट कर देते थे। अब्दुल मस्जिद में सुन आया था कि काफ़िरों को मारने से बड़ा पुण्य होता है। अतः वह बड़े उत्साह से पुण्य लूटने की तैयारी कर रहा था। अब्दुल एक दिन बड़ा सा छुरा लेकर एक पत्थर पर तेज़ कर रहा था। मैं देख कर घबरा गई। मैंने उससे कहा—"अब्दुल! यह क्या कर रहा है?"

"कल बकरीद है, उसकी तैयारी कर रहा हूँ।"

"यह छुरी क्या बकरा हलाल करने के लिए है?"

"हिन्दुओं को हलाल करने के लिए।" वह हँस कर बोला।

"पागल हुआ है? तू अभी बच्चा है, अभी से हाथ चलाना—"

"मैं बच्चा हूँ? वाह! मौलवी साहब ने सबको यही तालीम दी है। कम से कम एक हिन्दू को मैं ज़रूर क़त्ल करूँगा।"

बकरीद के दिन अब्दुल मेरे रोकने पर भी बाहर निकल गया। मैंने एक हिन्दू के पुत्र को ही हिन्दू-घातक बना दिया। मैं यह कैसा अपराध कर रही हूँ! मुझे स्वयं अपने आपसे घृणा होने लगी। क्या यह बदला लेने का ढङ्ग है? मुझे सारी बीती हुई घटनाएँ मस्तिष्क में घूमती हुई मालूम दीं। उन सब में मुरारी की सुन्दर आकृति को देख कर मैं व्याकुल हो उठी। कहीं वह भी किसी मुसलमान द्वारा मारा न गया हो। मैं उसकी कुशल की कामना करने लगी।

मैं अपने विचारों में मग्न थी कि मुझे बाहर शोर सुनाई दिया। 'अल्लाहो अकबर' के नारे बलन्द थे। इतने ही में द्वार पर धक्के का शब्द सुनाई दिया। मैंने जाकर द्वार खोला।

एक मनुष्य, जो हिन्दू विदित होता था, भीतर घुसा। उसका मुख शाल में छिपा हुआ था। मैंने विस्मय से पूछा—"तुम क्या चाहते हो?"

"शीघ्र द्वार बन्द कर दो। मुसलमान छुरियाँ लिए मेरा पीछा कर रहे हैं।"

मैंने द्वार बन्द करके उसकी ओर देखा। मेरे वस्त्र रँगे देख कर वह कराहता हुआ बोला—"एक मुसलमान का घर? कैसा दुर्भाग्य है!"

यह कह कर वह द्वार की ओर चलने लगा। मैंने उसे रोक कर कहा—"मैं मुसलमान हूँ, यह ठीक है, लेकिन यहाँ तुम्हारा कोई बाल भी बाँका न कर सकेगा।"

उसने अपने मुख से शाल हटाई। मैं हठात् चिल्ला पड़ी—"मुरारी!"

उसने भी मेरे मुख की ओर देखा और वह भी चिल्ला उठा—"फूल!"

कैसा मिलन था! सोलह वर्ष के बाद मुरारी के फिर दर्शन हुए और वह भी इस प्रकार! उस समय मुरारी ने मुझे ठुकरा दिया था, आज वह स्वयं मेरे द्वार पर शरण लेने के लिए आया! समय का कैसा खेल है!

वह बोला—"फूल! यह सत्य है या स्वप्न? तुम वास्तव में जीवित हो? मैंने तो सुना था कि तुम........"

"....मैं मर गई थी? हाँ, हिन्दू फूल मर गई। यह मुसलमान फूल है जो जीवित है। तुम्हें तो एक हिन्दू स्त्री को मुसलमानी जीवन में देख कर प्रसन्नता हुई होगी! सच्चे सुधारकों का आदर्श ही यह है!"

"ताने न मारो, फूल! मैं जानता हूँ मैं पापी हूँ, मैं अपराधी हूँ। परन्तु यदि तुम कुछ सुनोगी तो शायद क्षमा कर दोगी।"

"इससे क्या लाभ है?"

"आह! यह पूछती हो फूल? एक बार मेरे नेत्रों में तुमने मेरे हृदय के भाव पढ़े थे। क्या आज मेरे नेत्रों में उसी हृदय के भाव नहीं पढ़ सकोगी? यह मत समझो कि तुम्हें मैं भूल गया था। तुम्हें वह पत्र तो मैंने लिख दिया था, परन्तु पीछे से मुझे अपनी कायरता पर बड़ा पश्चात्ताप हुआ। क्षणिक दुर्बलता के कारण तुम्हें मैंने खो दिया। परन्तु पीछे लाख प्रयत्न करने पर भी तुम्हारा पता न लगा। अन्त में तुम्हारे ताल में डूब जाने की कहानी पर विश्वास करके धैर्य रखना पड़ा। परन्तु उस दिन से हृदय चोट खाए हुए पक्षी की भाँति तड़पता रहा

है। अब तक वह घाव भरा नहीं है। फूल! मेरी प्यारी! क्या अपने अपराधी को क्षमा न करोगी? क्या अतीत को स्मृति-पटल से न मिटाओगी?"

"क्षमा चाहते हो मुरारी? परन्तु किस लिए? मुझे तुमने ठुकरा दिया, धर्म-परिवर्तन के लिए विवश कर दिया, जीवन की आशा-लता को जला डाला; फिर भी, आज तक, इस क्षण तक, तुम्हारे अतिरिक्त इस मन ने किसी और पुरुष का चिन्तन नहीं किया, हृदय ने किसी और की पूजा नहीं की। ओह मुरारी! जीवन के कठिनतम सोलह वर्षों के अनन्तर तुम और मैं! नींद से जग कर फिर स्वप्न देख रही हूँ! क्या यह चिरस्थायी रहेगा?"

"चिरस्थायी, फूल! इस जन्म में, अगले जन्म में, प्रत्येक जन्म में, अनन्त काल तक। मैं तुम्हें तुम्हारे सिंहासन पर फिर बिठाऊँगा। जिस लड़की से मुझे विवाह करना पड़ा था, वह दो वर्ष बाद ही उड़ गई। तब से मैंने त्याग और सेवा का जीवन व्यतीत किया है। अब सारे समाज के सामने तुम्हें अपनी बनाऊँगा।"

मेरे नेत्रों में हर्ष के आँसू भरे थे। मैं मुरारी के वक्षस्थल पर शिर रख कर उसे आँसुओं से भिगोने लगा। इतने ही में द्वार खुला और अब्दुल भीतर आ गया। उसके हाथ में छुरी लगी हुई थी। वह द्वार से ही चिल्ला कर बोला—"एक हिन्दू को ख़तम करके आया हूँ, अम्मी!" हम दोनों अवाक् होकर उसकी ओर देख रहे थे कि वह मुरारी की ओर देख कर विस्मय से बोला—"एक हिन्दू, हमारे घर में?"

मैंने उसका हाथ पकड़ कर कहा—"अब्दुल! ख़बरदार, हाथ न चलाना।"

"क्यों?"

"यह तेरे बाप हैं।"

"मेरे बाप, एक हिन्दू?" वह विस्मय से बोला।

"हाँ, बेटा! तू एक हिन्दू का पुत्र है, एक हिन्दू है।"

वह विस्मय से मुरारी की ओर देखता रहा। मुरारी ने मुझसे पूछा—"फूल! क्या वह यही है?"

"हाँ।"

"पगली! तुमने बड़ा अत्याचार किया। कभी मुझे समाचार तक न दिया।"

धीरे-धीरे मुरारी की भुजाएँ आगे बढ़ीं। अब्दुल ने एक शब्द भी न निकाला। उसके नेत्रों में आँसू थे। उसे हिन्दू और मुसलमान का कुछ ध्यान न रहा। जिस पिता के लिए वह कभी तड़पा करता था, उसे सामने खड़ा देख कर उसका पितृ-प्रेम उमड़ पड़ा। वह दौड़ कर मुरारी के गले से लिपट गया। मुरारी का गला भर आया था। उसने केवल 'मेरा बेटा!' ही कहा और उसे छाती से लगा कर चूमने लगा। अपरिचित पिता-पुत्र का वह सम्मिलन, सोलह वर्ष बाद, स्नेह तथा ममता का एक सजीव दृश्य था। उसे क्या मैं जीवन भर भूल सकती हूँ!

फिर द्वार खुला और एक वृद्ध हिन्दू रक्त में लथपथ आँगन में गिर पड़ा। हम सब उसकी ओर दौड़े। हैं, यह तो गिरधारीलाल है! मुरारी ने उसकी ओर देख कर कहा—"चाचा, यह तुम्हारी क्या दशा?"

गिरधारीलाल ने इधर आँखें फिराईं। अब्दुल अब भी उसकी छाती से लगा हुआ था। उसे देखते ही गिरधारीलाल ज़ोर से बोला—"मुरारी! यह मैं क्या देख रहा हूँ? मुसलमान, मेरा हत्यारा, तुम्हारी गोद में!"

"यह मेरा पुत्र है, चाचा!"

"तुम्हारा पुत्र?"

"हाँ, मेरा और फूल का पुत्र!"

"अब मैं समझा! सो फूल हिन्दू समाज में शरण न मिलने से मुसलमान हो गई और एक हिन्दू के पुत्र ने ही एक हिन्दू का वध किया!"

वह निर्जीव होने लगा। मैंने उसके मुख में थोड़ा जल डाल कर कहा—"आपको उठा कर पलङ्ग पर लिटा दें तो अच्छा होगा।"

वह कुछ सँभल कर बोला—"पलङ्ग पर? नहीं, अब मुझमें रह क्या गया है? चोट घातक है। कुछ देर में प्राण-पक्षी उड़ जाएँगे। परन्तु मैं तुमसे कुछ कहना चाहता हूँ। फूल! मुझे अपना हाथ दो। मुरारी! तुम भी मुझे अपना हाथ दो।" हम दोनों ने उसका एक-एक हाथ पकड़ लिया और उसका शिर मुरारी ने अपनी जङ्घा पर रख लिया।

बड़े कष्ट से गिरधारीलाल बोला—"मुझे सारी बीती हुई घटनाओं के चित्र इस समय दीख रहे हैं। मैं कितना अन्धा था? तुम दोनों के जीवन को मैंने कितना दुःखमय बना दिया था। समाज का झूठा भय, व्यर्थ का बड़प्पन और मानसिक दासत्व ने इस

हिन्दुओं की बुद्धि पर कैसा पर्दा डाल दिया है ! यदि तुम दोनों का विवाह उस समय हो जाता तो एक परिवार विधर्मी होने से बचता। हिन्दू हिन्दू का ही घातक न होता। हम स्वयं ही अपने शत्रुओं की संख्या बढ़ा कर अपने पैर में कुल्हाड़ा मार रहे हैं ! हम इन भोली विधवाओं पर अत्याचार तो करते हैं, परन्तु उनकी रक्षा का उपाय कुछ नहीं करते। फल यह होता है कि या तो वे वेश्या हो जाती हैं या विधर्मी। और या फिर भ्रूण-हत्या का पाप करती हैं। यदि हमारे यहाँ ऐसे स्थान हों, जहाँ ऐसे अभागे बालकों का पालन-पोषण हो सके तो समाज का कितना भला हो ! दुःख है कि मेरी आँखें अब खुली हैं। परन्तु, मुरारी ! तुम मेरे अपराध को हलका करने के लिए एक काम कर सकते हो ? अलीगढ़ में मेरी आधी सम्पत्ति से एक 'मातृ-मन्दिर' खोलना, जिसमें ऐसी माताओं तथा ऐसे शिशुओं की रक्षा की जा सके। करोगे, मुरारी ?"

"अवश्य चाचा ! इतना ही नहीं, मैं अपने अपराध को हलका करने के लिए फूल से विवाह करूँगा और हम दोनों 'मातृ-मन्दिर' की सेवा में अपना जीवन लगा देंगे।"

"अब मैं शान्ति से मर सकूँगा। मुझे क्षमा करना फूल ! क्षमा करना, मुरारी !"

पाँच वर्ष बाद 'मातृ-मन्दिर' के निकटस्थ अपने बँगले में हम दोनों खिड़की के पास खड़े सामने वाले बाग़ में 'मन्दिर' के बालकों का खेल देख रहे थे। मुरारी बोला—"देखो न फूल ! बच्चों का खेल कितना प्यारा लगता है ! यदि 'मातृ-मन्दिर' न होता तो यह पचास बालक कहाँ होते ? या तो हरिद्वार के जल में या तीर्थ-स्थानों की मृत्तिका में या ईसाई तथा मुसलमानों की शरण में। जिस दिन प्रत्येक नगर में ऐसे आश्रम स्थापित हो जायँगे, उसी दिन मेरे जीवन का उद्देश्य सफल होगा।"

"यह तुम्हारे साहस तथा कर्मयोगिता का फल है।"

"नहीं, पगली ! यह तुम्हारी वीरता तथा स्वार्थ-त्याग का फल है।"

"सच पूछो तो यह गङ्गा जी का प्रभाव है। न हम उसके तट पर मिलते न यह दिन देखने को मिलता।"

"तो फिर गङ्गा जी पर चढ़ावा चढ़ाना चाहिए।"

"फूल-बताशे कहाँ हैं ?"

उसने अपनी जेब में से कुछ बताशे निकाल कर चबा लिए और बोला—"कहो, बताशे तो चढ़ा दिए ?"

"और फूल ?"

"और यह फूल" कह कर उसने मुझे अपने वक्षस्थल में छिपा लिया।

भेंट

[श्री० बद्रीनारायण शुक्ल]

(१)

गूँथ कर हृदय-पुष्प की माल,
पिरोया उसमें प्रेम-प्रवाल।
पाद-पद्मों पर तेरे डाल,
आज मैं दुखिनी हुई निहाल॥

(२)

बेर शबरी के इसको मान,
सुदामा के वा तन्दुल जान।
करो स्वीकार इसे भगवान !
त्याग कर कठिन कष्ट का ध्यान॥



बॉयकॉट

क्रान्तिकारीयों का उपद्रव

सविनय आज्ञा भङ्ग

चोट पर चोट

सीने की चोट, दिल की औ पहलू की हाय चोट !
खाऊँ किधर की चोट, बचाऊँ किधर की चोट !!

वारन हेस्टिंग्ज़ और महाराज चेतसिंह

[पं० तेजनारायण काक 'क्रान्ति']



शी के विद्रोह के कई वर्षों बाद जब हाउस ऑफ़ कॉमन्स में वारन हेस्टिंग्ज़ का मुक़दमा चल रहा था, तब उसके ऊपर शत्रुओं द्वारा लगाए गए बीस मुख्य अभियोगों में से "काशी के महाराज चेतसिंह के साथ किया गया नीच और घृणित व्यवहार" भी एक था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि हेस्टिंग्ज़ के शत्रुओं ने, जिनमें बर्क, फॉक्स, शारिडान प्रभृति अनेकों दिग्गज वाग्मी थे, अपनी वाक्य-कुशलता द्वारा उसके छोटे से छोटे दोष को भी तिल का ताड़ बनाने में ज़रा भी कोर-कसर न रक्खी, पर केवल इसीलिए हम ग्लीग महाशय अथवा हेस्टिंग्ज़ के अन्य प्रशंसकों के इस कथन से कदापि सहमत नहीं हो सकते कि हेस्टिंग्ज़ का प्रत्येक कार्य न्याययुक्त था और उसने जो कुछ किया वह ठीक किया। क्या हेस्टिंग्ज़ के हित-विधायक मित्र विलियम पिट का महाराज चेतसिंह से सम्बन्ध रखने वाली घटना में उसे दोषी ठहराना इस बात का अकाट्य प्रमाण नहीं है कि उसके शत्रु ही नहीं, वरन् मित्र भी उसके दोषों को स्वीकार करते थे। हेस्टिंग्ज़ को निर्दोष सिद्ध करके उसकी प्रशंसा के व्यर्थ के पुल बाँधने को यदि पानी के ऊपर लकीर खींचने के समान निष्फल कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। दोष प्राणी मात्र से होते आए हैं और यदि हेस्टिंग्ज़ से भी कोई अपराध हो गया तो यह किसी सांसारिक नियम का अपवाद नहीं कहा जा सकता। अपराध तो वास्तव में उन सज्जनों का है, जिन्होंने जान-बूझ कर सच्ची बातों को झूठ तथा अप्रामाणिक सिद्ध करने में अपना बहुत सा अमूल्य समय व्यर्थ ही नष्ट किया है।

महाराज चेतसिंह सम्बन्धी घटना का संक्षिप्त ब्योरा इस प्रकार है। सम्राट औरङ्गज़ेब की मृत्यु के पश्चात मुग़ल साम्राज्य की नींव डाँवाडोल होने लगी। सारे देश में अराजकता फैल गई। फिर क्या था, जिसे देखिए वही अपनी मनमानी करने लगा। प्रत्येक सूबे का सूबेदार स्वतन्त्र बन बैठा। यहाँ तक कि देहली के आस-पास के कुछ भाग को छोड़ सारा देश मुग़लों के हाथ से निकल गया। ठीक इसी समय बनारस के राजा ने भी अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा करवा दी। अवध के नवाब शुजाउद्दौला ने बनारस को हस्तगत करने का यह अच्छा अवसर देखा। एक छोटा सा राज्य कब तक इतने बड़े सूबेदार का सामना करता? अन्त में बनारस के राजा को अवध के नवाब से हार माननी पड़ी और उसके अधीनस्थ होकर रहना पड़ा। विधाता की गति जानी नहीं जाती। अवध के नवाब को यह स्वप्न में भी ख़याल नहीं था कि जिस बनारस को उसने बड़ी लालसा से इतने रक्तपात के पश्चात विजय किया है वही अब उससे छीन लिया जायगा। और यही कौन जानता था कि अवध के कुत्सित शासन से निकल कर थोड़े ही समय में बनारस को एक विदेशी जाति का दासत्व स्वीकार करना पड़ेगा, एक गहरे गर्त से निकल उससे भी अधिक भयानक तथा अन्धकारमय कूप में गिरना पड़ेगा? किन्तु हुआ ऐसा ही। रुहिला युद्ध की समाप्ति होने के थोड़े ही समय उपरान्त शुजाउद्दौला की मृत्यु हो गई। उसके मरने पर उसके पुत्र आसफ़उद्दौला से जो नई सन्धि हुई उसके अनुसार बनारस अङ्गरेज़ों को मिला। इसी समय से बनारस के महाराज चेतसिंह को साढ़े बाईस लाख रुपया प्रति वर्ष कम्पनी को कर-स्वरूप देना पड़ता था। चेतसिंह ने कभी रुपया चुकाने में विलम्ब नहीं किया। कदाचित इसी के फलस्वरूप जब सन् १७७८ में अङ्गरेज़ तथा फ्रान्सीसियों के बीच युद्ध छिड़ा तो वारन हेस्टिंग्ज़ ने बँधे हुए वार्षिक कर के अतिरिक्त युद्ध के व्यय के लिए महाराज से पाँच लाख रुपए और माँगे। इस आदेश का पत्र जिस समय बङ्गाल काउन्सिल के सामने रक्खा गया तो उसके मेम्बरों ने उसकी कड़ी भाषा की आलोचना करते हुए उसे कुछ विनम्र बनाने की इच्छा प्रगट की। वे चाहते थे कि पत्र में 'Demand' शब्द की जगह 'Request' रख दिया जाय। क्योंकि उनका

कहना था कि कर के अतिरिक्त चेतसिंह से और कुछ लेने का कम्पनी को कोई अधिकार नहीं है। वास्तव में बात भी ऐसी ही थी। परन्तु हेस्टिंग्ज़ यह सब कब मानने वाला था? उसके मतानुसार कम्पनी को जब चाहे जितना रुपया लेने का अधिकार प्राप्त था। अन्त में बहुत वाद-विवाद के बाद हेस्टिंग्ज़ ही की बात रही और वह पत्र ज्यों का त्यों महाराज चेतसिंह के पास भेज दिया गया। उत्तर में जब उन्होंने कहला भेजा कि रुपया उनसे केवल एक ही वर्ष के लिए लिया जावे तो उनकी इस "धृष्टता" पर चिढ़ कर हेस्टिंग्ज़ ने हुक्म दिया कि सब वर्षों का रुपया एक ही साथ चुकाना होगा। चेतसिंह बहुत घबराए और उन्होंने प्रार्थना-पत्र भेज कर हेस्टिंग्ज़ से रुपया चुकाने के लिए छः-सात महीने की मोहलत माँगी। पर अब हेस्टिंग्ज़ के क्रोध का वारापार नहीं रहा। भला उसे इतनी मानहानि कहाँ सहनीय थी? महाराज को उसी समय कहलाया गया कि या तो वे रुपया पाँच दिन के भीतर ही दे डालें, नहीं तो कम्पनी की ओर से समझ लिया जायगा कि वे ऐसा करने से इनकार करते हैं। फिर इसका क्या परिणाम निकलेगा, यह वे भली भाँति विचार सकते हैं। अपनी प्रार्थना का कुछ फल न निकलते देख चेतसिंह ने किसी तरह से रुपया जुटा कर नियत समय के भीतर ही कम्पनी के हवाले किया।

सन् १७७९ में रुपए की माँग फिर दोहराई गई। अबकी बार चेतसिंह ने बड़ी नम्रता-सहित प्रार्थना की कि कम्पनी से उन्होंने जो सन्धि की थी उसके अनुसार कर के अतिरिक्त रुपया देने के लिए वे बाध्य नहीं हैं। हेस्टिंग्ज़ ने बिना कुछ सोचे-विचारे अङ्गरेज़ सेना को बनारस पर धावा बोल देने की आज्ञा दे दी। किन्तु चेतसिंह व्यर्थ का झगड़ा मोल लेना नहीं चाहते थे। अतः उन्होंने पचास हज़ार पौण्ड दे दिए। हेस्टिंग्ज़ ने इतने पर भी उनका पीछा नहीं छोड़ा और उन पर धावा करने को जो सेना भेजी गई थी उसको किसी प्रकार की क्षति न पहुँचने पर भी उसके व्यय के लिए दण्डस्वरूप दो हज़ार पौण्ड और वसूल कर लिए। तीसरी बार फिर सन् १७८० में चेतसिंह से पाँच लाख रुपए माँगे गए। सीधी तरह प्राण न छुटते देख अबकी महाराज ने दूसरी युक्ति का आश्रय ग्रहण किया। उन्होंने हेस्टिंग्ज़ को बीस हज़ार पौण्ड घूँस में भेजे। कहते हैं पहिले तो उसने इन्हें लेने से इनकार किया, किन्तु पीछे न जाने क्या सोच कर ले लिया। इसी बात को उसके प्रतिद्वन्द्वी मुक़दमे के समय ले उड़े थे। बहुतों का मत है कि कम्पनी के कोषागार में टोटा आ जाने के कारण ही उसने यह रक़म लेना स्वीकार किया था और उसने उसे व्यय भी कम्पनी ही के ख़र्च में किया। किन्तु यदि उसकी अन्तरात्मा दोषी नहीं थी तो उसने इस मामले को, अपने काउन्सिल के मेम्बरों से ऐसा कह कर कि यह रुपया मैं कम्पनी को अपने पास से देता हूँ, पाँच महीने तक प्रगट क्यों नहीं होने दिया? सब से अधिक आश्चर्य की बात यह है कि डाइरेक्टरों तक को इसकी कानोंकान ख़बर न होने पाई। हमें तो अवश्य कुछ दाल में काला दिखाई देता है। मालूम होता है कि पहिले लालच में पड़ कर उसने रुपया स्वीकार कर लिया, पर फिर भेद खुल जाने के भय से ऊपर लिखा हुआ बहाना बना मामले को दबा दिया। वस्तुतः बात कुछ भी क्यों न हो, कम से कम हेस्टिंग्ज़ के लिए सब से सीधा मार्ग उपहार को अस्वीकार कर देना ही होता। केवल इतने ही पर बस न करके उसने वह पाँच लाख रुपया भी चेतसिंह से ले लिया और साथ ही दस हज़ार पौण्ड जुर्माने के तौर पर भी लिया। हेस्टिंग्ज़ भली भाँति जानता था कि चेतसिंह ने बीस हज़ार पौण्ड इसीलिए दिए हैं कि उनसे पाँच लाख रुपया न लिया जाय। इतना जानते हुए भी जब उसने चेतसिंह के साथ छल तथा कौशल से काम लिया तो हम दावे के साथ कह सकते हैं कि सन् १७८३ में सिलेक्ट कमिटी की रिपोर्ट में इस मामले के प्रति जो कुछ लिखा था वह अक्षरशः सत्य है। पाठकों के मनोरञ्जनार्थ हम उसे यहाँ उद्धृत करते हैं:—

"The complication of cruelty and fraud in this transaction admits of few parallels. Mr. Hastings....displays himself as a zealous servant of the company, bountifully giving from his own fortune ......on the credit of supplies, derived from the gift of a man whom he treats with the utmost severity and whom he accuses in this particular of disaffection to the company's cause and interests.

With £. 23,000 of the raja's money in his pocket, he persecutes him to his destruction."*

इस विषय में अधिक टीका-टिप्पणी करना व्यर्थ है।

इतना सब कुछ हो जाने पर भी हेस्टिंग्ज़ को शान्ति नहीं मिली। थोड़े ही समय पहिले दक्षिण के युद्धों में कम्पनी का बहुत रुपया चुक गया था। यदि रुपया नहीं मिलता तो दिवाला निकल जाने का भय था। गवर्नर हेस्टिंग्ज़ ने सोचा चेतसिंह हाथ में है ही, इसीसे रुपया ऐंठना चाहिए। इससे अच्छा असामी और कहाँ मिल सकता है? उसने तुरन्त एक उपाय खोज निकाला। चेतसिंह को कहलाया गया कि वह दो हज़ार घुड़सवार फ़ौज अङ्गरेज़ों को अपने पास से दे। हेस्टिंग्ज़ ने सोचा था कि जब महाराज तङ्ग आ जावेंगे और ऐसा करने से इनकार करेंगे तो वह तुरन्त उन्हें आज्ञाभङ्ग करने के अपराध में फाँस कर रुपया देने पर बाध्य करेगा और यदि ऐसा न हो सका तो अवध के हाथों बनारस फिर से बेच दिया जायगा। किन्तु यहाँ तो बात ही उलटी पड़ गई। महाराज ने बड़ी कठिनाई से एक हज़ार फ़ौज इकट्ठी करके कहला भेजा कि वह बङ्गाल सरकार का हुक्म मानने को प्रस्तुत हैं। हेस्टिंग्ज़ ने किसी तरह दाल गलती न देख चुप्पी साध ली, मानो उसे यह ख़बर मिली ही नहीं, क्योंकि उसे तो महाराज से पचास हज़ार पौण्ड दण्ड में लेने थे। उसने स्वयं इस बात को स्वीकार किया है। वह लिखता है :—

"I resolved to draw from his guilt the means of relief to the company's distress—to make him pay largely for his pardon, or to exact severe vengeance for past delinquency."†

उसने यह भी स्वयं ही लिखा है कि उसकी ओर से चेतसिंह को कोई उत्तर नहीं दिया गया था।‡

इतनी दूर से काम न बनता देख वारन हेस्टिंग्ज़ ने बनारस जाना ही स्थिर किया। वह जुलाई में कलकत्ते से रवाना हो गया। महाराज चेतसिंह उसकी अगवानी के लिए ६० मील चल कर बक्सर आए और बहुत आदर-सत्कार के साथ उसे काशी लिवा ले गए। यहाँ तक सुनने में आता है कि उन्होंने स्वयं अपनी पगड़ी उसके पैरों में रक्खी थी। बनारस आने पर हेस्टिंग्ज़ ने महाराज से मुलाक़ात करने से इनकार किया और केवल अपनी शर्तें लिख कर उनके पास भिजवा दीं। उसी पत्र में उन पर आज्ञा-उल्लङ्घन और कर देने में आनाकानी करने के दोष भी लगाए गए थे। चेतसिंह ने बड़ी नम्रता से अपने ऊपर लगाए गए झूठे आक्षेपों का उत्तर लिख भेजा। पर हेस्टिंग्ज़ तो रुपया लेने पर तुला हुआ था। वह इन सब बातों को कैसे मानता। उसने महाराज के पत्र को झूठा तथा अपमानसूचक बतला कर उन्हें तुरन्त गिरफ़्तार कर लिया और उनके पहरे पर दो पल्टनें नियुक्त करवा दीं।

संसार का यह नियम है कि जब कोई वस्तु, चाहे वह कितनी ही तुच्छ क्यों न हो, बहुत दबाई जाती है, सीमा से अधिक दबाई जाती है, तब कभी न कभी उसका प्रतिघात अवश्य होता है। बनारस की प्रजा इतने दिन से ख़ून का घूँट पिए अपने राजा पर अङ्गरेज़ सरकार द्वारा किए गए अत्याचारों को चुपचाप देख रही थी। पर अब उसका क्रोध असह्य हो गया। वह भीषण ज्वालामुखी की भाँति भड़क उठा। क्या वह अपनी आँखों के सामने अपने प्यारे देव-तुल्य राजा को एक विदेशी गवर्नर द्वारा पददलित होते देख सकती थी? कदापि नहीं। शहर में भयानक बलवा मच गया, भीषण मार-काट जारी हो गई। असंख्य अङ्गरेज़ सिपाही क़त्ल कर दिए गए और बचे-खुचों ने भाग कर अपने प्राणों की रक्षा की। पर ऐसे भयङ्कर समय में वारन हेस्टिंग्ज़ ज़रा भी विचलित नहीं हुआ। इसे यदि उसका मानसिक स्थैर्य न कहें तो और क्या? अनेक दुर्गुण होने पर भी उसमें एक बड़ा भारी गुण था। वह था यही उसका मानसिक स्थैर्य। इसी के प्रताप से उसने अनेकों कठिनाइयों का सामना करते हुए भी बड़ी योग्यता से इतने उत्तरदायित्वपूर्ण पद का कार्य भली भाँति सञ्चालन किया। उसने प्रति दिन की भाँति ही, मानो कुछ हुआ ही नहीं था, दो पत्र लिखे। उनमें से एक तो उसकी स्त्री के नाम था, जिसमें

Reports of the House of Commons, Vol VI, p. 582.

† Macaulay's *Warren Hastings*, (Ward Lock), *p. 98.*

‡ See His Narrative of the Insurrection which happened in the Zemeendary of Benares.

उसने उसे लिखा था कि वह ख़ूब सुरक्षित है, और दूसरा कम्पनी के नाम, जिसमें उन्हें बनारस सहायक सेना भेजने का आदेश किया गया था। अब कठिनाई यह थी कि पत्र लेकर जावे कौन, चारों ओर तो चेतसिंह की सेना ने घेर रक्खा था। अन्त में यह निश्चित हुआ कि कुछ स्वामिभक्त हिन्दू सिपाहियों के कानों के छिद्रों में, जो कि प्रायः बहुत बड़े हुआ करते थे और जिनमें बड़े-बड़े सोने के छल्ले पहिने जाते थे, वह पत्र लपेट कर डाल दिए जावें और फिर उन्हें भेज दिया जावे। इसमें सन्देह होने की कोई गुञ्जाइश भी नहीं थी, क्योंकि बहुधा यात्रा के समय लुट जाने के भय से लोग छल्ले उतार कर उनके स्थान में काग़ज़ अथवा और कोई चीज़ डाल लिया करते थे, ताकि कान बन्द न हो जावें। अस्तु, जिस किसी तरह दोनों पत्र निश्चित स्थान पर पहुँचा दिए गए।

इसी बीच में समय पाकर चेतसिंह निकल भागे। उन्होंने एक बार फिर हेस्टिंग्ज़ से सन्धि करने का प्रस्ताव किया, लेकिन उसने उसे अस्वीकार कर दिया। इधर एक नई घटना और घटी। एक नासमझ अङ्गरेज़ युवक ऑफ़िसर ने महाराज चेतसिंह के पड़ाव पर आक्रमण कर दिया। उसका ऐसा करना था कि सारी प्रजा उसकी सेना पर टूट पड़ी और उसे छिन्न-विच्छिन्न कर दिया। अवध की प्रजा नवाब के शिथिल शासन से अत्यन्त अप्रसन्न थी ही, उसे जब काशी के विद्रोह के समाचार मिले तो उसने भी नवाब के विरुद्ध कर देने की बग़ावत शुरू कर दी। पर अब तक हेस्टिंग्ज़ के गुप्तादेशानुसार अङ्गरेज़ों की एक बड़ी भारी सेना काशी में आ पहुँची थी। उसने शीघ्र ही विद्रोहियों का दमन करके वहाँ फिर से शान्ति स्थापित कर दी। महाराज चेतसिंह पर बग़ावत खड़ी करने तथा कृतघ्नता का दोष लगा कर उन्हें ग्वालियर भेज दिया गया। गद्दी का अधिकारी उनका भतीजा बनाया गया और उसके साथ जो नई सन्धि हुई उसके अनुसार बनारस को साढ़े बाईस लाख से बढ़ा कर चालीस लाख रुपया बङ्गाल सर्कार को कर में देने का तय पाया।

यही संक्षेप में काशी के विद्रोह की दुःखद कहानी है। समस्त कथा को पढ़ जाने पर हमारे समक्ष तीन प्रश्न उपस्थित होते हैं, जिन पर हमें पृथक-पृथक सुचारु रूप से विचार करना होगा। प्रथम तो यह कि कर के अतिरिक्त हेस्टिंग्ज़ को चेतसिंह से रुपया लेने का अधिकार था अथवा नहीं? दूसरे जब चेतसिंह ने हेस्टिंग्ज़ की प्रत्येक माँग की पूर्ति कर दी तो उन्हें क़ैद क्यों किया गया?



काशी-नरेश महाराजा चेतसिंह

हमारा अन्तिम प्रश्न है। इस बात का विवेचन करना होगा कि हेस्टिंग्ज़ का यह कार्य कहाँ तक सराहनीय कहा जा सकता है ?

यह विषय बड़ा विवादग्रस्त है कि महाराज चेतसिंह से बङ्गाल सरकार का वास्तविक सम्बन्ध क्या था। कुछ लोगों के कथनानुसार तो चेतसिंह कम्पनी के आश्रित एक साधारण ज़मीन्दार थे और समय पर धन तथा जन से कम्पनी की सहायता करना उनका कर्तव्य था। परन्तु कुछ लोग ऐसे भी हैं जो इस बात से सहमत नहीं हैं। उनका कहना है कि चेतसिंह एक स्वतन्त्र राज्य के अधिकारी थे और वारन हेस्टिंग्ज़ को उनसे कर के अतिरिक्त और कुछ लेने का कोई अधिकार नहीं था। हमें दोनों ही पक्ष के कथन ठीक नहीं जँचते। वास्तव में बात कुछ और ही थी। हम ऊपर लख आए हैं कि उस समय भारत की राजनैतिक स्थिति बहुत ही अस्थिर थी। मुग़ल साम्राज्य का ह्रास हो चुका था और चारों ओर अशान्ति तथा अराजकता की आँधी सी चल रही थी। ऐसे समय में, जबकि क़ायदे और क़ानून का अस्तित्व ही नहीं हो सकता, धूर्त और कपटी लोगों की ख़ूब बन आई थी और वे अपनी मनमानी कर रहे थे। यह बात हेस्टिंग्ज़ की पैनी दृष्टि से छिपी न रह सकी। अपना कार्य साधन करना ही उसका एक मात्र ध्येय था। चाहे उसके लिए कितनी ही धूर्तता अथवा कूटनीतिज्ञता से काम क्यों न लेना पड़े, कितने ही अकाण्ड-ताण्डव क्यों न करने पड़ें, इसकी उसे ज़रा भी परवा न थी। उसने तुरन्त अपना पथ निश्चित कर लिया। जब कभी कम्पनी को यह सिद्ध करने की आवश्यकता होती कि बङ्गाल से कर लेने का उन्हें अधिकार है, तो तुरन्त मुग़ल सम्राट की मुहर की हुई फ़र्मान दिखा दी जाती। पर इस फ़र्मान को देने वाला नाम मात्र का सम्राट अन्धा शाहआलम था, यह नहीं बतलाया जाता था। उस समय वह भारत के शाहन्शाह दिल्लीश्वर सम्राट शाहआलम हो जाते थे। परन्तु जहाँ बादशाह ने बङ्गाल से कर लेने का अधिकार प्रगट किया कि उसे तुरन्त एक नाम मात्र का सम्राट बता कर दुत्कार दिया जाता। कहने का तात्पर्य यह है कि चेतसिंह न तो ज़मीन्दार ही कहे जा सकते हैं और न स्वतन्त्र राजा ही। वास्तव में वह थे केवल वारन हेस्टिंग्ज़ के हाथ का एक खिलौना। यही कारण था कि उसने जब जैसा चाहा वैसा ही महाराज चेतसिंह से कराया। ज़मीन्दार बना कर उनसे रुपया वसूल किया और स्वतन्त्र राजा कह कर उन्हें अपनी ओर मिलाए रक्खा। किन्तु हम इसमें हेस्टिंग्ज़ का कोई बड़ा भारी दोष नहीं समझते, क्योंकि उस समय का यह एक साधारण नियम सा हो गया था। हाँ, इतना तो अवश्य कहना ही होगा कि अङ्गरेज़ी सभ्यता के "आदर्श सिद्धान्तों" की दृष्टि से उसका यह कार्य निन्दनीय था।

चेतसिंह ज़मीन्दार थे अथवा स्वतन्त्र राजा, इससे हमें कोई विशेष मतलब नहीं। निर्णय केवल इसी बात का करना है कि क्या कम्पनी ने उनसे कभी कोई ऐसी सन्धि की थी जिसके द्वारा यह सिद्ध हो जाय कि वार्षिक कर के अतिरिक्त उसे और कुछ भी लेने का अधिकार था। यदि यह सत्य है तब तो हेस्टिंग्ज़ का कोई दोष नहीं कहा जा सकता, किन्तु अगर ऐसी कोई सन्धि नहीं हुई थी तो फिर निस्सन्देह वह दोषी ठहरता है। पाश्चात्य इतिहासकार विलसन साहब लिखते हैं कि इस आदेश की कोई सन्धि नहीं हुई थी, केवल बङ्गाल कौन्सिल ने एक ऐसा प्रस्ताव पास किया था जो कि सन्धि के रूप में परिणत नहीं हुआ। उनका यह कथन ठीक नहीं है, क्योंकि यथार्थ में पाँच जुलाई सन् १७७५ को हेस्टिंग्ज़ और चेतसिंह के बीच जो सनद लिखी गई थी उसमें लिखा था :—

"While he (Chait Singh) paid his contribution, no demand shall be made upon him by the Hon'ble. Company, of any kind, or on any pretence whatsoever, nor shall any person be allowed to interfere with his authority, or to disturb the peace of his country."*

सनद के उपरोक्त उद्धृत अंश से साफ़ प्रगट होता है कि हेस्टिंग्ज़ ने महाराज से वादा किया था कि कर के अतिरिक्त वह उनसे और कुछ नहीं माँगेगा और न किसी को उनके राज्य सम्बन्धी आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने का ही अधिकार होगा। अब प्रश्न यह उठ सकता है कि वारन हेस्टिंग्ज़ ने ऐसी सन्धि की ही क्यों, जबकि

* *Selections from the Letters, Despatches and other State Papers in the Foreign Dept. of the Govt. of India 1772-85.* G. W. Forrest, *Vol. ii, p. 402.*

वह एक सर्वोच्च शासक (Paramount Power) की हैसियत में चाहे जैसी सनद महाराज से लिखा सकता था ? इसका उत्तर वह स्वयं इस प्रकार देता है :—

"Without some such an arrangement, Chait Singh will expect from every change of government, additional demands to be made upon him, and will of-course descend to all the arts of intrigue and concealment practised by other dependent Rajas."*

अब यह तो स्पष्ट सिद्ध हो गया कि ऐसी कोई शर्त सन्धि में अवश्य थी। आगे चल कर अपने ब्रिटिश भारत के इतिहास में, जिल्द ४, पृष्ठ २४६ पर विलसन साहब ने लिखा है कि सन् १७७६ में जो सनद चेतसिंह के साथ की गई थी उसमें ऐसी कोई शर्त नहीं थी, और चूँकि इस सनद द्वारा पिछली सब सनदें रद्द हो गई थीं, इसलिए रुपया लेने के मामले में सन् १७७५ के प्रस्ताव की (जोकि वास्तव में सनद ही थी, जैसा कि ऊपर सिद्ध किया जा चुका है) दोहाई देना अत्यन्त अनुचित है। पर शायद विलसन सहब को यह नहीं मालूम था कि सन् १७७६ की सनद का वह अंश, जिसके द्वारा वह सन् १७७५ की सनद का रद्द होना बतलाते हैं, चेतसिंह के ही कहने-सुनने पर, कुछ ही समय बाद, स्वयं वारन हेस्टिंग्ज़ और उसकी कौन्सिल के मेम्बरों द्वारा निकाल दिया गया था और उसमें भी सन् १७७५ की सनद का यह अंश ज्यों का त्यों बना रहा †। अतः सन् १७७५ की शर्तों पर सन् १७७६ की सनद का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। सब बातों पर ध्यान देने से यही निष्कर्ष निकलता है कि कर के अतिरिक्त हेस्टिंग्ज़ को चेतसिंह से एक फूटी कौड़ी लेने का भी अधिकार नहीं था। हाँ, यह बात दूसरी है कि सन्धि को हम एक रद्दी काग़ज़ का टुकड़ा ही समझें, जैसा कि आजकल की सभ्य जातियों का सिद्धान्त सा हो रहा है।

* *Reports from Committees of the House of Commons. Vol. V. pp. 618-19.*

† *Selections from the Letters, Despatches and other State Papers in the Foreign Dept. of the Govt. of India.* G. W. Forrest, *Vol ii, pp 512, 549, 557*

भारत के पाश्चात्य इतिहासकारों के मत से चेतसिंह पर हेस्टिंग्ज़ द्वारा किए गए अत्याचार, अत्याचार नहीं कहला सकते। वे तो केवल समयोचित कर्त्तव्य की पूर्त्ति के साधन मात्र थे। हेस्टिंग्ज़ की सी दशा में होने पर प्रत्येक मुख्य सरकार, चाहे वह भारतीय हो अथवा विजातीय, ऐसा ही करती। सेन्ट्रल गवर्नमेण्ट भी तो कोई अधिकार रखती है। जब समस्त साम्राज्य पर सङ्कट पड़ता है, उस समय स्थानीय प्रान्तों की सुख-शान्ति पर ध्यान नहीं दिया जा सकता, वरन् आवश्यकता पड़ने पर उनका बलिदान तक करना होता है। क्योंकि स्थानीय प्रान्तों की सुख-शान्ति भी तो मुख्य सरकार ही पर आश्रित है। जहाँ मुख्य सरकार का शासन शिथिल हुआ कि उसे शत्रुओं ने आ दबाया। उसी समय स्थानीय सरकारों के भाग्य का निबटारा भी हो जाता है। उन्हें परतन्त्रता की बेड़ियों में जकड़े रह कर नर्क की यन्त्रणा भोगनी पड़ती है। वह समय ऐसा ही था। मैसूर के नवाब हैदरअली और मरहठों से कम्पनी के नौकर से लगा कर मुख्य अफ़सर तक सदा चौकन्ने रहते थे। न जाने वे कब चढ़ आवें, यही ध्यान उन्हें आठों पहर सताया करता था। ऐसे समय में सेना की सुव्यवस्था के लिए रुपया न रहा तो दो-दो बलिष्ट शत्रुओं के सम्मुख वह कर ही क्या सकती थी ? इन्हीं सब कारणों से प्रेरित होकर यदि हेस्टिंग्ज़ ने चेतसिंह से येन-केन-प्रकारेण रुपया वसूल करने का प्रयत्न किया तो इसमें उसका दोष ही क्या था ? क्या कम्पनी के पैर उखाड़ डालने के बाद किसी दिन बनारस पर भी हैदरअली न आ धमकता ? प्रायः इसी प्रकार की युक्तियों द्वारा पाश्चात्य इतिहासकार हेस्टिंग्ज़ के पक्ष का समर्थन किया करते हैं। किन्तु हमें तो यह देखना ही होगा कि उनकी इन युक्तियों में कितना तथ्य है, कहाँ तक बल है।

थोड़ी देर के लिए मान लीजिए कि हेस्टिंग्ज़ ने जो कुछ किया, समय की प्रतिकूलता के कारण ही किया, तो भी नैतिक दृष्टि से उसका यह कार्य कदापि समीचीन नहीं कहा जा सकता। क्या एक बलवान मनुष्य का अपने दुर्बल पड़ोसी के प्रति ऐसा ही कर्त्तव्य है ? क्या महात्मा ईसा के इस उपदेश का कि "Do unto your neighbour as you would that he should do unto you," एक भी अक्षर सत्य तथा सर्वमान्य नहीं ? और

क्या इसी सिद्धान्त का अनुसरण करने के लिए गत महा-युद्ध में समस्त सभ्य संसार ने भाग नहीं लिया था? लोग कहेंगे, इस समय और उस समय में ज़मीन-आसमान का अन्तर है। आज समाज सभ्यता के सर्वोत्कृष्ट आसन पर विराजमान है। इस समय से उस समय की तुलना कैसी? पर मैं कहता हूँ कि महात्मा ईसा का वह वाक्य आज की ही भाँति उस समय भी समस्त संसार में शान्ति तथा आनन्द की अविरल धारा प्रवाहित करता हुआ विश्वमैत्री के पथ पर अग्रसर हो रहा था। यदि कुछ थोड़े से क्षुद्राशयों ने उसका स्वाद नहीं चक्खा, उसमें एक बार गोता नहीं लगाया, तो इससे बनता-बिगड़ता ही क्या है? उस समय भी नैतिक विचार (Morality) का आसन इतना ही ऊँचा था, जितना कि वह आज है।

केवल इतना ही नहीं। हेस्टिंग्ज़ के रुपया लेने की विधि भी गर्ह्य थी। जब सन्धि द्वारा ऐसी कोई शर्त न होने पर भी चेतसिंह बराबर उसकी इच्छानुसार उसे रुपया देते गए, उसका आदर करते गए, उसका हुक्म मानते गए, तब भी उन पर कृतघ्नता का झूठा दोष लगा कर उन्हें गद्दी से उतार देना हेस्टिंग्ज़ की वीभत्स स्वेच्छाचारिता के अतिरिक्त और कहा ही क्या जा सकता है। यदि बनारस के महाराज का यह कर्त्तव्य बतलाया जाता है कि वे अङ्गरेज़ सरकार की प्रत्येक आज्ञा का बिना जीभ हिलाए पालन करते, तो क्या प्रत्युत्तर में यह नहीं कहा जा सकता कि बनारस की प्रजा के सुख-शान्ति का प्रयत्न करना अङ्ग-रेज़ सरकार का कर्त्तव्य भी था? इतिहास साक्षी है कि उसने ठीक इसका उल्टा किया। एक सर्वमान्य राजा को गद्दी से हटा कर एक निपट निकम्मे राजा को उसने उसकी जगह स्थापित किया। अधिक लिखने की कोई आवश्यकता नहीं है। वारन हेस्टिंग्ज़ के ये शब्द स्वयं उसे सबकी दृष्टि में दोषी ठहराते हैं। सन् १७७५ में बनारस जाने पर उसने लिखा था—"The province of Chait Singh is as rich and well-cultivated a territory as any district, perhaps, of the same extent in India." किन्तु वही सन् १७८४ में बनारस के विषय में लिखता है—"I was followed and fatigued by the clamours of the discontented inhabitants and the cause of their dissatisfaction existed principally in a defective, if not corrupt and oppressive, administration."* पर इस सब से क्या? यहाँ कर्त्तव्याकर्त्तव्य की तो चर्चा ही नहीं चलाई जा सकती। इस जगह तो 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाली कहावत ही ठीक चरितार्थ होती है।

* *Selections from the Letters Despatches, etc.* G. W. Forrest, *Vol. iii, p. 1082.*

दहेज

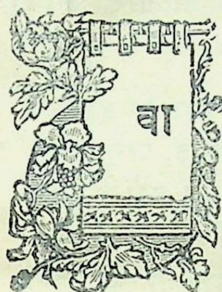
[श्री० रामावतार शुक्ल]

केते घरबारी कुल होत हैं भिखारी, और—
दम्पति-दुलारी केती क्वाँरी बिललाती हैं!
केतिक गुनागरी औ' परम सुशीला नारी,
निपट अनारिन के पाले परि जाती हैं!

जन्म भरि सेतीं केती विषम विधव-दुख,
ऊरध उसासि लै लै जीवन बिताती हैं!
परि जातीं केती 'ठहरौनी' के कुचक्र बीच,
'दायज' दवागि परि केती जरि जाती हैं!

संसार की वायु-विजयिनी वीरांगनाएँ

[श्री० रतनलाल मालवीय, बी० ए०]



युयान चलाने में स्त्रियों की अभूतपूर्व सफलता के सैकड़ों उदाहरण देख कर उन लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहता होगा जो स्त्री जाति को अबला, पराधीन और निर्बल कहा करते हैं। भारत में तो अब भी नब्बे प्रतिशत लोग ऐसे हैं जो स्त्रियों को सन्तान जनने की मशीन, खाना पकाने वाली भठियारिन और पुरुषों की सेवा करने वाली लौंडी से अधिक कुछ समझते ही नहीं। पाखण्डियों के ढकोसलों ने और भारतीय समाज के वर्तमान विषाक्त वातावरण ने स्त्रियों को इतना अपाहिज और निस्सहाय बना दिया है कि बीसवीं सदी के इस स्वतन्त्र वायुमण्डल में भी वे बिना रक्षक के घर के बाहर पैर नहीं रख सकतीं, चाहे उनका रक्षक आठ-दस बरस का एक छोटा बालक ही क्यों न हो।

हमारी ये बहिनें, जिन्हें अपने अस्तित्व का, अपने भयङ्कर पतन का ही ज्ञान नहीं, संसार की महिलाओं की अद्भुत प्रगति का हाल क्या जानें? पाश्चात्य स्त्रियों को पुरुषों की ही नाईं स्वतन्त्रता और उन्नति के पूर्ण साधन प्राप्त हैं और यह उसी का परिणाम है कि पाश्चात्य स्त्रियाँ किसी भी क्षेत्र में पुरुषों से पीछे नहीं हैं।

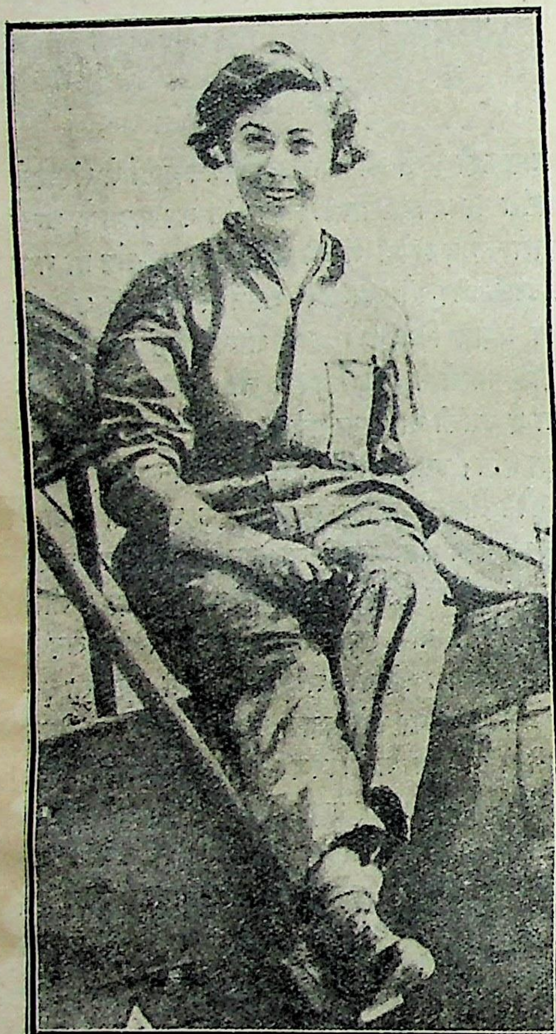
वैज्ञानिक आविष्कारों में वायुयानों का आविष्कार बिलकुल नया है। साथ ही उसमें मनुष्य के कौतूहल की शान्ति के लिए सैकड़ों सुअवसर और पराक्रम दिखाने के हज़ारों साधन मौजूद हैं। यही कारण है कि पुरुषों की तरह स्त्रियों का भी ध्यान इस ओर विशेष रूप से आकर्षित हुआ है। और थोड़े ही समय में उन्होंने आशातीत सफलता प्राप्त कर ली है। मैं इस प्रबन्ध में संसार की कुछ ऐसी ही वीर महिलाओं की कर्म-गाथा का उल्लेख करूँगा। भारतीय स्त्रियों में यदि हृदय है तो उन्हें विचार और अपने सुधार की बहुत सी सामग्री इसमें मिल जायगी। यद्यपि वायुयानों के आविष्कार का श्रेय

इङ्गलैण्ड

को प्राप्त नहीं है तो भी उसने अपने जिन गुणों से संसार के पञ्चमांश पर अपना साम्राज्य स्थापित कर रक्खा है, उन्हीं के द्वारा वह इस क्षेत्र में भी संसार में सर्व-श्रेष्ठ हो गया है। उसके वीर और पराक्रमी नर-नारियों ने ही उसे यह गौरव प्रदान किया है। एमी जॉन्सन नाम की बाइस वर्ष की कुमारी ने वायुयान पर जो अद्भुत पराक्रम दिखलाया है उसकी वीरगाथा सुने छः मास से अधिक व्यतीत न हुए होंगे; उसकी वीरमूर्ति संसार अभी तक भूला नहीं है। कौन जानता था कि लन्दन के एक ऑफ़िस में टाइपिस्ट का कार्य करके अपनी जीविका उपार्जन करने वाली 'अबला' अकेली लन्दन से ऑस्ट्रेलिया तेरह हज़ार मील उड़ जायगी? यदि हम इस निर्बल और निर्धन लड़की को आश्चर्यजनक कहें तो अत्युक्ति न होगी। वह साधन-हीन थी, किसी का उसे सहारा न था, सहारा था केवल अपनी लगन और अन्तःकरण की प्रेरणा का। जिस दिन उसने हवाई शिक्षा का स्कूल देखा था उसी दिन उसके हृदय में वायुयान-सञ्चालन की कला सीखने की दृढ़ आकांक्षा उत्पन्न हो गई थी और साथ ही उत्पन्न हुई थी, स्कूल में प्रवेश करते ही, अपनी कला से संसार को चकित और मुग्ध कर देने की प्रबल इच्छा।

एमी ने इङ्गलैण्ड से ऑस्ट्रेलिया तक उड़ कर अपनी महत्वाकांक्षा पूरी कर ली। उसने संसार को चौंधिया दिया और संसार आँखें मल-मल कर उसे देखने लगा। परन्तु क्या संसार के लोगों ने कभी यह जानने की भी इच्छा की कि एमी को यह सफलता कितनी कठिनाइयाँ और आपत्तियाँ झेलने के बाद मिली? सितम्बर सन् १९२८ में जिस समय उसे स्टेगलेन एयरोड्रोम में जाने से यह ज्ञात हुआ कि वह उस क्लब में कम ख़र्च में भर्ती हो सकती थी, उस समय वह वायुयान का क, ख, ग तक नहीं जानती थी। क्लब में प्रतिदिन एक घण्टे वायुयान की शिक्षा की फ़ीस पन्द्रह दिन के लिए एक

पौण्ड थी। एमी ने अपनी तनख़्वाह में से प्रति सप्ताह क्लब की फ़ीस के दस शिलिङ्ग बचाने के लिए अपने तैरने, टेनिस और नाच-रङ्गादि सबको तिलाञ्जलि दे दी।



संसार की सर्वश्रेष्ठ उड़ाकू महिला

मिस एमी जॉन्सन

उसी क्षण से उसने दुहरा जीवन व्यतीत करना प्रारम्भ कर दिया। दिन में ९ बजे से ५ बजे तक वह उन अगणित मिस जॉन्सनों में रहती थी जो लन्दन के धुँधले ऑफ़िसों को प्रकाशमान किया करती हैं और जिनमें उसकी कोई गणना न थी; और ६ बजे से ९ बजे तक प्रातःकाल में और ५ बजे सन्ध्या से अर्धरात्रि तक वह पुरुष-वेश में सिर से पैर तक एञ्जिन के तेल से लथपथ वायुयान की शिक्षा पाने में दत्तचित्त रहती थी। जिन लोगों ने उसे इस रूप में देखा है वे आसानी से पता लगा सकते थे कि उसका जीवन इन्हीं वायुयानों में से किसी एक को समर्पित होगा। ऐसा प्रतीत होता था कि इस कला में निपुणता प्राप्त करने के अतिरिक्त उसके जीवन का और कोई ध्येय ही नहीं है।

इसे कोई अस्वीकार नहीं कर सकता कि इङ्गलैण्ड की स्त्रियों को स्वतन्त्रता बहुत अधिक है, परन्तु इतनी स्वतन्त्रता होने पर भी उन्हें उतने साधन नहीं हैं जितने पुरुषों को। स्त्रियाँ कितनी ही योग्य क्यों न हों, उन्हें आर्थिक क्षेत्र तथा अन्य क्षेत्रों में सफलता का उतना अवसर नहीं है जितना पुरुषों को है। एमी इस भेद-भाव से बहुत जलती थी। इस सम्बन्ध में उसने एक बार अपने क्लब के एक साथी से कहा था—"क्या तुमने कभी मेरी कठिनाइयों का अनुभव किया है? क्या तुमने कभी लिङ्ग-भेद की उन रूढ़ियों का अनुभव किया है जिनके विरुद्ध मैं बग़ावत करने खड़ी हुई हूँ? मान लो हम



मिस एमी जॉन्सन यात्रा में

दोनों ने किसी उच्च पद के लिए दरख़्वास्त दी, तो क्या। तुम समझते हो कि तुमसे पहिले मैं वह पद प्राप्त कर सकूँगी, यद्यपि तुम जानते हो कि हम दोनों के पास

एक ही लैसन्स होने पर भी मैं तुम्हें हवाई दौड़ में बुरी तरह पछाड़ सकती हूँ ? यह लिङ्ग-भेद मेरी सफलता के मार्ग का सब से बड़ा रोड़ा है।" यही जलन थी जिसके कारण एमी ने पुरुष जाति को लज्जित और परास्त करने के लिए यह यात्रा प्रारम्भ की थी।

वायुयान की शिक्षा में लैसन्स प्राप्त करते ही उसने ऑस्ट्रेलिया उड़ने की ठान ली। परन्तु वही उपर्युक्त भेद-भाव यहाँ भी टाँग अड़ा कर खड़ा हो गया। बेचारी एमी जिससे सहायता माँगने गई उसीने उसे हतोत्साह करके वापस कर दिया। इसका रहस्य लोगों को अभी तक नहीं मालूम कि उड़ने के साधन उसे कैसे प्राप्त हुए। हम तो इतना ही जानते हैं कि वह एक पुरानी छोटी सी वायुयान 'जैसन' पर उड़ी थी। और इतनी तेज़ी से उड़ी थी कि उसने कैप्टेन हिङ्कलर को भी मात कर दिया। केवल लन्दन से भारत तक ५००० मील उड़ने में वह कैप्टेन हिङ्कलर से दो दिन आगे आ गई थी।

संसार की दुलारी एमी को इस विकट परीक्षा में इङ्गलैण्ड से भारत तक की यात्रा में कोई विशेष कष्ट नहीं उठाना पड़ा, परन्तु रङ्गून से डार्विन तक, जहाँ उसे ऑस्ट्रेलिया में उतरना था, उड़ने में उसे जिन-जिन भयानक और रोमाञ्चकारी आपत्तियों का सामना करना पड़ा है उनका हाल जान कर बड़े-बड़े साहसी वीरों का भी हृदय भय से थर्रा उठेगा।

बैङ्गकॉक से सिङ्गोरा तक की अपनी यात्रा का वर्णन करते हुए एमी ने स्वयं लिखा है—"मुझे जब इस बात का ज्ञान हुआ कि मैंने समुद्र का किनारा छोड़ दिया है, जो मेरी यात्रा का मुख्य मार्ग है, और बाढ़ के कारण पानी से भरे हुए खेतों के ऊपर से उड़ रही हूँ तो मेरी निराशा का ठिकाना न रहा। इस समय मेरा मुख्य कार्य समुद्र का किनारा ढूँढ़ना था। परन्तु एक ओर मूसलाधार वर्षा और दूसरी ओर भयङ्कर तूफ़ान, दोनों में से कोई एक क्षण के लिए भी बन्द होने का नाम न लेता था। मैं पथ भूल कर कितने घण्टों तक भटकती रही, इसका मैं अनुमान नहीं लगा सकती। मैं जीवन से हाथ धो चुकी थी। मेरी आशा थी तो केवल मेरे पथ-प्रदर्शक यन्त्र और नक़्शे तथा कम्पास पर थी। इन्हीं के सहारे मैं समुद्र का किनारा ढूँढ़ सकती थी। और समुद्र का किनारा ही मेरे जीवन का आधार था। जिस समय पानी बन्द हुआ या जिस समय मैं ही उसके पार निकल गई उस समय मैं सिङ्गोरा से केवल ४० मील की दूरी पर थी।"

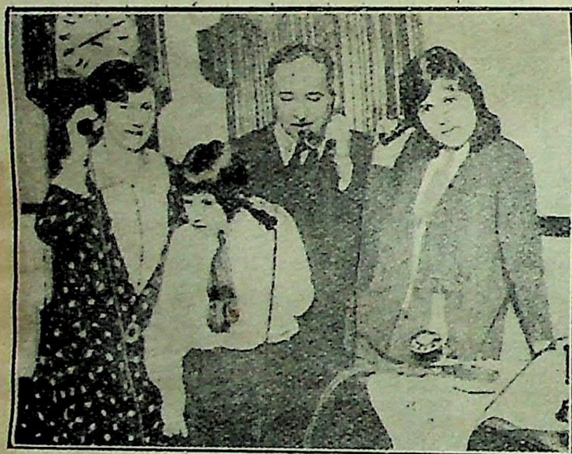


हवाई जहाज़ों की दौड़ में इङ्गलैण्ड का मस्तक ऊँचा करने वाली मिस एमी जॉन्सन की पाँच प्रतिकृति

यही नहीं, इस भीषण यात्रा में एमी को कहीं १६,००० फ़ीट की ऊँचाई पर उड़ना पड़ा तो कहीं उसका वायुयान मीलों तक समुद्र की लहरों से केवल ६ फ़ीट की ऊँचाई पर उड़ता रहा था। न मालूम कौन सी लहर उछल कर उसे अपने अङ्क में छिपा लेती। एक बार तो ज़मीन पर उतरते समय उसकी 'मॉथ' (जो 'जैसन' का ही दूसरा नाम है) किसी अज्ञात खाई में जा गिरी थी और टक्कर से उसके पङ्खे चूर-चूर हो गए थे। इन विपत्तियों के झेलने के उपरान्त ही उसे ऑस्ट्रेलिया के समुद्र-तट के

दर्शन हुए थे। जब उसने पहिले पहिल समुद्र का किनारा देखा, तब वह 'ख़ुशी के मारे जहाज़ पर ही उछल पड़ी थी और पागल सी हो गई थी।' अन्त में जब वह कुशल-पूर्वक डार्विन पहुँच गई, जो उसकी यात्रा का अन्तिम लक्ष्य था, तब संसार ने सन्तोष की एक ठण्डी साँस ली।

ऑस्ट्रेलिया के लाखों दर्शकों ने उसे अपनी 'रानी' बना कर अपने मस्तक पर बिठाया। जब वह इङ्गलैण्ड वापस पहुँची, तब उसका जो सम्मान हुआ वह एक रानी के सम्मान से किसी प्रकार कम नहीं था। किसी समिति ने उसके स्वागत में भोज दिया, तो किसी दूसरी समिति



मिस एमी जॉन्सन के माता-पिता और बहिनें लन्दन में बैठे हुए टेलीफ़ोन द्वारा ऑस्ट्रेलिया में एमी से बातें कर रही हैं और उसकी अद्भुत सफलता के वर्णन सुन रही हैं।

ने मान-पत्र; एक कम्पनी ने उसे मोटरकार पुरस्कार में दी, तो दूसरी ने हज़ारों पौण्ड की थैली उस पर न्योछावर की। स्वयं सम्राट ने एमी को 'कमाण्डर ऑफ़ दी ब्रिटिश एम्पायर' की उपाधि से विभूषित किया है। इस उपाधि का सम्मान पुरुषों की 'नाइट' की उपाधि से कम नहीं है। संसार में आज शायद ही ऐसा कोई पत्र हो जिसने एमी की प्रशंसा के गीत न गाए हों। अब जब कभी इस 'निर्बल टाइपिस्ट' के विवाह की चर्चा उठती है तो सभी यही कहते हैं कि उसका पाणिग्रहण किसी लॉर्ड के साथ ही होना चाहिए। संसार एमी के जैसे पराक्रमों की आशा सन् २००० से पहिले न कर रहा था।

एमी जॉन्सन के पहले भी इङ्गलैण्ड की रमणियाँ अपनी अतुल शारीरिक और मानसिक शक्तियों का परिचय दे चुकी हैं। बेडफ़ोर्ड की डचेज़ ने लन्दन से केपटाउन उड़ कर और वहाँ से अल्पकाल में ही वापस आकर और लेडी हीथ ने अमेरिका उड़ कर संसार को चकित कर दिया है। इङ्गलैण्ड की इन वैभवशालिनी और सम्माननीय स्त्रियों के उदाहरण से क्या भारत के धनिक परिवारों की स्त्रियाँ कुछ शिक्षा ग्रहण करेंगी?

कुछ ही समय पहले की बात है, इङ्गलैण्ड के चारों



मिस विनिफ़्रेड जॉयस ड्रिङ्कवाटर

यह सत्रह वर्षीया कुमारी संसार की सब से कम उम्र वाली एयर पाइलट है।

ओर हवाई जहाज़ों की दौड़ के लिए सम्राट ने जो 'कप' पुरस्कार स्वरूप देना निर्धारित किया था वह वहाँ की एक रमणी—कुमारी विनीफ़्रैड ब्राउन—ने पुरुष उड़ाकुओं को परास्त कर जीता था। इस दौड़ में ७२ पुरुष और ६ महिलाएँ सम्मिलित हुई थीं, उनमें से चार महिलाओं को प्रथम दस उड़ाकों में स्थान मिला था। वायु पर विजय प्राप्त करने में स्त्रियों ने जो सफलता प्राप्त की है उसका इससे बढ़ कर उज्ज्वल उदाहरण न मिलेगा। इङ्गलैण्ड को अपनी कुमारी स्पूनर के सम्बन्ध में तो यहाँ

तक दावा है कि उससे दक्ष स्त्री उड़ाका आज संसार में कोई है ही नहीं।

एमी ने पाश्चात्य देशों की स्त्रियों में क्रान्ति उत्पन्न कर दी है। बहुत सी स्त्रियाँ तो एमी जैसे साहसपूर्ण कार्यों को करने के लिए छटपटाने सी लगी हैं। एमी की ही देखा-देखी अब इङ्गलैण्ड की मोटर-दौड़ में विजय प्राप्त करने वाली श्रीमती विक्टर ब्रूस ने भी इङ्गलैण्ड से टोकियो (जापान) तक ११,००० मील १५ दिनों में उड़ने का विचार किया है। इस लेख के प्रकाशित होने के पहले ही शायद वह अपनी यात्रा पूरी भी कर चुकी रहेंगी। हवाई जहाज़ की केवल छः दिन की शिक्षा के बाद इतनी लम्बी यात्रा करना दुस्साहस नहीं तो क्या है? अब हम पाठकों को अमेरिका की कुछ वीराङ्गनाओं का परिचय देना चाहते हैं, जिन्होंने वायु पर विजय प्राप्त की है। लोग अभी भूले न होंगे, एक पच्चीस वर्षीय युवक चार्ल्स लिण्डबर्ग ने कई दिन और रात लगातार अकेले अमेरिका से पेरिस तक उड़ कर संसार को चकित कर दिया था। लिण्डबर्ग के इस अद्भुत पराक्रम से संसार भर की आँखें उस पर लग गईं। और अमेरिका की सहस्रों ऐश्वर्यशालिनी सुन्दरियों के हृदय उससे विवाह करने के लिए मचल उठे! परन्तु लिण्डबर्ग ने संसार के इस महा समृद्ध और सर्वाधिक वैभवपूर्ण देश के एक प्रशान्त भाग में जिस रमणी का पाणिग्रहण किया उसकी मनोवृत्ति लिण्डबर्ग के ही साँचे में ढली थी। श्रीमती लिण्डबर्ग अमेरिका की सर्वप्रथम महिला थीं, जिन्होंने हवाई उड़ान में सफलता प्राप्त कर लाइसेन्स लिया था। उनकी इस सफलता ने वहाँ की युवतियों में एक नई लालसा का सूत्रपात कर दिया है; वे वायु पर विजय प्राप्त करने में पुरुष से बाज़ी मारने के लिए उत्सुक हो गई हैं।



मिस स्पूनर

आपके लिए अङ्गरेज़ जाति का यह दावा है कि आपसे बढ़ कर दक्ष उड़ाका संसार में कोई है ही नहीं।

उनकी यह लालसा और उत्सुकता दिन प्रति दिन बढ़ती ही जाती है और उसका परिणाम यह हुआ है कि सैकड़ों क्लबों के अतिरिक्त, अमेरिका के हवाई शिक्षा के विशारद श्री० रोलैण्ड एच० स्पाउल्डिङ्ग के नेतृत्व में न्यूयॉर्क विश्वविद्यालय में १० सितम्बर सन् १९२९ ई० से महिलाओं की हवाई शिक्षा के लिए एक अलग स्कूल की भी स्थापना हो गई है। इस स्कूल के सिवाय हाउस्टन, केन्सस और मिन्नियापोलिस आदि शहरों में भी स्त्रियों को हवाई शिक्षा देने का प्रबन्ध किया गया है।

अभी हाल ही में एक उड़ाकू स्त्री अपने देश के दक्षिणी भाग की सैर करने निकली थी। जिस समय वह देहात के एक मैदान में उतरी, वहाँ के गाँव की सैकड़ों युवतियों ने उसे घेर लिया और उनमें से प्रायः सभी ने हवाई जहाज़ में उड़ना सीखने की हार्दिक इच्छा प्रकट की। इस साधारण सी घटना से वहाँ की स्त्रियों की मनोवृत्ति का पता चलता है। दिन प्रति दिन इस क्षेत्र में स्त्रियों की

संख्या बढ़ रही है। अमेरिका के संयुक्त राज्य में २०३ महिलाएँ ऐसी हैं जिन्होंने इस साल के अगस्त माह के पहिले ही हवाई जहाज़ के लाइसेन्स प्राप्त कर लिए हैं।

ये महिलाएँ केवल अपने आनन्द के लिए, सैर-सपाटे के लिए, अथवा केवल पराक्रम दिखाने के लिए ही उड़ना नहीं सीखतीं। पाश्चात्य सभ्य देशों में पुरुषों की नाईं



अमेरिका की सर्वप्रथम उड़ाकू महिला
मिसेज़ चार्ल्स ए० लिण्डबर्ग
अपने पति से हवाई जहाज़ चलाना सीख रही हैं।

स्त्रियों में भी स्वावलम्बन की मात्रा बहुत अधिक है और वे हवाई जहाज़ को अपनी जीविका का साधन बनाना चाहती हैं। उनके लिए इस क्षेत्र में स्थान भी बहुत है। व्यापारिक विभागों में पाइलट (उड़ाकू) का काम, हवाई जहाज़ों को बेचने वाली कम्पनियों के अधीन जहाज़ और उनके पुर्ज़े बेचने का काम, हवाई जहाज़ सम्बन्धी साहित्य बेचने का काम तथा हवाई बन्दर के होटलों का काम करके और हवाई जहाज़ सम्बन्धी पत्रों की सम्पादिका बन कर तथा हवाई जहाज़ों के क्लबों में शिक्षिका बन कर बहुत सी स्त्रियाँ जीविका कमा सकती हैं। इसमें सन्देह नहीं कि हवाई जहाज़ों का आविष्कार अभी नया है। इसी कारण अमेरिका की स्त्रियाँ हवाई जहाज़ सम्बन्धी ऊँचे पदों पर काम करने का स्वप्न देखा करती हैं। और आए दिन वे अपने पराक्रमों में एक दूसरे से बाज़ी मार ले जाने का प्रयास करती हैं। वहाँ ऐसी महिलाओं की कमी नहीं है जो वायुयान से हज़ारों मील की यात्रा करती हैं और वायु में वायुयान से बड़े-बड़े आश्चर्यजनक खेल खेलती हैं। वह दिन भी दूर नहीं जब वायुयान उनकी मामूली खिलवाड़ की चीज़ हो जायगा।

इङ्गलैण्ड और अमेरिका की भाँति फ़्रान्स, जर्मनी,



जर्मनी की सब से प्रसिद्ध उड़ाकू लड़की
फ्रॉलीन जेनी लिण्ड
एक उड़ान में जर्मनी की राजधानी बर्लिन से केपटाउन जाने की तैयारी कर रही है।

इटली आदि देशों में भी ऐसी स्त्रियों की कमी नहीं है, जिन्होंने वायु पर विजय प्राप्त करने में अद्भुत पराक्रम दिखाया है। संसार की वर्तमान वैज्ञानिक उन्नति में

जर्मनी

का ख़ासा हाथ है। विशेषकर कल-पुर्ज़ों और मशीनों के काम में वह सर्व-श्रेष्ठ माना जाता है। वायुयानों की उन्नति में भी वहाँ के स्त्री-पुरुषों का भाग महत्वपूर्ण है। वहाँ की स्त्रियाँ किसी क्षेत्र में अन्य सभ्य देशों की स्त्रियों से पीछे नहीं हैं। दूसरे देशों की नाईं जर्मनी की स्त्रियों ने हवाई विद्या में भी ख़ूब उन्नति कर ली है। और दिन प्रति दिन इस क्षेत्र में उनकी संख्या बढ़ती ही जाती है। इङ्गलैण्ड को यदि अपनी एमी जॉन्सन का गर्व है तो जर्मनी भी अपनी 'फ़ालीन जेनीलिण्ड' पर फूला नहीं समाता। एमी को इस प्रकार इङ्गलैण्ड का गौरव बढ़ाते देख कर फ़ालीन जेनी की भी आकांक्षा जर्मनी का गौरव बढ़ाने की हुई है। जर्मनी की यह वीराङ्गना शीघ्र ही जर्मनी की राजधानी बर्लिन से उड़ कर केपटाउन जाने की तैयारी में लगी हुई है। ईश्वर उसे सफलता और चिरायु दें। संसार की ये वीराङ्गनाएँ केवल अपने देश की ही सम्पत्ति नहीं हैं, वे संसार के स्त्री-समाज का गौरव और उनकी पथ-प्रदर्शिकाएँ हैं।

संसार के अन्य देश जहाँ इस प्रकार उन्नति कर रहे हैं, वहाँ हमारा देश

भारत

बीसवीं शताब्दी के इस स्वतन्त्र वायु-मण्डल में भी पराधीन है। उसका निज का अस्तित्व नहीं है, और जब तक उसे अपने मस्तिष्क से सोचने और अपने पैरों से चलने का अवसर न मिलेगा, वह किसी भी क्षेत्र में अन्य स्वतन्त्र देशों का मुक़ाबला नहीं कर सकता। परन्तु इतनी कठिनाइयों के होते हुए भी भारत अपनी सीमित स्वतन्त्रता का उपयोग ख़ूब अच्छी तरह कर रहा है। भारत के कई बड़े-बड़े शहरों में हवाई शिक्षा के क्लब खुल गए हैं और युवकगण उत्साहपूर्वक उड़ना सीख रहे हैं। इञ्जीनियर और चावला जैसे कुछ साहसी युवकों ने इङ्गलैण्ड से भारत हवाई जहाज़ में उड़ कर अपनी योग्यता का परिचय भी दिया है। परन्तु कुछ तो अज्ञान, कुरीतियों, रूढ़ियों और सामाजिक अत्याचारों के कारण तथा कुछ असुविधाओं के कारण भारत के महिला-मण्डल ने कोई आशाजनक सफलता अब तक नहीं दिखाई। भारत की भी कुछ वीर युवतियों ने हवाई शिक्षा के सर्टिफ़िकेट अवश्य ले लिए हैं, परन्तु उनकी किसी सफल यात्रा के समाचार हमें अभी तक नहीं मिले। हाँ, कूच-विहार की महारानी इङ्गलैण्ड से भारत हवाई जहाज़ में अवश्य आई थीं; और उनका तथा उनकी सुपुत्री का ध्यान इस ओर आकर्षित भी हुआ है। एमी जॉन्सन के उदाहरण से उत्साहित होकर भारत की युवतियों को भी वायुयानों के क्लबों और स्कूलों में यह कला सीखना आरम्भ कर देना चाहिए। उड़ना सीखने के उपरान्त उन्हें यह मालूम हो जायगा कि वायुयान आत्म-विकास का सब से अच्छा साधन है। हवा के रुख़ से तो ऐसा प्रतीत होता है कि वह दिन दूर नहीं है, जब भारत-माता भी एमी जॉन्सनों को अपनी गोद में खिलावेगी।

स्वागत

[मुक्त]

तुम बढ़ते ही चले ! नहीं कुछ कष्टों का अनुमान किया।
बाँके वीर सिपाही, यह तूने कैसा अभिमान किया !!

आ, चल लौट, किन्तु यह किसकी लाश ? अरे, अरमानों की।
भक्त पुजारी लिए जा रहा है अञ्जलि बलिदानों की ॥

स्वागत है ! आ मृत्यु !! यहाँ पर तेरा अभिनन्दन होगा।
धन्य ! धन्य !! तुझको पाकर विकसित मेरा जीवन होगा ॥



उद्भ्रान्त आलाप

[श्री० महातम सिंह चौहान]



वह पराक्रम ! अहा ! वह पराक्रम ! वह शक्ति ! क्योंकर कहूँ, कैसे कहूँ कि वह पराक्रम कैसा था ? स्मरण आते ही वक्षस्थल विदीर्ण होने लगता है, मस्तक लट्टू की नाईं नाचने लगता है, चक्षु-अस्थि-कूप एवं श्रवण-रन्ध्र से विद्युत की ज्वालामयी लपटें निकलने लगती हैं। तब क्योंकर बताऊँ कि वह पराक्रम कैसा था ?

वह न तो स्फुलिङ्ग सदृश्य था, न निदाघ की उग्र रवि-रश्मि का सा था, न तो चक्रि के अरि-विनाशक चक्र जैसा, न सुरेन्द्र के अक्षय वज्र जैसा था और न था अङ्गद के अचल तथा पराक्रमी पद के समान ।

वह मदन महीपति के पुष्प-बाण से भी गुरुतर था, वह उन्मुक्त वारि-धारा से भी अधिक शक्तिशाली, कन्दर्प के दिग्विजयी शङ्ख-ध्वनि से भी अधिक तेजस्वी एवं शब्दमय था, वह प्रशान्त सिन्धु से भी गम्भीर और मेघमाला का समुद्भिन्न-कर्ता, परम देदीप्यमान, त्रिभुवन-विजयी सूर्यदेव से भी बढ़ कर तेजपूर्ण था ।

मेधावी तथा मनीषी महापुरुषों के माथे में ऐसा मस्तिष्क नहीं, लेखकों की लेखनी में वह शक्ति नहीं, भाषा में वैसा शब्द नहीं, नरों में वैसी चिन्ताशक्ति नहीं, कवि की स्वप्नमयी कल्पना में वह कवित्व नहीं, वाणी के ऐसी वाणी नहीं, जो उसकी उपमा ढूँढ़ सके। जगत में उसकी उपमा कोई योग्य पदार्थ, कोई महान वैभव, कोई उन्नति, सुख, शान्ति, बल, वीरत्व, कुछ भी नहीं दिखलाई पड़ता। तब कैसे कहूँ कि वह पराक्रम कैसा था ? हाय ! वह पराक्रम ! क्या उसे एक बार और नहीं देख सकूँगा ?

हे परमेश्वर ! मैं और कुछ भी नहीं चाहता, चाहता हूँ केवल एक बार देखना उस महान पराक्रम को, वह घोर प्रलयङ्कर पराक्रम, जिससे मैं अपने अरिगणों से बदला ले सकूँ ।

वह देखो ! हमारी पुकार पर, हमारी व्याकुलता पर, हमारी उन्मत्तता और प्रलाप पर सूर्यदेव हँस रहे हैं। हँस लो ! तुम भी अपनी आरत सन्तान पर हँस लो, अपना अरमान मिटा लो, अपनी उत्कट अभिलाषा की पूर्ति कर लो, नहीं तो ऐसा सुअवसर प्राप्त नहीं होगा ! अल्पकाल के अन्तर ही उस महापराक्रम के सामने तुम्हारा तेज भी फीका पड़ जायगा। पर हे दिवाकर ! यह तो बताओ कि तुम हँसते क्यों हो ? हमारी किस दुर्दशा पर हँसते हो ? हाँ, जाना, हमारी दुर्बलता, हमारे अज्ञान, हमारी अवनति, हमारे पारस्परिक बैर, द्वेष, ईर्ष्या, जलन और डाह पर हँसते हो। पर याद रखना, हमने इन राक्षसों पर, इन क्रूर मदमत्त राक्षसों पर विजय प्राप्त कर ली है। अब ये दुष्ट राक्षस हमारे उन्नति-मार्ग में कण्टक नहीं बन सकते। अब हम जीवन-संग्राम में विजयी होंगे।

आज विश्व के कोने-कोने से "अग्रसर होओ, अग्रसर होओ" का तुमुल घोष सुनाई दे रहा है। इस युग में इस घोष का शोभन स्वन भी कुछ भीषण रूप धारण कर रहा है। निस्सन्देह जीवन-संग्राम महाभीषण है। एक मनुष्य दूसरे मनुष्य का गला घोंट रहा है, एक जाति दूसरी जाति को निगलना चाहती है। प्रलयकाल की उत्ताल तरङ्गों की तरह स्वार्थ-सागर अपनी आनन्दोर्मियों द्वारा क्षितितल को परिप्लावित कर रहा है। स्वार्थ की मात्रा वर्षा-

कालीन सरसी के समान अति वेग से बढ़ती हुई समस्त मेदिनी को सलिल-सिक्ता बना रही है। रक्तपिपासुओं की अधिकता से संसार की शान्ति क्षण-क्षण में भङ्ग हो रही है। दिशाओं में संग्राम का भीषण कोलाहल मचा हुआ है। शान्ति के लिए विश्व-जनता छटपटा रही है। पर शान्ति, जो तृषा-पीड़ित के प्राणों में सुधा उडेलती है, वह शान्ति कहाँ ?

कुछ भी समझ में नहीं आता कि इस समय क्या किया जाय ? किस उपाय का उपयोग किया जाय ? क्या उत्तर है, क्या यत्न है ? परन्तु विह्वलता से, आत्म-विस्मृत होने से काम न चलेगा। धैर्य धारण करो। सोचने की शक्ति का अवलम्बन करो। उपाय पाओगे, अवश्य पाओगे। उत्तर मिलेगा, निश्चय मिलेगा। उठो, जागो, उद्यत हो, पराक्रम दिखाओ, यही एक उत्तर है। जीवन का, जागृति का, नवयुग और क्रान्ति का यही महासन्देश है।

अब उठो। उठो और देखो कि संसार में हमारी क्या स्थिति है ? संसार की दौड़ में हम कौन सा भाग ले सकते हैं ? इसकी मीमांसा करने के लिए पुनः एक बार उठो। राजपूतों की वीरता का ध्यान कर उठो, मरहठों की प्रचण्डता एवं गम्भीरता की याद कर, सिक्खों के बाँकेपन और पठानों की तलवार का स्मरण कर उठो, और सफलता, उन्नति, कृतकार्यता और स्वतन्त्रता को हाथों-हाथ बँटा लो।

शीघ्र उठो, अब सोने का समय नहीं। वह देखो ! कनक-किरीटिणी उषा सज-धज कर कभी से रङ्गमञ्च पर आ गई है। तम-तोम कटे हुए पतङ्ग की भाँति कितनी दूर निकलता हुआ चला गया। काल अपने पुराने कलुषित अन्धपरम्परागत जराजीर्ण कलेवर को बदल रहा है। पृथ्वीतल से द्वेष, ईर्ष्या, क्रोध, पशुबल, स्वेच्छाचार का निरङ्कुश राज्य उठ रहा है। सभी अपने-अपने स्वत्व के हेतु, अपने नैसर्गिक, अधिकारों के लिए मर मिटने को प्रस्तुत हैं। क्या तुम अकेले पीछे पड़े रहोगे ? तुम भी आत्मोन्नति के लिए उठ खड़े होवो। मित्रों के कन्धे से कन्धा भिड़ा कर, अरियों के सीने से सीना अड़ा कर, हिमाञ्चल-शिखर की भाँति सर्वोच्च हो जाओ।

परिवर्तनशील विश्व में सभी वस्तुओं का परिवर्तन हो रहा है, सारा संसार बदल रहा है। टर्की बदल गया, अफ़ीमची चीन जाग उठा, ईजिप्ट की काया-पलट हो गई, अफ्रिका के हबशियों में चेतना का सञ्चार हो गया। पर तुम ? तुम क्या सोते ही रहोगे ? वह महान पराक्रम, जिसके सामने समस्त संसार ने एक दिन मस्तक झुकाया था—भय से नहीं प्रेम से—क्या उसे पुनः प्रगट न करोगे ? क्या संसार के मानस क्षितिज से अज्ञान के काले बादलों को काट कर पुनः ज्ञान-सूर्य का जीवनदायी प्रकाश न फैलाओगे ? वह शक्ति, वह शौर्य, वह विशाल पराक्रम, क्या पुनः प्रगट न करोगे ?

वीर ! उठो। बहुत सो चुके, और कब तक सोते रहोगे ? कब तक "भीरु भारतीय" का नाम चरितार्थ करते रहोगे ? कब तक पारस्परिक ईर्ष्या, द्वेष, बैर, कलह आदि अपयशों के कलङ्क को अपने शुभ चरित्र पर चढ़े रहने दोगे ? कब तक अपने पूर्व पुरुषों की कीर्ति, पराक्रम और मान को अपनी इस अधम कायरता से कलङ्कित करते रहोगे, वीर !

अनल-ताप से सन्तप्त होने पर ही काञ्चन की, सान पर चढ़ाए जाने पर ही हीरा की, महाभयङ्कर विपत्ति में ही पुरुष की परीक्षा होती है। क्या तुम इस परीक्षा में खरे न उतरोगे, अपने पूर्वजों की अमरकीर्ति के उत्तराधिकारी होने योग्य अपने को प्रमाणित न करोगे ? वीर ! वीरश्रेष्ठ ! उठो। उठो और अपना वह पराक्रम, वह महान दुर्द्धर्ष पराक्रम प्रगट करो, जिसके समक्ष उन्मत्त राक्षसों का दल विनय से मस्तक झुका देता है, जिसके समीप परपीड़क अत्याचारियों का आतङ्क ध्वंस हो जाता है।

आज मेदिनी पर मदमत्त राक्षसों का निरङ्कुश नृत्य हो रहा है। क्या वे तुम पर अत्याचार कर रहे हैं? क्या उनके बन्धन-पाश से मुक्त होना चाहते हो, उनके प्रमादी कर्मचारियों की क्षुद्र लिप्सा से त्राण पाना चाहते हो, उनकी अनिर्वचनीय प्रवञ्चना से दूर रहना चाहते हो, उनके कुटिल षड्यन्त्रों, उनकी कुत्सित मनोवृत्ति, उनके घातक सङ्कल्पों से आत्म-रक्षा करना चाहते हो? तो उठो। वीर! उठो। आज पुनः अपना वह पराक्रम दिखाओ, सत्य के लिए मर मिटने का, सेवा के लिए बलिदान हो जाने का, मानव-समाज के मङ्गल के लिए हँसते-हँसते मृत्यु को आलिङ्गन कर लेने का पराक्रम दिखाओ। इस विराट पराक्रम, इस प्रचण्ड तेज के सामने कौन ठहर सकता है? विजय, तुम्हारी विजय अनिवार्य है। वीर! उठो, पराक्रम दिखाओ!

अन्तर्वेदना

[श्रीयुत दिवाकर प्रसाद]

(१)

व्यथाएँ कितनी मैंने सहीं;
बिछाए उनके पथ में फूल।
पुलक कर गले लगाना दूर,
न देखा इधर उन्होंने भूल॥

(२)

विहँस कर मलयानिल ने आज—
सुनाया है यह शुभ सन्देश।
—'अरे पगली! उठ, कर शृङ्गार,
तुम्हारे आते हैं हृदयेश'॥

(३)

अरे! वे आए कब चुपचाप,
न जाने फिर कब किया प्रयाण।
हाय! बैठी थी मैं निश्चिन्त,
जान उनको निश्छल अनजान॥

(४)

रिझाने जाती उनको कभी,
कली-सा ले यह रूप अनूप।
छेड़ने आ जाते हैं मुझे—
चपल मलयानिल का ले रूप॥

(५)

जलज-अल-वैमनस्य का खेल
खेलते बीते कितने वर्ष!
उलझती ही जाती यह गाँठ,
कहाँ है निठुर विश्व में हर्ष?
अरे निर्दय! ये थके निदान—
बिलखते जाएँगे क्या प्रान?



उतारेगा अवसर पा कभी,
पूर्व-पुरुषों के ऋण का भार !
सभी कर देगा पूर्ण अभीष्ट,
इसीसे करते अमित दुलार !!

जिसके उन्नतिशील हुए से
होता है स्वदेश-उद्धार !
जिसके कारण माता पाती
धन्यवाद है सौ-सौ बार !!

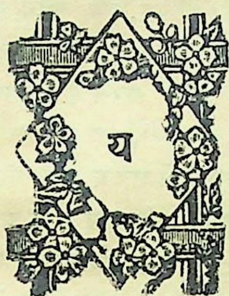
सुघड़ माताओं के भाग्यशाली लाल

प्रभु ईसा की क्षमाशीलता, नबी मुहम्मद का विश्वास !
जीव-दया जिनवर गौतम की, आओ देखो इनके पास !!



अध्यात्म-तत्व अथवा मानव-धर्म

[श्रीमत्स्वामी प्रज्ञानपाद]



ह आश्चर्यपूर्ण धृष्टता मालूम होगी कि मानव के सामने, मानव-समुदाय के सामने, मानव धर्म की चर्चा कैसी? हम सभी मानव हैं, अपना धर्म अवश्य जानते हैं, फिर इसे बताने की क्या ज़रूरत? परन्तु इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। आश्चर्य की बात यह है कि हम लोग मानव होते हुए भी अपना धर्म नहीं जानते। हमारा धर्म हमारे भीतर है, वह हमारे सब से समीप है, हम उसके साथ सर्वापेक्षा अधिक परिचित हैं, फिर भी उसका ज्ञान नहीं रखते। यही आश्चर्य है। वास्तव में हम अपना धर्म जानते हुए भी नहीं जानते। इसीलिए इस विषय में कुछ कहने की आवश्यकता है।

मानव धर्म मानव के इतना समीप है कि उससे बढ़ कर अन्य किसी पदार्थ के साथ मानव का सामीप्य हो ही नहीं सकता। हमारा धर्म हमसे अत्यन्त निकट है, इतना निकट कि हम उसे भूल गए हैं। मनुष्य की बुद्धि इतनी विशाल, इतनी जटिल हो गई है कि अत्यन्त सरल बातों को समझना उसके लिए मुश्किल हो गया है; नज़दीक की चीज़ को वह देख ही नहीं सकता, उसकी दृष्टि जब पड़ती है तो दूर पर। आज विश्व-ब्रह्माण्ड का कौन सा रहस्य मनुष्य से छिपा हुआ है? वह हवा में उड़ता है, समुद्र में डूब कर हज़ारों मील का चक्कर काट आता है, स्थल पर उसकी गति को रुद्ध करनेवाली कोई शक्ति रह ही नहीं गई। मनुष्य ने हिमालय की चोटियों पर चढ़ कर अपनी विजय-पताका फहराई है, ध्रुव-प्रदेशों का कोना-कोना छान डाला है; अणु-परमाणु से लेकर अरबों-खरबों मील और उससे भी अधिक दूरस्थ ताराओं का ज्ञान उसे हस्तामलक है। परन्तु अपने आपको, अपने धर्म को, जिससे मनुष्य एक पल-विपल के लिए भी पृथक नहीं हो सकता, वह नहीं जानता। मनुष्य की बुद्धि इतनी जटिल हो गई है।

यहाँ एक कहानी याद आती है। एक वैयाकरण पण्डित जी कहीं जा रहे थे। रास्ते में एक जङ्गल पड़ता था। लोगों ने कहा—"पण्डित जी, जङ्गल की ओर से न जाइए, वहाँ बाघ रहते हैं।" पण्डित जी ने कहा—"बाघ? शुद्ध शब्द तो व्याघ्र है न? व्याघ्र से हमें क्या डर? व्याघ्र शब्द 'वि+आ+घ्रा' से बना है, अर्थात जो विशेष रीति से सूँघे वह व्याघ्र। यही न होगा कि वह मुझे विशेष रीति से सूँघेगा? सूँघा करे, हमारी क्या हानि?" इस तरह 'व्याघ्र' शब्द की व्युत्पत्ति के फेर में पड़ कर पण्डित जी ने बाघ के असल स्वरूप को भुला दिया। वह जङ्गल में गए, उन्हें एक भयानक व्याघ्र ने आ घेरा। पण्डित जी "बाघ-बाघ" चिल्लाने लगे। गाँव वाले दौड़े आए और किसी तरह पण्डित जी को व्याघ्र के पञ्जे से छुड़ा लिया। गाँव वाले बोले—"पण्डित जी, कहिए हम लोगों ने कहा था न कि जङ्गल में बाघ है? आपने हमारी बात न सुनी।" पण्डित जी ने उत्तर दिया—"हाँ, आप लोगों ने कहा तो ज़रूर था, पर मुझे क्या मालूम कि बाघ को ही व्याघ्र कहते हैं।" पण्डित जी की बुद्धि इतनी जटिल हो गई थी कि अपनी पण्डिताई के मारे वे इस सहज बात को न समझ सके।

मानव समाज का भी ठीक यही हाल है। लोगों की बुद्धि बहुत बढ़ गई है, इतनी जटिल हो गई है कि छोटी-छोटी साधारण बातें अब उनकी समझ में आने योग्य न रहीं। वे विश्व के सारे मर्म जान रहे हैं; आकाश और पृथ्वी पर की कोई बात उनसे छिपी नहीं रही। पर अपने ही भीतर रहने वाले अपने धर्म को वे नहीं जान सके। उनका धर्म उनके सब से समीप है, इसीलिए वे उसकी उपेक्षा करते हैं, उसे सोचने, समझने, जानने की चेष्टा नहीं करते।

मानव का धर्म मानव के भीतर सदा विद्यमान है; उसे छोड़ कर मानव, मानव नहीं रह सकता। कोई वस्तु अपने धर्म को छोड़ कर पुनः वही वस्तु बनी रहे, यह असम्भव है। धर्म वह पदार्थ है जिसके बिना धर्मी न रह

सके, जिसके अभाव में धर्मी का अस्तित्व असम्भव हो जाय। जिस विशिष्ट गुण के कारण किसी वस्तु का अस्तित्व रहता है, जिस विशेष पदार्थ के कारण किसी जीव की सत्ता, किसी प्राणी का जीवन सम्भव है, वही विशिष्ट गुण, वही विशेष पदार्थ उस वस्तु का धर्म, उस जीव का धर्म, उस प्राणी का धर्म है। अग्नि का धर्म दाहन-शक्ति है, जल का धर्म तरलता, सुन्दरी का सौन्दर्य, रोगी का रोग, लम्पट का लम्पटता है। आग न जलावे और पानी न बहे, यह नहीं हो सकता। दाहन-शक्ति के बिना आग आग नहीं है; तरलता के बिना जल जल नहीं। सौन्दर्य न रहे और सुन्दरी रहे, यह असम्भव है। रोगी में रोग, लम्पट में लम्पटता, वीर में वीरता, दयालु में दया अनिवार्य है। वीरत्व न करे और दया न दिखावे तो और कुछ हो सकता है, वीर और दयालु नहीं हो सकता। इस विषय में विद्यापति की एक बड़ी सुन्दर उक्ति है। राधिका कृष्ण से कहती हैं—

पाखि क पाख मीन क पानी।
जीव क जीवन हम तुहुँ जानी॥

पक्ष रहे तभी तो पक्षी, पक्ष न रहे तो पक्षी कैसे? जल न रहे और मछली रहे, यह कभी सम्भव है? जीव तभी जीव है जब उसमें जीव हो। इसी प्रकार मानव तभी मानव है जब उसमें मानव धर्म रहे, अन्यथा वह मानव नहीं है।

यह मानव धर्म है क्या? वह पदार्थ कौन सा है, जिसके रहने से मानव की मानवता सिद्ध होती है? वह कौन सा गुण है, जिसके बिना मानव वस्तुतः मानव नहीं रह जाता?

मनुष्य और पशु की समानता

इसे जानने के लिए पहले हमें वह कसौटी ढूँढ़नी पड़ेगी, जिसमें कसने से मानव के प्रत्येक गुणावगुण की परीक्षा हो सके। जब तक माप, जोख, तुलना आदि की सुविधा न हो तब तक किसी वस्तु का उचित निरूपण नहीं हो सकता। मानव धर्म के निरूपण के लिए भी हमें वह मापदण्ड, वह कसौटी, वह प्रमाण खोजना पड़ेगा जिसकी सहायता से मानव जीवन के प्रत्येक अङ्ग की परीक्षा, मानव के प्रत्येक गुण और अवगुण की जाँच करके हम कह सकें कि यह मानव के योग्य है अथवा अयोग्य, मानव धर्म के साथ इसका समन्वय सम्भव है या असम्भव। वह मापदण्ड कौन सा है, वह कौन सी कसौटी है, जिससे हम लोग मनुष्य के सभी गुणों की परीक्षा, मनुष्य के सब प्रकार के बड़प्पन की तुलना किया करते हैं? थोड़ा विचार कर देखिए, वह कौन सा प्रमाण है, जिसे हम मनुष्य का आदर्श मानते हैं, जिससे हम मनुष्य की महत्ता की उपमा दिया करते हैं? ध्यान से देखने से मालूम होगा कि वह कसौटी, वह मापदण्ड, वह प्रमाण पशु है। मनुष्य के उत्तम से उत्तम और नीच से नीच सभी गुणों की तुलना पशु के ही गुण और अवगुण से की जाती है। इस विषय में पशु ही मनुष्य का आदर्श है। इसी आधार पर लोगों ने दो जगत, दो भेद माने हैं। मानव पशु, मैन बीस्ट, इन्सान हैवान, आदि प्रयोग प्रत्येक देश और प्रत्येक भाषा में प्रचलित हैं। पशु ही वह प्रमाण है, जिससे मनुष्य के जीवन की सफलतापूर्वक परीक्षा कर सकते हैं। यही वह मापदण्ड है जो हमें बता सकता है कि मानव और पशु में अन्तर कहाँ है, सच्चा मानव धर्म क्या है।

मनुष्य की नीचता का उदाहरण पशु से दिया जाता है; यह जानवर है, तू जानवर है, आदि प्रयोग हम सबने सुने हैं। मूर्ख या बेवक़ूफ़ की तुलना गधे और उल्लू से की जाती है; अर्थात मूर्खता में मनुष्य गधे और उल्लू को मात नहीं कर सकता। अन्ध-विश्वास व अन्धानुगमन के लिए भेड़ियाधसान की उक्ति प्रसिद्ध है। लम्पटता का वर्णन अभीष्ट हो तो कहते हैं, यह भ्रमर है, फूल-फूल पर मँड़राता फिरता है। इन प्रयोगों द्वारा मनुष्य स्वयं यह स्वीकार करता है कि नीचता में वह पशु से बढ़ कर नहीं हो सकता। नीचता में पशु मनुष्य का आदर्श है। फिर उत्तम गुणों के लिए भी पशु ही प्रमाण है। वीरता का वर्णन करना हो तो कहते हैं, नरसिंह है, नरशार्दूल है। पञ्जाब-केशरी, महाराष्ट्र-केशरी, आदि ऐसे ही उदाहरण हैं। कोई मनुष्य बड़ा एकाग्रचित्त हो तो कहते हैं, यह तो बगुला सा ध्यान लगाता है। विद्यार्थियों के आदर्श लक्षण में कहा है—"काकचेष्टा वकोध्यानं श्वाननिद्रा तथैवच......" इत्यादि। सद्गुण के ग्रहण और दुर्गुण के परित्याग में मनुष्य का आदर्श हंस है। स्त्रियों के नेत्र-सौन्दर्य, गमन-शैली, मधुर स्वर, आदि की उपमा भी पशु-जगत में ही मिलती है। कुरङ्गनयनी, मृगलोचनी,

गजगामिनी, कोकिलकण्ठी, पिकवचनी, आदि विशेषणों द्वारा हम अपनी स्त्रियों को गौरवान्वित समझते हैं। चातुरी में सियार पाँड़े हमारे आदर्श हैं। बल और पराक्रम में भी हमारा आदर्श पशु ही है। हम अपने महा पराक्रमी पुरुषों को पुरुषर्षभ और बलिष्ठ पहलवानों को शेर कह कर समादृत करते हैं।

जब गामा ने पश्चिम के सुप्रसिद्ध पहलवान जेबिस्को को देखते ही देखते दो सेकेण्डों के भीतर पछाड़ कर चित कर दिया तो गामा की कला पर जेबिस्को मुग्ध हो गया। उस समय इस उदारचेता पाश्चात्य मल्ल के मुँह से गामा की प्रशंसा में आप ही आप ये शब्द निकल पड़े—"गामा शेर है।" गामा संसार का सर्वश्रेष्ठ मल्ल हुआ, परन्तु वह शेर से बढ़ कर न हो सका। अन्त में शेर ही उसका आदर्श रहा।

केवल पशु-जगत में ही नहीं, मनुष्य के भले और बुरे गुणों की उपमा उद्भिद जगत में भी पाई जाती है। शरीर बहुत बड़ा हो जाय और तदनुरूप बुद्धि न हो तो कहते हैं—ताड़ की तरह दिन-दिन बढ़ता जाता है, पर बुद्धि का ठिकाना ही नहीं। सुन्दर दाँतों की उपमा दाड़िम के दाने से दी जाती है। कमल की उपमा से तो सारा आर्य-साहित्य भरा पड़ा है। आँख, मुख, हाथ, पाँव, कोई ऐसा अङ्ग नहीं बचा जिसके सौन्दर्य की उपमा कमल के अनुपम सौन्दर्य से न दी गई हो। मनुष्य के सुयश की तुलना कपास की शुभ्रता के साथ की जाती है। नम्रता के लिए कहते हैं, भाई दूब बन कर रहना चाहिए। उरू के लिए कदली-स्तम्भ और बाहु के लिए शाल वृक्ष की उपमा प्रसिद्ध है।

इन गुणों में पशु और पेड़-पौधे वास्तव में मनुष्य जाति के आदर्श होने योग्य हैं भी। जो सत्य अन्तर्हृदय में छिपा रहता है वह भाव या भाषा द्वारा प्रगट हो ही जाता है। मनुष्य का अन्तर्हृदय सच्चे भाव से यह जानता है कि उपरोक्त गुणों में पशु जाति मनुष्य से कहीं बढ़ कर श्रेष्ठ है। इन गुणों में पशु आदर्श है। मनुष्य उस आदर्श तक पहुँचने की चेष्टा कर रहा है, पर अभी बहुत पीछे है और पीछे रहेगा। अपनी इस हीनता को मनुष्य अनुभव करता है इसीलिए पशु के साथ अपना मुक़ाबला करके, पशु के गुणों के साथ अपने गुणों की उपमा देकर मनुष्य अपने को गौरवान्वित समझता है।

मनुष्य को अपने जितने भी गुणों का गर्व है, वे सभी पशु में पाए जाते हैं। यदि केवल इन गुणों की दृष्टि से देखा जाय तो मनुष्य और पशु में कोई भेद नहीं है। वैज्ञानिक लोगों ने बहुत प्रयत्न किया कि मानव और पशु में तथा जानवर और पेड़-पौधों में कोई अन्तर कर सकें, पर अन्त में उन्हें हार माननी पड़ी। वे इनको भिन्न करने वाली रेखा नहीं खींच सके। सर जगदीशचन्द्र ने प्रमाणित करके दिखा दिया कि पशु तथा वृक्षों में कोई अन्तर नहीं है। उनके आविष्कारों ने वैज्ञानिक संसार में हलचल मचा दी। उनके आविष्कारों के बाद 'नेचर' के सम्पादक महाशय ने लिखा था—"वृक्ष स्थावर पशु है और पशु है जङ्गम वृक्ष।" (A plant is a stationery animal and an animal is a moving plant) कहने का तात्पर्य यह कि जानवर तथा पेड़-पौधे में कोई भेद नहीं है। इसी प्रकार यह भी प्रमाणित होता है कि मनुष्य तथा पशु के बीच कोई भेद नहीं है। दोनों का व्यवहार एक ही प्रकार का है; दोनों में काम, क्रोध, स्नेह, घृणा, दया, क्रूरता, मैत्री, द्वेष आदि भाव एक ही प्रकार से दिखाई पड़ते हैं।

आख़िर मनुष्य को गर्व किस बात का है, जिसके कारण वह अपने को पशु से श्रेष्ठ समझता है? मनुष्य की धारणा है कि शारीरिक गठन और चरित्र में वह पशु से श्रेष्ठ है। मनुष्य समझता है कि कला-कौशल में, सामाजिक सङ्गठन में, विनय और मर्यादा के पालन में वह पशु से श्रेष्ठ है। मनुष्य का यह भी दावा है कि उसकी इच्छाएँ, उसकी प्रवृत्तियाँ पाशविक इच्छाओं और पाशविक प्रवृत्तियों से अधिक संस्कृत हैं। एक शब्द में, मनुष्य को अपनी सभ्यता और संस्कार पर गर्व है; और इन्हीं के कारण वह अपने को पशु की अपेक्षा श्रेष्ठ समझता है। परन्तु यह गर्व मिथ्या है, यह दावा सर्वथा निराधार और भ्रमपूर्ण है। वैज्ञानिकों ने दिखा दिया है कि पशुओं तथा पौधों का शारीरिक गठन और चरित्र, मनुष्य के शरीर-गठन तथा चरित्र की अपेक्षा, कहीं अधिक समुन्नत हैं; पशुओं में भी ठीक वैसा ही सङ्गठन, वैसा ही कलाकौशल, वैसी ही इच्छाएँ और वासनाएँ मौजूद हैं जैसी मनुष्यों में हैं, बल्कि उनमें ये वस्तुएँ मनुष्यों से भी अधिक उत्कृष्ट हैं। इन बातों में पशु से श्रेष्ठ होने की तो कौन कहे, मनुष्य उनकी बराबरी का होने का भी दावा नहीं कर सकता।

शेर को देखिए, शारीरिक गठन में कौन मनुष्य उसका मुक़ाबला कर सकता है? उसके जैसा विशाल वक्षस्थल, क्षीण कटि, मज़बूत पञ्जे, पैने दाँत, अङ्गार की तरह चमकती आँखें किस मनुष्य को प्राप्त हैं? बिल्लियाँ रात के घनीभूत अन्धकार में भी देख सकती हैं। परन्तु मनुष्य? मनुष्य इतना दीन है कि उसे दिन के प्रकाश में भी उपनेत्र की आवश्यकता पड़ती है। देखने में गृद्ध, सूँघने में कुत्ते, सुनने में घोड़े और हिरन की शक्ति मनुष्य की शक्ति की अपेक्षा कहीं अधिक तीव्र है। पशुओं के पास आत्मरक्षा के लिए नख, सींग, दन्त आदि अनेक शस्त्र हैं, परन्तु मनुष्य इन सभी प्राकृतिक शस्त्रों से वञ्चित है। हिम और ताप से रक्षा पाने के लिए पशु-पक्षियों के शरीर में रोम और पर आदि आवरण विद्यमान हैं, परन्तु मनुष्य के शरीर में इनका भी अभाव है। पशुओं की शारीरिक शक्ति और कार्यक्षमता भी मनुष्य से कहीं बढ़ी चढ़ी है। गधे को देखिए, बेचारा बहुत ही दीन जानवर समझा जाता है, परन्तु वह जिस तरह दिन भर अथक परिश्रम करता है, उस तरह कितने मनुष्य कर सकते हैं? बैल में परिश्रम करने की शक्ति मनुष्य से इतनी अधिक है कि जो व्यक्ति दिन भर परिश्रम करता रहता है और कभी विश्राम या विनोद का नाम नहीं लेता उससे लोग कहा करते हैं, भाई, क्यों तेली के बैल की तरह मर रहे हो? इन बड़े जानवरों को छोड़ दीजिए। छोटे-छोटे कीट-पतङ्गों को देखिए; उनके शरीर में भी मानव शरीर की अपेक्षा अधिक कार्यक्षमता, अधिक सहनशीलता, अधिक शक्ति दिखाई पड़ती है। वैज्ञानिकों ने परीक्षा करके देखा है कि एक चींटी अपने शरीर के वज़न के तीन हज़ार गुना भारी वजन खींच सकती है। भला इस अतुल शक्तिमत्ता के सामने मनुष्य की शारीरिक शक्ति की क्या तुलना? जब पशु-जगत में ऐसे-ऐसे विराट शक्ति वाले जीव मौजूद हैं, तब मनुष्य का शारीरिक गठन और शक्ति में पशुओं से श्रेष्ठ होने का दावा कहाँ ठहरता है?

पशु के चरित्र के साथ मनुष्य के चरित्र की तुलना कीजिए। दया, प्रेम, स्नेह, मैत्री, सहानुभूति, स्वामिभक्ति, विश्वासपात्रता, सेवा, धैर्य, वीरत्व, ये ही गुण हैं जिनमें मनुष्य समझता है कि वह पशु से श्रेष्ठ है। परन्तु ये सभी गुण पशु में मनुष्य की अपेक्षा अधिक मात्रा और उत्कृष्ट रूप में पाए जाते हैं। हाथी, बन्दर, मछली आदि नाना प्रकार के जानवरों पर वैज्ञानिकों ने परीक्षा करके देखा है कि प्रेम और सहानुभूति की मात्रा जितनी उनमें पाई जाती है उतनी मनुष्य में नहीं। अफ्रिका के जङ्गलों में शिकार करने वाले शिकारियों ने देखा है कि जब किसी हाथी को गोली लग जाती है और वह चलने में असमर्थ हो जाता है, तब उसके झुण्ड के अनेक हाथी आकर उसे प्रोत्साहन देते हैं, उसे उठाते हैं और भगा ले जाने की कोशिश करते हैं। मछली जब जाल में फँस जाती है तो अन्य मछलियाँ उसे बचाने की प्राणपन से चेष्टा करती हैं, और तब तक उसके पास से नहीं हटतीं जब तक उसके बचने की थोड़ी भी आशा शेष हो। स्वामिभक्ति और विश्वास-पात्रता में कुत्ते और मुर्ग़े का उदाहरण लीजिए। आपका नौकर आपको धोखा दे सकता है, पर ये जानवर आपके घर की रखवाली करने में कभी विश्वासघात न करेंगे। कुत्ते, मुर्ग़े, नेवले जान पर खेल कर भी स्वामी के स्वार्थ की रक्षा करते हैं। धैर्य में तो पशुओं ने पराकाष्ठा ही प्राप्त कर ली है। बाबर और रॉबर्ट ब्रूस जैसे हमारे महापराक्रमी योद्धाओं को जिससे धैर्य की शिक्षा मिली थी, वह एक छोटा सा कीड़ा था। एक चींटी को दीवार पर चढ़ने की चेष्टा में इक्कीस बार गिरने के बाद बाईसवें बार सफल होते देख कर बाबर के मन में तुर्किस्तान को जीतने की नवीन स्फूर्ति पैदा हो गई। इसी प्रकार स्कॉटलैण्ड के देशभक्त रॉबर्ट ब्रूस के विषय में प्रसिद्ध है कि एक मकड़ी के धैर्य को देख कर उन्हें अपनी मातृभूमि की स्वाधीनता के लिए पुनः युद्ध करने का उत्साह प्राप्त हुआ था। वीरता में शेर, सेवा में आम आदि फलों के वृक्ष, उपयोगिता में गाय, इनका मुक़ाबला कौन मनुष्य कर सकता है?

यदि सामाजिक सङ्गठन को देखें तो पशुओं का सङ्गठन मनुष्य के सङ्गठन से श्रेष्ठ प्रतीत होता है। चींटी एक बहुत ही छोटा कीड़ा है, पर मनुष्य-समाज में जितनी अनूठी बातें हैं, वे सब चींटियों में पाई जाती हैं। उनमें सेना, सेनापति, स्वामी, सेवक आदि सब भेद हैं। उनमें डॉक्टर हैं। वे घर बनाती हैं। यहाँ तक देखा गया है कि जिस प्रकार हम लोग दूध पीने के लिए गाय पोसते हैं, उसी प्रकार चींटियाँ भी गाय पालती हैं। प्रन्टलिस नामक

एक कीड़े के शरीर से मधुर रस चूता है। चींटियाँ उसे पाल कर उसके रस से दूध का काम लेती हैं। हम लोग अपनी गायों के लिए अलग गोठ बनाते हैं; ठीक वैसे ही चींटियाँ भी इस कीड़े के लिए अपने बिल के अन्दर छोटे से सूराख़ के समान एक अलग कोठरी बनाती हैं। उसमें उसे बाँधती हैं, उसे भोजन देती हैं, उसके मल-मूत्र को बड़ी ख़ूबी से साफ़ करती हैं; उसके आने-जाने के लिए रास्ता बनाती हैं; उसकी रखवाली के लिए पहरेदार तक नियत करती हैं। चींटियों की सामाजिक व्यवस्था ऐसी सुन्दर है कि तारीफ़ करते ही बनती है। जिस समय वे भोजन की खोज में निकलती हैं अथवा किसी अन्य काम से उन्हें बाहर जाना पड़ता है उस समय, हम सबने देखा होगा, वे किस तरह फ़ौजी ढङ्ग से क़तार बाँध कर चलती हैं। उनका एक कप्तान होता है, जो क़तार के आगे-आगे चलता है। वह शत्रुओं से मुठभेड़ करता और अपने अनुचरों की रक्षा करता है। अन्य चींटियाँ उसका अनुसरण करती हैं। इस कप्तान से यदि दूसरी ओर से आती हुई किसी चींटी से भेंट हो गई तो प्रायः देखा जाता है कि वे एक दूसरे के मुँह से मुँह सटा कर न जाने क्या बातचीत कर लेते हैं; और बात समाप्त होने पर कप्तान अपने अनुचरों सहित या तो पीछे लौट कर उस चींटी के साथ हो लेता है अथवा सीधे अपनी राह चला जाता है। इससे स्पष्ट है कि भाषा द्वारा भाव-विनिमय की पद्धति न केवल मनुष्यों में, बल्कि चींटी जैसे छोटे-छोटे कीट-पतङ्गों में भी वर्तमान है।

अब ज़रा मधुमक्खियों के जीवन पर ग़ौर कीजिए। मधुमक्खियों के समान व्यवस्थित सामाजिक जीवन साधारण मनुष्य-समाज अभी नहीं पा सका है। उनमें एकता और सङ्गठन विचित्र है। श्रम-विभाग तो उनके जीवन का प्रकृत अङ्ग है। उनमें शहद बटोरने के लिए मज़दूर होते हैं, पहरा देनेवाले सिपाही, लकड़ी काटनेवाले बढ़ई, मकान बनाने वाले राज हैं, उपभोग करने वाली रानियाँ हैं। हमारी स्त्रियों की तरह मादा मक्खी केवल अण्डे देती है और घर (छत्ते) को सम्हाल कर रखती है। नर मक्खी बाहर जाकर फूलों से रस इकट्ठा कर लाती है। बढ़ई मक्खी वृक्षों में या काठ में छेद करके मकान बनाती है। राज मक्खी छत्ते तैयार करती है। अन्य विभाग की मक्खियों का भी काम अलग-अलग बँटा हुआ है। तारीफ़ की बात यह है कि भिन्न-भिन्न विभागों की मक्खियाँ अपने-अपने काम में अत्यन्त निपुण और तत्पर होती हैं। मधुमक्खियों की एकता और सङ्गठन की परीक्षा करनी हो तो इधर-उधर उड़ती हुई किसी अकेली मक्खी को छेड़ दीजिए। देखिएगा वह उड़ कर फ़ौरन छत्ते पर जाती है और वहाँ अपने साथियों को ख़बर देती है। फिर झुण्ड के झुण्ड मक्खियाँ उड़कर अपराधी मनुष्य पर आक्रमण करती हैं और ऐसे भीषण रूप से उसका पीछा करती हैं कि पानी में डूबने पर भी जान नहीं बचती। परन्तु अपराधी मनुष्य के पास ही यदि कोई दूसरा निर्दोष व्यक्ति खड़ा हो तो मक्खियाँ उसकी ओर देखेंगी भी नहीं। यह मधुमक्खियों के सुविकसित न्याय-बुद्धि का एक सुन्दर उदाहरण है।

चींटियों और मधुमक्खियों की ही तरह बन्दर, भालू, हिरन, सूअर, तोता, कबूतर, चूहा, तितली प्रभृति सभी पशु-पक्षियों और कीट-पतङ्गों में सामाजिक व्यवस्था पाई जाती है। इससे मालूम होता है कि सामाजिक सङ्गठन मनुष्य जाति की कोई विशेषता नहीं है। यदि विचार करके देखा जाय तो इस क्षेत्र में मनुष्य अभी पशु से बहुत-कुछ सीख सकता है।

कला का भी पशुओं में अभाव नहीं है। कला में पशुओं का मुक़ाबला कर सकना मनुष्य के लिए सर्वथा असम्भव है। सब कलाओं में हृदय को हिलाने वाली कला सङ्गीत है। पर सङ्गीत में कोकिल के साथ कौन गायनाचार्य प्रतिद्वन्द्विता कर सकते हैं? ध्यानपूर्वक देखने से मालूम होगा कि पशु ही वास्तव में कला के प्रमाण हैं। पशुओं का कला-कौशल ही वह आदर्श है जिसे मनुष्य अनुकरण करने की चेष्टा करता है। सङ्गीत के स्वरों के नाम पर विचार करने से यह बात पूर्णतः स्पष्ट हो जायगी। षड्ज, ऋषभ, पञ्चम आदि नामों से साफ़ ज़ाहिर है कि सङ्गीत में पशु ही मनुष्य का मार्ग-दर्शक है। लोग सङ्गीत में वही तरङ्गायित भाव लाने का यत्न करते हैं जो कोयल के पञ्चम स्वर में है। पर इस यत्न में अभी उन्हें सफलता नहीं मिली है। इस विद्या में मनुष्य अभी पशु से बहुत पीछे है।

यह तो हुई ललित कला की बात; अब गृह-निर्माण कला, नगर-निर्माण कला, बड़ी-बड़ी सड़कें, सुरङ्ग, पुल, नहर, बाँध आदि बनाने की कला पर भी विचार

कीजिए। इन क्षेत्रों में शताब्दियों के वैज्ञानिक अनुसन्धान और अनुभव के बाद, स्टीम, एलेक्ट्रिसिटी, मशीनों और औज़ारों की सहायता से, मनुष्य आज जो कुछ भी कर सकता है, उससे अधिक चमत्कारपूर्ण कार्य पशु-जगत में, बिना किसी औज़ार के, न जाने किस युग से होते चले आ रहे हैं। समुद्र में एक प्रकार की मछली होती है, जो एलेक्ट्रिसिटी पैदा कर सकती है। यह अपनी एलेक्ट्रिसिटी से किसी को वैसा ही गहरा आघात पहुँचा सकती है, जैसा हम लोग बैटरी से कर सकते हैं। एक दूसरी मछली निशाना मारने में मनुष्य से कहीं अधिक निपुण है। यह पानी के बूँदों की गोली चला कर मक्खियों को इस तरह भिगा देती है कि वे सीधे उसके मुँह में जा गिरती हैं। ऐसा पक्का निशाना मार सकने वाले व्यक्ति मनुष्यों में कितने हैं? कई पशु एञ्जिनियरिङ्ग की विद्या में ऐसे पारङ्गत हैं कि उनकी कला पर मुग्ध हो जाना पड़ता है।

उत्तरी अमेरिका और कैनेडा में एक प्रकार का ऊद-बिलाव पाया जाता है। इसे गहरे जल से बहुत प्रेम है। यह अपने रहने के लिए नदियों में बाँध बाँध कर उनके जल को रोक देता है। जैसे हमारे एञ्जिनियर मकान, कारख़ाना अथवा पुल आदि बनाने के पहले उसके लिए उपयुक्त स्थान खोजते हैं, वैसे ही यह जन्तु बाँध बाँधने के पहले यह अच्छी तरह देख लेता है कि उसके लिए कौन सा स्थान उपयुक्त होगा। जहाँ नदी के किनारे दोनों ओर बहुतायत से वृक्ष पाए जाते हैं वहीं यह बाँध बनाना आरम्भ करता है। यह वृक्षों को अपने पैने दाँतों से काट-काट कर गिरा देता है। जब बहुत से वृक्ष गिर जाते हैं तब यह उन्हें पानी के बहाव की सहायता से खींच कर नदी में ले जाता है; वहाँ उन्हें नदी के एक किनारे से दूसरे किनारे तक बिछा देता है; फिर मिट्टी, कङ्कड़, पत्थर इत्यादि लाकर उन पर डाल देता है। इससे नदी के आर-पार एक मज़बूत दीवार खड़ी हो जाती है, जिससे नदी का प्रवाह बिलकुल रुक जाता है। इससे वहाँ एक गहरा जलाशय तैयार हो जाता है। जब यह जन्तु समझता है कि पानी बहुत ज़्यादा हो गया तो बाँध को एक जगह काट देता है और फालतू पानी बह जाने पर पुनः उसकी मरम्मत कर देता है। जब यह देखता है कि किनारे के सभी वृक्ष कट गए और दूर से वृक्षों को ढोकर लाने में कठिनाई होती है तो यह नदी की धारा को एकदम बन्द कर देता है। इससे नदी का पानी बढ़ कर दोनों किनारे की भूमि पर फैल जाता है। तब यह जन्तु वृक्षों की जड़ तक नहर खोदता है और उन नहरों की सहायता से वृक्षों को काट कर नदी में बहा लाता है। जब यह देखता है कि नदी का प्रवाह बहुत तेज़ है और उसके सामने यह सीधा बाँध नहीं तैयार कर सकता तब यह बाँध को टेढ़ा करके बनाता है। यह बाँध अर्द्धवृत्ताकार होता है और उसका टेढ़ा भाग नदी के प्रवाह के ऊपर की ओर बढ़ा रहता है। इस प्रकार वस्तुओं को टेढ़ी कर देने से उनकी मज़बूती बहुत बढ़ जाती है। यह आधुनिक एञ्जिनियरिङ्ग का एक बहुत बड़ा सिद्धान्त है। आजकल जितने बड़े-बड़े पुल, इमारत, मशीनें आदि बनती हैं, उनमें इस सिद्धान्त से बहुत काम लिया जाता है। जन-साधारण इस सिद्धान्त को नहीं जानते, पर यह पशु इससे अच्छी तरह परिचित है। अपने लिए मकान बनाने और उसमें आने-जाने के लिए सुरङ्ग खोदने में भी यह जन्तु ऐसे-ऐसे उपायों से काम लेता है, जिन्हें देख कर यह मान लेना पड़ता है कि इसे आधुनिक एञ्जिनियरिङ्ग के सिद्धान्तों का प्रकाण्ड ज्ञान है।

अब एक दूसरे एञ्जिनियर को देखिए। अर्जेनटाइन राज्य में चूहे की जाति का एक जानवर पाया जाता है, जिसे वहाँ की भाषा में 'विसकच' (Viscacha) कहते हैं। इस जाति के जानवरों ने अपने रहने के लिए ज़मीन के भीतर गाँव के गाँव और शहर के शहर बसा लिए हैं। वे अपने लिए बड़े सुन्दर मकान बनाते हैं, जिनमें कई कोठरियाँ और दरवाज़े होते हैं। उनके नगरों में सड़कों, गलियों और सुरङ्गों की जैसी वैज्ञानिक व्यवस्था है, वैसी जन-साधारण की बस्तियों में नहीं पाई जाती। इनके रास्ते, मिट्टी के गिरने से, कभी-कभी बन्द हो जाते हैं। इससे विसकचों के गाँव का गाँव ज़मीन के नीचे क़ैद हो जाया करता है। ऐसी विपत्ति में पास-पड़ोस के विसकच अपने पीड़ित भाइयों की जो सहायता करते हैं वह मनुष्य-समाज के लिए अनुकरणीय है। पड़ोस के गाँवों से झुण्ड के झुण्ड विसकच दौड़ पड़ते हैं और रास्तों को खोद कर उस गाँव वालों को बाहर निकाल लाते हैं। इन जानवरों को अपने घरों को सजाने और सुन्दर बनाने की भी बड़ी चिन्ता

रहती है। बाहर जब कोई सुन्दर काँच, पत्थर, हड्डी अथवा पर मिल जाता है, ये उसे फ़ौरन उठा लाते हैं और घर में इस तरह रखते हैं, जिससे घर की सुन्दरता बढ़ जाय।

पशु-जगत में एञ्जिनियरिङ्ग के और भी उदाहरण देखिए। चींटी, दीमक, मधुमक्खी आदि की गृह-निर्माण कला जितनी विकसित है, उसे देख कर हम आसानी से समझ सकते हैं कि जिन वैज्ञानिक सिद्धान्तों को हम लोगों ने शताब्दियों के कष्टमय परिश्रम के बाद आविष्कृत किया है, उनसे ये छोटे-छोटे पशु-पक्षी और कीट-पतङ्ग न जाने कितने युगों से परिचित हैं। इनके मकान जितने सुन्दर, जितने स्वच्छ और स्वास्थ्यकर होते हैं, हम लोगों के मकान उतने स्वच्छ और स्वास्थ्यकर अभी तक नहीं हो सके हैं। केवल दाँत और नख की सहायता से ये लोग जैसी सुन्दर-सुन्दर चीज़ें बना लेते हैं, हम लोग अपने समुन्नत आरे, रन्दे और रुखानी से अभी तक वैसी सुन्दर चीज़ें नहीं बना सके हैं। बेचारे ऊदबिलाव के पास क्या है? केवल दाँत और नख द्वारा वह जैसा अद्भुत बाँध तैयार कर लेता है, वैसा यदि मनुष्य को तैयार करना हो तो न जाने कितने सामान, कितने मज़दूर, कितने द्रव्य की आवश्यकता होगी। ऐसे कार्यों में हम लोगों के सामने द्रव्य सम्बन्धी जो भयानक कठिनाइयाँ आ उपस्थित होती हैं, बेचारा ऊदबिलाव उन कठिनाइयों और चिन्ताओं का स्वप्न भी नहीं देख सकता। जिस कार्य को वह बात की बात में कर लेता है, उसीके लिए हमें नाना कष्ट उठाने पड़ते हैं, हज़ारों तकलीफ़ें झेलनी पड़ती हैं। ऐसी अवस्था में इन पशुओं के मुक़ाबले में, कला में, हमरी श्रेष्ठता कहाँ प्रमाणित होती है?

केवल शारीरिक शक्ति, चरित्र, सङ्गठन और कला में ही नहीं, जीवन के सभी क्षेत्रों में पशु मनुष्य का आदर्श है। इच्छाओं और प्रवृत्तियों में भी मनुष्य का आदर्श पशु ही है। इच्छा से प्रवृत्ति होती है। सब इच्छाओं का सामान्य नाम 'बढ़ना' कह सकते हैं। 'बढ़ने' की इच्छा मानव और पशु दोनों में समान भाव से विद्यमान है। यह इच्छा तीन रूप से प्रगट होती है, धन-सम्पत्ति में बढ़ने की इच्छा, संख्या अथवा परिवार में बढ़ने की इच्छा, यश तथा प्रसिद्धि में बढ़ने की इच्छा। इन्हीं इच्छाओं को शास्त्रकारों ने एषणा नाम दिया है। द्रव्य या मात्रा में बढ़ने की इच्छा को वित्तैषणा, स्त्री-पुत्रादि द्वारा संख्या में बढ़ने की इच्छा को दारैषणा वा पुत्रैषणा, और समाज में रहने तथा कीर्त्ति पाने की इच्छा को लोकैषणा कहा है। ये तीनों एषणाएँ जैसे मनुष्य में वैसे ही पशु में भी पाई जाती हैं। दोनों में अन्तर केवल यह है कि पशु इनमें आदर्श है, मनुष्य उस आदर्श का अनुकरण करने वाला।

धन एकत्र कर रखने की इच्छा में मनुष्य का आदर्श भ्रमर तथा चींटी हैं। परिमित द्रव्य से कोई तृप्त नहीं होता है। 'और' 'और' की आकांक्षा सबको रहती है। सौ रुपया मिले तो दो सौ पाने की इच्छा, दो सौ मिले तो चार सौ की, और चार सौ भी मिल जाय तो 'और' की कामना बनी ही रहती है। मनुष्य और पशु दोनों का यही हाल है। दारैषणा वा पुत्रैषणा अर्थात् स्त्री और परिवार पाने की इच्छा भी मनुष्य और पशु दोनों में समान है। कामशक्ति, सन्तानोत्पादन की शक्ति दोनों में है। उसी शक्ति से वे स्त्री से मिलते हैं। स्त्री-प्रसङ्ग में सुख होता है। उस सुख के लिए मनुष्य और पशु दोनों विह्वल होते हैं और उसकी प्राप्ति के लिए अनेक प्रयत्न करते हैं, नाना कष्ट झेलते हैं। इस सुख की वासना इतनी प्रबल है कि इससे जीव को कभी तृप्ति होती नहीं दिखाई देती। 'और' 'और' की वासना सदा बनी रहती है। स्त्री-पुरुष के संयोग से सन्तान की उत्पत्ति होती है। सभी प्राणी अपनी सृजन शक्ति का, अपने रङ्ग-रूप की सन्तान पैदा करने में, उपयोग करते हैं। सन्तान को संसार में प्रवेश करने योग्य बनाने के लिए भी सभी प्राणी अपने-अपने ढङ्ग से उन्हें पाल-पोस कर बड़ी करते हैं। ऐसा करना प्रत्येक जीव का धर्म है। परन्तु इस धर्म के पालन में पशु जितनी तत्परता, जितनी कर्त्तव्य-निष्ठा दिखाता है, मनुष्य नहीं। जानवर अपने बच्चे को कभी मैला-कुचैला नहीं रहने देता; बच्चे के शरीर पर उसने जहाँ कोई गन्दगी देखी कि उसे फ़ौरन चाटना शुरू कर देता है और चाटते-चाटते उसे पूर्णतः निर्मल बना देता है। मनुष्य अपने बच्चों की सफ़ाई पर इतना ध्यान कभी नहीं देता। मनुष्य के बच्चों की अपेक्षा कुत्ते और बिल्लियों के बच्चे अधिक साफ़ रहते हैं, यह तो हम सब लोगों ने ही देखा होगा। बच्चों के लालन-पालन के बाद उनकी शिक्षा का समय आता

है। प्रत्येक माता-पिता का यह धर्म है कि सन्तान को ऐसी शिक्षा दे, जिससे वह अपनी वृत्ति स्वयं कमा सके। मनु ने स्पष्ट शब्दों में आज्ञा दी है—

उत्पाद्य पुत्रांस्तु पिता तेषां वृत्तिं प्रकल्पयेत् ॥

पिता को चाहिए कि पुत्र उत्पन्न करके, उनका पालन-पोषण करने के बाद, उनकी आजीविका की व्यवस्था करे। पशु अक्षरशः इस मनु-वाक्य के अनुसार आचरण करते हैं। वे अपने बच्चों को अपनी-अपनी जाति का व्यवसाय निश्चय-पूर्वक सिखा देते हैं। मछलियाँ अपने बच्चों को तैरना, बिल्लियाँ शिकार करना, पक्षी उड़ना सिखलाते हैं। वे अपने बच्चों को शिक्षा देने के लिए उनके सामने स्वयं तैरते हैं, दौड़ते हैं, पङ्खों को फड़फड़ा कर उड़ने का तरीक़ा बताते हैं। कोयल अपने अण्डे को कौए के घोंसले में रख देती है, जिससे उसका उचित पोषण और शिक्षण हो सके। वह स्वयं इस काम को नहीं कर सकती। इसलिए अपने कर्त्तव्य का पालन वह इस प्रकार से करती है। परन्तु मनुष्य, जो अपने को श्रेष्ठ प्राणी समझता है, अपने कर्तव्य के पालन में इतनी तत्परता नहीं दिखाता। वह पहले तो अपनी सन्तान का भली-भाँति लालन-पालन नहीं करता, फिर जब उसकी शिक्षा का समय आता है तो उस ओर से भी वह उदासीन ही रहता है। सच बात यह है कि बेचारे मनुष्य-समाज को अभी तक यह मालूम नहीं हो सका है कि उसकी वास्तविक आजीविका क्या है। ऐसी हालत में वह अपनी सन्तान को आजीविका की शिक्षा दे तो कैसे दे? पशुओं में एक भी प्राणी ऐसा नहीं मिलेगा, जिसे यह न मालूम हो कि उसकी जीविका का साधन क्या है। परन्तु मनुष्यों में आज लाखों नहीं, करोड़ों की संख्या में ऐसे जीव विद्यमान हैं, जिनके सामने बेकारी की समस्या भयङ्कर रूप धारण करके खड़ी है, जिन्हें यह नहीं मालूम कि वे अपना पेट भरने के लिए क्या करें और क्या न करें। ऐसी दशा में वे अपनी सन्तान को आजीविका की शिक्षा देने का प्रबन्ध ही क्या कर सकते हैं? परन्तु जो थोड़ा-बहुत, भला-बुरा, उपयोगी-अनुपयोगी, उचित-अनुचित प्रबन्ध वे करते हैं, वह भी स्वार्थ-बुद्धि से। पशुओं में यह विशेषता है कि सन्तान की रक्षा जहाँ तक करनी चाहिए, वे करते हैं। जब वह स्वतन्त्र जीवन बिताने योग्य बन जाती है तब उसे छोड़ देते हैं। फिर माता-पिता और सन्तान के बीच किसी तरह का सम्बन्ध नहीं रह जाता। पर मनुष्य की बात दूसरी है। मनुष्य चाहता है कि मेरी सन्तान बड़ी होने पर मुझे सुख पहुँचावे, वृद्धावस्था में मेरी सेवा करे, मेरा आधिपत्य माने। यह स्वार्थ भाव मनुष्य के जीवन में पद-पद पर दिखाई पड़ता है। पर पशु में यह नहीं पाया जाता। मानव समाज में पुत्र और पुत्री में जो भेद है, पुत्र के जन्म पर प्रसन्नता और पुत्री के जन्म पर दुःख प्रगट किया जाता है, यह मानव जाति की अपनी निजी विशेषता है। पशु-जगत में ऐसी भयङ्कर स्वार्थपरता के भाव कहीं नहीं पाए जाते। पशुओं में पुत्र और कन्या का आदर समान है। यह तो सभ्य मनुष्य जाति ही है, जो स्वार्थ के वशीभूत होकर पुत्र के साथ एक तरह का और कन्या के साथ दूसरी तरह का व्यवहार करती है। पशु के जीवन में यह स्वार्थ भाव नहीं है। शायद इसीलिए मनुष्य पशु को अपना आदर्श मानता है।

ध्यान से देखें तो मनुष्य की तरह पशु में भी लोकैषणा या जनेच्छा दिखाई पड़ेगी। जैसे मनुष्य चाहता है कि मैं समाज में रहूँ, लोग मेरा सत्कार करें, मुझे सुयश मिले, मेरी कीर्ति बढ़े, उसी प्रकार पशुओं में भी ऐश्वर्य और प्रभुता की कामना होती है। पशुओं में भी राजा, सरदार, गरोहपति आदि सत्ताधारी होते हैं जो अपने समाज का शासन, नियमन और नेतृत्व करते हैं।

यही तीन एषणाएँ या इच्छाएँ पशु में पाई जाती हैं और यही तीन कामनाएँ मनुष्य में भी हैं। इन्हीं एषणाओं में जीव सुख के लिए प्रवृत होता है। इन्हीं एषणाओं के फेर में पड़ कर मनुष्य कौड़ी-कौड़ी जोड़ कर करोड़ इकट्ठा करने का प्रयास करता है। इन्हीं विषयों में सुख पाने की आशा से मनुष्य विवाह करता है, घर बनाता है, समाज की सेवा, राज्य का प्रबन्ध, यज्ञ-जाप, पूजा-पाठ करता है। पर शुद्ध सुख कहीं नहीं मिलता; सुख से अधिक दुःख मिलता है। चण्डीदास ने कहा है —

सुख दुःख दुटि भाई।
सुखेर लागिया जे करे पीरीति
दुख जाय तार ठाईं ॥

सुख दुख दो भाई हैं। सुख के लिए जो प्रीति करता है उसके यहाँ दुःख भी जाता है। गुरु गोविन्द से एक शिष्य

ने पूछा कि सुख क्या चीज़ है? उन्होंने जवाब दिया कि तलवार के धार पर रक्खी हुई शहद की बूँद है। सुख चाहो तो चाटो। मधु-विन्दु मीठा तो लगेगा, पर साथ-साथ जिह्वा कट जायगी; रक्त बह निकलेगा; सुख से अधिक दुःख मिलेगा। यही संसार का नियम है। इसी स्वल्प सुख के लिए मनुष्य एषणाओं के चक्र में फँसा हुआ है। वह पशु के समान इन्हीं इच्छाओं के पीछे भटकता फिर रहा है। इन्हीं वासनाओं के वशीभूत होकर मनुष्य कभी शारीरिक बल में शेर का अनुकरण करता है तो कभी कोकिला के कण्ठस्वर की नकल करने की चेष्टा करता है, कभी सौन्दर्य में मयूर से प्रतिद्वन्द्विता करना चाहता है तो कभी चींटी से धैर्य और उद्योग की शिक्षा लेता है। परन्तु, जैसा कि ऊपर कह चुके हैं, उसके ये सारे प्रयत्न व्यर्थ होते हैं। इन प्रयत्नों में उसे सफलता और सुख के बदले विफलता और दुःख ही अधिक मिलते हैं। इन गुणों में मनुष्य पशु से बड़ा नहीं हो सकता। इसीलिए इन गुणों द्वारा पशु को जो सुख मिलता है वह मनुष्य को कदापि नहीं मिल सकता। सुख पाने के उद्देश्य से मनुष्य का, पशुओं की तरह, समाज-सङ्गठन करना, कला की उन्नति और वासनाओं की तृप्ति करना, शरीर का विकास और गुणों की वृद्धि करना व्यर्थ है।

शारीरिक बल और चरित्र की दृष्टि से, सङ्घ और कला की दृष्टि से, इच्छाओं और प्रवृत्तियों की दृष्टि से देखें तो प्राणीमात्र समान हैं। "त एते सर्वे एव समाः सर्वे एव अनन्ताः।" वे सब पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग तथा मानव समान हैं, अनन्त हैं। उनकी एषणा का वृत्त अनन्त है; उनकी इच्छा का कभी अन्त नहीं होता। उपभोग के साथ-साथ वासनाएँ और भी प्रज्वलित हो उठती हैं। एक लाख रुपया मिले तो दूसरे लाख की, एक स्त्री मिले तो दूसरी स्त्री की, एक राज्य मिल जाय तो दूसरे राज्य की कामना निरन्तर सताती रहती है। 'और' 'और' की रट कभी बन्द नहीं होती। 'और चाहिए' 'और चाहिए' की अन्तर्ध्वनि सदा सुनाई पड़ती है। इसी प्रवाह में मानव तथा पशु दोनों बहे जा रहे हैं।

हर एक वृत्त के लिए एक केन्द्र होता है, उसीके आधार पर वृत्त बनता है। इन सब इच्छाओं का केन्द्र-भूत वस्तु "मैं" है। "मैं" ही से बढ़ते-बढ़ते सारा संसार नज़र आता है। मेरा शरीर, मेरा घर, मेरी स्त्री, मेरा गाँव, मेरा देश, मेरी जाति, मेरी सभ्यता, मेरा धर्म, मेरा सम्प्रदाय, आदि व्यवहार "मैं" को केन्द्र बना कर चल रहे हैं। "मैं" तथा "मेरा" यह सब जगह व्याप्त है। इन्हीं दो को द्वन्द्व, द्वैत या नाना कहते हैं। एक देखने वाला "मैं" और एक दृश्य विषय "मेरा" ये दोनों हर एक प्राणी के जीवन में मौजूद हैं। इन्हीं दोनों से संसार का अस्तित्व है। संसार का हर एक प्राणी समझ रहा है कि एक "मैं" हूँ, और "मैं" से भिन्न दूसरे पदार्थ वे हैं जिन्हें "मैं" देखता हूँ, छूता हूँ, पकड़ता हूँ, फेंकता हूँ। इन्हीं बाहरी पदार्थों के रूप पर वह प्राणी मुग्ध होता है; उसे आशा होती है कि इन पदार्थों के सम्पर्क में आने से, इनके पास रहने से, इनका स्पर्श करने से, उसे सुख मिलेगा। इस आशा से वह इन बाहरी पदार्थों से, इन बाह्य विषयों से, प्रेम करता है, इन्हें बड़े प्रेम से "मेरा" कह कर पुकारता है। इनमें से किसी को वह 'मेरा धन', किसी को 'मेरा शरीर', किसी को 'मेरा भाई', किसी को 'मेरी स्त्री', किसी को 'मेरा देश', किसी को 'मेरी जाति', किसी को 'मेरी सभ्यता', आदि आदि कह कर पुकारता है। इसी "मेरा" के पीछे वह अपने शरीर को पुष्ट और बलवान, अपने धन को असीम, परिवार को सम्पन्न, कला को उन्नत, सभ्यता को विकसित, चरित्र को श्रेष्ठ बनाने का प्रयत्न करता है। परन्तु यह पहले ही देख चुके हैं कि शारीरिक बल और चरित्र में, सङ्घ-शक्ति और कला में, इच्छाओं और प्रवृत्तियों में मनुष्य पशु से बढ़ कर नहीं हो सकता। जहाँ-जहाँ बाह्य पदार्थों का आश्रय लेना पड़ता है, जहाँ-जहाँ विषय का राज्य है, वहाँ सर्वत्र पशु श्रेष्ठ है, आदर्श है, मनुष्य उसका मुक़ाबला नहीं कर सकता। जहाँ तक "मेरा" का राज्य है वहाँ सर्वत्र पशु बड़ा है, मनुष्य छोटा। इससे यह साफ़ ज़ाहिर है कि "मेरा" के राज्य में रहना पशु का काम है; विषयों में सुख की खोज करना पशुत्व है; द्वैत या नाना को देखना पशु-धर्म है। फिर मानव धर्म क्या है? मनुष्य की मनुष्यता किस बात में है?

फ़ारसी की एक उक्ति है—

तफ़्रक़ः दर रूहे हैवानी बुअद।
रूहे वाहिद रूहे इन्सानी बुअद॥

पशु नाना को देखता है। यह नाना, द्वैत, "मैं"

और "मेरे" का व्यवहार, मनुष्य तथा पशु दोनों में समान है। दोनों के बीच सब क्षेत्रों में समानता दीखती है। फिर मानव तथा पशु में अन्तर कहाँ है? दोनों के बीच में रेखा कहाँ खींची जा सकती है?

अन्तर की रेखा—मानव धर्म

रूहे वाहिद रूहे इन्सानी बुअद।

इन्सान एक देखता है। मनुष्य "मेरा" की ममता त्याग कर केवल "मैं" में सन्तुष्ट रहता है। मानव बाह्य विषयों में सुख नहीं ढूँढ़ता। वह परतन्त्र नहीं, स्वतन्त्र है। यही पशु तथा मानव में अन्तर है। यही मानव धर्म है। एक न देखे, सुख की खोज में नाना विषयों के पीछे भटकता फिरे, और मानव भी रहे, यह असम्भव है। द्वैत प्रपञ्च को छोड़ कर अद्वैत में आना, सांसारिक भोगों में सुख नहीं है, यह जान कर विषयों से अलिप्त हो जाना—यही मानव का मानवत्व है।

द्वैत को देखते-देखते मानव को उसमें शङ्का होने लगती है। नाना प्रकार के सांसारिक भोगों से सुख पाने का प्रयत्न करते-करते मनुष्य को बार-बार कष्ट ही उठाना पड़ता है; आत्यान्तिक सुख कभी नहीं मिलता। तब वह सोचने लगता है कि क्या इस संसार में सचमुच सुख कोई वस्तु है, जिसके पीछे लोग दौड़े जा रहे हैं? क्या दारा, सुत, परिवार, धन, सम्पत्ति, राज्य, यश, इनमें सचमुच कोई सुख है अथवा यह सब केवल मृगतृष्णा ही है? यह सोचते-सोचते मनुष्य बेचैन हो जाता है। उसके मन में विविध प्रकार की शङ्काएँ उठने लगती हैं। सत्य क्या है? असत्य क्या है? दुःख क्या है? सुख क्या है? नित्य क्या है? अनित्य क्या है? इस प्रकार की अनेक शङ्काएँ उसके चित्त में उत्पन्न होती हैं। वह निरन्तर इस प्रश्न पर विचार करने लगता है कि वह जिन विषयों को भोग रहा है, वे वास्तव में सत्य हैं अथवा असत्य, जिन क्रियाओं को कर रहा है वे सचमुच सुखद हैं या दुखःद, उन क्रियाओं को करना मनुष्य का धर्म है अथवा नहीं।

यह शङ्का, दृश्य प्रपञ्च में यह अविश्वास, सांसारिक सुख से यह विमुखता केवल मानव में होती है। मानव मननधर्मा है। सोचने वाला है। मनु, टु थिङ्क, विचारना, मनन करना, इसी से 'मानव' शब्द सिद्ध होता है। मनन करने वाले को ही ये शङ्काएँ होती हैं। पशुओं में तथा मानव में समान धर्म अनेक हैं, पर यही एक बात है जो कितना ही खोज करने पर भी मानवेतर जीव-जन्तु में नहीं मिलती। यही एक वस्तु है जिससे मानव का मानवत्व है, यही एक ध्रुव रेखा है जो मानव तथा पशु-जगत के क्षेत्र को नियत करती है।

मानव संसार पर दृष्टि दौड़ाता है। वह क्या देखता है? "मेरा" की माया में फँस कर लोग व्यवहार में लीन हैं, अशाश्वत सुख के पीछे दौड़े जा रहे हैं, पूर्ण शुद्ध सुख को भूल गए हैं, अपना सुख बाह्य जगत में खोजते हैं, पशुवत दूसरे पर (विषय पर) अवलम्बित हैं—उसीसे उन्हें सुख और दुःख होता है। वह स्पष्टतया देखता है कि जहाँ सुख है, वहाँ दुःख है; वहीं पशुता है; जहाँ परावलम्बन है, वहाँ दासता है; जहाँ स्वराज्य नहीं, वहाँ पर राज्य है, विषयासक्ति है। "मेरा" का राज्य द्वैत का राज्य है, विषय का चक्र है, अहङ्कार की प्रकट मन्त्रशाला है। यह देख उसके हृदय में विह्वलता होती है। वह वैराग्य में सन जाता है; संसार के अशाश्वत सुखों को लात मार कर अपना जन्म-स्वत्व पाने की चेष्टा करता है; पशु-राज्य से निकल कर उस राज्य में प्रवेश करने का यत्न करता है, जो मनुष्य का अपना राज्य है। तिलक ने कहा है—"स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है।" भौतिक जगत में यह सत्य है। साथ-साथ मानव धर्म के विषय में भी यह सत्य है। विषय-वासनाओं की ग़ुलामी छोड़ कर स्वराज्य प्राप्त करना, "मेरा" के राज्य को लात मार कर "मैं" के राज्य में आ जाना मानव का जन्मसिद्ध अधिकार है। इसी अधिकार को पाने के लिए मानव की उत्पत्ति हुई है। जो सच्चा मानव है, जो सभी कामों को विवेक-बुद्धि के साथ करता है, उसकी आँखों के सामने सांसारिक भोगों की अनित्यता झलकने लगती है; वह इस रहस्य को देखने लगता है कि अनित्य विषयों का चाहे जितना उपभोग किया जाय, वह विशुद्ध सुख नहीं मिल सकता जिसके लिए मनुष्य के प्राण व्याकुल हैं। यह सोच कर वह विषयों से मुँह मोड़ लेता है, अपने में निरत हो जाता है।

महाभारत में राजा ययाति की कथा है। ययाति ने एक हज़ार वर्ष तक राज्य किया। जब उनका शरीर जराजीर्ण हो गया और संसार से विदा लेने का समय आया तो ययाति ने देखा कि इतने दिनों तक राज्य के सभी सुख, संसार के सभी भोग भोगने पर भी उन्हें

विषय-सुख से तृप्ति नहीं हुई। उन्होंने मन की वेदना अपने पुत्र पर प्रगट की और कहा कि हृदय में सुख-भोग की लालसा लेकर मरने से मेरी मुक्ति नहीं हो सकती। तुम अपना यौवन मुझे दो, जिससे मैं एक जन्म और भी विषयों का भोग करके उनकी अनित्यता को देख सकूँ। पितृभक्त पुत्र ने अपना यौवन पिता को दे दिया और उनका वार्द्धक्य स्वयं ले लिया। ययाति ने पुत्र का यौवन लेकर एक हज़ार वर्ष और राज्य भोगा; संसार में जितने भी सुख के उपकरण, भोग के सामान, विलास के साधन थे, सबका जी भर कर आस्वादन किया। परन्तु उन्हें तृप्ति नहीं हुई। अन्त में ययाति ने कहा—

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥
पृथिव्यामस्ति यत्किञ्चित् हिरण्यं पशवः स्त्रियः।
तत्सर्वं नाऽलमेकस्य इति मत्वा शमं व्रजेत्॥

विषयों के उपभोग से काम की शान्ति नहीं होती; अग्नि में घी के समान यह वासनाओं को और भी उग्र बना देता है। संसार में जितनी भी सम्पत्ति है, जितने पशु और जितनी स्त्रियाँ हैं, सब यदि एक मनुष्य को दे दी जायँ तो भी उसकी वासनाएँ तृप्त नहीं हो सकतीं, यह समझ कर विषय को त्याग देना चाहिए—विषय से विमुख होकर शान्ति की खोज करनी चाहिए।

एक ऐसी ही कहानी उपनिषद में है। जब याज्ञवल्क्य वृद्ध हो गए और घर छोड़ कर तपस्या करने के लिए जङ्गल जाने लगे तो अपनी दोनों स्त्रियों, गार्गी और मैत्रेयी, को बुला कर कहा—मैंने तुम लोगों के साथ बहुत सुख भोगा, अब कुछ दिन तपस्या करना चाहता हूँ, विदा दो। तुम लोग घर और सम्पत्ति लेकर आनन्द से रहना।

मैत्रेयी ने पूछा—

यन्नु म इयं भगोः सर्वा पृथिवी वित्तेन पूर्णा स्यात्कथं तेनामृता स्याम्।

महाराज! यदि यह समस्त पृथ्वी द्रव्य से पूरित हो जाय तो क्या उसे लेकर मैं अमृता हो सकूँगी?

याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया—

नेति × × × यथैवोपकरणवतां जीवितं तथैव ते जीवितं स्यादमृतत्वस्य तु नाशास्ति वित्तेन।

नहीं। जैसे अन्य उपकरणवान लोग जीते हैं, वैसा ही तुम्हारा भी जीवन होगा। धन से अमृतत्व नहीं मिल सकता।

मैत्रेयी ने कहा—

येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्यां यदेव भगवान्वेद तदेव मे ब्रूहि।

जिस धन से मैं अमृता नहीं हो सकती, उस धन को लेकर मैं क्या करूँगी? यदि आप जानते हैं तो मुझे वह बात बताइए जिससे मैं अमृता हो सकूँ।

याज्ञवल्क्य पत्नी की यह वाणी सुन कर बहुत ही प्रसन्न हुए। उन्होंने मैत्रेयी को संसार की असत्यता, विषयों की अनित्यता, सुख-दुख की असारता का उपदेश दिया; बताया कि "मेरा" का राज्य छोड़ कर "मैं" के राज्य में प्रवेश करो, अनित्य सुखों को त्याग कर नित्य मानव धर्म की साधना करो।

यह धर्म ही मानव का मानवत्व है। इसकी साधना करना ही, सुख-दुःखों के बन्धन से मुक्त हो जाना ही परम पुरुषार्थ है। विषयों का साथ छोड़ने से मनुष्य विषय-जनित सुख-दुःख, पुण्य-पाप, स्वर्ग-नरक, धर्माधर्म, सदाचार-दुराचार, भक्ष्याभक्ष्य, कर्तव्याकर्तव्य, मानापमान, आदि समस्त द्वन्द्वों से मुक्त हो जाता है; "मेरा" के बन्धन से छूट कर "मैं" के अनन्त अशोक, अभय राज्य में पहुँच जाता है। "मैं" के राज्य में पहुँच कर मानव सदा "मैं हूँ", "मैं हूँ" के जप में लीन रहता है; अपने स्वरूप को पहचान जाता है; एक देखने लगता है; अमृत हो जाता है।

पर जब तक शरीर है, तब तक पूर्णरूपेण विषय का त्याग असम्भव है। शरीर रहते उसका ज्ञान मानव को होता रहता है। वह देखता है कि "मैं" का शरीर अधिष्ठान है। "मैं" को पाना चाहें तो शरीर के प्रति भी कुछ कर्त्तव्य है। सब शरीर "मैं" के ही हैं। क्योंकि सब में वही एक "मैं" रमता है। अतः मानव "मैं" तथा शरीर के द्वन्द्व जगत में रहते हुए, पूर्णतया "मैं" के राज्य में जाने की अर्थात स्वराज्य-प्राप्ति की चेष्टा करता है। सब शरीरों में अपने "मैं" को देखते-देखते, "मैं" के वृत्त को विशाल करते-करते, केन्द्र के साथ एक महान समरेखा बना देता है। उस समरेखा पर सुव्यवस्थित रहता है। जल में, थल में, पृथ्वी और आकाश में, सूरज और

तारों में, नीच और ऊँच में, पापी और पुण्यात्मा में, मित्र और शत्रु में, सर्वत्र "मैं" ही "मैं" देखने लगता है; "मैं" के राज्य में पहुँच जाता है। स्वराट हो जाता है। इसी स्थिति को लोग जीवन्मुक्ति कहते हैं। यही परम पुरुषार्थ है, यही स्वराज्य है, यही मोक्ष है, निर्वाण यही है, शून्य यही है। इसी "मैं" की प्राप्ति, अद्वैत का लाभ, शाश्वत सुख की अनन्त शीतलता, मानव धर्म है। यही अध्यात्म-तत्व है। यही है ! यही है !! यही है !!! *

* लेखक महोदय द्वारा काशी-विद्यापीठ-सुलभ-व्याख्यानमाला में दिए गए एक व्याख्यान के आधार पर।

—सम्पादक 'चाँद'



जॉनबुल—हाय बाप रे ! बड़ा दर्द होता है। रात-दिन खाना और सोना हराम हो रहा है !
लेडी-डैंटिस्ट—मुझे बड़ा खेद है महाशय, आपकी अक़्ल की दाढ़ सड़ गई है !!

अद्भुत सौदा

[पं० तारादत्त मिश्र, बी०ए० (ऑनर्स), काव्यतीर्थ]



अपनी स्त्री के मरने के बाद कल्लू मदारी को अपने दोनों लड़कों जग्गू और बीरजू के पालन-पोषण का भार अपने ऊपर लेना पड़ा। उसके पास एक बन्दर था। वह उसे बेटा रघुआ कह कर पुकारा करता था और वास्तव में उसे बेटे की तरह प्यार भी करता था। जब घर में स्त्री थी तो उसे इन लड़कों के विषय में विशेष चिन्ता न थी। वह रघुआ को लेकर दूर-दूर शहरों और देहातों में निकल जाया करता था और महीने दो महीने बाहर ही रह, रघुआ को नचा कर अपने परिवार के खाने से अधिक ही पैदा कर लेता था। पर अब ऐसा करने से लाचार हो गया। घर में दो लड़कों के सिवा और कोई न था। अब उसे अपने हाथ से रसोई बनानी पड़ती थी। एक रात भी घर से बाहर रहना उसके लिए कठिन हो गया। यद्यपि अभी भी वह अपनी जीविका के लिए रघुआ को नचाने जाया करता था, पर आसपास के गाँवों में नचा कर ही फिर शाम तक घर लौट आता था। धीरे-धीरे उसकी आमदनी कम होने लगी। कारण एक ही नाच को देखते-देखते सबों की, यहाँ तक कि बच्चों की भी, उत्सुकता कम हो गई थी। आमदनी के कम होने से उसे बहुत कष्ट होने लगा। कभी-कभी तो रात-रात भर भूखे ही रह जाना पड़ता। परन्तु अपने ऊपर सब कष्टों को सह कर भी उसने बच्चों तथा रघुआ को कभी कष्ट न होने दिया। इन कष्टों के रहते हुए भी वह भविष्य-सुख की आशा से उत्साह के साथ अपना जीवन बिताने लगा, जैसे प्यास से व्याकुल कोई पथिक सामने कुछ दूर पर बहती हुई नदी को देख उत्साहपूर्वक लपकता हुआ आगे बढ़ा चला जाता है।

इसी तरह कुछ वर्ष बीत गए। जब जग्गू और बीरजू सयाने हुए और अच्छी तरह काम-धाम करने के योग्य हो गए तो कल्लू ने सोचा—"अब मेरा कष्ट दूर हुआ। लड़के कमाएँगे और मैं बैठे-बैठे खाऊँगा। जो मेरी इच्छा होगी वह करूँगा। दिन-रात रघुआ के साथ खेलता रहूँगा। बेटा रघुआ को भी मेरे साथ बहुत कष्ट हुआ है, इसे भी सुख होगा। जग्गू और बीरजू इसे बड़े भाई की तरह मानेंगे।" इस सुख की कल्पना में उसे जितना आनन्द हुआ शायद उतना आनन्द उस सुख की वास्तविक अवस्था में भी न होता।

जग्गू और बीरजू को अपने पिता की जीविका पसन्द न आई। उन लोगों ने खेती करना आरम्भ किया। खेती से ख़ूब ही लाभ हुआ और उसी लाभ से उन लोगों ने एक गाय ख़रीदी। गाय को चराने का भार कल्लू के ऊपर पड़ा। पहले तो कल्लू को यह भार कठिन जान पड़ा। वह स्वतन्त्र विचार का था, उसे लड़कों की यह ग़ुलामी पसन्द न आई। अतएव इस काम में उसने अनिच्छा प्रगट की। पर लड़कों की बात से मालूम हुआ कि बिना कुछ काम किए, घर में योंही पड़े रहने से उसका निर्वाह न होगा। अब उसे मालूम हो गया कि पहले उसने जो स्वतन्त्रता की कल्पना की थी वह कोरी कल्पना मात्र थी। उसने जिसे जल समझा था वह पास आने पर मरीचिका निकली।

२

कल्लू पहले बन्दर का नचाने वाला मदारी था, अब चरवाहा हो गया। अब उसे अपनी इच्छा के विरुद्ध भी गाय को खोल कर चराने के लिए ले जाना पड़ता था। एक तो अवस्था ढल गई थी, दूसरे इस काम में उसे उत्साह भी न था। अतएव उसके लिए यह भार दुस्सह हो गया। इस पर भी लड़कों को अपने पिता की परवाह कम ही थी। वही गाय को चराता था, पर लड़कों के मन में इतना भी विचार न था कि वे अपने पिता को थोड़ा सा दूध दे दें। किसी तरह सूखी रोटी मिल जाती थी, यही बहुत था। धीरे-धीरे वह दुबला होने लगा। पर इसकी चिन्ता किसी को भी न थी। यदि चिन्ता थी तो केवल रघुआ को। कल्लू के दोनों लड़कों ने अपनी

पितृ-भक्ति का परिचय दे दिया था, पर रघुआ वास्तव में अभी भी उसका बड़ा बेटा था।

जब प्रातःकाल कल्लू गाय को खोल, चराने के लिए निकलता तब रघुआ भी पीछे-पीछे जाता। पास ही जङ्गल में मवेशियों की चरागाह थी। वहाँ पहुँच किसी वृक्ष के नीचे कल्लू बैठ जाता और रघुआ के साथ खेल-खेल कर अपने दिल का अरमान पूरा करता था। कभी-कभी ठण्डी हवा के लगने से जब कल्लू को नींद आ जाती तब रघुआ गाय की रखवाली करता। बीच-बीच में एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर उछल-उछल कर आम, जामुन, अमरूद, नासपाती आदि फलों को भरपेट खाता और कल्लू के लिए भी जमा करता। कल्लू का दुबला-पतला शरीर देख कर रघुआ के मन में बड़ी चिन्ता होती थी। वह भली भाँति समझता था कि घर पर लड़के इसकी परवाह नहीं करते तथा इसे कभी दूध भी नहीं देते। इसी विचार से जब कभी नींद में कल्लू का मुँह खुल जाता तो रघुआ पत्ते के दोने में दूध दुह कर उसके मुँह में डालने लगता। इसी बीच में कल्लू की नींद खुल जाती और सामने रघुआ को दूध पिलाते देख उसका हृदय प्रेम से गद्गद हो उठता। वह उसे छाती से लगा लेता और आनन्द में इस तरह तन्मय हो जाता जैसे एक योगी ब्रह्म के ध्यान में तन्मय हो जाता है।

इन दिनों कल्लू का स्नेह रघुआ पर और भी बढ़ गया था। उसे अपने लिए विशेष परवाह न थी, पर वह रघुआ को सुखी देखना चाहता था। वह अपने बेटों से बराबर ही झगड़ा किया करता था कि रघुआ को कम से कम आधा सेर दूध देना चाहिए। पर लड़के कभी देने को तैयार न होते। अतएव वह कभी-कभी दूध चुरा लाता और छिप कर रघुआ को पिलाता। लड़के दूध की चोरी हो जाने पर बहुत रञ्ज होते और बाप को डाटते। आख़िर एक रोज़ बीरजू ने अपने बाप को चोरी से दूध पिलाते देख लिया। फिर क्या था, लगा रघुआ को मारने, बहुत पीटा, कल्लू ने बीच में आकर छुड़ाया। बीरजू क्रोध से लाल-लाल आँख किए पिता को धमकाते और गुनगुनाते बाहर चला गया।

३

मनुष्य अपने ऊपर किए गए अत्याचारों को तो किसी तरह सह सकता है, पर अपने प्रियजनों के ऊपर अत्याचार होते देख कर मुर्दे-मुर्दे मनुष्यों का ठण्डा रक्त भी खौलने लगता है। ठीक वही हालत कल्लू की हुई। आज तक न मालूम उसके स्वतन्त्र विचार कहाँ लुप्त हो गए थे, न मालूम क्यों वह लड़कों का ग़ुलाम बना हुआ था। पर आज रघुआ के ऊपर होने वाले अत्याचार ने उसके स्वतन्त्र विचारों को फिर से जागृत कर दिया। मुर्दे में फिर जान आ गई। उसे अपने में एक नई शक्ति का अनुभव होने लगा। फिर क्या था, रघुआ को साथ ले घर से बाहर हुआ, प्रतिज्ञा कर ली कि इस घर में फिर न आऊँगा। रघुआ कल्लू के पीछे चला, पर बीच-बीच में घूर-घूर कर पीछे की ओर देखता जाता था। उसके हृदय में जग्गू और बीरजू के प्रति स्नेह था। शायद वह चाहता था कि जाने के पहले दोनों भाइयों से मिल लूँ। रात चोट खाने का अफ़सोस उसके हृदय में ज़रा भी न था। पर जग्गू और बीरजू का हृदय द्वेष से भरा था। जाती बार उन लोगों ने पिता से भी मुलाक़ात न की, रघुआ को कौन पूछे।

कल्लू फिर अपनी पुरानी जीविका पर आ डटा। रघुआ बड़ा प्रसन्न था। कल्लू का मन अब बिलकुल निश्चिन्त हो गया। उसने अपना प्रदेश छोड़ दिया और अन्य-अन्य प्रदेशों में जाकर रघुआ को नचाने लगा। एक जगह कहीं अड्डा जमा लेता और वहाँ कुछ दिन रह आसपास के देहातों में नचा, फिर दूसरी जगह चला जाता था। जहाँ जाता खँजड़ी बजाते ही लड़के जुट जाते, थोड़ी ही देर में आदमियों की ख़ासी भीड़ लग जाती। रघुआ नाचने लगता। कभी सिपाही बन कर मालिक को सलाम करता, कभी जज बन कर फ़ैसला लिखता, कभी बजवैया बन कर खँजड़ी बजाता, कभी चरवाहा बन कर पीठ पर लाठी लेकर घूमता, कभी कहार बन कर खटोली ढोने का खेल दिखलाता। इस तरह अपनी अनेकों चाल तथा नाच से लोगों को मुग्ध कर देता। बीच-बीच में ऐसा मुँह बनाता कि लोग हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाते। बस रघुआ की एक ही बार की नाच में कल्लू को काफ़ी पैसे मिल जाते थे। नाच ख़तम होने के बाद जब कल्लू आगे चलता तब रघुआ पाँव से खुट-खुट करते कभी दाहिने, कभी बाएँ, पीछे की ओर हुलक-हुलक कर देखता हुआ उसके पीछे-पीछे चलता। जनता को ख़ुश कर कल्लू आनन्दित हो इस तरह आगे बढ़ता मानो एक राजा

लड़ाई में विजय प्राप्त कर अपने सेनापति के साथ अपनी राजधानी को लौट रहा हो।

शाम होते-होते कल्लू जब डेरे पर पहुँचता तो नित्य भोजन बनाता। उस समय रघुआ हमेशा चूल्हे के पास बैठा रहता था। वह सीझते हुए भात की गद्गद आवाज़ सुनने के लिए बहुत ही उत्सुक रहता था। कड़ाही में साग को डालने से जो छाँय से आवाज़ होती थी वह तो रघुआ के कानों में वीणा की ध्वनि से भी अधिक आनन्द पैदा कर देती थी। इसी तरह कल्लू और रघुआ का पिता-पुत्र-वत जीवन बीतने लगा।

४

एक बार कल्लू ने कलकत्ते के पास किसी गाँव में डेरा डाला। बाबू महेन्द्रनारायण राय वहाँ के एक प्रतिष्ठित धनी-मानी व्यक्ति थे। उन्हें बन्दर पालने की धुन थी। जब उन्होंने रघुआ को देखा तो उस पर लट्टू हो गए। रघुआ सचमुच बड़ा ही सुन्दर था। महेन्द्र बाबू ने कल्लू को बुला कर रघुआ को अपने हाथ बेच देने के लिए कहा। महेन्द्र बाबू के घर में बन्दरों की कमी न थी। वे रघुआ के बदले एक नहीं, बल्कि दो या तीन बन्दर तक देने को तैयार थे। उन्होंने कल्लू से उसका मनमाना दाम देना भी स्वीकार किया। पर कल्लू को रघुआ को देना किसी तरह स्वीकार न था। तब तो महेन्द्र बाबू को बड़ा क्रोध आया। उन्होंने उसे बड़ा धमकाया। पर कल्लू दृढ़ था, वह टस से मस न हुआ।

डेरे पर लौट कर कल्लू ने विचारा कि कल इस गाँव को छोड़ दूँगा। इसी विचार से सब सामान ठीक कर रात में सो गया। इधर महेन्द्र बाबू ने सीधी अँगुली घी न निकलता देख रघुआ को उसी रात दो-एक आदमियों से चुरवा लिया। सवेरे उठ कल्लू ने देखा, रघुआ का पता न था। इधर-उधर सब जगह ढूँढ़ा, कहीं पता न लगा। समझ लिया हो न हो महेन्द्र बाबू ने कोई लकड़ी मारी है। वह बन्दर को खोजता हुआ उनके दरवाज़े पर गया, पर महेन्द्र बाबू ने उसे रघुआ के मूल्य में पाजी-बदमाश आदि कह कर गाँव से बाहर निकलवा दिया। कल्लू के मुँह से कोई शब्द भी न निकला। कारण वह जानता था कि महेन्द्र बाबू के सामने किसी की आवाज़ तक न निकलेगी। केवल हृदय में मार्मिक व्यथा हुई। यह वियोग एक बन्दर का वियोग नहीं था। उसके हाथ से तो उसका बड़ा बेटा छीन लिया गया था।

रघुआ से बिछुड़ने के बाद कल्लू के मन में वैराग्य सा उत्पन्न हो गया। अब संसार में कोई भी अभिलाषा न रह गई। वह लौट कर घर भी न जा सकता था, कारण घर न जाने की प्रतिज्ञा कर ली थी। उसने सोचा, अब इस वृद्धावस्था में कुछ तीर्थ-भ्रमण कर लूँ। पर इसके लिए विशेष रुपए की आवश्यकता थी। अतएव उसकी इच्छा कुछ रुपए पैदा कर लेने की हुई। भाग्यवश कलकत्ते में कहीं एक सरकस कम्पनी में उसकी नौकरी लग गई। इस कम्पनी में वह बन्दरों को अद्भुत-अद्भुत खेल सिखलाया करता था। जन्म भर बन्दर नचाते-नचाते वह इस कला में बहुत ही प्रवीण हो गया था। अपनी कार्य-कुशलता से एक ही वर्ष की नौकरी से उसके पास क़रीब ५००) हो गए। पर उसका मन नौकरी में न लगता था। गत एक वर्ष में रघुआ की याद से वह बहुत ही दुःखी रहा। बराबर रघुआ के बारे में सोचता रहता था। कभी-कभी रात-रात भर नींद नहीं आती और आती भी तो प्रायः रघुआ का स्वप्न देखता। रघुआ स्वप्न में आता था और उसके सामने थिरक-थिरक कर नाचने लगता था, पर जब कल्लू उसे पकड़ने के लिए आगे हाथ बढ़ाता तो उसकी नींद टूट जाती। रघुआ को कभी भी न पकड़ पाता।

दिन प्रति दिन कल्लू की चिन्ता बढ़ती गई, अतएव उसने नौकरी छोड़ दी। पास में कुल ५०२) रुपए थे। उसने सोचा ये ५०२) रु० हैं, इनमें कुछ रुपए तीर्थ-भ्रमण में ख़र्च करूँगा और बाक़ी रुपयों से अपनी ज़िन्दगी के बाक़ी दिन किसी तरह काट लूँगा।

५

माघ का महीना था। बहुत से यात्री प्रयाग कुम्भ मेला में जा रहे थे। कल्लू भी प्रयाग जाने के लिए कलकत्ते में गाड़ी पर बैठा। जब बर्द्धमान गाड़ी पहुँची तो गाड़ी से उतर पड़ा। कारण रघुआ की याद आ गई। महेन्द्र बाबू का गाँव बर्द्धमान स्टेशन के पास ही था। उसकी इच्छा हुई कि एक बार उस गाँव में जाऊँ और रघुआ को नहीं तो कम से कम उस स्थान को भी देख आऊँ, जहाँ रघुआ से वियोग हुआ था। वह इसी विचार से महेन्द्र बाबू के गाँव में पहुँचा। उनके दरवाज़े से

होकर वह ज्योंही निकल रहा था कि रघुआ पर दृष्टि पड़ी। रघुआ एक ज़ञ्जीर में बँधा उदास मुँह किए बैठा था। सचमुच कल्लू के हाथ से जब से निकला था तब से कभी प्रफुल्लित नहीं हुआ था। कल्लू का प्रेम उमड़ आया। रघुआ ने भी कल्लू को पहचान लिया और ज़ञ्जीर को दाँतों से काट कर उसके पास आना चाहा। पर ज़ञ्जीर का तोड़ना सहज न था। वह छटपटाने लगा। कल्लू भी आगे बढ़ा और उसके शरीर पर हाथ फेर उसे पुचकारने लगा। इसी बीच में महेन्द्र बाबू वहाँ पहुँच गए। कल्लू को देख कर उनके क्रोध का ठिकाना न रहा। वे उसे चोर, बदमाश कह कर डाटने लगे। लोगों की भीड़ लग गई। कल्लू ने सबों से अपना पूरा परिचय देते हुए महेन्द्र बाबू से कहा—"बाबू जी, मेरा बन्दर दे दीजिए। मैं आपके पैरों पड़ता हूँ।" महेन्द्र बाबू के क्रोध का पारा और भी बढ़ गया, उन्होंने क्रोध भरे शब्दों में कहा—"हरगिज़ यह तेरा बन्दर नहीं है।" कल्लू ने फिर कहा—"ख़ैर आप ही का सही, मैं इसे मोल लेना चाहता हूँ। आप जो दाम कहें देने को तैयार हूँ।" महेन्द्र बाबू समझते थे कि इस दरिद्र के पास अधिक रुपए कहाँ से आएँगे। इसलिए उन्होंने कड़क कर कहा—"बड़ा रुपया वाला बना है, देगा १००) रुपए? यदि है तो निकालो।" कल्लू का चेहरा खिल उठा। शीघ्र ही मैले कपड़े से बँधी हुई एक गठरी महेन्द्र बाबू के सामने फेंक दी। महेन्द्र बाबू ने गिना, कुल १०२) थे। रुपए की लालच लगी। १००) रख लिया और २) लौटा कर रघुआ को छोड़ दिया। कल्लू रघुआ को लेकर आगे बढ़ा तो कुछ लोगों ने कहा—"कल्लू तुमने १००) मुफ़्त में फेंक दिए। तुम्हारी तीर्थयात्रा भी न हुई। इस बूढ़े बन्दर के साथ तुम्हें कौन सा सुख होगा?" कल्लू ने विश्वास और प्रेम भरे शब्दों में कहा—"भाइयो, मुझे इस कार्य में तीर्थ-यात्रा से कम फल नहीं हुआ है। १००) गए तो क्या, वर्षों का बिछुड़ा बेटा रघुआ तो मिल गया!"

गीत

[श्री० दिवाकरप्रसाद विद्यार्थी]

भूल जा, फिर यह गीत न गा।
कन्था के मुरझे प्रसून-दल हाय न यों बिखरा॥

(१)

हृदय अभी तक करता धक-धक,
अब तक निरख रही हूँ अपलक,
बुझता हुआ व्यथा का दीपक—
सजनि! न यों उकसा।

(२)

सहसा खुल पड़ता विस्मृति-पट,
वह रजनी, वह गङ्गा का तट,
आती याद सबों की झट-पट,
ज्वाला फिर न जला।

(३)

वह जीवन-इतिहास मनोहर,
निर्झर-नालों से झर-झर कर,
आज कँपा देगा गिरि-गह्वर,
प्रति कण-कण में छा।

(४)

बुझनी व्यथा भभकती पल पल,
क्या तुमको मिलता कलपा कल?
तन्द्रा के ये तार सुकोमल—
निर्दय! यों न कपा।



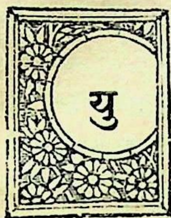
महात्मा सूरदास

प्रीति करि काहू सुख न लह्यो। प्रीति पतङ्ग करी दीपक सों, आपै प्राण दह्यो ॥
अलिसुत प्रीति करी जलसुत सों, सम्पति हाथ गह्यो। सारङ्ग प्रीति करी जो नाद सों, सन्मुख बाण सह्यो ॥
हम जो प्रीति करी माधव सों, चलत न कछू कह्यो। सूरदास प्रभु बिन दुख दूनो, नैनन नीर बह्यो ॥

FINE ART PRINTING COTTAGE ALLAHABAD

कान्यकुब्ज-ब्राह्मण-परिचय

[श्री० रजनीकान्त शास्त्री, बी० ए०, बी० एल०]



युक्त प्रान्तस्थ कन्नौज नामक शहर भारत के विख्यात शहरों में से है। इसकी ऐतिहासिक ख्याति इतिहास के पृष्ठों पर अमिट अक्षरों से लिखी है। सातवीं शताब्दी के प्रारम्भ में थानेश्वर घराने का विख्यात सम्राट् हर्षवर्द्धन, जो उत्तर भारत का अन्तिम शक्तिशाली हिन्दू सम्राट था, अपनी राजधानी थानेश्वर से हटा कर इसी कन्नौज में लाया था। इसी कन्नौज में उक्त प्रतापी सम्राट ने प्रसिद्ध चीनी परिव्राजक ह्वुएनसाङ्ग के सम्मानार्थ एक विशाल सम्मेलन रचा था, जिसमें अनेक करद सामन्त-गण, लाखों बौद्ध, जैन तथा ब्राह्मण, संन्यासी, महात्मा एवं विद्वान इकट्ठे हुए थे। ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में यही कन्नौज दिल्लीश्वर पृथ्वीराज के प्रतिद्वन्द्वी राजा जयचन्द की भी राजधानी हुआ था और यहीं पर सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में प्रसिद्ध पठान वीर शेर ख़ाँ अकबर के पिता हुमायूँ को परास्त कर दिल्ली का बादशाह बन बैठा था।

अति प्राचीन काल में, यहाँ तक कि भगवान् रामचन्द्र के भी समय से पूर्व, कान्यकुब्ज नामक एक विख्यात देश भारत के उत्तरी भाग में अवस्थित था। सम्भवतः इस देश का प्रसिद्ध नगर इसी के नामानुसार कान्यकुब्ज कहलाया, जो कालान्तर में विकृत होकर कन्नौज शब्द में परिणत हो गया।

१—"कान्यकुब्ज" शब्द की व्युत्पत्ति

कन्याः कुब्जा यस्मिन् देशे स कन्याकुब्जः। निपातनात् कुब्ज शब्दस्य परनिपातः। पृषोदरादित्वात् "कन्याकुब्ज" शब्दः "कन्यकुब्ज" इति जातः। ततः स्वार्थेऽणि कृते 'कान्यकुब्ज' इति पदं सिद्धम्। जिस देश में कन्याएँ कुबड़ी हो गईं वह देश कान्यकुब्ज कहलाया।

२—"कान्यकुब्ज" नामकरण का इतिहास

कान्यकुब्ज देश का यह नामकरण क्यों हुआ? वहाँ का कन्याएँ कुबड़ी क्यों हो गई? इसका वृत्तान्त वाल्मीकीय रामायण, बा० का०, अ० ३२—३३ में इस प्रकार लिखा है—

कुशनाभस्तु राजर्षिः कन्याशतमनुत्तमम्।
जनयामास धर्म्मात्मा घृताच्यां रघुनन्दन ॥ १ ॥

अर्थ—विश्वामित्र जी कहते हैं कि हे रामचन्द्र! ऐल (चन्द्र) वंशीय प्रसिद्ध राजर्षि तथा धर्मात्मा कुशनाभ ने, जो महोदयपुर में निवास करते थे, घृताची नामक अप्सरा में सौ कन्याओं को उत्पन्न किया ॥ १ ॥

तास्तु यौवन शालिन्यो रूपवत्यस्स्वलङ्कृताः।
उद्यान भूमिमासाद्य प्रावृषीव शतह्रदाः ॥ २ ॥

अर्थ—वे कन्याएँ रूप और यौवन से सम्पन्न तथा भूषणों से सुसज्जित होकर वर्षा-काल में विद्युत् की तरह बागीचे में विहार करने के निमित्त गईं ॥ २ ॥

गायन्त्यो नृत्यमानाश्च वादयन्त्यश्च राघव।
आमोदं परमं जग्मुर्वराभरण भूषिताः ॥ ३ ॥

अर्थ—हे रामचन्द्र! अच्छे-अच्छे आभूषण पहने हुए उन सबों ने गाने, नाचने तथा बजाने से परम आनन्द प्राप्त किया ॥ ३ ॥

ताः सर्वगुणसम्पन्ना रूपयौवन संयुताः।
दृष्ट्वा सर्वात्मको वायुरिदं वचनमब्रवीत् ॥ ४ ॥

अर्थ—सकल-गुण-सम्पन्न तथा रूप-यौवन-शालिनी उन कन्याओं को देख कर पवन देव, जो सर्वत्र विद्यमान रहते हैं, प्रगट होकर उनसे कहने लगे ॥ ४ ॥

अहं वः कामये सर्वा भार्या मम भविष्यथ।
मानुषस्त्यज्यतां भावो दीर्घमायुरवाप्स्यथ ॥ ५ ॥

अर्थ—मैं तुम सबों को चाहता हूँ; तुम लोग मेरी भार्याएँ हो जाओ और इस मनुष्य भाव का परित्याग कर दीर्घायुता प्राप्त करो ॥ ५ ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा वायोरक्लिष्ट कर्मणः।
अपहास्य ततो वाक्यं कन्या शतमथाब्रवीत् ॥ ६ ॥

अर्थ—पवन देव का यह वचन सुन कर वे कन्याएँ उनके वचन को अपमानपूर्वक हँसती हुई बोलीं ॥ ६ ॥

पिता हि प्रभुरस्माकं दैवतं परमं च सः ।
यस्य नो दास्यति पिता सनो भर्त्ता भविष्यति ॥ ७ ॥

अर्थ—पिता ही हम लोगों के प्रभु तथा परम देवता हैं। वे हम लोगों को जिसे देंगे वही हम लोगों का पति होगा ॥ ७ ॥

तासां तद्वचनं श्रुत्वा हरिः परमकोपनः ।
प्रविश्य सर्वगात्राणि बभञ्ज भगवान् प्रभुः ॥ ८ ॥

अर्थ—पवन देव उनका यह वचन सुन कर अति क्रुद्ध हुए और उन सबों के शरीर में प्रवेश कर षड़ैश्वर्यशाली तथा महासमर्थ होने के कारण उनके शरीर कुबड़े कर दिए ॥ ८ ॥

सच ता दयिता भग्नाः कन्याः परमशोभनाः ।
दृष्ट्वा दीनास्तदा राजा सम्भ्रान्त इदमब्रवीत् ॥ ९ ॥

अर्थ—राजा ने स्नेह के पात्री तथा परम सुन्दरी अपनी कन्याओं को दुःखी तथा कुबड़ी देख कर आश्चर्य से पूछा ॥ ९ ॥

किमिदं कथ्यतां पुत्र्यः को धर्ममव मन्यते ।
कुब्जाः केन कृताः सर्वा श्चेष्टन्त्यो नाभिभाषथ ॥ १० ॥

अर्थ—हे पुत्रियो ! तुम्हारी यह क्या गति हुई ? किसने धर्म की अवहेलना की ? किसने तुम लोगों को कुबड़ी कर दी ? बोलने की चेष्टा करने पर भी तुम लोग नहीं बोल सकतीं ॥ १० ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा कुशनाभस्य धीमतः ।
शिरोभिश्चरणौ स्पृष्ट्वा कन्याशतमथाब्रवीत् ॥ ११ ॥

अर्थ—वे सौ कन्याएँ महामति कुशनाभ का वचन सुन कर अपने मस्तकों से पिता के चरणों का स्पर्श करती हुई बोलीं ॥ ११ ॥

वायुः सर्वात्मको राजन् प्रधर्षयितुमिच्छति ।
अशुभं मार्गमास्थाय न धर्मं प्रत्यवेक्षते ॥ १२ ॥

अर्थ—हे राजन् ! सर्वात्मा पवन देव हम लोगों का धर्षण करना चाहते हैं और पाप मार्ग का आश्रय लेकर धर्म की परवाह नहीं करते ॥ १२ ॥

विसृज्य कन्याः काकुत्स्थ राजा त्रिदशविक्रमः ।
मन्त्रज्ञो मन्त्रयामास प्रदानं सह मन्त्रिभिः ॥ १३ ॥

अर्थ—हे रामचन्द्र ! देवतुल्य पराक्रमी तथा मन्त्रज्ञ उन राजा ने उन कन्याओं को विदा करके अपने मन्त्रियों से उनके विवाह के सम्बन्ध में सम्मति ली ॥ १३ ॥

सुबुद्धिं कृतवान् राजा कुशनाभः सुधार्मिकः ।
ब्रह्मदत्ताय काकुत्स्थ दातुं कन्याशतं तदा ॥ १४ ॥

अर्थ—हे रामचन्द्र ! परम धर्मात्मा राजा कुशनाभ ने अपनी सौ कन्याओं को महात्मा ब्रह्मदत्त के साथ विवाह देने का सद्विचार किया ॥ १४ ॥

तमाहूय महातेजा ब्रह्मदत्तं महीपतिः ।
ददौ कन्याशतं राजा सुप्रीतेनान्तरात्मना ॥ १५ ॥

अर्थ—महातेजस्वी पृथ्वीपति राजा ने ब्रह्मदत्त जी को बुला कर प्रसन्न चित्त के साथ सौ कन्याओं को उन्हें दे दिया ॥ १५ ॥

स्पृष्टमात्रे तदा पाणौ विकुब्जं विगतज्वरम् ।
युक्तं परमया लक्ष्म्या बभौ कन्याशतं तदा ॥ १६ ॥

अर्थ—महात्मा ब्रह्मदत्त ने ज्योंही उन सौ कन्याओं का पाणिग्रहण किया त्योंही उनका सब रोग तथा कुबड़ापन जाता रहा और वे परम सौन्दर्य से सम्पन्न होकर अति शोभनीय हो गईं ॥ १६ ॥

कन्याः कुब्जाऽभवन् यत्र कान्यकुब्जस्ततोऽभवत् ।
देशोऽयं कान्यकुब्जाख्यः सदा ब्रह्मर्षि सेवितः ॥ १७ ॥

अर्थ—हे राम ! जिस देश में कन्याएँ कुबड़ी हो गईं, वही देश इस घटना के कारण सदा ब्रह्मर्षियों से सेवित "कान्यकुब्ज" नामक देश कहलाया ॥ १७ ॥

३—कान्यकुब्ज देश का विस्तार

प्राचीन कान्यकुब्ज देश का विस्तार कहाँ से कहाँ तक था, इसका पता निम्न-लिखित श्लोक से चलता है—

शृङ्गिरस्थलमारभ्य दालभ्यौकान्तमायतः ।
कोशलाद्दक्षिणे देशे कान्यकुब्जः प्रचक्षते ॥

अर्थ—कोशल देश से दक्षिण शृङ्गीरामपुर से आरम्भ कर दालभ्य ऋषि के आश्रम पर्यन्त कान्यकुब्ज देश कहा जाता है। इतिहासों से पता चलता है कि लॉर्ड वेलेज़ली के पूर्व वर्तमान कन्नौज शहर के अतिरिक्त कन्नौज नामक एक सूबा भी था, जिसके अन्तर्गत युक्तप्रान्त के आधुनिक ज़िले पीलीभीत, बरेली, शाहजहाँपुर, फ़र्रुख़ाबाद, कानपुर, फ़तेहपुर, हमीरपुर, बाँदा, इलाहाबाद तथा आधा अवध अवस्थित था। सम्भवतः यही विस्तार प्राचीन कान्यकुब्ज देश का भी था। किसी-किसी के मत से यही कान्यकुब्ज देश पञ्चाल देश भी कहा जाता है,

जहाँ पाण्डव-पत्नी द्रौपदी के पिता द्रुपद राज्य करते थे। इसी कान्यकुब्ज देश में बसने वाले ब्राह्मण कान्यकुब्ज (कनौजिए) ब्राह्मण कहलाए।

पर यहाँ यह प्रश्न उठता है कि राजा कुशनाभ की कन्याओं के कुबड़ी होने की घटना के पूर्व, जबकि उक्त देश का नाम कान्यकुब्ज न था, वहाँ ब्राह्मण निवास करते थे या नहीं और यदि निवास करते थे तो वे कौन ब्राह्मण कहे जाते थे। इन प्रश्नों का उत्तर निम्न-लिखित विवरण से स्पष्ट होगा।

४—पञ्चगौड़ और पञ्चद्राविड़

गौर वर्ण वाले आर्यों के भारत में पदार्पण करने के पूर्व यहाँ पर सन्ताल, कोल, भील, मुण्डा आदि असभ्य जङ्गलियों के अतिरिक्त द्राविड़ नामक एक सभ्य जाति पश्चिमी एशिया से बलूचिस्तान के मार्ग से आकर बस गई थी। इन्हीं की भाषा से तामील, तेलगू, कनाड़ी आदि विविध भाषाओं का, जो वर्तमान काल में दक्षिण भारत में प्रचलित हैं, निकास हुआ है। द्राविड़ों की सभ्यता ऊँची कक्षा की थी। उन लोगों ने क़िले बनाए थे। वे नदियों तथा समुद्रों में नाव और जहाज़ चला कर वाणिज्य किया करते थे। उन लोगों की भाषा, साहित्य तथा धर्म उन्नत अवस्था को पहुँच गया था। ये पहले-पहल भारत के उत्तर भाग में बसे थे, पर जब आर्यों का दौरा इस महादेश में शुरू हुआ तो द्राविड़ लोग विन्ध्यगिरि को नाँघ कर दक्षिण भारत में जा बसे। आर्य सभ्यता की विजय-वैजयन्ती ने जब वहाँ पर भी अपना सिक्का जमाया तो उससे प्रभावित होकर द्राविड़ों ने भी वैदिक धर्म अपना लिया। इसका फल यह हुआ कि उन लोगों में भी वर्णाश्रम धर्म की प्रथा चल निकली और उनमें से जो अध्ययन, अध्यापन आदि ब्राह्मणोचित षट्कर्म में प्रवृत्त हुए वे ही द्राविड़ ब्राह्मण कहलाए। इन द्राविड़ों का रङ्ग आर्यों की अपेक्षा इषत् श्याम था। अतः उत्तम्मन्य आर्य ब्राह्मण द्राविड़ों से अपनी भिन्नता तथा श्रेष्ठता दिखलाने के लिए अपने को गौर ब्राह्मण कहने लगे। यह 'गौर' शब्द ही बिगड़कर कालान्तर में 'गौड़' रूप को प्राप्त हुआ। यद्यपि गौर शब्द विषयक कतिपय अन्य भी कल्पनाएँ हैं, जिन्हें आगे चल कर दिखलाऊँगा, तो भी यहाँ केवल इतना कह देना अनुचित न होगा कि पहले ब्राह्मणों का केवल एक ही (आर्य) समुदाय था; फिर द्राविड़ नामक एक दूसरे समुदाय का प्रादुर्भाव हुआ, जिनमें से पहला तो विन्ध्यगिरि के उत्तर तथा दूसरा इस पर्वत के दक्षिण की ओर निवास करता था। काल पाकर दोनों की जन-संख्या बढ़ती गई, यहाँ तक कि प्रत्येक समुदाय पाँच उपभेदों में विभक्त हो गया, जिनका नामकरण स्वस्वाश्रित देशों के नामानुसार हुआ—

सारस्वताः कान्यकुब्जा गौड़ा उत्कल मैथिलाः।
पञ्चगौड़ाः समाख्याता विन्ध्यस्योत्तर वासिनः॥

—स्कन्दपुराण

अर्थ—विन्ध्यगिरि के उत्तर में बसने वाले सारस्वत, कान्यकुब्ज, गौड़ (मूल जाति), उत्कल और मैथिल, ये पञ्चगौड़ कहलाए। और

कर्णाटकाश्च तैलङ्गा द्राविड़ा महाराष्ट्रकाः।
गुर्जराश्चेति पञ्चैव द्राविड़ा विन्ध्य दक्षिणे॥

—सह्याद्रि खण्ड

अर्थ—विन्ध्यगिरि के दक्षिण में कर्णाटक, तैलङ्ग, द्राविड़ (मूल जाति), महाराष्ट्र और गुर्जर, ये पञ्चद्राविड़ रहते हैं।

स्कन्द पुराण के उक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि कान्यकुब्ज देश में पहले से ही ब्राह्मण रहते थे और वे गौड़ थे। वहाँ के गौड़ ही कान्यकुब्ज देश का यह नाम पड़ने पर देश के नामानुसार कान्यकुब्ज ब्राह्मण कहलाए।

५—गौड़ देश का विस्तार

जो गौड़ अपनी आदि निवास-भूमि गौड़ देश को छोड़ कर अन्यत्र जा बसे वे तो कान्यकुब्ज आदि कहलाए, पर जो अपनी मातृभूमि में ही रह गए वे गौड़ के गौड़ ही कहलाते रहे। इस प्रसङ्ग में गौड़ देश का भौगोलिक परिचय देना आवश्यक है, कारण कि यही देश कान्यकुब्ज आदि शेष चारों वर्गों का आदिम निवास-स्थान था। शक्ति-सङ्गम-तन्त्र के सप्तम पटल में लिखा है—

बङ्गदेशं समारभ्य भुवनेशान्तगं शिवे।
गौड़ देशः समाख्यातः सर्वविद्याविशारदः॥

अर्थ—हे पार्वती! बङ्ग देश से लेकर अमरनाथ तक गौड़ देश कहा जाता है। यह देश सकल विद्याओं में निपुण है। इस विवरण से मालूम पड़ता है कि प्राचीन

काल में बङ्गाल की पश्चिमी सीमा से लेकर पञ्जाब की पूर्वी सोमा तक गौड़ देश का विस्तार था। निम्न-लिखित प्रमाणों से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि यह देश कोशल देश से उत्तर तथा नैपाल की तराई से दक्षिण की ओर अवस्थित था —

श्रावस्तश्च महातेजा वत्सकस्तत्सुतोऽभवत्।
निर्मिता येन श्रावस्ती गौड़देशे द्विजोत्तमाः॥
—मत्स्य पुराण

अर्थ—हे द्विजश्रेष्ठो! महातेजस्वी राजा श्रावस्त के पुत्र वत्सक हुए, जिन्होंने गौड़ देश में श्रावस्ती नामक नगरी बसाई। और भी—

उत्तराकौशले राज्यं लवस्य च महात्मनः।
श्रावस्ती लोकविख्याता श्राविता च लवस्य च॥
—वायुपुराण

अर्थ—कोशल देश से उत्तर महात्मा लव का राज्य था, जहाँ पर लव के द्वारा परिपालित जगद्विख्यात श्रावस्ती नगरी अवस्थित है।

ऊपर लिखित दोनों उद्धरण इस बात की सिद्धि करते हैं कि विख्यात श्रावस्ती नगरी कोशल देश से उत्तर गौड़ देश में बसी थी। अब यदि हमें इस श्रावस्ती नगरी की भौगोलिक स्थिति मालूम हो जाय तो गौड़ देश का ठीक-ठीक पता लग जाय। इतिहासवेत्ता ए० वी० स्मिथ (A. V. Smith) साहब अपनी "अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया" (Early History of India) नामक पुस्तक श्रावस्ती के विषय में यों लिखते हैं —

"Sravasti (Savathi) situated on the upper course of the Rapti at the foot of the hills, was the reputed scene of many of Buddha's striking discourses."

अर्थ—श्रावस्ती (सावत्थी) राप्ती नदी के प्रवाह के ऊपरी भाग पर पहाड़ियों की जड़ के पास अवस्थित थी। कहा जाता है कि यह नगरी गौतम बुद्ध के अति प्रभावशाली व्याख्यानों में से बहुतों की रङ्ग-भूमि थी।

उक्त साहब बहादुर इस नगरी के विषय में और भी लिखते हैं —

"The exact site of Sravasti being buried in the jungles of Nepal, is not known; but its approximate position to the North-East of Nepalganj or Banki in about N. Lat. 28° 6' and E. Long. 81° 50' has been determined."

अर्थ—श्रावस्ती का ठीक स्थान नैपाल के जङ्गलों में धँस जाने के कारण अज्ञात है; पर इसका लगभग ठीक स्थान नैपालगञ्ज या बाँकी के उत्तर-पूर्व की ओर अक्षांश २८°६' और देशान्तर ८१°५०' पर निश्चित किया गया है।

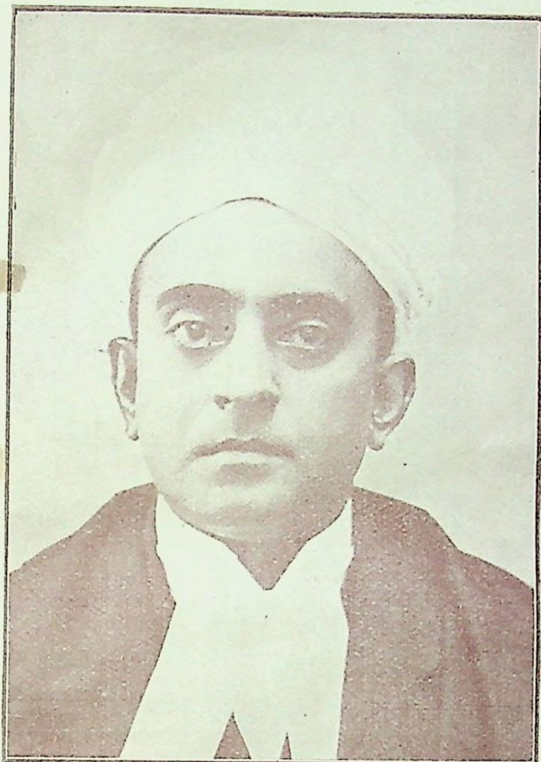
अब पाठकों को श्रावस्ती की अवस्थिति के द्वारा गौड़ देश की अवस्थिति का ठीक अनुमान हो गया होगा और यह स्पष्ट रूप से विदित हो गया होगा, जैसा मैं पहले लिख आया हूँ कि यह गौड़ देश कोशल और नैपाल की तराई के मध्य में बङ्गाल से लेकर पञ्जाब तक पूर्वापर चला गया था। जो महाशय "भुवनेशान्त" का अर्थ कुमारी अन्तरीप व जगन्नाथ धाम व भुवनेश्वर महादेव पर्यन्त लगाते हैं वे भारी भ्रम में पड़े हैं; कारण कि वस्तु-स्थिति, इतिहास तथा प्राचीन आर्षग्रन्थ इन मतों में से किसी की भी पुष्टि नहीं करते।

गौड़ देश की अवस्थिति विषयक दो-एक और भी भ्रान्तिपूर्ण मत हैं, जिनका खण्डन करना ज़रूरी है। कोई-कोई कहते हैं कि वर्तमान गोण्डा ज़िला ही प्राचीन गौड़ देश था। यह हो सकता है कि वह भू-भाग, जहाँ पर आजकल गोण्डा ज़िला है, गौड़ देश का एक अंश रहा हो; पर दोनों को एक मान बैठना पूर्वोल्लिखित प्रमाणों से खण्डित हो जाता है। इसी प्रकार किसी-किसी का जो यह मत है कि प्राचीन बङ्गाल का गौड़ नामक स्थान गौड़ ब्राह्मणों की आदि मातृ-भूमि था वह भी निःसार है। इतिहास से पता चलता है कि कुछ न्यूनाधिक एक हज़ार वर्ष हुए कि बङ्ग देश के हिन्दू राजाओं ने कुछ गौड़ ब्राह्मणों को अपने यहाँ किसी धार्मिक कृत्य के सम्पादनार्थ बुलाया था। वे जहाँ राजाओं के द्वारा बसाए गए उसी स्थान का नाम गौड़ पड़ा। पीछे यह गौड़ नामक स्थान एक समृद्धिशाली नगर हो गया और बङ्गाल के मुसलमान शासकों का कालान्तर में राजधानी बना।

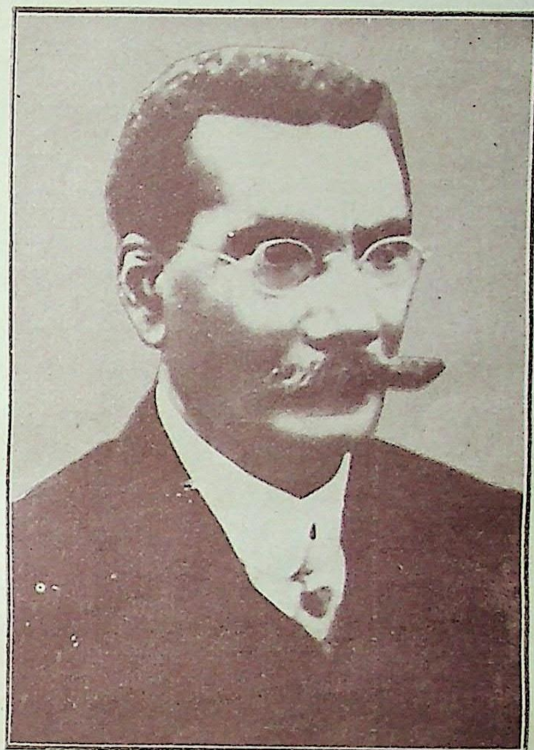
६—गौड़ नामकरण विषयक विविध कल्पनाएँ

ऊपर लिखा जा चुका है कि पञ्चगौड़ समुदाय के अन्तर्गत कान्यकुब्ज आदि सभी वर्ग मूलतः गौड़ ब्राह्मण

जाने वाली कुछ मूर्तियाँ



सर सी० पी० रामास्वामी अय्यर



राव बहादुर आर० श्रीनिवास



श्री० एम० आर० जयकर



डॉ० ऑम्बेडकर

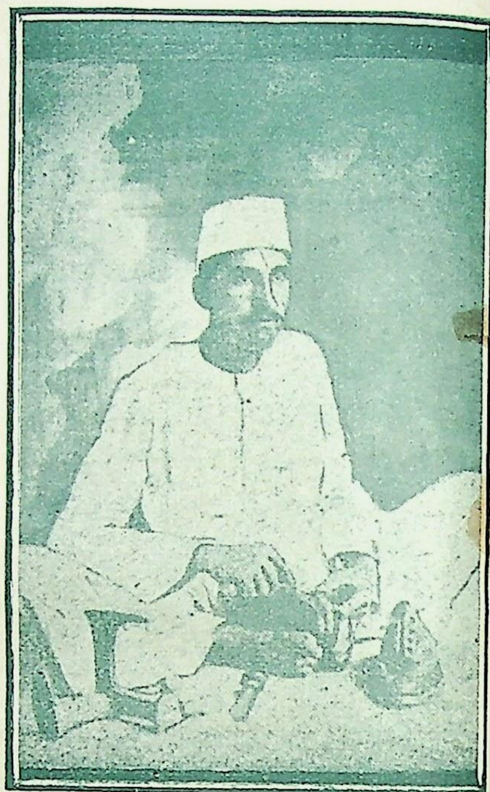
भारत की भावी-आशा



श्रीयुत भीखन मेहतर

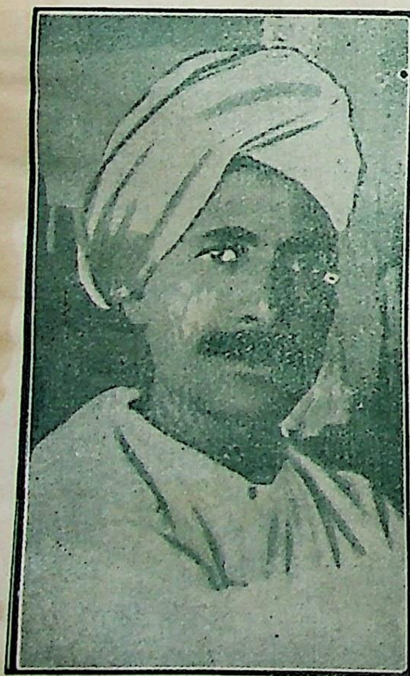
आप मेरठ-अलीगढ़ विभाग की तरफ़ से संयुक्त प्रान्तीय कौन्सिल के सदस्य चुने गए हैं





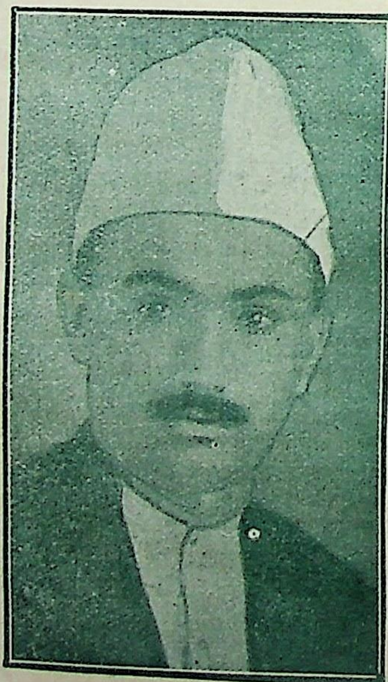
चौधरी रामदयाल चमार

आप लखनऊ शहर की तरफ़ से संयुक्त प्रान्तीय कौन्सिल के सदस्य चुने गए हैं।



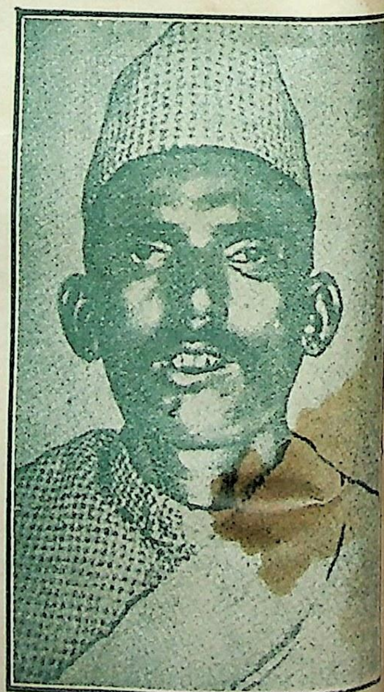
श्रीयुत रामजी दास नाई

आप अमृतसर की तरफ़ से पञ्जाब प्रान्तीय कौन्सिलके सदस्य चुने गए हैं।



श्रीयुत डालू मोची

आप पूर्वीय सिन्ध से बम्बई प्रान्तीय कौन्सिल सदस्य चुने गए हैं।



भगत चन्दीमल चमार

आप दिल्ली प्रान्त की तरफ़ से लेजिस्लेटिव असेम्बली के सदस्य चुने गए हैं।

हैं, और जब वे एक दूसरे से पृथक नहीं हुए थे, उन सबों की एक ही संज्ञा "गौड़" थी। यहाँ पर ये प्रश्न उठ सकते हैं कि विन्ध्योत्तरवासी सभी ब्राह्मणों ने अपने को गौड़ क्यों कहा, गौड़ शब्द का क्या अर्थ है, इत्यादि। इन प्रश्नों के उत्तर में विद्वानों ने जो नाना प्रकार की कल्पनाएँ की हैं, वे नीचे दी जाती हैं। पाठकगण भी अपनी-अपनी अक़्ल लड़ावें—

१—गौड़ ब्राह्मण आर्यवंशीय हैं। इनका रङ्ग इषत् श्याम वर्ण वाले द्राविड़ ब्राह्मणों के मुक़ाबले में गौर था; अतः विन्ध्योत्तरवासी ब्राह्मणों ने अपना नाम गौर ब्राह्मण रक्खा, जो विकृत होकर गौड़ ब्राह्मण हो गया। 'र' और 'ड़' का पारस्परिक परिवर्तन प्रत्यक्ष देखने में आता है। बिहार के उत्तर भाग के रहने वाले, जैसे सारन और चम्पारन ज़िलों के निवासी, प्रायः 'बोरा' को 'बोड़ा' तथा 'सड़क' को 'सरक' बोलते हैं।

२—गुड़ नाम इक्षुरस-पाक का है। गुड़ से चीनी तथा चीनी से नाना प्रकार की स्वादिष्ट मिठाइयाँ बनती हैं। जिन ब्राह्मणों को मिठाई खाने में अधिक रुचि दीख पड़ी तथा जिन्होंने मिठाई के अभाव में गुड़ को ही अपनाया, उन्होंने ही गुड़ के सम्बन्ध से गौड़ ब्राह्मण कहला कर "ब्राह्मणा मधुरप्रियाः" को चरितार्थ किया।

३—गुप्त तथा दुर्बोध विषयों को गूढ़ कहते हैं। जिन्होंने दर्शनशास्त्र के जीव, ब्रह्म, माया, पुरुष, प्रकृति आदि जैसे गूढ़ तत्वों का अध्ययन किया और उन्हें जाना, वे ही गौढ़ (गूढ़ वेत्ति तदधीतेवा) ब्राह्मण कहलाए। फिर 'ढ़' और 'ड़' के पारस्परिक सवर्णता-वश गौढ़ शब्द गौड़ रूप में परिणत हो गया।

४—गोल विद्या गणित ज्योतिःशास्त्र का एक प्रधान अङ्ग है। बिना उसके पढ़े ज्योतिर्विद्या का ज्ञान पूर्ण नहीं होता। जिन्होंने गोल (गोलविद्या) का अध्ययन किया वे ही गौल (गोल+अण्) या गौड़ ब्राह्मण कहलाए। "ल" और "ड" की सवर्णता का प्रमाण लीजिए—

रलयोर्डलयोश्चैव सषयोर्बवयोस्तथा।
वदन्त्येषाञ्च सावर्ण्यमलङ्कारविदो जनाः॥

अर्थ—अलङ्कारशास्त्र के जानने वाले र ल, ड ल, स ष, तथा ब व का सावर्ण्य कहते हैं।

५—गुड (सङ्कोचने) धातु से गुड बनता है। इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है—"यो देहेन्द्रियादीनि स्वतपसा सङ्कोचयति जड़ी करोतीति गुड़ः" अर्थात् जिसने तपस्या करके देहादिक अपने कर्मेन्द्रियों को पापाचरण से रोक कर धर्माचरण में लगाया वह गुड़ हुआ और फिर "गुडस्यापत्यं गौडः" हुआ अर्थात् जो गुड़ की सन्तान हुई वह गौड़ कहलाई।

६—गुड़ (रक्षायाम्) धातु से गुड़ हुआ और गुड़ की सन्तान गौड़ हुई। व्युत्पत्ति इस प्रकार है—"गुड़ति वेदान् रक्षति यः स गुड़ः। गुड़स्यापत्यं गौड़ः।" जो वेदों की रक्षा करता है वह गुड़ है और जो गुड़ की सन्तान हैं वे गौड़ हैं।

७—जिन ब्राह्मणों ने सृष्टि के आदि में पूर्व वर्णित गौड़ को अपना निवास-स्थान बनाया वे ही गौड़ ब्राह्मण कहलाए। पर यहाँ यह प्रश्न उठता है कि गौड़ देश नाम क्यों पड़ा? इस प्रश्न का कोई-कोई विद्वान् यह उत्तर देते हैं कि जिस देश में गुड़ कसरत से पैदा हो वह देश गुड़ के सम्बन्ध से गौड़ कहलाया।

८—कोई-कोई विद्वान यह कहते हैं कि सूर्य का नाम गोल है; अतः जो गोल (सूर्य) से उत्पन्न हुए वे ही गौल (गौड़) कहलाए। ड, ल की सवर्णता का प्रमाण दे ही आए हैं।

९—यजुर्वेद दो प्रकार का है, कृष्ण और शुक्ल। "कृष्ण" शब्द काला, तम, अन्धकार, हिंसा आदि का द्योतक है। "शुक्ल" शब्द स्वच्छ, उज्ज्वल तथा गौर वर्ण का अर्थ रखता है। अतः जिन ब्राह्मणों में शुक्ल यजुर्वेद के पठन-पाठन की परिपाटी चल निकली तथा जिन्होंने अपने आचरण को स्वच्छ बनाए रक्खा वे ही गौर (गौड़) ब्राह्मण के नाम से प्रसिद्ध हुए।

१०—'आदि गौड़ दीपिका' में लिखा है—

नारायणं पद्मभवं वशिष्ठं
शक्तिञ्च तत्पुत्र पराशरञ्च।
व्यासं शुकं गौड़ पदं महान्तं
गोविन्दयोगीन्द्रमथास्य शिष्यम्॥

अर्थ—नारायण (विष्णु) से ब्रह्मा जी उत्पन्न हुए; ब्रह्मा से वशिष्ठ; वशिष्ठ से शक्ति; शक्ति से पराशर; पराशर से व्यास; व्यास से शुकदेव जी तथा शुकदेव जी से गौड़पद पैदा हुए। गौड़पद के शिष्य योगिराज गोविन्द हुए। इन्हीं गौड़पद के वंशज गौड़ ब्राह्मण कहाए।

गौड़ शब्द विषयक पूर्वोक्त दसों कल्पनाएँ पञ्चगौड़ मात्र को दृष्टि में रख कर की गई हैं, न कि केवल पञ्चगौड़ समूहान्तर्गत वर्तमान काल में लोक में प्रचलित गौड़ संज्ञाधारी वर्ग विशेष को। अब पाठकगण स्वयं विचार लें कि इन कल्पनाओं में से कौन सी कल्पना ठीक जँचती हैं। एक और भी (ग्यारहवीं) कल्पना है, जिसे ठीक न समझ मैंने कल्पनाओं की ऊपर लिखी सूची में स्थान नहीं दिया। वह यह है—मुख्य (प्रधान) का उल्टा गौण (अप्रधान) होता है। जो ब्राह्मण मुख्य न थे वे ही गौण वा गौड़ ब्राह्मण कहलाए। पर जब पञ्चगौड़ ही मुख्य नहीं रहे तो मुख्य हैं कौन ? इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं है।

'आदि गौड़ दीपिका' के अनुसार ऋषि गौड़पद के वंशज गौड़ हैं। पर यह मत कई कारणों से अमान्य ठहरता है। "गौड़पद" नाम में दो शब्द हैं ; पर वंशजों की जाति-संज्ञा में केवल "गौड़" शब्द है। पुनः इस मत के अनुसार निःशेष गौड़ों में केवल वशिष्ठ और पराशर ये ही दो गोत्र होने चाहिए; पर गौड़ों (विन्ध्योत्तर वासी ब्राह्मणों) में कश्यप, भारद्वाज, शाण्डिल्य, संकृत आदि अनेक गोत्र हैं। यह हो सकता है कि निःशेष गौड़ तो नहीं, पर उनमें से कुछ, जिनमें उक्त गोत्र पाए जाते हों, गौड़पद के वंशज हों। सम्भवतः राजा जनमेजय ने जिन ब्राह्मणों को अपने यज्ञ में बुला कर भूमि-दान, मान आदि से सन्तुष्ट किया था, वे ही गौड़पद के वंशधर हों और आदिगौड़ कहलाए हों ; क्योंकि इनके पूर्वज शुकदेव जी तथा व्यास जी की घनिष्टता जनमेजय के पूर्वज परीक्षित तथा पाण्डवों के साथ महाभारत तथा भागवत से सिद्ध है। ये सब बातें निम्न-लिखित विवरण से स्पष्ट होंगी।

७—कुरुक्षेत्र और आदिगौड़

किसी-किसी महाशय की यह धारणा है कि गौड़ ब्राह्मणों की आदि निवास-भूमि कुरुक्षेत्र था। वहीं से इनके चार दल निकल कर कान्यकुब्ज, सारस्वत आदि देशों में जा बसे और कान्यकुब्ज आदि ब्राह्मण वंशों के प्रवर्तक हुए ; पर जो दल अपनी मातृ-भूमि कुरुक्षेत्र को छोड़ कर अन्यत्र नहीं गया वही आदिगौड़ की संज्ञा से प्रख्यात हुआ। गौड़ों का मौलिक निवास-स्थान कुरुक्षेत्र था, इस मत की सत्यता वा असत्यता आदिगौड़ों की उत्पत्ति, जो 'ब्राह्मणोत्पत्ति मार्त्तण्ड' में लिखा है, पढ़ने से ही स्पष्ट हो जाएगी। वहाँ स्पष्ट लिखा है कि राजा जनमेजय ने जिन बटेश्वर मुनि तथा उनके १४४४ शिष्यों को अपने यज्ञ में बुलाया था और जिन्हें आदिगौड़ की संज्ञा मिली थी वे गौड़ देश के, न कि कुरुक्षेत्र के, रहने वाले थे—

ते गौड़ ब्राह्मणाः सर्वे गौड़देशनिवासिनः ।
वेदशास्त्रपुराणज्ञः श्रौतस्मार्त्त परायणाः ॥

अर्थ—वेद, शास्त्र और पुराण के जानने वाले तथा श्रौत और स्मार्त कर्मों के करने में तत्पर वे गौड़ ब्राह्मण गौड़ देश के रहने वाले थे। राजा ने उन्हें अपने देश में बसा लिया—

क्षमध्वं चापराधं मे कृपां कृत्वा ममोपरि ।
एवमुक्त्वा स्वदेशे वै वासयामास तान्द्विजान् ॥

अर्थ—राजा ने कहा कि मैंने जो गुप्त रूप से पान के बीड़ों में ग्रामों का दानपत्र लिख कर आप लोगों को दान देने का अपराध किया है, उसे क्षमा करें। ऐसा कह कर राजा ने उन ब्राह्मणों को अपने देश में बसा लिया। सम्भवतः कुरुक्षेत्र में ही, जो उनके तथा उनके पूर्वजों के राज्यान्तर्गत था, राजा ने उन्हें बसने का स्थान दिया हो। इससे सिद्ध होता है कि आदिगौड़ों का कुरुक्षेत्र के साथ कुछ भी मौलिक सम्बन्ध न था। वे वहाँ गौड़ देश से जाकर पीछे से बसे थे। 'जनमेजय दिग्विजय' में लिखा है —

आदिशब्दोपाधिदत्ता ब्राह्मणा तु स्वयंभुवा ।
वेदोऽपिदत्तस्तेनैवह्यादिगौड़ास्तुतो मताः ॥

अर्थ—जिन ब्राह्मणों को स्वयं ब्रह्मा जी ने आदि में वेद पढ़ा कर आदि शब्द की उपाधि दी वे ही आदिगौड़ माने गए। अवश्य ही ब्रह्मा जी ने इन्हें गौड़ देश में ही वेद पढ़ाया होगा।

८—कनौजियों की उत्पत्ति विषयक एक अन्य मत

पहले लिख आए हैं कि जो गौड़ ब्राह्मण कान्यकुब्ज देश में आ बसे अथवा जो उक्त देश का यह नामकरण होने के पूर्व से ही वहाँ बसते थे, वे कान्यकुब्ज वा कनौजिए ब्राह्मण कहलाए। यही मत शास्त्र-सङ्गत तथा युक्ति-युक्त होने से सर्वमान्य है। पर कनौजियों की उत्पत्ति के

विषय में एक और भी मत है, जिसका आधार केवल जनश्रुति है। पं० हरिकृष्ण शास्त्री जी ने कनौजियों की उत्पत्ति स्वरचित 'ब्राह्मणोत्पत्ति मार्त्तण्ड' नामक ग्रन्थ में इसी मत के अनुसार लिखने के पूर्व ही उक्त आधार को स्वीकार किया है—

अथातः संप्रवक्ष्यामि कान्यकुब्ज विनिर्णयम्।
श्रुत्वा द्विजमुखादेतद् वृत्तान्तं पूर्वकालिकम्॥

अर्थ—अब इसके पश्चात ब्राह्मणों के मुख से पूर्वकालीन वृत्तान्त को सुन कर कनौजियों का निर्णय करूँगा। इससे स्पष्ट है कि उक्त पण्डित जी को अपने मत की पुष्टि में जनश्रुति के सिवा कोई शास्त्रीय प्रमाण न मिला। जनश्रुति का मूल्य ही शास्त्रीय प्रमाण के मुक़ाबले में कितना होता है, यह कहने की आवश्यकता नहीं। इस मत का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

रामचन्द्र रावण का वध कर अयोध्या लौटे और अपने पट्टाभिषेक के कुछ समय पश्चात उन्होंने यज्ञ ठाना। इस यज्ञ को देखने के लिए कान्य और कुब्ज नामक दो ब्राह्मण और भी कितने ब्राह्मणों के साथ कान्यकुब्ज देश से अयोध्या आए। कुब्ज रामचन्द्र को रावण की हत्या करने के कारण ब्रह्मघाती मान और उनका दान-दक्षिणा आदि लेना अनुचित समझ अपने भाई कान्य को छोड़ अपने अनुयायी अन्य ब्राह्मणों के साथ सरयू नदी के उत्तर तट पर चला गया; पर कान्य ने स्वानुयायियों के साथ वहीं रह रामचन्द्र का दिया हुआ धनादि स्वीकार कर लिया। जो कुब्ज के साथ सरयूपार चले गए वे तो सरयूपारी (सरवरिए) ब्राह्मण हुए, तथा जो कान्य के साथ सरयू के दक्षिण में रह गए वे कनौजिए (कान्यकुब्ज) कहलाए। इस मत के विषय में जो अनेकों शङ्काएँ उठती हैं, उनका सन्तोषजनक समाधान नहीं दीखता। वे शङ्काएँ ये हैं—

१—इस मत के अनुसार भी कान्यकुब्ज देश पहले से ही विद्यमान था, जहाँ से कान्य और कुब्ज रामचन्द्र का यज्ञ देखने आए थे। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि वहाँ के ब्राह्मण किस नाम से अपना परिचय देते थे। यदि कहो कान्यकुब्ज नाम से, तो उनका वंशप्रवर्त्तक कान्य कैसे हुआ? यह नाम तो उन्हें पहले से ही प्राप्त था। यदि कहो गौड़ नाम से, तो यह शास्त्र-विरुद्ध है। कान्यकुब्ज देश की विद्यमानता सिद्ध हो जाने पर वहाँ के ब्राह्मणों की गौड़ संज्ञा नहीं मानी जा सकती।

२—यदि कान्य सचमुच किसी ब्राह्मण-वंश का प्रवर्त्तक था तो वह वंश केवल कान्य के नाम से विख्यात होता। इस वंश के नामकरण में उसके भाई का कुब्ज का नाम, जो उसे छोड़ कर सरयूपार चला गया था, क्यों घुस पड़ा?

३—दोनों भाइयों के नाम (कान्य और कुब्ज) को समस्त कर देने से कान्यकुब्ज देश का यह नाम बन जाता है, जिससे वह ध्वनि निकलती है कि इन दोनों भाइयों के नामानुसार ही उक्त देश का नाम पड़ा था, जो वाल्मीकीय रामायण से खण्डित हो जाता है।

४—रामचन्द्र ने ब्राह्मण रावण की हत्या की है, यह समाचार सर्वत्र फैल गया था; अतः कुब्ज भी इससे अनभिज्ञ न था। इस बात को जानता हुआ भी कुब्ज, यदि सचमुच उसे अपने ब्राह्मणत्व का अभिमान था तो, एक ब्रह्मघाती के यज्ञ में क्यों आया?

५—यदि अनजान में आया तो जान लेने पर अपने देश कान्यकुब्ज को क्यों नहीं लौट गया? ऐसा न कर वह अपने अनुयायियों के समेत सरयू पार जा बसा, जहाँ उसी ब्रह्मघाती का, उसके उत्तर कोशलेश्वर होने से, राज्य था। ऐसे पापी के राज्य में अपनी निवास-भूमि बना वह अपने सिद्धान्तों से क्यों गिर गया और उसने अपने समेत अपने साथियों को भी रसातल में क्यों ढकेल दिया? इत्यादि।

शोक है कि जिस राक्षस-समाज ने "हन्नो द्विजान् देवयजीन् निहन्मः" को ही अपने जीवन का एक मात्र लक्ष्य बना रक्खा था, उस समाज के प्रमुख नेता रावण जैसे आततायी को, जो अपने कुकर्मों के कारण ब्राह्मण-पद से पूर्णतः परिच्युत हो चुका था, वध कर ब्राह्मण-जाति मात्र के उपकारी रामचन्द्र को कुब्ज ने, स्वयं ब्राह्मण होता हुआ भी, ब्रह्मघाती क़रार देकर अपनी अक्षम्य कृतघ्नता तथा अन्यायशीलता का परिचय दे दिया। पर यथार्थ में ये सब बातें कुछ भी नहीं हैं। इस मत का आधार केवल कपोलकल्पना के सिवा और कुछ भी नहीं होने से यह मानने योग्य नहीं है।

उक्त मत के प्रतिकूल, सरयूपारी अपनी उत्पत्ति इस प्रकार बतलाते हैं कि रामचन्द्र ने उक्त यज्ञ में कान्यकुब्ज

देश से सोलह ब्राह्मणों को, जो अपनी कुलीनता, विद्वत्ता आदि उत्तम गुणों के कारण विख्यात थे, बुला कर और उन्हीं को ऋत्विक्, होता, अध्वर्यु आदि बना कर यज्ञ किया। पुनः यज्ञोपरान्त उन्हें दान-मान आदि से सन्तुष्ट कर स्वराज्यान्तर्गत साख देश में, जो सरयू के उत्तर तट पर अवस्थित था, बसा दिया। वे ही १६ ब्राह्मण सरयू-पारियों के वंशप्रवर्त्तक हुए। ये गोरखपुर, सारन, चम्पारन, शाहाबाद, पटना, गया तथा बलिया ज़िलों में अधिक संख्या में पाए जाते हैं। इनमें गर्ग, गौतम और शाण्डिल्य उत्तम माने जाते हैं।

९—कान्यकुब्जों के प्रसिद्ध १६ गोत्र

अथ गोत्राणि वक्ष्यामि कान्यकुब्ज द्विजन्मनाम्।
कश्यपश्च भरद्वाजो शाण्डिल्यः सांकृतस्तथा ॥
कात्यायनोपमन्युश्च काश्यपश्च धनञ्जयः।
कविस्तो गौतमो गर्गा भारद्वाजस्तथैव च ॥
कौशिकश्च वशिष्ठश्च वत्सः पाराशरस्तथा।
इत्येते कान्यकुब्जानां गोत्राण्याहुश्च षोड़श ॥

अर्थ—अब कान्यकुब्ज ब्राह्मणों के प्रसिद्ध १६ गोत्र कहते हैं—(१) कश्यप, (२) भारद्वाज, (३) शाण्डिल्य, (४) सांकृत, (५) कात्यायन, (६) उपमन्यु, (७) कश्यप, (८) धनञ्जय, (९) कविस्त, (१०) गौतम, (११) गर्ग, (१२) भारद्वाज, (१३) कौशिक, (१४) वशिष्ठ, (१५) वत्स और (१६) पाराशर। कान्यकुब्जों के ये १६ गोत्र कहे गए हैं।

१०—षट्कुल (कुलीन)

कात्यायनोपमन्युश्च भारद्वाजोऽथ कश्यपः।
शाण्डिल्यः सांकृतश्चैव षडेते गोत्रजोत्तमाः ॥

अर्थ—कात्यायन, उपमन्यु, भरद्वाज, कश्यप, शाण्डिल्य और सांकृत, इन ६ गोत्रों में उत्पन्न कान्यकुब्ज उत्तम माने जाते हैं। इन ६ गोत्रों को कुलीन कहते हैं।

११—धाकर कान्यकुब्ज

पाराशरः काश्यप भारद्वाज
धनञ्जया गौतम वत्स गर्गाः।
वशिष्ठ काविस्त सुकौशिकाश्च
उदाहृता धाकरका दशैते ॥

अर्थ—शेष १० गोत्र धाकर कहे गए हैं—(१) पाराशर, (२) काश्यप, (३) भारद्वाज, (४) धनञ्जय, (५) गौतम, (६) वत्स, (७) गर्ग, (८) वशिष्ठ, (९) कविस्त और (१०) कौशिक।

कुलीन उसी को कहते हैं जिसके आचार-विचार, चाल-चलन, सम्बन्ध आदि ठीक हों। इसके विपरीत को धाकर कहते हैं। कुलीन कनौजियों के उक्त ६ गोत्र ६ घर तथा धाकरों के १० गोत्र आधे घर कहे जाते हैं। अतः सब मिला कर कनौजियों के साढ़े छः घर हैं। इनसे पृथक जो ५६ गोत्र कनौजियों में देख पड़ते हैं वे अप्रसिद्ध हैं और उनका प्रवर्त्तन उक्त १६ गोत्रों से ही पीछे से हुआ मालूम होता है।

१२—विश्वा मर्यादा

विश्वाओं के अनुसार मर्यादा का प्रचार भी उक्त अप्रसिद्ध ५६ गोत्रों के सदृश ही पीछे से हुआ मालूम पड़ता है। विद्वानों का कथन है कि कन्नौज के सम्राट् महाराज जयचन्द ने विक्रमीय सम्बत् १२३६ में एक विशाल राजसूय यज्ञ रचा था। सम्भवतः यह वही राजसूय यज्ञ था जिसमें दिल्लीश्वर पृथ्वीराज की सुवर्णमयी मूर्त्ति से द्वारपाल का काम लिया गया था और पृथ्वीराज ने भी इस अपमान का बदला जयचन्द की पुत्री संयोगिता का हरण करके चुकाया था। इस यज्ञ में जयचन्द ने सम्पूर्ण कान्यकुब्ज ब्राह्मणों को बुला कर उनमें अपनी-अपनी कुलीनता के अनुसार विश्वाओं की संख्या निश्चित कर दी थी। पर विश्वाओं की संख्या सदा एक सी न रही। काल पाकर उसमें न्यूनाधिक्य होते देखा गया। जिसके पहले १० विश्वाएँ थीं उसी के बाद की लिखी वंशावली में केवल ९ ही विश्वाएँ लिखी मिलीं। इससे मालूम होता है कि मर्यादा के न्यूनाधिक्य के साथ-साथ विश्वा-संख्या में भी घटती-बढ़ती हुआ करती थी।

१३—प्रवर

अष्टाध्यायी, अध्याय ४, पाद १ का १६२ वाँ सूत्र है—"अपत्यं पौत्र प्रभृति गोत्रम्" अर्थात् पौत्र प्रभृति अपत्य गोत्रसंज्ञक हों। इससे यह भाव निकलता है कि गोत्र प्रवर्त्तक ऋषि, उसका पुत्र तथा उसका पौत्र ये तीनों सम्बन्धित गोत्र के प्रवर होते हैं। जैसे कश्यप गोत्र के कश्यप, असित और देवल ये तीन प्रवर हैं। यही

साधारण नियम हैं; पर किसी-किसी गोत्र में ५ प्रवर तक मिलते हैं। जैसे गर्ग गोत्र के गर्ग, शौनक, भारद्वाज, वार्हस्पत्य और अङ्गिरस ये ५ प्रवर हैं। जिस-जिस गोत्र में जो-जो व्यक्ति अति श्रेष्ठ (प्रवर) माने गए उस-उस गोत्र के वे ही व्यक्ति प्रवर कहलाए। कनौजियों के पूर्वोक्त १६ गोत्रों के संख्याक्रमानुसार प्रवर इस प्रकार हैं—

१—कश्यप, असिति, देवल। २—भारद्वाज, अङ्गिरा, वृहस्पति। ३—शाण्डिल्य, असित, देवल। ४—सांकृत, सांख्यायन, किल। ५—कात्यायन, विश्वामित्र, किल। ६—उपमन्यु, वशिष्ठ, याज्ञवल्क्य। ७—कश्यप, नैध्रुव, आवत्सार, कौशिक, लोहित। ८—धनञ्जय, माधुच्छन्दस, विश्वामित्र। ९—काविस्र, देवरात, विश्वामित्र। १०—गौतम, अङ्गिरस, वार्हस्पत्य। ११—गर्ग, शौनक, भारद्वाज, वार्हस्पत्य, अङ्गिरस। १२—भारद्वाज, अङ्गिरस, वार्हस्पत्य। १३—कौशिक, देवरात, अघमर्षण। १४—वशिष्ठ, शक्ति, पराशर। १५—वत्स, च्यवन, और्व्व, अप्नुवान्, जमदग्नि,। १६—पराशर, वशिष्ठ, सांकृत।

१४—वेद, शाखा और सूत्र

पूर्वोक्त १६ गोत्रों के वेद, शाखा और सूत्र क्रमशः इस प्रकार हैं—

१—साम, कौथुमी, गोभिल। २—यजुर्, माध्यन्दिनी, पारस्कार। ३—साम, कौथुमी, गोभिल। ४—यजुर्, माध्यन्दिनी, पारस्कर। ५—यजुर्, माध्यन्दिनी, पारस्कर। ६—यजुर्, माध्यन्दिनी, पारस्कर। ७—साम, कौथुमी, गोभिल। ८—साम, कौथुमी, गोभिल। ९—यजुर्, माध्यन्दिनी, पारस्कर। १०—यजुर्, माध्यन्दिनी, पारस्कर। ११—साम, कौथुमी, गोभिल। १२—यजुर्, माध्यन्दिनी, पारस्कर। १३—यजुर्, माध्यन्दिनी, पारस्कर। १४—यजुर्, माध्यन्दिनी, पारस्कर। १५—साम, कौथुमी, गोभिल। १६—यजुर्, माध्यन्दिनी, पारस्कर।

१५—आस्पद

अष्टाध्यायी, अध्याय ६, पाद १ का १४६ वाँ सूत्र है—"आस्पदं प्रतिष्ठायाम्"। आस्पद प्रतिष्ठा पाने का नाम है। प्रत्येक गोत्र में जिस पुरुष ने जिस ग्राम में वास करके प्रतिष्ठा पाने योग्य यज्ञादि कर्म किया, उस पुरुष को उस ग्राम की आस्पद पदवी प्राप्त हुई और वही पदवी उसके वंशधरों ने भी धारण कर लिया; जैसे कपिला के मिश्र, बटपुर के अग्निहोत्री इत्यादि। कनौजियों में अनेक उत्तम-उत्तम पदवियाँ हैं; जैसे द्विवेदी, त्रिवेदी, त्रिपाठी, चतुर्वेदी, उपाध्याय, पाठक, पाण्डेय, भट्टाचार्य, अवस्थी, दीक्षित, वाजपेयी, शुक्ल, मिश्र इत्यादि।

१६—कनौजियों की आत्मप्रशंसा तथा वर्त्तमान स्थिति

'कान्यकुब्ज चिन्तामणि' नामक ग्रन्थ के रचयिता महाशय ने स्वजाति की प्रशंसा में निम्न-लिखित श्लोक रचे हैं—

कान्यकुब्जद्विजाः श्रेष्ठा धर्म कर्म परायणः।
प्रलयेनाऽपिसीदन्तियदि कन्या न जायते॥

अर्थ—कान्यकुब्ज ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं तथा धर्म-कर्म में तत्पर रहते हैं। यदि इनके घर कन्या न जन्म ले तो ये प्रलय काल में विषाद को नहीं प्राप्त होते। कुलीनता का घमण्ड तथा धन का अभाव, इन दो कारणों से इनके यहाँ कन्या के विवाह में बड़ी दिक़्क़त होती है। ग्रन्थकार महाशय ने केवल स्वजाति की प्रशंसा ही नहीं की, बल्कि अन्य ब्राह्मणों को बुरा भी कहा है—

कान्यकुब्जा द्विजाः सर्वे मागधं माथुरं विना।
कुलानामकरो नास्ति कर्मणा जायते कुलम्॥

अर्थ—मथुरिए और मगहिए (गयावाल) ब्राह्मणों को छोड़ कर सभी कान्यकुब्ज हैं। कुलों का कहीं स्थान नहीं होता। कर्मों से ही कुल बनता है। बेचारे मथुरियों और गयावालों ने ग्रन्थकार का क्या बिगाड़ा था कि उन्हें कनौजियों की पंक्ति से बाहर कर बुरा कह दिया? सच्ची होती हुई भी अपनी प्रशंसा तथा दूसरे की निन्दा करना शिष्टाचरण के विरुद्ध है।

इसमें शक नहीं कि ये कनौजिए ब्राह्मण किसी समय, जैसा कि उनकी पूर्वोक्त उपाधियों से मालूम पड़ता है, वेद-विद्या की उच्चतम कोटि पर पहुँच गए थे। और इनके यहाँ यज्ञादि शुभ कर्मों को करने की परिपाटी ख़ूब बढ़ी-चढ़ी थी। इनकी विद्वत्ता की प्रखर ज्योति के सामने अन्य ब्राह्मण निस्तेज मालूम पड़ते थे। पर अब ये उपाधियाँ नाम मात्र की रह गई हैं। अधिकतर इनमें भोजन-भट्ट

(शेष मैटर ७३ पृष्ठ के पहले कॉलम में देखिए)

वीरांगना

[श्री० शम्भूदयाल सक्सेना, साहित्य-रत्न]

यावक न जिनके पैर का—
किञ्चित अभी मैला हुआ।
उस नव-बधू के आगमन को
आज था न समय हुआ।

कुछ प्रेम का प्रतिफल न पाया—
था यथोचित रीति से।
लग भी न पाई थी गले वह—
प्राणपति के प्रीति से।

बस, आ गया इकबारगी
सन्देश राना का नया।
जिसमें उन्हें था रण-निमन्त्रण
भूरि-भूरि दिया गया।

यह जान कर भी, युद्ध में—
अनिवार्य मरना है उन्हें।
प्रस्ताव का प्रण भी हृदय से—
पूर्ण करना है उन्हें।

युद्धार्थ होने को उपस्थित—
वीर चूणावत तभी।
तैयार आप लगे कराने,
शीघ्र ही सेना सभी।

घनघोर रव सुन कर नगाड़े—
का, प्रथम आवास से।
झट झाँकने आकर झरोखों—
में लगी उल्लास से।

सेना सजा कर आप चूणावत
महल को चल दिए।
लेने विदा उस नव बधू से,
युद्ध करने के लिए।

सत्वर जगा कर आरती, वह
भामिनी भी आ गई।
पतिदेव के पुरुषार्थ की
करने लगी पूजा नई।

उस रूपराशि, नवीन यौवन—
की मदोन्मत चाल को।
विद्युत-प्रभा, मणिमाल, चन्द्र—
विनिन्दकारी भाल को।

निज सामने पाकर, व्यथित—
सरदार चूणावत हुए।
सब वीरता के भाव उनके,
शीघ्र छूमन्तर हुए।

कहने लगी वीराङ्गना तब,
"नाथ! यह क्या हो गया?
आते यहाँ क्यों आपका
वीरत्व सारा खो गया?

सेना सजाने का नया—
उल्लास लख पड़ता नहीं।
वह वीरता का तेज भी तो—
देख अब पड़ता नहीं।"

"कहना तुम्हारा है सही, पर
बात समझी है नहीं।
है रक्त बहना रुक गया इन—
नाड़ियों में क्या कहीं?

है सत्य, यद्यपि शत्रु की—
सेना असंख्य-अपार है।
कुण्ठित नहीं पर आज फिर भी
हो गई तलवार है।

जब तक यहाँ पर क्षत्रियों की—
छत्र-छाया शेष है।
पग-पग धरा का प्राण से भी—
मूल्य एक विशेष है।

कट जायँ ये भुजदण्ड चाहे,
पर रहे गौरव बना।
इस राजपूती मान का
अभिमान इतना है बना।

पर—पर यही प्राणाधिके ! है
वेदना होती बड़ी।
सूती तुम्हारी है पड़ी—
यौवन-उमङ्गों की घड़ी।"

"हाँ, यदि यही है बात, निष्प्रभ—
आप जिससे हो रहे।
जो व्यर्थ चिन्तालोक में—
आलोक अपना खो रहे।

तब तो नहीं हूँ मैं कहाने—
योग्य नारी आपकी !
दण्ड-व्यवस्था की गई यह,
कौन भारी पाप की ?

करबद्ध मेरी प्रार्थना है,
नाथ ! बस इतनी यही—
करिए हृदय से दूर ऐसी—
भ्रान्ति आप रही सही।

आदर्श रानी पद्मिनी का—
है अभी बिल्कुल नया।
वीरङ्गनाओं का निराला
मार्ग भूल नहीं गया।"

"तो अब बिदा होता प्रिये ! हूँ,
शेष कुछ कहना नहीं।
हो जानती मुझसे अधिक तुम
नीति की सत्ता कहीं।

है मिट गया सन्देह सब,
विश्वास पक्का हो गया।
वह वेदना का भार सारा—
अब हृदय से खो गया।

निश्चय मुझे है, ध्यान अपनी
आन का रख कर, सदा—
तुम कर दिखाओगी वही, जो
उचित होगा सर्वथा।"

लेकर विदा जाने लगे वे,
जब निकल कर द्वार से ;
तो थे निरुत्तर एक चिन्ता—
के अपरिमित भार से।

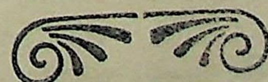
मुड़ कर पुनः आए महल में,
प्राणप्यारी से कहा—
क्या ?—वही, जो भूल कर उस
बार कहने से रहा।

अनुकूल आश्वासन मिले, फिर
द्वार से बाहर हुए।
पर चिन्तना से एक क्षण को
मुक्त वे न कहीं हुए।

जाते समय अट्टालिका पर—
एक दृष्टि बिछा गए।
जिसमें व्यथित सकरुण हृदय के
भाव सञ्चित थे नए।

उनका न असमञ्जस छिपा उस—
वीर बाला से रहा।
तब तो बुला कर पास उसने
एक दासी से कहा—

"ये शीश देती हूँ—उन्हें देकर,
विनय करना यही—
संशय न रक्खें आज से—
क्षत्राणियों पर वे कहीं।"*



* अप्रकाशित खण्ड काव्य का एक सर्ग।

सत्याग्रह संग्राम में एक वीरांगना का भाग

(श्रीमती उर्मिला देवी शास्त्री का जीवन-चरित्र)

[श्री० यतीन्द्रकुमार]



ज से बाइस वर्ष पूर्व वङ्ग-भङ्ग के आन्दोलन ने गुलामी की ज़ञ्जीर में जकड़े हुए परतन्त्र भारत को एक नई विचार-धारा में डाल कर सजग कर दिया। लॉर्ड कर्ज़न का एक प्रान्त को भङ्ग करने का प्रयत्न राष्ट्र की तमाम शक्तियों को एकत्रित कर एक स्वतन्त्र राष्ट्र की नींव डाल गया। बॉयकॉट और सत्याग्रह के अमोघ अस्त्रों ने भारतीयों के हृदय में वह लहर बहा दी कि आज कोई पशुबल से उन्मत्त राष्ट्र उसे उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देख सकता।

आज देश का बच्चा-बच्चा आज़ादी के लिए दीवाना नज़र आता है। राष्ट्र की तमाम ताक़तें केन्द्रीभूत होकर सफलता के लिए व्याकुल हैं। भोगवाद के अन्धविश्वासी भारतीयों से इतनी आशा किसे थी कि वे स्वयं इतने कष्ट-सहिष्णु बन कर इस कठिन संग्राम में जुट पड़ेंगे? सब से आश्चर्य की बात इस संग्राम में यह हुई है कि अन्ध-विश्वास और रूढ़िवाद की उपासिका स्त्रियाँ भी पुरुषों के साथ कन्धे से कन्धा भिड़ा कर काम कर रही हैं। जिन्हें पुरुष-समाज अबला कह कर पुकारता था, जो श्रृङ्गार तथा मनबहलाव की चीज़ समझी जाकर पर्दे में बन्द रक्खी जाती थीं, वे ही आज पुरुषों के साथ-साथ, और कहीं-कहीं उनसे भी आगे बढ़ कर, भारत की राजनैतिक प्रगति में भाग ले रही हैं। कोमलकलेवरा बहिनें आज भद्दे और खुरखुरे खद्दर को धारण करके मैदान में पहुँच गई हैं। जिधर देखिए वे प्रगति के पथ पर नज़र आ रही हैं। किसी भी स्थान पर वे पुरुषों से पीछे रहना उचित नहीं समझतीं। कहीं उनके द्वारा धरना दिया जा रहा है; कहीं जुलूस निकल रहे हैं; कहीं व्याख्यान दिए जा रहे हैं और कहीं-कहीं जेल-मन्दिर की भी यात्रा हो रही है। सारांश यह है कि आज स्त्री-समाज जग कर भविष्य में होने वाली क्रान्ति की सूचना दे रहा है। भारत का आधुनिक स्त्री-समाज विलास के सभी साधन और पुराने ज़माने से आते हुए कुसंस्कारों का त्याग कर स्वतन्त्रता के यज्ञ में जो आहुति दे रहा है, दुनिया के इतिहास में एक ऐसी अनोखी और नई बात है, जो किसी भी अवस्था में भुलाई नहीं जा सकती। श्रीमती सरोजिनी नायडू ने जो आदर्श महिला-संसार के आगे रक्खा है और लाखों स्त्रियों को स्वतन्त्रता के विकट मार्ग का अनुसरण करने, तथा स्वाधीनता के विकट संग्राम में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया है, उसका असर प्रत्यक्ष है। अब तक इस आन्दोलन में भाग लेकर सैकड़ों स्त्रियाँ जेल जा चुकी हैं तथा जिन्होंने अन्य प्रकार से कष्ट झेले और त्याग किए हैं, उनकी संख्या लाखों में नहीं तो हज़ारों में अवश्य है। इस लेख में हम एक ऐसी ही वीर महिला का परिचय 'चाँद' के पाठकों को देना चाहते हैं, जिन्होंने इस आन्दोलन में भाग लेकर अपूर्व आत्म-त्याग किया है तथा अपने नगर की महिलाओं में नया जीवन डाल दिया है।

संयुक्त प्रान्त में जिन वीराङ्गनाओं ने इस आन्दोलन में भाग लिया है उनमें मेरठ के सत्याग्रह दल की प्रधान नायिका श्रीमती उर्मिला देवी को किसी भी अवस्था में भुलाया नहीं जा सकता। उनके दिन-रात के अथक परिश्रम ने हज़ारों स्त्रियों में आज़ादी की उमङ्ग पैदा कर नवीन क्रान्ति की लहर और राष्ट्रीय यज्ञ में कूद आने की जो शक्ति पैदा कर दी, वह आगामी भारत की स्वतन्त्रता के यज्ञ में स्वर्णाक्षरों से अङ्कित रहेगा। उनका दिन-रात का अथक परिश्रम और ठोस तथा अनुकरणीय कार्य स्वतन्त्रता के यज्ञ में महिला-समाज का मस्तक सदा ऊँचा रक्खेगा। आज जो मेरठ के अन्दर हज़ारों स्त्रियों ने अपनी आहुति स्वतन्त्र भारत के लिए दी है, उसका श्रेय श्रीमती उर्मिला देवी शास्त्री को ही है। अन्ततोगत्वा सरकार को भी इस बात का क़ायल होना पड़ा और उसने उस

अनमोल मोती को परीक्षा की विकट अग्नि में डाल कर छः मास के लिए कारागार में बन्द ही तो कर दिया। इस वीर महिला का जीवन प्रारम्भ से आज तक एक महान आदर्श और महान सन्देश का परिचायक है और रूढ़िवाद अन्त करने के लिए शुरू से ही जो प्रयत्न उनके जीवन में हो रहा है वह प्रत्येक समाज की महिलाओं के लिए अनुकरणीय है।

बाल्यकाल और शिक्षा

भारत के प्राकृतिक सौन्दर्य की विभूति और पृथ्वी का स्वर्ग काश्मीर (श्रीनगर) हमारी चरित्रनायिका का जन्म-स्थान है। उनके पिता लाला चिरञ्जीवलाल, जो पहले एक बैङ्क के मैनेजर थे और बाद में जिन्होंने स्वतन्त्र उद्योग-धन्धों को तरक़्क़ी देकर काफ़ी धन संग्रह किया, एक बहुत ही विचारवान तथा सज्जन पुरुष हैं। आप वर्षों से श्रीनगर आर्यसमाज के प्रधान चले आ रहे हैं। आपकी पहली पुत्री श्रीमती सत्यवती देवी बम्बई में अपने पति के साथ हैं और सत्याग्रह कार्य कर रही हैं। सब से छोटी पुत्री कुमारी प्रतिभा एक प्रतिभाशालिनी कवि हैं और अब तक अनेक कविताओं द्वारा सम्मेलनों में पदक तथा प्रशंसापत्र प्राप्त कर चुकी हैं। श्रीमती उर्मिला देवी लाला जी की द्वितीय पुत्री हैं। आपका जन्म सन् १९०९ ई० में हुआ। सुशिक्षित आर्य परिवार में जन्म लेने के कारण ही आपकी शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध प्रारम्भ से ही अच्छा रहा। पहले आपने वर्नाक्यूलर मिडिल पास किया। उसके पश्चात आप घर पर ही रह कर स्वाध्याय करने लगीं और थोड़े ही दिनों में संस्कृत के अभ्यास के साथ ही साथ हिन्दी में विशेष योग्यता प्राप्त कर ली। फिर कुछ अङ्गरेज़ी का अभ्यास करने के उपरान्त आपने पञ्जाब आर्य-प्रतिनिधि-सभा की उच्च परीक्षा "सिद्धान्त विशारद" पास की और अन्त में पञ्जाब युनिवर्सिटी की हिन्दी की सब से ऊँची परीक्षा "हिन्दी प्रभाकर" में उत्तीर्ण हुईं, जिसका कोर्स हिन्दी के एम० ए० से भी बड़ा है।

आपका ध्यान प्रारम्भ से ही स्त्री-जाति को सुशिक्षित करने की ओर था, अतः अपना शिक्षा-काल समाप्त करने के बाद आपने कुछ दिनों तक निस्स्वार्थ भाव से देहरादून कन्या गुरुकुल में अध्यापिका का कार्य किया। फिर कुछ दिनों तक श्रीनगर की आर्य कन्या पाठशाला में आप अवैतनिक रूप से मुख्याध्यापिका का कार्य करती रहीं। इस कार्य में आपको इतनी सफलता प्राप्त हुई कि अपने कठोर परिश्रम और अध्यवसाय के बल से आपने उस पाठशाला को थोड़े ही दिनों में एक ऊँचे दर्जे के विद्यालय का रूप दे दिया।

विवाह

उर्मिला देवी का जीवन प्रारम्भ से ही स्वदेशी के व्रत से दीक्षित हुआ था। और समय पाकर आपके हृदय में देश-भक्ति का अङ्कुर एक पौधे का रूप धारण कर गया। प्रारम्भिक काल में उनका ध्यान देशी उद्योग-धन्धों के साथ मिलों की उन्नति की ओर आकृष्ट हुआ। कहना न होगा कि खद्दर के महत्व की ओर इस समय तक उनका ध्यान विशेष आकृष्ट नहीं हुआ था। इन्हीं दिनों एक विशेष घटना ने उनके विचारों में अद्भुत परिवर्तन पैदा कर दिया। मेरठ कॉलेज के प्रोफ़ेसर पं० धर्मेन्द्रनाथ जी शास्त्री तर्क-शिरोमणि, एम० ए० अपनी गरमी की छुट्टियों में काश्मीर पधारे। श्रीनगर में उन्होंने खादी-माहात्म्य पर एक मर्मस्पर्शी व्याख्यान दिया। पण्डित जी की वक्तृत्व शक्ति के अद्भुत जादू से शिक्षित समाज भली भाँति

(६९ पृष्ठ का शेषांश)

ही देख पड़ते हैं। कुलीनता के घमण्ड के मारे ये अपने बच्चों को पढ़ाते तक नहीं; पर विवाहार्थी कन्या वालों से ठहरौनी स्वरूप एक ख़ासी रक़म की फ़र्मायश करते हैं। इसका नतीजा यह होता है कि कितने निर्धन कुलीनों की लड़कियाँ क्वाँरी ही बूढ़ी हो जाती हैं। दश गोत्रियों के बालक आजन्म क्वाँरे रह जाते हैं। साधारणतः कनौजियों का खान-पान स्वच्छ है; पर यह खेद के साथ लिखना पड़ता है कि आजकल इनमें से कितने मांस आदि अभक्ष्य पदार्थों का सेवन करते सुने जाते हैं। परमात्मा से प्रार्थना है कि वह स्वपूर्वजों के प्राचीन गौरव के उत्तराधिकारी इस कान्यकुब्ज ब्राह्मण जाति पर दया कर इसे सुबुद्धि प्रदान करे, ताकि विविध कुरीतियों के भयङ्कर रोगों से आक्रान्त यह जाति इन रोगों के कीटाणुओं को शीघ्र नष्ट करे और सुयोग्य पूर्वजों की सुयोग्य सन्तान बन कर स्वदेश तथा स्वजाति का उद्धार करे।

* * *

परिचित है। उस व्याख्यान का असर सहस्रों नर-नारियों पर पड़ा, परन्तु जिस व्यक्ति ने उसे सबसे अधिक हृदयङ्गम किया और जिसने उस दिन से खादी की उन्नति को अपने जीवन का मन्त्र बना डाला, वह थीं उर्मिला देवी। उस दिन से उर्मिला देवी के अन्दर खादी के प्रति ऐसी अगाध श्रद्धा उत्पन्न हो गई कि उन्होंने खादी पहनने का व्रत धारण कर लिया।

संयोग के अदृष्ट बन्धन और भावी के अटूट विधान का निर्णय कौन कर सकता है? जीवन के प्रवाह में मनुष्य किन विचारों को लेकर न जाने क्या-क्या सोचता है, परन्तु एक अवसर उसके जीवन में ऐसा आता है जो उसके जीवन की धारा को सर्वथा नवीन क्षेत्र में प्रवाहित कर देता है। विवाह मनुष्य-जीवन की ऐसी ही एक घटना है। एक आकस्मिक दैवी संयोग से दो मन किस प्रकार एक होकर सदैव के लिए जीवन की कायापलट कर देते हैं, यह कोई नई बात नहीं। ता० ६ अक्टूबर १९२६ के दिन श्रीनगर में उर्मिला देवी का विवाह संस्कार जात-पाँत के मिथ्या आडम्बर को तोड़ कर सन् १९२३ के सिविल मैरिज ऐक्ट (Civil Marriage Act of 1923) के अनुसार प्रो० धर्मेन्द्रनाथ जी शास्त्री के साथ हुआ। इस तरह विवाह के साथ ही साथ उनका जीवन महिला-समाज के लिए एक नया सन्देश लेकर उपस्थित हुआ। वे मेरठ आईं और यहाँ आए उन्हें दो मास भी न गुज़रे कि उन्होंने अपने जीवन के मुख्य कार्य को प्रारम्भ कर दिया।

समाज-सुधार और स्त्री जाति की सेवा

स्त्री जाति की जो दशा हमारे हिन्दू समाज में है वह किसी से छिपी नहीं। मनमाने अत्याचार उन पर होते हैं। वे पैरों की जूतियाँ समझी जाती हैं। उनका स्थान समाज में सिवाय पुरुषों के मनबहलाव के और कुछ भी नहीं। श्रीमती उर्मिला देवी का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ और उन्हीं की अध्यक्षता में जनवरी में स्त्रियों की एक बड़ी सभा हुई। उसमें स्त्री जाति पर होने वाले अन्याय के प्रत्येक पहलू पर विचार किया गया तथा कितने ही महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास हुए। एक प्रस्ताव में यह पास किया गया कि मृत व्यक्ति की मृत्यु पर उसकी सम्पत्ति का हक़ उसकी विधवा स्त्री को मिलना चाहिए। एक दूसरे प्रस्ताव में चौधरी मुख़्तारसिंह, एम० एल० सी० के आर्य-मैरेज-बिल में इस बात को बढ़ाने की ज़ोरदार सिफ़ारिश की गई कि पुरुषों के लिए भी एक-पत्नीव्रत होना आवश्यक है; अगर ऐसा न हुआ तो स्त्री जाति के कष्टों में एक संख्या और बढ़ जायगी। उसके बाद उर्मिला देवी जी ने गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन की रजत-जयन्ती के अवसर पर, आर्य महिला कॉन्फ़्रेन्स की सभानेत्री की हैसियत से, स्त्री जाति के विरुद्ध होने वाले आन्दोलन के विरुद्ध भी ज़ोरदार आवाज़ उठाई। इन सब बातों का परिणाम यह हुआ कि थोड़े ही समय में स्त्रियों के उद्धार का प्रयत्न करने वाली एक प्रमुख कार्यकर्त्री समझी जाने लगीं।

इसी समय देश में एक नया आन्दोलन उठा। साबरमती के उस अनोखे जादूगर ने भारत के प्रत्येक समझदार व्यक्ति का ध्यान राष्ट्र की ओर आकर्षित कर दिया। श्रीमती उर्मिला देवी इस विकट परीक्षा के समय पीछे कैसे रह सकती थीं? इस आन्दोलन के साथ ही साथ उनके जीवन में एक नया अध्याय शुरू हुआ।

राजनैतिक क्षेत्र में पदार्पण

छोटी-छोटी घटनाओं का भी, जिन्हें साधारण आदमी तुच्छ समझता है, महान आत्माओं पर विचित्र असर पड़ता है। एक ऐसी ही घटना उर्मिला देवी के राजनैतिक क्षेत्र में पदार्पण करने का कारण हुआ।

शिवरात्रि के अवसर पर श्री० धर्मेन्द्रनाथ जी शास्त्री को कार्यवशात अनूपशहर जाने का मौक़ा पड़ा। इस अवसर पर श्रीमती उर्मिला देवी भी उनके साथ गईं। बुलन्दशहर से अनूपशहर जाने वाली सड़कें मुग़ल बादशाहों के समय की उन सड़कों की याद दिलाया करती हैं जिनमें जगह-जगह गड्ढे पड़े रहते थे और जिन पर एक दफ़ा चलने के बाद मनुष्य को जन्म भर उनकी याद न भूलती थी। ब्रिटिश राज्य में इन सड़कों की अवस्था मुग़ल राज्य से कुछ अच्छी नहीं है। इन पर चलने में आज भी लॉरी और मोटर के धक्के असह्य हो उठते हैं और थके होने पर भी मनुष्य पैदल चलने में ही अपना कुशल समझता है। यह हालत देख कर उर्मिला देवी ने प्रश्न किया कि यह सड़क इस अवस्था में क्यों है। उत्तर मिला कि सरकार के पास इस मद में ख़र्च करने को

एक पैसा नहीं है। उर्मिला देवी के हृदय पर इस उत्तर का गहरा असर पड़ा। उनके मन में यह विचार उठा कि जो सरकार फ़ौजों में तथा बड़े वेतनों में करोड़ों रुपया फूँक देवे, वह आज जनता के फ़ायदे के लिए एक पैसा भी ख़र्च नहीं कर सकती है, यह कितने अफ़सोस और शर्म की बात है! जब तक हमारा देश परतन्त्रता की शृङ्खला में बँधा है तब तक यह दुरवस्था दूर नहीं हो सकती। फलतः उसी समय से उनका ध्यान देश की स्वाधीनता की ओर आकर्षित हुआ और वे कॉङ्ग्रेस के प्रोग्राम के अनुसार देश-सेवा की धुन में दिन-रात रहने लगीं।

नौचन्दी का मेला और विदेशी बॉयकॉट

भारतवर्ष की नुमाइशों में नौचन्दी का मेला अपना एक ख़ास स्थान रखता है, दूर-दूर के लाखों यात्री इसमें आते हैं और लाखों रुपए का विलायती कपड़ा इसमें बिकता है। मेला लगने के एक सप्ताह पहले स्त्रियों की एक सभा हुई, जिसमें उर्मिला देवी ने खादी के समर्थन में एक ज़ोरदार भाषण दिया। फिर सभा में विदेशी वस्त्र के बॉयकॉट करने का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। स्मरण रहे कि मेरठ शहर में विलायती कपड़े के विरुद्ध यह सबसे पहला आन्दोलन था, जिसमें स्त्रियों ने भाग लिया। उस समय तक किसी को स्वप्न में भी यह आशा नहीं थी कि स्त्रियाँ इस आन्दोलन में कैसे-कैसे आश्चर्यजनक काम कर दिखावेंगी। इस सभा का आश्चर्यजनक परिणाम निकला। उर्मिला देवी के नेतृत्व में तीस बहिनें वालण्टियर बनीं और विलायती कपड़े पर ज़ोरदार धरना देना शुरू हुआ। इसका जो परिणाम हुआ, उसने लोगों की आँखें खोल दीं। विलायती कपड़े की बिक्री अस्सी प्रति शतक कम हो गई। इस अवसर पर सत्तर हज़ार नोटिसें बाँटी गईं और बहुत सी बहिनों ने उर्मिला देवी के साथ चौदह-चौदह घण्टे प्रति दिन धरना दिया। लोग हैरान थे कि स्त्रियों में इतनी शक्ति कहाँ से आगई? इस मेले ने मेरठ की महिलाओं में नवीन स्फूर्ति, नवीन कार्यशक्ति पैदा कर दी और उनमें नवजीवन का सञ्चार हो गया।

सत्याग्रह दल और उसका नेतृत्व

नौचन्दी के मेले के साथ ही आज़ादी का जङ्ग छिड़ गया और मेरठ की महिलाओं ने न विश्राम की परवाह की और न किसी प्रकार के आराम की। उन्होंने फ़ौरन महिला सत्याग्रह समिति की स्थापना की। श्रीमती उर्मिला देवी प्रधान कैप्टेन चुनी गईं और श्रीमती विद्यावती सहायक कैप्टेन। फिर क्या था, मेरठ के बजाज़े पर धावा बोल दिया गया और विलायती कपड़े पर धरना देना प्रारम्भ कर दिया गया। धरना इतना सख़्त हुआ कि चार दिनों के बाद ही दूकानदारों ने अपना विलायती माल तालों में बन्द कर सत्याग्रह-समिति की मुहर लगवा दी तथा अपनी दूकानों को स्वदेशीमय कर दिया। इसके



मेरठ की महिला-स्वयंसेविकाओं की कप्तान
श्रीमती उर्मिला देवी, शास्त्री

बाद कॉङ्ग्रेस के निश्चय के अनुसार बजाज़ों ने विलायती कपड़ा न मँगाने की प्रतिज्ञा की और पिकेटिङ्ग बन्द की गई।

देश के प्राण महात्मा गाँधी को लोगों के बीच से हटा कर ४ मई को गवर्नमेण्ट ने जब अपना मेहमान बना लिया तो जनता के अन्दर नवीन जोश और उत्साह का समुद्र उमड़ पड़ा। मेरठ में ५ तारीख़ के प्रातःकाल पौन मील लम्बा जुलूस निकला। जुलूस का रास्ता पाँच मील लम्बा था। इस जुलूस की सब से बड़ी विशेषता इसमें

शामिल होने वाली तीन हज़ार महिलाओं का विशाल समुदाय था। मई का महीना और मेरठ की गर्मी दोनों असह्य थे। फिर स्त्रियों के लिए यह पहिला ही अवसर था कि वे पाँच मील तक जुलूस के साथ-साथ चलती रहें। नतीजा यह हुआ कि सब बहिनें बिलकुल थक कर वापस आगईं। सबके इकट्ठी होने पर यह निश्चय हुआ कि आज का दिन एक पवित्र दिन है; सब महिलाओं का कर्तव्य है कि आज वे उपवास रक्खें और तमाम दिन चरख़े और खादी के प्रचार में व्यय करें। इसी के अनुसार कार्य प्रारम्भ हुआ। सत्याग्रही स्त्रियों ने अपने को सात हिस्सों में बाँट कर निश्चय किया कि प्रत्येक टोली अपने-अपने मुहल्ले में सभा करके लोगों को खादी का महत्व समझावे, जिससे प्रत्येक व्यक्ति पर खादी का असर पड़ सके और कोई उस महान आत्मा के महान सन्देश से वञ्चित न रहे।

ठीक बारह बजे के समय, जब कि मध्याह्न का सूर्य अपनी प्रखर किरणों से समस्त पृथ्वीतल को सन्तप्त कर रहा था, मेरठ की वीर महिलाएँ स्वदेश-सेवा के व्रत को लेकर उस दिन मेरठ के कोने-कोने में महात्मा गाँधी के दिव्य सन्देश को जनता के सम्मुख सुना रही थीं। उस दिन भिन्न-भिन्न मुहल्लों में ७४ सभाएँ हुईं और २२०० आदमी खादी पहनने की प्रतिज्ञा में आबद्ध हुए। ज्यों ज्यों लू और धूप बढ़ती थी, बहिनों में उत्साह की मात्रा भी बढ़ती जाती थी। भूखी-थकी महिलाओं का यह जोश देख कर कुछ लोग डर रहे थे कि अगर किसी बहिन को लू लग जाय और वह बेहोश हो जावे तो क्या किया जायगा? उन लोगों को आश्वासन देते हुए श्रीमती उर्मिला देवी जी ने जो जवाब दिया वह स्मरण रखने लायक़ है—"अगर किसी बहिन को लू लग जाय तो वही किया जायगा, जो युद्ध के समय होता है। जिस बहिन को लू लगे वह वापस भेज दी जायँ और बाक़ी बहिनें आगे बढ़ती जावें।" स्मरण रहे कि काश्मीर जैसे शीतप्रधान स्थान में रहने वाली श्रीमती उर्मिला देवी के ऊपर जत्थे के नेतृत्व का भार होने के कारण और भी ज़िम्मेदारी थी। उस दिन रात्रि की विराट सभा में भाषण देते हुए जो शब्द उर्मिला जी ने कहे वे सुनने लायक़ थे—

"आज हमारे ऊपर आसमान की गर्मी नहीं बरस रही थी, अपितु यह प्रेम के देवता महात्मा गाँधी की प्रेममयी आग थी। मातृ-भूमि के सेवकों के लिए यह प्रेम की वर्षा थी, पर उसके शत्रुओं के लिए प्रचण्ड आग थी।"

सार्वजनिक क्षेत्र में स्त्रियों में इतना उत्साह शायद ही कहीं रहा हो। पूरे तीन हफ़्ते तक गर्मी की परवाह न करके घर-घर और मुहल्ले-मुहल्ले स्त्रियों ने चरख़े और स्वदेशी का प्रचार किया और सहस्रों नर-नारियों से प्रतिज्ञा कराई कि वे आजन्म खादी पहनेंगे।

विदेशी वस्त्र की होली

मेरठ के अन्दर विलायती कपड़े की होली का एक विशेष महत्व था। अन्य प्रोग्रामों के अतिरिक्त मेरठ की महिला सत्याग्रह समिति ने अपने प्रोग्राम में एक विशेष कार्य यह रक्खा था कि जब-जब देश में कोई महिला गिरफ़्तार होवे तब-तब विलायती कपड़े की होली जलाई जावे। इस प्रस्ताव के अनुसार श्री० रुक्मिणी लक्ष्मीपति, श्री० कमलादेवी चट्टोपाध्याय, श्री० सरोजिनी नायडू, श्री० सत्यवती देवी और अन्त में श्री० उर्मिला देवी की गिरफ़्तारी पर एक-एक विशाल होली जलाई गई।

विलायती कपड़े पर मोहर

इलाहाबाद में ऑल इण्डिया वर्किङ्ग कमेटी ने जब यह निश्चय कर दिया गया कि "विलायती कपड़ा बेचना जब तक लोग बन्द न करें तब तक दूकानों पर धरना जारी रहे" तो इस निश्चय के अनुसार मेरठ में पुराना प्रोग्राम फिर अमल में लाया गया और श्रीमती उर्मिला देवी ने अपनी अध्यक्षता में महिला सत्याग्रह समिति के प्रोग्राम के अनुसार सात ही दिन में सारा विलायती कपड़ा तालों में बन्द करा कर मोहरें लगवा दीं। मेरठ में अन्य स्थानों की अपेक्षा सब से बड़ी विशेषता यह हुई कि यहाँ उस कपड़े पर भी मोहर लगाई गई जो भारत में विलायती सूत से बनाया हुआ था। जब माता कस्तूरीबाई गाँधी मेरठ में पधारीं तो उन्होंने महिला सत्याग्रह समिति के काम को देख कर कहा कि मेरठ के मुक़ाबले किसी भी शहर में बहिष्कार का काम नहीं हुआ है। उस समय तक मेरठ की हर एक कपड़े की दूकान पर स्वदेशी की छाप लग चुकी थी।

शहर और ज़िले में प्रचार

श्रीमती उर्मिला देवी के व्याख्यानों का असर लोगों के दिल पर उसी प्रकार होता था जिस तरह कि एक

सच्ची आत्मा की वाणी का होना चाहिए। वेश्याओं की एक सभा में शास्त्रों के विरोध में और खादी और चरख़े के उद्देश्य को लेकर जब डेढ़ घण्टे तक उनका व्याख्यान हुआ तो वेश्याओं का हृदय भर आया और उनकी आँखों से आँसू बह उठे। उन्होंने खादी पहिनने की प्रतिज्ञा की तथा शराब न पीने की क़सम खाई।

इस अवसर पर उन्हें कभी-कभी बाहर जाने का भी मौक़ा पड़ता रहा। गाँवों और क़स्बों में शराब तथा विदेशी कपड़े के बायकॉट के लिए उन्होंने कई दौरे किए। छोटे-छोटे क़स्बों में भी जाकर उन्होंने कॉङ्ग्रेस का महान सन्देश जनता के सामने रक्खा। उन्हें इसी काम के कारण कई दफ़े बीमारी हुई, गला बैठ गया, पर धुन काम करने की ही रही। उन्होंने दवाई का सेवन करके फिर वही प्रोग्राम जारी रक्खा—ज़िले सहारनपुर में कॉङ्ग्रेस की ओर से गुरुकुल के ब्रह्मचारियों के प्रयत्न से बहादुरपुर में एक बड़ी भारी सभा हुई, जिसमें उर्मिला देवी जी ने एक बड़ा ही ज़ोरदार भाषण दिया और लोगों के अन्दर जो एक तरह का अज्ञात भय व्याप्त हो रहा था उसे दूर किया। उस दिन की श्रीमती उर्मिला देवी जी की प्रभावशालिनी वक्तृता ने गाँव-गाँव कॉङ्ग्रेस का सन्देश पहुँचा दिया और साथ ही उनके नाम को भी प्रसिद्ध कर दिया।

इसके बाद ही एक ऐसी घटना घटी, जो आज भी एक पहेली सी मालूम पड़ती है। ता० २५ जून की रात के एक बजे मोटर से उतर कर कुछ व्यक्तियों ने श्रीमती उर्मिला देवी के बँगले पर धावा बोल दिया। प्रो० धर्मेन्द्रनाथ जी शास्त्री ने कई फ़ायर किए, पर वे लोग बँगले के कम्पाउण्ड में घुस ही आए। अन्दर तो वे न जा सके, किन्तु बाद में यह पता लगा कि बँगले के द्वार पर का झण्डा वे लोग उतार कर ले गए। पुलिस ने बड़ी सरगर्मी से इस मामले की खोज की। पता चला कि फ़ौजी अङ्गरेज़ अफ़सरों ने यह आक्रमण किया था। अतः मामला पुलिस के पास से फ़ौजी अफ़सर के सिपुर्द हुआ। किन्तु आज तक यह पता न चला कि मामला क्या था।

अङ्गरेज़ी माल का बायकॉट

विदेशी वस्त्र के काम से निबट कर महिला सत्याग्रह समिति ने अपना ध्यान विदेशी वस्तुओं के बॉयकाट की ओर लगाया। मेरठ में बायकॉट पर भाषण देते हुए श्रीमती उर्मिला देवी ने कहा कि लोग समझते हैं कि बीमारी की हालत में तो अङ्गरेज़ी दवा पीनी ही पड़ेगी, पर मैं कहती हूँ कि अगर अङ्गरेज़ी दवा से आप तन्दुरुस्त होते हैं तो उसकी अपेक्षा मर जाना बेहतर है। आपका कर्त्तव्य तो इस समय यह है कि चाहे कितनी ही मुसीबतें आकर पड़ें, इङ्गलैण्ड की कोई वस्तु छूना भी आप पाप समझिए।

कृष्ण-मन्दिर में

एक परतन्त्र राष्ट्र में देशसेवा की क़ीमत जेल, बेंत, फाँसी, आदि के सिवाय और क्या कूती जा सकती है। श्रीमती उर्मिला देवी अपने कार्यों से सरकार की आँखों में खटकने लगीं और उनके लिए वह समय आ गया जो प्रत्येक देश-सेवक के लिए वर्तमान समय में सब से बड़े सौभाग्य का समय है। विगत १७ जुलाई रात के समय दस हज़ार जनता की उपस्थिति में उनका एक अत्यन्त ओजस्वी भाषण हुआ, जिसमें उनके हृदय के उद्गार फूट पड़े—

"प्राकृतिक सौन्दर्य का घर काश्मीर मेरी जन्मभूमि है। पिता जी का सन्देश काश्मीर आने के लिए आया है। किन्तु जेल के सौन्दर्य के आगे काश्मीर का सौन्दर्य तुच्छ है। जेल की चहारदीवारी में देश के प्राण और संसार की सब से सुन्दर विभूति महात्मा गाँधी बन्द हैं।" उसके बाद उसी भाषण में उन्होंने कहा—"केवल कार्य करने से जेल नहीं मिलती। वह तो भाग्य से मिलती है। न जाने मेरा भाग्य कब चमकेगा।" उनके इन ओजस्वी शब्दों ने लोगों के दिलों को एकदम अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। आपने फिर कहा—"कल का चमकता हुआ सूर्य न जाने किस-किस के लिए हथकड़ी लाएगा। यह काली भयानक रात्रि न जाने किस-किस को समेट लेगी।"

रात कटी। सुबह हुआ। और पाँच बजने के साथ ही मेरठ महिला सत्याग्रह समिति की प्राण श्रीमती उर्मिला देवी जेल की चहारदीवारी में बन्द कर दी गईं। जेल जाते समय उनका मुख-मण्डल हर्ष और आनन्द से विभोर था; उस समय एक अपूर्व तेजस्विता उनके चेहरे पर विराजमान थी। सहस्त्रों आँखों ने हर्ष के साथ उस दिन उन्हें विदाई दी।

ता० १६ जुलाई को मैजिस्ट्रेट ने आपके मामले का फ़ैसला सुनाया। जिस समय आपसे पूछा गया कि क्या आपके व्याख्यान की जो रिपोर्ट आई है सच है, तो आपने अभिमान से कहा—"सब सही और इससे भी ज़्यादा।" फिर आपको मैजिस्ट्रेट ने कहा—"चूँकि आप लीडर हैं, इसलिए पिकेटिङ्ग ऑर्डिनेन्स के अनुसार छः मास की सज़ा आपको दी जाती है, जो कि इस धारा में सब से बड़ी सज़ा है।" इस पर श्री० उर्मिला जी ने मैजिस्ट्रेट साहब को उनके इस पारितोषिक के लिए धन्यवाद दिया और कोर्ट से जाने लगीं। उस समय सारा कोर्ट "महात्मा गाँधी की जय", "उर्मिला देवी की जय" के निनाद से गूँज उठा। कई बहिनों ने मैजिस्ट्रेट के सामने ही उन्हें फूल-मालाओं से लाद दिया। सारे नगर में इस ख़बर के सुनते ही सनसनी सी फैल गई और एक अभूतपूर्व शानदार जुलूस उनकी विदाई के लिए निकाला गया।

सन्देश

जेल जाने के पहले देवी जी ने जो सन्देश अपनी जनता को दिया उसका एक-एक अक्षर देशभक्ति की ज्वाला से भरा हुआ है। उन्होंने कहा—"मेरठ के हज़ारों भाइयों ने मुझे बहिन कह कर पुकारा है। आज बहिन के नाते स्वराज्य-मन्दिर में जाते हुए अपने भाइयों से एक उपहार माँगना चाहती हूँ। वह यह है कि मेरठ में एक भी ऐसा घर न बचे जो कम से कम एक सत्याग्रही न देवे। इस महायज्ञ में प्रत्येक घर से एक-एक आहुति पड़नी चाहिए जिससे कि इस यज्ञ की ज्वाला ऐसा प्रचण्ड होकर इतने ज़ोर से जल उठे कि तमाम ब्रिटिश साम्राज्य भस्मसात हो जावे। मेरे भाइयो! जिस उर्मिला को आपने बहिन कह कर पुकारा है उसकी यह छोटी सी माँग व्यर्थ जायगी? यदि ऐसा हुआ तो मुझे जेल की ऊँची दीवारों के बीच निराशा भरी रातें, तारे गिन-गिन कर काटनी पड़ेंगी। परन्तु यदि मेरे भाइयों ने मेरी पुकार सुन ली तो जेल की कठोर ज़मीन मेरे लिए फूलों की कोमल शय्या बन जायगी। आज विदाई के समय मैं आपकी बहिन के नाते एक यही उपहार माँगती हूँ। सोचिए, इस देश में आज भाई बनने की क़ीमत क्या है?"

उस समय सहस्रों जनता के बीच से यह आवाज़ प्रतिध्वनित हो उठी—"प्रत्येक घर से एक आहुति।" क्या मेरठ वासियों को अब भी अपनी वह पुनीत प्रतिज्ञा पूरी करने की धुन है? क्या मेरठ का महिला समाज उस पवित्र काम को जारी रक्खेगा, जिसकी सफलता के लिए उर्मिला देवी आज दिन-रात कृष्ण-मन्दिर में बैठी हुई प्रार्थना कर रही हैं?

उठ! जाग!!

[मुक्त]

विष क्या है? अमृत क्या है?
इसका है जिसे न ज्ञान।
क्या वह इस मादकता का
कर सकता है अनुमान?
छिपी हुई चिनगारी से
यह लहक उठी है आग।
जाग-जाग, मेरे अन्तर के
रुद्ध भाव उठ, जाग!!

आज तिमिर की विदा, ज्योति का
होता है आह्वान।
तरुण देश पागल हो, गाता
है प्रलयङ्कर गान॥
डस लेगा, यह जाग उठा है
क्रोधित काला नाग।
जाग-जाग, मेरे अन्तर के
क्रुद्ध भाव उठ, जाग!!

स्वप्न की छाया

[मुक्त]



बौद्ध-चैत्य से होकर जो सड़क दशपारमिता के मन्दिर की ओर गई है, युवक भिक्षु भद्रवाहन उसी पर नतमस्तक चला जा रहा था।

धीरे-धीरे सन्ध्या हो आई। अन्धकार की धूमिल छाया धरित्री पर कुछ देर के लिए फैल गई। फिर नीले आसमान में चन्द्रमा खिलखिला उठा। उसकी सफ़ेद, चाँदी-सी, धुली हुई ज्योत्स्ना चारों ओर फैल गई। एक-दो झिलमिलाते हुए तारे आकाश में उग आए। भद्रवाहन उस समय भी, मन्दगति से, उसी पथ पर अग्रसर हो रहा था।

भद्रवाहन के मन में एक पहेली थी। वह उसे ही सुलझाने में तल्लीन था, लेकिन कोई सन्तोषजनक युक्ति और तर्क उसे मिल नहीं रहा था। इसीसे वह चञ्चल था, इसीसे वह उस निर्जन रात्रि में वन-पथ पर, अकेला, उद्देश्यहीन, चला जा रहा था।

भद्रवाहन के मन में कौन चिन्ता थी?

वह सोच रहा था—सत्य क्या है? और मिथ्या ही क्या है? सत्य और मिथ्या, जगत् के इन दो तत्वों पर वह बड़ी देर से आलोचना कर रहा था, किन्तु उसकी समझ में कोई बात न आती थी। जितना ही वह सोचता था, उलझन उतनी ही बढ़ती जाती थी, चिन्ता उतनी ही गहरी होती जाती थी। चलते-चलते रात एक पहर बीत गई। बाल चन्द्रमा की किरणें शिथिल और पीताभ होकर अपनी ज्योत्स्ना समेटने लगीं। भद्रवाहन भी, श्रान्त होकर, एक शिलाखण्ड पर बैठ गया।

सहसा अपने कन्धों पर किसी का कर-स्पर्श अनुभव करके वह चौंक उठा। घुटनों में छिपे हुए सिर को उठा कर उसने देखा—उसका सहपाठी देवसेन है। वह थोड़ा गम्भीर हुआ। बोला—"देवसेन! तुम्हें सङ्घाराम से बाहर जाने की अनुमति कैसे मिल गई?"

देवसेन हँसा। कहने लगा—"और तुम्हें ही यह अधिकार कैसे मिला है, भद्रवाहन? तुम स्वयं भी तो इस निर्जन रात्रि में शैलमाला में इधर-उधर भटक रहे हो! तुम अपनी कहो?"

"मेरा चित्त स्वस्थ नहीं है, देवसेन! मेरी बात क्या पूछते हो! अभी भी मेरा चित्त स्थिर नहीं है, अभी भी बुद्ध पर मेरी सम्पूर्ण आस्था नहीं हो सकी है। मैं तो अपना अशान्त मन लेकर घूम रहा हूँ। लेकिन तुम? तुम्हें क्या आवश्यकता आ पड़ी है?"

"मैं तो तुम्हारे ही पास आया हूँ। पीठस्थविर ने एक नवीन आज्ञा प्रचारित की है, जानते हो?"

"नहीं, मैं कुछ भी नहीं जानता। शायद जान सकता ही नहीं। देवसेन! मैंने धर्म परिवर्तन किया है। धर्म परिवर्तन करने से हृदय परिवर्तन करना होता है, और यह सब से कठिन है। उस समय अन्तर में एक महान सङ्घर्ष उठ खड़ा होता है। अनेक बार उस सङ्घर्ष में विजय प्राप्त करना बहुत आसान नहीं होता। मेरा हृदय बहुत अशान्त हो उठा है, देवसेन! तुम जानते नहीं हो।"

"नहीं, और उसकी मुझे आवश्यकता ही क्या है? लेकिन अब चलो। विलम्ब होने से पीठस्थविर का कोपभाजन बनना पड़ेगा। मैं सङ्घाराम में तुम्हें कहीं न देख कर ढूँढ़ता हुआ इधर चला आया हूँ।"

"लेकिन तुम आ कैसे सके देवसेन?"

"सङ्घाराम में आरती का आयोजन हो रहा था, सब लोग उसी कोलाहल में भूले हुए थे, अवकाश पाकर मैं इधर चला। वह देखो, आरती के घण्टे की गुरु गम्भीर ध्वनि सुन पड़ती है। अभी कुछ देर में आरती ख़तम हो जायगी। उस समय हम लोगों की उपस्थिति आवश्यक है। चलो।"

भद्रवाहन थोड़ी देर तक कुछ सोचता रहा। फिर सिर हिलाता हुआ बोला—"नहीं, मैं न जा सकूँगा। तुम

जाओ। हाँ, अकेले ही जाओ। बन्धु ! मैं तुम्हारा बहुत कृतज्ञ हूँ।"

भद्रवाहन देवसेन के उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही उठ खड़ा हुआ। आश्चर्य-चकित आँखों से उस विचित्र भिक्षु की ओर देखते हुए देवसेन ने भी सङ्घाराम की ओर प्रस्थान किया।

भद्रवाहन आगे बढ़ा। उसके मन में भयानक सङ्घर्ष हो रहा था, वह अशान्त था, लेकिन स्वयं समझ न पाता था कि वह क्या चाहता है। धीरे-धीरे उसके पैर नीचे की ओर बढ़ते गए। चलते-चलते, रात्रि जिस समय शेष हो रही थी, वह उपत्यका के नीचे समतल प्रदेश में पहुँच गया।

वहाँ, बोधिवृक्ष के नीचे, एक तरुणी भिक्षुणी को उसने समाधिस्थ देखा। देख कर वह मुग्ध हुआ। उसके विकृत मन में एक और विकार उत्पन्न हुआ। उसने सोचा, नेत्रों के होने से ही यह सारा उत्पात है। इन्द्रियों को संयत करने के लिए कदाचित दृष्टि का एकान्त अभाव अपेक्षित है। वह आत्म-विस्मृत होकर चुपचाप भिक्षुणी की ओर देखता रहा।

भिक्षुणी युवती थी। उसके कृश-गौर शरीर में यौवन का उच्छलित लावण्य कल्लोल कर रहा था। उसके मुँदे हुए नेत्रों से एक प्रकार की ज्योति निकल रही थी। वह समाधिस्थ थी।

कुछ देर बाद उसकी समाधि भङ्ग हुई। उसने भद्र-वाहन को देखा—बार-बार देखा—आश्चर्य से, विस्मय से और कौतूहल से भी। मालूम पड़ता था, जैसे वह उसे पहचानने का प्रयत्न कर रही हो। फिर उसने स्नेह-स्निग्ध कण्ठ से पुकारा—"भद्रवाहन ! क्या मैं सपना नहीं देख रही हूँ ?"

अब भद्रवाहन की मोह-निद्रा टूटी। उसने चौंक कर भिक्षुणी की ओर देखा, विस्मित होकर उसका चिर-परिचित स्वर सुना और फिर उसे पहिचाना। क्षण भर में उसके नेत्रों के सम्मुख एक मनोहर और विराट वैभव-युक्त साम्राज्य का चित्र खिंच गया। हताश होकर, एक बार उसने उस चित्र को देखा। क्षण भर स्तब्ध रहा—घटनाओं के चक्कर ने उसको पागल बना दिया था—और फिर बोला—"हाँ, नन्दा ! यह सपना ही है। सपना नहीं तो और क्या है ?"

"ओः ! वह कितने दिनों की बातें हैं !!"

"प्रायः पन्द्रह वर्षों की।"

"और मालूम पड़ता है, जैसे पलक मारते इतना समय बीत गया हो।"

"और जैसे वे कल की ही घटनाएँ हों।"

"भद्र ! जीवन के उषःकाल के वे दिन कितने मनोहर थे !"

"बचपन के जीवन में कितना सुख था !"

"हम दोनों खेलते थे।"

"दिन-रात एक साथ रहते थे।"

"आपस में कितना प्रेम था !"

"कितनी ममता थी !"

"तुम बड़े दुष्ट थे।"

"तुम मुझे बहुत चिढ़ाती थीं।"

"तुम मुझे पीट देते थे।"

"तुम रूठ जाती थीं।"

"ओः ! उन क्रीड़ाओं की स्मृति कितनी मधुर है !"

"और काल के प्रवाह ने उन सारी क्रीड़ाओं का अन्त एक ही आघात में कर दिया !"

"हम दोनों का जीवन दो धाराओं में प्रवाहित हुआ।"

"और हम दोनों संसार के अतल-तल में डूब गए।"

"पन्द्रह वर्षों तक फिर कोई किसी को देख भी न सका।"

"और आज संयोग के प्रवाह में बह कर, बिछुड़ कर मिल जाने वाले बहते हुए दो तिनकों की तरह, फिर हम दोनों आ मिले हैं।"

"आज मैं गैरिकवसना भिक्षुणी हूँ।"

"और मैं भिक्षु हूँ। नन्दा ! मेरा हृदय बड़ा अशान्त है। इतने दिनों के बाद तुमसे मिल कर क्षण भर के लिए अपने को भूल सका हूँ।"

भद्रवाहन ने अपने हृदय की अशान्ति नन्दा से कही; कह कर थोड़ा हल्का हुआ। नन्दा ने कहा—"भद्र ! तुम्हें फिर वहीं जाना पड़ेगा। हृदय को इस प्रकार उच्छृङ्खल बनाने से काम न चलेगा। स्मरण रक्खो, तुम भिक्षु हो ! तुम्हें आत्म-दमन करना होगा, शान्त होना होगा !"

नन्दा की वाणी में तेज था, दृढ़ता थी। भद्रवाहन प्रभावित हुआ। कातर कण्ठ से उसने कहा—"नन्दा!"

"हाँ भद्र! तुम्हारे लिए वही उपयुक्त स्थान है। जाओ।"

मन्त्रमुग्ध की भाँति भद्रवाहन फिर उसी पथ पर लौटा। कुछ दूर अग्रसर होकर रुका, फिर वापस आया। बोला—"नन्दा! तुम्हारी बाँसुरी क्या हुई?"

"है, वह अब भी मेरे ही पास है!"

"एक बार बजाओगी नन्दा?"

"नहीं, अभी नहीं। बाँसुरी सुनने का उपयुक्त समय अभी नहीं आया है। फिर सुनना, अभी जाओ।"

उत्तर दिए बिना ही, सिर झुका कर, भद्रवाहन चला गया।

❧

बात पन्द्रह साल पहले की है। मगध में उस समय चण्डविक्रम महाराज अशोक का शासन-सूर्य चमक रहा था। उनकी राजधानी पाटलिपुत्र के समीपस्थ एक छोटे गाँव में, गङ्गा के तट पर, उसी समय हमने दो बालक-बालिकाओं को देखा था।

बालक दस बरस का रहा होगा और बालिका आठ वर्ष की। गङ्गा के तट पर दोनों ही खेल रहे थे। चाँदी की तरह सफ़ेद बालू की राशि दूर तक फैली हुई थी। धरित्री के आँगन में सन्ध्या का अन्धकार उस समय भी सघन नहीं हो उठा था।

बालिका ने कहा—"भद्र भाई! मुझे एक घर बना दो।"

बालक बोला—"मैं नहीं बनाता।"

बालिका ने कहा—"मैं अपने लिए स्वयं ही बना लूँगी।"

"मैं भी बनाऊँगा।"

"देखूँ कौन अच्छा बनाता है।"

स्पर्धापूर्वक दोनों बालू का घर बनाने लगे। ठण्डी-ठण्डी बयार चल रही थी। बालिका के अस्तव्यस्त कुन्तल, वायु के झकोरों से, मुँह पर खेल जाते थे। वह उन्हें सावधानी से हटा देती और फिर अपने गृह-निर्माण में लग जाती थी।

परिश्रम से उसके मुँह पर दो-चार स्वेद-बिन्दु दीख पड़े। घर बन कर तैयार हो गया। भद्रवाहन ने बालिका की ओर मुग्ध नयनों से देखा। डूबते हुए सूरज की अन्तिम पीली किरणें उसके ललाट को चूम रही थीं।

"नन्दा! किसका घर ज़्यादा सुन्दर बना है?"—रहस्य भरे स्वर में भद्रवाहन ने पूछा।

"तुम्हीं बताओ!"

"मेरी बात मानोगी?"

"हाँ! तुम्हारी बात?—न मानूँगी?"

आश्चर्य से भद्रवाहन ने नन्दा की ओर देखा—उसकी आँखों में कितनी सरलता थी! कितना भोलापन था!! क्षण भर में उसके मन में दो विचार उठे और जल-बुद्बुद की भाँति विलीन हो गए। झटपट वह कह उठा—"नन्दा! घर तुम्हारा ही सुन्दर बना है। वाह!!"

विजय-गर्व से नन्दा की आँखें चमक उठीं। उसने कृतज्ञतापूर्वक भद्रवाहन की ओर देखा। भद्रवाहन ने सिर झुका कर हँस दिया।

उस समय अपने पराजय में भी उसे जिस सुख की अनुभूति हो रही थी, उसकी कल्पना कौन कर सकता है?

दोनों बालक एक अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव कर रहे थे। इतने ही में वायु का एक तीव्र झोंका आया—दोनों के बालू के घर क्षण भर में बालू में मिल गए। नन्दा के मुँह से एक चीख़ निकल गई—"हाय! इसे बिगड़ते क्षण भर देर न लगी।"

भद्रवाहन ने सरलतापूर्वक कहा—"बनते-बिगड़ते कितनी देर लगती है, नन्दा!"

बालक के इस सरल उत्तर में संसार का एक महान तत्व छिपा हुआ था। लेकिन इतनी बातें सोचने-समझने का उस समय उन्हें अवकाश कहाँ था?

दोनों बालकों का घर, गाँव में, पास ही पास था। एक-एक दिन दूर से आती हुई किसी नौका को देख कर नन्दा कहती—"भद्र भाई, हम लोग भी इसी तरह नौका पर पाल तान कर किसी दिन चलते। ओः! गङ्गा की तरङ्गों में कैसा आनन्द है!!"

बालिका भाव-मुग्ध होकर नौका की गति-विधि का निरीक्षण करती और बालक उसका सरल सौन्दर्य देखा करता। लेकिन बहुत दिनों तक उनकी यह हौंस पूरी नहीं हो सकी।

नन्दा के पास एक बाँसुरी थी। ज्योत्स्ना से भीगी

हुई विभावरी में, गङ्गातट की बालुका-राशि पर बैठ कर, कभी-कभी, वह उसे बजाया करती थी। नन्दा जब बाँसुरी बजाती तो भद्रवाहन अधीर हो जाता था। वह बाँसुरी की करुण रागिनी सुनते ही नन्दा की एक अवस्था-विशेष का ध्यान कर लेता और तब फिर वह एक क्षण भी विलम्ब नहीं कर सकता था। जहाँ हो, जिस तरह हो, हज़ार काम छोड़ कर उसे नन्दा के पास जाना ही पड़ेगा, बाँसुरी बजाते-बजाते नन्दा स्वयं भी इतनी तन्मय हो जाती, इतनी विह्वल हो जाती कि उसे अपने-पराए का ज्ञान न रह जाता। हाँ, उसकी बाँसुरी में ऐसा ही जादू था, ऐसा ही आकर्षण था।

आर्यावर्त में उन दिनों चतुर्मुखी क्रान्ति हो रही थी। इस क्रान्ति की ज्वाला ने मगध में विशेष विप्लव उत्पन्न कर दिया था। कलिङ्ग-विजय करने के पश्चात् सम्राट अशोक ने धर्म-परिवर्तन किया था—उन्होंने बौद्ध धर्म की दीक्षा ली थी। स्वयं बुद्ध की शरण में जाकर उन्होंने अपने साम्राज्य में बौद्धमत के प्रचार का विशेष आयोजन किया। इस आयोजन के लिए भद्रवाहन और नन्दा को चिरकाल के लिए एक दूसरे से अलग होना पड़ा।

दो सुन्दर कलियाँ एक ही डाली में उगी थीं। वे खिलने भी नहीं पाईं, चटकने भी नहीं पाईं, और काल के माली ने उन्हें तोड़ लिया। उस समय कौन कह सकता था कि जीवन में फिर कभी इनका मिलन हो सकेगा? कब और किस रूप में??

उसके बाद एक युग बीत गया। स्मृति की लड़ियाँ उलझती और जुड़ती-टूटती रहीं। भद्रवाहन और नन्दा एक दूसरे को भूल गए।

सहसा, पन्द्रह वर्षों के बाद वे क्षण भर के लिए फिर मिले और अलग हो गए।

नन्दा अब बालिका नहीं, पूर्ण युवती थी। उसका प्रशान्त नारी-हृदय विक्षुब्ध हो उठा, जैसे भयानक तूफ़ान के आने पर समुद्र खौल उठता है। वह सोचने लगी कि इतने दिन के खोए हुए बन्धु को किस कलेजे से उसने उलटे पाँवों लौटा दिया? क्यों नहीं एक बार उसे बैठा कर उसके हृदय की व्यथा उसने पूछी? क्यों नहीं एक बार उससे जी खोल कर बातें कीं? हाय! वह कैसी पाषाण-हृदया है!!

नन्दा एक बार फिर भद्रवाहन से मिलने के लिए अधीर हो उठी। उसने आँखें फैला कर चारों ओर देखा—एक ओर शून्य निर्जन प्रान्तर दूर तक फैला हुआ था, दूसरी ओर विशाल शैलमाला नेत्रों की गति अवरोध किए हुए थी। पथ निर्जन था। भद्रवाहन चला गया था। एक लम्बी साँस लेकर वह चुप हो रही।

नन्दा की इतने दिनों की साधना, इतने दिनों का संयम, क्षण भर में लालसा की चिनगारियों में जल कर ख़ाक हो गया। उसका प्रशान्त मन अस्थिर और अधीर हो उठा। भद्रवाहन स्वयं तो चला गया, किन्तु अपने हृदय की आग उसके हृदय में भी लगाता गया।

❧

सङ्घाराम की ऊँची और भयावनी प्राचीरों के सम्मुख पहुँच कर भद्रवाहन सहम गया। उसके पैर आगे बढ़ने से इनकार करने लगे। एक बार उसकी इच्छा हुई कि वह वापस लौट जाय, किन्तु इसके बाद ही नन्दा की याद आई, नन्दा के तेजस्वी मुँह की याद आई, उसके स्नेह-भरे अनुरोध की याद आई और वह पत्थर की तरह चुपचाप खड़ा रह गया—न आगे बढ़ सका, न पीछे ही लौट सका।

किन्तु, इस प्रकार चुपचाप खड़ा भी कब तक रहा जा सकता था? वह धीरे-धीरे बढ़ा। एक बार चारों ओर देखा। फिर छलाँग मार कर प्राचीर पर चढ़ा। उसके बाद पलक मारते-मारते वह सङ्घाराम के प्राङ्गण में पहुँच गया।

प्राङ्गण के मध्य में विशाल जन-समूह एकत्रित था। यह किसी महान आयोजना की सूचना थी। चारों ओर जन-रव से उत्थित एक आकुल कोलाहल ध्वनित हो रहा था। अच्छा मौक़ा देख कर भद्रवाहन कुशलता से उस विशाल जन-स्रोत में मिल गया। उस समय उसे देखने का किसी को अवकाश न था।

जनता में प्रविष्ट होकर उसने देखा—एक सुन्दर मण्डप के मध्य में एक वेदिका बनी हुई थी। वेदिका के एक ओर सङ्घाराम के उपाध्याय अथवा पीठस्थविर बैठे हुए थे। उन्हें घेर कर भिक्षुओं का एक दल था, फिर जनता थी, उपाध्याय के सम्मुख एक अपरिचित भद्र पुरुष थे। भद्रवाहन ने अनुमान किया, आज उनकी दीक्षा होगी।

इसी समय भद्र पुरुष ने भक्ति-नत स्वर में कहा—

बुद्धं शरणं गच्छामि।
धम्मं शरणं गच्छामि।
सङ्घं शरणं गच्छामि।

एकत्रित जन-समूह ने सहस्र-सहस्र कण्ठ से दुहराया—

बुद्धं शरणं गच्छामि।
धम्मं शरणं गच्छामि।
सङ्घं शरणं गच्छामि।

भद्रवाहन ने उन स्वरों में अपना स्वर भी मिलाना चाहा, पर उसके मुँह से आवाज़ न निकली। वह अधोमुख होकर चुपचाप नन्दा का ध्यान करने लगा।

दीक्षा सम्पन्न हुई। उपाध्याय ने भिक्षुओं को सम्बोधित करके एक छोटा सा व्याख्यान दिया—"हे भिक्षुगण! जन्म दुःख है, जरा दुःख है, व्याधि दुःख है, मृत्यु दुःख है—अर्थात् जिन पदार्थों से हम घृणा करते हैं, उनका अस्तित्व दुःख है, जिन वस्तुओं की हम कामना करते हैं उनका न मिलना दुःख है, तात्पर्य यह कि जीवन की पाँच कामनाओं (पाँच तत्वों) में लिप्त रहना दुःख है।

"हे भिक्षुगण! पुनर्जन्म का कारण लालसा है। पुनर्जन्म में कामनाएँ और लालसाएँ उत्पन्न होती हैं। लालसाएँ तीन हैं—सुख की लालसा, जीवन की लालसा और शक्ति की लालसा।

"हे भिक्षुगण! लालसाओं के पूर्ण निरोध से, अर्थात् लालसाओं को दूर करने से, लालसाओं को छोड़ देने से, लालसा के बिना काम चलाने से और लालसाओं का नाश कर देने से दुःख दूर हो सकते हैं।

"हे भिक्षुगण! जिससे दुःख दूर होता है, वह पवित्र मार्ग आठ प्रकार का है—(१) सत्य विश्वास (२) सत्य कामना (३) सत्य वाक्य (४) सत्य व्यवहार (५) सत्य उपाय (६) सत्य उद्योग (७) सत्य विचार और (८) सत्य ध्यान।

"हे भिक्षुगण! आर्य सत्यचतुष्टय के यही चारो सत्य हैं।"

इस प्रकार नव-दीक्षित का प्रव्रज्या और उपसम्पदा संस्कार हो चुकने पर उसे भिक्षु की उपाधि मिली। साथ ही साथ मठ की ओर से उसे कषाय वस्त्र और भिक्षापात्र, मेखला, वासि, सूची और परिस्रावण भी मिला। बौद्ध भिक्षु के जीवन-निर्वाह के ये ही साधन हैं। इसके बाद एक-एक करके सब लोग चले गए।

सबके चले जाने पर भद्रवाहन भी उठा। उसके मन में उपाध्याय की वाणी प्रतिध्वनित हो रही थी—"जन्म दुःख है, जरा दुःख है, व्याधि दुःख है, मरण दुःख है। जीवन की पाँच लालसाओं में लिप्त रहना दुःख है।" ओः! कितनी भयानक बात—और वह उसी दुःख की ओर अग्रसर हो रहा है—कितने वेग से!!

अपने निभृत प्रकोष्ठ में जाकर भद्रवाहन गम्भीर चिन्ता में मग्न हो गया—"जगत् मिथ्या है, जगत् दुःखमय है, तब सत्य क्या है? सुख क्या है? उसे पाने का उपाय क्या है?—निर्वाण। कठिन है, असाध्य है,—उस मार्ग पर चलने के लिए अन्तर की प्रवृत्ति होनी चाहिए, बलपूर्वक मन का निरोध करना क्या सफल हो सकता है? असम्भव! सुख जहाँ दीख पड़ता है, वहाँ नहीं है—सत्य का हम जहाँ अनुभव करते हैं, वह वहाँ नहीं है। यह कैसी माया है! कैसा इन्द्रजाल है!!"

❦

दो दिनों तक भद्रवाहन लगातार इन्हीं विचारों की उलझन में पड़ा रहा। इन दो दिनों में वह अपने प्रकोष्ठ से बाहर नहीं निकला, किसी से मिला-जुला भी नहीं। दूसरे भिक्षुओं ने भी उसकी शान्ति भङ्ग नहीं की। वह अकेला, चुपचाप, अपने मन में ऊहापोहों की जाली बिनता रहा। दो दिनों में, अनेक बार, यह अकेलापन, यह सूनापन उसके लिए असह्य हो उठा था। किन्तु, फिर भी वह बाहर निकलने का साहस नहीं कर सका।

उपाध्याय ने उसके मन की अशान्ति लक्ष्य की थी। इसीसे उन्होंने अन्य भिक्षुओं को भद्रवाहन से मिलने-जुलने का निषेध कर दिया था। उन्होंने, इस प्रकार, भद्रवाहन को मानसिक अशान्ति से निवृत्त होने का अवसर देना चाहा था।

देवसेन दो-एक बार लुक-छिप कर भद्रवाहन के प्रकोष्ठ में झाँक गया था, किन्तु उपाध्याय की आज्ञा के विरुद्ध उससे बातचीत करने का साहस उसे न हुआ।

दो दिनों के बाद भद्रवाहन का चित्त फिर ऊबने लगा। सङ्घाराम की ऊँची-ऊँची प्राचीरें उसे क़ैदख़ाने

सी जान पड़ने लगीं। दो दिनों के एकान्त वास में उसने अपने मन का बहुत समाधान कर लिया था। उपाध्याय के उपदेशों का उस पर बहुत प्रभाव पड़ा था, किन्तु जब नन्दा की बात याद आती तो वह सब कुछ भूल जाता था। नन्दा! अहा! नन्दा हमारी ही थी, वह अब भी हमारी ही है—लेकिन, लेकिन क्या वह दुःख-रूप है? जगत के सारे दुःखों का लय उसी में है? कितनी कठोर कल्पना है!! भद्रवाहन का मन यह बात सोचने के लिए उस समय भी तैयार न हो सका था।

जिस प्रश्न ने पहले उसके मन को अस्थिर कर रक्खा था वह जब हल होने को आया तो भद्रवाहन के सामने एक दूसरी ही, और शायद उससे भी भयानक, समस्या आ उपस्थित हुई। वह सोचने लगा कि कल्याण का मार्ग कौन सा है?

जगत में सत् और असत् का निर्णय करना कितना कठिन है!

भद्रवाहन को कोई पथ न दीख पड़ा। वह एक बार फिर असहाय होकर अपने मन के अन्धकार में सत्य का प्रकाश ढूँढ़ने लगा।

❧

उस दिन एकादशी का चन्द्रमा आकाश में उठ आया था। रजनी चन्द्रकिरणों के बहाने मुस्कुरा पड़ी थी। धरित्री पर एक अलस मादकता ढल पड़ी थी। भद्रवाहन उस समय बाहर निकल कर टहल रहा था।

सहसा उसने सुना—सङ्घाराम से बाहर, दूर, एक बाँसुरी बज उठी—मधुर, किन्तु करुण!

बाँसुरी की करुण रागिनी, जैसे भद्रवाहन के हृदय को छूकर झनझना उठी। चोट खाए हुए की तरह चौंक कर, उत्कर्ण होकर, उसने सुना—"हाँ, वही, वही चिर-परिचित स्वर तो है। नन्दा!—तब क्या नन्दा मेरा आह्वान कर रही है? क्या उसका मन भी मेरे ही जैसा अशान्त और अस्थिर है?"

और अधिक सोचने का समय न था। एक छलाङ्ग में सङ्घाराम का प्राचीर नाँघ कर भद्रवाहन निकल आया। भय-जड़ित हृदय से एक बार उसने चारो ओर देखा और फिर बाँसुरी का स्वर लक्ष्य करके चल पड़ा।

एक घने देवदारु वृक्ष के नीचे बैठ कर नन्दा बाँसुरी बजा रही थी। तरु-पत्रों के अन्तराल से छन कर आती हुई चञ्चल और चितकबरी किरणें उसके मेचक-कुञ्चित कुन्तलों से क्रीड़ा कर रही थीं। उसके कपड़े अस्तव्यस्त हो गए थे, वेणी खुल गई थी, वह आत्म-विस्मृत होकर बाँसुरी बजा रही थी।

एक अलस स्वप्न की तरह चन्द्र-ज्योत्स्ना चारो ओर बिखरी हुई थी।

वृक्ष की छाया के अन्धकार में छिप कर भद्रवाहन खड़ा हुआ। मुग्धविह्वल नेत्रों से वह नन्दा की एक कल्पित मूर्ति प्रत्यक्ष करने लगा। बाँसुरी की करुण रागिनी वायु-तरङ्गों पर थिरक रही थी।

नन्दा ने बाँसुरी रख दी। इधर-उधर देख कर एक बार अँगड़ाई ली—संसार कितना मनोहर है!

पास ही एक झरना अपने निरन्तर हर-हर स्वर से निःशब्द पर्वत-प्रदेश को मुखरित कर रहा था। नन्दा के स्वर में स्वर मिला कर उसने भी कहा—"संसार कितना आकर्षक है!"

श्रम-कम्पित वाणी में भद्रवाहन ने पुकारा—"नन्दा!"

नन्दा ने गम्भीर होकर सिर हिलाया; उठी; क्षण भर में वह भद्रवाहन के सामने थी। बोली—"तुम आ गए भद्र? मैं तुम्हारी ही प्रतीक्षा में थी।"

"आज बहुत दिनों के बाद तुम्हारी बाँसुरी सुन सका हूँ, नन्दा! फिर क्या मैं स्थिर रह सकता हूँ?"

"आज बहुत दिनों के खोए हुए दिन लौट आए हैं, भद्र! देखो, रात कितनी सुहावनी है! हम-तुम बदल गए हैं, पर इस चाँदनी रात में कोई परिवर्तन नहीं! कोई विकार नहीं!!"

भद्रवाहन ने उत्तर नहीं दिया, केवल एक बार उमड़ती हुई आँखों से नन्दा की ओर देखा—कितना स्निग्ध रूप था! कितना मादक यौवन!!

दो भूले हुए, उन्मत्त-हृदय युवक-युवती, उस चाँदनी रात में, सब कुछ भूल कर एक हो गए। नन्दा ने भद्रवाहन के हृदय में अपना मुँह छिपा लिया।

❧





[illegible] करने लगीं। दो दिनों के [illegible] वास में उसने [illegible] का बहुत [illegible] कर लिया था। [illegible] के उपदेशों का उस पर बहुत प्रभाव पड़ा था, किन्तु जब नन्दा की याद याद आती तो वह सब कुछ भूल जाता था। नन्दा! अहा! नन्दा हमारी थी, [illegible] अब भी हमारी ही है—लेकिन, लेकिन [illegible] दुःख-मय है? जगत के सारे दुःखों का लय [illegible] है! कितनी कठोर कल्पना है!! भद्रवाहन का मन यह बात सोचने के लिए उस समय भी तैयार न हो सका था।

जिस प्रश्न ने पहले उसके मन को अस्थिर कर रक्खा था वह अब हल होने की आशा भी [illegible] भद्रवाहन के सामने एक दूसरी ही, और [illegible] उससे भी भयानक, समस्या आ उपस्थित हुई। वह सोचने लगा कि कल्याण का मार्ग कौन सा है?

जगत में सत्य और असत्य का निर्णय करना कितना कठिन है!

भद्रवाहन को कोई पथ न दिख पड़ा। वह एक बार फिर [illegible] होकर [illegible] के [illegible] प्रकाश ढूँढ़ने लगा।

*

उ[illegible]

और [illegible] का समय न था। एक [illegible] में [illegible] भद्रवाहन निकल आया। भय-जड़ित हृदय से एक बार उसने चारों ओर देखा और फिर बाँसुरी का स्वर [illegible] चला गया।

एक घने देवदारु वृक्ष के नीचे बैठ कर नन्दा बाँसुरी बजा रही थी। तरु-पत्रों के अन्तराल से छन कर आती हुई चन्द्र की चितकबरी किरणें उसके मेचक-कुञ्चित कुन्तलों से क्रीड़ा कर रही थीं। उसके कपड़े अस्तव्यस्त हो गए थे, वेणी खुल गई थी, वह आत्म-विस्मृत होकर बाँसुरी बजा रही थी।

[illegible] चन्द्र-ज्योत्स्ना चारों ओर छिटकी हुई थी।

[illegible] में छिप कर भद्रवाहन खड़ा हुआ [illegible] नेत्रों से वह नन्दा की एक [illegible] मूर्ति [illegible] करने लगा। बाँसुरी की करुण रागिनी वायु-तरङ्गों पर थिरक रही थी।

नन्दा ने बाँसुरी रख दी। इधर-उधर देख कर एक बार अँगड़ाई ली—संसार कितना मनोहर है!

पास ही एक झरना अपने निरन्तर झर-झर स्वर से निःशब्द पर्वत-प्रदेश को मुखरित कर रहा था। नन्दा के स्वर में स्वर मिला कर उसने भी कहा—"संसार कितना मनोहर है!"

[illegible] वाणी में भद्रवाहन ने पुकारा—"नन्दा!"

नन्दा ने [illegible] होकर सिर हिलाया; उठी; [illegible] में वह भद्रवाहन के सामने थी। बोली—"तुम आ गए [illegible]! मैं तुम्हारी ही प्रतीक्षा में थी।"

"आज बहुत दिनों के बाद तुम्हारी बाँसुरी सुन सका हूँ, नन्दा! फिर क्या मैं स्थिर रह सकता हूँ?"

"आज बहुत दिनों के बाद, हुए दिन और आए [illegible]! देखो, रात कितनी सुहावनी है! हम-तुम बदल गए हैं, पर इस चाँदनी रात में कोई परिवर्तन नहीं, कोई विकार नहीं!"

भद्रवाहन ने उत्तर [illegible] एक बार [illegible] भरी हुई आँखों से नन्दा की [illegible] कितना [illegible] रूप था! कितना मादक यौवन!!

दो भूले हुए, उन्मत्त हृदय युवक-युवती, उस चाँदनी रात में, सब कुछ भूल कर एक हो गए। नन्दा ने भद्रवाहन के हृदय में अपना मुँह छिपा लिया।

*



प्रतीक्षा

मुस्तइद अहले-वफ़ा हैं डूब मरने के लिए !
है कोई बेचैन अब अशनान करने के लिए !!

—नूह नारवी



कुटीर के एक पार्श्व में विश्रान्त होकर भद्रवाहन सोया हुआ था। नन्दा की आँखों में, किन्तु, उस समय भी नींद नहीं थी।

भद्रवाहन को सङ्घाराम छोड़े हुए कई दिन बीत चुके थे। वह अपेक्षाकृत स्वस्थ था, किन्तु नन्दा के मन में एक आग जल रही थी। पश्चात्ताप की ज्वाला से उसका अङ्ग-अङ्ग झुलसा जा रहा था—हाय! उसका मन कितना दुर्बल है। लालसा की एक आँधी ने उसकी साधना का सर्वस्व नष्ट कर डाला और वह कुछ भी नहीं कर सकी।

भद्रवाहन सोया हुआ था। नन्दा एकटक उसके सुश्री मुख-मण्डल की ओर देख रही थी। देखते-देखते उसकी आँखों से जल की धारा बह चली, उसने उसके कपोलों को, और फिर उत्तरीय को भिगा डाला। नन्दा सोचने लगी—"यह भ्रान्त युवक किस आकर्षण से सर्वनाश के इस अग्निकुण्ड में कूद पड़ा है? वह क्या मेरा रूप ही नहीं है? हाय! इस रूप ने कैसा अनर्थ किया है? भद्रवाहन के सर्वनाश का कारण, तब क्या मैं ही बनूँगी? नहीं, जैसे हो, इस बार भद्रवाहन को उबारना पड़ेगा।"

क्षण भर में नन्दा ने अपना कर्त्तव्य स्थिर कर लिया और तब उसके मन की अशान्ति सुगन्ध की भाँति उड़ गई।

❧

भद्रवाहन ने जग कर अलस-विजड़ित कण्ठ से पुकारा—"नन्दा!"

नन्दा सिहर उठी। उसने कुछ उत्तर नहीं दिया।

भद्रवाहन ने फिर पुकारा—"नन्दा! प्रिये!!"

नन्दा फिर भी चुप ही रही।

तब भद्रवाहन उठा। उठ कर उसने नन्दा की ओर देखा—वह बाहर शून्य आकाश की नीलिमा देखने में तन्मय थी। भद्रवाहन ने उसका कन्धा पकड़ कर झकझोर दिया—"नन्दा! क्या सोच रही हो?"

नन्दा ने जैसे सोते से जग कर उत्तर दिया—"नहीं, कुछ नहीं। देखती हूँ, आकाश में कितने रङ्ग हैं!"

भद्र—"इसका क्या अर्थ है नन्दा! आज तुम उद्विग्न क्यों हो?"

नन्दा—"उद्विग्न हूँ? तुम्हें ऐसा ही मालूम पड़ता है? तब ज़रूर उद्विग्न होऊँगी। लेकिन मैं पूछती हूँ, तुम क्या सचमुच ही मुझे प्यार करते हो भद्रवाहन?"

भद्र—"हाँ; नन्दा! अब क्या इसके लिए भी मुझे सफ़ाई देनी पड़ेगी?"

नन्दा—"सफ़ाई की बात नहीं। मैं पूछती हूँ, क्या सचमुच ही तुम मुझे हृदय से प्यार करते हो?"

भद्र—"हाँ, नन्दा! बहुत।"

नन्दा—"मेरी एक बात मानोगे?"

भद्र—"हाँ।"

नन्दा—"प्रतिज्ञा करते हो?"

भद्र—"हाँ।"

नन्दा—"सोच लो भद्र! यह तुम्हारे प्रेम की परीक्षा है।"

भद्र—"मुझे कुछ नहीं सोचना है, नन्दा! तुम कहो।"

नन्दा—"अच्छा, तब सुनो—तुम्हें फिर लौट कर सङ्घाराम में जाना पड़ेगा, फिर जीवन का सदुपयोग करना पड़ेगा। मैं तुम्हारा—बौद्ध भिक्षु का—यह अधःपतन नहीं देख सकती। यदि सचमुच ही तुम मुझे प्यार करते होओ, तो बिना वाक्य-व्यय किए, तुम फिर वहीं लौट जाओ।"

भद्रवाहन को जैसे किसी ने आकाश से डाल दिया। क्षण भर स्तब्ध रह कर उसने कहा—"तुम्हें यही कहना था नन्दा? हाय! मैं तुम्हें कितना प्यार करता हूँ?"

नन्दा—"झूठ बोलते हो भद्र! प्रेम का नाम लेकर उसे कलङ्कित मत करो। यदि मुझे प्यार करते हो, तो अभी उसी पथ पर लौट जाओ।"

भद्र—"पर, वहाँ क्या अब मेरे लिए स्थान रह गया है? जानती हो नन्दा! अपने लक्ष्य से च्युत होने वाले भिक्षु के लिए दण्ड की क्या व्यवस्था है?"

नन्दा—"वह कुछ भी हो, यदि प्राण भी देने पड़ें तो वह जीवन का सदुपयोग ही होगा। बोलो, जाते हो?"

भद्रवाहन शीघ्र कुछ उत्तर न दे सका। क्षण भर ठहर उसने काँपती हुई वाणी में कहा—"नहीं नन्दा! मैं वहाँ न जा सकूँगा। मुझे क्षमा करो।"

तिरस्कारपूर्ण तीव्र दृष्टि से नन्दा ने कहा—"तब फिर नन्दा का नाम न लेना, उसके प्रेम का दम न भरना। भद्र! क्षण भर पहले मैं तुमसे प्रेम करती थी, लेकिन अब वह घृणा के रूप में बदल गया है। याद रक्खो भद्र!

वाहन ! नारी यदि प्रेम कर सकती है तो वह घृणा भी कर सकती है। प्रेम करना उसके लिए जितना आसान है, घृणा भी उतना ही है। लो, मैं चली। फिर कभी मेरा नाम न ले सकोगे।"

उत्तर की अपेक्षा किए बिना ही नन्दा तीव्र गति से बाहर निकल गई। भद्रवाहन हतबुद्धि होकर चुपचाप ताकता रह गया।

❧

अकेला भद्रवाहन कुटीर में रह गया—नन्दा सचमुच ही चली गई थी। भद्रवाहन कुछ समझ न सका, क्षण भर में, यह न जाने कैसा विप्लव उत्पन्न हो गया था !

वह विस्मित था, स्तब्ध था, झुँझलाया हुआ था।

कुछ देर बाद वह प्रकृतिस्थ हुआ। उसने सोचा—"तब क्या जगत सचमुच ही दुःखमय है ? जिसमें संसार के सारे सुखों का मैंने दर्शन किया था, अन्त में क्या उसीके द्वारा मुझे चिर-जीवन के लिए यह दुःख उपहार में मिला है ?"

उसने और भी सोचा—"अब मेरे लिए कौन सा पथ है ? जिसके लिए सब कुछ छोड़ा, जगत के हास-उपहास की उपेक्षा की, चरम सुख निर्माण की अवहेलना की, वह मुझे कितनी आसानी से छोड़ कर चली गई ! हाय नारी ! तेरा हृदय क्या पत्थर से भी कठोर है !!"

तब, उसके मन में एक दूसरी भावना का उदय हुआ— नारी इस प्रकार आसक्ति की उपेक्षा कर सकती है, और मैं, पुरुष होकर, लालसाओं की धारा में डूब-उतरा रहा हूँ ? हाय ! मेरा जीवन धिक्करणीय है !!

अपने प्रति एक तीव्र उपेक्षा और धिक्कार के भाव से उसका हृदय भर गया। तब उसके मन में प्रतिहिंसा और क्रोध का उदय हुआ—वहीं चलना होगा। दूसरा पथ नहीं है। संसार का सारा अपमान, तिरस्कार, व्यङ्ग और उपेक्षा सह कर भी यदि मैं प्रायश्चित्त कर सकूँ ! एक बार कोशिश करके देखूँगा !

और तब वह एक बार रोया। रोने से जी हलका हुआ ; दृष्टि का विकार दूर हो गया। आँखें पोंछ कर फिर जब उसने देखा तो संसार उसे दूसरे ही रूप में दिखाई पड़ा।

एक आघात ने संसार का परिवर्तन कर दिया था। उसने स्पष्ट देख पाया—नन्दा ने उसके जीवन की सारी कलुषता एक झोंके में दूर कर दी है। नन्दा के प्रति अपूर्व श्रद्धा और कृतज्ञता से उसका हृदय भर गया।

अब वह शान्त था। उठा और सङ्घाराम की ओर चल दिया।

❧

उस दिन फिर सङ्घाराम के विशाल प्राङ्गण में जन-समूह एकत्रित हुआ। कौतूहल से लोग एक-दूसरे की ओर देखते और आँखों में बातचीत करते थे; पर कोई किसी की बात समझ न पाता था।

यथासमय उपाध्याय के साथ भिक्षुओं ने मण्डप में प्रवेश किया। एक आवृत और धीमे कोलाहल से प्राङ्गण गूँज उठा।

सहस्र-सहस्र नेत्रों ने विस्मय और आश्चर्य से देखा—मुण्डित मस्तक भद्रवाहन प्रव्रज्या ग्रहण करने के लिए उपाध्याय के सम्मुख बैठा हुआ है। फिर एक धीमे कोलाहल से प्राङ्गण गूँज उठा।

सब लोगों के यथास्थान उपविष्ट हो जाने पर भद्रवाहन ने उठ कर धीमे—किन्तु सब लोग सुन सकें ऐसे—स्वर में उपाध्याय से निवेदन किया—"हे उपाध्याय ! मैं भिक्षु के कर्त्तव्य का पालन नहीं कर सका हूँ, जान-बूझ कर ही मैं अपने मार्ग से भ्रष्ट हुआ हूँ, पर इसका कारण मेरे मन का अज्ञान और अशान्ति भी है। हे उपाध्याय ! अन्धकार की ओर जाकर मैं अन्धकार की वास्तविकता का अनुभव कर सका हूँ और तब फिर वहाँ से वापस आया हूँ। मैं अपराधी हूँ। अपने अपराध का दण्ड चाहता हूँ। और उसके बाद, हे उपाध्याय ! मैं आपसे प्रव्रज्या ग्रहण करना चाहता हूँ। अब मेरा मन पूर्ण शान्त है, मैं अपने को प्रव्रज्या ग्रहण करने के लिए पूर्ण योग्य समझता हूँ। हे उपाध्याय ! आप मुझे अन्धकार से निकल कर प्रकाश में आने का फिर एक बार अवकाश दीजिए।"

भद्रवाहन इतना कह कर चुप हो गया। भिक्षुओं के साथ, उपस्थित जनता की सहस्र-सहस्र उत्सुक आँखें एक साथ उपाध्याय पर जा पड़ीं। सभी उत्सुक थे, व्याकुल थे—देखें, उपाध्याय क्या फ़ैसला देते हैं ?

गम्भीरतापूर्वक सब कुछ सुन लेने के बाद उपाध्याय

उठे। भिक्षुओं को सम्बोधित करके उन्होंने कहा—"हे भिक्षुगण! भद्रवाहन का अपराध अक्षम्य है। इस सङ्घाराम में इस प्रकार की यह पहली ही घटना है। किन्तु इसके साथ ही भद्रवाहन को अपने कृत्यों पर पश्चात्ताप भी है, वह अपने सुधार के लिए अवकाश चाहता है। हे भिक्षुगण! आप लोगों की सम्मति के अनुसार इस बार हम उसे क्षमा करते हैं। जीवन के अतीत सत् और असत् से निवृत्त होकर वह पुनर्वार प्रव्रज्या ग्रहण करना चाहता है। मैं समझता हूँ, उसका उदाहरण अन्य भिक्षुओं के लिए मार्ग-दर्शक बनेगा और वे असत् पथ पर जाने से विरत होंगे।"

इसके बाद उपाध्याय ने फिर कहा—"हे भिक्षुगण! भद्रवाहन को सत्-पथ पर लाने में सब से बड़ा हाथ इस भिक्षुणी का है। यह एक सब से कठोर परीक्षा में उत्तीर्ण हुई है। इस पर हम पूर्ण विश्वास कर सकते हैं और इसे दक्षिण में प्रचार के लिए भेज रहे हैं।"

ऐसा कह कर उपाध्याय ने नन्दा को जनता के सम्मुख खड़ी कर दिया। भक्ति-नत होकर सब लोगों ने उसकी ओर देखा। भद्रवाहन ने भी देखने की चेष्टा की, किन्तु श्रद्धा और कृतज्ञता से उसका मस्तक झुका ही रहा।

उसके बाद भद्रवाहन का प्रव्रज्या और उपसम्पदा संस्कार हुआ। कषाय वस्त्र और अन्य वस्तुएँ उसे मिलीं। फिर उसने भिक्षु होकर प्रतिज्ञा की—

बुद्धं शरणं गच्छामि।
धम्मं शरणं गच्छामि।
सङ्घं शरणं गच्छामि।

सहस्र-सहस्र कण्ठों से उच्चरित होकर यह महामन्त्र सङ्घाराम के विशाल प्राङ्गण में प्रतिध्वनित हो उठा।

☾ ☾ ☾

जीवन-पथ

[प्रोफ़ेसर रामकुमार वर्मा, एम० ए०]

ओ मेरे पथ, जीवन-पथ!

मेरे पदाघात सह कर बतलाते हो गृह-गृह के द्वार।
बसता है इस ओर और उस ओर तुम्हारे सब संसार॥

ओ मेरे पथ, जीवन-पथ!

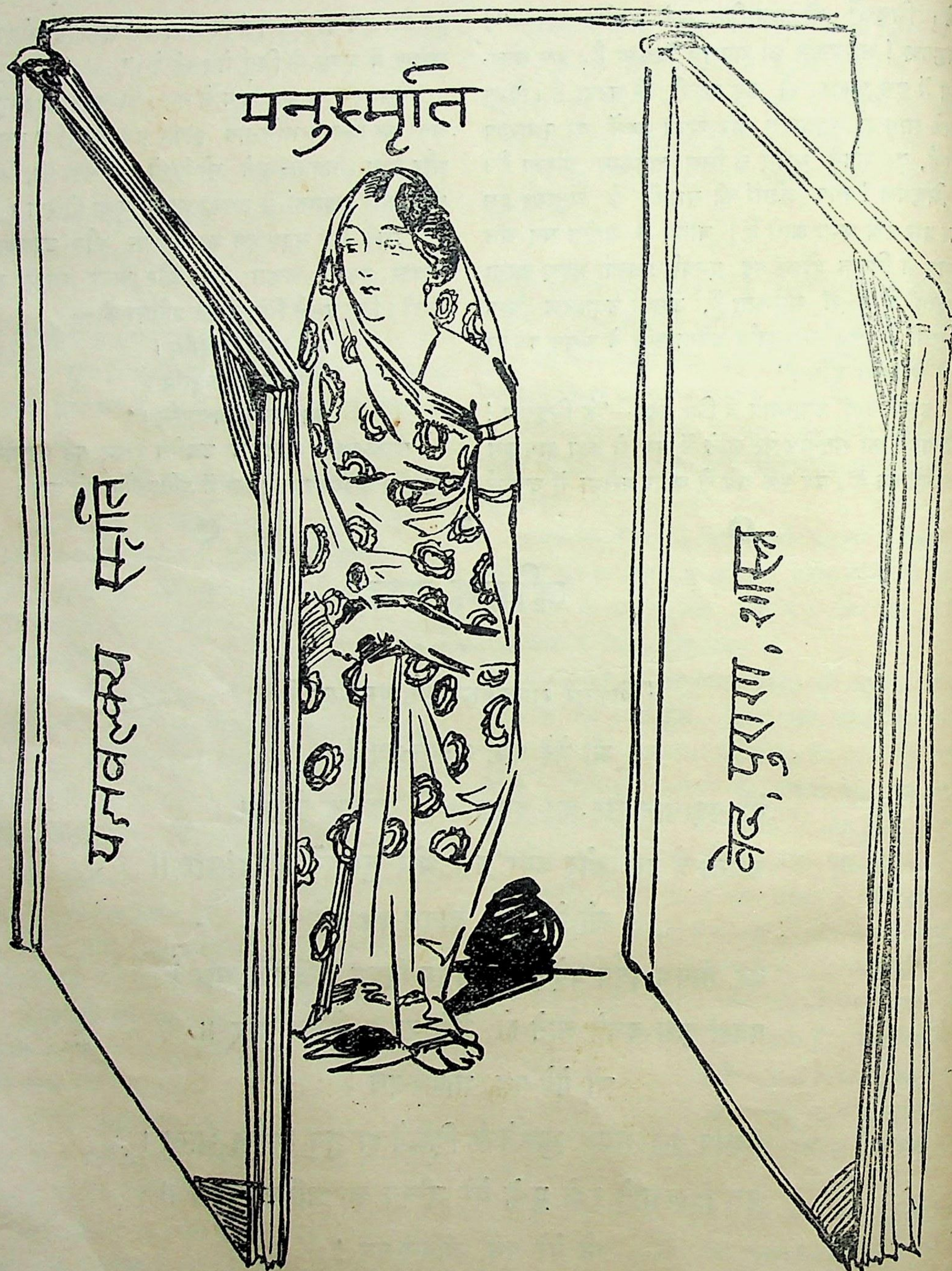
यह जीवन पर्वत-प्रदेश-सा असम-विषम है चारों ओर।
पतले कृश बनते जाते हो, जैसे आता है वन घोर॥

ओ मेरे पथ, जीवन-पथ!

यद्यपि वृद्ध सदृश झुकते-से दिखते हो तुम निर्बल श्रान्त।
पर दिखलाते रहो मुझे मेरे जीवन का अन्तिम प्रान्त॥

ओ मेरे पथ, जीवन-पथ!





भारतीय स्त्रियों का जेल



नई रोशनी



भैया और जमादार

कान्यकुब्ज ब्राह्मणों में अशिक्षा और दरिद्रता बेहद बढ़ी हुई है। कान्यकुब्जों के निवास-स्थान संयुक्त प्रान्त और कुछेक मध्यभारत में—अटेर आदि—उल्लेखनीय हैं। जन्म से ब्राह्मण जाति में उत्पन्न होने पर भी कान्यकुब्जों का धन्धा प्रधानतः कृषि और सेना में नौकरी करना रहा है। गाँवों में बसने के कारण प्रायः सभी के पास थोड़ी-बहुत ज़मीन रही, पर उनके लिए मनु महाराज की आज्ञा बड़ी टेढ़ी थी। हल चलाना उन्होंने पाप समझा; वे या तो मज़दूर रख कर खेती कराने लगे या हल चलाने वाले किसानों को खेत उठाने लगे। परिणाम यह हुआ कि ज़मीन्दारों को छोड़ कर थोड़ी-बहुत ज़मीन रखने वाले कान्यकुब्जों को खेती से निराश होना पड़ा। उन्होंने यह नहीं सोचा कि मनु महाराज की यह आज्ञा कितनी निरर्थक, और कर्त्तव्य से च्युत करने वाली है। वह धर्माज्ञा नहीं, नीचातिनीच आज्ञा है। जो हमें सदाचारपूर्वक परिश्रम करने से रोके, दूसरों के दरवाज़े भीख माँगने, स्टेशनों पर पानी पिलाने और व्यापारियों की भैयागिरी और जमादारी करने की अपेक्षा अपने बाहुओं से हल जोत कर अन्न उत्पन्न करने में जो आज भी अधर्म बतलावे, उससे बढ़ कर मूर्ख कोई नहीं। पर दुर्भाग्यवश कनौजिए इस आज्ञा के शिकार हुए। परिणाम यह हुआ कि इस बीसवीं शताब्दी के कर्मप्रधान युग में कृषि जैसे सर्वोत्तम उद्योग में वे असफल हो गए। उन्हें अपने खेतों को छोड़ कर अपने और बाल-बच्चों के उदर-भरण के लिए बम्बई और कलकत्ता जैसे शहरों की शरण लेनी पड़ी। अब सुनिए, बम्बई और कलकत्ता आदि शहरों में इन सर्वश्रेष्ठ—अभिमान में चूर रहने वाले—ब्राह्मणों की हालत। वहाँ ये भैया और जमादार कहलाए। बम्बई में भैया शब्द यू० पी० वालों के लिए कितना तिरस्कारजनक है, उसका हवाला कुछ न पूछिए। बम्बई में पारसी, गुजराती, बोरा और भाटिया तथा मारवाड़ी आदि भैया को क्षुद्रातिक्षुद्र व्यक्ति समझते हैं। अदालत में जब कभी मुक़दमा चलता है, तब जज या मैजिस्ट्रेट कहता है—"ओह! यह तो भैया का बयान है। कोई प्रभावशाली सुबूत आपके पास नहीं है?" यह तो जन-समाज में आदर हुआ। इतना ही नहीं, उनके साथ दो-चार पढ़े-लिखे भी हुए तो लोग यही कहते हैं कि देखो भैया जाति के ये पढ़े-लिखे आदमी हैं। निरक्षर भट्टाचार्य होने या पढ़ने-लिखने का साधारण ज्ञान रखने पर उन्हें काम मिलता है या तो दरबानी का या हुण्डी-पुर्ज़ा वसूल करने या चिट्ठी-पत्री लगाने का। जो अल्प वेतन उन्हें मिलता है, वह सच पूछो तो बम्बई ऐसे शहर में उनके मकान-किराए के लिए भी काफ़ी नहीं होता है। बेचारे चार-पाँच की टोली में कोई एक गन्दा कमरा किराए पर ले लेते हैं, बारी-बारी से चौका पोत कर रात के बारह बजे तक रोटियाँ बनाते हैं, और फिर उसी गीले स्थान पर बिछौने बिछा कर सो जाते हैं। इतनी कठिनाई से रहते हैं कि पूरे दो वक़्त पेट भर कर नहीं खाते हैं। इस प्रकार बचत कर हर महीने उन्हें अपने घर मनी-ऑर्डर भेजने पड़ते हैं। उबली हुई दाल और जैसी-तैसी रोटियाँ एक आध बार खाने से उनके

स्वास्थ्य की भयङ्कर अवस्था हो जाती है। शारीरिक क्षमता पूर्णतः नष्ट हो जाती है। अनेकों को भयङ्कर बीमारियों से ग्रस्त होकर घर लौटना पड़ता है। घर आकर उनमें कुछ ही बचते हैं, और बाक़ी तो परमधाम को पधार जाते हैं। बम्बई ऐसे औद्योगिक और व्यापारिक शहर में भी—कुछ लोगों को छोड़ कर—शायद ही किसी ने कोई हुनर सीखा हो। वहाँ यदि उन्होंने हुनर सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त किया होता, तो वे काम के आदमी बन जाते। पर सो कुछ भी नहीं किया। वहाँ भी उनकी वह मेढ़ की टर्र नहीं गई। अपने को सुखा दिया, शारीरिक शक्ति नष्ट कर दी, पर खान-पान का रोग बना ही रहा और उसी दक़ियानूसी ख़्याल से इन लोगों ने कोई नई बात नहीं सीखी। बम्बई जैसे चकाचौंध के शहर में उनकी आँखें खुलनी थीं, पर वहाँ भी इन महान ऋषियों की सन्तानों ने कुछ भी नहीं किया; उल्टे भैया नाम से कलङ्कित हुए। उनका ऐसा पतन देख कर महात्मा गाँधी ने अपने पत्र 'यङ्ग इण्डिया' में लिखा और बम्बई वालों से आकर भी कहा कि इन लोगों को भी मनुष्य समझा करो और जिस अर्थ में तुम इन्हें भैया कहते हो अब से न कहा करो। वहाँ सुधार और सङ्गठन का यह हाल है कि कहने को एक-दो सभाएँ हैं, पर उनमें न तो कोई दिलचस्पी लेकर आता है, न कोई समाज-सुधार का कार्य ही होता है। वेङ्कटेश्वर प्रेस के मैनेजर स्वर्गीय शिवदुलारे जी बाजपेयी अवश्य दिलचस्पी रखते थे और वे अपने प्रभाव से लोगों को रास्ते पर ला रहे थे। किन्तु अब तो वहाँ उनका कोई धनी-धोरी नहीं रहा। बम्बई ऐसे स्थान में, जहाँ मकानों का पूर्णतः अभाव है, कान्यकुब्जों के रहने के लिए सस्ते मकानों की सख़्त ज़रूरत है, जो साफ़-सुथरे और हवादार हों; उनके बालकों के लिए निःशुल्क शिक्षा देने वाली, दिन और रात की, पाठशालाएँ हों; उन्हें औद्योगिक शिक्षा देने का पूर्ण प्रबन्ध हो। परन्तु वहाँ तो इतना भी नहीं है कि रोज़गार की तलाश में आया हुआ कान्यकुब्ज दो रोज़ के लिए कहीं ठहर सके और सुभीता पा सके। तपेदिक के बीमार की जो हालत हो जाती है, वह ग़रीब कान्यकुब्जों की बम्बई में होती है। क्योंकि बम्बई में कान्यकुब्जों में बड़े रोज़गार के आदमी नहीं से हैं, सब नौकरीपेशा वाले हैं।

बम्बई की अपेक्षा कलकत्ते में कान्यकुब्ज ब्राह्मण अधिक तादाद में हैं। वहाँ उनका सम्बोधन जमादार कह कर होता है। कलकत्ते में मिर्ज़ापुर ज़िले के रहने वाले एक ब्राह्मण पण्डित पुरुषोत्तम राय (भट्ट) ने जमादार-सङ्घ नामक एक श्रमजीवी संस्था संयुक्त प्रान्त और बिहार के इन जमादार श्रमजीवियों के लिए खोली है। यद्यपि मेरा इस बात से विरोध था कि इस संस्था का नाम जमादार-सङ्घ रक्खा जाय, किन्तु मैं उसमें कार्य करता रहा। मन्त्रि-मण्डल का कार्य करने के अलावा मैंने सङ्घ से निकलने वाले साप्ताहिक पत्र 'जमादार' का सम्पादन भी किया। पर हम लोगों में एकता के अभाव से सङ्घ जैसी श्रमजीवी संस्था भी नहीं चली, जिसका यह उद्देश्य था कि एक जमादार पीछे, मालिकों से एक रुपया वसूल कर, जमादारों की अवस्था का सब प्रकार से सुधार किया जाय। यहाँ भी सभी को जमादार कहते हैं। यदि ऑफ़िस और गद्दी में काम करने वाला व्यक्ति भी अपने स्वजाति जमादार भाइयों से मिलता है, और मिलना ही पड़ता है, तो लोग उन्हें भी जमादार कहने लगते हैं। यहाँ भी कान्यकुब्ज ब्राह्मणों की शिक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं है। यहाँ पर कान्यकुब्ज ब्राह्मण केवल जमादारी ही नहीं करते, कई रोज़गार भी करते हैं—पत्र-सम्पादक भी हैं, साहूकार भी हैं, ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट और मकान-मालिक भी हैं, और दूकानदार व्यापारी भी हैं। पर इन बड़े आदमियों की गिनती अँगुलियों पर है। 'स्वतन्त्र'-सम्पादक पण्डित अम्बिकाप्रसाद जी वाजपेयी के 'स्वतन्त्र' कार्यालय में तथा दूसरे किसी स्थान पर कभी-कभी कान्यकुब्ज-मण्डल का कोई अधिवेशन हो जाता है। सुधारक नवयुवकों ने अपना दल अलग भी क़ायम किया था। पर होता-जाता कहीं कुछ भी नहीं है। इन सभाओं की हालत देख कर कलकत्ते में कुछ मेरे मित्र कान्यकुब्ज युवक मुझसे कहते थे कि सब जातियों का सुधार हो सकता है, पर कान्यकुब्जों का कदापि नहीं। एक तो वे कभी इकट्ठे नहीं होंगे, और दैववशात थोड़े-बहुत इकट्ठे भी होंगे तो लड़ पड़ेंगे। कलकत्ता, बम्बई की तरह, घना बसा हुआ न होने के कारण बहुतों को मकान का साधारण आराम भी है, पर अनेकों को—उनमें भी प्रायः सभी जमादारों को—रहने और भोजन करने को गन्दा स्थान मिलता है। उस गन्दगी में

रहने से तो मौत पाकर नर्क में रहने को मिले तो कहीं श्रेष्ठ है। पर न जाने इन अज्ञानी युवकों को क्या शौक़ चर्राता है कि घर की खेती-बारी छोड़ कर अथवा आस-पास की कोई छोटी-बड़ी नौकरी या धन्धा छोड़ कर दस-बारह रुपए के साधारण वेतन के लिए कलकत्ते दौड़े आते हैं, और अपने शरीर की और कुटुम्ब की हर प्रकार से छीछालेदर कराते हैं।

पूज्य मालवीय जी को पण्डित पुरुषोत्तम राय तथा इन जमादारों ने कई बार घेरा कि आप ब्राह्मण हैं, धनी मारवाड़ियों के प्राण हैं, इन ब्राह्मण मज़दूरों के लिए कोई मकान बनवा दीजिए, जहाँ पर बैठ कर वे अपना उद्धार करने का आयोजन तो कर सकें। मालवीय जी महाराज पहले तो बहुत कुछ आश्वासन देते-दिलाते रहे, पर एक बार जब उनको इन लोगों की एक सभा में आना पड़ा, तो कहा कि तुम सब भाई यदि प्रति वर्ष एक-एक रुपया दे डालो, तो हर साल एक नया विशाल भवन तैयार हो सकता है। तब से ये जमादार भी समझ गए कि कोई नेता हो या धनी हो, उनका उद्धार किसी से नहीं होगा। उन्हें अपना उद्धार स्वयं करना होगा। पर आज उनमें अनैक्य इतना ज़बर्दस्त है कि उनका सङ्गठन ही शिथिल हो गया। अन्यथा, उनके आरम्भिक सङ्गठन को देख कर पार्लामेण्ट के भूत-पूर्व मेम्बर शापुरजी सकलतवाला ने इन जमादारों की सभा में पधार कर कहा था कि ब्राह्मण और दूसरी जातियों के श्रमजीवी जो यह सङ्गठन कर रहे हैं, वह बड़ा अपूर्व है। मैंने श्रमजीवियों का इतना ज़बर्दस्त सङ्गठन भारतवर्ष में और कहीं नहीं देखा था। उस सङ्गठन की भी पूरी छीछालेदर हो गई। यदि ये लोग कलकत्ते में कोई छोटे-छोटे रोज़गार करने लगें तो बड़ी उन्नति कर सकते हैं। लिमिटेड कम्पनी में, सङ्गठन के रूप में, हर एक जमादर दो-दो चार-चार रुपए के शेयर ख़रीद कर हर साल छोटे-छोटे धन्धों के कारख़ाने व दूकानें खोलें, तो उन्हें उन्हीं सङ्गठनों में काम भी मिलेगा और मुनाफ़ा मिलेगा सो अलग। आज जो उन्हें यह भय रहता है कि उन्हें निकाल दूसरी जाति के लोग भर्ती कर लिए जाएँगे, यह भय तब न रहेगा। कलकत्ता, बम्बई और कानपुर—कहीं भी इस प्रकार के सङ्गठनों की स्थापना कर यह लोग अपनी उन्नति कर सकते हैं। इतनी पूँजी तो उनमें से किसी के पास नहीं है कि अपने पास से रुपया लगा कर कोई धन्धा शुरू करें, जिसमें उन्हें और दूसरों को काम मिले, परन्तु इसका सहल उपाय आजकल के ज़माने में इन्हीं कम्पनियों के सङ्गठन करने का है। भाँग-बूटी और तमाखू फाँकना छोड़ कर या गाढ़ी कमाई के चार पैसे का अधिक भाग सुनारों को देकर ज़ेवर बनवाना क़तई बन्द कर अपनी आर्थिक अवस्था सुधारने का घोरतम प्रयत्न करना चाहिए। अनेक युवक ऐसे भी इन शहरों में आते हैं जो मुसीबतों के मारे दर-दर भटकने पर कहीं नौकरी पाते हैं। बेचारे एक बार खाकर जैसे-तैसे कुछ पैसे बचाते हैं, तो घर से युवा पत्नी का आभूषण बनवाने के तक़ाज़े पर तक़ाज़े आते हैं। उनकी इस कमाई का बहुत कुछ तो सुनार बनवाई और चोरी में हड़प लेता है, और बाक़ी हिस्सा घिसाई आदि में नष्ट हो जाता है। इस बीसवीं शताब्दी के ज़माने में भी स्त्रियों के पैरों में कड़े और छड़ों की बेड़ियाँ डालना और हाथ व गले में सोने-चाँदी के बेहूदे ज़ेवर पहनना अतीव हानिकारक है। आश्चर्य तो यह है कि बड़े-बड़े पढ़े-लिखे घरों की भी स्त्रियाँ इस महा छूत रोग से नहीं बची हैं। जिस जाति की इतनी शोचनीय अवस्था है, उसकी देवियाँ चाँदी और सोने के ज़ेवरों के लिए लालायित हों, यह कैसा दुर्भाग्य है! घर में खाने को नहीं हो, बच्चों की तालीम के लिए पैसे की कठिनाई पड़ती हो, पर स्त्रियों के लिए ज़ेवर चाहिए! यदि मितव्ययिता से दो-चार पैसे बचा कर अपने खेतों में लगावें, या किसी धन्धे में लगावें या उसे बैङ्क में ही डाल दें और स्त्रियों से कहें कि यह धन जो लगा है, वह तुम्हारा ही है, इससे हमारी ग़रीबी तो दूर होगी ही, बल्कि जो धन तुम्हारे पैर-हाथ और गले में पड़ कर नष्ट होता, वह देश की निर्धनता दूर करने के लिए लगा हुआ है, हमें भैयागिरी और जमादारी से छुड़ावेगा, तो कितना अच्छा हो? गाँवों में कान्यकुब्ज ब्राह्मणों की हालत इतनी शोचनीय इसीलिए है कि उनके पास जो दो-चार पैसे आते हैं, उनका वे सदुपयोग नहीं करते। वे गाँवों से भाग कर शहरों में नौकरी करेंगे और चार पैसे पास हुए नहीं कि नौकरी छोड़ बैठे। जब सब खा लेंगे, लोटा-थाली तक बेच डालेंगे, तब पान और तमाखू खाना छूटेगा और फिर नौकरी की फ़िक्र होगी। इस

प्रकार इन कान्यकुब्ज ब्राह्मणों ने अपनी ज़मीनें दूसरों को सौंप दीं, और स्वयं उन मज़दूरों से भी बदतर हो गए, जो मिलों में काम करते हैं। साँप की तरह ऐंठ तो उनकी बात-बात में होती है, फिर वे कैसे सफलतापूर्वक खेती कर सकते हैं, कैसे कोई रोज़गार कर सकते हैं? आज भी यदि वे गाँवों में मन लगाकर खेती करें, सभी काम—हल चलाने और गोबर उठाने से लेकर अनाज घर में लाने तक—अपने हाथों से करें, तो न तो उनका ब्राह्मणत्व नष्ट होगा और न उनकी ऐसी दुर्दशा ही होगी, जैसी आजकल हो रही है। इस प्रकार गाँवों में रह कर वे अपनी आर्थिक अवस्था भी सुधार सकेंगे और विद्या-सम्बन्धी ज्ञान सीख कर ब्राह्मणत्व की शोभा बढ़ा सकेंगे। भैयागिरी और जमादारी में न तो उनका पौरुष रहता है, न आर्थिक अवस्था सुधरती है; बल्कि घोरातिघोर तिरस्कार सहना पड़ता है। यदि उन्हें इन शहरों में ही जाना है, तो वहाँ जाकर वे कोई हुनर सीखें, जिससे या तो वे किसी बड़े धन्धे में लग जावें या अपना ही कोई स्वतन्त्र काम करने लगें। पशुओं के समान इस दयनीय अवस्था से उन्हें अपना छुटकारा करना चाहिए।

खेती में भी तभी सफलता होगी, जब वे नए साधनों का उपयोग करेंगे और फ़ुर्सत के समय खेती के साथ-साथ और कोई धन्धा भी गाँवों में करेंगे। उन्हें यह जानना चाहिए कि यह कर्मयुग है, इस युग में चाहे ब्राह्मण हो या और कोई, परिश्रम करने से ही चार पैसे मिलेंगे। हम जितना ही स्वतन्त्र धन्धा करेंगे, उतना ही हम अपने स्वाभिमान, पूर्व गौरव और अपने ब्राह्मणत्व की रक्षा करेंगे। सब फ़िज़ूलख़र्चियाँ मिटा—मितव्ययिता-पूर्वक रह कर—जो चार पैसे बचें, उन्हें रोज़गार में लगाते चले जाना चाहिए। जनेऊ और ब्याह-शादी इस रूप में करने चाहिए कि मानो हम पर उसका कोई भार नहीं पड़ता है। धार्मिक कृत्यों के करने में, जनेऊ-विवाह में पाँच-दस या बीस-तीस रुपए से अधिक का ख़र्च ही नहीं है। तीज-त्यौहारों के मानने में भी व्यर्थ का ख़र्च न करना चाहिए। हमें यह याद रखना चाहिए कि धन कमाना सहल है, किन्तु उसका ख़र्च करना अत्यन्त कठिन है। जो लोग इस ख़र्च करने में सावधानी रखते हैं, वे ही सफलता प्राप्त करते हैं। हमारे इस कथन का यह भी अर्थ नहीं है कि लोग खाएँ-पिएँ न, अच्छे वस्त्र तक न पहिनें। नहीं, वे यह सब करें, पर सदैव धन का सदुपयोग करें। आज जैसा ज़माना आ रहा है, हमको उसी के उपयुक्त अपनी तैयारी करनी चाहिए। यह समय वह है कि यदि हम ज़रा भी न सम्हले तो हमारा अस्तित्व ही नहीं रहेगा। वैसे ही हमारी जाति मिटती चली जाती है, पर जब पूरा घड़ा भर जाएगा, तब हम जगे तो क्या जगे? सारी जातियाँ अपने-अपने कलङ्कों को धोने में लगी हैं, पर हमारे भाई—भैयागिरी और जमादारी कर—आज भी भयानक आर्थिक सङ्कट और पैशाचिक सामाजिक कुरीतियों के दलदलों में फँसे हुए हैं। अभी तक जो हमारी बेढङ्गी रफ़्तार है, उससे हमारा भविष्य अन्धकारमय ही प्रतीत होता है।

—जी० एस० पथिक बी० ए०, बी० (कॉम)
(प्रधान मन्त्री, कान्यकुब्ज सभा, ग्वालियर)

* * *

स्वास्थ्य और नवयुवक

दुःख की बात है कि स्वास्थ्य का महत्व इस देश से लुप्तप्राय सा हुआ जा रहा है। यह एक सपने की स्मृति सी रह गई है। स्वास्थ्य और नवयुवक से बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है। परन्तु दुःख की बात है कि आजकल के नवयुवक यह भी नहीं जानते कि स्वास्थ्य है क्या चीज़! जान कर ही क्या करेंगे? उन्हें इससे क्या काम?

आज हिन्दू जाति लाञ्छित क्यों है, पददलित क्यों है, ग़ुलाम क्यों है, रूढ़ियों का पोषक क्यों है? इसका एक साधारण सा उत्तर है—नवयुवकों में स्वास्थ्य का न होना। नवयुवक ही राष्ट्र की शक्ति हैं। उनमें प्राणोन्मादिनी उत्तेजना रहती है, भयङ्कर जोश रहता है, और रहता है अदमनीय उत्साह। मगर यहाँ अब वह बात नहीं है,—है उसके एकदम विपरीत!

स्कूलों तथा कॉलेजों के दूषित एवं उच्छृङ्खल वातावरण में पल कर क्या कोई नवयुवक यौवन की उन्नत भावनाओं से भावित हो सकता है? कदापि नहीं। मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि आजकल कोई भी नवयुवक स्कूलों के भयङ्कर अनाचार, अमानुषिक प्रथा, अप्राकृतिक कुचेष्टाओं से वञ्चित नहीं है, सभी ने इस स्वर्गीय

सुख को लूटा है और ख़ूब लूटा है। मानवता की पवित्र भूमि में दानवता का यह उच्छृङ्खल अट्टहास कैसा दुर्दान्त है !

सब से बड़े दुःख की बात यह है कि इस ओर किसी नेता या सुधारक का ध्यान नहीं। कोई ध्यान ही क्यों दे ? किसे इतना अवकाश है कि इन गन्दी बातों पर माथापच्ची करे ? भला अश्लील बातें कोई कैसे अपने मुँह पर लावे ? उग्र जी ने इस विषय पर लेखनी भी उठाई तो उनकी लेखनी अप्राकृतिक व्यभिचार का शत्रु न होकर दिलदार साक़ी बन गई !

स्वास्थ्य को नष्ट करने वाला यह दुराचार स्कूलों में ही अधिकतर फैला हुआ है और दिन दूना तथा रात चौगुना बढ़ता चला जा रहा है। हमारे सुकुमार बालक खिलने न पाते और निर्दयतापूर्वक मसल दिए जाते हैं। परन्तु आश्चर्य तो यह है कि इन बातों को देख और सुन कर भी कोई चूँ तक नहीं करता। सारा समाज इस ओर से लम्बी तान कर निश्चिन्त है। मैं पूछता हूँ, उन समाज के नरपुङ्गवों से—जिनके हाथों में समाज की बागडोर है—कि उन्होंने इन नर-पिशाचों को दण्ड देने का क्या प्रबन्ध किया है, जो बालकों को मनुष्यत्व से गिरा कर नपुंसकता की दोज़ख़ी आग में जलाते हैं और आप भी जलते हैं ? इन गुण्डों के कुचक्र में फँस कर जब कोई स्त्री कुछ कर बैठती है, तब तो समाज के नियामक उसे भयङ्कर से भयङ्कर दण्ड देने के लिए उतावले हो जाते हैं, पर वे इन गुण्डों का क्या बिगाड़ लेते हैं ? कुछ भी नहीं। इस तरह हमारे समाज में गुण्डे स्वतन्त्र होकर हमारे होनहार बालकों और बालिकाओं का जीवन नष्ट कर रहे हैं, पर कोई उनका नियन्त्रण करने वाला नहीं है।

ऐसी अवस्था में नवयुवकों के स्वास्थ्य की आशा करना नितान्त युक्तिहीन है। हमारे नवयुवक आजकल चाहते हैं पतली कमर, धँसी छाती, चिपके गाल, अन्दर घुसी आँखें और चाहते हैं औरतों की चाल ! वह भारत, जो पहिले वीर सन्तानें पैदा करता था, अब उत्पन्न करता है नपुंसक, जिन्हें स्वास्थ्य से चिढ़ ही नहीं, वरन् घृणा भी है। यह कितनी दयनीय दशा है, कैसी भयङ्कर अवस्था है, इसे कहने की ज़रूरत नहीं। हम कहना केवल इतना ही चाहते हैं कि समाज के विधायकों का ध्यान इस समस्या की ओर आकर्षित होना चाहिए; जो लोग रात-दिन हाथ धोकर साहित्यिक अश्लीलता के पीछे पड़े रहते हैं, उन्हें थोड़ा-बहुत इस व्यावहारिक अश्लीलता की ओर भी ध्यान देना चाहिए।

—तारकेश्वर प्रसाद

* * *

लोहे का भय

"महाराज की दुहाई, महाराज ग़ज़ब हो गया, महाराव रणबङ्का राठौर अमरसिंह मारे गए ! और बादशाह सलामत की आज्ञा से उनकी लाश बुर्ज पर नङ्गी करके डाल दी गई है, ताकि चील और कौवे उसे दुर्दशापूर्वक खा जायँ; बहूरानी के पास जो थोड़ी सेना थी, वह लाश लाने के उद्योग में कट-मरी है ; राज-महल की रक्षा केवल कुछ बाँदियाँ कर रही हैं। बादशाह सलामत ने ग़ुस्से में आकर हुक्म दिया है कि महाराव का महल ज़मींदोज़ करा दिया जाय और उनके ख़ानदान का बच्चा-बच्चा गिरफ़्तार करके शाही हुज़ूर में दाख़िल किया जाय ! बहूरानी अकेली असहाय अबला हैं, आप उनके पूज्य श्वसुर के स्थानापन्न और महाराव के चचा हैं, बहूरानी ने आपकी शरण ली है। वे प्रार्थना करती हैं कि महाराज मेरी आबरू की रक्षा करें, अपने वंश की रक्षा करें और मुझे पति का शरीर ला दें और मुझे निर्विघ्न सती होने की व्यवस्था कर दें। इस विदेश में आप ही सगे हैं।"

"अभी कल ही तो महाराव अमरसिंह हमसे मिल कर गए थे। एक ही दिन में यह क्या घटना हो गई ?"

"आज दर्बार में सलावत ख़ाँ ने उनका अपमान किया था, उसे उन्होंने वहीं छाती में कटार मार कर मार डाला, फिर क़िले की सफ़ील कूद कर भाग भी आए। परन्तु महाराज ! नमकहराम अर्जुन गौड़ ने अनर्थ किया।"

"क्या किया ?"

"वह धोखा देकर महाराव को क़िले में ले गया, बहूरानी को भी बहुत क़सम दे गया। वहाँ पीछे से अचानक वार करके राठौर को गिरा दिया।"

"हूँ, अब मुझसे क्या कहते हो ?"

"महाराज ! बहूरानी आपकी शरण हैं। अपनी और उनकी कुल-मर्यादा, धर्म और इज़्ज़त की रक्षा कीजिए।"

"(हँस कर) हम कब से उनके श्वसुर और चचा हुए ? हम बाँदी-पुत्र हैं और वे रणबङ्का राठौर हैं। हमारी उनकी बराबरी क्या है ? कल तक तो वे हमें विवाह, शादी, ग़मी, किसी में भी बराबर का आसन नहीं देते थे—इससे उनकी कुल-कान चली जाती—अब बहूरानी बाँदी-पुत्र की शरण क्यों ? उनसे कह दो कि बूँदी जाकर अपने उच्च कुलीन पीहर वालों को बुला लें, वे ही उनके कुलधर्म और कुल-गौरव की रक्षा करेंगे। हम बाँदी-पुत्रों का कुल-धर्म ही क्या और कुल-गौरव ही क्या ?"

"महाराज की जय हो। स्वामिन, इस अवसर पर ऐसी बात न करिए। वहाँ अकेली अबलाएँ तलवारें चला रही हैं, यह समय इन बातों का नहीं।"

"परन्तु हम बाँदी-पुत्र भी तो हैं ?"

"आपके रक्त में राठौर रक्त है।"

"फिर भी वह विशुद्ध नहीं।"

"यह समय इस विवेचना का नहीं।"

"जब अच्छे दिनों में हम नीच और ग़ैर रहे तब अब सगे कैसे बनेंगे ?"

"महाराज ! यह क्षत्रियों का धर्म है।"

"उनके लिए, जो उनकी प्रतिष्ठा करें।"

"बहूरानी आपको पितृव्य की भाँति प्रतिष्ठा करती हैं।"

"इस मतलब के समय पर न ? और इस प्रतिष्ठा को हम प्राण देकर ख़रीद लें, जब कि जीवन भर हम बाँदीपुत्र कह कर तिरस्कृत होते रहे ? यह देखो, हमारी छाती अपमान की आग से फुँकी पड़ी है।"

"महाराज ! रक्षा करो, रक्षा करो, आपके भतीजे की लाश को कौवे-चील खा रहे हैं !!"

"हम उनके कुछ नहीं।"

"बहूरानी अभी शाही दर्बार में अपमानित होंगी, वे आपकी कुल-वधू हैं।"

"उनके पीहर वाले बूँदी से आ जावेंगे। वे बड़े बाँके योद्धा हैं, पल भर में उनके गौरव की रक्षा कर लेंगे।"

"तब क्या महाराज अबला, असहाय राजपूतनी को सहाय न देंगे ?"

"वह हमारी कौन हैं ?"

"महाराज का अन्तिम उत्तर क्या है ?"

"बूँदी से पीहर वाले कुलीन वीर बुला कर बहूरानी की प्रतिष्ठा की रक्षा की जाय।"

२

"महारानी, अनर्थ हो गया। महाराव अमरसिंह मारे गए और उनकी रानी का महल शाही सेना ने घेर रक्खा है, अकेली स्त्रियाँ लोहा ले रही हैं। बहूरानी ने महाराज की शरण ली थी, उन्होंने अस्वीकार कर दिया।"

"सुन चुकी हूँ। तू ठहर और जो कुछ मैं कहती हूँ, सावधानी से सुन। अभी महाराज भोजन करने भीतर पधारेंगे। तू सभी सोने-चाँदी के बर्तनों को उठा कर छिपा कर रख दे। और महाराज का भोजन लोहे के बर्तनों में परोस देना। यदि महाराज नाराज़ हों तो तू कुछ जवाब न देना। मैं सब देख लूँगी।"

"जो आज्ञा।"

३

"हैं, यह क्या बेवक़ूफ़ी है ? यह लोहे के बर्तनों में भोजन कैसा ? बाँदी ! कौन है ? किसने यह दुष्टता की है ? मैं उसे कभी क्षमा न करूँगा। यह किसका काम है, सामने आ।"

महारानी सामने आकर—"स्वामिन् ! क्या है ?"

"देखती हो, मेरा किसने अपमान किया है ? यह लोहे के पात्रों में भोजन......मैं अभी उसे तलवार से टुकड़े-टुकड़े कर डालूँगा। क्या मेरा क्रोध तुम पर विदित नहीं ?"

"विदित है स्वामिन् ! आपका क्रोध, आपका तेज, प्रतिष्ठा, सम्मान, वीरता इस तुच्छ नारी को विदित है। आख़िर यह आपकी अर्धाङ्गिनी दासी ही तो है। यह दुष्टता जिस दासी ने की है, उसे कभी क्षमा न करना स्वामी ! नहीं तो आपका प्रताप आज ही नष्ट हो जायगा। (दासी से) अरी पापिष्ट ! बोलती क्यों नहीं ? अभागिनी, क्या तू नहीं जानती कि महाराज लोहे से भय खाते हैं ? तूने उन्हीं के सम्मुख लोहा रख दिया। तेरी इतनी मजाल ? अरी क्या तू यह नहीं जानती कि यह

किसी राजपूत का चौका नहीं—बनिए का रसोई-घर है। यहाँ हीरे, मोती, सोना, चाँदी रहने चाहिएँ या लोहा? क्या तुझसे मैंने बारम्बार नहीं कहा था कि महाराज लोहे से डरते हैं, उनके सम्मुख कभी लोहा न लाना? ठहर मैं तुझे कुत्तों से नुचवाऊँगी।"

"महारानी! तुम यह क्या बक रही हो? क्या तुम पागल हो रही हो? क्या कहा—मैं लोहे से भय करता हूँ? इस भुजदण्ड के बल पर और इस तलवार के ज़ोर पर मैंने सहस्रावधि शत्रुओं के रुण्ड-मुण्ड पृथक् किए हैं। कौन वीर रण-रङ्ग में मेरे सम्मुख खड़ा रह सकता है? और आज तुम मेरा यह अपमान करती हो? मैं लोहे से डरता हूँ? क्या मैं लोहे से डरता हूँ?"

"क्या तुम लोहे से नहीं डरते? अभी तुम जो अपने इन निरर्थक भुजदण्डों की डींग हाँक चुके हो, क्या ये प्रकृत वीरों के भुजदण्ड हैं? यदि तुम लोहे से भय न खाते होते तो क्या यह सम्भव था कि तुम्हारे वंश के अनमोल लाल की लाश, जिसकी वीरता की धाक राजपूताने के घर-घर है, पशु की तरह नङ्गी चील-कौवों के लिए पड़ी होती? तुम्हारी पुत्रवधू की लाज लुट रही है—तुमने शरणागत होने पर भी स्त्री को निराश किया है और तुम इतने पर भी सोने-चाँदी के पात्रों में छत्तीस प्रकार के स्वादिष्ट भोजन गले से उतारने और इन वीर बाहुओं को पुष्ट करने रसोई में पधारे हो। अरे नामर्द, कायर! तेरी पत्नी होने में मुझे लाज लगती है। तू कहता है कि वे तुझे बाँदी-पुत्र कहते हैं? मैं कहती हूँ—एक बार नहीं, सौ बार, लाख बार, करोड़ बार बाँदी-पुत्र है। बाँदी-पुत्र ही शरणागता अबला को निराश कर सकता है। प्रकृत क्षत्रिय के प्राण और सर्वस्व तो शरणागत की रक्षा के ही लिए है, फिर वह शरणागत चाहे उसके प्राणों का जन्म-शत्रु ही क्यों न हो।"

"बैठो, स्वर्ण की चौकी पर। बाँदी, ले आ सोने-चाँदी के थाल और परस दे षड्रस व्यञ्जन। यह बाँदी-पुत्र पेटू, भरपेट आज भोजन करेगा, क्योंकि इसके वीर पुत्र की लाश चील-कौवे खाकर पेट भर रहे हैं, और इसकी शीलवती कुल-वधू, अपनी आबरू अपने हाथ में स्वयं तलवार लेकर बचा रही है।"

"लाओ, यह तलवार मुझे दो। मैं देखूँगी कि राजपूत बाला के हाथ की शक्ति सहन करना मुग़ल-तख़्त के बस का है या नहीं। (अपना सौभाग्य-सिन्दूर पोंछ कर और सौभाग्य-चूड़ियों को चूर-चूर करके) यह लो, अपवित्रता को मैंने दूर कर दिया। अब मैं बाँदी-पुत्र की पत्नी नहीं; मैं साक्षात् रणचण्डी क्षत्रिय बाला हूँ।"

"बस-बस-बस, महारानी बस, अधिक नहीं। ईर्ष्या ने मुझे नीच और अन्धा बना दिया था। जब तक मैं वीर अमर की लाश लाकर वीरबाला बहू को प्रतिष्ठापूर्वक सती नहीं कर दूँगा, तब तक न अन्न ग्रहण करूँगा न जल, न मरूँगा, न हटूँगा, मैं प्रण करता हूँ। तेजस्विनी! तुम धन्य हो, तुम बाँदी-पुत्र की पत्नी नहीं—तुम ओजस्विनी क्षत्रिय बाला हो। लाओ मेरी तलवार। महारानी! विदा। अब हम उस लोक में मिलेंगे। यह मैं चला।"

"तब तुम सचमुच ही स्वामी प्रतीत होते हो। आह! मैं मूर्खा आपे से बाहर होकर क्या कह गई, स्वामिन्! क्षमा।"

"महारानी! अब समय नहीं है, अब हम उस लोक में मिलेंगे।"

"अच्छा, मेरे वीर स्वामी! मैं क्षण भर में ही तुम्हारे चरणों में आने का सब सरञ्जाम किए रखती हूँ, जाओ।"

४

"महारानी, सब कुछ समाप्त हुआ!"

"मुझमें यथेष्ट धैर्य है, सब कुछ विस्तार से कहो। क्या अमरसिंह की लाश मिली?"

"उसे सहस्रों नङ्गी तलवारों की कठिन मार में घुस कर, मुर्दों की छाती पर पैर धरते हुए, महाराज को बुर्ज से लाते और दोनों हाथों से तलवार चलाते हमने स्वयं देखा है।"

"लाश चिता तक सुरक्षित पहुँच तो गई न?"

"महाराव के शयन-कक्ष को ही चिता बनाया गया था, वहाँ बहुत सा ज्वलनशील पदार्थ—घृत आदि जो था, संग्रह करके तैयार किया गया था।"

"चिता में विधिवत अग्नि तो दे दी न?"

"महाराज तब तक स्थिर खड़े रहे, तलवार उनकी मुट्ठी में कस कर पकड़ी हुई थी।"

"बहू सती हो गई?"

"सती हो जाने पर ही महाराज गिरे।"

"महाराज गिरे? क्या महाराज काम आए?"

"महारानी ! महाराज अमर हुए, ऐसा साका किसी ने न देखा होगा।"

"बहुत ठीक, अब तुम कितने बचे हो ?"

"अकेला मैं।"

"महाराज का शरीर कहाँ है ?"

"महाराज के निज कक्ष में धरा है।"

"क्या शाही सेना यहाँ आ रही है ? यह कोलाहल कैसा है ?"

"महारानी ! शाही सेना इधर ही आ रही है।"

"अच्छा, एक क्षण ठहरो। जाओ महाराज के शव को प्राङ्गण में ले आओ। यह द्वार पर धूमधाम क्या है ?"

"महारानी ! शाही सेना भीतर घुसने की चेष्टा कर रही है।"

"अब वह असम्भव है। अच्छा चिता में अग्नि दो और देखो, भण्डार में सब कुछ प्रस्तुत है, आग लगा दो, क्षण भर में महल शाही सेना के लिए अगम्य हुआ जाता है।"

जय वीर माता की !

—???

*　　*　　*

आर्यसमाज में सुधार की आवश्यकता

इसमें कोई सन्देह नहीं कि आर्यसमाज पूरा देश-हितैषी तथा देश-भक्त समाज है और जितने काम इस समय तक आर्यसमाज ने किए हैं, वे आदर्श तथा सराहनीय हैं। इस समाज ने सद्धर्म-प्रचार में जैसी-जैसी आपत्तियाँ उठाई हैं, वे देश के किसी व्यक्ति से छिपी हुई नहीं हैं। आर्यसमाज ने देश और जाति को जगाने के लिए भरपूर यत्न किया, इसमें बिलकुल सन्देह नहीं। यह आर्यसमाज का ही प्रभाव है कि जो लोग किसी समय शुद्धि, अछूतोद्धार वा विधवा-विवाह के नाम से कानों पर हाथ रखते थे, वे आज उनके पूरे समर्थक हैं।

परन्तु सवाल तो यह है कि आर्यसमाज की गति मन्द क्यों होती जा रही है ? हमारे समाज की गति में जो इतना परिवर्तन हो गया है, उसका सबब एक यही हो सकता है कि हमारे समाजों के पदाधिकारी और बहुत से प्रचारक और भजनीक अपनी पौराणिक जाति के बड़े प्रेमी हैं। यही एक बात है कि जो देश और धर्म की उन्नति में रोड़ा अटका रही है। यह प्रायः देखने में आता है कि कई आर्यसमाजी भाई बड़े ज़ोर से कह उठते हैं कि मैं तो बीस वर्ष से समाज का सभासद हूँ और मैंने कई सभासद बनाए हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उन्होंने समाज की बड़ी सहायता की है; परन्तु मेरी समझ से तो यह सहायता अधूरी है। क्योंकि जब कोई आर्य-सभासद उनसे कहता है कि आज मेरे घर भोजन का निमन्त्रण है तो वे बग़लें झाँकने लग जाते हैं। वैसा ही उनके बनाए सभासदों का हाल है। अब बताइए उन्होंने समाज की ख़ास कमी में क्या पूर्ति की ? ऐसी बातों से तो यह सन्देह होता है कि कहीं आर्यसमाज अपने आपको और अपने पवित्र और प्यारे धर्म को सङ्कुचित न बना बैठे।

हमारे आर्यसमाजी भाइयों को भूला न होगा कि नवम्बर सन् १९२७ को देहली सार्वदेशिक सभा में स्वर्गीय लाला लाजपतराय जी ने इस विषय का प्रस्ताव रक्खा था और भाई परमानन्द जी ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया था कि जितने प्रतिनिधि समाजों से आए हुए हैं, वे अपने-अपने शहर और क़स्बों के समाजों में जात-पाँत-तोड़क मण्डल स्थापित करें। इस प्रस्ताव पर लोगों की सम्मतियाँ माँगी गईं तो सारे लोगों ने, जो पण्डाल में क़रीब १५,००० के मौजूद थे, हाथ ऊँचे कर दिए और प्रस्ताव पास कर लिया। इन प्रस्ताव पास करने वालों ने यह भी प्रतिज्ञा की थी कि हम इस कार्य को पूरी लगन और प्रेम के साथ चलावेंगे। परन्तु अब बताइए, आपने देहली से लौटने के तीन साल बाद में कितना काम जात-पाँत-तोड़क-मण्डल के विषय में किया है ? आप ख़ूब जानते हैं कि कोई भी काम बग़ैर किए तो आपसे हो नहीं जावेगा, फिर आपने इस प्रस्ताव को किसके भरोसे रख छोड़ा है ? आर्यसमाज ऐसे ही पचास वर्ष से चिल्ला रहा है और एकता की ढपली पीट रहा है; पर काम कुछ भी नहीं होता, और न तब तक हो सकता है जब तक हमारे मन से जात-पाँत के बन्धन न टूट जायँ।

हमारे समाजों में होता है क्या ? आठ रोज़ में कुछ थोड़े से सभासद समाज-मन्दिर में जमा हो गए, हवन

कर लिया, या दो-एक भजन गा लिए और चलते बने। कभी कोई संन्यासी या उपदेशक या भजनीक आ गया तो शहर में ख़ूब हैण्डबिलबाज़ी कर दी और लोगों को जमा कर लिया। एक-दो रोज़ ख़ूब चहल-पहल रही। परन्तु इसके बाद जाकर कोई समाज-मन्दिर देखे तो मालूम होगा कि कोई नई या पुरानी धर्मशाला ख़ाली पड़ी है, कभी-कभी कोई परदेशी आ ठहरता होगा। मेरे ख़्याल से वह जाति सचमुच कोई जाति नहीं हो सकती और न वह समाज ही कोई हो सकता है, जिसका रहन-सहन और खान-पान एक नहीं। आजकल के हमारे समाज तो ऐसे हो रहे हैं, जैसे कोई लाइब्रेरी या क्लब होते हैं, जहाँ शाम को या सुबह लोग जमा हो जाते हैं और बाद में कुछ नहीं रह जाता ; वही आर्यसमाजों का हाल है। अगर यही हाल हमारे समाज का रहा तो बस हो चुका देश का उद्धार और सङ्गठन।

इसलिए इस समय आवश्यकता है अपने को सँभालने की और जो नियम महर्षि दयानन्द के बनाए हुए हैं; उन पर मज़बूत होकर पाँव रखने की, नहीं तो छोड़ दीजिए आर्यसमाजी बनने के ढोंग को। भला एक सच्चे देशभक्त दयानन्द और उनके पवित्र सिद्धान्तों को फ़िज़ूल कलङ्कित करने से क्या लाभ?

आप जानते हैं कि अब शान्ति से बैठने का समय नहीं है। अब भारी क्रान्ति की आवश्यकता है। बस, कर्मक्षेत्र में उतर आइए और अपने सिद्धान्तों को आदर्श बना कर दिखा दीजिए कि आर्यसमाज क्या है, और भारत की भलाई के लिए क्या-क्या कर सकता है। आपके ऊपर यह भारी ज़िम्मेदारी स्वामी दयानन्द की सौंपी हुई है। इसके ज़िम्मेदार आप हैं और आपका समाज है। दुनिया यह देखने के लिए आँखें लगाए बैठी है कि आप इस ज़िम्मेदारी को कहाँ तक निभाते हैं।

—दाताराम आर्य

* * *

चुम्बन

चुम्बन पाश्चात्य सभ्यता की चीज़ है। परन्तु अब इसके विरुद्ध, पाश्चात्य देशों में भी, ख़ूब आन्दोलन हो रहा है। वैज्ञानिक लोग स्वास्थ्य की दृष्टि से और नीतिशास्त्रज्ञ नैतिक दृष्टि से इसे हानिकारक बता रहे हैं। अमेरिका के डॉक्टरों ने अन्य देशों के डॉक्टरों से सहमति प्रकट करते हुए यह घोषणा की है—"शिक्षित स्त्रियों को क्षयरोग और बुख़ार के कीटाणुओं से बचाने के लिए चिकित्सकों का यह कर्त्तव्य है कि वे चुम्बन के विरुद्ध आवाज़ उठावें।" यूरोप और अमेरिका में खुले-आम चुम्बन का रिवाज है। जापान में भी यह रिवाज कुछ-कुछ जड़ पकड़ने लगा था, पर वहाँ की सरकार ने इसे क़ानून द्वारा बन्द कर दिया और जिन्होंने इसे भङ्ग किया, उन्हें तत्काल दण्डित किया गया। अमेरिका के कानसास नगर में कई वर्ष हुए एक विवाहित पुरुष को भारी जुर्माना इस अपराध पर किया गया था कि उसने खुले-आम अपनी स्त्री को चूमा था।

यूरोप में भी इस समय शायद ही कोई ऐसा देश होगा जहाँ चुम्बन के विरुद्ध आन्दोलन न उठ रहा हो। यह आन्दोलन स्वास्थ्य के अतिरिक्त नैतिक और सौन्दर्य-कला के (Aesthetic) आधार पर भी है। पाश्चात्य देशों में राजनीतिज्ञों को भी, रिवाज के अनुसार, अपने आन्दोलनों में चुम्बन के आदान-प्रदान का शिकार होना पड़ता था। परन्तु अभी हाल ही में अमेरिका के राष्ट्रपति श्री० हूवर और फ़्रान्स के प्रधान मन्त्री श्री० मिलेरान्द ने इस रिवाज का शिकार होने से स्पष्ट इन्कार कर दिया।

गत महायुद्ध के बाद जब यूरोप और अमेरिका में फ़ौजी बुख़ार (इन्फ़्लुएन्ज़ा) फैल गया था, उस समय इन देशों में स्थान-स्थान पर चुम्बन के विरुद्ध सङ्घ और सभाएँ स्थापित की गई थीं। उस समय एक समाचारपत्र ने इस प्रकार की एक सभा का समाचार इस शीर्षक के साथ प्रकाशित किया था—"चुम्बन मोटर की टक्कर से भी अधिक घातक है।" युवक-युवतियों को सावधान किया गया था कि होठों के प्रत्येक मिलन और स्पर्श के साथ ४० हज़ार कीटाणु एक दूसरे के अन्दर चले जाते हैं। ऑस्ट्रिया-हङ्गरी की राजधानी विएना में सरकार ने चुम्बन को सर्वथा रोक दिया था। रोग के कीटाणु पहुँचाने के अतिरिक्त वैज्ञानिकों का कहना है कि एक चुम्बन के देने वा लेने से ३ मिनट आयु कम हो जाती है।

सौन्दर्य-कला की दृष्टि से भी पाश्चात्य विद्वान् चुम्बन का विरोध कर रहे हैं। विएना में एक बार एक युवक ने विदा होते समय अपनी प्रेयसी को चुम्बन दिया। पुलिस में इसकी शिकायत हुई। युवक

को अदालत में बुलाया गया। उस समय युवक के विरुद्ध एक विवाहिता स्त्री ने गवाही देते हुए कहा कि मुझे यह दृश्य सौन्दर्य-कला के इतना विरुद्ध मालूम हुआ कि मैंने घृणापूर्वक उसी समय अपने मकान की खिड़की बन्द कर ली। सिनेमा में जब प्रेमी और प्रेमिका का बारम्बार चुम्बन दिखाया जाता है तो विज्ञ लोग उसे बहुधा नापसन्द करते हैं। क्यों? इसीलिए कि वह बड़ा अस्वाभाविक और सौन्दर्य-कला के विरुद्ध प्रतीत होता है। एक कला-विज्ञ लेखक का कहना है कि सिनेमा में जो सबसे बड़ी हानि है वह इस प्रकार के सौन्दर्य-कला-हीन दृश्यों द्वारा उपस्थित जनता को दुर्भावित करना है। फलतः पाश्चात्य देशों में सिनेमा-घरों में ही चुम्बन का रिवाज चल पड़ा है और सबसे आगे की बेञ्चों पर बैठे प्रेमी-प्रेमिका उपस्थित जनता के सम्मुख बार-बार चुम्बन करते तनिक भी सङ्कोच अनुभव नहीं करते। कई सिनेमा-घरों में इस प्रकार का प्रत्यक्ष चुम्बन सर्वथा बन्द कर दिया गया है। भिन्न-भिन्न देशों के पार्लियामेन्ट-घरों में भी चुम्बन रोक दिया गया है। कुछ दिन हुए, फ़्रान्स के पार्लियामेन्ट-भवन से एक स्त्री-पुरुष को इसलिए निकाल दिया गया था कि उन्होंने वहीं पर चुम्बन-विनिमय कर लिया था। हैङ्काऊ (चीन) में एक चीनी दम्पति पर ५ पौण्ड जुर्माना इसलिए किया गया था कि उसने घोड़ागाड़ी पर बैठे खुले-आम चुम्बन किया था। ऑस्ट्रिया की रेलवे कम्पनी ने मुसाफ़िरों के लिए जो नियम प्रकाशित किए हैं, उनमें एक यह भी है कि विदाई के समय प्लेटफ़ार्म पर वा चलती गाड़ी की खिड़की में से चुम्बन नहीं करना चाहिए, क्योंकि इससे दोनों को हानि होती है। वाशिङ्गटन (अमेरिका) में जब चुम्बन के विरुद्ध आन्दोलन चला तब लड़के-लड़कियाँ अपनी छाती पर "मुझे मत चूमो" का बिल्ला लगाए बाज़ारों में घूमते थे। अगले वर्षों में यह आशा की जाती है कि चुम्बन के विरुद्ध और भी अधिक प्रबल आन्दोलन होगा।

हमारे प्राचीन साहित्य में चुम्बन का वर्णन बहुत कम पाया जाता है। हाँ, वात्स्यायन के कामसूत्रों में इसका निर्देश अवश्य है। संस्कृत काव्य-ग्रन्थों के शृङ्गार-पूर्ण भागों में भी चुम्बन की अपेक्षा आलिङ्गन का ही अधिक वर्णन पाया जाता है।

किसी अंश तक यह कहा जा सकता है कि चुम्बन पाश्चात्य सभ्यता के प्रचार के साथ ही इस देश में आया है। अशिक्षितों की अपेक्षा शिक्षितों में और ग्रामों की अपेक्षा नगरों में इसका अधिक प्रचार है। आजकल के अधिकांश अश्लील सिनेमा, थिएटर और उपन्यास भी इस कुप्रवृत्ति के बढ़ाने में सहायक हो रहे हैं।

परन्तु, इस देश में प्रत्यक्ष चुम्बन (Public Kissing) सर्वथा नहीं है। यह न हिन्दुओं में है और न मुसलमानों में। जहाँ तक हम समझते हैं, एशिया के किसी देश में भी अभी तक पश्चिम की तरह प्रत्यक्ष चुम्बन का रिवाज नहीं है। भारत में रहने वाले अङ्गरेज़ों में ऐसा रिवाज अवश्य है, पर वह भी उतना सार्वजनिक नहीं, जितना उनके अपने पाश्चात्य देशों में। हिन्दुस्तानी, जो ईसाई हो गए हैं, उनमें भी खुले-आम चुम्बन कम ही देखा जाता है।

हाँ, निजूरूप से चुम्बन अब घर-घर में घुस गया है। यह पाश्चात्य सभ्यता के साथ ही यहाँ आया है और उसी के साथ-साथ यह बढ़ रहा है। अङ्गरेज़ी शिक्षा के अड्डे—स्कूल, कॉलेज, यूनिवर्सिटी इत्यादि—में तो यह व्याधि भयङ्कर रूप से फैल रही है।

अब समय आगया है कि सुधार-प्रेमी इस घातक कुप्रवृत्ति के विरुद्ध आवाज़ उठावें। शिक्षित पुरुषों का कर्त्तव्य है कि वे स्वयं इससे बचें और दूसरों को भी बचावें। स्वास्थ्य, नीति-कला आदि दृष्टियों से जब चुम्बन हानिकारक है और हमारी सभ्यता के विरुद्ध होने से अनुपयुक्त है, तब इस नई बढ़ती कुप्रवृत्ति के विरुद्ध आन्दोलन करना प्रत्येक शिक्षित भारतीय का कर्तव्य है।

—दीननाथ सिद्धान्तालङ्कार

* * *

अस्मत पर हाथ

बूँदी के राजमहलों में नाच-रङ्ग के दौर-दौरे थे। छोटे महाराज का विवाह था। डाडिनें गा रही थीं। भाट विरद वर्णन कर रहे थे। बाँके राजपूत अपनी-अपनी बाँकी अदा दिखा कर मस्ती दिखा रहे थे।

कुँवर साहेब उठती उम्र के अल्हड़ युवक थे। वे एक

बढ़िया क़ालीन पर समवयस्कों के साथ मसनद के सहारे पड़े शराब की प्यालियाँ ख़ाली कर रहे थे। ख़वास और गोले ख़िदमत में हाज़िर थे। कुँवर साहेब ने हँस कर एक दोस्त से कहा—"यार, बूँदी में सब से ज़्यादा सुन्दर स्त्री कौन है?"

"ओह, क्या महाराज कुमार को इसका पता ही नहीं? अजी, आपकी बड़ी साली साहिबा के मुक़ाबिले की स्त्री इस समय बूँदी तो क्या राजपूताने भर में नहीं है।"—एक मित्र ने उत्साह से कहा।

"क्या सत्य?"

"कुमार चाहे जब आज़मा लें, अब तो आप नातेदार हो गए। और नाता भी ऐसा कि दो बात उल्टी-सीधी भी हो जायँ तो निभाव हो जाय।"

कुमार हँस पड़े। बोले—"तब आज ज़रा उस मुख-चन्द्र की बहार देखी जायगी।"

"मगर कुमार, यह वादा कीजिए कि जो कुछ गुज़रेगी, सब मित्रों को बताना पड़ेगा।"

"लो, हम हाथ पर हाथ मारते हैं।"

एक बार यार लोग ठहाका मार कर हँस पड़े। और एक-एक प्याला और पीकर उन्होंने एक साँस ली।

२

महल में बाँदियों ने कुँवर साहेब को ले जाकर एक गद्दी पर बैठा दिया। ऊपर चन्दोवा तान दिया। एक ने सुराही से शराब भर कर कुँवर साहेब को दी; उन्होंने उसे पीकर प्याला अशर्फ़ियों से भर कर लौटा दिया। दूसरी ने पान की गिलोरियाँ पेश कीं। कुँवर साहेब ने उस पर अपनी मोतियों की माला और एक कटाक्ष फेंक दिया।

तीसरी बाँदी ने आगे बढ़ कर मुजरा करके कहा—"कुँवर साहेब! हुक्म हो तो कुछ गाना-बजाना हो।"

कुँवर साहेब ने हँस कर कहा—"यह तो कहो, तुममें राजकुमारी कौन सी है?"

"सरकार, हम लोग तो बाँदियाँ हैं, हुक्म हो सो बजा लावें।"

"तब क्या बड़ी बाई साहिबा भी हमसे छिप कर बैठेंगी?"

"हुज़ूर, छिप कर क्यों, वे तो आपके ब्याह की तैयारी में हैं।"

"उन्हें ज़रा बुलाओ तो।"

बाँदी दौड़ी गई। क्षण भर बाद महाराज कुमारी उपस्थित थीं। उन्होंने मुस्कुरा कर कहा—"बींद राजा का क्या हुक्म है?

राजकुमार की आँखें उस रूप को देख कर झँप गईं। उन्होंने मुस्कुरा कर कहा—"हुक्म देने वाले तो यहाँ हाज़िर नहीं हैं, कहें तो जैसलमेर साँड़नी-सवार भेज दिया जाय।"

"इतना कष्ट क्यों, उनका हुक्म लेकर तो यहाँ आई ही हूँ, आज आपका भी हुक्म बजा लाया जाय।"

"इस तुच्छ पर इतनी कृपा का कारण?"

"कारण? कारण की एक ही कही।"

"फिर भी।"

"आप बींद राजा हैं—हमारे मान हैं—महमान हैं—यहाँ महाराज पर भी हुक्म करें तो उसे बजा लाना ही होगा।"

राजकुमार हँसने लगे। राजकुमारी ने और निकट आकर कहा—"बैठिए, खड़े कब तक रहेंगे, मैं आपके लिए जलपान ...."

राजकुमार ने अनायास ही कुमारी का हाथ पकड़ कर कहा—"आप भी तो बैठिए; दासी........."

कुमार पूरी बात कह न सके, एक प्रबल धक्का खाकर वे धरती में जा गिरे।

क्षण भर बाद उन्होंने उठ कर देखा—यह रूप-राशि सुकुमार महिला सिंहनी की भाँति ज्वालामय नेत्रों से उन्हें ताक रही है। उसके नथने फूल गए हैं और श्वास में तूफ़ान के चिन्ह देख पड़ते हैं।

राजकुमार काँप उठे। उनके मुख से बात न निकली। कुमारी ने वज्र गर्जन की भाँति कहा—"कायर! पापिष्ट!! अधम!!!"

इसके बाद ही उसने अपने वस्त्रों से कटार निकाला और देखते-देखते अपनी उस सुन्दर सुकुमार कलाई को खट से काट डाला।

रक्त की धार बह चली। दासी, बाँदी हक्का-बक्का खड़ी रह गईं। देखते ही देखते महल के सभी छोटे-बड़े वहाँ इकट्ठे हो गए। महाराज ने आकर कहा—"बेटी, यह क्या किया?"

"इस पापिष्ट ने मुझे छू लिया!"

"बेटी, यह नाता ही ऐसा है।"

"पिता जी, चुप रहो।"

महाराज ने गर्दन नीची कर ली। कुमारी शीघ्र ही मूर्च्छित होकर धरती में गिर गईं।

३

"वीरेन्द्र !"

"अन्नदाता, महारानी !"

"अभी जैसलमेर को साँड़नी रवाना कर दो। वह बिना मञ्ज़िल लिए जाय और महाराव से सब हक़ीक़त बयान कर दे। और अभी हमारे कूच की भी तत्काल तैयारी कर दो।"

"जो महारानी की आज्ञा।"

बूँदी भर के छोटे-बड़े राजवर्गी इकट्ठे हो गए। सभी ने कुमारी को समझाया, पर उसने हठ न छोड़ी। उसके मुख पर शब्द थे—अस्मत ! अस्मत ! होठ मानो आप ही फड़क रहे थे और उनमें से 'अस्मत' की ध्वनि फूटी पड़ती थी।

* * *

सबने समझ लिया कि ख़ैर नहीं। सारा रस-रङ्ग फीका पड़ गया। सबके चेहरों पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। महाराज ने वर-पक्ष से कहला भेजा कि लड़की का डोला तैयार है, उत्तम यही है कि झटपट विदा हो जाइए। यदि जैसलमेर की सेना आ गई तो एक भी मर्द बच्चा जीवित न बचेगा।

रो-रोकर दुलहिन बिदा हुई। इसके भाग्य में कै घड़ी का सुहाग था ? कौन जाने ? राजमहल में कुहराम मच रहा था। थोड़ी ही देर में दुलहिन की पालकी को बीच में डाले वर-पक्ष की सेना सर्प की भाँति दुर्ग से बाहर जा रही थी।

* * *

दो ही मञ्ज़िल के बाद गर्द उड़ती देख वर-पक्ष ने समझ लिया कि काल मँडराता हुआ आ रहा है। इधर सेना बहुत कम थी। पर जितने भी थे, वे मोर्चेबन्दी करके तलवारें सूत कर मरने को खड़े हो गए।

४

"इस सेना का मुखिया कौन है ?"

"यह सेना नहीं, बारात है।"

"इस बारात में हमारा गुनहगार है, उसे हमारे सुपुर्द किया जाय।"

"वह कौन है ?"

"बींदराज।"

"उन्हें हम प्राण रहते सुपुर्द नहीं कर सकते।"

"तुम्हारे प्राण रहने ही न पावेंगे।"

"हमें इसकी परवा नहीं। पर बारात पर अकस्मात यों चढ़ दौड़ना वीरता नहीं।"

"यहाँ वीरता का प्रश्न नहीं, यहाँ शत्रु से युद्ध नहीं, यहाँ अपराधी को गिरफ़्तार करके दण्ड देना है।"

"उसका अपराध क्या है ?"

"उसने स्त्री की अस्मत पर हाथ डाला है।"

"वह साधारण दोष था।"

"उसकी सज़ा मौत है।"

"यह साधारण काम नहीं।"

"यदि राजपूताने की तलवारें भी आकर उसकी रक्षा करना चाहें तो बचा नहीं सकतीं।"

बाँके वीर टूट पड़े। खटाखट तलवारें चलीं और देखते ही देखते ख़ून की नदी बह निकली। जैसलमेर की सेना विजयी हुई। सेना के सर्दार ने लाशों में से दूलहा की लाश निकाल कर, उच्च स्वर से कहा—"प्रिये ! अपराधी को दण्ड मिल गया।"

"स्वामिन ! अब एक और कर्त्तव्य शेष रह गया है।"

यह कह कर ज्येष्ठ राजकुमारी डोले में से निकल कर लाशों को पैरों से रौंदती हुई, दुलहिन के डोले के पास पहुँचीं। देखा, दुलहिन की आँखों में आँसू नहीं हैं। उसने अपने हाथ से माथे का सिन्दूर पोंछ लिया है और अपनी सुहाग की चूड़ियाँ चूर-चूर कर डाली हैं। बहिन को देखते ही वह सहसा हँस पड़ी। उसने कहा—"जीजा जी कहाँ हैं ?"

वह क्रुद्ध वीर—जो अब तक बघेरे की भाँति तलवार लिए फिरता था, चुपचाप विनयपूर्वक आ खड़ा हुआ। उसने विनम्र स्वर से कहा—"बाई जी को मुजरा है।"

"जीजा जी ! जीजी के मन का तो तुमने किया—अब कुछ मेरा भी उपकार कर दो।"

"जो आज्ञा।"

"क्या मेरे ससुराल वालों में कोई जीवित बचा है?"

"एक भी नहीं।"

"तब तुम्हीं चिता चुन दो, पति की लाश को स्नान करा—चन्दन-चर्चित कर—रख दो, जीजी आग दे देंगी। मैं अब सती होऊँगी। जीजा जी, यह कष्ट तो करना होगा।"

वीर राजपूत की आँखों में एक बूँद आँसू आकर ढलक गया। उसने वीरबाला का सैनिक सलाम किया और पीछे हट गया।

* * *

सूर्य छिप रहा था और चिता बड़ी-बड़ी लपटों को उड़ा कर धक-धक जल रही थी! बड़ी-बड़ी लकड़ियों के लाल-लाल अङ्गारे मानो हँस-हँस कर उस खेल को देख रहे थे!!

—???

* * *

विवाह या सर्वनाश

भारतवर्ष की मनुष्य-गणना की रिपोर्ट में यह पढ़ कर कि यहाँ सैकड़ों की संख्या में ऐसी विधवाएँ हैं, जिनकी आयु एक वर्ष से भी न्यून है, हृदय को कभी विश्वास नहीं होता था। कभी-कभी तो यह भी शङ्का होती थी कि यह मिस मेयो की भाँति, शायद गवर्नमेण्ट ने हम लोगों को बदनाम करने के निमित्त अपनी ओर से झूठमूठ लिखवा दिया हो। मैं समझता था कि प्रथम तो ऐसे विवाह किसी जाति में होते ही नहीं, जिनमें कन्या की आयु एक वर्ष से न्यून हो; और यदि कदाचित् इतने बड़े देश में एकाध विवाह ऐसा हो जाता हो तो क्या यह आवश्यक ही है कि वह विधवा भी हो जाय? और सो भी सैकड़ों की तादाद में! यह विचार मेरे मस्तिष्क में बहुत समय तक घूमता रहा।

पिछले साल फाल्गुन मास के आरम्भ में मुझे कार्य-वश मथुरा जाना पड़ा। वहाँ एक दिन सायङ्काल चौबों के एक मुहल्ले से होकर गुज़रा तो क्या देखता हूँ कि पुरुषों और स्त्रियों का एक जगह जमघट लगा हुआ है। ऐसा मालूम होता था कि यहाँ कोई शादी हो रही है। आगे बढ़ कर देखा तो एक युवती की गोद में पाँच या छः महीने की एक बच्ची बैठी हुई थी, जिसके माथे पर कुछ पुरुष रोली और चावल चढ़ा रहे थे। एक पण्डित जी यह कार्य सम्पादन करा रहे थे। मैंने पहिले तो यह ख़्याल किया कि यह शिशु उस स्त्री की नवजात लड़की है, जिसको वह इस समय अपने से पृथक करने में असमर्थ होने के कारण गोदी में लिए हुए है। परन्तु यह देख कर कि यह सारा संस्कार उस बच्ची का ही किया जा रहा है, मुझे अपना यह विचार छोड़ना पड़ा। मैंने सोचा कि शायद उस बच्ची का अन्नप्राशन हो रहा है। परन्तु कुछ ठीक समझ में न आया।

अन्त में एक आठ-नौ वर्ष के लड़के से मैंने पूछा—"भाई! यह क्या हो रहा है?"

लड़का कुछ रुखाई के साथ बोला—"दीखे नायने, आगौनी हो रही है?"

मैंने कहा—"ठीक है, वही अन्नप्राशन? उसी को यहाँ आगौनी कहें हैं।"

लड़का मेरी बात सुन कर मेरा मुँह निहारता रह गया। फिर आश्चर्यपूर्ण हँसी के साथ बोला—"अरे, अन्नप्राशन नायने। या को कल ब्याह होगो, आज आगौनी है।"

यह सुन कर मैं एकदम सहम गया। मेरी कुछ समझ में न आया कि इतनी छोटी बच्ची का विवाह कैसे हो सकता है? लड़कपन में बेशक सुना करते थे कि बच्चे अपने गुड्डों और गुड़ियों का विवाह भी बड़ी धूम-धाम और पूर्ण शास्त्र-विधि से रचते हैं। तो क्या यह भी कोई ऐसा ही विवाह है? मैं इसी उधेड़-बुन में था कि उस युवती की गोद से रोने की आवाज़ आई। वह लगी उस बच्ची को थपथपाने और पुचकारने। अब मेरे आश्चर्य की कोई सीमा नहीं रही। मैं जिसे निर्जीव गुड़िया समझ रहा था, वह निकली जीवित गुड़िया! मैं जिसे बच्चों का खेल समझ रहा था, वह सचमुच का विवाह निकला! इससे मेरे मन में और भी कुतूहल बढ़ा। मैं सोचने लगा कि इस बच्ची का विवाह कैसा? यह किस जाति में हो रहा है? यह अपने ढङ्ग का अकेला ही विवाह है, अथवा ऐसे और भी होते हैं? परन्तु मेरे इन प्रश्नों का उत्तर कौन दे? वहाँ तो आबाल-वृद्ध सभी आमोद-प्रमोद में मस्त थे। किसी के चेहरे पर हँसी है, तो किसी के मुँह पर मुस्कुराहट। स्त्रियाँ अपनी तथा दूसरों की छवि देख रही हैं, तो

पुरुष धक्कमधक्का में मशग़ूल हैं। मैं ही अकेला अपनी उलटी खोपड़ी लिए अलग खड़ा विचारों में मग्न था। मैं कभी उस युवती की गोद में लेटी हुई बालिका को देखता था, कभी वहाँ के आचार्य तथा कार्यकर्ताओं पर दृष्टि दौड़ाता था, कभी देश के दुर्भाग्य पर अफ़सोस करता था। जब छः-छः महीने की गुड़ियों का विवाह होता है तो उनके विधवा हो जाने में ही कौन सा आश्चर्य है? ख़ास कर जिस जाति में विधवा-विवाह को पाप समझा जाता है, जो लोग विधवा-विवाह को कोली और चमार जैसी नीच जातियों का काम समझते हैं, उनमें ऐसी विधवाओं की कैसी दुर्दशा होती होगी? मैंने पास ही खड़े हुए एक युवक से पूछा—"यह किस जाति की बालिका है?"

युवक—"जगत्प्रसिद्ध चौबों की।"

मैं—"कौन से चौबों की—मीठों की या कड़ुओं की?"

युवक—"मीठों की नहीं, यहाँ तो अधिकांश कड़ुए ही रहते हैं। यह उन्हीं की बच्ची है।"

मैं—"अच्छा, तो वे, जिनमें से कुँवर जगदीश-प्रसाद हैं तथा और भी बड़ी-बड़ी नौकरियों पर हैं, और कुछ कलकत्ते में व्यापार भी करते हैं? यह उन्हीं में की बालिका है?"

युवक—"अजी, नहीं साहब! आप जाने कहाँ की कथा कहने लग गए। उनका इनका क्या सम्बन्ध? वे कुलीन, ये बदलीन। दोनों के बीच केवल रोटी का व्यवहार चलता है, बाक़ी और कोई संसर्ग नहीं। ये तो वे हैं, जिनमें बड़े-बड़े नामी पहलवान हो चुके हैं, जिनका पेशा तीर्थ-पुरोहिताई है, जिनके बड़े-बड़े महाराजे यज-मान हैं, जो भङ्ग पीने और दण्ड पेलने के लिए ही बहुधा प्रसिद्ध हैं।"

मैं—"अच्छा, तो ये मथुरा के पण्डे हैं, जो स्टेशनों पर से यात्रियों को लाते हैं और मन्दिरों के दर्शन और यमुना-स्नान कराते हैं?"

युवक—"जी हाँ, वही हैं। अब आप ठीक समझे।"

मैंने इस युवक से और भी बहुत सी बातें कीं। यह स्वयं भी उसी समुदाय का था, जिसमें यह विवाह हो रहा था। इसकी बातचीत से मालूम हुआ कि इस जाति में इस प्रकार का यह पहला ही विवाह नहीं था। ऐसे विवाह पहले भी होते रहे हैं। डेढ़-दो वर्ष की बच्चियों का विवाह तो प्रायः हो जाता है। परन्तु छः छः महीने की गुड़ियों का विवाह हाल पर होने लगा है। मैंने इस युवक से पूछा—"क्यों भाई! ऐसे विवाहों के होने का कुछ कारण भी बता सकते हो?"

युवक ने कहा—"इसका कारण यह है कि हम लोग बदलुए हैं।"

मैं—"बदलुए से क्या मतलब?"

युवक—"बदलुए से मतलब यह कि हमारे यहाँ विवाह अक्सर बदले से होते हैं। एक घर में एक लड़की और एक लड़का हुआ और दूसरे में भी एक लड़की और एक लड़का, तो वे इनका विवाह अदले-बदले में कर लेते हैं। पहले घर के लड़के का दूसरे घर की लड़की से और दूसरे घर के लड़के का पहिले घर की लड़की से विवाह होता है। यह बदला भाई-बहिन का तो होता ही है, परन्तु चाचा-भतीजी का, मामा-भाञ्जी का, नाना-धेवती का और बाप-बेटी का भी हो सकता है। इसी-लिए हम लोग बदलुए कहलाते हैं।"

मैंने पूछा—"लेकिन बदले का तो यह माने नहीं कि छः-छः महीने की बच्चियों का ही ब्याह रचा डालिए?"

युवक—"नहीं, इसके यह माने तो नहीं। इसके कुछ और भी गम्भीर कारण हैं। बदले के विवाह में यह शर्त होती है कि जिस घर में लड़की जाय उस घर से एवज़ी में एक लड़की आवे। अब, यदि उस घर में कोई लड़की नहीं है तो उसे एक लेखा लिखना पड़ता है कि मेरे कुटुम्ब में जब कभी कोई लड़की पैदा होगी तो मैं उसे अमुक घर में दूँगा। कुछ समय तक तो यह लेखा ही सब कुछ था। परन्तु पीछे से इसमें बेईमानी होने लगी। लोगों ने एवज़ी का बदला न चुकाया। तब सरकारी रजिस्ट्री की शरण लेनी पड़ी। रजिस्ट्री में बेटे वाले को लिखना पड़ता था कि अमुक घर में या तो मैं एवज़ी की एक लड़की दूँगा अथवा उसके बदले में इतना रुपया भरूँगा। रुपए की रक़म पहले से ही तय रहती थी। कुछ समय पश्चात् इसमें भी धोखा होने लगा। तब हार मान कर यह तरकीब निकालनी पड़ी कि लड़की की एवज़ी में दूसरी ओर से लड़की ही ली जाय, चाहे वह छोटी-बड़ी, कुरूप-सुरूप कैसी ही क्यों न हो, और अपनी लड़की के विवाह के साथ ही साथ उससे विवाह भी कर लिया जाय। फिर अपने घर में आकर

वह जीती-मरती रहेगी, देखा जायगा। यह विवाह एक ऐसी ही शर्त के विवाह का नमूना है।"

मैंने पूछा—"आप लोग इसे बुरा नहीं समझते ?"

युवक—"समझते तो सब कुछ हैं। पर करें क्या? स्वार्थ में अन्धे, ये किसी की सुनते हैं? जातीय सभाओं ने इन कुकृत्यों को रोकने का अनेक बार प्रयत्न किया। परन्तु इन पर कोई प्रभाव न पड़ा। न ये किसी की सुनते, न मानते, न किसी के आदेशानुसार बर्तते हैं। ये अपने सामाजिक कार्यों में पूर्ण स्वच्छन्द और निरङ्कुश हैं।"

मैंने आश्चर्य के साथ पूछा—"क्या इस जाति के समझदार व्यक्ति भी इन बातों पर ध्यान नहीं देते ?"

युवक ने कुछ हँस कर कहा—"इनके समझदारों की कुछ न पूछिए। इनमें समझदार ऐसे-ऐसे हैं कि अभी कहो तो न कुछ मामले को लेकर उसे ऐसा रूप दे दें कि ज़मीन-आसमान एक कर दें। एक छोटी सी ग़लती को बड़े से बड़ा रूप दे दें और फिर उसके कर्ता और उसके सहायकों को एकदम जातिच्युत कर दें। उनका सिर मुड़वा डालें, जनेऊ बदलवा डालें। परन्तु अनेक लोग घोरतम पाप करते हैं तो भी इनके कान पर जूँ नहीं रेंगती। स्वार्थ के वशीभूत होकर ये उसकी चर्चा तक नहीं करते। स्वार्थपरता इनमें इस तरह कूट-कूट कर भरी है कि सुन कर आपके रोंगटे खड़े हो जाएँगे। इनके समझदार व्यक्ति और आचार्य पैसे के ग़ुलाम हैं। जो पैसा दे सो उन्हें जोते। इन्हें पैसा देकर कोई चाहे तीन दिन की लड़की का विवाह साठ वर्ष के बाबा से करा ले, चाहे पैंतीस वर्ष की प्रौढ़ा का सोलह वर्ष के युवक से। इनका तो यह कहना है—

छोरा मरौ चाहे मरौ छोरी।
पीले टके से भर दो झोरी॥

मैंने पूछा—"यहाँ के नवयुवक इन बुराइयों को रोकने का कुछ प्रयत्न नहीं करते ?"

युवक—"वे बेचारे जहाँ तक बनता है, हाथ-पैर मारते हैं। परन्तु जहाँ दाढ़ी-मूँछ वालों की नहीं चलती, जहाँ बड़े-बड़े शास्त्रियों और आचार्यों की बोलती बन्द हो जाती है, वहाँ इन छोकरों को कौन पूछे? बड़े-बड़े जातीय नेताओं ने इन्हें सुधारना चाहा, परन्तु ये लोग उन नेताओं को ही अपने से पृथक बता देते हैं और अपनी ग़लती मानने के बदले उन्हीं में सैकड़ों ऐब निकालने लग जाते हैं। जब बड़े-बड़ों की यह दशा है तब बेचारे युवक क्या करें? वे अपनी सभा करते हैं और बिलबिला कर रह जाते हैं।"

समय अधिक हुआ जान कर मैं उस युवक से विदा हुआ और रास्ते भर यह सोचता गया कि परमात्मा इन मूर्खों को कब सुबुद्धि प्रदान करेगा? यदि हम लोगों की यही हालत रही तो हमारी जाति का भगवान ही मालिक है।

—कौशिक

"मैं तुम्हें नौकर रख सकता हूँ। परन्तु तुम्हारे पास मुन्शी महादेव प्रसाद का सर्टिफ़िकेट नहीं है।"

"हुज़ूर सर्टिफ़िकेट की ज़रूरत क्या है? यदि कहें तो मैं उनकी वह घड़ी दिखा दूँ, जिस पर उनका नाम खुदा हुआ है।"

* * *

मियाँ बीबी दोनों रात में सो रहे थे। कुछ खटका हुआ, बीबी ने कहा—"देखो तो, शायद कोई चोर है।" मियाँ ने कमरे के दरवाज़े के पास पहुँच कर पुकारा—"कौन है?" जवाब मिला—"कोई नहीं।" जवाब विश्वसनीय था, केवल सवेरे कुछ चीज़ें ग़ायब थीं।

पहला—"तुम आजकल क्या करते हो?"

दूसरा—"मैं बिना सींग के बकरों का व्यापार करता हूँ।"

पहला—"मगर............"

दूसरा—"मगर से मैं कोई सम्बन्ध नहीं रखता।"

* * *

"मैं एक पहलवान आदमी चाहता हूँ।"

उम्मीदवार—"मैं यथेष्ट बलवान् हूँ।"

"इसका प्रमाण ?"

"जब मैं आया तब आपके द्वार पर दस उम्मीदवार खड़े थे, मैं उन सबको भगा कर आया हूँ।"



[श्रीमती कमला देवी चौधरी]

ऑंधेरी मैजिस्ट्रेटी

ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट (कुर्सी पर बैठे हजामत बनाते हुए)—हूँ ! अब बाज़ी मार ली है। बस, दो-चार महीने की देर है। थोड़ा सा जुरमाने का रुपया और भेजा कि फिर क्या, रायबहादुरी मिली ही समझो।

ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट की स्त्री—चूल्हे में जाय ऐसी रायबहादुरी.........

ऑ० मै०—(बीच ही में बात काटते हुए) अरे ! ज़रा धीरे से बोलो। बाहर सब चपरासी सुनते होंगे। ज़रा यह तो ख़्याल किया करो कि ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट का घर है।

स्त्री—मिल ही जायगी तो कहाँ की दौलत हाथ लगेगी, जिसके लिए हज़ारों के गले काटे ? घर की सारी ज़र-ज़मीन का सत्यानाश किया ....

ऑ० मै०—चुप हो ! चुप हो !!

स्त्री—घर में बच्चे एक-एक चीज़ को तरसें और अफ़सरों के यहाँ रोज़ डालियाँ जायँ ! बरसों से यही रङ्ग देख रही हूँ, मिल तो न गई रायबहादुरी ? वही मसला है—बाहर अब्बे तब्बे, घर में चूहे पक्के।

ऑ० मै०—अजी ! तुम तो बस बक-बक करना जानती हो। कितना समझाओ, सब बेकार। देखो तो आँखें खुल जायँ, अफ़सर लोग मेरी जैसी इज़्ज़त करते हैं। मेरे पहुँचते ही कुर्सी से उठ कर हाथ मिलाते हैं, अपने बराबर कुर्सी पर बिठाते हैं। कितने हिन्दुस्तानियों को यह इज़्ज़त नसीब है ? अङ्गरेज़ लोग बिला 'डैम फूल' के बात तो करते ही नहीं।

स्त्री—वाह ! यह एक ही रही। अरे ! किसे अपना घर मेवा-मिठाइयों से भरना बुरा लगता है ? दिन-रात कमर झुकाए 'हाँ हजूर !' 'हाँ हजूर !' करते रहते हो, सुबह से शाम तक नाक रगड़ते हो, तो हाथ मिला ही लिया तो कौन भाग जग गए ?

ऑ० मै०—उँह ! कौन तुम्हारे साथ अपना दिमाग़ ख़राब करे ? कोई और औरत हो तो ऐसा घर पाकर फूली अङ्ग न समाए, तुम्हें हर वक़्त जलते ही बीतता है।

ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट का नौकर लालू आकर कहता है—हजूर, कोचवान—हजूर, कोचवान—साहब, कोच......

ऑ० मै०—(बीच ही में) अबे ! गधे, पाजी, सूअर के बच्चे, मुझे कोचवान कहता है ? पता है तुझे, मैं ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट हूँ ?

लालू—हजूर......हजूर......हजूर..... साहब, पता है। हजूर......आप......हजूर अनाड़ी मेजिस्ट्रेट .....

ऑ॰ मै॰—(बात काट कर) अबे ! साले, सूअर के बच्चे, फिर तूने अनाड़ी कहा ? कह—'ऑनरेरी।'

लालू—हजूर, अनाड़ी......अनाड़ी .....

ऑ॰ मै॰—चुप पाजी, बदमाश !

लालू—(हैरान होकर) तो फिर हम का करी ? तुमहीं तो कहत हौ, बात बात माँ 'हजूर' कह, जीमा जान पड़ै कि हम अनाड़ी मजिस्ट्रेट के नौकर हन। मुदा हमार जुबान नाहीं फिसलत है तो हम का करी ? गदहा, पाजी, सूअर का बचा तो हमहूँ फर-फर कह सकित हैं।

ऑ॰ मै॰—कमबख़्त ! तुझे कौन कहेगा कि तू ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट का नौकर है ?

लालू—कउनौ हजूर कमबखत न कहै तौ उइका हम का करी ? लेओ हम जाइत है।

ऑ॰ मै॰—अबे पाजी, कहाँ चला ?

लालू—रोटी खाए।

ऑ॰ मै॰—अभी हमने तो खाया नहीं, तू चला—

लालू—तौ तुमका रायबहादुरी की फिकर माँ भूखै न लागै तो उइका हम का करी ?

ऑ॰ मै॰—(मन ही मन) कहता तो ठीक है ! लेकिन रायबहादुरी चीज़ ही ऐसी है। (नौकर से) अच्छा, बता तू क्या कहने आया था ?

लालू—पहिले तुम यह बताओ, 'हजूर-हजूर' करके बतलाई या जस मनई बतलात है, तस बतलाई।

ऑ॰ मै॰—अबे बता भी । मैं इस वक्त जल्दी में हूँ।

लालू—जल्दी माँ तौ हमहूँ हन, काहे सेनी भूख लाग है।

ऑ॰ मै॰—अच्छा बता क्या कहता है ?

लालू—कोचवान कहत है कि कहूँ कलट्टर बलट्टर के घर जाओ तौ गाड़ी लगावै।

ऑ॰ मै॰—(आप ही आप) आज न जाने किसका मुँह देख कर उठा था ! सुबह ही सुबह लल्ला की माँ ने झगड़ा ठान दिया ; आज मेरा कुछ काम नहीं बना। (नौकर से)—जा, कोचवान से कह, जल्दी गाड़ी लावे। अब खाना न खाऊँगा, मुझे कलक्टर साहब से जल्दी मिलना है।

लालू बड़बड़ाते हुए चला गया—जाव तुम्हारे करम माँ रोटी बदी होए तब ना, कलट्टर रायबहादुरी से पेट भर देहैं।

२

पानी बरस चुका था। सड़क कीचड़ से भरी हुई थी। उस पर एक मोटर-गाड़ी हॉर्न देती हुई आ रही थी। पर पुलिस का सिपाही शान के साथ अपने साथी से बातें करते हुए चौराहे पर खड़ा था। उसने मोटर की ओर ध्यान न दिया। इतने में मोटर नज़दीक पहुँच गई और कीचड़ के छींटे उड़ कर उसके साथी के पाजामे पर जा पड़े। सिपाही मोटर का नम्बर लेते हुए गुस्से से बोला—मालूम होता है अन्धे हो ! बिल्कुल बेक़ायदा मोटर चलाते हो। दिखाई नहीं देता कौन खड़ा है ?

टैक्सी ड्राइवर—दिखाई क्यों नहीं देता ? मैं तो दूर ही से हॉर्न देता आ रहा हूँ।

सिपाही—आप तो हॉर्न देते आ रहे हैं और इस भले आदमी के कपड़ों का क्या होगया ?

ड्राइवर—कीचड़ के सबब से छींटें उड़ कर पड़ गईं, इसमें मेरा क्या क़सूर ?

सिपाही—क़सूर ? क़सूर यह है कि हम पुलिस के आदमी हैं ! चालान कर देंगे तो सारी हेकड़ी निकल जाएगी। मोटर लिए खोपड़ी पर चढ़े आते हैं !

आदमियों की भीड़ लग गई। इतने में एक ताँगे वाला बोला है—हाँ, ग़लती तो ज़रूर है। देखते नहीं थे, ख़ाँ साहब खड़े हैं ? पाजामा बुरी तरह ख़राब हो गया।

साथी—अजी ! मैंने अभी पाजामा सिलाया था, इसे इन्होंने बिल्कुल ग़ारत कर दिया।

ताँगे वाला—ख़ैर, ग़लती तो हुई, अब माफ़ कर दीजिए। (ड्राइवर से) भई, तुम भी अजब आदमी हो ? अपने क़सूर की माफ़ी क्यों नहीं माँगते ? ख़ाँ साहब को इतनी तकलीफ़ हुई। और नहीं तो कुछ पान-सिगरेट के लिए ही दो।

ड्राइवर कुछ न बोल कर चलता बना। इस पर ताँगे वाला आप ही आप कहता है—कहा था, ख़ाँ साहब से माफ़ी माँग लो, बेचारे बड़े भले आदमी हैं, हम ग़रीबों पर हमेशा मेहरबानी की नज़र रखते हैं, मामला निबट जाता। मगर कुछ अजब गधा आदमी है !

सिपाही—नहीं भाई, ये लोग बड़े बदमाश होते हैं। जब तक चालान न होगा, बाज़ थोड़े ही आएँगे ?

तरकारी की पोटली हाथ में लिए लालू ने बीच ही में आकर कहा—का कह्यो, का? पैजामा पर छप्पा पड़ गए, येहू का चलान होत है? तौ मनई पर काहे चलान करत हौ, चलान करौ भगवान पर, जो पानी बरसाइन हैं?

सिपाही—(लालू को देख कर) अरे भई, सलाम!

लालू—तू हमका काहे सलाम करत हौ पुलिस के मनई हुइकै? तुम सोचे हुइहौ कि इहके मालिक के पास मुक़दमा जैहै तो यही से गवाही दिलाउब। सो हम अस झूठ बोले वाले मनई नाहीं हन, हन अनाड़ी मजिट्रेट के नौकर तो का भा?

ताँगे वाला—मियाँ, तुम भी ग़ज़ब करते हो! इसमें झूठ बात क्या है? यह तो आँख से देख ही रहे हो, पाजामा कैसा ख़राब हो गया है। इस तरह अपने रिश्तेदारों की बेइज़्ज़ती कौन बर्दाश्त कर सकता है? चालान तो करना ही पड़ेगा। यह तो क़ानून की बात है।

लालू—तुमका तौ इनकी लल्लो-चप्पो करबै का चही, काहे सेनी ताँगा चलाउत हौ, खुसामद न करौ तौ बनै कइसे? इक भले मनई का फँसाय कै आपन स्वारथ देखत हौ। हम अस मनई नाहीं हन।

लालू बड़बड़ाते हुए चला जाता है। इसके बाद सिपाही अपने दोस्त से कहता है—यार, तुम्हारा पाजामा तो ख़राब हुआ, लेकिन इस साले को भी पता लगेगा कि हम लोग चीज़ क्या हैं, साले से ऐसा बदला लेंगे।

साथी—तुम्हारा यह चालान चल ही जायगा, इसका क्या पता? मोटर पर कई आदमी बैठे थे, आख़िर वे लोग भी तो गवाही देंगे?

सिपाही—ऊँह! क्या होता है? शहर के ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट के पास मुक़दमा जायगा, क्या मजाल जो पुलिस का चालान छोड़ दें? और उनका भी तो फ़ायदा है। सरकार का ख़ज़ाना न भरेंगे तो रायबहादुरी कहाँ रक्खी है? सरकार का फ़ायदा न हो तो वह इन रईसों को ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट बनावे ही क्यों?

साथी—अच्छा! यह बात है? तब तो पुलिस की नौकरी में पाँचों घी में रहती हैं!

सिपाही—और नहीं तो क्या? हम लोग ऐसी हिकमतें न चलें तो इतनी कम तनख़्वाह में कैसे काम चले? अभी साला दस-पाँच दे जाता तो क्या पड़ी थी चालान करने की?

३

"लालू! लालू!"

"कहो, का है?"

"कहौ भाई! मैजिस्ट्रेट साहब घर में हैं?"

"काहे? ओही मोटर वाले का चलान किए हुइहौ?"

सिपाही ने अधीर होकर कहा—अरे भई, तुम्हें इन बातों से क्या मतलब? जाओ, मैजिस्ट्रेट साहब से मेरे आने की इत्तला करो।

लालू—देखौ! इनका देखौ! कस हुकुम दिहिन, जानौ इनहिन के नौकर होई। जुबान माँ लगाम नाहीं।

सिपाही—ख़बर करोगे या नहीं? जब से बकबक कर रहे हो।

लालू—कर देब, कउनौ जल्दी है? तमाखू पी लेई।

सिपाही—जल्दी तो है ही, फ़ौरन जाओ।

लालू—"फउरन जाव!" कस हुकुम दिहिन—जानौ लाट साहब एही होयँ! या पुलिस की सेखी तुम मोटरनै वालन पर चलायौ। हमरे मूँ लगिहौ तौ भल न होई। हियाँ ललपगड़िया का डर नाहिन है।

सिपाही—अरे! तुम तो ख़ामख़ा मुझसे उलझना चाहते हो। मालूम होता है, मोटर वाला तुम्हारा कोई लगता है। यह बात थी तो उसी रोज़ क्यों न कह दिया? फिर बात ही क्यों बढ़ती?

लालू—अउर तुमहीं हमरे कउन लागत हौ जो तुम्हार हुकुम बजाई? मोटर वाला कउनौ लागतऊ होत तबहूँ हम तुम्हरे अस घुसखोरन से तौ जरूरै सिपारिस करित! अपने मुँह मियाँ-मिट्ठू!

सिपाही—देखो लालू! अभी तक मैं तुम्हारी बात मज़ाक़ में टाल रहा था। अब ज़बान बन्द करो, वरना अच्छा न होगा।

लालू—ओहोहो! हमरउ चलान कर देओ, नीक है, हमहूँ देख लेब।

सिपाही—सच कहता हूँ, अभी मैजिस्ट्रेट साहब से शिकायत करूँगा।

लालू—करौ, हमका उनकी नाईं रायबहादुर थोड़े बनै का है, जो हम काहू से डेराई? भगवान पइदा

करिन हैं, ओही खाए का देहैं। हम काहे का काहू से डेराई ?

सिपाही—(बात टाल कर, हँसता हुआ) अरे लालू, तुम्हारे सरकार रायबहादुर हो जायँ तब तो तुम्हारा भी फ़ायदा है, ख़ूब इनाम मिलेगा।

लालू—उनका रायबहादुरी मिल जाय, जो रात-दिन एक कर राखिन हैं ! लालू का इनाम न चाही।

सिपाही—क्यों ? तुम तो उनके पुराने नौकर हो, जो माँगोगे वही मिलेगा।

लालू—नाहीं, हमका इनाम की भूख अब नाहीं है। जानत हौ, बड़े लाला से सोने के खड़वा पाय चुके हन। अब तौ रात-दिन बे कसूरन पै जिरीवाना सुनत-सुनत आँतैं जर गईं। (हुक़ा दीवार से रखता हुआ) अब कुर्बान चाही।

सिपाही—अच्छा, अब तो तुम तम्बाकू पी चुके ?

लालू घर में जाता है और ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट साहब बाहर आते हैं।

सिपाही—सलाम हज़ूर !

ऑ० मै०—सलाम भाई ! कहो क्या मामला है ?

सिपाही—हज़ूर, आप जानते हैं, साले मोटर वालों ने समझ लिया है कि सड़कें हमारे बाप की हैं, ऐसी बदतमीज़ी से मोटर चलाते हैं—बिल्कुल बेक़ायदा। कोई अफ़सर लोग देखें तो हज़ूर, सारी आई-गई हम लोगों के सर जाय।

ऑ० मै०—ठीक कहते हो !

सिपाही—हज़ूर, अभी तीन-चार दिन की बात है, मैं और मेरे मामा के साले खड़े बातें कर रहे थे। बग़ैर हॉर्न दिए, बड़ी तेज़ी से मोटर ले आया ; बेचारे के तमाम कपड़े छींटे से ख़राब हुए सो तो हुए ही, बड़ी चोट भी आई। गर्दन तो हज़ूर, बिल्कुल टेढ़ी हो गई, कोहनी तमाम छिल गई है। मैंने बहुत हैरान होकर चालान किया है। इस ड्राइवर को मैं कई बार होशियार कर चुका था, लेकिन ये लोग तो अपने सामने किसी को कुछ समझते ही नहीं।

ऑ० मै०—अच्छी बात है, हम देख लेंगे। बेशक, ये लोग बड़े बदमाश होते हैं। ख़ूब जुरमाना होगा, ठीक हो जाएँगे।

सिपाही—हाँ हज़ूर ! दस-पन्द्रह रुपए को तो ये कुछ समझते ही नहीं। एक तो इतनी बड़ी ग़लती की, ऊपर से मुझे गालियाँ दीं।

ऑ० मै०—अच्छा, गालियाँ भी दीं ! तब तो हम ख़ूब समझेंगे।

सिपाही—सलाम हज़ूर !

ऑ० मै०—सलाम भई !

४

ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट के इजलास में मुद्दई, मुद्दालह, गवाह इत्यादि हाज़िर होते हैं।

मुद्दई—हज़ूर, यह देखिए मेरे कपड़े मौजूद हैं।

(कीचड़ से भरा पाजामा दिखाता है)

ऑ० मै०—तुम्हारे चोट किस जगह आई ?

मुद्दई—हज़ूर, चोट तो अब अच्छी हो गई, गर्दन और हाथ में बड़ी चोट आई थी। वैसे तो सारा जिस्म चूर-चूर हो गया था, लेकिन ख़ुदा का लाख-लाख शुक्र है कि मेरी जान बच गई।

लालू—(दूर बैठा हुआ) जब तुम्हार गटई टेढ़ हुइगै रहै, हाथ टूट रहै, तौ कहाँ इलाज कराए रह्यौ, जो अस जल्दी नीक हुइगा ? अउर फटा भवा कुरता कहाँ रहि गवा ? (गुस्से से) मारे सारे का पकड़ के, अब गटई टेढ़ कर दे।

ऑ० मै०—यह कौन बक-बक कर रहा है ? लालू, चलो यहाँ से।

लालू—(जाता हुआ) हाँ हम तौ जाइत है, तुम बैठे-बैठे अँधेरी करौ। राम दोहाई ! कलै रायबहादुर बन जइहौ !

ऑ० मै०—क्यों जी, तुम्हारी मोटर से इस आदमी के चोट आई ?

ड्राइवर—जी नहीं, कीचड़ की वजह से सिर्फ़ पाजामे पर छींटें पड़ गई थीं।

ऑ० मै०—नहीं, तुम झूठ बोलते हो—अपने गवाह पेश करो।

पहला गवाह—हज़ूर, मैं मोटर पर बैठा था, ड्राइवर हॉर्न दे रहा था। ये दोनों आदमी रास्ते पर खड़े थे, इसलिए छींटें पड़ गईं।

ऑ० मै०—तुम झूठ बोलते हो ; इस आदमी के बहुत चोट आई थी।

दूसरा गवाह—हज़ूर, मोटर बहुत धीरे-धीरे चल रही थी, किसी के चोट नहीं लगी।

ऑ० मै०—ओ! हम समझ गए, तुम बनावटी गवाह हो।

लालू—(ड्राइवर के पास जाकर) कहो भैया! फिरौ गनीमत समझौ। पचासै पर बीती।

ड्राइवर—मैं तो समझता था, शहर के मशहूर रईस हैं, ठीक न्याय करेंगे, कौन पुलिस वालों की ख़ुशामद करे? नहीं तो उसी वक़्त दस-पाँच देकर मामला तै कर लेता। मैं ग़रीब आदमी ५०) कहाँ से लाऊँगा?

लालू—अँधेरी है भैया, अँधेरी! अपनोई गला मूसत हैं, नाहीं तौ रायबहादुरी कहाँ से मिलै।

ड्राइवर—घर की सारी चीज़ बेचने पर भी ५०) न मिलेंगे। अभी नौकरी ही मिले कितने दिन हुए हैं, पहला ही क़र्ज़ा सर पर चढ़ा है।

लालू—भैया, इहकी कुछ फिकर न करौ, भगवान देई।

ड्राइवर—कहाँ से भगवान देगा; कोई ज़रिया भी तो होता?

लालू—उदास न होओ, बइठ जाव, एक चिलम पी लेव। (चिलम देते हुए) करज काढ़ कै दै दिहौ।

ड्राइवर—अरे भई, क़र्ज़ देगा कौन?

लालू—(पचास रुपए टेंट से निकालते हुए) लेओ, जब तुम्हरे पास होय, दै दिहौ।

ड्राइवर, आँखों में आँसू भरे हुए, लालू के पैरों पर गिर पड़ता है।

लालू—उहमाँ का बात है, हम करज देइत है, जब होय तब दे दिहौ।

ड्राइवर जब रुपए लेकर जुरमाना अदा करने चला तो रास्ते में सोचता जा रहा था—हाय! क्या हम अभागों की आह ही वह मन्त्र है, जो इस राज्य में लोगों को ऑनरेरी मैजिस्ट्रेटी और रायबहादुरी दिलाया करता है!

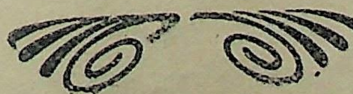
दाम्पत्य दण्ड-विधान में संशोधन

एक सम्वाददाता महोदय लिखते हैं—

श्रीमान सम्पादक जी,

मेरी श्रीमती जी गत तीन वर्षों से 'चाँद' पढ़ा करती थीं। उन्होंने 'चाँद' की प्रतियों को बड़ी हिफ़ाज़त के साथ रक्खा है। एक दिन 'चाँद' की फ़ाइल उलटते हुए सन् १९२७ के अक्टूबर मास के अङ्क पर मेरी दृष्टि पड़ी। उसमें पृष्ठ ६११ पर, 'दाम्पत्य दण्ड-विधान' के तीसरे अध्याय में, यह बताया गया है कि गृह की शान्ति भङ्ग करने वाले पति को कौन-कौन सी सज़ाएँ दी जा सकती हैं। उनमें एक सज़ा फाँसी की भी है, जिसके विषय में लिखा है—"इस क़ानून में फाँसी का यह अर्थ समझा जायगा कि स्त्री अपने पिता के घर अथवा किसी सखी के घर चली जायगी, और शीघ्र लौटने की इच्छा न करेगी।"

यद्यपि विधान-कर्ता ने इस बात का ज़िक्र नहीं किया है कि स्त्री कितने दिनों तक अपने पिता अथवा सखी के यहाँ रह सकती है, तो भी विधान-कर्त्ता का यह आशय तो कदापि न रहा होगा कि स्त्री अपने पिता अथवा सखी के यहाँ स्थायी रूप से रहने लगे। मैं आज दो वर्षों से इस तरह की फाँसी की सज़ा भुगत रहा हूँ, पर अभी तक छुटकारे की कोई सूरत दिखाई नहीं पड़ती। ऐसा मालूम होता है कि मेरे मामले में "शीघ्र न लौटने की इच्छा" का ग़लत अर्थ समझ लिया गया है। मैंने अपने अपराधों के लिए अनेक बार माफ़ी माँगी, मिन्नतें कीं, हाथ जोड़े, परन्तु श्रीमती जी को किसी से भी सन्तोष न हुआ। वह मुझ जैसे पराजित शत्रु पर जिस तरह वार पर वार करती चली जा रही हैं, उसके लिए मैं उनकी बहादुरी, हिम्मत और धैर्य की प्रशंसा तो अवश्य करूँगा, पर साथ ही मैं इस दण्ड-विधान का भी विरोध करना चाहता हूँ। इसमें फाँसी की सज़ा वाली दफ़ा के बाद यदि यह और जोड़ दिया जाय कि—"किसी भी अपराधी को यह सज़ा छः महीने से अधिक न भुगतनी पड़ेगी", तो हमारे जैसे अभागे अपराधी विधान-कर्त्ता के प्रति अत्यन्त कृतज्ञ होंगे।



नारी-जीवन

[श्री० आनन्दिप्रसाद श्रीवास्तव]

पत्र-संख्या १३

[वृद्ध-पत्नी की ओर से बाल-विधवा को]

बहिन,

तुम्हारा वह प्रत्युत्तर
अनुचित न था किन्तु कटु था।
युवा-अवस्था थी, स्वभाव था
उग्र, नहीं संस्कृति-पटु था।

क्या करतीं तुम, और नहीं कुछ
कर सकती थीं तुम उस काल।
नहीं धैर्य रहने देती है
तन-मन की पीड़ा विकराल।

सह सकता है कौन धैर्य से
इस जग में ऐसा लाञ्छन?
तुम पर तो बीती थी, सुन कर
मेरा जलता है तन-मन।

विधवा का जीवन तो तप है
और तपों से अधिक कठोर।
उससे यदि वह तनिक डिगेगी भी
तो है उचित न करना शोर।

जो तप करते नहीं जगत में
उन्हें दोष देता है कौन?
विधवा तप से विरत अगर हो
तो क्यों मनुज न रहते मौन?

उन पर दोषारोपण करने
वाले होते हैं कैसे?
उनका हृदय-विदारण करने
वाले होते हैं कैसे?

झूठे दोष लगाए जाते
हैं उन लोगों पर अधिकांश।
कुटिल स्वयं होते हैं दोषा—
रोपी स्त्री औ' नर अधिकांश।

प्रलोभनों से जिन लोगों के
डिगतीं न वे आत्म-पथ से।
वही पटकना उन्हें चाहते
हैं नीचे सतीत्व-रथ से।

नहीं जान पड़ता मुझको क्यों
उन पर ही समाज है क्रूर?
और, प्रलोभन देने वाले
क्यों समझे जाते हैं शूर?

उन दुष्टों पर क्यों समाज यह
करता नहीं कठिन शासन?
अबलाओं पर बल दिखला
क्यों करता उनका निष्कासन?

नहीं एक भी दुश्चरित्र नर
घर से बाहर किया गया।
और कहें क्या? उसे न किञ्चित
दण्ड कभी है दिया गया।

होते हैं कुछ जन समाज में,
जिनका होता है यह काम—
कि वे फँसाते विधवाओं को
या उनको करते बदनाम।

क्यों समाज रहता है उनके
दोष देखता हुआ तटस्थ?
धनी हुए तो उन्हें भले जन
सदृश लेखता हुआ तटस्थ?

बहिन कहा यह बहुत, सुनो अब
कुछ मेरा आगे का हाल।
सुन कर मेरी बात चला वह
वृद्ध गया बाहर उस काल।

कहा—"प्रिये! मैं फिर आऊँगा,
करो यहीं रह कर आराम।"
इस प्रकार टाला मैंने वह
सङ्कट, साधा अपना काम।

द्वार कर लिया बन्द, खोलने
का उसको फिर लिया न नाम।
सोचा मैंने—बची आज, अब
कल आवेंगे बूढ़े राम।

बहिन, बाद इसके मैं अपने
कमरे में खुल कर रोई,
रोती रही रात भर, क्या था
समझाने वाला कोई?

पर यह रुदन बड़ा अच्छा था,
जितने गिरे अश्रु के कण,
वे मानों हलका करते थे
दया-पूर्ण हो मेरा मन।

रोती थी मैं, समझ रही थी
अपने को अतिशय असहाय।
हुआ सबेरा, सूर्यदेव के
दर्शन हुए मुझे फिर हाय!

खिड़की से वे झाँक रहे थे,
थे वे क्या लज्जा से लाल?
भुवन—सहायक हैं, पर सकते
थे वे यह आपत्ति न टाल।

धीरे-धीरे सूर्यदेव की
मानों वह लज्जा छूटी।
समझे थी निज को असहाया
जो वह मम निद्रा टूटी।

मन्द प्रभामय उषाकाल में चमक उठा मेरा भी मन।
दृढ़ता आई मेरे भीतर, स्वयं सचेष्ट हुआ कुछ तन।

पत्र-संख्या १४

[बाल-विधवा की ओर से वृद्ध-पत्नी को]

बहिन,

बहुत होता जाता है
रोचक हाल तुम्हारा अब।
धुन बस यही मुझे रहती है,
पाऊँ पत्र तुम्हारा कब?

बात कहीं जो तुमने अबला
विधवाओं के जीवन पर,
बहुत उचित हैं, बैठ गई हैं
वे सब तो मेरे मन पर।

बहिन, तुम्हारी बुद्धि तीव्र है,
तुम होतीं महिला-जन-रत्न,
जो तुमको शिक्षित करने का
किया गया होता सुप्रयत्न।

जो न यहाँ की महिलाएँ यों
परवश अशिक्षिता रहतीं,
जो न कार्य वे निम्न कोटि के
ही करने का दुख सहतीं,

तो क्या जाने कितनी होतीं
जगत चकित करने वाली,
जग में अपनी प्रखर बुद्धि से
नई प्रभा भरने वाली।

कुछ विज्ञान-विशारद होतीं,
तो कुछ गणितज्ञा होतीं।
कुछ भाषा-विदुषी होतीं।
क्या इस प्रकार अज्ञा होतीं?

कहते हैं यह मनुज कि पढ़तीं
वे तो काम कौन करता!
अप्रखर मति नर-महिलाओं का
दल वह काम मौन करता।

प्रखर-बुद्धि की महिलाएँ-नर
जग की ज्ञान-वृद्धि करते।
भारत को सब से उन्नत कर
उसकी जग-प्रसिद्धि करते।

इसीलिए भारत महिलाओं
को समुच शिक्षा देना।
उनके मस्तिष्कों की पहले
पूर्ण परीक्षा कर लेना।

भारत के समाज-नेताओं
का है गुरु कर्तव्य प्रधान।
यदि वे सचमुच ही रखते हैं
भारत की उन्नति का ध्यान।

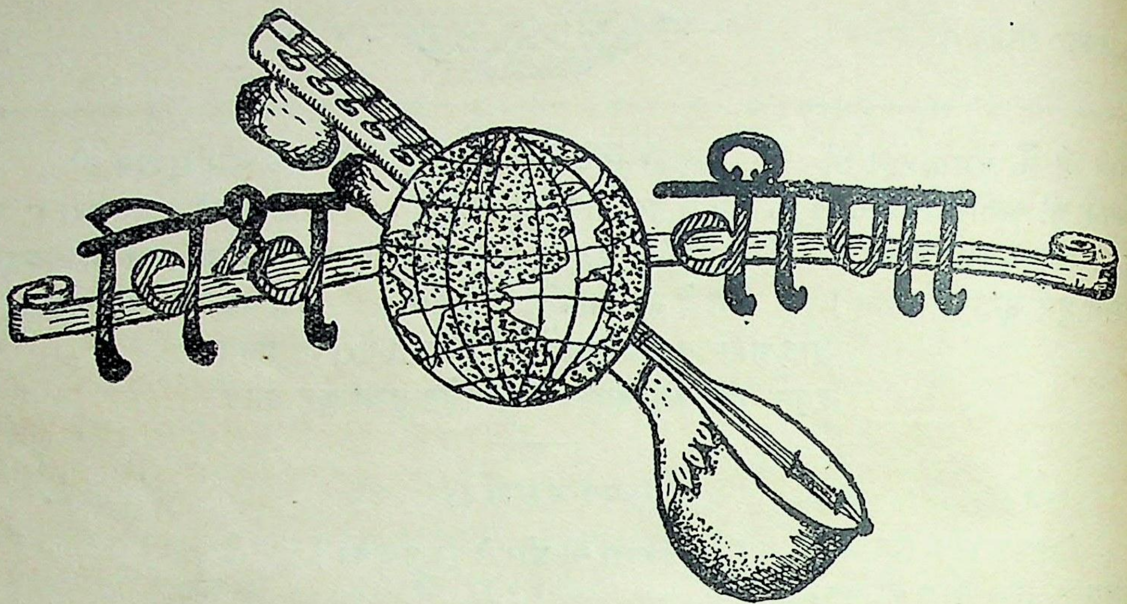
सुनो बहिन, मैं तुम्हें सुनाती
हूँ फिर अब आगे का हाल।
सुन कर मेरी बात सास बस
हुई राक्षसी सी विकराल।

शीघ्र ससुर जी को लाई वह
कह उनसे झूठी बातें।
समझ रही थी मैं मन ही मन
उसकी वे सारी घातें।

कहा ससुर जी ने आकर के—
"निकल हमारे घर से तू।"
ननदें सारी बोल उठीं तब
कि "चल हमारे घर से तू।"

इस पर ही सन्तोष हुआ क्या?
लगे पीटने मुझे सभी।
इतनी मार पड़ेगी मुझ पर,
सोचा था यह नहीं कभी।

होकर संज्ञा-हीन गिरी जब,
तब आई कुछ मुझमें शान्ति।
पर इस अल्प शान्ति में गर्भित
थी सुदीर्घ जीवन की क्रान्ति।



भारत की आकांक्षाएँ

श्री० जे० कृष्णमूर्ति मसीहा भले ही न हों; अज्ञान के दलदल में फँसी हुई मानव जाति का उद्धार करने के लिए ही उनका अवतार भले न हुआ हो; परन्तु इस बात को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि उनके विचार संसार के सर्वश्रेष्ठ महापुरुषों के विचार की कोटि के हैं। उनके विचारों में जो उदारता और जो उत्कट सत्यनिष्ठा पाई जाती है वह अद्भुत है। एक शब्द में कहें तो कह सकते हैं कि कृष्णमूर्ति सत्य के अनन्य उपासक तथा ढोंग और दिखावट के कट्टर शत्रु हैं। उनका स्वार्थ-त्याग और निर्भीकता अपना सानी नहीं रखती। हम लोगों ने सत्य के लिए राज्य का त्याग करने वाले राजर्षियों, सत्य के लिए अपना सर्वस्व स्वाहा करने वाले वीर साधकों और यतियों के अनेक उदाहरण सुने हैं; पर आज तक हमने एक भी ऐसा उदाहरण न सुना जिसमें किसी धर्म के प्रवर्तक अथवा किसी सम्प्रदाय के गुरु ने सत्य की रक्षा के लिए अपनी धर्म-गद्दी का त्याग किया हो। यह अपूर्व त्याग करने का श्रेय केवल कृष्णमूर्ति को ही प्राप्त है। कृष्णमूर्ति का कहना है कि जितने भी मजहब, सम्प्रदाय, जाति आदि धार्मिक सङ्घ हैं वे सभी धर्म का ढकोसला मात्र हैं। धर्म व्यक्तिगत आचरण की वस्तु है; समाज या सङ्घ के साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं। इसी सिद्धान्त के अनुसार कृष्णमूर्ति ने अपने सम्प्रदाय को, जिसके वह सब से बड़े गुरु थे, तोड़ दिया है और अपनी धर्म-गद्दी का त्याग कर दिया है। निस्सन्देह यह त्याग अपूर्व है। मानव जाति के इतिहास में इसकी समता शायद ही मिल सके।

एक इतनी महान आत्मा की वाणी, चाहे उसके साथ हमारा कितना ही मतभेद क्यों न हो, हमारे लिए अवश्य विचारणीय है। इस समय भारतवासियों के हृदय में स्वाधीनता पाने की जो प्रबल आकांक्षा उत्पन्न हो गई है, उसके सम्बन्ध में कृष्णमूर्ति ने अपने विचार प्रगट किए हैं। नीचे हम उन्हीं विचारों को उद्धृत कर रहे हैं और आशा करते हैं कि 'चाँद' के पाठक इनका ध्यान से मनन करेंगे।

आन्तरिक और बाह्य स्वाधीनता एक दूसरे से अलग नहीं की जा सकती। किसी भी देश के बाहरी स्वार्थों से उस देश का जीवन अधिक महत्व की वस्तु है। कोई भी देश उस समय तक वास्तव में स्वतन्त्र नहीं हो सकता जब तक कि वह जीवन के अटल नियमों का यथावत पालन नहीं करने लगे। इस दृष्टि से आज संसार का कोई भी देश पूर्ण स्वतन्त्र नहीं है। हर एक देश में स्वाधीनता का कोई न कोई अंश ही पाया जाता है।

परन्तु आपको जहाँ-जहाँ राजनीतिक स्वाधीनता का कोई अंश मिलेगा, वहाँ आप यह भी देखेंगे कि लोगों को उतने ही अंशों में उन मिथ्या बन्धनों से भी स्वतन्त्रता मिल गई है, जो जीवन के स्वाभाविक और क्रियात्मक प्रवाह को बद्ध अथवा सङ्कुचित रखते हैं। मृत परम्परा ही स्वाधीनता का सब से बड़ा शत्रु है। स्वयं सोचने-विचारने की चेष्टा न करके हर एक बात में दूसरों के आदेशों का पालन करना—वर्तमान जीवन को अतीत काल के मृत नियमों की जञ्जीर में जकड़ देना—ही स्वाधीनता के लिए सब से बढ़ कर घातक है। और आज संसार में शायद ही कोई ऐसा देश हो जहाँ पर इस मृत परम्परा का आधिपत्य इतना अधिक हो जितना भारतवर्ष पर है। इस अन्धपरम्परा से छुटकारा पाना ही भारत की मुख्य समस्या है। इसे हल कर दीजिए और फिर आप देखेंगे कि दूसरी तमाम बाधाएँ जो भारत के रास्ते में रुकावट डाल कर उसे पीछे खींच रही हैं, आप ही आप क्षण भर में सबेरे के कुहरे की तरह अदृश्य हो जाएँगी। जीवन के नियमों को धोखा नहीं दिया जा सकता। जिस देश अथवा जाति ने अपने आन्तरिक जीवन में स्वतन्त्रता नहीं प्राप्त की, उसे कभी भी सच्चे अर्थों में बाहरी स्वतन्त्रता पाने की आशा नहीं रखनी चाहिए। और यदि ऐसे देश अथवा जाति को कभी बाहरी स्वाधीनता मिल भी गई तो, उसके फलों को चखने से पता चलेगा कि उसके बाहरी सौन्दर्य के भीतर सिवा मिट्टी और राख के कुछ भी नहीं है। उसमें किसी प्रकार का सार अथवा रस नहीं। वह सर्वथा खोखली है।

यह एक कड़ुवा सबक़ है और शायद कुछ लोग इसे पढ़ना भी पसन्द न करें। किन्तु भारत की सच्ची आशाएँ तो इसी बात पर अवलम्बित हैं कि यह देश, यदि अपनी अभिलाषाओं को पूर्ण करना चाहता है तो, अब इस कठिन पाठ को पढ़ ले। इसे सीखने में महान कष्टों का सामना करना पड़ेगा, किन्तु जिस समय भारत इस अग्नि-परीक्षा से बाहर निकलेगा वह पवित्रता की एक ऊँची श्रेणी पर विद्यमान होगा। भारत की आत्मा एक महान आत्मा है, किन्तु वह ज़ञ्जीरों से बँधी हुई है। उसकी ज़ञ्जीरों को काट दीजिए, फिर देखिएगा कि वह संसार की जातियों के सामने एक भीम-रूप में उपस्थित हो जाती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि पुनर्जीवित भारत सारे संसार को पुनर्जीवित करने की केवल अभिलाषा ही नहीं रक्खेगा, बल्कि इसके लिए महान प्रयास भी करेगा। हमारे अन्दर वह सभी महान आत्मिक शक्तियाँ मौजूद हैं, जो हमें अपने पूर्वजों से मिली हैं। लेकिन केवल एक बात के अभाव में हमारी ये सारी शक्तियाँ निरर्थक और निर्जीव हो गई हैं। वह बात है, दूसरों के प्रति सद्भाव और स्नेह। किसी भी परम्परा में से जब यह बात निकल जाती है तो वह दूषित और हानिकारक हो जाती है।

हमारी प्राचीन अलौकिक परम्परा में से कौन सी



श्रीमती मीरा

आप हजारीबाग़ (बिहार) की एक प्रभावशाली राष्ट्रीय कार्यकर्त्री हैं। आपको सत्याग्रह-आन्दोलन में नौ मास की सज़ा हुई है।

वस्तुएँ अब हमारे पास बची हैं? भीषण क्रूरता और स्वार्थपरता, घातक बाल-विवाह तथा वे निर्दय नियम, जिन्हें हमने अपनी विधवाओं पर ज़बर्दस्ती लाद रक्खे हैं, समस्त स्त्री जाति के प्रति हमारा निन्दनीय बर्ताव, और अस्पृश्यता की प्रथा—इन सबका कारण कुछ ऐसी पुरानी रूढ़ियाँ ही हैं, जिनके बोझ से हमारे हृदय की साधारण सुन्दर अनुभूतियाँ भी, जो मनुष्य जीवन को मधुर और शान्तिमय बना सकती हैं, कुचल दी गई हैं।

जाति-भेद ही को लीजिए। यह सङ्कुचित स्वार्थ-

परता के सिवा और क्या है ? यह मनुष्य की उस कुभावना का व्यापक रूप है, जिसके कारण वह अपने को दूसरों से भिन्न समझता है, अथवा जिसके कारण वह समझता है कि जो गुण उसके अन्दर मौजूद हैं, वे और किसी के अन्दर हैं ही नहीं। ये और ऐसी ही अनेक बातें आज हमारी पैतृक सम्पत्ति हैं। और इसी पैतृक सम्पत्ति का यह भार है जिसके नीचे आज हम दबे हुए कराह रहे हैं। परन्तु एक बात ध्यान देने योग्य है, और वह यह



श्रीमती रत्नबाई

आप तुत्तर (मद्रास) के भारतीय महिला-संघ की सेक्रेटरी चुनी गई हैं।

है कि हमारी सम्पूर्ण पैतृक सम्पत्ति इतनी ही नहीं है। यह तो हमारी पैतृक सम्पत्ति का केवल मृत और अनावश्यक अंश है—कूड़ा-करकट है। इसके नीचे भारत की सच्ची पैतृक सम्पत्ति गड़ी पड़ी है। और इसे ही हम अपनी प्राचीन पैतृक सम्पत्ति का जीवित और सार अंश समझते हैं। वह सम्पत्ति कौन सी है ? वह है मुक्त होने की आन्तरिक अभिलाषा, जो भारतीय प्रकृति का मूल है। यदि भारत अपनी आत्मा पर से कुसंस्कारों का मैल दूर हटा दे तो आज भी हम उसके भीतर आत्म-त्याग का प्रबल भाव और यथार्थता पर अटल विश्वास रखने की इच्छा पाएँगे।

आज हमें भारत की इसी अन्तरात्मा का पुनरुज्जीवन करना है। यही वह आत्मा है, जो पुनर्जीवित होने के पश्चात, यदि इसे आत्मविकाश की स्वाधीनता दी जाय, तो संसार में वह आश्चर्यजनक जाग्रति उत्पन्न कर सकती है, जिसका हम ऊपर ज़िक्र कर आए हैं। ऐसी महान आत्मा के लिए कुछ भी असम्भव नहीं है। एक बार यह बन्धन से निकली तो समस्त संसार को स्वाधीनता के पथ पर चला देगी। यह केवल राजनीतिक स्वाधीनता ही नहीं प्रदान करेगी—राजनीतिक स्वाधीनता तो इसका एक छोटा और स्वाभाविक परिणाम होगा—वरन यह इससे भी बड़ा कार्य करेगी। यह अपने सत्ता-स्थापन के एक ही महान प्रयत्न में समस्त संसार की आध्यात्मिक और जीवनी-शक्तियों का केन्द्र तथा आगार बन जायगी। मैं समझता हूँ कि यही पद इसके भाग्य में निश्चित है।

इस जाग्रति के लिए किस बात की आवश्यकता है ? पहली आवश्यकता है पूर्ण रूप से सत्य पालन की और अपने अवगुणों को निस्सङ्कोच स्वीकार करने की, तथा दूसरी आवश्यकता है ऐसे असन्तोष की, जिसका सूत्रपात स्पष्ट विचारों से हुआ हो। इसके पश्चात हमें अविचल भाव से अपने घर की मरम्मत शुरू कर देनी चाहिए। किसी भी विघ्न का ध्यान न करके, आवश्यकता पड़ने पर, हमें पुरानी रूढ़ियों को छोड़ कर उनके स्थान पर ऐसी प्रथाएँ चलानी चाहिए जो हमारी आजकल की परिस्थिति में सुविधाजनक हों। पुरानी लकीर के फ़क़ीर बन कर चलने का समय अब नहीं रहा। हमें अपने दैनिक जीवन की उन कुरीतियों को देखकर लज्जित होना चाहिए, जिन्हें हम बाहर वालों की आँखों के सामने पड़ने देने में डरते हैं। हमें अब यह समझ लेना चाहिए कि अपनी कुरीतियों को शब्दों की आड़ में छिपाने का हमारा प्रयत्न सर्वथा निरर्थक है, ख़ासकर ऐसे समय में जबकि संसार की जनता उन्हें उसके नग्न स्वरूप में देख कर उन पर शान्तिपूर्वक अपना मत निर्धारित कर रही है। संक्षेप में, हमें अपने देश को पुनः सत्य प्रेम की ओर अग्रसर करना पड़ेगा।

जब हम ऐसा करना आरम्भ कर देंगे और ऐसे ही करते रहने का निश्चय कर लेंगे, तभी भारत को स्वतन्त्र कर सकेंगे।

इन सब कार्यों में हम अन्य जातियों से भी बहुत कुछ सीख सकते हैं। हमें अपने बड़प्पन का इतना अहङ्कार न होना चाहिए कि हम दूसरों से कुछ सीखने में सङ्कोच करें। भौतिक जीवन में स्वच्छता और शिष्टता लाने में, परिश्रम को बचाने वाले उपायों में, सामाजिक स्वतन्त्रता में, रचनात्मक सङ्गठन में, सम्मानपूर्ण सहयोग और निस्स्वार्थ कर्तव्य-पालन में हमें पश्चिमी जगत बहुत से पाठ पढ़ा सकता है। सम्पूर्णता प्राप्त करने की अभिलाषा हमारे अन्दर जितनी ही बलवती होगी हम उतना ही औरों से सीखने के लिए उद्यत रहेंगे और हम स्वयं तब औरों को भी सिखा सकेंगे। बहुत से पाठ ऐसे हैं जिन्हें केवल आध्यात्मिक पुनरुज्जीवन-प्राप्त भारत ही सिखा सकता है। ऐसे विषय अभी पश्चिम के विचार-जगत में नहीं आ सके हैं। हम यह बात संसार की किसी भी और जाति की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह दिखला सकते हैं, कि हमारा भौतिक जीवन किस प्रकार एक इससे कहीं बड़े अदृश्य आत्मिक जीवन पर अवलम्बित है। किसी भी और जाति की अपेक्षा हम यह अधिक अच्छी तरह सिखा सकते हैं कि जीवन का आनन्द धन सम्पत्ति के बटोरने में नहीं, वरन अन्तःस्थित आत्मा और वाह्य जीवन के सामञ्जस्य में है।

परन्तु शिक्षा देने से पहले हमें शिक्षक बनने का अधिकार प्राप्त करना चाहिए। और यह हम केवल तभी कर सकते हैं जब अपने समस्त राष्ट्रीय कार्यों तथा विचारों की पुष्टि के लिए अपने प्राचीनतम शास्त्रों को न दिखला कर केवल सहज बुद्धि और शुद्ध अनुभूति का ही आश्रय लें। सच्ची स्वतन्त्रता प्राप्त करने के मार्ग में भारतवर्ष के लिए, मैं समझता हूँ, यही पहला क़दम होना चाहिए।

* * *

भारत के प्रति अङ्गरेज़ों की नीति

भारत के प्रति अङ्गरेज़ों की नीति को बताने में अब तक सर विलियम जॉयन्सन हिक्स (अब लॉर्ड ब्रेन्टफ़ोर्ड) का वह भाषण ही सब से प्रसिद्ध रहा है, जिसमें उन्होंने स्पष्ट शब्दों में अङ्गरेज़ जाति की स्वार्थपरता को स्वीकार किया था। परन्तु अब इङ्गलैण्ड के प्रसिद्ध दक़ियानूस दैनिक पत्र 'डेली मेल' के सम्पादक लॉर्ड रॉदरमियर ने उस स्वार्थपरता को और भी स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है। यद्यपि हिक्स साहब की बातों का, उनके ब्रिटिश पार्लामेण्ट के गृह-सचिव रहने के कारण, अधिक महत्त्व है, तथापि



श्रीमती राजमानिक अम्मल

ये मद्रास की अगमबादिया जाति की पहिली हिन्दू कन्या हैं जो एस० एस० एल० सी० पास करके डॉक्टरी का अध्ययन कर रही हैं।

लॉर्ड रॉदरमियर की उक्ति का महत्त्व भी कुछ कम नहीं है। (क्योंकि) भारत-शासन के सम्बन्ध में ब्रिटिश जनता की सम्मति को लॉर्ड रॉदरमियर उतनी ही निर्लज्जता और सफ़ाई के साथ प्रगट करते हैं, जितनी निर्लज्जता और सफ़ाई के साथ हिक्स साहब ने इङ्गलैण्ड के नीतिज्ञों की सम्मति

प्रगट की थी। हम यहाँ पाठकों के मनोरञ्जनार्थ, इन दोनों साहबान की बातें, ज्यों की त्यों उन्हीं की भाषा में, उद्धृत कर रहे हैं।

सर विलियम जॉयन्सन हिक्स

We did not conquer India for the benefit of the Indians. I know it is said at missionary meetings that we conquered



श्रीमती पी० जानकी अम्मल

आप ट्रावनकोर की निवासी हैं और हाल ही में सैलियर के महिला-सम्मेलन की सभानेत्री नियुक्त की गई थीं।

India to raise the level of the Indians. That is cant. We conquered India as the outlet for the goods of Great Britain. We conquered India by the sword and by the sword we should hold it. ('Shame') Call shame if you like. I am stating facts. I am interested in missionary work in India, and have done much work of that kind, but I am not such a hypocrite as to say we hold India for the Indians. We hold it as the finest outlet for British goods in general, and for Lancashire cotton goods in particular.

अर्थ—हिन्दुस्तान को हमने इस उद्देश्य से नहीं जीता था कि इससे हम भारतीयों की भलाई करेंगे। मैं जानता हूँ कि मिशनरी लोगों की मीटिङ्गों में यह बात कही जाती है कि हमने भारतीयों की उन्नति करने के लिए भारत को जीता था। यह सब गपोड़ेबाज़ी है। भारत को जीतने में हमारा एक ही उद्देश्य था, वह यह कि ब्रिटेन के माल की खपत के लिए हमें बाज़ार मिल जावे। हम लोगों ने भारत को तलवार के बल से जीता था और तलवार के बल से ही हम उसे अपने हाथ में रक्खेंगे। ('शर्म-शर्म' की आवाज़)। अगर आप इस पर 'शर्म-शर्म' चिल्लावें तो भले ही चिल्लावें, मैं तो जो सच्ची बात है वही कह रहा हूँ। वैसे मुझे ख़ुद भी उस काम में, जो मिशनरी लोग हिन्दुस्तान में कर रहे हैं, दिलचस्पी है और मैंने इस तरह का बहुत कुछ काम किया भी है, लेकिन मैं ऐसा कपटी आदमी नहीं हूँ, जो यह कहता फिरूँ कि हम लोग हिन्दुस्तान पर हिन्दुस्तानियों के हित के लिए ही अधिकार बनाए हुए हैं। असली बात तो यह है कि हिन्दुस्तान पर क़ाबू रखने में हमारा उद्देश्य यही है कि वहाँ ब्रिटिश माल की ज़्यादा से ज़्यादा खपत हो—ख़ास तौर से लङ्काशायर के बने कपड़े की।

लॉर्ड रॉदरमियर

"Among all the great nations of the world the British are the most ignorant of work-a-day, bread-and-butter economics." Foolish people in this country talk about the evacuation of India as if it would make no more difference to the prosperity of our Empire than the abandonment of British Guiana.

They do not realise that the step they so lightly contemplate would be "the

end of Britain as a Great Power." Their hazy minds are incapable of understanding that the loss of India would bring immediate economic ruin to this country; that instead of close on two million unemployed we should have four or five million, for whom no relief could be provided, and who would soon be faced with sheer starvation.

OUR BEST MARKET

The sloppy-minded sentimentalists whose weak good nature favours a feeble surrender to Indian agitation have no conception of the inevitable economic results of the policy they preach. The shrinkage of British prosperity that has already begun is largely due to the fact that competing countries like Japan are driving us out of the Indian market, in which we were once supreme.

India is still far and away the largest consumer of British exports, and our imports from there are second only to those from the United States.

Without the profits which Great Britain draws from her commerce with India the most ruthless Chancellor of the Exchequer would be unable to raise enough revenue to provide old-age pensions, unemployment relief, education grants, and all the other State allowances which are regarded by their beneficiaries in this country as part of the automatic routine of existence.

These advantages are unparalleled in any other nation, and the only reason we are able to afford them is that we had hitherto found the greatest over-seas market for our manufactured products among the 320,000,000 people of India

At least four shillings in the pound of the income of every man and woman in Great Britain is drawn, directly or indirectly, from our connection with India. British interests in that great Dependency are so enormous and diverse that they underpin our national pros-



मिस डोरोथी कोल्सवेल्ड

आपने विलायत की बुक-कीपिङ्ग और एकाउण्टेन्सी की परीक्षा में चार हज़ार प्रतियोगियों के बीच सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार प्राप्त किया है।

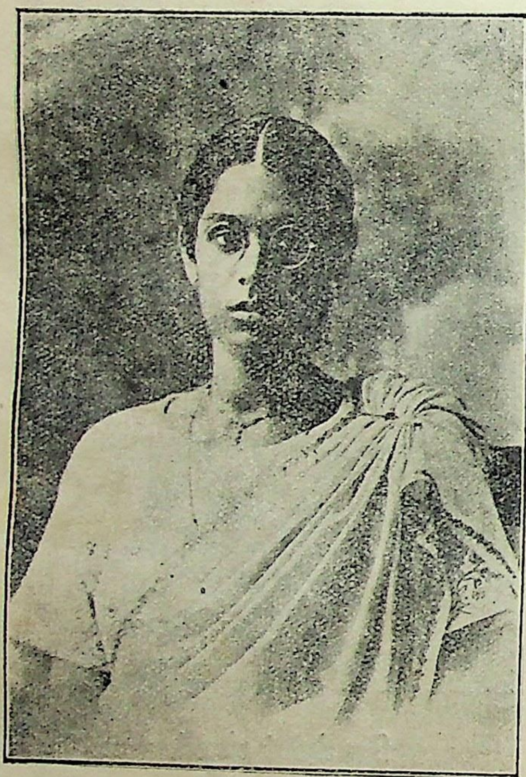
perity at every point. From the presidents of great commercial corporations down to the charwomen who scrub out their offices, every individual in this country would be a great deal poorer if we allowed the long-standing trade-ties between Britain and India to be broken by surrender-

ing our authority there to a handful of mischievous native agitators.

TELL THE NATION !

* * *

We cannot allow the safety of the most vital of all the assets of the British Empire to be jeopardised a single moment longer. For to us India is not far from being our all in all.



श्रीमती पी० विशालाची अम्मा

आप त्रिचूर (ट्रावनकोर) में ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट नियत की गई हैं।

अर्थ—"संसार के बड़े-बड़े राष्ट्रों में ब्रिटेन अपने नित्य-प्रति की साधारण आवश्यकताओं—रोटी और मक्खन—की आर्थिक समस्याएँ समझने में सब से अधिक अनभिज्ञ है।" इस देश के मूर्ख लोग भारत के शासन से हाथ खींच लेने की सलाह देते हैं; उनकी राय से जिस प्रकार ब्रिटिश गायना का आधिपत्य छोड़ देने से साम्राज्य के वैभव को कोई क्षति नहीं पहुँची, उसी प्रकार भारत के निकल जाने से भी उसमें कोई विशेष अन्तर न पड़ेगा।

परन्तु वे यह नहीं समझते कि भारत के हाथ से निकलते ही "ब्रिटेन की महाशक्ति की इतिश्री" हो जायगी। उनके दिमाग़ में यह बात नहीं आती कि भारत से सम्बन्ध-विच्छेद होते ही ब्रिटेन के सामने एक विकट आर्थिक समस्या उपस्थित हो जायगी; और बीस लाख के बदले चालीस या पचास लाख मज़दूर बेकारी के कारण भूखों मर जायँगे।

सोने की चिड़िया

ऐसी दुर्बल और भ्रान्त मनोवृत्ति के लोग, जो भारतीय क्रान्ति के सम्मुख सिर झुकाने की सलाह देते हैं, कभी अपनी नीति के भयङ्कर आर्थिक दुष्परिणामों का विचार नहीं करते। ब्रिटिश वैभव का ह्रास प्रारम्भ हो गया है, और उसका एक प्रधान कारण यह है कि भारत के जिस व्यापारिक क्षेत्र में पहले हमारी तूती बोलती थी, वहीं से जापान जैसे देश अब हमें खदेड़ने का प्रयत्न कर रहे हैं।

ब्रिटेन से, और देशों की अपेक्षा, अभी भी भारत में सब से अधिक माल भेजा जाता है; और हमारे यहाँ बाहर से माल भेजने वाले देशों में भी अमेरिका के बाद भारतवर्ष का ही सब से ऊँचा स्थान है।

ग्रेट ब्रिटेन को भारत के इस व्यापारिक सम्बन्ध से जो लाभ होता है, उसका प्रवाह यदि रुक जाय, तो क्रूर से क्रूर चान्सलर-ऑफ़-एक्सचेकर भी वृद्धों की पेन्शन, बेकारों की परवरिश, शिक्षा संस्थाओं की सहायता और इसी प्रकार के अन्य सरकारी ख़र्चों के लिए धन जुटाने में असमर्थ हो जाय। और ये ख़र्चे ऐसे हैं कि इनके अभाव में हमारा जीवन ही अस्त-व्यस्त हो जायगा।

इस प्रकार की सहूलियतें किसी भी दूसरे राष्ट्र को नसीब नहीं हैं, और इसका प्रधान कारण यही है कि हमें समुद्र पार भारत में अपने माल की बिक्री के लिए एक बहुत ही बड़ा बाज़ार मिल गया है और हमें मिल गए हैं, हमारे माल को ख़रीदने के लिए, ३२ करोड़ भारतवासी।

ग्रेट ब्रिटेन के हर एक स्त्री और पुरुष की आमदनी में पौण्ड पीछे कम से कम चार शिलिङ्ग, प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से, भारत से आता है। इस विशालकाय गुलाम देश में ब्रिटेन का इतना अधिक और इतने विविध

प्रकार का स्वार्थ है कि हमारे वर्तमान ऐश्वर्य और वैभव के अङ्ग-अङ्ग में उसका कुछ न कुछ हाथ अवश्य है। यदि भारत के मुट्ठी भर बदमाश क्रान्तिकारियों के भय से हम वहाँ के शासन से हाथ खींच लें और भारत के साथ ब्रिटेन के व्यापारिक सम्बन्ध का अन्त हो जाने दें तो इसमें सन्देह नहीं कि इस देश में—बड़े-बड़े व्यापारिक सङ्घों के अध्यक्षों से लेकर ऑफ़िस साफ़ करने वाली मज़दूर स्त्रियों तक—प्रत्येक व्यक्ति की आमदनी का एक बहुत बड़ा हिस्सा हमारे हाथ से निकल जायगा।

ब्रिटेन को चेतावनी

× × ×

ब्रिटिश जनता को यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि हम अपने साम्राज्य के सब से बड़े रत्न को एक क्षण के लिए भी खोने को तैयार नहीं हैं। हमें यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि भारतवर्ष हमारा सर्वस्व है—इससे कम कुछ भी नहीं।

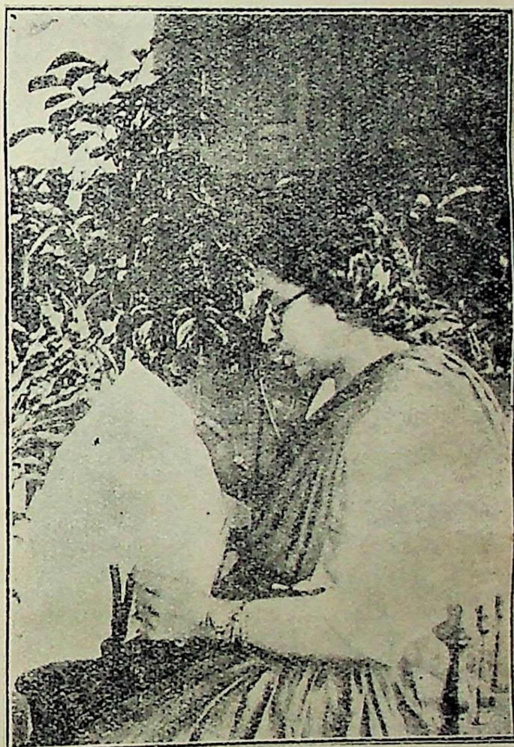
* * *

संग्राम में साहित्य

श्री० प्रेमचन्द जी उपरोक्त शीर्षक से "हंस" के विगत जुलाई के अङ्क में लिखते हैं :—

घोर सङ्कट में पड़ने पर ही आदमी की ऊँची से ऊँची, कठोर से कठोर और पवित्र से पवित्र मनोवृत्तियों का विकास होता है। साधारण दशा में मनुष्य का जीवन भी साधारण होता है। वह भोजन करता है, सोता है, हँसता है, विनोद का आनन्द उठाता है। असाधारण दशा में उसका जीवन भी असाधारण हो जाता है, और परिस्थितियों पर विजय पाने या विरोधी कारणों से आत्मरक्षा करने के लिए उसे अपने छिपे हुए मनोऽस्त्रों को बाहर निकालना पड़ता है। आत्म-त्याग और बलिदान के, धैर्य और साहस के, उदारता और विशालता के जौहर उसी वक्त खुलते हैं, जब हम बाधाओं से घिर जाते हैं। जब देश में कोई विप्लव या संग्राम होता है, तो जहाँ वह चारों तरफ़ हाहाकार मचा देता है, वहाँ इसमें देव-दुर्लभ गुणों का संस्कार भी कर देता है। और साहित्य क्या है? हमारी अन्तर्तम मनोवृत्तियों के विकास का इतिहास। इसलिए यह कहना अनुचित नहीं है कि साहित्य का विकास संग्राम ही में होता है। संसार-साहित्य के उज्ज्वल से उज्ज्वल रत्नों को ले लो, उनकी सृष्टि या तो किसी संग्राम काल में हुई है, या किसी संग्राम से सम्बन्ध रखती है।

रूस और जापान के युद्ध में आत्म-बलिदान के जैसे उदाहरण मिलते हैं, वह और कहाँ मिलेंगे? यूरोपियन



मिस इक़बालुन्निसा बेगम

आप बङ्गलोर (मैसूर) के उर्दू स्कूलों की लेडी इन्स्पेक्टर हैं। हाल ही में आपने बी० ए० की परीक्षा पास की है।

युद्ध में भी साधारण मनुष्यों ने ऐसे-ऐसे विलक्षण काम कर दिखाए, जिन पर हम आज दाँतों उँगली दबाते हैं। हमारा स्वाधीनता-संग्राम भी ऐसे उदाहरणों से ख़ाली नहीं है। यद्यपि हमारे समाचार-पत्रों की ज़बानें बन्द हैं और देश में जो कुछ हो रहा है, हमें उसकी ख़बर नहीं होने पाती, फिर भी कभी-कभी त्याग और सेवा, शौर्य और विनय के ऐसे-ऐसे उदाहरण मिल जाते हैं, जिन पर

हम चकित हो जाते हैं। ऐसी ही दो-एक घटनाएँ हम आज अपने पाठकों को सुनाते हैं।

एक नगर में कुछ रमणियाँ कपड़े की दूकानों पर पहरा लगाए खड़ी थीं। विदेशी कपड़ों के प्रेमी दूकानों पर आते थे? पर उन रमणियों को देख कर हट जाते थे। शाम का वक़्त था। कुछ अँधेरा हो चला था। उसी वक़्त एक आदमी एक दूकान के सामने आकर कपड़े ख़रीदने



श्रीमती मनी बहिन पटेल

आप सरदार वल्लभ भाई पटेल की सुयोग्य पुत्री और गुजरात के सत्याग्रह-संग्राम की एक प्रमुख कार्यकर्त्री हैं।

के लिए आग्रह करने लगा। एक रमणी ने जाकर उससे कहा—"महाशय, मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ कि आप विलायती कपड़ा न ख़रीदें।"

ग्राहक ने उस रमणी को रसिक नेत्रों से देख कर कहा—"अगर तुम मेरी एक बात स्वीकार कर लो, तो मैं क़सम खाता हूँ, कभी विलायती कपड़ा न ख़रीदूँगा।"

रमणी ने कुछ सशङ्क होकर उसकी ओर देखा और बोली—"क्या आज्ञा है?"

ग्राहक लम्पट था। मुसकिरा कर बोला—"बस, मुझे एक बोसा दे दो।"

रमणी का मुख अरुण वर्ण हो गया, लज्जा से नहीं, क्रोध से। दूसरी दूकानों पर और कितने ही वालण्टियर खड़े थे। अगर वह ज़रा-सा इशारा कर देती, तो उस लम्पट की धज्जियाँ उड़ जातीं; पर रमणी विनय की अपार शक्ति से परिचित थी। उसने सजल नेत्रों से कहा—"अगर आपकी यही इच्छा है, तो ले लीजिए, मगर विदेशी कपड़ा न ख़रीदिए।" ग्राहक परास्त हो गया। वह उसी वक़्त उस रमणी के चरणों पर गिर पड़ा और प्रण किया कि कभी विलायती वस्त्र न लूँगा। क्षमा-प्रार्थना की और लज्जित तथा संस्कृत होकर चला गया।

एक दूसरे नगर की एक और घटना सुनिए। यह भी कपड़े की दूकान और पिकेटिङ्ग ही की घटना है। एक दुराग्रही मुसलमान की दूकान पर ज़ोरों की पिकेटिङ्ग हो रही थी। सहसा एक मुसलमान सज्जन अपने कुमार पुत्र के साथ कपड़ा ख़रीदने आए। सत्याग्रहियों ने हाथ जोड़े, पैरों पड़े, दूकान के सामने लेट गए; पर ख़रीदार पर कोई असर न हुआ। वह लेटे हुए स्वयंसेवकों को रौंदता हुआ दूकान में चला गया। जब कपड़े लेकर निकला तो फिर वालण्टियरों को रास्ते में लेटे पाया। उसने क्रोध में आकर एक स्वयंसेवक के एक ठोकर लगाई। स्वयंसेवक के सिर से ख़ून निकल आया। फिर भी वह अपनी जगह से न हिला। कुमार पुत्र दूकान के ज़ीने पर खड़ा यह तमाशा देख रहा था। उसका बाल-हृदय यह अमानुषीय व्यवहार सहन न कर सका। उसने पिता से कहा—"बाबा, आप कपड़े लौटा दीजिए।"

बाप ने कहा—"लौटा दूँ! मैं इन सबों की छाती पर से निकल जाऊँगा।"

"नहीं, आप लौटा दीजिए!"

"तुम्हें क्या हो गया है? भला लिए हुए कपड़े लौटा दूँ!"

"जी हाँ!"

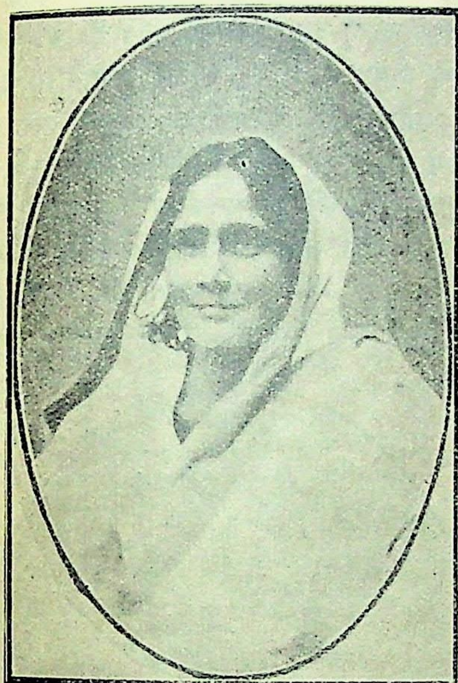
"यह कभी नहीं हो सकता।"

"तो फिर मेरी छाती पर पैर रख कर जाइए।"

यह कहता हुआ वह बालक अपने पिता के सामने

लेट गया। पिता ने तुरन्त बालक को उठा कर छाती से लगा लिया और कपड़े लौटा कर घर चला गया।

तीसरी घटना कानपुर नगर की है। एक महाशय अपने पुत्र को स्वयंसेवक न बनने देते थे। पुत्र के मन में



श्रीमती अशोकलता दास (कलकत्ता)

आपको सत्याग्रह आन्दोलन में चार मास की सज़ा मिली है।

देश-सेवा का असीम उत्साह था; पर वह माता-पिता की अवज्ञा न कर सकता था। एक ओर देश-प्रेम था, दूसरी ओर माता-पिता की भक्ति। यह अन्तर्द्वन्द्व उसके लिए एक दिन असह्य हो उठा। उसने घर वालों से कुछ न कहा। जाकर रेल की पटरी पर लेट गया। ज़रा देर में एक गाड़ी आई। और उसकी हड्डियों तक को चूर-चूर कर गई।

चौथी घटना एक दूसरे नगर की है। मन्दिरों पर स्वयंसेवकों का पहरा था। स्वयंसेवक जिसे विलायती कपड़े पहने देखते थे उसे मन्दिर में न जाने देते थे। उसके सामने लेट जाते थे। कहीं-कहीं स्त्रियाँ भी पहरा दे रही थीं। सहसा एक स्त्री खद्दर की साड़ी पहने आकर मन्दिर के द्वार पर खड़ी हो गई। वह कॉङ्ग्रेस की स्वयं-सेविका न थी, न उसके अञ्चल में सत्याग्रह का बिल्ला ही था। वह मन्दिर के द्वार के समीप खड़ी तमाशा देख रही थी। स्वयंसेविकाएँ विदेशी वस्त्रधारियों से अनुनय-विनय करती थीं, सत्याग्रह करती थीं; पर वह स्त्री सब से अलग चुपचाप खड़ी थी। उसे आए कोई घण्टा भर हुआ होगा कि सड़क पर एक फ़िटिन आकर खड़ी हुई और उसमें से एक महाशय सुन्दर महीन रेशमी पाढ़ की धोती पहने निकले। यह थे रायबहादुर हीरामल, शहर के सब से बड़े रईस, ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट, सरकार के परम राजभक्त और शहर की अमन-सभा के प्रधान। नगर में उनसे बढ़ कर कॉङ्ग्रेस का विरोधी न था। पुजारी ने लपक कर उनका स्वागत किया और उन्हें गाड़ी से उतारा। स्वयंसेविकाओं की हिम्मत न पड़ी कि उन्हें रोक



श्रीमती शान्तिदास, एम० ए० (कलकत्ता)

आप श्रीमती अशोकलता दास की पुत्री हैं। आपको भी चार मास का दण्ड मिला है।

लें। वह उनके बीच से होते हुए द्वार पर आए और अन्दर जाना ही चाहते थे कि वही खद्दरधारी रमणी आकर उनके सामने खड़ी हो गई और गम्भीर स्वर में बोली—"आप यह कपड़े पहन कर अन्दर नहीं जा सकते।"

हीरामल जी ने देखा, तो सामने उनकी पत्नी खड़ी

हैं। कलेजे में बरछी सी चुभ गई। बोले—"तुम यहाँ क्यों आई ?"



श्रीमती लावण्यप्रभा मित्र (कलकत्ता)

सत्याग्रह-आन्दोलन में आपको चार मास का दण्ड हुआ है।

रमणी ने दृढ़ता से उत्तर दिया—"इसका जवाब फिर दूँगी। आप यह कपड़े पहने हुए मन्दिर में नहीं जा सकते।"

"तुम मुझे नहीं रोक सकतीं।"

"तो मेरी छाती पर पाँव रख कर जाइएगा।" यह कहती हुई वह मन्दिर के द्वार पर बैठ गई।

"तुम मुझे बदनाम करना चाहती हो?"

"नहीं, मैं आपके मुँह का कलङ्क मिटाना चाहती हूँ।"

"मैं कहता हूँ, हट जाओ। पति का विरोध करना स्त्रियों का धर्म नहीं है। तुम क्या अनर्थ कर रही हो, यह तुम नहीं समझ सकतीं।"

"मैं यहाँ आपकी पत्नी नहीं हूँ, देश की सेविका हूँ। यहाँ मेरा कर्तव्य यही है, जो मैं कर रही हूँ। घर में मेरा धर्म आपकी आज्ञाओं को मानना था। यहाँ मेरा धर्म देश की आज्ञा को मानना है।"

हीरामल जी ने धमकी भी दी, मिन्नतें भी कीं, पर रमणी द्वार से न हटी। आख़िर पति को लज्जित होकर लौटना पड़ा। उसी दिन उनका स्वदेशी संस्कार हुआ।

पाँचवीं घटना उन गढ़वाली वीरों की है, जिन्होंने पेशावर के सत्याग्रहियों पर गोली चलाने से इनकार किया। शायद हमारी सरकार को पहली बार राष्ट्रीय आन्दोलन की महत्ता का बोध हुआ। वह गोरखे, जिन्हें हम लोग पशु समझते थे, जिनकी राज-भक्ति पर सरकार को अटल विश्वास था, जिनमें राष्ट्रीय भावों की जाग्रति की कोई कल्पना भी न कर सकता था, उन्हीं गोरखे योद्धाओं ने निःशस्त्र सत्याग्रहियों पर गोली चलाने से



प्रोफ़ेसर कृष्णनारायण

आप बाँसुरी बजाने में अद्वितीय हैं।

इनकार कर दिया। उन्हें ख़ूब मालूम था कि इसका नतीजा कोर्टमार्शल होगा, हमें कालेपानी भेजा जायगा, फाँसियाँ दी जायँगी, शायद गोली मार दी जाय, पर यह

जानते हुए भी उन्होंने गोली चलाने से इनकार किया! कितना आसान था गोली चला देना। राइफ़ल के घोड़े को दबाने की देर थी; पर धर्म ने उनकी उँगलियों को



श्री० सकलातवाला

आप इङ्गलैण्ड में रह कर सदैव भारत के हित की चेष्टा करते रहते हैं।

बाँध दिया था। धर्म की वेदी पर इतने बड़े बलिदान का उदाहरण संसार के इतिहास में बहुत कम मिलेगा।

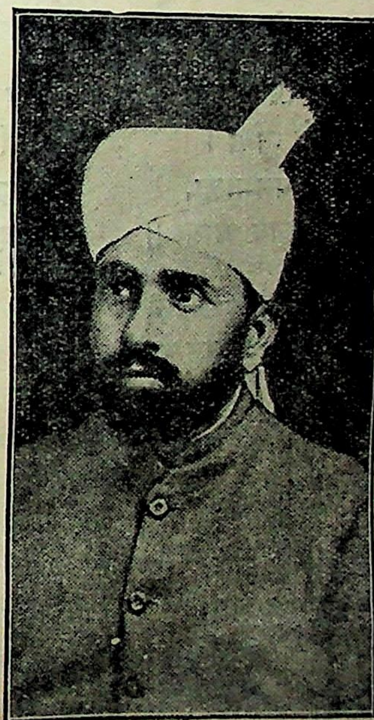
* * *

एक महिला का आदर्श स्वदेश-प्रेम

विगत श्रावण मास की "त्यागभूमि" में अहमदाबाद के मज़दूर-आन्दोलन की उत्पत्ति और उसके विकास का वर्णन करते हुए एक लेख प्रकाशित हुआ है, जिसका कुछ अंश इस प्रकार है :—

अहमदाबाद के मज़दूर-आन्दोलन की उत्पत्ति की कथा बड़ी विचित्र है। यह आन्दोलन मिल-मालिकों के अत्याचारों से सन्त्रस्त मज़दूरों ने अपने बल से या किसी साम्यवादी नेता की सहायता से आरम्भ नहीं किया। न कोई पुरुष इस कार्य को बढ़ाने के लिए आगे बढ़ा। इसकी प्रारम्भिक उन्नति का श्रेय है वहाँ के एक बड़े भारी पूँजीपति श्री० अम्बालाल साराभाई की, जो उस समय वहाँ के मिल-मालिकों के सङ्घ के अध्यक्ष थे, बहन श्रीमती अनसूया बहन को।

वर्तमान मज़दूर-सङ्घ बनने से बहुत समय पूर्व, सन् १९१४ में, श्रीमती अनसूया बहन ने ग़रीब लड़कों के लिए एक स्कूल खोला था। इस स्कूल के कारण उनका ग़रीबों और मज़दूरों के साथ अधिक सम्बन्ध होता गया। वह बड़े प्रेम और सहानुभूति से मज़दूरों की तकलीफ़ों को सुनतीं और यथासाध्य उन्हें दूर करने का प्रयत्न करतीं।



मलिक लाल ख़ाँ

पञ्जाब की प्रान्तीय 'वार-कौन्सिल' के डिक्टेटर, जो जेल में हैं।

मज़दूर अब तक निराश्रय थे, अब उन्हें एक आश्रय मिल गया। कुछ समय बाद अहमदाबाद के ताने के मज़दूरों ने अपना वेतन बढ़ाने की माँग पेश कर हड़ताल कर दी और श्रीमती अनसूया बहन से इस सम्बन्ध में

सहायता और नेतृत्व की याचना की। इस समय भी मिल-मालिक सङ्घ के अध्यक्ष उनके भाई ही थे। एक तरफ़ अपना सहोदर भाई था और दूसरी तरफ़ थे ग़रीब मज़दूर, जिनसे उनका कोई सम्बन्ध न था। परन्तु धन्य हैं अनसूया बहन! उन्होंने अपने भाई का कुछ भी ख़्याल न कर उनके विरुद्ध ग़रीब मज़दूरों को ही सहायता देना स्वीकार किया और वह उस हड़ताल का नेतृत्व करने लगीं। इधर श्री० अम्बालाल साराभाई ने बम्बई से मज़दूरों को बुलवा लिया, जिससे मिलें बन्द न हों। परन्तु उनकी चतुर बहन ने बम्बई के मज़दूरों को अपने पास बुला कर समझाया और अपने पास से ख़र्च देकर उनको वापस बम्बई भेज दिया! इस तरह इस हड़ताल में मज़दूरों की विजय हुई और मिल-मालिकों को लाचार होकर उनका वेतन बढ़ाना पड़ा।

नरता एवं नारिता

चौपदे

[पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध']

देख चञ्चलता चपला की,
गरजते मेघों को पाया।
बिखर जाती है घनमाला,
वायु का झोंका जब आया॥

देख करके रवि को तपता,
द्रुमों में छिपती है छाया।
चन्द्रमा के पीछे-पीछे
चाँदनी को चलती पाया॥

गोद में गिरिगण के बैठी
घाटियाँ शोभा पाती हैं।
दौड़ती जा करके नदियाँ
समुद्रों में मिल जाती हैं॥

अङ्क में उपवन के बिरची,
क्यारियाँ कान्त दिखाती हैं।
पादपों के सुन्दर तन में,
बेलियाँ लिपटी जाती हैं॥

साथ जलते दीपक का कर,
बत्तियाँ जलती रहती हैं।
सितम मतवाले भौरों का,
तितलियाँ सहती रहती हैं॥

मोतियों की माला अपनी
भोर को रजनी देती है।
अरुण का मुख देखे ऊषा
रङ्ग अपना रख लेती है॥

देख कुसुमाकर को कोयल
गीत है बड़े मधुर गाती।
मञ्जु मलयानिल से मिल कर,
महँक है मोहकता पाती॥

सामना उँजियाले का कर,
भाग जाती है अँधियाली।
गगनतल के नीलापन में
विलसती रहती है लाली॥

फूल को हँसता अवलोके
कब नहीं कलियाँ खिल जातीं।
कलेजा उनका तर करने
ओस की बूँदें हैं आतीं॥

रङ्गतों से तारकचय के
ज्योति रञ्जित बन जाती है।
देख राकापति को निकला,
बिहँसती राका आती है॥

व्यभिचार छुड़ाने का नुस्ख़ा

[श्री० यमुनाप्रसाद श्रीवास्तव]

है गदा वह शाह जिसके पाकेट में ज़र नहीं।
व्यभिचारियों की आबरू सारे ज़माने में नहीं॥

इङ्गलिस्तान के अधीश्वर सम्राट चार्ल्स (द्वितीय) बड़े व्यभिचारी थे। वे सन्ध्या होते ही भेष बदल कर मटरग़श्त को निकलते, और वेश्याओं के अड्डों पर जाकर सौन्दर्यपूर्ण नवयौवना सुन्दरियों की खोज करते तथा जिसे सुन्दर और प्रौढ़ा देखते उसीको विलास-भवन में ले जाकर क्रीड़ा करते। जब कुछ रात्रि रहती, तब भेंट चढ़ा कर उससे विदा होते और प्रभात की सफ़ेदी छिटकने के पूर्व ही राज-भवन में आ विराजते थे।

लॉर्ड रोचेस्टर उनके लङ्गोटिए यार थे। वे भी भेष बदल कर उनके साथ रहते थे और नवयौवना सुन्दरियों की खोज करने में उनकी सहायता करते थे। जब सम्राट अपनी प्रियतमा को लेकर विलास-भवन में चले जाते, तब वे बाहर बैठ कर चुरुट पिया करते थे।

एक रूपवती मेम से भी सम्राट ने आशनाई कर ली थी। उन्होंने उसे राज-महल में भी बैठा लिया था। तो भी उनकी काम-पिपासा शान्त नहीं हुई। बेचारी मेम अत्यन्त दुखी रहती थी। उसने सम्राट को बहुतेरा समझाया और कहा :—

बासी फूलों बास नहीं।
प्रियतम! तेरी मुझको आस नहीं॥
खिलौना समझ के बिगाड़ो न मुझको।
कि मैं भी उसी की बनाई हुई हूँ॥

परन्तु उनके मन में कुछ भी न भाया। उनकी तो यह दशा थी :—

मरज़ बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की।

अन्त में लाचार होकर मेम साहिबा ने लॉर्ड रोचेस्टर से विनती की कि किसी प्रकार सम्राट की इस कुटेव को छुड़ाइए। लॉर्ड रोचेस्टर भी प्रतिदिन की दौड़-धूप के मारे तङ्ग थे। उन्होंने मेम साहिबा की बात स्वीकार कर, प्रतिज्ञा की कि शीघ्र ही इस कुटेव को छुड़ाने का प्रयत्न करूँगा।

एक दिन मेम साहिबा ने लॉर्ड रोचेस्टर को एकान्त में पाकर उनके कान में कुछ कहा। वे उसे सुन कर अत्यन्त प्रसन्न हुए और बोले—"युक्ति तो बहुत अच्छी है।"

"आप इसे कार्य-रूप में कब परिणत करेंगे?"

"आज ही रात्रि को।"

सन्ध्या होते ही सम्राट और लॉर्ड रोचेस्टर दोनों भेष बदल कर शाही महल से निकले और मटरग़श्त करते हुए एक कोठीख़ाने पर पहुँचे। द्वार पर नायिका से भेंट हुई, वह बड़ी ख़ुर्राट और तजरबेकार बुढ़िया थी। दोनों के फटे-पुराने वस्त्र देख कर, उसने इन्हें साधारण मनुष्य समझा और लॉर्ड रोचेस्टर की ओर अग्रसर होकर लापरवाही से पूछा—"कहो! क्या चाहते हो?"

"सौन्दर्यपूर्ण नवयौवना सुन्दरी की तलाश है। यदि हो तो ले आओ।"

"सुन्दरियाँ तो एक से एक बढ़ कर हैं, परन्तु पाकेट में रुपए भी चाहिए। तुम अपनी हैसियत की क्यों नहीं मँगवा लेते?"

"तुमको हमारी हैसियत से क्या पड़ी है? जो कहते हैं तामील करो। भागे तो जाते ही नहीं। कौड़ी-कौड़ी धरवा लेना तब जाने देना।"

इससे नायिका को कुछ तसल्ली हुई। वह दूसरे कमरे से एक सुन्दरी को ले आई और सामने खड़ी करके कहा—"यह हाज़िर है।"

बरस चौदह या कि पन्द्रह का सिन।
जवानी की रातें मुरादों के दिन॥

सम्राट उसके रूप-लावण्य को देखते ही मोहित हो गए। उन्होंने चलते समय रुपए देने का वादा करके नायिका को रुख़सत किया तथा कोट उतार कर लॉर्ड रोचेस्टर के हवाले किया और आप सुन्दरी सहित विलास-भवन में चले गए। लॉर्ड रोचेस्टर चुरुट सुलगा कर धुँआ उगलने लगे।

चुरुट से निपट कर उन्होंने सम्राट के कोट की जेबें टटोलना आरम्भ किया। एक जेब में नक़दी की अच्छी

रक़म थी, वह सब निकाल कर अपने पाकेट में भरी, दूसरी जेब में घड़ी थी, उसे भी निकाल कर अपने कोट में लगा ली। इस प्रकार कोट ख़ाली करके वहीं रख दिया और अपने घर की राह ली।

सम्राट प्रियतमा के हाथ में हाथ दिए हुए प्रायः एक बजे रात्रि को बाहिर आए। लॉर्ड रोचेस्टर को वहाँ न देख कर उन्होंने नायिका से पूछा—

"हमारा साथी कहाँ गया?"

"मुझे मालूम नहीं। मैं दूसरे कमरे में थी।"

कुछ समय प्रतीक्षा करने के बाद सम्राट ने कोट पहन कर चलने का इरादा किया और रुपए निकालने के लिए जेब में हाथ डाला। जेब को ख़ाली पाकर उन्होंने नायिका से कहा—"मेरा साथी आपको काफ़ी रुपए दे गया होगा।"

"मुए! होश की दवा कर। अधिक तो नहीं पी गया है, जो ऐसी बहकी-बहकी बातें करता है? ज़िम्मेदार तो तू है, न कि वह।"

नायिका की यह धृष्टता देख सम्राट का समस्त शरीर काँप उठा, नेत्र लाल हो गए। परन्तु वे कुछ कह नहीं सके। क्योंकि नायिका ने भी ठीक कहा था। वह क्या जाने कि उससे बातचीत करने वाला कौन है?

"अबे नालायक़! चुप क्यों है? बोलता क्यों नहीं? तेरी जीभ क्या कुत्ता ले गया है?"

सम्राट दीर्घ निश्वास ले रहे थे। उनके नेत्रों में रक्त उतर आया था। परन्तु फिर भी वे चुप थे।

"भला चाहते हो तो हमारी फ़ीस फ़ौरन अदा कर दो।"

सम्राट ने क्रोध थाम कर नम्र और मधुर स्वर में कहा—"बड़ी बी साहिबा! ख़फ़ा न हूजिए। कल तक की मुहलत दीजिए। सन्ध्या होते ही मैं फ़ीस के दूने रुपए दाख़िल कर दूँगा।"

"झूठा कहीं का! तेरा क्या एतबार? तुम दोनों ही ने पहिले कहा था कि कौड़ी-कौड़ी धरवा लेना तब जाने देना। अब तू किस मुँह से मुहलत माँगता है? मैंने तेरे ऐसे सैकड़ों को रास्ता बतलाया है। मालूम नहीं तेरा बेईमान साथी कहाँ चला गया। वह मेरा कुछ सामान तो नहीं चुरा ले गया?"

"बड़ी बी साहिबा!................."

"बड़ी बी साहिबा गईं जहन्नुम में। तू हमारी फ़ीस देता है कि नहीं?"

"रुपए तो इस वक़्त मौजूद नहीं हैं। प्रभु ईसा मसीह के सच्चे सेवक के समान मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि ...."

"प्रभु का बड़ा भक्त बना है! यदि ऐसा ही भक्त था तो यहाँ झख मारने क्यों आया? ख़ैरियत इसी में है कि हमारी फ़ीस दे डाल, वरना ऐसी गतें करवाऊँगी कि जन्म भर याद करेगा कि किसी बुढ़िया से पाला पड़ा था।"

"मेरी बातों पर आपको विश्वास नहीं है तो मेरी सोने की घड़ी रख लीजिए। कल सन्ध्या को रुपए देकर ले जाऊँगा।"

"बशर्ते कि वह पीतल की न हो।"

यह सुनते ही सम्राट को जान में जान आई। उन्होंने आनन्द-सागर में ग़ोता लगा कर कहा—"मुलाहज़ा कर लीजिए, सोने की है या पीतल की।" और घड़ी निकालने के लिए जेब में हाथ डाला। परन्तु घड़ी थी ही नहीं। उनका चेहरा सूख गया और जेब का हाथ जेब ही में रह गया।

"अबे! ला घड़ी। देता क्यों नहीं? क्या तेरे हाथ को लकवा मार गया है, जो जेब का जेब ही में रह गया है?"

"अफ़सोस! इस वक़्त घड़ी भी नहीं है। मेहरबानी करके कल तक की मुहलत दीजिए।"

"तेरे शरीर पर एक लत्ता तक तो साबित नहीं है। फिर भी अमीरज़ादा बन कर घड़ी रखने का दावा करता है! मैं तेरी चालें ख़ूब समझती हूँ।"

सम्राट चुप थे। उनकी ज़बान पर यह शेर था:—

ज़रदार का सौदा है,
बेज़र का ख़ुदा हाफ़िज़!

सुन्दरी भी पास ही खड़ी थी। उसने तमक कर कहा:—

कौन धों पाटी पढ़े हो लला!
मन लेत पै देत छटाँक नहीं॥

"मैंने यदि तुम्हें कोल्हू में न पिरवाया तो कुछ भी न किया।"

सम्राट की बेचैनी और व्याकुलता बहुत बढ़ गई थी। उनके मुँह से बरबस यह निकल गया:—

तुम्हारा जितना जी चाहे, सितम मज़लूम पर ढा लो।
कलेजा चीर डालो, मेरी आँखों को निकलवा लो ॥
मेरी नस-नस को छेदो, और रग-रग मेरी कटवा लो।
यह हाज़िर है बदन मेरा, इसे कोल्हू में पिरवा लो ॥

यह सुन नायिका ने उत्तेजित होकर कहा—"नराधम! तेरे वस्त्र ही देख कर मैं जान गई थी कि तेरे पास कानी कौड़ी नहीं है। परन्तु स्त्री ही ठहरी, तेरे साथी की चिकनी-चुपड़ी बातों में आ गई।"

उस समय की सम्राट की दशा का वर्णन महात्मा तुलसीदास जी के शब्दों में इस प्रकार है :—

आशुहि द्रवत श्रवत पुनि थोरे।
सहि न सकत दीनन कर जोरे ॥

"अबे! तेरा सिर तो नहीं फिर गया? तू उत्तर क्यों नहीं देता? क्या तेरे मुँह में दाँत नहीं है? कुशल इसी में है कि हमारा हिसाब चुका दे, वरना ऐसी गत करवाऊँगी कि छठी का दूध याद आ जायगा।"

सम्राट पर सन्नाटे की अवस्था तारी थी। उनके प्राणों में प्राण नहीं थे। उत्तर देवे तो कौन देवे?

नायिका ने डपट कर कहा :—

अब तू अनजान होता जाता है!
नन्हा नादान होता जाता है !!

"ओ मक्खीचूस! नख़रेबाज़ी मत कर। मैं तेरे सम्पूर्ण कपड़े उतरवा लेती, परन्तु वे तो दो-चार आने के भी नहीं हैं। ख़ैर! यदि कुछ वसूल न होगा तो जो मज़ा उड़ाया है वह सब उलटे रास्ते से निकलवा लूँगी। तूने अभी मेरे मुसण्डों को नहीं देखा है?

फ़रिश्ते को पकड़ बैठें, मेरे दरबान ऐसे हैं।
ख़ुदा से भी नहीं डरते, ये बाईमान ऐसे हैं।

देख अब तेरी कैसी गत करवाती हूँ। है कोई?"

"हुज़ूर! क्या हुक्म है?"—दो मुसण्डों ने आकर कहा।

"इस बेईमान को ले जाओ और मुश्कें कस कर कोठरी में बन्द कर दो।"

"हुज़ूर! बहुत अच्छा।"

दोनों मुसण्डों ने सम्राट की मुश्कें कसीं और उन्हें घसीटते हुए कोठरी में ले गए।

सम्राट, जिनके अधिकार में लाखों-करोड़ों मनुष्यों की ज़िन्दगी, मौत, और स्वतन्त्रता थी, उनकी यह दुर्गति कि मुश्कें बाँध कर घसीटे जायँ! वह भी किसके द्वारा? अपनी प्रजा के! प्रजा भी कौन? एक बूढ़ी नायिका, जिसकी हैसियत दो कौड़ी की भी नहीं! परमेश्वर की लीला अपरम्पार है!

चाहे तो रङ्क को राव करे,
चाहे राव को द्वारहि द्वार फिरावे।

परन्तु उन्हें इसकी चिन्ता न थी। चिन्ता थी तो इस बात की कि थोड़ी सी रात्रि रह गई है। यदि शीघ्र छुटकारा न मिला तो भोर होते ही बात फैल जायगी और बड़ी बदनामी होगी। उन्होंने कातर स्वर में रक्षकों से कहा—"भाई साहब! ईश्वर के लिए एक बार बड़ी बी साहिबा से भेंट करा दो।"

"असम्भव है।

जब चाह थी, तब चाह थी, अब चाह नहीं है।
तुम क़ैद में मर जाओ, उन्हें परवाह नहीं है॥"

"नहीं, भाई साहब! नहीं, कुछ ज़रूरी अर्ज़ करना है।"

रक्षकों को दया आई। उन्होंने सम्राट को ले जाकर नायिका के सामने खड़ा कर दिया।

"अरे! इस मुरदार को अब मेरे पास क्यों लाए?"

"हुज़ूर! यह कुछ अर्ज़ करना चाहता है।"

"कह बे! क्या कहता है?"

"बड़ी बी साहिबा! कोठरी में पहुँचते ही मेरी नज़र इस अँगूठी पर पड़ी। यह सोने की है। इसका हीरा भी क़ीमती है। इसे रख लीजिए और मुझे जाने की इजाज़त दीजिए। कल सन्ध्या को रुपए देकर ले जाऊँगा।"

"अब मैं तेरी बातों में नहीं आने की। तू बड़ा ठग मालूम होता है। ठग लोग बहुधा स्त्रियों को फुसलाने के लिए झूठी अँगूठियाँ रक्खा करते हैं। ख़ैर! ला, अगर पीतल की न होगी तो रख लूँगी।"

"यह लीजिए, जी चाहे जहाँ परखवा लीजिए।"

नायिका ने एक ख़िदमतगार को अँगूठी देकर कहा कि जाकर फ़लाने जौहरी के यहाँ से इसे परखवा ला।

ख़िदमतगार अँगूठी लेकर गया और जौहरी को सोते से जगा कर अँगूठी दी और कहा कि बड़ी बी साहिबा ने भेजी है, इसे परख दीजिए, सोने की है या पीतल की और इसका हीरा सच्चा है या झूठा।

जौहरी ने लैम्प के प्रकाश में अँगूठी देखी। उसको बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने ख़िदमतगार से कहा—"यह शाहाना अँगूठी है। राजा महाराजाओं के सिवाय किसको मक़्दूर है जो ऐसी अँगूठी पहने। बड़ी बी साहिबा की सम्पूर्ण सम्पत्ति भी इसके दसवें हिस्से के मूल्य के बराबर न होगी। बड़ी बी को यह कहाँ मिली?"

"आज शाम को एक मुफ़लिस हमारे यहाँ आया और रात्रि भर मज़े उड़ाता रहा। चलते समय उसके पास टका तक न निकला। बड़ी मुशकिलों में यह अँगूठी दी है।"

मुफ़लिस और इस अँगूठी का मालिक! जौहरी भी अय्याश था। बड़ी बी के यहाँ आता-जाता था। कुतूहलवश अँगूठी लेकर ख़िदमतगार के साथ चल खड़ा हुआ।

सम्राट अधमरे हो रहे थे। उनकी ज़बान पर यह शेर थे :—

मज़ा भी मिलता है इन बुतों से दिल लगाने में।
सज़ा भी मिलती है इन बुतों से दिल लगाने की॥

वे ख़िदमतगार के लौट आने की प्रतीक्षा में घड़ियाँ गिन रहे थे कि कब वह आवे और इस पाप-पुञ्ज से छुटकारा मिले, वरना सवेरा होते ही भण्डा फूट जायगा और बड़ी बदनामी होगी।

इसी बीच में जौहरी भी आ पहुँचा। वह कई बार शाही दरबार में हाज़िर हुआ था। सम्राट तक उसकी रसाई थी। सम्राट उस समय भेष बदले थे। परन्तु जौहरी ने देखते ही उन्हें पहचान लिया और शाहाना आदाब बजा लाकर उनके क़दमों पर गिर पड़ा और हाथ जोड़ कर अर्ज़ की—"पृथ्वीनाथ! यहाँ कहाँ?"

यह दृश्य देखते ही सबके होश उड़ गए और कलेजा काँप उठा। बड़ी बी मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ीं। सुन्दरी केले के पत्ते सी काँपती हुई अश्रुपूर्ण नेत्रों से सम्राट के पाँव से लिपट गई। रक्षकों की कुछ न पूछिए, वे सिजदे में ऐसे गिरे कि सिर तक उठाना हराम हो गया।

जौहरी ने सबकी ओर से हाथ जोड़ कर माफ़ी माँगी और अर्ज़ की कि फिर कभी ऐसी भूल न होगी।

सम्राट ने इस घटना की चर्चा न करने का वचन लेकर सबको जीवदान दे अभय किया। और इस मौक़े को ग़नीमत समझ, अकेले ही चल पड़े। मार्ग में तोबा करते और कानों को हाथ लगा कर शपथपूर्वक सौन्दर्य की हरजाई ललनाओं को कभी छाती से न लगाने की प्रतिज्ञा करते हुए, प्रभात की सफ़ेदी छिटकने के पूर्व ही राजमहल में जा विराजे।

प्रातःकाल होते ही लॉर्ड रोचेस्टर हाज़िर हुए। उन्हें देखते ही सम्राट ने गर्ज कर कहा—"तुम बड़े नमकहराम और विश्वासघाती हो!"

"पृथ्वीनाथ! सुन लीजिए, फिर जी में जो आवे सो कहिए।"

"क्या तुम्हें कुत्ता उठा ले गया था?"

"पृथ्वीनाथ! कुत्ता नहीं। मुझे आबदस्त लेने की ज़रूरत मालूम हुई थी।"

"तो क्या रात्रि भर आबदस्त ही लेते रहे? और लौट कर न जा सके?"

"घर पहुँचते ही दस्त शुरू होगए। बड़ी मुशकिलों से अभी-अभी बन्द हुए हैं, सो मैं दौड़ा चला आ रहा हूँ।"

"भला नक़दी और घड़ी क्यों ले आए थे?"

"तो मैं इनको वहाँ किसके भरोसे छोड़ आता?"

"तुम्हारे चले आने के कारण रात्रि को मेरी बड़ी दुर्दशा हुई थी। मैंने भी तङ्ग आकर तोबा की और यह प्रतिज्ञा की है कि अब कभी सौन्दर्य की हरजाई ललनाओं को छाती से न लगाऊँगा।"

"यदि मेरी कल की ग़ैरहाज़िरी का यह फल हुआ है तो मैं पृथ्वीनाथ का बड़ा ही उपकारी नमकहलाल और शुभचिन्तक ठहरता हूँ।"

"बेशक!"

यह कह सम्राट खिलखिला कर हँसे और कहा :—

बूए वफ़ा नहीं है मिसों के उसूल में।
बस, रङ्ग देख लीजिए, गमलों के फूल में॥

ख़ैर! अच्छा ही हुआ जो :—

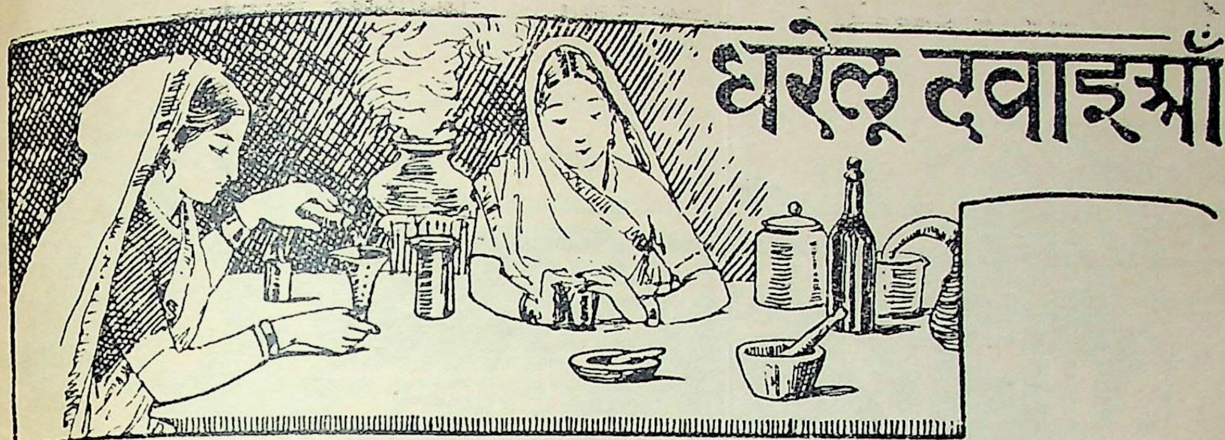
रोने से इस इश्क़ में बेबाक हो गए।
धोए गए हम इतने कि बस पाक हो गए॥

और सच है :—

रङ्ग लाती है हिना पत्थर से पिस जाने के बाद।
अक़्ल आती है बशर को ठोकरें खाने के बाद॥*

* एक प्राचीन उर्दू पत्रिका में प्रकाशित लेख के आधार पर।

—लेखक



शिर-पीड़ा नाशक लेप

कुचला एक माशा, केशर तीन माशे, मैनफल चार माशे और चन्दन का बूरा तीन माशे लेकर अर्क़-सौंफ़ में खरल कर लेप करे ।

* * *

केश का गिरना

सिकाकाही आध पाव, आँवला सूखा पाव भर, बालछड़ एक छटाँक, सफ़ेद चन्दन एक छटाँक, पाडुरी एक छटाँक, ख़स एक छटाँक, सुगन्धबाला एक छटाँक, इन सब औषधियों को कूट कर चलनी से छान कर रख छोड़े। इनमें से आवश्यकतानुसार रात्रि भर भिगो रक्खे और इसी से शिर को मले ।

* * *

मूत्रावरोध

अपामार्ग की जड़ एक तोला, तीन दाने काली मिर्च के साथ आध पाव जल में पीस कर पिलाने से मूत्रावरोध तथा विसूचिका रोग आराम होता है ।

* * *

खुजली

ज़हर कनैली के पत्ते, धमोए के बीज, और थोड़ा सा गन्धक—तीनों को पीस कर लगावे ।

—कुमारी लक्ष्मी देवी

* * *

तापतिल्ली तथा ज्वर

गन्धक का तेज़ाब २० बूँद, मिश्री २ तोला, जल १ पाव ।

विधि—८ औन्स की १ शीशी में २ तोला पिसी हुई मिश्री तथा २० बूँद गन्धक का तेज़ाब डाल कर एक पाव पानी भर देना चाहिए । तीनों चीज़ें मिल कर एक-रस हो जाने पर काम में लाना चाहिए ।

मात्रा—अवस्था के अनुसार १ तोला से २ तक ।

समय—प्रातः-सायम् तथा आवश्यकता के अनुसार अधिक बार भी औषध का प्रयोग किया जा सकता है ।

रोग—पित्त का प्रकोप, पित्ती का उछलना, ज्वर का तीव्र वेग, उदरविकार, प्लीहा एवं अरुचि ।

* * *

ज्वर-नाशक पेय (मीठा शर्बत)

गुल बनफ़्शा ४ तोला, लौंग १ तोला, लाल चन्दन १ तोला, गुल गावज़बाँ १ तोला, उन्नाब २ तोला, मुनक्का २ तोला, ख़ूबकला १ तोला, ख़स २ तोला, मिश्री १ सेर ।

विधि—सब चीज़ों को साफ़ करके रात में किसी मिट्टी की हाँडी या अन्य पात्र में १॥ सेर जल डाल कर उक्त औषधों को भिगो देना चाहिए। प्रातःकाल चूल्हे पर चढ़ा कर मीठी आँच से सब चीज़ों को पका लें। आधा जल शेष रहने पर उतार कर छान लीजिए । शीतल होने पर थिराए हुए क्वाथ में १ सेर मिश्री डाल कर किसी क़लईदार साफ़ बटलोई में पुनः आग पर चढ़ा देना चाहिए। दो तार की चाशनी आ जाने पर उतार और छान कर किसी साफ़ बोतल में भर कर रख लेना चाहिए ।

मात्रा—अवस्था के अनुसार ६ माशे से २ तोला तक।

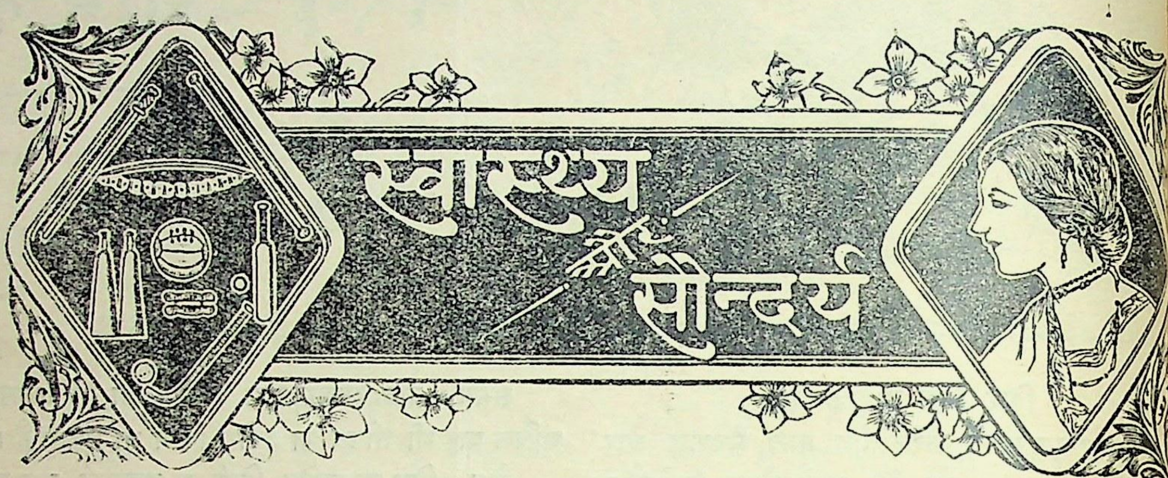
समय—प्रातःकाल तथा सायङ्काल, आवश्यकता होने पर अन्य समय में भी दिया जा सकता है ।

अनुपान—बच्चों के लिए माता का दूध या साधारण गो-दुग्ध आदि। बड़ों के लिए १ छटाँक जल ।

रोग—चित्त की व्याकुलता, पित्तज्वर, प्यास, मस्तक पीड़ा, पेशाब का पीलापन या जलन, गले का सूखना एवं हृदयदाह ।

* * *

(शेष मैटर १३५ वें पृष्ठ पर देखिए)



आँखों का सौन्दर्य

स्त्रियों के सौन्दर्य का आँखों से घनिष्ठ सम्बन्ध है। सारा शृङ्गार-शास्त्र आँखों की महिमा से भरा पड़ा है। कवियों ने आँखों की प्रशंसा में उपमाओं का दिवाला निकाल दिया है और अन्त में थक कर उन्हें अपनी क़लम थाम लेनी पड़ी है। केवल शिक्षित ही नहीं, बल्कि अशिक्षित स्त्रियाँ भी अपनी आँखों के सौन्दर्य की रक्षा के लिए तरह-तरह के मरहमों, लोशनों, और कज्जल, सुर्मा आदि का उपयोग किया करती हैं। परन्तु अधिकांश स्त्रियों को इन उपचारों से प्रायः हताश होना पड़ता है। इसके लिए उपचारों को दोष नहीं दिया जा सकता। वे अपना प्रभाव उस समय अवश्य दिखाते हैं, जब आँखें बाहरी कारणों से, जैसे ऋतु-परिवर्तन, अपूर्ण निद्रा, धूप लग जाने अथवा आँखों से अधिक परिश्रम लेने आदि से, मलिन और निर्बल हो जाती हैं। परन्तु जब शारीरिक निर्बलता, तेज प्रकाश में पढ़ने या बहुत छोटे टाइप की पुस्तकें पढ़ने और दाँतों की गन्दगी के कारण आँखें निर्बल हो जाती हैं, तब इन वाह्य उपचारों का अधिक लाभप्रद और स्थायी प्रभाव नहीं पड़ता।

चश्मे का उपयोग

आँखों के जितने रोगी आँख के विशेषज्ञों के पास जाते हैं, उनमें से अधिकांश वे ही लोग रहते हैं जिनकी आँखें अधिक परिश्रम द्वारा निर्बल हो गई हैं। इसका मुख्य कारण शरीर के स्नायुओं की निर्बलता है, और डॉक्टरों के हाथ में उसका उपचार केवल चश्मे का उपयोग है। उनका मत है कि चश्मा आँखों को आराम पहुँचाता है, जिससे आँखों की साधारण शक्ति वापिस आ जाती है। यह सच है कि चश्मे के उपयोग से आँखों का परिश्रम कम हो जाता है, इससे आँखों को आराम मिल जाता है और वे साधारण काम के योग्य बनी रहती हैं। परन्तु चश्मे का आँख के आभ्यन्तर रोगों से विशेष सम्बन्ध नहीं रहता और न वे आँखों को उनसे मुक्त ही कर सकते हैं। उन रोगों का वास्तविक सम्बन्ध आँखों के स्नायुओं से है और उनसे छुटकारा पाने के लिए स्नायुओं को स्वस्थ रखना आवश्यक है। बहुत से लोग सिर की असह्य पीड़ा से कराहते रहते हैं, परन्तु उन्हें उसके कारण का पता नहीं लगता। इस पीड़ा का प्रधान कारण आँखों के स्नायुओं से सम्बन्ध रखता है। यों तो सिर में अनेक कारणों से पीड़ा उत्पन्न होती है, परन्तु उसका प्रधान कारण प्रायः आँखों से अधिक परिश्रम लेना ही है। ऐसे रोगों का सब से अच्छा उपाय है आँखों के स्नायुओं को स्वस्थ और शक्तिपूर्ण रखना।

पहले जब कोई पुरुष या स्त्री चश्मे का उपयोग करती है तो आँख धीरे-धीरे स्वयं चश्मे के उपयुक्त बन जाती है और फिर वह चश्मे के बिना कोई कार्य नहीं कर सकती। चश्मे के इस प्रकार निरन्तर उपयोग से अधिकांश लोगों की आँखें और भी अधिक निर्बल हो जाती हैं, क्योंकि चश्मे से आँखों के वास्तविक रोग या निर्बलता का निवारण नहीं हो पाता। इसका परिणाम यह होता है कि वे अधिक शक्ति वाले चश्मे का उपयोग करने के लिए विवश हो जाते हैं। आँखों के इस प्रकार चश्मे पर निर्भर हो जाने से आँखें अधिका-

धिक निर्बल होती जाती हैं। इस निर्बलता को रोकने के लिए अधिक शक्ति वाले चश्मों का बहिष्कार करना ही सब से अच्छा उपाय है। परन्तु केवल चश्मे के बहिष्कार से आँखों के दोष दूर न होंगे। उसके साथ ही कुछ प्राकृतिक नियमों के अवलम्बन की और व्यायाम की भी आवश्यकता पड़ेगी।

आँखों का व्यायाम

आँखों में भी स्नायुएँ और मांसपेशियाँ उसी प्रकार होती हैं, जिस प्रकार शरीर के अन्य अङ्गों में। अतः



एक पेन्सिल या कोई अन्य नुकीली वस्तु लेकर उसे आँखों से थोड़ी दूरी पर पकड़िए। फिर उस पर दृष्टि जमाइए और इसी अवस्था में १५ तक गिनिए।

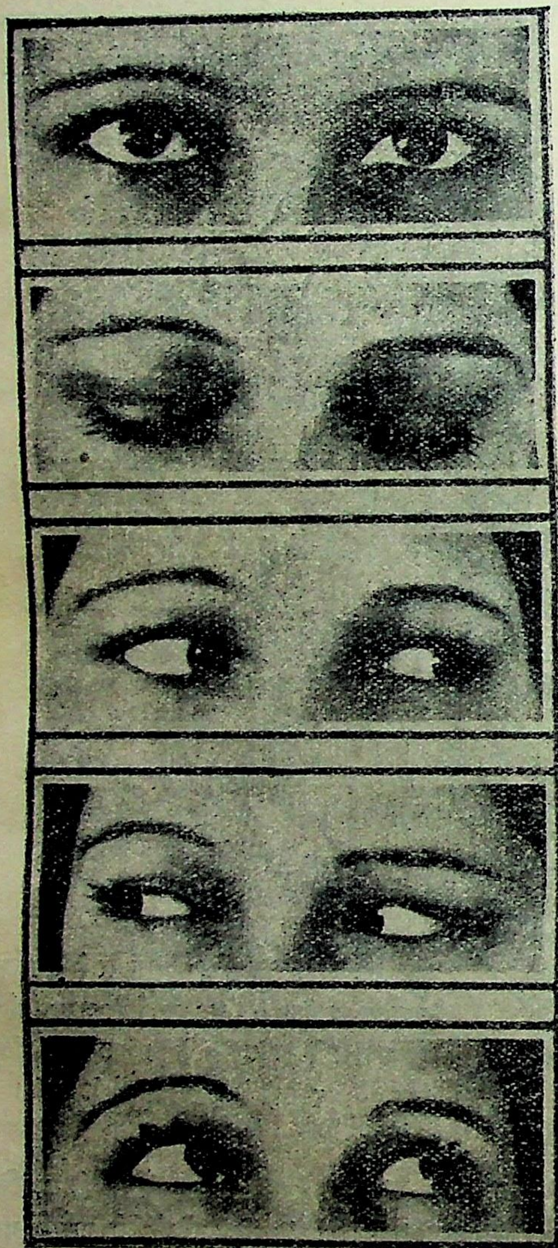
आँखों को स्वस्थ और बलिष्ठ रखने के लिए व्यायाम की उसी प्रकार आवश्यकता है, जिस प्रकार अन्य अङ्गों को स्वस्थ और बलिष्ठ रखने के लिए। आँखों को चश्मे के उपयोग की अपेक्षा समुचित व्यायाम, उचित उपयोग और आराम के द्वारा अधिक नीरोग और स्वस्थ रक्खा जा सकता है। परन्तु केवल व्यायाम से भी आँखें पूर्ण रूप से स्वस्थ और नीरोग नहीं होने पातीं। इसका प्रधान कारण शारीरिक अस्वस्थता और स्नायुओं की निर्बलता है। जितने आदमी नेत्र-रोगों से पीड़ित रहते हैं, उनमें



फिर दृष्टि को शीघ्रतापूर्वक पेन्सिल पर से हटा कर बहुत दूर के किसी चिन्हित पदार्थ पर जमाइए और इस अवस्था में १५ तक गिनिए। इस प्रकार प्रतिदिन १० बार करने से आँखों की ज्योति बढ़ेगी।

से नब्बे प्रतिशत ऐसे हैं जिनके शरीर, गैसों की उत्पत्ति के कारण, विषैले हो गए हैं। ऐसे लोगों की आँखों पर उपचार का बहुत कम प्रभाव पड़ता है। चश्मे का उपयोग करके वे आँखों से अपना काम भले ही निकालते रहें, परन्तु उन्हें स्वस्थ नहीं कहा जा सकता। नीरोग और जोतिपूर्ण आँखें तो उन्हें उस समय प्राप्त होंगी जब वे उपयुक्त व्यायाम और अन्य प्राकृतिक उपायों द्वारा अपने शरीर को विषैले द्रव्यों से मुक्त कर लेंगे। किसी विद्वान ने कहा है कि आँखें 'आत्मा की खिड़कियाँ' हैं।

परन्तु वे केवल 'आत्मा की खिड़कियाँ' ही नहीं हैं, मनुष्य



सिर को सीधा रखिए। फिर आँखों को बलपूर्वक ऊपर उठाइए। थोड़ी देर इसी अवस्था में ठहरिए। फिर दृष्टि को जहाँ तक हो सके नीची कीजिए। थोड़ी देर ठहरिए। फिर बाईं ओर दूर तक देखिए। थोड़ी देर योंही ठहरिए। फिर दाईं ओर दूर तक देखिए। एक क्षण योंही ठहरने के बाद पुतलियों को चारों ओर घुमाइए।

के 'शारीरिक सङ्गठन का दर्पण" भी हैं। जब शरीर विषैले द्रव्यों से युक्त रहता है और उसकी जीवनी-शक्ति कम हो जाती है तब आँखें मलिन, आभा-रहित और निस्तेज हो जाती हैं। इसके विपरीत, सुन्दर स्वास्थ्य प्राप्त होने पर आँखें भी अपना रङ्ग-रूप बदल देती हैं। इसलिए जो स्त्री-पुरुष अपने नेत्रों को चमकीला, तेजपूर्ण और स्वस्थ रखने के इच्छुक हों, उन्हें अपने सारे शरीर को स्वस्थ रखने का सदैव प्रयत्न करना चाहिए।

एक अमेरिकन महिला के अनुभव

नीचे हम एक अमेरिकन महिला के नेत्र-सम्बन्धी अनुभव और उसके व्यायाम देते हैं, जिनके सहारे उसने चश्मे से अपना पिण्ड छुड़ा कर अपनी आँखों को चमकीली और तेजपूर्ण बनाया था।

"प्रत्येक स्त्री की हार्दिक आकांक्षा स्वस्थ और सुन्दर बनने की रहती है और इसी के लिए वह तरह-तरह के वस्त्राभूषणों, तैल, इत्र, क्रीम, पाउडर आदि का उपयोग करती है। यदि मेरे हृदय में भी यही उमङ्ग हिलोरें मारती थी तो यह कुछ अप्राकृतिक न था। परन्तु ईश्वर ने मुझे सुन्दर बनने के सब साधन न दिए थे। मैं युवती अवश्य थी, परन्तु छुटपन से ही अस्वस्थ रहा करती थी। अजीर्ण मेरा प्रधान रोग था, जिसके कारण मेरा समस्त शारीरिक सङ्गठन जर्जरित हो गया था। मेरी आँखें इसके प्रभाव से बच न सकीं। कई वर्षों तक लगातार चश्मे के उपयोग के अनन्तर भी मैं उनकी निर्बलता से अपना पिण्ड न छुड़ा सकी। आँख के बहुत से डॉक्टरों के पास मैं उपाय पूछने गई, परन्तु किसी ने अधिक शक्ति के चश्मे के सिवा अन्य कोई उपाय न बतलाया। सौभाग्य से एक दिन मेरी भेंट एक सुप्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक से हो गई और उसने मुझे आँखों के सम्बन्ध में बहुत से प्राकृतिक व्यायाम और अन्य उपाय बतलाए, जिनका मैं नित्यप्रति अभ्यास करने लगी।

सब से पहिला व्यायाम हथेलियों से आँखों को बन्द करना और खोलना था। इसकी पद्धति बिलकुल सरल है। अपनी अँगुलियाँ एक-दूसरे से चिपका कर मैं हथेली की एक कटोरी सी बना लेती थी और फिर दोनों हथेलियों को आँखों पर इस तरह रख लेती थी कि अन्दर प्रकाश न पहुँचने पावे। इसी अन्धकार में मैं अपने मन में ३० तक संख्या गिनती थी और फिर हथेलियाँ हटा

लेती थी। कुछ ही दिनों के बाद आँखों पर इस व्यायाम के आश्चर्य-जनक प्रभाव का आभास मिलने लगा। यह व्यायाम मैं दिन में तीन बार करती थी।

आँखों का एक दूसरा उत्तम व्यायाम, जो मैं प्रतिदिन किया करती थी, आँखों की दृष्टि को किसी नुकीली वस्तु पर जमाना था। इस व्यायाम के लिए मैं प्रायः सीस पेन्सिल का उपयोग करती थी। उसे हाथ की पूरी लम्बाई पर पकड़ कर उसकी नोक पर कुछ देर तक अपनी दृष्टि जमाए रहती थी; फिर उस पर से दृष्टि हटा कर जितनी दूर का पदार्थ दृष्टिगोचर होता था, उसे देखती थी। इसी प्रकार मैं कई बार दृष्टि-परिवर्तन किया करती थी।

इन दो व्यायामों के साथ ही मैं सिर को कड़ा कर आँखों के तारों को चित्र में बतलाई हुई रीति से ऊपर आकाश की ओर, नीचे पृथ्वी की ओर, दोनों कोणों पर और फिर चारों ओर फेरती थी। मैं इन व्यायामों की हर एक क्रिया थोड़े समय ठहर-ठहर कर करती थी। इस व्यायाम को करते समय सब से अधिक आवश्यकता उसकी प्रत्येक क्रिया में बल लगाने की पड़ती थी। मैं यह व्यायाम प्रतिदिन कई बार दुहराती थी। इसके लिए न तो किसी निश्चित समय की आवश्यकता पड़ती है और न स्थान की।

आँखों के इन विशेष व्यायामों के साथ मैं अजीर्ण दूर करने के लिए नियमित रूप से पेट का व्यायाम भी किया करती थी। मेरे प्राकृतिक चिकित्सक ने अजीर्ण के दूर करने के जो व्यायाम बतलाए थे, उनमें मुझे कभी लेटी हुई स्थिति से, एड़ियाँ ज़मीन से छुआए बिना तथा बिना किसी सहारे के, उठ कर पैर के अँगूठे छूने पड़ते थे, कभी शरीर को चारों ओर मोड़ना पड़ता था और कभी बछड़ों की नाईं पैर फटकारने पड़ते थे। ये सभी व्यायाम ऐसे थे जिनमें पेट के पट्ठों पर बहुत अधिक ज़ोर पड़ता था। आपको यह जान कर आश्चर्य होगा कि इस उपचार से, थोड़े ही दिनों में मेरी आँखें ज्योतिर्मय और चमकीली हो गईं। आँखों पर व्यायाम के इस आश्चर्यजनक प्रभाव में बहुत कम लोगों को विश्वास होगा।

नेत्रों की मालिश

एक बार मुझे मालूम हुआ कि न्यूयार्क में पेरिस से एक सौन्दर्य-विशारदा आई है। मुझे उसे देखने का बहुत कौतूहल हुआ। मैं आँखों के सौन्दर्य का उपचार जानने के लिए बहुत उत्सुक थी और इसलिए मैंने उससे आँखों का उपचार करवाया। उसने मेरी आँखों में कोई क्रीम लगा कर कहा—"अब मैं तुम्हें नेत्र-स्नान कराऊँगी।"

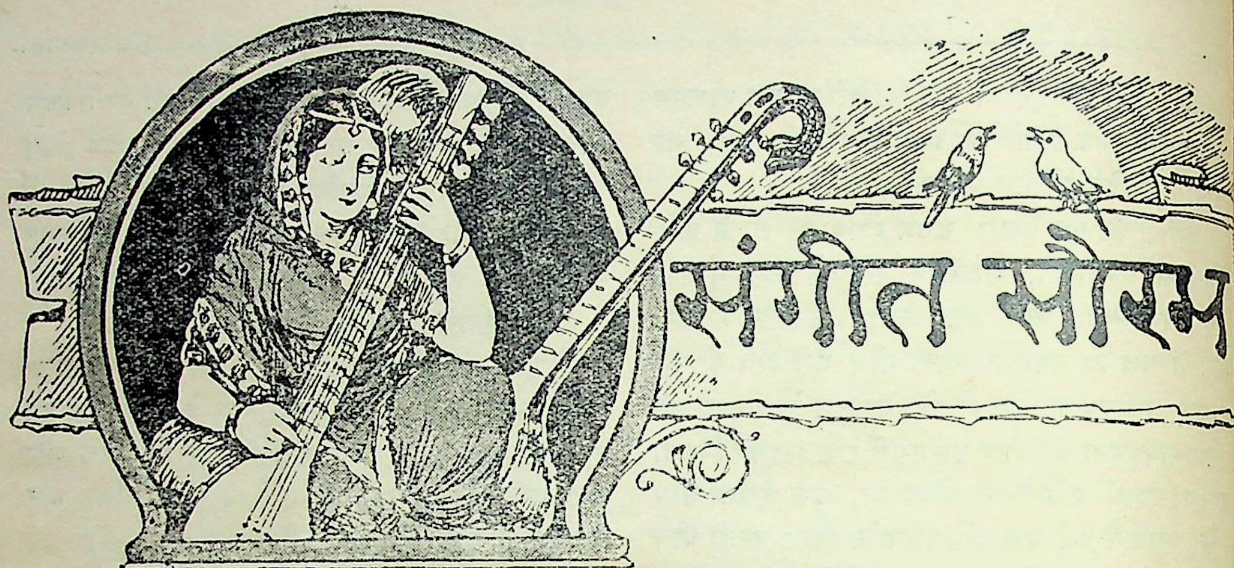
"नेत्र-स्नान!"—मैंने आश्चर्य से कहा।

"हाँ"—उसने कहा—"ज़रा सोचो, तुम्हारी आँखों में दिन भर मोटरों का धुँआ और वायु के वेग से उड़े हुए धूलि के कण प्रवेश करते रहते हैं; उन पर उष्ण और शीत का भी प्रभाव पड़ता रहता है, उससे वे मलिन और तेजहीन हो जाती हैं।"

इसके बाद उसने मेरी किसी अनुमति की प्रतीक्षा किए बिना ही मेरी आँखों की मालिश प्रारम्भ कर दी। वह उस क्रिया को जिस रीति से करती थी, मैं उसका पूर्ण ध्यान रखती थी। पहले उसने अँगुलियों से मेरी आँखों की दोनों पलकों को दबाया और उसके बाद बारी-बारी से थपकियाँ दे-देकर नाक से लेकर माथे में बालों की रेखा तक दबाया। फिर उसने अपने दोनों हाथों को ललाट के बीच में रक्खे और धीरे-धीरे अँगूठे और तर्जनी को मिला कर ललाट के बीच से दोनों कनपटियों तक मांसपेशियों को चुटकी से दाबना प्रारम्भ कर दिया। थोड़ी देर तक यह क्रिया करने के उपरान्त वह अपने अँगूठे को मेरे दोनों पलकों पर फिराती रही। अब उसने नाक के पास पलक के नीचे की स्नायु दबाना प्रारम्भ किया। और थोड़ी देर ठहर कर पलकों को ऊपर उठाया। इसके बाद मालिश समाप्त हो गई और मेरी आँखों पर किसी सुगन्धित बूटी की दो गर्म पोटलियाँ रख दी गईं।

ये पोटलियाँ थोड़ी देर आँखों पर रक्खी रहीं। फिर शीघ्र ही आँखों पर से ये उठा ली गईं और अबकी बार बर्फ़ की नाईं ठण्डी अङ्गुलियों से उसने आँखों पर मालिश प्रारम्भ कर दी। बाद में मेरी पलकों के नीचे बर्फ़ से भीगी हुई रुई की छोटी-छोटी गद्दियाँ रख दी गईं और एक पट्टी से आँखें बाँध मुझे अँधेरे में अकेली छोड़ कर वह चली गई। थोड़ी देर में जब पट्टी खोली गई तब मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। नेत्र-स्नान,

(शेष मैटर १४२वें पृष्ठ के पहले कॉलम में देखिए)



[सम्पादक तथा स्वरकार—श्री० किरणकुमार मुखोपाध्याय (नीलू बाबू)]

राग भूपाली—३ ताल

(मात्रा १६)

[शब्दकार—सदारङ्ग

स्थायी—ए तन जोबन पर मान न करिए।
डरिए प्रभू सों आज मोरि आली।
अन्तरा—जो कोई आवे अपने ढिंगवा।
ता सों गरब न कीजिए।
सदारङ्ग यह रीत माने॥

स्थायी

०				१				×				३			
ध	सं	ध	प	ग	प	ग	रे	ग	—	प	ग	ध	प	ग	—
ए	त	न	जो	ब	न	प	र	मा	—	न	न	क	रि	ए	—
प	—	ध	—	सं	—	ध	प	ग	—	ग	रे	ग	—	प	—
ए	—	ए	—	ए	—	ड	रि	ए	—	प्र	भू	सों	—	आे	—
ध	—	प	सं	ध	प	ग	प	ग	रे	—	स	—	—	—	—
आ	—	ज	मो	ओ	री	ई	आ	आ	ली	—	ई	—	—	—	—

अन्तरा

ग	—	ग	ग	प	—	ध	—	सं	सं	सं	—	सं	रें	सं	—
जो	—	को	ई	आ	—	वे	—	अ	प	ने	—	ढिं	ग	वा	—

ध	—	ध	°स	°स	°स	°स	°रे	—	°स	—	ध	—	°स	—	प
ता	—	सों	ग	र	ब	न	की	—	ई	—	ई	—	ई	—	ई
°स	°र	—	°ग	—	°रे	—	°स	प	—	ध	—	°स	—	°रे	—
जि	ए	—	ए	—	ए	—	ए	ए	—	ए	—	ए	=	ए	—
°ग	°रे	°स	ध	°रे	°स	ध	प	°स	—	ध	प	ध	°स	—	—
स	दा	आ	र	°अ	ग	य	ह	री	—	ई	ई	त	मा	—	—
ध	—	प	—	ध	—	प	—	ग	—	रे	—	स	—	—	—
आ	—	आ	—	आ	—	आ	—	आ	—	ने	—	ए	—	—	—

(१२९वें पृष्ठ का शेषांश)

अतिसार-नाशक चूर्ण

सोंठ १ तोला, आम की गुठली १ तोला, सौंफ़ १ तोला, पोस्त का छिलका १ तोला, भुना हुआ सफ़ेद ज़ीरा १ तोला, अनार का फूल १ तोला, बेल की गिरी १ तोला, नागरमोथा १ तोला, मिश्री ८ तोला।

विधि—सब औषधों को विधिपूर्वक कूट, पीस, छान कर चूर्ण बना लेना चाहिए। मिश्री पृथक पीस कर मिलाना चाहिए।

मात्रा—३ माशे से ६ माशे तक।

समय—प्रातः-सायम्।

अनुपान—शुद्ध जल।

रोग—सब प्रकार के नए-पुराने दस्त और उन में ख़ून आना।

* * *

आमातिसार नाशक चूर्ण

आँवला १ तोला, धनिया १ तोला, सौंफ़ १ तोला, कासनी १ तोला, गुलाब के फूल १ तोला, छोटी इलायची १ तोला, ईसबग़ोल की भूसी ५ तोले, मिश्री ५ तोले।

विधि—सब चीज़ों को कूट, पीस, छान कर चूर्ण बना लेना चाहिए।

मात्रा—१ माशे से ३ माशे तक।

अनुपान—शुद्ध जल।

समय—तीन-तीन घण्टे के बाद।

रोग—आँव मिले दस्त, पेट की मरोड़, ख़ून के दस्त, हृदय-दाह, प्यास, पेशाब की जलन तथा ग्रीष्म ऋतु के विकार।

* * *

पाण्डु रोग नाशक चूर्ण

कलमी शोरा १ तोला, मिश्री ५ तोले—दोनों चीज़ों को खरल में डाल कर महीन कर लेना चाहिए।

मात्रा—३ माशे से ६ माशे तक

समय—दिन में तीन बार।

अनुपान—शुद्ध जल।

रोग—पाण्डु रोग, पेशाब की जलन, पेशाब का रुक-रुक कर आना।

* * *

श्वास नाशक वटी

छोटी इलायची १ तोला, वंशलोचन १ तोला, अफ़ीम ३ माशे, छोटी पीपल १ तोला, अतीस १ तोला, काकड़ासिंगी १ तोला।

विधि—सब चीज़ों को कूट, पीस, छान कर पान या अदरख के स्वरस में घोट कर मटर के बराबर गोलियाँ बना लेना चाहिए।

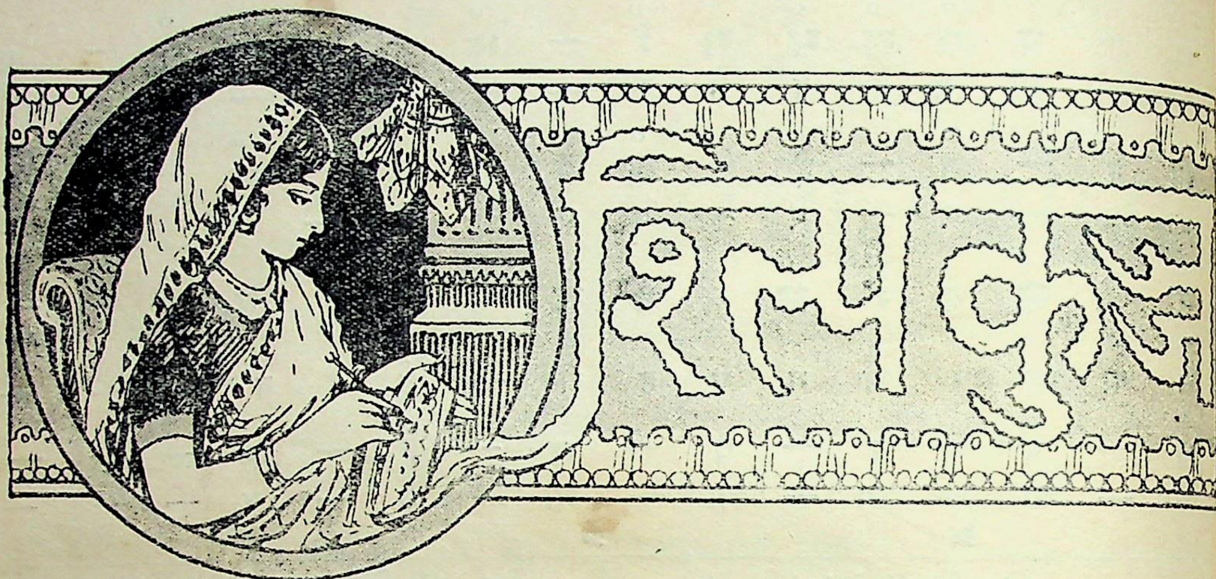
मात्रा—१ गोली।

समय—प्रातः-सायम्।

अनुपान—जल।

रोग—श्वास।

—गयाप्रसाद शास्त्री, वैद्य

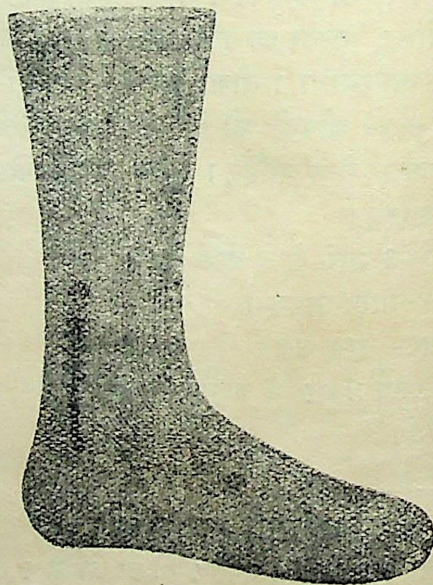


[श्रीमती शकुन्तला देवी गुप्ता, हिन्दी-प्रभाकरा]

मर्दानी जुराब

आवश्यक वस्तुएँ—४ सलाइएँ लोहे की, आध पाव ऊन।

आरम्भ—३ सलाइयों पर ९० फन्दे चढ़ाओ। ऊपर का रिब दो इञ्च तक ४ सीधे, १ उलटा, इस प्रकार बुनो। फिर सीधा ही सीधा बुनना होगा। इसमें ४ इञ्च बुन कर घटाना होगा, जिससे टाँग पर खिंची रहे—ढीली न हो। इसके लिए १ चक्र में १-१ फन्दा तीनों सलाइयों में से घटा दो, फिर ५ चक्रों में न घटाओ। फिर १ चक्र में ३ फन्दे घटा दो। इस प्रकार बीस फन्दे घटा दो। यहाँ तक कि जुराब की लम्बाई १२ इञ्च होने पर एड़ी बनाई जाय। फिर पूर्वोक्त रीत्यनुसार एड़ी बनाओ। फिर पैर को १० इञ्च तक बुन कर घटाओ, जिसकी रीति पूर्व दी गई है। यह जुराब



जुराब का नमूना

बिलकुल आसान और सीधी है। प्रत्येक नाप की यथेच्छा बन सकती है।



दिल की आग उर्फ़ दिल-जले की आह

["पागल"]

पाँचवाँ खण्ड



जहानारा के तीसरे पत्र ने मुझमें एक नई उत्सुकता पैदा की। मैं उसकी लड़की का हाल जानने के लिए बेचैन हो गया। मगर इसके बाद के कई पत्रों में उसका कुछ भी ज़िक्र न था। उनसे केवल यही प्रतीत होता था कि अलिन्द के उत्तर की प्रतीक्षा में जहानारा का दिनोदिन धैर्य का बाँध टूटता गया। कभी प्रेम में दीवानी हो जाती थी और कभी निराशा से जल मरती थी। अब तक तो वह ज्ञान और प्रेम दोनों ही से बराबर लड़ती रही। और अलिन्द की भलाई की ख़ातिर अपने प्रेम को यथाशक्ति दबाने का उद्योग करती थी। मगर उसमें अब यह भी शक्ति न रही। उसकी वेदना में सारा ज्ञान लुप्त हो चुका था। वह प्रेम-प्रवाह में दूने वेग से बह रही थी और बार-बार नैराश्य के चट्टान से टकरा कर तड़प-तड़प कर बिलकती थी, झुँझलाती और कोसती थी। और पत्र न लिखने की सौ-सौ प्रतिज्ञाएँ करती थी। मगर फिर अपनी व्यथा से अधीर होकर अलिन्द को आने के लिए मिन्नतें पर मिन्नतें करती थी। एक दफ़े उसने यहाँ तक लिखा कि "अलिन्द यदि यह पाखण्डी देश हम लोगों के सम्बन्ध को साधारण दृष्टि से भी नहीं देख सकता तो आओ हम लोग चल कर अन्य देश में रहें। वहाँ मामूली तौर से गुज़र-बसर करने के लिए मेरे पास काफ़ी रुपए हो गए हैं। और तुम्हारी कला का आदर भी विदेश ही में यथेष्ट हो सकता है। ईश्वर के लिए यदि मुझसे किसी बात पर रुष्ट हो तो उसे भूल जाओ। मुझे क्षमा करो और पत्र देखते ही चले आओ। मैं आज ही बैङ्क से अपने सभी रुपए निकाल कर अपने पास किए लेती हूँ। ताकि तुम्हारे साथ यहाँ से रवाना होने में तनिक भी विलम्ब न हो।"

इसके बाद वाले पत्र में उसने लिखा था कि "विदेश चल कर तुम्हारे साथ रहने की उमङ्ग में मैं ऐसी आपे से बाहर हुई कि अपने सब रुपए बैङ्क से निकाल कर अपने पास रक्खे और नौकरी भी पहिले ही से छोड़ देने की ठानी। मगर हाय! उसी रात को मैं लुट गई। मेरे सब माल-असबाब चोरी चले गए। मेरा सुख-स्वप्न सब नष्ट हो गया। हत्यारे चोरों ने एक फूटी कौड़ी भी नहीं छोड़ी। उफ़! बुढ़ापे का सहारा भी जाता रहा। रूप-यौवन जब मुझसे एकदम ही मुँह मोड़ लेंगे, तब कैसे पेट पालूँगी? कौन मुझे इतनी लम्बी तनख़्वाह देगा? उसी दिन के लिए मैंने कौड़ी-कौड़ी जोड़ी थी। जाने दो। अगर भाग्य मुझे तुम्हारे साथ रानी बन कर नहीं रहने दे सकता तो तुम्हारी दासी बन कर रहूँगी। समाज के भय से या अपने हृदय के अब बदल जाने से तुम मुझे अर्धाङ्गिनी या प्रेमपात्री का स्थान नहीं देना चाहते तो मुझे सेविका ही समझ कर अपने पास रहने दो। अपने उस प्रेम के नाम पर, जिसको तुमने मुझसे कभी किया था, बस इतनी ही भीख मुझे प्रदान करो। मैं अपना पेट किसी तरह आप पाल लूँगी। तुम जिसको चाहो प्यार करो, जिससे चाहे ब्याह करो, ...आह! इस बीच में शायद तुम्हारा विवाह हो गया है। बस-बस, यही बात है, ज़रूर यही बात है। उफ़! आज समझी। तभी तुम चुप हो। तुम्हें यह बात कहने का मुझसे साहस नहीं होता होगा। मगर अलिन्द, मैं तुम्हारे सुखों में तनिक भी बाधा नहीं डालना चाहती। मुझे तो केवल तुम्हारी सेवा करने की अभिलाषा है। मैं इतने ही में अपने हृदय को सन्तोष दे लूँगी। अपने चरणों में मुझे लगी रहने दो। इतनी तो दया करो अलिन्द। अब तो अपने मुँह से कह दो कि चली आओ। मैं सर के बल दौड़ी आऊँगी। अगर अब भी उत्तर न दोगे तो मैं ठीक पन्द्रहवें दिन तुम्हारे पास पहुँच जाऊँगी। देखें आँखें चार होने पर तुम किस तरह दुतकारते हो।"

इस पत्र में इसी तरह और बहुत सी बातें थीं। हर वाक्य से आशा और निराशा टपकती और प्रत्येक शब्द में वेदना कूट-कूट कर भरी थी। मगर अब तक मुझे वह बात न मिली जिसे मैं ढूँढ़ रहा था। और उसका अब अन्तिम ही पत्र पढ़ने को रह गया था, जो रजिस्ट्री लिफ़ाफ़े की तारीख़ से बीस ही दिन पहिले का लिखा था। धड़कते हुए दिल से उसे पढ़ने लगा।

जहानारा का अन्तिम पत्र

वज्रहृदय,

आख़िर तुम भी उसी अन्यायी और विश्वासघाती पुरुष जाति ही के कीट निकले। अरे कठोर! अरे निर्दयी! यही तुम्हारा प्रेम था, कि नज़रों से दूर होते ही मुझे ऐसे भूले कि बरसों गिड़गिड़ाने पर भी तुम न पिघले? उफ़! मनुष्य नहीं, तुम साक्षात् हत्यारे हो। जाओ मैं भी तुम्हें नहीं प्यार करती।.........आह! क्या बक गई? नहीं-नहीं, ईश्वर के लिए यह न समझना। हाथ जोड़ती हूँ, पैरों पर गिरती हूँ। प्रीतम, मैं और तुमको न प्यार करूँ? सूर्य का पश्चिम निकलना सम्भव हो तो हो, मगर यह नहीं हो सकता। हाँ, यह नहीं हो सकता कि मेरे हृदय से तुम्हारा प्रेम उठ जाए। तुम्हारी उदासीनता से मैं पुरुष जाति को और भी घृणा करने लगी सही, परन्तु तुमसे नहीं। इसीलिए हर बार तुमसे अनादर पाकर भी तुम्हारे ही चरणों में लिपटने को दौड़ती हूँ। और तुम ऐसे पत्थर हो कि ठोकरों से भी बात नहीं करते।

इस दफ़े तुम्हारा उत्तर न पाकर मैं पन्द्रहवें दिन तुम्हारे पास आने को तैयार थी। मगर तब जाना कि मैं बन्दी हूँ। मेरी कार्रवाइयों पर इस थियेटर के मालिक की बड़ी कड़ी निगाह है। यह बरसों से मेरे पीछे [illegible] की तरह, लगा हुआ है। इसने आमदनी के [illegible] से नहीं, बल्कि मेरे ही लिए यह कम्पनी खोली थी। मगर अब तक मैं इसे अपने हृदय में तनिक भी स्थान न दे सकी और न कभी दे सकती हूँ। यद्यपि यह मेरा कुछ बिगाड़ नहीं सकता—क्योंकि यह जाने रहो कि जो अगर स्वयं न बिगड़ना चाहे तो एक पु ष अकेला, चाहे वह कितना ही शक्तिशाली क्यों न हो, उसका बाल भी बाँका नहीं कर सकता—फिर भी इसके पञ्जे से मैं नहीं निकल पाती। इसीलिए मेरे आने की सभी कोशिशें बेकार हुईं। मैं कलेजा मसोस कर रह गई और भविष्य में किसी तरह चुपचाप भागने की ताक में थी।

इसी बीच में कम्पनी ने भ्रमण करने का इरादा किया। क्योंकि मालिक की लापरवाही से इसकी आर्थिक दशा बहुत ख़राब होगई। उसे तो रातोंदिन मेरी चौकीदारी करते बीतती है, उसे आमदनी की फ़िक्र कैसे होती? बिना अन्य नगरों में भ्रमण किए इसकी दशा किसी तरह से भी सुधरती हुई नहीं जान पड़ी, तब कर्मचारियों के आग्रह पर इस मण्डली को अपनी यात्रा पर निकलना पड़ा। मैंने सोचा कि बम्बई से बाहर मुझे भागने का अधिक सुअवसर मिल सकता है। ईश्वर की कृपा से एक नगर में जब मण्डली तमाशा करने के लिए गई हुई थी, मुझे ऐसा मौक़ा भी मिला और मैं भाग कर स्टेशन आई। काशी के लिए टिकट लेकर गाड़ी का इन्तज़ार करने लगी। वैसे ही मेरे हृदय पर एक ऐसा वज्राघात हुआ कि मुझे काठ मार गया और मैं मूर्छित होकर वहीं वेटिङ्गरूम में बैठी की बैठी रह गई।

जब मैं टिकट लेकर वेटिङ्गरूम में जा रही थी तो देखा कि एक बुढ़िया, जो अभी मुसाफ़िरों से पैसे माँग रही थी, सहसा मेरी तरफ़ झपटी। लोग मुझे सङ्केत करके चिल्ला पड़े कि भागो-भागो, यह पगली है, पगली। मैं घबड़ा कर खड़ी हो गई और बुढ़िया मुझसे चिमट गई। अब जाना कि यह तो साढ़े सात बरस की बिछुड़ी हुई मेरी दासी है। मैं भी उससे लिपट गई। लोग चकित होकर तमाशा देखने लगे।

दासी के लक्षण पगली से अवश्य प्रतीत होते थे, मगर उसकी बातों से पहिले मुझे कुछ भी पागलपन का आभास नहीं हुआ। मैं समझे हुए थी कि मेरी बच्ची अपने पिता के पास पहुँच कर अपने ठिकाने लग गई। और मैं संसार की दृष्टि में मर चुकी थी। इसलिए मैंने उसकी तरफ़ से अपना दिल पत्थर करके उसकी कोई ख़ैर-ख़बर नहीं ली, यद्यपि उसकी याद की वेदना मेरे हृदय में बराबर उठा करती थी। मगर दासी की ज़बानी उसका हाल सुन कर मैं एकाएक सकते में आ गई। वह [illegible] केवल इतना ही बता सकी कि जब वह बच्ची को लेकर मेरे पति जी के पास पहुँची तो वह उसकी पीठ पर अपना नाम देखते ही जल मरे और उस नाम को संसार की दृष्टि से मिटाने के लिए अपनी ही लड़की की,

अपने हाथ से, जान लेने को तैयार हो गए। दासी उनसे बच्ची छीन कर भागी। एक स्टेशन पर जब गाड़ी खड़ी हुई, वह उसे बेञ्च पर सुला कर पानी पीने के लिए उतरी। मगर लौट कर फिर न चढ़ सकी। गाड़ी छूट गई। उस डब्बे में केवल एक स्त्री और थी। तब से उसे मेरी बच्ची का कुछ भी पता न मिला। वह उसकी खोज में न जाने कहाँ-कहाँ भटकती फिरी। और स्टेशनों पर गाड़ी में घुस-घुस कर वह बराबर उसीको ढूँढ़ती है। इसके लिए कई दफ़े वह चोर और पगली समझ कर जेलख़ाने में बन्द रक्खी भी जा चुकी। मगर उसकी यह आदत नहीं छूटी। इतना सुनते ही मैं अपनी छाती पीट-पीट कर रोने लगी।

इतने में गाड़ी की धड़धड़ाहट सुनाई पड़ी। दासी की आँखें चमक उठीं। वह बिजली की तरह यह चिल्लाती हुई प्लेटफ़ॉर्म पर दौड़ी कि रोको गाड़ी, मेरी बच्ची उसमें है। आवेश में वह प्लेटफ़ॉर्म के नीचे गिर पड़ी। दूसरे ही क्षण उसकी लाश पहियों के नीचे टुकड़े-टुकड़े होने लगी। मेरा सर चकरा गया। मैं मूर्च्छित हो गई। होश आने पर देखा कि थियेटर का मालिक और कर्मचारीगण मेरे पास खड़े हैं। तब से मैं जीवित रह कर भी मुर्दे से बत्तर हो गई। हरदम बुख़ार सा बना रहता है। कुछ भी अच्छा नहीं मालूम होता। किसी तरह कर्तव्यवश रङ्गमञ्च पर जाती हूँ, मगर वहाँ से आते ही बिस्तरे पर गिर पड़ती हूँ। और दिन भर कोने में पड़ी रहती हूँ। रोने के लिए मेरी आँखों में-आँसू तक नहीं। दिनोंदिन मेरी हालत गिरती जाती है। अलिन्द, तुमसे मुझे बड़ी आशाएँ थीं। मगर तुमने भी धोखा दिया। मेरा एक भी पत्र वापस नहीं आया। इसलिए यह मैं कैसे सोच सकती हूँ कि तुम्हें मेरे पत्र नहीं मिलते या तुम अपने ठिकाने पर नहीं हो या स्वर्गलोक में जाकर मेरी प्रतीक्षा कर रहे हो? नहीं-नहीं, यह बात नहीं हो सकती। तुम्हारे पास मेरे पत्र पहुँचते ज़रूर हैं। मगर जान पड़ता है कि तुम उन्हें बिना पढ़े ही फाड़ डालते हो। हर तरह से तुमसे निराश होकर दिल में ठानी थी कि तुम्हें अब कुछ न लिखूँगी। मगर विपत्ति में अपने निजी जनों की याद बुरी तरह उमड़ती है। तुम्हारे सिवाय इस संसार में मेरा अपना कहने के लिए कौन था? तुमने मेरे साथ जैसी भी हृदयहीनता की है, वह ईश्वर ही जानते होंगे। फिर भी यह दिल तुम्हें अपना समझने से बाज़ नहीं आता। इसलिए तबियत को रोक न सकी और लिखने बैठ गई। अगर तुममें दया न सही, कुछ मनुष्यत्व भी हो तो कृपया एक दफ़े आकर दर्शन दे जाओ। क्योंकि मेरी अवस्था अब ऐसी नहीं है कि यहाँ से निकल भागूँ। एक अनुरोध और भी करती । अगर मेरी बच्ची जीवित हो तो इस समय आठ बरस की हुई होगी। वह अपने पिता पर नहीं, बल्कि मुझी पर पड़ी थी। इसलिए रङ्ग-रूप उसके मेरे ही से होंगे। कमर पर गोदना है। गले में उसके मैंने चाँदी की तावीज़ भी पहना दी थी, जिसमें उसकी कुण्डली और उसके पिता का नाम-ठिकाना भी लिख कर भर दिया था। संसार में उसके कोई है तो मेरे प्रेम के नाते बस तुम्हीं हो। उसे अपनी ही बच्ची जान कर ढूँढ़ो। अगर मिल जाए तो उसके संरक्षक बन कर उसकी रक्षा करो।

तुम्हारी ठुकराई हुई,

—दर्शनों की प्यासी जहानारा

जहानारा के सभी पत्र समाप्त हो गए। फिर भी उसके सम्बन्ध में मेरी उत्सुकता न मिटी। अब किस तरह से उसका शेष हाल जानता? इतने में उस हत्यारे के अधूरे पढ़े हुए अङ्गरेज़ी पत्र की याद पड़ी, जिसने जहानारा के पत्रों को रोक कर यह सब अनर्थक काण्ड रच दिया था। मुझे उसके छूने तक से घृणा थी, मगर अब उसे समाप्त करने के लिए विवश हो गया।

हत्यारे हुर्मुज़ जी के अङ्गरेज़ी पत्र का शेषांश

मेरा भाग्य इस तरह एकाएक बिगड़ जाने पर भी मेरे दिल से जहानारा की प्राप्ति की लालसा न मिटी। जानता था कि वह अच्छी होते ही मेरे चङ्गुल से सदा के लिए निकल जाएगी। क्योंकि अब मैं उसे धनबल से अभिनेत्री की हैसियत में रख नहीं सकता था। सौभाग्य से वह अपनी बीमारी के कारण चारपाई से हिल नहीं सकती थी और उसका पक्ष करने वाले कर्मचारीगण से भी मुझे छुट्टी मिल चुकी थी। ऐसा सुअवसर मेरे लिए छोड़ने का न था। मुझे आशा थी कि इस अनुकूल परिस्थिति में उसे झक मार कर मेरे अनुकूल होना पड़ेगा। यद्यपि धन से हाथ धो बैठा था, तथापि अपनी कोठी किराए पर चला कर उसके साथ जीवन व्यतीत करने का सहारा था। इसी इरादे से मैं शादी का प्रस्ताव लेकर कई बार उसके पास गया। मगर इसे सुन कर उसकी आँखों से न जाने

कैसी चिनगारियाँ निकलने लगती थीं कि मैं सहम कर अपना सा मुँह लिए लौट आता था। अन्तिम भेंट में उसकी झिड़कियों से मैं जल मरा और गुस्से में उससे कह बैठा कि देख, तुझसे आज बताता हूँ कि मैंने तेरे ही लिए अपनी स्त्री तक की हत्या कर डाली, फिर भी तू मेरा कहना नहीं सुनती। अगर आज भी तुम मुझे वही जवाब दोगी, तो क़सम है, तुम्हारी भी जान ले लूँगा। बोलो, अब भी मानती हो या नहीं? इस पर वह घृणा से और भी तिलमिला उठी। मुँह फेर कर बोली—"अरे हत्यारे! तू ख़ूनी भी है? उफ़! मैं नहीं जानती थी। हट जा सामने से, ओ पापी कुत्ते! नहीं अभी चिल्ला कर तुझे पकड़वा दूँगी। हट जा! हट जा! दूर हो जा!"

ख़ूनी का शब्द कान में पड़ते ही मेरा कलेजा काँप उठा। अब समझा कि मैंने कैसी बड़ी मूर्खता की कि अपने किए हुए गुप्त पाप का अपने आप ही ज़ोश में एक गवाह पैदा कर बैठा, जिसका मुँह बिना बन्द किए किसी तरह से भी मेरे प्राणों की कुशलता न थी। एक हत्या को छिपाने के लिए दूसरी हत्या करना ज़रूरी हो गया। अपनी जान बचाने की धुन के आगे प्रेम के मनसूबे चूल्हे में गए। दूसरे ही क्षण मेरी उँगलियों ने चील की तरह झपट कर जहानारा का गला अपने चङ्गुल में ऐसा दबोचा कि वह हमेशा के लिए चुप हो गई।

मगर अब लाश देख कर मेरे होश उड़ गए। आँखें निकल पड़ीं। पैर लड़खड़ाने लगे। मेरे रोम-रोम में बदहवासी छा गई। मारे घबराहट के मैं आप मरने लगा। कोठी के भीतर मेरे लिए ज़रा देर भी रहना मुश्किल हो गया। ईंट-पत्थर, फ़र्श, मेज़, कुर्सी, सभी एक ज़बान से कह रहे थे, भागो। मैं पागलों की भाँति उसीके भीतर चक्कर खा कर रह जाता था। आख़िर भागने की ठानी। मगर क्या लेकर भागता? मेरे रुपए-पैसे तो मकान में रहते न थे। और बैङ्क का दिवाला पहिले ही निकल चुका था। सहसा जहानारा के नोटों के बण्डल की याद आई, जिनको मैंने उसके चोरी गए हुए सामान से निकाल कर चुपके से अपने पास रख लिया था। मैं जल्दी से उसको निकाल लाया। उसीके साथ उसके यह सब ख़त भी, जिनको मैं डाकख़ाने पहुँचने के पहिले ही रोक-रोक कर वहीं रखता जाता था, चले आए। अब फ़िक्र हुई कि लाश को किस तरह छिपाऊँ। परेशानी में कोई भी युक्ति न सूझी तो मैंने अपनी कोठी में आग लगा दी।

आग और धुएँ ने मेरे इस पाप को ढक लिया और दुनिया यही जानती है कि जहानारा की मृत्यु केवल अग्नि-घटना से हुई। सभी मेरी इस दुर्दशा पर मेरे साथ सहानुभूति कर रहे हैं। मगर मेरी आत्मा मुझे कोड़े पर कोड़े मार रही है। क्षण भर भी मुझे चैन नहीं लेने देती। जिस प्राण की रक्षा के लिए मैंने यह पाप किया, हाय! वही कम्बख़्त अब मेरा कट्टर दुश्मन बन कर मेरे कलेजे में सोते, उठते, बैठते, हरदम बर्छियाँ भोंक रहा है। कठिन से कठिन प्रायश्चित्त भी मुझे इस सन्ताप से नहीं बचा सकता। चार दिन से एक घूँट पानी तक अपने मुँह में नहीं डाल सका। जहानारा के रुपए मेरे पास मौजूद हैं। उनके बल पर मैं फिर दौलतमन्द हो सकता हूँ। मगर हाय! अब तो न जाने मुझमें कैसा अनोखा परिवर्त्तन हो गया कि भूख से तड़प रहा हूँ, फिर भी ये रुपए मुझसे नहीं ख़र्च किए जाते। जी में यही आता है कि उसकी लड़की को ढूँढ़ कर इसे दे दूँ, इस तरह शायद मुझे कुछ शान्ति मिले। मगर जहानारा ने अपने ख़तों में, जिनसे यह भेद मुझे मालूम हुआ, कहीं का नाम-ठिकाना भी नहीं दिया है। मैंने उससे इस डर से इस विषय पर कभी पूछ-पाछ भी नहीं की कि कहीं वह ताड़ जाए कि उसके ख़त रोके जाते हैं। इसलिए उसकी लड़की को कहाँ ढूँढ़ने जाऊँ? और मुझमें एक क्षण से भी अधिक अपनी सन्तापी आत्मा को अपने पास रखने की अब सहनशीलता नहीं है। इसी कारण इन्हें आपके पास भेज कर यह भार आप पर सौंप रहा हूँ। उफ़! कलेजा फुँका जाता है। बस विदा, इस संसार से विदा। देखूँ नरक में भी मुझे जगह मिलती है या नहीं। मैंने केवल हत्याएँ नहीं कीं, बल्कि एक दिल भी तोड़ा है। और वह भी जहानारा का ऐसा दिल। आह! इसका पाप आप पर नहीं, मुझ पर है।

अपने कर्मों का फल भोगने वाला,

—हुर्मुज जी

इस पत्र को अन्त तक पढ़ना मेरे लिए विष का घूँट पीना था। मेरी आँखों में ख़ून उतर आया। मगर मैं दाँत पीस कर रह गया।

(क्रमशः)

(Copyright)



बाल मनोरञ्जन



दयालु लड़का

पात्र—

१—जाफ़र
२—क़ादिर (जाफ़र का छोटा भाई)
३—बूढ़ा
४—मोहन (बूढ़े का बेटा)
५—दूकानदार

पहला दृश्य

(जाफ़र आरामकुर्सी पर लेटा हुआ अख़बार देख रहा है। क़ादिर आता है।)

क़ादिर—(जाफ़र से) भाई साहब, आपको मालूम है, आज शहर के बाहर मेला भरेगा? मैं भी देखने जाऊँगा। क्या आप मुझे दो-चार पैसे न देंगे ?

जाफ़र—क़ादिर ! पैसे तो तुम्हें ज़रूर मिलेंगे। पर यह बताओ कि तुम उनका करोगे क्या ?

क़ादिर—कोई चीज़ पसन्द आ जाएगी तो लेता आऊँगा।

जाफ़र—(इकन्नी देकर) अच्छा, इतने पैसों से काम चल जाएगा न ?

क़ादिर—(इकन्नी लेकर) बस-बस, बहुत हैं।

(चला जाता है)

दूसरा दृश्य

(खिलौनों की दूकान। दूकानदार खिलौनों की गर्द झाड़ रहा है। क़ादिर आता है।)

दूकानदार—(क़ादिर से) क्यों बाबू ! कुछ लोगे ? कौन-कौन से खिलौने पसन्द किए ?

क़ादिर—(दस-पाँच खिलौने उठा कर देखता है और फिर एक को हाथ में लेकर) इस तोते की क्या क़ीमत होगी ?

दूकानदार—वह तोता ? तुम्हें दो आने में दे दूँगा।

क़ादिर—अरे ! कहते क्या हो ! दो आने तो बहुत होते हैं। मैंने देखा है कि ऐसे तोते चार-चार पैसे में बिकते हैं। चार पैसे में देना हो तो दे दो।

दूकानदार—अच्छा भई, तुम्हारी ही बात सही। लाओ पैसे।

(क़ादिर पैसे देता और खिलौना लेकर चला जाता है।)

तीसरा दृश्य

(स्थान—रास्ता। बूढ़ा जा रहा है। साथ में मोहन है और बूढ़े के हाथ से झूलता जाता है।)

मोहन—मैं नहीं मानूँगा। मुझे भी एक खिलौना ले दो। सब तो ले रहे हैं।

बूढ़ा—बेटा ! कहाँ से ले दूँ ? मेरे पास पैसा हो, तब न ! कितने बार कहूँ ?

मोहन—हूँ ऊँ ! ले दो दादा। मैं काहे से खेलूँगा ?

(क़ादिर खिलौना लिए आता और बाप-बेटे की बातें सुनने लगता है।)

मोहन—(क़ादिर का खिलौना देख कर बूढ़े से) बस दादा ! ऐसा ही मुझे भी ले दो। अहा ! कैसा अच्छा सुआ है। (क़ादिर के खिलौने की ओर बड़ी चाह से देखता है।)

बूढ़ा—(ठण्ढी साँस लेकर मोहन से) बेटा ! कहाँ से ले दूँ ऐसा खिलौना ? चार पैसे से कम में न मिलेगा। यहाँ एक भी पैसा नहीं। भोजन के लिए ही तो मुश्किल से चार-छः पैसे कमा पाता हूँ। मान जा बेटा ! फिर ले दूँगा।

(मोहन रोने लगता है)

क़ादिर—(आगे बढ़ कर मोहन से) लो भई, तुम मेरा खिलौना ले लो। रोओ मत। बूढ़े बाप को हैरान मत करो।

बूढ़ा—(क़ादिर से) रहने दो भैया !

क़ादिर—नहीं-नहीं बाबा ! मोहन भी मेरा भाई है। वही इस खिलौने से खेलेगा। हर्ज़ क्या है।

बूढ़ा—भगवान् तुम्हारा भला करे भैया !

(क़ादिर मोहन को खिलौना देकर चला जाता है।)

चौथा दृश्य

(क़ादिर का घर। क़ादिर और जाफ़र दोनों बातें करते दिखाई देते हैं।)

जाफ़र—अरे क़ादिर ! तुमने उन पैसों का क्या किया ? कुछ लाए नहीं ? कहीं गिरा तो नहीं दिए ?

क़ादिर—भाई साहब ! मैंने उन पैसों से छोटी बहिन के लिए एक खिलौना लिया था।

जाफ़र—फिर कहाँ है वह खिलौना ?

क़ादिर—रास्ते में वह खिलौना मैंने एक ग़रीब लड़के को दे दिया। उसके बाप के पास पैसे थे नहीं, बेचारा लड़का खिलौने के लिए रोने लगा। मुझे दया आ गई। मैंने खिलौना उसे दे दिया।

जाफ़र—(ख़ुश होकर) अच्छा ! पर खिलौना दे डालने से तुम्हें कुछ रन्ज तो नहीं हुआ ?

क़ादिर—नहीं। रन्ज क्यों होगा ? मुझे तो ख़ुशी है कि मैंने खिलौना देकर एक ग़रीब लड़के को ख़ुश किया।

जाफ़र—तब तो भाई, तुमने बड़ा अच्छा काम किया।

(भीतर से आवाज़ आती है—'अरे जाफ़र ! ओ क़ादिर !' दोनों चले जाते हैं।)

* * *

(१३३ वें पृष्ठ का शेषांश)

मालिश और विश्राम से आँखों में नया प्रकाश आ गया था। आँखें पहले की अपेक्षा मुझे बड़ी मालूम होने लगी थीं; तारे और भी अधिक चमकने लगे थे और आँखों से तेज, ओज और जीवनी शक्ति टपकने लगी थी। ऐसा स्वास्थ्यप्रद अनुभव मेरे जीवन में पहले मुझे कभी नहीं हुआ था।"

ऊपर नेत्र-स्नान का जो ज़िक्र आया है, उसके अनुसार भारतीय स्त्री-पुरुषों को त्रिफला—हर्रे, बहेरा और आँवले—के पानी से नेत्र-स्नान कराना सदैव लाभदायक है। मुझे विश्वास है, ऊपर जिन उपचारों का उल्लेख हुआ है उनसे प्रत्येक स्त्री-पुरुष अपनी आँखों को स्वस्थ और सुन्दर बनाए रख सकता है।

—रतनलाल मालवीय, बी० ए०

* * *

खाँसी क्यों आने लगी ?

कुछ दिन हुए शिब्बू को खाँसी चलने लगी थी। पहले तो उसने चिन्ता न की, पर खाँसी दिनोंदिन बढ़ती गई। इसके बाद शिब्बू को हलका बुख़ार भी आने लगा। अब बेचारा शिब्बू बहुत परेशान रहता, धीरे-धीरे वह दुबला-पतला हो चला। उसके गुलाबी गाल पिचक गए, उन पर कालिख छा गई।

शिब्बू की यह दशा देख, उसके पिता मोहन बाबू को बड़ी चिन्ता हुई। एक दिन वे उसे अपने साथ अस्पताल लिवा ले गए। डॉक्टर साहब से उनकी दोस्ती थी। उन्होंने एक कुर्सी पर बैठ कर डॉक्टर साहब से कहा—"बाबू साहब, ज़रा शिब्बू की दशा तो देखिए। इसकी जाँच कर लीजिए, और कुछ ऐसी दवाई दीजिए, जिससे यह जल्दी अच्छा हो जावे।"

डॉक्टर साहब शिब्बू को अच्छी तरह जानते थे। उसकी हालत देख कर उन्हें बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने शिब्बू से पूछा—"बेटा, तुम्हें क्या तकलीफ़ है?" शिब्बू ने जवाब दिया—"बाबू साहब, मुझे ज़ोरों से खाँसी चलती है। रात को थोड़ा बुख़ार भी हो आता है। रोटी अच्छी तरह नहीं खाई जाती।"

डॉक्टर साहब ने शिब्बू की छाती और पीठ की जाँच की। फिर उससे कहा—"अच्छा मुँह खोलो।" शिब्बू ने मुँह खोल दिया। डॉक्टर साहब ने पास रक्खे हुए एक काँच की सहायता से उसका मुँह और गला भी अच्छी तरह देखा। इसके बाद वे कुछ सोचने लगे।

इसी समय मोहन बाबू ने उनसे पूछा—"डॉक्टर साहब, शिब्बू की यह हालत क्यों हुई?" डॉक्टर साहब ने मुसकुरा कर उत्तर दिया—"बीड़ी पीने से।"

यह सुन कर मोहन बाबू को बड़ा अचरज हुआ। उन्होंने कहा—"डॉक्टर साहब, आप कहते क्या हैं! मेरा शिब्बू बीड़ी नहीं पीता, मैंने कभी इसे बीड़ी पीते नहीं देखा।" डॉक्टर साहब बोले—"आपने न देखा होगा। पर यह बीड़ी पीता ज़रूर है, बीड़ी पीने से ही इसकी यह दशा हुई है। यह आपकी चोरी से बीड़ी पिया करता है।" फिर उन्होंने शिब्बू से पूछा—"बेटा शिब्बू, तुम सच बतलाओ, बीड़ी पीते हो या नहीं?"

शिब्बू ने उत्तर दिया—"हाँ डॉक्टर साहब, मैं पिता जी की चोरी से बीड़ी पीता हूँ। मेरे साथ पढ़ने वाले और भी कई लड़के छिप-छिप कर बीड़ी पिया करते हैं। पर बीड़ी पीने से तो कोई बीमार नहीं होता—मैं ही क्यों हुआ?"

डॉक्टर साहब ने हँस कर उत्तर दिया—"जान पड़ता है, तुमने उन्हीं ख़राब लड़कों के साथ रह कर बीड़ी पीने की आफ़त मोल ले ली है। बेटा, तुम्हारा यह कहना ठीक नहीं कि बीड़ी पीने से कोई बीमार नहीं होता। तमाखू बुरी चीज़ है। उसके पीने से सभी बीमार होते हैं। कोई कम कोई अधिक। तमाखू में एक तरह का विष होता है, जो धुएँ के साथ आदमी के पेट में जाकर तरह-तरह की ख़राबियाँ पैदा करता है। वह विष के धुएँ के साथ फेफड़ों और गले की नली में जम जाता है। इसीसे धीरे-धीरे कफ पैदा होने लगता और खाँसी चलने लगती है। विष और धुएँ की गर्मी से ख़ून पतला पड़ता है। मुँह की लार भी पतली हो जाती है और मनुष्य बार-बार थूकने का आदी हो जाता है। इस प्रकार बहुत सी लार बरबाद हो जाती है। यह लार भोजन पचने में बड़ी सहायता पहुँचाती है। परन्तु उसकी कमी से भोजन भली भाँति नहीं पचता, इसीसे भोजन करने में रुचि नहीं रहती। कफ-खाँसी के बढ़ने और हाज़मे के बिगड़ जाने से और भी कई बीमारियाँ हो जाने का डर रहता है। तमाखू पीने से बहुत से मनुष्यों को तपेदिक़ और दमे की बीमारियाँ भी हो जाती हैं, जिनसे फिर उनका बचना कठिन हो जाता है। तमाखू में एक बड़ा ऐब यह भी है कि उसके पीने से मनुष्य आलसी हो जाता है, और कभी-कभी उसके पीने से मुँह से बुरी बास भी आने लगती है। बेटा शिब्बू, यदि तुम अच्छे होना चाहते हो तो आज से ही तमाखू पीना छोड़ दो।"

शिब्बू ने घबरा कर कहा—"तो डॉक्टर साहब, आप मुझे कोई दवाई न देंगे?"

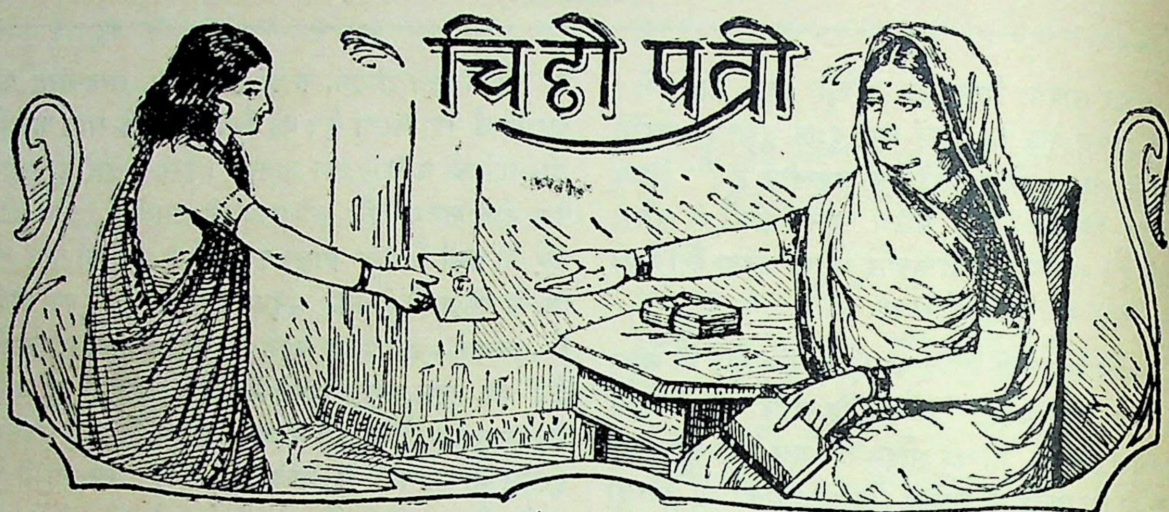
डॉक्टर साहब बोले—"नहीं शिब्बू, मैं तुम्हें दवाई तो ज़रूर दूँगा। पर जब तक तुम तमाखू पीना न छोड़ोगे तब तक दवाई से कुछ फ़ायदा न होगा।"

शिब्बू की समझ में डॉक्टर साहब की बातें आ गई थीं, उसने कान पकड़ कर कहा—"डॉक्टर साहब, अब मैं कभी तमाखू नहीं पिऊँगा, आप मुझे ज़रूर दवाई दीजिए।"

डॉक्टर साहब ने एक शीशी में शिब्बू को दवाई दी। उसके पीने से कुछ दिन में उसकी तबियत बिलकुल अच्छी हो गई। अब कोई शिब्बू से कहता है—"क्यों भई तुम भी तमाखू पियोगे?" तो वह यही जवाब देता है—"साहब, बचने भी दीजिए इस बला से।"

—ज़हूरबख़्श





सभा में स्त्रियों का व्यवहार

गोरखपुर से एक बहिन अपने २४ सितम्बर सन् १९३० के पत्र में लिखती हैं—

सम्पादक जी,

सादर नमस्ते !

कल हमारे राष्ट्रपति पं० जवाहरलाल नेहरू की वीर पत्नी हम लोगों को दर्शन देने तथा देश-सेवा का पवित्र उपदेश सुनाने के अभिप्राय से गोरखपुर आई थीं। यहाँ की सभी दर्शनाभिलाषी औरतें सभा में उपस्थित हुई। पर बहुत सी स्त्रियों ने इस क़दर शोर मचाया कि हमारी पूजनीया बहिन ऊब कर पण्डाल के बाहर निकल आईं। हम लोगों ने वहाँ जाकर उनके दर्शनों का ही लाभ उठाया, परन्तु उनके पवित्र तथा कल्याणमय उपदेश सुनने का हमें सौभाग्य प्राप्त न हुआ। उसका हमें इतना अफ़सोस हुआ कि लेखनी द्वारा प्रगट नहीं कर सकतीं। हमारी बहिनें सभा में जाने को तो फ़ौरन तैयार हो जाती हैं, पर वहाँ ज़रा भी शिष्टाचार का पालन नहीं करतीं। छोटी-छोटी बातों में लड़ने और गाली बकने में हमारी बहिनें जितनी निपुण होती हैं, उतनी अगर गृहस्थी के कार्यों में निपुण होतीं तो पुरुष अपना धन्य भाग्य मानते।

सम्पादक जी, हमारी बहिनें लड़ती तो आपस में हैं, मगर एक दूसरी के सात पुश्त को स्वर्ग से नरक में गिरा देती हैं। इसका अनुभव मुझे कल ही हुआ। मैंने एक बहिन से कहा—"बहिन, ज़रा शान्त होकर बैठो। देखो, एक बहिन तो इतनी दूर से कष्ट उठा कर आई हैं और तुम इस क़दर लड़ रही हो।" तब वह बोली—"तुम हमें चुप रहने को तो कहती हो, मगर और इतनी औरतें जो शोर मचा रही हैं, उन्हें क्यों नहीं रोकतीं?" भला इस कठहुज्जत का क्या जवाब था, मैं चुप रह गई। अगर हर एक स्त्री इसी तरह सोच ले कि जब सब स्त्रियाँ शोर मचा रही हैं, तब मैं ही ऐसे मौक़े पर क्यों चूकूँ तो सभा में कैसी हालत हो ? यदि सब बहिनें एक दूसरी की बातों को ज़्यादा नहीं, सिर्फ़ एक घण्टे के लिए सह लें तो क्या बुराई है, चाहे दूसरे वक़्त इसकी कसर लड़ कर, गाली देकर, मार-पीट करके दुगनी, चौगुनी, अठगुनी निकाल लें ? अन्य जगहों के लोग जिस पूजनीया बहिन का स्वागत करते हैं, जिसके सम्मान में जुलूस निकालते हैं, बड़े शोक की बात है कि गोरखपुर के स्त्री-पुरुषों ने उनके स्वागत करने से तो कुछ कम, परन्तु उनके उपदेश सुनने से बहुत ज़्यादा मुँह मोड़ा है।

हमारी बहिन कमला नेहरू ने लालडिग्गी के पण्डाल के नीचे खड़े होकर जो शब्द कहे थे वे हम लोगों के लिए बड़े मार्के के हैं, क्योंकि हम इतने दिनों के बाद भी उन पर अमल नहीं कर सके हैं। हमारी पूजनीया बहिन ने यों तो बहुत सी बातें कहीं ; पर विदेशी कपड़े को छोड़ने और स्वदेशी वस्त्र को अपनाने पर उन्होंने ख़ास तौर से ज़ोर दिया। परन्तु विदेशी वस्त्रों को त्यागने की बात कौन कहे, यहाँ तो लोग सोचते हैं कि आजकल विदेशी कपड़ा बहुत सस्ता मिलेगा, लाओ चोरी-चोरी जो कुछ ख़रीद सकें, ख़रीद कर रख लें। यहाँ के कहारों ने पञ्चायत करके दारू या ताड़ी का पीना बन्द कर दिया है। अबकी काली-पूजा पर, जो कहार लोग करते हैं,

दारू या ताड़ी के बदले उन्हीं पैसों का लड्डू मँगा कर बाँटा गया है। जिन्हें हम लोग अपने से नीच मानते हैं, उन्होंने तो इतना भी किया, मगर हम लोग ऐसे बुज़दिल निकले कि विदेशी कपड़ा भी नहीं त्याग सके। ईश्वर से प्रार्थना है कि वह हमारे हृदय में बल दें तथा हमें सुबुद्धि प्रदान करें।

[निस्सन्देह इस देवी का कहना बहुत ही ठीक है। आजकल, जब स्त्रियों की जागृति के लिए इतना घोर आन्दोलन हो रहा है, उन्हें सार्वजनिक स्थानों में सभ्यतापूर्ण व्यवहार करना चाहिए। स्वदेशी आन्दोलन को सफल बनाने का भी अधिकांश उत्तरदायित्व स्त्रियों पर ही है। पुरुष तो किसी तरह खुरखुरा खद्दर पहन भी लेते हैं, पर स्त्रियाँ इन चीज़ों से बुरी तरह नाक-भौं सिकोड़ती हैं। जिस तरह हमारी बहुत सी बहिनों ने इस आन्दोलन में भाग लेकर घोर कष्ट सहे हैं, उसी तरह हमारी अन्य बहिनों का भी यह कर्त्तव्य है कि वे स्वदेशी वस्तुओं को अपनाकर देश की उन्नति में अपना भाग पूरा करें।

—सम्पादक 'चाँद']

* * *

एक शिक्षापूर्ण घटना

एक सज्जन इन्दौर छावनी से लिखते हैं—

श्रीमान् सम्पादक महोदय !

मुझे निम्नलिखित घटना को 'चाँद' में प्रकाशित कराना आवश्यक प्रतीत होता है। साँईखेड़ा के दादा जी के शिष्य दण्डी स्वामी नामक एक व्यक्ति हैं। ये आज से आठ वर्ष पूर्व कॉङ्ग्रेस के प्रसिद्ध कार्यकर्ता थे और बाद में योगाभ्यास के लिए आठ वर्ष तक दादा जी के समीप रहे। वहाँ भी इन्होंने ख़ूब प्रसिद्धि पाई। सम्मान में छोटे दादा जी के बाद आप ही का नम्बर था। गत वर्ष दादा जी मय जमात के लगभग साल भर तक उज्जैन में ठहरे हुए थे। दादा जी के पास सुदूर प्रान्तों से दर्शनाभिलाषी लोग अपनी-अपनी कामनाएँ लेकर जाते हैं। कोई-कोई वहाँ महीनों ठहरते भी हैं।

इसी प्रकार उज्जैन के हनुमानबाग़ में देवास के एक जागीरदार, जिनका नाम चन्द्रराव पवार है, मय अपने बाल-बच्चों के किसी कार्यवश ठहरे हुए थे। वे दादा जी को तथा उनके चेले छोटे दादा जी व दण्डी स्वामी को ख़ूब मानते थे। उनके सब से बड़ी एक कन्या लगभग उन्नीस वर्ष की सारजा बाई नाम की है। वह दण्डी स्वामी के पास नित्य-प्रति सेवा को जाया करती थी। यह देश का दुर्भाग्य है कि जवान सण्डे-मुसण्डे साधुओं के पास हम भक्ति-भाववश अपनी माँ-बहिनों को भेज देते हैं। यह बालिका स्वामी जी के पास रात्रि में घण्टों तक सेवा किया करती थी। इसका वही परिणाम हुआ जो होना था। होते-होते दोनों में प्रेम हो गया और एक दूसरे के साथ स्त्री-पुरुषवत् व्यवहार करने लगे।

अभी कुछ दिन हुए दादा जी उज्जैन से रवाना हो कर देवास होते हुए क्षिप्रा-तट पर ठहरे हुए थे। वहाँ जाने पर स्वामी जी ने एक दिन, लड़की से भविष्य में वियोग होता जान कर और इस विचार से कि उसका विवाह अन्यत्र होने पर उसके पातिव्रत का नाश हो जायगा, उसके घर जाकर सब कच्चा चिट्ठा कह सुनाया। उन्होंने अपने अपराध को स्वीकार करते हुए उस लड़की का कहीं विवाह न करने की प्रार्थना की और उसके पिता को दो घण्टे तक रो-रोकर समझाया और कहा कि लड़की ने मुझसे गान्धर्व विवाह किया है, अतः वह मेरी पत्नी है। मैं ब्राह्मण हूँ, आप मरहठे हैं, यदि हमें यह लड़की दे देवें तो हम अपनी भूल सुधार कर गार्हस्थ्य जीवन में रह सकते हैं। लड़की भी स्वामी जी पर अत्यन्त ही प्रेम करती है। सुनते हैं कि उसने यह भी कहा है कि मैं अब विवाह न करूँगी। शरीर एक पति को अर्पण कर चुकी। गुरु-दरबार में मैंने उनका और उन्होंने मेरा हाथ पकड़ लिया। अब मैं पातिव्रत से नहीं डिगूँगी। आत्मघात कर लूँगी, पर दूसरी शादी न करूँगी।

पिता की इच्छा ज़बरदस्ती विवाह करने की है, पर बालिका नहीं मानती। पिता ने स्वामी जी की प्रार्थना ठुकरा दी और अन्त में स्वामी जी को भी दादा-दरबार छोड़ना पड़ा। उनकी इच्छा अभी तक यही है कि मेरी भूल तो हुई, पर जिसके कौमार्य का हरण मेरे हाथ से हुआ है उसके सतीत्व की रक्षा मरते दम तक करना मेरा धर्म है। स्वामी जी ने अभी तक ब्रह्मचर्य का पालन किया

है और वे शपथपूर्वक कहते हैं कि यह उनकी पहली ही भूल है, जिसको वे सुधारना भी अपना कर्त्तव्य समझते हैं।

स्वामी जी का पतन तो महान हुआ है, परन्तु उनका सत्य और धैर्य प्रसंशनीय है। उन्होंने स्वयम् अपनी भूल को ज़ाहिर किया। चाहते तो इस ग़लती को पचा डालते, परन्तु उनका कहना है—"मेरे सुख से रहने पर भी मुझे रात-दिन यह यन्त्रणा लगी रहती है कि एक निर्दोष बालिका को धोखा देकर उसका सर्वनाश मैंने कर डाला (क्योंकि, बालिका का कहना है कि या तो अविवाहिता रहूँगी, या स्वामी जी के पास रहूँगी अथवा आत्म-हत्या कर लूँगी।), यदि भूल हो गई है तो मैं उस लड़की को अपने मस्तक पर धारण करूँगा और गार्हस्थ्य-जीवन बिता कर उसे अपनी टूटी-फूटी झोपड़ी की गृहलक्ष्मी बनाऊँगा।" उन्होंने संन्यास वेष का त्याग कर दिया है और अब वे कोई नौकरी करने का इरादा करते हैं। उनका यह भी कहना है कि यदि पिता ने मुझे लड़की दे दी तो अच्छा, नहीं तो उसीके प्रेम में शरीर का अन्त कर डालूँगा।

सम्पादक जी, जहाँ इस घटना को सुन कर मुझे रोष हुआ वहाँ यह सन्तोष भी होता है कि दण्डी स्वामी ने धैर्य के साथ अपनी भूल स्वीकार की और एक सच्चे प्रेमी की तरह उस लड़की से विवाह कर उसके सतीत्व की रक्षा करने को तैयार हैं। उन्होंने भयङ्कर अपकीर्ति व अपमान को सहन करते हुए भी सचाई के साथ अन्त तक बालिका का साथ देने का निश्चय किया है। अब भी लड़की के माता-पिता को दुराग्रह छोड़ देना चाहिए। लड़की को आगे भ्रष्टाचार से बचाने में ही अब कल्याण है। मेरी राय में अब लड़की के पिता को वही करना उचित है, जिससे लड़की के सतीत्व की रक्षा हो सके।

[इस सम्बन्ध में हमारे पास स्वयं दण्डी स्वामी का लिखा हुआ एक पत्र भी आया है, परन्तु उसके बहुत लम्बा होने के कारण तथा इन दोनों पत्रों का आशय एक ही होने के कारण हम यहाँ केवल इसी पत्र को प्रकाशित कर रहे हैं। यह कहानी बहुत शिक्षाप्रद है। इसके अनेक पहलू हैं। और उन सब पहलुओं पर विचार करके पाठकगण अनेक उत्तम शिक्षाएँ ग्रहण कर सकते हैं।

हमारी सम्मति में इस सम्बन्ध में दो बातें पूर्णतः स्पष्ट हैं। पिता ने निर्जन रात्रि में नवयौवना कन्या को स्वामी जी की सेवा के लिए भेज कर एक भयङ्कर भूल की और अब उसे स्वामी जी से पृथक करने की चेष्टा करके उससे भी बढ़ कर भयङ्कर भूल करने पर तुले हुए हैं। दूसरी बात यह है कि स्वामी जी ने एक तरुणी की सेवा स्वीकार करके घोर अधर्म किया, परन्तु हर्ष की बात है कि अब वह अपनी भूल का मार्जन करने के लिए तत्पर हो गए हैं। इतनी सच्चाई के साथ अपनी भूल को स्वीकार करने वाले पुरुष भी आजकल कहाँ मिलते हैं? यदि इस पत्र की बातें सच हैं तो लड़की की इच्छा भी ज़ाहिर ही है। इस कहानी में सत्य और असत्य दोनों प्रत्यक्ष हैं। यदि निष्पक्ष बुद्धि और न्याय-निष्ठा से विचार किया जाय तो इस समय कौन पक्ष सच्चे रास्ते पर है और कौन पक्ष ग़लत रास्ते पर तथा आगे का क्या कर्त्तव्य है, इसे निश्चित करने में कोई कठिनाई न होगी।

—सम्पादक 'चाँद']

* * *

अन्धविश्वास का राज्य

इस बीसवीं शताब्दी में भी हिंदू समाज में किस-तरह अन्धविश्वास का राज्य फैला हुआ है, इसका एक करुणाजनक उदाहरण नीचे के पत्र में मिलेगा :—

श्रीमान् सम्पादक जी,

नमस्ते।

मैं अग्रवाल कुलोत्पन्न सधवा होते हुए भी विधवा हूँ। मेरा वयस इस समय २२ साल के लगभग है। मुझे गृह में इतनी उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता है कि शायद ही ऐसी अमानुषिकता का दूसरा उदाहरण मिले। बात-बात में लात, घूसों, डण्डों से पीटना, बात-बात में चुड़ैल, भूतनी, डाकिनी, पिशाचिनी इत्यादि अपशब्दों से अपमानित करना एक साधारण बात हो गई है। इसका कारण यह है जिस दिन मैं ससुराल में आई थी,

उसी दिन मेरे श्वसुर का हैज़े से देहावसान हो गया था और उसके तीसरे दिन पतिदेव की छोटी बहिन का शरीरान्त हो गया था। बस, उसी दिन से मैं समस्त परिवार को काँटे की तरह खटकने लगी। अब आप ही बतलाइए इसमें मेरा क्या दोष? मैंने तो किसी को ज़हर दे के मार ही नहीं दिया। भवितव्य अमिट है। इसमें किसी का क्या वश? लेकिन सास-ननद और मुहल्ले की अन्धविश्वासिनें मेरे ऊपर ही लाञ्छन लगाती हैं। मैं यहाँ पर भली प्रकार भोजन तक नहीं पाती हूँ। बासे-तिबासे, रूखे-सूखे टुकड़ों पर ही निर्वाह करती हूँ। ख़ैर, मुझे इस पर भी सन्तोष है। परन्तु जब मुझे बाँझिनी, कुलघातिनी आदि कह के पुकारा जाता है, तब मेरा हृदय जल उठता है।

सम्पादक जी, पति के आचरणों पर और उनकी अस्वस्थता पर कोई ध्यान नहीं देता। वह सन्तानोत्पादन करने में सर्वथा असमर्थ हैं। समस्त दोषारोपण मेरे ऊपर ही किया जाता है। मेरे पतिदेव छात्रावस्था में अनैसर्गिक मैथुन करने-कराने से नपुंसक हो गए हैं। इस कारण उनको इतनी शर्म है कि पास आना तो दूर रहा, बात तक नहीं करते। यदि किसी समय उनसे मेरा बोलने का मौक़ा लगा भी और सास-ननद का दुर्व्यवहार वर्णन किया तो प्रथम तो बोलते ही नहीं। यदि मेरे विशेष आग्रह करने पर बोले भी तो ऐसा मालूम होता है मानो बिजली कड़क कर फट पड़ी। सो भी मेरी तरफ़ न देख कर सास से कहने लगते हैं कि यह हत्यारी मुझे अच्छी तरह खाने-पीने भी नहीं देती। रात-दिन कलह किए रहती है। फिर सास जी रुई की तरह धुनती हैं और कहती हैं कि छिनाल ने घर को तो चौपट कर दिया। घर आते ही ससुर को खा लिया, × × × को खा लिया, अब ख़सम को भी खाएगी राँड़। तू होते ही क्यों न मर गई? मेरा तो तूने बण्टाधार कर दिया।

सम्पादक जी, मैं अब ऐसी अवस्था में क्या करूँ? अब दुःख असह्य हो गया है। अब कष्ट सहन नहीं किया जाता। अन्याय की पराकाष्ठा हो गई। न तो माता-पिता के यहाँ ही कोई मेरी सुनवाई है। माता-पिता से जब कभी सास का दुर्व्यवहार वर्णन करने का मौक़ा मिलता है तो वह यही उत्तर देते हैं कि मेरा क्या क़सूर? मैंने तो गृह अच्छा ही देख कर विवाह किया था। यह सुन कर मैं जी मसोस के रह जाती हूँ। अपने दुर्भाग्य पर बहुत रोती हूँ, पर अब रोने से भी जी ऊब गया। मैंने अभी तक अपना सतीत्व सुरक्षित रक्खा है, मन को विचलित नहीं होने दिया। क्योंकि मैंने धार्मिक पुस्तकों का अध्ययन किया है। मैं हिन्दी तथा संस्कृत का भी थोड़ा बहुत ज्ञान रखती हूँ। पर यह ज्ञान कब तक रहेगा? प्राकृतिक व्यवहारों की अवहेलना मैं कहाँ तक करूँगी?

सम्पादक जी, स्थानाभाव से अधिक नहीं लिख सकती। आप 'चाँद' में अपनी सम्मति प्रकट कीजिए कि मुझे ऐसी स्थिति में क्या करना चाहिए।

[वास्तव में हिन्दू समाज के सामने यह एक विकट समस्या है कि इन कुसंस्कारों और अन्धविश्वासों से इस अभागे समाज का उद्धार कैसे हो। नई बहुओं के आगमन के थोड़े ही दिन बाद घर के किसी आदमी की जहाँ मृत्यु हुई कि फ़ौरन उस मृत्यु की सारी जवाबदेही बेचारी निरपराध बहुओं पर लाद दी जाती है, और इसके लिए उन्हें आजन्म इस बेरहमी और ऐसी क्रूरता के साथ कोसा जाता है कि बेचारियों के जीवन का एक-एक क्षण पहाड़ हो जाता है, काटे नहीं कटता। वे दिन-रात मौत के लिए तरसती रहती हैं। इस महिला की भी ऐसी ही दुर्दशा की जा रही है। और कौन जानता है कि हमारे समाज में ऐसी त्रस्त महिलाओं की संख्या आज कितनी है?

हिन्दू स्त्रियों और पुरुषों में यदि मनुष्यत्व का लेशमात्र भी शेष रह गया हो तो उन्हें अपने पास-पड़ोस में ऐसा अमानुषिक अत्याचार होते हुए देख कर कभी चुप न बैठना चाहिए। क्या हैज़े से मरे हुए किसी जराजीर्ण बुड्ढे की मृत्यु के लिए एक निरपराध बालिका को इस तरह कोसते और सताते रहने में न्याय और विवेक का कुछ भी सम्पर्क है? हर एक सच्चे स्त्री और पुरुष को ऐसे अन्याय का अपनी पूरी शक्ति के साथ विरोध करना चाहिए और तब तक विश्राम न लेना चाहिए जब तक पीड़ित व्यक्ति की रक्षा का कोई उपाय न निकल आवे।

यदि इस महिला के घर की औरतें और मर्द उसे अपने घर में रखना चाहते हैं, तो एक मनुष्य की तरह रक्खें, और यदि नहीं रखना चाहते तो उन्हें एक निरपराध व्यक्ति को इस तरह सताने का क्या अधिकार है ? यदि वह सचमुच पिशाचिनी या भूतिनी है, जैसा कि उसके घर वाले मूर्खतावश समझते हैं, तो वे उसे अपने घर से क्यों नहीं निकाल देते ? हिन्दू समाज इतना मूर्ख और जाहिल हो गया है कि वह ऐसी स्त्रियों को न तो अच्छी तरह जीने देता है और न मरने ही देता है।

नपुंसक पुरुषों की स्त्रियों पर तो हमारे समाज में ऐसे-ऐसे ग़ज़ब ढाए जा रहे हैं कि सुन कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। इसी कहानी को देखिए। बेचारी स्त्री का क्या दोष है ? जब पुरुष ही नपुंसक है तब वह घर वालों को सन्तान कहाँ से पैदा करके दे ? पर हिन्दू समाज इतना मूढ़ हो रहा है कि वह इन छोटी-छोटी बातों को भी नहीं समझता। वह न तो ऐसी स्त्रियों को पुनर्विवाह करने देगा, न उन्हें घर से निकल जाने देगा और न यही सहन करेगा कि वे सन्तानहीन रहें ! इस मूर्खता का भी कोई अन्त है ?

इस दशा में जो स्त्रियाँ पड़ी हुई हों उन्हें हमारी एक ही सलाह है। उन्हें ऐसे सभी अत्याचारों का वीरता के साथ विरोध करना चाहिए। यदि घर वालों के पत्थर के दिल न पसीजें तो उन्हें ऐसे घर को छोड़ देना चाहिए और अपने लिए दूसरे घर की खोज करनी चाहिए। आजकल ऐसी स्त्रियों से विवाह करने के लिए उद्यत होने वाले नवयुवकों की कमी देश में नहीं है। जगह-जगह ऐसी स्त्रियों की सहायता के लिए सभाएँ भी स्थापित हैं। उन्हें इन सभाओं की सहायता से अपने योग्य कोई युवक ढूँढ़ कर शादी कर लेनी चाहिए। दुःखी और त्रस्त स्त्रियों के उद्धार का हमें यही एक मार्ग दिखाई देता है।

निस्सन्देह इस मार्ग पर चलने के लिए असाधारण आत्मबल की आवश्यकता है। परन्तु बिना आत्मबल के प्राणी को संसार में सुख कहाँ नसीब है ? सुख चाहते हैं तो अपने पैरों पर खड़े होइए और जो आपको सताना चाहता है, वह चाहे अपना हो या बेगाना, हिन्दुस्तानी हो या अङ्गरेज़, उसे ठोकर मार कर अपने रास्ते से हटा दीजिए। सुख और शान्ति का यही मार्ग है।

—सम्पादक 'चाँद']

मेम साहबा—(एक लँगड़े फ़क़ीर से) ले लँगड़े, एक पैसा ले। तेरे लँगड़ेपन पर मुझे तर्स आता है। ख़ैर, फिर भी अन्धा होने से तो लँगड़ा होना अच्छा है।

लँगड़ा—आप ठीक कहती हैं; क्योंकि जब मैं अन्धा था तो लोग मुझे खोटा पैसा दिया करते थे।

* * *

ख़ुशामदी प्रेमी—(कमरे के भीतर आते हुए) प्रिये, तुम तो हारमोनियम ख़ूब बजाती हो। मैं बाहर खड़ा-खड़ा सुन रहा था।

प्रेमिका—मैं बजाती नहीं थी, बल्कि हारमोनियम पर की गर्द झाड़ रही थी।

ख़रीदार—तुमने कहा था कि मेरी दवा एक ही रात में फ़ायदा करती है। मगर कल मैंने उसे खाया, कुछ भी फ़ायदा न हुआ।

दवा बेचने वाला—मगर यह मैंने कब कहा था कि यह किस रात को फ़ायदा करती है ?

* * *

डॉक्टर—कहिए श्रीमती जी, आपके पति अच्छे हैं ? वही खाना खाते हैं न, जो मैंने उनके लिए बताया है ?

श्रीमती—नहीं, वह कहते हैं कि चार दिन और ज़िन्दा रहने की ख़ातिर मैं भूखों मरना नहीं चाहता।

केसर की क्यारी

फिर मुझे लोग लिए जाते हैं ज़िन्दाँ की तरफ़ !
यह नहीं साफ़ बताते कि बहार आई है !!
मुज़दए मोसमे-गुल मुझसे छुपे नामुमकिन !
कोई यह कान में कह देगा बहार आई है !!

—"नूह" नारवी

तीलियाँ सब्ज़ हुई जाती हैं देख ऐ सय्याद !
यूँ क़फ़स में ख़बरे फ़स्ले बहार आई है !!

—"बलीग़" लखनवी

दरे-ज़िन्दाँ की तरफ़ देख के रह जाता हूँ !
जब यह सुनता हूँ कि दुनिया में बहार आई है !!

—"मजज़ूब" लखनवी

अदम आबाद में दीवानों ने हलचल कर दी !
बाद मरने के यह सुन कर कि बहार आई है !!

—"शफ़ीक़" लखनवी

हम तो मर जायँगे बेमौत तड़प कर सय्याद !
क्या यह सच है कि गुलिस्ताँ में बहार आई है !!

—"सफ़ा" अकबराबादी

गुल हँसे बर्क़ नशेमन पे गिरी मैं हुआ क़ैद !
मेरे गुलशन में ख़िज़ाँ बन के बहार आई है !!

—"क़दीर" लखनवी

और सब कहना असीराने-क़फ़स से सय्याद !
यह न कहना कि गुलिस्ताँ में बहार आई है !!

—"नशीर" लखनवी

फिर भी कहते हो कि है क़िस्सये-ग़म बेतासीर !
कोशिशें की हैं हँसी की तो हँसी आई है !!

—"सिराज" लखनवी

देखते रहते हैं मरक़द में भी ख़्वाबे-हस्ती !
मौत आई है हमें या हमें नींद आई है !!

—"सग़ीर" इलाहाबादी

ज़िन्दगी में तो शबे-ग़म न कभी आँख लगी !
गोशए क़ब्र में आया हूँ तो नींद आई है !!

—"सरशार" लखनवी

मुझसे पूछे कोई मैं ख़ूब समझता हूँ इसे !
जान लेने के लिए याद तेरी आई है !!

—"ग़ाफ़िल" इलाहाबादी

कह गए अहले-चमन यह तेरे दीवानों से !
होश में आओ ज़माने में बहार आई है !!
फूट कर पाँव के छाले मेरे लाए यह रङ्ग !
बाग़ तो बाग़ है सहरा में बहार आई है !!

—"बिस्मिल" इलाहाबादी

क्या कहूँ झूठ अकेला हूँ अकेला तो नहीं,
एक में एक यह मेरी शबे-तनहाई है

—"नूह" नारवी

जितने आते हैं वह इलज़ामे जुनूँ देते हैं
सब का मुँह देखने वाला तेरा सौदाई है

—"बहार" लखनवी

आज तोबा जो न टूटी तो क़यामत होगी
मैंने साक़ी की जवानी की क़सम खाई है

—"मेहदी" लखनवी

जानता हूँ कि सितम आपके महदूद नहीं,
मैंने भी आह न करने की क़सम खाई है

—"सफ़ा" अकबराबादी

साक़िया मै से मैं तोबा करूँ तोबा तोबा,
मैंने दुनिया के देखाने को क़सम खाई है

—"क़दीर" लखनवी

बातें मैं तेरे तसव्वर से किया करता हूँ,
कहने वाले मुझे कहते हैं कि सौदाई है !

—"सरशार" लखनवी

जान शीशे की मुझे इश्क़ में कुछ क़दर नहीं,
ज़िन्दगी जैसे कहीं मैंने पड़ी पाई है,

—"सिराज" लखनवी

शमआ महफ़िल की दिलेज़ार ही तक़लीद करे,
उसने जलने की बदौलत यह जगह पाई है

—"शातिर" इलाहाबादी

दो घड़ी दिल के बहलने का सहारा भी गया,
लीजिए आज तसव्वर में भी तनहाई है

—"मुज़्तर" लखनवी

दस्त बरदारिए उलफ़त की तमन्नाई है !
मैं समझता हूँ यह जैसी तेरी अँगड़ाई है !!
पूछिए बहरे-ग़मे इश्क़ का रुतबा हमसे !
इसमें जो मौज है वह हुस्न की अँगड़ाई है !!
हाथ मुझको दिले मुज़्तर से उठाना ही पड़ा !
किस क़दर सर्व शिकन आपकी अँगड़ाई है !!
नाज़ो अन्दाज़ में आज़ारो सितम ढाने में !
तुझसे दो हाथ ज़ियादा तेरी अँगड़ाई है !!

—"नूह" नारवी

झोंक खाकर हुई किस नाज़ से सीधी क़ातिल !
यह लचक तेग़ की है या तेरी अँगड़ाई है !!

—"मुनीर" लखनवी

मुतमईन बढ़ सकूँ बैठे बज़्में जहाँ में क्यों कर !
गरदिशे लेलोनिहार आपकी अँगड़ाई है !!
कौंद जाती है ज़माने की नज़र में बिजली !
बर्क़ लरज़ाँ मेरे महबूब की अँगड़ाई है !!

—"शातिर" इलाहाबादी

सब मेरे दिल की रगें खिंच गईं ओ मस्ते-शबाब !!
तू तो यह कह के बरी हो गया अँगड़ाई है !!

—"सहरा" लखनवी

चौंक कर जाग उठे क़ब्र में सोने वाले !
यह क़यामत भी किसी शोख़ की अँगड़ाई है !!

"ग़ाफ़िल" इलाहाबादी

खुल गए नज़अ में असरारे तिलस्मे-हस्ती !
ज़ीस्त कहते हैं जिसे मौत की अँगड़ाई है !!
मैं किसी रोज़ दिखाऊँ दिले सद चाक अदा !
तुझको मालूम तो हो क्या तेरी अँगड़ाई है !!
जलवए रोज़े अज़ल ने मुझे बेचैन किया !
पहली दुनिया में यह पहली तेरी अँगड़ाई है !!

—"बिस्मिल" इलाहाबादी

ढूँढ़ती क्यों न रहे उसको अबद तक दुनिया !
जिसने छुपने की अज़ल ही में क़सम खाई है !!

—"बिस्मिल" इलाहाबादी

आज आईने में वह महवे ख़ुद आराई है
क्या तमाशा है तमाशा भी तमाशाई है

—"नूह" नारवी

वह जो देखें मुझे आइना बना कर अपना !
फिर तो कोई न तमाशा न तमाशाई है !!

—"शफ़ीक़" अकबराबादी

या इलाही यह ग़श आया है कि मौत आई है !
आँखें क्यों बन्द किए उनका तमाशाई है !!

—"अज़ीज़" सलोनी

दिल मेरा देख सके हुस्न के जलवे क्यों कर !
सौ तमाशे हैं, मगर एक तमाशाई है !!

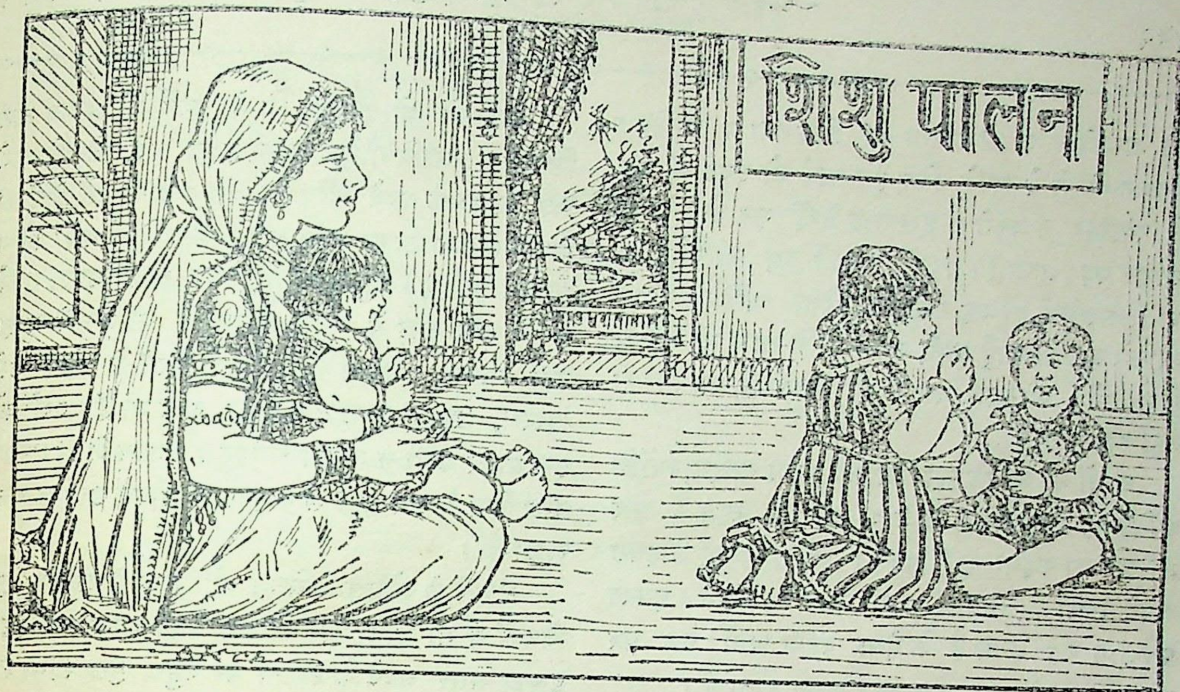
—"शातिर" इलाहाबादी

दिल की हैरत ने बनाया उन्हें महवे हैरत !
जिसको समझे थे तमाशा वह तमाशाई है !!

—"ग़ाफ़िल" इलाहाबादी

ग़ौर करने पे हक़ीक़त यह नज़र आई है !
ख़ुद तमाशा भी है वह ख़ुद ही तमाशाई है !!
यह समझ कर कोई परदे से निकलता ही नहीं !
कि ख़ुदाई मेरे जलवे की तमाशाई है !!

—"बिस्मिल" इलाहाबादी



बाल-शिक्षा

आजकल हमारी माताएँ तथा बहिनें प्रायः इस बात को नहीं जानतीं कि बच्चों को उचित शिक्षा किस तरह से देनी चाहिए। यही कारण है कि आजकल भारतवर्ष के बच्चे युवावस्था में उस उच्च पद तथा विद्वत्ता को नहीं पहुँचते, जिस पर प्राचीन काल में ऋषि-मुनियों की आज्ञानुसार चलने से पहुँचते थे। आजकल की प्रणाली कुछ ऐसी बदल गई है कि हम लोग उन आवश्यक बातों को बच्चों को नहीं सिखलाते, जिनसे वे स्वावलम्बी तथा सदाचारी बनें।

हम लोग शुरू से ही बच्चे को ए, बी, सी, डी या क, ख, ग पढ़ाना ही शिक्षा का आदर्श समझते हैं। परन्तु यदि यथार्थ में देखा जाय तो बच्चे की वास्तविक शिक्षा उसके चरित्र का सङ्गठन करना है। यह कार्य गर्भावस्था से ही आरम्भ हो जाता है। स्त्री के आचरण का प्रभाव उसकी गर्भस्थ सन्तान पर पड़ता है। यदि स्त्री का आचरण अच्छा हुआ तो सन्तान सदाचारिणी होती है और यदि बुरा हुआ तो दुराचारिणी। इसी कारण हमारे पूर्वजों ने यह बतलाया है कि स्त्री को गर्भावस्था में अपनी रहन-सहन तथा आचार-विचार को नियमबद्ध तथा पवित्र रखना चाहिए। उसे अच्छे-अच्छे विषय की पुस्तकों का अध्ययन, तथा ऋषि-महर्षि और सदाचारी जनों के जीवन-चरित्रों का पाठ करना चाहिए।

बहुधा हमारी माताएँ तथा बहिनें यह कहा करती हैं कि अभी उनका अमुक पुत्र बच्चा है, उसे अभी लिखने-पढ़ने की आवश्यकता नहीं है, पर कदाचित वे यह नहीं जानतीं कि बच्चे की शिक्षा गर्भावस्था से ही प्रारम्भ हो जाती है। बच्चों में नक़ल करने की शक्ति बहुत होती है। वे जो कुछ हम लोगों को करते तथा कहते देखते हैं, उसीका अनुकरण करने लगते हैं। और यह अनुकरण करना ही उनके चरित्र सङ्गठन की प्रथम श्रेणी है। इस कारण भूल कर भी बच्चों के सम्मुख न तो कोई अश्लील शब्द मुँह से निकालना चाहिए और न कोई बुरा काम ही करना चाहिए। शुरू से ही बच्चों को अच्छी आदत सिखाने का प्रयत्न करना चाहिए। उन्हें अच्छी-अच्छी बातों की महिमा, आदर्श मनुष्यों की जीवनी तथा सद्-गुणों के लाभ बतला देना चाहिए। साथ ही साथ दुर्गुणों के दुष्परिणाम से भी उन्हें अनभिज्ञ न रखना चाहिए।

माता-पिता केवल अपने चरित्रों से ही बच्चों को अच्छा नहीं बना सकते। बच्चा चलने-फिरने योग्य होते ही और लड़कों से मिलने-जुलने लगता है। अतः बच्चों के साथ खेलने वाले और लड़कों की ओर भी माता-पिता का ध्यान रहना चाहिए। बच्चों को बुरी सङ्गत से सदा बचाना चाहिए, क्योंकि सङ्गत का असर बहुत पड़ता है।

बच्चों से यदि कोई भूल, अपराध या हानि हो जाय

तो उनको क्रोध से डाटना या झिड़कना न चाहिए। ऐसा करने से वे अपने किए हुए कार्य को दण्ड के भय से स्वीकार न करेंगे। इस तरह उन्हें झूठ बोलने की आदत पड़ जायगी। बच्चों को जो कुछ भी बतलाना या सिखलाना हो वह प्रेमपूर्वक होना चाहिए। बच्चों को जो बातें सिखाई जायँ, उनके हानि-लाभ भी समझा दिए जायँ। जो बात प्यार से हो सकती है, वह मार से नहीं हो सकती।

बच्चों को अधिक प्यार भी नहीं करना चाहिए, क्योंकि अधिक लाड़-प्यार से वे प्रायः ढीठ हो जाते हैं और माँ-बाप का कहना नहीं मानते। प्रायः माताएँ मोहवश अपने बच्चों के अवगुणों पर भी ध्यान नहीं देतीं। इसका परिणाम यह होता है कि ऐसा बच्चा आगे चल कर माता-पिता को अपमानित करने वाला होता है।

बच्चों को शिक्षा देने में सर्वदा इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि बच्चे का हृदय एक कच्चे घड़े अथवा छोटे पौधे के समान है। जिस प्रकार कच्चे घड़े पर कोई निशान करके पकाने पर वह निशान वैसा ही बना रहता है, इसी तरह छोटे बच्चों के हृदय पर जो संस्कार बचपन में पड़ जाते हैं वे आजन्म नहीं मिटते। छोटा पौधा इच्छानुसार मोड़ा जा सकता है। बालक का चरित्र भी इच्छानुसार बनाया जा सकता है। इसलिए माताओं को चाहिए कि वे अपनी सन्तान के हृदय पर प्रारम्भ से ही अच्छी-अच्छी बातों का प्रभाव डालें।

जब बच्चा बोलने-चालने और साधारण बातों को समझने लगे तो उसे अपने ग्राम तथा पिता इत्यादि का नाम याद करा देना चाहिए। अपने माता-पिता, भाई-बहन इत्यादि को आदर सहित सम्बोधन करना तथा उनसे वार्तालाप करना भी सिखाना चाहिए। प्रायः यह भी देखने में आया है कि बच्चों को कहानी सुनने तथा याद करने का बड़ा शौक़ होता है। हमारे घरों में अभी तक यह प्रथा चली आती है कि सन्ध्या समय सोते वक्त हमारी माताएँ अथवा घर की बूढ़ी स्त्रियाँ बच्चों को कहानियाँ सुनाती हैं। किन्तु शोक है कि हमारी माताओं की अज्ञानता के कारण वे शिक्षाप्रद नहीं होतीं और उनसे मन बहलाव के अतिरिक्त बच्चों को कोई लाभ नहीं होता।

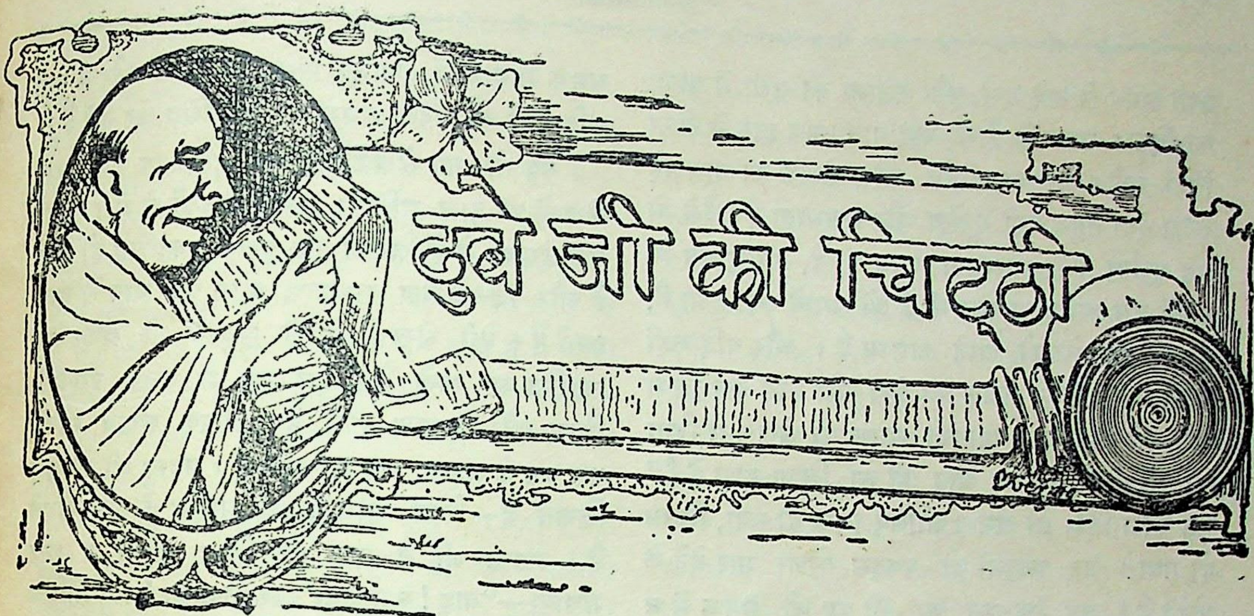
माताओं को चाहिए कि वे बच्चों को सरल तथा शिक्षाप्रद कहानियाँ सुनाने का प्रयत्न करें, जिससे आगे चल कर उनके बच्चे चरित्रवान बन सकें। भूतों-प्रेतों की या अन्य भय उत्पन्न करने वाली कहानियाँ बच्चों को न सुनानी चाहिए। बहुधा माताएँ, जब उनका बच्चा उनके घर के काम-काज में बाधा डालता है या उनकी आज्ञा नहीं मानता, अपना कार्य सिद्ध करने के लिए उसे 'हव्वा', 'लू-लू' इत्यादि कह कर डरवाती हैं। बच्चों को इस प्रकार कभी न डराना चाहिए। बचपन में ही डर का बीज दिल में जम जाने से लड़का आजीवन डरपोक बना रहता है।

बच्चों के कोमल मस्तिष्क को शुरू में अधिक गूढ़ विषयों से भी भरने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। इसका असर बच्चे के स्वास्थ पर बहुत बुरा पड़ता है। और बालक के स्वास्थ्य पर ध्यान देना माता का पहला कर्त्तव्य है। बच्चों को ख़ूब खेलने देना चाहिए। इससे बालक बलवान होते हैं।

पाठकगण! आपने महाभारत तो अवश्य ही पढ़ा होगा। उसमें आपने देखा होगा कि किस तरह अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु ने सोलह वर्ष की अवस्था में ही महाभारत युद्ध में चक्रव्यूह के अन्दर लड़ कर बड़े-बड़े महारथियों के दाँत खट्टे कर दिए थे। इसका कारण यही था कि अर्जुन ने अपनी पत्नी सुभद्रा से, जब अभिमन्यु गर्भ में था, चक्रव्यूह का वर्णन किया था। उसका प्रभाव गर्भ-स्थित बालक अभिमन्यु पर यह हुआ कि वह जीवन में एक महान पराक्रमी युद्धवीर हो सका।

उपरोक्त रीत्यनुसार शारीरिक और धार्मिक शिक्षा देकर ही कोई माता अपने बच्चों को कर्मवीर बना सकती है। ऐसे ही बच्चे युवा होने पर अपने माता-पिता तथा देश का नाम संसार में उज्ज्वल करके अपनी मातृ-भूमि की सेवा करने के योग्य बनते हैं। अतः यदि आप चाहते हैं कि आपकी सन्तान सदाचारी, धर्म-रक्षक, कुल का मुख उज्ज्वल करने वाली, तथा मातृभूमि का सच्चा सेवक बने तो बालकों की शिक्षा में कभी असावधानी न करें, क्योंकि इन्हीं पर हमारी और हमारे देश की भावी मान-मर्यादा निर्भर है।

—आनन्दस्वरूप शर्मा



अजी सम्पादक जी महाराज,

जय राम जी की !

आजकल हिन्दी-साहित्य-क्षेत्र में बड़े आनन्द हैं। जिधर देखिए लेखक और कवि घूम रहे हैं। जो एक प्रेम-पत्र लिख सकता है वह लेखक है, और जो "तीन पाँच होते हैं आठ" लिख सकता है वह कवि है। आज से बीस वर्ष पहिले यह कौन जानता था कि हिन्दी-साहित्य-क्षेत्र आगे चल कर इतना उर्वरा प्रमाणित होगा कि लेखक और कवि लोग घास की तरह उत्पन्न होंगे। घास है भी बड़े काम की वस्तु। आजकल बाग़-बग़ीचों में देखिए तो फूलों की अपेक्षा घास ही अधिक मिलेगी। "ग्रास लॉन" कितनी आवश्यक वस्तु है। यह सब बँगला-वासी (बँगलों में रहने वाले) लोग जानते हैं। हरी-हरी घास देखने से आँखों को भी लाभ पहुँचता है। कवि और लेखकगणों की इस भीड़ को देख कर हिन्दी-प्रेमियों के नेत्र ठण्ढे हो जाते हैं। यदि आँखें बन्द करके हिन्दी-साहित्य-क्षेत्र में हाथ डालिए तो किसी लेखक अथवा कवि का सिर हाथ में आएगा। लेखकों में उपन्यास और गल्प-लेखक अधिक मिलेंगे और कवियों में छायावादी कवि। क्योंकि इन दोनों विषयों में सफलता प्राप्त करना दाल-भात खाने के समान है। इन दोनों कार्यों के लिए न अधिक शिक्षा की आवश्यकता है, न अध्ययन की। दो प्रेमियों का झगड़ा ले लिया—कभी उन्हें मिला दिया, कभी अलग कर दिया—दो एक हत्याएँ और आत्म-हत्याएँ करा कर अन्त में प्रेमी और प्रेमिका का विवाह करा दिया—चलिए एक गल्प अथवा उपन्यास तैयार हो गया। और तारीफ़ यह है कि काग़ज़, क़लम और सियाही से लेकर सम्पादक और प्रकाशक के पास भेजने के लिए पोस्टेज तक सब अपना ही है, उधार लिया अथवा चोरी किया हुआ नहीं। मौलिकता इसीका नाम है ! एक ज़टलकाफ़िया उड़ाया, उपन्यास तैयार हो गया; एक गप्प हाँक दी, गल्प तैयार हो गई। कितना सहल नुस्ख़ा है। रही भाषा की अशुद्धियाँ; सो उसके लिए तो सम्पादक लोग पले ही हुए हैं। इतना भी न करेंगे तो फिर किस मर्ज़ की दवा हैं। सम्पादक ने भी सोचा कि मुफ़्त में एक गल्प हाथ लगी—पत्र के छः पृष्ठ भरे जाते हैं—चलने दो। इधर लेखक साहब की गल्प जो प्रकाशित हुई तो अङ्क हाथ में लिए घूम रहे हैं। किसी ने पूछा—"क्यों साहब, यह क्या है ?" तो आपने मुँह बना कर उत्तर दिया—"कुछ नहीं—पत्र का अङ्क है, अबकी अच्छा निकला, लीजिए देखिए।" यदि किसी ने लेकर ध्यानपूर्वक देखा और पूछा—"यह लेख आप ही का लिखा हुआ है ?" तो बोले—"जी हाँ"। "अच्छा, आप लेखक भी हैं, यह मुझे आज मालूम हुआ।" यह शब्द सुन कर लेखक महोदय मुस्करा कर रह गए। और मन ही मन फूल कर कुप्पा हो गए। यदि किसी ने पत्र केवल सरसरी दृष्टि से देखकर लौटा दिया, उनके लेख और नाम पर ध्यान न दिया तो लेखक महोदय ने

उसी समय से उसे मूर्ख और असभ्य की सूची में प्रविष्ट कर दिया। वास्तव में है भी यही बात। पत्र हाथ में लेकर बिना प्रत्येक लेख का शीर्षक और लेखक का नाम पढ़े लौटा देना बहुत बड़ी मूर्खता और असभ्यता है। वैसे तो यह मूर्खता और असभ्यता क्षम्य भी है, परन्तु जब कि उसमें उस व्यक्ति का लेख भी है जो सामने खड़ा हुआ है, तब तो यह सोलहो आने अक्षम्य है। और यदि कहीं किसी ने पत्र लेकर लेखक का लेख और नाम देख लिया और उसे कोई अन्य आदमी समझ कर लेखक से बिना यह पूछे ही कि—"यह आप ही का लिखा हुआ है ?" पत्र लौटा दिया तो समझ लीजिए ग़ज़ब हो गया, सितम हो गया। वह आदमी तो एकदम गोली मार देने के योग्य है। सब देख-सुन कर भी दुष्ट की समझ में न आया। बज्र मूर्ख है। संसार में ऐसे मूर्खों का रहना उचित नहीं। ऐसे ही आदमियों के मारे साहित्य की उन्नति नहीं होती !

कविता में छायावाद की कविता बनाना उतना ही सरल है जितना कि भोजन में खिचड़ी पकाना। कोष खोल कर बैठ गए और पाँच-पाँच तथा दस-दस सेर के शब्द चुन लिए। उन्हें बिना छन्द और तुक का विचार किए हुए क्रियाओं के साथ सजा दिया—चलिए कविता तैयार हो गई। किसी ने पूछा—"इसका छन्द कौन सा है ?" उत्तर दिया—"यह नया छन्द है, हमने निकाला है।" तुक के लिए कह दिया अतुकान्त कविता है। रहे भाव, सो वे जितने ही अधिक समझ में न आवें उतनी ही कविता बढ़िया है। पढ़ने वालों में अधिकांश ऐसे होते हैं जो अपनी अल्पज्ञता प्रकट होने के भय से यह नहीं कहते कि—"इस कविता के भाव हमारी समझ में नहीं आए।" वे सोचते हैं कि हमारी समझ में नहीं आते तो बड़े गूढ़ और ऊँचे भाव होंगे। इसलिए कहने लगते हैं कि—"बड़ी सुन्दर कविता है, बड़े ऊँचे भाव हैं।" सम्पादक जी, मेरा यह निज का अनुभव है। जो व्यक्ति किसी कविता को पढ़ कर यह कहे कि—"इस कविता के भाव बड़े गहरे हैं, बड़े ऊँचे हैं, हर एक आदमी उन्हें नहीं समझ सकता" तो रुपए में पन्द्रह आने भर यह निश्चय समझ लीजिए कि वह व्यक्ति कविता को ख़ाक नहीं समझा। इसी प्रकार अधिकांश सम्पादकों को भी ऐसी कविताएँ, जो उनकी समझ में न आवें, अधिक पसन्द आती हैं और वे ऐसी कविताओं को बढ़िया समझ कर प्रकाशित कर देते हैं।

यह तो नए लेखकों की बात हुई, अब ज़रा पुराने लेखकों का हाल सुनिए। पुराने लेखकों से मेरा तात्पर्य उन लेखकों से है जिनकी कुछ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं और जिनके लेख सम्पादक लोग बड़े चाव से छापा करते हैं। ऐसे लेखकों में से कुछ ने तो अपने मठ स्थापित कर रक्खे हैं। इस मठ में उनके दस-बीस शिष्य और मित्रगण होते हैं। लेखक साहब स्वयम् उस मठ के महन्त बन कर रहते हैं। महन्त जी जो कुछ लिखते हैं—शिष्य लोग उसकी प्रशंसा के पुल बाँधते हैं। महन्त जी ने पादा तो शिष्य लोगों ने शोर मचाया—"वाह ! क्या मधुर स्वर निकाला ! क्या मौलिक स्वर है ! क्या कविता है !" महन्त जी की कृपा से शिष्य लोग लेखक और कवि बनते हैं। शिष्य लोग लेखक बन कर महन्त जी के लेख और कविताओं की आलोचना करते हैं। और उन्हें थोड़े ही दिनों में आचार्य अथवा सम्राट बना देते हैं। जहाँ दो-चार आलोचनाओं अथवा लेखों में उन्हें आचार्य तथा सम्राट लिखा गया, वहीं सम्पादक तथा प्रकाशक लोग भी उन्हें आचार्य और सम्राट मान कर उन्हें इसी उपाधि से अलङ्कृत करने लगते हैं। इतनी फ़ुरसत और इतनी सूझ किस भकुए में है कि पहले इस बात की छान-बीन तो कर ले कि वास्तव में वह आचार्य और सम्राट बनने योग्य है अथवा नहीं। जहाँ दो-एक लेखकों को आचार्य और सम्राट लिखते देखा, बस मान लिया कि वाक़ई यह आचार्य है, सम्राट है। ये आचार्य और सम्राट जो कुछ लिखते हैं वह हिन्दी की वस्तु नहीं; विश्व-साहित्य की चीज़ होती है। और उनकी लिखी हुई चीज़ का जवाब इङ्गलैण्ड, फ़्रान्स और रूस को छोड़ कर संसार में और कहीं नहीं मिलता। हिन्दुस्तान बेचारा तो झख मारता है—वह है किस गिनती में ? हिन्दुस्तान में अपना जवाब वे स्वयम् हैं। किसी की क्या मजाल जो उन्हें जवाब दे सके।

इधर-उधर हाथ मारने में ये लोग बड़े उस्ताद होते हैं। इस सफ़ाई से माल उड़ाते हैं कि बहुत कम लोगों को पता लगता है। और जिन्हें पता लग भी जाता है वे भी उनका कुछ नहीं कर सकते। प्रथम तो उनकी बात का विश्वास ही कौन करता है ? "वाह ! इतना

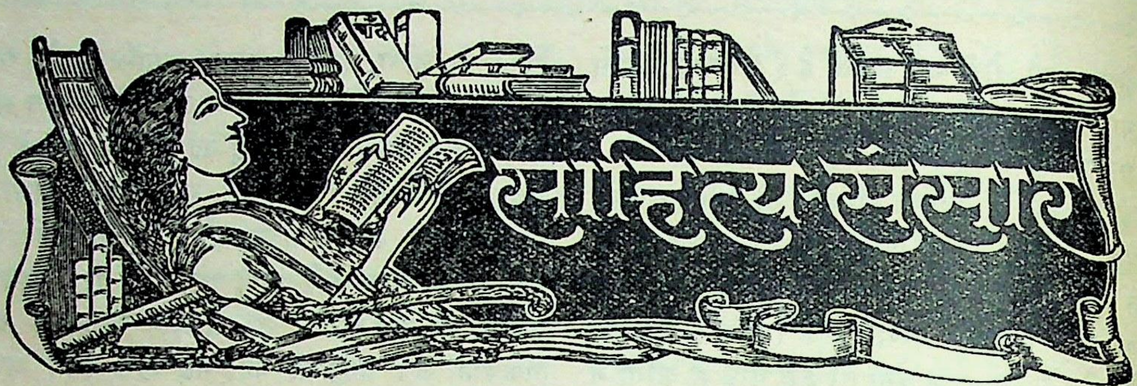
बड़ा लेखक कहीं चोरी कर सकता है ?" चलिए फ़ैसला हो गया। किसी ने कुछ लिखा भी तो शिष्यों ने उत्तर देना आरम्भ किया—इसमें भी महन्त जी का लाभ है—नाम ही होता है। "बदनाम भी होंगे तो क्या कुछ नाम न होगा ?" चार-छः दफ़ा पत्रों में खण्डन-मण्डन हुआ। महन्त जी का नाम छपा। सर्वसाधारण को पता लगा कि हाँ, यह भी कोई पाँच सवारों में हैं। कौन ठीक कहता है और कौन ग़लत—यह बात तो कुछ थोड़े से लोगों ने समझी—महन्त जी का नाम बहुत से लोग जान गए। यह लाभ क्या कुछ कम है ?

सम्पादक जी, इन महन्तों में कुछ ऐसे भी हैं, जो अपने शिष्यों की किसी सुन्दर कृति को अपने नाम से प्रकाशित करा लेते हैं और स्वयम् लिख कर अपने प्यारे शिष्य के नाम से छपवा देते हैं। गुरु और शिष्य का सम्बन्ध जो ठहरा—अदला-बदला चलता रहता है। स्वयम् लिख कर शिष्य के नाम से छपवा कर शिष्य को आगे बढ़ाना, यह तो गुरु का बड़प्पन है, इसमें कुछ कहने की गुञ्जायश नहीं। परन्तु शिष्य की चीज़ पर नियत ख़राब करना, यह ज़रा कम समझ में आता है। आख़िर बेचारे करें क्या ? रात-दिन लिखते-लिखते अपना दिमाग़ तो खोखला हो चुका। और कुछ न कुछ निकलते रहना चाहिए, अन्यथा यदि लोग महन्त जी को भूल जाएँगे तो आचार्य और सम्राट की कष्टसञ्चित उपाधि मुफ़्त में विलीन हो जायगी। अतएव शिष्यों के माल पर अधिकार जमाते हैं। किसी तरह नाम तो चलता रहे और पैसे भी आते रहें। क्योंकि पुरस्कार जो मिलता है उसे गुरु जी गुरुदक्षिणा में डकार जाते हैं—उसमें से शिष्य को पान खाने भर को देते हों तो देते हों—अन्यथा सब हज़म ! परन्तु यह है कलियुग—शिष्य लोग बाग़ी हो जाते हैं और भण्डाफोड़ कर देते हैं। ऐसे ही एक कलियुगी शिष्य के द्वारा अपने राम को इस रहस्य का पता लगा है।

सम्पादक जी, अब तो अपने राम की भी इच्छा है कि एक मठ स्थापित करें। दस-बीस चेलों को एकत्र करके अपनी प्रशंसा का ढोल पिटवावें और थोड़े ही दिनों में कोई उपाधि प्राप्त कर लें। परन्तु अपने राम कवित्त-भूषण, सवैया-रत्न, दोहा-कलानिधि, कवि-सम्राट, उपन्यास-सम्राट, गल्पाचार्य, कहानी-पितामह और आख्यायिका के नाना, इत्यादि समस्त उपाधियों को अपने अयोग्य समझते हैं; क्योंकि ये उपाधियाँ बहुत सस्ती हो गई हैं। अपने राम कोई नई उपाधि चाहते हैं। अतएव आप मेरे लिए कोई नई उपाधि अभी से सोच रखिए। उपाधि बढ़िया हो; क्योंकि मैं जो कुछ लिखूँगा वह विश्व-साहित्य की वस्तु नहीं, वरन् ब्रह्माण्ड-साहित्य की वस्तु होगी। उस साहित्य का जवाब तभी निकलेगा जब ब्रह्मा जी कोई नई सृष्टि रचेंगे अथवा किसी ऐसी भाषा में निकलेगा जिस भाषा को संसार में कोई न समझता हो। जो कुछ मैं लिखूँगा, उसको कोई भी न समझ सकेगा। जो समझेगा वह सीधा स्वर्गलोक को चलता बनेगा। वह स्वयम् न जायगा तो अपने राम उसे ज़बर्दस्ती भेज देंगे; क्योंकि अपने राम का लिखा हुआ समझने के पश्चात वह इस मर्त्यलोक में नहीं रहने पाएगा।

यह तो नाम कमाने की युक्ति हुई। परन्तु ख़ाली नाम कमाने से काम नहीं चलेगा। कुछ टके भी पैदा करने पड़ेंगे। इसके लिए अपने राम ने एक बड़ी सुन्दर युक्ति सोची है। एक एजेन्सी खोलेंगे। उसका नाम—"लेख और कविता प्रकाशित करावन एजेन्सी" होगा। उस एजेन्सी द्वारा ऐसे लेखकों और कवियों की कृतियाँ हड़प ली जाया करेंगी अथवा थोड़ा मूल्य देकर ख़रीद ली जाया करेंगी, जिनकी कृतियाँ सम्पादक लोग रख कर भूल जाया करते हैं और पोस्टेज भेजने पर भी वापस नहीं करते। उन कृतियों को थोड़ा नमक-मिर्च और मसाला लगा कर अपने राम अपने नाम से प्रकाशित कराया करेंगे और जो कुछ पुरस्कार मिलेगा वह सब का सब स्वयम् हड़प जाया करेंगे। अजी यह तो रोज़गार है, इसमें क्या चोरी। हमने एक लेख अथवा कविता आठ आने में ख़रीदी। अब हम उसे बीस-पचीस रुपए में बेचते हैं ? तो इसमें किसी के बाप का क्या इजारा ? और सम्पादक लोग बीस-पचीस रुपए लेख अथवा कविता पर तो देंगे नहीं, हमारे नाम पर देंगे। इसलिए हमारा यह डबल हक़ हो गया कि हम उसमें से मूल लेखक को एक झञ्झी कौड़ी भी न दें। एक कलदार अठन्नी तो पहले ही थमा चुके हैं। दोबारा कुछ देने की आवश्य-

(शेष मैटर १२७ पृष्ठ के पहले कॉलम में देखिए)



प्रेम-मोहिनी नाटक—लेखक और प्रकाशक पं० लक्ष्मीकान्त चतुर्वेदी, हेडमास्टर श्रीगोदावत स्कूल, पोष्ट—छोटी सादड़ी (मेवाड़), पृष्ठ संख्या ९२, मूल्य ॥), काग़ज़ साधारण, छपाई खराब।

माघ कृष्ण अमावस्या सम्वत १९८४ (ता० २२ जनवरी सन् १९२८) के 'श्रीकृष्ण-सन्देश' में 'नवीन उपहार' नामक लेख में यह बात प्रकाशित कराई गई थी कि जिस आदमी का 'बाल-विवाह से हानि' सम्बन्धी नाटक सर्वश्रेष्ठ होगा उसे इनाम दिया जायगा। इसी प्रतियोगिता-पुरस्कार के लिए चतुर्वेदी जी ने इस नाटक को लिखा था और यह बड़ी प्रसन्नता की बात है कि उन्हें यह पुरस्कार मिल भी गया। इसमें सन्देह नहीं कि इसके लिखने में लेखक ने ख़ूब परिश्रम किया है और ग्रन्थ के प्रारम्भ में जो एक अठारह पृष्ठ की भूमिका है, उसमें लेखक ने कई संस्कृत के ग्रन्थों के दरवाज़े को भी खटखटाया है। पं० जी का यह प्रथम प्रयास सर्वथा प्रशंसनीय है।

पता नहीं कि लेखक ने नाटक के सम्बन्ध में कोई ग्रन्थ पढ़ा है या नहीं। पहले मैंने समझा कि जब इस नाटक पर पुरस्कार मिला है तो यह अवश्य ही सुन्दर होगा। परन्तु ज्यों-ज्यों मैं इसे पढ़ता गया, त्यों-त्यों पता चलने लगा कि यह कथा नीरस, भद्दी तथा व्यर्थ है। न तो कथानक में रोचकता है, न भाव है, न नाट्यकला का लेशमात्र है। मेरी समति में यदि इस प्रकार की पुस्तकें न लिखी जायँ तो हिन्दी का परम उपकार हो। आजकल हिन्दी में लेखकों की बाढ़ सी आ गई है और बहुत लोग अनधिकार चेष्टा करने लगे हैं। मेरा पूर्ण विश्वास है कि यह नाटक भी अनधिकारी चेष्टा का एक उदाहरण है। कथा का लगभग सब भाग नीरस है। अन्त में विष का प्रयोग भी व्यर्थ ही है। बहुत लोग दुखान्त का अर्थ नहीं समझते और अन्त में सब को मार डालना ही अच्छा समझते हैं। ईश्वर से प्रार्थना है कि वह ऐसे लोगों से हिन्दी की रक्षा करें।

* * *

रामराज्य (प्रथम भाग)—लेखक और प्रकाशक श्री० मुरारीलाल अग्रवाल ज्योतिषी, दिनदारपुरा, मुरादाबाद; पृष्ठ-संख्या १३६, मूल्य ॥), छपाई और काग़ज़ सुन्दर।

इस पुस्तक के लेखक ने पहिले राम सम्बन्धी सब पुस्तकों का साधारणतः अवलोकन किया है और वाल्मीकि रामायण का विशेष कर। तब आपने इस ग्रन्थ को लिखना प्रारम्भ किया है। यह पुस्तक चार भागों में समाप्त होगी। प्रस्तुत पुस्तक उसका प्रथम भाग है। प्रत्येक भाग में सात परिच्छेद होंगे। प्रथम भाग में शासन-शैली तथा प्रजा के अतुलनीय प्रेम इत्यादि का वर्णन किया गया है।

प्रायः यह देखा जाता है कि कुछ लोग श्रीरामचन्द्र जी की कथा में विश्वास नहीं करते। इसलिए लेखक महोदय डर गए हैं कि जिस तरह से वाल्मीकि ऋषि ने श्रीरामचन्द्र जी का वर्णन किया है, सम्भव है उस तरह से बीसवीं शताब्दी के लोगों का उसमें विश्वास न हो। इसलिए इसके निर्माण करने में इस बात का विशेष ध्यान रक्खा गया है कि इसकी कथा ऐसी लिखी जाय कि इसमें वैज्ञानिक लोग भी विश्वास कर सकें। इसमें केवल श्रीरामचन्द्र जी के कौटुम्बिक जीवन का ही वर्णन नहीं किया गया है, किन्तु उनके भारी उत्तरदायित्व



का भी। इस पुस्तक में इस बात के दिखलाने का भी प्रयत्न किया गया है कि श्रीरामचन्द्र जी का शासन प्रजा-तन्त्र था। इसे वर्तमान के रँग में रँगने का भी पूरा प्रयत्न किया गया है। पुस्तक की भाषा सुन्दर तथा परिमार्जित है और सम्पूर्ण पुस्तक बिलकुल नए ढङ्ग से लिखी गई है। आशा है हिन्दी-संसार में इसका आदर होगा।

* * *

श्रद्धाञ्जलि—लेखक श्री० भगवानदास केला, प्रकाशक भारतीय ग्रन्थमाला, वृन्दावन, पृष्ठ-संख्या १८२, मूल्य ॥।)।

श्रीभगवानदास केला हिन्दी के एक प्रसिद्ध लेखक हैं। यह पुस्तक उन्हीं की लिखी हुई है। एक प्रकार से इसमें २९ मनुष्यों का जीवन-चरित्र लिखा गया है। इसमें बाल्मीकि, राम, श्रीकृष्ण, गौतमबुद्ध, शङ्कराचार्य, पद्मिनी, कृष्णा, चैतन्य, राणा प्रताप, शिवाजी, गुरु गोविन्दसिंह, अहल्याबाई, राममोहन राय, दयानन्द, लक्ष्मीबाई और तिलक भारतीय चरित्र हैं और सुक़रात, ईसा मसीह, मुहम्मद साहब, देवी जोन, मार्टिन लूथर, गेलिलियो, न्यूटन, एब्राह्म लिङ्कन, फ़्लोरेन्स नाइटिङ्गल, मेज़िनी, टॉलस्टॉय, कार्ल-मार्कस, सन युत सेन और बुकर टि वाशिङ्गटन अन्य देशीय चरित्र हैं। जिस प्रकार प्रायः जीवन चरित्र लिखा जाता है, उस प्रकार से यह पुस्तक नहीं लिखी गई है। पुस्तक लिखने का ढङ्ग लेखक का अपना है। यह ग्रन्थ इस प्रकार से लिखा गया है मानो लेखक इन महान आत्माओं के पास और उनके सामने खड़ा है और उनके प्रति अपने भावों का उद्‌गार, श्रद्धा-अञ्जलि के रूप में, उन्हें अर्पित कर रहा है। इस प्रकार से लिखने में पुस्तक का महत्व बढ़ गया है और वह अधिक मनोरञ्जक हो गई है। लेखक ने केवल महत्वपूर्ण घटनाओं पर ही अधिक प्रकाश डाला है। इससे पुस्तक की रोचकता और भी अधिक हो जाती है। इसकी भाषा साहित्यमय है। मैं इस पुस्तक को प्रत्येक हिन्दी जानने वाले के हाथ में देखना चाहता हूँ।

* * *

हिन्दू नाम—लेखक वैदिक मुनि, प्रकाशक स्वामी रामस्वरूप, पुस्तक मिलने का पता—मैनेजर, हिन्दू ग्रन्थमाला अमृतसर या सन्त-समाचार पुस्तक भण्डार, अमृतसर, पृष्ठ ७०, मूल्य ।-)।

इस पुस्तक में यह विचार किया गया है कि हिन्दू नाम कैसे पड़ा। कुछ लोग समझते हैं कि जब विधर्मी लोग पहले भारत में आए, तब सिन्धु नदी के उस पार के लोगों ने उन्हें लूट लिया। इसलिए विधर्मियों ने पूर्ववालों को लुटेरा समझा और उन्हें हिन्दू (लुटेरा) कहना प्रारम्भ किया और हमारे पूर्वजों ने अज्ञान के कारण उसे स्वीकार कर लिया। दूसरे लोग कहते हैं कि जब विधर्मियों ने भारत पर आक्रमण किया और हमारे पूर्वजों को परास्त कर दिया तब हमारे पूर्वजों ने उनके दासत्व के जुए को अपने कन्धे पर रख लिया। इससे विदेशियों ने हम लोगों के लिए दास के अर्थ में 'हिन्दू' शब्द का प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया। वास्तव में उन लोगों ने दास या ग़ुलाम के अर्थ में ही हिन्दू शब्द का प्रयोग किया। इतना ही नहीं, उन विदेशियों ने यहाँ तक कहा कि आज से तुम लोग अपने को हिन्दू कहना, नहीं तो जान से मार दिए जाओगे। तभी से हम लोगों का नाम हिन्दू पड़ गया।

इस ग्रन्थ के लेखक ने इस बात के सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि हम लोगों का यह नाम मन्त्र काल से चला आता है और ऊपर के दोनों मत बहुत ही अधिक

(१२९ पृष्ठ का शेषांश)

कता ही क्या है। हम तो व्यापार करेंगे, कुछ ख़ैरात-खाता थोड़ा ही खोलेंगे। क्यों सम्पादक जी, यह ढङ्ग कैसा रहेगा ? आम के आम गुठलियों के दाम ! इधर नाम भी बैल के सींगों की तरह बढ़ रहा है उधर रुपया भी आ रहा है। फिर क्या है। हमीं हम होंगे। परन्तु यह सब तभी सुफल होगा जब आप कोई गज़ दो गज़ लम्बी उपाधि अपने राम के लिए सिला रक्खेंगे। क्योंकि यदि उपाधि न मिली तो अपने राम का किया-धरा सब व्यर्थ हो जायगा। इसलिए सारा दारोमदार आप पर है। ऐसे समय में आप थोड़ा साथ दे डालें तो आनन्द आ जाय। उत्तर शीघ्र दीजिएगा।

भवदीय,

विजयानन्द (दुबे जी)

* * *

भ्रामक हैं। इस पुस्तक के लेखक ने वास्तव में बड़ी योग्यता का परिचय दिया है और अनेक पुस्तकों से अच्छे-अच्छे अवतरणों को उद्धृत किया है। इससे पुस्तक की प्रामाणिकता बढ़ गई है।

—अवध उपाध्याय

* * *

व्रतोत्सव-विधान—लेखक श्री० रामेश्वर-प्रसाद ओझा, प्रकाशक ओझा-बन्धु आश्रम, इलाहाबाद, पृष्ठ-संख्या १२९, मूल्य ॥=)।

"किसी जाति के यथार्थ रूप का ज्ञान उसके त्योहारों से होता है। ये त्योहार जाति के उत्थान-पतन के परिचायक होते हैं। अतएव जीवन-संग्राम में दौड़ लगाने वाले कर्मवीरों के लिए इनका बड़ा महत्व है!" इन्हीं शब्दों से इस पुस्तक की भूमिका आरम्भ होती है। आगे चल कर कहा गया है—"यद्यपि इस समय हमारी असावधानी, हमारी मूर्खता से उत्सवों का उद्देश्य पूरा-पूरा पालित नहीं होता, उत्सवों में बहुत सी मूढ़ धारणाएँ प्रचलित हो गई हैं, इतना होने पर भी उत्सवों की उपयोगिता में सन्देह नहीं किया जा सकता।" निस्सन्देह व्रतों और उत्सवों ने हमारे जातीय जीवन और राष्ट्रीय भावों के संरक्षण में बहुत बड़ा भाग लिया है। परन्तु दुःख की बात है कि हम इन व्रतों और उत्सवों के सच्चे रहस्य को भूल गए हैं। हम लोग व्रत करते हैं, पर उसके अर्थ और महत्व को नहीं समझते और इसीलिए उसका फल भी हमें नहीं मिलता।

इस पुस्तक में नव वर्ष, गणेश चतुर्थी, करवा चौथ, जन्माष्टमी, रामनवमी, गङ्गा दशहरा, अनन्त चतुर्दशी, महाशिवरात्रि, भैयादूज, नाग पञ्चमी, बसन्त पञ्चमी, दीपावली, रक्षाबन्धन, होली, छठ आदि ३३ व्रतों का वर्णन बड़ी सुन्दरता के साथ किया गया है। त्योहारों के ऐतिहासिक महत्व के साथ ही साथ उनके करने का शास्त्रीय विधान भी समझाया गया है। इससे पुस्तक की उपयोगिता बहुत बढ़ गई है।

इन त्योहारों के विषय में संस्कृत ग्रन्थों में जो कथाएँ लिखी गई हैं, उनमें कई बातें ऐसी घुसेड़ दी गई हैं, जिनसे अन्धविश्वास फैलता है। उदाहरण के लिए, हरतालिका व्रत के माहात्म्य में कहा गया है—"सौभाग्य की इच्छा रखने वाली स्त्रियों को यह व्रत अवश्य करना चाहिए। जो स्त्रियाँ यह व्रत नहीं करतीं और इस दिन आहार करती हैं; वे सात जन्म तक बन्ध्या और विधवा होती हैं।" इसी प्रकार गणेश चतुर्थी को चन्द्र-दर्शन का निषेध करते हुए कहा गया है—"भगवान ने इस दिन चन्द्रमा का दर्शन किया था और उन्हें कलङ्क लगा था। इसी से आज के चन्द्रमा को न देखना चाहिए।" करवा चौथ का माहात्म्य दिखाने के लिए कहा गया है कि एक नवविवाहिता कन्या केवल इसीलिए विधवा हो गई कि उसने करवा चौथ में भूख लगने के कारण चन्द्रोदय होने के पहले ही अर्घ्य देकर भोजन कर लिया। ये बातें ऐसी हैं जिनका आधार अन्ध-विश्वास के अतिरिक्त और कुछ हो ही नहीं सकता। व्रत करने से उसका सुफल मिलेगा, और नहीं करने से वह सुफल नहीं मिलेगा, यह बात तो समझ में आती है, पर व्रत न करने से ऐसे-ऐसे भीषण दण्ड मिलेंगे, यह बात निरी कपोल-कल्पित है। इसी प्रकार के और भी अनेक भ्रम इन व्रतों के विषय में फैले हुए हैं। इस पुस्तक में ऐसी बातों की आलोचना की गई है, पर बहुत कम, प्रायः नहीं के बराबर। व्रतों के समस्त विधान पर और इनकी कथाओं पर जैसे ऐतिहासिक दृष्टि से विचार किया गया है, वैसे ही यदि वैज्ञानिक दृष्टि से भी विचार किया गया होता तो इस पुस्तक का महत्व बहुत बढ़ जाता। होली और दिवाली पर जो मूर्खताएँ की जाती हैं, उनकी इस पुस्तक में तीव्र निन्दा की गई है।

सब बातों पर विचार करते हुए पुस्तक बहुत ही उपयोगी हुई है। ख़ास कर स्त्रियों के लिए यह बड़े काम की है। भाषा शुद्ध, मँजी हुई और विषय के उपयुक्त है। छपाई, सफ़ाई सुन्दर, काग़ज़ अच्छा।

—शुकदेव राय

* * *

जीवन-स्मृति—लेखक श्री० रवीन्द्रनाथ ठाकुर; अनुवादक श्री० सूरजमल जैन, प्रकाशक मित्र ग्रन्थमाला कार्यालय, सीतलामाता बाज़ार, इन्दौर, पृष्ठ-संख्या ३२५ से ऊपर, मूल्य २), छपाई, सफ़ाई और काग़ज़ साधारण।

कविश्रेष्ठ रवीन्द्र बाबू का लिखा हुआ यह आत्म-चरित है। जो लोग उनकी लेखन-शैली से परिचित हैं,

वे जानते हैं कि रवि बाबू किसी साधारण से साधारण बात को भी कितने रोचक और सुन्दर ढङ्ग से कह देते हैं। फिर, यह जीवन-स्मृति तो अनेक मधुर स्मृतियों से भरी हुई है। कई परिच्छेद तो मुझे बड़े ही अच्छे लगे। पढ़ने में उपन्यास का सा आनन्द आता है। पुस्तक समाप्त किए बिना छोड़ने को जी नहीं चाहता। लेकिन इतना सब होते हुए भी अनुवाद की शिथिलता खटकती है। अनुवाद अच्छा नहीं हुआ। जगह-जगह बङ्गालीपन का असर पड़ गया है। यों भी भाषा अशुद्ध और कमज़ोर है। लेकिन हमारा विश्वास है कि साधारणतया इस पुस्तक से पाठकों का मनोरञ्जन हो सकेगा और वे इससे कुछ सीख भी सकेंगे।

* * *

२१ बनाम ३०—लेखक श्री० चतुरसेन शास्त्री, प्रकाशक सञ्जीवन कार्यालय, दिल्ली, पृष्ठ-संख्या लगभग ३२५, मूल्य १॥) रुपया, छपाई और काग़ज़ दरिद्र।

इस पुस्तक के इनर कवर पर इसके विषय की ओर इङ्गित करते हुए लिखा है—"वर्तमान आन्दोलन पर नई कल्पना और नए विचारों द्वारा अपूर्व प्रकाश डालने वाला, बड़ी ओजस्वी भाषा में लिखा हुआ, सर्वथा मौलिक ग्रन्थ"। मुझे इस बात से कोई इन्कार नहीं हो सकता कि विचार मौलिक हैं, गम्भीर हैं और भाषा भी बड़ी ओजस्वी है, किन्तु इसकी अनेक बातों में औचित्य का अभाव खटकता है। मुझे दुःख है कि अपने 'मौलिक विचारों' में शास्त्री जी ने सब जगह उदारता से काम नहीं लिया। जहाँ-तहाँ वे महात्मा गाँधी और राष्ट्रपति जवाहरलाल के व्यक्तित्व पर भी आक्रमण कर बैठे हैं। मैं नहीं समझता यह कहाँ तक उचित है। फिर भी, विचार उत्तम हैं, सलाहें काम की हैं और इनसे जनता को परिचित हो लेना चाहिए।

—शुकदेव राय

* * *

कौन जागता है?—लेखक श्री० विनायक नन्दशङ्कर मेहता, आई० सी० एस०, अनुवादक पं० रामनरेश त्रिपाठी, प्रकाशक हिन्द-मन्दिर प्रयाग, छपाई-सफ़ाई अच्छी, पृष्ठ-संख्या ६४, मूल्य ॥)।

त्रिपाठी जी हिन्दी के बहुत बड़े कवि और लेखक हैं। हिन्दी भाषा-भाषी जनता को उन पर गर्व हो सकता है। जब उनके द्वारा अनुवादित इस नाटक का नाम सुना था, तब मन में बड़ी-बड़ी आशाएँ इस पुस्तक के प्रति बँध गई थीं। अब जब यह पुस्तक सामने आई है, तो देख कर दुःख होता है। मूल पुस्तक चाहे जैसी भी रही हो, अनुवाद बिलकुल निकम्मा हुआ है। कविताएँ इतनी दरिद्र, इतनी शिथिल और इतनी अरुचिकर हैं कि पढ़ने को जी नहीं चाहता। पुस्तक के प्रारम्भ में त्रिपाठी जी ने एक छोटी सी भूमिका लिखी है। उसमें कहा है—"गुजराती मेरी मातृ-भाषा नहीं, अतएव उसके शब्द और आन्तरिक रस को हिन्दी में ठीक-ठीक लाने में मैं कहाँ तक सफल हुआ हूँ, यह मैं नहीं कह सकता।" त्रिपाठी जी की यह शङ्का सोलहो आने उचित है। इस काम में वे बिलकुल ही सफल नहीं हो सके या बहुत कम सफल हो सके हैं।

पाठकगण! कुछ अनुवादित कविताओं की बानगी देखिए—

१—मित्र मेरा प्राण सम—
नहीं फिर देखूँ दिदार!

२—दैव-सर्प मार सफल जन्म करेंगे।
प्राण क्यों न जायँ कदम आगे धरेंगे॥

३—वेग रोक ऐ सखा!
नहीं तो तीर छोड़ता हूँ मैं॥

४—बाजे अस्तोदय की वीणा
क्षण-क्षण गगनाङ्गण में रे।
मधुर-मधुर किरणें फैला कर—
देखो है आ रहा निशाकर।

५—नाहीं कर न सके जो प्राणी।
मानूँ उसकी सफल जिन्दगानी।

६—झूलो-झूलो प्रियतम प्यारे—
झूला बाँधा चन्दन डाल से।

७—पूनो की रजनी सा मैं भी
पाऊँ पूर्ण कला रे।
निष्कामी प्रभु कामी होकर
नूतन रास रचाया।

बस, इतने ही नमूनों से पाठकों का जी ऊब गया

होगा। सब टके सेर वाली कविताएँ हैं। छन्द ऐसे मालूम पड़ते हैं, जैसे पागल का प्रलाप हो—एक पद का दूसरे पद से, एक चरण का दूसरे चरण से कोई सम्बन्ध ही नहीं मालूम पड़ता। भाषा अशुद्ध है, शिथिल और अनर्थक भी है। ऊपर के उद्धरणों पर ध्यान देने से यह बात पूर्णतः स्पष्ट हो जायगी।

गद्य की भाषा भी कुछ कम शिथिल और कम अस्त-व्यस्त नहीं है। उदाहरणार्थ—"क्या अपना जीवन ग्रास-बद्ध होगा?" यह ग्रास-बद्ध क्या बला है? साधारण पाठक तो पढ़ कर ही घबरा जायगा। और शायद आगे पढ़ने की हिम्मत ही छोड़ बैठे, क्योंकि ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है। पुस्तक पढ़ कर पढ़ने की मिहनत भी नहीं वसूल होती, पैसों की तो बात ही न पूछिए। मेरी सम्मति में यदि त्रिपाठी जी यह अनुवाद न करते तो उनके प्रसिद्ध नाम और हिन्दी साहित्य दोनों का उपकार होता।

—प्रफुल्लचन्द्र ओझा, 'मुक्त'

* * *

हमारा शासन—लेखक श्री० जगन्नाथ-प्रसाद 'विरही', प्रकाशक छात्र-भण्डार, लोहरदगा, राँची, पृष्ठ-संख्या १४२, मूल्य ॥=)।

इस पुस्तक में संक्षेप में भारतीय शासन-यन्त्र का परिचय देने की चेष्टा की गई है, पर इस कार्य में लेखक को किञ्चित भी सफलता नहीं मिली है। सारा ग्रन्थ पढ़ जाने के बाद ऐसा प्रतीत होता है कि किसी उच्च उद्देश्य से प्रेरित होकर यह नहीं लिखा गया है। जगह-जगह भारतीय समाज की निन्दात्मक आलोचना करने की चेष्टा की गई है, परन्तु सम्पूर्ण ग्रन्थ में एक भी ऐसा स्थल नहीं है जहाँ वर्तमान शासन-प्रणाली के भीषण दोषों की ओर सङ्केत भी किया गया हो। इसके विपरीत यत्र-तत्र अङ्गरेज़ों की चापलूसी-भरी प्रशंसा ही की गई है। भाषा इतनी शिथिल और लेखक को विषय का ज्ञान इतना अल्प है कि जगह-जगह अत्यन्त आपत्तिजनक और अशुद्ध बातें लिख गई हैं। एक जगह लिखा है—"अङ्गरेज़ हमारे राजा हैं......।" यह एक ऐसा भ्रमपूर्ण वाक्य है, जिससे साफ़ ज़ाहिर हो जाता है कि लेखक ने जिस विषय पर लेखनी उठाई है, उस पर उसका थोड़ा सा भी अधिकार नहीं है। पुस्तक आदि से अन्त तक नीरस और अव्यवस्थित है, कम से कम विद्यार्थियों के पढ़ने लायक़ तो बिलकुल नहीं है। भाषा सम्बन्धी अशुद्धियों की भरमार है। लेखक को लिङ्ग का ज्ञान है ही नहीं। आप पृष्ठ १३३ पर लिखते हैं—"प्रजा को बड़ी कष्ट होती थी।" पृष्ठ ११७ पर लिखा है—"भारत में पत्र-पत्रिका अङ्गरेज़ों ने इजाद किया।" कोई ऐसा पृष्ठ नहीं जिस पर इस प्रकार की अशुद्धियों से भरे हुए कुछ वाक्य न मिल जायँ। जब भाषा की यह हालत है तब विराम-चिन्हों की बात करना ही व्यर्थ है। छपाई ऐसी ऊल-जलूल है कि अङ्क कहीं अङ्गरेज़ी में दिए गए हैं, कहीं हिन्दी में। विषय-सूची का पता ही नहीं है, हालाँकि अध्यायों की संख्या बीस से कम नहीं है। समझ में नहीं आता कि लेखक ने इस पुस्तक को लिखने की चेष्टा क्यों की है।

लेखक का कहना है—"यह पुस्तक विद्वानों के लिए नहीं है, पर छोटे स्कूलों के शिक्षकों और विद्यार्थियों के लिए है।" मेरी सम्मति में विद्यार्थियों के लिए यह पुस्तक न केवल लाभहीन, बल्कि निश्चयपूर्वक हानिकारक है। विद्यार्थियों की पाठ्य पुस्तकों का, भाषा और विषय के प्रतिपादन दोनों की दृष्टि से, शुद्ध होना अत्यन्त आवश्यक है। परन्तु इस पुस्तक में इन दोनों गुणों का सर्वथा अभाव है। लेखक ने भूमिका में कहा है—"मैं तो चुप ही था, पर कुछ शिक्षकों ने अनुरोध किया तो क़लम उठाया। मैं समझ ही नहीं सकता कि विद्वान लोग इस विषय पर कुछ क्यों नहीं लिखते।" जब हिन्दी भाषा में श्री० भगवानदास केला कृत 'भारतीय शासन' जैसा उत्तम ग्रन्थ विद्यमान है, जिसकी अनेक विशेषज्ञों और शिक्षा-विशारदों ने एक स्वर से प्रशंसा की है, तब लेखक का यह कहना निरी धृष्टता प्रतीत होती है। और यदि विद्वान लोग किसी विषय पर न लिखें तो यह निस्सन्देह दुःख की बात है, परन्तु इससे अविद्वान लोगों को अनधिकार चेष्टा करने का अधिकार कैसे प्राप्त हो जाता है? एक शब्द में मैं इतना ही कह देना चाहता हूँ कि यदि ऐसी पुस्तकें न लिखी जायँ तो हिन्दी-साहित्य और हिन्दी-भाषा-भाषी जनता दोनों का उपकार हो।

—'निर्मोही'



लालबुझक्कड़ (प्रोटेक्टिङ्ग क[illegible] का नमूना)

Regd. No. A—1154



Printed and Published by Mr. R. SAIGAL—Editor—at the Fine Art Printing Cottage,

चाँद

त्रिलोकचन्द्र

त्रिलोकचन्द्र

त्रिलोक

वर्ष ९, खण्ड १
संख्या २, पूर्ण संख्या ९८

सम्पादक—
श्रीरामरखसिंह सहगल

दिसम्बर
१९३०

The Hon'ble Justice Sir B. J. Dalal of the Allahabad High Court, says:

Dear Mr Saigal,

Your album is a production of great taste & beauty & has come to me as a pleasant surprise as to what a press in Allahabad can turn out. Moon worshipped & visit to the Temple are particularly charming pictures, life like & full of details. I congratulate you on your remarkable enterprise & thank you for a present which has given & will continue to give me a great deal of pleasure.

Yours sincerely

B J Dalal.

Price Rs. 4/- only
(Postage Extra)

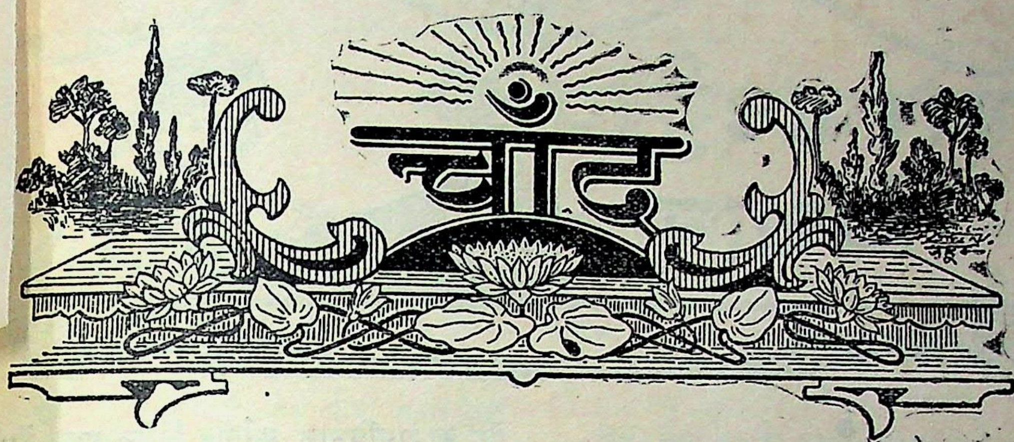
The 'CHAND' Office
CHANDRALOK—ALLAHABAD

विरह-विधुरा दमयन्ती

नल के दूत, और किसको मिल सकता था यह सरल दुलार,
हंस तुम्हारे बड़े भाग्य हैं ! [illegible] !!

—आ० प्र० श्रीवास्तव





आध्यात्मिक स्वराज्य हमारा ध्येय, सत्य हमारा साधन और प्रेम हमारी प्रणाली है। जब तक इस पावन अनुष्ठान में हम अविचल हैं, तब तक हमें इसका भय नहीं, कि हमारे विरोधियों की संख्या और शक्ति कितनी है।

वर्ष ९ खण्ड १ | दिसम्बर, १९३० | संख्या २ पूर्ण संख्या ९८

नयन के प्रति

[श्री० आनन्दीप्रसाद श्रीवास्तव]

नयन, सबेरे खुल कर क्या तुम—
देख रहे ऊषा का रूप ?
अत्याचारों से भारत यह—
हुआ जा रहा है विद्रूप !

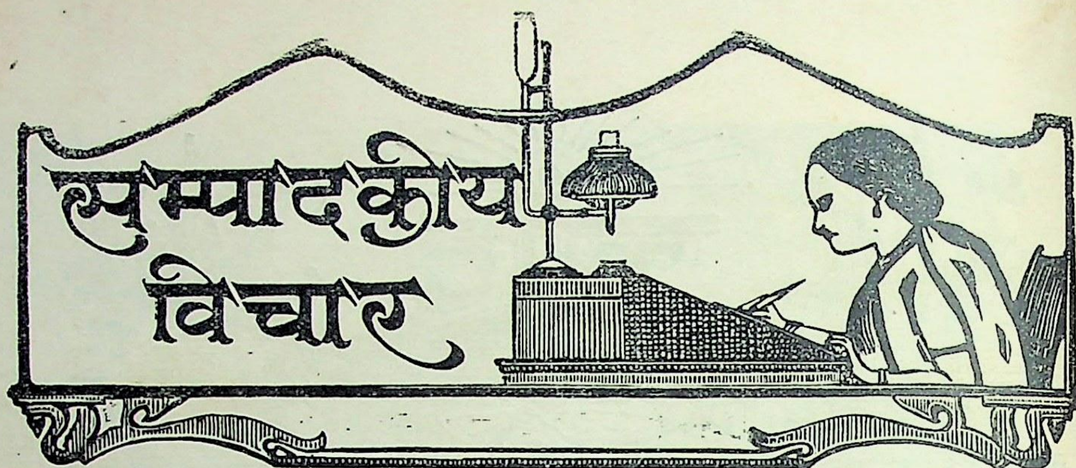
इधर सुगुञ्जित स्वर्ण वर्ण यह;
उधर लाल शोणित की धार,
ठोकर खाते दीन-जनों के—
परिवारों का हाहाकार !

लावेगी यह कितने जन के—
घोर दुखों का प्रातःकाल ?
मुग्ध नयनमय जगत, किन्तु वह—
क्रूर दृगों का दैव कराल !

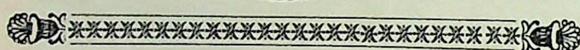
मन्द पवन का चलना यह, वह—
क्रमशः बाधाओं की चाल !
जीवों का आनन्द, किन्तु वह—
दुखियों का जीवन जञ्जाल !

सो जाओ फिर नयन, जागना—
भारत की जागृति के सङ्ग !
इस जागृति से चिर-सुषुप्ति का—
कैसे फीका होगा रङ्ग !

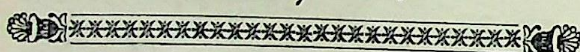
अगर देखना हो, तो देखो—
अपने भीतर की ऊषा !
संयत, बलि होने को तत्पर—
मन के अन्तर की ऊषा !!







दिसम्बर, १९३०



एक आवश्यक निवेदन



दैव के दुर्विधान से आज इस अभागे देश का वर्तमान वातावरण इतना कलुषित, इतना हिंसापूर्ण एवं परिशोध की भावनाओं से इतना ओत-प्रोत हो रहा है कि कोई भी आत्माभिमानी व्यक्ति अपने को किसी भी समय सुरक्षित नहीं समझ सकता! आज, जिन अज्ञेय परिस्थितियों में होकर हमारा देश गुज़र रहा है, वह इतिहासकारों के विवेचन का विषय है, हमारा नहीं! यह वह समय है, जब कि भारत ही नहीं, समस्त एशियाई देशों का एक नवीन इतिहास एवं मान-चित्र भविष्य के गर्भ में निर्मित हो रहा है; अतएव हमारे शासकों की हम पर विशेष कृपा-दृष्टि का होना भी स्वाभाविक ही है। सब से लज्जापूर्ण बात तो यह है कि हमारी ग़ुलामी की अनियन्त्रित शृङ्खला ने हमारे शासकों के हौसले इतने अधिक मात्रा में बढ़ा दिए हैं कि आज न्याय और अन्याय तक का विचार करना उनके लिए सर्वथा असम्भव हो गया है! नौबत यहाँ तक पहुँच गई है कि आज अपने देश का शुभचिन्तक वर्तमान ब्रिटिश-भारत में 'विद्रोही' और अन्याय के विरोध को "अराजकता" के नाम से पुकारा जा रहा है। अतएव ऐसी गम्भीर परिस्थिति में हमारे मदान्ध महाप्रभु जो भी न कर डालें, थोड़ा है!

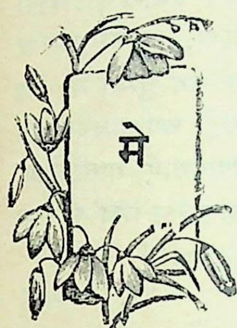
यह सत्य है कि 'प्रेस-ऑर्डिनेन्स' २९ अक्टूबर को समाप्त हो गया, किन्तु अभी उसके भाई-बन्धु आठ दूसरे ऑर्डिनेन्स हमारे सामने हैं। आजकल का शासन इतना निरङ्कुश है, कि उसे देखते हुए—एक पत्रकार की हैसियत से—हम अपने को किसी भी समय सुरक्षित नहीं समझ सकते। अतएव जब तक परिस्थिति से मुक़ाबला करने के लिए हम तैयार न हो लें, अपने मनोभावों को निर्भीकतापूर्वक व्यक्त कर, हम आपत्ति मोल लेने के पक्ष में नहीं हैं। इसका परिणाम यह होगा, कि जो थोड़ी-बहुत सेवा इस समय "चाँद" और "भविष्य" द्वारा हो रही है, उसमें भयङ्कर बाधा उपस्थित हो जायगी। हम सचाई और वास्तविकता की ओर से अपनी दृष्टि फेर कर केवल काग़ज़ काला करने की रस्म अदा करना नहीं चाहते; अतएव कुछ दिनों तक हमने 'सम्पादकीय विचार' शीर्षक स्तम्भ को जान-बूझ कर सूना रखने का निश्चय किया है। हमारे अनेक प्रतिष्ठित सहयोगियों ने भी—जिनके जीवन का निश्चित-लक्ष्य उनके सामने है—ऐसा ही निर्णय किया है। इस संस्था के अनेक ज़िम्मेदार शुभचिन्तकों ने भी हमें ऐसा करने की सलाह दी है, अस्तु।

परिस्थिति के अनुकूल हम अधिक से अधिक सुदृढ़ प्रबन्ध करने की चेष्टा कर रहे हैं, जैसे ही हमारी इच्छानुकूल प्रबन्ध हुआ, उसी क्षण से अपने विचार निर्भीकतापूर्वक हम पाठकों के सामने उपस्थित करने लगेंगे—फिर उसका परिणाम चाहे जो भी हो। कुछ दिनों के लिए पाठकगण वर्तमान परिस्थिति को दृष्टि में रखते हुए हमें क्षमा करें!

—रामरखसिंह सहगल

पतिता

[आचार्य श्री० चतुरसेन शास्त्री]



मेरा नाम आनन्दी है। जब मेरी आयु ११ वर्ष की थी, तब मैं अपनी मौसी के साथ दिल्ली आई। मैंने कभी दिल्ली देखी न थी, सुनी थी। बहुत तारीफ़ सुनी थी—बिजली की रोशनी, ट्राम, पङ्खे, मोटर—सब कुछ मेरे लिए स्वप्न-सा था। अब तक मैं देहात में रही, पहाड़ में खेली और बड़ी हुई। मेरे माँ-बाप ज़मींदार थे, नाम ज़बान पर लाना नहीं चाहती, मैं कलङ्कित हुई, उन्हें क्यों बट्टा लगाऊँ? मैं उनकी इकलौती बेटी थी, गोदों में पली और प्यार में नहाई, मेरे बराबर सुखी कौन था? जब मैं सुनहरी धूप में तितली की तरह उछलती-कूदती सामने की हरी-भरी पर्वत-श्रेणियों पर दौड़-धूप करती थी, मेरी पड़ोसिनें गीत गाती घास का गट्ठर पीठ पर लादे मेरे सामने से निकल जातीं। झरने का मोती के समान उज्ज्वल और बर्फ़ के समान ठण्डा पानी, इठला-इठला कर पीती, उसमें पत्थर मार कर उसे उछालती, कभी पत्ते की नाव बना कर बहाती!

ओह! मैं कितना हँसती थी? हँसते-हँसते आँसू निकल आते थे। आज तो रोने पर भी नहीं निकलते, मालूम होता है कलेजे का सारा रस सूख गया है। लड़कियों को मैं ख़ूब मारती, पर पीछे उन्हें चुमकार-पुचकार कर राज़ी भी कर लेती। मुझमें अकड़ ख़ूब थी, पर मैं भोली भी एक ही थी, जो कोई मुझसे प्यार से बोलता, मैं उसकी चाकर, जो ज़रा टेढ़ा हुआ और बस फिर मैं भी टेढ़ी!

जीवन क्या होता है, मैंने कभी नहीं जाना; मैं बड़ी हो जाऊँगी, यह मैंने नहीं सोचा; मुझ पर दुनिया की कोई ज़िम्मेदारी पड़ेगी, इसका ध्यान भी न था। भविष्य की आने वाली सारी आँधियों और तूफ़ानों के भय से दूर मैंने हिमालय की पवित्र और सुखमयी गोद में अपने हीरे-मोती से ग्यारह साल व्यतीत किए।

२

दिल्ली देख कर मैं सचमुच घबरा गई थी। और मौसी के घर में घुसते तो भय लगता था। वह घर था? दैदीप्यमान इन्द्रभवन था। वह सजावट देख कर मेरी आँखें बन्द होने लगीं। बढ़िया रङ्ग-बिरङ्गे क़ालीन, दूध के समान उज्ज्वल चाँदनी, बड़े-बड़े मसनद, मख़मली गद्दे, मसहरियाँ, तस्वीर, सिङ्गारदान, आइने और न जाने क्या-क्या? मेरे पद-स्पर्श से, छू लेने से कहीं कोई वस्तु मैली न हो जाय, बिगड़ न जाय—इस भय से मैं सिकुड़ कर एक कोने में खड़ी हो गई। मैं मैली-कुचैली गाँव की अल्हड़ बच्ची इस घर में कहाँ रहूँगी? रह-रह कर भाग जाने की इच्छा होती थी।

मौसी ने मेरी द्विविधा को भाँप लिया, उसने पास आकर दुलार से कहा—जा बेटी! ऊपर हीरा है और भी कई जनी हैं, तू भी वहीं जाकर बैठ।

मैं ऊपर चल दी। क्या देखा? कह ही दूँ? रूप वहाँ बिखरा पड़ा था। मानो किसी ने चाँद को ज़ोर से ज़मीन पर दे मारा हो और उसके टुकड़े बिखरे पड़े हों। सब १०-१५ थीं। सभी एक से एक बढ़ कर। सभी अलबेली मस्तानी थीं, और चुहलबाज़ी में लगी थीं। किसी की कङ्घी-चोटी हो रही थी, किसी का उबटन; कोई धोती चुन रही थी, कोई गजरा गूँथ रही। सभी नवेलियाँ थीं, यौवन उनके अङ्गों से फूट रहा था। यौवन और सौन्दर्य के ऊपर एक और उन्मादिनी वस्तु थी, जिसे तब न समझा था, बहुत दिन बाद, जब मैं भी उनमें मिल गई, समझा—वह थी वेश्यापन की धृष्टता। और उसने उन्हें आफ़त बना रक्खा था।

वे लड़कियाँ न थीं, स्त्रियाँ भी न थीं, वे थीं आग के छोटे-छोटे अङ्गारे, पड़े दहक रहे थे, छूते ही छाला उत्पन्न कर दें। इन सबके बीच में हीरा थी। उसका भी कुछ वर्णन तो करना ही पड़ेगा, वैसा रूप तब से आज तक, यद्यपि

मैंने जीवन भर रूप के सौदे किए—पर देखा ही नहीं, सुना भी नहीं। इटली के कारीगर की बनाई सङ्गमर्मर की प्रतिमा की भाँति, हंस की सी सुराहीदार और सफ़ेद गर्दन उठाए वह बैठी बाल सुखा रही थी। एक धानी दुपट्टा उसके वक्षस्थल पर अस्त-व्यस्त पड़ा था, पर उस अनिन्द्य वक्षस्थल को शृङ्गार करने के लिए और किसी परिधान की आवश्यकता ही न थी। प्रभातकालीन नव-विकसित कमल-पुष्प के समान उसकी बड़ी-बड़ी आँखें



श्रीमती मथुरा रामराव नादकर्नी

आप बम्बई के सुन्दरदास मेडिकल कॉलेज में अध्ययन करती हैं। आपने कन्वोकेशन में दो पदक प्राप्त किए हैं।

और फूले हुए लाल-लाल होठ! हल्के पारदर्शी रङ्ग से प्रतिबिम्बित-से गाल उसकी मुख-मुद्रा को लोकोत्तर बना रहे थे। उसके दाँत किस कारीगर ने बनाए थे, यह मैं मूर्ख क्या बताऊँ! पर उनकी चमक से चौंध लगती थी। हीरा ने अनायास ही मुझे देखा, सभी ने देखा, मैं सहम कर ठिठक गई! उसने मुस्करा कर पास बुलाया, गोद में बैठा कर पुचकारा, प्यार किया, मेरे देहाती वस्त्रों को देखा और हँस दी। उसने प्यार से मेरे गालों पर चुटकी ली और मेरे शृङ्गार में लग गई। उबटन किया, चोटी में तेल दिया, कपड़े बदले और न जाने क्या-क्या किया। इसके बाद मेज़ पर उचका कर मुझे रख दिया, और सहेलियों से बोली—"देखो री, हमारी छोटी रानी कितनी सुन्दर है।" उसने मुझे चूमा, फिर तो मुझ पर इतने चुम्मे पड़े कि मैं घबरा गई। उन चुम्मों में, उस प्यार में, उस शृङ्गार में मैं भूल गई अपना बचपन, वे पवित्र खेल-कूद, वे पर्वत-श्रेणी, उपत्यकाएँ, माता-पिता, सहेली—सभी को। मेरे मन में एक रङ्गीन भाव की रेखा उठी और धीरे-धीरे मैं मदमाती हो चली!

३

परन्तु, उस भीषण ऐश्वर्य और ज्वलन्त रूप की जड़ में जो पाप था, उसे मैं कैसे समझती? पाप कहते किसे हैं, यही मैं कैसे जानती? जीवन के सुख और ऐश्वर्य के पीछे एक धर्म-नीति छिपी रहती है, यह मुझे उस घर में बताता कौन? फिर भी मेरी आत्मा ही ने मुझे बताया, वही आत्मा अन्त तक मेरे कर्मों का नियन्ता रहा!

मैं उस घर में सब कुछ देखती थी। मैं कह चुकी हूँ, कि मुझ-सी मुझ-सी दस-पन्द्रह थीं। पर मैं सब से छोटी थी, नई आई थी, सबके पृथक्-पृथक् सजे हुए कमरे थे। सबके पास बढ़िया गहने-कपड़े, इत्र और न जाने क्या-क्या था। सबकी ख़ातिर भी ख़ूब होती थी, चोचले भी चलते थे, पर मैं मौसी के पास सोती और रहती थी। सबके उतरे गजरे पहनना और बची हुई मिठाई खाना, मेरा काम था। धीरे-धीरे मेरे मन में ईर्षा होने लगी। मैंने एक दिन मौसी से कह भी दिया, रूठ भी गई, आख़िर मैं क्या आसमान से गिरी हूँ, मुझे भी एक कमरा, पलङ्ग और वैसे ही सब सामान चाहिएँ, जो औरों के पास हैं।

मौसी हँस पड़ी। उसने मुझे गोद में लिया, चूमा और कहा—"धीरज रख बेटी! वह समय भी आ रहा है, जब तू इन सब से चढ़-बढ़ कर रहेगी।" उस समय की मैं बड़ी ही बेचैनी से बाट जोहने लगी। साथ ही करने लगी अध्ययन उन सबका, जिन पर मेरी ईर्षा थी।

मेरी ईर्षा की प्रधान पात्री थी हीरा! वही तो सब में एक थी, घर-घर नगर में और दूर-दूर उसकी चर्चा थी,

उसका रूप था ? दुपहरी थी, उसकी वह दन्त-पंक्ति, मोती-सा रङ्ग, कटीली आँखें, मन्द हास्य, हंस की-सी गर्दन, साँचे में ढाला बदन, कितने सेठ-साहूकार, राजा-रईस, नवाब-शाहज़ादों को अधीर बनाए था—वे उसके पास आते, क्या-क्या आदर-भाव करके, दासियाँ हुक्म की बन्दी रहतीं ! सुनहरे काम का छपरखट और उसका हरा रङ्गीन कमरा, क्या मैंने लाखों बार भी डाह की नज़र से न देखा होगा ?

एक दिन अचानक मौसी ने कहा—"आनन्दी, ले अपना कमरा पसन्द कर, कौन-सा लेगी, मैं अब तुझे भी अलग कमरा दूँगी, उसे तेरी मर्ज़ी का सजाऊँगी। कपड़े-लत्ते, साड़ी जो तेरी पसन्द का हो तू बाज़ार में जाकर ले आ। ले यह १ हज़ार रुपए, सिर्फ़ कपड़े और सिङ्गार-पटार के लिए हैं। ज़ेवर मैं तुझे अलग दूँगी।" इतना कह कर उसने नोटों का एक बण्डल मेरी गोद में डाल दिया और कहा—"शाम को हीरा के साथ जाकर ज़रूरी सामान ख़रीद ला। ले ! मैं अपना ही कमरा तेरे लिए ख़ाली किए देती हूँ, मैं बुढ़िया बावली किसी कोठरी में पड़ रहूँगी।"

मैंने आकाश छुआ। कब शाम हो और मैं बाज़ार चलूँ। निदान एक ही सप्ताह में मेरा कमरा घर-भर में इन्द्रभवन था। मैं रात-दिन उसकी सजावट में लगी रही, खाना-पीना भी छोड़ दिया, साथ वालियाँ दिल्लगी करती थीं, पर मैं समझती न थी, कभी-कभी उनकी बातों से भय-सा लगता था, उनका क्रूर-हास्य शङ्का उत्पन्न करता था—मानो इस साज-शृङ्गार में एक रहस्य है, पर मैं उमङ्ग में थी !

देखते-देखते मेरा रङ्ग बदल गया। जितने छैले घर में आते थे, मुझ पर टूटे, पर मौसी का बड़ा भय था, क्या मजाल जो ज़रा कोई बढ़ कर बातें करता ! साथ वालियों पर मुझे डाह थी, पर अब वे मुझ पर जलती थीं, भेद तो अभी खुला न था, पर मुझे इसमें मज़ा आता था ज़रूर !

उस दिन से छठे दिन की बात है। मैं सो रही थी, दिन ढल चुका था, मौसी ने बुला कर कहा—"बेटी नहा-धोकर नई साड़ी पहन ले, बालों का अङ्गरेज़ी जूड़ा बाँध ले, पैरिस की ज़रीकट साड़ी पहन ले, और ज़रा सलीक़े का ध्यान रख। ख़बरदार, बाचाली न करना।" मैं कुछ समझी, कुछ नहीं—चली आई। मन में उथल-पुथल मच गई, नहीं कह सकती भय से या आनन्द से।

रात सिर पर आ गई और मेरा सिङ्गार ख़तम ही न होता था। १० बजे एक अल्पवयस्क सुन्दर कुमार ने मेरे कमरे में प्रवेश किया, मैंने इन्हें कभी न देखा था। एकान्त में मेरे पास किसी पुरुष का आना प्रथम बात थी, पर बहुत सी बातें तो मैं देख-भाल कर ही समझ गई थी। फिर भी मैं डर गई, मैंने सहम कर उनसे कहा—"मौसी उधर हैं, आप वहाँ जाइए।"



मि० ए० रामाराव बी० ए०, आई० ई० एस०

राजमहेन्द्री के ट्रेनिङ्ग-कॉलेज के नए प्रिन्सिपल

उन्होंने हँस कर कहा—"जल्दी क्या है, ज़रा देर आपसे भी बातें कर लूँ ?" अब मैं क्या कहती ? चुप बैठ गई !

उन्होंने कहा—"क्या आप नाराज़ हो गईं ?"

"जी नहीं।"

"फिर चुप्पी क्यों ?"

"आप कुछ दर्याफ़्त करें, तो जवाब दूँ।"

बस बातों का सिलसिला चल गया, और क्या-क्या हुआ वह सब कहने से फ़ायदा? सब का अभिप्राय यही है कि अन्त में मैं उस युवक के हाथ बिकी, उसने मुझे सब कुछ दिया और मैंने उसे भी! मैं वेश्या थी भी नहीं, और उसकी वृत्ति को समझती भी न थी! मेरा जीवन था, आयु थी, समय था और उसका प्रभाव था, मैं क्या करती? मैंने अपना तन, मन, धन उसे दिया, और उसने? मैंने जो आज तक न पाया था, वह दिया, उस दान के सम्मुख अब तक के सभी ठाट तुच्छ थे। मैं नारी-जीवन का रहस्य समझी, पर यहीं तक होता तो मेरे बराबर सुखी कौन था? पर मेरी तक़दीर में वेश्या-जीवन का रहस्य समझना लिखा था!!

* * *

एक महीना स्वप्न की तरह बीत गया। ज्यों-ज्यों महीना बीतता था, वे चिन्तित और उदास होते थे। मैं पूछती, पर वे बताते नहीं, टाल जाते! एक दिन मैंने उन्हें घेर लिया। उन्होंने कह दिया—सिर्फ़ २ दिन और मुझे तुम पर अधिकार है आनन्दी? इसके बाद तुम मेरे लिए ग़ैर हो जाओगी।

"यह क्या बात है?"

"मैं तुम्हारे लिए अगले महीने की तनख़्वा नहीं जुटा सकता।"

"तनख़्वा कैसी।"

"२ हज़ार रुपए महीने पर मैंने तुम्हें तुम्हारी माँ से लिया था।"

"आह, क्या मैं गाय-भैंस की तरह बेची गई हूँ!"

"ऐसा होता तो फिर बात क्या थी? मैं तुम्हें ऐसी जगह ले जाता, जहाँ किसी की दृष्टि न जाती, पर तुम किराए पर उठाई गई हो, मैंने एक महीने का किराया दिया, अब जो देगा, वह मेरे स्थान पर होगा।"

"मैं तड़प उठी, यह कैसे सम्भव है? मैं तुम्हें प्यार करती हूँ, क्या तुम नहीं करते?"

"जान से बढ़ कर"

"फिर हमारे बीच में कौन है?"

"रुपया"

"मैं उस पर लात मारती हूँ।"

"पर तुम्हारी मौसी तो उस पर मरती हैं।"

"मैं उससे कहूँगी।"

"बेसूद है।"

"क्या तुमने कहा था?"

"मैं १ हज़ार देने को तैयार हूँ।"

"यह क्या थोड़े हैं?"

"वे कहती हैं—एक हज़ार माहवारी आनन्दी की जूतियों का ख़र्च है।"

"पर मैं तो अपना शरीर और जान तुम्हें दे चुकी।"

"इसका तुम्हें अधिकार नहीं।"

मैं रोने लगी, वे चले गए।

मैं रात भर रोती रही; मेरी आँखें फूल गईं; और छाती फटने लगी। सुबह होते ही मौसी ने कहा—"बेटी, आज तुझे एक मुजरे पर जाना है, सब सामान तैयार करके लैस हो जाना।"

जो कहना चाहती थी, न कह सकी। सोचा लौट कर कहूँगी।

४

मेरा नाम हीरा है, बस इतना ही समझ लीजिए। मैं और कुछ नहीं बता सकती। समझ लीजिए मैं धरती फोड़ कर पैदा हुई और धरती में समा जाने की इच्छा से जी रही हूँ। हज़ारों मनुष्यों ने मेरे शरीर को देखा, बलात्कार किया और होनी-अनहोनी सब हुई। इनमें राजा-महाराजाओं से लेकर, घृणास्पद कलङ्की और रोगी भी थे—सभी ने एक ठीकरे में खाया। लोग कहते हैं कि मैंने रूप पाया और यह भी कहते हैं कि उसे ख़ूब बेचा। पर मुझे सब कुछ बेच-ख़रीद कर मिला क्या? इस अभागिनी के मन की बात कौन सुनेगा? कौन इस पर आँसू बहाएगा; जगत में ऐसा मेरा सगा है कौन?

फूल के कीड़ों का नाम बहुतों ने सुना होगा, पर उस ज़हरीले कीड़े ने खाया मुझे! हाय, दुनिया कैसी प्यारी थी, कैसा साज-शृङ्गार, वस्त्र, सुगन्ध, मौज-बहार, हास्य, उन सबको अब याद करती हूँ—वे सब कहाँ चली गईं, स्वप्न की माया की तरह!!

स्त्री क्या वस्तु है, यह मुझे आज मालूम हुआ जब मैंने स्त्रीत्व खो दिया! धर्म मेरा साक्षी है। मैंने रूप को बेचा नहीं, मैंने उसका मोल न कभी जाना न किया, अभागिनी सीधी-सादी बालिका अपने रूप को कितना देखती—

देखने वाले देखते हैं यही कैसे समझती, यही तो मरने की बात हो गई। मैं जब तक बच्ची रही—तब तक की तो बात ही जाने दीजिए। पर दिल्ली आने पर? न माँ थी, न बाप था, भाई था—वह भी चला गया। पर जो थी, वह माँ से भी ज़्यादा सगी, स्वयं हाथों से नहलाती, उबटन लगाती, सुगन्ध लगाती, गजरों से सजाती और मोटर में बैठा कर सैर कराती! तब कौन मेरे बराबर सुखी था—मुझे कुछ काम न था, उस्ताद जी आते उनकी सफ़ेद दाढ़ी, भद्दी सी मोटी ऐनक और मीठी-मीठी बोली, कैसी प्यारी थी। वे गाना सिखाते, मैं विनोद से उनके गले की नक़ल करती। वह इतनी ठीक उतरती कि रास्ते चलते खड़े हो जाते। मैं इतराती थी, उत्तम से उत्तम भोजन, वस्त्र बिना माँगे हाज़िर थे। मैं बड़ी हुई, तीसरे पहर से ही उबटन-शृङ्गार केश-विन्यास और नई साड़ियों की पसन्द और पहनने का जो उपक्रम चलता तो दिए जल जाते, इत्र से भभकते हुए उस कमरे में नर्म क़ालीन पर मैं इठला कर बैठती। बड़े-बड़े सेठों के जवान आते, मेरी स्वर-लहरी पर लोट जाते, रुपयों की बौछार करते। जब आधी रात बीतने पर झोली भर रुपए ले मैं नई माँ को देती तो वह छाती से लगा लेती। बारम्बार बेटी कहतीं, मैं ज़रा भी थकान न मानती, पड़ कर जो सोती तो प्रभात था।

हाय! मैं समझती थी—यह सब मेरा आदर है, यह गायन-कला मेरा गुण है, उस पर सैकड़ों गुणज्ञ रीझ रहे हैं। पर यह भेद तो पीछे खुला, वह मेरा नहीं, मेरे शरीर का, रूप का आदर था। वह गायन तो एक बहाना, एक छल था, एक तीर था, जिससे शिकार मारे जाते थे। मेरी अज्ञानावस्था में कितने शिकार मारे गए, यह मैं अब क्या बताऊँ।

उस दिन कोई त्योहार था, शायद तीज थी, मैं नहा कर बैठी थी। मेरी एक सहेली ने मुझे बुला भेजा था। मैं जाने की तैयारी में थी, माँ ने बुलाया कहा—"बेटी वह जो नई बनारसी साड़ी आई है, पहन लो आज तेरी तक़दीर का सितारा बुलन्द हुआ, महाराज .... ने तुझे नौकर रख लिया है, तुझे वहाँ जाना है, अभी मोटर आ रही है। मैंने चाहा था कि तुझे रानी बना दूँगी, वह इच्छा पूरी हुई, अब देर न कर।"

मैं ख़ाक-पत्थर कुछ भी न समझी, रानी बनने की बात को कुछ समझी, रानी बनने में मुझे क्या उज्र था, पर नौकरी का क्या मतलब? मैंने पूछा—"नौकरी रखने से क्या मतलब? मैं किसी की नौकर न करूँगी! वाह! अब मैं झाड़ू लगाऊँगी, मैं किसी की नौकरी न करूँगी।"

बुढ़िया हँस पड़ी, हँसते-हँसते लोट गई, उसने मुझे गोद में छिपा कर कहा—"मेरी प्यारी बेटी, कैसी नादान है। धीरे-धीरे सब समझेगी, झाड़ू तू लगावेगी? वहाँ २० दासी तेरी ख़िदमत करेंगी।"



मिसेज़ ए० स्कॉट

आप नागापटम (मद्रास) के बॉय स्काउट की प्रेज़िडेण्ट हैं, और हाल ही में वहाँ की हेल्थ एसोसिएशन की भी वाइस-प्रेज़िडेण्ट नियत की गई हैं।

मैं समझ ही न सकी, पर मुझे आनन्द न आया। मैं भय और चिन्ता में पड़ गई, वहाँ मेरा है कौन? मुझे कौन प्यार करेगा, कौन क्या करेगा, मैं बेचैन हो गई। मैं मूर्खा, इस वृद्धा को ही अपना सब से बड़ा हितू समझती थी। जहाँ गई वहाँ फाटक पर पहुँचते ही मेरे होश उड़ गए। ऐसी बड़ी कोठी, ऐसा सुन्दर बग़ीचा,

जन्म में न देखा था। गाड़ी पहुँचते ही सङ्गीनधारी सिपाही ने गाड़ी रोक कर पूछा—"गाड़ी में कौन है।"

मौसी ने कुछ कान में कह दिया, वह रास्ता छोड़ कर खड़ा हो गया।

गाड़ी धड़धड़ाती चली। फ़व्वारे उछल रहे थे, रौसें ऐसी सुघड़ाई से कटी थीं कि वाह। कटोरे के बराबर गुलाब खिल रहे थे। सुन्दर साफ़ सुर्ख़ सड़कें और सामने वह महासुन्दर धवल प्रासाद। वहाँ पहुँचते ही दो सन्तरियों ने हमें उतारा, तमाम मकान सङ्गमरमर से मढ़ा था, मक्खी के भी पैर रपटें। मैं डरती-डरती पैर रखती, दीवारों और तस्वीरों को देखती, अचल खड़े सन्तरियों को घूरती चली जा रही थी। चलने तक की आहट न होती थी, सोच रही थी हे ईश्वर इस महल में रहने वाला कौन भाग्यवान है।

एक सजे हुए कमरे में हमें बैठा कर, सन्तरी चला गया। उसमें मख़मल का हाथ भर मोटा गद्दा पड़ा था, और साटन के पर्दे दरवाज़े पर थे। गद्देदार कुर्सियाँ कौच और एक से एक बढ़ कर सजावट और तस्वीरें क्या-क्या बयान करूँ? मैं पागल सी बैठी देख रही थी; हृदय धक-धक कर रहा था। बोलना चाहा पर मौसी ने होठ पर उँगली रख कर चुप रहने का सङ्केत कर दिया।

थोड़े देर में एक पहरेदार ने धीरे से पर्दा उठा कर, हमें अपने पीछे-पीछे आने का सङ्केत किया। कई बड़े-बड़े दालान, कमरे पार करती हुई हम अन्त में एक निहायत ख़ुशरङ्ग सजे एक बड़े कमरे में पहुँचीं। देखा एक ३० साला उम्र के अत्यन्त रुआबदार रूप और तेज की खान एक पुरुष बैठे चुपचाप धुआँ फेंक रहे हैं। मौसी ने ज़मीन तक झुक कर सलाम किया, और मैंने भी। हाथ का सिगार एक ओर फेंक कर, महाराज उठ खड़े हुए। उन्होंने बड़ी बेतकल्लुफ़ी से मौसी का हाथ पकड़ कर बैठाया, फिर मुस्करा कर मेरा मिज़ाज पूछा।

मैं तो सकते की हालत में थी। मौसी ने फटकार कर कहा—बेवक़ूफ़ सरकार मिज़ाज पूछते हैं और तू चुप है।

वे हँस दिए और बोले—"हीरा यही है न?"

"यही हुज़ूर की कनीज़ है?"

"सच, पर देखना धोखा तो नहीं देती?"

"अय हय हुज़ूर, मेरी ज़बान टूट जाय?"

"अच्छा, मिस हीरा, क्या तुम सिगरेट पीती हो?"

"जी नहीं सरकार?"

"अच्छा तब कुछ खाओ-पियो"—इतना कह कर उन्होंने घण्टी बजा दी। नौकर दस्तबस्ता आ हाज़िर हुआ। उसे कुछ इशारा करके, उन्होंने मौसी का हाथ पकड़ कर कहा—"जब तक यह कुछ खाए-पिए हम लोग काम की बातें कर लें।"

वे दोनों दूसरे कमरे में चले गए, और नौकरों ने फल-बिस्कुट, मेवा मेरे सामने ला रक्खा। पर मैंने छुआ भी नहीं। मैं भयभीत हो गई थी, मैं समझ गई यहाँ फँसी! हाय, हृदय के एक कोने में नवाङ्कुरित प्रेम विकल हो उठा, पर करती क्या? मैंने निश्चय किया—मैं अवश्य मौसी के साथ जाऊँगी? हठात महाराज ने कमरे में प्रवेश करके कहा—"अरे तुमने तो कुछ खाया ही नहीं।"

"जी मेरी तबियत नहीं है, क्या मौसी अन्दर हैं?

"वे गईं।"

"और मैं?"

"तुम्हें यहीं आराम करना है।"—वे मुस्कुरा कर बोले—"क्या तुम्हें डर लगता है?"

"जी नहीं।"

"यह जगह पसन्द नहीं?"

"जगह के क्या कहने हैं।"

"मैं पसन्द नहीं?"

"सरकार क्या फ़र्माते हैं, मैं शर्मा गई।"

एक आदमी शराब, प्यालियाँ कुछ और खाने की चीज़ें चुन गया। महाराज ने प्याला भर कर कहा—"मिस हीरा, परहेज़ तो नहीं करतीं? करोगी तो भी पीना तो पड़ेगा?"

"हुज़ूर मैं नहीं पीती।"

"मगर मेरा हुक्म है?"

"मैं मुआफ़ी चाहती हूँ।"

"क्या हुक्मउदूली करती हो?"

"मेरी इतनी मजाल।"

"बेवक़ूफ़ औरत पी?"—क्षण भर में उनकी आँखें लाल हो गईं और त्योरियाँ चढ़ गईं।

"मैं न पी सकूँगी?"

खूँटी से चाबुक उठा कर उस निर्दयी ने खाल उड़ाना शुरू कर दिया, मेरे चिल्लाने से कमरा गूँज उठा। मैं

तड़प कर धरती में लोटने लगी। पर वहाँ बचाने वाला कौन था?

वे चाबुक फेंक कर बैठ गए। मैं ज्योंही उठी, उन्होंने प्याला भर कर कहा—"पियो"

"मैं गटगट पी गई।"

मेरे हाथ से प्याला लेकर उन्होंने मेरे पास आकर कहा—"हीरा, मेरी दोस्त! आइन्दा कभी हुक्मउदूली की हिम्मत न करना। अरे, क्या तुम्हारी साड़ी भी ख़राब हो गई।" इतना कह उन्होंने घण्टी बजाई, एक लड़का आ हाज़िर हुआ। उसे हुक्म दिया—"जाओ ड्योढ़ियों से उम्दा साड़ी ले आओ।"

साड़ी आई। उसकी क़ीमत २ हज़ार से कम न होगी। वैसी साड़ी मैंने कभी न देखी थी। मैं अवाक् रह गई। ऐसा बेढब आदमी तो देखा न सुना। मैं साड़ी बदल चुपचाप उसके हुक्म की इन्तज़ारी करने लगी। मेरा ग़ुरूर और सारी चञ्चलता जाने कहाँ चली गई।

उन्होंने निकट आकर प्यार के स्वर में कहा—"जाओ उस कमरे में सो रहो, मैं भी ज़रा सोऊँगा। किसी चीज़ की ज़रूरत हो तो घण्टी देना, नौकर हुक्म बजा लावेगा।"

हाय, क्या मैं सोई? वह पुरुष सो गया और मैं उसके पैर पकड़े बैठी रही। रात बीतने लगी, निस्तब्धता छा गई। हाँ, मैं पैर पकड़े बैठी थी, इस पुरुष के, जो इतना कठोर और इतना उदार, ऐसा मस्त और ऐसा ज़िद्दी है। और तस्वीर देख रही हूँ किसी और की, जिसे मैंने कुछ दिन पूर्व शरीर अर्पण किया था। मेरा हृदय और प्रेम आवारागर्द बेघर-बार पुरुष की तरह भटक रहा था, और वेश्यावृत्ति का जटिल रहस्य अब समझ में आया।

कई घण्टे व्यतीत हो गए। वे एकाएक उठ बैठे। उन्होंने कहा—"बेवक़ूफ़ लड़की! क्या तू सचमुच वेश्या नहीं है? तेरे पास हृदय है? तू प्रेम करना जानती है?"

मेरे जवाब से प्रथम ही उन्होंने मुझे उठा कर हृदय से लगा लिया। हाय, यह पापिष्ट शरीर यहाँ भी अर्पण करना पड़ा। पर मैं लज्जा से अपने आपको भी नहीं देख सकती थी।

कह ही दूँ, बिना कहे तो चलेगा नहीं; वैसा सुन्दर आदमी नहीं देखा था। रङ्ग गुलाब के समान, दाँत जैसे मोती की लड़ी, हास्य जैसे चाँदनी की बहार—मैं देखती रह गई, यही महाराज थे। उन्होंने पास बुलाया, प्यार से बग़ल में बैठाया, क्या-क्या किया; क्या-क्या कहा, वह सब बड़ी कठिनाई से भुलाया है, अब याद क्यों करूँ?

मैंने समझा था मैं नौकर हूँ, पर मैं थी रानी! नौकर थे राजा साहेब! वे कितना प्यार करते थे, कितना लाड़ करते थे—मैं क्या होश में थी, जो समझ सकती। पुरुष स्त्री जाति को कब क्या देता है; पुरुष स्त्री-जाति को किस तरह सुख देता है, यह कोई वह स्त्री ही जान सकती है, जिसने वैसा सुन्दर, उदार, दाता, दयालु पुरुष पाया हो। मैं कृतार्थ हो गई, मैं धन्य हुई, मुझे अब कुछ न चाहिए था। मेरे पास रूप था, यौवन था, शरीर था, मन था, आत्मा थी, प्रेम था, हृदय था—सभी मैंने उन्हें दे दिया, और उन्होंने जो देना चाहा रुपया-पैसा, वस्त्र, रत्न—सभी मैंने तुच्छ समझा। मैंने एक बार तो निर्लज्ज होकर कह दिया था—"यह सब क्यों करते हो, तुम्हीं। जब मुझे प्राप्त हो, फिर और कुछ मुझे क्या चाहिए।" वे हँसते थे। मेरे वे दिन हवा की तरह उड़



नवाबज़ादा सआदतुल्ला ख़ाँ, एम० ए० (ऑक्सिन)

बलूचिस्तान के कृषि-विभाग के नए डायरेक्टर

गए, मुझ मूर्ख ने यह समझा ही नहीं कि यह सब कुछ मेरे लिए नहीं, मेरे रूप के लिए है। और मैं स्त्री नहीं, वेश्या हूँ? इसके वेश्यापन और रूप ही ने तो मुझे चौपट किया !!

५

यह विधाता की भूल है कि वह वेश्या है, अगर महारानी रूप और गुण में इससे शतांश भी होतीं तो कदाचित जगत की जूठी पत्तल चाटने की ज़िल्लत में न पड़ता। लाखों मनुष्यों के सामने मैं राजा और महाराज हूँ, पर इस औरत के सामने आज एक कुत्ता, जो अपनी नीच-स्वाद वृत्तियों की तृप्ति के लिए सदा उन्मत्त रहता हो। वह जिस दिन आई तभी से मैंने उसे समझा। एक अफ़सोस तो यह है कि वह वेश्या है, दूसरा अफ़सोस यह कि वह यह बात अभी तक नहीं जानती। नारी-हृदय का नैसर्गिक प्रेम उसके पास अछूता था, वह उसने राई-रत्ती मुझे दिया; पर इससे फ़ायदा? वह मुझे वही समझती है, जो लाखों-करोड़ों स्त्रियाँ पुरुष प्राप्त करके समझती रही हैं, पर मैं तो यह जानता हूँ कि वह वेश्या है! उसकी माँ ने मासिक वेतन लेकर उस काल के लिए उसके शरीर पर मुझे अधिकार करने दिया है, जब तक मैं वेतन देता रहूँ। वह आत्मदान कर चुकी, यह तो सत्य है, पर इससे होता क्या है? इस अधिकार और पद्धति-शून्य असामाजिक आत्मदान को मैं क्या करूँ? क्या मैं खुल्लमखुल्ला उसे पत्नी कहने का साहस करूँ? सारे अख़बार हाय-तोबा मचा कर धरती-आसमान उठा लेंगे? सरकार की आँखें नीली-पीली अलग हो जावेंगी? और सरदार, अफ़सर, परिजन दम निकाल देंगे। वह रानी बनने योग्य है; उसके रानी बनने से उसकी नहीं, महल की शोभा है। परन्तु इस बात को तो देखिए कि यह व्यभिचार और रूप का क्रय-विक्रय तो सब अन्धे और बहरों की तरह देख-सुन रहे हैं, पर इस पाप को नीति और नियम के रूप में संसार नहीं देखना चाहता। फिर मैं क्यों इल्लत लूँ? मैं राजा हूँ, युवा हूँ, सुन्दर हूँ, धनी हूँ, मैं ऐसे-ऐसे सौन्दर्य नित्य ख़रीदने में समर्थ हूँ। मैं अपना यह स्वार्थ-अधिकार क्यों त्यागूँ? कठोरता हाँ, यह कठोरता और निष्ठुरता तो है, परन्तु राजा बन कर मनुष्य को कितना कठोर बनना पड़ता है। राज्य-व्यवस्था क़ायम करने के लिए कठोरता गुण है, यदि मैं आत्म-सुख और शरीर-भोग के लिए भी ज़रा निष्ठुर बनूँ तो कुछ हर्ज है? मैं उसे ठग नहीं रहा, मुआविज़ा दे रहा हूँ, इतना और उसे मिलेगा कहाँ? वह वेश्या है, जब तक उसमें रस है, मैं भरपूर मोल देकर लूँगा, पीऊँगा, बखेरूँगा, जब जी में आवेगा फोक-फेंक दूँगा। अजी! यह स्त्री-जाति ही तो है? सर्दी की धूप की तरह यह स्त्री-यौवन ढलता है। पुरुष होकर, सुयोग पाकर मैं क्यों सुप्राप्त यौवनों को छोड़ूँ? यह धन, राजसत्ता फिर किस काम आवेगी? अन्ततः हमारा राजापन किस योग्य होगा? पूर्वकाल के राजागण युद्ध करते थे; जीवन, मृत्यु सदा उनके सम्मुख थी; देश के चुने हुए विद्वान उनके मन्त्री सदा उनके पास रहते थे। अब यह सब काम तो प्रबल प्रतापी हमारी दयालु सरकार कर रही है, हमें छुट्टी है! इस जीवन भर के अवकाश में यदि हम जी भर कर यौवन और भोग को, जो धन से प्राप्त हो सकता है, न भोगें तो हमारे बराबर अहमक़ कौन?

वह वेश्या है, वेश्या रहे, यह बात उसे समझ रखनी चाहिए। वह स्त्री नहीं बनी रह सकती, पुरुष से स्त्री को जो प्रतिदान वास्तव में मिलना चाहिए, वह उसे नहीं मिलेगा। जब तक वह यौवन के उभार पर है, वह मेरी है, मेरा सारा राज्य उसके पैरों में है। इसके बाद? इसके बाद भी चिन्ता क्या है? वह इतना सञ्चित कर लेगी कि जन्म भर को काफ़ी होगा!

६

नख-शिख से शृङ्गार किए वेश्या के सामने आँख के अन्धे और गाँठ के पूरे बेवक़ूफ़ और बेग़ैरत नौजवान कुत्ते दुम हिला-हिला कर जो प्रेम और आदर प्रकट करते हैं वही क्या वेश्या का सम्मान है? वेश्या की असलियत तो उसके 'वेश्या' शब्द में ही है। वह रज़ील, अछूत और भले घर की बहू-बेटियों के देखने की वस्तु भी तो नहीं। वे शरीफ़ज़ादे रईस और राजा, जो समय पर जूतियाँ उठाते और जूतियाँ खाते हैं—यह तो सहन ही नहीं कर सकते, कि कभी सामना होने पर भी अपनी घरवालियों से हमारा परिचय तक तो करा दें। अपनी रज़ील हैसियत हम समझती हैं, हमारे हीरे-मोती, महल-पलँग, मसहरी, मोटर, धन—कोई भी हमारी इस रज़ील हैसियत से हमारी रक्षा नहीं कर सकता। हाय! वेश्या

के हृदय को छोड़ कर, और कौन स्त्री-हृदय इस भयानक अपमान की धधकती आग को हँस कर सह सकती है।

उस दिन मेंह बरस रहा था, भयानक अँधेरा था, राजमहल स्टेशन से दूर न था, परन्तु महाराज शिकार खेलने वहाँ से १८ मील के फ़ासले पर गए थे। उनके अङ्गरेज़ दोस्त आए थे, वहीं उनकी दावत और जशन का नाच-रङ्ग था, दर्जन भर वेश्याएँ उसमें बुलाई गई थीं, मैं अभागिनी भी उनमें एक थी, मेरे नाच और गाने की ख्याति ने ही मुझे इस विपत्ति में डाला था, पर मैं करती भी क्या। वेश्या पर उसकी कुटनी माँ का असाध्य अधिकार होता है, मेरा शरीर अच्छा न था, मैं दो साइयाँ बजा कर आई थी, थकी थी, सर्दी-ज़ुकाम भी था, पर मुझे आना ही पड़ा। चार सौ रुपए रोज़ की फ़ीस छोड़ी भी कैसे जाती? सारी नवाबी तो उसीके पीछे थी। अँधेरी रात और १० मील का सफ़र! १०-१२ हम बदनसीब औरतें और हमारे सिरासी नौकर। साथ के लिए ४ प्यादे सिपाही और सामान लादने की एक बेगार में पकड़ी हुई बैलगाड़ी और दो लद्दू टट्टू। बस, यह हमारे स्वागत का प्रबन्ध उपस्थित था। क्या ये कमीने राजा अपनी रानियों के लिए भी ऐसा ही स्वागत करने की हिम्मत कर सकते हैं? पर रानियों से हमारी निस्बत ही क्या?

सिपाहियों ने कहा—"बेगार में और कुछ मिला ही नहीं, सामान गाड़ी [illegible] पर तथा हमें पैदल चलना होगा"। मैं [illegible] बैठ गई। इस अँधेरी रात में, बरसात के समय १० मील पैदल चलने से मैंने मरना ठीक समझा, मैंने साफ़ इनकार कर दिया। सिपाहियों ने फ़बतियाँ उड़ाईं! अन्त को एक टट्टू पहिले मुझे दे दिया गया। मैंने उसे ही ग़नीमत समझा।

हम भाग्यहीनों की इस ठाट की सवारी चली, जिन्हें वहाँ पहुँचते ही अपनी चमक-दमक, रूप और नख़रों से उन भेड़िए रईसों और उनके कमीने मेहमानों को पागल बनाना था। मैं चुपचाप टट्टू पर कम्बल ओढ़े बैठी थी, कमर टूटी जाती थी और मैं गिरी जाती थी। पानी का छींटा बीच-बीच में गिर जाता था, पर मैं जानती थी—वहाँ पहुँच कर मुझे बहुत मिहनत करनी है, आराम इस नसीब में कहाँ?

तीन घण्टे सफ़र करके हम वहाँ पहुँचे। पहुँचते ही पता लगा, महाराज और पार्टी कड़ी प्रतीक्षा कर रहे हैं, हमें तत्काल ही पेशवाज़ पहन कर महफ़िल में पहुँचना चाहिए। मैंने अधमरी सी होकर साथ की वेश्या से कहा—"अब इस समय तो मुझसे एक पग भी न उठाया जायगा।" उसने कहा—"बेवक़ूफ़ हुई है, जल्दी कर, ऐसा कहीं होता है।" उसने जल्दी-जल्दी दो-तीन पैग शराब पिलाई।



मिस एल० डी० सौजा, बी० एस-सी० (लन्दन)

आप वानीविलास इन्स्टीट्यूट, बङ्गलोर की हेडमास्टर नियत की गई हैं।

ओह! मुझे सजना पड़ा, मेरा अङ्ग-अङ्ग टूट रहा था, मैं मरी जाती थी, मुझे ज्वर चढ़ रहा था, पर मेरे पास मिनट-मिनट पर सन्देश आ रहे थे। हीरा प्रथम ही से महाराज के पास थी, उसने कहला कर भेजा—आनन्दी जल्दी कर, सभी लोग तेरा नाम रट रहे हैं। मेरा शृङ्गार हुआ, जड़ाऊ गहने, ज़री की पेशवाज़, मोतियों के बाज़-बन्द और जड़ाऊ पेटी-कस कर, इत्र और लेवेण्डर से तर-बतर हो, पाउडर से लैस हो दो पैग चढ़ा कर मैं छमा-

छम करती महफ़िल में पहुँची। मैं क्या पहुँची, बिजली गिरी—लोग तड़फ गए। हाय-हाय से महफ़िल गूँज गई, महाराज पागल हो रहे थे और दोस्त लोग उछल रहे थे। फूलों के गुलदस्ते मुझ पर बरस रहे थे, वाह वा का तार बँधा था। क्षण-क्षण पर हरी, लाल, नीली बिजली की रौशनी पड़ कर मुझे अमूर्ति मूर्ति बना रही थी, पर मेरा सिर दर्द से फटा जाता था, और जी मिचला रहा था, पर मैं मुस्करा कर छमाछम नाच रही थी। कहरवे की ठुमकी लेकर मैंने विहाग का एक टप्पा छेड़ा, साज़िन्दे उसे ले उड़े। महफ़िल में सकते की हालत हो रही थी, तालियों की गड़गड़ाहट की हद न थी, नोट और गिन्नियों का मेंह बरस गया, पर मैं मानो मूर्च्छित होने लगी, मुझे क़ै आने लगी थी और मैं अपने को अब क़ाबू न कर सकती थी। मैंने रौशनी वाले को आँख से एक सङ्केत किया! एक बार झुक कर महफ़िल को सलाम किया और भागी। महफ़िल में तालियाँ गड़गड़ा रही थीं, 'वन्स मोर' का शोर आसमान को चीरे डालता था। उधर मैं एक ज़ोर की क़ै करके बेहोश हो गई थी!

७

मैं कब तक उस दशा में पड़ी रही, नहीं कह सकती। किसी ने झकझोर कर जगाया, आँख खोल कर देखा, हीरा है। मैं उसे देखते ही उससे लिपट गई। ध्यान से देखते ही मुझे मालूम हुआ, हीरा का वह रूप-रङ्ग उड़ गया है। वह पीली पड़ गई है और उसकी उन सुन्दर आँखों के चारों ओर नीले दाग़ पड़ गए हैं, गले की हड्डियाँ निकल आई हैं। उसे मैं देखती ही रह गई, वह मुझे इस प्रकार अपनी ओर देखते देख कर हँस पड़ी। हाय, वह हास्य भी कितना रूखा था! कौन हीरा के उस हास्य से सुखी होता? पर मेरे मुँह से बात न निकली। मैं नीची दृष्टि किए कुछ सोचने लगी।

हीरा ने कहा—"उठ-उठ आनन्दी! जल्दी कर, तुझे महाराज ने याद फ़र्माया है।"

उसके होठ काँप गए, स्वर भी विकृत हो गया। मैं भी डर गई। मैंने कहा—"यह किसी तरह सम्भव नहीं हो सकता। क्या मैं इस समय महाराजा के पास जाने के योग्य हूँ?"

"इस बात से क्या बहस है? तुझे चलना तो पड़ेगा ही।"

"मैं हरगिज़ न जाऊँगी।"

उसने प्यार से मेरे सिर पर हाथ फेरा, पुचकारा और कहा—"बेवक़ूफ़ी न कर, यह रियासत है, अपना घर नहीं, महाराज की हुक्मउदूली की सज़ा तुझे मालूम नहीं।"

"क्या मार डालेंगे?"

"यह तो कुछ सज़ा ही न थी?"

"तब?"—मैंने शङ्कित स्वर से पूछा।

"ईश्वर न करे, कि तुझे फ़ज़ीहत उठानी पड़े। मेरी प्रार्थना यही है कि उनकी इच्छा में दख़ल न देना, इसी में ख़ैर है।"

इतना कह कर उसने मुझे उठाया। पर मैं उठ सकती ही न थी। किसी तरह उसने उठाया, अपनी एक बढ़िया साड़ी मुझे पहना दी, बालों का शृङ्गार कर दिया और कुछ अदब-क़ायदे की बातें समझा कर ड्योढ़ियों तक पहुँचा आई। मैंने देखा, उसने मुँह फेर कर आँसू पोंछ लिए।

मेरा शरीर वास्तव में क़ाबू में न था, मैं सम्हल ही न सकी, बदहवास की तरह महाराज के सामने गिर गई। वहाँ क्या हो रहा था, वह सब मैं देख न सकी। मेरे होश-हवास दुरुस्त न थे, पर वहाँ सभी लुच्चे-लुङ्गाड़े, नीच, शराबी इकट्ठे थे। वे नर-राक्षस और पिशाच थे। वे शराब पी-पीकर पशु हो गए थे। उन्होंने लज्जा बेच खाई थी। मुझ पर जैसी बीती, वह मैं वेश्या होकर भी वर्णन नहीं कर सकती। जगत का कोई भी ख़ूँख़ार पशु किसी अबला स्त्री पर इतना अत्याचार न कर सकेगा। ज्वर से जलती हुई, थकी हुई, मुझ बदहवास ग़रीब असहाय स्त्री के साथ उन कुत्तों ने क्या-क्या करने और न करने योग्य न किया? सारा संसार यह कल्पना भी नहीं कर सकता, कि मुझ पर जो बीता और मैंने जो देखा, वह सम्भव भी हो सकता है, पर मेरे साथ तो वह हुआ। जब तक मैं होश में रही और मेरे शरीर में बल रहा, मैंने उन भेड़ियों को रोका। प्रतिकार किया, परन्तु मैं शीघ्र ही बदहवास हो गई और मैं उसी अवस्था में डोली पर लाद कर दिन निकलने से पूर्व ही दिल्ली को रवाना कर दी गई।

८

सैकिण्ड क्लास के ज़नाने डब्बे में मैं अकेली थी, मैंने सब खिड़कियाँ खुलवा दी थीं। सुबह की ठण्ढी-ठण्ढी हवा से मेरी तबीयत हलकी हुई, पर रात जो मुझ पर अत्याचार हुआ था वह असाधारण था; पर मैं जानती हूँ जगत के मर्द इससे क्षुभित न होंगे। वेश्या के बाहरी स्वरूप को सभी देखते हैं, वह भीतरी रूप तो हम स्वयं ही देखती हैं। मैं ज़रा उठ कर देखने लगी, रेल की पटरी के बराबर ही बराबर सड़क थी, उस पर एक मोटर तेज़ी से दौड़ी चली आ रही थी। मोटर गाड़ी से दौड़ लगा रही थी। मुझे कौतूहल हुआ, मैं एकटक उसे देखने लगी। मैंने देखा, एक स्त्री उसमें बैठी बड़ी बेचैनी से गाड़ी को देख रही है। स्टेशन आया, गाड़ी खड़ी हुई और वह स्त्री घबराई हुई स्टेशन में घुस आई। एक कर्मचारी उसे मेरे डब्बे में बैठा गया, डब्बे में बैठते ही वह हाँफने लगी और दोनों हाथों से मुँह ढँक कर बैठ गई। गाड़ी के चलते ही मैंने उसके पास जाकर कहा—"आपको कुछ तकलीफ़ है क्या ?" उसने चौंक कर देखा और मुझे देख कर ज़ोर से मेरा हाथ पकड़ कर कहा—"कुछ नहीं, ईश्वर का धन्यवाद है कि मेरी इज़्ज़त बच गई, तुम कहाँ जा रही हो।"

मैंने कहा—"दिल्ली।"

"मैं भी वहीं जा रही हूँ। तुम्हारा घर किस मुहल्ले में है और तुम्हारे पति क्या काम करते हैं ?"

मैं क्या जवाब देती, मैं चुपचाप खड़ी रही। कुछ सम्हल कर मैंने कहा—"आपको कुछ मदद चाहिए, वह मैं कर सकूँगी। आप कहिए।"

"मैं तुम्हारे यहाँ कुछ घण्टे ठहरना चाहती हूँ और अपने पति को तार-द्वारा सूचना देना चाहती हूँ। क्या तुम मेरे लिए इतना कष्ट करोगी ?"

"ज़रूर, परन्तु........" मैं फिर चुप हो गई।

"परन्तु क्या ?"—उसने घबरा कर कहा।

"मैं तवायफ़ हूँ, शायद आपको मेरे घर चलना पसन्द न हो।" वह स्त्री इस तरह चमकी, जैसे बिच्छू ने डङ्क मारा हो। उसने मेरा हाथ छोड़ दिया, मैं अपनी जगह आ बैठी। कुछ देर सन्नाटा रहा, आत्म-ग्लानि के मारे मैं मर रही थी।

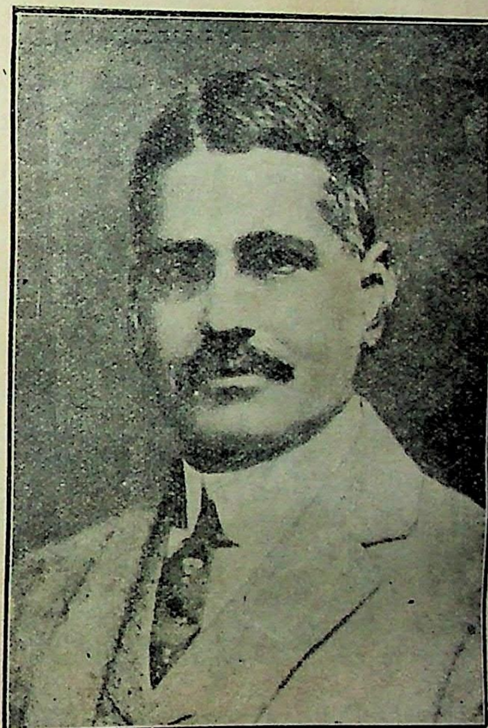
उस स्त्री ने पूछा—"कहाँ से आ रही हो ?"

"महाराज.........की महफ़िल से।"

उसने घृणा और क्रोध से मेरी ओर देखा, उसने होठ काट कर कहा—"उस हरामज़ादे को मैं मच्छर की तरह मसल डालूँगी, उसने मुझे भी तुम जैसी ही रण्डी समझा होगा।"

मेरे कलेजे में तीर लगा !

मैंने धीरज धरके कहा—"मैं उससे घृणा करती हूँ, रात उसने मुझ पर बड़ा ज़ुल्म किया है, हम अभागिनी स्त्रियों की तो सर्वत्र एक ही दशा है। मैं जो हूँ वही



सर राजेन्द्र मुकर्जी

बङ्गाल वायुयान-क्लब के प्रेज़िडेण्ट

रहूँगी, यह तो क़िस्मत है। पर आपकी कोई भी सेवा मैं ख़ुशी से करूँगी, यदि आप चाहें।"

उसने मेरी तरफ़ देखा, और कहा—"मेरे स्वामी उस स्टेट में इञ्जीनियर हैं। हम लोग पारसी हैं, पर्दा नहीं करतीं। उस पापी ने मुझे और मेरे पति को एकाध बार चाय-पानी के लिए बुलाया था। वे कल से ही कहीं बाहर भेज दिए गए और आज सुबह मुझे बुला भेजा कि साहब आप हैं, यहाँ बैठे हैं। मैं सीधे स्वभाव चली

गई, पर वहाँ धोखा था। मेरी इज़्ज़त बचनी थी, मैं गुसलख़ाने की राह भाग कर मोटर में भागी हूँ। मैं सीधी वायसराय के पास जाना चाहती हूँ, मैं दिखा दूँगी कि किसी महिला की आबरू उतारने की कोशिश करना किसी गुण्डे के लिए कैसा भारी है, फिर चाहे वह गुण्डा महाराजा ही क्यों न हो ?"

इतना कह कर वह लाल-लाल आँखों से मुझे घूरने लगी, मैं अपराधिनी की भाँति थर-थर काँपने लगी ! क्या यह आश्चर्य की बात थी ? एक ऐसी वीर महिला के



श्रीमती अमिया वन्द्योपाध्याय, एम० ए०

आप स्टेट स्कॉलरशिप पाकर ऑक्सफ़ोर्ड में साहित्य की ऑनर्स उपाधि प्राप्त करने विलायत गई हैं।

सामने, जो अपनी इज़्ज़त बचाने को जान पर खेल गई है, मेरी जैसी जन्म-अभागिनी, जो उसी इज़्ज़त को बेच कर पेट ही नहीं भरतीं, शान से रहना भी चाहती हैं—क्या खड़ी रह सकती थी ? मैं खिड़की में मुँह डाल कर रोने लगी।

वह उठ कर आई, कहा—"रोती क्यों हो ? क्या कोई कड़ी बात मेरे मुख से निकल गई। ऐसा हो तो माफ़ करना, मैं आपे में नहीं हूँ।"

मैंने उसका आँचल उठा कर आँखों में लगाया, उसे चूमा और फिर मैं भरपेट रोई। मैंने अपना पाप स्वीकार किया। मैंने मुँह फाड़ कर कह दिया। ईश्वर ने जीवन में मुझे सच्ची स्त्री-रत्न के दर्शन करा दिए। ओह, हम लाखों बेबस नारियाँ इस पवित्र जीवन से वञ्चित हैं, कोई भी माई का लाल इसका उपाय नहीं सोचता !!

उसने मुझे छाती से लगाया, प्यार किया। वह पवित्र वीराङ्गना मुझ पतिता वेश्या, अधम अभागिनी को बेटी की तरह दुलार करती दिल्ली तक आई। किसी तरह मेरी कोई सहायता स्वीकार न की। बहुत कहने पर कहा—"मेरे पास रुपए नहीं हैं। तुम्हारे पास हों तो १०१) दे दो। ये कड़े रख लो, ६००) के हैं।" मैंने रुपए दे दिए। कड़े लेती न थी, पर वह बिना दिए कब रहती। वह मेरी आँखों से ओझल हो गई।

९

कृमि-कीट से भी अधम और घृणास्पद वेश्या होकर भी जो मैंने रानी का गौरवास्पद पद छीनना चाहा, उस धृष्टता का जो दण्ड मिलना उचित था, वह मुझे मिला।

मैं जिस रूप पर इतराती थी और जिसकी सर्वत्र प्रशंसा थी, महाराज भी जिसे देख कर थकते न थे, वह रूप अब निस्तेज हो गया। महाराज पर उसका नशा नहीं होता, वे और नवीनाओं की खोज में लगे और मुझे अनुचरों के सुपुर्द कर दिया। हाय री लाञ्छना, वह सब बड़ी-बड़ी आशाएँ मृग-मरीचिका निकल गईं। जिन्हें कल मैं तुच्छ समझ कर पीकदान उठवाती थी, वे महाराज के सङ्केत से मेरे शरीर और आत्मा के अधिकारी हो गए। जैसे पवित्र पाकशाला में विविध स्वादिष्ट खाद्य-पदार्थों से भरा हुआ थाल—महाराज के छक कर जीम चुकने पर जूठन भङ्गी को मिलती है। मेरी दशा भी उसी पत्तल के समान थी। महाराज के आदेश से उन्हीं के सम्मुख उनके विनोदार्थ मुझे उनके नीच पशु सब पार्श्वदों से जघन्य कुकर्म बिना उज्र करना और महाराज के लिए आई हुई नवीनाओं के बीच कुटनी का काम करना !!

क्या किसी स्त्री का हृदय बिना फटे रह जाय ? परन्तु मेरा हृदय फट कर भी न फटा, मैंने वह सब किया जो मुझे आदेश दिया गया। उस दिन महफ़िल में आनन्दी के रूप को देख कर महाराज और उनके कामुक कुत्ते उस पर लट्टू हो गए। और उस ग़रीब असहाय बालिका

को उनके पास लाने का कार्य करना पड़ा मुझे ? इच्छा हुई कि अभी विष खा लूँ; फिर सोचा, क्या मेरे मर जाने पर आज कोई रोवेगा ? इस रस-रङ्ग में ज़रा भी विघ्न पड़ेगा ? आनन्दी को भी क्या कोई बचा सकेगा ?

यह तो सम्भव नहीं है। मैं उसे चुमकार-पुचकार कर ले गई। वही हुआ जो भय था, वह उसी दिन से शय्या पर पड़ी है, उसके शरीर का बूँद-बूँद रक्त निकल गया, पर रक्त-प्रवाह बन्द होता ही नहीं। डॉक्टर कहते हैं कि वह बचेगी नहीं, उसे खाँसी और ज्वर भी हो गया है, और वह सूख कर काँटा हो गई है। मैं उसे देखने गई थी। क्या उसका हाल वर्णन करूँ ? वह अब उठ-बैठ भी नहीं सकती, अभी उसकी आयु की बालिकाएँ कुमारी हैं और वह सभी कुछ भोग चुकी, सभी कुछ पा चुकी, साथ ही परलोक के सभी अधिकार खो चुकी। आज नहीं तो कल वह चली जायगी, उस सर्व-शक्तिमान् पिता के पास, वह दयालु ईश्वर क्या अब भी उसे और दण्ड देगा ! उसने पाप किया, पाप अपना जीवन बनाया, पाप में वह जी और मरी, पर पाप को उसने पाप समझा कब ? नारी-जीवन पाकर, नारी-शरीर पाकर, नारी के सभी गुण पाकर, वह बेचारी नारी-गरिमा से बिलकुल वञ्चित रही !!

हाँ, मैं इस पर विचार करूँगी कि यह वेश्यावृत्ति क्या वस्तु है। और इसका दायित्व किस पर है, इसके नाश का क्या कोई उपाय नहीं है। उन पुरुषों को धिक्कार है, जो स्त्रियों के रक्षक होकर भी स्त्री-जाति के इस कलङ्क को नाश करने का ज़रा भी उद्योग नहीं करते। आह ! आनन्दी, तेरी जैसी कितनी प्यार की पुतलियाँ इसी तरह कुचली गईं। ये कमीने धनी, धन के बदले हमें प्रलोभनों में फँसाते हैं और हमारा यह लोक और पर-लोक नष्ट करते हैं। और खेद तो यह है कि इसका ज्ञान हमें तब होता है, जब हमारे बचने के सभी मार्ग बन्द हो जाते हैं। मैं क्या कर सकती थी, मैं उसके लिए अच्छी तरह रोकर चली आई !

१०

मुझे मरने में बड़ा सुख है। रेल वाली उस महिला का हाथ मेरे मस्तक पर है। वह मुझे मृत्यु के बाद मार्ग बताएगी। अब जितनी जल्द यह घृणित शरीर छूटे, अच्छा है। मैंने वे पलँग, साड़ी, शाल, आभूषण—सब त्याग दिए। मैं महादरिद्र की तरह मर रही हूँ, पर मुझे गर्व है कि इस शरीर को छोड़ अब कोई अपवित्र वस्तु मेरे पास नहीं। और जिस स्वेच्छा से मैंने वे सब सामान त्यागे हैं, उसी तरह मैं इस शरीर को त्यागने को उत्सुक हूँ। इसमें मुझे ज़रा भी दुःख नहीं, पर खेद तो यह है कि अब स्नेहशीला हीरा के दर्शन न होंगे। ऐसी प्रेम और त्याग की अप्रतिभ मूर्ति, सौन्दर्य की राशि पृथ्वी में कितनी उत्पन्न होती हैं ? सुना है कि वह पागल हो गई है। और उस दिन आत्म-घात की इच्छा से छत से

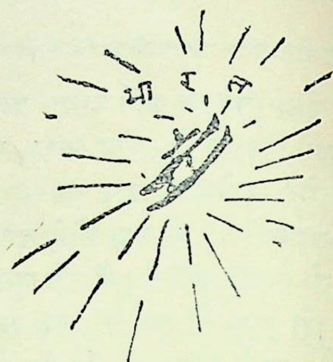


मिस सिबिल सेल कुड

आप सिर्फ़ १९ वर्ष की आयु में न्यूइङ्गटन की लिबरल एसोसिएशन की सेक्रेटरी नियत की गई हैं।

कूद पड़ी थी। आख़िर कहाँ तक सहन करती ? जिसे उसने तन, मन, शरीर दिया, उसीने उसे यहाँ तक गिराया। मैं मरती हूँ, पर पुरुष-जाति पर श्राप देती हूँ, कि इस पुरुष-जाति का नाश हो, इसका वंश नष्ट हो, इसकी मिट्टी ख़्वार हो, जो असहाय अबलाओं की पवित्रता और जीवन को अपनी वासनाओं पर क़ुर्बान करते हैं !! यह पुरुष-जाति सदा—रोग, शोक, दुख, दरिद्र, पाप, यन्त्रणा में अनन्त काल तक पड़ी रहे !!!

चांद



जॉनबुल की जान सङ्कट में
बेचारे भारत की ओर नज़र लगाए हुए हैं, पर अपने घर का पता नहीं रखते

जाग्रत एशिया

[श्री० मथुरालाल शर्मा, एम० ए०]

आर्थिक और राजनैतिक साम्राज्यवाद



तो १५वीं शताब्दी में ही यूरोपीय देश संसार में अपनी प्रभुता फैलाने लग गए थे और अगली तीन शताब्दी में स्पेन, पोर्तुगाल, हॉलैण्ड, फ़्रान्स तथा इङ्गलैण्ड के व्यापारियों ने, उधर अमेरिका और इधर अफ़्रिका तथा एशिया की सम्पत्ति से अपने देशों को ख़ूब समृद्धिशाली बना दिया था, परन्तु अभी उन्होंने साम्राज्यवाद को अपना धर्म नहीं बनाया था। १९वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जो औद्योगिक और वैज्ञानिक विप्लव हुए, उनके कारण यूरोप के देश पक्के साम्राज्यवादी बन गए।

१८वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में इङ्गलैण्ड का बना हुआ लोहे का सामान और कपड़ा यूरोप में खप जाया करता था, परन्तु सन् १८५० के बाद ही यूरोप के अन्य राष्ट्र भी इस ओर उन्नति करने लगे और उनको अङ्गरेज़ी माल की आवश्यकता ही नहीं रही, बल्कि अपने माल को खपाने की और अपनी पूँजी पर अच्छा ब्याज कमाने की चिन्ता होने लगी। साथ ही विज्ञान ने संसार की काया पलट दी और अनेक भौतिक कठिनाइयों को हल कर दिया। सन् १८५० में संसार में केवल २४,००० मील रेल का प्रबन्ध था, पर सन् १९०० के पूर्व यह लगभग १० लाख मील तक फैल गया था। सन् १८५० से पूर्व केवल ५,००० मील तार था, पर १९वीं शताब्दी के अन्त में इसकी लम्बाई १० लाख मील से भी बढ़ गई थी।* १८७० और १९०३ के मध्य में इङ्गलैण्ड, जर्मनी और अमेरिका ने, जो लोहे का सामान बनाने में उन्नति की थी उसका ब्योरा यह है †—

	सन् १८७०	सन् १९०३	
इङ्गलैण्ड ...	६०	... ९०	लाख मन सामान
जर्मनी ...	१०४	... ९०८	,,
अमेरिका ...	१०७	... १८०	,,

यही हाल कपड़े का था। इस प्रकार जब गोरे देशों में माल की उत्पत्ति बढ़ने लगी और विपुल सम्पत्ति कारख़ानों के स्वामियों के पास एकत्र होने लगी, तो दो विकट समस्याएँ उपस्थित हुईं कि माल को लाभ के सहित कहाँ खपाया जावे और पूँजी को अच्छा ब्याज उपजाने के लिए कहाँ लगाया जावे? यूरोप और अमेरिका में यह माल खप नहीं सकता था और न वहाँ पूँजी पर कोई अच्छा ब्याज मिल सकता था। इसलिए यह उत्पादक देश एशिया और अफ़्रिका में अपना माल खपाने तथा वहाँ ब्याज पर अपना रुपया लगाने का प्रयत्न करने लगे। जहाँ इनको अपने कार्य में बाधा हुई, वहाँ इन्होंने छल-बल और कौशल से काम लिया। कई देशों को निरन्तर ग्राहक बनाए रखने के लिए, सदैव के लिए दासता की शृङ्खलाओं में जकड़ दिया। उनके कच्चे माल को कौड़ियों में ख़रीदा, उनके उद्योग-धन्धों को निर्दयतापूर्वक नष्ट किया और अपने माल को फ़ायदे के साथ बेचने के लिए अनेक सुविधाएँ प्राप्त कीं। इन राक्षसी प्रयत्नों ने यूरोप को साम्राज्यवादी और एशिया को उसका ग़ुलाम बना दिया। सारा संसार काली और गोरी दो जातियों में विभक्त हो गया!

१९वीं शताब्दी के मध्य में एशिया के सब देशों में यूरोप की प्रभुता स्थापित हो चुकी थी। भारतवर्ष और लङ्का पर अङ्गरेज़ों ने और पूर्वी द्वीप-समूह तथा अनाम आदि देशों पर हॉलैण्ड, अमेरिका और फ़्रान्स ने अपना राज्य जमा लिया था। इसके सिवाय अन्य देशों के भी व्यापार-केन्द्रों पर यूरोपीय लोगों का क़ब्ज़ा था। ईरान की खाड़ी, अदन, सिङ्गापुर, हाँगकाँङ्, वेहेवी अङ्गरेज़ों के; गोवा, पॉण्डीचरी, क्वाँङ्चूवान फ़्रान्स के; मेकाव पोर्तुगाल के और क्याऊ-चाऊ जर्मनी के आधिपत्य में थे।

* R. S. Lambert—*Modern Imperialism* p. 6.

† G. Brailsford—*Economic Imperialism* p. 28.

साइबेरिया और पश्चिमी तुर्किस्तान पर रूस का राज्य था। जिन देशों पर गोरी जातियों का पूर्ण राज्य स्थापित हो चुका था, उनका रक्त-शोषण तो होता ही था, परन्तु चीन, जापान, ईरान, अफ़ग़ानिस्तान और नेपाल आदि देशों के साथ भी विदेशियों ने ऐसी सन्धियाँ कर रक्खी थीं, जिनके कारण गोरों को विपुल आर्थिक लाभ होता था। एशियाई देशों के बाज़ारों को परदेशी सामानों से पाटा जाता था, इन पर जो देश अधिक कर लगा कर अपने



श्री० जी० के० देवधर

आप पूना की सर्वेण्ट ऑफ़ इण्डिया सोसाइटी के प्रेज़िडेण्ट नियत हुए हैं।

उद्योग-धन्धों की रक्षा करना चाहता था उसी के साथ युद्ध की तैयारी होती थी। जो देश विदेशी माल ख़रीदने से इनकार करता था उसको भी तोप, तलवार और सङ्गीनों से विवश किया जाता था। जापान १९वीं शताब्दी के मध्य तक यूरोप के सम्पर्क से बचता रहा, लेकिन सन् १८४९ और १८६५ के बीच में अमेरिका, रूस, हॉलैण्ड और ग्रेट ब्रिटेन के जहाज़ी बेड़ों ने उसको विवश करके उससे कई ऐसी व्यापारी-सन्धियाँ करवा लीं, जिससे उनको ख़ूब लाभ होने लगा। जब जापानी सरकार सन्धियों की शर्तों को बदलना या रद्द करना चाहती थी, तभी गोरी सरकारें उसको युद्ध की धमकी देकर चुप कर दिया करती थीं। चीन के साथ भी इनका ऐसा ही व्यवहार था। अङ्गरेज़ सरकार भारतवर्ष में अफ़ीम पैदा करवाती थी और उसको चीन में भेजती थी। इससे भारतवर्ष की गोरी सरकार को दुहरा लाभ होता था। प्रथम तो जिस भूमि में अफ़ीम होती थी, उसका कर ख़ूब लिया जाता था, दूसरे अफ़ीम के निर्यात कर से कई करोड़ रुपए की आय होती थी। उधर चीन में अफ़ीम खाने की आदत बढ़ती जाती थी और लोगों का शारीरिक तथा मानसिक पतन होता जाता था। जनता के समझदार लोग इसका विरोध करते थे और चीनी सरकार भी अफ़ीम की आमद को घटाना चाहती थी,* पर अङ्गरेज़-सरकार अपने भारी लाभ से वञ्चित नहीं होना चाहती थी। चीनी जनता ने कई बार अफ़ीम की पेटियों को जलाया, और अफ़ीम के सौदागरों को सताया, पर इससे धन-बल सम्पन्न अङ्गरेज़ सरकार का क्या बिगड़ सकता था। इस प्रकार के छोटे-छोटे उत्पातों से उनको अधिक नृशंसता करने का तथा लोगों को त्रस्त करने का बहाना मिलता था। अपने माल की रक्षा के लिए तथा अपने व्यापारियों की सुविधा के लिए विदेशियों ने चीन में कई स्थानों पर अपने कारख़ाने, कोठियाँ तथा गोदाम आदि बनवा लिए थे, जहाँ इन्हीं का क़ानून और इन्हीं का अधिकार था। उन स्थानों में रहने वाले चीनियों को भी विदेशियों के क़ानून मानने पड़ते थे। विदेशी चीन में चाहे जहाँ भ्रमण करें और कुछ भी करें, वे चीन के न्यायालय में पेश नहीं किए जा सकते थे। उन पर यदि मुक़दमा चलता था तो उन्हीं की अदालतों में, जहाँ प्रायः वे निर्दोष बतलाए जाते थे। यही दशा अन्य देशों की थी। भारतवर्ष, इण्डोचाईना, पूर्वी द्वीप-समूह और लङ्का पर तो गोरों का पूरा राज्य ही था। यहाँ वे स्वच्छन्दतापूर्वक जो चाहे सो कर सकते थे। भारत के उद्योग-धन्धे सरकार की निष्ठुर नीति से नष्ट हो गए।

*T'ang Leang-Li—*China in Revolt* ch. iii.
" " *Chinese Revolution* pp. 34-35.

इङ्गलैण्ड और अन्य देशों से भारतवर्ष में कपड़े तथा लोहे का माल आने लगा और यहाँ से रूई, अन्न, सन आदि कच्चा माल बाहर जाने लगा। अङ्गरेज़ी कम्पनियों ने रेल, बिजली के कारख़ाने, नील की खेतियाँ, ऊन, सन, चमड़ा आदि का व्यापार सब अपने हाथ में ले लिया। सरकारी रियायतों के कारण असफलता की उनको आशङ्का भी नहीं रही। फ़ान्स हॉलैण्ड और पोर्तुगाल ने भी अपने राज्यों में इसी नीति का अनुसरण किया।

ईरान की दशा चीन से भी अधिक शोचनीय थी। उसको उत्तर में रूस ने और दक्षिण में अङ्गरेज़ों ने दबा रक्खा था। दोनों राष्ट्रों ने उसको दो हिस्सों में विभक्त कर रक्खा था और अपने-अपने हिस्सों में उनका अखण्ड प्रभुत्व था। रूसी और अङ्गरेज़ ईरान की सरकार को नहीं मानते थे और ईरान का क़ानून उन पर लागू नहीं होता था। जैसे चीन में विदेशियों ने अपने सैनिक-बल के द्वारा विशेष अधिकार प्राप्त कर रक्खे थे, उसी प्रकार उन्होंने ईरान में भी अपना सिक्का जमा रक्खा था। दक्षिण ईरान में मिट्टी के तैल के कुएँ अङ्गरेज़ों ने अपने अधिकार में कर रक्खे थे, जिससे उनको भारी लाभ होता था। दोनों विदेशी जातियों के प्रति जब जनता असन्तोष प्रकट करती थी, तो उसको सैनिक शक्ति के द्वारा दबा दिया जाता था। ईरान के शाह अङ्गरेज़ और रूसियों के हाथ की कठपुतलियाँ थे। पहिले तो वे लोग गहरी अन्तर्राष्ट्रीय चालों को समझते ही नहीं थे, और पीछे जो समझ सकते थे, उनको विदेशियों ने ऐसे वायुमण्डल में रक्खा, कि वे भोग-विलास को ही अपना जीवन-ध्येय समझने लगे और अपने राज्य को अपनी जायदाद मानने लगे। शाह नासिरुद्दीन, मुज़फ़्फ़रुद्दीन, मोहम्मदअली और अहमदशाह—सब विदेशियों की उँगलियों पर नाचा करते थे। इनके विलास के कारण राज्य-कोष में सदैव दिवाला रहता था, परन्तु रूस और इङ्गलैण्ड इनको ऋण देने के लिए सदैव तैयार रहते थे। वे शाह से मनमाना व्याज लेते थे और देश की आय पर अपना निरीक्षण रखते थे। इसके अलावा उन्होंने शाह पर दबाव डाल कर व्यापार के लिए कई प्रकार की रिआयतें प्राप्त कर रक्खी थीं।*

तुर्की यूरोप के सान्निध्याय में था, इसलिए व्यापारिक और राजनैतिक—दोनों कारणों से वह गोरी सरकारों की आँखों की किरकिरी बना हुआ था। तुर्की में फ़्रेञ्च, अमेरिकन, अङ्गरेज़ रूसी और यूनानियों की बड़ी-बड़ी बस्तियाँ थीं, जो वास्तव में तुर्की-सरकार के शासन को कुछ भी नहीं मानती थीं। जब कभी इनमें और तुर्की-सरकार में विरोध होता था, तो यूरोप के राष्ट्र अपने देशवासियों का साथ देते थे। उनकी सहायता के बहाने रूस, फ़्रान्स और बलकान के राज्य कई बार तुर्की से



श्रीमती पार्वतीबाई कार्निक

आप थाना (बम्बई) के कॉङ्ग्रेस स्वयंसेविका संघ की प्रेज़िडेण्ट नियत की गई हैं।

युद्ध कर चुके थे और सन् १९१४ में तुर्की साम्राज्य यूरोप महाद्वीप में थोड़ा-सा रह गया था। यूरोप के राजनीतिज्ञ तुर्की को यूरोप का मरीज़ (Sickman of the west) कहा करते थे और २०वीं शताब्दी के आरम्भ में गिद्धों की भाँति उसकी लाश पर झपटने की प्रतीक्षा कर रहे थे।

अङ्गरेज़ लोग भारतवर्ष को अपने चङ्गुल में फँसाए रखने के लिए सिकन्दरिया से बम्बई तक के जल-मार्ग

* Haris Kohn—*A History of Nationalism in the East*, pp. 325-30.

को तो निष्कण्टक रखना ही चाहते थे, पर इसके अतिरिक्त विन्सेन्ट चर्चिल जैसे हड़पू नीतिज्ञों का यह भी मत था कि रूस-सागर के पूर्वी तट से ख़ैबर घाटी तक का एशिया खण्ड भी यदि पूर्णरूपेण अङ्गरेज़ों के राज्य में शामिल न हो, तो कम से कम वहाँ दूसरी यूरोपीय शक्ति का भी आधिपत्य न हो और न तुर्की, अरब, ईरान और अफ़ग़ानिस्तान उन्नत बन कर कभी अङ्गरेज़ों की अप्रतिद्वन्द्व शक्ति के बाधक बनें।

मुसलिम सङ्गठन

जिस समय यूरोप एशिया को आर्थिक और राजनैतिक दासता की बेड़ियों से अधिकाधिक जकड़ता जाता था, उस समय मुसलिम संसार में एक अपूर्व जाग्रति हुई। तत्कालीन इसलाम की अनेक कुरीतियों का निवारण करने के लिए तथा मुसलमानों को सचेत करने के लिए अरबस्तान के एक विद्वान सुधारक ने आन्दोलन आरम्भ किया। इसका नाम था मोहम्मद इब्न अब्दुल वहाब। इस वहाबी आन्दोलन ने सुषुप्त इसलाम को जाग्रत कर दिया। धार्मिक जाग्रति के साथ ही साथ मुसलमान अपनी आर्थिक और राजनैतिक विवशता को भी अनुभव करने लगे। जमालुद्दीन अफ़ग़ानी नामक एक विद्वान वक्ता और आन्दोलक ने सम्पूर्ण मुसलिम-जगत में दौरा किया और मुसलमानों को वास्तविकता का अनुभव करवाया। उसने यूरोप की आक्रमणात्मक नीति की ओर मुसलमानों का ध्यान आकर्षित करके आत्म-रक्षा के उपाय सोचने को उनसे प्रेरणा की। उसका सन्देश था कि यूरोप की सर्वसंहारिणी बाढ़ से बचने के लिए सब मुसलमानों को परस्पर सङ्गठित होना चाहिए। जहाँ जाता था वहाँ वह इसी सन्देश को सुनाता था और इसी मन्त्र की दीक्षा देता था। तुर्की का सुलतान अब्दुल हमीद भी मुसलिम सङ्गठन का बड़ा हामी था। वह वास्तव में मुसलिम जगत का ख़लीफ़ा बन कर इसलाम को पुनः गौरवान्वित करना चाहता था। जमालुद्दीन जब तुर्की में पहुँचा तो सुलतान अब्दुल उससे बहुत प्रसन्न हुआ और वह सुलतान का दाहिना हाथ बन गया। १९वीं शताब्दी गुरुडम का समय नहीं था, इसलिए अब्दुल हमीद को मुसलमान संसार ने उस श्राद्ध और सम्मान के साथ तो ख़लीफ़ा नहीं माना, जैसे अबूबकर या उसमान को इसलाम के आदि-काल में माना जाता था, परन्तु मुसलिम सङ्गठन का सन्देश प्रत्येक मुसलमान ने बड़े आदर और उत्साह के साथ सुना और क़ुस्तुन्तुनिया से कलकत्ता तक सब मुसलमान अपने आपको एक विशाल भातृ-मण्डल के सदस्य मानने लगे। हिन्दुओं के भय से भारतवर्ष के मुसलमान तो अङ्गरेज़ों के भक्त बने रहे, परन्तु पेशावर से पश्चिम की ओर के सब मुसलमान विदेशियों की हड़प नीति का अनुभव करने लगे और यूरोप से घृणा होने लगी!

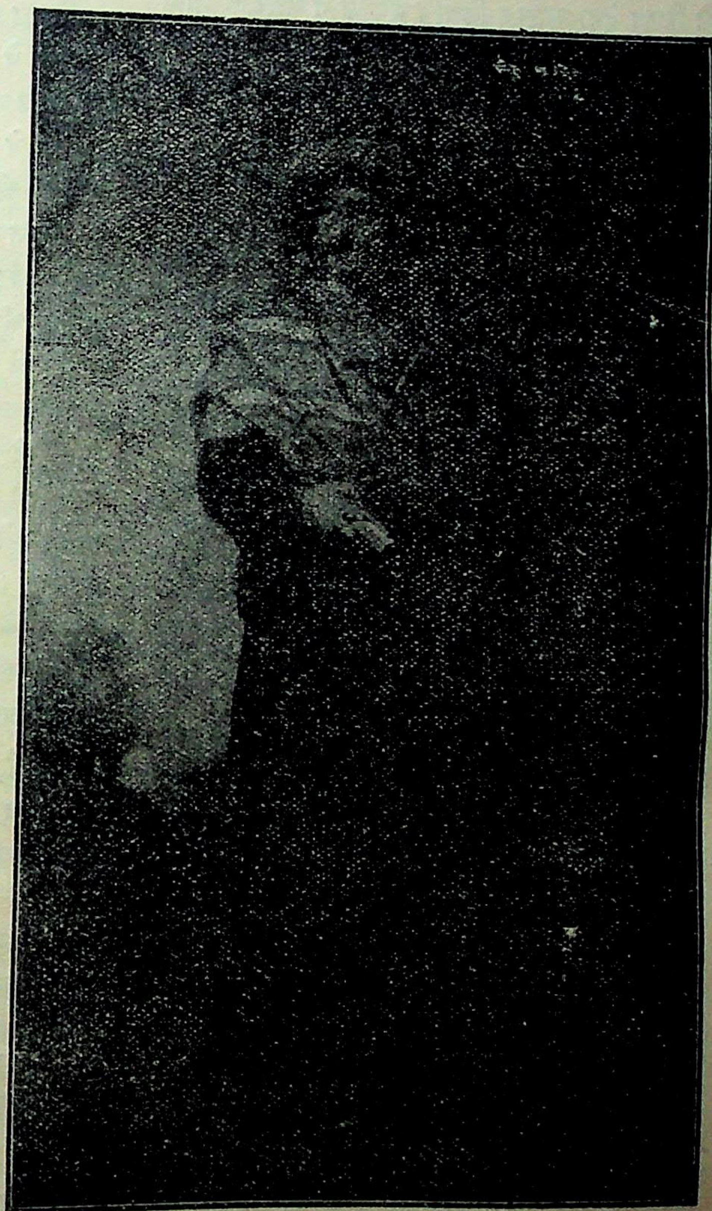
हिन्दू-जाग्रति

सन् १८४९ में सम्पूर्ण भारतवर्ष पर अङ्गरेज़ों का राज्य स्थापित हुआ था, परन्तु हिन्दू जाग्रति उससे पूर्व ही आरम्भ हो गई थी। सन् १८२८ में राजा राममोहन राय ने ब्रह्म समाज की स्थापना की और सङ्कुचित विचार तथा सामाजिक और धार्मिक कुरीतियों का घोर विरोध करना आरम्भ किया। उन्होंने स्वयं लन्दन यात्रा की और अन्य लोगों को भी विदेश यात्रा के लिए प्रोत्साहित करने लगे। उनके बाद केशवचन्द्र सेन ने सामाजिक सुधार का और भी अधिक उत्साह के साथ कार्य किया। उन्होंने भारतीय संस्कृति की उच्चता और महत्ता बतलाते हुए हिन्दू-समाज के सङ्कुचित विचारों को हटाने का उपदेश किया। सन् १८६७ में बम्बई में प्रार्थना-समाज की स्थापना हुई और उसके आठ वर्ष बाद उसी नगर में स्वामी दयानन्द ने आर्य-समाज क़ायम किया। स्वामी दयानन्द ने बतलाया था कि भारत की पुरातन संस्कृति संसार की सभ्यता की जननी है, आर्य-धर्म सर्वोत्तम और सार्वभौम धर्म है, और वेद सम्पूर्ण सत् विद्याओं का भण्डार है। वे कहते थे कि भारत की पराधीनता के कारण हैं ब्रह्मचर्य का अभाव, धार्मिक ह्रास, अव्यवस्थित शिक्षा, स्त्रियों की दुर्दशा, जातीय दर्प और अनेक सामाजिक कुरीतियाँ आदि। स्वामी दयानन्द बड़े देश प्रेमी थे और अपने व्याख्यानों में भीम और अर्जुन की वीरता, सीता का सतीत्व, राम की पितृ-भक्ति, भारत का अतीत ऐश्वर्य आदि का अपने श्रोताओं को स्मरण दिलाया करते थे। आर्य-समाज के प्रचार ने हिन्दू जनता को जाग्रत कर दिया। और सब हिन्दू लोग अपने प्राचीन गौरव पर अभिमान करने लगे। पश्चिमी सभ्यता की चकाचौंधी एकदम हट गई।

उत्तर भारत के गाँव-गाँव में आर्य-सभ्यता की चर्चा होने लगी। स्वामी विवेकानन्द ने भी केवल भारतवर्ष को ही नहीं, परन्तु सम्पूर्ण संसार को यह बतला दिया कि यह देश अब भी अध्यात्म विद्या में जगद्गुरु है, और इसका जाग्रत होकर अपने पैरों पर खड़ा होना कोई कठिन बात नहीं है !

पश्चिम का सम्पर्क

सम्पर्क के आरम्भ काल में मुसलमान, हिन्दू, चीनी, जापानी और अन्य एशियाई क़ौमें यूरोपियन लोगों को काफ़िर, मलेच्छ और अन्त्यज समझती थीं, लेकिन कुछ वर्ष बाद यूरोप की महत्ता को ये लोग अनुभव करने लगे। यूरोप के पादरियों के प्रयत्नों से एशिया में सर्वत्र यूरोपीय भाषाओं के कॉलेज खुल गए, जिनमें अनेक एशियाई विद्यार्थी, वाणिज्य, नौकरी या केवल शौक़ के लिए, विदेशी भाषा का अध्ययन करने लगे। तुर्की में ऐसे विद्यालय १९वीं शताब्दी के आरम्भ में खुले थे, परन्तु भारतवर्ष में लॉर्ड वारन हेस्टिंग्ज़ के शासन काल में अर्थात् १८वीं शताब्दी के अन्तिम चतुर्थांश में ही खुल गए थे। चीन और जापान में यूरोपीय पादरियों के कॉलेज १९वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में खुले थे। सीरिया और पैलेस्टाईन में भी ईसाइयों का काफ़ी ज़ोर था। अरबस्तान, ईरान और अफ़ग़ानिस्तान ने ऐसे विद्यालय नहीं खुलने दिए, परन्तु १९वीं शताब्दी के अन्त में ईरान ने विवश मिशन स्कूलों के लिए इजाज़त दे दी। विदेशी भाषाओं के पढ़ने से एशियाई लोगों का ज्ञान-क्षितिज विस्तृत होने लगा और ये लोग मानने लगे कि यूरोप के लोग निरे बर्बर डाकू और हूण लोगों की भाँति समृद्ध राज्यों को नष्ट करने वाले जङ्गली लोग ही नहीं हैं, बल्कि उनका साहित्य, संस्कृति और सभ्यता—सब एशिया से ख़ूब आगे बढ़ी हुई हैं। इसके पश्चात् एशिया के लोग यूरोप की यात्रा करने लगे। तुर्की के अतिरिक्त अन्य देशों के मुसलमान और हिन्दू यूरोप-भ्रमण को अच्छा नहीं समझते थे, बल्कि हिन्दू तो समुद्र-यात्रा को पतन का कारण मानते थे। फिर भी १९वीं शताब्दी में सर सैयद अहमद, राजा राममोहन राय इङ्गलैण्ड हो आए थे और उसके बाद भारतवर्ष से सैकड़ों विद्यार्थी और व्यापारी विदेश जाने लगे। चीन, जापान



स्वर्गीय राजा राममोहन राय

और तुर्की के लोग तो यूरोप के सम्पर्क से ख़ूब लाभ उठाने लगे।

पश्चिमी शिक्षा

आक्रान्त देशों में पश्चिमी शासकों ने अपनी भाषा की शिक्षा देना आरम्भ किया। मेकॉले ने भारतीय भाषा को हेय समझ कर, अङ्गरेज़ी भाषा द्वारा भारतीय शिक्षा की व्यवस्था की। फ्रेञ्च इण्डोचाइना, जावा, सुमात्रा और फ़ीलीपाइन्स तथा हाँगकाङ्ग आदि में भी ऐसा ही प्रबन्ध हुआ। इन विद्यालयों में शिक्षा पाए हुए लोगों को विदेशी सरकार अच्छी-अच्छी नौकरियाँ देने लगी, जिसके कारण विदेशी शिक्षा का प्रचार बढ़ने लगा। अन्य एशियाई देशों में ज्यों-ज्यों ईसाइयों की संख्या बढ़ने लगी, त्यों-त्यों विदेशियों के विद्यालय भी अधिकाधिक खुलने लगे। शनैः-शनैः लोगों के विचार उदार होने लगे और ऐसे विद्यालयों का महत्व जनता अनुभव करने लगी। मिशन कॉलेज और स्कूलों के सिवाय सरकारी कॉलेज और स्कूल तो खुल ही चुके थे। अब दयानन्द कॉलेज, इसलामिया कॉलेज और पूना कॉलेज जैसी संस्थाएँ भी खुलने लगीं। जापान से तुर्की तक कहीं सरकारी, कहीं मिशनरी और कहीं जनता के ऐसे अनेक विद्यालय स्थापित हो गए। पश्चिमी शिक्षा ही वास्तविक शिक्षा मानी जाने लगी। लड़के ही नहीं, बल्कि लड़कियाँ भी पश्चिमी शिक्षा ग्रहण करने लगीं। भारतवर्ष और अन्य देश और द्वीप, जो यूरोप के अधीन थे, वहाँ के लोगों के लिए तो यह स्वाभाविक बात थी कि वे अपने प्रभुओं की नक़ल करते, रहन-सहन, बोल-चाल आदि में उन-जैसे बनते, पर चीन, जापान, तुर्की जो स्वतन्त्र देश थे, वहाँ भी यूरोप की सभ्यता का ख़ूब अनुकरण होने लगा!

यूरोपीय साहित्य के अध्ययन से लोगों के धार्मिक और सामाजिक विचारों पर प्रभाव पड़ने लगा। जो लोग यूरोप में भ्रमण करने गए, वे वहाँ की समृद्धि और संस्कृति तथा शक्तिशालिता को देख कर चकाचौंध हो गए। कितने ही लोग अपनी सभ्यता को हेय समझने लगे और पश्चिमी सभ्यता के रङ्ग में अपने को रँगने लगे। भारतवर्ष, चीन और जापान में असंख्य लोग ईसाई धर्म ग्रहण करने लगे और रहन-सहन, वेष-भूषा सब में यूरोपीय बनने की नक़ल करने लगे।

साहित्य संस्कार

यूरोप के सम्पर्क का एशिया की भाषाओं पर बड़ा प्रभाव पड़ा। भारत में हिन्दी, मराठी, गुजराती, उर्दू आदि भाषाओं का वर्तमान स्वरूप इस नवीन जाग्रति का ही फल है। हिन्दी और उर्दू को वारन हेस्टिंग्ज़ ने प्रोत्साहन दिया था और उसके बाद यूरोपीय साहित्य तथा फ़ारसी और संस्कृत साहित्य के अनुवाद से ये दोनों भाषाएँ भारत की अन्य प्रान्तिक भाषाओं की भाँति उन्नत होने लगीं। १८वीं शताब्दी तक प्रान्तिक भाषाओं का साहित्य नाम मात्र का था और उनका स्वरूप भी निश्चित नहीं होने पाया था। जो कुछ भी साहित्य था, वह सब पद्यमय था। गम्भीर विषयों की चर्चा संस्कृत में की जाती थी। स्वामी दयानन्द भी वर्षों तक अपने मत का प्रचार संस्कृत द्वारा करते रहे, परन्तु जब श्री० केशवचन्द्र सेन ने उनको हिन्दी की उपयोगिता बतलाई, तो वे हिन्दी में प्रचार करने लगे। तदनन्तर उन्होंने अपने ग्रन्थ भी हिन्दी में ही लिखे। १९वीं शताब्दी में ही सर सैयद अहमद ने पश्चिम के वैज्ञानिक ग्रन्थों का उर्दू भाषा में अनुवाद करवाने की व्यवस्था की और उसी समय उर्दू काव्य का ढङ्ग बदला।

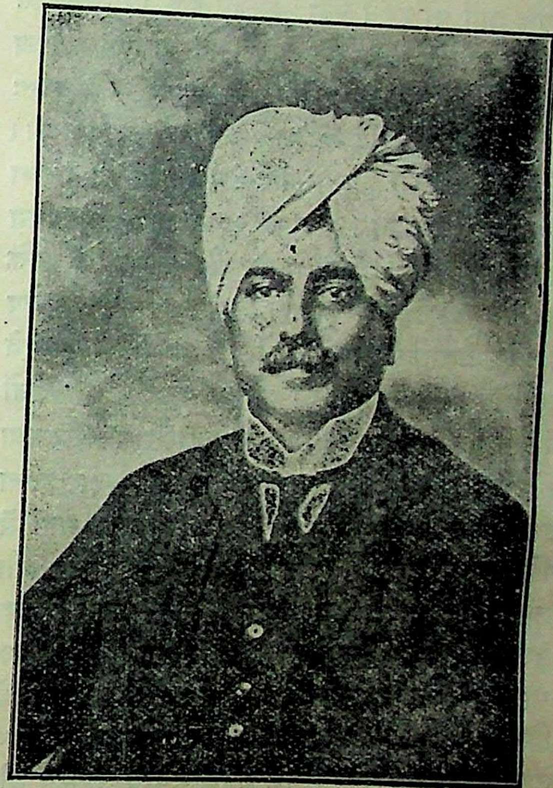
तुर्की, जापान और ईरान में भी इसी प्रकार साहित्य का सुधार हुआ। १९वीं शताब्दी भी तुर्की भाषा, अरबी और फ़ारसी शब्दों से लदी हुई थी। सरकारी दफ़्तरों की भाषा और जन-साधारण भी बोल-चाल की भाषा में महान अन्तर था। एक जटिलता में फँसी हुई थी और दूसरी ग्राम्यता से भरी हुई थी। यूरोप के सम्पर्क से इसमें भारी सुधार हुआ। जो लोग यूरोप में भ्रमण कर चुके थे और देश-भाषा की उन्नति के महत्व को समझ चुके थे, उन्होंने भाषा को सुधारना आरम्भ किया। नवीन ग्रन्थ और समाचार-पत्र ऐसी भाषा में प्रकाशित किए जाने लगे, जो न जटिल थी और न ग्राम्य। इसी प्रकार चीनी, जापानी तथा बरमी भाषा का भी सुधार हुआ।

इन सब एशियाई भाषाओं में यूरोप के राजनैतिक, सामाजिक तथा धार्मिक, दार्शनिक और वैज्ञानिक विचार घुसने लगे। यूरोपीय उपन्यासों के ढङ्ग पर एशियाई भाषाओं में भी उपन्यास लिखे जाने लगे और नाटक,

प्रहसन, आख्यायिका, पद्य आदि सब यूरोप की शैली पर लिखे जाने लगे। क़ुस्तुन्तुनिया से टोकियो तक, सब प्रधान नगरों में छापेख़ाने स्थापित हो गए और यूरोपीय विचारों की लहरें एशिया महाद्वीप में लगभग सर्वत्र फैल गईं। लोक-सागर की परम्परागत शान्ति भङ्ग होने लगी और भावी तूफ़ान के पूर्व चिन्ह दिखाई देने लगे!

राष्ट्रीय जाग्रति

इन सब कारणों से एशिया के प्रधान देशों में राष्ट्रीय भावों की जाग्रति होने लगी। यूरोपीय साहित्य के अध्ययन से तथा यूरोपीय देशों में भ्रमण करने से लोगों का स्वाभिमान और देश-प्रेम जाग्रत हो उठा और जनता अपने देशों को उन्नतावस्था में देखने के लिए अधिकाधिक लालायित होने लगी। एशिया की सब प्रधान भाषाओं में गेरीबाल्डी, मेज़िनी, काव्वर, बिस्मार्क आदि यूरोप के प्रसिद्ध देशभक्तों की जीवनियाँ प्रकाशित हुईं, जिन्होंने देशों के सामने एक नया आदर्श खड़ा किया। जब एशियावासी विदेशियों की स्वार्थमयी नीति को समझने लगे, तो उनके प्रति घृणा बढ़ने लगी। जो देश इन गोरों से अपना पिण्ड छुड़ाना चाहता था उसी को शस्त्र-बल द्वारा दबाया जाने लगा। इस राष्ट्रीय जाग्रति ने भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न स्वरूप धारण किया। तुर्की के देशभक्त नवयुवक सुलतान की शक्ति को नियन्त्रित करके ससम्राट् प्रजातन्त्र स्थापित करना चाहते थे और विदेशियों द्वारा जो देश का रक्त-शोषण हो रहा था, उसको बन्द करना चहते थे। ईरान के देशभक्त भी रूस और ब्रिटेन के आधिपत्य को हटाना चाहते थे, परन्तु इसके लिए वे शाह के अधिकारों को सङ्कुचित करना आवश्यक समझते थे। चीन के सामने भी ऐसी ही समस्या थी। वहाँ विदेशियों के अत्याचारमय व्यापार के कारण ही राष्ट्रीयता की जाग्रति हुई थी, परन्तु नेताओं को थोड़े वर्षों के अनुभव से ही यह स्पष्ट विदित हो गया था कि इस विवशता और दुरवस्था का कारण है चीन राजवंश की निर्बलता, स्वार्थ-परायणता और प्रबन्ध-शिथिलता। २०वीं शताब्दी के आरम्भ में ही डॉक्टर सनयातसेन ने निश्चय कर लिया था कि पूर्ण प्रजातन्त्र स्थापित किए बिना चीन का उद्धार नहीं हो सकता। भारतवर्ष में सन् १८८५ में ही राष्ट्रीय महासभा की स्थापना हो चुकी थी, परन्तु लगभग बीस वर्ष तक तो यह प्रतिवर्ष राजभक्ति के प्रस्ताव पास करती रही और अत्यन्त नम्र शब्दों में सरकार से न्याय-भिक्षा माँगती रही। २०वीं शताब्दी के आरम्भ में इसने यह प्रस्ताव स्वीकार किया कि भारत का ध्येय वैध और शान्त साधनों द्वारा ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत औपनिवेशिक शासन प्राप्त करना है। सन् १९११ से पूर्व मुसलमान प्रायः कॉङ्ग्रेस से पृथक् रहे, परन्तु जब त्रिपोली



रायबहादुर हीरालाल, बी० ए०
आप आगामी दिसम्बर में पटने में होने वाली ऑल-इण्डिया-ओरियण्टल कॉन्फ्रेन्स के प्रेज़िडेण्ट नियत किए गए हैं।

पर इटली ने अधिकार जमा लिया, तो वे लोग भी स्वराज्य की माँग में हिन्दुओं का साथ देने लग गए।

उन्नति और प्रक्षोभ

यूरोप के सम्पर्क से जापान ने सब से पहले और सब से जल्दी लाभ उठाया। सन् १८४९ में इस टापू का गोरों के साथ सम्पर्क हुआ था और सैनिक बल के द्वारा इसको अनेक व्यापारिक रियायतें देने के लिए विवश

किया गया था ! परन्तु २० वर्ष के अन्दर ही देश सम्हल कर अपने पैरों पर खड़ा होने लगा और सन् १८९४ में ग्रेटब्रिटेन की सब वाणिज्य रिआयतें और विशेषाधिकार जापान ने रद्द कर दिए, जिसका कुछ विरोध नहीं किया गया। जापान की आश्चर्यकारिणी उन्नति का श्रेय अधिकांशतः राजकुमार इटो को है। यह सज्जन सन् १८७२ में कुछ सरदारों के साथ यूरोप गया और वहाँ की सब उन्नत संस्थाओं का सूक्ष्म निरीक्षण करके स्वदेश आया। वापस आने पर इसने सेना को नए ढङ्ग पर सुसङ्गठित किया, अनिवार्य शिक्षा आरम्भ की और न्यायालयों का सुधार किया। जागीरदारों में से अधिकांश ने स्वतः ही अपनी जागीरें छोड़ कर देश-प्रेम का परिचय दिया था। सन् १८७१ में जो कुछ जागीरें शेष रह गई थीं, उनका अन्त कर दिया गया। सन् १८९० में जापान की प्रथम पार्लामेण्ट का अधिवेशन हुआ और सम्राट् की शक्ति नियन्त्रित कर दी गई। जापान के सैकड़ों विद्यार्थी यूरोप में अनेक वैज्ञानिक विषयों की शिक्षा ग्रहण करने को भेजे गए और अङ्गरेज़ी भाषा को जापानी स्कूल और कॉलेजों में ऊँचा स्थान दिया गया। इस प्रकार राजा और प्रजा के सुन्दर सहयोग से जापान ४० वर्ष के अन्दर इतना उन्नत हो गया कि वह यूरोप के शक्तिशाली राष्ट्रों में परिगणित होने लगा। सन् १९०५ में जब रूस और जापान में कोरिया तथा मञ्चूरिया के विषय में झगड़ा हुआ और रूस ने युद्ध-घोषणा कर दी तो कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था कि यह छोटा सा देश रूस के विशाल साम्राज्य से टक्कर ले सकेगा। परन्तु इस समय जापान की जल और स्थल-सेना अत्यन्त सङ्गठित और सधी हुई थी और बच्चे-बच्चे में देशप्रेम का उन्माद था, इसलिए लगभग पन्द्रह मास के अन्दर ही जापान ने रूस को हटा कर, अपने अपूर्व सामर्थ्य का परिचय दिया और उत्सुक संसार को चकित कर दिया। एशिया के छोटे से राज्य द्वारा यूरोप के विशाल साम्राज्य का पराजय वर्तमान इतिहास में एक अनोखी और आश्चर्यकारिणी घटना थी। जापान का सम्मान अन्तर्राष्ट्रीय जगत में दुगुना हो गया और मुसलिम जगत उससे मैत्री स्थापित करने में उत्सुकता दिखाने लगा। * इस विजय-प्राप्ति के पश्चात जापान ने सेना, शिक्षा, महिला-स्वातन्त्र्य, व्यापार, प्रबन्धशैली आदि में और भी उन्नति की, परन्तु शक्तिशालिता के नशे में चूर होकर जापान इस शताब्दी के आरम्भ में साम्राज्यवादी बन गया! रूस और चीन दोनों से उसने कुछ-कुछ राज्य छीन कर अपने राज्य में मिला लिए और वहाँ के राज-घरानों के साथ दुर्व्यवहार किया। कोरिया और फ़ॉरमूसा में उसने स्वतन्त्रता के उचित आन्दोलन को अत्यन्त नृशंस साधनों द्वारा दबाया। जापान ने अपने व्यवहार से प्रगट कर दिया कि साम्राज्यवाद यूरोपीय राष्ट्रों का ही राजरोग नहीं है, यह एक छूत की बीमारी है, जो शक्तिमत्ता के साथ हमेशा रहती है।

यूरोपीय सम्पर्क से इतना शीघ्र लाभ केवल जापान ने ही उठाया। वैसे तुर्की यूरोप से मिला ही हुआ है, लेकिन उसमें राष्ट्रीयता की जाग्रति होने में बहुत समय लगा। ईरान, अरबस्तान और भारतवर्ष तथा चीन में भी राष्ट्रीयता का शनैः-शनैः विकास हुआ। इन सब देशों में जनता के अधिकारों की रक्षा करने के लिए और उनको विस्तृत करने के लिए राष्ट्रीय सभाओं की स्थापना हुई। तुर्की और भारतवर्ष में ये सभाएँ आरम्भ में निर्विघ्न कार्य करती रहीं और सरकार की ओर से इनका विरोध उस समय से होने लगा, जब ये संस्थाएँ प्रबल बन गईं और वास्तव में जनता के प्रतिनिधित्व का दावा करने लगीं; लेकिन ईरान और चीन में राष्ट्रीय सभाओं को आरम्भ से ही अनेक सङ्कटों का सामना करना पड़ा। यही हाल अरबस्तान तथा ईराक़ का रहा। इन देशों के देश-प्रेमियों ने विदेशों में रहते हुए स्वदेशों में राष्ट्रीय जाग्रति की और अपने देश-भाइयों को जन्म-सिद्ध अधिकारों की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील किया। १९वीं शताब्दी के अन्त में कई देशभक्त ईरानी क़ुस्तुन्तुनिया में जाकर जमालुद्दीन अफ़ग़ानी के पास रहने लगे और उसकी दीक्षा पाकर वहाँ बैठे हुए पुस्तिकाएँ, विज्ञापन और पत्रों द्वारा अपने देश में राष्ट्रीयता का प्रचार करने लगे। ईरान का एक ज़ोरदार आन्दोलक था मलकम ख़ाँ। यह लन्दन से क़ानून नामक पत्र का सम्पादन करता था और चोरी-छुपके से इस पत्र की सैकड़ों प्रतियाँ ईरान में आया करती थीं। अरबी देशों का राष्ट्र-सङ्घ भी पेरिस नगर में स्थापित हुआ था और वहाँ से साहित्य और

* Stoffard Stoddard—*Modern Muslim World p. 84.*

पत्र तथा एजण्टों द्वारा अपने देशों में राष्ट्रीयता की जाग्रति की गई थी और लोकमत को अनुकूल बनाया गया था। उस समय अरब, सीरिया और ईराक़ सुलतान-तुर्की के अधीन थे और वह जनता में राष्ट्रीयता की लहर को, जहाँ तक हो सकता था, फैलने नहीं देता था। चीन में विदेशी लोगों का स्वार्थ था। कई यूरोपीय राष्ट्रों ने वहाँ अपना व्यापार जमा रक्खा था और कई अच्छे स्थानों पर राज्य भी स्थापित कर रक्खा था। ये लोग स्वभावतः राष्ट्रीय-जाग्रति के विरोधी थे, क्योंकि ये जानते थे कि जाग्रत चीन इनके अनुचित लाभों को सहन नहीं कर सकेगा। ये लोग तत्कालीन मन्चू शासकों को सलाह और सहायता द्वारा राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं का दमन करने के लिए उसकाया करते थे। इसलिए चीन के राष्ट्रीय नेता विदेशों में रह कर ही अपने देश का हित कर सकते थे। चीन के राष्ट्र-सङ्घ का प्रथम महत्वपूर्ण अधिवेशन जापान में हुआ था, जिसमें यह प्रस्ताव स्वीकार किया गया था कि राजवंश को शासनाधिकार से वञ्चित करके, प्रजातन्त्र शासन की स्थापना की जावे।

२०वीं शताब्दी के आरम्भ में लगभग सब उन्नत एशियाई देशों में राष्ट्रीय विचारों की पूर्ण जाग्रति हो चुकी थी। जनता गोरों के आर्थिक आधिपत्य और अपने शासकों के निरङ्कुश शासन की वीभत्सता को अनुभव करने लगी थी और स्वतन्त्रता की अभिलाषा दुर्दमनीय हो गई थी। सन् १९१० से पहले-पहले इस अभिलाषा के साकार स्वरूप सर्वत्र दृष्टिगोचर होने लगे। रूस-जापान युद्ध में जो जापान की अद्भुत सफलता हुई, उससे सम्पूर्ण एशिया में उत्तेजना, उमङ्ग और उत्साह की एक विद्युत-धारा प्रवाहित हो गई। लोगों को विश्वास हो गया कि यूरोप अजेय नहीं है, सङ्गठित देश-प्रेम अजेय है। सन् १९०८ में नवयुवक-सङ्घ के प्रयत्न से तुर्की में राज्यक्रान्ति हो गई। सुलतान ख़लीफ़ा को पदच्युत करके, प्रजातन्त्र की स्थापना कर दी गई। इससे अरबी देशों की राष्ट्रीयता और भी अधिक जाग्रत हो गई और स्वतन्त्रता के लिए प्रत्यक्ष आन्दोलन होने लगा। ईरान के देशद्रोही, विलासी और विदेश-प्रिय शाह को देश-प्रेम के मतवाले एक ईरानी ने क़त्ल कर डाला। घातक को सरकार ने प्राणदण्ड दिया, पर देश भर ने उसका 'चालीसा चहल्लुम' मनाया। ईरान जाग्रत हो उठा और पार्लामेण्ट की स्थापना हो गई। फिर भी शाह रूसी और अङ्गरेज़ी सरकार के हाथों की कठपुतली ही बना रहा और उसका पार्लामेण्ट से विरोध जारी रहा। सन् १९११ में जब एक अङ्गरेज़ी कम्पनी ने ईरानी शाह से तम्बाखू का ठेका लिया तो देश भर ने इसका घोर विरोध किया और फिर भी शाह ने ठेके को रद्द नहीं किया, तो ईरान ने तम्बाखू का बहिष्कार किया।



श्रीमती गौरी पवित्रम, बी० ए०, एल० टी०, एम० एल० सी०

आप चित्तूर (मद्रास) के गर्ल्स हाईस्कूल की अध्यापिका नियत की गई हैं।

देश भर ने इस बहिष्कार को ऐसा पूर्ण किया कि ईरान में एक सेर तम्बाखू भी नहीं बिकने पाई! जनता की इस अपूर्व एकता के सामने सरकार ने घुटने टिका दिए और ठेका तोड़ दिया गया। पार्लामेण्ट की स्थापना इससे पूर्व ही हो चुकी थी। अब सरकार में और उसमें, अधिकारों के विषय में सङ्घर्ष आरम्भ हो

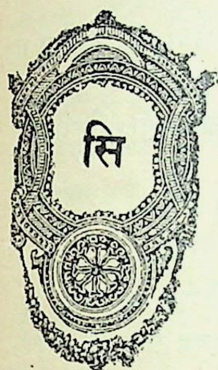
गया। अङ्गरेज़ और रूसी सरकार निरङ्कुश शाह को जनता के अधिकारों की अवहेलना करने में सहायता दिया करते थे। परन्तु पार्लामेण्ट का ज़ोर बढ़ता जाता था। भारतवर्ष की राष्ट्रीय महासभा का ध्येय २०वीं शताब्दी के आरम्भ में ही औपनिवेशिक शासन प्राप्त करना निश्चित हो गया था और उसके बाद जब लोकमान्य तिलक ने स्वराज्य आन्दोलन आरम्भ किया, तो कॉङ्ग्रेस में गरम दल वालों की संख्या बढ़ने लगी। इसी समय लॉर्ड कर्ज़न ने बङ्ग-भङ्ग करके, तथा उसके बाद जनता के वैध और शान्तिमूलक आन्दोलन को दबाने का प्रयत्न करके, लोगों को बहुत उत्तेजित कर दिया; जिसका परिणाम यह हुआ कि बङ्गाल में अधीर देशभक्तों ने बम द्वारा सरकारी कर्मचारियों को मारने का तथा भयभीत करने का प्रयत्न शुरू किया और सन् १६०८ में राष्ट्रीय सभा के दो दल हो गए, एक नर्म दल और दूसरा गर्म दल। तदनन्तर गर्म दल अधिकाधिक प्रबल होने लगा। इसी समय चीन में तूफ़ान उठा और देश की बलिवेदी पर बलिदान होने के लिए हज़ारों देश-भक्त लालायित हो उठे। यह तूफ़ान विदेशी गोरों के विरुद्ध था। विदेशियों से घोर घृणा करने वाले चीनी लोग, जो 'बॉक्सर' कहलाते थे, जहाँ-तहाँ गोरों पर टूट पड़े। एक स्थान पर २५० यूरोपियन लोगों का वध किया गया, जहाँ-तहाँ उनकी कोठियों को नष्ट कर दिया गया और उनके माल को जला दिया गया। चीनी सिपाही भी इन लोगों में मिल गए और तत्कालीन महारानी भी, जो उस समय चीन का शासन करती थीं, उन लोगों को परोक्ष सहायता पहुँचाने लगीं। एक जर्मन राजदूत को, जो उस समय पेकिन में रहता था, सरे-बाज़ार एक सिपाही ने गोली से मार डाला। जो कुछ गोरे लोग बचे, उन्होंने एक मकान में घुस कर और उसको अपना दुर्ग बना कर अपने प्राणों की रक्षा की। कुछ समय बाद सब गोरे राष्ट्रों की संयुक्त सेना ने एक जर्मन सेनापति के नेतृत्व में 'बॉक्सर' लोगों को दबा दिया, और चीनी महारानी सिंहासन छोड़ कर एक पुराने नगर में अपने दिन काटने लगीं। विदेशियों की सेना ने इस समय चीन में वैसी ही नृशंसताएँ कीं जैसी अङ्गरेज़ी सरकार ने भारतवर्ष में सन् १८५७ के स्वातन्त्र्य संग्राम का दमन करते समय की थीं। परन्तु इस दमन से केवल क्षणिक शान्ति ही हो सकी। डॉक्टर सनयातसेन के स्तुत्य प्रयत्नों से चीन में स्वातन्त्र्य प्रेम अदम्य हो चला था। डॉक्टर सनयातसेन उच्चकोटि का अनुभवशील नेता था। यह एक साधारण कृषक के घर में उत्पन्न हुआ था। पर अपनी असाधारण योग्यता, अप्रतिभ कार्यशीलता, उद्भट विद्वत्ता और निर्मल देशभक्ति के कारण उस समय वह देश के गले का हार बना हुआ था। सन् १६०६ में सार्वजनिक आन्दोलन इतना प्रबल हो गया कि मन्चू शासकों ने अपने अधिकारों का सङ्कोच और प्रजा द्वारा उनका नियन्त्रण स्वीकार कर लिया और एक पार्लामेण्ट की स्थापना हो गई। प्रजातन्त्रवादी डॉक्टर सनयातसेन को यह स्वीकार नहीं था, अतः उसने अधिक स्वातन्त्र्य के लिए आन्दोलन जारी रक्खा, जिसके फल-स्वरूप सन् १६१२ में चीन-सम्राट् ने अपना पद त्याग कर दिया और वहाँ प्रजातन्त्र शासन की स्थापना कर दी गई। कुछ काल तक डॉक्टर सनयातसेन राष्ट्रपति रहा, लेकिन फिर युवान शिकाई के पक्ष को प्रबल होता हुआ देख कर उसने अपना पद त्याग कर दिया और युवान शिकाई राष्ट्रपति बन गया। डॉक्टर सनयातसेन दक्षिण में प्रचार-कार्य करने लगा और देश को नवीन उत्तरदायित्व के लिए तैयार करने लगा। कुछ समय बाद युवान शिकाई सम्राट् बनने का प्रयत्न करने लगा और उसमें तथा डॉक्टर सनयातसेन में युद्ध जारी हो गया। तब से अब तक चीन में प्रजातन्त्रवादियों और साम्राज्यवादियों का कलह जारी है। इन्हीं दिनों में कोरिया में भी स्वातन्त्र्यवाद उमड़ा और लोग जापान के आधिपत्य का विरोध करने लगे। जापान सरकार ने कोरिया के स्वातन्त्र्यान्दोलन का अत्यन्त नृशंसता के साथ दमन किया।

(अगले अङ्क में समाप्त)



क्या 'नियोग' अनार्य प्रथा है ?

[मेजर एम० एल० भार्गव, आई० एम० एस०]



तम्बर १९३० के 'चाँद' में श्री० भोलालाल दास, बी० ए०, एल्-एल्० बी० का लेख पढ़ा। विवाह के इतिहास में योग्य लेखक ने नियोग को अनार्य-प्रथा बताया है। आपने इसके कोई प्रमाण नहीं दिए। जहाँ तक मुझे ज्ञात है, ऋग्वेद, महाभारत, धर्म-सूत्रों तथा धर्म-शास्त्रों से नियोग अनार्य नहीं, आर्य-प्रथा जान पड़ती है। आशा है कि दास महोदय निम्न-लिखित प्रमाणों पर ध्यान देंगे।

ऋग्वेद १०-४०-२ में कहा गया है :—

कोवां शयुत्रा विधवेव देवरं मर्यं न योषा कृणुते सधस्थ आ।

पद-अर्थ—(को) कौन (वाँ) तुम दोनों को (शयुत्रा) सोने की इच्छा वाली (विधवाऽइव) विधवा की तरह (देवरं) देवर को (मर्यं न) पुरुष को (योषा) स्त्री (कृणुते) सामना करती है (सधऽस्थ आ) पास में।

सरल भाषा अर्थ—जैसे सोने की इच्छा वाली विधवा देवर को और स्त्री पुरुष को पास में सामना करती है वैसे तुम दोनों को कौन (पास में सामना करती है)।

सायण भाष्य—(तत्र) यहाँ (दृष्टान्तौ) दो दृष्टान्त (दर्शयति) दिखाता है। [(शयुत्रा) शयने] सोने के स्थान में [(विधवेव) यथा मृत भर्तृका नारी] जैसे मरे पति की स्त्री [(देवर) भर्तृभ्रातरम्] पति के भाई को (अभिमुख करोति) सामना करती है [(मर्यं न) यथा च सर्वं मनुष्यं] जैसे सब मनुष्यों को (योषा) सब स्त्रियाँ (सम्भोग काले) सम्भोग के समय (ऽभिमुखी करोति) सामना करती हैं (तद्व-दित्यर्थः) अर्थात् उसी प्रकार (तथा च यास्कः) यास्क यों कहता है (देवरः कस्माद्द्वितियो वर उच्यते) देवर किसे ? दूसरे पति को कहते हैं......... (देवरो दीव्यति-कर्मा) क्रीड़ा—खेल, हँसी-मज़ाक़—का काम करने वाला देवर है।

इसमें सन्देह नहीं कि देवर का योगिक अर्थ द्वितीय वर है, परन्तु इसका लौकिक अर्थ पति का भाई है। महाभारत आदि-पर्व अध्याय १०६, श्लोक २ में सत्यवती कृष्ण द्विपायन व्यास को कौशल्या का देवर कहती है "कौशल्ये देवरस्ते..." दीव्यतिकर्मा का तात्पर्य भी वही है। सायण भी इसका अर्थ पति का भाई करता है। अतएव यदि देवर के लौकिक अर्थ लिए जावें तो इस मन्त्र से नियोग ही सिद्ध होता है।

मानव ९-६६ के भाष्य में मेधातिथि लिखता है कि ऋग्वेद १०-४०-२ में नियोग का उल्लेख है। आचार्य अविनाशचन्द दास "Regvedic Culture" पृष्ठ २५५ पर लिखते हैं :—

" But a custom seems to have existed, according to which a childless widow could live with her dead husband's brother in order to produce children (R. V. X—40-2)."

अब बताइए कि जब स्वयं ऋग्वेद में ही नियोग का उल्लेख माना जावे तो नियोग को अनार्थ-प्रथा कैसे कहा जा सकता है।

गौतम धर्म-सूत्र १८-४ से १४ तक में नियोग का विधान है।

(४) विधवा स्त्री, जिसको सन्तान की इच्छा हो, देवर से (सन्तान उत्पन्न करे)।

(५) वह गुरुजनों की आज्ञा ले ले और केवल रजस्वला-स्नान के पश्चात ही सम्भोग करे।

(६) (देवर के अभाव में) सपिण्ड, सगोत्र, समान प्रवर या सवर्ण से (सम्भोग करके सन्तान उत्पन्न कर सकती है)।

(७) (कुछ के मतानुसार) देवर के अन्यत्र किसी और से (सम्भोग) ना (करे)।

(८) दो से अधिक (सन्तान) ना (उत्पन्न करे)।

(६) सन्तान उसकी है, जो उसे उत्पन्न करे।

(१०) यदि (इसके विपरीत) वचन न दिया गया हो (तो)।

(११) जीवित पति (की प्रार्थना पर) उसकी स्त्री में (नियोग द्वारा उत्पन्न सन्तान पति की होती है)।

(१२) (परन्तु यदि उत्पन्न करने वाला) और कोई हो तो (सन्तान) उसकी (होती है)।

(१३) या दोनों की (अर्थात् उत्पादक और माता के पति की)।



मि० एच० टिङ्कर, आई० ई० एस०

आप इलाहाबाद के ट्रेनिङ्ग कॉलेज के प्रिन्सिपल नियत किए गए हैं।

(१४) यदि माता का पति (सन्तान को) पाले (तो उसकी)।

गौतम २८-३२ में क्षेत्रज अर्थात् नियोग द्वारा पत्नी में उत्पन्न पुत्र को पिता के ऋक्थ का भागी बताया गया है।

वशिष्ठ धर्म-सूत्र—१७

(१४) आत्मज पुत्र न होने पर नियोग से उत्पन्न पुत्र क्षेत्रज दूसरा पुत्र है, जो धन का अधिकारी है।

(५५) मृत पति की स्त्री ६ मास व्रत करती हुई, खारा-खट्टा न खाती हुई, नीचे सोवे।

(५६) ६ मास पश्चात स्नान कर, पति का श्राद्ध करके विद्या, कर्म, गुरु, योनि सम्बन्ध को मिला कर पिता या भ्राता नियोग करा देवे।

(५७) पागल, लाचार, और रोगी स्त्री नियोग ना करे।

(५८) और बड़ी (आयु की स्त्री) भी (नियोग ना करे)।

(५९) सोलह वर्ष की (उत्तम है)।

(६०) नहीं तो सन्तान रोगी होगी।

(६१) प्राजापत्य मुहूर्त में विवाह की तरह कर देवे। कठोर वाणी या कठोर दण्ड से नहीं, राज़ी-ख़ुशी।

(६२) (स्त्री) खाने, पहनने, नहाने और श्रृङ्गार करने में पहले के तुल्य रहे।

(६३) नियुक्त न की हुई स्त्री से उत्पन्न पुत्र, उत्पन्न करने वाले का होता है।

(६४) यदि दोनों नियुक्त हों (तो दोनों का)।

(६५) धन के लोभ से नियोग नहीं हो।

(६६) प्रायश्चित्त बतला कर नियोग कर देवे।

बौधायन और हारीत सूत्रों में भी इसी प्रकार के प्रमाण पाए जाते हैं। इसी प्रकार मानव-धर्मशास्त्र की भृगु तथा नारद-संहिता, याज्ञवल्क्य, वैष्णु आदि धर्मशास्त्रों में भी नियोग का विधान है।

मानव-धर्मशास्त्र (भृगु-संहिता) अध्याय ९

(५६) सन्तान न होने पर स्त्री, जिसको आज्ञा दे दी गई हो, अपने देवर या (पति के) सपिण्ड से नियमानुसार सन्तान उत्पन्न करा ले।

(६०) विधवा से (सम्भोग करने को) नियुक्त किया गया पुरुष रात्रि के समय घृत लगा कर वा चुपचाप एक पुत्र होने तक (उससे सहवास करे), दूसरा उत्पन्न ना करे।

(६१) अन्य धर्मवेत्ता यह विचार करके कि (एक ही पुत्र के उत्पन्न होने से) दोनों (स्त्री पुरुषों) के नियोग करने का तात्पर्य पूर्ण नहीं होता, कहते हैं कि (ऐसी) स्त्री धर्मानुसार दो पुत्र उत्पन्न कर सकती है।

(६२) परन्तु, जब विधवा के नियोग करने का प्रयोजन विधि-अनुसार पूरा हो गया हो, तो वह दोनों परस्पर गुरु (पिता) और पतोहू जैसा व्यवहार करें।

(६३) यदि वह दोनों नियुक्त इस विधि को तोड़ें और कामातुर होकर सहवास करें, तो दोनों पतोहू के साथ व्यभिचार करने वाले या गुरुतल्प करने वाले के तुल्य पतित हो जावेंगे।

इसी अध्याय के १५९वें श्लोक में क्षेत्रज (नियोग से उत्पन्न पुत्र) को १२ प्रकार के पुत्रों में द्वितीय माना गया है। १६७वें श्लोक में क्षेत्रज की व्याख्या है। कहा है कि नियोग की विधि से धर्मानुसार मृत, नपुंसक या रोगी की पत्नी से जो पुत्र उत्पन्न किया जावे, वह क्षेत्रज कहलाता है। १२०, १२१; १४५, १४६; १६२, १६३, १६४, १६५; १८०, १८१, १८४; १९० आदि श्लोकों में क्षेत्रज पुत्र के अधिकारों का वर्णन है।

मानव-धर्मशास्त्र (नारद-संहिता) अध्याय १२

(८०) यदि किसी निःसन्तान स्त्री का पति मर जावे तो वह अपने गुरुजनों की आज्ञा लेकर पुत्र की कामना से देवर के पास जावे।

(८१) वह (देवर) उस (स्त्री) से जब तक उसके पुत्र उत्पन्न न हो, सहवास करे। जब पुत्र उत्पन्न हो जावे तो उससे सहवास त्याग दे, नहीं तो यह व्यभिचार होगा।

(८२) से (८७) तक—(पुरुष) उस स्त्री से नियोग करे, जिसके पुत्र उत्पन्न होकर मर चुका हो, जो प्रशंसनीय हो और जो मोह और काम के वश में न हो। वह अपने शरीर में घृत या अच्छा तेल लगा ले, अपना मुख उसके मुख से मोड़ ले और अपने अङ्ग उसके अङ्ग से न छुआए। कारण कि यह (प्रथा) वंश को नाश से बचाने के लिए है, कामेच्छा पूर्ण करने के वास्ते नहीं। उस स्त्री से सहवास न करे, जिसके सन्तान हो या जो दूषित हो या जिसके ज्ञातियों ने आज्ञा न दी हो। यदि स्त्री अपने ज्ञातियों की आज्ञा के बिना देवर से पुत्र उत्पन्न करे तो वेद के जानने वाले उस पुत्र को जारज और अदायाद बताते हैं। इसी तरह यदि छोटा भाई बिना आज्ञा के अपनी भाभी से या बड़ा भाई अपने छोटे भाई की स्त्री से सहवास करे, तो दोनों पाप-कर्म करते हैं। गुरुजनों की आज्ञा पाकर ही वह स्त्री से सहवास करे और उससे उक्त विधि-अनुसार व्यवहार करे। वह पुत्र के जातकर्म संस्कार होने पर शुद्ध हो जाता है।* (पुरुष स्त्री से) एक बार या जब तक उसके गर्भ न रहे (सम्भोग करे) जब गर्भ रह जावे, तो वह पतोहू के समान है।

(८८) यदि पुरुष और स्त्री काम के वश होकर इस विधि के विपरीत कर्म करें, तो राजा उनको दण्ड दे। नहीं तो न्याय का भङ्ग होगा।



श्रीमती बी० शेषम्मा

आप कोकोनाडा (मद्रास) की सुप्रसिद्ध स्त्री-शिक्षा-प्रचारिका हैं। 'हिन्दू-सुन्दरी' नामक एक मासिक पत्र का सञ्चालन भी करती हैं।

इसी संहिता के १३-४५ में क्षेत्रज पुत्र को द्वितीय पुत्र बताया गया है। ४७ में उसको बान्धव और 'दायाद'

---

* नन्द पण्डित इसकी व्याख्या इस प्रकार करता है—"पति के बड़े या छोटे भाई, उनके अभाव में सपिण्ड, उनके अभाव में सगोत्र, उनके अभाव में समान प्रवर या उनके अभाव में सब से उत्तम वर्ण के पुरुष अर्थात् ब्राह्मण से उत्पन्न किया गया हो।"

कहा गया है, और इसमें और ४९ में औरस पुत्र के न होने पर उसको ऋक्थ-भागी माना गया है।

वैष्णु धर्मशास्त्र—१५

(३) द्वितीय (प्रकार का पुत्र) क्षेत्रज है। अर्थात् वह जो नियुक्त (विधवा) में सपिण्ड या उच्च वर्ण के पुरुष द्वारा उत्पन्न हो। २८ और २९ में औरस पुत्र के अभाव में क्षेत्रज को पुत्र और 'दायाद' माना गया है।

याज्ञवल्क्य धर्मशास्त्र आचाराध्याय

(६८) देवर, सपिण्ड या सगोत्र घृत लगा कर और गुरुजनों की आज्ञा पाकर निःसन्तान विधवा से उसके ऋतुकाल पश्चात पुत्र उत्पन्न करने की इच्छा से सहवास करें।

(६९) गर्भ स्थापित होने तक सहवास करे, नहीं तो वह पतित हो जावेगा। इस प्रकार उत्पन्न पुत्र (मृत) का क्षेत्रज पुत्र होता है।

व्यवहाराध्याय

(१२८) क्षेत्रज पुत्र वह है जो पति के सगोत्र या किसी अन्य पुरुष द्वारा उसकी पत्नी में उत्पन्न हो।

१३२-२ में औरस और पुत्रिका-पुत्र के अभाव में क्षेत्रज को पिण्डदाता और दायाद माना गया है।

इसी प्रकार बहुत सी स्मृतियों तथा धर्म-निबन्धों में क्षेत्रज पुत्र के, औरस और पुत्रिका-पुत्र के अभाव में गोत्र और ऋक्थ के भागी होने, पिण्ड और तिलाञ्जलि देने के अधिकारी होने के प्रमाण पाए जाते हैं। लेख लम्बा होने के भय से वह यहाँ नहीं दिए जाते।

यह मैं मानता हूँ कि पश्चात्काल में नियोग-प्रथा को निन्दनीय माना गया, धर्मसूत्रों और स्मृतियों में इसके विरोधी सूत्र और श्लोक जोड़ दिए गए; परन्तु इसमें सन्देह नहीं रहता कि प्राचीन काल में यह प्रथा आर्यों में प्रचलित थी। महाभारत से तो यह पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है।

महाभारत आदि-पर्व, अध्याय ६४ में कहा गया है—"और उस समय जब पृथ्वी [जामदग्न्य (परशुराम भार्गव) के हाथों] क्षत्रिय-विहीन हो गई तो क्षत्राणियाँ सन्तान की कामना से, हे राजन्! ब्राह्मणों के पास आती थीं। और ब्राह्मण केवल उनके ऋतुकाल पश्चात उनसे सम्भोग करते थे। परन्तु वह कभी भी कामवश होकर या अन्य काल में सम्भोग नहीं करते थे। और इस प्रकार सहस्रों क्षत्राणियों को ब्राह्मणों से गर्भ रहे। तब हे राजन्! बहुत से महाबली क्षत्री लड़के और लड़कियाँ उत्पन्न हुईं, जिनसे क्षत्रिय वंश बढ़ा। और इस प्रकार ब्राह्मण तपस्वियों द्वारा क्षत्राणियों से क्षत्रिय-वंश उत्पन्न हुआ।"

इसी पर्व के १०४वें अध्याय में फिर इसी घटना का उल्लेख है। भीष्म कहता है—"और जब उस महर्षि (राम जामदग्न्य भार्गव) द्वारा पृथ्वी क्षत्रिय-विहीन हो गई तो समस्त पृथ्वी की क्षत्राणियों ने वेद जानने वाले ब्राह्मणों से सन्तान उत्पन्न की। वेद में कहा गया है कि इस प्रकार उत्पन्न सन्तान माता के विवाहित (पति) की होती है। और क्षत्राणियों ने काम के वश होकर नहीं, धर्मानुसार ब्राह्मणों से सहवास किया था। निस्सन्देह क्षत्रिय वंश का इसी प्रकार पुनः उद्धार हुआ।"

इसी अध्याय के अन्त में दीर्घतमस ऋषि का राजा बलि की रानी सुदेष्णा से नियोग करके ५ पुत्र उत्पन्न करने का वर्णन है। इससे अगले अध्याय में भीष्म की अनुमति से रानी सत्यवती अपने कानीन पुत्र कृष्ण द्वैपायन-व्यास-पाराशर से अपने औरस पुत्र कौरव विचित्रवीर्य की विधवाओं से नियोग करने को कहती है—"हे विद्वन्! पुत्र, माता और पिता दोनों से उत्पन्न होते हैं। इस कारण वे दोनों के होते हैं।.........तेरे (माता के नाते से) छोटे भाई की दो विधवा हैं, जो देव-कन्याओं की तरह युवा और रूपवती हैं, वे धर्मानुसार सन्तान की कामना करती हैं। तुम नियुक्त होने के लिए सब से उत्तम हो। अतएव हमारे वंश को योग्य और हमारे कुल को जारी रखने वाली उनमें सन्तान उत्पन्न करो।" उत्तर में व्यास उनकी आज्ञा पालन करने का वचन देकर कहते हैं—"निस्सन्देह यह प्रथा सत्य और सनातनधर्म के अनुकूल है।"

अध्याय १०६ में व्यास के अम्बिका, अम्बालिका और एक रूपवती दासी से सम्भोग करने का वर्णन है, जिससे धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर उत्पन्न हुए।

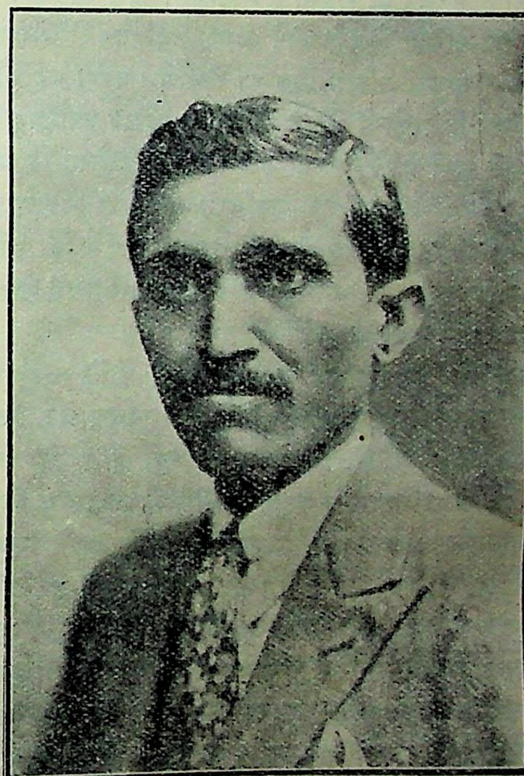
आगे चल कर १२०वें अध्याय में फिर इसी प्रथा का उल्लेख है। महाराजा पाण्डु ऋषियों से कहते हैं—"मैं तुमसे पूछता हूँ कि क्या अपने क्षेत्र में मैं उसी प्रकार पुत्र उत्पन्न कराऊँ, जैसे कि मेरे पिता के क्षेत्र में मैं महर्षि द्वारा उत्पन्न हुआ था।" ऋषियों की अनुमति से पाण्डु

कुन्ती से कहते हैं कि "धर्मशास्त्रों में ६ प्रकार के दायाद और बान्धव पुत्रों का वर्णन है और ६ अदायाद बान्धव पुत्रों का।" इनमें से द्वितीय प्रकार का वह पुत्र है, जो कोई योग्य पुरुष कृपा करके उसकी स्त्री में उत्पन्न कर दे। तृतीय प्रकार का पुत्र वह है, जो अन्य पुरुष दक्षिणा लेकर उत्पन्न करे। और चतुर्थ प्रकार का पुत्र वह है, जो पति की मृत्यु के पश्चात अन्य पुरुष द्वारा विधवा से उत्पन्न हो। आगे चल कर वह कहते हैं कि "उत्तम प्रकार का पुत्र न हो, तो माता उससे उतरते दरजे के पुत्र की इच्छा करे। स्वयंभू मनु ने कहा है कि औरस पुत्र के अभाव में पुरुष दूसरे मनुष्यों से अपनी स्त्री में पुत्र उत्पन्न करा सकते हैं, कारण कि पुत्र से ही सर्व-श्रेष्ठ गति प्राप्त होती है। इस कारण हे कुन्ति! मैं स्वयं पुत्र उत्पन्न करने योग्य न होकर, तुमको आज्ञा देता हूँ कि मेरे समान या मुझसे उत्तम किसी पुरुष से उत्तम सन्तान उत्पन्न करो। हे कुन्ति! शारदन्दायनी की कथा सुनो, जिसको उसके पति ने सन्तान उत्पन्न करने को नियुक्त किया था। वह क्षत्राणी रजस्वला-स्नान करने के पश्चात रात्रि में बाहर गई और एक चौराहे पर खड़ी हो गई। थोड़ी देर पश्चात एक तपस्वी ब्राह्मण वहाँ आया। शारदन्दायनी ने उससे सन्तान उत्पन्न करने की प्रार्थना की। अग्नि में घृत की आहुति देकर उसने उस ब्राह्मण से तीन महारथी पुत्र जन्मे, जिनमें दुर्जय सब से बड़ा था। हे सौभाग्यवती, तुम मेरी आज्ञा से उस क्षत्राणी का अनुकरण करो और किसी परम तपस्वी ब्राह्मण के वीर्य से शीघ्र सन्तान उत्पन्न करो।"

अध्याय १२२ में श्वेतकेतु वा उद्दालक की कथा कह कर पाण्डु कुन्ती से कहते हैं कि "वह स्त्री, जो अपने पति से (नियोग द्वारा) सन्तान उत्पन्न करने की आज्ञा पाकर ऐसा न करे, तो पतित हो जाती है। हमने सुना है कि सौदास की पत्नी मद्यन्ती ने अपने पति की आज्ञा से वशिष्ठ ऋषि से सहवास किया और रूपवती मद्यन्ती ने उससे अश्मक नामक पुत्र उत्पन्न किया। उसने यह कार्य अपने पति के भले के वास्ते किया था। तुमको ज्ञात है कि हम (तीनों भाई) भी कुरु वंश को जीवित रखने के हेतु कृष्ण द्वैपायन से उत्पन्न हुए थे।"

अध्याय १२३ के अन्त में कहा गया है—"बुद्धिमान आपत्ति-काल में (नियोग द्वारा) चौथे प्रसव करने का विधान नहीं करते। जो स्त्री ४ भिन्न-भिन्न पुरुषों से सम्भोग करे, वह स्वैरिणी कहलाती है और पाँच पुरुषों से सम्भोग करने वाली कुलटा हो जाती है।" इससे विदित होता है कि कुन्ती की तरह तीन भिन्न-भिन्न पुरुषों से नियोग करने वाली स्त्री धर्मपत्नी समझी जाती थी।

इसी पर्व के १७९ वा १८४ में महर्षि वशिष्ठ का राजा सौदास कल्माषपाद की रानी मद्यन्ती के साथ 'धर्मानुसार' उसके पति की आज्ञा से नियोग करके अश्मक नाम के पुत्र होने की कथा है।



श्री० चुन्नीलाल भाईचन्द मेहता

आपने बम्बई में एक दातव्य आयुर्वेदिक औषधालय की स्थापना के लिए ३५ हज़ार रु० दान दिया है।

आशा है कि पाठकों को विदित हो गया होगा कि नियोग अनार्यों की प्रथा नहीं, आर्यों की प्रथा थी।

आगे चल कर दास महोदय मेन आदि लेखकों के मत के विरुद्ध यह सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं कि हमारे प्राचीन पूर्वजों में विवाह अनादि काल से एक स्थिर सम्बन्ध है। यह भी उनका भ्रम प्रतीत होता है।

यदि दास महोदय महाभारत आदि-पर्व, अध्याय १२२ को आद्योपान्त पढ़ें, तो उनको ज्ञात होगा कि श्वेतकेतु की माता को ले जाने वाले 'कुछ दुष्ट लोग' नहीं थे। श्वेतकेतु की माता को एक ब्राह्मण उद्दालक ऋषि की उपस्थिति में उसका हाथ पकड़ कर और यह कह कर कि 'आओ चलें' ले गया था।

इस आख्यान के सम्बन्ध में दास महोदय लिखते हैं कि यह या तो कपोल-कल्पित है अथवा वेदों से भी किसी पूर्व समय के लिए (जिसका हमको कुछ भी ज्ञान नहीं है) सत्य हो सकता है। उन्होंने इस आख्यान के कपोल-कल्पित होने के कोई प्रमाण नहीं दिए। सम्भवतः इनका आधार जस्टिस मित्र का लेख है। परन्तु वह और जस्टिस मित्र दोनों भूलते हैं कि छान्दोग्य-उपनिषद् में इसकी चर्चा न होने से ही यह सिद्ध नहीं होता कि यह कथा कपोल-कल्पित है। उपनिषद् इतिहास या पुराण-ग्रन्थ नहीं हैं, और यह भी आवश्यक नहीं है कि यदि किसी ग्रन्थ में किसी व्यक्ति का वर्णन हो तो उसमें उसके सम्बन्ध की सभी घटनाओं का वर्णन हो।

फिर दोनों महाशय यह भी भूलते हैं कि वेद एक ही समय के बने हुए ग्रन्थ नहीं हैं। भिन्न-भिन्न वेद-मन्त्र, भिन्न-भिन्न कालों में, भिन्न-भिन्न ऋषियों द्वारा रचे गए थे, जिनमें से बहुतों में बहुत सी पीढ़ियों का अन्तर था। मधुछन्दस, कण्व, वत्स, जमदग्नि आदि ऋषि भृगु-अङ्गिरा, अथर्वण आदि के कई पीढ़ियों पीछे हुए हैं। ऋग्वेद के बहुत से मन्त्रों में इन तीनों तथा मनु, भृगु के पुत्र च्यवन, वशिष्ठ और कण्व आदि तक का भूत-काल में वर्णन है। ऋग्वेद १-१-२ में ऋषियों को 'पूर्व' और 'नूतन' बताया गया है। सभी इतिहासज्ञ ऋग्वेद के दशम् मण्डल के मन्त्रों को प्रायः सब से पीछे का बना मानते हैं। उसमें प्राचीन ऋषियों के बनाए हुए बहुत कम मन्त्र हैं। यजुः, साम और अथर्व ऋग्वेद के पश्चात् के बने प्रमाणित होते हैं। ब्राह्मण-ग्रन्थ तो और भी पश्चात-काल के बने हुए हैं। अतएव ऋग्वेद के दशम् मण्डल या ब्राह्मणों में विवाह-संस्कार सम्बन्धी मन्त्रों के पाए जाने से यह नहीं सिद्ध होता कि "मानव-समाज का जहाँ तक हमें ज्ञान है, विवाह अनादि काल से ही एक स्थिर बन्धन है।"

महाभारत 'अर्वाचीन ग्रन्थ' भले ही हो, परन्तु यह उग्रश्रवा, लोमहर्षण, वैशम्पायन और कृष्ण द्वैपायन के समय से बहुत पहले की घटनाओं और उनके समय के हमारे पूर्वजों के ज्ञात प्रायः समस्त पौराणिक तथा ऐतिहासिक घटनाओं का भण्डार है।

इस प्रकार की प्रथा के वर्णन से हमारे पूर्वजों का महत्व नहीं घटता। यह प्रथा पश्चात-काल में आर्यों में प्रचलित नहीं थी। अतएव कोई कारण नहीं दिखाई देता कि व्यास या वैशम्पायन या सूत इसकी निराधार कल्पना करें।

यह घटना उद्दालक ऋषि की स्त्री के साथ हुई या न हुई, परन्तु इससे यह स्पष्ट है कि किसी प्राचीन काल में, चाहे वह ऋग्वेद से भी पुराना हो, यह प्रथा आर्यों में अवश्य प्रचलित थी। ऐतिहासिक दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि ऋग्वेद हमारे पूर्वजों के सभ्य होने के आदि-काल में बना होगा। स्वयं ऋग्वेद के मन्त्रों में ही उनके बनने से पूर्वकाल का वर्णन है। अतएव अवश्य ही आर्य मनुष्य-समाज ऋग्वैदिक काल से बहुत पहले असभ्यता की दशा में उपस्थित होगा; और जैसा कि महाभारत में बताया गया है, उस प्राचीन समय में विवाह स्थिर बन्धन नहीं होगा।

दास महोदय ने उत्तर कौरवों को अनार्य बताया है, परन्तु उन्होंने इसके कोई प्रमाण नहीं दिए। उनके कौरव कहलाने से तो यही सिद्ध होता है कि यह आर्य थे और महाभारत से यह स्पष्ट हो जाता है कि महाराजा पाण्डु के काल में उनमें विवाह स्थिर बन्धन नहीं था। अतएव इस आख्यान का सम्बन्ध अनार्यों से नहीं, आर्यों से ही हो सकता है।

द्रौपदी के पाँचों पाण्डवों से, गौतमी जटिला के सात ऋषियों से, और एक ऋषि-कन्या के दस प्रचेता बन्धुओं से विवाह के वर्णन (महाभारत आदि-पर्व, अध्याय १६८) से भी यही प्रतीत होता है कि किसी अति प्राचीन काल में विवाह का आदर्श ऋग्वेद दशम् मण्डल के आदर्श से बहुत नीचा था।

अतएव मेन आदि विद्वानों का मत निराधार नहीं है और विवाह-संस्कार का इतिहास हमारी जाति में भी वही है जैसा कि दूसरी जातियों में।



विधवा का परिताप

[श्री० ललितकिशोर सिंह, एम० एस-सी०]



विनाश बाबू! तुम कहते हो कि मेरे जीवन में कुछ रहस्य है। पर सच मानो डॉक्टर बाबू! मेरे जीवन का रहस्य हर एक हिन्दू परिवार के जीवन का रहस्य है। इसीलिए मैं चाहती हूँ कि तुम्हारे जैसा परोपकारी पुरुष इस रहस्य को समझे, जिससे जाति का कल्याण हो।

कोई दूसरा होता तो उसके सामने मैं अपना हृदय खोल कर न रख सकती। पर तुम तो मेरे धर्म के भाई हो, मुझ दुखिया के आधार हो, पतिता के एक मात्र सहारा हो। तुमसे क्या छिपाऊँ और कैसे छिपाऊँ? मैं इतना ही चाहती हूँ कि तुम एक बार ध्यान से मेरी कहानी सुन लो। फिर चाहे मुझसे घृणा करके मुझे दूर फेंक देना या अनेक पतित बहिनों में से एक समझ, ऊपर उठाने का प्रयत्न करना।

मैं एक ब्राह्मण-परिवार की बाल-विधवा हूँ। मेरा कब ब्याह हुआ और मैं कब विधवा हुई, यह मुझे याद नहीं। मेरे पिता का घर भागलपुर ज़िले के एक छोटे से गाँव में है और मेरी सुसराल है पटने ज़िले में। मेरे पिता जी को अपनी कुलीनता का बड़ा गौरव था। उनकी सच्चरित्रता की लोग कहानी कहा करते थे। लोग उन्हें सच्चा सनातनी ब्राह्मण समझते थे। धनी-दरिद्र, राजा-प्रजा सबके ऊपर उनकी धार्मिकता की धाक जमी हुई थी। उनकी निष्ठा के सामने सबका सर झुक जाता। उनके तेज के सामने कोई ठहर नहीं सकता, उनका यश निष्कलङ्क था। उनकी प्रतिष्ठा अचल थी। कलियुग में ऐसे ब्राह्मण का होना एक नई बात समझी जाती थी। जब कभी-कभी ख़याल होता है कि मैंने अपनी करतूतों से उनकी बनी-बनाई प्रतिष्ठा किस तरह धूल में मिला दी, तो हृदय टूक-टूक हो जाता है।

मेरे विधवा होने के बाद से ही मेरी शिक्षा का भार पिता जी ने अपने ऊपर लिया। उन्होंने बड़ी धीरता से मेरे जीवन को धर्म के साँचे में ढालना आरम्भ किया। हिन्दू-विधवा के लिए दूसरा उपाय ही क्या था? मेरे विधवापन का पिता जी को कितना दुःख और कितनी चिन्ता थी, यह आज मुझे स्पष्ट दीख रहा है। पड़ोस की स्त्रियों के सामने मेरी चर्चा करते-करते मेरी माँ की आँखों में आँसू छलक आते थे। पर पिता जी को विचलित होते मैंने कभी नहीं देखा। हाँ, इतना मैं समझ गई थी कि इस परिवार में कोई ऐसी घटना हुई है अवश्य, जिसने उनके जीवन को नीरस बना डाला है।

मुझसे तीन साल छोटा मेरा एक भाई है। बचपन में मैं और वह साथ खेला करते थे। उस समय हम दोनों पर इस दुनिया की छाया, जिसमें आज मैं पड़ी हूँ, नहीं पड़ी थी। उस समय मैं नहीं समझती थी कि मेरे और उसके भाग्य में इतना अन्तर है।

मेरे विधवापन का इतना असर हुआ कि पिता जी ने मेरे भाई का ब्याह बचपन में नहीं किया। पास ही के स्कूल में भरती होकर वह अङ्गरेज़ी पढ़ने लगा। पिता जी ने मुझे संस्कृत ही पढ़ाना अच्छा समझा। आरम्भ में मुझे व्याकरण की शिक्षा मिली। फिर संस्कृत ग्रन्थों के चुने हुए अंश पढ़ाए गए। ख़ासकर वे अंश, जिनमें संयम, संन्यास, व्रत-उपवास, वैराग्य आदि की चर्चा रहती थी। पुराण-इतिहास में से सती-सावित्री जैसी पतिव्रता नारियों के चरित्र और मैत्रेयी जैसी विदुषी नारियों की कथाएँ पढ़ीं। ग्रन्थों के जिन अंशों के पढ़ने का मुझे आदेश न होता, उन्हें मैं कभी न पढ़ती। अन्त में मैंने पातञ्जल-योग, सांख्य और वेदान्त पढ़े। गीता स्वयं पिता जी ने मुझे पढ़ाई।

पिता जी ने मुझे संयम का उपदेश दिया, नियम का अभ्यास कराया। व्रत और उपवास में मुझे आनन्द आने लगा। वैराग्य में तृप्ति और संन्यास में स्फूर्ति होने लगी। क्रमशः मैंने दूसरे ही संसार में प्रवेश किया। मुझे अनुभव होने लगा कि मेरे जीवन का संस्कार हो रहा है, मेरे चारों ओर संयम और संन्यास की दीवार खड़ी हो रही है। कौन जानता था कि यह दीवार इतनी कमज़ोर निकलेगी?

२

मेरे भाई का विवाह हुआ। जीवन में कुछ उल्लास के लक्षण दीख पड़े। पिता जी के सूखे होठों पर भी हँसी की रेखा प्रकट हुई। माता जी का बहुत पुराना शोक फिर एक क्षण के लिए उमड़ आया।

बहू घर आई। अभी छोटी थी। बड़ी सुन्दर थी। पिता जी ने उसकी शिक्षा का भार मुझे ही सौंपा। बहू



मि० एफ़० ए० करीम नक़वी

आप यू० पी० सिविल सर्विस के मुसलमान उम्मेदवारों में सर्व-प्रथम उत्तीर्ण हुए थे।

उमर में मुझसे बहुत छोटी थी। इसीसे उसे मैं कभी बहू, कभी सुनैना और कभी भाभी कहा करती थी।

बहू बड़ी हँसमुख थी। हँसी-खेल में उसका मन अधिक लगता था। मैंने सोचा—अभी वह मेरी शिक्षा के लायक़ नहीं। अभी माँ-बाप से बिछुड़ी हुई है। हँसी-खेल में इसकी तबीयत बहले तो अच्छा ही है। धीरे-धीरे मुझे भी उसके साथ खिलवाड़ में सुख मिलने लगा।

साल भर बाद वह नैहर चली गई। उसके वियोग में मेरा मन कुछ उदास रहने लगा। अब पुरानी किताबों में मेरा जी नहीं लगता। पिता जी ने भी समझा, अब मेरी शिक्षा पूरी हो गई। अपने लिए पुस्तकें चुनने का काम उन्होंने मेरे ही ऊपर छोड़ दिया। अब वह नहीं पूछते कि मैं क्या पढ़ रही हूँ, या कैसे जीवन बिता रही हूँ। पहली पुस्तक जिसे मैंने अपने पसन्द से पढ़ना आरम्भ किया, वह थी 'शकुन्तला'। 'उत्तर-राम-चरित्र' तो मैं पहले ही पढ़ चुकी थी।

पुस्तक समाप्त कर मैंने दूर फेंक दी। सोचा, शकुन्तला का कितना घृणित चरित्र है! अनुसूया और प्रियम्वदा कैसी मूर्ख हैं! अपनी सखी की रक्षा तो क्या करेंगी, बातों ही बातों में उसे जाल में फँसा दिया। और दुष्यन्त? ओः! कितना बड़ा लम्पट है!!

शकुन्तला को तो अपने कर्मों का फल हाथों-हाथ मिल गया। पर दुष्यन्त को क्या हुआ? कुछ नहीं। यहाँ पर कालिदास की भूल है या पुरुष जाति का पक्षपात है। मुझको कालिदास पर बड़ी झुँझलाहट मालूम हुई। क्या सारे पुराणों में यही दुश्चरित्रा मिली थी नाटक लिखने को?

पर तुम क्या समझते हो अविनाश बाबू! कि मैं शकुन्तला को भूल सकी? नहीं, शकुन्तला को भूलना मेरे लिए असम्भव हो गया। कुछ दिनों बाद मैंने एक बार फिर शकुन्तला को ध्यान से पढ़ा। इस बार शकुन्तला के लिए घृणा की अपेक्षा, दया के ही भाव अधिक थे। मन में विचारा, शकुन्तला का जीवन कितना सरल था। आश्रम के पेड़-पत्ते, लतावितान, रङ्ग-बिरङ्गे फूल और फूलों की क्यारियाँ, इन्हीं के बीच शकुन्तला के जीवन की कली खिल रही थी। चिड़ियों की चहक और हिरन के बच्चों की उछल-कूद में ही उसे आनन्द मिलता था। वह तो स्वप्न में भी नहीं सोचती थी, कि प्रेम में कभी धोखा हो सकता है, अमृत भी कभी विष का फल दे सकता है। उसकी सरलता को उसकी दुर्दशा के साथ देखने से बड़ी दया आती है। पर इसमें सन्देह नहीं कि उद्दाम प्रवृत्ति ही उसकी सारी विपदाओं की जड़ है। अब तो दुष्यन्त पर मेरा क्रोध और भी बढ़ गया। कालिदास का पक्षपात साफ़-साफ़ दीखने लगा।

इस बार यह जान पड़ा कि शकुन्तला में बड़ा आकर्षण है। उसका चित्र मेरे चित्त से [illegible] दूर नहीं होता

था। सोते-जागते, उठते-बैठते भीतर से "तव न जाने हृदयम्" की झनकार उठा करती थी। मैंने घर के काम में मन लगाने की चेष्टा की, पर असफल हुई। जी में आया कि मन-बहलाव के लिए एक छोटा सा उद्यान ही लगा डालूँ। मेरी दाई मुझे बहुत मानती थी। वह उद्यान लगाने में परिश्रम करने लगी।

वह फूलों की क्यारियाँ बनाया करती। मैं पास ही तुलसी के चबूतरे पर बैठी शकुन्तला पढ़ा करती। मैंने शकुन्तला तीसरी बार पढ़ी, चौथी बार पढ़ी, पाँचवीं बार पढ़ी, पर सन्तोष नहीं हुआ। सच पूछो तो बार-बार पढ़ने पर भी मैं 'शकुन्तला' का अर्थ नहीं समझ सकी थी। पाप के अग्नि-कुण्ड में कूद कर मैंने जाना कि 'शकुन्तला' का तात्पर्य क्या है।

३

बहू नैहर से घर लौट आई। उसे देखते ही मेरे सामने शकुन्तला का चित्र खड़ा हो गया, यौवन की लाली उसके अङ्ग-अङ्ग से फूटी पड़ती थी। रूप की मिठास में यौवन का नशा—ऐसा अनोखा मेल, मैंने पहले कभी नहीं देखा था। जैसे पिघले हुए सोने में धीरे-धीरे उबाल आ रहा हो। जैसे शुद्ध, स्वच्छ जल की छाती पर छोटी-छोटी तरङ्गें नाच रही हों। रूप तो उसे पहले ही से अपार था, पर यौवन ने उसमें गति पैदा कर दी थी। ऐसा जान पड़ता था जैसे स्थिति और गति की द्विविधा में वह मुग्ध हो गई हो।

मैंने कहा—"भाभी, अब तो तुम पहचान में भी नहीं आतीं। कितना हेर-फेर हो गया!"

वह सङ्कोच में पड़ गई। लजाती हुई बोली—"दीदी, जब तुम स्त्री होकर मुझे नहीं पहचान सकीं तो बेचारे पुरुष कैसे पहचान सकेंगे?" मैंने हँस कर जवाब दिया—"पुरुष को अब पहचानने का अवकाश ही कहाँ मिलेगा?"

बहू की चपलता तो बहुत कुछ कम हो गई थी, पर विनोद का स्वभाव ज्यों का त्यों बना था, टोले-पड़ोस की स्त्रियाँ नित्य उसके पास बैठने आया करती थीं। उन्हें वह बात-बात में छेड़ा करती। वे भी बहू को तङ्ग किया करती थीं। इस प्रकार हमारे दिन हास-परिहास में ही बीतने लगे। पहले तो मैं इस हास-परिहास में साथ नहीं देती थी। पर धीरे-धीरे मुझे बहू की बातों में इतना रस मिलने लगा कि मैं अपने को रोक न सकी। मैं भी विनोद की धारा में बहने लगी।

कभी-कभी जब बहू के देवर-सम्प्रदाय के लोग आकर विनोद का सौदा करने बैठते थे, तब मेरा सारा शरीर गर्म हो जाता, नसों में ख़ून तेज़ी से दौड़ने लगता, और भीतर एक अजीब अरुचि सी बोध होने लगती थी। उस समय मैं एकान्त में जाकर अपने जीवन के पहले



श्रीमती धर्मशीला जायसवाल, एम० ए०

आप बैरिस्टरी की परीक्षा पास करने विलायत गई हुई हैं।

अध्याय पर एक दृष्टि डालती और मन में सोचती थी कि कहीं मैं ग़लत राह पर तो नहीं जा रही हूँ?

मैं प्रायः बहू की तुलना शकुन्तला से किया करती थी। मुझे इसका रोग सा हो गया था। इससे वह कभी-कभी खीझ भी उठती थी। क्योंकि शकुन्तला से उसका भी परिचय था। वह समझती थी कि मैं उसकी माँ से परिहास कर रही हूँ। पर मेरा भाव कुछ और ही

रहता था। एक दिन मैं बहू के साथ उद्यान में टहलने गई। एक फूल के पौदे को मुरझाते हुए देख वह उसमें घड़े से पानी डालने चली।

मैंने कहा—"भाभी! तुम चाहे जितना क्रोध करो, पर अभी तो तुम ठीक-ठीक शकुन्तला-सी जान पड़ती हो।"

उसने तुरत घड़ा नीचे रख दिया और बोली—"दीदी! यदि अब तुम मुझे शकुन्तला कहा करोगी तो मैं भी तुम्हें कुन्दनन्दिनी कहा करूँगी, याद रक्खो।"

मैंने पूछा—"कुन्दनन्दिनी कौन है?"

उसने हँस कर जवाब दिया—"वही विष-वृक्ष वाली।"

मुझे बड़ा कौतूहल हुआ। मुझे मालूम हो गया कि विष-वृक्ष नाम का एक उपन्यास है, जो बहू अपने नैहर से लाई है। मैं उसे पढ़ने का लोभ रोक न सकी। एक ही रात में पूरी किताब पढ़ डाली। पढ़ कर ख़ूब रोई। जाने कितने दिनों से वे आँसू मेरी आँखों में इकट्ठे हो रहे थे। सारे जीवन की वेदना, जो हृदय के भीतर जम कर पत्थर-सी हो गई थी, कुन्दनन्दिनी के सन्ताप से गल कर बाहर निकली। मैंने सोचा—"बहू मुझे कुन्द-नन्दिनी कहेगी। ज़रा आईने में देखूँ तो सही, क्या मैं कुन्दनन्दिनी सी दीख पड़ती हूँ।" विचार आते ही आईने के सामने जा खड़ी हुई। मैंने अपना वैसा रूप कभी नहीं देखा था। देखते ही हृदय डावाँडोल हो गया। सारा शरीर काँपने लगा। सर में चक्कर आने लगा। मैं छाती थाम कर वहीं धरती पर बैठ गई। मन में सोचा—"हाय! यदि मैं भी कुन्दनन्दिनी की तरह विष खाकर मर सकती तो कितना अच्छा होता!!"

मेरा भाई बहू को बहुत ही प्यार करता था। भला ऐसा कौन अभागा पति होगा जो वैसी स्त्री को प्यार न करे? इन दोनों का प्रेम देख मुझे बड़ा सुख होता था, पर इस सुख में भी कभी-कभी एक टीस-सी बोध होती थी। मैं इसका अर्थ नहीं समझ सकती थी। सोचती थी, शायद संसार के सभी सुखों का यही स्वाद होता हो।

दिन भर मैं और बहू साथ-साथ रहा करतीं। रात को जब मेरा भाई घर आता तो मैं हठ करके बहू को उसके पास भेज देती थी, पर उस युवती को अपने पति के पास भेज कर क्या मुझे चैन मिलता था? रात भर मुझे नींद नहीं आती थी। करवटें बदलते-बदलते भोर हो जाता था। मेरी बन्द आँखों के सामने कभी शकुन्तला, कभी कुन्द, कभी सुनैना (बहू) आतीं और अन्धकार में छिप जाती थीं। देखती थी—हाथ में घड़ा लिए हुए शकुन्तला जा रही है; मुट्ठी में विष की पुड़िया बाँधे कुन्द आ रही है; धीरे-धीरे पाँव रखती हुई सुनैना अपने प्राणाधिक के घर में प्रवेश कर रही है। बहुत रोकने पर भी भीतर से आह निकल पड़ती थी। उसी समय जान पड़ता था कि मेरे हृदय के भीतर कितना बड़ा अग्नि-कुण्ड धधक रहा है; मेरे सारे जीवन में हाहाकार के सिवा कुछ नहीं है!

४

बहुत दिनों के बाद मेरे ससुर जी ने मुझे स्मरण किया। एक दिन पिता जी के नाम उनका पत्र पहुँचा। उसमें लिखा था—".........पुत्र-शोक में रोते-रोते मेरी पत्नी की आँखें चली गईं। घर का प्रबन्ध छोटी बहू किया करती थी। हम दोनों प्राणियों की सेवा भी वही करती थी। वह भी हम सबों को रुलाती हुई चल बसी। अब घर सूना हो गया। यदि आपको कष्ट न हो तो कृपा कर बड़ी बहू को बिदा कर दीजिए। आप स्वीकृति दें तो मैं अपने लड़के को बिदाई के लिए भेजूँ।"

पिता जी ने रोते-रोते स्वीकृति लिखी। बिदाई का दिन भी निश्चित हो गया। निश्चित दिन पर मेरे देवर जी भी पहुँच गए। मैं यह ठीक न कर सकी, कि मुझे इस बिदाई में सुख मानना चाहिए या दुःख? जीवन के आरम्भ में मैं सुख और दुःख में प्रायः उदासीन सी थी। इसके बाद जीवन में आनन्द की हवा धीमी-धीमी चली। फिर तो वही हवा लू होकर जलाने लगी। जाने आगे और क्या-क्या भाग्य में लिखा है? इसी से नए जीवन में प्रवेश करने के विचार से ही मेरी छाती धड़कने लगती थी। पर पिता के ही घर पर मुझे क्या सुख था? जिस भाई को इतना प्यार किया, जिस भाभी को गोद खेलाया, उन्हीं का दाम्पत्य सुख मेरे हृदय में काँटे की नाईं चुभेगा, यह मैं कभी स्वप्न में भी नहीं सोचती थी। इस महापाप से बचने का उपाय यही था कि मैं किसी तरह पिता के घर से बिदा हो जाऊँ।

अन्त में बिदाई का मुहूर्त आ गया। मैं रो-रोकर

विदा हुई। पिता जी का पत्थर-सा कलेजा भी पसीज उठा। उन्होंने आँखों में आँसू भर कर सीख दी। माता जी का कहना ही क्या है? उनका करुण-विलाप अब भी मेरे कानों में गूँज रहा है। भाभी गले से ऐसी लिपटी कि लोगों को छुड़ाना कठिन हो गया। मुश्किल से मेरी पालकी द्वार से उठी। एक बार फिर भी शकुन्तला मुझे याद आई।

* * *

ससुराल पहुँचते ही सारा इन्तज़ाम मैंने अपने हाथ में ले लिया। सास-ससुर मेरी सेवा से प्रसन्न हो गए। देवर जी मेरे शील-स्वभाव और प्रबन्ध की प्रशंसा हज़ार मुँह से करने लगे। टोले-पड़ोस में मेरी ही चर्चा होने लगी।

बाहर का काम-काज देवर जी करते और भीतर का मैं करती थी। बहुत बातों में परामर्श के लिए देवर जी को मेरे पास आना पड़ता था। कभी-कभी उनको यह ख़याल होता था कि अकेली रहने से कहीं मेरा जी न ऊब जाय, इसलिए बीच-बीच में बेकाम भी वह मेरे पास आ जाया करते थे। थोड़ी देर बैठ इधर-उधर की बातें करते। मैं पान लगा कर देती। वे शौक़ से खाते। फिर बाहर चले जाते थे। बहुत दिनों तक इसी तरह का व्यवहार चलता रहा।

पर जहाँ दो व्यक्तियों को, ख़ासकर देवर और भाभी को, एक साथ रहना है, वहाँ सूखा व्यवहार बहुत दिनों तक नहीं चल सकता। समय पाकर हम दोनों के बीच का सङ्कोच भी बहुत-कुछ दूर हो गया। आपस में बहुत तरह की बातें होने लगीं। एक दिन मैंने पूछा—"बाबू, तुम अपना ब्याह जल्दी क्यों नहीं कर लेते? भला मैं अकेली कब तक तुम्हारे घर का प्रबन्ध करती रहूँगी?" उन्होंने कहा—"भाभी! अब मैं ब्याह करना नहीं चाहता। बाक़ी ज़िन्दगी इसी तरह कट जाय तो अच्छा है! अब मुझे जीवन में आनन्द नहीं दीख पड़ता।"

मैंने उत्सुक होकर पूछा—"क्यों, इतना विराग कैसे हो गया?"

वह बोले—"भाभी, सच पूछो तो अब वह प्रेम नहीं मिल सकता है।"

मैंने कुछ गम्भीर होकर कहा—"भाई, एक प्रेम ही तो देखना नहीं है। घर का भी तो ख़याल करना होगा। मुझे कब तक इस माया-जाल में फँसाए रक्खोगे, बाबू! मेरा यह लोक तो गया ही, अब क्या परलोक की भी चिन्ता नहीं करने दोगे?"

उन्होंने गिड़गिड़ा कर जवाब दिया—"भाभी! लोक-परलोक सब इसी जीवन में है। क्यों व्यर्थ मुझे फिर गढ़े में ढकेलना चाहती हो?"



दीवान बहादुर ए० बी० लट्ठ, एम० ए०, एल्-एल्० बी०

आप कोल्हापुर के दीवान हैं और राउण्ड टेबुल कॉन्फ़्रेन्स में सलाहकार नियुक्त किए गए हैं।

मैं चुप हो गई। मैंने फिर इसकी चर्चा उनके सामने नहीं की।

५

देवर जी की बातों ने मेरे चित्त पर असर किया। दिन पर दिन उनके साथ मेरी घनिष्टता बढ़ने लगी। मैंने देखा कि मेरा हृदय एकदम नीरस नहीं है। मेरे भावों को इतनी उत्तेजना मिली, कि वे आसमान में उड़ने लगे। बहुत दिन की दबी हुई लालसाएँ फ़व्वारे

की नाईं बाहर निकल पड़ीं। हृदय की प्रेरणा को भीतर रोकना कठिन हो गया। वासना अगणित धाराएँ होकर प्रावाहित होने लगी। पुराने संस्कार तिनके की तरह उस धारा में बह गए। मेरे देवर जी भी अपने को सँभाल न सके, मेरे साथ ही वासना की तीव्र धारा में बहने लगे। मैंने समझा, रूप और यौवन की यही सार्थकता है। उस समय हम दोनों ने सोचा था कि यदि इस प्रवाह में डूबेंगे तो साथ ही और यदि कहीं किनारे लगेंगे तो साथ ही। हम दोनों की जकड़ी हुई बाहों को संसार की बड़ी से बड़ी शक्ति अलग नहीं कर सकती !!

भैया ! अब तो मेरे दिल की आग ठण्डी पड़ गई। किन्तु जिस समय वह आग धधक रही थी, उस समय मैं यही सोचती थी कि मैं सारे जगत के सम्भोग को इस आग में भस्म कर सकती हूँ। जाने कहाँ से मेरी वासना में इतनी तीव्रता आ गई थी ! सम्भोग और लालसा, लालसा और सम्भोग, इन्हीं के बीच मेरा जीवन बीतने लगा। जीवन का बीतना क्या ? मुझे तो ऐसा जान पड़ता था कि जीवन अनन्त है, जीवन की लालसाएँ अनन्त हैं। केवल सम्भोग अनन्त नहीं। बस एक यही जीवन का दुःख है !

सचमुच वह जीवन अनन्त था या नहीं, पर एक घटना ने उसका अन्त कर दिया। एक दिन मुझे जान पड़ा, जैसे मेरे शरीर में कुछ परिवर्त्तन हो रहा है। नित्य मेरा ध्यान उसी परिवर्त्तन पर लगा रहता था। धीरे-धीरे मैं अनुभव करने लगी कि मेरे शरीर के भीतर एक भिन्न प्राणी की रचना हो रही है। उसका एक-एक स्पन्दन मुझे चेतावनी देने लगा।

मैंने यह शुभ-सम्वाद देवर जी को सुनाया। सुनते ही उनका मुँह सूख गया।

मैंने पूछा—"तुम घबड़ा क्यों गए ?"

उन्होंने बड़ी रोनी आवाज़ में कहा—"भाभी, बड़ा अनर्थ हुआ !!"

मैंने ज़रा तेज़ आवाज़ में पूछा—"क्यों, इसमें अनर्थ क्या है ?"

वे बड़े दीन भाव से बोले—"भाभी ! तुम तो घर में रहोगी, पर मुझे बाहर मुँह दिखाना कठिन हो जायगा।"

मैं सब समझ गई। भूत-भविष्य, सब अन्धकार हो गया। एक बार मेरी आत्मा रो उठी।

पन्द्रह-बीस दिन बाद वह फिर मेरे पास आए और बोले—"भाभी ! यदि बुरा न मानो तो एक बात कहूँ।"

मैंने कहा—"बाबू ! तुमको जो कुछ कहना हो साफ़-साफ़ कहो। भला मैं बुरा क्यों मानने लगी ?"

उन्होंने सकुचाते हुए कहा—"भाभी ! मैं तो समझता हूँ कि ऐसी हालत में थोड़े दिनों के लिए कहीं बाहर चल कर रहना ही अच्छा है।"

मैंने कहा—"तुम जो कहोगे, मैं वही करूँगी। जिस काम से तुम्हारा भला हो, मैं उसमें नाहीं नहीं कर सकती बाबू ! यह विश्वास मानो।"

वह कुछ सोच कर बोले—"मेरा तो विचार है कि कुछ दिनों के लिए हम दोनों वैद्यनाथ-धाम चल कर रहें। वह तीर्थस्थान है। किसी को सन्देह का मौक़ा भी नहीं मिलेगा।"

मैंने अपनी स्वीकृति दे दी। उसके साथ-साथ यह भी कह दिया—"मैं वहाँ अकेली रहूँगी। तुम सिर्फ़ मुझे पहुँचा आना।"

फिर क्या था ? देवर जी ने पिता जी से अनुमति ली। उनको मेरा धर्म-भाव देख कर बड़ा सन्तोष हुआ। विचार हुआ कि साथ आदमी लेने की कोई आवश्यकता नहीं। एक दिन हम दोनों रेल पर सवार हो वैद्यनाथ-धाम की ओर रवाना हो गए।

६

ट्रेन से उतर कर देखा, सिमुलतला स्टेशन है। मैंने देवर जी से पूछा—"क्यों बाबू, बीच ही में क्यों उतर गए ?"

उन्होंने अनमना सा होकर जवाब दिया—"यह बड़ी अच्छी जगह है। कुछ दिन यहाँ रह कर फिर देवघर चलेंगे।"

इस जवाब से मुझे सन्तोष नहीं हुआ। पर अधिक प्रश्न करना भी मैंने अच्छा नहीं समझा।

बैलगाड़ी पर सवार हो, हम लोग रवाना हुए। जगह सचमुच बड़ी अच्छी मालूम हुई। टेढ़ी-मेढ़ी, ऊँची-नीची, लाल-लाल सड़कें बड़ी भली मालूम होती थीं। चारों ओर पहाड़ी टीले और उन पर बने हुए

मकान ! बीच-बीच में लम्बा-चौड़ा, हरा-भरा पहाड़ी मैदान ! ऐसा देश पहले मैंने नहीं देखा था।

थोड़ी देर में एक मकान के द्वार पर हम लोग पहुँच गए। वह मकान आपके मकान से उत्तर क़रीब एक माइल की दूरी पर है। उस मकान के आस-पास और कोई दूसरा मकान नहीं है। उस मकान में हम लोगों का स्वागत करने को पहले ही से दाई और नौकर मौजूद थे

मैंने पूछा—"ये नौकर किसके हैं ?"

देवर जी ने कहा—"इन्हें मैंने पहले ही से ठीक कर रक्खा था।"

मैं उस मकान में बाहर-बाहर से तो चैन से रहने लगी, पर भीतर की अशान्ति दूर न हुई। जी बहलाने को मैं कभी-कभी घूमने निकल जाया करती थी। एक रोज़ मैं आपका अस्पताल भी देख गई थी। आपके मकान का भी मुझे पता लग गया था ; क्योंकि आपकी दयाशीलता का बखान मैं कितने ही आदमियों के मुँह से सुन चुकी थी।

मैं देवर जी के मन का क्लेश दूर करने के यत्न में लगी रहती थी, पर उनकी चिन्ता दिन पर दिन बढ़ती ही जा रही थी। इसका कारण जानने की बहुत कोशिश की, पर जान न सकी। अकस्मात् एक दिन सारा रहस्य आप से आप प्रकट हो गया।

एक दिन रात को मैं अपने कमरे में गहरी नींद में सोई हुई थी। एकाएक मेरी नींद खुली तो ऐसा मालूम हुआ जैसे कोई मेरा गला घोंट रहा है, मैं बहुत कोशिश करके भी चिल्ला न सकी। कमरे में अँधेरा था। मुझे अब जान पड़ता है कि कई औरतों ने मिल कर मुझे ज़ोर से पकड़ रक्खा था और एक मर्द मेरे मुँह में कपड़ा ठूँस रहा था। कुछ देर तक तो मैं बहुत छटपटाती रही, पर अन्त में बेहोश हो गई।

कितनी देर तक बेहोश रही, यह मुझे याद नहीं, पर जब होश हुआ तो देखा मेरी अजीब हालत हो गई है। सारा बदन टूट रहा है। विशेष पीड़ा का अनुभव होते ही मैं सारा मामला समझ गई। मुझे साफ़ दीखने लगा कि क्यों एक बुढ़िया नित्य मेरी सुस्ती की दसों दवाइयाँ बता जाया करती थी और मेरे उन दवाइयों का व्यवहार न करने पर देवर जी भी नाराज़ होते थे। जिस घटना की आशङ्का मैं स्वप्न में भी नहीं करती थी, वही सामने आ पड़ी। फिर तो शरीर की पीड़ा से सौ गुनी हृदय की पीड़ा होने लगी। मैं उस समय पगली-सी हो गई थी। अन्धकार में मुझे ऐसा जान पड़ा, जैसे चारों ओर से भूत-पिशाच मुझे खाने को दौड़े आ रहे हैं। उस समय जाने कहाँ से मेरे शरीर में इतना बल आ गया था। मैं चारपाई से उठ दरवाज़े के पास गई। किवाड़ बाहर से बन्द थे, पर एक किवाड़ थोड़ा धक्का मारने से खुल गया। द्वार खुलते ही मैं जान छोड़ कर भागी।



श्रीमती लाडोरानी ज़ुत्शी

लाहौर 'युद्ध-समिति' की सुप्रसिद्ध डिक्टेटर, जिनको एक वर्ष की सज़ा दी गई है।

यह मुझे मालूम हो गया कि कोई मेरा पीछा कर रहा है, पर वह मुझे पकड़ नहीं सका। जब मैं आपके हाते में घुसी तब वह लौट गया।

फिर उस रात को आपसे जिस अवस्था में भेंट हुई और आपने जिस तरह मेरे प्राण बचाए यह आपको मालूम ही है। मैं आपका यह उपकार जन्म भर नहीं भूलूँगी डॉक्टर बाबू ! कि आपने मेरी बिनती मान कर

पुलिस में कोई ख़बर नहीं दी। क्योंकि मैं यह नहीं चाहती कि देवर जी मेरे कारण आफ़त में फँस जायँ !

७

अब आप ही विचारिए अविनाश बाबू ! कि इस व्यभिचार, विश्वासघात, अत्याचार, गर्भपात, भ्रूण-हत्या आदि कितने ही पापों से लिप्त दुर्घटना का दोषी कौन है। मैं देवर जी को दोष नहीं देती, क्योंकि मैं भली-भाँति जानती हूँ कि वे कितने पवित्र और धर्मभीरु थे। पिता जी को दोष देना तो बड़ा अन्याय होगा, क्योंकि उन्होंने मुझे अपने विचार में अच्छी से अच्छी शिक्षा दी थी। वे सदा मेरे अपार दुःखों को अपने प्रेम-भाव और त्याग से कम करने की चेष्टा में लगे रहे। उनका हृदय जिस प्रकार मैंने विश्वासघात से चूर-चूर कर दिया, उनकी मान-प्रतिष्ठा मिट्टी में मिला दी, इसका प्रायश्चित्त मैं सौ जन्मों में भी न कर सकूँगी।

फिर मैं अपने को ही दोषी कैसे मान लूँ ? क्योंकि मैं जानती हूँ कि एक बार मेरे अन्तःकरण में कैसा भीषण महाभारत मचा था। दुर्निवार प्रवृत्तियों से लड़ते-लड़ते मैं नीचे गिरी हूँ। आज भी मुझे याद है कि किस तरह एक-एक पग आगे बढ़ते-बढ़ते मैं पाप के दलदल में फँसी थी।

मैंने इस पाप-काण्ड पर बहुत विचार किया है डॉक्टर बाबू ! आपके आश्रय में पड़ी-पड़ी मैंने इस घटना के बारे में रात-रात भर सोचा है। मैं तो इसी परिणाम पर पहुँची हूँ कि इन सारे अनर्थों की जड़ हमारे समाज का निष्ठुर विधान है।

समाज विधवाओं को प्रतिकूल वायुमण्डल में रख उनसे अबाध सतीत्व की आशा करता है। वह यह नहीं सोचता कि पारिवारिक जीवन के रजो, तमो-गुणी सङ्घर्ष में विधवाओं की सात्विकता कहाँ तक बनी रह सकती है। उत्तेजनाओं के बीच उनका अखण्ड ब्रह्मचर्य कहाँ तक सम्भव है। अभागिनी विधवाओं की यह अस्वाभाविक परिस्थिति ही उनके पतन का बहुत बड़ा कारण है और इस पतन को समाज दया की दृष्टि से देखना नहीं चाहता, मुझे इसी का बड़ा खेद है।

समाज का यह विधान कितना युक्तिसङ्गत है, ज़रा इस पर भी विचार कीजिए, अविनाश बाबू ! पुरुष संन्यास लें तो संसार को त्याग कर जङ्गलों में रहें। पर विधवा को परिवार में रह कर संन्यास लेना होगा ! अखण्ड ब्रह्मचर्य पर कोई पुरुष एक क्षण के लिए भी विश्वास नहीं करता, पर बाल-विधवाओं को जन्म भर ब्रह्मचर्य रखना होगा। निर्गुण उपासना पुरुषों के लिए असम्भव है, पर कितनी ही बाल-विधवाएँ निर्गुणोपासना के लिए विवश की जाती हैं। अबला नारी और सबल पुरुष में इतना अन्तर क्यों ?

इसके अतिरिक्त पुरुषों के लिए तो ब्रह्मचर्य का बहुत बड़ा आदर्श है। बाल-ब्रह्मचारी भीष्म को कौन नहीं जानता ? पर विधवाओं के लिए कौन सा आदर्श है ? पतिव्रत के लिए सती, सावित्री, सीता, द्रौपदी आदि आदर्श हैं, पर विधवाओं के आगे हिन्दू-संस्कृति कौन सा आदर्श रखती है ? तुम कहोगे कुन्ती। भला जिसके पाँच-पाँच विश्व-विजयी बेटे मौजूद थे !

मैं तो समझती हूँ भाई, कि मातृत्व स्त्रियों के रक्त की एक-एक बूँद में समाया हुआ है। यह उनका जन्म-सिद्ध अधिकार है। जो समाज स्त्रियों को मातृत्व से वञ्चित करता है, उसका त्रिकाल में भी कल्याण नहीं हो सकता। यह मेरा अटल विश्वास है।

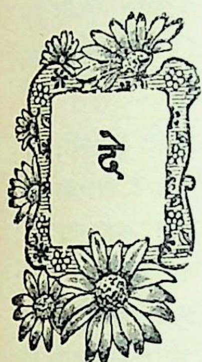
* * *

विधवा की करुण-कहानी सुन डॉक्टर अविनाशचन्द्र भाव के समुद्र में निमग्न हो गए। कुछ देर बाद उत्तेजित होकर उन्होंने कहना आरम्भ किया—"बहिन ! तुम सभी पापों से मुक्त हो। तुम्हारे परिताप ने तुम्हारे पापों को भस्म कर दिया। तुमने विधवाओं की समस्या बड़े ही स्वच्छ और सच्चे रूप में मेरे सामने खड़ी कर दी है। अब तुम मेरे सामने प्रण करो बहिन ! कि इन अभागिनी विधवाओं के उद्धार में तुम मेरा साथ दोगी। समाज ने तुम्हें पाप के गढ़े में ढकेला है। अब तुम समाज को पाप के गढ़े से बाहर निकालो। इसी महायज्ञ में अपने शेष जीवन को उत्सर्ग कर दो।"



गोलमेज़ परिषद्

[श्री० यदुनन्दनप्रसाद श्रीवास्तव]



श में इस समय गोलमेज़-परिषद की बात को लेकर काफ़ी चर्चा हो रही है। प्रत्येक दैनिक पत्र में रोज़ ही इस सम्बन्ध को लेकर कुछ न कुछ चर्चा रहती ही है। लोग इस बात को जानने के बड़े उत्सुक हैं कि गोलमेज़ कॉन्फ्रेन्स में क्या होगा? फलतः यहाँ पर इस प्रश्न की चर्चा अप्रासङ्गिक न होगी।

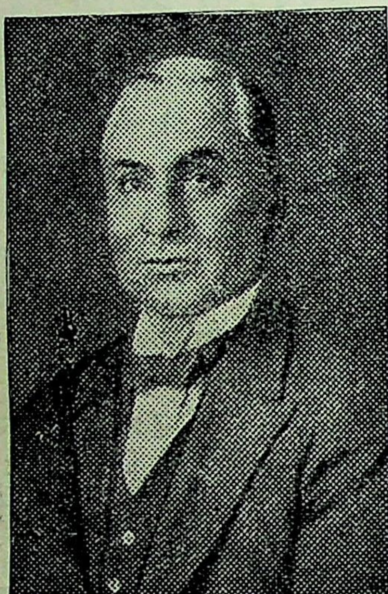
गोलमेज़ कॉन्फ्रेन्स को लेकर इस समय देश में दो दल हो रहे हैं। कुछ दिन पहले तो यह जान पड़ता था कि अब गरम और नरम दल मिल कर एक हो जायँगे, पर इस बात को लेकर ये फिर अलग हो गए हैं!

जो लोग गोलमेज़-परिषद में गए हैं, उनका यह विश्वास है कि वे वादविवाद द्वारा यह सिद्ध कर देंगे कि हमारा पक्ष सच्चा है, हमारी माँग उचित है। उनका विश्वास है कि एक बार यह बात जहाँ सिद्ध हो गई, त्योंही न्याय-प्रिय अङ्गरेज़ जाति न्याय करने के लिए तैयार हो जावेगी और भारतवर्ष को औपनिवेशिक स्वराज्य का यथेष्ट हिस्सा मिल जावेगा। जो कुछ दो-एक बातें बच रहेंगी, वे भी १०-२० बरस के अन्दर-अन्दर फिर एकाध बार इसी तरह की कॉन्फ्रेन्स में वादविवाद कर प्राप्त कर ली जावेंगी। इस तरह के विचार वाले गरम लोगों को सदैव इस बात का दोष दिया करते हैं कि वे लोग ज़िद में आकर बनी-बनाई बात अपनी उग्रता के कारण बिगाड़ देते हैं।

ये लोग मानव-स्वभाव की एक बहुत आवश्यक बात को भूल जाते हैं। प्रत्येक व्यक्ति स्वभाव से ही अपने फ़ायदे-नुक़सान पर सदैव ही सब से पहले ध्यान देता है। न्याय-अन्याय आदि की बातों को वह बाद में सोचता है, या फिर यह बात उसे उस समय याद आती है जब किसी दूसरे व्यक्ति का मामला उसके सामने विचार के लिए पेश होता है। यदि बात ऐसी न होती तो फिर आज दुनिया में इतना हाहाकार न होता, पुलिस, फ़ौज और अदालतों की इतनी आवश्यकता न रहती। अङ्गरेज़ लोग भी मनुष्य ही हैं और उनके स्वभाव में भी स्वार्थ है। किसी सवाल के सामने आते ही वे भी यही सोचते हैं कि इससे उन्हें हानि होगी या लाभ। हिन्दुस्तान पर अङ्गरेज़ों का राज्य करना अन्याय है, अनुचित है, इसे प्रत्येक विचारशील अङ्गरेज़ अच्छी तरह समझता और जानता है। इसे वे लोग हमारी अपेक्षा भी शायद अधिक समझते हैं, कारण वे लोग स्वाधीनता के महत्व को हमसे अधिक जानते हैं; किन्तु साथ ही वे इस बात को भी अच्छी तरह जानते हैं कि हिन्दुस्तान से उन्हें बड़ा लाभ है तथा इस देश के स्वतन्त्र होते ही ब्रिटिश साम्राज्य का दिवाला निकल जावेगा।

लेकिन नरम दल के तर्कों का उत्तर केवल एक इसी बात से ख़त्म नहीं होता। उनका कथन है कि यदि और लोग नहीं, तो कम से कम लॉर्ड इरविन, मि० बेन और प्रधान मन्त्री रेम्ज़े मेकडॉनल्ड ऐसे भले आदमी हैं कि वे भारतीय परिस्थिति की गम्भीरता और हमारी माँगों के औचित्य को अधिक दिनों तक अस्वीकार नहीं कर सकते। हम भी इस त्रिमूर्ति की भलमनसाहत को अस्वीकार करना नहीं चाहते। किन्तु हमारा कहना यह है कि इस त्रिमूर्ति से कुछ हो नहीं सकता। यदि आज ग्रेट-ब्रिटेन का शासन किसी अनियन्त्रित राजा के हाथ में होता अथवा यदि मि० मैकडॉनल्ड वहाँ के सर्वाधिकार-सम्पन्न शासक होते तो निश्चय ही हमारा काम बड़ी सरलता से हो जाता। किन्तु ग्रेट-ब्रिटेन का शासन पार्लामेण्ट के हाथों में है और पार्लामेण्ट के सदस्यों की ९९ फ़ीसदी संख्या ऐसी है, जिन्हें हम महात्मा की उपाधि से विभूषित नहीं कर सकते। वे इस बनिया जाति के चुने हुए चतुर बनिए तथा साधारण आदमियों की तरह ही अपने स्वार्थ पर सब से पहले ध्यान देने वाले संसारी जीव हैं। फलतः उनसे केवल न्याय के बल पर कोई बात करा लेना असम्भव बात है!

किन्तु, कई लोगों का विश्वास है कि अङ्गरेज़ जाति अपनी न्याय-प्रियता के लिए इतिहास में प्रसिद्ध है और अङ्गरेज़ी न्याय आज भी साहित्य में एक विशेष अर्थ का द्योतक है। इस बात की सत्यता की परीक्षा के लिए हमें



सर तेजबहादुर सप्रू

(गोलमेज़ के सदस्य)

ब्रिटिश इतिहास के पन्ने उलटने पड़ेंगे। जिस तरह का झगड़ा आज भारत और ब्रिटेन के बीच में हो रहा है, ठीक उसी तरह का झगड़ा सब से पहले अमेरिका और ब्रिटेन में हुआ था। यही पहला अवसर था, जब ब्रिटिश न्याय-प्रियता कसौटी पर रक्खी गई। अमेरिका-वासियों ने ब्रिटेन से अपील की, स्वतन्त्रता पाने के लिए; लेकिन उनकी सुनाई न हुई, उनकी सारी अपील, सारी बहस व्यर्थ हुई और अमेरिका को स्वाधीनता उसी समय मिली, जब उसने शस्त्र उठा कर ब्रिटेन को अपनी बात मानने के लिए मजबूर कर दिया। यहाँ पर एक बात और ध्यान देने योग्य है। अमेरिका के स्वाधीनता माँगने वाले लोग ब्रिटेन के मूल निवासी और उसके अपने एक ख़ून के गोरी जाति के लोग ही थे। आयरिश लोगों के साथ भी यही बात हुई। जो जाति अपनी सभ्यता को मानने वाले, अपने धर्म को मानने वाले तथा अपने वर्ण वालों के साथ ऐसा व्यवहार करती है, वह दूसरों के साथ कैसा व्यवहार करेगी, यह बात अनुमान से जानी जा सकती है। किन्तु, अनुमान पर निर्भर रहने की कोई आवश्यकता नहीं। ब्रिटिश लोगों का संसर्ग रङ्गीन जातियों से बराबर रहा है और उन्होंने मिश्र-वासियों, चीनियों तथा निरीह हब्शियों से जैसा बर्ताव किया है, वह कोई छिपी बात अथवा कल्पना की वस्तु नहीं, एक ऐतिहासिक-सत्य है। अस्तु।

इन ऐतिहासिक प्रमाणों के सामने होते हुए भी, जो ब्रिटिश न्यायप्रियता अथवा लॉर्ड इरविन के आश्वासन पर हवाई क़िला बना लेते हैं, उनसे क्या कहा जाय? फिर इसी १० साल के अन्दर-अन्दर हमारे यहाँ ही नरम लोगों को न जाने कितनी बार धोखा खाना पड़ा है। फिर भी उनका विश्वास अनुनय-विनय अस्त्र से हटता ही नहीं। वे तो 'मर्ज़ बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की' वाली कहावत को चरितार्थ करते हैं। जैसे-जैसे वे जाते हैं, धोखा

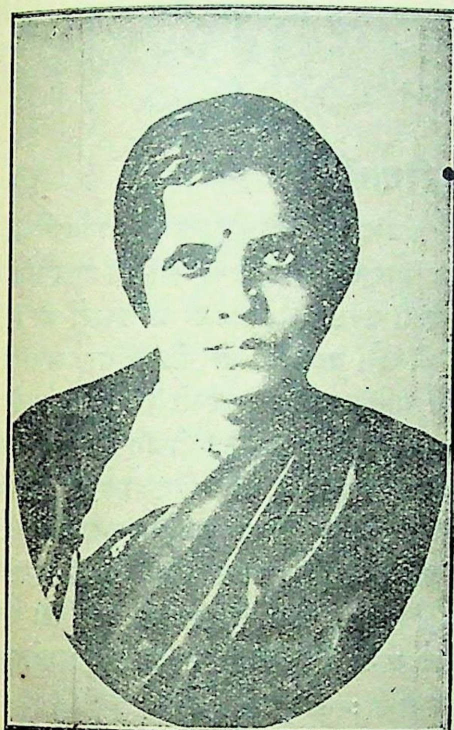


श्री० सी० वाई० चिन्तामणि

(गोलमेज़ के सदस्य)

खाते हैं, वैसे ही वैसे उनका विश्वास भी बढ़ता जाता है। और इसका कारण भी है। नरम लोगों के कार्य-क्रम में सब दिक़तों की एक ही दवा है—अनुनय-विनय! सन् १९२० की सुधार-योजना अनुपयुक्त, अयथेष्ट और

असन्तोष-जनक निकली ; लेकिन फिर भी नरम दल ने उसे स्वीकार कर ही लिया। साइमन-कमीशन असन्तोष-



श्रीमती सुब्बरायन

(गोलमेज़ की सदस्या)

जनक रहा ; राउण्ड-टेबिल-कॉन्फ्रेन्स की योजना पहले ठीक न थी, और आज भी इङ्गलैण्ड की यात्रा उन लोगों ने प्रफुल्ल-चित्त और विश्वास से नहीं की है, किन्तु वे सहयोग न करें, तो करें क्या? उनका विधान, उनका कार्यक्रम तो सीधे मार्ग को पसन्द करता नहीं! इसमें उन्हें 'मालिक' के रुष्ट हो जाने का भय होता है। ऐसी मानसिक वृत्ति के लोगों का विश्वास सहयोग से उठ नहीं सकता। वे जीवन भर के संस्कार को इस उमर में कैसे ठुकरा दें?

जो बातों को समझ सकते हैं, जो कटु-सत्य, कुरूप विभीषिका को आँखें खोल कर देख सकते हैं, उनके लिए एक ही मार्ग है। जब एक धेले की चीज़ आज कोई किसी को मुफ़्त, बिना किसी स्वार्थ के नहीं देता, तब हिन्दुस्तान सरीखे 'सोने की चिड़िया' को कोई उदारतावश कैसे स्वाधीन कर देगा? केवल अपीलों के बल पर हिन्दुस्तान स्वाधीन नहीं होगा। जब तक आप अङ्गरेज़ों को मजबूर न कर देंगे, जब तक आप ऐसी परिस्थिति न पैदा कर देंगे, कि बात ग़ैरमुमकिन हो उठे, तब तक अङ्गरेज़ लोग हिन्दुस्तान से अपना क़ब्ज़ा कदापि न हटावेंगे।

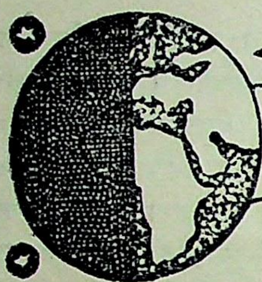
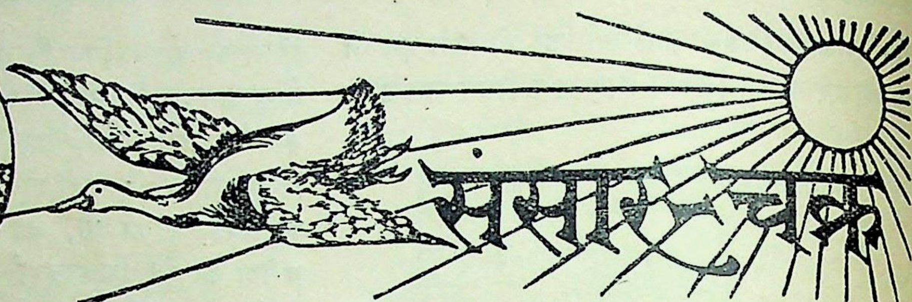
इसके लिए देश ने अहिंसात्मक असहयोग का मार्ग अख़्तियार कर दिया है। जो लोग इसमें भाग लेने के लिए अपने को समर्थ पाते हों, उनके लिए केवल एक यही



रेवरण्ड जे० सी० चैटर्जी, एम० ए०, एम० एल० ए० (दिल्ली)

(गोलमेज़ के सदस्य)

मार्ग है। जो लोग इसमें भाग न ले सकें, उन्हें अपनी टाँग अड़ाने की अपेक्षा, अलग होकर चुप बैठना चाहिए

["राजनीति का एक विनम्र विद्यार्थी"]

रूस के क्रान्तिकारी दल का घोषणा-पत्र

रूस के क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास बहुत विस्तृत है। वहाँ की निरङ्कुश ज़ारशाही के अन्याय और अत्याचारों के प्रतिकारार्थ अनेकों दलों का जन्म हुआ, अनेकों मार्गों का अनुसरण किया गया, अनेकों उपायों का अवलम्बन किया गया; पर उसकी नीति न बदली, और उसका शासन दिन पर दिन कठोर-भाव धारण करता गया। अन्त में जब आन्दोलनकारी सब उपाय करके हार गए; विनय, प्रार्थना, अधिकारों की माँग, विरोध आदि सब बातें निष्फल सिद्ध हुईं और सरकार छोटी-छोटी बातों के लिए देश-भक्त नवयुवकों और नवयुवतियों को साइबेरिया (रूस का कालापानी) भेजने लगी तो लोगों के धैर्य का अन्त हो गया और वे देश-दशा के सुधार के लिए आन्दोलन के वैध-मार्ग को त्याग कर बम, पिस्तौल, मारकाट, गुप्त-हत्या आदि का सहारा लेने लगे। धीरे-धीरे रूस के क्रान्तिकारी दल का नाम संसार में फैल गया और वह आश्चर्य, भय और विस्मय की दृष्टि से देखा जाने लगा। शुरू में छोटे-बड़े पुलिस कर्मचारियों और दमन करने वाले अन्य सरकारी अफ़सरों को गोली का शिकार बनाया गया, और फिर स्वयम् ज़ार को ही क्रान्तिकारी दल की कार्यकारिणी कमेटी ने अपना लक्ष्य बनाया। एक बार उसकी स्पेशल ट्रेन सुरङ्ग लगा कर नष्ट कर दी गई और दूसरी बार उसके महल को डाइनामाइट से उड़ाया गया। पर दोनों बार वह भाग्यवश बच गया। अन्त में १३ मार्च १८८१ को क्रान्तिकारियों ने उसे बीच सड़क पर मार दिया। इसके दस दिन पश्चात् क्रान्तिकारी दल की कार्यकारिणी कमेटी ने नवीन ज़ार के नाम एक घोषणा-पत्र प्रकाशित कराया, जिसमें रूसी जनता की तरफ़ से अधिकारों की माँग पेश की गई थी और बतलाया था कि अगर जनता को ये साधारण अधिकार मिल जायँ तो हम मारकाट के उपायों को छोड़ कर, वैध रीति से आन्दोलन करने को तैयार हैं। कार्यकारिणी कमेटी का वह घोषणा-पत्र पाश्चात्य देश-वासियों की दृष्टि में बड़ा महत्वपूर्ण समझा जाता है। रूस अथवा ज़ार सम्बन्धी प्रत्येक इतिहास में इसकी चर्चा मिलती है। पाठकों के मनोरञ्जनार्थ उसी का भाषान्तर नीचे दिया जाता है। घोषणा-पत्र ज़ार को सम्बोधन करके लिखा गया है :—

"बादशाह सलामत,—आपको इस समय जो मानसिक वेदना हो रही होगी उसे यह कार्यकारिणी कमेटी अच्छी तरह समझती है। पर तो भी यह इस बात को उचित नहीं समझती कि शिष्टाचार की ख़ातिर इस घोषणा-पत्र को प्रकट न किया जाय। क्योंकि मनुष्य की स्वाभाविक हार्दिक भावनाओं से भी एक बड़ी चीज़ है; और वह है अपने देश के प्रति मनुष्य का कर्त्तव्य। इस कर्त्तव्य के लिए हर एक नागरिक को अपना, अपनी भावनाओं का और दूसरों की भावनाओं का भी बलिदान कर देने का अधिकार है। इसी कठोर कर्त्तव्य से विवश होकर हम बिना विलम्ब किए आपके सामने अपना वक्तव्य पेश करना चाहते हैं, क्योंकि वर्तमान घटनाओं को देख कर हमें भविष्य में भयङ्कर हलचलों और ख़ून की नदियों के बहने का भय हो रहा है। इसलिए इस कार्य में विलम्ब करना किसी प्रकार उचित नहीं।

"कैथेराइन नहर पर जो रक्त-रञ्जित घटना (ज़ार का ख़ून) हुई है वह केवल संयोगवश अथवा अकस्मात नहीं

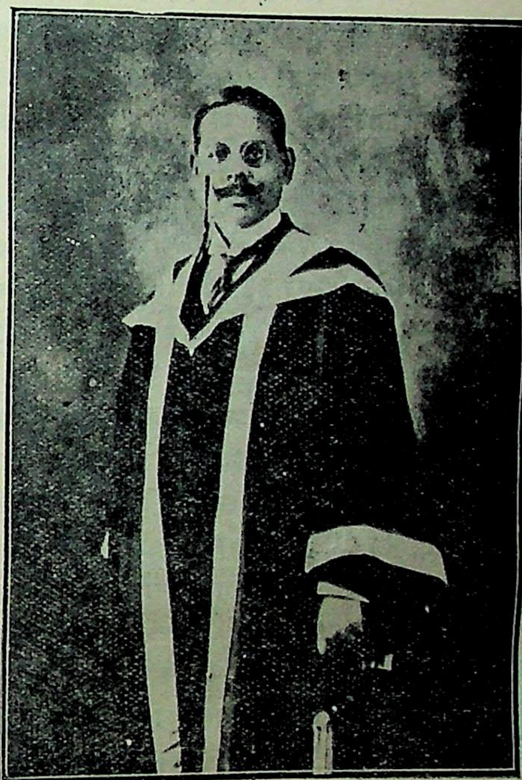
हुई थी और न उससे किसी को आश्चर्य हुआ। गत दस वर्षों के इतिहास को देखते हुए यह घटना अनिवार्य थी, और यही इसका वास्तविक महत्व है, जिसे भलीभाँति समझ लेना उस व्यक्ति का कर्त्तव्य है जो भाग्य-चक्र से एक राज्य के प्रधान-पद पर विराजमान हुआ है।

"केवल वही मनुष्य, जो कि सार्वजनिक जीवन के रहस्य को समझ सकने में सर्वथा असमर्थ है, इस प्रकार की घटनाओं को कुछ व्यक्तियों या एक गिरोह का अपराध बतला सकता है। पिछले दस वर्षों में क्रान्तिकारियों का कड़े से कड़े उपायों से दमन किया गया है, और इस उद्देश्य को सिद्ध करने के लिए भूतपूर्व ज़ार की गवर्नमेण्ट ने स्वाधीनता, समस्त जनता के हित, व्यापार, व्यवसाय और इतना ही नहीं, वरन् अपने आत्म-गौरव तक को तिलाञ्जलि दे दी थी। एक शब्द में कहा जाय तो गवर्नमेण्ट ने क्रान्तिकारी आन्दोलन को दबाने के लिए अपनी शक्ति भर सब उपायों से काम लिया, पर तो भी दबने के बजाय उसकी वृद्धि ही होती गई। रूस की सर्वोत्तम शक्तियाँ, वहाँ के सब से बढ़ कर कर्मशील और बलिदान के लिए प्रस्तुत व्यक्ति आगे बढ़े और इस दल में समा गए। इस प्रकार पूरे तीन वर्ष से यह दल गवर्नमेण्ट के साथ जी तोड़ कर युद्ध कर रहा है।

"बादशाह सलामत, आप इस बात को स्वीकार करेंगे कि भूतपूर्व ज़ार की गवर्नमेण्ट में क्रियाशीलता का अभाव नहीं था। निर्दोषी और दोषी समान रूप से फाँसी पर लटकाए गए और जेलख़ाने तथा कालापानी क़ैदियों से भर गए। नेता समझे जाने वाले दर्जनों व्यक्तियों को पकड़ कर मौत का दण्ड दिया गया। उन लोगों ने शान्तिपूर्वक और शहीदों के समान प्रसन्नता के साथ अपने प्राण दे दिए। पर इससे आन्दोलन रुक नहीं गया, वरन् इसके विपरीत बराबर बढ़ता गया और उसकी शक्ति भी अधिक हो गई।

"बादशाह सलामत, क्रान्तिकारी आन्दोलनों का आधार व्यक्तियों पर नहीं होता। यह समाज रूपी शरीर की एक क्रिया है, और वे मृत्यु-स्तम्भ, जिन पर इस क्रिया के करने वाले मुख्य प्रतिनिधियों को चढ़ाया जाता है, इसको रोक सकने में और इससे वर्तमान शासन-प्रणाली की रक्षा कर सकने में सर्वथा असमर्थ हैं।

"गवर्नमेण्ट जब तक चाहे लोगों को गिरफ़्तार कर सकती है और फाँसी पर चढ़ा सकती है, और सम्भव है कि वह किसी एक क्रान्तिकारी दल को दबाने में समर्थ हो जाय। हम यहाँ तक स्वीकार करने को तैयार हैं कि वह क्रान्तिकारी दल के मूल-सङ्गठन को भी नष्ट करने में शायद सफलता पा जाय, पर इससे परिस्थिति को नहीं बदला जा सकता। घटनाओं के फल से और समस्त जनता में फैले हुए घोर असन्तोष तथा आधुनिक सामाजिक आदर्शों के प्रति रूस-निवासियों के आकर्षण के कारण नवीन क्रान्तिकारियों का जन्म हो जायगा।



सर सुलतान अहमद ख़ाँ
(गोलमेज के सदस्य)

"कठोर उपायों द्वारा समस्त देश का दबाया जा सकना, और देश में फैले हुए असन्तोष को दबा सकना तो और भी असम्भव है। इसके विपरीत कठोर उपायों से लोगों की कटुता, क्रियाशीलता और शक्ति अधिक बढ़ती है। इससे स्वभावतः जनता का सङ्गठन मज़बूत होता जाता है और वे अपने अग्रगामियों के अनुभव से

लाभ उठाते हैं। इस प्रकार जैसे-जैसे समय बीतता जाता है, क्रान्तिकारी दल की संख्या और क्षमता बढ़ती जाती है। ठीक यही हमारा हाल है। गवर्नमेण्ट ने सन् १८७४ के 'डालसिजी' और 'किकोवजी' आन्दोलनकारियों का दमन करके क्या पाया? दल के भीतर अन्य नेता, जो उनकी अपेक्षा अधिक दृढ़ थे, उत्पन्न हुए और उनके स्थान पर काम करने लगे।

"गवर्नमेण्ट के १८७८ और १८७९ के दमन ने उग्र क्रान्तिकारी दल को जन्म दिया। सरकार ने कोवाल्सकी, डुबोविन, ओसीनिस्की, लिसगुब की हत्या की, कितने ही क्रान्तिकारी दलों को नष्ट कर डाला, पर इससे कोई काम न हुआ। विकासवाद के प्राकृतिक चुनाव के नियमानुसार हीन-सङ्गठन वाले दलों के स्थान पर उत्तम-सङ्गठन वाले दलों का जन्म होता गया। अन्त में यह कार्यकारिणी कमेटी उत्पन्न हुई, जिसके विरुद्ध गवर्नमेण्ट बिना किसी प्रकार की सफलता पाए अभी तक उद्योग कर रही है।

"अगर हम पिछले दुःखप्रद दस वर्षों पर निष्पक्ष भाव से दृष्टि डालें तो हम सहज में स्पष्ट रूप से जान सकते हैं कि अगर गवर्नमेण्ट अपनी नीति न बदले तो क्रान्तिकारी आन्दोलन का क्या भविष्य होगा। इसकी वृद्धि होगी, इसका विस्तार बढ़ता जायगा, उग्र-क्रान्तिकारियों के कार्यों की तरफ़ लोगों का ध्यान अधिकाधिक आकर्षित होने लगेगा, और क्रान्तिकारियों का सङ्गठन अधिक सर्वाङ्ग-पूर्ण और शक्तिशाली बनता जायगा। इस बीच में जनता के असन्तोष को बढ़ाने के लिए नए-नए कारण उत्पन्न होते रहेंगे और गवर्नमेण्ट पर से जनता का विश्वास निरन्तर कम होता जायगा। क्रान्ति का विचार, उसकी सम्भावना और उसकी अनिवार्यता बराबर जड़ पकड़ती जायगी।

"अन्त में एक भीषण स्फोट (धड़ाका), एक ख़ूनी क्रान्ति, और देशव्यापी उथल-पुथल के फल से प्राचीन प्रणाली का सदा के लिए नाश हो जायगा।

"बादशाह सलामत, यह एक बड़ी दुःखप्रद और भयङ्कर बात है। निस्सन्देह यह दुःखप्रद और भयङ्कर है। यह मत समझिए कि ये केवल शब्द हैं। हम किसी भी अन्य व्यक्ति से बढ़ कर अनुभव करते हैं कि इस नाश और ख़ून-ख़राबी में बहुत अधिक ज्ञान-शक्ति और कार्य-शक्ति का क्षय होगा। और यह बड़ी विपत्ति की बात होगी। इसी ज्ञान-शक्ति और कार्य-शक्ति का उपयोग अन्य प्रकार की परिस्थिति में लाभकारी कार्यों के लिए किया जा सकता था, इसके द्वारा सर्वसाधारण के ज्ञान की वृद्धि की जा सकती थी और सर्वसाधारण का बहुत कुछ हित-साधन हो सकता था।

"प्रश्न किया जायगा कि इस ख़ून-ख़राबी की आवश्यकता ही क्या है?

"बादशाह सलामत, इसका कारण यह है कि हमारे देश में एक न्यायशील—वास्तव में न्यायशील, गवर्नमेण्ट का अभाव है। गवर्नमेण्ट जिन मूल सिद्धान्तों पर आधार रखती है, उनके अनुसार उसका कर्तव्य है कि वह लोगों की आकांक्षाओं के प्रतिबिम्ब स्वरूप हो और लोगों की इच्छाओं को पूर्ण करना ही उसका ध्येय हो। पर यदि आप बुरा न मानें तो, हमारे यहाँ की गवर्नमेण्ट गुप्त चाल चलने वाले दरबारियों का एक गिरोह मात्र है। उसे यदि लुटेरों का दल कहा जाय तो भी कुछ अत्युक्ति नहीं है।

"बादशाह के निजी विचार कैसे भी हों, सरकारी अधिकारियों के कामों से जनता की आकांक्षाओं की पूर्ति और उसके हित का कोई आभास नहीं मिलता।

"रूस की गवर्नमेण्ट बहुत दिनों से लोगों की व्यक्तिगत स्वाधीनता का अपहरण कर चुकी है और उनको सरदारों या ज़मीन्दारों का ग़ुलाम बना चुकी है। अब वह सट्टेबाज़ों और ग़रीबों को लूटने वाले बोहरों की भी सृष्टि कर रही है। जितने सुधार किए जाते हैं, उनके फल-स्वरूप जनता की दशा पहले की अपेक्षा भी ख़राब होती जाती है। रूस की गवर्नमेण्ट ने साधारण जनता को ऐसा दरिद्र और दुर्दशाग्रस्त बना दिया है कि वह किसी सार्वजनिक हित के लिए भी स्वतन्त्रतापूर्वक उद्योग नहीं कर सकती और न ख़ास अपने घरों में होने वाले कलङ्कपूर्ण धार्मिक अन्यायों से अपनी रक्षा कर सकती है।

"केवल ख़ून चूसने वाले सरकारी अधिकारी, जिनको अपने पाप-कर्मों के लिए कोई सज़ा नहीं मिलती, गवर्नमेण्ट और क़ानून के द्वारा सुरक्षित रहते हैं और सुख भोगते हैं।

"इसके विपरीत एक ईमानदार आदमी को, जो सार्वजनिक हित के लिए परिश्रम करता है, क्या-क्या

यन्त्रणाएँ नहीं भोगनी पड़तीं ! बादशाह सलामत, आप स्वयम् अच्छी तरह जानते हैं कि जिन लोगों पर अत्याचार किए जाते हैं या जिनको देश-निकाला दिया जाता है, वे सब क्रान्तिकारी नहीं होते।

"यह किस तरह की गवर्नमेण्ट है, जो इस प्रकार देश में 'शान्ति' क़ायम रखती है? क्या यह वास्तव में लुटेरों का दल नहीं है?

"यही कारण है कि रूस में जनता के ऊपर गवर्नमेण्ट का कोई नैतिक प्रभाव नहीं है; यही कारण है कि रूस में इतने अधिक क्रान्तिकारी पाए जाते हैं; यही कारण है कि ज़ार के ख़ून जैसी घटनाओं को देख कर भी लोग केवल सहानुभूति प्रकट करके चुप हो जाते हैं। बादशाह सलामत, आप ख़ुशामदियों की बातों से भुलावे में न पड़ें। भूतपूर्व ज़ार की हत्या को लोगों ने बहुत अधिक पसन्द किया है।

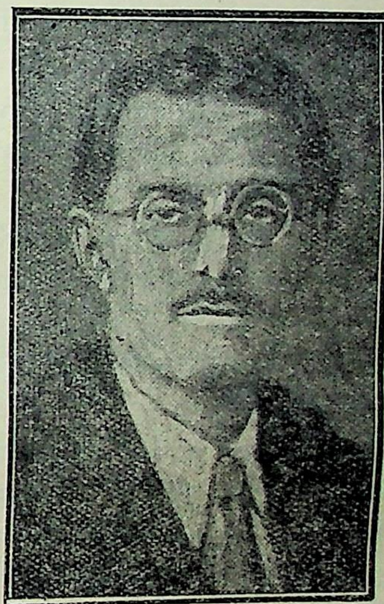
"इस दशा से छूटने के केवल दो ही मार्ग हैं। या तो राज्य-क्रान्ति होगी, जो कि लोगों को फाँसी पर चढ़ाने से स्थगित नहीं की जा सकती है, न रोकी जा सकती है। अथवा बिना विलम्ब देश की सर्वोच्च सत्ता जन-साधारण के सुपुर्द कर दी जाय, जिससे वे शासन-सञ्चालन में भाग ले सकें।

"देश-हित की दृष्टि से और ज्ञान-शक्ति तथा कार्य-शक्ति के निरर्थक क्षय और उन भयङ्कर घटनाओं को रोकने के लिए, जो कि राज्य-क्रान्ति के साथ सदैव हुआ करती हैं, कार्यकारिणी कमेटी श्रीमान के सम्मुख यह वक्तव्य पेश करती है और आपको सम्मति देती है कि आप दूसरे मार्ग का अवलम्बन करें। आप यह विश्वास रक्खें कि जिस दिन से सचमुच सर्वोच्च-सत्ता (ज़ारशाही) की निरङ्कुशता का अन्त हो जायगा और वह सचमुच यह दिखला देगी कि उसने अब केवल जनता की इच्छा और आन्तरिक कामना के अनुसार कार्य करने का दृढ़ निश्चय कर लिया है, उसी दिन से आपको अपनी ख़ुफ़िया पुलिस से छुटकारा मिल जायगा, जो कि गवर्नमेण्ट की बदनामी का कारण है; आप अपने शरीर-रक्षकों को बारकों में वापस भेज सकेंगे; और फाँसी के स्तम्भों को जला सकेंगे, जिनसे जनता का नैतिक पतन होता है।

"तब यह कार्यकारिणी कमेटी भी बिना विलम्ब अपनी कार्रवाइयों को बन्द कर देगी और उसने जिन शक्ति और साधनों का संग्रह किया है उनको वह आज़ाद कर देगी जिससे वे सभ्यता और संस्कृति का प्रचार और जनता के कल्याण के अन्य उपयोगी कार्य कर सकें।

"तब एक शान्तिमय विचार-संग्राम का श्रीगणेश होगा, और रक्त-रञ्जित आन्दोलन का अन्त हो जायगा, जो कि हमको आपके सेवकों की अपेक्षा अधिक नापसन्द है और जिसको हमने केवल आवश्यकता से विवश होकर ग्रहण किया है।

"हम पुरानी घटनाओं से उत्पन्न पक्षपात और अविश्वास को त्याग कर, श्रीमान के सामने यह वक्तव्य



श्री० के० एफ़० नरीमैन

(बम्बई के प्रचण्ड उत्साही और निर्भीक राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता—जेल में)

पेश करते हैं। हम इस बात को भुला देंगे कि आप एक ऐसी सत्ता के प्रतिनिधि हैं, जिसने लोगों को छला है और बहुत अधिक हानि पहुँचाई है। हम आपको एक नागरिक भाई और ईमानदार आदमी की तरह मान कर आपके सामने यह वक्तव्य पेश करते हैं।

"हम आशा करते हैं कि व्यक्तिगत रोष का भाव आपके कर्तव्य-भाव अथवा सत्य की जिज्ञासा को दबा नहीं सकेगा।

"हम भी रोष कर सकते हैं। आपको अपने पिता से वञ्चित होना पड़ा है। पर हमको न केवल अपने पिताओं,

वरन् भाइयों, पत्नियों, बेटों और आत्मीय मित्रों से भी वञ्चित होना पड़ा है। तो भी हम समस्त व्यक्तिगत द्वेष को भूल जाने को तैयार हैं, अगर रूस के कल्याण के लिए वैसा करने की आवश्यकता हो, और हम आपसे भी इसी प्रकार की आशा रखते हैं।

"हम आपके सामने किसी तरह की शर्तें पेश करना नहीं चाहते। क्रान्तिकारी आन्दोलन का अन्त होकर उसके स्थान में शान्तिमय विकास का आरम्भ होने के लिए जिन शर्तों की आवश्यकता है, वे हमारे द्वारा निश्चित नहीं की गई हैं, वरन् घटनाओं ने उनको जन्म दिया है। हम केवल यहाँ पर उनको लिपिबद्ध कर देते हैं। हमारी सम्मति में इन शर्तों का आधार इन दो मुख्य-बातों पर है।

"सब से प्रथम समस्त राजनीतिक क़ैदियों को राजाज्ञा द्वारा छोड़ दिया जाय। क्योंकि इन लोगों ने कोई अपराध नहीं किया है, केवल नागरिक की हैसियत से अपने कर्तव्य का पालन किया है।

"दूसरी बात यह है कि समस्त जनता के प्रतिनिधियों की एक सभा की जाय और उसमें निश्चय किया जाय कि किस प्रकार का सर्वश्रेष्ठ सामाजिक और राजनीतिक सङ्गठन जनता की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं के अनुकूल हो सकता है।

"पर साथ ही हम यह बतला देना भी आवश्यक समझते हैं कि जनता के प्रतिनिधियों द्वारा शासन-सत्ता का नियमन उसी दशा में हो सकता है जब कि चुनाव बिना किसी प्रकार के दबाव के हो। इसलिए चुनाव के पूर्व नीचे लिखी शर्तों का पूरा किया जाना आवश्यक है:—

(१) शासन-सभा के सदस्यों का चुनाव बिना किसी प्रकार के भेद-भाव के जनता की समस्त श्रेणियों द्वारा और नागरिकों की संख्या के अनुपात के अनुसार हो।

(२) शासन-सभा के उम्मेदवारों और वोटरों के सम्बन्ध में किसी प्रकार की शर्त न लगाई जाय।

(३) चुनाव और चुनाव के लिए आन्दोलन पूर्णतया स्वाधीनतापूर्वक हो और इसलिए सरकार शासन-सभा के चुनाव से पहले स्थायी रूप से ये आज्ञाएँ दे:—

(क) अख़बारों की पूर्ण स्वाधीनता।

(ख) भाषणों की पूर्ण स्वाधीनता।

(ग) सार्वजनिक सभाओं की पूर्ण स्वाधीनता।

(घ) चुनाव सम्बन्धी वक्तव्यों की पूर्ण स्वाधीनता।

"केवल इन्हीं उपायों द्वारा रूस शान्तिमय और नियमानुकूल उन्नति के मार्ग पर अग्रसर हो सकता है। हम अपने देश और समस्त संसार के सामने प्रतिज्ञा करते हैं कि ऊपर लिखी शर्तों के अनुसार जिस राष्ट्रीय शासन-सभा का सङ्गठन होगा, उसके सामने हमारी पार्टी बिना किसी प्रकार की शर्त के आत्म-समर्पण कर देगी और राष्ट्रीय शासन-सभा जिस प्रकार के शासन का निर्णय कर देगी उसका ज़रा भी विरोध न करेगी।

"बादशाह सलामत, अब आप जो उचित समझें, निर्णय कर सकते हैं। हम अपने हृदय में यही आशा करते हैं कि आपका न्याय-भाव और आपका विवेक आपको वही निर्णय करने की सम्मति देंगे जो कि रूस के कल्याण के, आपके बड़प्पन के और देश के प्रति आपके कर्तव्य के अनुकूल हो।

—कार्यकारिणी कमेटी
१२ मार्च, १८८१"

यही क्रान्तिकारियों की माँग थी, जो उन्होंने एक एक बार नहीं, अनेक बार गवर्नमेण्ट के सामने पेश की। इसमें उन्होंने अपने लिए कोई ख़ास अधिकार नहीं माँगे थे, वरन् उनका एक मात्र कथन यह था कि जनता का शासन जनता की सम्मति द्वारा हो। आजकल संसार का कोई सभ्य मनुष्य अथवा सभ्य गवर्नमेण्ट इसे अनुचित अथवा अवैध नहीं बतला सकती। पर, ज़ार की गवर्नमेण्ट ने इसका क्या जवाब दिया? अनेकों लोगों को फाँसी; हज़ारों को कालापानी, अख़बारों और समस्त उदार विचारों का दमन। सत्ता के मद में चूर होकर उसने कार्यकारिणी कमेटी के सदुपदेशों को पागलों का बकवाद समझा, और ख़याल किया कि वह अपनी असीम शक्ति के द्वारा विद्रोही दल का मूलोच्छेद कर देगी। उसे इस कार्य में बहुत कुछ सफलता भी हुई और उसने अनगिनती देश-भक्तों को अपने ज़बर्दस्त पञ्जे से पीस डाला, पर उनके स्थान में नए और अधिक भीषण लोगों का जन्म होता गया। अन्त में कार्यकारिणी कमेटी की भविष्यवाणी अक्षरशः सत्य सिद्ध हुई और ३६ वर्ष बाद ज़ारशाही शासन का ही नहीं, वरन् ज़ार और उसके वंश के बच्चे-बच्चे का नाम-निशान मिट गया।



ब्राह्मणत्व का नाश

[प्रोफ़ेसर चतुरसेन जी शास्त्री]



मेरी यह खुली राय है कि जब तक ब्राह्मणत्व का जड़-मूल से नाश न हो जायगा, तब तक हिन्दू-राष्ट्र का सङ्गठन होना किसी भी भाँति सम्भव नहीं। ये शब्द बहुत कठोर हैं, परन्तु आज २१ वर्ष से मैं इन्हें छाती में छिपाए बैठा हूँ। ये शब्द मैं दुनिया—ख़ासकर हिन्दू-समाज—के सम्मुख रक्खूँ या नहीं—इसकी विवेचना मैंने बड़ी ही बेचैनी से गत १० वर्षों में की है। मेरे ये शब्द नए, भाव कठोर और कानों को असह्य हो सकते हैं—परन्तु ऐ हिन्दू जाति के बुद्धिमान भाइयो! ज़रा इस बात पर तो विचार करो, कि जो जाति की जाति यह दावा करे, कि हम चाहे जैसे भी मूर्ख, पाखण्डी, धूर्त, नीच, शराबी, व्यभिचारी, लम्पट, ख़ूनी, कलङ्की, चोर, लुटेरे, क़साई और विश्वासघाती एवं ग़ुलाम-चाकर हों; किन्तु फिर भी संसार के मनुष्य भर में सब से श्रेष्ठ और सभी के वन्दनीय हैं; यह श्रेष्ठता हमारा जन्म-अधिकार है; और हमसे भिन्न अन्य कोई भी मनुष्य, चाहे जैसा श्रेष्ठ, विद्वान, सदाचारी, धर्मात्मा, त्यागी, तपस्वी हो—वह हमसे निकृष्ट ही है—उसके प्रति उपरोक्त घृणा न प्रकट की जाय तो किया क्या जाय?

किसने हिन्दू जाति को दिमाग़ी ग़ुलामी में फँसा कर इस लोक और परलोक के स्वार्थों की स्वतन्त्र चिन्तना के अधिकार छीन लिए हैं? इसी ब्राह्मणत्व ने! किसने असंख्य अन्ध-विश्वासों और ढकोसलों की सृष्टि करके हिन्दू जाति को प्रपञ्ची बनाया है? इसी ब्राह्मणत्व ने! किसने स्वर्गों-नरकों के झूठे मनोरञ्जक और भयानक बच्चों के से क़िस्से बना कर पुनर्जन्म के दार्शनिक सिद्धान्तों पर दूर तक विचार करने वाली आज दिन हमारी सन्तान को कुसंस्कारी और वहमी बना दिया? इसी ब्राह्मणत्व ने! किसने हिन्दू समाज को ऊँच-नीच, छुआछूत का भेद सिखा कर संसार की महाजातियों के मन में विरक्ति उत्पन्न की? ब्राह्मणत्व ने! किसने यन्त्र-तन्त्र, गण्डे-तावीज़, ढोंग, पाखण्ड, झूठ और अन्ध-विश्वासों की भावना को हिन्दू-सन्तान की नस-नस में भर दिया? ब्राह्मणत्व ने! किसने दान और यज्ञों के पाखण्ड और माहात्म्यों के थोथे आडम्बर में बड़े-बड़े चक्रवर्ती राजाओं से व्यर्थ दिग्विजय और अश्व-रक्षा में रक्तपात और लूट-पाट करा कर सर्वस्व दक्षिणा में दे देने की बेवक़ूफ़ी सिखाई? ब्राह्मणत्व ने! किसने आज भी हिन्दू-जाति को कस कर पकड़ रक्खा है और नहीं उभरने देता? ब्राह्मणत्व ने! आज मैं ऐसे असंख्य विद्वान, सदाचारी, देश-सेवक और योग्य पुरुषों को बता सकता हूँ कि जिनकी बारह आना योग्यता इसलिए निकम्मी हो गई है, कि वे दुर्भाग्य से इस ब्राह्मणत्व के बोझ से दबे हुए हैं। ब्राह्मणत्व के बनाए हुए नियम, ग्रन्थ, विश्वास हिन्दू-समाज को पद-पद पर कायर, मूर्ख और मग़रूर बनाए हुए हैं!!

मध्यकाल में ब्राह्मणत्व का राजसत्ता पर असाध्य अधिकार था। और जन-समाज उनके विधान के आगे सिर न उठा सकता था। मनु आदि स्मृतियों में, जो वास्तव में तत्कालीन शासन-विधान की पुस्तकें थीं, ब्राह्मणत्व के प्रति अत्यन्त घृणास्पद पक्षपात प्रदर्शित किया है। जिस अपराध पर अन्य जाति के किसी भी पुरुष को प्राण-दण्ड देना चाहिए, उस दण्ड पर ब्राह्मण को केवल कुछ रुपए जुर्माने कर देने चाहिए! मनु के पक्षपातपूर्ण वर्णन तो देखिए—

"पृथ्वी पर ब्राह्मण का जन्म लेना ही श्रेष्ठ होता है। वह सब प्राणियों का स्वामी और धर्म का रक्षक है।" अ० १; श्लोक ९९।

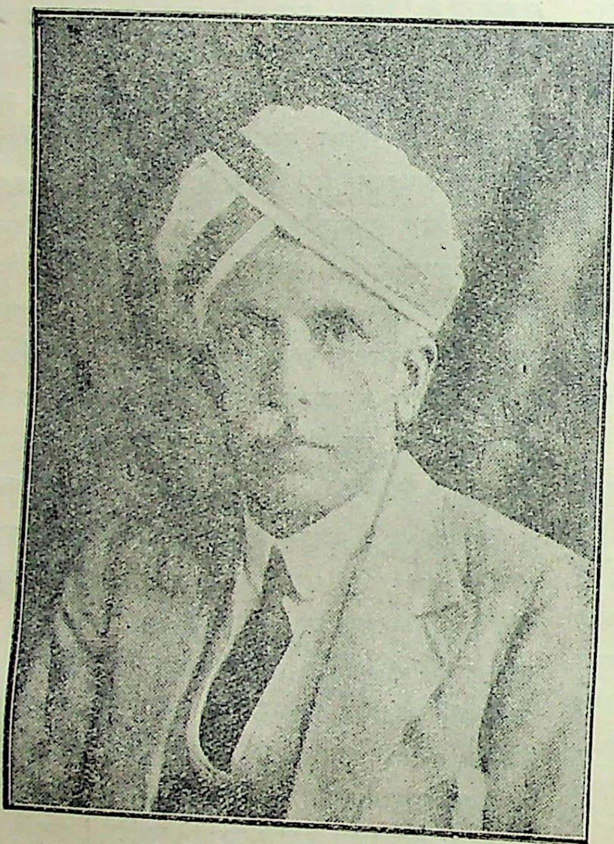
"जगत में जो कुछ है—वह सब ब्राह्मण का है, वह श्रेष्ठ होने के कारण सबको ग्रहण करने का अधिकारी है।" अ० १; श्लोक १००।

"ब्राह्मण चाहे दान में प्राप्त किया अन्न खाय और वस्त्र पहने—यह वस्तुएँ उसकी अपनी ही हैं। और अन्य पुरुष चाहे अपना ही अन्न खाय या वस्त्र पहने, वे ब्राह्मणों का दिया खाते हैं।" अ० १; श्लोक १०१।

"विद्वान हो या मूर्ख, ब्राह्मण तो महान देवता ही है, अग्नि चाहे यज्ञ की हो या साधारण—वह देवता तो है ही।" अ० ६; श्लोक ३१७।

"जुर्माने में प्राप्त किया तमाम राज-ख़ज़ाना ब्राह्मण को और राज्य, पुत्र को देकर राजा युद्ध में प्राण त्यागे।" अ० ६; श्लोक ३२३।

"प्राणान्तक दण्ड के स्थान में ब्राह्मण का सिर मूँड़ देना ही काफ़ी है। पर औरों को प्राण-दण्ड ही देना चाहिए।" अ० ८; श्लोक ३७६।



रावबहादुर रामचन्द्रराव
(गोलमेज़ के सदस्य)

"ब्राह्मण चाहे सब पापों में स्थित हो, फिर भी उसका बध करना उचित नहीं। उसे सब धन सहित और शरीर-दण्ड-रहित राज्य से निकाल दे।" अ० ८; श्लोक ३८०।

क्या कोई भी बुद्धिमान इस प्रकार के पक्षपातों को न्याय का घातक मानने से इनकार कर सकता है? इतिहास में इस बात के रोमाञ्चकारी प्रमाण हैं कि किस प्रकार ब्राह्मणत्व की सत्ता की ओट में अत्याचार और अन्यायाचरण किए गए हैं। राजा हरिश्चन्द्र को राज्य और उसे स्त्री-पुत्रों तक को बेचने और स्वयं भङ्गी की दासता तक करने को विवश करना—फिर भी कठोरता का त्याग न करना, प्रसिद्ध घटना है! आज लचावधि प्राणी हरिश्चन्द्र की सत्यनिष्ठा और दान-धर्म की प्रशंसा में आँसू बहाते और धन्य-धन्य करते हैं, परन्तु कोई भी उस निष्ठुर, स्वार्थी भिक्षुक के प्रति तिरस्कार के वाक्य नहीं कहता। कवि ने उस निष्ठुरता को इन्द्र आदि की कल्पना से मिला कर धर्म-परीक्षा का स्वरूप दिया है! परन्तु आज हिन्दू घरों में ऐसे अन्ध-विश्वासी बच्चे नहीं पैदा होते, जो इन्द्र, देवता, अप्सरा और मृतक बालक के जी जाने, एवं नगर सहित हरिश्चन्द्र को स्वर्ग-लोक जाने की कोरी कल्पना को सत्य घटना से पृथक न कर सकें। ये कल्पनाएँ यदि निकाल दी जायँ तो कथा सिर्फ़ इतनी ही रह जाती है कि विश्वामित्र ने राजा से दान माँगा, राजा ने स्वभावानुसार यथेच्छ माँगने को कहा। विश्वामित्र ने समस्त राज्य माँगा, और वह दे दिया गया। परन्तु दान लेकर कोई ब्राह्मण अहसानमन्द नहीं होता। वह तो मानो ब्राह्मण पर भार है, वह उस भार उठाने की मज़दूरी दक्षिणा चाहता है। मानो ब्राह्मण को केवल दक्षिणा ही मिलती है और उसीके लोभ से वह दान का भार उठाता है। परन्तु दान लेने में ब्राह्मण का कुछ लाभ नहीं है—दाता का ही परलोक बनता है। इसलिए विश्वामित्र दक्षिणा माँगते हैं, और राजा को जो ज़िल्लत उठानी पड़ती है—वह प्रकट ही है!

इस कथानक के दूसरे पहलू पर क्या हम विचार नहीं कर सकते? राजा ने जो कष्ट भोगे और ज़िल्लत उठाई—वह तो प्रकट है। पर बिना ऐसे पवित्र राजा के प्रजा की क्या दशा हुई होगी—इस पर तो विचारिए। परन्तु भिक्षुक के इस असाध्य अधिकार को तो देखिए कि जिस धैर्य से उसके अत्याचार हरिश्चन्द्र ने सहे, उसी धैर्य से आज तक लाखों वर्ष से हिन्दू संस्कृति ने सहे और उसके विरुद्ध चूँ भी न की। कदाचित इस कर्म के लिए इस

धृष्ट भिक्षुक की धर्षणा करने वाला मैं ही पहला व्यक्ति हूँगा, जिस पर यह लेख पढ़ते-पढ़ते लाखों आँखें क्रोध से लाल हो जावेंगी !

पर मुझे विचार तो यह करना है कि क्या इतनी नम्रता से राज्य-दान कर देना हरिश्चन्द्र को उचित था और उसे क्या इसका अधिकार था ? राज्य तो राजा की सम्पत्ति नहीं, वह तो राष्ट्र की सम्पत्ति है ; राजा उसका रक्षक और व्यवस्थापक है । वह प्रजा से धन लेकर कोष में सञ्चित करता है—इसलिए कि उसे प्रजा के सर्वहित-कारी कार्यों में ख़र्च करे, न कि इसलिए कि उसे मूर्ख भावुक की भाँति भिखारियों को दे दे । फिर वे भिखारी चाहे विश्वामित्र जैसे ऋषि ही क्यों न हों । हमें पुराणों के पढ़ने से पता लगता है कि अन्त में वह समय आया था कि बुद्धिमानों ने बलपूर्वक इस बात का निर्णय किया कि राजकोष राजा की सम्पत्ति नहीं है और उसे दान कर देने का या लुटा देने का राजा को कोई अधिकार नहीं है । मैं हैरान तो इस बात पर हूँ कि जो राजा इस प्रकार दान देने में शेख़ी समझते थे और जिनके द्वार पर ब्राह्मणों की भीड़ बनी रहती थी, वे राज्य की व्यवस्था सुधारने में क्या व्यय करते थे । और आज जब हम देखते हैं कि हमारी प्रबल गवर्नमेण्ट से लेकर, साधारण रियासत के अधिकारी तक, सदैव रुपए की तङ्गी से यथेष्ट सड़क, नहर, प्रबन्ध आदि की व्यवस्था नहीं कर सकते, तो वे कहाँ से इतना धन प्राप्त करते होंगे कि इन निठल्लों को भी मुँह-माँगा दें और राज्य-प्रबन्ध भी करें ?

पर सब से अधिक सोचने की बात तो यह है कि राजा हरिश्चन्द्र और उन जैसे अनेकों धर्मात्मा क्षत्रियों के मन में इस प्रकार दान देने की भावना ही कैसे पैदा हुई ? हमारे पास इसका एक ही उत्तर है कि ब्राह्मणत्व ने उनके मस्तिष्क को ग़ुलाम बना दिया और वे इसके विरुद्ध सोच ही नहीं सकते थे कि यह एक परम प्रशंस-नीय और राजाओं को शोभा देने योग्य कार्य है ।

अब मैं ब्राह्मणत्व की सर्व-श्रेष्ठता पर भी ज़रा विचार करना चाहता हूँ । जन्म के अधिकारों की बात ज़रा पीछे छोड़ दी जाय । गुण-कर्मों पर मैं विचार किया चाहता हूँ । आमतौर से यह कहा जाता है कि ब्राह्मण का अर्थ है—"ब्रह्म का जानने वाला ।" मेरा कथन यह है कि उनका यह अर्थ सर्वथा भ्रमपूर्ण है । ब्रह्म को जानने वाला ब्रह्मज्ञ कहलाता है, ब्राह्मण नहीं ! उपनिषदों और अन्य प्राचीन ग्रन्थों को देखने से हमें यह पूर्ण रीति से विश्वास हो गया है कि ब्राह्मण प्राचीन काल में ब्रह्म-विद्या से अनभिज्ञ थे । ब्रह्म-विद्या के जानकार तो क्षत्रिय लोग थे और वे यत्नपूर्वक ब्राह्मणों से यह विद्या छिपाया करते थे, जैसा कि उपनिषदों से प्रकट है । यहाँ हम इस विचार की पुष्टि में छान्दोग्य उपनिषद का प्रमाण देते हैं ।



महाराज दरभङ्गा
(गोलमेज़ के सदस्य)

"श्वेतकेतु आरुणेय, पाञ्चालों की एक सभा में गया । वहाँ प्रवाहन जैवलि राजा ने उससे पाँच प्रश्न किए, पर वह एक का भी उत्तर नहीं दे सका—क्योंकि यह ब्रह्म-विद्या सम्बन्धी प्रश्न थे । तब वह लज्जित होकर अपने पिता के पास आया और बोला कि उस राजन्य ने मुझसे पाँच प्रश्न किए, पर मैं एक का भी उत्तर

न दे सका ! उसका पिता गौतम बोला—"हे पुत्र ! इस विद्या को तो मैं भी नहीं जानता।" तब वह पुत्र की सम्मति से समिधा हाथ में लेकर शिष्य की भाँति राजा के पास गया और कहा कि आप मुझे ब्रह्म-ज्ञान सिखाइए। तब राजा ने उसे ज्ञान दिया, और कहा—"हे गौतम, यह ज्ञान तुम्हारे पहिले किसी दूसरे ब्राह्मण को प्राप्त नहीं था—ब्राह्मणों में सब से प्रथम मैं तुम्हीं को यह विद्या सिखाता हूँ। क्योंकि यह विद्या क्षत्रिय जाति की ही है।" (छान्दोग्य उपनिषद ५।६)

मेरे अभिप्राय को प्रगट करने के लिए यह अकेला ही उदाहरण यहाँ यथेष्ट है। अब मनुस्मृति के वर्णित ब्राह्मणों के लक्षण सुनिए :—

वेद पढ़ना-पढ़ाना; दान लेना और देना ; यज्ञ करना और कराना—ये ब्राह्मण के लक्षण हैं। अब ज़रा ग़ौर करके देखा जाय कि इनमें मनुष्य जाति में सर्वश्रेष्ठ होने योग्य कौन सा गुण है। लज्जा की बात तो यह है कि दान लेना भी गुणों में समझा गया है। जबकि कोई भी आत्माभिमानी किसी का दान नहीं स्वीकार कर सकता। परन्तु अधिक से अधिक वेद पढ़ना ऐसा गुण हो सकता है, जो ब्राह्मणत्व की प्रतिष्ठा बढ़ावे। परन्तु इस वेद पढ़ने का मूल सिर्फ़ उन्हें कण्ठ याद रखना और उनके द्वारा भिन्न-भिन्न आडम्बरों के द्वारा यज्ञ रचना था—उनका अर्थ समझना नहीं।

गीता में जो ब्राह्मणत्व के लक्षण लिखे हैं, वे मनु की अपेक्षा कहीं उच्च हैं।

"शम, दम, तप, पवित्रता, क्षमा, सरलता, शास्त्र-ज्ञान, अनुभव-ज्ञान और आस्तिकता—ये ब्राह्मण के कर्म हैं।" गीता अ० १८; श्लोक ४२।

गीता-वर्णित गुणों से यह पता लगता है कि गीता का उद्गाता ब्राह्मणत्व को सुसंस्कृत करना चाहता था। यह ध्यान में रखने योग्य बात है कि वह ब्राह्मणत्व के ये स्वाभाविक कर्म बताता है।

अब क्या मैं यह पूछ सकता हूँ कि उत्कृष्ट मानवीय गुण हरिश्चन्द्र राजा में नहीं थे। यदि ब्राह्मणत्व श्रेष्ठ था तो क्यों राजा हरिश्चन्द्र को वह नहीं प्रदान किया गया ? क्या युधिष्ठिर, विदुर, श्रीकृष्ण, राम और भर्तृहरि आदि-आदि व्यक्ति शम, दम, त्याग, वैराग्य, ज्ञान की चरम सीमा में पहुँचे हुए पुरुष न थे ? परन्तु खेद की बात तो यह है कि वे ब्राह्मणत्व की अपेक्षा श्रेष्ठ स्वीकार ही नहीं किए गए।

मैं अभी आपको समझाऊँगा कि ब्राह्मणत्व की श्रेष्ठता में भेद क्या है। परन्तु मैं अब एक और उदाहरण आपको दूँगा। वह शतपथ ब्राह्मण का है। सुनिए :—

विदेह जनक की भेंट कुछ ऐसे ब्राह्मणों से हुई, जो अभी आए थे। ये श्वेतकेतु आरुणेय, सोमशुष्म सत्ययज्ञि और याज्ञवल्क्य थे। उसने उनसे पूछा—क्या तुम अग्निहोत्र करना जानते हो ? तीनों ब्राह्मणों ने अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार उत्तर दिया। पर ठीक उत्तर किसी का भी न था। याज्ञवल्क्य का उत्तर यथार्थ बात के बहुत निकट था। पर पूर्णतया ठीक न था। जनक ने उनसे ऐसा ही कह दिया और रथ पर चढ़ कर चल दिया।

ब्राह्मणों ने कहा—"इस राजन्य ने हमारा अपमान किया है।" याज्ञवल्क्य रथ पर चढ़ कर राजा के पीछे गया और उससे शङ्का निवारण की। (शतपथ ११।४।५) तब से जनक ब्राह्मण हो गया। (शतपथ ब्रा० ११।६।२१)

अब ज़रा इस बात पर तो ग़ौर कीजिए कि हरिश्चन्द्र जैसा धीर, त्यागी, उदार, सत्यव्रती और इन्द्रिय-विजयी चरम कोटि के गुण दिखा कर भी ब्राह्मणत्व को प्राप्त न हो सका, किन्तु जनक सिर्फ़ अग्निहोत्र की विधियाँ बता कर ब्राह्मण हो गया। बस ब्राह्मणत्व की असलियत यहीं खुल जाती है।

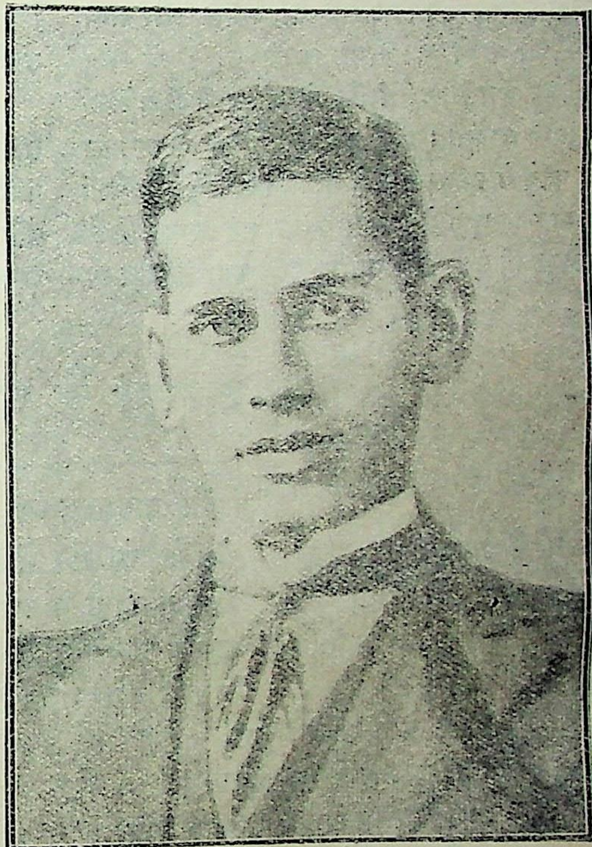
पुराणों में हमें कुछ ऐसे उदाहरण देखने को मिलते हैं, जिनसे पता लगता है कि कुछ लोगों ने ब्राह्मण बनने की चेष्टा की और उनका बड़ा भारी विरोध किया गया। परन्तु इस विरोध का कारण मैं ठीक-ठीक समझ गया हूँ—सिर्फ़ दक्षिणा-प्राप्ति की स्पर्धा थी। क्योंकि दान का माहात्म्य ही वास्तव में ब्राह्मणत्व का उत्पादक है। अस्तु।

अब विचारने की बात तो यह है कि आज ब्राह्मणत्व की हमें आवश्यकता है या नहीं—अर्थात् वह हिन्दू-समाज के लिए कुछ उपयोगी भी है या नहीं ? दूसरे उसमें संशोधन किया जाय या उसका नाश किया जाय ?

मैं प्रथम प्रश्न के उत्तर में यह दृढ़तापूर्वक कहूँगा कि इस समय और भविष्य में भी हिन्दू-समाज को

ब्राह्मणत्व को बिलकुल ज़रूरत नहीं है। इस समय पढ़ाने-लिखाने आदि गुरु का कार्य ब्राह्मण ही करे, इसका कोई प्रतिबन्ध नहीं है। चाहे भी जिस जाति का हिन्दू बच्चा, चाहे भी जिस जाति का शिष्य बन जाता है, यह स्कूल-कॉलेज में हम देखते ही हैं। अलबत्ता संस्कृत शिक्षा-पद्धति में अभी ब्राह्मणत्व की बू है! एक तो संस्कृत पढ़ने और पढ़ाने वाले दोनों ही प्रायः ब्राह्मण होते हैं, परन्तु ब्राह्मण गुरु अब्राह्मण छात्रों से और ब्राह्मण शिष्य अब्राह्मण गुरु से ग्लानि करते हैं—जो कि इस भाग्य-हीन जाति के उस झूठे गर्व का चिह्न है, जिसने उसे आज निकम्मी बना दिया है; फिर भी संस्कृत शिक्षा की परिपाटी तेज़ी से आधुनिक हो रही है और यह कट्टरता मिट जायगी। मैं यह भी आशा करता हूँ कि संस्कृत का सारा महत्व अति शीघ्र हिन्दी ले लेगी, और संस्कृत पढ़ने वाले छात्र आगामी १० वर्षों में बहुत कम रह जावेंगे। परन्तु ब्राह्मणों की सब से अधिक और अनिवार्य आवश्यकता तो धर्म-कृत्यों के लिए है। बिना ब्राह्मण के कोई भी संस्कार—शादी, ग़मी, गृह-प्रवेश, यात्रा आदि नहीं किए जाते। याजक, ज्योतिषी—और न जाने किस-किस रूप में ब्राह्मणत्व की आवश्यकता बनी ही रहती है। ब्राह्मण किसी भी घर में एक घण्टा किसी भी ग्रन्थ का जप कर जायगा और चवन्नी लेकर उसका महातम गृहपति को बेच जायगा। वह यज्ञादि कर जायगा और दक्षिणा ले जायगा! संस्कार करा जायगा और दक्षिणा ले जायगा। इस प्रकार धर्म-कृत्यों का फल बेचना कितना हास्यास्पद है? और किराए के व्यक्ति से गृह-कृत्य कराना भी कम से कम मैं तो नहीं पसन्द करता।

मैं अत्यन्त प्राचीन काल के आर्यों के जीवन का उदाहरण देकर बता सकता हूँ कि तब प्रत्येक गृह का प्रधान गृहपति ही उसका पुरोहित होता था और वही सबके संस्कार कराता था। अब भी यही किया जा सकता है। पुरोहित वह है, जो सब से प्रथम हित की बात सोचे। गृहपति को छोड़ और कौन ऐसा है? धर्म-विक्रेता?? छीः-छीः! आर्य-समाज ने इस बन्धन को डरते-डरते तोड़ा है—पर दिमाग़ी ग़ुलामी तो उसकी भी बपौती है, वहाँ जन्म के ग़ैर-ब्राह्मण व्यक्ति, जो साधारण संस्कार-विधि बाँच सकें और ज़रा ज़बाँदराज़ हों, पण्डित जी कहलावेंगे और दक्षिणा भी लेंगे—यह मैंने देखा है। यह तो वही बात हुई। प्रथम उनका ब्राह्मणत्व पैदा कर दिया गया! मैं ब्राह्मणों का विरोधी नहीं, ब्राह्मणत्व का हूँ, यह याद रखने की बात है। मैं तो यह चाहता हूँ कि प्रत्येक हिन्दू को अपने धर्म-ग्रन्थ, संस्कारों की रीतियाँ और मङ्गल कृत्य स्वयं जानने चाहिए। वे स्कूलों में भी अनिवार्य रीति से सिखाए जायँ। उनमें एक उत्सव की



डॉ० शफ़ात अहमद ख़ाँ

(गोलमेज़ के सदस्य)

गम्भीरता और विनोद तथा आनन्द की भावना हो। जब कभी आवश्यकता हो, संस्कार आदि में जो उपस्थित व्यक्तियों में सर्व-श्रेष्ठ पुरुष हो, पुरोहित के स्थान पर बैठा दिया जाय, और सिर्फ़ शिष्टाचार और सम्मान किया जाय। दान-दक्षिणा की परिपाटी नष्ट कर दी जाय। ऐसी दशा में और किसी काम के लिए ब्राह्मणत्व की आवश्यकता नहीं रहेगी। ब्राह्मणत्व अब ऐसी वस्तु ही

नहीं रही, जिसके बिना समाज का काम ही न चल सके। वह तो वक्त ही अब लौट कर नहीं आ सकता, जब ब्राह्मणों के अधीन राजाओं को महाराज और महाराजाओं को सम्राट बना देने की शक्ति थी! यदि इस समय ब्राह्मणत्व नष्ट कर दिया जाय तो छुआछूत, ऊँच और नीच, अन्ध-विश्वास और वाह्याडम्बर बिलकुल मिट जायँ।

ब्राह्मण यदि अपने को सर्व-श्रेष्ठ समझे और अन्य जातियों को अपने से नीचा समझे तो इसमें अन्य जातियों का क्या लाभ है? फिर वे भी अपने में से ऊँच-नीच चुनती जावेंगी। यदि ब्राह्मण क्षत्रिय के हाथ का भोजन करने से इनकार कर दे तो क्षत्रिय वैश्य और वैश्य शूद्र के हाथ का खाने से इनकार करेगा, यह परम्परा ही है।

अवश्य ही इन सब बातों के रहते यहाँ सङ्गठन तो नहीं हो सकेगा। और मैंने ख़ूब सोच-विचार कर देख लिया है कि हिन्दू-जाति को उठ कर खड़ी होने के लिए प्रथम बार जो उद्योग करना है—वह ब्राह्मणत्व का नाश कर देना है। इसलिए मैं यही अपनी खुली सम्मति रखता हूँ कि इसे जड़मूल से नष्ट कर दिया जाय। ब्राह्मण मित्रों, सम्बन्धियों और प्रियजनों एवं बुज़ुर्गों से हमारे वही प्रेम और आदर के सम्बन्ध बने रहने चाहिएँ—किन्तु धर्म-कृत्य या वे काम, जिनकी दक्षिणा होती है, उनसे कदापि ब्राह्मण के नाते नहीं कराने चाहिए।

ब्राह्मण-भोजन भी इनमें से एक कर्म है—शादी और ग़मी में प्रथम ब्रह्म-भोज होता है। ऐसा न होकर एक पंक्ति में प्रीति-भोज होना चाहिए। अलबत्ता दान-खाते यदि कुछ अन्न, वस्त्र अथवा धन देना हो तो अनाथालय, अस्पताल आदि संस्थाओं को वह दिया जा सकता है!

प्रेम करना है पापाचार!

[प्रोफ़ेसर रामकुमार वर्मा, एम० ए०]

प्रेम करना है पापाचार,
प्रेम करना है पाप-विचार!
जगत के दो दिन के ओ अतिथि!
प्रेम करना है पापाचार!!

प्रेम के अन्तराल में छिपी—
वासना की है भीषण ज्वाल!
इसीमें जलते हैं दिन-रात—
प्रेम के बन्दी बन विकराल!!

प्रेम की यह मतवाली चाह,
चाह ही है जग का सन्ताप!
सुखी कहते हैं, इसको पुण्य,
दुखी कहते हैं, इसको पाप!!

दुखी तो है सारा संसार,
यहाँ सुख है केवल अज्ञान!
नाम 'मधु' रख कर भर कर पात्र,
सभी करते हैं मदिरा पान!!

श्याम वारिदमाला अभिराम,
लिए अपना अनुराग उदार!
लिपट जाती है नभ से युक्त,
उसे जतलाने अपना प्यार!!

किन्तु, क्या है उसका परिणाम?
घोष कर उठता है नभ घोर!
तड़प उठता मण्डल उस बार,
काँप जाती वसुधा सब ओर!!

लिए अपने जीवन का कोष,
एक निर्झर झर-झर कर हार!
तरङ्गों के फैला कर हाथ,
सरस सरिता से करता प्यार!!

किन्तु उसका होता है पतन,
पतन ही में उसका जीवान्त!
यही है प्रेम, यही है प्रेम,
यही है मृत्यु, मृत्यु का प्रान्त!!

निशा करती है नियमित प्यार,
चन्द्र से मिल कर सौ-सौ बार!
अन्त में ओस-विन्दु में हाय,
बिखर जाता है उसका प्यार!!

प्रेम में है इच्छा की जीत,
और जीवन की भीषण हार!
न करना प्रेम, न करना प्रेम,
प्रेम करना है पापाचार!!



[श्री० जी० पी० श्रीवास्तव, बी० ए०, एल्-एल्० बी०]

तीसमार खाँ की हजामत

अङ्क १, दृश्य १

दारोगा तीसमार खाँ का मकान

(कल्लू चौकीदार का बड़बड़ाता हुआ आना)

कल्लू—आजौ कौनो ससुर नाऊ आवे के लिए नहीं राजी भवा। दरोगा जी के करम में डाढ़ी मुड़ावे के बदे नाहीं है। हमार कौन दोस? यही लायक हैं। इनके आगे मनई के कहे, कूकुरो नाहीं ठाड़ होत है। चौकीदारी करत हमरो उमिर बीत गइ। न जाने कितने दरोगा आए अउर गए; मुल दादा! इनके अस कौनो नाहीं रहे। अउर तो अउर! इनके बाप मदार-अली यही थाना के मुन्सी रहे तौनो अस आफती नाहीं रहे। वै बेचारे हमका कल्लू भइया छोड़, कब्बो दूसर लवज नाहीं कहिन। जब हुक्का पिए लागें तो सब से पहिले चिलम हमही का सुलगावे के देत रहे। अउर उनके पूत, जेहका हम कनैठी देत रहेन, तौन दरोगा होते हमही का जब सूअर-गदहा कहे लागे, तब हद होइ गवा! ऊ तो कहो हम इनके नस पहिचानित है, अउर बड़े हिकमत से चलित है। जेसे आबरू बच जात है; नहीं तो अब ताईं नोच खात। बस निबरे के मारे जानत हैं—करारे के नगीचे नाहीं जात हैं। नाव तो आपन तीसमार खाँव रक्खे हैं, मुल चोर बदमास के देखत इनका जूड़ी आवत है। अउर तेहा दिखावत हैं केह पर, जेह कर बापो कब्बो कोई पर हाथ न उठाइस हो। एही लोगन के बाँधत-पकड़त हैं। एही से आजकल इनके मन अउरो बहक गवा है। वह लो! ऐंठत आवत हैं, जानो फुरे तीसमार खाँव हैं!! समनवा से डोल जाईं, नाहीं एह साइत गर्भिथान होइहैं, देखते हमका हजार गारी देइहैं।

(जाता है)

(दूसरी तरफ़ से दारोगा तीसमार खाँ का परेशान आना)

तीसमार ख़ाँ—इन हरामियों के मारे खाना, पीना, सोना, सब हराम है। रोज़ ही दस-बीस का सर तोड़ता हूँ और दस-बीस को पकड़ कर जेलख़ाने भेजता हूँ, फिर भी जहाँ पीठ मोड़ी तहाँ फिर वही आवाज़ गूँज उठती है (चिल्ला कर)—"शराब पीना हराम है। विदेशी माल लेना हराम है × ×"

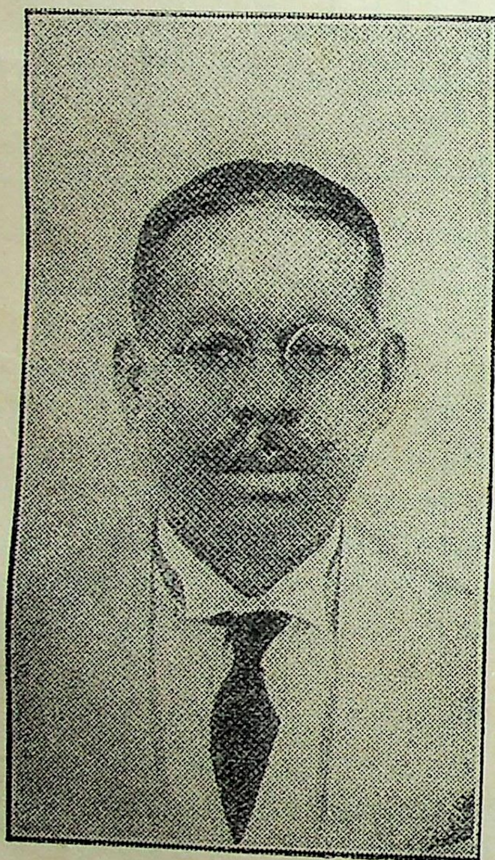
मुनुवा—(मकान से बाहर आकर) अब्बा जान आप हैं? अबे आप बी हलामी हो गए? छचमुच? (ताली बजाता हुआ) बाह! बाह! अब्बा हलामी! अब्बा हलामी!!

तीसमार ख़ाँ—अबे! अबे!! अबे!!! यह क्या?

मुनुवा—लहने दीजिए। मैंने छुन लिया है। आप बी हलामी हैं।

तीसमार ख़ाँ—क्यों बे बदमाश, मैं हरामी?

मुनुवा—पक्के हलामी। मैंने छुन लिया है। हाँ-हाँ मैंने छुन लिया है। आप अबी कहते थे छलाब पीना हलाम! बिदेछी माल लेना हलाम!! जो हलाम कहे हलामी। अब्बा हलामी। (ताली बजा कर) वाह! वाह! अब्बा हलामी!!!



सैयद सर सुलतान अहमद
(गोलमेज़ के सदस्य)

तीसमार ख़ाँ—(मुनुवा का कान पकड़ कर) हरामज़ादा सूअर का बचा, फिर नहीं मानता!

मुनुवा—(रोता हुआ) अले! अले! अले जो हलाम-हलाम चिल्लाते हैं, उनको तो आप लोज ही हलामी कहते हैं। मगल आपका कान कोई नहीं ऐंठता। हमाला काहे ऐंठते हैं? ऊँ ऊँ ऊँ—आप बले खलाब हलामी हैं!

तीसमार ख़ाँ—लाहौल बिलाक़ूवत! इस दलील का मन्तक़ में भी जवाब न होगा। अच्छा चुप रह, चुप रह। ले एक पैसा ले और ख़बरदार ऐसी बात फिर मत कहना।

मुनुवा—(पैसा लेकर) ओहो! तब तो आप बड़े अच्छे हलामी हैं। क्यों अब्बा?

तीसमार ख़ाँ—(मारने को झपटता हुआ) फिर वही बेहूदापन?

(मुनुवा भाग जाता है)

तीसमार ख़ाँ—(अकेला) जाने दो। ग़लती की, जो मैंने इसे पैसा दिया। मुझे मारना चाहिए था। ख़ैर! चौकीदार! चौकीदार!......साला जवाब तक नहीं देता। यह कम्बख़्त पुराना नौकर क्या है, अपने को लाट साहब समझता है। चौकीदार!

कल्लू—(पर्दे के पीछे से) आयन हजूर! तनी पगिया बाँध लेई।

तीसमार ख़ाँ—उफ़! ओ! इसकी गुस्ताख़ी से नाक में दम है। मैं तो चीख़ रहा हूँ और साले को पगड़ी बाँधने की पड़ी है। चौकीदार!

कल्लू—(पर्दे के पीछे से) आयन-आयन हजूर। थोड़े अउर सबुर करी।

तीसमार ख़ाँ—रह हरामज़ादे। आज तेरी सारी गुस्ताख़ी का मज़ा चखाता हूँ।

(गुस्से में जाता है। उसके बाद कल्लू जल्दी-जल्दी चिलम पीता हुआ भागता आता है और उसके पीछे तीसमार ख़ाँ मारने को झपटता हुआ आता है)

तीसमार ख़ाँ—(पीछा करता हुआ) क्यों बे सूअर के बच्चे! तू चिलम पीता था या पगड़ी बाँधता था?

कल्लू—(भागता हुआ) आपसे के कहिस रहा कि आप हमरे कोठरी में घुसुर के देखी कि हम चिलम पीइत है?

तीसमार ख़ाँ—और ऊपर से ज़बान लड़ाता है। ठहर तो ज़रा हरामी के पिल्ले।

कल्लू—(भागता हुआ) हजूर गरियावे के मन होय वइसे गरियाए लेयो। मुल नगीचे न आयो। नाहीं कहूँ हमरे हाथ से चिलम छूट जाई तो आपे के देहवाँ बरे लागी।

तीसमार ख़ाँ—(रुक कर) अररररर ! अच्छा चिलम फेंक दे।

कल्लू—(रुक कर) बहुत अच्छा हजूर (जिधर तीसमार ख़ाँ खड़ा होता है उसी तरफ़ फेंकने का इशारा करता है)

तीसमार ख़ाँ—अरे ! अरे ! इधर नहीं। (भाग कर दूसरी तरफ़ जाता है)

कल्लू—अच्छा तो ऐसी सही। (अब दूसरे तरफ़ फेंकना चाहता है)

तीसमार ख़ाँ—अबे...बे...बे...बे इधर नहीं, जल जाऊँगा।

कल्लू—आपे तो यहर-ओहर नाचित है हजूर। हम तो आपके घुड़की से अँधरियान हन। हमें ए साइत कहूँ कुछ सूझ पड़त है ? जब एहर फेकित है तब आप कहित है नाहीं, जब ओहर फेकित......

तीसमार ख़ाँ—हाँ-हाँ-हाँ, कहीं चिलम छोड़ न देना, मैं इसी तरफ़ खड़ा हूँ। ख़ूब मज़बूती से लिए रह।

कल्लू—का आपो पीयब ? पहिलवाँ काहे न बताएन। अच्छा लेई (चिलम आगे लिए बढ़ता है और तीसमार ख़ाँ घबड़ाया हुआ पिछड़ता है)

तीसमार ख़ाँ—अबे नहीं, नहीं, नहीं। दूर रह, दूर रह। ख़बरदार ! देख कहीं तेरे हाथ से छूट न जाय।

कल्लू—अरे ! तनी आप देखी तो। ख़ूब सुलगा है। आपके बाप मदारअली तो......

तीसमार ख़ाँ—चुप ! चुप ! चुप ! अब अगर बोलेगा तो मारे ढेलों के तेरी खोपड़ी तोड़ दूँगा। बस चुपचाप दूर खड़ा रह।

कल्लू—बहुत अच्छा हजूर।

तीसमार ख़ाँ—नाई बुलाने गया था ?

कल्लू—(चिलम फूँकता हुआ) जानो बुताय गा ! अब एका कहाँ रक्खे जाई। लाओ बाँध लेई। (कोयला फेंक कर चिलम को अपनी पगड़ी के सिरे में बाँध कर उस सिरे को अपनी कमर तक लटका देता है)

तीसमार ख़ाँ—अरे ! बताता क्यों नहीं ? गया था ?......अबे ओ पगड़ी की दुम बाँधने वाले हरामज़ादे, मैं तुझी से पूछता हूँ।...फिर नहीं सुनता ?

कल्लू—सुनित तो है।

तीसमार ख़ाँ—तो जवाब क्यों नहीं देता ?

कल्लू—कसस बोली ?

तीसमार ख़ाँ—क्यों ?

कल्लू—हमें आपन खोपड़ी तोड़ावे के सौक नाहीं है। आपे तो कहेन है कि बोलेयो तो खोपड़ी फूटी।

तीसमार ख़ाँ—(मारने को झपटता हुआ) हात तेरे बेईमान की ऐसी-तैसी......

कल्लू—अरे ! हजूर थमो-थमो-थमो।

तीसमार ख़ाँ—क्यों ? क्यों ? क्यों ?

कल्लू—गजब होय गवा ! अरे बाप रे, बाप रे बाप ! गजब होय गवा।

तीसमार ख़ाँ—(घबड़ा कर) क्या हुआ क्या ?



सर मिर्ज़ा मुहम्मद इस्माइल

(गोलमेज़ के सदस्य)

कल्लू—आप अस जोर से डपटेन कि हमरे घुमनी चढ़ गवा। हमार मूड़ घूमे लाग। अब रोके नहीं रुकत है। यह देखी।

(कल्लू तीसमार ख़ाँ के नज़दीक बड़े ज़ोर से घूमना शुरू करता है। और उसकी पगड़ी का चिलम बँधा हुआ सिरा घूमने से लम्बा होकर तीसमार ख़ाँ के बदन पर गदागद लगता है)

तीसमार ख़ाँ—अरे ! अरे ! यह कौन सी आफ़त आ गई। उफ़ ! खोपड़ी भिन्ना गई। हाय ! हाय ! पीठ टूट गई। अरे ! बाप रे बाप, मर गया।

(तीसमार ख़ाँ बचने के लिए इधर-उधर भागता है, मगर कल्लू भी हर बार उसीके पास बना रहता है)

तीसमार ख़ाँ—उफ़ ! उफ़ ! गर्दन-कन्धा सब ज़ख़्मी हो गए ! हाय ! हाय ! अबे दूर हट मरदूद । उफ़ ! मार डाला ।

कल्लू—का भवा ? का भवा सरकार ?

तीसमार ख़ाँ—(अपना बदन सहलाता हुआ) अब जो मेरे नज़दीक आएगा तो गोली मार दूँगा ।

कल्लू—अरे ! हम तो पहिलवें सिनहा कीन रहा कि हमरे नगीचे न आयो सरकार, मुल आपे तो कूद-कूद हमरे पास आइत है ।

तीसमार ख़ाँ—दूर हो कम्बख़्त । बदतमीज़ ! बेहूदा ! हट जा मेरी नज़रों के सामने से ।

कल्लू—बहुत अच्छा हजूर ।

तीसमार ख़ाँ—अबे ठहर । तूने नाई के बारे में कुछ नहीं बताया ।

कल्लू—(पलट कर आगे बढ़ता हुआ) भले चेत दिलायो सरकार !.........

तीसमार ख़ाँ—(पिछड़ता हुआ) अबे-अबे-अबे—बस दूर ही से बात कर । ख़बरदार ! इधर मत आना । हाँ वहीं से कह ।

कल्लू—अच्छा-अच्छा । मुल कही का आपन मूड़ । आप तो रोजे चलान कर-करके सहरिया भर उजाड़ दीन है । जो कोऊ बचा है तौन देखते हमका कूकुर अस दुरियावत है । कहत हैं कि चलो-चलो । जे ससुर बेगुनाहन के कैद करावे, निबरे के मारे, बिना गारी के बात न करे ऊ सारे के मुँह न देखे जाब । तब कहाँ से हम नाऊ लाई......

तीसमार ख़ाँ—अबे चुप मरदूद । तमीज़ से बातें कर, नहीं ज़बान पकड़ के खींच लूँगा ।

कल्लू—आपे तो पूछित है सरकार । हम का करी ?

तीसमार ख़ाँ—कौन कम्बख़्त ऐसा कहता है, बता तो सही ।

कल्लू—जेहके जीव पिरात है । जेहके काका-बाबा जेलखाना मा हन ।

तीसमार ख़ाँ—अबे गदहे, तुझे उन हरामज़ादों के पास किसने भेजा था ? तुझे तो मैंने नाई के पास जाने को कहा था ?

कल्लू—हाय ! दादा, देसवा भर तो रोवत है । नाऊ का कहूँ देसवा से अलग बसे हन ?

तीसमार ख़ाँ—उल्लू के पट्ठे ! हरामज़ादे !! सीधी तरह जवाब न देगा ? मैं पूछता हूँ नाई की बात और तो यह मरदूद बकने लगा अल्लम-गल्लम । ज़रा पाजीपन तो देखो !

कल्लू—हजूर नउवन के बात आप न सुनी । नाहीं मारे रिस के आप अउर अगियावैताल होय जाब । का कही वै लोग तो कहत हैं कि नउवे अब उनकर बार न बनइहैं । तब हम बोलेन कि हमरे सरकार के डाढ़ी कसस मूड़ी जाई । एह पर जवाब मिला कि झाँवा से मुँह रगड़ लें चिक्कन होइ जाय । हम कहेन वाह ! पन्द्रहयिन से डाढ़ी बाढ़ी है जस भटकटइया के झाड़ी । कहूँ झावाँ से साफ़ होए सकत है ? तब वे बोले दियासलाई बार के लगाय दो । बर जाए, छुट्टी मिले ।

तीसमार ख़ाँ—(मारने को झपटता हुआ) चुप बदतमीज़, बेहूदा, बदमाश... ..

कल्लू—(एकाएक घूमने लगता है) अरे ! अरे ! अरे ! फिरू घुमनी चढ़े लाग ।

तीसमार ख़ाँ—(पिछड़ता हुआ) ब...ब...ब...बस बस अबे ज़रा ठहर जा । ठहर जा ।

कल्लू—बहुत अच्छा सरकार, मुल जब आप खौखियाय के झपटित है तो हमार जीव मारे घबड़ई के चकराय उठत है । बस हम चकराघिन्नी काटे लागित है ।

तीसमार ख़ाँ—तब तू बेवक़ूफ़ी की बातें क्यों करता रहता है ? तूने उन बदमाशों को मारा क्यों नहीं ? जानता नहीं कि तीसमार ख़ाँ की शान में इस तरह कहना खेल नहीं है । सालों को एकदम......

कल्लू—जेहल पठाय देई । यही न ? यह तो बाएँ हाथ का खेल है । मुल एहसे वै लोग अब डेराते नहीं । यही तो मुसकिल है ।

तीसमार ख़ाँ—नहीं बे । एकदम तोपदम करा दूँ ।

कल्लू—काहे नाहीं । आपके बड़ा अखतियार है । साहब आपका बहुत मानत है । आप तो उनके अस नकुना के बार हन कि जो आप उनसे दिन कही तो दिन जानें रात तो रात मानें । तब्बे तो देसवा आपके नाव पर, का कही......

तीसमार ख़ाँ—फिर देश-देश बकने लगा, उल्लू का पट्ठा, तेरे देस की ऐसी-तैसी करूँ।

कल्लू—ऊ तो आप करते हव। मुल सरकार का यू हमरे देस है आपके न होय? आप हीयाँ नाहीं पैदा भयन हैं?

तीसमार ख़ाँ—चुप बदमाश। देश भाड़ में जाय या जहन्नम में, हमसे मतलब?

कल्लू—मतलब काहे नाहीं। देस महतारी-बाप कहा जात है। अपने दाना-पानी से पालत-पोसत है।

तीसमार ख़ाँ—अजब बेवक़ूफ़ है। जानता नहीं हम हाकिम हैं, अफ़सर हैं, देस क्या माँ-बाप को भी गोली मारते हैं।

कल्लू—फुरे कहेन। यह तो हम बिसर गैन रहा। तब तो आप गुसइयाँ का भी कुछू न समझित होबे। आपके बड़ा अख़तियार है।

तीसमार ख़ाँ—क्यों बे? यह क्या बकता है?

कल्लू—कुछू नाहीं। यही कहित है कि जे जस करत है वह वस कब्बो न पावत है।

तीसमार ख़ाँ—तेरा सर। उल्लू कहीं का। भला तीसमार ख़ाँ का भी कोई कुछ बिगाड़ सकता है, जिसके नाम से बड़ों-बड़ों के होश गुम हो जाते हैं।

कल्लू—यू न कही सरकार। आप तो पेड़े के पाता अस असमाने निहारित है। मुल जब पेड़े न रहि जाई तब पाता के कौन हवाल होई? आपे सोची। आज नाऊ बिना आपके डाढ़ी अपने करम पर रोवत है जो कहूँ नउवन के देखा-देखी भिस्ती, बबरची, दर्जी, धोबी, भङ्गी सभै आपसे मुँह मोड़ लें तो तीसमार खाँव अपने मूड़े पर आपन मैला लादे कसस कौनो पर तेहा दिखइहें—

तीसमार ख़ाँ—क्यों बे बदमाश, तू मुझको लेक्चर देता है। इतनी हिम्मत! ठहर जा अभी तेरा भी चालान करता हूँ।

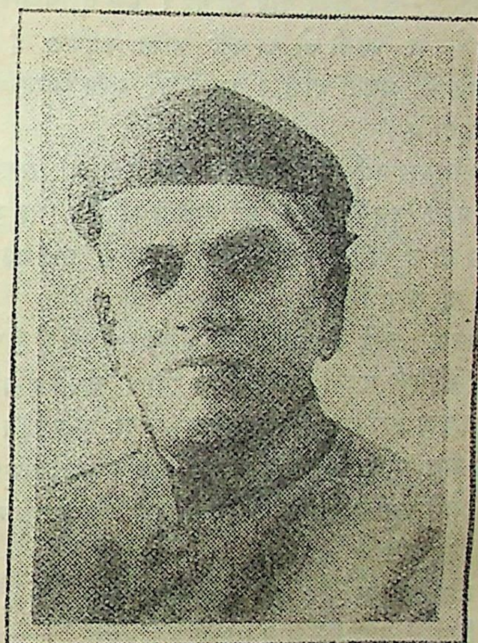
कल्लू—हमार चलान? काहे हजूर? हम कौन अपराध कीन है?

तीसमार ख़ाँ—जानता नहीं हरामज़ादे कि लेक्चर देना हमने जुर्म कर रक्खा है। अब बचा मेरे फन्दे से कहाँ निकल कर जा सकते हो? तेरी ऐसी-तैसी करूँ। बहुत दिनों से तूने सब को परेशान कर रक्खा था।

कल्लू—तो के लिचर दिहिस है? हम तो हजूर से साँच अउर नीक बात कहत रहेन।

तीसमार ख़ाँ—बस-बस, अपनी सफ़ाई अपने घर रख। अब आ गए बेटा तुम जुर्म के फन्दे में। सारी हेंकड़ी का मज़ा मिल जाएगा।

कल्लू—हाय दादा! आप साँचो बोलब आफत के दीन? दयू मुँह दिहिन है साँच बोले के लिए, तौनो में आप ताला लगाय दीन? अस जबरजस्ती? चोरी-बदमासी, लूट-मार तो जुलुम जानत रहेन, मुल नीक



महाराजा बड़ौदा

(गोलमेज़ के सदस्य)

बात कहब और साँच बोलब कौन ढङ्ग से जुलुम है, हम समझिन नाहीं पाइत है।

(बटेर ख़ाँ कॉन्स्टेबिल का आना)

तीसमार ख़ाँ—अभी समझ में आता है। ...कौन बटेर ख़ाँ? ख़ूब आए, बड़े मौक़े से आए। लो इस हरामज़ादे को फ़ौरन गिरफ़्तार करो।

बटेर ख़ाँ—इसे हज़ूर? यह तो बड़ा ही बेहूदा आदमी है। मैं इसकी ख़ुद शिकायत करने वाला था। यह जितना ही पुराना पड़ता जाता है, उतना ही गुस्ताख़ होता जाता है। सबों के नाक में दम किए हुए है।

इसकी गिरफ़्तारी का हुक्म निकाल कर हज़ूर ने सचमुच बड़ा काम किया।

कल्लू—यह देखो। थोड़ करें गाजी मियाँ बहुत करें डफाली। तब ससुर हीयाँ अन्धेर न मचे तो होय का?

बटेर ख़ाँ—देखिए हज़ूर इसकी बातें।

तीसमार ख़ाँ—अरे! यह बड़ा ही बदमाश है। यह कम्बख़्त लेक्चर देता था—और मुझको!

बटेर ख़ाँ—हाँ! ज़रूर देता होगा हज़ूर। देखिए खद्दर की धोती भी पहने हुए है।

कल्लू—तो तोइरे बाप का का? हम गरीब आदमी मोट-झोट न पहनी तो का कहूँ डाका डालित है कि मखमल के भगवा बाँधी। अपने घरे एका काता-बीना तो पहनी न?

तीसमार ख़ाँ—ग़ज़ब ख़ुदा का, यह तो सचमुच खद्दर पहने हुए है और ख़ुद बनाता भी है। यह मुझे मालूम ही न था। उफ़! ओ इस सूअर के बच्चे को तो फाँसी की सज़ा मिलनी चाहिए।

कल्लू—काहे? का पहिरबो-ओढ़बो जुलुम है? अस अन्धेर तो हम कब्बो नाहीं देखेन रहा। अपने हीयाँ के बना कपड़ा हम न पहिरे पाइब तो दादा कुछ दिन माँ अपने हाथ के पोई रोटियो खाब मुसकिल होइ जाई। आप लोगे यहू के जुलुम कै देब। नवा-नवा मनई नवा-नवा कानून!!

तीसमार ख़ाँ—(अपने कान उँगलियों से बन्द करके) उफ़! ओ! यह कमबख़्त तो फिर लेक्चर देने लगा। अरे बटेर ख़ाँ, इस हरामज़ादे को जल्दी गिरफ़्तार करो जल्दी! नहीं तो इसका लेक्चर कहीं असर न कर जाए।

बटेर ख़ाँ—अभी लीजिए। चल बे गिरफ़्तार हो जा।

कल्लू—तनी नकुना पर हाथ रख के बोलो। तोरे मेहरा की। हमहूँ का सुदेसी के बलमटेर होई कि हमका गिरिपतार होय के सौक़ है अउर हम कान दबाए चुपचाप गिरिपतार होय जाव? बस नगीचे आयो न। कहे देइत है। ऊ दिन भूल गयो जब भाँटा अस नानमून रह्यो और चौक में जुआ खेलत हम तूका पकड़ेन रहा और तोहार बाप डल्लू भिस्ती हमरे गोड़े गिरिन तब खाली दुई लात लगाय के तूका हम छाड़ दिया रहा। नाहीं तो तूका भला नौकरी मिलत और आज तू सिपाही होय के फ़ारसी भुँकतो है अउर हमरइ जड़ खोदत्यो?

तीसमार ख़ाँ—(कानों से अपनी उँगली हटा कर) बटेर ख़ाँ, क्यों यह क्या कहता है? गिरफ़्तार क्यों नहीं करते?

बटेर ख़ाँ—हज़ूर यह अपने को गिरफ़्तार नहीं करने देता। गाली दे रहा है। बिना गारद बुलाए इसका गिरफ़्तार करना ठीक नहीं है। आदमी बहुत सरकश है।

तीसमार ख़ाँ—आयँ! यह हुकुमअदूली करता है? अच्छा अभी जाकर मैं गारद भेजता हूँ। जब तक तुम इसकी निगहबानी करो।

(जाना चाहता है)

कल्लू—(बटेर ख़ाँ से) चियूँटी के मारे के लिए भल-तोप बताय दियो। अच्छा इनका जाय दो तब बताइत है।

बटेर ख़ाँ—(तीसमार ख़ाँ को दौड़ कर रोकता हुआ) अरे! हज़ूर आप तकलीफ़ न करें, मैं अभी गारद साथ लिए आता हूँ।

(ख़ुद जाना चाहता है)

कल्लू—मारे घबड़ई के हमार मूड़ बस अब घुमहिन चाहत है।

तीसमार ख़ाँ—(बटेर ख़ाँ को दौड़ कर रोकता हुआ) नहीं-नहीं, अब तो मेरा ही जाना ठीक है।

बटेर ख़ाँ—नहीं हुज़ूर मुझे......

तीसमार ख़ाँ—नहीं जी मैं......

(दोनों एक-दूसरे को रोकते हैं)

कल्लू—अच्छा कोई न जाय। हम ही जाइत है सरकार। हीयाँ ठाड़े-ठाड़े हमरे घुमनी चढ़त है। अब रहाइस नाहीं होत है।

तीसमार ख़ाँ—हाँ-हाँ, तू ही जा जल्दी जा। दौड़ता हुआ जा।

(कल्लू जाता है)

बटेर ख़ाँ—हज़ूर यह बड़ा अच्छा हुआ कि यह बेवक़ूफ़ ख़ुद ही गारद बुलाने चला गया।

तीसमार ख़ाँ—तभी तो मैंने भी झट हाँ कर दिया। कैसी अक़्लमन्दी की। अरे! यह क्या......

(पर्दे के पीछे कई आदमियों का शोर मचाना—शराब पीना हराम है)

तीसमार ख़ाँ—अरे! इन हरामियों ने फिर ज़ोर बाँधा? कम्बख़्त ज़रा भी दम नहीं लेने देते। अच्छा

आओ इस दफ़े इन पाजियों को ऐसा ठीक करता हूँ कि सारी ज़िन्दगी याद करेंगे ।

(दोनों का जाना)

अङ्क १, दृश्य २

(तीसमार ख़ाँ का ज़नानख़ाना)

(तीसमार ख़ाँ की बीवी दिलारा बेगम)

दिलारा—आग लगे ऐसे अख़्तियार में कि निगोड़ी भङ्गिन तक भी बिला काम के झाँकने नहीं आती । माना कि मेरे मियाँ इतने बड़े दारोग़ा हैं और सारा काम हुकूमत के ज़ोर से करा लेते हैं । मगर हाय ! डण्डों से हमदर्दी नहीं मिलती, मुहब्बत नहीं मिलती ! जिसके लिए दिल रातोदिन तरसा करता है । मेरे बाप एक मामूली आदमी हैं फिर भी जब तक वहाँ रहती हूँ, सारी दुनिया अपनी मालूम होती है । मगर यहाँ एक अदना पड़ोसिन भी मुझसे दिल खोल कर मिलने नहीं आती ! और न कोई मुझी को अपने यहाँ किसी काम-काज में बुलाने की हिम्मत करती है । उफ़ ! ऐसे जीने पर लानत है । जानवर भी ऐसी ज़िन्दगी बसर नहीं कर सकते ।...... कौन है धोबिन ?

(रमझारी का कपड़ों का गट्ठर लिए स्टेज के कोने में दिखाई देना)

रमझारी—नाहीं । हम हन उनके बिटिया रमझारी । लो आपन कपड़ा । (वहीं से कपड़ों का गट्ठर फेंक देती है)

दिलारा—कल ही तो चौकीदार तेरी माँ को कपड़े दे आया था । क्या एक ही दिन में सब धुल गए ?

रमझारी—नाहीं । अब आपके कपड़ा न धोआ जाई । हमरे हीयाँ पञ्चाइत भवा है कि विदेसी कपड़ा कोऊ न धोवे । जे धोई वहके हुक्का-पानी बन्द होइ जाई ।

दिलारा—क्या-क्या, दारोग़ा जी का तुम लोगों को कुछ भी डर नहीं है ? जानती हो आफ़त कर देंगे ?

रमझारी—बलइया से ।

दिलारा—हमारे कपड़े न धोए जाएँगे तो क्या हम लोग मैले-कुचैले रहें ?

रमझारी—तो सुदेसी काहे नाहीं पहनित है ?

(लौट जाती है)

दिलारा—अरे ! सुन-सुन, सुन तो ।

रमझारी—(पलट कर) का होय ?

दिलारा—तेरी माँ क्यों नहीं आई ?

रमझारी—हमरे महतारी का पूछ कर का करबे, आपका अपने कपड़वे से तो मतलब है ।

दिलारा—सिर्फ़ कपड़ों ही से मतलब है ? गोया मैं आदमी नहीं, मुझे आदमियों की सङ्गत पसन्द नहीं ? क्यों ? जा उसको भेज दे । मैं उसे समझा दूँ । वह ऐसा न करे । वरना दारोग़ा जी के कानों तक ख़बर पहुँचेगी तो......

रमझारी—तो का होई ? सजा कराय देहैं ; बस ? अब बड़े-बड़े आदमी जेलखाना जात हैं । हम लोगन के कौन गिनती ? एका अब हम सभे नाहीं डेराइत है ।



नवाब सर मुहम्मद अकबर हैदरी
(गोलमेज़ के सदस्य)

दिलारा—(अलग) ग़ज़ब ख़ुदा का । जिस अख़्तियार के ज़ोम में हमारे मियाँ अन्धे हो रहे हैं, दीन-दुनिया भूले हुए हैं, आज उसकी यह हालत हो रही है कि इसकी परवा एक धोबिन की छोकड़ी भी नहीं करती । सच है अख़्तियार की शान जभी तक है जब तक उसका दबदबा रहता है । और दबदबा ज़ुल्म और बदी से नहीं, बल्कि हमदर्दी और इन्साफ़ से क़ायम रहता है । जहाँ यह बातें नहीं, तहाँ अख़्तियार काहे को, वह ख़ासी ज़िल्लत है । (रमझारी को जाते हुए देख कर) अरे ! फिर

चली। बात तो सुन ले। तू तो बड़ी तर्रार मालूम होती है। तेरी माँ से मुझे कुछ कहना है। जा उसे जल्दी से भेज दे। भूलना मत।

रमझारी—(पलट कर) वह नाहीं आय सकत है। आज हीयाँ के सब मेहररुवे गाँधी बाबा के झण्डा निकाले हैं। सुदेसी के परचार करिहैं। दीदी हुआँ जइहैं कि आपके हीयाँ अइहैं?

दिलारा—क्या औरतें भी झण्डा निकालेंगी?

रमझारी—काहे? मेहररुवे मनई न होंय, कि खाली मर्दने में दुम-पोंछ लाग है? अब तो मेहररुवे वह काम करत हैं कि मर्द का खाय के करिहैं? आपका का मालूम? आप तो पर्दे के बू-बू बनी घर माँ घुसरी रहत हैं।

दिलारा—उसमें कौन-कौन औरतें शामिल होंगी?

रमझारी—हिन्दू-मुसलमान छोट बड़ी सभै। कोई घर बाक़ी न रही।

दिलारा—क्या पर्दे वाली भी जायँगी?

रमझारी—बड़ी-बड़ी रानी-महारानी तक जब सुदेसी के खातिर घर से बाहर निकस पड़ी तो अब पर्दा कहाँ रह गवा?

दिलारा—हाँ? औरतें इतनी आज़ाद हो गईं? अच्छा ज़रा अन्दर आकर इतमीनान से बैठ, ताकि मैं—

रमझारी—नाहीं दादा। आपके कपड़ा धोवब बन्द कै दीन है। कहूँ लोटा-थरिया पकड़ाय के सजा कराय देव। कौन ठीक? आपके बड़ा अख्तियार है।

(भाग जाती है)

दिलारा—(अकेले) भाग गई? उफ़! ऐसे अख़्तियार को झाड़ू मारूँ। जिसने मुझे दुनिया की निगाहों में ऐसी ज़लील कर रक्खा है कि मैं एतबार की क़ाबिल भी नहीं समझी जाती। जैसा सलूक मियाँ दुनिया के साथ करते हैं, उसी का बदला आज दुनिया भी देने को तैयार हो गई। यह उसको ठोकर मारते थे और आज वही इनसे ठोकरों से बातें करती है। मगर हाय! उसकी चोट वह नहीं, मैं सह रही हूँ। वह अपनी जा-बेजा काररवाइयों से बुरे थे तो मैं उनके साथ क्यों बुरी समझी जाती हूँ? इसलिए कि हिन्दुस्तानी औरतों की कोई हस्ती और कोई वक़अत नहीं है। हम लोग जानदार आदमी नहीं, बल्कि अपने-अपने मर्दों की महज़ बेजान दुम मानी जाती हैं। तभी तो हम लोग लाख अच्छी होने पर भी गेहूँ के साथ घुन की तरह अपने-अपने मर्दों की बुराइयों में पीसी जाती हैं। अल्लाह का शुक्र है कि यहाँ की औरतों को अपने निजी रुतबे का कुछ ख़्याल आया, पर्दा तोड़ कर अपनी आज़ादी की बुनियाद डाली। बस चले तो मैं भी उनका साथ दूँ। जब तक मैं दुनिया का साथ न दूँगी तब तक वह मुझे क्यों पूछने लगी? मियाँ दारोग़ा हैं। मैं तो दारोग़ा नहीं हूँ। उन्हें सुदेसी से नफ़रत है। मगर मैं नफ़रत क्यों करूँ? तो क्या मैं भी झण्डे वाली औरतों के साथ जाऊँ? कहीं मियाँ बुरा न मानें—

(मुनुवा का तकली लिए आना)

मुनुवा—अम्मी तिकुली लाया। तिकुली लाया। यह देखो।

दिलारा—अरे! इसे कहाँ से लाया?

मुनुवा—एक लड़के से एक पैछे में मोल लिया है। अब्बा ने पैछा दिया था। अब हम बी छूत बनाएँगे।

दिलारा—तो तुझे यही ख़रीदना था बेवक़ूफ़, फेंक दे इसे! मकान से दूर जाकर फेंकना।

मुनुवा—काहे अम्मा?

दिलारा—तेरे अब्बा इसे देखते ही तुझे फाड़ खाएँगे। जानता नहीं कि उन्हें सुदेसी बातों से इतनी नफ़रत है कि इसके बरतने वालों तक से बहुत ख़फ़ा होते हैं।

मुनुवा—नहीं अम्मा! अब्बा नहीं ख़फ़ा होंगे। अब तो वह बी हलामी हो गए।

दिलारा—क्या?

मुनुवा—छचमुच अम्मा। हमने अपने कानों से छुना है। अब्बा भी कहते थे कि छलाब पीना हलाम है, विदेछी माल लेना हलाम है।

दिलारा—हाँ? सच?

मुनुवा—बिलकुल छच अम्मा। बले जोल से कहते थे।

दिलारा—वाह! तब तो जो हिचक थी जाती रही, अब मैं ज़रूर जाऊँगी।

मुनुवा—कहाँ अम्मा?

दिलारा—शहर भर की औरतों के साथ गाँधी बाबा का झण्डा निकालने।

मुनुवा—क्यों?

दिलारा—नहीं जानती। मगर जैसा सब करेंगी वैसा मैं भी आज से करूँगी। क्योंकि मैं भी दुनिया में रहती हूँ, अलग नहीं।

मुनुवा—तो अम्मा हम बी चलेंगे।

दिलारा—नहीं बेटे। थक जाओगे, यहीं खेलो।

मुनुवा—नहीं अम्मा।

दिलारा—फिर नहीं मानते। जाओ खेलो।

(जाती है)

मुनुवा—(अकेला) अच्छा जाओ। हम बी पीछे-पीछे जायँगे। जब घूम के ताकोगी तो भाग आएँगे।

(उसी तरफ़ जाता है)

अङ्क १, दृश्य ३

(तीसमार ख़ाँ के मकान का सामना)

(तीसमार ख़ाँ का बड़बड़ाते हुए आना)

तीसमार ख़ाँ—वह साला चौकीदार गारद वालों के पास नहीं गया। न जाने कहाँ चला गया। मैं अब तक उसी की इन्तज़ार में थाने पर गारद लिए बैठा था।

(बटेर ख़ाँ का घबड़ाया हुआ आना)

बटेर—हुज़ूर ग़—ग़—ग़—ग़ ग़ज़ब हो गया।

तीसमार ख़ाँ—(घबड़ाकर) क—क—क—क—क्या हुआ?

बटेर—अभी मुख़बिरों से ख़बर मिली है कि धरना देने के लिए तमाम शहर की औरतें फट पड़ी हैं।

तीसमार ख़ाँ—औरतें?

बटेर—जी हाँ, औरतें! मगर इन्हें औरतें न समझिएगा। मर्दों की भी चची हैं चची!

तीसमार ख़ाँ—अरे बाप रे! क्या यह लोग रोक-टोक करने से कहीं हाथ तो नहीं चला बैठती हैं?

बटेर—नहीं। बस इतनी ही तो ख़ैरियत है।

तीसमार ख़ाँ—(ऐंठ कर) तब कुछ परवा नहीं। गारद लेकर फ़ौरन जाओ। और सुनो—(कान में कहता है)

बटेर—क्या औरतों पर भी?

तीसमार ख़ाँ—हाँ जी, मर्द, औरत, बच्चे सबको एक ही काठी से हम तो हाँकना जानते हैं। ऐसा न करें तो पबलिक हमको तीसमार ख़ाँ नहीं, गाजर-मूली ख़ाँ समझने लगेगी।

बटेर—मगर हुज़ूर, कहीं बड़े साहब जान गए तो हम लोगों की जान आफ़त में पड़ जायगी।

तीसमार ख़ाँ—अरे! हम क्या कोई चीज़ ही नहीं हैं। हम सब सँभाल लेंगे, किसकी मजाल है जो हमारी शिकायत उनसे करे। बस वही बात। समझे?

बटेर—तब हज़ूर आप भी चलें। औरतों का मामला ठहरा। कहीं आफ़त न बरपा हो जाय।



श्री० मोहनलाल भट्ट

जो महात्मा जी की नज़रबन्दी के पश्चात् 'नवजीवन' का सञ्चालन कर रहे थे। इनको गवर्नमेण्ट ने चार महीने की सख़्त क़ैद की सज़ा दी थी।

तीसमार ख़ाँ—अजब बेवक़ूफ़ हो। वह विलायती मेमें थोड़े ही होंगी? हिन्दुस्तानी औरतें होंगी, हिन्दुस्तानी, समझे? जिनके लिए हिन्दुस्तानियों का ख़ून कभी जोश ही नहीं खा सकता। यह हमने आज़मा कर ख़ूब देख लिया है।

बटेर—मगर हुज़ूर चलें ज़रूर।

तीसमार ख़ाँ—हाँ, तुम आगे चल कर कार्रवाई करो, मैं अभी आता हूँ। ज़रा नाश्ता कर लूँ। दिन भर हो गए, घर के अन्दर क़दम रखने की मुहलत नहीं मिली।

(बटेर ख़ाँ जाता है, दूसरी तरफ़ से कल्लू आता है)

कल्लू—अरे! हजूर लायन, लायन, लायन। बड़े मुसकिल से मिला है।

तीसमार ख़ाँ—क्या गारद?

कल्लू—हाँ, देखो। (जिधर से आया था उधर घूम कर) आओ हो नाऊ भाई।

(एक देहाती नाई का आना)

तीसमार ख़ाँ—अबे यह गारद है उल्लू के पट्ठे?

कल्लू—यू हम नाहीं जानित है, जेहका आप बुलावे कहेन रहा तेहका हम बुलाय लायन। सहर के कौनौ नाऊ नाहीं आए। तब देहात से एहका लायन हैं। बहुत नीक मूड़त है। एहके बाप बम्बई होय आवा है।

तीसमार ख़ाँ—अबे गदहे, तू तो गारद बुलाने गया था?

कल्लू—तो का नाऊ के जरूरत नाहीं है? (नाई से) अच्छा जाओ भाई।

तीसमार ख़ाँ—यह क्या करता है? जो पूछता हूँ उसका क्यों नहीं जवाब देता?

कल्लू—(नाऊ से) डोल जाओ हो। तूका देख के केतिक गुस्सा होत हैं।

(नाई जाता है)

तीसमार ख़ाँ—अबे! आयँ! उसे क्यों भगाए देता है? बुलाओ उसे। (कल्लू दूसरी तरफ़ जाने लगता है) और तू कहाँ चला?

कल्लू—जाइत है गारद बुलावे।

तीसमार ख़ाँ—अबे गारद के बच्चे। पहिले नाई को बुला ले।

कल्लू—(अपना कान पकड़ कर) नाहीं सरकार, अब अस गल्ती नाहीं होय सकत है। एक बाजी नाऊ बुलाए के भर पाएन।

तीसमार ख़ाँ—हाय! हाय! तू तो बड़ा हुज्जती है हरामज़ादा! जब वह दूर निकल जायगा तब कहाँ बुलाने जाएगा?

कल्लू—हजूर हम अकेल जीव हन। चाहे हमसे आप गारद बुलवाए लेईं, चाहे नाऊ—दूनो काम नाहीं होय सकत है।

तीसमार ख़ाँ—अच्छा नाई को तो बुला कम्बख़्त!

कल्लू—मुल पाछे गारद बुलवाए के तो न कहब? यू आप सोच लेईं।

तीसमार ख़ाँ—अबे गारद गई ऐसी-तैसी में। नाई को जल्दी बुला। उसे देखते ही मेरी दाढ़ी में खुजली मच गई है।

कल्लू—जुआँ पड़ गवा होई सरकार। अच्छा सबुर करो। अब्बै बुलाए देइत है।

(कल्लू जिधर नाई गया था उधर जाता है)

तीसमारख़ाँ—उफ़! बड़ी खुजली मची है। क्या करूँ।

(नाई के साथ कल्लू एक कुर्सी लिए आता है)

कल्लू—लो हजूर यह कुर्सी और यह नाऊ।

तीसमार ख़ाँ—क्यों बे नाई के बच्चे हरामज़ादे, तुम लोगों को बड़ा मिज़ाज हो गया है। साले बुलाने से नहीं आते हो?

कल्लू—(अलग) अब दादा हमार हीयाँ गुजर नाहीं।

(चुपके से भाग जाता है)

नाई—हम तो हजूर हीयाँ रहतो नाहीं हन, हमका आज के पहिले कब्बो नाहीं आप बुलवाएन हैं। नहके आप रिसिया होइत है।

तीसमार ख़ाँ—मैं नाहक़ ख़फ़ा होता हूँ? क्यों! यह तुम्हीं लोगों की बदमाशी से मेरी दाढ़ी की यह हालत है। साले एक-एक को भून के खा जाऊँगा। तेरी ऐसी-तैसी करूँ—(मारता है)

नाई—अरे! अरे! बाप रे बाप! हम का बिगाड़ेन हैं।

तीसमार ख़ाँ—चुप बदमाश! चल इधर। बनाओ हजामत।

नाई—(अपना बदन झाड़ता हुआ—अलग) अच्छा हमहूँ अस हजामत बनाइब कि तुहूँ याद करिहो। पच्छी में कउवा अउर आदमी में नउवा सभै जानत हैं। एहकर कसर हम जो न निकारेन तो हम नाऊ नाहीं, चमार।

तीसमार ख़ाँ—(कुर्सी पर हजामत बनवाने की तैयारी में बैठा हुआ) अबे बनाता क्यों नहीं?

नाई—(हाथ जोड़ कर) हजूर हम नाऊ हन, घास नाहीं छोलित है।

तीसमार ख़ाँ—यह क्या ?

नाऊ—हजूर हम खुर्पी नाहीं लायन है।

तीसमार ख़ाँ—अरे ! यह कैसा गँवार नाई पकड़ लाया जो खुर्पी से दाढ़ी बनाता है। क्यों बे तू उस्तरा नहीं रखता ?

नाई—हजूर हमारे पास सामान तो सब बम्बइया है। छूरा, साबुन, बुरुस सब चीज़। मुल कहा मानी, आप यू दाढ़ी न मुड़वाई।

तीसमार ख़ाँ—तब क्या अपनी शकल रीछ सी ख़ब्बीस बनाए रहें ?

नाई—तौन नीक, मुल जहाँ आप दाढ़ी मुड़वाए देब तहाँ यह सूरत बानर अस निकस आई। यही तो अस दाढ़ी में ख़राबी है। हम कइयू बनाए के देख चुकेन है।

तीसमार ख़ाँ—तेरा सर ! बदमाश कहीं का। बहानेबाज़ी करता है।

नाई—बहाना नाहीं सरकार, साँचो कहित है। (दाढ़ी टटोल कर) बाप रे बाप ! यू दाढ़ी है कि ससुर झाऊ के जङ्गल। हजूर हाथ जोड़ित है, हम बहुत ग़रीब हन। हमरे छूरा के धार टूट जाई।

तीसमार ख़ाँ—अबे पहिले साबुन से भिगो ले तब देख बाल कैसे मुलायम पड़ जाते हैं।

नाई—साबुन कूची तो है, मुल सरकार हमरे बापो के होय। हम कब्बो साबुन से बनावा नाहीं है।

तीसमार ख़ाँ—अजब गँवार से पाला पड़ा। अबे गदहे ! कूची को पानी में डुबो कर साबुन से रगड़, उसके बाद उसे मेरी दाढ़ी पर लगा।

नाई—बहुत अच्छा। ऐसे सरकार बतावत जाई, हम गँवार मनई हन।

(कूची में साबुन लगा दूर खड़ा होता है। और जिस तरह से आतशबाज़ी में आग लगाई जाती है, उसी तरह से हाथ बढ़ा कर कूची को तीसमार ख़ाँ की दाढ़ी से एक जगह छुलाता है।)

तीसमार ख़ाँ—अबे इसको मेरी दाढ़ी पर रगड़।

नाई—नाहीं सरकार। यू हमसे न होई, हमार जीव बहुत डरात है। कहूँ आपके मुहें में हमार कूची घुसड़ जाई तो मिलब मुसकिल होय जाई। आपे ऐह पर आपन गाल रगड़ी।

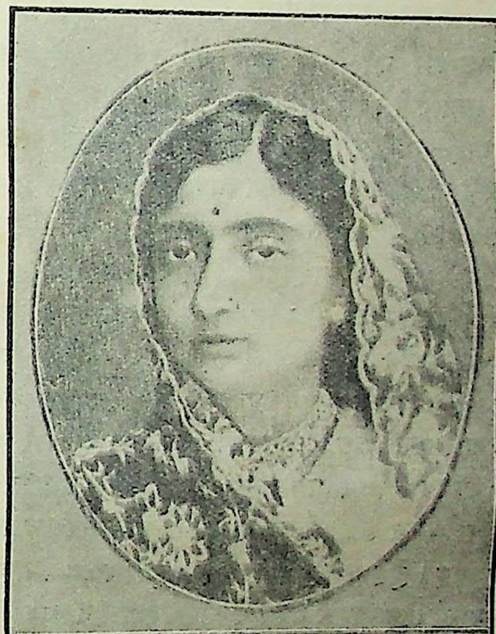
तीसमार ख़ाँ—मैं किस तरह रगड़ूँ, बेवक़ूफ़ ?

नाई—आप आपन मूड़ी गिरगिट अस नीचे-ऊपर हलाई तो। हम समनवा कूची किए हन। हाँ हलाई।

तीसमार ख़ाँ—अबे तू तो बड़ा उल्लू मालूम होता है। अच्छा यह ले। (अपना सर हिला कर कूची से अपना गाल रगड़ता है)

नाई—अउर हाली-हाली। अस नाहीं अस। (दूसरे हाथ से तीसमार ख़ाँ का कान पकड़ कर ख़ूब कस-कस के झटका देता है)

तीसमार ख़ाँ—अबे यह क्या बेहूदा नाला × × ×



श्रीमती देवयानी इन्द्रविजय देसाई

आप विलेपारले (बम्बई) की निवासी हैं। आपको पिकेटिङ्ग में १५ दिन की सज़ा हुई थी।

नाई—(तीसमार ख़ाँ का गाली देने के लिए मुँह खुलते ही अपनी साबुन की कूची उसमें गप से डाल देता है) हाय ! हाय ! सरकार हमार कूची खाय लेब का ? हम गरीब आदमी हन। मुँह अउर खोली, नाहीं हम बिलाय जाब। (एक हाथ से तीसमार ख़ाँ की नाक में दो उँगलियाँ डाल कर मुँह ऊपर को उठाता है, तब दूसरे हाथ से कूची उस मुँह से अलग करता है)

तीसमार ख़ाँ—आख़थू ! आख़थू—आँक छी ! आँक छी ! उफ़ ! मार डाला। यह साला नाई नहीं, पूरा

क़साई है। उस पर से कम्बख़्त कभी कान पकड़ता है और कभी नाक!

"नाक-कान न पकड़ी तो यह डेढ़ पसेरी के मूड़ कौन चीज पकड़ के हलाइत। खोपड़ी में कहूँ खूँटी थोड़े गड़ी है।"

तीसमार ख़ाँ—आ—आ—आक छीं! अबे तूने मेरी नाक में उँगली क्यों खोंस दी?

नाई—तो आपके मुहाँ खुलत कसस? आपे तो हमार कुचिया सगरो भछ लीन रहा। हम आपके कनवा न पकड़े होइत तो आप हमार हथवो लील लेइत।

तीसमार ख़ाँ—चुप रह। ला कूची हमें दे। हम इधर लगा लेंगे।

नाई—नाहीं सरकार। पहिले हम एक अलङ्ग बनाए लेई तब बाहर सबुना लगावा जाए, नाहीं तो चेहरा सब लसर-फसर होए जाई तो हम आपन चुटकी के टेक कहाँ लगाइब? (दाढ़ी बनाता हुआ) हाँ सरकार, तनी आप मुँह खोली तेहमा गलुक्का के भीतर हवा जाए के बार के जड़ मुलायम कै दे। अब बन्द कै देई। फिर खोली। खूब फैलाई। अब बन्द करी। मूड़ी अस करी। (कान पकड़ कर) अस नाहीं अस। अब एहर। अच्छा सरकार अब आप आपन नाक हाथ से पकड़ लेई। जोखिम जगह पर छूरा चलत है। हाँ कहूँ दाढ़ी के साथ नाको न साफ होए जाए। मुँह खोले रही। जेहमा ठुडी लटक के नकुवा से दूर रहे। हजामत बनाइब खेल नाहीं है। बस एक अलङ्ग होय गवा अब सीसा में आपन मुँह तो देख लेई।

(एक तरफ़ की दाढ़ी मय उस तरफ़ की मूँछ के साफ़ कर देता है)

तीसमार ख़ाँ—(शीशा देख कर) हाय! हाय! तूने इधर की मूँछें क्यों बना दीं? हाय ग़ज़ब! यह क्या किया?

नाई—का मूँछो बन गवा? यही लिए कहा रहा सरकार कि साबुन न लगवाई। का कही एहर के डाढ़ी-मोंछ दूनो एक्के में लिपे-पोते रहे। हमार छूरा न चीन्ह पाइस होई कि कौन मोंछ है अउर कौन डाढ़ी।

तीसमार ख़ाँ—तेरे उस्तरे की ऐसी-तैसी करूँ सूअर के बच्चे। साले ने सूरत बिगाड़ दी।

नाई—हमार कौन दोस सरकार? हम तो पहिलवें बताय दीन रहा कि अस डाढ़ी जहाँ बनाइ जात है वैसे बनरे अस मुँह निकर आवत है!

तीसमार ख़ाँ—(उसी धुन में) हाय! हाय! अब इधर की भी मूँछ बनवानी पड़ी।

नाई—काहे कौनो जबरदस्ती थोड़े है। एहर वाली मुछिया रहे देई।

तीसमार ख़ाँ—ऊपर से बातें बनाता है? अच्छा ज़रा हजामत बन जाए तो बताता हूँ। ला इधर ला कूची।

नाई—(कूची देते हुए कूची तीसमार ख़ाँ की गोद में गिरा देता है) च! च! च! आपके कपड़ा खराब होय गवा, नाहीं-नाहीं बच गवा। (तीसमार ख़ाँ की पोशाक का कपड़ा ग़ौर से देखता और टटोलता हुआ) भला यह बिदेसी तो न होय?

तीसमार ख़ाँ—तब क्या हम सुदेसी पहनेंगे गदहे? जानता नहीं हम दारोग़ा तीसमार ख़ाँ हैं।

नाई—तो फुरे यू सुदेसी न होय?

तीसमार ख़ाँ—नहीं बे। अब ख़बरदार जो सुदेसी का नाम लेगा तो मारे जूतों के खोपड़ी फ़र्राश कर दूँगा।

नाई—(चिल्ला कर रोता हुआ) हाय दादा! करम फाट गवा। हम बिलाय गएन।

तीसमार ख़ाँ—अबे क्या हुआ क्या?

नाई—(जल्दी-जल्दी अपना सामान समेटता हुआ) का बताई। धोखा होय गवा। हम जानित रहन कि आप सुदेसी पहने हन। सरकार हाथ जोड़ित है, गोड़े गिरित है, आप कोई से न बताइब कि हम आपके डाढ़ी बनायन हैं, नाहीं तो हमें रोटी पड़ जाई।

(अपना सामान लेकर जल्दी-जल्दी जाता है)

तीसमार ख़ाँ—अबे-अबे आधी ही दाढ़ी बना कर चल दिया? अबे ओ नाई के बच्चे, आधी वह भी बनाता जा कम्बख़्त।

नाई—(जाते-जाते कोने के पास से) नाहीं सरकार। अनजाने जौन खता होय गई, तौन होय गई। अब हाथ जोड़ित है, हमार कीन न होई।

(भाग जाता है)

तीसमार ख़ाँ—हाय! हाय! हरामज़ादा चला गया। अब क्या करूँ। कैसे उसके पीछे दौड़ूँ या किसी

को अपने सामने बुलाऊँ ? हाय कम्बख़्त ने मुँह दिखाने लायक़ भी तो मुझे नहीं रक्खा। किस तरह सूरत छिपाऊँ, एक तरफ़ की मूँछ भी तो नदारद है। कहीं कोई आ पड़ा तो क्या करूँगा। मकान के भीतर भी तो जाते नहीं बनता ! उफ़ ! उस नामाक़ूल ने बड़ा ही पाजीपन किया है। मिल जाता तो उसे कच्चा चबा जाता। (अपने बदन के कपड़ों से अपनी दाढ़ी और मूँछें छिपाने की कोशिश करता है) नहीं ठीक बनता। हाय ! अब क्या करूँ ? वह लो, मुनुवा भी आ रहा है। (अपने मुँह को एक तरफ़ रुमाल से छिपा कर मुँह फेर कर खड़ा होता है)

मुनुवा—ऊँ-ऊँ-ऊँ। अम्मा ! हाय ! अम्मा ! कहाँ गईं ?

तीसमार ख़ाँ—( ) क्यों बे मुनुवा, क्या हुआ ?

मुनुवा—अम्मा भी हलामिन बन के सब औलतों के साथ झण्डा उठाने गईं थीं।

तीसमार ख़ाँ—आयँ ? यह क्या ?

मुनुवा—सचमुच अब्बा। वह बी गईं थीं। बजाल में बहुत-बहुत औलतें थीं। अम्मा भी थीं। बछ छिपाई लोग उनके पीछे दौले। फिल नहीं मालूम अम्मा किधल गायब हो गईं। हाय ! अम्मा ऊँ-ऊँ-ऊँ !

तीसमार ख़ाँ—(मुँह फेरे हुए) हाय ! ग़ज़ब ! यह क्या हुआ ? अरे ! मुनुवा ! तू थाने पर जा और जल्दी से बटेर ख़ाँ को ढूँढ़ कर बुला ला। (मुनुवा जाता है)

मुनुवा को तो मैंने किसी तरह अपने सामने से हटाया। जानता हूँ कि बटेर ख़ाँ वहाँ नहीं है। मगर अब करूँ क्या ? या मेरे अल्लाह ! मेरे सर पर यह कैसी आफ़त फट पड़ी ? उफ़ ! मैंने भी बटेर ख़ाँ को औरतों के साथ कैसा सलूक करने का हुक्म दे दिया है। क्या जानता था कि यह मुसीबत मेरे ही सर पड़ेगी। ख़ुद मेरी ही बीबी इसका शिकार होगी। सोचते ही अब रोंगटे खड़े होते हैं और कलेजा फटा पड़ता है। हाय ! बीबी और आबरू दोनों गईं। मैं कहीं का भी न रहा। उस कम्बख़्त औरत को एकाएक यह क्या सूझी ? मगर ख़ैर ! अब उसे इस तबाही से किस तरह बचाऊँ ? वह हमेशा पर्दे में रही। कोई उसे पहचानता भी तो नहीं है। और मैं यह शक्ल लेकर कैसे जाऊँ ? हात तेरे नाई की !......अच्छा एक तरकीब सूझी। अपनी बीबी का बुर्क़ा पहन लूँ। बस-बस यही ठीक है। (मकान के भीतर जाता है। बुर्क़ा लेकर निकलता है और उसे पहन कर एक तरफ़ तेज़ी से जाता है)

अङ्क १, दृश्य ४

स्थान—रास्ता

(बटेर ख़ाँ का शेख़ी हाँकते आना)

बटेर—वाह रे मैं ! आज ऐसी बहादुरी दिखाई है कि देखने वालों के छक्के छूट गए। औरतें बहुत दिलेर बन



श्रीमती विस्तादेवी
आप झाँसी के यूथलीग की प्रेज़िडेण्ट थीं। आजकल नौकरशाही की मेहमान हैं।

कर आई थीं, मगर मेरी शहज़ोरी के आगे उनकी एक न चली। उन्हें भागते ही बन पड़ा। और भागीं भी तो ऐसी बदहवास होकर कि दो-चार लँगड़ी-लूली भी हो गई हों, तो कोई ताज्जुब नहीं। मगर हाय ! कोई हत्थे नहीं चढ़ी। यही अफ़सोस है। जहाँ एक के पीछे पड़ता था, तहाँ उसके साथ दस-बीस और गिरफ़्तार होने के लिए झट फट पड़ती थीं। इसीसे तो मुझे और गुस्सा चढ़

गया। और बहादुरी ही दिखाता रह गया। क़िस्मत से अभी-अभी एक अकेली भी मिल गई थी और मैं उसे डरा-धमका कर अपने साथ ले भी चला था कि कमबख़्त कलुआ ने आकर सब गड़बड़ कर दिया। उस हरामज़ादे का सर तोड़ दूँगा--साले ने मेरे मनसूबों का प्रोग्राम उलट दिया (एक तरफ़ देख कर) अरे! एक आ रही है, वह आ रही है। वाह री तक़दीर, बिलकुल अकेली है। (इधर-उधर देख कर) कलुआ तो नहीं है। नहीं-नहीं कोई नहीं है।(उसी तरफ़ देख कर) बुर्क़ा पहने हुए है। ओहो,



श्रीमती उषा देवी

आप स्वामी श्रद्धानन्द जी की दौहित्री हैं। आपको भी वर्तमान आन्दोलन में जेल हुई है।

क़सम ख़ुदा की बड़ी हसीन होगी तभी तो। इसको मैं ज़रूर अपने मकान ले जाऊँगा।

(तीसमार ख़ाँ का बुर्क़ा पहने आना और बटेर ख़ाँ को देख कर लौटने की कोशिश करना)

तीसमार ख़ाँ--(अलग) अरे! मैं किधर निकल आया? यह तो बटेर ख़ाँ है। अब क्या करूँ? (लौटना चाहता है)

बटेर--उधर कहाँ? उधर कहाँ? चल इधर।

(तीसमार ख़ाँ घबड़ा कर लौटने की कोशिश करता है)

बटेर--फिर नहीं सुनती, चल इधर। अरे! यह तो भागने की कोशिश करती है। तेरी ऐसी-तैसी। भागती है हरामज़ादी? (मारता है) फिर भागेगी? चल इधर।

(तीसमार ख़ाँ सामने से भागता है और बटेर ख़ाँ उसके पीछे दौड़ता हुआ जाता है)

अङ्क १, दृश्य ५

स्थान--जङ्गल

(दिलारा का ग़ुस्से में आना)

दिलारा—ग़ज़ब ख़ुदा का ऐसा अन्धेर? औरतों के साथ यह बरताव? हम लोग आदमी न हुईं गोया कुत्ता-बिल्ली हुईं जो पकड़-पकड़ के जङ्गलों में बदमाशों की ख़ूराक बनने के लिए छोड़ दी गईं। लानत है हमारे मियाँ पर, जिनके हुकुम से उनकी माँ-बहिनों की ऐसी बेइज़्ज़ती हुई। यह अब जाना। मैं नहीं जानती थी कि वह यहाँ तक गए-गुज़रे हैं। मेरे लिए ऐसे ख़सम की बीबी होकर रहना चुल्लू भर पानी में डूब मरना है। मैं आज से उनका मुँह तक न देखूँगी। हम लोग औरत ज़ात जो ख़ुद अपनी परछाहीं से डरती हैं और जिन्हें अगर सीधी सड़क पर भी अकेली छोड़ दो तो वह अपने घर का रास्ता नहीं पा सकतीं उन बेचारियों को ऐसे सुनसान मैदान और झाड़ी-जङ्गलों में रास्ता भला कहाँ मिल सकता है? हाय! किधर जाऊँ?

(एक तरफ़ जाती है)

(दूसरी तरफ़ से बटेर ख़ाँ तीसमार ख़ाँ को ढकेलता हुआ आता है)

बटेर—चलो इधर। बहुत नख़रे दिखा चुकीं। अच्छा अब ज़रा अपना बुर्क़ा उठाओ, तुम्हारा मुँह तो देखें जानमन! अरे! नाहक़ इतना शर्माती हो, यहाँ कोई नहीं है। (मुँह खोलने की कोशिश करता है, मगर तीसमार ख़ाँ खोलने नहीं देता है) ओहो! इतनी शर्म? अच्छा तो फिर चलो उस झाड़ी की आड़ में। वहाँ तो मुँह दिखाने में न शर्माओगी? अरे? अरे! यह तो फिर अड़ गई? चल हरामज़ादी इधर।

(एक झाड़ी पर तीसमार ख़ाँ को ढकेलता है और झाड़ी में से घबड़ा कर कल्लू लोटा हाथ में लिए निकलता है)

कल्लू—अरे! बाप रे बाप! यह के होय, सार ट्टी बइठत आफ़त कै दिहिस? (तीसमार ख़ाँ को बुर्क़ापोश देख कर) अरे! यह तो कौनो मेहरारू होय। (हाथ पकड़ कर)

करे तू अस मस्तान है कि झाड़ी में घुसुड़-घुसुड़ मर्दन पर भहरात फिरत है। तोरे छिनार की। फिर अस बद-मासी करिहे? (लात से मारता है) (बटेर ख़ाँ को देख कर) अउर तू के हो सरउ? अरे बटेरू? कहो अबकी इनका बुरक़ा ओढ़ाय के लायो है? तू का दुनिया में अउर ठौर नहीं रहा? जब देखो तब हमरे मूड़े पर कोदो दले के है। मारत-मारत सरऊ अचार निकार लेब। मुल पहिले इनकेर छिनरपन छुड़ाय देई।

(तीसमार ख़ाँ को फिर मारता है)

बटेर—(अलग) लाहौल बिलाक़ूवत! इस मरदूद ने फिर गड़बड़ कर दिया।

(दिलारा का आना)

दिलारा—किससे रास्ता पूछूँ? अरे! यह कौन औरत है? यह तो मेरा बुर्क़ा पहने हुए है। यह इसे कहाँ से चुरा के लाई?

(तीसमार ख़ाँ के सर से बुर्क़ा घसीट लेती है)

कल्लू—अरे! एहमाँ से यह के निकल पड़ा? दरोगा जी!

बटेर—तोबा! तोबा! लाहौल विलाक़ूवत! इन्ना-लिल्ला!

दिलारा—कौन मेरे मियाँ?

तीसमार ख़ाँ—कौन मेरी बीबी? हाय! तुम कहाँ थीं?

दिलारा—तुम्हारी कार्रवाइयों का तमाशा देख रही थी। चलो दूर हो मेरे सामने से। तुम्हारा मुँह नहीं देखना चाहती।

तीसमार ख़ाँ—अरे!

कल्लू—मत घबड़ाई। खाली वही अलङ्ग नाहीं देखे लायक़ है। आप एहर से देखी। एहर मोंछ-दाढ़ी कुछ नाहीं है। चेहरा बिलकुल साफ़ है, जस मेहरारू के।

तीसमार ख़ाँ—हाय! हाय! इसका ख़याल तो था ही नहीं। (मुँह छिपा कर) बस-बस अब ज़यादा ज़लील न करो। मैं अपने अख़्तियार का ख़ुद ही शिकार होकर उसकी हक़ीक़त अच्छी तरह से देख ली और समझ गया कि हाँ ख़ुदा भी कोई चीज़ है।

दिलारा—शुक्र है कि तुममें इतनी समझ तो आई। और इसी के साथ यह भी समझो कि तुम ख़ुदा के बन्दे, अपने मुल्क के बाशिन्दे और पबलिक के हौवा नहीं, बल्कि एक सच्चे ख़ैरख़ाह हो।

कल्लू—एही बात पर हजूर हमका माफ़ी दीन जाए। हम हजूर का बहुत मारा है।

तीसमार ख़ाँ—अबे चुप!

बटेर—हाँ हजूर धोखे में मुझसे भी ग़लती हो गई।

तीसमार ख़ाँ—अरे लिल्लाह! इस वक्त चुप रहो।

कल्लू—नाहीं हजूर हाथ जोड़ित है। हजूर की डाढ़ी छुइत है, कइयू लात हम अनजाने मार बैठेन है। माफ़ करी। (दाढ़ी छूने के बहाने तीसमार ख़ाँ के मुँह पर से उनके हाथों को हटा देता है)



श्रीमती सुभद्रा देवी

कलकत्ता के बड़ा बाज़ार कॉङ्ग्रेस-कमिटी की पहिली महिला-मन्त्रिणी, जिनको छः मास की सज़ा हुई है।

दिलारा—अरे इनकी शकल कैसी बनी है?

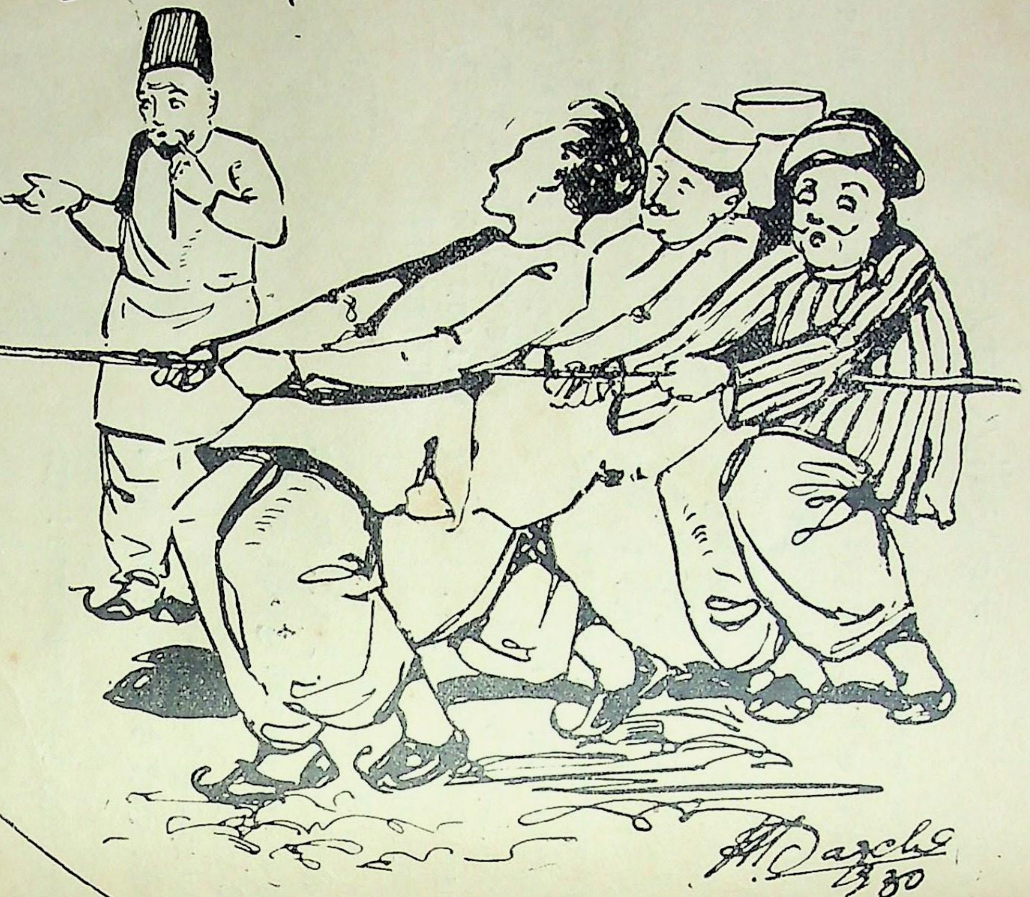
तीसमार ख़ाँ—लाहौल बिलाक़ूवत! (भाग जाता है)

(उसके पीछे दिलारा देखें-देखें कहती जाती है)

कल्लू—(बटेर ख़ाँ से) अरे! तुहूँ लपक के देख लेयो। अस खच्चड़ मुँह तोहार बापो न देखिन होइहें।

(ये दोनों भी उसके पीछे जाते हैं)

पटाक्षेप




सब समझते हैं कि बेड़ा पार है ! हिन्दुओ-मुसलिम में टग-ऑफ़ वार है !!

सफल क्रान्ति के कुछ आधार

[प्रोफ़ेसर बेनीमाधव जी अग्रवाल, एम० ए०]



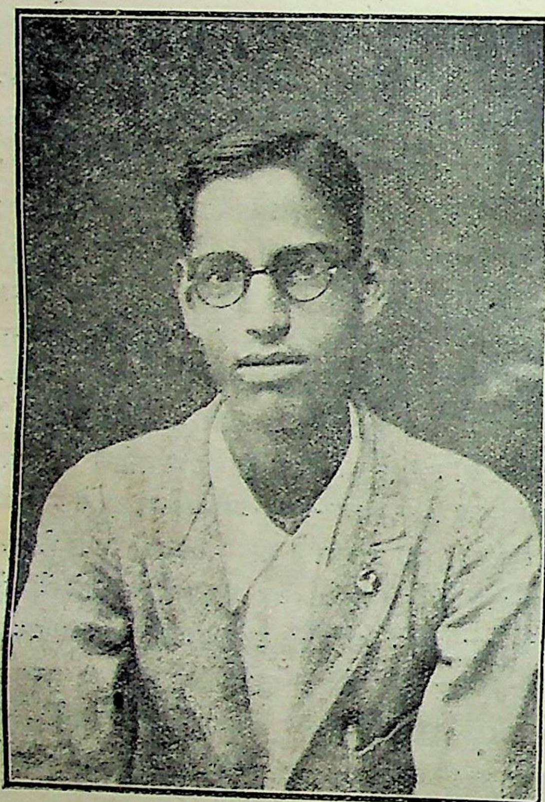
भारतवासी स्वभाव से बड़े धार्मिक हैं। वे सन्त-महात्माओं का आदर करते हैं, क्योंकि वे उन्हें उच्चतम आदर्शों के प्रतिनिधि मानते हैं। यह एक बड़ा गुण है, किन्तु धर्मभीरुता कभी-कभी हानिप्रद हो जाती है। वे वाह्य रूप की पूजा करने लगते और पाखण्डियों के पञ्जे में फँस जाते हैं। अतएव हम मनुष्य के चरित्र को देखें, न कि उसके वाह्य आवरण को; गुण और कर्म पर ध्यान दें, न कि उसकी जाति व क्षमता पर और यह देखें कि वह स्वयं अपने विचारों और सिद्धान्तों पर कहाँ तक आचरण करता है। हम सच्चरित्र मनुष्य का मान करें, चाहे उसका धर्म, जाति व देश हमसे भिन्न हो। "हे वैद्य, पहिले तू अपना ही इलाज कर" यह अङ्गरेज़ी कहावत बड़ी सारगर्भित है। हमारी सरलता अथवा भोलेपन से कोई अनुचित लाभ न उठा सके, इसके लिए उपरोक्त आलोचनात्मक दृष्टि का विकास हमारे लिए आवश्यक है। यह सच्चे नेताओं को पहिचानने में हमारी सहायक होगी।

जिस प्रकार यूरोप में सार्वजनिक तथा व्यक्तिगत आचार में (Public and private morality) भेद माना जाता है, वैसा भेद न भारत में है और न हो सकेगा। घर में एक प्रकार का आचरण और बाहर दूसरे प्रकार का आचरण, भारत में पाखण्ड के अन्तर्गत समझा जाता है। ऐसे लोग अपनी चातुरी व क्षमता से भले ही लोगों को दबा लें, परन्तु उनके व्यक्तित्व की ओर भारतवासियों को कदापि श्रद्धा नहीं हो सकती। महात्मा गाँधी के असीम प्रभाव का रहस्य समझना कठिन नहीं। लोगों को विश्वास हो गया है कि इस महापुरुष की आत्मा एवं बुद्धि का समुक्त निश्चय ही उसके वचनों और कार्यों द्वारा प्रकट होता है। वह जो सोचता है, वही कहता है, वही करता है। इसी कारण कभी-कभी उसकी आलोचना करते हुए भी, वे उसके सामने नतमस्तक हो जाते हैं। यह गुण नेताओं के प्रभाव को गहरा एवं स्थायी बनाता है। बिना इसके न नेतृत्व सम्भव है, और न नियमबद्धता!

क्रान्ति की सफलता उसी क्षण सुनिश्चित हो जाती है, जब कि हमारे विचार अपनी सचाई, विवेक तथा परिपक्वता के बल से दास-मनोवृत्ति को असम्भव बना देते हैं। विचार-स्वातन्त्र्य के सिद्धान्त जिस क्रान्ति को प्रेरित करते हों, वहाँ यह प्रश्न करने की ज़रूरत नहीं कि यह क्रान्ति सफल होगी व नहीं, वहाँ तो यही प्रश्न हो सकता है कि यह कब तक सफल होगी? जो लोग अन्ध-विश्वास के साथ किसी समय मान्य रूढ़ि की पूजा करते रहते हैं अथवा जो किसी दूसरे के जीवन का अन्ध-अनुकरण करना चाहते हैं, वे अपनी उन्नति क्या करेंगे? उन्होंने तो स्वयं अपने लिए ही एक मानसिक कारागार बना रक्खा है। विचार-स्वातन्त्र्य चरित्रवाद के मार्ग में बाधक नहीं, यह तो उसे और भी सरल तथा विस्तृत बना देता है। जो मनुष्य यह कहता है कि "जो मैं कहूँ उसे करो, जो मैं करता हूँ उसे न करो" उसका प्रभाव भले ही कम हो, किन्तु वह कदापि छली व पाखण्डी नहीं कहा जा सकता। देश के महान प्रश्नों के प्रति भी जो लोग इस नीति का पालन करते हैं, उन्हें हम कमज़ोर कह सकते हैं, हम कह सकते हैं कि वे परिस्थिति से ऊपर उठने में असहाय व असमर्थ हैं, परन्तु हम उन्हें देशद्रोही नहीं कह सकते।

इस सम्बन्ध में एक चेतावनी आवश्यक है। व्यक्तिगत शत्रुता अथवा ईर्ष्या से उत्तेजित होकर बहुधा लोग विचार-स्वातन्त्र्य के नाम पर दलबन्दी करने लगते हैं। इससे भेद-भाव बढ़ता और सभी की अन्त में क्षति होती है। इस नीच मनोवृत्ति के उदाहरणों से भी हमारा इतिहास वञ्चित नहीं। इसके दुष्परिणाम हमारे जातीय जीवन पर अङ्कित हो चुके हैं। जाति, समाज अथवा राष्ट्र के समष्टिगत हित व ध्येय के लिए व्यक्तिगत भावों

का बलिदान कर देने का पाठ भी सीखना आवश्यक है। यदि हम तर्क व प्रमाणों द्वारा बहुमत को अपने पक्ष में नहीं कर सकते, तो हमें विचार-स्वातन्त्र्य का दम भरते हुए विद्रोह खड़ा करना उचित नहीं। यदि हमारी आत्मा हमारे भावों व सिद्धान्तों को बहुमत के सामने तिलाञ्जलि देने से रोकती है तो हमें शान्तिपूर्वक प्रयत्न में संलग्न रहना उचित है। स्वतन्त्रता के उदारतम वातावरण में भी कार्य-कुशलता व सुसङ्गठन के लिए बहुधा



श्री० सवाईमल जी

जबलपुर की शहर कॉङ्ग्रेस कमिटी के डिक्टेटर, जो जेल में हैं। आपकी अवस्था केवल २० वर्ष की है।

कुछ व्यक्तियों के विचारों की अवहेलना अनिवार्य हो जाती है। किन्तु सिवाय धैर्य के इसका कोई चारा नहीं। अन्त में सत्य की विजय होती है। सदा के लिए कोई सबको भुलावे में नहीं रख सकता। यह विरोधात्मक भले ही प्रतीत हो, किन्तु यह एक सत्य है कि स्वतन्त्रता के समष्टिगत आदर्श को जीवित व बलवान बनाए रखने के लिए व्यक्तिगत भावों का बलिदान करना पड़ता है!

इसे समझना और इसके अनुसार आचरण करना विचार-स्वातन्त्र्य को ढीला नहीं करता, प्रत्युत दूरदर्शिता को प्रकट करता है। जिन जातियों ने स्वतन्त्रता एवं ऐश्वर्य की प्राप्ति की है, उनके इतिहास में हमें सैकड़ों उदाहरण ऐसे मिलेंगे, जहाँ पर कि देश व जाति के सङ्कटकाल में महापुरुषों ने अपने वैयक्तिक विचारों की बलि देकर, अपनी सेवा द्वारा जातीय ध्येय की प्राप्ति में हाथ बँटाया। इटली की स्वतन्त्रता के संग्राम में मेज़िनी और गेरीबाल्डी से बढ़ कर कोई देश-भक्त नहीं हुआ। मेज़िनी चाहता था कि स्वतन्त्र इटली में प्रजातन्त्र स्थापित हो। गेरीबाल्डी चाहता था कि उसकी प्यारी जन्म-भूमि नीस नगर स्वतन्त्र इटली के अन्तर्गत हो। किन्तु जिन परिस्थितियों तथा घटनाओं द्वारा इटली को स्वतन्त्रता मिली, वे इन महापुरुषों की उपरोक्त प्यारी आकांक्षाओं की प्राप्ति में बाधक हुईं! तथापि उन्होंने धैर्यपूर्वक इसे सहा। अमानुल्ला शाह का यह विश्वास है कि अफ़ग़ानियों ने उनके विरुद्ध बग़ावत करने में ग़लती की, तथापि वह ख़ून-ख़राबी कर अपने देश का नुक़सान नहीं करना चाहते और आज स्वदेश एवं राज्य-पद से निर्वासित होकर इटली में दिन काट रहे हैं!

आदर्श की प्राप्ति क्रान्ति का ध्येय है, किन्तु नियमानुशासन के बिना यह सम्भव नहीं। स्वतन्त्रता और उच्छृङ्खलता में ज़मीन-आसमान का फ़र्क़ है। उच्छृङ्खल मनुष्य स्वार्थी व अदूरदर्शी होता है। स्वतन्त्रता से मनुष्यों को अधिकार अवश्य मिलते हैं, किन्तु इनके साथ ही साथ उन्हें अनेक कर्त्तव्यों को भी स्वीकार करना पड़ता है। यदि मेरा यह अधिकार है कि मैं सड़क पर बेरोक-टोक चल सकूँ, तो यह मेरा कर्त्तव्य भी है कि मैं उस मार्ग में स्वयं कभी कोई रोक-टोक उपस्थित न करूँ जिस प्रकार सामाजिक एवम् व्यक्तिगत विकास के लिए मनुष्य को अधिकारों की ज़रूरत अनिवार्य है, उसी प्रकार समाज को छिन्न-भिन्न होने से बचाने के लिए कर्त्तव्य और नियम भी आवश्यक हैं। विचार-स्वातन्त्र्य का आदर्श है—उदार दृष्टि-कोण का विकास। नियमानुशासन ही विचार-स्वातन्त्र्य को रचनात्मक रूप देता और उसे क्रान्ति की आधार-शिला बनाता है।

जिस देश ने सदियों से परतन्त्र रहने पर भी विश्व-प्रेम के आध्यात्मिक आदर्श की—कम से कम सिद्धान्त

रूप में—उपासना की हो, जिस देश ने वारम्बार पराजित होते हुए भी यतो धर्मस्ततो जयः का मन्त्रोच्चार किया हो, उसी अद्भुत देश में यह भी सम्भव है कि अहिंसावाद क्रान्ति की प्रधान प्रेरक शक्ति घोषित की जाय! देश की सर्वतोमुखी क्रान्ति को अहिंसा-तत्व की शृङ्खलाओं द्वारा नियमित करना वास्तव में संसार के इतिहास की एक अपूर्व घटना है। इसमें निरस्त्र देश के नेताओं की चातुरी ही नहीं, इसमें एक महात्मा के हृदय की विशालता एवं दयाशीलता ही नहीं, इसमें भारतीय आत्मा की ध्वनि है, इसमें जातीय इतिहास व संस्कृति का उपदेश है, इसमें भारतीय मनोवृत्ति के गम्भीर ज्ञान की झलक है, इसमें संसार की विफल व अर्ध-सफल क्रान्तियों की चेतावनी है, इसमें भारत की बहुसंख्यक एवं जटिल समस्याओं की चेतनता है! यह नीति मानती है कि हमारे विपक्षी व विरोधी के भी आत्मा है, उसमें भी सद्वृत्तियाँ हैं, उसे अपना मित्र व समर्थक बनाने में ही हमारी सच्ची विजय है। मनुष्यत्व का आध्यात्मिक तत्व इसकी प्रेरणा है, विश्वमैत्री का उदार आदर्श इसका ध्येय है। सदियों के तप एवं अध्यात्म-ज्ञान में दीक्षित भारतीय आत्मा इस नीति द्वारा संसार को आत्मोद्धार का नूतन पथ दिखला रही है। यह मानव-इतिहास में आत्मबल की अग्नि-परीक्षा है। इस प्रयोग द्वारा भारत संसार को नवीन शक्ति का सन्देश दे सकेगा।

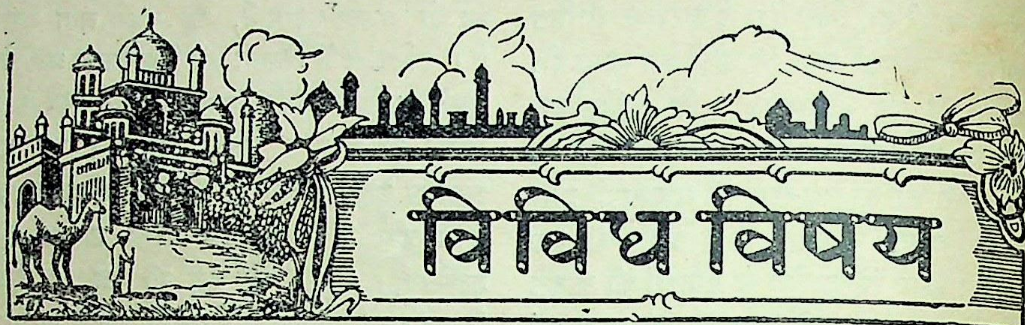
बहुमत को शान्तिमय उपायों से अपने पक्ष में करना, प्रजातन्त्र के इस सिद्धान्त का समावेश भी अहिंसा की नीति में पाया जाता है। हमारी समस्याएँ कई हैं और कठिन हैं। हम किस प्रकार इनको हल करेंगे, इसके लिए कोई कटी-छटी योजना आज निश्चित नहीं की जा सकती। इसका विकास पारस्परिक सहयोग, प्रयत्न एवं सहानुभूति से ही होगा। हमारे यहाँ ऊँच-नीच का भाव है, राजनीति में साम्प्रदायिक प्रश्न हैं, आर्थिक अवस्था में ज़मींदार व किसान, पूँजीपति व मज़दूर आदि की अनेक समस्याएँ हैं। इनका समाधान हमें करना ही पड़ेगा। यदि ख़ून-ख़राबी हुई तो दलबन्दी होगी, प्रतिशोध व ईर्ष्या के भाव जाग्रत होंगे, इनका नतीजा यह होगा कि सर्वमान्य राष्ट्रीय समझौता असम्भव हो जावेगा। अपने ध्येय की सचाई को सिद्ध करने में तप और कष्ट-सहन का जो प्रभाव पड़ता है, वह गहरा तथा स्थायी होता है। इतिहास में कितनी ही हिंसात्मक क्रान्तियाँ हुईं। जिन्हें सफलता मिली, उन्होंने न्याय-प्राप्ति के प्रयास में कितने ही अन्याय अथवा अत्याचार कर डाले! जो असफल हुईं उनका दुष्परिणाम प्रतिक्रिया के रूप में प्रकट हुआ। किन्तु अहिंसात्मक क्रान्ति एक अपूर्व क्रान्ति है; उसकी जो कुछ भी यत्र-तत्र विजय होती है, वह सच्ची एवं स्थायी होती है। उसमें अनन्त विकास का तत्व निहित है। जो हिंसा से जीतना चाहता है



महाराजा नवानगर

[गोलमेज के सदस्य]

वह हिंसा द्वारा निर्मूल भी किया जा सकता है। किन्तु जो सत्य द्वारा विजय-कामना करता है, उसको दबाने वाले अस्त्रों का प्रभाव क्षणभङ्गुर होता है। अहिंसात्मक क्रान्ति का सैनिक अपनी दृढ़ता, सत्यनिष्ठा, तप व कष्ट-सहन से विपक्षी के मानव-तत्व का अभिनन्दन करता हुआ उसे सत्य एवं न्याय की प्रभुता स्वीकार करने का निमन्त्रण देता है। कर्त्तव्य-पालन ही उसके लिए सब कुछ है—यही उसकी विजय का साधन है। जब तक वह इस पथ पर चलता है, उसे पराजय की शङ्का होती ही नहीं!!



शिक्षा और सदाचार

आधुनिक काल में पाश्चात्य शिक्षा का बड़ा महत्व है। भारतीय विश्वविद्यालयों का सङ्गठन भी पाश्चात्य ढङ्ग पर किए जाने की योजना हो रही है। स्त्री शिक्षा की अधिकांश संस्थाएँ भी इस शिक्षा-शैली से मुक्त नहीं हैं।

चारों ओर से हमारे कानों में यह आवाज़ आ रही है कि शिक्षा के बिना कोई भी जाति सभ्य नहीं हो सकती। यदि हमें आध्यात्मिक, सामाजिक अथवा राजनैतिक—किसी भी प्रकार की उन्नति करनी है तो आवश्यक है कि पहले हम शिक्षित बनें। इसी एक लक्ष्य को लेकर सारे मतमतान्तर, सारी जातियाँ और उपजातियाँ पृथक-पृथक अपनी शिक्षा सम्बन्धी संस्थाएँ खोल रही हैं। किन्तु हमें देखना यह है कि इस आधुनिक शिक्षा-प्रणाली ने हमारे सदाचार को कहाँ तक उन्नत बनाया है? यह एक प्रश्न है, जो स्वभावतः हमारे हृदयों में उत्पन्न होता है, जब कभी हम आधुनिक संसार के सभ्य समाज के जीवन और आचरण पर दृष्टिपात करते हैं।

इङ्गलैण्ड में रस्किन (Ruskin) १९वीं शताब्दी का एक प्रसिद्ध समालोचक और धुरन्धर साहित्यवेत्ता माना जाता है। उसका कथन है :—

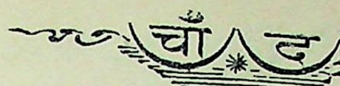
"I do not care that children as a rule should learn either reading or writing because there are very few people in this world who get any good by either. Broadly and practically, whatever foolish people read does them harm ; and whatever they write does other people harm,"

अर्थात्—"मुझे इस बात की परवाह नहीं है कि लड़कों को लिखना या पढ़ना अवश्य ही सिखाया जाय, क्योंकि संसार में बहुत थोड़े व्यक्ति ऐसे हैं, जिन्हें इससे कुछ भी लाभ होता है। अधिकांश में प्रत्यक्ष रूप से तो यही देखा जाता है कि मूर्ख लोग जो कुछ भी पढ़ते हैं उससे उन्हें हानि ही होती है, तथा जो कुछ उनकी लेखनी से निकलता है, उससे दूसरों को हानि ही पहुँचती है।"

स्वयं एक स्कूल-मास्टर का पुत्र होते हुए 'हर्बर्ट स्पेन्सर' का कथन इस सम्बन्ध में 'रस्किन' से भी अधिक माननीय है :—

"So far, indeed, from proving that morality is increased by education, the facts prove, if anything the reverse. It has been shown from Government returns that the number of juvenile offenders in the Metropolis area has been steadily increasing every year, since the institution of the Ragged School Union, and that the number of criminals who cannot read and write has decreased and the number of those who can read and write imperfectly has increased."

अर्थात्—"यह सिद्ध करने की अपेक्षा, कि शिक्षा से सदाचार की उन्नति होती है, वास्तविक परिस्थिति इसके विपरीत जा रही है। सरकारी रिपोर्ट से प्रकट है कि "रैगड स्कूल युनियन" नामक संस्था की स्थापना से लन्दन में नवयुवक अपराधियों की संख्या में प्रतिवर्ष उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही है। और प्रतिकूल इसके, उन अपराधियों की संख्या घट गई है, जो नितान्त निर-



त्तर हैं, किन्तु साथ ही अपूर्ण रूप से कुछ-कुछ लिखना-पढ़ना जानने वालों की संख्या में वृद्धि हो गई है।"

आगे चल कर 'साउथ वेल्स' (South Wales) में लोहे और कोयले की कानों में काम करने वाली स्त्रियों का उदाहरण लेकर हर्बर्ट स्पेन्सर ने सिद्ध किया है कि साधारण शिक्षा की व्यवस्था और सदाचार में कोई पारस्परिक सम्बन्ध स्थिर नहीं किया जा सकता। बुद्धि का विकास कठिनता से आचरण के लिए उपयोगी कहा जा सकता है। वे कहते हैं कि बुद्धि स्वयं एक शक्ति नहीं है, बल्कि एक साधन है; बुद्धि स्वयं कार्य नहीं करती, बल्कि अन्य शक्तियों द्वारा इससे उचित या अनुचित काम लिया जा सकता है। यह कहना कि मनुष्य विवेचना-शक्ति या बुद्धि द्वारा शासित है, इतना ही भ्रमात्मक है, जितना यह कहना कि मनुष्य पर नेत्रेन्द्रिय शासन करती है। असल में बुद्धि वह नेत्र है, जिसके द्वारा कामनाएँ अपनी तृप्ति का मार्ग खोज निकालती हैं। आगे स्पेन्सर महोदय पुनः कहते हैं कि यदि अधिक विद्या और तीव्र बुद्धि ही मनुष्य को सदाचारी बनाने के लिए पर्याप्त होतीं, तो 'बेकन' को इतना कुटिल और मिथ्यावादी तथा सुप्रसिद्ध नेपोलियन को इतना अन्यायी न होना चाहिए था।

सद्गुणहीन, दुश्चरित्र व्यक्ति समाज के लिए अधिक भयानक सिद्ध होते हैं, यदि उनकी बुद्धि को शिक्षा द्वारा तीव्र होने का अवसर मिल जाता है। यदि इन दम्भी तथा मिथ्याचारी व्यक्तियों को शिक्षा से दूर ही रक्खा जाय तो कदाचित इनके भयङ्कर विषैले प्रभाव से समाज बहुत कुछ बचा रहे।

एक पाश्चात्य अनुभवी विद्वान का कहना है कि लन्दन नगर के बड़े से बड़े घराने से लेकर, एक साधारण ग्रामीण दुकानदार तक, इङ्गलैण्ड का व्यापारिक जीवन, छल, कपट और मिथ्याचार से ओत-प्रोत है। वहाँ इस कपट-जाल एवं कुटिल नीति का बाज़ार इतना गर्म है कि एक शुद्ध सत्याचरणशील व्यापारी आधुनिक व्यापारिक सङ्घर्ष में कोई स्थान ही नहीं रखता। वहाँ प्रत्येक स्थान पर झूठी नाप, झूठी तौल, मक्कारी और अधमता का दौर-दौरा रहता है।

अस्तु, हमारे सामने एक बड़ा भारी प्रश्न यह है कि क्या बड़े से बड़े अपराधी जेलों की चहारदीवारी के अन्दर ही पाए जाते हैं? साधारण रूप से तो हम देखते हैं कि छोटे-छोटे कपटपूर्ण व्यवहार तथा आचरण सदा दण्डित होते रहते हैं, परन्तु बड़े-बड़े दुर्व्यवहारों और मिथ्याचरणों को कभी कोई पूछता भी नहीं। विविध कम्पनियों की व्यवस्था, तथा बड़े-बड़े व्यापारिक क्षेत्रों में सैकड़ों निरपराध मनुष्यों का रक्त चूस कर धन-राशियाँ कमाई जाती हैं। उनमें ऐसे-ऐसे उपायों का अवलम्बन किया जाता है, जो कपटपूर्ण और अन्याययुक्त होते हुए भी क़ानूनी शिकञ्जे से दूर रहते हैं। अधिकतर ये विकट अपराध उन्हीं शिक्षित व्यक्तियों द्वारा किए जाते हैं, जिन्हें समस्त सुविधाएँ तथा आनन्द भोगने के सारे साधन प्राप्त हैं। फिर भी लुत्फ़ यह है कि आधुनिक सभ्य समाज उनके कुकृत्यों का समर्थन करता है।



श्रीमती आत्मादेवी सूरी

दिल्ली की एक उत्साही राष्ट्रीय कार्य कर्त्री, जो इस समय लाहौर जेल में हैं।

अब भारतवर्ष की ओर दृष्टिपात कीजिए। यहाँ भी वही निराशाजनक स्थिति सामने है। वकील, डॉक्टर और देश के नेता निस्सन्देह सभी शिक्षित होते हैं, किन्तु उनमें से कितने पवित्र सत्याचरण और ईमानदारी के पक्षपाती हैं और कितने निष्काम भाव से देश की सेवा करने में समर्थ हैं? कितने वकील या बैरिस्टर ऐसे हैं, जो इस बात को भली-भाँति जान कर, कि अमुक व्यक्ति वास्तव में चोर अथवा हत्यारा है, उसके मुक़द्दमे की पैरवी करने से घृणा करते हैं? कितने डॉक्टर ऐसे हैं, जो स्पष्ट रूप से यह स्वीकार करते हुए नहीं हिचकते कि उनसे अमुक रोग के निदान में भूल हो गई और उन्होंने अनुचित इलाज करके रोगी की दशा और भी भयङ्कर बना दी? कितने प्रोफ़ेसर या अध्यापक ऐसे हैं, जो छात्रों के सामने अपनी भूल स्वीकार करते हुए लज्जित नहीं होते और इस प्रकार होनहार नवयुवकों को अशुद्ध मार्ग का अवलम्बन करने से बचा लेते हैं? क्या हम प्रत्यक्ष नहीं देखते कि बड़े-बड़े धुरन्धर नेता अपनी नीति और सिद्धान्तों को समय-समय पर बदलते रहते हैं—इसलिए नहीं कि उन्हें अपने पूर्व निश्चित सिद्धान्तों में कोई दोष दृष्टिगोचर होता है, बल्कि केवल इसलिए कि या तो समाज में अपना नाम और अपनी प्रतिष्ठा स्थिर रख सकें, अथवा राजनैतिक क्षेत्र में किसी शत्रु को नीचा दिखा सकें। इस देश में कतिपय प्रसिद्ध नेताओं के ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है, जिन्होंने अधीनस्थ कमिटी अथवा परिषद् पर अपने वैयक्तिक विचारों की अन्यायपूर्ण छाप लगाने में तनिक भी सङ्कोच नहीं किया और साथ ही उन व्यक्तियों को घोर अपमानित किया, जिन्होंने उनका विरोध करने का प्रयत्न किया।

शिक्षा-विभाग का पवित्र क्षेत्र भी इस विषाक्त वातावरण से मुक्त न रह सका। वहाँ भी कपट, अन्याय और पक्षपात की तूती बोल रही है। विश्वविद्यालयों की उच्च परीक्षाओं में दिए जाने वाले अङ्कों (Marks) के व्यापार को जाने दीजिए। इस पर समाचार-पत्रों में आलोचनाएँ होती ही रहती हैं। इण्ट्रेन्स की परीक्षा के विविध केन्द्रों पर निरीक्षकों (Guards) के कदाचार के पर्याप्त प्रमाण विद्यमान हैं। क्या ये सभी निरीक्षक सभ्य और शिक्षित नहीं होते? उनमें से कोई वकील होते हैं और कोई अध्यापक। फिर भी कितनी लज्जा की बात है कि वे परीक्षार्थियों को गुप्त रूप से पुस्तकें देकर, प्रश्नों के उत्तर बता कर, अक्षर-रचना की अशुद्धियों (Spelling mistakes) की ओर सङ्केत करके, जॉमेट्री की शक्लें खींच कर, तथा अन्य उपायों द्वारा परीक्षा-हॉल में उनकी सहायता करते हैं। इस दुराचार के सुधार का कोई भी प्रयत्न सफल नहीं होता, क्योंकि सहायक और सहायता पाने वाले दोनों ही समान रूप से कलुषित-वृत्ति रखते हैं। अतः सच्चाई पर सफलतापूर्वक पर्दा डालना आसान होता है। परिणाम-स्वरूप यह पापाचार वर्षों से चला आ रहा है, जिसे छोटे से बड़े तक सभी जानते हैं, किन्तु कोई भी उँगली उठाने का साहस नहीं करता। विक्टोरिया कॉलेज जैसूर (Jessoore) के प्रसिद्ध विद्वान मि० रमेशचन्द्र बनर्जी, एम० ए०, लिखते हैं कि सन् १९२८ ई० में उनके एक मित्र को, जो एक परीक्षा-केन्द्र में निरीक्षक का कार्य सम्पादन के लिए भेजे गए थे, कुछ विद्यार्थियों ने इसलिए पीटा था कि उन्होंने एक अन्य निरीक्षक के अधम कार्य का विरोध किया था, क्योंकि वह एक परीक्षार्थी के प्रश्नों के उत्तर लिखा रहा था। गत वर्ष लेखक के एक मित्र को एक परीक्षा-केन्द्र में निरीक्षक के रूप में, विशेषकर इसलिए भेजा गया था कि वह प्रधानाध्यापक के दो-चार निकटतम विद्यार्थियों की परीक्षा-हॉल में सहायता कर सकें। यह है हमारे देश की स्थिति और यह हैं कुछ इस कदाचार के नमूने, जो सदाचार (Morality) का गला घोट रहे हैं।

सार्वजनिक जीवन के इस अन्धकारमय दृश्य की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करना ही इस लेख का मुख्य प्रयोजन है। इस विषय में सुधार की कितनी आवश्यकता है, यह विज्ञ पाठक स्वयं समझ सकते हैं। यही कारण है जो शिक्षा-प्रणाली को बदनाम किए हुए हैं। निस्सन्देह हमारे शिक्षित समुदाय ने ऐसे-ऐसे उच्च कोटि के सराहनीय कार्य किए हैं, जिनके लिए हमें अभिमान होना चाहिए। किन्तु फिर भी उपरोक्त दूषणों और त्रुटियों को दूर करने की आवश्यकता है। अन्यथा कोरा प्रकृतिवाद हमें न जाने कहाँ से कहाँ बहा ले जायगा।

सभी बातों पर हर पहलू से पूर्ण विचार करके हम इस परिणाम पर पहुँचने के लिए बाध्य होते हैं, कि देश की वर्तमान शिक्षा-प्रणाली—जिसमें केवल बुद्धि की शिक्षा और उसके विकास पर ही ज़ोर दिया जाता है—सदाचार

की उन्नति के लिए पर्याप्त नहीं है। जब तक कि बचपन ही से सदाचार, आस्तिकता और अध्यात्मवाद की छाप बालकों के मस्तिष्क पर न लगाई जाय, तब तक कोरा बुद्धि का विकास पापवृत्तियों के सामर्थ्य की ही अभिवृद्धि करेगा। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि एक शिक्षित डाकू अथवा हत्यारे के लिए क़ानून के शिकञ्जे से बच कर, सार्वजनिक जीवन व्यतीत करते हुए भी, पापवासनाओं को तृप्त करना कहीं सुगम होगा। अतः हमें शिक्षा का दुरुपयोग नहीं करना चाहिए।

—बुद्धिसागर वर्मा, विशारद,
बी० ए०, एल० टी०

* * *

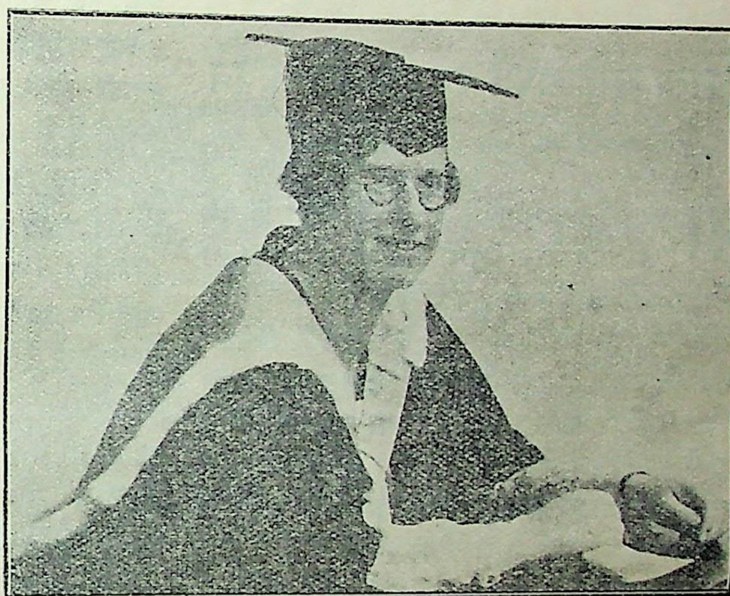
वैधव्य

भारतीय विधवाओं की अवस्था सर्वथा करुणोत्पादक है। इनकी दर्दनाक दशा देख पत्थर सा कलेजा भी पिघल जाता है। बरबस सहानुभूति हो जाती है। फिर भी कुछ स्वार्थियों की छत्र-छाया में इन्हें सुख-शान्ति मिलने की आशा नहीं।

पण्डिताभिमानी धार्मिकों का फ़तवा है—"वैधव्य-दुख झेल कर ही विधवा स्वर्ग जायगी", पर क्या इन्हें कुछ बसन्त की भी ख़बर है? सारे संसार की जन-संख्या क़रीब डेढ़ अरब की है, और कहीं भी विधवाओं का पुनर्विवाह स्वर्ग की राह में रोड़ा नहीं अटकाता। और क्या, तीस करोड़ भारतीयों में भी, सात करोड़ मुसलमानों के घर और उतने ही अछूतों में विधवाएँ ठुकराई नहीं जातीं। आर्य-समाजी, ब्रह्म-समाजी और कृस्तानों में भी विधवाओं को पूरी स्वतन्त्रता है। हलवाई, कुर्मी तथा अहीरों ने भी अपनी बहू-बेटियों के दुखों को देखा है। केवल पाँच-सात करोड़ ब्राह्मण, क्षत्रियों में ही यह प्रथा है। उसमें भी स्त्रियों की संख्या पुरुषों से आधी ही होगी, और थोड़ी सी विधवा! तब क्या कुछेक लाख विधवाओं को सता कर ही इन धर्म के ठेकेदारों का स्वर्ग बसेगा?

सिन्दूर-विहीन ललाट के सिवा सधवा और विधवा में क्या भेद है? ईश्वर की ओर से यदि उसके शरीर में लावण्य का लेप सधवा की भाँति लगाया नहीं जाता, श्रेणी का गौरव और अपाङ्गों—नयन का कौतूहल छीन लिया जाता, सृष्टि करने की शक्ति नष्ट कर दी जाती, तब एक मत से सबको मानना पड़ता कि यह ईश्वरीय आज्ञा है, और उसकी अवहेलना करने का साहस किसी को भी नहीं होता। लेकिन यहाँ की हालत तो माक़ूल के बदले प्रतिकूल है।

मदन का पञ्चम शर पुरुषों की भाँति ही तो स्त्रियों पर पड़ता है। तब यह कौन सा नियम है कि अपत्नीक शादी करे और विधवा ज़ार-ज़ार रोवे। काम्य-विवाह की आज्ञा शास्त्रकारों ने खुले-आम दे रक्खी है और पुरुषों ने इसे ख़ूब अपनाया भी है। फिर भी हिन्दुओं के घर की विधवा कातर है, तरसती है और साँझ-सबेरे झाड़ुओं की मार से देह का दर्द मिटाती है!



मिस ए० जी० गिलेस्पी

आप हसन (मैसूर) के अस्पताल में लेडी डॉक्टर हैं और हाल ही में स्थानीय डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की मेम्बर नियुक्त की गई हैं।

किसी का कथन है कि—विधवा-विवाह होने से पतिव्रताओं की संख्या कम हो जायगी। पर उन्हें मालूम नहीं कि कोई भी माथा रखने वाला पुरुष एकादशी का व्रत, एकादशी बीते नहीं रखता। उसी तरह पति के मर जाने पर स्त्रियों का पातिव्रत्य कैसा? हाँ, यदि वह दूसरी शादी कर ले तो फिर से पतिव्रता हो सकती हैं।

—साहित्याचार्य 'मग'

* * *

पाश्चात्य महिलाओं का दुखमय जीवन

आजकल अक्सर पूछने पर लोग कहते हैं कि पाश्चात्य स्त्रियाँ सुखी हैं, उन्हें सब प्रकार की स्वतन्त्रता हासिल है। वे उच्च श्रेणियों तक बेरोक-टोक पढ़ सकती हैं, पब्लिक में व्याख्यान दे सकती हैं, थियेटरों में पार्ट ले सकती हैं, और क्लबों में गाना-बजाना और नाचना ख़ुशी से सीख सकती हैं। पर क्या अभी तक किसी ने यह विचार किया है कि उनकी अन्दरूनी हालत क्या है? यदि सच पूछा जाय तो हम यही कहेंगे कि हमारे देश की स्त्रियाँ मिस मेयो की बहिनों से कहीं अच्छी अवस्था में हैं। कम से कम इन्हें पाश्चात्य स्त्रियों की तरह विवाह की खोज में वर्षों तक भटकना तो नहीं पड़ता है। उन देशों में जब कुमारी १५-१६ वर्ष की हो जाती हैं तो उनके माता-पिता उनसे अपनी शादी करने के लिए कहते हैं। अमीरों के घर की तो बात ही क्या, उन्हें तो किसी प्रकार वर मिल ही जाता है, पर निर्धनों के घर की कुमारियों को इस विशाल संसार में अपना पति ढूँढ़ना अनिवार्य हो जाता है। यदि न ढूँढ़ें तो भूखों मरें। सहृदय पाठक सोचें, उस समय उनकी क्या अवस्था होती होगी। नाचना-गाना इत्यादि पाश्चात्य सभ्यता के मुख्य अङ्ग समझे जाते हैं। इन विद्याओं में यदि वे कुमारियाँ पारङ्गत नहीं हैं, तो उनकी कुछ भी क़द्र नहीं। अतः यह कला उन्हें अनिवार्य रूप से बाल्य-काल से ही सीखनी पड़ती है। अनेक युक्तियाँ वे दिन-रात सोचा करती हैं, जिससे शीघ्र विवाह हो। इस समय वे गृह-शिल्प और धार्मिक शिक्षाएँ तो कहाँ से सीखेंगी, वरन अपनी पवित्रात्मा को सदैव कलुषित कल्पनाओं से काली ही करेंगी। उन्हें गाना-बजाना और अर्द्ध-नग्न होकर नाचना बलपूर्वक सिखाया जाता है। क्या ये कर्म हमारे देश के भाँड़ों के ऐसे नहीं हैं?

जिधर देखिए उधर ही इन कुमारियों की भरमार दीख पड़ेगी। क्या क्लब, क्या मजलिस, क्या महफ़िल—सभी जगह वे अपने भावी-पति की तलाश में गर्क़ रहती हैं। यदि दैव-संयोग से कोई आफ़त का मारा पति इन्हें मिल भी गया तो यह आशङ्का उनको हमेशा सताया करती है कि यह पति क्षणिक है, या स्थायी। ऐसी हालत में प्रेम की आशा ही क्या की जा सकती है?

कितनी स्त्रियाँ तो जन्म भर पति-विहीन ही रह जाती हैं और 'हाय ब्याह' 'हाय ब्याह' कर जहन्नुम में चली जाती हैं। कितने पुरुष भी जन्म भर "ब्रह्मचारी" ही रहते हैं। इनके चरित्र पर आक्रमण करना हमें उचित प्रतीत नहीं होता।

कितनी ही बालिकाओं को, जब कोई चारा नहीं रहता, तो वे होटलों या पोस्ट-ऑफ़िसों में नौकरी करने लगती हैं और जन्म भर जूतों में स्याही लगाते, बर्तन माँजते और झाड़ू देते रह जाती हैं। ये बेचारी दासियों की तरह ज़िन्दगी व्यतीत करती हुई संसार से चल बसती हैं। आप कल-कारख़ानों में जाकर देखें तो पता चलेगा कि सैकड़ों अल्प-वयस्का किस प्रकार वहाँ दिन भर अविरल एवं कठोर श्रम करती रहती हैं। यह है वहाँ के सुधारवादियों का स्त्री-जाति के प्रति सम्मान! और यह है हमारे देश के जैण्टिलमेनों का नरम मुलम्मा, जो सदा इन बुराइयों पर फेरा करते हैं।

अधिक बातें कह कर हम पाठकों के हृदय को कलुषित करना नहीं चाहते। इन्हीं दो-चार बातों से हम उन पाश्चात्य सभ्यताभिमानियों की केवल आँख खोल देना चाहते हैं, जो उस सभ्यता की बिजली की चकाचौंध के चक्कर में पड़े भटक रहे हैं। ख़ुदा उन 'सभ्य' जातियों को शीघ्र नरक से निकाले।

—उपेन्द्रनारायण सिंह

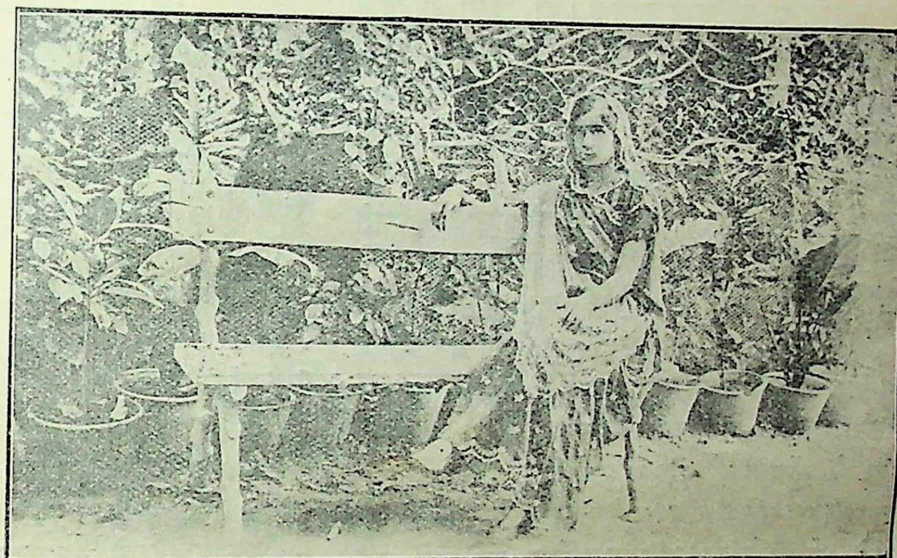
* * *

बकराईद (क़ुर्बानी ईद)

प्राचीन काल में इब्राहीम नाम के सुप्रसिद्ध महात्मा हो गए हैं, इनका एक परम भक्त पुत्र इस्माइल नाम का था। इब्राहीम परमेश्वर के बड़े भक्त थे और ईश्वरीय आज्ञा ही के सदैव पालनार्थ महान कष्ट उठाते थे। एक समय ईश्वर ने इनकी भक्ति के परीक्षार्थ स्वप्न में कहा कि "अब तू सचेत हो और क़ुर्बानी दे" (बलिदान कर)। इब्राहीम ने प्रथानुसार प्रातःकाल १०० ऊँट बलिदान कर दिए, पर फिर भी स्वप्न में कहा गया कि "भक्त इब्राहीम, अपनी प्रिय वस्तु का बलिदान कर।" भक्त इब्राहीम ने प्रातःकाल फिर अपनी जायदाद को दान कर दिया, और जितने ऊँट थे सबका बलिदान कर दिया, पर फिर भी स्वप्न में आदेश हुआ कि "मेरे प्यारे भक्त, अपने एकलौते पुत्र का बलिदान शीघ्र दे।"

बस इब्राहीम ने प्रातःकाल अपने आज्ञाकारी पुत्र को बुला कर कहा कि बेटा चलो आज जङ्गल में ईश्वरीय आज्ञा का पालन करेंगे। पुत्र को कब इनकार हो सकता है। सहर्ष पिता के साथ जङ्गल को चले। पिता ने एक तेज़ छुरी और रस्सी साथ में लेकर जङ्गली राह पकड़ी। वहाँ ले जाकर उस स्वप्न को अपने पुत्र से स्पष्ट कहा। इस्माइल ने कहा—पिता जी, मेरे सौभाग्य के कारण यह आदेश हुआ है। मैं तैयार हूँ, पर इन बातों पर ध्यान अवश्य दीजिए :—

"मेरे बलिदान की माता को ख़बर बिलकुल मत दीजिएगा। बलिदान के समय मेरी आँखों में ६ पट्टियाँ और अपनी आँखों में भी ६ पट्टियाँ बाँध लीजिए। तथा रस्सी से मेरा शरीर अच्छी तरह कस कर बाँध दीजिए। जिससे आपको व मुझे मोह उत्पन्न न हो जाय। इस्माइल के आदेशानुसार पिता ने इसी भाँति करके जो छुरी चलाई तो ईश्वरीय दूत ने भक्त के रक्षार्थ इस्माइल को उठा लिया। तथा वहाँ एक भेड़ आ गई और उस पर ही बालक के धोखे छुरी चली। उस पशु ने कुछ शब्द मैं-मैं वग़ैरह कहे, जिससे महात्मा इब्राहीम को अपने पुत्र पर बड़ा क्रोध आया, किन्तु आकाशवाणी के होने से शीघ्र शान्ति हो गई।



श्रीमती कृष्णाकुमारी सिन्हा

आप बनारस के हिन्दू विश्वविद्यालय की विद्यार्थिनी हैं। आजकल आप राष्ट्रीय आन्दोलन में बड़ी लगन से भाग ले रही हैं।

मुसलमानों का यह धार्मिक त्योहार जिल्हज़* माह की दसवीं तारीख़ को बड़े प्रेम व हर्ष से मनाया जाता है। अपने-अपने स्थानों में मसजिद में एकत्र होकर ईश्वराराधना करते, दान करते, अनाथों, मित्रों को अच्छे-अच्छे भोजन कराते और क़ुर्बानी (बलिदान) करते हैं। और उस महात्मा इब्राहीम व इस्माइल की पूजा करते, तथा उपासे भी रहते हैं।

ईदें दो होती हैं—(१) ईदुल फ़ित्र (मीठी ईद),

*मुस्लिम बारहवाँ माह।

(२) ईदुलज़ोहा (बकराईद)। इनमें अन्तर नाम से ही प्रकट होता है कि एक त्योहार मीठे भोजन का सूचक है, दूसरा "बकरा" मांस के भक्षण का सूचक है। इनके इतिहास में भी अन्तर है। हमें आज बकराईद से ही सम्बन्ध है, इसीलिए मीठी ईद का विवरण फिर कभी प्रकट करने का साहस करेंगे। बकराईद इसीलिए नाम रक्खा गया है कि उस दिन बकरे का बलिदान ही अधिकांश किया जाना चाहिए।

क़ुरानशरीफ़ में स्पष्ट आज्ञा है कि "तू क़ुर्बान हो जा" पर मुसलमान ख़ुद का बलिदान न कर बेचारे दीन पशुओं का बलिदान करते हैं। हाँ, किसी धर्मदेव ने कहा है कि मुसलमान एक तलवार के अनुसार हैं। इसलिए इनको निर्दयी स्वभाव रखने के लिए कम से कम साल भर में एक पशु का बध करना ही चाहिए, जिससे इनमें दया न आ जावे। दूसरे मुस्लिम विद्वान कहते हैं कि मुसलमान गोश्त (मांस) अधिक पसन्द करते हैं, इससे कम से कम इस त्योहार का थोड़ा सा सङ्केत पाकर दीनों, मित्रों और कुटुम्बियों को अच्छा पदार्थ खिलाने व खाने के बहाने क़ुर्बानी करते हैं। पर पवित्र क़ुरान में लिखा है कि "बलिदान न ख़ुदा को पहुँचता है, न ख़ुदा चाहता है।" मैं भी यही समझता हूँ कि न तो गोश्त और ख़ून ख़ुदा को पहुँचता है और न समझदार ईश्वर को पहुँचाना ही समझते हैं और न ऐसा समझना ही चाहिए। हमारे कट्टर धर्मान्ध भ्राता इस दिन कहीं-कहीं अपने पड़ोसी भाइयों को दुखित करने के लिए बड़े-बड़े षड्यन्त्र रचते हैं और इस प्रकार मुस्लिम धर्म को कलङ्कित करते हैं। मुझे आश्चर्य है कि नाम बकराईद और करें गोवध! यह क्या है? यह केवल अपने पड़ोसियों को चिढ़ाना है। मान लिया कि किसी मुस्लिम-ग्रन्थ ने व किसी मुस्लिम मौलाना ने हमें गोबध की आज्ञा भी दी है, तो समयानुकूल हम अपनी स्थिति के अनुसार उस आज्ञा को भङ्ग करना भी अपना दोष नहीं समझेंगे। गोमाता से आज भारत को हर प्रकार का सुख प्राप्त होता है और भारत में ही हमको रहना है, फिर ऐसे उपयोगी पशु का बध करके अपने हाथ से अपने पैर पर कुल्हाड़ी मारना नहीं, तो क्या है? दूसरे अपने पड़ोसियों को दुखित करना घोर पाप ही नहीं, बल्कि अनर्थकारी है। इस दूषित कृत्य को एकदम बन्द कर देना चहिए। यदि तुम्हारा धर्म सच्चा है और मोक्ष को सरल मार्ग से ले जाने वाला है तो तुम ख़ुद सच्चे बनो और अपने धर्म-सिद्धान्तों से जगत को मोहित करके बताओ कि हमारा पवित्र धर्म इन सिद्धान्तों का समुद्र है।

इस त्योहार से होनहार सन्तति को शिक्षा मिलती है कि हमारे पूर्वज कैसे भक्त, आज्ञा-पालक, वीर, साहसी और धर्माभिमानी थे।

—सय्यद क़ासिमअली

* * *

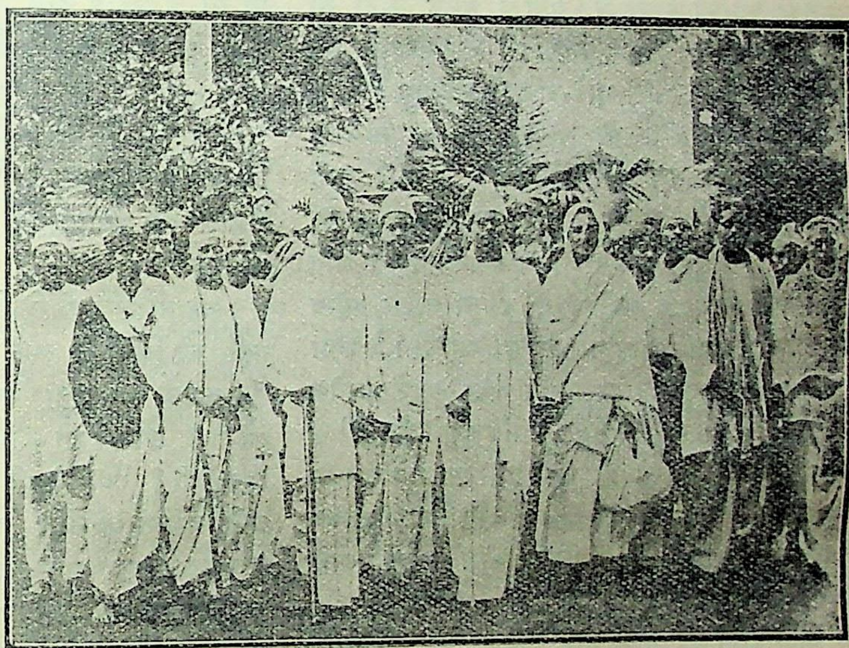
स्त्री-स्वातन्त्र्य संग्राम

हमारे वर्तमान स्वातन्त्र्य आन्दोलन में जो सब से अधिक महत्व की बात है, वह यह है कि इसमें स्त्रियाँ भी सम्मिलित हैं। उन्होंने, यदि पुरुषों से अधिक नहीं, तो उनके बराबर ही वीरता, धैर्य, सहनशीलता और आत्म-त्याग का परिचय दिया है। जिस क्रियात्मक (Active) और सामूहिक रूप से वे आज पुरुषों का साथ दे रही हैं, वह तो भारतवर्ष के इतिहास में एक अभूतपूर्व बात है। हम अपने इतिहास के अन्दर लक्ष्मीबाई और दुर्गावती दिखा कर अपनी स्त्रियों की स्वतन्त्रता और वीरता का दम नहीं भर सकते। वे तो केवल वैयक्तिक प्रतिभा के उदाहरण हैं। हम भारतीय राजपूतनियों के जौहर-व्रत को भी एक निष्क्रिय (Passive) साहस से बड़ा नाम नहीं दे सकते। और इस प्रकार हम भारत की वीराङ्गनाओं के वर्तमान साहस और वीरता के कार्यों को उनके अतीत के किसी भी प्रशंसनीय कार्य से अधिक उच्च स्थान देते हैं।

हमारे देश के राजनैतिक आन्दोलन के साथ-साथ कई आन्दोलन चल रहे हैं। स्त्री-स्वातन्त्र्य का आन्दोलन इसमें प्रमुख है। इस आन्दोलन ने स्त्री-स्वातन्त्र्य के आन्दोलन को इतनी बड़ी और इतनी आवश्यक सहायता पहुँचाई है, जिसके न मिलने से ही स्त्री-स्वातन्त्र्य का आन्दोलन, देश के लिए इतने महत्व का होने पर भी, केवल शिथिल रूप से चल रहा था। वह बड़ी और आवश्यक सहायता कौन सी है? अब तक हमारे देश में स्त्री-स्वतन्त्रता के पक्षपाती केवल वे पुरुष थे, जिनका हृदय

स्त्रियों की दुःखमय दशा से द्रवीभूत हो रहा था। स्त्रियों की ओर से कोई माँग न थी, उनकी ओर से कोई दावा न था। यह एक इतिहास-सिद्ध बात है कि कोई भी गिरी हुई जाति अथवा संस्था उस समय तक अपनी दशा सुधार नहीं सकती, जिस समय तक वह स्वयं प्रयत्नशील नहीं होती। स्वतन्त्रता, चाहे वह किसी देश की हो या किसी समाज की, देने की चीज़ नहीं है—वह तो ले सकने की चीज़ है। स्त्रियाँ आज हमारे साथ-साथ देश के संग्राम में पड़ कर अपनी शक्ति का ज्ञान कर रही हैं। एक बार उन्हें जहाँ अपने अन्दर पुरुषों के समान शक्ति का भान हुआ, वे पुरुषों के समान अधिकारों की माँग करने में देर न लगाएँगी। आज का आन्दोलन उन्हें अपने बल पर, अपने अधिकारों के लिए, खड़ा होने की शिक्षा दे रहा है। और हमारी स्त्रियाँ उसे तत्परता से सीख भी रही हैं।

स्त्रियों की इस तत्परता और जाग्रति पर कौन ऐसा भारतवासी है, जिसे अभिमान न होगा। पर साथ ही साथ हमें अपनी स्त्रियों को बतला देना चाहिए कि अभी उनके काम का केवल श्रीगणेश ही हुआ है। अभी उनके संग्राम का केवल बिगुल ही बजा है और उनमें से केवल कुछ ही लाइनों में आकर खड़ी हो पाई हैं। उन सब कार्यों का ध्यान रखते हुए भी, जो उन्होंने इन छः महीनों के अन्दर किए हैं, यह कहना पड़ता है कि उनके साथ नगरों की प्रायः पढ़ी-लिखी स्त्रियों के सिवा और कौन हैं? अपढ़ स्त्रियाँ एक बहुत बड़ी संख्या में अभी अपने घरों की दीवालों के घेरे में पड़ी हुई हैं! ग्रामों के अन्दर तो ऐसा मालूम होता है, कि समय परिवर्तनशील है ही नहीं। स्त्री-जाति की सच्ची जाग्रति तो उस समय होगी, जब हम क्या नगर, क्या ग्राम, क्या पढ़ी और क्या अपढ़—सभी के अन्दर अपनी स्वतन्त्रता पाने की चाह देखेंगे। वह समय आवेगा अवश्य; पर उसके लिए हमारी स्त्रियों को बलिदानों के लिए तैयार होना पड़ेगा। सामाजिक दासता दूर करना राजनैतिक दासता दूर हटाने से, अधिक नहीं, तो किसी तरह कम कठिन काम नहीं है! हम इस कठिनता को दिखा कर अपनी स्त्रियों को डराना नहीं चाहते। हमारा उद्देश्य तो यह है कि वे उनके आने के पहले ही अपने को पूर्ण रीति से तैयार कर लें; जिससे निर्भीकता से उनका सामना कर सकें। हम सदा इस बात की आशा रखते हैं कि भारत की वीर नारियाँ, कठिनाइयों के आने पर, अन्य देश की स्त्रियों की अपेक्षा अधिक साहस और दृढ़ता का उदाहरण संसार के सामने उपस्थित करेंगी।



अभी हाल में मिस स्लेड (मीराबाई) कोकोनाडा के गाँधी-स्कूल का निरीक्षण करने गई थीं। यह चित्र उसी अवसर पर लिया गया था!

नारी-स्वतन्त्रता का आन्दोलन आज केवल भारतवर्ष में ही नहीं, संसार के अन्य-अन्य देशों में भी चल रहा है। पर जितने वेग से यह रूस के कुछ भागों में चल रहा है उतना कहीं भी नहीं। आज हम रूस के स्त्री-स्वातन्त्र्य आन्दोलन की कुछ चर्चा करके भारत की

स्त्रियों को यह बतलाना चाहते हैं, कि जब समय आवे तब वे भी रूसी स्त्रियों के समान अपने आपको समाज-सुधार की बलिवेदी पर क़ुर्बान कर दें।

अभी थोड़े ही दिन की बात है कि समाचार-पत्रों में उज़्बेकिस्तान के सोवियट प्रजातन्त्र की उप-सभानेत्री के विषय में एक लेख छपा था। उनके विषय में यह कहा जाता है कि जब वे १२ वर्ष की थीं तब एक साठ-पैंसठ वर्ष के बूढ़े के हाथ बेंच दी गई थीं। उस बूढ़े की चौथी बीबी बन कर एक बड़े कड़े पर्दे के अन्दर वे किसी तरह दो वर्ष रहीं। फिर वे ताशक़न्द भाग गईं। भाग जाने में अनेकों बड़े-बड़े सङ्कट थे। यदि वे पकड़ जातीं, तो उन्हें अवश्य ही मृत्यु-दण्ड मिलता। ताशक़न्द में एक निर्वासित, अनाथ, और दाने-दाने को मुहताज होने पर भी उन्होंने पढ़ना-लिखना सीखना आरम्भ किया। थोड़े ही दिन पश्चात रूस में क्रान्ति मची और उन्हें बाहर आने का अवसर मिला। स्वतन्त्रता की प्रचण्ड हृदय-ज्वाला ने उन्हें एक अनुपम व्याख्यानदाता बना दिया। कष्टों को सहन करते-करते उनका साहस अदम्य और उनकी क्रियाशीलता परिपक्व हो गई थी। वे शीघ्र ही साम्यवादी दल में उच्च स्थान प्राप्त करके उज़्बेक महिलाओं की आदर्श बन गईं। यद्यपि पुराने विचारों के लोग उनसे ईर्ष्या करते ही रहे! और आज वे लगभग ३० वर्ष की अवस्था में उज़्बेकियन सोवियट प्रजातन्त्र की उप-सभानेत्री हो गई हैं। आप कॉमरेड आबीडोवा के नाम से प्रसिद्ध हैं।

आबीडोवा की कथा कोई अनुपम कथा नहीं है। आज रूस की हज़ारों, लाखों स्त्रियाँ राजनैतिक कार्यक्षेत्र में आ गई हैं। वे सोवियट सभाओं में बैठती हैं और स्त्रियों के अन्दर प्रचार-कार्य में सहायता देती हैं। और उनमें से हर एक स्त्री अपनी, आबीडोवा जैसी या उससे भी अधिक वीरता और क्रान्तिपूर्ण कथा सुना सकती है।

पश्चिम के कई देशों में जो स्त्रियों के वोट देने इत्यादि के झगड़े चल रहे हैं, यदि उनकी तुलना रूस के स्त्री-स्वातन्त्र्य आन्दोलन से की जाय, तो वे केवल एक खेल-से मालूम होंगे। वहाँ जो स्त्रियाँ अपने अधिकारों को माँगती हैं, उन्हें अपने को मृत्यु और अत्याचारों को सहन करने के लिए तैयार होना पड़ता है। वह साम्यवादिनी युवती, जो गाँव-गाँव में स्त्री-स्वाधीनता का प्रचार करने जाती है, उसका जीते जी लौट आना सौभाग्य की बात समझी जाती है। कभी-कभी ऐसी युवतियों के टुकड़े-टुकड़े करके नगरों में भेज दिए जाते हैं! एक बोरे पर एक बार यह लिखा हुआ आया कि 'यह लो अपनी स्त्रियों की स्वाधीनता।' जब बोरा खोला गया तो उसके अन्दर एक युवती के सारे अङ्ग काट-काट कर बँधे हुए मिले!!!

सुधार के प्रतिरोधियों की यह दशा उस जगह की है, जब कि वहाँ की सरकार पूर्णरूप से स्त्री-स्वतन्त्रता की पक्षपाती है। कोई भी मनुष्य खुल्लम-खुल्ला सुधारों का विरोध करने पर कठिन दण्ड का भागी होता है। इतने पर भी वे विरोध करते ही जाते हैं। पर साथ ही साथ स्त्रियाँ भी अपने कार्य में किसी प्रकार से हतोत्साह नहीं होतीं। और आज भी अगर कोई सोवियट की कचहरियों में जाए तो उसे अनेकों ऐसे केस सुनने को मिलेंगे, जिनमें इन देवी-स्वरूपा स्त्री-स्वाधीनता की उत्साही प्रचारिकाओं की हत्या पुराने विचारों के पक्षपातियों द्वारा की गई हैं!

यह तो रूस की स्त्रियों की दशा है। अब हम अपने यहाँ की स्त्रियों से एक प्रश्न पूछना चाहते हैं। क्या वे भी अपनी स्वतन्त्रता इसी तन्मयता से पाने का प्रयत्न करेंगी? क्या वे भी अपने बन्धनों को तोड़ कर बाहर निकलेंगी? क्या वे भी सड़ी और गन्दी परम्परा के प्रति क्रान्ति करेंगी? क्या वे भी गाँव-गाँव में घूम-घूम कर स्त्री-स्वतन्त्रता का प्रचार करेंगी? क्या वे भी अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए अपने विरोधियों की तलवारों के नीचे अपनी गर्दनें रक्खेंगी? सम्भव है, वे समझें कि हमारे देश में ऐसी क्रूरता न होगी, हम ये काम बड़ी सरलता से कर लेंगी। पर उन्हें ऐसा न समझना चाहिए। अङ्गरेज़ी में एक कहावत प्रसिद्ध है "Customs die Hard"—रूढ़ियाँ चिमड़ी होती हैं, ये जल्दी नहीं टूटतीं, ये जल्दी नहीं मरतीं! फिर चाहे वे रूस की हों अथवा भारत की!

परन्तु हमें पूरा विश्वास है कि भारतीय स्त्रियाँ, अपने स्वातन्त्र्य संग्राम को, उस समय तक बन्द न करेंगी, जब तक कि उन्हें पूरी सफलता न मिल जाय, चाहे इसके लिए उन्हें कितनी ही बड़ी क़ीमत देनी पड़े, कितनी ही आपत्तियाँ सहनी पड़ें और कितनी ही क़ुर्बानियाँ करनी पड़ें। हमारा भविष्य आशापूर्ण है—

"शुभ आरम्भ आधी सफलता है।" और कौन कह सकता है कि हमारा आरम्भ शुभ नहीं है ?

—राजेन्द्रकुमार, बी० ए०

* * *

बालकों की अकाल-मृत्यु के कुछ कारण

भारतवर्ष में बच्चों के रोग और उनकी मृत्यु की संख्या सब मुल्कों से अधिक है। इस हालत को सुधारने के लिए आजकल प्रायः सभी बड़े-बड़े शहरों में प्रदर्शनियाँ होनी आरम्भ हो गई हैं। उनका उद्देश्य यह है कि बच्चों के पालन-पोषण के लिए ज़रूरी जानकारी माताओं को व्याख्यानों द्वारा और उत्तम उदाहरणों से पहुँचाई जाय, जिनसे इस देश के बच्चों का आरोग्य बढ़ सके।

परन्तु ख़याल रहे, कि जिन ख़राबियों के कारण ये बीमारियाँ और यह मृत्यु-संख्या भारतवर्ष में बढ़ती हैं, उन ख़राबियों को जब तक दूर न किया जाएगा, तब तक भारतवर्ष की सन्तानों की इस दयनीय दशा का सुधरना कठिन है। उत्तम शिक्षा और उत्तम पालन-पोषण से प्रत्येक मनुष्य की अवस्था कुछ न कुछ तो ज़रूर सुधर जाती है। परन्तु जब किसी मकान की नींव ही खोखली और कमज़ोर हो तो ऊपर की दिखावटी मरम्मत से उसका कुछ सौन्दर्य भले ही बढ़ जाय, उसकी मज़बूती नहीं बढ़ सकती। ऐसे मकान के गिर जाने का भय हर वक्त ही बना रहता है। इसी प्रकार बच्चों की वाह्य-रक्षा के साथ उनके जीवन की नींव को मज़बूत करने की सब से बढ़ कर ज़रूरत है। यदि माँ-बाप ख़ुद रोग-ग्रस्त रहते हों, तो उनकी सन्तान भी प्रायः रोगी ही रहेगी। ऐसे बच्चों की चाहे बाहर से कितनी ही रक्षा और निगरानी की जाय, परन्तु जो कमज़ोरी एक रोगिणी माता के शरीर और दूध से विरासत में मिली है, वह कभी दूर न हो सकेगी !

भारतवर्ष की कई एक कुरीतियों के कारण आजकल हज़ारों और लाखों नहीं, बल्कि करोड़ों घर शोक-स्थान बन रहे हैं। ऐसे घरों में दुखिया व मज़लूम माताओं के दुख-दर्द भरे दूध को पीकर बालक प्रायः रोगों और अकाल मृत्यु का ग्रास होते हैं, तथा भारतवर्ष में मृत्यु की संख्या को बढ़ाने का कारण बनते हैं। अतः हरेक माँ-बाप, क्या अमीर, क्या ग़रीब, सबके विचारार्थ कुछ ऐसे उपाय नीचे लिखे जाते हैं, जिन पर अमल करने से निश्चय है कि भारतवर्ष के बच्चों की अवस्था बहुत शीघ्र सुधर सकती है। विशेष कारणों से कोई ख़राबी रह जाय, यह बात दूसरी है, परन्तु निम्न-लिखित सामाजिक कुरीतियों के दूर हो जाने से देश के बच्चों की हीन दशा का बहुत कुछ सुधार तो ज़रूर हो जावेगा :—



महाराज पटियाला

(गोलमेज़ के सदस्य)

(१) भारतवर्ष में प्रायः माँ-बाप अपनी बिरादरी वालों की प्रसन्नता के लिए शादी व ग़मी के अवसरों पर हज़ारों रुपए ख़र्च कर देते हैं। मगर अपने बच्चों के पालन-पोषण में ज़रूरी ख़र्च करना भी उन्हें सहन नहीं होता। विशेषतः लड़कियों के पालन में तो बहुत ही लापरवाही की जाती है। कई लोग तो ऐसे कठोर होते हैं कि अपनी लड़कियों को कभी एक पैसे का खिलौना भी ख़रीद कर नहीं देते। बहुतेरे ऐसा भी कह देते हैं कि "लड़कियों का क्या है, यह तो बेगाना धन हैं।" इस प्रकार लड़कियों

का निरादर करने से बहुधा लड़कियाँ आयु भर रोगी, कमज़ोर और मूर्खा बनी रहती हैं। और आगे ब्याहे जाने पर उनकी अपनी सन्तान भी बहुधा उन्हीं रोगों का शिकार बनती देखी जा रही है। अतः इस देश के नेताओं, अख़बारों और वक्ताओं का यह भी ज़रूरी फ़र्ज़ है कि अपने लेखों और उपदेशों के द्वारा देश के अन्दर ऐसा प्रचार करें कि लोग फ़िज़ूलख़र्ची से हट कर बच्चों के पालन-पोषण पर ख़र्च को सब से अधिक ज़रूरी समझें और लड़कों की अपेक्षा लड़कियों को कभी बुरा न समझें; क्योंकि क़ौमें बच्चों से बनती हैं। अतः बच्चों की दशा को सुधारना वास्तव में क़ौम की उन्नति करना है।

(२) भारतवर्ष में आजकल गृहस्थाश्रम की बहुत सी ख़राबियों की जड़ संयुक्त परिवार-प्रथा का रिवाज ही बन रहा है। प्रायः माँ-बाप अपनी दिल्लगी या प्रेम में आकर पहिले तो अपने लड़के का विवाह उसके बचपन में ही कर देते हैं। मगर बहू के आ जाने पर सैकड़ों झगड़ों की बातें पैदा कर देते हैं; ताकि कहीं लड़का क़ाबू से न निकल जाए। अतएव सालों तक यह लड़ाई-झगड़े बदस्तूर चलते रहते हैं, और वर-वधू दोनों का जीवन नष्टप्राय हो जाता है। और ऐसे घर ख़ुशी के घर तो क्या, बल्कि बिलकुल दोज़ख़ का नमूना ही बन जाते हैं! और ऐसे अभागे घरों के जो बच्चे भी पैदा होते हैं, वह बेचारे प्रायः रोगी और दुखी रह कर अकाल मृत्यु का ग्रास बनते हैं। यदि यह संयुक्त परिवार-प्रथा दूर हो जाए तो लड़का और लड़की दोनों गृहस्थाश्रम के योग्य हो जाने के पश्चात ही उसमें प्रवेश किया करें। ऐसी सूरत में जिस बाल-विवाह का बन्द करना बड़ा कठिन हो रहा है, वह ख़ुद-बख़ुद बन्द हो जाएगा तथा घर जो शोक-स्थान बन रहे हैं, वही सुख-शान्ति के धाम बन जाएँगे। जो बच्चे प्रायः कमज़ोर-दिल, कमज़ोर-दिमाग़ और रोगी पैदा होते हैं, उनकी शारीरिक और मानसिक हालत बहुत उन्नत हो जाएगी।

(३) ऊपर लिखित दोनों कुरीतियों के सिवाय, प्रचलित हिन्दू-क़ानून और प्रायः हिन्दू-धर्मशास्त्रों की तरफ़ से तो पति के लिए (क्या ज़रूरी या ग़ैर-ज़रूरी) हर तरह से अपनी इच्छानुसार प्रत्येक काम करने के लिए बेजा आज़ादी मिल जाती है; इसके मुक़ाबले स्त्री को जगह-जगह पर दुर्दशा और ख़्वारी में डाला हुआ है और बेचारी को उसके उचित मानुषीय अधिकारों से भी वञ्चित कर रक्खा है। हिन्दू-क़ानून और हिन्दू-धर्म-पुस्तकों के यह अन्याय भी भारत की सन्तान के कमज़ोर और कम आयु होने का एक बड़ा कारण बन रहा है। केवल ज़बानी जमा-ख़र्च के तौर पर स्त्री को कहीं अर्द्धाङ्गिनी बता दिया जाता है और कहीं उसे गाड़ी के बराबर के पहिए के साथ तुलना भी कर दी जाती है; परन्तु शोक है कि बेचारी को असली अख़्तियार एक भी नहीं दिया जाता। अतः कई पति तो अपने ज़्यादह अख़्तियार के अभिमान में आकर अपनी स्त्री पर सख़्त से सख़्त अत्याचार भी किया करते हैं। देखिए, पति के किसी सम्बन्धी पुरुष का जो अख़्तियार है, 'अर्द्धाङ्गिनी' कहलाने वाली स्त्री का उतना भी नहीं है !!

ऐसी सख़्त बेइन्साफ़ियों के होते हुए कभी सच्चा प्रेम स्थिर नहीं हो सकता और न आपस में एक-दूसरे के प्रति यथायोग्य सत्कार का ख़्याल पैदा हो सकता है। अतएव स्त्री की जो ज़िम्मेदारियाँ अपनी सन्तान को उत्तम बनाने की होती हैं, वह कभी अपनी ऐसी ग़ुलामी, ख़्वारी और बेकसी की हालत में उनको पूरा नहीं कर सकती। अतः स्त्री-जाति के उचित अधिकारों की ख़ातिर प्रचलित हिन्दू-क़ानून के अन्दर जरूरी संशोधन करने कराने के लिए आवाज़ उठाना भी देश के अन्दर न्याय-भाव को बढ़ाना है। ऐसा करने से, न केवल बेइन्साफ़ियाँ और कुरीतियाँ ही दूर होंगी, बल्कि हिन्दू-घर सच्चे अर्थों में आनन्द-भवन बन जायँगे और आने वाली सन्तानों के जीवन उत्तम-जीवन बनेंगे, और जो मनुष्य-जीवन का सच्चा उद्देश्य है, पूर्ण होगा।

—दयावती

* * *

स्वर्गीया मनोरमा देवी

स्त्री-रत्न श्री० मनोरमा देवी का नश्वर शरीर, यद्यपि आज इस संसार में नहीं है, परन्तु उनका अजर यश-सुरभित शरीर आज भी अमर है। उक्त बहिन का जीवन, महिला-समाज के लिए एक आदर्श चरित्र था। हमारा दुर्भाग्य है कि वह हमसे इतनी जल्दी छिन

गईं। यद्यपि उनकी अवस्था केवल २७ वर्ष की ही थी, तो भी उनका हृदय अति गम्भीर तथा उच्च भाव-पूरित था। उनकी तपःपूत मुखाकृति से उनके सतीत्व का तेज और सतोगुण की शान्ति टपकती थी। उनका शरीर और मन स्त्री-समाज तथा देश की सेवा से कभी थकते ही न थे; और शायद यही सेवा-व्रत उनके असमय काल-कवलित होने का कारण भी था। इनका कार्य वह ठोस कार्य था, जिसमें ख्याति थोड़ी और देशहित अधिक था। इसीलिए इन्होंने इतनी प्रसिद्धि नहीं पाई, जितनी अन्य महिलाओं ने। इनका जीवन और भी सब दृष्टि से पूर्ण था, जिसे आदर्श मान कर कोई भी अनुकरण कर सकता है। शिक्षिका, सुधारिका और लेखिका होने के अतिरिक्त, लोगों को सङ्गठित करने की भी उनमें अपूर्व शक्ति थी। निर्भीकता, त्याग, सहिष्णुता, स्वाध्याय और सरलता—ये गुण भीतर और बाहर समान रूप में विद्यमान थे। ऐसी महादेवियों की जीवनी देशवासियों के लिए प्रकाश-स्तम्भ का काम करती है, जिससे सर्व-साधारण का ध्येय-मार्ग स्पष्ट हो जाता है।

आपका जन्म सम्वत् १९६० विक्रमी के वैशाख मास में जबलपुर के निकट गोटे गाँव में, जो जी० आई० पी० रेलवे का स्टेशन है, हुआ था। वहीं इनके पिता श्री० गुरुदेव जी शुक्ल स्टेशन मास्टर थे, पर इनका आदि निवास-स्थान अवध प्रान्त के रायबरेली ज़िले के हरदासपुर नमक ग्राम में था। माता के विशेष आग्रह से इनके पिता जी ने इनका विवाह केवल ९ वर्ष की अवस्था में कर दिया था। विवाह से पूर्व ही इनके पिता का इनकी शिक्षा पर विशेष ध्यान होने के कारण इनको हिन्दी में अच्छी योग्यता हो गई थी। अभाग्यवश ११ वर्ष की अवस्था में ही यह बालिका-स्वरूपा देवी वैधव्य को प्राप्त हो गईं। पश्चात इनके पिता जी ने इन्हें विशेष योग्यता प्राप्त कराने की अभिलाषा से ग्वालियर राज्य के सेवा-सदन में प्रविष्ट कराया। वहाँ पर इनकी शिक्षिका श्रीमती शान्ताबाई थीं, जो एक बड़ी अनुभवी तथा बुद्धिमती अध्यापिका थीं। उन्होंने इनको एक आदर्श महिला बनाने में भरसक उद्योग किया और इन्हें पाँच वर्ष में ग्वालियर राज्य की हिन्दी-साहित्य की सर्वोच्च परीक्षाएँ उत्तीर्ण करा दीं। तदनन्तर ये उसी आश्रम में अध्यापिका का काम करने लगीं। अध्यापन कार्य और अपने पितृ कुटुम्ब की सेवा करते हुए ही, इन्होंने प्रयाग महिला-विद्यापीठ की विदुषी, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की मध्यमा (विशारद) तथा संस्कृत की शास्त्री परीक्षाएँ भी दीं और उनमें उत्तीर्ण हुईं। इसके पश्चात वे ग्वालियर से मुरादाबाद के प्रतापसिंह हिन्दू गर्ल्स स्कूल में एसिस्टेण्ट मिस्ट्रेस नियुक्त होकर चली गईं। यहाँ पर भी इन्होंने अपने सद्गुणों से महिला-समाज तथा कन्याओं को अपने पवित्र प्रेम-बन्धन में बाँध लिया। चार वर्ष मुरादाबाद में कार्य करने के अनन्तर सन्, १९२६ ई० में आप मथुरा में आर्य-कन्या-विद्यालय की प्रधानाध्यापिका नियुक्त



स्वर्गीया मनोरमा देवी

होकर कार्य करने लगीं। इनके आने से पूर्व विद्यालय में छात्राओं की संख्या सत्तर-अस्सी से अधिक न थी, परन्तु इनके प्रेममय सद्व्यवहार और शिक्षा-चातुर्य से थोड़े ही समय में तीन सौ छात्राएँ हो गईं। बाहर से भी अच्छे-अच्छे धनी-मानी पुरुष के पत्र अपनी पुत्रियों को आपकी शिक्षा-दीक्षा में रखने के सम्बन्ध में आते रहते थे, परन्तु वहाँ छात्रावास का प्रबन्ध न होने से वे विवश थीं। देश-भक्ति की तो आप प्रतिमा थीं ही; आपका उपदेश ऐसा हृदयग्राही होता था कि छात्राएँ उसको सुन कर ही उन पर अमल करने लगती थीं।

कॉङ्ग्रेस तथा देशहित के विशेष अवसरों पर जब जुलूस निकलते थे, तो आपकी सब खद्दर, कृपाण-धारिणी अध्यापिकाओं और छात्राओं के कारण ही उसका दृश्य बड़ा भव्य और प्रभावोत्पादक हो जाता था। दीनों और अनाथों से इन्हें विशेष प्रेम था। इनके यहाँ इनके कुटुम्ब के अतिरिक्त कभी-कभी आठ-आठ, दस-दस विधवाओं का पालन होना साधारण-सी बात थी। वृद्धावस्था के कारण इनके पिता जी ने संन्यास ले लिया था, इससे आपने ही अपने दो लघु भ्राताओं को उच्च शिक्षा दिला कर उनका विवाह इत्यादि भी कराया। अब वे दोनों भ्राता स्वयं उपार्जन करने योग्य हो गए हैं, जिससे वृद्ध माता-पिता की सेवा यथावत हो रही है। आपका एक भी क्षण व्यर्थ नहीं जाता था। आपने थोड़े समय तक मथुरा नगर कॉङ्ग्रेस कमिटी के मन्त्री पद का कार्य भी बड़ी योग्यता से किया था। स्वयं-सेविकाओं की आपकी एक टुकड़ी अलग थी, जो किसी भी राष्ट्रीय कार्य के करने को सर्वदा उद्यत रहती थी। मथुरा-जैसे नगर के स्त्री-समाज में स्वयंसेविकाएँ बना लेना, यह आपके ही अध्यवसाय और कर्मण्य जीवन का प्रभाव था। इनकी बीमारी की दशा में ही महात्मा गाँधी मथुरा पधारे थे। उस समय इन्होंने अपने शरीर की कुछ भी परवाह न की और घर-घर से उनकी भेंट के लिए चन्दा माँगना आरम्भ कर दिया। यह इन्हीं का प्रयत्न था कि स्थानीय महिलाओं की ओर से महात्मा जी को एक अच्छी रकम समर्पित की जा सकी थी। मथुरा की जनता, विशेषतः महिला-समाज ने, इन्हें म्युनिसिपेलिटी की मेम्बरी के लिए खड़ा करना चाहा था और बड़ी सफलता से हो भी जातीं, परन्तु स्वास्थ्य तो जवाब देता जा रहा था। इस कारण खड़ी



कारूर (मद्रास) के महिला-गवर्नमेण्ट ट्रेनिङ्ग स्कूल की शिक्षिकाएँ और छात्राएं

न हो सकीं। अधिक कार्य करने वालों को जो क्षय की प्रायः घातक बीमारी हो जाती है, उसके पञ्जे से आप भी न बच सकीं। एक बार किसी व्यक्ति ने उनसे पुनर्विवाह का प्रसङ्ग छेड़ा, तो उन्होंने यही उत्तर दिया कि एक पुरुष से विवाह हुआ, उसकी मृत्यु हो गई, अब मैं ऐसा पति चाहती हूँ जिसकी मृत्यु कभी न हो! वह अपने शरीर को मिताहार से कृश ही रखती थीं, घी और दूध उन्होंने छोड़ रक्खा था। श्रीमद्भगवद्गीता से उन्हें विशेष प्रेम था, वह उन्हें कण्ठस्थ थी।

बीमारी की अवस्था में भी अधिक कार्य करते हुए वे रोग की उपेक्षा करती रहीं। उन्हें यह ध्यान भी न था कि यही बीमारी इनके लिए इतनी भयङ्कर हो जायगी। रोग बढ़ जाने पर फिर अच्छी से अच्छी चिकित्सा भी फलप्रद न हुई। इस बीमारी की दशा में ये चिकित्सार्थ अमेरिकन मिशन द्वारा सञ्चालित तिलोबिया सैनिटोरियम में, जो किशनगढ़ राज्य में अजमेर के समीप है—गईं। पर सेवा-भाव की डींग मारने वाले इन मिशनरियों ने इनकी गाँधी-भक्ति और खद्दर के वस्त्र देख कर, इन्हें कोई राजद्रोही समझा और इनके साथ इतना जघन्य बर्ताव किया, जो कभी मानुषिक नहीं कहा जा सकता! इन्हें मांस से घृणा थी, परन्तु इनके खाने के समय वे लोग इन्हें दिखा-दिखा कर मांस खाते थे। इस कारण यह जो स्वल्पाहार फलादि लेती थीं, वह भी वमन हो जाता था। इनकी चारपाई (राजस्थान की लू और वह भी मई-जून मास की लू में) ऐसे दरवाज़े के पास रक्खी गई, जहाँ से लू सीधी इन्हें लगती थी। एक दिन लू लग जाने से ज्वर १०५ डिग्री तक हो गया। इनकी माता जी को, जो साथ गई थीं, उन्हें दिन भर में केवल १५ मिनट के लिए इनसे मिलने दिया जाता था। और भी कई अन्याय-युक्त व्यवहार किए गए। इन कारणों से जीवन को और भी सङ्कट में पड़ा देख, ये बिना आज्ञा, उस कमज़ोरी की दशा में—बिना किसी को सहायता के लिए बुलाए ही अपनी माता के साथ मथुरा चली आईं। जीवन के अन्तिम दिनों में जान्हवी सेवन हेतु वे कनखल आ गईं और वहीं श्रीमद्भगवद्गीता का पाठ सुनते-सुनते ज्येष्ठ शुक्ला एकादशी, सम्वत् १९८७ विक्रमी को प्रातःकाल ब्रह्म-मुहूर्त में उन्होंने अपना यह नश्वर शरीर त्याग दिया!

आपके वियोग से देश के कार्य को कितना धक्का लगा, यह वही जान सकते हैं, जिन्होंने उन्हें कार्य करते हुए देखा था। ऐसी आदर्श देवियों के अभाव से हमारा महिला-समाज सुधार-मार्ग में पिछड़ता जाता है, क्योंकि उनके स्थान की पूर्ति शायद ही हो पाती हो। कार्य का वह प्रवाह वहीं का वहीं स्थगित हो जाता है। इन्होंने अपनी रुग्णावस्था में ही एक संस्था "महिला-सेवाश्रम" नामक मथुरा में, इस अभिप्राय से खोली थी, कि उसमें विधवा, सधवा अथवा अविवाहिता ब्रह्मचर्य



महाराज अलवर

(गोलमेज़ के सदस्य)

पालन करती हुई विद्याध्ययन, देश-सेवा अथवा समाज-सेवा करने के योग्य बनाई जायँ; परन्तु अभाग्यवश उनकी असामयिक मृत्यु से इसका भविष्य अनिश्चित हो गया है।

हे दैव! हमारे दुर्दिनों का अब तो अन्त कर। जो आत्मा हमारे उद्धार का प्रयत्न करती हैं, वे ही काल-कवलित होकर हमसे दूर हटा ली जाती हैं; किन्तु यदि हम इन आत्माओं द्वारा प्रदर्शित मार्ग का अनुसरण करें तो हमें विश्वास है, हम दिनोंदिन उन्नति करते जायँगे।

—चन्द्रावली भाटिया



शिल्पकुञ्ज

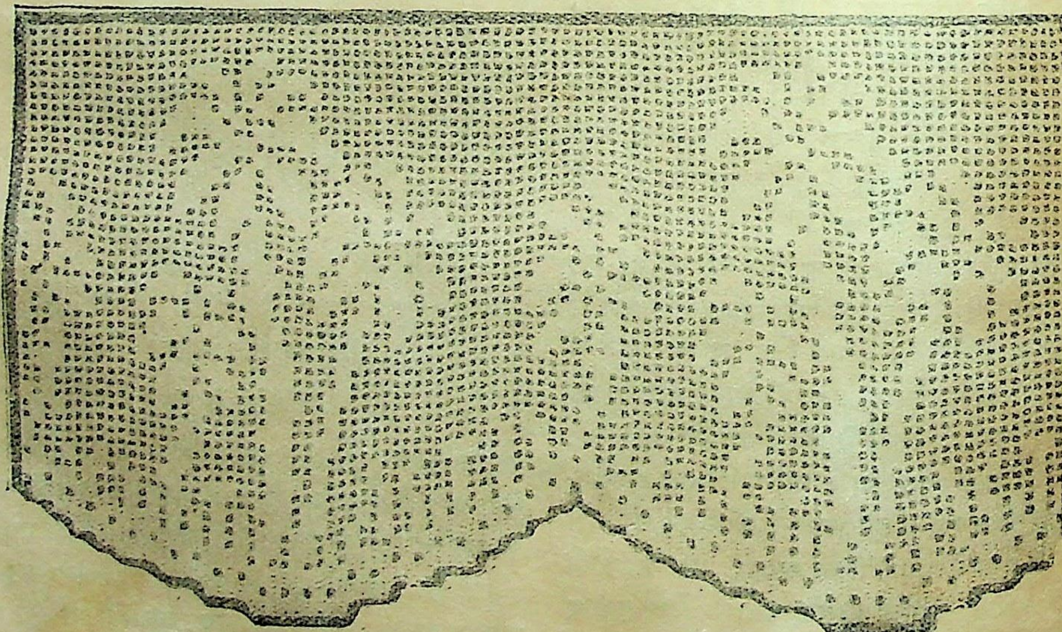
खजूर की लेस

[श्रीमती शकुन्तला देवी गुप्ता, 'हिन्दी-प्रभाकरा']

आरम्भ—११९ चेन करो ।

१ ली लाइन—१६ सुराख, ७ तै०, २ सु०, ४ तै०, १ सु०, १० तै०, ५ सु०, ४ तै०, २ सु०, ७ तै०, १ सु०, ४ तै०, ८ चेन लौटाओ ।

२री लाइन—३ चेन छोड़ कर १२ तै०, २ सु०, ४ तै०, १४ सु०, ५ चेन लौटाओ ।



लेस का नमूना

आगे सारी चित्र देख सुगमतापूर्वक बन सकती है । इसकी चौड़ाई ६॥ इञ्च होगी ।

नारी-जीवन

[श्री० आनन्दीप्रसाद श्रीवास्तव]

पत्र-संख्या—१५

[पत्र वृद्ध-पत्नी की ओर से बाल-विधवा को]

बहिन,

तुम्हारा गृह-निर्वासन होने
ही वाला था हाय,
कितनी भारत की ललनाएँ
सहती हैं यह दुख निरुपाय !

जिनके गृह हैं धन से पूरित
जिनको प्राप्त सभी सुख हैं,
वे भी घर की विधवाओं को
देते सब प्रकार दुख हैं ;

कहते हैं यह—उन्हें चाहिए
मोटा भोजन और वसन,
जिससे वे समर्थ हों करने
में निज मन का पूर्ण दमन।

इससे बढ़ कर हास्यास्पद विधि
मनोदमन की होगी कौन ?
इस अति निन्द्य तर्क का उत्तर
केवल हो सकता है मौन।

सात्विक और शुद्ध भोजन या
विमल पहनने योग्य वसन
नहीं किसी के लिए त्याज्य, वे
हैं प्रफुल्लता के साधन,

वली प्रफुल्ल हृदय होता है
चलता है सुमार्ग की ओर,
दुखी जीव का हृदय अधिकतर
जाता है कुमार्ग की ओर !

एक बहाना है यह सब तो,
नहीं हितैषी हैं इतने
उन भोली अबला विधवाओं
के वे बनते हैं जितने,

अथवा पर को बलतः रखने
का पवित्र किसको अधिकार ?
उन्हें क्लेश दे सुख पाने को
ही करते वे अत्याचार।

विधवा है जिस घर में, उसमें
दासी का है काम नहीं,
नीच काम दिन भर करने पर
भी उसको विश्राम नहीं।

नहीं सोचते गृह-निर्वासन
का फल हो सकता है क्या ?
असहाया होने पर अबला
का बल हो सकता है क्या ?

विधवा के वेश्या होने का
ही इच्छुक यह क्रूर समाज,
इसे मुँह दिखाते दुनिया को
आती नहीं तनिक है लाज !

क्या-क्या इसे कहूँ, फिर सुन लो
मेरा कुछ आगे का हाल,
दृढ़ होकर बैठी मैं, आया
पुनः दूसरा सन्ध्या काल।

वृद्ध महाशय जब आए तब
मैंने सादर लिया उन्हें,
मन्दस्मिति के साथ दूर कुछ
आसन विधि से दिया उन्हें।

कल की लज्जा और आज का
मेरा यह ऐसा व्यवहार
आश्चर्यान्वित हुए देख कर,
समझे, है मस्तिष्क-विकार,

इस पर मुझको हँसी आ गई,
वे बोले—"कैसी हो आज,
तबियत तो है ठीक," कहा, मैं—
ने हँस कर—"जी हाँ, महराज"

जब वे आगे बढ़े, कहा मैं—
ने तब होकर अति विकराल,
"रहना बस तुम दूर, नहीं तो
बुरा तुम्हारा होगा हाल,

कर सकते अपवित्र न मुझको,
करो न फिर मेरा अपमान,
ले लूँगी मैं जान तुम्हारी
दे दूँगी मैं अपनी जान।"

बुड्ढे में साहस कितना था,
अथवा था बल ही कितना ?
चला गया चुपचाप, न बोला
तनिक, हुआ लज्जित इतना।

एक ओर जो लटक रही थी
कमरे के भीतर तलवार,
उसे सहायक मैं समझे थी
यदि होता कुछ अत्याचार।

पत्र-संख्या—१६

[पत्र बाल-विधवा की ओर से वृद्ध-पत्नी को]

बहिन,

भली विधि से तुमने था
निश्चय अपना पूर्ण किया,
वृद्ध महोदय का सारा मद
यों था मानो चूर्ण किया।

यदि हों साहसमय कन्याएँ
तो क्यों वे जीवन खोएँ,
क्यों ब्याही जावें वृद्धों से
और जन्म भर क्यों रोएँ ?

परिणय के ही समय न क्यों वे
उसका करें प्रचण्ड विरोध,
अगर क्रोध करना ही है तो
पहले से क्यों करें न क्रोध ?

लोलुप 'पण्डित' के कर देने
से अशुद्ध मन्त्रोच्चारण
कहीं ब्याह होता है ? उसके
फल का समुचित है वारण !

है यह ठीक कि हो सकता है
कन्याओं पर बल-प्रयोग,
वह भी हो तो हो, लावें वे
पञ्चों के सम्मुख अभियोग।

बल-प्रयोग से हो सकता है
क्या कन्याओं का सत-भङ्ग ?
जब हो कलुषित मन, तब होते
हैं कलुषित रमणी के अङ्ग।

बहिन तुम्हारा यह उदाहरण
जग में जीवित सदा रहे,
ललनाओं से नित ललना-जन—
स्वतन्त्रता-सन्देश कहे !

जो ब्याही जावें वृद्धों से
वे उनसे नाता तोड़ें,
ब्रह्मचर्य से और देश-सेवा-
धुन से नाता जोड़ें।

बहिन, सुनाऊँगी अब अपनी
करुण-कहानी फिर तुमको,
करना क्षमा, अगर स्थिर होगी,
कर दूँगी अस्थिर तुमको।

आँख खुली जब मेरी, मैंने
अपने को पथ पर पाया,
कुछ लोगों की कुछ दूरी पर
देख पड़ रही थी छाया।

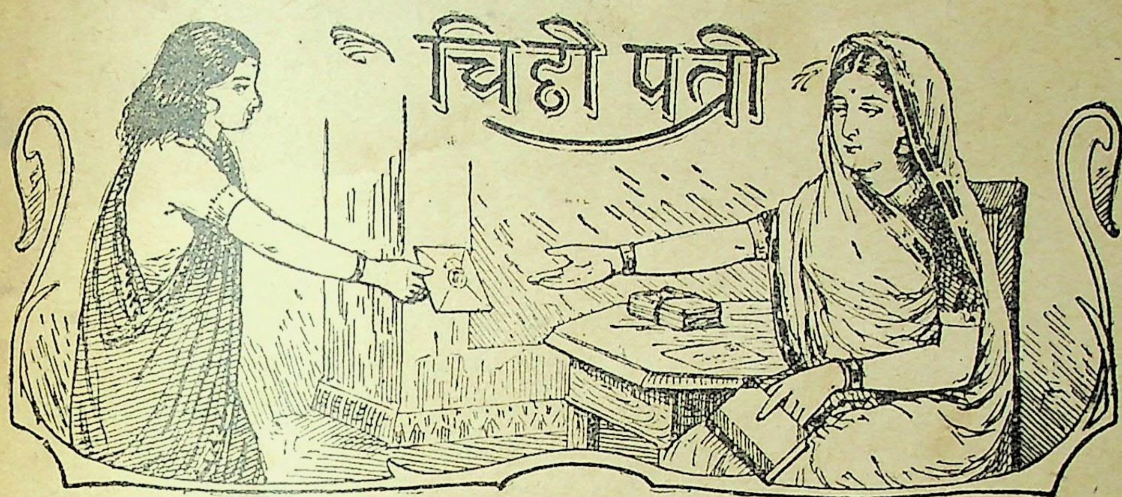
देखा मैंने तनिक ध्यान से,
निकट भी न मैं थी घर के,
अपनी दशा देख कर रोई
छाती पीट-पीट करके !

जानें कहाँ छोड़ कर मुझको
चले गए थे घर वाले,
मुझे ज्ञात था नहीं कि पड़ने
वाली थी किसके पाले।

उठी तनिक धीरज कर फिर
एक ओर को चली सभय,
करके जङ्गल में संन्यासिन
बन कर रहने का निश्चय।

इसी समय आ पहुँचा मेरे पास अचानक एक फ़क़ीर,
मीठे-मीठे वचनों से वह हरने लगा हृदय की पीर !





श्रीमान सम्पादक जी महोदय, पूज्य पिता जी,

न आप मुझसे परिचित हैं, और न मैं आप से; किन्तु 'चाँद' परिवार के नाते मैं आज अपनी रामकहानी आपके निकट रखने का प्रयत्न कर रही हूँ। किन्तु सर्वप्रथम एक विनय कर लूँ तो अनुचित न होगा कि आप मेरी इस दुखपूर्ण कथा को सर्वथा गुप्त रक्खें—मेरा अथवा परिवार के किसी भी व्यक्ति का नाम किसी भी हालत में प्रकट न किया जावे, यही विनय है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप मेरी विनय को अवश्य स्वीकार करेंगे। दूसरी बात यह है कि यह कहानी बहुत लम्बी है, मुझे लिखते भी सङ्कोच होता है, क्योंकि पढ़ने में आपका अमूल्य समय नष्ट होगा एवं विशेष असुविधा भी होगी। किन्तु आपके लेख को पढ़ कर—"पीड़ित, दुःखी, असहाय और पतित बहिनों के लिए ही हमारा अस्तित्व है, उन्हीं की सहायता, उद्धार और उपकार करना ही हमारा लक्ष्य और ध्येय है"—मेरे हृदय में आशा और विश्वास की लहर थपकियाँ दे रही हैं, कि आप मेरे पत्र को पढ़ने में विशेष कुण्ठित न होंगे। मैं विशेष पढ़ी-लिखी भी नहीं हूँ, सम्भव है, बहुत अशुद्धियाँ कर जाऊँ, अतः कृपया सुधार कर पढ़ने का कष्ट कीजिएगा। आज मैं विकल, विह्वल और अशान्त होकर, संसार में दृष्टि फैलाने से सर्वत्र अन्धकार ही अन्धकार देख कर, निरुपाय और हताश होकर टूटे-फूटे शब्दों में अपनी रामकहानी लिख रही हूँ। मेरी अवस्था इस समय संसार-सागर में भटकती और डगमगाती हुई उस नौका के समान है, जिसका नाविक पूर्ण निद्रा ले रहा हो अथवा खेना भूल गया हो अथवा उसे त्याग दिया हो। मैं बड़े ही आशा, विश्वास एवं आकुलता से यह सब लिख रही हूँ। आपको कष्ट तो पढ़ने में अवश्य होगा, पर—मुझे उचित-अनुचित का ज्ञान करा के, मेरा कर्त्तव्य सुझा कर, मेरे कार्यों पर आलोचना करके, मुझे सदुपदेश देकर कर्त्तव्य-पथ पर लाने से वञ्चित न करेंगे—मेरे प्रयास को विफल न करेंगे।

मैं एक कायस्थ परिवार की लड़की हूँ। मेरी उमर इस समय १८-१९ वर्ष के लगभग है। मेरा निवास-स्थान ....ज़िले के अन्तर्गत ....ग्राम में है। किन्तु मैं जन्म से ही........शहर में रहा करती हूँ, वहीं मेरा जन्म हुआ और वहीं इतनी अवस्था व्यतीत हुई। क्योंकि मेरे पिता जी वहीं सरकारी नौकरी करते हैं। मैं माता के साथ वहीं रहा करती थी। मेरा जन्म उस समय हुआ, जब अधिक वयस बीत जाने पर भी मेरी माता की गोद में सन्तान न हुई। और परिवार वाले पिता जी को दूसरी शादी करने के लिए हठ और विवश कर रहे थे। मेरे जन्म के पश्चात से पिता जी को फिर कोई सन्तान न हुई। और उन्होंने दूसरा विवाह भी आज तक न किया। मुझे ही देख और पाकर उन्होंने सन्तोष कर लिया। पुत्र-पुत्री का विचार और अन्तर तिल मात्र भी न रखते हुए, उन्होंने बड़े ही स्नेह, यत्न और आदर से मेरा पालन-पोषण किया। गुलाब के फूल की नाईं प्रतिपालित होकर मैं अवस्था लाभ करने लगी। मैं उनके कलेजे की टुकड़ी, आशा की पुतली एवं समस्त हौसले-अरमान का आधार थी। माता तो भला माता ही ठहरीं, पिता जी का भी प्रेम मुझ पर कुछ कम न था और अब भी है। उनके मित्रगण एवं आत्मीयों का भी मैं अतुल स्नेह-पात्र थी। मेरे आचरण और व्यवहार से

घर-बाहर सभी प्रसन्न रहा करते थे। मेरी माता बड़ी ही सुशीला, साध्वी, स्वच्छ हृदय वाली, दयालु और धार्मिक विचारों की हैं। पिता जी भी उनसे मिलते-जुलते ही हैं। पुराने ख़्यालात के और दक़ियानूसी न होते हुए भी, समाज की आज्ञा में रहते हैं। समाज में पिता जी का अच्छा स्थान और प्रतिष्ठा है। अस्तु।

६ वर्ष की अवस्था में मैं कन्या-पर्दा-पाठशाला में शिक्षा प्राप्त करने के लिए भरती हुई। १३ वर्ष की अवस्था में मिडिल तक पढ़ा कर मेरा पढ़ना छुड़वा दिया गया। क्योंकि इसके आगे कोई पर्दा-स्कूल वहाँ न था, इससे पिता जी इच्छा रहते हुए भी विवश हो गए। अतः इतने समय तक मेरा और इन लोगों का समय बड़े ही सुख, आनन्द और उल्लासपूर्वक बीता। अब मेरे विवाह की बातचीत होने लगी। पिता जी और उनके मित्रगण अनुकूल घर और योग्य सत्पात्र वर की खोज में लगे। धन में मध्यम श्रेणी के होने के कारण उन्हें निरन्तर पाँच वर्ष व्यस्ततापूर्वक खोजना और समाज के कतिपय लोगों का ताना, निन्दा सुनना-सहना पड़ा। उनके पसन्द के अनुसार वर मिलता, तो विवाह करना उनकी स्थिति के बाहर होता और स्थिति के अनुकूल होने से उनके पसन्द लायक़ न था। अतः बड़े ही परिश्रम और कष्ट उठा कर पारसाल उनके पसन्द के मुताबिक़ घर और वर स्थिति के अनुकूल मिला। पारसाल मेरी शादी हो गई। ऐसे सत्पात्र वर को अपना कर उन्होंने अपने तथा मेरे भाग्य को सराहा। वास्तव में सराहने योग्य बात भी थी। बड़ी आशा और अरमान से उन्होंने यह सम्बन्ध जोड़ा। विवाह में पुरानी रूढ़ियों एवं सामाजिक कुरीतियों को हटाते हुए कमिटी के अनुसार शादी हुई। पर दैव की इच्छा कुछ दूसरी ही थी। अब आगे क्या हुआ, यह सुनिए।

विवाह के दो-अढ़ाई वर्ष पूर्व ही, जब मेरा वयस १४वाँ वर्ष पूर्ण कर रहा था, मुझे एक युवक से जो मेरे घर के समीप ही रहा करता था, प्रेम-सम्बन्ध हो गया। वह भी कायस्थ जाति का ही था, पर कुछ-कुछ जाति में भेद पड़ता था। उसके परिवार में ३ बहिनें, १ वृद्धा माता, वह और उसका छोटा भाई था। पिता मर गए थे। अतः वह सपरिवार बड़ी बहिन-बहनोई के यहाँ रह करता था। अवस्था अत्यन्त हीन और दीन थी। उन्हें वे धन से प्रतिपालित होता था। उन्हीं लोगों ने दोनों बहिनों का विवाह कर दिया था और इसको पढ़ा रहे थे। छोटा भाई आवारा निकल गया। अस्तु, मैं इसके कौन से गुण पर मुग्ध होकर प्रेम करने लगी, यह तो न आज ही समझ आता है और न तब ही आता था। रूप, गुण, विद्या, स्वभाव इत्यादि में कुछ भी ऐसी विशेषता न थी, जो रमणी-हृदय को स्वभावतः अथवा बरबस मुग्ध कर सके। चाल-चलन, सदाचार भी निन्दनीय न, तो प्रशंसनीय भी न था। अतः अब मैं निश्चयपूर्वक कह सकती हूँ कि मैं उसके किसी सद्गुणों पर मुग्ध न हुई थी। केवल उसके प्रेमाश्रुओं और अयाचित हृदयाञ्जलि पर उसे अपना हृदय मैंने दिया था। उस समय मुझे पूर्ण होश न था, कर्त्तव्याकर्त्तव्य का ध्यान भी न था। न जाने किस अलक्ष्य शक्ति ने मेरी इच्छा न रहते हुए भी, हम दोनों को एक कर दिया। उस समय उसके व्यवहार में कोई त्रुटि नज़र न आती थी। उचित साधन और अवसर पाकर वह प्रेम-पुष्प धीरे-धीरे विकसने लगा—प्रेम-बन्धन दृढ़ होने लगा। अब तक मेरे मन में कोई पाप अथवा वासना का प्रादुर्भाव न हुआ था। यह प्रेम छिपे-छिपे चलने लगा! एक वर्ष के लगभग इसी तरह बीत गया।

सम्पादक जी! सच कहती हूँ, यदि उसी समय इस प्रेम में कुछ बाधा पड़ जाती, भेद खुल जाता, यह प्रेम बढ़ने नहीं दिया जाता और मेरा विवाह किसी दूसरे के साथ कर दिया जाता, तो मैं आज से कहीं अधिक सुखी होती। क्योंकि उस समय तक मेरा शरीर और आत्मा दोनों पवित्र था। इसके बाद कुछ लोगों की दृष्टि में मेरा उसके सामने होना, बातचीत करना, अनुचित और पाप समझा जाने लगा। यह जान कर मैंने तत्काल ऐसा करना बन्द कर दिया; क्योंकि मेरे मन में पाप कमाने की इच्छा न थी। पर हाय, कुछ दूसरा ही होना था। लुक-छिप कर हम लोगों में देखा-देखी और बातचीत हो जाया करती थी। मुझे उतने ही में सुख था, सन्तोष था। पर वह न जाने क्यों मुझे एकान्त में कुछ देर मिलने के लिए बाध्य और विवश करने लगा। मैं कई एक अज्ञात भय से यह स्वीकार नहीं करती थी। किन्तु उसने न माना, उसके प्रेमाग्रह तथा प्रार्थनाओं और हठों ने मुझे द्रवीभूत कर दिया। मैं अवसर ढूँढ़ कर बहुत बार एकान्त नीरव

निशीथ रजनी में घण्टों छिप कर उससे प्रेमालाप करने लगी। यहीं से मेरा वास्तविक पतन आरम्भ हुआ। एक दिन उसने छल और मेरी अनिच्छा से बलात्कार मेरे सतीत्व, मेरी अमूल्य निधि को लूट लिया। इससे मेरे मन में उसके प्रति बुरी धारणा होने लगी। मैंने उस दिन से उससे मिलना छोड़ दिया। किन्तु उसने फिर मुझे अपने पञ्जे में लाने का प्रयत्न किया। बड़ी-बड़ी क़समें खाकर, प्रतिज्ञाएँ करके, भविष्य में ऐसी भूल, ऐसा पाप न करने का विश्वास दिलाने लगा। मेरे मन में प्रेम तो अभी था ही, मैं अपने को रोक न सकी। उसके अश्रुओं पर पिघल कर फिर मिलने लगी। किन्तु हाय रे दुर्भाग्य! उसने फिर मुझे पतित किया। मैं बार-बार उससे बचने लगी और वह बार-बार प्रतिज्ञा और क़समें खाते हुए मुझसे विश्वासघात करने लगा। सम्पादक जी! जब तीन-चार बार यह अवस्था हो गई, तो मुझे चेत हुआ, बड़ी लज्जा और ग्लानि होने लगी। अपने कार्यों और भूल से पश्चात्ताप होने लगा, तथा उससे बड़ी घृणा हो आई। मैं उसे तुच्छ और पापी समझने लगी। जी में आया, सम्बन्ध त्याग दूँ। यह भाव मैंने उससे प्रगट भी कर दिया। और उसी दिन से चिरकाल के लिए मिलना भी मैंने त्याग दिया। उसी दिन से अपने को भी घृणित और पापी समझने लगी। अब उसके आचरण और स्वभाव से भी घृणा होने लगी। क्योंकि मैट्रिक में फ़ेल होते ही उसने पढ़ना छोड़ दिया, योंही घर में बैठा रहता अथवा इधर-उधर घूमने-फिरने लगा। घर में उसकी माँ और बहिन जब आपस में तकरार करने लगतीं—क्योंकि उसकी माँ बड़ी ही बेवक़ूफ़ और कर्कशा थी—तब वह क्रोधवश अपनी माता को गन्दी-गन्दी गालियों के साथ मारने-पीटने भी लगा। इन्हीं आचरणों से मुझे अत्यधिक घृणा होने लगी। उसके साथ प्रेम-सम्बन्ध हो जाने के कारण मैं पछताने भी लगी। प्रेम-बन्धन एक प्रकार से शिथिल होने लगा था। यदि उस समय भी उपयुक्त साधन और अवसर मिल जाता, तो प्रेम-बन्धन तोड़ देती। पर उसने इसके अतिरिक्त प्रगट में आज तक कोई दुर्व्यवहार मेरे साथ न किया था, प्रेम में कोई क्षति न पहुँचाई थी, पूर्णरूप से मुझे प्यार करता था। अतः मैं उसके प्रेम-पाश से न निकल सकी। मन पुनः उसी ओर अग्रसर होने लगा। हाय! उस समय मुझे क्या होश न था? मैं भूल पर भूल करती गई, पर अपने को सुधार न सकी। वह धोखे पर धोखा देता गया, पर मुझे चेत न हुई।

अब मुझे अपने विवाह की चिन्ता हुई। भय हुआ कि विवाह होने पर इसे छोड़ जाना पड़ेगा। प्रबल इच्छा होने लगी कि इसीसे विवाह करूँगी। इसी समय मेरा विवाह एक अच्छे तथा योग्य वर से निश्चित हुआ। यह सुन कर मुझे बड़ी ही निराशा एवं दुःख होने लगा। क्या लिखूँ, रमणी-हृदय के भाव को आप स्वयं समझ सकते हैं। मैंने प्रण कर लिया, यदि विवाह करूँगी तो इसी युवक से, दूसरे से कदापि न करूँगी। यदि हो भी गया तो प्रथम दिवस ही यह सभी बातें भावी पति से कह दूँगी, इत्यादि। अपने प्रेम के छूटने और चिर-वियोग की सम्भावना से हम दोनों ही रोते थे, पर चुप थे। शगुन-तिलक वग़ैरा हो जाने पर पारिवारिक अड़चनों के आ जाने से वह विवाह न हो सका। शगुन वग़ैरह लौटा दिया गया। लग्न के दिन होते हुए भी शीघ्रता में उस वर्ष दूसरी जगह विवाह न ठीक हो सका। हमारा प्रेम फिर कोई बाधा न पाकर, स्वतन्त्र रूप से विकसने लगा। अब बाहर-बाहर कुछ लोगों को हमारे ऊपर सन्देह होने लगा; पर मेरे माता-पिता एवं आत्मीयगण अभी न समझ पाए थे। कारण, मेरे आचरण और व्यवहारों ने उनके हृदय में सन्देह के लिए स्थान ही न छोड़ा था। मैं भी अब तक उनसे यथासम्भव यह भेद छिपाती ही आती थी। अब हमारे प्रेम में तीसरा वर्ष बीत रहा था। मिलना-जुलना छोड़ने के पश्चात हम लोगों में सदैव पत्र-व्यवहार हुआ करता था। अतः एक दिन पत्र पकड़ा गया। हमारा प्रेम-सम्बन्ध एकाएक खुल गया। मैंने अब छिपाना और झूठ बोलना अनुचित और पाप समझा। मैंने सभी बातें अपनी माता से कह दीं। और उस युवक ने भी अवसर आ जाने पर सभी अपराध अपने सिर पर लेते हुए पिता जी से कह दिया। मैंने माता से खुल्लमखुल्ला कहना शुरू किया कि "मुझे उससे प्रेम है, उसके साथ मेरा सतीत्व नष्ट हो गया है। अब दूसरे के साथ विवाह होने से मेरा धर्म नष्ट हो जायगा। मैं और भी पतित हो जाऊँगी। मेरा इसी के साथ विवाह कर दीजिए।" अब मैंने लुका-छिपा कर कार्य करना छोड़ दिया।

मेरे माता-पिता पर वज्रपात हुआ। सभी हौसले-अरमानों पर पाला पड़ गया। मान-मर्यादा धूल में

मिलने का समय आन पहुँचा। उन्होंने मुझे अनुनय-विनय करके, उचित-अनुचित, योग्य-अयोग्य बता कर भविष्य की चिन्तना करा कर, समझाना आरम्भ किया। पर मैं अटल रही। इन लोगों से सत्याग्रह ठान दिया। यह युद्ध तीन-चार महीनों तक चलता रहा। पिता जी अपने प्रण पर दृढ़ थे। उन्होंने साफ़-साफ़ कह दिया, उसके साथ शादी करने के पहले हम लोग हत्या कर लेंगे, पर उस कुपात्र के साथ विवाह करके अपनी बेइज़्ज़ती एवं तेरे भविष्य के देनदार न होंगे। यदि तू योग्य और सत्पात्र के साथ प्रेम करती, एवं हमें ऐसा धोखा न देती तो यदि वह निर्धन ही होता, अन्तर्जातीय ही होता, पर हमें कोई आपत्ति न थी। पिता जी के मित्रगण, जो वकील, बैरिस्टर, डिप्टी, रायबहादुर इत्यादि थे और जिन्हें बाल्यकाल से ही पिता-तुल्य मैं समझती थी और वे लोग भी पुत्री के समान मुझे स्नेह प्रदान करते थे—यही बात कह कर मुझे समझाना आरम्भ किया। यहाँ तक कि मेरे पैर पर अपनी टोपियाँ रखने लगे। सम्पादक जी! क्या लिखूँ, उस दिन का याद करते ही हृदय काँप उठता है। मैं बड़े ही असमञ्जस में पड़ी। उस युवक ने अब भी मेरा साथ न छोड़ा था। वह कहता था—"तुम्हारे सामने दो पथ हैं, तुम जिस पथ में जाने से अपनी भलाई समझती हो, उसी पथ पर जाओ। मैं तो तुम्हें सुखी देखना चाहता हूँ। तुम जो कहोगी, प्राण देकर भी करने को प्रस्तुत हूँ।"

इसी समय एक तो मैं अगाध समुद्र में स्वयं डूबती-उतराती थी, कूल-किनारा नज़र नहीं आता था, उसकी आवारागर्दी की शिकायत व कई एक तरह की बदनामी सारे शहर में सुनने में आई; दूसरे धीरे-धीरे कई एक लोग इस भेद को जान गए, अतः लोग मेरे प्रति बड़ी बुरी धारणा करने लगे। और उस युवक के घर वाले भी मेरे विषय में अश्लील, भद्दी और गन्दी बातों से मेरा अपमान और निन्दा करने लगे—गालियाँ देने, तिरस्कार करने लगे। नहीं जानती, वह युवक इन बातों को सुनता था या सुन कर टाल देता था! इसके अतिरिक्त पिता जी कई एक शत्रुओं से आक्रान्त विपदों से घिरे हुए थे, माता रुग्णावस्था में पड़ी थीं। उनके दुःख की कोई सीमा न थी। अन्तिम समय दोनों आत्मघात करने पर तुल गए। मैं सभी उपचारों को करके समझ गई, कि इन पर कोई असर नहीं पड़ता। अब एक ही उपाय है, यदि मैं स्वयं अपने पैरों खड़ी हो जाऊँ तो—किन्तु माँ मृत्यु-शय्या पर है। पिता-माता दोनों मृत्यु को प्राप्त होंगे। और उस युवक के ऊपर भी कुछ-कुछ भविष्य के लिए अविश्वास होने लगा। हाँ, क्या इन वृद्धों के स्नेह, उपकार और वात्सल्य का यही बदला है? मेरा हृदय डावाँडोल हो गया। मुझ नारी का दुर्बल हृदय सौ-सौ भावनाओं के मन्थन से अधीर होकर संरक्षकों के आगे नत-मस्तक होना पड़ा। मैंने गुरुजनों के सम्मुख उस युवक से प्रतिज्ञा की कि "आज से तुम्हारा प्रेम-सम्बन्ध त्याग रही हूँ।" उससे भी प्रतिज्ञा करवाया गया कि "मैं यह भेद गुप्त रक्खूँगा, किसी से भी प्रगट न करूँगा। इन्हें बहिन समझ कर कोई ऐसा कार्य न करूँगा, जिससे इनका जीवन दुखी और अपमानित हो।" उसी समय उसने मुझसे भी कहा—"जाओ देवी, भगवान तुम्हें सुखी रक्खें; पर मेरी तीन प्रार्थना है, उसे पूरी करती जाओ—(१) मुझे भूल जाना, (२) अपना विवाह कर अपने जीवन को सुखी, पवित्र और आदर्श बनाना, (३) पति से भूल कर भी इन बातों की चर्चा न करना। पति से प्रेम करना और पतिव्रता होना।" मैंने शीघ्रता में विकल-विह्वल हो, गुरुजनों के सम्मुख उसकी ये तीनों प्रतिज्ञाएँ स्वीकार कर लीं।

इसके दूसरे दिवस वह स्थान मुझे छोड़ना पड़ा। रोगिणी माता के साथ मैं पटना, गया, दरभङ्गा, मुज़फ़्फ़रपुर पहुँचाई गई। इन स्थानों में इसलिए मुझे भ्रमण करवाया गया, जिससे मेरा मन बहले, प्रतिज्ञा-पालन के लिए उपयुक्त साधन व अवसर मुझे प्राप्त हो। मैं भी उस काँटे को हृदय से निकाल देने का प्रयत्न करने लगी। परमात्मा साक्षी है, अपनी प्रतिज्ञा-पालन के लिए मैंने यथासम्भव कोई बात न उठा रक्खी। क्या लिखूँ—इस कार्य में जैसी वेदना, जैसा हार्दिक क्लेश मुझे भोगना पड़ा, वह अकथनीय है। स्मृति-मात्र से हृदय आकुल हो उठता है। माता को भरसक सुखी रखने का प्रयत्न करने लगी, माता जी भी स्वस्थ होने लगीं। पर मेरा शरीर दिनों-दिन दुर्बल होता जाता था। अतः मैं बड़े ज़ोरों से रोगाक्रान्त हुई। इसी तरह पाँच मास बीत गए। लगन का दिन बीता जा रहा था। जब मेरा स्वास्थ्य कुछ-कुछ सुधरने लगा तो पिता जी ने विवाह के लिए मेरी सम्मति

माँगी। मैं ज्ञानशून्य, हतशून्य हो रही थी, अतः स्वीकार कर ली। तत्पश्चात सन् १९२९ की ४थी जुलाई को मेरा विवाह हो गया। मैं ससुराल गई, कुछ दिनों के लिए। मेरे माता-पिता एवं संरक्षकों ने मेरे सुख के लिए कोई कसर उठा न रक्खी थी। घर की बात तो जाने दीजिए। मेरे पतिदेव भी रूप, गुण, विद्या, बुद्धि, शील, स्वभाव, सदाचरण के अवतार हैं। नई रोशनी, नए ख़यालातों के समर्थक हैं। स्त्रियों के विषय में उनके विचार अत्यन्त उन्नत और उदार हैं। क्रोध तो उन्हें छू तक नहीं गया है। सदा प्रसन्न-मुख रहा करते हैं। २२ वर्ष की अवस्था है। गत वर्ष बी० एस-सी० की डिग्री सम्मान सहित प्राप्त की है। उनके सद्गुणों की प्रशंसा सभी मुक्त-कण्ठ से किया करते हैं। किन्तु एक बात की कमी है। वे जितेन्द्रिय नहीं हैं। इन्द्रिय-परायण हैं, किन्तु इससे यह न समझ लीजिए कि पर-स्त्री-गमन वा वेश्यागमन इत्यादि निकृष्ट कर्मों को करते होंगे। यह बात नहीं है। बड़े ही स्वच्छ-हृदय हैं। आज तक उन्होंने एक भी बात या भाव मुझसे नहीं छिपाया। किसी बात के लिए भी छल न किया। यहाँ तक कि विवाह के चार वर्ष पूर्व एक मुसलमान लड़की से उन्हें बुरा सम्बन्ध हुआ। चार महीने तक इन्होंने उसके साथ गुप्त रूप से सहवास किया था, किन्तु तुरन्त सुधर गए। ये स्वयं अपने मुख से कह देते हैं। अब सच्चरित्रता, पवित्रता और सात्विक रूप से जीवन-यापन करते थे। अस्तु, जितेन्द्रिय न होने के कारण, हाय कैसे लिखूँ—लिखते दुःख और लज्जा होती है—इन्होंने मेरे साथ प्रथम दिवस को ही......पिता जी ! ऐसी-ऐसी बातें आपके निकट लिखते मेरी मृत्यु क्यों नहीं हो जाती ! हाय, क्या-क्या संसार में भोगना है। क्या करूँ, इन बातों को छोड़ते भी नहीं बनता। मेरा विवेक, मेरी निर्णय-शक्ति, लुप्तप्राय हो रही है। अतः मैं सभी छोटी-बड़ी बातें आपके सामने स्पष्ट और स्वच्छ हृदय से कह कर निर्णय करवाना चाहती हूँ। अब मेरे मन में लेश-मात्र भी छल अथवा कालिमा नहीं है। कैसे आपको अपना हृदय दिखा दूँ ?

मैं अपने अतीत की प्रतिज्ञा से विवश थी। विशेष आपत्ति दिखाती तो भेद खुल जाने का डर था। अतः पतित होने से मेरी आत्मा में भयानक चोट हुई। मैं वेश्या से भी अपने को निकृष्ट समझने लगी। विवाह के दो दिन बाद वे कॉलेज चले आए। दो-चार महीनों के अनन्तर कभी-कभी भेंट हो जाया करती थी। उस युवक के कार्यों से मुझे घृणा तो हो ही गई थी। प्रतिज्ञा-पालनवश उसकी ओर से प्रेम भी हटाना पड़ा, अब मेरे सामने मेरा आराध्यदेव अथवा प्रेमपात्र सभी कुछ पतिदेव ही थे। यही करना मेरा लक्ष्य भी था। अतः उपयुक्त साधन और अवसर मिल जाने से वह प्रेम-निर्झर इसी ओर प्रवाहित होने लगा। मेरे हृदय में—शून्य हृदय में—पुराना प्रेम-बीज कुछ-कुछ पुनः अङ्कुरित



महाराजा काश्मीर

(गोलमेज़ के सदस्य)

होने लगा। इनके इन्द्रिय-परायणता के अतिरिक्त मैं और सभी गुणों पर मुग्ध होकर श्रद्धा और भक्ति से उन्हें देखती थी, और उसे स्वप्न में भी याद न आने देने का प्रयत्न किया करती थी और अब भी करती हूँ। इनके परिवार की सुन्दर और सुशील बालक-बालिकाएँ, हँसमुख ननद-जेठानी तथा सुकुमार, स्नेहमयी पतोहू, सास-श्वसुर, देवर इत्यादि के स्वभाव ने मुझे अपना लिया। मैं सभी से स्नेह करने लगी हूँ। इनके साहचर्य से अपने अतीत की दुःखप्रद घटनाओं को भूलने में समर्थ हुई हूँ। अब इसके बाद की घटना सुनिए।

जब मैं अपने जन्म-स्थान का परित्याग कर इधर आई, उसके कुछ दिन बाद उस युवक ने प्रेमाभूत हो—या प्रतिहिंसावश उपद्रव करना शुरू किया। पिता जी से फिर कहना शुरू किया—"उससे मेरी शादी कर दीजिए, नहीं तो परिणाम बुरा होगा।" असफल होने के कारण उसने बहुत बार चाहा कि पिता जी का प्राणान्त कर दे। वह सब भेद संसार में खोल कर चारों ओर बदनामी फैलाने लगा। कई एक जगह गुमनाम पत्र भी भेजने लगा। मेरी खोज में एक बार मेरे ग्राम में भी चला आया। मैं वहाँ न थी। पर पिता जी उसके आक्रमण से बचे।



महाराजा बीकानेर

(गोलमेज़ के सदस्य)

विवाह के दिन भी उसने मेरे ग्राम में, जहाँ मेरी शादी हो रही थी, बारात में बेइज़्ज़ती करने की धमकी देकर पत्र भेजा। विवाह के एक सप्ताह पूर्व मेरे ससुराल में पतिदेव के पास भी एक पत्र भेजा कि मुझे उससे प्रेम है, आप विवाह न कीजिए, नहीं तो परिणाम बुरा होगा। पतिदेव के मन में सन्देह तो उसी समय से अवश्य हो गया। पर अब क्या करते, ध्यान न देकर विवाह कर लिया। कई एक बार पतिदेव ने इसके सम्बन्ध में मुझसे सत्यता पूछी, किन्तु दुखिया माता-पिता और संरक्षकों की प्रतिष्ठा के लिए और अपनी प्रतिज्ञावश मुझे मिथ्यावादिनी भी होना पड़ा। इस मिथ्यावाद में मुझे कितना दुःख, कितनी घृणा, कितनी ग्लानि होती थी—मेरे अन्तर्यामी ही जानते हैं। विवाह के कुछ दिन बाद मेरे ससुराल जाकर, वह न जाने किस अभिप्राय से तुरत लौट भी आया, और सभी से यह बात प्रगट कर दी गई। ससुराल में भी सभी लोग इस भेद को जान गए हैं। अब तो सर्वत्र यह बात पूर्णरूप से फैल गई। घर-घर इसकी आलोचना हो रही है। उसके कार्यों से मुझे भय होने लगा कि पतिदेव के प्राणों पर सङ्कट न आ पड़े। मैंने उन्हें सचेत रहने के लिए लिखा, तो उन्होंने उत्तर दिया—"प्रिये, तुम मेरे लिए चिन्ता न करो, वह मेरे ऊपर वार नहीं कर सकता। तू सुखपूर्वक रहा कर, जिससे तेरे बिना संसार मुझे असार न लगे। संसार चाहे जो कहे, पर तू तो मेरे लिए......क्या चन्द्रमा में कलङ्क नहीं है? भगवान अंशुमाली में धब्बा नहीं है? तो इससे क्या चकोर चन्द्रमा के अमृतमयी ज्योत्स्ना का त्याग कर दे? संसार उसकी किरणों से लाभ न उठावे? इत्यादि...।" कितने पवित्र, उदार और त्यागमय ये वाक्य हैं। इन बातों ने अक्षरशः मेरे हृदय में घर कर लिया। मैं सौ जान से इन पर निछावर हो गई। सम्पादक जी! यह वाक्य उस समय के हैं, जब विवाह हुए प्रायः दो मास भी न हुआ होगा। और अब की बात सुनिए!

इसके बाद वह युवक पिता जी से बदला लेने का प्रयत्न तो करता था ही, एक दिन समय पाकर उसने मेरे पिता जी के कार्यालय से सरकारी मिसिल, जो पिता जी के मातहत में थी, चुरा ली। पिता जी नौकरी से हटा दिए गए। चोरी साबित होने पर मुक़दमा चलने लगा। सी० आई० डी० के सहारे मेरे प्रेम-पत्रों को पिता जी ने गुप्त रूप से उस युवक से ले लिया। बड़े ज़ोर की फ़ौजदारी हुई। उसने अदालत में भी सभी भेद कह दिया, यहाँ तक कि गवाही के लिए मेरे नाम से भी सम्मन भेजने को था, पर वकीलों ने मना किया। ख़ैर, रुपयों के ज़ोर से पिता जी उस मुक़दमे से रिहाई पा गए। उस युवक को दो वर्ष के लिए नेकचलनी के लिए। मुचलका और ज़मानत देनी पड़ी। पिता जी को नौकरी पुनः मिल गई। मैं फिर उस स्थान का परित्याग करने के बाद से आज तक वहाँ नहीं गई हूँ। अतः अब

वह कहता है—"एक बार उसे (मुझे) यहाँ ले आओ, मैं केवल देख कर अपना प्राणान्त कर लूँगा।" मैं नहीं समझती, वहाँ मेरा जाना अब ठीक है या नहीं ?

यही सब बातें पतिदेव को सविस्तर रूप से मालूम हो गईं। उन्होंने दो मास हुआ, मेरे पित्रालय में आकर यह सब बातें मुझसे पूछीं। मैंने अब मिथ्यावाद करना ठीक न समझा। सभी बातें स्वीकार कर लीं। किन्तु इसका परिणाम बुरा निकला। यद्यपि मुझे अपने सत्य कथन से अपूर्व आत्म-सन्तोष हुआ है। पतिदेव यहाँ तो कुछ न बोले, पर उनके भावों से विदित हो गया कि इनके हृदय पर इस रहस्य को जान कर आघात हुआ है और होना स्वाभाविक भी है। अस्तु, यहाँ से जाने के बाद वे पत्र द्वारा अपने हृदय के भावों को प्रगट कर रहे हैं। उनका कहना है—"तुमने उस प्रेम का निर्वाह न करके माता-पिता के मोह में फँस कर घोर पाप किया है। सत्यपथ, धर्मपथ, न्यायपथ से भ्रष्ट हो गई हो। तुम्हारा यह कर्त्तव्य नहीं था। तुमने उसके साथ विश्वासघात किया है। मुझे तुम्हारा कार्य पसन्द नहीं, तुम्हारी प्रशंसा मैं कदापि नहीं कर सकता। तुम भ्रष्टा हो, मुझे तुमसे घृणा हो रही है। विवाह के समय कुछ-कुछ मेरा प्रेम था, पर अब नहीं है। हार्दिक सौन्दर्य और गुण पर मुग्ध होकर जो प्रेम हो, वही सच्चा है। पर मेरे तुम्हारे प्रति ये भाव कदापि नहीं हो सकते। अब तो तुम्हारे साथ मेरा सम्बन्ध वासना के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। तुम्हारे संसर्ग से मेरा जीवन निन्दनीय हो रहा है। तुम यदि उससे केवल प्रेम ही करतीं, तो कुछ न था; पर तुम्हारा तो और भी पतन हो चुका है। यदि वह न हुआ होता, तो मैं तुम्हारी प्रशंसा मुक्त-कण्ठ से करता। हाँ, तुम्हारे साथ मैंने भी पाप किया है। तुम्हारे स्वभाव, चरित्र, गुण, प्रेम इत्यादि का परिचय बिना पाए ही मैंने तुम्हें भ्रष्ट कर डाला है। इसके प्रायश्चित्त में तुम जो दण्ड और श्राप दोगी, मुझे स्वीकार है। तुम्हारे परित्याग से ही मेरी भलाई है, अतः मैं तुम्हारा परित्याग शीघ्र ही और अवश्य करूँगा। और तुम भी अपने जीवन को सुधारो, मेरी आशा छोड़ दो, मैं पापी हूँ, कामुक हूँ, इन्द्रिय-लोलुप हूँ, मुझे ठुकरा दो। परमात्मा अब भी तुम्हारे अपराध को क्षमा करेंगे। ऐ दैना ! बिछुड़े हुए मिलेंगे फिर········को सार्थक करो मैं इसमें तुम्हारी सहायता करूँगा।"

सम्पादक जी ! उनका कहना सभी सत्य और अकाट्य है। पर मैं क्या कहूँ। हाय ! कहीं की न रही। माता-पिता के कारण, स्वेच्छा से, प्रतिज्ञावश उधर से भी मुख मोड़ लेना पड़ा। इससे धर्मच्युत और पथभ्रष्ट भी हुई ! तत्पश्चात इस ओर आकर अपनी आत्मा का भी पतन किया ! बरबस सभी ओर से ध्यान हटा कर इनसे भी प्रेम किया; तो अब इधर से भी परित्यक्त हुई ! मैंने पतिदेव को लिख दिया है—"गुरुजनों के सम्मुख प्रतिज्ञा करके, सभी को विश्वास दिला के—उसे धर्म का सहोदर मान कर, मैंने उसका परित्याग कर दिया है। उस ओर



नवाब भोपाल
(गोलमेज़ के सदस्य)

अब मैं जा नहीं सकती। मेरी आत्मा इसके विरुद्ध है। वह पथ मेरे लिए अब नहीं है। हाँ, यदि मेरे संसर्ग से आपका जीवन दुःखमय, अपवित्र निन्दनीय और कलुषित हो रहा है, तो जिसमें आपकी भलाई हो वही कीजिए। मुझे भूल कर सुखी हो सकें, तो वही कीजिए। विवाह की इच्छा हो तो विवाह कर लीजिए। मैं आपके सुख में बाधा न दूँगी। पर अपने हृदय में न सही, चरणों में स्थान दीजिए। मेरे लिए कहीं स्थान नहीं है। मैं आपकी, आपकी भावी पत्नी की, बाल-बच्चों

की सेवा परिचारिका के रूप में करती हुई जीवन यापन कर लूँगी ।" मेरे पित्रालय में जब तक माता-पिता जीवित हैं, तभी तक मेरे लिए स्थान है । पश्चात कुत्तों के समान दुरदुरा कर निकाल दी जाऊँगी ! क्योंकि मेरे परिवार में सभी कोई आजकल हमारे शत्रु हो रहे हैं । कारण, पिता जी अपनी जायदाद के ⅛ के स्वामी हैं । माता जी को भी अपने मायके में अपने पिता की कुछ सम्पत्ति मिली है । अतः सभी की गृद्ध-दृष्टि इस धन पर लगी है । क्योंकि पिता जी को कोई पुत्र नहीं, एक मैं ही अभागिनी उनका सर्वस्व हूँ । पिता जी



महाराजा रीवाँ
(गोलमेज़ के सदस्य)

कह रहे हैं कि "अपनी सम्पत्ति को मैं अनाथालय अथवा देश की किसी उपकारिणी संस्था में लगा दूँगा । पर इन नालायक़ों को किसी अवस्था में नहीं दे सकता ।" इस कारण मेरे माता-पिता पर, विपद पर विपद पड़ रही है ।

सम्पादक जी ! मेरे उपरोक्त कथन का पतिदेव ने १२-९-३० तारीख़ को निम्न-लिखित प्रत्युत्तर भेजा है—"द्वितीय विवाह की वार्ता जो तुमने लिख भेजी है, उसे मैं अभी कुछ दिनों के लिए स्वीकार नहीं कर सकता । जब तक जीविका का साधन प्राप्त नहीं होगा तथा "लाइफ़ सेटल" नहीं होगा, नहीं करूँगा । और आधुनिक समाज भी एक स्त्री के रहते हुए दूसरा विवाह नहीं होने देता । अतः प्रत्यक्ष रूप से इस समाज में विवाह नहीं कर सकता । पिता-माता, भाई-बिरादर, सभी इसके प्रतिकूल हो जायँगे । उन लोगों को आपके प्रति शङ्का उत्पन्न हो जायगी, वे घृणा करने लगेंगे । यदि जमशेदपुर में मुझे काम मिल जाय, तो सब कुछ सहल है । मैं एक प्रकार से तब वहीं बस जाऊँगा । वहाँ पर यूरेशियन तथा बङ्गाली लेडीज़ बहुत रहती हैं । यूरेशियन लेडी से सम्बन्ध हो जाने पर क्रिश्चियन लोगों की कृपा से अच्छा-अच्छा पद प्राप्त हो जाता है । वह बङ्गाली या बिहारी जो हो । यदि उन लोगों की कृपा हो जायगी तो किसी प्रकार का बखेड़ा नहीं है । वहाँ पर मैं यही प्रकट कर दूँगा कि मेरा विवाह नहीं हुआ है । यदि किसी प्रकार का बखेड़ा उठ जायगा तो लूट लाना और कूट खाना........'ऐश कर दुनिया में ग़ाफ़िल ज़िन्दगानी फिर कहाँ ....' वाली कहावत चरितार्थ करूँगा । अभी तो इस पर घृणा हो रही है, पर मेरे ऐसे व्यक्ति के लिए यह दुर्लभ नहीं । धिक्कार है मुझे । .... तथा परिचारिका वाली बात मुझे पसन्द नहीं । हृदय नहीं चाहता । खिंच चुका हूँ, आपके लिए मेरे हृदय में स्थान नहीं है । तो हृदय यह भी नहीं चाहता कि वह जिस गृह तथा तन में रहे वह उसी घृणित व्यक्ति से उस तन तथा उसके बाल-बच्चों की सेवा करवावे । यह तो एक प्रकार का बदला है । वैसा बदला मेरा हृदय नहीं चाहता । मैं विवश हूँ इसी हृदय से, यथार्थ पूछिए तो यह अपनी दृष्टि से आपको देखना नहीं चाहता । कोई पूछे इतनी घृणा का कारण क्या है ? इसका कुछ उत्तर नहीं ।........ अब रह गया आपकी जीविका का प्रश्न । इसके लिए मैं ज़िम्मेवारी लेता हूँ । जब लाइफ़ सेटल हो जायगा तो मैं मासिक जितना आपकी इच्छा होगी, उतना यथासमय नियम-बद्ध भेजा करूँगा । यदि इसमें आपकी स्वीकृति न हो, तो इसके साधन आपके पास बहुत कुछ हैं । किसी स्कूल में शिक्षिका का पद मैं आपको अवश्य दिला दूँगा । इसमें समाज-सेवा, देश-सेवा भी आप कर सकती हैं । लाचार दर्जे, टेलरिङ्ग से भी पूरी आय आपकी हो सकती है.........इत्यादि ।" और पत्र-व्यवहार स्थगित कर देने का तथा मेरा चेहरा न देखने का विचार

करते हैं। सम्पादक जी ! उपरोक्त बातें उन्होंने लिख भेजा हैं; जिसे पढ़ कर जैसी दारुण वेदना, जैसी भयङ्कर ज्वाला मेरे हृदय में उत्पन्न हुई है, कैसे प्रकट करूँ? यह उसी पाप का प्रायश्चित है, जैसा मैंने उस अभागे युवक के साथ किया; उसी का बदला है ! हाय रे भावुक-हृदय युवक ! तू एक कुलटा, अविश्वासिनी, पापिनी, किन्तु रमणी-हृदय की प्यास नहीं जानता। पतिदेव की सभी बातें सत्य हैं। और उन्हें विश्वास है कि उनके प्रेम से निराश और तिरस्कृत होकर मैं फिर उसी युवक से प्रेम-सम्बन्ध जोड़ लूँगी। जैसा कि वे आज्ञा भी देते हैं। पर हाय ! तुम नहीं जानते, तुम्हें यथार्थ का परिचय ही नहीं मिला है, तुम कल्पना भी नहीं कर सकते हो। पूज्य पिता जी ! परम पिता परमात्मा जानता है, वही साक्षी है कि विवाह के पश्चात से मैं जिसे अपना उपास्य और प्रेम-देव समझती थी—उसी का जलवा, उसी का अस्तित्व इनमें रख और जान कर, हृदय से वही समझ कर इन्हें प्यार कर रही हूँ। वही प्रेम इनसे कर रही हूँ। हाय ! कैसे इनसे हृदय और शरीर चिर-दिन के लिए विलग करूँ। इनसे विलग होते आत्मा और हृदय फटा जा रहा है। किसके लिए संसार में रहूँ। ये मुझे नहीं चाहते, इन्हें मुझसे कोई प्रेम नहीं। ऐसा होना ठीक भी है, क्योंकि मुझमें न रूप है, न गुण; सौन्दर्य है, न कोई आकर्षण-शक्ति ! पापिनी हूँ, दुर्गुणों की भण्डार हूँ, तो ये मुझे चाहें तो कैसे ? अस्तु, अब मुझे अपने लिए कोई कामना या अभिलाषा नहीं है, मैं तो जीवन के शेष दिन आदर्श और पवित्र बिताना चाहती हूँ; पर मुझे केवल अपने माता-पिता एवं पतिदेव की चिन्ता है। माता जी पुनः रोगाक्रान्त हो रही हैं, इस अवस्था में पतिदेव की ऐसी इच्छा, ये भाव ! जिस तरह हरी घास के नीचे पृथ्वी असंख्य पदार्थों को छिपाए रहती है, मैं भी अपने हास्य के आवरण में अपने आन्तरिक दुःख को उसी तरह छिपाए हुए हूँ। माता जी सुन लेंगी, तो न जाने किस अवस्था को प्राप्त होंगी। यद्यपि यह विष तो उन लोगों का ही लगाया हुआ है, पर वे भी तो भविष्य की ऐसी दुःखप्रद कल्पना न कर सकते होंगे ! हाँ, तब मैं माता-पिता को भी सुखी रखना चाहती हूँ ! भविष्य में मेरे कार्य द्वारा इनकी कोई हानि अथवा अनिष्ट न हो और अपने आराध्य-देव को भी सुखी देखना चाहती हूँ। मेरे ही कारण इन तीनों का शेष जीवन और सुख नाश हो रहा है। पतिदेव तो अब स्वयं अपना उपाय कर रहे हैं। पर सम्पादक जी, अब मैं क्या करूँ ? मेरे लिए कौन सा पथ है ? इस समय मेरा क्या कर्त्तव्य है ? यही मैं आपसे पूछ रही हूँ, मेरे इतने प्रयास का यही अभिप्राय है। मैंने प्रारम्भ से लेकर आज तक की कोई बात आपसे नहीं छिपाई है। हृदय खोल कर रख दिया है। यही मेरी पाप-कहानी अथवा जो समझिए, है। मैं भयानक आग में जल रही हूँ, बड़ी ही आशा से यह सब लिख रही हूँ। पढ़ने में अवश्य कष्ट हुआ होगा, पर मैं नतजानु हो इसके लिए क्षमा-याचना भी कर रही हूँ। आप अपना सदुपदेश देकर मुझे कर्त्तव्य-पथ पर



महाराज राणा धौलपुर
(गोलमेज़ के सदस्य)

लाइए। मैं प्यासे पपीहे की भाँति आपके पत्रोत्तर की बाट देख रही हूँ। तीन आने का टिकट भी भेज रही हूँ। शीघ्र और अवश्य पत्रोत्तर भेजिए। निम्न-लिखित पते से। विशेष कृपा ! पत्रोत्तर रजिस्ट्री द्वारा भेजें।

ग्राम.........
पत्रालय.........
ज़िला—मुज़फ़्फ़रपुर

"आपकी एक अभागी और पापिनी कन्या"

[यह पत्र केवल समाज की वास्तविक स्थिति को पाठकों के समक्ष उपस्थित करने मात्र के उद्देश्य

(शेष मैटर २६१वें पृष्ठ में देखिए)



[सम्पादक तथा स्वरकार—श्री० किरणकुमार मुखोपाध्याय (नीलू बाबू)]

मिश्र भैरवी—३ ताल

[शब्दकार—डॉ० धनीराम 'प्रेम', लन्दन]

स्थायी—एक पिता के सब सन्तान।
कोई बड़ा न छोटा हममें,
सब हैं एक समान ॥
अन्तरा—एक पिता के वैश, ब्राह्मण, अरु चमार, नाई,
हिन्दू मुसलिम या ईसाई,
यह सब कृत्रिम भेद-भाव हैं,
इसमें तत्व न जान।
लग जा सबके गले प्रेम से
तज झूठा अभिमान,
सबों का एक वही भगवान ॥

स्थायी

३				०				१				×			
मप	ध (क)	प	म	रे	म	ग (क)	—	नी (क)	स	ग (क)	रे	स	—	—	—
एए	ए	क	पि	ता	आ	के	—	स	ब	स	अं	ता	—	—	त
सं	—	सं	—	सं	नी (क) सं	रे (क) °	सं	नी (क)	सं	ध (क)	नी (क)	प	ध (क)	प	—
को	—	ई	—	ब	ड़ाआ	आ	न	छो	ओ	टा	आ	ह	म	में	—
ग (क)	ग (क)	प	—	प	—	प	ध (क)	मप (क)	धनी (क क)	संनी (° क)	धनी (क क)	धप (क)	धप (क)	मप	मग (क)
स	ब	हैं	—	ए	—	क	स	माआ	आआ	आआ	आआ	आआ	आआ	आआ	आत

अन्तरा

	क					क		क		क				क	क
मप	ध	प	म	रे	म	ग	—	ध	—	ध	म	—	म	ध	ध
एए	ए	क	पि	ता	आ	के	—	वै	—	श्य	ब्रा	—	ह्मन	अ	रु
क	०		०	क०	क	०		क		क	क		०		
नी	स	—	स	रे	नी	स	—	नी	—	नी	नी	—	स	—	—
च	मा	—	र	ना	आ	ई	—	हिं	—	दू	मुस	—	लि	—	म
क ०	क०		०	क	क			०		०	०	०	०	०क	०
नीस	रे	—	स	नी	ध	प	—	स	—	स	स	स	स	रे	स
याआ	आ	—	ई	सा	आ	ई	—	ये	—	स	ब	कु	ई	त्री	म
क	०	क	क	क	क			क	क				क	क	क
नी	स	नी	ध	नी	ध	प	—	ग	ग	प	—	प	ध	नी	ध
भे	ए	द	भा	आ	व	हैं	—	ई	स	में	—	त	अ	त्व	न
				क०	क०	क०		०क	०क	०		क	०	क	क
प	—	—	—	ग	ग	ग	—	रे	रे	स	—	नी	स	नी	ध
जा	—	—	न	ल	ग	जा	—	स	ब	के	—	ग	ले	ए	प्रे
क	क			क	क				क	क	०	क	क	क	
नी	ध	प	—	ग	ग	प	—	प	ध	नी	स	ध	नी	ध	प
ए	म	से	—	त	ज	भू	—	ठा	आ	अ	भि	मा	आ	न	स
				क		क			क	क	क				
म	—	प	—	ग	—	र	स	स	रे	ग	रे	स	—	—	—
वों	—	का	—	ए	—	क	व	ही	ई	भ	ग	वा	—	—	न

(२५९वें पृष्ठ का शेषांश)

से यहाँ प्रकाशित किया गया है। आज न जाने कितनी युवतियों और युवकों का विवाह-सम्बन्ध, उनके प्रेमी अथवा प्रेमिकाओं से, केवल इसलिए नहीं किया जाता, क्योंकि या तो माता-पिता के सामने धन का प्रश्न उपस्थित हो जाता है अथवा जाति या उप-जाति का! इन थोथी दलीलों के चक्कर में पड़ कर आज न जाने कितने परिवार इस अभागे देश में ख़ून के आँसू बहा रहे हैं—यद्यपि समाज की दृष्टि में वे विवाहित हैं, पर वे अपनी दृष्टि में, वे अपने को इसके विपरीतावस्था में पाते हैं! हमें आशा है, समाज के "चौधरी" यदि उनके ज्ञान-चक्षु का लोप नहीं हो गया है—तो इस पत्र पर ठण्डे दिल से विचार करेंगे।

कुछ विशेष कारणों की आशङ्का से हमने प्रकाश्य रूप में इस पत्र का उत्तर देना जान-बूझ कर उचित नहीं समझा, इस पत्र का उत्तर इस महिला को व्यक्तिगत रूप से दे दिया गया है। पाठकों को यही समझ कर सन्तोष कर लेना चाहिए कि हमारा उत्तर ठीक वही होगा—जो पाठक इस पत्र को पढ़ कर तथा अपनी छाती पर हाथ रख कर अपने हृदय में निश्चित करेंगे।

—स० 'चाँद']

दिल की आग उर्फ़ दिल-जले की आह !

["पागल"]

पाँचवाँ खण्ड

७



जहानारा की लड़की भला अब संसार में होगी या नहीं। अगर है तो कहाँ पर है। वह कैसे मिल सकती है, उसे कौन पहचान सकता है। पहचान है उसकी जो इन पत्रों में बताई गई, उसका पता पाना दुर्लभ ही नहीं, बल्कि असम्भव-सा है। क्योंकि दस वर्ष पूर्व वह आठ वर्ष की हो चुकी थी और अब उसकी अवस्था अट्ठारह साल की होगी। जब बूढ़ी स्त्रियाँ तक हर किसी को अपनी पीठ खोल कर नहीं दिखा सकतीं तो ऐसी नवयुवती को उसकी कमर पर गोदना देख कर ढूँढ़ निकालना स्वप्न ही तो है। फिर भी मैं जहानारा की लड़की के विषय में अपने विचारोंको दूर नहीं हटा सका। बल्कि उनके आगे अलिन्द की चिन्ता और सरोज के पत्रों का ख़्याल दब सा गया और मैं रजिस्ट्री लिफ़ाफ़े का कुल सामान लिए उस लड़की को ढूँढ़ने की सौ-सौ तरकीबें सोचता हुआ अपने मकान को चला।

अभी अपने दरवाज़े पर पहुँचा भी नहीं था कि तारा की माँ के यहाँ से एक आदमी मुझे बुलाने के लिए घबराया सा आता हुआ मिला। उसकी उखड़ी-उखड़ी बातों से मालूम हुआ कि बुढ़यि को न जाने एकाएक क्या हो गया है कि उसकी ज़बान ऐंठ गई है, मुँह टेढ़ा हो गया है और साँस उल्टी चल रही है। फ़ौरन ही जाकर उसे देखना पड़ा। सचमुच उसकी हालत बहुत ख़राब थी। उस पर फ़ालिज का आक्रमण इतने ज़ोरों का हुआ था कि वह कुछ ही घण्टों की मेहमान हो रही थी। फिर भी ऐसी दशा में जहाँ तक डॉक्टरी दवाइयाँ की जा सकती थीं, मैंने कीं और एक स्थानीय वैद्य जो इस रोग के विशेष विज्ञ मशहूर थे, उन्हें भी उसे दिखलाया, मगर कोई फल न हुआ। जब हर तरह से मुझे विश्वास हो गया कि वह अब बच नहीं सकती तो तारा को चुपके से बुला लाना अति आवश्यक जान पड़ा। क्योंकि बुढ़िया अपने आचरणों की कितनी ही ख़राब होने पर भी उसकी माँ ही थी।

मगर जब तारा को लाने के लिए मैं आश्रम में गया तो पता मिला कि तारा सुबह ही से वहाँ नहीं दिखाई पड़ी है। मकान पर पूछ-ताछ की, वहाँ भी उसे किसी ने नहीं देखा था। बड़ी उलझन हुई। क्योंकि कभी भी वह दिन-दिन भर इस तरह मकान से बाहर नहीं रही। सोचा, शायद वह अपनी किसी सहपाठिका के यहाँ गई हो। और वहाँ वह बरबस रोक ली गई हो। मुझे जल्दी थी, इसलिए तारा के लिए एक बन्द लिफ़ाफ़े में पत्र लिख कर और नौकर को उसके आने पर इस पत्र को उसे देने के लिए ताकीद करके मैं बुढ़िया के घर फिर वापस आया। यद्यपि वह अचेत थी और मृत्यु की घड़ियाँ गिन रही थी, दवाइयाँ देना बिलकुल बेकार था, फिर भी तारा की ख़ातिर मुझे उसकी माँ की देख-रेख के लिए रात भर वहीं रुकना पड़ा। सुबह होते-होते उसका दम निकला। दो घण्टे बाद उसकी रथी तैयार की गई। मगर इस वक़्त तक भी तारा वहाँ पर नहीं आई। हालाँकि मैंने पत्र में साफ़-साफ़ लिख दिया था कि तुम्हारी माँ की तबीयत बहुत ख़राब है। इसे पढ़ते ही तुम फ़ौरन चली आना। मगर अब अधिक देर तक उसके इन्तज़ार में लाश रोके रहना भी ठीक नहीं था। इसलिए उसकी अन्तिम क्रिया किसी तरह समाप्त करा कर दोपहर को जब मैं घर पहुँचा और नौकर ने मेरा बन्द लिफ़ाफ़ा ज्यों का त्यों वापस करते हुए कहा कि सरकार, बहू जी रात को भी नहीं आईं, तब तो मेरे होश उड़ गए। मेरी परेशानी देख कर घर और आश्रम दोनों जगह एक खलबली सी मच गई। बजाय इसके कि तारा के सम्बन्ध में मैं उन लोगों से पूछता, उल्टे वह लोग मुझीसे पूछ-ताछ करने लगे। क्योंकि अब तक उन लोगों का यह ख़्याल

था कि वह मेरे ही साथ कहीं गई होगी। एक नवयुवती के विषय में यह ख़बर उड़ जाना कि वह लापता हो गई या एक दिन और एक रात ही के लिए मकान से ग़ायब रही, किसी तरह से भी अच्छा न था। इसलिए मुझे अपनी उत्सुकता दबा कर लोगों के विचार के अनुकूल बहाना करना पड़ा कि तारा के मामा सपरिवार तीर्थ-यात्रा के लिए काशी आए हुए थे। कल शाम को जब मैं उनसे मिलने गया हुआ था तब तारा वहीं थी। वह आज सुबह की गाड़ी से बद्रीनारायण जाने वाले थे और तारा को भी अपने साथ ले जाने को कहते थे। मगर मैंने उनसे कह दिया था कि इसे अपने साथ आप कहाँ-कहाँ बेकार घुमाते फिरेंगे। जब तक आप यहाँ हैं तब तक यह आपके पास ही है, जब चलने लगिएगा तो इसे कृपया मेरे मकान पर पहुँचा दीजिएगा। क्योंकि मुझे एक ख़ास काम से एक जगह जाना है, सुबह को न आ सकूँगा। मालूम होता है कि शायद वह उसे अपने साथ ले गए। इसीसे मुझे परेशानी है या मुमकिन है वह अभी न गए हों तो तारा आती ही होगी।

इस तरह से झूठी-मूठी बातें बना कर लोगों की खलबली शान्त की। मगर मेरे दिल की खलबली कौन शान्त करता? समझ ही में नहीं आता था कि तारा गई तो कहाँ गई और क्यों गई? क्या अलिन्द के वियोग को वह सह न सकी और उसके लिए व्याकुल होकर उसे ढूँढ़ने निकल पड़ी, या इन दोनों में यहाँ से भागने के लिए पहिले ही से साँट-गाँठ हो चुकी थी कि पहिले तुम जाओ तो उसके दो-चार दिन बाद मैं भी आती हूँ, ताकि शक न हो? यह विचार आते ही क्रोध और घृणा से मेरी एक अजीब हालत हो जाती थी। उस समय मैं दिल ही दिल में तिलमिला कर यही कहता था कि इन दोनों का अब ज़िन्दगी भर मुँह न देखूँगा।

शाम को मुझे रञ्जीदा देख कर माता जी ने कहा कि जान पड़ता है कि आपके ममिया ससुर बहू को ले ही गए।

मैंने सर हिला कर कहा—हूँ।

"बहू को मालूम था कि उसे जाना पड़ेगा। मगर वह ख़ुद जाना नहीं चाहती थी।"

"आपने कैसे जाना?"

"क्योंकि परसों रात को वह बहुत उदास थी......"

मैंने बात काट कर कहा—हाँ, यह तो मैंने भी ताड़ा था, मगर इसका सबब कुछ और होगा।

माता जी—नहीं, नहीं; क्या मैं इतना भी नहीं समझती। यों तो जिसके पुरुष की तबीयत अच्छी न होगी उसे रञ्ज तो होता ही है, उस पर आपने ऐसे समय उसे अपनी सेवा भी नहीं करने दिया था। फिर भी इतनी सी बात के लिए वह इस तरह बिलख-बिलख कर न रोती।

मैं—क्या वह रोती थी?



साँगली के चीफ़

(गोलमेज़ के सदस्य)

माता जी—हाँ-हाँ, जब आपको झपकी आ गई थी और मैं आपके पास से जाने लगी थी, तो मैंने उसे इसी कमरे के सामने बरामदे में चुपचाप बैठी सिसकती हुई देखा था। मेरी आहट पाते ही वह चुपके से आँसू पोंछ कर बग़ल वाले कमरे में खिसक गई। मैंने दो बार उसे धीरे से पुकारा भी, मगर वह बोली नहीं। मैं उसी वक़्त भाँप गई थी कि वह रो रही है। इसीसे नहीं बोली।

मैं—वह नींद में रही होगी। आपकी बात सुन न सकी होगी।

माता जी—अरे! उस बेचारी को नींद कहाँ थी?

वह तो रात भर जागती रही। एक बार रात में मैं उठी थी तो उसे उसी कमरे में लैम्प के सामने कुछ पढ़ते या सिलाई करते देखा था। ठीक याद नहीं कि वह क्या कर रही थी।

मैं—क्या वह उस दिन रात में यहीं रही? मैंने तो उसे आश्रम में जाने को कहा था।

माता जी—हाँ-हाँ, वह तो आपने मेरे सामने ही कहा था। मगर मैं कह नहीं सकती कि वह जाकर फिर



डॉ० बी० एस० मुञ्जे
(गोलमेज़ के सदस्य)

लौट आई थी या वहाँ गई ही नहीं। तभी तो उसे यहाँ सिसकती हुई पाकर मुझे ख़्याल हुआ कि आज वह आश्रम में रहना नहीं चाहती, इसीसे शायद आपकी बात उसे बुरी लगी। और उसी के अफ़सोस में उसे नींद नहीं पड़ती। मुझे क्या मालूम था कि वह अपने मामा जी के साथ जाने की तैयारी में अपने सामान ठीक कर रही है। वरना मैं उसे ज़रूर टोकती। मगर आप भी ख़ूब हैं कि आपने भी अपने ममिया ससुर के यहाँ आने की बात पहिले हमसे नहीं बताई। क्या अब भी आप लोग हमें पराया समझते हैं?

मैं—नहीं, यह बात नहीं है। उन्होंने पहले यहाँ किसी को लिखा ही न था। जब यहाँ पहुँच गए तब उन्होंने तारा के पास परसों ख़बर भेजी। मुझे तो उनके आने का हाल कल दोपहर को मालूम हुआ है। जब उनका आदमी दुबारा आया है तब। उस वक़्त से आपसे मुझसे भेंट कहाँ हुई जो आपसे कहता?

किसी तरह माता जी की बातों से अपने बहानों का सिलसिला जोड़ कर मैंने अपनी झुठाई पर सचाई का रङ्ग चढ़ा दिया। मगर मेरे दिल में तारा के लिए परेशानी बढ़ती गई। मैं समझता था कि अगर वह बनारस में कहीं होगी तो उसकी माता की मृत्यु की ख़बर उसके कानों में अब तक ज़रूर पहुँची होगी। और इसे सुनते ही वह कहीं रुक नहीं सकती, दौड़ती हुई यहीं आएगी। उसके भागने का कारण जो अनुमान करता था, उस पर भी उसके रोने का समाचार जान कर मेरा विचार स्थिर अब नहीं रह सका। क्योंकि अगर इसमें और अलिन्द में भागने के लिए सलाह हो चुकी थी तो उसके दिल में ख़ुशी होनी चाहिए, न कि रञ्ज। तब वह इतनी उदास क्यों थी? इस तरह छिप कर क्यों रोई? आश्रम में जाने के बदले यहाँ क्यों रही? यहाँ पर तो कोई उसका सामान भी नहीं था। उफ़! सोचते-सोचते मेरा दिमाग़ चकरा उठा और तारा की रञ्ज से कुम्हलाई हुई सूरत आँखों के सामने नाचने लगी।

जिस कमरे में उस दिन रात में माता जी ने तारा को देखा था, उसमें जाकर हर चीज़ों को मैंने उलट-पलट कर इस उम्मीद में देखना शुरू किया कि शायद चलते वक़्त वह कोई पत्र छोड़ गई हो। सामने खूँटी पर मेरी एक फ़ैन्सी वेस्टकोट टँगी हुई थी। इसे देख कर मैं चौंका। क्योंकि इसे मैं खोई हुई समझता था। कई बार इसकी तलाश कर चुका था, मगर नहीं मिली थी। यह तारा ही की बुनी हुई थी। आज उसे एकाएक देख कर मैंने नौकरों से पूछा कि यह यहाँ किस तरह आई। जिसने सुबह को कमरे में झाड़ू दी थी उसने बताया कि यह कल सुबह को फ़र्श पर इसी जगह कुछ अख़बारों के साथ पड़ी हुई थी। उसने अख़बारों को ट्रङ्क के पीछे जहाँ और रद्दी अख़बार थे, डाल दिया और इसे खूँटी

पर टाँग दिया। मैंने अख़बारों को वहाँ से हटाया, नीचे के काग़ज़ों में दीमक लग गई थी। मगर एक-एक वर्क़ उलटने पर भी कोई ख़त न मिला। तब मैंने वह वेस्ट-कोट उठाई। वैसे ही मेरे हाथ में एक सूई चुभी। देखने पर मालूम हुआ कि उसकी एक तरफ़ की जेबों के कपड़ों में दीमकों की मिट्टी के कुछ निशानात हैं, जो झाड़ने पर भी अच्छी तरह से साफ़ नहीं हो सके हैं, और उनमें छोटे-छोटे कई छेद भी हो गए हैं। दो सूराख़ों में रफ़ू किया गया है। तीसरे में सुई खुसी हुई है। उसमें तागा काफ़ी है। अब समझा कि उस रात को तारा शायद इसी को रफ़ू कर रही थी, जब माता जी ने उसे देखा था। मगर रफ़ू करते-करते बीच ही में उसने छोड़ क्यों दिया? शायद उसे नींद आ गई हो या लम्प बुझ गया हो। इसके सिवाय और कुछ भी पता न चला। चौथे या पाँचवें दिन डाक से मेरे नाम एक ख़त आया। उस पर तारा के हाथ की लिखावट थी। मैंने जल्दी से लिफ़ाफ़ा फाड़ा और ख़त निकाला। उसके साथ नत्थी किया हुआ एक और काग़ज़ था, जिस पर काग़ज़ के बहुत से छोटे-छोटे फटे हुए टुकड़े बिछा कर चिपकाए हुए थे।

ख़त में सिर्फ़ यही लिखा हुआ था :—

"भगवन,

आपका ख़त भूल से फट गया है। वह चिपका कर भेजा जाता है। इस अपराध के लिए कृपया क्षमा कीजिएगा। इस वेश्या-पुत्री के लिए चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं है। उसे आपने अपनी असीम कृपाओं और अतुल अनुग्रहों से अपना निर्वाह स्वयं करने योग्य बना दिया है। वह अपने कर्त्तव्यों को आपकी शिक्षाओं द्वारा अच्छी तरह समझने लगी है। इससे अधिक आप पर भार देना उसके लिए अब उचित नहीं जान पड़ता। क्योंकि वह अपने जन्म का कलङ्क किसी तरह मिटा नहीं सकती।

आपके अनुग्रह के बोझ से लदी हुई,

—मन्दभागिनी तारा"

मेरा हृदय व्याकुल हो उठा। मैंने काँपते हुए हाथों से दूसरा काग़ज़ उठाया और पढ़ने लगा—

"तुम मुझे बेदिल, बेमुरव्वत और बेवफ़ा समझते होगे। मगर तुम नहीं जानते कि मैं तुम्हें कितना प्यार करती हूँ। हाय! इतना कि जिसकी थाह नहीं है। इतना कि इस वक्त कलेजे पर पत्थर रखने के लिए मैं मजबूर हो गई हूँ। महज़ तुम्हारी ख़ातिर। मैं भला किस दिल से तुम्हारा नुक़सान चाह सकती हूँ। जब अपने ही को यों तुम पर क़ुर्बान किए दे रही हूँ।........."

इसके आगे काग़ज़ों के टुकड़े जो जुड़े हुए थे उसके बहुत से अंश दीमकों से चाटे हुए मालूम होते थे। इससे आगे की लिखावट की जगह पर ख़ाली सूराख़ ही सूराख़ थे। मगर इस ख़त की बातें मेरी कभी की सुनी हुई मालूम हुईं। हाँ, अब याद पड़ा। यह अलिन्द



श्रीमती शुकदेवी पालीवाल

आप आगरे की एक सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय कार्यकर्त्री हैं। हाल ही में आपको छः मास की सख़्त क़ैद की सज़ा दी गई है।

का ख़त था, जो जहानारा ने लिखा था, और जिसे उसने अपनी कहानी कहते समय मुझे दिया था। मगर यह ख़त तारा के हाथ कैसे लगा। वह तो खो गया था। दीमकों के निशान उस समय मानो पुकार कर कहने लगे कि यह उसी खोई वेस्टकोट में था, जिसे तारा रफ़ू कर रही थी। मैंने जल्दी से लिफ़ाफ़े की मुहर देखी। मगर हाय! तारा ने यह ख़त रेल में छोड़ा था, जिससे मुहर में किसी मुक़ाम का नाम न था। उस वक़्त मेरे मुँह से आप से आप निकल पड़ा—"हाय! तारा तू कहाँ है!"

(क्रमशः)

(Copyright)

केसर की क्यारी

हमें भी तुम समझते हो, तुम्हें भी हम समझते हैं

[नाख़ुदाय सख़न हज़रत "नूह" नारवी]

किसी का दर्द अहले ऐशो-राहत, कम समझते हैं।
हमारा हाल जैसा कुछ है, उसको हम समझते हैं !

नहीं कुछ भी समझते हमको, यह कब हम समझते हैं ?
समझना चाहिए जितना, वह उससे कम समझते हैं !

हमारे ज़िक्रे-उलफ़त ने, उन्हें चक्कर में डाला है;
वह हरदम सोचते हैं, इसको, वह हरदम समझते हैं !

जफ़ाएँ करते जाओगे, वफ़ाएँ करते जाएँगे;
हमें भी तुम समझते हो, तुम्हें भी हम समझते हैं !

अभी तक बेख़ुदी में हमको, इतना होश बाक़ी है !
ख़ुशी को हम ख़ुशी कहते हैं, ग़म को ग़म समझते हैं !

तुम अपने क़ौल के पूरे, तुम अपनी बात के सच्चे।
हमारा दिल समझता है, इसे या हम समझते हैं !

मिटाया दर्दे-उलफ़त ने, हमें आहिस्ता-आहिस्ता;
यह नासमझी है उनकी, जो मरज़ को कम समझते हैं !

हमें ग़ैरों की बातों का, कभी सदमा नहीं होता,
जो ग़म अपनों से पहुँचे, हम तो उसको ग़म समझते हैं !!

लिहाज़ उनको बहुत रहता है, इनके भी मरातिब का !
जनाबे नूह से क्या "नूह" को वह कम समझते हैं ?

कलामे बिस्मिल

[कविवर "बिस्मिल" इलाहाबादी]

इस सबब से, दुहरा-दुहरा लुत्फ़ मैख़ाने में है,
आपकी अँगड़ाइयों का, अक्स पैमाने में है !

भीड़ रिन्दों की, बहुत कुछ, आज मैख़ाने में है।
कितनी शीशे में है साक़ी, कितनी पैमाने में है ?

क्या बताऊँ, क्या कहूँ, क्या रङ्ग मैख़ाने में है ;
दोनों आलम का समाँ, एक मेरे पैमाने में है !

चार-छः तिनकों ने, कैसा नाम रौशन कर दिया।
बर्क़ मेहमाँ इनके दम से, मेरे काशाने में है !

शमआ जल कर, क्यों नहीं लेती, ख़ुद इसका इमतेहाँ;
उसके दम से, क़ूव्वते परवाज़ परवाने में है !

पीने वाला क्यों न हो, मस्ते शराबे बेख़ुदी।
अक्स उन आँखों की, गरदिश का भी पैमाने में है !

रूए-रौशन से हटाते हैं, वह ज़ुल्फ़ें बार-बार !
चाँदनी छिटकी हुई, मेरे सियाख़ाने में है !!

यह रहे मद्दे-नज़र, ऐ वादा ख़्वारे ज़िन्दगी !
नेसती का दौर भी, हस्ती के पैमाने में है !!

जलवए दिलकश नज़र आए, तो उसको देख ले।
अब भी इतना होश बाक़ी, तेरे दीवाने में है !

ज़ाहरी असबाब से, इसको तअल्लुक़ कुछ नहीं;
हक़-परस्ती के लिए, "बिस्मिल" भी बुतख़ाने में है !



बाल मनोरञ्जन



तैमूर की लगन

दुनिया में जो बड़े-बड़े बहादुर हुए हैं, उनमें तैमूर का नाम बहुत प्रसिद्ध है। वह बड़ा ही साहसी, वीर, चतुर और उत्साही आदमी था। उसके ये गुण बहुत बढ़े-चढ़े थे। इन गुणों में उसकी बराबरी करने वाले आदमी आज तक दो-चार ही हुए होंगे। कोई सात सौ वर्ष हुए, उसने अपने इन गुणों की बदौलत सम्पूर्ण एशिया में हलचल मचा दी थी।

तैमूर बहुत बड़ा बादशाह था। उसके राज्य में कई बड़े-बड़े देश शामिल थे। कोई तीन-चौथाई एशिया महाद्वीप में तैमूर के नाम का सिक्का चलता था। यह लाखों वर्गमील भूमि तैमूर ने केवल अपनी भुजाओं के बल पर ही फ़तह की थी।

परन्तु तुम्हें यह जान कर अचरज होगा कि तैमूर ने किसी बादशाह के घर में जन्म नहीं लिया था। मध्य-एशिया में तुर्किस्तान नाम का जो देश है, वही तैमूर की जन्म-भूमि है। तैमूर का पिता एक मामूली सिपाही था। वह तुर्किस्तान के मुग़ल-बादशाहों की सेवा किया करता था। परन्तु ऐसे साधारण आदमी के यहाँ जन्म लेने पर भी तैमूर का मन बहुत बड़ा था। वह अपने बचपन में हमेशा यही सोचा करता था कि क्या मैं एक बड़ा बादशाह नहीं हो सकता?

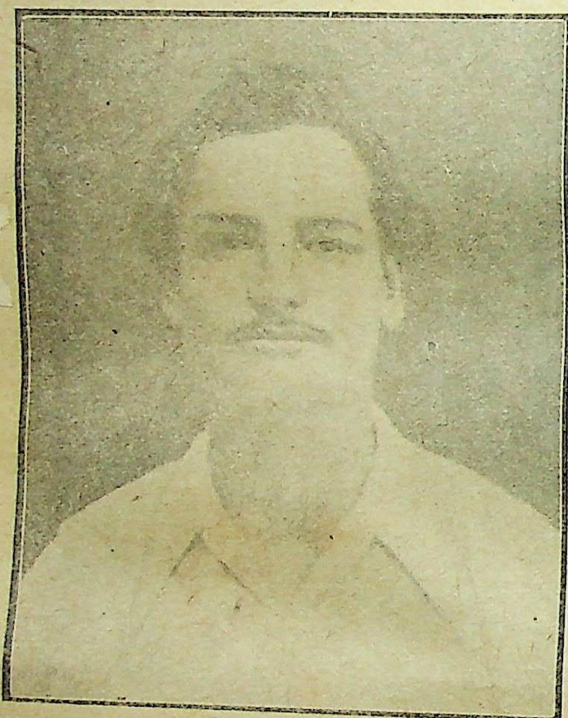
जब तैमूर ने होश सँभाला, तब उसने एक छोटी सी फ़ौज जमा की और उसकी सहायता से भूमि जीतना शुरू किया। वह हिम्मत हारना तो जानता ही न था। कितनी बाधाएँ क्यों न आवें, पर तैमूर का हौसला ज्यों का त्यों रहता था। धीरे-धीरे उसका बल बढ़ता गया। अन्त में उसने समरक़न्द के मशहूर क़िले पर धावा मारा।

परन्तु समरक़न्द के बादशाह के सामने तैमूर का बल कुछ न था। लड़ाई हुई। तैमूर हार खाकर भाग गया। कुछ दिन बाद उसने फिर फ़ौज बटोर कर समरक़न्द पर धावा बोल दिया। इस बार भी उसे हार खाकर भागना पड़ा। परन्तु वह हिम्मत का एक ही धनी था। उसने यह निश्चय कर लिया था कि या तो समरक़न्द पर बादशाहत करूँगा, या लड़ाई के मैदान में प्राण त्याग दूँगा। लगन के उस सच्चे वीर ने एक-एक करके इक्कीस बार समरक़न्द पर चढ़ाई की, पर हर बार हार ही उसके पल्ले पड़ी।

इक्कीसवीं बार की हार से बहादुर तैमूर के दिल पर बड़ा धक्का लगा। वह भागता हुआ एक पहाड़ में पहुँचा और वहीं ठहर गया। एक चट्टान पर बैठ कर सोचने लगा—"या ख़ुदा, क्या मेरी इतनी मेहनत बेकार जाएगी? क्या मेरी क़िस्मत में हर बार हार खाना ही लिखा हुआ है? क्या मेरी उमङ्गें पूरी न होंगी?" इस तरह सोच-विचार करते-करते उसने ऊपर की ओर नज़र उठाई।

सामने ही एक दूसरी चट्टान थी। उस पर एक चिउँटी भोजन लिए हुए चढ़ रही थी। जब वह कुछ दूर तक चढ़ गई, तब एकाएक नीचे गिर पड़ी। इसके बाद ही उसने फिर चढ़ना शुरू किया, परन्तु कुछ ऊँचे तक चढ़ने के बाद फिर गिर पड़ी। चिउँटी का यह स्वभाव

होता है कि वह कभी हार नहीं मानती। जब तक उसे सफलता नहीं मिल जाती, वह बराबर उद्योग करती रहती है। चट्टान पर चढ़ने के लिए उस चिउँटी को बहुत कोशिश करनी पड़ी, अन्त में वह उस पर चढ़ कर ही रही। यह देख कर तैमूर को बड़ी ख़ुशी हुई। उसके शरीर में नया जोश पैदा हो गया। उसने सोचा कि जब चिउँटी जैसी छोटी सी चीज़ सच्ची लगन के द्वारा सफलता प्राप्त कर सकती है, तब बार-बार कोशिश करने से मैं क्यों न समरक़न्द पर अधिकार कर सकूँगा?



श्री० ख़ुशहालचन्द कैफ़ी

लाहौर के एक नवयुवक कार्यकर्ता, जिनको एक वर्ष की सख़्त क़ैद की सज़ा दी गई है। मैजिस्ट्रेट ने आपको 'बी' क्लास में रक्खा था, पर पञ्जाब गवर्नमेण्ट ने 'सी' क्लास में बदल दिया है।

दूसरे ही क्षण तैमूर उठ कर खड़ा हो गया। उसने अपने सब सिपाहियों को बुलाया और उनसे कहा—मेरे बहादुरो! ख़ुदा-ए-पाक ने इस छोटी सी चिउँटी के ज़रिए मुझे जो सबक़ पढ़ाया है, उससे मैं यह समझ सका हूँ कि जब तक फ़तह न हो जाय, तब तक मुझे समरक़न्द पर हमले करते रहना चाहिए। बस, तुम लोग तैयार हो जाओ, मैं अभी समरक़न्द पर धावा बोलूँगा।

इसके बाद ही तैमूर ने बड़े ज़ोरों से समरक़न्द पर धावा किया। समरक़न्द का बादशाह थका हुआ था। उसने यह सोचा भी न था कि तैमूर इतनी जल्दी फिर लड़ने आ जायगा। इस बार उसे हार खाकर भागना पड़ा। तैमूर ने बड़ी ख़ुशी से समरक़न्द में प्रवेश किया। वह बड़ी धूमधाम से समरक़न्द के राजसिंहासन पर बैठा।

इसके बाद तैमूर का हौसला बेहिसाब बढ़ गया, और उसने नए-नए देश जीतना शुरू किया। कहते हैं कि फिर कभी उसने लड़ाई के मैदान में हार नहीं खाई। अस्तु।

तैमूर लगन का सच्चा था और इसी सच्ची लगन की बदौलत वह इतना बड़ा बादशाह हो सका था। उसका राज्य इतना बड़ा था कि तुम उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। उद्योग, उत्साह और लगन से ही आदमी बड़ा होता है।

—जहूरबख़्श, हिन्दी-कोविद

* * *

गुरु जी

पुराने समय में एक गुरु जी रहते थे। इनके पाँच चेले थे—पहले का नाम भकुआ भगत, दूसरे का सिड़ी शर्मा, तीसरे का नटखटसिंह, चौथे का मूर्खराज और पाँचवें का बेवक़ूफ़सिंह था। ये लोग अपने गुरु के बड़े आज्ञाकारी थे।

एक समय की बात है कि गुरु जी अपने चेलों के साथ किसी नदी के किनारे पहुँचे। नदी पार करने के लिए गुरु जी ने मूर्खराज को इसका निरीक्षण करने के लिए भेजा; क्योंकि उनकी ऐसी धारणा थी कि नदी की जाग्रत अवस्था में पार करना मुश्किल होगा। मूर्खराज ने नदी का निरीक्षण करने के लिए एक जलती हुई लकड़ी को दूर ही से उस नदी में डाला। लकड़ी के पानी में बुझने की कुछ आवाज़ हुई, उसे सुन मूर्खराज बहुत ही डरा और

गुरु जी के पास दौड़ता हुआ आकर बोला—गुरु ज़ी! गुरु जी! नदी इस समय सोई नहीं है; वह फुफकार कर मुझे पकड़ने दौड़ी थी; किन्तु मैं जान बचा कर भागा आया हूँ।

सबों की इच्छा थोड़ी देर ठहर जाने की हुई। विनोद तथा समय बिताने के लिए भकुआ भगत ने कहा—यह नदी बड़ी धूर्त और चालबाज़ है। मेरे दादा एक बड़े भारी सौदागर थे। एक बार ये एक दूसरे सौदागर के साथ इस नदी को पार कर रहे थे। इनके साथ कुछ घोड़े भी थे, जिन पर नमक के गट्ठर लदे थे। गरमी का दिन था; धूप बड़ी तेज़ थी। इस कारण उनका थक जाना भी स्वाभाविक ही था। घोड़ों को पानी में खड़ा कर, ये लोग स्नान करने लगे। पानी उनके कमर तक बह रहा था। नमक के गट्ठर तो ख़ूब ठीक से बँधे थे; किन्तु तिस पर भी उस पार पहुँचने पर आधा से अधिक नमक ग़ायब था। यह देख वे लोग दङ्ग रह गए; किन्तु इस दुष्ट नदी से अपनी जान बची पाकर प्रसन्न भी हुए।

एक घुड़सवार नदी के उस पार से आता हुआ दीख पड़ा। वह बिना डर के नदी में घोड़ा दौड़ाता चला आता था। इस पर सबों ने चिल्ला कर कहा—गुरु जी! यदि आपके पास भी घोड़ा रहता तो हम और आप आसानी से नदी पार कर सकते। कृपया आप भी एक घोड़ा अवश्य ख़रीदें।

गुरु जी ने अबकी बार नदी का निरीक्षण करने के लिए सिड़ी शर्मा को भेजा। सिड़ी शर्मा ने भी वही बुझी हुई लकड़ी नदी में डाली; किन्तु आवाज़ कुछ भी नहीं हुई। वह दौड़ता हुआ आकर गुरु जी से बोला—महाशय जी, नदी इस समय घोर निद्रा में सोई हुई है। हम लोगों को इस समय बिना एक शब्द भी बोले नदी को पार करना चाहिए।

नदी पार करने के लिए लोग चल पड़े। पानी में पैर बहुत धीरे-धीरे रखते थे, ताकि कोई शब्द न हो। किसी तरह नदी के उस पार लोग पहुँचे। किन्तु गुरु जी को यह शक हुआ कि उनके चेलों में से कोई एक खो गया है। पहले बेवक़ूफ़सिंह ने अपने को छोड़ सबको गिना; किन्तु संख्या ५ ही आई। इस प्रकार सबों ने अपने-अपने को छोड़ कर गिना, किन्तु संख्या वही आई। सब बहुत घबड़ा गए। अन्त में गुरु जी ने सबों को एक क़तार में खड़ा कर दो-दो, तीन-तीन बार गिना; किन्तु इन्होंने भी कुछ अक़्ल से काम न लिया। अपने को छोड़ कर सबों को गिना और संख्या ५ ही आई। अब तो निश्चय हो गया कि उन लोगों में से किसी एक को नदी ने पकड़ लिया है। सब रोने लगे; गुरु जी भी फूट-फूट कर रोने लगे और सारा दोष नदी पर लगाया गया। किन्तु यह उन लोगों में से किसी ने नहीं सोचा कि कौन आदमी भूला है।

इसी समय एक बुद्धिमान मनुष्य आता हुआ दीख पड़ा। उसे इन लोगों की हालत देख दया आई। उसने गुरु जी से पूछा—"क्या बात है?" गुरु जी ने सारी कहानी कह सुनाई। इनकी मूर्खता को उसने भली-भाँति समझ कर कहा—"मैं आपके चेले को, जिसे नदी ने हड़प लिया है, बुला सकता हूँ।"

इस पर गुरु जी ने कहा—हम लोगों के पास इस समय पाँच रुपए हैं, इसे हम लोग आपको दे सकते हैं, यदि आप भूले हुए आदमी का पता लगा दें।

उस मनुष्य ने एक छड़ी दिखाई और कहा कि इसी में भूले हुए मनुष्यों के पता लगाने की शक्ति है। उसने सबों को एक क़तार में खड़ा कर कहा—मैं आप लोगों में से प्रत्येक को एक-एक छड़ी मारूँगा और आप लोगों को अपनी-अपनी संख्या गिननी होगी।

क़तार में सब से पहले गुरु जी ही थे; इस कारण उन्हीं की पीठ पर पहली छड़ी पड़ी! उन्होंने गिना 'एक'। इस प्रकार सबों की पीठ पर एक-एक छड़ी पड़ी और सबों ने अपनी-अपनी संख्या गिनी। अन्त में उन लोगों को मालूम हुआ कि कोई भी उन लोगों में से नहीं भूला था। गुरु जी ने रुपए दे दिए और अपने चेलों के साथ अपनी कुटी को लौट आए।

(क्रमशः)

—नरेशप्रसाद बख़्शी



अजी सम्पादक जी महाराज,

जय राम जी की !

सप्रू-जयकर की सन्धि-योजना तो समाप्त हो गई; परन्तु गोलमेज़ कॉन्फ्रेन्स का कार्य जारी है। यह गोलमेज़ कॉन्फ्रेन्स क्या है, यह तो आप जानते ही होंगे! यह इङ्गलैण्ड के राजा आर्थर की ईजाद है। यह राजा छठवीं शताब्दी में हुआ था। इस राजा ने एक गोलमेज़ बनवाई थी, जिसके चारों ओर वह अपने 'नाइट' (मुसाहिबों) के साथ बैठा करता था। अतएव यह बड़ी पुरानी चीज़ है। भारत का भाग्य ही ऐसा है कि तमाम ज़माने की सड़ी-गली चीज़ें इसके हिस्से में पड़ती हैं। आर्थर राजा मर गया, गल गया; परन्तु उसकी गोलमेज़ अब तक काम दे रही है। अव्वल तो गोलमेज़ की ही क्या आवश्यकता थी। यदि लम्बी अथवा चौकोर ही मेज़ रक्खी जाती तो क्या हानि थी? मतलब तो काम होने से है। काम ठीक तरह से होना चाहिए—मेज़ चाहे जैसी हो, हमारी बला से। परन्तु इङ्गलैण्ड का तो बाबा-आदम ही निराला है। वहाँ तो मेज़-कुर्सी पहले देखी जाती है, काम की बातें पीछे। उस दिन बड़ी दिल्लगी रही। मैं बैठा हुआ सिल-बट्टा खटका रहा था कि अकस्मात् मि० रामज़े मेकडॉनेल्ड, इङ्गलैण्ड के प्रधान मन्त्री साहब मेरे सम्मुख आकर खड़े हो गए। पहले तो मैं समझा कोई पुलिस ऑफ़िसर है, गिरफ़्तारी का वारण्ट लाया है; परन्तु जब ग़ौर से देखा तो पहचान लिया; क्योंकि अनेक बार इनकी फ़ोटो देखी थी, सिनेमा में हँसते और बातें करते हुए देख चुका था। उन्हें देख कर मैं पहले तो अवाक् रह गया कि यह बिना सूचना दिए हुए कैसे आ धमके। परन्तु फिर हवास ठीक करके मैंने उनका अभिवादन किया और बैठने के लिए एक चटाई डाल दी। मेकडॉनेल्ड साहब अपनी भाषा में बोले—"बैठने की कोई आवश्यकता नहीं, मैं चन्द मिनिट आपसे खड़े ही खड़े बातें करना चाहता हूँ।" मैंने पूछा—"आप अकेले ही हैं क्या?" वह बोले—"हाँ, अकेला ही हूँ। बिल्कुल छिप कर आपसे मिलने आया हूँ। मेरे आने का पता लॉर्ड इरविन तक को नहीं है। मैं हवाई जहाज़ से आया हूँ और आज ही शाम को लौट जाऊँगा।" मैंने कहा—"ऐसी जल्दी क्या है, एकाध दिन इस ख़ाकसार के झोपड़े में बसेरा लीजिए—फिर चले जाइएगा। आपको 'केनेबिस इण्डिका' (भङ्ग) का आनन्द दिखाऊँगा। शाम्पीन क्लेरेट इत्यादि सब इसके सामने गर्द हैं।"

वह बोले—"नहीं, ठहर नहीं सकता, गोलमेज़ के सम्बन्ध में आपसे बातें करके चला जाऊँगा।" मैंने द्वार से बाहर की ओर झाँक कर देखा कि कहीं किसी छकड़े पर गोलमेज़ तो लदवा कर नहीं लाए; क्योंकि बिना गोलमेज़ के गोलमेज़ की गोलमोल बातें कैसे होंगी। परन्तु बाहर एक सन्तरी के अतिरिक्त और कोई नहीं था। मेकडॉनेल्ड साहेब ने मुस्करा कर पूछा—"बाहर क्या झाँकते हो।" मैंने उत्तर दिया—"कुछ नहीं, गोल-

मेज़ देखता था।" उन्होंने कहा—"वह तो इङ्गलैण्ड में है, यहाँ नहीं है।" मैंने कहा—"आपने बड़ी ग़लती की, उसे साथ में लेते आते तो आनन्द से बातें होतीं, ख़ैर कहिए क्या आज्ञा है?"

उन्होंने कहा—मैं आपसे यह सलाह लेने आया हूँ कि कॉन्फ़्रेन्स में किसे-किसे बुलाया जाय।

मैंने कहा—जितने आदमी हिन्दुस्तान में हैं, उनमें अपने राम को छोड़ कर और कोई कॉन्फ़्रेन्स में बुलाये जाने योग्य नहीं है।

"परन्तु केवल आपके होने से काम नहीं चलेगा, और आदमी भी होने चाहिएँ।"

"बिल्कुल व्यर्थ है—और आदमी अगट-शगट बक कर मामला ख़राब कर देंगे, हम-आप होंगे तो सब मामला तय हो जायगा। हिन्दुस्तान स्वराज्य के योग्य है ही नहीं, इस कारण उसके सम्बन्ध में अपने राम बात करेंगे नहीं—और जो कुछ आप कहेंगे वह मान लिया जायगा।"

"नहीं-नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। कॉन्फ़्रेन्स में बहुत से आदमी होने चाहिएँ।"

"मेरी समझ में नहीं आता कि इस भर्ती भरने से आप क्या लाभ सोचते हैं। यही न कि अधिक आदमी जिस बात को मान लेंगे वह भारतवासियों के लिए मान्य होगी। परन्तु यह आपका भ्रम है। भारतवासियों का स्वभाव बिल्कुल इक्के-ताँगे वालों तथा कुलियों का-सा है, इन्हें चाहे जितना दे दीजिए, परन्तु वे कभी सन्तुष्ट न होंगे—कम ही बतावेंगे। इसलिए आप इस झोल में न पड़िए—जो कुछ देना हो देकर गहरी छानिए और आराम से लम्बी तान कर सोइए। भारतवासी कुछ दिनों तक टाँय-टाँय करके चुप हो जावेंगे और जो कुछ आप देंगे उसके हिस्सा-बाँट करने में परस्पर लात-जूती करने लगेंगे।"

"आप बहुत समझदारी की बातें करते हैं।"

"मैं समझदारी का ठेका जो लिए हुए हूँ। इङ्गलैण्ड में कुछ लॉर्ड लोग समझदारी का ठेका लिए हुए हैं, और हिन्दुस्तान में अपने राम।"

"यह बात है?"

"हाँ, बिल्कुल यही बात है। आप सीधे-सादे आदमी ठहरे, आपको सब बेवक़ूफ़ समझते हैं। हालाँकि यह मुझे अच्छी तरह मालूम है कि आप बिल्कुल बेवक़ूफ़ नहीं हैं—केवल समय देख कर काम करते हैं। यही होना भी चाहिए।"

"तो आपकी राय में हिन्दुस्तान अभी स्वराज्य के योग्य नहीं है?"

"बिल्कुल नहीं! और इस बात को आप भी मानेंगे, वैसे मुख से चाहे न कहें।"

"हाँ, मानता तो हूँ, परन्तु......।"

"इस अरन्तु-परन्तु के फेर में मत पड़िए, साफ़ बात कहिए।"

"ख़ैर कुछ भी हो, परन्तु कॉन्फ़्रेन्स तो करनी ही पड़ेगी।"



श्रीमती विद्यावती

आप आगरे की एक उत्साही कार्यकर्त्री हैं!

"अजी कोई ज़बर्दस्ती है। कह दीजिए कि हम नहीं करते—बस!"

"नहीं, ऐसा करने से अमेरिका वाले जो बिगड़ जाएँगे! उनकी आँख में धूल तो झोंकना ही होगा, दुबे जी!"

"यह आप कह क्या रहे हैं? मैं तो कुछ नहीं समझा।"

'दुबे जी! आप इतनी साधारण सी बात भी नहीं समझ सकते। इस समय यहाँ के बॉयकॉट से सभी देशों का दिवाला पिट रहा है और सभी राष्ट्र हमारे

ख़ून के प्यासे हो रहे हैं। सभी देशों के प्रतिनिधि हम पर दबाव डाल रहे हैं कि हिन्दोस्तान को जल्दी ठीक करो, समझे ?"

"कोशिश तो समझने की कर रहा हूँ दोस्त ! पर आख़िर यह ठीक होगा कैसे ? यही एक ऐसी विकट समस्या है, जो समझ में नहीं आ रही है।"

"तब तो मैं यही कहूँगा कि आज आप भाँग ज़्यादा पी गए हैं ! इतनी मोटी सी बात भी आपके ज़ेहन में नहीं आ रही है"—(उन्होंने अपनी भाषा में कहा था—"इटना मोटा बाट समझने नाईं साकटा" मैं पाठकों की सुविधा के लिए उसका अनुवाद मात्र दे रहा हूँ)—"हम लोग हैं राजनीतिज्ञ और यह हमारा पेशा है, जिसके सहारे हम जी रहे हैं, समझे ! हमने चुन-चुन कर 'जी हुज़ूरों' को बुलाया है। आपने क्या हमारी नामावली नहीं देखी ? इनमें से कोई सिर नहीं उठा सकता। आपने बन्दर का नाच देखा है ?"

"जी हाँ ! एक बार लल्ला........."

"हाँ ! हाँ !! लाला लाजपतराय !!!"

"अजी नहीं, मेरा लड़का।"

"ओह हम समझ गए, लाला लाजपतराय आपका लड़का था।"

मैंने मन में कहा—ख़ूब समझे, इसी समझ की बदौलत तो आज तुम लोगों की यह गति हो रही है ! पर बात बना कर मैंने कहा—जनाब, हम लोग लड़के को 'लल्ला' ही कहते हैं।

"हाँ, हाँ ! आपका लड़का......"

"जी हाँ, उसने एक रोज़ जब बहुत दिक़्क़ किया और लल्ला की महतारी भी बहुत गिड़गिड़ाई तो बन्दरों का नाच कराना पड़ा था।"

"ओह ! आप बहुत अक़्लमन्द हैं, ठीक वैसा ही नाच हम कराना चाहते हैं।"

"सो कैसे ?"

"हिन्दू-मुसलमानों का जो झगड़ा है, सो तो आप जानते ही हैं, कहिए हाँ......"

"जी हाँ !"

"बस सब लीडर लोग गोलमेज़ पर ख़ूब लड़ेंगे और सभापति डमरू बजाएगा, कहिए हाँ......"

"जी हाँ, सो तो प्रत्यक्ष ही है।"

"हिन्दू-सङ्गठन वाले भी चिल्लावेंगे और तनज़ीम वाले भी, कहिए हाँ।"

"जी हाँ, इसमें अपने राम को ज़रा भी शक नहीं है।"

"फिर हम लोग अमेरिका वालों से तथा दूसरे राष्ट्रों से पूछेंगे कि जनाब ! यह हाल है हिन्दोस्तान का ! बतलाइए स्वराज्य देने पर क्या गति होगी ?"—मैंने हाथ मार कर कहा—यार देखने में तो "बछिया के ताऊ" मालूम होते हो, पर समझते बड़े पते की हो ! यह लोग आपस में ही लड़ मरेंगे, तुम पूछना कि आख़िर वे चाहते क्या हैं, यही न ?"

"जी हाँ, अब समझे आप ! सभी राष्ट्र भारतवासियों को मूर्ख और उन्हें स्वराज्य के अयोग्य समझ लेंगे और हम चूतड़ पीट-पीट कर हँसेंगे, कहो कैसी कही ? बस गोलमेज़ का यही मतलब है। एक बात और भी है।"

"वह क्या ?"

"सभी राष्ट्र कहते हैं इस कम्बख़्त बॉयकॉट मूवमेण्ट को बन्द करो और इस आन्दोलन को जल्द से जल्द समाप्त करो, और हमें अनुचित दबाव के कारण इसे बन्द तो करना ही होगा ! और बिना यह सब जाल रचे यह आन्दोलन दबेगा कैसे ? इसे भी तो दबाना है, इससे बड़ी हानि हो रही है।"

"अरे हाँ, आन्दोलन—लीजिए इसे तो मैं बिल्कुल भूल ही गया था। वाक़ई आन्दोलन तो दबना ही चाहिए।"

"इसके दबाने की कोई युक्ति है ?"

"युक्तियाँ सैकड़ों हैं; परन्तु कॉङ्ग्रेस वालों के सामने सब बेकार हो जाती हैं।"

"वाक़ई ये कॉङ्ग्रेस वाले सब मामला बिगाड़े हुए हैं, वरना सब काम ठीक हो जाता।"

"वक़्त की बात है; इस समय हैज़ा-प्लेग भी चुप है, वरना कुछ तो कम हो ही जाते।"

"इस कमी से क्या हो सकता है दुबे जी, असल बात तो यह है कि इनका दिमाग़ ठीक होना चाहिए।"

"तो इन्हें जेलख़ाने न भिजवा कर, पागलख़ाने भिजवाया जाय। परन्तु इतने पागलख़ाने आवेंगे कहाँ से—यह भी तो कठिनता है। हाँ, एक युक्ति हो सकती है। जितने जेलख़ाने हैं, सब पागलख़ाने बना दिए

जायँ। परन्तु यह भी तभी हो सकता है, जब केवल कॉङ्ग्रेस वाले ही हों—जेलख़ानों में तो अन्य क़ैदी भी रहते हैं।"

"यही तो कठिनता है।"

"चारों ओर से कठिनता ही कठिनता है।"

"वक़्त की बात है।"

"बिल्कुल वक़्त की बात है। तो मेरी समझ में ऐसे लोगों को कॉन्फ़्रेन्स में बुलाइए, जो अधिक गड़बड़ न मचावें। आप लोगों की बातें मान लें।"

"हाँ यही करना पड़ेगा। अच्छा तो अब मैं जाता हूँ। मेरे आने का ज़िक्र किसी से मत कीजिएगा और आपको जो तक़लीफ़ हुई है, उसके लिए माफ़ कीजिएगा।"

"बहुत अच्छा, जैसा आप कहते हैं वैसा ही होगा।"

मेकडॉनेल्ड साहब विदा हुए—मैं उन्हें द्वार तक पहुँचाने गया। उधर से लौटा तो सिल की ठोकर जो लगी तो मुँह के बल गिरा—और आँख खुल गई। देखा तो चारपाई के नीचे पड़ा हूँ। और 'लल्ला' की महतारी, बड़े ज़ोर से डपट रही हैं "का हौ ई गोलमेज; जाय भाड़ में! रात-दिन दहजरऊ के नाती चिल्लात हैं, गोलमेज! गोलमेज!! गोलमेज!!!" तब पता लगा कि यह तो कोरा स्वप्न था।

सम्पादक जी, मेरा स्वप्न सच्चा हो रहा है। कॉन्फ़्रेन्स में ऐसे ही लोग बुलाए जा रहे हैं जो बेचारे बिल्कुल गड़बड़ न करेंगे—करेंगे भी कैसे—वे बेचारे गड़बड़ करना जानते ही नहीं। जो दिया जायगा वह लेकर चले आवेंगे। चाहिए भी ऐसा ही। गड़बड़ करने से कोई नतीजा नहीं निकलेगा—जो कुछ मिलता होगा वह भी न मिलेगा। उनके लिए एक तो यही क्या कम गौरव की बात है कि कॉन्फ़्रेन्स में बुलाए जा रहे हैं। गवर्नमेण्ट ने उनकी बहुत बड़ी इज़्ज़त की तब तो निमन्त्रण दिया। यदि ऐसी दशा में वह ऊट-पटाँग बातें करके मुफ़्त में दिक़्क़त पैदा करें तो यह उनकी कृतघ्नता होगी। दूसरे यह लाभ है कि जो कुछ मिलेगा, इन्हीं लोगों को मिलेगा—कॉङ्ग्रेस वाले टापते ही रह जायँगे! बहुत नख़रे करने में यही होता है, यहीं जेलों में पड़े सड़ा करेंगे। कॉन्फ़्रेन्स में जो जायँगे उन्हें मज़े ही मज़े हैं। समुद्र की यात्रा और लण्डन की सैर होगी। 'डिनर' और 'बॉल' के आनन्द मिलेंगे। और जिस समय दिमाग़ गर्म होगा उस समय यही कहेंगे कि जो कुछ मिला बहुत मिला—इससे अधिक की योग्यता भी हममें नहीं है। चलिए अपना मज़ा हो गया, काम भी बन गया और सरकार भी प्रसन्न रही। लौट कर आवेंगे तो 'प्रेस-रिपोर्टरों' के अतिरिक्त और किसी से बात न करेंगे। वह ठाट रहेगा कि बस वाह! वाह!! अफ़सोस यही है कि हाय हुसैन! हम न होंगे। मेकडॉनेल्ड साहब स्वप्न में आए, इतनी देर बातें कीं, परन्तु अपने राम को न बुलाया। ख़ैर कभी मिले तो ऐसी लम्बी शिकायत करूँगा कि याद करेंगे। वायसराय साहब से अपने राम की कोई जान-पहचान नहीं, वरना वह अवश्य पूछते, बड़े शीलवान आदमी हैं। एक ग़लती हो गई। यदि

अपने राम भी कॉन्फ़्रेन्स की चर्चा चलने के आरम्भ ही से ख़ूब पत्रों में आलोचना करते, प्रेस-प्रतिनिधियों को बुला कर अपनी राय देते, पत्रों में लेख लिखते, कभी सरकार की आलोचना करते, कभी कॉङ्ग्रेस वालों को कोसते, तो कदाचित हम भी कॉन्फ़्रेन्स में बुलाए जाते। ख़ैर भविष्य के लिए चेत हो गया, अब कभी अवसर आया, तो कदापि न चूकेंगे! सम्पादक जी, क्या आप सचमुच विलायत न जायँगे? सुना है, गवर्नर इन-कौन्सिल ने आपको पासपोर्ट न देने का निश्चय कर लिया है, क्या यह ठीक है?

भवदीय,
—विजयानन्द (दुबे जी)



[श्रीमती हुक्मा देवी छात्रा]

सान्निपातिक ज्वर (Typhoid Fever)

यह रोग एक प्रकार की हलकी छूत के द्वारा उत्पन्न होता है। इसके होने के पहले आँतों में एक प्रकार की गड़बड़ी उत्पन्न हो जाती है। इस कारण अङ्गरेज़ी में इसको एण्टरिक फ़ीवर (Enteric Fever) और जर्मनी वाले एब्डॉमिनल टाइफ़स (Abdominal Typhus) कहते हैं।

रोग के कारण—यह रोग वायु द्वारा फैलने वाला तो नहीं है। हाँ, स्पर्श द्वारा फैलता है और भोजन के द्वारा भी इसकी छूत एक से दूसरे को लग जाती है। पनाले और मोरी तथा गन्दी नालियों की दुर्गन्धित वायु के साथ मिल कर श्वास द्वारा मनुष्यों के शरीर में प्रवेश करती है, इसी कारण से इस रोग की उत्पत्ति होती है। उपरोक्त गन्दे पनालों का जल यदि बह कर किसी प्रकार से कुएँ अथवा तालाबों में मिल जावे और उनका जल स्वस्थ मनुष्य पिएँ तो उनको यह रोग हो जाता है।

रोग के लक्षण—इस रोग की छूत जब शरीर में प्रवेश करती है तो प्रथम १०-१२ दिन तक कोई मुख्य लक्षण प्रकट नहीं होता। केवल कुछ-कुछ सुस्ती, आलस्य, शिरःशूल और कभी दस्त भी होता है। उसके पश्चात रोगी को कभी गर्मी और कभी सर्दी लगती है। मस्तक में पीड़ा, आँखें कभी चमकदार और कभी बैठी हुई, जीभ की नोक और किनारे लाल, किन्तु बीच का भाग मलिन होता है। नाड़ी की गति शीघ्र-गामिनी और निर्बल होती है, गालों पर लाल धब्बा पड़ जाता है, नाक से रक्त बहने लगता है। प्यास अधिक, परन्तु भूख कम लगती है। मुख विरस रहता है। पेट में शूल होता है, जो दबाने से अधिक प्रतीत होने लगता है। पेट फूल जाता है, बैठने और करवट बदलने में कष्ट होता है। कभी दस्त होते हैं और कभी वमन होता है; कभी-कभी दोनों होने लगते हैं। मूत्र कभी थोड़ा होता है और कभी तो बूँद-बूँद ही निकलता है। मूत्र के साथ कभी-कभी एलब्युमन (एक लेसदार वस्तु जो अण्डे की सुफ़ेदी या फटे दूध के समान होती है) भी आने लगता है। त्वचा सूखी तथा गरम रहती है और ज्वर १०४ से १०५ डिग्री तक बढ़ जाता है, किसी-किसी रोगी को १०६ से १०७ तक ज्वर हो जाता है। ज्वर प्रातःकाल की अपेक्षा सायङ्काल के समय एक डिगरी अधिक रहता है। अर्थात् यदि प्रातः १०३ ज्वर हो, तो सायं १०४ हो जाता है और दूसरे दिन सवेरे फिर घट जाता है। इस रोग में केवल ४-५ दिन तक यही दशा रहती है। ज्वर उतरते समय भी प्रातः का दर्जा कम होता है और पीछे सायङ्काल का भी धीरे-धीरे कम होने लगता है। प्रायः दूसरे सप्ताह में ज्वर या तो घटने लगता है या बढ़ने लगता है। ज्वर बढ़ने लगता है तो अन्य लक्षणों में भी वृद्धि होती है। जैसे त्वचा शुष्क और उष्ण, कभी-कभी पसीना आना, नाड़ी का सूत की भाँति निर्बल तथा एक मिनट में १२० बार धड़कना, जीभ श्वेत और फटी हुई, कभी चमकदार, लाल या भूरे रङ्ग की होती है। पेट फूल जाता है और दबाने से दर्द होता है। ज्वर आने से सातवें या आठवें

दिन, छाती और पेट पर कहीं-कहीं गोल गुलाबी रङ्ग के दाने निकल आते हैं। चार दिन पीछे वही गुलाबी रङ्ग के दाने उस स्थान से छिप जाते हैं, परन्तु दूसरे स्थान पर दीख पड़ने लगते हैं, इसी प्रकार दाने निकलते और छिपते रहते हैं। दानों की कुछ गिनती नहीं। किसी-किसी रोगी के दाने निकलते भी नहीं और किसी के बहुत संख्या में निकलते हैं। जब दूसरे सप्ताह का अन्त आता है, तो शरीर का ताप-क्रम वास्तविक दशा में पहुँच जाता है अर्थात् ज्वर नहीं रहता। रोग के बढ़े हुए लक्षणों में कमी होकर रोगी आरोग्य लाभ करने लगता है। परन्तु रोग बढ़ने पर पेट फूल जाता है, ठोकने से ढप-ढप का शब्द होता है। पेट से एक प्रकार की गरगराहट की आवाज़ आती है, दबाने से नाभि के बाईं ओर दर्द होता है। दस्त पतले पीले और गँदले रङ्ग के होते हैं, परीक्षा करने से क्षार पाया जाता है। यदि मल को किसी बर्तन में रक्खें, तो थोड़ी देर बाद फट जायगा और उसमें छिछड़े, रक्त के टुकड़े, झिल्लियों के टुकड़े, और पीले या भूरे रङ्ग की एक पतली वस्तु, जिसमें अल्ब्युमीन तथा नमक मिला रहता है, दीख पड़ेगी। जब भयङ्कर सान्निपातिक लक्षण प्रकट होते हैं, तब नाड़ी की गति और ज्वर बढ़ जाता है, रोगी बहरा हो जाता है, हिचकियाँ आती हैं, प्रलाप करता है, निर्बलता इतनी बढ़ जाती है, कि बोलना भी कठिन प्रतीत होता है, बिस्तर में ही पड़ा रहता है, भोजन कुछ नहीं करता, दस्त बराबर होते रहते हैं। जब बहुत दुर्बलता हो जाती है, तब हाथ-पैर काँपने लगते हैं, पट्ठे फड़कने लगते हैं, अज्ञान में मल-मूत्र बिस्तर पर ही त्याग देता है। ऐसी दशा होने पर बेसुध अर्थात् संज्ञाहीन होकर रोगी परलोक की यात्रा करता है। परन्तु दैव-योग से बीमार जब आरोग्य होने वाला होता है, तो चौथे सप्ताह में ज्वर धीरे-धीरे उतरने लगता है। किसी-किसी को भयङ्कर लक्षण भी नहीं होते और दस्त तथा आँतों का दुखदायक कष्ट भी नहीं होता और रोगी शीघ्र ही रोग से मुक्त हो जाता है। परन्तु अनेक बार ऐसा भी होता है कि बहुत कष्ट भोगने के बाद रोगी स्वास्थ्य लाभ करता है। बच्चों को यह रोग अधिक होता है, अतः इस कारण उसका लक्षण भी लिख देना उचित प्रतीत होता है।

* * *

शिशु सान्निपातिक ज्वर
(Infantile Remitant Fever)

बालकों में यह रोग दो प्रकार का होता है। एक साधारण लक्षणों वाला और दूसरा भयङ्कर लक्षणों वाला।

साधारण—इसमें पहिले तो कुछ नहीं मालूम होता, किन्तु धीरे-धीरे निम्न-लिखित लक्षण प्रकट होते हैं—भूख कम हो जाती है, परन्तु प्यास अधिक लगती है। बालक सुस्त और चुपचाप पड़ा रहता है। उसका स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है, निद्रा नहीं आती, रात्रि में बेचैनी रहती है, शरीर का ताप-क्रम प्रातःकाल साधारण होता है, परन्तु सायङ्काल में कुछ-कुछ ज्वर हो जाता है, और ज्यों-ज्यों रात्रि बढ़ती है, ज्वर भी बढ़ता जाता है। शौच (दस्त) दुर्गन्धित और पतला होता है। नाड़ी की गति इतनी तीव्र हो जाती है कि गणना करने में कठिनाई होती है। दूसरे सप्ताह में व्यथा (बेचैनी) अधिक बढ़ जाती है, रात्रि के समय बच्चा दाँत पीसता है, कराहता है, कभी ज़ोर से चिल्ला कर चौंक उठता है। दोपहर तथा सायङ्काल के समय वमन होता है। निर्बलता अधिक हो जाती है। मांस-पेशियाँ घुलने लगती हैं। रोगी मुख और नाक को नोचता है। इस ज्वर में किसी प्रकार के दाने नहीं निकलते, जीभ बीच में से मलिन, परन्तु किनारों पर लाल होती है। पेट फूल जाता है और उससे घरघराहट का शब्द सुन पड़ता है। नाक को दबाने से दाहनी ओर नीचे दर्द होता है। तीसरे सप्ताह में सब लक्षण धीमें पड़ जाते हैं और रोगी नीरोग होने लगता है।

भयङ्कर लक्षण—इसमें प्रारम्भ से ही सब लक्षण भयङ्कर और सान्निपातिक होते हैं। पेट बैठ जाता है वक्षस्थल में काले-काले विन्दु निकलते हैं, दाने कभी तो स्पष्ट दिखाई देते हैं और कभी बहुत नन्हें निकलते हैं, वमन अधिक होता है। अन्य लक्षणों में जितनी प्रबलता होती है, वमन भी उतना ही अधिकता से हुआ करता है। दस्त में बड़ी दुर्गन्धि आती है, छाती में दर्द होता है और सूखी खाँसी भी उठती है। यहाँ तक दशा पहुँच जाती है कि पतला भूरे रङ्ग का दस्त बिस्तर पर ही हो जाता है। दूसरे सप्ताह के अन्त तक रोगी सूख कर

काँटा हो जाता है। निर्बलता के कारण नाड़ी इतनी निर्बल चलती है कि ठहरी हुई सी मालूम होती है। ज्वर १०३ दर्जे से १०५, १०७ तक बढ़ जाता है। तीसरे सप्ताह में रोगी बिलकुल क्षीण हो जाता है, अचेत अवस्था में पड़ा रहता है कभी-कभी शरीर में ऐंठन उत्पन्न होकर निर्बलता की दशा में मृत्यु हो जाती है। परन्तु कभी-कभी अशुभ लक्षण कम से कम हो जाते हैं और रोगी चङ्गा हो जाता है।

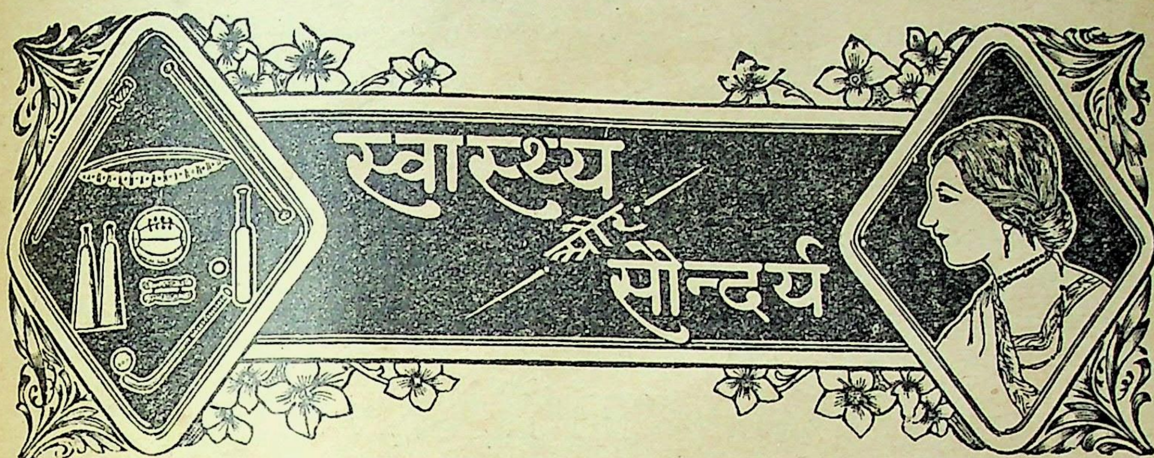
रोग की अवधि—रोग धीरे-धीरे जाता है, साधारणतया आरोग्य होने में २१ से ३० दिन तक लगते हैं। परन्तु यदि फेफड़े में सूजन होती है, तो ४० दिन लग जाते हैं।

इस सान्निपातिक ज्वर और काला ज्वर (Typhus Fever) में बहुत कुछ समानता होती है, अतः निदान करने में भूल न हो जाय, इस कारण दोनों में जो भेद हैं वह नीचे लिखे जाते हैं :—

सान्निपातिक ज्वर	काला ज्वर
(१) इसमें कई बार शीत लग कर क्रमशः ज्वर आता है।	(१) इसमें ज्वर एकदम चढ़ता है, मस्तक में पीड़ा होती है, रोगी शिथिल, निढाल और निश्चेष्ट सा पड़ा रहता है।
(२) गालों पर लाल धब्बा दिखाई पड़ता है, नेत्र उज्ज्वल और प्रकाशमान होते हैं; रोगी प्रारम्भ से ही निर्बल नहीं होता।	(२) रोगी के मुख पर श्यामता छा जाती है, आँखें भारी और चढ़ी हुई रहती हैं। प्रारम्भ से ही वह दुर्बल हो जाता है।
(३) प्रायः आठवें दिन गुलाबी रङ्ग के दाने, पेट, पीठ और छाती पर निकलते हैं; जो दो-तीन दिन में छुप जाते हैं और फिर दूसरे स्थान पर वही दाने दीख पड़ते हैं, इसी प्रकार कई बार स्थान-स्थान पर निकलते और छुपते रहते हैं।	(३) प्रायः पाँचवें दिन कलाई की पीठ पर शहतूत के रङ्ग के दाने निकलते हैं और अन्त तक एक ही दशा में बने रहते हैं।
(४) बहुधा अतिसार होता है और मल के साथ रक्त भी आता है क्योंकि आँतों में व्रण (घाव) हो जाते हैं।	(४) अतिसार नहीं होता यदि होता है तो दस्त कम आते हैं, मल में रक्त नहीं आता, क्योंकि आँतों में घाव नहीं होते।
(५) शरीर का ताप-क्रम क्रमशः बढ़ता है। प्रातः और सायङ्काल में एक डिगरी का अन्तर रहता है; प्रातः समय ज्वर एक डिगरी घट जाता है और सायङ्काल बढ़ जाता है, चार-पाँच दिन तक बराबर ज्वर की यही दशा रहती है।	(५) एक दिन रात्रि अर्थात् २४ घण्टे से लगा कर ३ दिन तक ज्वर और नाड़ी की गति बढ़ती रहती है। फिर एक दशा में रह कर आठवें दिन ज्वर कम होने लगता है।
(६) यह रोग लौट आता है और प्रायः धनिक मनुष्यों को अधिक कष्ट देता है, ४० वर्ष से अधिक अवस्था वालों को कम होता है।	(६) यह फिर लौट कर नहीं होता और ग़रीब लोग इससे अधिक रुग्ण होते हैं। जो मनुष्य रोगी की सेवा करते हैं, उन्हें अवश्य हो जाता है।
(७) यह कृमिजन्य (छूत का) होने पर भी कृमियों द्वारा कम होता है और शरीर के भीतर पहुँच कर इसका विष नहीं बढ़ता, परन्तु धीरे-धीरे इसका प्रभाव फैलता है।	(७) बहुत शीघ्र फैलने वाला छूत का रोग है। शरीर में पहुँच कर इसका विष बढ़ता है।
(८) २१ से ३० दिन की अवधि है। सान्निपातिक लक्षण तीसरे सप्ताह में प्रकट होते हैं।	(८) इसकी १४ से २१ दिन तक की अवधि है दूसरे सप्ताह के अन्त में ज्वर एकदम उतर जाता है।

रोग से बचने के यत्न—पनाले, पोखरे आदि को शुद्ध रक्खे, दुर्गन्धित पनालों का जल घर में न आने पावे इसका प्रबन्ध करे। यदि रहने का स्थान उत्तम और शुद्ध न हो तो उसको त्याग दे। यदि पीने के जल में

(शेष मैटर २७८ पृष्ठ के पहले कॉलम में देखिए)



[श्री० सत्यपाल पुरी]

भोजन

बालक जिस समय शिक्षा ग्रहण करने लगता है, उस समय उसके मन में अनेक प्रकार की शङ्काएँ उत्पन्न हुआ करती हैं। घण्टों तक बैठे हुए चन्द्रमा अथवा तारों की ओर टकटकी लगा कर देखता रहता है और दिल में सोचा करता है कि यह रचना क्या है, किस की बनी हुई है, इत्यादि। इसी प्रकार विज्ञान (Science) के नए-नए आविष्कारों को देख कर वह अपनी बुद्धि लड़ाया करता है और अपने भाई-बन्धुओं से पूछा करता है कि संसार में यह अद्भुत बातें किस प्रकार से हुआ करती हैं। प्रायः इन सब प्रश्नों का सन्तोषजनक उत्तर न पाकर बालक का हृदय शङ्काओं का क़ब्रस्तान बन जाता है। इसलिए मेरा मत है कि बालकों को इन सब बातों का ज्ञान किसी न किसी प्रकार से अवश्य करा देना चाहिए।

परन्तु इससे भी आवश्यक ज्ञान वह है, जो हमको अपनी देह, शरीर अथवा निरोगता का ज्ञान देता है। इस विज्ञान को अङ्गरेज़ी में Science of Physiology and Hygiene कहते हैं। मैं चाहता हूँ कि कई एक लेखों में पाठकों के सामने उन नियमों का वर्णन करूँ, जिनका जानना हमारी शारीरिक वृद्धि के लिए अति आवश्यक है।

सब से पहले मैं भोजन के विषय को लेना चाहता हूँ और यह बताना चाहता हूँ, कि आजकल की खोज (Research) के अनुकूल किस प्रकार का भोजन करना चाहिए अथवा उसके बनाने में कौन-कौन से नियमों का पालन करना चाहिए।

भोजन के लिए निम्न-लिखित वस्तुओं का होना ज़रूरी है।

स्टार्च	...	... Starch
प्रोटीन्ज़	...	... Proteins
घी, तेल इत्यादि	...	... Fats
धातुएँ	...	...Mineral Salts
वीटामीन्ज़	...	... Vitamins
जल	...	... Water

स्टार्च (Starch)—सब से अधिक इसी वस्तु की आवश्यकता होती है और यह गेहूँ, चावल, मकई, आलू शक़रकन्दी इत्यादि वस्तुओं में पाया जाता है। पेट में जाकर अथवा तत्पश्चात् अँतड़ियों में जाकर यह एक प्रकार की चीनी का रूप धारण कर लेता है, जो पानी में बहुत सुगमता से हल होकर ख़ून में प्रवेश करती है। यहाँ पर यह शरीर को गर्मी अथवा शक्ति देने का काम करती है। इसके अभाव से शरीर शिथिल हो जाता है और मनुष्य में कार्य करने की शक्ति नहीं रहती। जिन मनुष्य तथा स्त्रियों को मोटा होने का अधिक अन्देशा हो, उन्हें इस भोजन का बहुत कम सेवन करना चाहिए, क्योंकि जब स्टार्च आवश्यकता से अधिक शरीर में चला जाता है, तो वह चरबी का रूप धारण करके मनुष्य को मोटा बना देता है। व्यायाम करने से यह चरबी कम हो जाती है। जिन मनुष्यों को बहुमूत्र (Diabetes) का रोग हो उनको भी स्टार्ची वस्तुओं का बहुत कम सेवन करना चाहिए।

घी, तेल इत्यादि—कुछ लोगों का विचार है, कि यह शरीर में स्वयं ही स्टार्च से बन जाता है, इसलिए इसका भोजन में होना आवश्यक नहीं। परन्तु आजकल इस मत के विरुद्ध विज्ञानाचार्यों (Scientists) की संख्या अधिक है क्योंकि देखा गया है कि घी के अन्दर इस प्रकार के वीटामीन्ज़ (Vitamins) (जिनका वर्णन मैं पूर्णतया अगले लेख में करूँगा) है, जिसका होना शरीर की निरोगता के लिए आवश्यक है। यह भी शक्ति अथवा गर्मी देने का काम करता है।

प्रोटीन्ज़—इनका भोजन में होना अति आवश्यक है। यह दूध, दाल, मांस, अण्डे, बादाम इत्यादि वस्तुओं में अधिकतर पाए जाते हैं। शरीर में जितनी भी मांस की वृद्धि होती है, वह इसी के द्वारा होती है। स्टार्च और घी इत्यादि मांस के बनाने में कोई हिस्सा नहीं लेते। शरीर वृद्धि के लिए अति आवश्यक है कि बच्चों को प्रोटीन्ज़ की ख़ुराक अधिकतर दी जाय। भारतवर्ष में दूध सेवन करने की प्रथा बड़ी प्रबल थी, परन्तु अब शिथिल होती जाती है इसीलिए भारतवासियों के शरीर भी अब शिथिल होते जाते हैं। एक अमेरिकन Physiologist ने अपनी पुस्तक "Newer knowledge of Nutrition" में दूध की महिमा वर्णन करते हुए इसको सब से उच्च और पूर्ण भोजन बताया है। यह आवश्यक नहीं कि दूध का सेवन दूध के रूप में ही किया जावे। दही और छाछ को आजकल के वैज्ञानिकों ने अमृत का नाम दिया है। ग्रामीण लोग लस्सी व छाछ और मोटी रोटी पर गुज़ारा करते हैं, परन्तु उनके शरीर बड़े दृढ़ होते हैं। धातुओं का भोजन में होना शरीर रूपी मशीन के चलने के लिए बहुत आवश्यक है। शरीर में तभी तक प्राण रहते हैं जब तक हृदय की गति बन्द नहीं होती। हृदय की गति धातुओं के ख़ून में उपस्थित होने के कारण से ही होती है। अगर इनकी मात्रा में भेद हो जाय तो हृदय की गति स्वस्थ नहीं रहती। इसके अतिरिक्त ख़ून में लोहे का होना आवश्यक है और हड्डियों के बनने के लिए Calcium और Phosphorus का होना अति आवश्यक है। यह सब वस्तुएँ प्रायः भोजन में मिल जाती हैं। दूध में Calcium और Phosphorus का अंश अधिक होता है इसलिए बच्चों की हड्डियों की वृद्धि के लिए भी दूध का होना आवश्यक है। कई प्रकार के शाक और फलों में भिन्न-भिन्न प्रकार की धातुओं का अंश पाया जाता है, इसलिए शाक का अच्छी तरह सेवन करना चाहिए।

वीटामीन्ज़ (Vitamins)—आजकल इस विषय पर बहुत अधिक छान-बीन हो रही है और कई बीमारियों

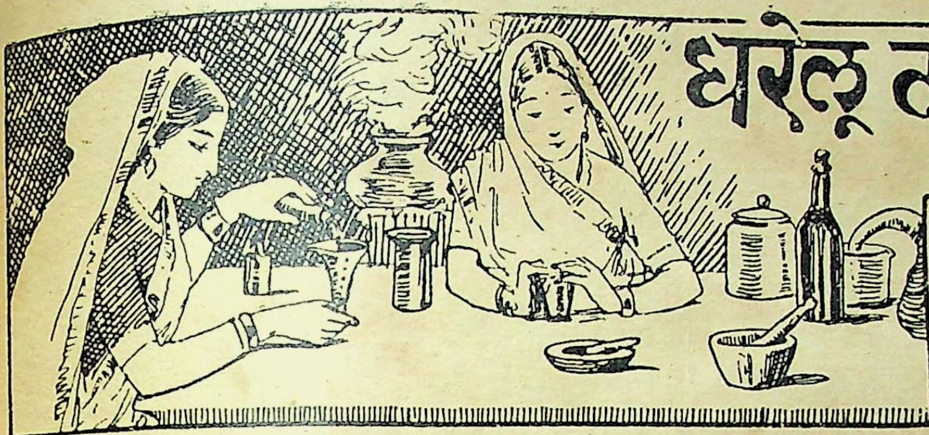
(शेष मैटर २८० पृष्ठ के दूसरे कॉलम में देखिए)

(२७६ पृष्ठ का शेषांश)

कोई मल-मूत्र या दुर्गन्धित जल का नाला आकर मिलता हो, तो उस जल को त्याग दे। जब यह रोग फैला हुआ हो, तो जल सदैव गरम करके पीए, रोगी के पास की कोई भी वस्तु खान-पान के व्यवहार में न लावे। रोगी का मल-मूत्र एक बर्तन में लेकर उसमें छूत-नाशक अर्क़ (कारडीज़ फ़्लुइड) मिला कर बस्ती से बाहर ज़मीन में गाड़ दे। बच्चों को रोगी से सदैव दूर रक्खे और ताज़ा दूध गरम करके पिलावे। सारांश यह है कि यह रोग मलिनता से होता है, इस कारण शुद्धि की बहुत ही आवश्यकता है। रोगी के आरोग्य होने पर घर आदि की सफ़ाई अच्छी तरह से कर लेनी चाहिए। जिससे दूसरा मनुष्य रोग का ग्रास न बन जाय।

चिकित्सा—ऐसे कष्ट-साध्य रोगों में बड़ी सावधानी से काम ले और योग्य तथा अनुभवी चिकित्सकों की चिकित्सा करावे। इसमें सब से प्रथम वमनकारक औषधि देनी चाहिए। यदि कोष्ठ बद्ध (क़ब्ज़) हो तो अरण्डी के तेल (Castor Oil) से अच्छी कोई औषधि नहीं। यह बात सदैव स्मरण रखनी चाहिए कि इस रोग का प्रभाव आँतों पर विशेष होता है, इस कारण आँतें बहुत दुर्बल हो जाती हैं। अतः तीक्ष्ण, दस्त लाने वाली या नमकीन दस्तावर औषधि का प्रयोग करना बहुत हानिकारक है। रोगी को चलने-फिरने और उठने-बैठने से भी हानि होती है, क्योंकि चेष्टा करने से आँतों में सूजन हो जाती है जिससे रोगी को बहुत कष्ट उठाना पड़ता है और कभी-कभी आँतों से रक्त-प्रवाह होने लगता है। इस कारण, रोगी की परिचर्या करने वाला मनुष्य बहुत बुद्धिमान होना चाहिए और उसे हर प्रकार से सावधान रहना उचित है।

* * *



घरेलू दवाइयाँ

[पं० गयाप्रसाद जी शास्त्री, वैद्य]

दद्रु-कुठार

सफ़ेदा कासगरी २ तोला, मिश्री २ रत्ती, फिटकिरी (फुलाई हुई) २ तोला, तूतिया की भस्म १ रत्ती, चौकिया सुहागा (फुलाया हुआ) २ तोला, गोआ पाउडर १ तोला और वेज़लीन ८ तोला।

विधि—सब चीज़ों को कूट-पीस, छान कर वेज़लीन या धुले हुए ८ तोले घी में मिला कर रख लेना चाहिए। इस मरहम से दाद, खाज, फोड़ा-फुन्सी आदि शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं।

* * *

कण्ठमाला का मरहम

नीम का तेल ५ तोला, मोम एक माशा, गन्धाविरोज़ा १ माशा, फिटकिरी १ माशा।

विधि—तेल को आग के ऊपर चढ़ा कर उसी में सब चीज़ों को पका कर मरहम बना लेना चाहिए। इस मरहम को कण्ठमाला की गिल्टियों के ऊपर शनैः-शनैः मल कर सेंक देना चाहिए। दिन-रात में ३ बार इस मरहम को लगाना चाहिए।

* * *

बवासीर का उपाय

कलमी शोरा, निसोथ २-२ तोले।

विधि—दोनों को कूट-पीस, छान और खरल करके चने बराबर गोली बना लेनी चाहिए। प्रातः-सायं जल के साथ इन गोलियों के सेवन करने से बवासीर को लाभ होता है। इन गोलियों को घिस कर मस्सों के ऊपर लगाने से भी लाभ होता है।

सितोपलादि चूर्ण

दालचीनी १ तोला, पीपल ४ तोले, छोटी इलायची २ तोले, बंसलोचन ८ तोले और मिश्री १६ तोले।

विधि—सब चीज़ों को कूट-पीस, छान कर चूर्ण बना लेना चाहिए। बंसलोचन तथा मिश्री को पृथक-पृथक सावधानी से पीस लेना चाहिए, शेष तीनों द्रव्यों को एक में पीस कर मिलाना चाहिए।

मात्रा—अवस्था के अनुसार १ माशा से ३ माशे तक।

अनुपान—शुद्ध घृत या शहद के साथ।

रोग—खाँसी, श्वास, क्षय, मन्दाग्नि, अरुचि, दुर्बलता आदि।

* * *

संग्रहणी का उपाय

शुद्ध सुहागा २ माशा, शुद्ध सिंगरफ़ २ माशा, शुद्ध अफ़ीम ४ माशे।

विधि—सब चीज़ों को भली-भाँति खरल करके मटर के बराबर गोली बाँध ले। बच्चों के लिए १ रत्ती की गोली बनानी चाहिए।

मात्रा—१ गोली।

समय—प्रातःकाल तथा सायङ्काल।

अनुपान—बड़ों को शुद्ध शहद के साथ और बच्चों को माता के दूध में घिस कर देना चाहिए।

रोग—संग्रहणी, दस्त तथा सब प्रकार के उदर-विकार।

मातृ-मन्दिर-कोष

मातृ-मन्दिर के मन्त्री महोदय सूचित करते हैं कि 'चाँद' के अगस्त-सितम्बर के संयुक्ताङ्क में प्रकाशित सूचना के अनुसार मातृ-मन्दिर-कोष में १,२३५॥) ८ पाई प्राप्त हुए थे। विगत सितम्बर, अक्टूबर तथा १३ नवम्बर तक १५४॥) और मिले हैं, जिसकी सूची इस प्रकार है :—

(१) श्रीमती राधिका देवी जी, मार्फ़त श्रीयुत हरीकृष्ण जी मेहरा, बँगला नं० ७५, कञ्चनपारा, ई० बी० आर० ... ... १०)
(२) कुमारी मायतहुसेन, प्रिन्सिपल गवर्नमेण्ट गर्ल्स नॉर्मल स्कूल, लखनऊ ... ... १०)
(३) श्रीयुत अञ्जनलाल शर्मा अग्निहोत्री, पो० ऑ० डिबाई, (बुलन्दशहर) ... ... १०)
(४) श्रीमती सट्टोदेवी, मार्फ़त श्रीयुत दीनदयाल जी वर्मा, ठठेरी बाज़ार ४० महेन्द्रू, पटना ४॥।=)
(५) श्रीयुत मोतीराम जी, एक्ज़ेक्यूटिव इञ्जीनियर फ़तेहपुर डिवीज़न लोअर, गैञ्जेज़ कैनाल, कानपुर ... ... ४)
(६) श्रीयुत शान्तिस्वरूप जी, बी० ए० फ़ॉरेस्ट रेञ्जर, डोडा (जम्मू स्टेट) ... ... ५)
(७) श्रीमती लज्जावती देवी जी, धर्मपत्नी श्रीयुत लुम्बाजी, ओवरसियर, यानडून (लोअर बर्मा) १५)
(८) श्रीयुत कश्मीरीलाल गुप्त, डा० टोटू, शिमला हिल्स, पञ्जाब ... ... ५)
(९) श्रीयुत बसन्तकुमार, मार्फ़त श्रीयुत बी० लाल असिस्टेण्ट एक्ज़ेक्यूटिव इञ्जिनीयर, कटक ५)
(१०) श्रीयुत गुलज़ारीलाल जी, इङ्गलिश मास्टर एम० स्कूल, बिंदकी (फ़तेहपुर) ... ५)
(११) श्रीयुत शिवशङ्कर सुनार, निकट ठाकुरबारी, ग्राम रायपट्टी, पो० दिघवारा (सारन) १०)
(१२) श्रीयुत सूरजप्रसाद जी ... ... १५) *
(१३) बा० त्रिजुगीनारायण जी ... ... ४) *
(१४) बा० हरनारायण जी ... ... २) *
(१५) बा० गौरीलाल जी ... ... १) *

*इन सज्जनों के चन्दे श्रीयुत जगदीशशरण, मार्फ़त बा० सूरजप्रसाद की कोठी, इटावा ने भेजे हैं।

निम्न-लिखित सज्जनों तथा देवियों के चन्दे नमासागाली उगण्डा, (पूर्व अफ़्रिका) से आए हैं। इन लोगों ने चन्दे शिलिङ्ग के रूप में दिए हैं, जिनके कुल रुपए हमें ४८॥=) मिले हैं। इनकी सूची इस इस प्रकार है :—

(१६)	श्रीमती गेनेशीलाल वर्मा	... १०	शि०
(१७)	" आशाभाई के० पटेल	... ५	"
(१८)	" बलवन्तसिंह ...	... ५	"
(१९)	" मगनभाई एम० पटेल	... २	"
(२०)	" ईश्वरसिंह ...	... ६	"
(२१)	" हरगोपाल ...	... ४	"
(२२)	" हरनामसिंह ...	... १	"
(२३)	" एम० लोबो	... १	"
(२४)	" जे० एफ़० डिसोज़ा	३	"
(२५)	" फरनान्दिस	... १	"
(२६)	" नूरमोहम्मद ...	... ५	"
(२७)	" एस० यू० पटेल	५	"
(२८)	" बी० सी० आचार्य	३	"
(२९)	" नन्नालाल	... २	"
(३०)	" नाञ्जी काञ्जी जोशी	... २	"
(३१)	" मोहम्मद यासीन	... १	"
(३२)	" कुशलसिंह	... ५	"
(३३)	" ब्रेगेंज़ा ...	... ४	"
(३४)	श्रीयुत कर्मसिंह	... ४	"
(३५)	" एम० सी० पटेल	२	"

७२ शि०, कुल ४८॥=)
१५४॥)

इस प्रकार अब तक १,३९०॥) ८ पाई नक़द हमें प्राप्त हुए हैं। देशवासियों का कर्त्तव्य है कि वे यथाशक्ति सहायता भेज कर इस पुनीत कार्य में हमारा हाथ बटावें।

* * *

(२७८ पृष्ठ का शेषांश)

का कारण भोजन में वीटामीन्ज़ का अभाव ही बताया गया है। इस प्रश्न को अच्छी तरह से हल करने के लिए आजकल अनेक तरह की परीक्षाएँ कई जानवरों द्वारा की जा रही हैं। इनका स्वास्थ्य के साथ बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध प्रतीत होता है। इनका विस्तारपूर्वक वर्णन मैं अपने अगले लेख में करूँगा।

हास्यकला का चमत्कार !

हास्योपन्यासों का लकड़दादा !!



छप रहा है !

श्री० जी० पी० श्रीवास्तव की हास्यमयी लेखनी का अलौकिक चमत्कार !

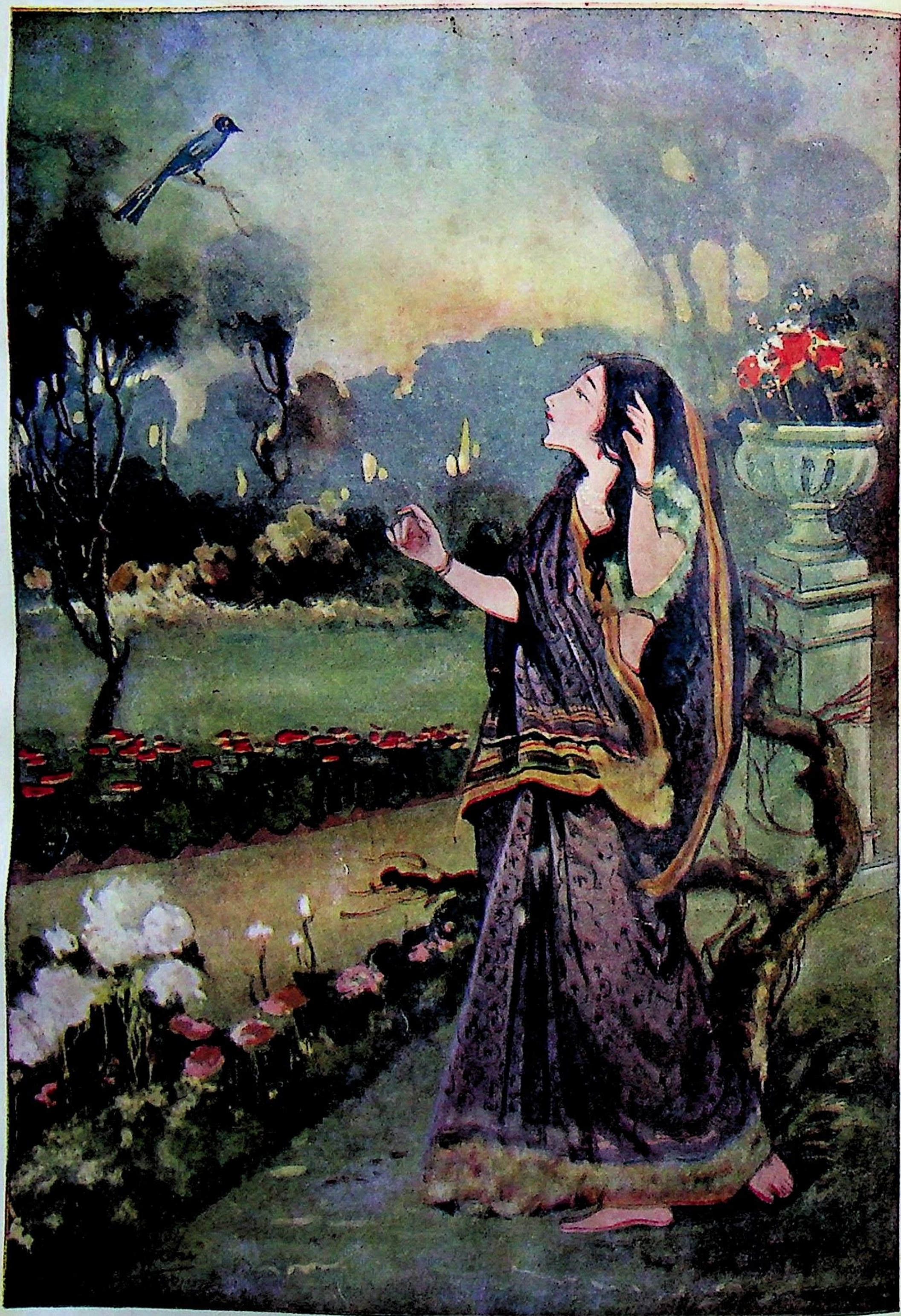
छप रहा है!!

लतखोरीलाल

मूल्य ४) रु०] छः खण्डों में [स्था० ग्रा० से ३) रु०

यह वही उपन्यास है, जिसके लिए हिन्दी-संसार मुद्दतों से छटपटा रहा था, इसके एक-एक शब्द में वह जादू भरा है कि एक तरफ़ हँसते-हँसते पेट में बल डालता है, तो दूसरी तरफ़ नौजवानी की मूर्खताओं और गुमराहियों की खिल्ली उड़ा कर उनसे बचने के लिए पाठकों को सचेत करता है। कहीं फ़ैशन और शान को छीछा-लेदर है, कहीं स्कूली बदकारियों पर फटकार है; कहीं वेश्यागमन का उपहास है, कहीं एक से एक रहस्यमय गुप्त लीलाओं का इतना सच्चा, स्वाभाविक और रोचक भण्डाफोड़ है, कि सैकड़ों बार पढ़ने पर भी तृप्ति नहीं होती। प्रकृति की अनोखी छटा निरखनी हो तो इसे पढ़िए, हास्य का आनन्द लूटना हो तो इसे पढ़िए, बुराइयों से बचना हो तो इसे पढ़िए, गुप्त लीलाओं का रहस्य जानना हो तो इसे पढ़िए, भावों पर मुग्ध होना हो तो इसे पढ़िए, और ज्ञान पर चकित होना हो तो इसे पढ़िए। इससे बढ़ कर हास्यमय, कौतूहलपूर्ण, आश्चर्य-जनक, रोचक, स्वाभाविक और शिक्षाप्रद उपन्यास कहीं भी ढूँढ़ने से न मिलेगा। फ़ौरन ऑर्डर भेजिए, हज़ारों ही ऑर्डर रजिस्टर हो चुके हैं। जल्दी कीजिए, वरना बाद को पछताना होगा।

व्यवस्थापक 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद



आज़ादी

है ख़्याल आज़ाद रह कर भी, वही बेदाद का,
बाग़ से मुझको नज़र आता है घर सय्याद का !

"बिस्मिल" इलाहाबादी



आध्यात्मिक स्वराज्य हमारा ध्येय, सत्य हमारा साधन और प्रेम हमारी प्रणाली है। जब तक इस पावन अनुष्ठान में हम अविचल हैं, तब तक हमें इसका भय नहीं, कि हमारे विरोधियों की संख्या और शक्ति कितनी है!

वर्ष ९ खण्ड १	जनवरी, १९३१	संख्या ३ पूर्ण संख्या ९९

नयन के प्रति

[श्री० आनन्दीप्रसाद जी श्रीवास्तव]

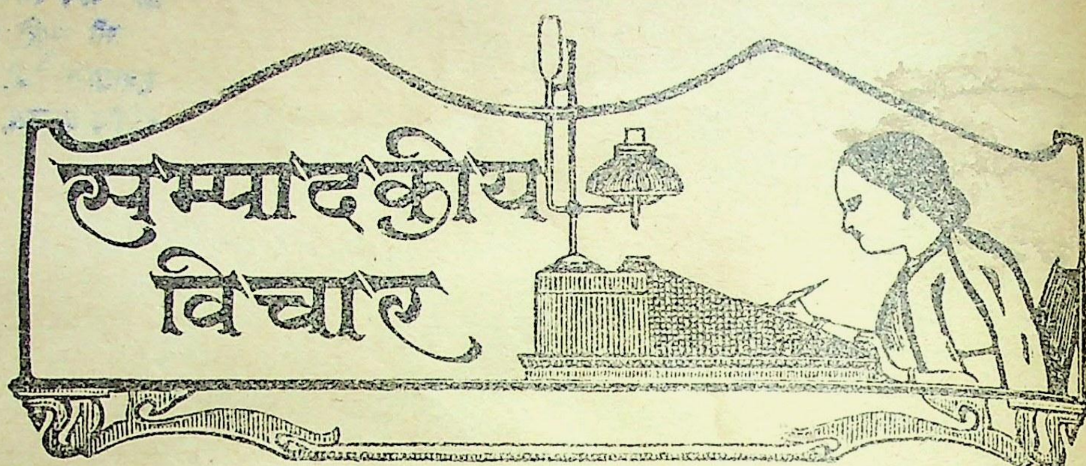
लाली से यह रँगी हुई क्या—
देख रहे हो हरियाली ?
नयन, मूर्ति वह भूल गए क्या—
पीत श्याम शोभा वाली ?

कुछ वे दिन थे, कुछ ये दिन हैं,
आज हाय ! वह बात कहाँ !!
हुआ करे कुछ भी, उस पर अब—
मोहन का दृक्‌पात कहाँ ?

हरी लताएँ, हरे-भरे तरु,
कर फल-छाया-शान्ति प्रदान,
लज्जित करते हैं तुमको तो,
तुम करते क्या किसको दान ?

पीले-पीले मुख लोगों के—
देख रहे हो तुम चुपचाप,
कठिन दासता पाण्डु-रोग यह—
इसको यों ही लखना पाप !

करो-धरो कुछ, देश हरा हो;
जन्म नहीं तो होगा व्यर्थ,
पर-हित करना सीखो तुम भी—
यही देखने का है अर्थ !!





जनवरी, १६३१

एक आवश्यक निवेदन



दैव के दुर्विधान से आज इस अभागे देश का वर्त्तमान वातावरण इतना कलुषित, इतना हिंसापूर्ण एवं परिशोध की भावनाओं से इतना ओत-प्रोत हो रहा है कि कोई भी आत्माभिमानी व्यक्ति अपने को किसी भी समय सुरक्षित नहीं समझ सकता! आज, जिन अज्ञेय परिस्थितियों में होकर हमारा देश गुज़र रहा है, वह इतिहासकारों के विवेचन का विषय है, हमारा नहीं! यह वह समय है, जब कि भारत ही नहीं, समस्त एशियाई देशों का एक नवीन इतिहास एवं मान-चित्र भविष्य के गर्भ में निर्मित हो रहा है; अतएव हमारे शासकों की हम पर विशेष कृपा-दृष्टि का होना भी स्वाभाविक ही है। सब से लज्जापूर्ण बात तो यह है कि हमारी ग़ुलामी की अनियन्त्रित श्रृङ्खला ने हमारे शासकों के हौसले इतने अधिक मात्रा में बढ़ा दिए हैं, कि आज न्याय और अन्याय तक का विचार करना उनके लिए सर्वथा असम्भव हो गया है! नौबत यहाँ तक पहुँच गई है कि आज अपने देश का शुभचिन्तक वर्तमान ब्रिटिश-भारत में 'विद्रोही' और अन्याय के विरोध को "अराजकता" के नाम से पुकारा जा रहा है। अतएव ऐसी गम्भीर परिस्थिति में हमारे मदान्ध महाप्रभु जो भी न कर डालें, थोड़ा है!

आजकल का शासन इतना निरङ्कुश है, कि उसे देखते हुए—एक पत्रकार की हैसियत से—हम अपने को किसी भी समय सुरक्षित नहीं समझ सकते। अतएव जब तक परिस्थिति से मुक़ाबला करने के लिए हम तैयार न हो लें, अपने मनोभावों को निर्भीकतापूर्वक व्यक्त कर, हम आपत्ति मोल लेने के पक्ष में नहीं हैं। इसका परिणाम यह होगा, कि जो थोड़ी-बहुत सेवा इस समय "चाँद" और "भविष्य" द्वारा हो रही है, उसमें भयङ्कर बाधा उपस्थित हो जायगी। हम सचाई और वास्तविकता की ओर से अपनी दृष्टि फेर कर, केवल काग़ज़ काला करने की रस्म अदा करना नहीं चाहते; अतएव कुछ दिनों तक हमने 'सम्पादकीय विचार' शीर्षक स्तम्भ को जान-बूझ कर सूना रखने का निश्चय किया है। इस संस्था के अनेक ज़िम्मेदार शुभचिन्तकों ने भी हमें ऐसा करने की सलाह दी है, अस्तु।

परिस्थिति के अनुकूल हम अधिक से अधिक सुदृढ़ प्रबन्ध करने की चेष्टा कर रहे हैं, जैसे ही हमारी इच्छानुकूल प्रबन्ध हुआ, उसी क्षण से अपने विचार निर्भीकतापूर्वक हम पाठकों के सामने उपस्थित करने लगेंगे—फिर उसका परिणाम चाहे जो भी हो। कुछ दिनों के लिए पाठकगण वर्तमान परिस्थिति और हमारी इस परवशता को दृष्टि में रखते हुए हमें क्षमा करें!

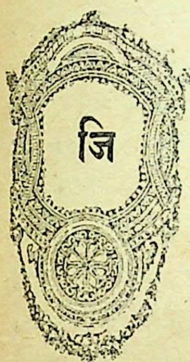
—रामरखसिंह सहगल

जाग्रत एशिया

[श्री० मथुरालाल जी शर्मा, एम० ए०]

(शेषांश)

महासमर



जिस समय एशिया की यह दशा थी तो यूरोप में महासमर की दुन्दुभि बज उठी और रणचण्डी का लोमहर्षण नृत्य होने लगा ! तुर्की युद्ध में सम्मिलित हो गया। ईराक़, फ़लस्तीन (पैलेस्टाइन) और सीरिया पर इङ्गलैण्ड और फ़्रान्स ने अधिकार जमा लिया। ईरान का दक्षिण भाग अङ्गरेज़ों ने और उत्तरी भाग रूसियों ने दबा कर शाह को चित्र-लिखित बादशाह बना दिया। अफ़ग़ानिस्तान को भी इन्हीं दो यूरोपीय राष्ट्रों ने पूर्व और पश्चिम दोनों तरफ़ से घेर लिया। भारतवर्ष में राजनैतिक आन्दोलन को दबाने के लिए भारत-रक्षा क़ानून प्रचलित किया गया और छल, बल तथा कौशल द्वारा रँगरूट भर्ती किए जाने लगे। जापान आरम्भ में तो उदासीन रहा, परन्तु फिर मित्र-मण्डल में सम्मिलित हो गया और चीन का जो भाग जर्मनी के राज्य में सम्मिलित था, उस पर उसने अधिकार जमा लिया। चीन गृह-कलह के कारण इस समय छिन्न-भिन्न था ही। इस प्रकार यूरोपीय महासमर ने एशिया में उथल-पुथल मचा दी। माल की आयात और निर्यात पर भी महासमर का भारी प्रभाव पड़ा और सम्पूर्ण एशिया आर्थिक सङ्कट के कारण सिसकने लगा ! जब यूरोप से कपड़ा, लोहे का सामान आदि आना प्रायः बन्द सा हो गया, तब एशिया को अपनी असहायावस्था का पता चला। इस समय भारतवर्ष में और चीन में कुछ नए कारख़ाने खुले और व्यवसाय की उन्नति हुई, पर भारतवर्ष पराधीनता के कारण और चीन गृह-कलह के कारण, आगे नहीं बढ़ सके ! सब मुसलमान देश किसी न किसी प्रकार युद्ध में सम्मिलित ही थे। यों तो जापान भी समर में शामिल था, परन्तु उसकी सेना असली युद्ध-स्थल तक नहीं पहुँच पाई; केवल चीन के समुद्रतट पर और कुछ इधर-उधर ही उसने अपने पराक्रम दिखलाए। इसलिए जापान को इस युद्ध से कोई क्षति नहीं हुई; बल्कि उसके व्यवसाय-धन्धों की बड़ी उन्नति हुई। जापानी कपड़ा और अन्य प्रकार का माल भारत के प्रत्येक नगर और क़स्बों में पहुँच गया और यूरोपीय माल की अपेक्षा अधिक सस्ता होने से ख़ूब बिकने लगा।

महासमर से पहले ही सम्पूर्ण एशिया यूरोपीय लोगों से और विशेषकर अङ्गरेज़ और फ़्रान्सीसी तथा रूसियों से घृणा करने लग गया था। एशिया का सर्वाधिक भाग इन्हीं तीन राष्ट्रों के या तो अधीन था, या आर्थिक मामलों में इनके पञ्जे में फँसा हुआ था। भारतवर्ष, अफ़ग़ानिस्तान और ईरान अङ्गरेज़ों की चालों को और क्रूरताओं को देख चुके थे और तुर्की से अफ़ग़ानिस्तान तक का मुसलिम प्रदेश तथा साइबेरिया और चीन रूस की आक्रमणात्मक नीति से तङ्ग थे। फ़्रेञ्च-इण्डोचायना और सीरिया आदि फ़्रान्स से घृणा करते थे। अन्य यूरोपीय राष्ट्रों से भी एशिया वालों को कोई प्रेम नहीं था। इसलिए जब युद्ध छिड़ा, तो सब लोग गोरी जातियों के सर्वनाश की प्रतीक्षा करने लगे। जब तुर्की इस समर में सम्मिलित हो गया और सुलतान-ख़लीफ़ा ने सब मुसलमानों को जिहाद करने के लिए आह्वान किया तो मुसलिम जगत में विशेष प्रक्षोभ नहीं हुआ। मुसलिम राजनैतिक नेता नहीं चाहते थे कि मुसलमान सैनिक तो ख़ून बहावें और एक यूरोपीय राष्ट्र को लाभ हो। उनका कहना था कि जर्मनी या इङ्गलैण्ड दोनों में से कोई भी हारे, उनकी कोई क्षति नहीं है। मुसलमानों का हित तो इसी में है कि यूरोपीय राष्ट्र परस्पर लड़ कर निर्बल हो जावें। मुसलिम नेताओं की सलाह थी कि परस्पर के महायुद्ध से परि-

श्रान्त और क्षीण होकर जब यूरोप के राष्ट्र एक तरफ़ बैठ जावेंगे, तब मुसलमानों को अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। भारतवर्ष में रँगरूटों की अनुचित प्रकार से भर्ती और भारत-रक्षा क़ानून के अत्यधिक उपयोग के कारण अङ्गरेज़ों की विजय-कामना करने वाले बहुत कम थे। युद्ध के आरम्भ-समय लोकमान्य तिलक जेल से छूट चुके थे और विपिनचन्द्र पाल के साथ वे स्वराज्य का आन्दोलन बड़ी तेज़ी के साथ करने लग गए थे। युद्ध छिड़ने के बाद अङ्गरेज़ों ने मिश्र पर अपना आधिपत्य जमा कर, वहाँ सैनिक शासन आरम्भ कर दिया था और ईराक़, सीरिया, फ़लस्तीन तथा हजाज पर भी उन्होंने अधिकार जमा लिया था। इन देशों पर अपना शासन स्थापित करते हुए अङ्गरेज़ों ने प्रतिज्ञाएँ की थीं, कि उनका शासन अस्थायी रहेगा और इन देशों को शीघ्र ही स्वतन्त्रता प्राप्त हो जावेगी। इन प्रतिज्ञाओं की निस्सारता को लोग शीघ्र ही समझ गए और इसका विरोध करना आरम्भ कर दिया। भारत के मुसलमानों में भी इसके कारण बहुत असन्तोष फैला। सन् १९१७ में रूस में राज्य-विप्लव हुआ और प्रसिद्ध साम्यवादी नेता ने रूस के अधिकृत देशों के साथ उदारनीति का अनुसरण करना आरम्भ किया। तुर्की, ईरान और अफ़ग़ानिस्तान के साथ रूस ने ऐसी सन्धियाँ कीं, जिसके कारण ये देश उन्नति-मार्ग की ओर बढ़ने लगे; मध्य-एशिया और साइबेरिया में उसने कई छोटे-छोटे प्रजातन्त्र राज्य स्थापित कर दिए और जो जातियाँ अत्यन्त अशिक्षित, असभ्य और अयोग्य समझी जाती थीं, उनको अत्यन्त उन्नत शासन के अधिकार बात की बात में देकर संसार को चकित कर दिया। मित्र राष्ट्रों ने रूस का घोर विरोध किया और साम्यवादी विचारों के प्रचार को रोकने के लिए उन्होंने असाधारण प्रयत्न किए। इसके कारण एशिया के मज़दूरों को पता चल गया कि पूँजीवाद और साम्राज्यवाद दोनों सहोदर भाई हैं!

महासमर से पहले एशिया के सम्पन्न लोगों ने ही यूरोप की यात्रा की थी और उन्हीं लोगों को यूरोप के सामाजिक तथा राजनैतिक जीवन का पता था। जिन लोगों ने यूरोप के साहित्य का अध्ययन किया था, उन पर पश्चिमीय सभ्यता का गहरा प्रभाव पड़ चुका था, परन्तु तो भी अधिकांश एशिया-वासियों के लिए गोरा आदमी सन् १९१४ तक प्रायः एक प्रकार का हौवा ही था। जब महासमर में एशिया के सैनिक सम्मिलित हुए तो यूरोप और एशिया का वास्तविक सम्पर्क हुआ। विद्वानों ने और राजनीतिज्ञों ने अब तक तो यूरोप के उच्च साहित्य, विज्ञान और स्वातन्त्र्य-प्रेम का ही अध्ययन किया था, परन्तु अब एशिया के अशिक्षित सैनिकों ने यूरोप के सैनिक देखे, उनके साथ-साथ वे समर-भूमि में लड़े, उनका हँसी-मज़ाक़ किया और उनकी निर्बलताओं को देखा। यूरोप की युवतियों की स्वच्छन्दता, यूरोप के समाज का अधःपतन, यूरोप के राष्ट्रों की अमानुषिक स्वार्थ-परायणता, समृद्ध नगरों का आश्चर्यकारी वैभव, कल्पनातीत विलास, गोरों का अभिमान और औद्धत्य—ये सब एशिया के सैनिकों ने अपनी आँखों से देखा। समर समाप्त होने पर वापस आकर उन्होंने अपने अनुभव अपने गाँव वालों को सुनाए। झूठी और सच्ची अनेक प्रकार की कथाएँ यूरोप के विषय में फैलने लगीं। जनसाधारण, कृषक और मज़दूर सब अब जान गए कि गोरे लोग अलौकिक मनुष्य नहीं हैं। यूरोप का पर्दा फ़ाश हो गया। उसका नग्न चरित्र सम्पूर्ण एशिया ने देख लिया।

महासमर के पश्चात

महासमर के समय मित्र-मण्डल ने गला फाड़-फाड़ कर कई बार घोषणाएँ की थीं कि युद्ध का ध्येय है जर्मन साम्राज्यवाद का अन्त करके, संसार में शान्ति तथा स्वातन्त्र्य की स्थापना करना। कहा जाता था कि युद्ध का अन्त करने के लिए यह युद्ध हो रहा है। पर वास्तव में निर्बल साम्राज्यवाद का अन्त करके एक प्रबल और दुर्धर्ष साम्राज्यवाद को स्थापित करने के लिए यह सब यत्न था। जब भारतवर्ष में भारत-रक्षा क़ानून का अन्धाधुन्ध प्रयोग होने लगा, ईराक़, फ़लस्तीन, सीरिया और ट्रान्स-जॉरडन को अङ्गरेज़ तथा फ़्रान्सीसियों ने और शान्तुङ्ग को जापानियों ने अधिकृत कर लिया और लॉर्ड बालफ़ोर ने यहूदियों की "राष्ट्रीय गृह" की नवीन नीति उत्पन्न की तो संसार समझ गया कि युद्ध का असली उद्देश्य क्या है? समर-समाप्ति से पूर्व ही मित्र-मण्डल में तुर्की राज्य के बँटवारे के सम्बन्ध में गुप्त अहदनामे हो चुके थे और भारतवर्ष की दासत्व-श्रृङ्खलाओं को सुदृढ़

करने के प्रयत्न किए जा रहे थे। एशिया के सब राजनीतिज्ञ नेताओं को अनुमान हो गया था कि महायुद्ध की समाप्ति के बाद विजयी मित्र किस नीति का अनुसरण करेंगे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि सन् १९१७ में रूस में राज्य-विप्लव होकर साम्यवाद की स्थापना न हो जाती, तो युद्ध के बाद ब्रह्मा से मिश्र तक का भूखण्ड इङ्गलैण्ड के आधिपत्य में होता और फ्रान्स, यूनान इटली आदि देशों को भी इसमें व्यापार आदि सम्बन्धी कई अधिकार मिल जाते।

रूस और एशिया

सन् १९१७ में रूस में राज्य-विप्लव हो गया और साम्यवादी शासन की स्थापना हो गई। इसका नेता और विधाता था लेनिन। वह अद्भुत आन्दोलक, अप्रतिभ प्रबन्धक, आकर्षक नेता और अपूर्व विचारक था। वर्तमान जगत के निर्माण में इसका भारी हाथ है। साम्यवाद के जिन सिद्धान्तों को महर्षि कार्ल मार्क्स ने १९वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में प्रचलित किया था, उन्हीं सिद्धान्तों को लेनिन ने बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में कार्यरूप में परिणत कर दिखाया और जगत के सामने ऐसा शासन-विधान और समाज-सङ्गठन उपस्थित किया, जिसको लोग केवल कल्पना-क्षेत्र का विषय समझते थे। जो भारतवर्ष अशोक, चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य, अकबर, और अहल्याबाई-जैसे उत्तम शासकों से गौरवान्वित है और गाँधी, जवाहरलाल जैसे राजनीतिज्ञों से विभूषित है, उसको अङ्गरेज़ महाप्रभु अब तक स्वराज्य के योग्य नहीं समझते। फ़िलिपाइन्स टापुओं को, स्वतन्त्रता की डींग हाँकने वाले अमेरिका ने अब तक दासता की बेड़ियों में जकड़ रक्खा है। फ्रेञ्च इण्डोचायना आदि का फ़्रान्स पिण्ड नहीं छोड़ना चाहता। गोवा, मेकाव आदि को



अफ़ग़ानिस्तान के देशभक्त, सुधार-प्रिय (भूतपूर्व) शाह अमानुल्ला

पोर्तुगाल अब तक कस कर दबाए बैठा हुआ है। इतने पर भी ये राष्ट्र अपने आपको सभ्य और उन्नत कहते हैं। कौन नहीं जानता कि साइबेरिया और पश्चिमी तुर्किस्तान, जो रूस के अधीन थे, सन् १९१७ तक अत्यन्त असभ्य अवस्था में थे। सैकड़ों मीलों तक न रेल थी, न तार था। वर्तमान विज्ञान और शिक्षा वहाँ पहुँचने भी नहीं पाई थी। हज़ारों में इने-गिने आदमी लिख-पढ़ सकते थे। पाठकों ने साइबेरिया या तुर्किस्तान के किसी नेता, लेखक, सम्पादक, कवि या वैज्ञानिक का नाम भी नहीं



रूसी स्त्रियाँ फ़ौजी क़वायद कर रही हैं

सुना होगा। जो देश ऐसी अवनत अवस्था में थे, उनको भी लेनिन ने ज़ार का पतन और साम्यवाद शासन का स्थापन होते ही प्रजातन्त्र बना दिया। इस समय ख़ीवा से लेकर ब्लाडिवास्टक तक का प्रदेश कई छोटे-छोटे प्रजातन्त्रों में विभक्त है। लेनिन ने इन प्रदेशों को स्वतन्त्र करते हुए और वहाँ प्रजातन्त्र शासन की स्थापना करते हुए यह सोचा, कि रूस का शासन हटते ही ये लोग परस्पर कट मरेंगे, ख़ीवा, बुख़ारा, ताशक़न्द आदि के ख़ाँ लोगों के साथ जो अहदनामे रूसी सरकार ने कर रक्खे थे, उनका उल्लङ्घन होगा और रूसी लोग वहाँ उच्च पद न पा सकेंगे। लेनिन अङ्गरेज़ी राजनीतिज्ञों की भाँति साम्राज्यवादी नहीं था, वरना वह भी ऐसी ही बातें करता। साइबेरिया और तुर्किस्तान में प्रजातन्त्र राज्य स्थापित हो जाने से वहाँ राजनैतिक, आर्थिक तथा सामाजिक उन्नति ज़ोर के साथ हो रही है और धार्मिक-कट्टरता नाम को भी नहीं रही है। तुर्किस्तान और साइबेरिया में रेडियो द्वारा आजकल शिक्षा तथा स्वास्थ्य के नियमों का प्रचार किया जा रहा है, जगह-जगह स्कूल खोले जा रहे हैं, सबको मताधिकार देकर राजनैतिक विषयों में भाग लेने के लिए उत्साहित किया जा रहा है और पर्दा की प्रथा ही नहीं हटा दी गई है, बल्कि स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार दे दिए गए हैं। तुर्किस्तान में जो मुसलमान स्त्रियाँ सन् १९१७ तक मकान की चहारदीवारी के अन्दर बन्द रहती थीं, वे अब यूरोपीय पोशाक पहन कर बाज़ारों में घूम सकती हैं, सिनेमा में जा

सकती हैं, पुरुषों के साथ दावतों में खा सकती हैं, यहाँ तक कि सैनिक शिक्षा भी उनके लिए अनिवार्य हो गई है। ज़ेबेस्तान के प्रजातन्त्र राज्य की उप-प्रधान इस समय एक महिला हैं, जिनका नाम है अबीदवा। यह एक मुसलमान देवी हैं, जिनको ग्यारह वर्ष की अवस्था में एक विलासी ख़ान ने उनके मोहक लावण्य के कारण ख़रीद लिया था और अनेक सुन्दरी युवतियों से भरे हुए अपने अन्तःपुर में एक बन्दी की भाँति वर्षों तक रक्खा था !!

रूसी ज़ार ने तुर्की, ईरान, और अफ़ग़ानिस्तान के साथ जो स्वार्थपूर्ण सन्धियाँ कर रक्खी थीं, उनको भी साम्यवादी सरकार ने रद्द कर दिया। इन तीनों मुसलिम देशों को ज़ार के समय रूसी सेनाएँ सरहद पर घेरे रहती थीं और इनको सदैव आक्रमण का भय रहता था। ईरान का उत्तरी भाग तो सब रूस-सरकार के ही अधीन था। लेनिन ने इस आक्रमणात्मक नीति को त्याग दिया और इन देशों के साथ नई सन्धियाँ कर लीं, जिनके अनुकूल इन पर रूस का कोई दबाव नहीं रहा।

इङ्गलैण्ड और अन्य साम्राज्यवादी सरकारों ने लेनिन के विचारों के प्रचार को रोकने के अनेक यत्न किए, तो भी साम्यवाद की लहर समस्त एशिया में फैल ही गई। चीन में इसका सर्वाधिक प्रभाव पड़ा और वर्तमान चीन का विधाता स्वर्गीय डॉक्टर सनयातसेन साम्यवादी विचारों का पक्का पुजारी बन गया। डॉक्टर सन प्रजातन्त्रवाद, राष्ट्रीयता और साम्यवाद—इन तीन सिद्धान्तों को लोक-सिद्धान्त कहता था और अपने भाषणों में इनकी विस्तृत व्याख्या किया करता था। परिस्थिति के अनुकूल उसने अपने साम्यवाद का कुछ रूपान्तर कर दिया था, पर स्थूलतः उसके विचार लेनिन से मिलते-जुलते थे। सन् १९१२ में प्रजातन्त्र स्थापित होने के बाद जब पुनः युआन शिःकाई ने निरङ्कुश सत्ता की स्थापना का यत्न शुरू किया, तब से सन् १९२६ तक डॉक्टर सन अपने सिद्धान्तों का प्रचार करता रहा और अदम्य उत्साह के साथ गृह-कलह के घोर अन्धकार में भी प्रजातन्त्र राज्य के भव्य प्रकाश को देखने की आशा करता रहा। यह क्रूर काल का निर्दय विधान था कि अपनी जीवन-लीला संवरण करते समय भी डॉक्टर सन प्रजातन्त्र के विजयनाद को न सुन सका। उसकी मृत्यु के कुछ मास बाद ही उसका परिश्रम सफल हुआ और प्रजातन्त्र दल की विजय हो गई।

एशिया में स्वातन्त्र्य संग्राम

उधर यूरोप में समर-ध्वनि बन्द हुई, इधर एशिया के समस्त देशों में अपूर्व प्रक्षोभ उत्पन्न हुआ। जब सन्धि-परिषद का अधिवेशन आरम्भ हुआ तो पता चला कि विजयी राष्ट्र तुर्की को लुञ्ज-पुञ्ज करके शक्तिहीन करना चाहते हैं, और ईराक़, फ़लस्तीन आदि को अपने पञ्जे में फँसाना चाहते हैं। भारतवर्ष में पहिले ही असन्तोष था, परन्तु समर-समय में उसने इङ्गलैण्ड को जो धन-जन की सहायता दी थी, उससे देश आशा करने लगा

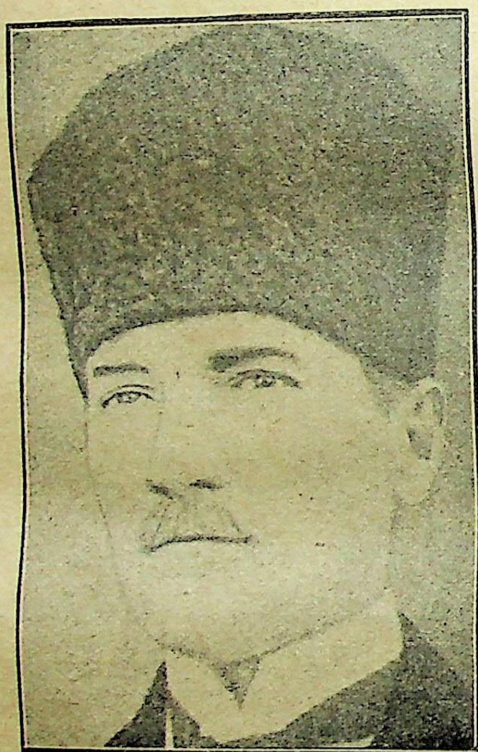


रूसी तुर्किस्तान की अदालत में महिला-जज

था कि शायद कृतज्ञता प्रकट करते हुए इङ्गलैण्ड उसका पिण्ड छोड़ दे। वास्तव में यह अत्यन्त उच्च आशा थी। इसलिए सन् १९१९ के सुधारों से भारतवर्ष को अत्यन्त असन्तोष हुआ। चीन में इस समय साम्यवादी-दल ज़ोर पकड़ने लगा और जापान में भी मज़दूर-दल अपने अधिकारों की प्राप्ति तथा कष्टों के निवारण के लिए आन्दोलन करने लगा। फ़ारमोसा, फ़िलिपाइन आदि द्वीपों के लोगों में भी असन्तोष बढ़ गया। और समस्त एशिया में प्रजातन्त्र, स्वातन्त्र्य, साम्य की ध्वनि गूँजने लगी। बूढ़ा सिंह गर्ज कर खड़ा हो गया। गोरे-संसार का आसन डगमगाने लगा !

जब विजयी मित्रों की संयुक्त सेना ने क़ुस्तुन्तुनिया पर क़ब्ज़ा करके सुलतान ख़लीफ़ा को अपने हाथ की कठपुतली बना लिया तो कमालपाशा ने अङ्गोरा में राष्ट्रीय दल का सङ्गठन करके राष्ट्रीय सरकार की स्थापना

कर दी और यह घोषित किया कि सुलतान ख़लीफ़ा की सरकार तुर्की-सरकार नहीं है। पङ्गु सरकार के साथ विजयी राष्ट्र जो सन्धि करेंगे, वह तुर्की राष्ट्र को मान्य नहीं होगी। कमालपाशा के उत्साहपूर्ण पौरुष और निर्मल देश-प्रेम ने सम्पूर्ण तुर्की जाति में नवीन जीवन का सञ्चार कर दिया। निरन्तर चार वर्ष के युद्ध की थकान को भूल कर तुर्की सैनिक अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए कमालपाशा के राष्ट्रीय झण्डे के नीचे एकत्र होने लगे। उधर जब यूनान ने देखा कि इङ्गलैण्ड,



तुर्की के वर्तमान विधाता मुस्तफ़ा कमालपाशा

फ़्रान्स, इटली, इन तीनों को तो तुर्की राज्य के विभाग से लाभ हुआ है, परन्तु उसको कुछ नहीं मिला तो वह भी विजयी राष्ट्रों की अनुमति और सहायता से तुर्की की ओर बढ़ा। स्मरना पर यूनानी सेना ने आधिपत्य जमा लिया। आस-पास के प्रदेश को भी यूनानियों ने जीत लिया। बहाना यह था, कि इस हिस्से में यूनानी लोगों की बस्तियाँ थीं। यूनानियों ने पराजित देश में अनेक क्रूरताएँ करना आरम्भ किया और यूनानी सेनाएँ लगातार आगे ही बढ़ती रहीं। इस घटना ने तुर्की को अत्यन्त उत्तेजित कर दिया और मुस्तफ़ा कमालपाशा ने देश की मान-रक्षा करने का प्रण किया। तुर्की और यूनानी-सेना में कई लड़ाइयाँ हुईं। कभी एक पक्ष हारता था, कभी दूसरा। फिर लण्डन में फ़्रान्स, तुर्की, इङ्गलैण्ड और यूनान के प्रतिनिधियों की सभा हुई। इसमें अङ्गोरा-सरकार के प्रतिनिधि ही बुलाए गए थे। इस सभा में कुछ समझौता न हो सका, परन्तु इङ्गलैण्ड और फ़्रान्स ने यूनान का साथ देना छोड़ दिया। तो भी यूनानी-सेना नव-उत्साह के साथ लड़ती रही और वह अङ्गोरा के निकट पहुँच गई। कमालपाशा की सरकार के लिए यह जीवन-मरण का प्रश्न था। सम्पूर्ण देश को इस युद्ध में सम्मिलित होने के लिए आह्वान किया गया। कमालपाशा के निमन्त्रण से कृषक, मज़दूर, व्यापारी, विद्यार्थी आदि सब रणाङ्गण में उपस्थित होने को उत्सुक हो गए। अङ्गोरा नगर के पास सकारिया नदी के तट पर भारी युद्ध हुआ। संसार के वर्तमान इतिहास में यह अपूर्व और अत्यन्त महत्वपूर्ण युद्ध था। ३६ घण्टे तक कमालपाशा निरन्तर लड़ता रहा। ज़ख़्मी होने पर भी उसने विश्राम नहीं लिया। मातृभूमि की रक्षा के लिए युद्धस्थल में वह सिंह-गर्जन करता रहा। शरीर से रक्त-धारा बह रही थी, पर तो भी वह सैनिकों को उत्साहित करता जाता था और अपने जीवन-मरण की उसको चिन्ता नहीं थी। अपने नायक का यह अप्रतिभ साहस और देश-प्रेम देख कर तुर्की सैनिक रणमत्त हो गए। देश-प्रेम की मदिरा में चूर होकर वे ऐसे लड़े कि यूनानी सेना के छक्के छूट गए और वह खेत छोड़ भागी! इसके बाद तुर्की सेना ने उसको खदेड़ कर कुछ दिन में अपने देश से निकाल दिया। लोसान की सन्धि में विजयी मित्रों ने तुर्की की सब उचित शर्तों को मान लिया, सुलतान ख़लीफ़ा सिंहासन छोड़ कर यूरोप भाग गया और तुर्की में प्रजा-तन्त्र राज्य की स्थापना हो गई। देश ने कमालपाशा को राष्ट्रपति बनाया!

ईराक़ और फ़लस्तीन में भी अङ्गरेज़ों के 'संरक्षक शासन' का घोर विरोध होने लगा। ईराक़ियों ने कई सभाओं में इसका विरोध किया और जब शान्तिमय आन्दोलन निष्फल हुआ तो सशस्त्र बलवे होने लगे। तब सन् १९२२—२७ के बीच तीन बार सन्धियाँ हुईं, जिसके अनुकूल इस संरक्षक शासन की अवधि पहले

३० फिर २० और तदनन्तर ९ वर्ष निश्चित की गई। अन्तिम सन्धि के अनुकूल अगले वर्ष अङ्गरेज़ देवों को ईराक़ से प्रस्थान कर जाना चाहिए, परन्तु पता नहीं क्या होगा ? फ़लस्तीन में बालफ़ोर घोषणा के अनुकूल यहूदियों को बसाया जाने लगा और उनको कई प्रकार की रियायतें दी जाने लगीं। यह वहाँ के अरब लोगों को निर्बल करने का तथा फिर पारस्परिक झगड़ों का बहाना लेकर अङ्गरेज़ी-पैर हमेशा जमाए रखने का प्रयत्न था। इस नीति का फ़लस्तीन ने घोर विरोध किया और इसी नीति के कारण अरबियों और यहूदियों में कई बार झगड़े हुए। अभी कुछ समय पूर्व "रोती हुई दीवार" वेलिङ्ग वाल के सम्बन्ध में जो रक्तपात हुआ था सो पाठकों को याद ही होगा। अरब लोगों के अविश्रान्त आन्दोलन के फल-स्वरूप अब इङ्गलैण्ड की सरकार ने घोषणा की है कि फ़लस्तीन में यहूदियों की संख्या अधिक नहीं बढ़ाई जावेगी। परन्तु उधर यहूदियों का भी आन्दोलन जारी है। सम्भव है उसका बहाना लेकर इङ्गलैण्ड के राजनीतिज्ञ पुनः अपनी नीति को बदल दें, और बदलें भी क्यों नहीं, फ़लस्तीन को अपने चङ्गुल में फँसाए रखने से उनको लाभ भी तो है। अभी उस दिन एक विद्वान अङ्गरेज़ राजनीतिज्ञ ने कहा था, कि फ़लस्तीन अङ्गरेज़ों के लिए बड़ा महत्वपूर्ण प्रदेश है। यह स्वेज़ की नहर के पास है, जो भारतवर्ष का मार्ग है, यहाँ वायुयानों का स्टेशन है, यह मिश्र के पास है, यहाँ तक मसूल से पेट्रोलियम की पाइप लाइन आने वाली है, आदि। इन मियाँ जी का यह ख़्याल है कि भारतवर्ष में उनका राज्य हमेशा ही बना रहेगा।

अपने व्यापार की वृद्धि करने तथा अपने साम्पत्तिक सङ्कट का निवारण करने के लिए फ़्रान्स ने सीरिया पर "संरक्षकता" स्थापित कर ली। राष्ट्र-सङ्घ से फ़्रान्स ने यह कहा कि सीरिया में ईसाइयों की बस्ती काफ़ी है और वहाँ फ़्रेञ्च संस्कृति का प्रचार है, इसलिए यह देश जब तक स्वराज्य के योग्य न हो जावे, तब तक वहाँ फ़्रेञ्च संरक्षकता की आवश्यकता है। सीरिया ने आरम्भ से ही इसका विरोध किया, पर सुनता कौन ? संरक्षकता स्थापित करके फ़्रेञ्च ने सीरिया का रक्त चूसना आरम्भ किया और भेद-नीति का अनुसरण होने लगा। ईसाई, मुसलमान और यहूदियों को आपस में फोड़ा जाने लगा। फ़्रेञ्च भाषा राज-भाषा बना दी गई। इन चालों को सीरिया-निवासी शीघ्र ही समझ गए और स्वातन्त्र्य संग्राम आरम्भ हो गया। यह अरबियों की एक ड्रूज़ जाति ने शुरू किया, परन्तु फिर प्रायः सब इसमें सम्मिलित हो गए। इस संग्राम का नेता था सुलतान पाशा अल अत्राशी। यह युद्ध देश-व्यापी हो गया और फ़्रेञ्च शासन इसके कारण पङ्गु हो गया। फ़्रेञ्च-सरकार ने इस घटना की ख़बरों को कई मास तक गुप्त रक्खा और अन्त में जब यह संसार में फैल गई तो फ़्रान्स ने यह कहना शुरू किया, कि यह कुछ



कमालपाशा की सुयोग्य धर्मपत्नी श्रीमती लतीफ़ा हानूम

लुटेरों का बलवा है, यह राष्ट्रीय आकांक्षाओं का स्फुटिकरण नहीं है और न अधिकांश सीरियावासी इसमें सम्मिलित हैं। युद्ध बढ़ता ही गया और फ़्रेञ्च सत्ता के सामने एक विकट समस्या उपस्थित हो गई। तब अपनी संरक्षकता को बनाए रखने के लिए फ़्रेञ्च सरकार ने दमिश्क नगर में गोलों की वर्षा करके जलियाँवाला बाग़ के हत्या-काण्ड को भी मात कर दिया। इसमें कितने ही नर-नारी और बच्चों का संहार हुआ और लाखों की

सम्पत्ति का विनाश हुआ। दमिश्क में जो राष्ट्रीय शासन स्थापित हो गया था, उसका अन्त हो गया।



सीरिया के प्राण—सुलतान पाशा अल अत्राशी

सन् १९२७ के मार्च में सुलतान पाशा अल अत्राशी का देहान्त हो गया, जिसके कारण राष्ट्रीय संग्राम को बड़ा धक्का लगा और फ़्रेञ्च सरकार कुछ समय के लिए निर्विघ्न हो गई। फिर भी जब राष्ट्रीयता की एक बार जाग्रति हो जाती है तो फिर उसका शान्त होना सम्भव नहीं है। सीरिया में असन्तोष जारी रहा और सरकार को उत्तरदायी शासन का आरम्भ करना पड़ा। अब केवल समय की बात है कि सीरिया कब पूर्ण स्वातन्त्र्य प्राप्त करता है। अरब और हजाज में अङ्गरेज़ों की सहायता से हुसैन बादशाह बना हुआ था और एक समय वह ख़लीफ़ा बनने का भी स्वप्न देखने लगा था। परन्तु कुछ मास बाद ही अब्दुल वहाब ने मक्का-मदीना पर आक्रमण करके इन नगरों पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। अब्दुल वहाब केवल अपने ही बाहुबल से अरब और हजाज का बादशाह बना था, इसलिए उसको अङ्गरेज़ों या अन्य लोगों का मुँह ताकने की आवश्यकता नहीं थी। इसलिए अङ्गरेज़ों के साथ जो उसकी सन्धि हुई, वह वैसी ही हुई जैसी एक स्वतन्त्र राज्य की दूसरे स्वतन्त्र राज्य के साथ होनी चाहिए।

सन् १९१६ के लगभग ईरान में अपूर्व जाग्रति हुई। पार्लामेण्ट शाह की अपव्ययता का और विदेशियों के हस्तक्षेप का घोर विरोध करने लगी। सन् १९१७ में रूस की साम्यवादी सरकार ने अपनी आक्रमणात्मक नीति को त्याग दिया और ईरान के साथ मैत्री स्थापित कर ली। नई सन्धि की शर्तें अत्यन्त उदार रक्खी गईं। उत्तरी ईरान में युद्ध के समय और उससे पूर्व रूस ने जो रेलवे, सड़कें, और मकान बनवाए थे, वे सब उसने ईरान की भेंट कर दिए और विपत्ति के समय सहायता करने का वचन दिया। इसी समय रिज़ाअली नामक



वर्तमान ईरान के विधाता रिजाअली पहेलवी

एक सैनिक नेता कार्यक्षेत्र में अवतीर्ण हुआ। यह पहिले दक्षिण में एक कम्पनी का कप्तान था। नैसर्गिक नेतृत्व-

निपुणता के कारण यह राष्ट्रीय आन्दोलन के समय जनता का विश्वास-भाजन बन गया और कुछ मास



ईरान के निर्वासित बादशाह अहमद शाह

के कार्य के बाद ही यह सेना-सचिव के पद पर नियुक्त हुआ। रिज़ाअली की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई शक्ति और लोक-प्रियता को ईरान का शाह अहमद नहीं रोक सका। वह अपनी अपव्ययता और देशहितोपेक्षिता के कारण जनता में अत्यन्त अप्रिय था। जब उसने देखा कि निर्बल होकर राज्य-सिंहासन पर बैठे रहना अधिक समय तक नहीं निभेगा, तो वह सिंहासन त्याग कर यूरोप चला गया और वहाँ अपने जीवन के शेष दिन उसने बिताए। रिज़ाअली पहले तो कुछ समय तक राष्ट्र-पति बना रहा और फिर उसने शाह की पदवी धारण कर ली, परन्तु पार्लामेण्ट के अधिकार बढ़ाए गए और शासन का उद्देश्य देश की उन्नति मान लिया गया।

सन् १९१७ के बाद रूसी सीमा की ओर अफ़ग़ानिस्तान को कोई भय नहीं रहा। जब एक तरफ़ का खटका हट गया तो अमीर दूसरी तरफ़ का अर्थात् भारतवर्ष की तरफ़ का भी खटका मिटाने की चिन्ता करने लगा। इसी समय महमूद तार्ज़ी के लेखों से अफ़ग़ान-जनता और अमीर दोनों में पूर्ण स्वतन्त्रता की अभिलाषा प्रबल हो गई। उस समय भारतवर्ष में जलियान-वाला बाग़ का हत्याकाण्ड हो चुका था और पञ्जाब में सरकार के प्रति घोर असन्तोष था। शायद इस परिस्थिति से लाभ उठाने के लिए अमीर अमानुल्ला ने भारतीय सीमा की ओर अपनी सेना को बढ़ाया और भारत-सरकार के साथ युद्ध-घोषणा कर दी। अर्से तक यह युद्ध जारी रहा और अङ्गरेज़ी सेना ने इसमें वायुयानों का ख़ूब प्रयोग किया। अङ्गरेज़ी सरकार कहती थी, हम जीत रहे हैं और अमानुल्ला कहता था हम जीत रहे हैं! वास्तव में दोनों ही जीत रहे थे और दोनों ही हार रहे

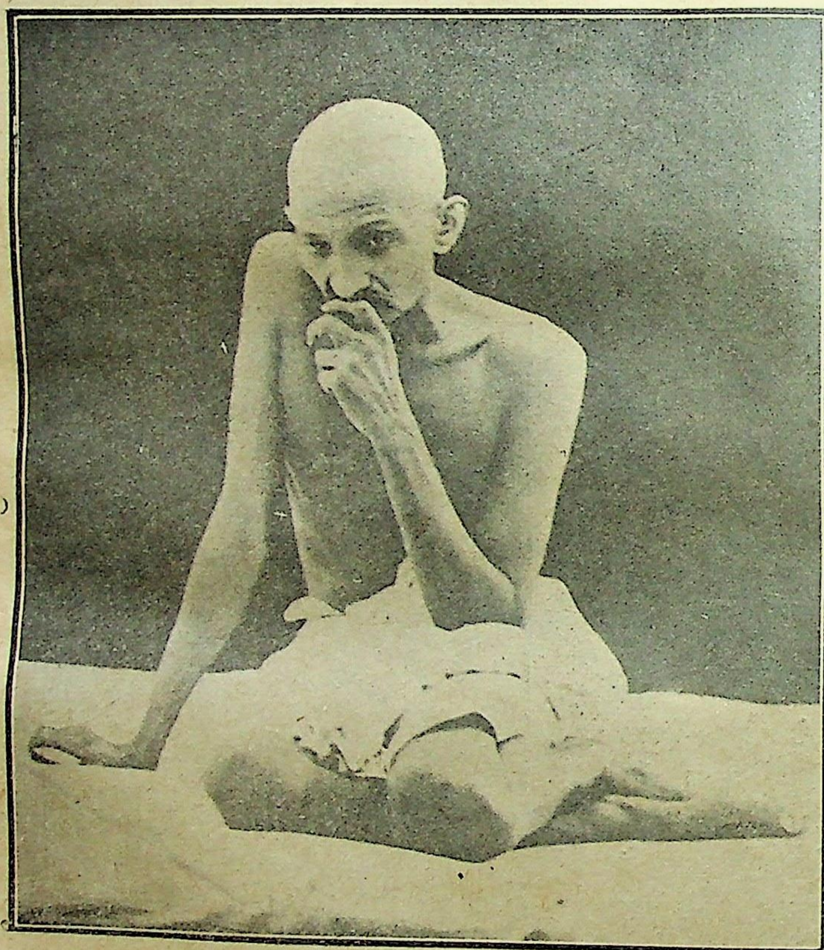


पुरुष-वेष में डॉक्टर सनयातसेन की धर्मपत्नी

थे! आख़िर रावलपिण्डी में सन्धि हो गई और अफ़ग़ानिस्तान को पूर्ण स्वतन्त्र राष्ट्र मान लिया गया।

रूसी तुर्किस्तान में सोवियट सरकार ने सन् १९१७

में प्रजातन्त्र राज्य स्थापित कर दिया और निरङ्कुश शासकों को इधर-उधर विदा कर दिया। बुख़ारा का अमीर सैयद मीर आलम ख़ाँ अपनी पैतृक सम्पत्ति छोड़ कर काबुल भाग आया। अभी इसने राष्ट्र-सङ्घ को एक अर्ज़ी दी थी, जिसमें लिखा था कि मैं ४२ करोड़ रुपए की निधि बुख़ारा में छोड़ कर आया हूँ। इसकी प्रजा की संख्या १२॥ लाख थी। ऐसे धन-लोलुप, विलासी और निरङ्कुश शासकों



महात्मा गाँधी

का सोवियट सरकार ने अन्त करके, आक्रान्त जनता का बड़ा उपकार किया है। साइबेरिया में ऐसे अनेक प्रजातन्त्र राज्य स्थापित कर दिए गए। इनके द्वारा साम्यवादी विचारों की बाढ़ चीन और जापान की ओर भी बढ़ने लगी। इसको रोकने के लिए जापान ने दो-तीन वर्ष तक भारी प्रयत्न किया और अमेरिका ने इसमें जापान की सहायता की। व्लाडीवास्टक के आस-पास का प्रदेश अर्से तक जापान ने अपने अधिकार में रक्खा और साम्यवादी लोगों को पशुओं की भाँति जहाँ-तहाँ गोलियों से मारा। व्लाडीवास्टक में तीन मास तक फ़ौजी शासन रहा। जब प्रजातन्त्र राज्यों की नींव सुदृढ़ हो गई और जापान ने देखा, कि इस प्रकार के आक्रमणों से विचार-धाराएँ मुड़ नहीं सकतीं, तो सेनाएँ वापस बुलाई गईं। पिछले पन्द्रह वर्ष से जापान साम्राज्यवादी बन रहा है।

कोरिया के राष्ट्रीय आन्दोलन को उसने अमानुषिक क्रूरता के साथ दबाया था, जिसका उल्लेख पहिले ही किया जा चुका है। इस समय फ़ारमूसा द्वीप में भी स्वतन्त्रता का संग्राम जारी है। जैसे अङ्गरेज़ लोग भारतवर्ष को दाँतों से पकड़े हुए हैं, उसी प्रकार जापानी भी फ़ारमूसा द्वीप को अपना भारतवर्ष समझते हैं और उसका पिण्ड नहीं छोड़ना चाहते।

फ़ारमूसा में अहिंसात्मक संग्राम जारी है। हाल ही में पूर्व फ़ारमूसा के निवासियों ने कितने ही जापानियों का बध कर डाला, कितने ही जापानी लड़के-लड़कियों को ज़िन्दा जला दिया। फ़िलिपाइन्स टापू के लोग भी स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए अधीर हो रहे हैं। परन्तु करें क्या? अनुनय-विनय द्वारा तो स्वतन्त्रता मिलती नहीं। बातों का उत्तर बातों में मिल जाता है।

अभी अमेरिका की प्रसिद्ध कन्या मेयो ने पुस्तक लिखी थी, जिसमें उसने बतलाया था कि फ़िलिपाइन्स-निवासी अत्यन्त असभ्य, अशिक्षित और अयोग्य हैं, इसलिए वहाँ अमेरिका का राज्य बना रहना आवश्यक है। इस अद्भुत कुमारी ने भारत के विषय में भी ऐसी ही एक पोथी लिख मारी है। जिससे हम जान सकते हैं कि फ़िलिपाइन्स के सम्बन्ध में उसकी बातें कहाँ तक सत्य होंगी।

डॉक्टर सनयातसेन नहीं चाहता था कि चीन यूरोपीय महासमर में किसी भी पक्ष की ओर सम्मिलित हो। उसकी कुशाग्र-बुद्धि को पता लग गया था कि शान्ति-स्थापना और स्वातन्त्र्य प्रचार की बातें केवल संसार को भुलावे में डालने के लिए हैं, वास्तव में दोनों पक्ष अपना स्वार्थ सिद्ध करने को लड़ रहे हैं। इसके अतिरिक्त यह भी स्पष्ट था कि गोरे राष्ट्र, विशेषकर अमेरिका और इङ्गलैण्ड चीनी राष्ट्रीयता के विरोधी थे और युआन शिकाई को निरङ्कुश बनने में सहायता देते थे। डॉक्टर सनयातसेन की नीति थी कि विदेशियों के साथ विरोध न बढ़ाया जावे और पहले अपने गृह-कलह को शान्त करके प्रजातन्त्र की स्थापना की जावे, तो भी गोरे लोग समझते थे कि प्रजासत्तात्मक चीन उनकी रक्त-शोषक नीति को सहन नहीं करेगा। इसलिए वे राष्ट्रीय जाग्रति को यथासम्भव दबाना चाहते थे। सब साम्राज्यवादी राष्ट्रों के पत्र सनयातसेन की निन्दा करते थे और युआन शिकाई आदि देशद्रोही स्वार्थियों की पीठ ठोंका करते थे। जब केण्टन की सभा ने बहुसम्मति से जर्मनी के विरुद्ध युद्ध करना निश्चय कर लिया तो डॉक्टर सन ने भी बहुसम्मति को स्वीकृत किया, परन्तु उसने स्पष्ट कह दिया था कि गोरों के सहयोग से कोई लाभ



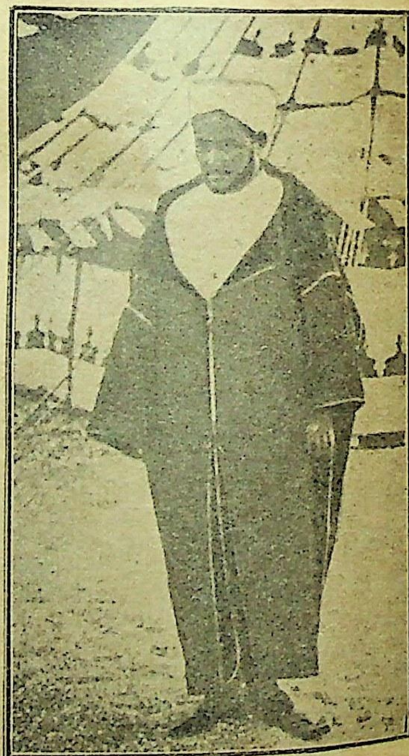
राष्ट्रपति पं० जवाहरलाल नेहरू

नहीं है। अनुभवी नेता का वचन सत्य हुआ। वर्सेलीज़ की सन्धि-परिषद में चीन की किसी ने बात भी नहीं



नवीन ईराक़ के त्राता सुलतान इब्न सऊद वहाबी

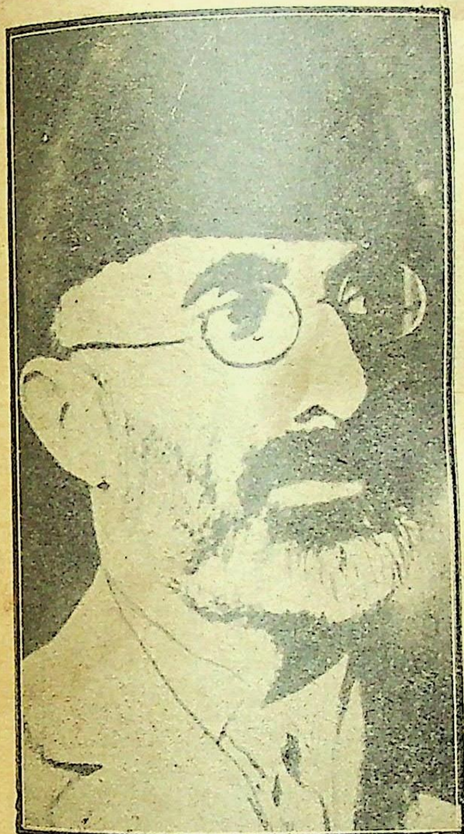
पूछी और जापान जो चीन के साथ कई वर्षों से अत्याचार कर रहा था, वह जारी रहा। युद्ध होता रहा तब तक चीन को विदेशियों के स्वार्थमय हस्तक्षेप से छुटकारा रहा और उसने शिक्षा तथा व्यवसाय में अच्छी उन्नति की। पर उसकी राजनैतिक अवस्था अब भी अत्यन्त शोचनीय थी। कई प्रान्त निरङ्कुश सैनिकों ने दबा रक्खे थे और युआन शिकाई पार्लामेण्ट की कुछ परवाह नहीं करता था। उसके पतन के बाद कभी एक राष्ट्रपति बनता था और कभी दूसरा! वास्तव में कैन्द्रिक सत्ता नाम मात्र को थी। स्थान-स्थान पर शक्तिशाली सैनिकों ने अपना आधिपत्य जमा रक्खा था। दक्षिण में डॉक्टर सनयातसेन ने केण्टन नगर में राष्ट्रीय शासन स्थापित कर रक्खा था। उत्तर में सैनिक शासकों का और प्रजातन्त्र-विरोधी युआन शिकाई का अन्त करने के लिए डॉक्टर सन ने एक बार प्रयत्न किया, परन्तु उसको सफलता नहीं हुई। तब उसने कुओमिनटङ्ग (राष्ट्र-सङ्घ) को पुनः सङ्गठित किया। दक्षिण के क्वाँङ्गटुङ्ग प्रान्त को जीत कर वहाँ प्रजातन्त्र शासन की स्थापना की। कुओमिनटङ्ग में चीन के अनेक विद्वान, सैनिक, राजनीतिज्ञ, व्यापारी तथा राजकर्मचारी सम्मिलित हुए, डॉक्टर सन सबका प्रधान बना। सन् १९२२ से यह राष्ट्र-सङ्घ उन्नति करने लगा और क्रान्तिकारी विचार घर-घर में घुस गए। डॉक्टर सन ने लेनिन को बधाई का पत्र भेजा, और रूसी सरकार का दूत, जो केण्टन आया उसका उसने बड़ा सत्कार किया। साम्यवादी विचारों का प्रचार करने के लिए एक दल का सङ्गठन किया गया। डॉक्टर सन ने अङ्गरेज़ों के नाम एक अत्यन्त स्पष्ट और ज़ोरदार पत्र प्रकाशित किया, जिसमें उनकी आक्रमणात्मक नीति की निन्दा की और मिश्र, अमृतसर, जलियानवाला बाग़, हाँगकाङ्ग आदि स्थानों की



मोरक्को का बहादुर नेता अब्दुलकरीम

क्रूरताओं का उल्लेख किया। इसी समय रूस ने चीन के साथ जो ज़ार के शासन की सन्धियाँ थीं, उनको रद्द कर

दिया और चीन के साथ मित्रता स्थापित कर ली। डॉक्टर सन का दल दिन-दिन प्रबल होने लगा और देशद्रोही



अफ़ग़ानिस्तान के वर्तमान सम्राट नादिरशाह

स्वार्थी सैनिकों के आसन डगमगाने लगे। कुओमिन-टङ्ग भारतवर्ष की कॉङ्ग्रेस की भाँति देश का वास्तविक शासक बन गया। इसी समय सन् १९२५ के मार्च में वर्तमान चीन के विधाता डॉक्टर सन का देहान्त हो गया! उसके कुछ दिन बाद ही डॉक्टर सन के दल की विजय हुई और चीन में प्रजातन्त्र शासन वास्तव में स्थापित हो गया। विदेशियों के विशेषाधिकार सब रद्द कर दिए गए और जब इन लोगों ने शस्त्र-बल द्वारा अपने स्वार्थों को अक्षुण्ण रखने का प्रयत्न किया, तो इनके प्रति चीन में घृणा की बाढ़ उमड़ पड़ी। विदेशियों के मकान जला दिए गए, सामान नष्ट किया गया। कुछ लोगों का वध भी किया गया और ईसाई पादरियों को मार भगाया गया। इस अवस्था को देख कर इङ्गलैण्ड, अमेरिका और जापान ने अपने जहाज़ी बेड़े चीन के समुद्रतट के पास उसको त्रस्त करने के लिए जा खड़े किए, परन्तु चीन पूर्णरूपेण सजग हो चुका था, अब मीठी लूट का ज़माना गुज़र चुका था। इसलिए अपने बल का निष्फल प्रदर्शन करवा कर इन नव-सेनाओं को वापस बुला लिया गया। अपने विशेषाधिकार और रिआयतों के अन्त को भी इन देशों ने हृदय मसोस कर स्वीकार कर लिया।

यह खेद की बात है कि पिछले एक वर्ष से पुनः चीन में गृह-युद्ध आरम्भ हो गया और नानकिङ्ग की राष्ट्रीय सरकार सङ्कट में पड़ गई। इस राष्ट्रीय सरकार ने प्रान्तीय सैनिक शासकों से तो समझौता कर लिया था और आशा की जाती थी कि कुछ समय में वे भी उत्तरदायी शासक बन जावेंगे और समस्त चीन में प्रजा-तन्त्र शासन स्थापित हो जावेगा, परन्तु दुर्भाग्यवश यह न हो सका। उत्तर में पेकिङ्ग नगर में एक नए विरोधी दल ने राष्ट्रीय सरकार के विरुद्ध उत्पात खड़ा कर दिया

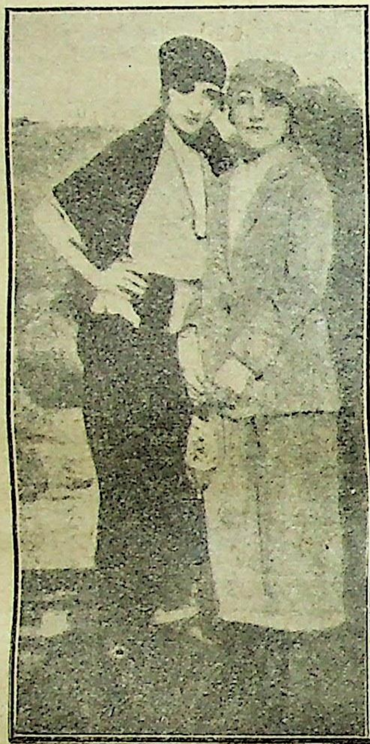


श्रीमती सरोजनी नायडू (जेल में)

आपको एशियाई महिला-सम्मेलन की सभानेत्री नियुक्त करने का प्रस्ताव किया गया है।

और गृह-युद्ध आरम्भ हो गया। स्वर्गीय डॉक्टर सन-यातसेन की धर्मपत्नी भी इस विरोधी दल के साथ हैं।

यह दल साम्यवादी विचारों की ओर झुका हुआ है और इसका कहना है कि वर्तमान चीनी राष्ट्रीय सरकार ग़रीबों



तुर्की की आधुनिक महिलाएँ

की हितेच्छु नहीं है। अभी युद्ध जारी है, दोनों ओर हज़ारों सैनिक धराशायी हो चुके हैं। परमात्मा शीघ्र ही चीन में शान्ति स्थापित करे! कुछ भी हो, अब चीन जग गया है, अब वह दूसरों का दास नहीं बन सकता। उसको अपने पौरुष का पता लग गया है।

सन् १९१९ से आज तक जो हमारे देश में हुआ है सो किसको भूल सकता है। निस्सार शासन-सुधारों का दान और उसके साथ ही काले क़ानून का विधान, फिर जलियानवाला बाग़ का क़त्लेआम और पञ्जाब का फ़ौजी शासन, महात्मा जी के नेतृत्व में असहयोग-संग्राम और २० हज़ार वीरों का कारावास-गमन, चौरीचौरा का ख़ून और महात्मा जी का संग्राम-संवरण, महात्मा जी का क़ैद होना और स्वराज्य-दल का उदय होना, महात्मा जी का छूटना और खादी-प्रचार करना, नितान्त श्वेत कमीशन का आना और सर्वत्र उसका दुत्कारा जाना—ये सब घटनाएँ हमको कल की जान पड़ती हैं। गत दिसम्बर में विपन्न देश के योग्य पुत्र राष्ट्रपति जवाहरलाल ने देश के स्त्री-पुरुषों को खुल्लम-खुल्ला षड्यन्त्र में सम्मिलित होने का निमन्त्रण दिया और पूर्ण-स्वतन्त्रता की घोषणा की। महात्मा जी ने वायसराय को अत्यन्त साधुता और नम्रता से भरा हुआ अन्तिम चेतावनी का पत्र लिखा, जिसका दम्भपूर्ण उत्तर मिला। तब साबरमती का सन्त विदेशी शासन का अन्त करने के लिए अपने आश्रम से पैदल रवाना हुआ, जिसका पशु-बल-मत्त गोरी सरकार ने उपहास किया। जब अशान्ति की आग सर्वत्र फैल गई, तो दमन-चक्र चलना आरम्भ हुआ। अब लाठी, जेल और गोली साधारण सी बात हो गई है। ७० सहस्र से ऊपर नर-नारी और बालक कारागार में पड़े हुए हैं और न जाने कितने घायल हैं, कितने निराश्रय हैं और कितने रोज़ीहीन हैं! कौन कह सकता है कि यह संख्या कहाँ तक पहुँचेगी? भारत को अब आज़ादी की अदम्य प्यास है। गौराङ्ग-देव कहता है, ओस चाट लो



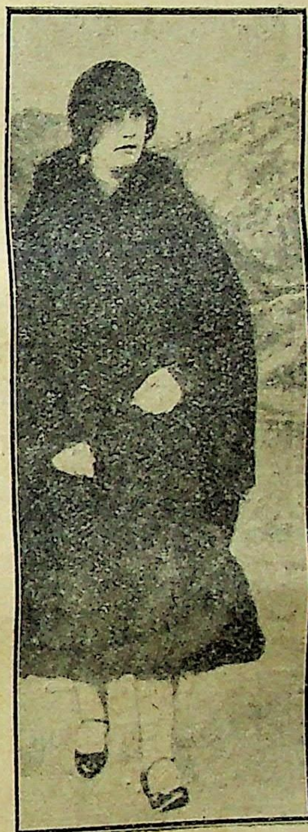
तुर्की की प्रसिद्ध महिला-नेत्री श्रीमती हलीदा अदीब हानूम

और प्यास बुझा लो। भारत अब सजग है, वह ओस नहीं चाटेगा।

अब एशिया जाग्रत हो गया। उसने यूरोप के विज्ञान को अपना लिया और जगदीशचन्द्र बोस जैसे वैज्ञानिक उत्पन्न कर दिए। उसके दुर्गम स्थान भी अब सुगम हो गए। चीन, साइबेरिया, तुर्किस्तान, ईरान, ईराक़, तुर्की, हज्जाज, भारतवर्ष, इण्डोचायना, सर्वत्र रेलें खुल गईं और हज़ारों मील मोटरों की सड़कें बन गईं एवं बनती जाती हैं। अफ़ग़ानिस्तान के वर्तमान शाह ने अभी हाल में ख़ैबर की घाटी से हेरात तक रेल बनाने का एक जर्मन कम्पनी को ठेका दिया है। इस रेल के बन जाने के बाद कलकत्ते से मॉस्को, व्लाडीवास्टक या पेकिन तक रेल-द्वारा यात्रा की जा सकेगी। इस समय भी एशिया के सब प्रसिद्ध नगरों में रेल या मोटर के द्वारा लोग जा सकते हैं।

एशिया के सम्पूर्ण देशों में आज़ादी की लहर है। जहाँ विदेशी हैं वहाँ विदेशियों को निकाला जा रहा है और जहाँ देशी शासक हैं वहाँ उनकी सत्ता को नियन्त्रित किया जा रहा है। चीन ने तो शासकों का अन्त ही कर दिया है। केवल जापान में सम्राट को अत्यन्त भक्ति और श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता है। एशिया के सब देशों पर रूस के साम्यवादी विचारों का प्रभाव है। उत्तरी एशिया तो साम्यवादी बन ही गया है, चीन में साम्यवादी दल का ज़ोर है। जापान के मज़दूरों में यह घुसता जाता है। तुर्की, ईरान और अफ़ग़ानिस्तान का सोवियट रूस की उदार नीति के कारण ही उद्धार हुआ है, पर कमालपाशा, रिज़ाअली और अमानुल्ला ने इन विचारों का अपने देशों में प्रचार होना रोका है, तो भी साम्यवादी साहित्य सर्वत्र पहुँचता है। भारतवर्ष में साम्यवाद न आ जावे, इस उद्देश्य से अङ्गरेज़ों ने कॉकेशिया और तुर्किस्तान में कई युद्ध लड़े हैं, पर विचार-प्रवाह को कोई राज-शक्ति नहीं रोक सकती। यह अड़चनों की परवाह न करके, अलक्ष्य रूप से मनुष्यों के दिमाग़ों का रास्ता ढूँढ़ लेता है। नवीन विचारों का उदय कहीं भी हो, कुछ अर्से में वे मनुष्य मात्र की सम्पत्ति बन जाते हैं। आज भारतवर्ष में साम्यवादी विचारों से कौन अनभिज्ञ है?

एशिया की महिलाओं ने तो संसार को दङ्ग कर दिया है। इनकी जाग्रति संसार के इतिहास में अपूर्व घटना है, और इनकी उन्नति भी आश्चर्यकारिणी है। परम्परा-पीड़ित हिन्दू महिलाओं में मिस तोरुदत्त जैसी कवि, सरोजनी जैसी वक्ता और नेता, पर्दाग्रस्त मुसलिम महिलाओं में हलीदा अदीब हानुम जैसी लेखिका, प्रचारिका तथा सम्पादिका, अबीदवा जैसी शासक, महारानी सुरैया जैसी समाज-सुधारक; रूढ़ि-बद्ध चीनियों में श्रीमती वङ्ग जैसी योग्य नेत्री होना वास्तव में आश्चर्य है। इस समय भारतीय वीराङ्गनाएँ आज़ादी के जङ्ग में



यूरोपियन वेष में अफ़ग़ानिस्तान की भूतपूर्व सम्राज्ञी महारानी सुरैया

पुरुषों से भी आगे हैं। लाठी और गोली को वे पुष्प समझने लग गई हैं। उन्नत मुसलिम देशों ने पर्दे की प्रथा को क़ानूनन हटा दिया है और स्त्रियाँ शीघ्रता के साथ उन्नति करती जाती हैं। उत्तर-एशिया की स्त्रियाँ तो सैनिक शिक्षा भी प्राप्त करती हैं। यह सब जाग्रति पिछले १२ वर्ष के अन्दर हुई है। एशिया ने इस उन्नति-वेग से सामाजिक विकास के नियम को मानो झूठा सिद्ध कर दिया है। बात यह है कि यूरोप के सम्पर्क से और

उसके अत्याचारों से एशिया को अपनी तिरोहित शक्तियों का पता चल गया है। इसको मानो गुप्त निधि मिल गई है। जो एशिया कुछ वर्ष पूर्व सुस्त, निद्रालु और पौरुष-हीन समझा जाता था, आज वह पहलवान के रूप में जीवन-सङ्घर्ष के अखाड़े में आ खड़ा हुआ है।

संसार के भावी इतिहास पर एशिया की जाग्रति का क्या प्रभाव पड़ेगा, एशिया के उदय से यूरोप का क्या हाल होगा, एशिया की आध्यात्मिकता वर्तमान यूरोपीय पार्थिवता का क्या रूपान्तर करेगी, भावी मानव संस्कृति का क्या स्वरूप होगा—इन विषयों पर पाठक विचार करें।

References :—

Wallace—*Thirty Years of Modern History.*

M. Young—*Japan 1912-1926.*

Toynbee—*Turkey.*

H. Vinacke—*A History of the Far East in modern times.*

W. M. Shuster—*The strangling of Persia.*

अबला की आह !!

[पं० रमाशङ्कर जी मिश्र, "श्रीपति" कविरत्न]

मधुर लगता वैभव का नाश,
वेदना का विषमय सन्ताप,
यातनाओं का निर्मम हास्य,
पागलों का-सा मत्त-प्रलाप !

मचलते, मिट जाने को प्राण !
सेज शूलों की देती शान्ति !
बधिक के, लगते हैं प्रिय-पाश !
मची, जाने क्यों ऐसी क्रान्ति !!

आज तृष्णा का उन्नत भाल—
कर रहा है जग पर साम्राज !
क्रूरता करती है रस-रङ्ग,
सजा कर निष्ठुरता का साज !!

करुण-वीणा का विरस-विहाग—
लजाता कोकिल का भी मान !
निराशा का भीषण कङ्काल—
पा रहा रति-पति से वरदान !!

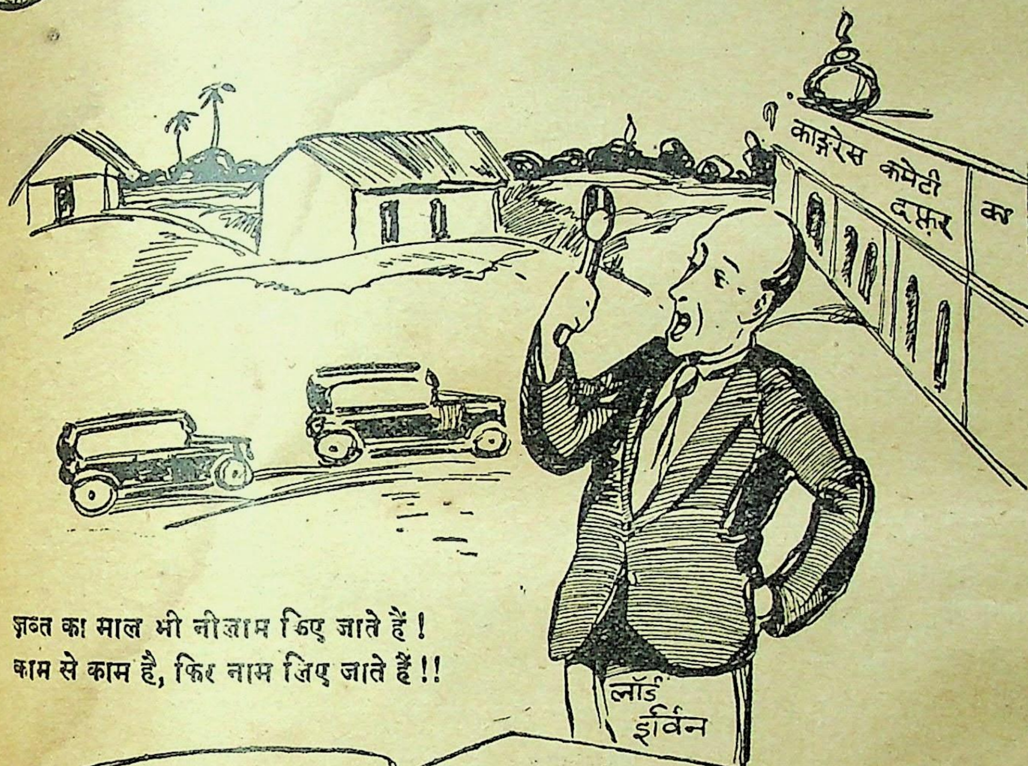
तिरस्कृत होते मुझसे, किन्तु—
जिन्हें प्रभुता पर था अभिमान;
मुझे तो प्रिय लगता अभिशाप—
और आशाओं का बलिदान !

कर रहा श्रीचरणों में भेंट,
देवि ! जो कुछ भी मेरे पास;
तुम्हीं पर निर्भर है उत्थान-
पतन, वसुधा का ह्रास-विकास !

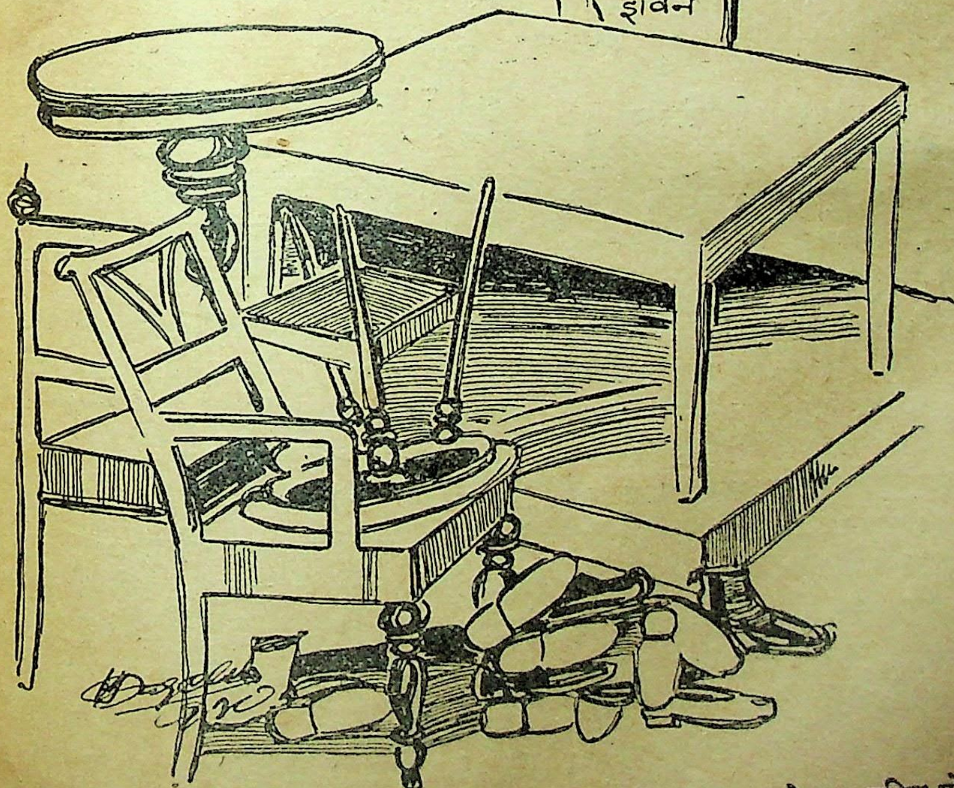
प्रलय की पीड़ा है स्वीकार,
गरल भी सुख से अङ्गीकार !
हृदय में धधका देती किन्तु—
विषम-ज्वाला, सकरुण-चीत्कार !

क्योंकि उससे उठती है हूक,
और कँप जाता है संसार !
पिघल कर बह जाता है मेरु,
सिन्धु क्षण में हो जाता क्षार !!

न कोई आकांक्षा अवशेष,
नहीं प्रभुता की भी कुछ चाह,
किन्तु, हम सुनें न करुणापूर्ण—
किसी अबला की मीठी आह !!



ज़ब्त का माल भी नीलाम किए जाते हैं !
काम से काम है, फिर नाम लिए जाते हैं !!



लॉर्ड इर्विन—एक ! दो !! एक ! दो !! कॉङ्ग्रेस कमेटी का दफ़्तर, एक से एक बढ़िया मोटर, छापेख़ाने, फ़र्नीचर, पुराने जूते, [illegible] के बेन, झाड़े—सब कौड़ियों के मोल जा रहे हैं, क्योंकि कोई क़द्रदान ख़रीदार नहीं मिल रहा है, जल्दी कीजिए, एक, एक—दो, एक ! दो !!........... !!!

पतन की ओर

['मुक्त']



घन अन्धकार से भरी हुई रात थी—ऊपर फैला हुआ अनन्त आकाश और नीचे भयानक अट्टहास करती हुई समुद्र की उत्ताल तरङ्गें। आसमान के नीले अञ्चल में हीरे-सी चमकती हुई कुछ अनमोल निधियाँ थीं और समुद्र के गर्भ में जब-तब चमक उठने वाले प्रकाश-स्तम्भों का क्षीण आलोक। झिलमिलाते हुए तारों की कम्पित ज्योति-माला, समुद्र के चञ्चल जल में प्रतिविम्बित होकर क्रीड़ा कर रही थी।

मैं वायु-परिवर्तन की इच्छा से समुद्र-तटवर्ती एक बँगले में आकर ठहरा था। मेरे सिवा वहाँ और कोई न था।

उस दिन आधी रात को सहसा कुछ शोर-गुल सुन कर मेरी नींद टूट गई। प्रकृति उस समय सुनसान थी। जन-कोलाहल सुख की नींद सोया हुआ था। धरित्री पर एक अखण्ड नीरवता व्याप्त हो रही थी। पलङ्ग से उठ कर मैं छज्जे पर गया। बाहर की ओर देखा—आकाश और धरती, अन्धकार के आवरण से ढके हुए थे। तारे जुगुनुओं की भाँति झिलमिल प्रकाश कर रहे थे, किन्तु अपनी जगह पर स्थिर थे। बड़ा मनोरम दृश्य था।

क्षण भर भावमुग्ध होकर, अन्धकार में आँख गड़ा कर मैं देखता रहा। नैश-समीरण की ठण्ढी थपकियाँ शरीर में आलस भर रही थीं।

कुछ शोर-गुल सुन कर मेरी नींद उचट गई थी, किन्तु उठ कर देखा, सर्वत्र शान्ति है। ध्यान से मैंने चारों ओर देखा। सहसा, गैस-पोस्ट के नीचे एक मनुष्य-कङ्काल दीख पड़ा, जीर्ण-शीर्ण वस्त्र पहने हुए, मलिन, रुक्ष केश, दुर्बल और भयानक। उसके बाएँ हाथ में मैले कपड़े की एक छोटी सी पोटली थी, दाहिने में एक बाँस की छड़ी। वह खड़ा होकर चुपचाप गैस-पोस्ट के प्रकाश की ओर देख रहा था। न जाने कितनी देर से वह उसी अवस्था में वहाँ खड़ा था।

मैं आश्चर्य से उसकी ओर देखता रहा। सहसा, वह एक बार बड़ी ज़ोर से चौंका—"दूर हटो! दूर हटो!!" चिल्लाता हुआ, वहाँ से सड़क की एक ओर चला। कुछ दूर दौड़ कर वह ठहरा। फिर लौट आया। उसके बाद दूसरी ओर चला। उधर से भी लौटा। इसी प्रकार वह बहुत देर तक इधर से उधर सड़क पर घूमता और चिल्लाता रहा—"दूर हटो! दूर हटो!!"

एक बार वह मेरे बँगले के सामने रुका। रुक कर उसने आकाश की ओर देखा और गाने लगा:—

धीर समीरे, यमुना तीरे, वसति बने बनमाली।

उसकी आवाज़ में ग़ज़ब का दर्द था। मैं प्रभावित हुआ। ध्यान देकर सुनने लगा। वह तन्मय होकर गा रहा था:—

नाम समेतं कृत सङ्केतं वादयते मृदु वेणुम्।
बहुमनुतेऽतनुते तनु सङ्गत पवनचलितमपिरेणुम्॥
धीर समीरे यमुना तीरे, वसति बने बनमाली॥

गाता-गाता ही वह एक ओर चल पड़ा। जान पड़ता था, जैसे वह बहुत थक गया हो। उसकी साँस फूल रही थी, पैर लड़खड़ा रहे थे, किन्तु उन्हें विराम न था। वह आगे बढ़ता गया। कुछ देर में आँखों से ओझल हो गया।

उसके सङ्गीत का प्रवाह रुक गया था। "दूर हटो, दूर हटो" की आवाज़ क्रमशः क्षीण से क्षीणतर होती हुई, शून्य में विलीन हो गई। मैं अनेक प्रकार की बातें सोचता हुआ, पत्थर की तरह वहीं खड़ा रहा।

वह वृद्ध था। उसका गीत मुझे बड़ा अच्छा मालूम हुआ था। इच्छा हुई कि उसे बुला कर एक बार फिर वह गीत सुनूँ, लेकिन मेरे बुलाने के पूर्व ही वह भाग खड़ा हुआ।

उस रात को मुझे नींद न आई। सारी रात उस वृद्ध पागल की बातें दिमाग़ में चक्कर काटती रहीं। रात बीत जाने पर जब सवेरा हुआ और सूर्य की अरुण-रागरञ्जित कनक-किरणें पूर्व-आकाश में बिखर गईं, तो रात की सारी घटना मुझे इन्द्रजाल की तरह मालूम होने लगी। किन्तु पागल की बात मैं फिर भी न भूल सका।

धीरे-धीरे सन्ध्या हो आई। अन्धकार की मलिन मेखला ने धरित्री के कटि-प्रदेश को घेर लिया। मेरे मन में उस समय भी एक कौतूहल था, एक पहेली थी।

मैं सन्ध्या के प्रारम्भ से ही उस वृद्ध की प्रतीक्षा कर रहा था। धीरे-धीरे मेरा जी ऊबने लगा। छड़ी लेकर मैं समुद्र के तीर पर घूमने के लिए चल खड़ा हुआ।

जिधर मैं जा रहा था, उस ओर लोगों की भीड़ कम थी। चलते-चलते मैं जन-कोलाहल से बहुत दूर निकल गया। वह स्थान अत्यन्त रमणीक था। समय भी बड़ा मनोरम था। मैं खड़ा होकर चुपचाप सन्ध्या का वह अनुपम सौन्दर्य देखने लगा।

पश्चिम-आकाश में सूरज डूब चुका था। उसकी लोहित वर्ण की परछाईं, क्षितिज के अन्तराल से छन कर, समुद्र के फेनिल जल पर पड़ कर नाच रही थी। चञ्चल लहरें उन्मत्त होकर लहरातीं और भयानक अट्टहास करती हुई तट से टकरा कर वापस लौट जाती थीं। तट से फेनिल जल के सङ्घर्ष होने पर उसके शीतल सीकर मेरे शरीर को अभिषिक्त कर रहे थे। दाहिने-बाएँ दूर तक हरियाली फैली हुई थी। सामने, नीचे अनन्त नील समुद्र था और ऊपर सीमाहीन नीलाकाश! मैं अपने को भूल कर यह दृश्य देखता रहा। सन्ध्या का अन्धकार धीरे-धीरे घनीभूत होता जा रहा था।

सहसा वही चिर-परिचित स्वर कहीं दूर से सुन पड़ा—'धीर समीरे यमुना तीरे वसति बने बनमाली!'

मैंने घूम कर देखा, दृष्टि-सीमा के समीप, एक ऊँची चट्टान पर पैर लटकाए वही वृद्ध बैठा हुआ है और तन्मय होकर गा रहा है। मैं किसी अलक्ष्य शक्ति के आकर्षण से खिंच कर उसी ओर बढ़ चला।

जब मैं उसके बहुत समीप पहुँच गया, तो उसने मुझे देखा। देखते ही—"दूर हटो! दूर हटो!!" चिल्लाता हुआ, वह वहाँ से भागने के लिए उठ खड़ा हुआ। किन्तु शीघ्रतापूर्वक आगे बढ़ कर मैंने उसका पथ रोक लिया। तब उसने भागने की चेष्टा छोड़ दी। चुपचाप, नतमस्तक होकर, मेरे सामने बैठा रहा।



श्रीमती जे० पी० श्रीवास्तव (कानपुर)

आप गवर्नमेण्ट द्वारा संयुक्त प्रान्तीय कौन्सिल की सदस्या चुनी गई हैं।

मैं था और वह वृद्ध पागल, और चाँदनी से धुली हुई आधी रात भी थी। वृद्ध ने मुझसे पूछा—बाबू जी! आप विवाहित हैं कि नहीं?

संक्षेप में ही मैंने उत्तर दिया—नहीं।

वह बोला—"तब मेरी बात आप क्यों पूछते हैं? आप क्या समझ सकेंगे? मत आग्रह कीजिए, जाने

दीजिए।" वह कुछ निराश हुआ, और विरक्त भी। उसने एक ऊँची साँस ली।

मैंने हठ किया—क्या अविवाहित होने से ही मेरी सारी योग्यता नष्ट हो गई ? आपकी बातों से तो मेरा कौतूहल और बढ़ रहा है।

एक बार उसने गम्भीर होकर मेरी ओर देखा, फिर आसमान की ओर। फिर उसने समुद्र के चञ्चल जल की ओर भी दृष्टि-निक्षेप किया। कहने लगा—जब आपका इतना आग्रह है तो सुन ही लीजिए। लेकिन इससे आपका कोई लाभ नहीं होगा, मेरा भी नहीं। केवल समय बरबाद होगा। लेकिन जब आपकी ऐसी ही इच्छा है, तो सुनिए।

वृद्ध कहने लगा—"मेरा नाम रसिकरञ्जन है, लेकिन अब तो मैं 'रसिक दादा' के नाम से ही अधिक मशहूर हूँ। मेरे माँ-बाप बचपन में ही मर गए थे, मुझे उनकी सूरत भी याद नहीं है। जब मैं कुछ बड़ा हुआ तो मैंने देखा, मेरे परिवार में एक विधवा बहिन के सिवा मेरा और कोई नहीं है। बहिन का नाम था पद्मा। वह मुझे बहुत मानती थी। माँ-बाप का अभाव मुझे कभी मालूम न हो सका था।

"बे माँ-बाप का होने के कारण मेरे आदर-यत्न की सीमा न थी। बड़ी बहिन के हृदय की समस्त कोमल भावनाओं और आदर-दुलार की छाया में मेरे चरित्र का गठन होने लगा। धीरे-धीरे मैं बढ़ चला।

"मेरे बाल्य-जीवन में कोई अलौकिकता तो अवश्य ही नहीं था, किन्तु यह मैं कह सकता हूँ कि बचपन मेरा जितने सुख में बीता है, उतना बहुत कम लोगों का बीता होगा। मैं जिस प्रकार खेलता, जो खाता, जो पहनता, कहीं-न-कहीं से बहिन उसीका प्रबन्ध कर देती थी। मुझे ऐसे कितने ही दिन याद हैं, जब बहिन ने भूखी रह कर मुझे गुड़ की मिठाई खिलाई थी। आह ! वह बड़ी स्नेहमयी बहिन थी बाबू जी ! मैंने उसे बड़ा दुःख दिया है, उसके प्रति बड़ा अत्याचार किया है !"

पुराने दिनों की याद से रसिक दादा की आँखों में जल भर आए। मालूम पड़ा जैसे उसका दिमाग़ गरम हो गया हो। सिर हिला कर वह चिल्ला उठा—"दूर हटो ! दूर हटो !!" कई क्षण तक वह उन्मत्त सा रहा। उसका सारा शरीर काँप रहा था। ओठ फड़क उठते थे और वह रह-रह कर चिल्ला उठता था—"दूर हटो ! दूर हटो !!"

कुछ देर बाद वह स्वस्थ हुआ। वह बहुत थका हुआ सा मालूम पड़ता था। हाँफते-हाँफते उसने कहा—"बाबू जी ! आप कुछ ख़्याल न कीजिएगा। मैं पागल हूँ न !" वह थोड़ा मुस्कराया ; किन्तु उसकी मुस्कुराहट में उल्लास के स्थान पर वेदना खेल रही थी। मैंने उसका भाव लक्ष्य किया। मन ने उसको व्यथा समझी। थोड़ा दुःख हुआ।

वह आगे कहने लगा—"बहिन के प्रति मेरे उत्पीड़न की सीमा न थी, किन्तु वह सब कुछ चुपचाप सहती थी, जैसे उन उत्पीड़नों के अन्तराल में भी उसके लिए कोई सुख छिपा हुआ हो। मैंने एक दिन भी उसके मन का अभाव, उसके हृदय की वेदना समझने की चेष्टा नहीं की, किन्तु वह सदा ही मेरे सुख-दुख की चिन्ता से अस्थिर रहा करती थी। एक दिन सन्ध्या को दिया-बत्ती जलने के समय मैं घर से निकला तो रात भर घर न लौटा। पद्मा मेरी चिन्ता में रात भर रोती रही। उसने अन्न-जल का स्पर्श भी नहीं किया। बेचारी मेरी कुछ खोज-ख़बर भी नहीं ले सकती थी, व्याकुल होने और छटपटाने के सिवा उसके लिए और गति ही क्या थी ? इधर पद्मा की तो यह हालत थी और उधर मैं रात भर क्या करता रहा, यह बात भी सुन लीजिए। घर से निकलते ही देखा, गाँव के बाहर रासलीला वाले आकर ठहरे हुए हैं। गैस-बत्तियों की रोशनी और रङ्ग-बिरङ्गे चमकदार कपड़े आँखों में चकाचौंध उत्पन्न कर रहे थे। उस चमक-दमक से मैं आकर्षित हुआ, प्रभावित भी। रात भर मैं वहीं तमाशा देखता रह गया। कृष्ण का बाँसुरी बजाना, गोपियों का उनके लिए पागल होकर वन-वन भटकना, कृष्ण का चीर-हरण, गोचारण, रासलीला आदि मुझे बहुत रुचीं। मैं मुग्ध होकर देखता रहा। अनेक तरह की बातें सोचता रहा। सवेरे जब घर पहुँचा, उस समय भी रात के दृश्यों का नशा मन से न उतरा था।

"मैंने बड़े उल्लास से पद्मा से रासलीला की बातें सुनाईं, अपनी ओर से समालोचना भी की, किन्तु उसे मेरी बातें अच्छी न लगीं। उदासीन होकर उसने चुप-चाप मेरी बातें सुन लीं ; फिर शासन करने के स्वर में

बोली—'ख़बरदार! अब फिर उस ओर न जाना। जानते नहीं, वे सब तुम्हारे जैसे लड़कों को बहका ले जाते हैं।'

"उस दिन पद्मा की बातों पर मुझे हँसी ही आई थी, लेकिन आज सोचता हूँ, उसके उस स्नेह-शासन में भावी की कैसी दारुण आशङ्का थी और वह कितनी सत्य उतरी। पद्मा की बात सुन कर मैं हँसा। बोला—दीदी, मुझे तुम कब तक दूध-पीता बच्चा समझती रहोगी?

"उसने कहा—'अरे तू बूढ़ा हो जायगा, तब भी मेरे लिए बच्चा ही रहेगा।' पद्मा की बातों में बहिन के हृदय की सच्ची ममता थी और स्नेह-वत्सलता। मैं अज्ञान था, उस समय उन भावों को समझ नहीं सका। मन ही मन बहिन के अज्ञान और मोह पर हँसा।

"दिन मेरा बड़ी बेचैनी में कटा। सन्ध्या होते ही पद्मा ने मुझे कई बहुत ज़रूरी काम सौंप दिए। उसका अभिप्राय था कि मैं किसी प्रकार रासलीला देखने न जा सकूँ। थोड़ी देर तक, धैर्यपूर्वक मैंने कुछ काम किया भी, लेकिन रास-मण्डप के दरवाज़े पर जब शहनाई बज उठी और उसके बाद कृष्ण की मधुर मुरली का स्वर हवा में गूँजने लगा, तो फिर मुझसे बैठा न रहा गया। सारा काम-धन्धा छोड़ कर मैं दरवाज़े के बाहर हो गया। पद्मा चिल्ला-चिल्ला कर मुझे पुकारती ही रह गई।

"उस दिन भी मेरी सारी रात वहीं बीती। आधी रात की निर्जनता में जब कृष्ण ने अपनी मोहिनी मुरली बजाई और उसका मादक राग सुन कर गोपियाँ पागल होकर इधर-उधर फिरने लगीं, तो मुझे मालूम पड़ा, मानो मेरी चेतना खो गई हो। मैं आत्म-विस्मृत होकर उस मुरली और मुरली वाले की बात सोचता रहा।

"मुरली बजाने वाले के प्रति मेरे मन में एक आकर्षण उत्पन्न हुआ। मैंने सोचा, यदि एक बार उससे मेरी मुलाक़ात हो सकती। मैं उससे बातचीत करता, एक बार उसकी मुरली का राग सुनता, तो एक बार उससे प्रार्थना करता कि अपनी ही तरह वह मुझे भी बाँसुरी बजाना सिखा दे। लेकिन यह कैसे सम्भव था? मैं तो शायद वहाँ तक पहुँच भी न सकता था।

"दूसरे दिन घर आते ही मैंने बहिन से कहा कि मुझे एक बाँसुरी मँगा दे। मगर उसके पास पैसे न थे। पैसे होते भी तो शायद वह बाँसुरी के लिए मुझे न देती। वहाँ से निराश होकर मैंने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई, अब मुझे बाँसुरी कहाँ मिले? बहिन के सिवा और किसी को आज तक मैंने जाना नहीं था। वही बहिन आज मेरी एक मामूली इच्छा को कुचल देना चाहती है। मैंने कातर आँखों से एक बार उसकी ओर देखा।

"मानव-प्रकृति में दबाव पाकर उमड़ने की एक स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। बहिन ने जब मेरी बाँसुरी



हर हाइनेस ट्रावनकोर की छोटी महारानी साहिबा, जो आगामी अखिल भारतवर्षीय महिला-कॉन्फ्रेन्स की प्रेज़िडेण्ट चुनी गई हैं।

के लिए कोई प्रबन्ध न किया, तो उसे पाने के लिए मैं और विह्वल हो उठा। अन्त में कोई उपाय न देख कर मैं फिर पद्मा के पास गया। आँखों में आँसू भर कर, रुआँसा होकर, बोला—'दीदी, मुझे एक बाँसुरी मँगा दो।'

"मेरा रुआँसा मुँह देख कर शायद पन्ना कुछ पिघली। बोली—'तू कब तक बच्चा बना रहेगा रे ? मेरी आफ़त कुछ समझता नहीं। मैं कहाँ से लाकर तुझे बाँसुरी दे दूँ ?'

"मैंने कहा—'तुम इन्तज़ाम कर सकती हो दीदी ? मैंने तुमसे और भी कभी कुछ माँगा है ? और उस दिन तुम्हीं ने तो कहा था कि तू बुड्ढा हो जायगा, तब भी मेरे लिए बच्चा ही बना रहेगा ?'

"कह कर मैंने पन्ना की ओर देखा। मन ही मन मैं इस बात से ख़ुश हो रहा था कि पन्ना को मैंने उसीके अस्त्र से पराजित किया है। मेरा एक और भी विश्वास था और वह यह कि पन्ना सर्व-शक्तिमान है। इच्छा होते ही वह सब कुछ कर सकती है। इसीसे मैंने कहा था, तुम इन्तज़ाम कर सकती हो।

"पन्ना ने टोले-मुहल्ले में जाकर, आख़िर कुछ पैसों का प्रबन्ध कर ही लिया और शाम होने के पहले मेरी बाँसुरी भी आ गई। अब मैं बड़े चक्कर में पड़ा। बाँसुरी तो आ गई, लेकिन उसे अब बजावें कैसे ? बजाना तो आता नहीं था, बेसुरी बाँसुरी बजाने के ख़्याल से भी शर्म मालूम पड़ती थी। अब सोचा कि मुझे केवल बाँसुरी की ही नहीं, उसके साथ एक उस्ताद की भी ज़रूरत है। अब उस्ताद कहाँ मिले ? एक बार ध्यान में आया कि कृष्ण का पार्ट करने वाला वह लड़का अगर अपनी ही तरह मुझे बाँसुरी बजाना सिखा देता—लेकिन वह भला मुझे क्यों सिखाने लगा ? यही सारी बातें सोचता हुआ, बाँसुरी लेकर, मैं घर से बाहर निकल पड़ा।

"गाँव के अन्तिम छोर के समीप एक छोटी किन्तु सुन्दर नदी बहती थी। मैं उस दिन उसी ओर चल पड़ा।

"हलके अन्धकार की धुँधली चादर धरती पर बिछ गई थी। मैं नदी के किनारे घास पर जाकर बैठ गया।

"एक बार मैंने चारों ओर देखा। वहाँ कोई न था। बाँसुरी के छेदों पर उँगलियाँ रख कर मैंने उसमें फूँक मारी। एक हलकी, मधुर, किन्तु बेसुरी आवाज़ निकल कर कानों में झनझना उठी। मुझे बड़ी ग्लानि हुई। यही मेरी बाँसुरी का राग है! एक बार मैंने विवश नयनों से चारों ओर देखा, किन्तु वहाँ मेरा कौन था। मैंने सोचा—अब ?

"मैंने दो-एक बार और भी कोशिश की, लेकिन बजा न सका। आख़िर, हार कर मैं गाने लगा। यद्यपि गाने की मुझे कोई शिक्षा न दी गई थी और मैं गाता भी न था, किन्तु फिर भी मेरा गला सुरीला था और साधारणतः मैं अच्छा गा लेता था। उस दिन, सन्ध्या के अन्धकार में अपने को छिपा कर, मैंने जी खोल कर गाया। मेरे गीत की स्वर-लहरी वायु-तरङ्गों के साथ मिल कर काँपने लगी।

"मैं तो तन्मय होकर गा रहा था और वहीं पास ही छिप कर कोई मेरा गीत सुन रहा था। यह बात मुझे तब मालूम हुई, जब गीत समाप्त होने पर वह मेरे सामने आ खड़ा हुआ और मेरा परिचय पूछने लगा। सन्ध्या के धुँधले आलोक में मैं ठीक-ठीक उसे पहिचान न सका। लेकिन पीछे मालूम हुआ, वह रासलीला वाला वही कृष्ण है, जिससे मिलने के लिए मैं मन ही मन तरस रहा था। वह मुझसे अचानक आ मिला। थोड़ी ही देर में हम दोनों ने अच्छा परिचय कर लिया। उसने मुझे बाँसुरी बजा कर सुनाया, मैंने उसे गीत गाकर। फिर इधर-उधर की न जाने कितनी बातें हुईं। उसके बाद हम दोनों साथ ही साथ रास-मण्डप में गए। उस दिन मुझे स्टेज के बिलकुल नीचे बैठने की जगह मिली।

"इसी तरह कई दिन बीत गए। रासलीला की कम्पनी वहाँ से जाने की तैयारी कर रही थी। एक दिन कृष्ण मेरे पास आया। बोला—'चलो, तुमसे एक बात कहेंगे।'

"मैं उसके साथ हो लिया। एकान्त में जाकर उसने मुझसे पूछा—'हमारी कम्पनी में तुम काम करोगे।'

"मैं क्षण भर, उसका प्रश्न सुन कर, सोचता रहा। वह मुझे प्रलोभन देने लगा—'कितना मान-ऐश्वर्य मिलेगा, ख्याति होगी, लोग मेरी ही तरह तुमसे मिलने के लिए तरसा करेंगे! यह सुयोग क्या योंही छोड़ देने की बात है ?'

"मैंने सोचा, यह ठीक ही कहता है—यह चमक-दमक, यह ठाट-बाट, यह अतुल सम्मान क्या सहज में ही मिलते हैं ? मुझे धन और ख्याति की लालच ने लुभा लिया। मैंने स्वीकृति दे दी।

"उसने कहा—'चलो मैनेजर से तुम्हारी मुलाक़ात करा दें।' मैं उसके साथ मैनेजर के पास गया। उन्होंने

हर तरह से मेरी परीक्षा ली, मेरा गाना सुना, तीक्ष्ण बुद्धि देखी, सौन्दर्य देखा और मुझे पास कर दिया। उस समय, भविष्य की ओर आँख उठा कर देखने का मुझे अवकाश न था।

"मैं कम्पनी में भरती तो हो गया, लेकिन बहिन से आज्ञा कैसे मिले? मैंने सोचा—'मैं यह बात उस पर प्रकट ही न होने दूँगा।' इसी के अनुसार उस स्नेहमयी, ममतामयी बहिन को अकेली छोड़ कर एक दिन मैंने कम्पनी वालों के साथ वह नगर छोड़ दिया।"

रसिक दादा चुप हो गया। उसकी आँखें भर आईं, गला रुँध गया। एक बार वह चिल्ला उठा—"दूर हटो! दूर हटो!!"

प्रकृतिस्थ होकर रसिक दादा ने फिर कहना प्रारम्भ किया—"बाबू जी! यहाँ से मेरी जीवन-कथा का दूसरा अध्याय प्रारम्भ होता है। उस दिन सामान बाँध-छान कर कम्पनी वालों ने प्रस्थान किया। मैं उनके साथ ही था।

"रेलगाड़ी जब स्टेशन छोड़ चुकी तो मेरा नशा जैसे टूट गया। मुझे पद्मा की याद आई। हाय, वह कैसे रहेगी? क्या सोचे-समझेगी? मेरी बेकली बढ़ने लगी। अकेले में जाकर मैं फूट-फूट कर रोया।

"मेरा रोना नगेन—कृष्ण का पार्ट करने वाले लड़के—से छिप न सका। वह मेरे पास आया। अपने हाथ में मेरा हाथ लेकर कहने लगा—'रसिक, तुम पागल हुए हो? घर का बड़ा मोह लगता है? छिः, इतने बच्चे हो? इसमें रोने की क्या बात है?'

"मैं कुछ झेंपा। अपना रोना दूसरे पर प्रकट न होने देना चाहता था। आँखें पोंछ कर मैंने दूसरी बातें शुरू कर दीं। वह बात जहाँ की तहाँ दब गई।

रसिक दादा ने कहा—"इसके बाद की बातों का विस्तार करके मैं आपका समय नष्ट न करूँगा। दो वर्ष बीत गए। इस बीच में मैंने अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली थी और उसके साथ ही साथ धन और ख्याति भी। बाँसुरी बजाने में भी मैंने अच्छी दक्षता प्राप्त की थी और गाने में तो मेरा मुक़ाबला करने वाले बहुत कम ही लोग उस अञ्चल में थे।

"नाटक-कम्पनी से संसर्ग होने के पहले तक जैसे मैं दुनिया की और बहुत सी बातों से अनभिज्ञ था, उसी प्रकार स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध और प्रेम के अभिनय का भी मुझे कोई ज्ञान न था। कम्पनी में आकर मैंने दुनिया देखी, उसे समझने की चेष्टा की और अनेक अंशों में, अपने ढङ्ग से उसे समझा भी।

"पैसा मिलने से ही उसके व्यय का उपाय सोचना पड़ता है, और यह बहुत मुश्किल नहीं है। मुझे भी



श्रीमती चिन्नाम्मल

आप बङ्गलोर के डॉक्टर नानजप्पा की धर्मपत्नी हैं, जो म्युनिसिपल-कमिश्नर नियुक्त हुई हैं।

पैसे मिलने लगे थे और उन्हें ख़र्च करने का उपाय सोचना था। इस सम्बन्ध में मैं मूर्ख ही सा था। अपने साथियों की देखा-देखी जो कुछ कर सकता था, वह तो करता ही था, लेकिन उतने से तो सारे रुपए ख़र्च न हो सकते थे। इसलिए मैं कोई नवीन उपाय सोचने लगा।

"सोचने से ही नवीनता का आविष्कार होता है। मैंने एक नवीन सहयोगी ढूँढ़ निकाला। एक दिन वे

बोतल में लाल रङ्ग का एक पेय पदार्थ ले आए। उसकी बड़ी तारीफ़ की। स्वयं पिया और मुझे भी पिलाया। पीछे मालूम हुआ कि वह शराब थी।

"ज्यों-ज्यों उससे परिचय बढ़ता गया, त्यों ही त्यों मालूम होने लगा कि सचमुच ही वह अलभ्य पदार्थ है। मैं उसके प्रति विशेष आसक्त हुआ। और इस प्रकार रुपया ख़र्च करने का एक अच्छा साधन मेरे हाथ आ गया। रुपए पानी की तरह ख़र्च होने लगे, यार-दोस्तों का जमघट बढ़ने लगा। हमारे जीवन में आनन्द और आमोद की स्रोतस्विनी प्रवाहित हो चली।

"इसके कुछ ही दिनों के बाद हमारी कम्पनी में एक किशोरी भरती हुई। यह पहली बालिका थी, जो हम लोगों के बीच आई थी। इसके पहले स्त्रियों का पार्ट भी पुरुष ही करते थे। बालिका का नाम था पुष्पा। आते ही मेरी दृष्टि उस पर पड़ी। उसने भी मुझे देखा। उसे मेरे ही साथ पार्ट करना था। इस सिलसिले में उससे शीघ्र ही मेरा घनिष्ट परिचय हो गया।

"परिचय ने पहले घनिष्ठता का रूप धारण किया और फिर उस घनिष्ठता ने एक नवीन आकार धारण कर लिया। मन की इस भावना का परिचय मैं उस समय नहीं पा सका था। पुष्पा में एक प्रकार का आकर्षण था, जिससे वह बरबस मुझे अपनी ओर खींच लेती थी। उससे मिलने, बोलने, उसके साथ बैठने-उठने और सदा ही उसे देखते रहने में एक प्रकार का सुख, एक प्रकार की तृप्ति और एक प्रकार के आनन्द का अनुभव होता था। ऐसा क्यों होता था, यह कहना मेरे लिए मुश्किल है, लेकिन यह बात सच्ची है कि इस प्रकार की एक धुँधली आकांक्षा सदा ही मेरे मन में जाग्रत रहा करती थी। पीछे मालूम हुआ कि वह प्रेम था।

"प्रेम के प्रारम्भिक सपने कितने मधुर होते हैं! हम दोनों ही उन्हीं सपनों के लोक में विचरण कर रहे थे, एक-दूसरे को भूल कर। यह बात कभी ध्यान में भी न आती थी कि यह सपने कभी टूट जायँगे, इस मदिरा का नशा उतर जायगा। पर होनहार की बात कौन जानता था?

"हम लोगों के प्रणय की बात छिपी न रह सकी। छिपाने की हमें ज़रूरत भी न जान पड़ी। इस प्रणय-सम्बन्ध ने एक बार कम्पनी के सभी अभिनेताओं में खलबली मचा दी। किसी ने मेरे भाग्य की सराहना की, कोई उससे ईर्ष्या करने लगा, पर इससे हमारे प्रेम की गति में कोई अन्तराय न आ सका। जीवन की घड़ियाँ अपनी स्वाभाविक गति से ही बीतती जा रही थीं।

"नगेन का व्यवहार मेरे प्रति अब पहले ही जैसा न रह गया था। उसके आचरण से और बात-व्यवहार से मालूम पड़ता था, जैसे वह स्वयं भी पुष्पा पर आसक्त है, पर प्रकट रूप से उसने कभी यह बात कही न थी, न मुझसे और न पुष्पा से ही। अनेक बार वह पुष्पा से एकान्त में मिलने और कुछ बातें कहने की चेष्टा किया करता था, किन्तु पुष्पा जान-बूझ कर उसे कभी वैसा मौक़ा ही न देती थी।

"इधर शराब का नशा था, उधर प्रेम का। इन दो-दो नशों के बीच मैं पागल हो रहा था। धीरे-धीरे मेरी ऐक्टिङ्ग ख़राब होने लगी। लोग मेरे अभिनय की समालोचना करने लगे, लेकिन मैंने इसकी परवाह न की। मैंने अच्छी ख्याति प्राप्त कर ली थी। अपनी अभिनय-कुशलता पर मुझे अभिमान हो गया था। इसीसे मैंने समालोचनाओं पर ध्यान न दिया। पर इसका परिणाम मेरे लिए हितकर न हो सका। शीघ्र ही मुझे कम्पनी की नौकरी छोड़ कर अलग हो जाना पड़ा।

"अलग तो मैं हो गया, लेकिन अब पुष्पा से मिलना मुश्किल हो उठा। कम्पनी के मैनेजर ने मुझे खुले तौर से उससे मिलने की मुमानियत कर दी। इधर आमदनी रुक जाने के कारण शराब की भी कमी होने लगी। नशा उतरने लगा। संसार जैसा था, वह मेरी आँखों में ठीक वैसा ही दीख पड़ने लगा।

"लेकिन आदत तो इतनी जल्दी छूटती नहीं। वह छुड़ाने से छूटती है और तब, जब उसके लिए दृढ़ सङ्कल्प हो और साथ ही साथ उसे छोड़ देने की तीव्र इच्छा और उद्योग भी। लेकिन यहाँ तो ऐसी कोई बात थी नहीं। फलतः नशा न पाकर दिनोंदिन मेरी हालत ख़राब होने लगी।"

रसिक दादा कहने लगा—"बाबू जी, मेरे पतन का प्रारम्भ यहीं से होता है। यद्यपि दुनिया की नज़रों में मैं इसके बहुत पहले ही गिर चुका था, लेकिन मुझे अपने पतन का अनुभव यहीं से होने लगा। मैं पुष्पा को जितना चाहता था, वह उससे कम मुझे न चाहती

थी। मैं जब कम्पनी छोड़ कर चला गया तो उसे बड़ा दुःख हुआ। अनेक बार उसने मुझसे कहा था कि शराब के कारण अपनी ज़िन्दगी क्यों बरबाद करते हो, पर उस समय उसकी बातों पर ध्यान देने का मुझे अवकाश न था। इस प्रकार जब कुछ दिनों तक हम दोनों मिल-जुल न सके तो पुष्पा का मन विकल हो उठा। उसने एक दिन मैनेजर से साफ़-साफ़ कह दिया कि यदि आप मेरे व्यक्तिगत जीवन में इस प्रकार दख़ल देने की चेष्टा करेंगे तो मुझे आपकी कम्पनी छोड़ देने के लिए विवश होना पड़ेगा। यह एक ऐसी धमकी थी, जो मैनेजर साहब को डरा देने के लिए बहुत थी। पुष्पा के कारण उन दिनों कम्पनी का मान, इज़्ज़त और आमदनी बहुत बढ़ गई थी। कम्पनी से उसका अलग हो जाना उन्हें अभीष्ट न था। अतः उन्होंने वादा किया कि वे पुष्पा के व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध में कुछ न बोलेंगे। उसके बाद ही, मैं फिर पुष्पा से मिलने-जुलने लगा।

"कुछ दिनों तक यही क्रम चलता रहा। अनेक बार मैंने लक्ष्य किया है, प्रेम में बड़ी सङ्कीर्णता होती है। हम जिसे चाहते हैं, हमारी इच्छा रहती है, उसे और कोई न चाहे। हम उसके प्यार में किसी को हिस्सेदार होने देना नहीं चाहते। हम चाहते हैं कि उसके हृदय में जितना प्यार-आदर और माया-ममता हो, वह सब हम ही पर निछावर कर दे। यह सङ्कीर्णता नहीं तो और क्या है? लेकिन सबके हृदय में यही भाव होता है, मेरे हृदय में भी था। मैं चाहता था कि पुष्पा को न तो दूसरा कोई प्यार करे और न पुष्पा ही किसी दूसरे को। किन्तु पुष्पा की ओर से ऐसा सन्देह करने का मुझे कभी मौक़ा ही न मिला था। वह प्रेम के अभिनय में बिलकुल अनाड़ी थी। उसने अपने हृदय का सर्वस्व मुझे सौंप दिया था।

"एक दिन एक ऐसी घटना हुई जिसने मेरे जीवन की धारा ही पलट दी। मैं सन्ध्या को पार्क में घूमने गया था। इच्छा थी कि पुष्पा को भी साथ ले जाऊँ, मगर वह मिली नहीं। पहले ही कहीं चली गई थी।

"पार्क में आकर देखा, पुष्पा एक पुरुष के हाथ में हाथ डाल कर रविशों पर घूम रही है। हाँ, वह पुष्पा ही तो थी। और वह पुरुष? बिजली की चमचमाती हुई रोशनी में देख कर मैंने पहचाना, वह तो नगेन था। देखते ही, मेरे शरीर में जैसे आग लग गई। मैं सिर से पैर तक लहक उठा। पुष्पा के विश्वासघात और उसकी क्षुद्रता पर मन ही मन मुझे बड़ी ग्लानि हुई। क्षण भर में मैं प्रतिहिंसा से पागल हो उठा। एक नुकीला पत्थर उठा कर मैंने उन दोनों को लक्ष्य कर चलाया और फिर बेतहाशा वहाँ से भाग चला।

"उस समय मैं पागल हो रहा था, लेकिन अब सोचता हूँ तो यह बात भी समझ में नहीं आती कि



श्रीमती वेदवोयिनी रथम्मा

आप आङ्गोल (मद्रास) को म्युनिसिपैलिटी की सदस्या मनोनीत की गई हैं।

जिस पुष्पा को मैं इतना प्यार करता था, जिसके प्रति मेरे मन में इतना स्नेह और अनुराग था, उसे राक्षस की तरह मैंने पत्थर से मारा कैसे? कई दिन बीत गए। मैं छिपा-छिपा फिरता था। पुष्पा से मिलने का साहस न होता। न जाने अब तक परिस्थिति ने क्या रूप धारण किया होगा!

"एक दिन सुना, पुष्पा बीमार है। अस्पताल में पड़ी हुई है। यह भी सुना कि उसके सिर में पत्थर से साङ्घा-

तिक चोट लगी है। आक्रमणकारी का पता नहीं है। पुलिस खोज में है। एक बार इच्छा हुई, कोतवाली में जाकर आत्म-समर्पण कर दूँ। कह दूँ कि मैंने ही अपनी पुष्पा को मारा है। दूसरी बार यह भी इच्छा हुई कि अस्पताल में जाकर एक बार पुष्पा को देख आऊँ। पर मैं कुछ भी न कर सका। इच्छाएँ मन में उठतीं और फिर वहीं विलीन हो जाती थीं। उन्हें कार्यरूप में परिणत करने का साहस न होता था। मेरे हृदय में न इतना बल था, न चरित्र में इतनी दृढ़ता। शराब ने मेरा सर्वस्व मुझसे छीन लिया था।

"इसी बीच एक दिन मुझे पुष्पा का एक पत्र मिला। वह अभी तक मेरे पास सुरक्षित है। मैं उसे आपको सुनाऊँगा।"

रसिक दादा ने कपड़े की अपनी छोटी पोटली निकाली। खोल कर अनेक कपड़ों के तह में यत्न से रक्खा हुआ एक पत्र निकाला। फिर उसे पढ़ कर सुनाने लगा :—

"हत्याकारी,

यह बात नहीं है कि मैं तुम्हें पहचान न सकी होऊँ, लेकिन मैं लोगों पर तुम्हें प्रकट नहीं करना चाहती। अब मैं मृत्यु के बहुत समीप हूँ। इसीसे तुम्हारी बार-बार याद आ रही है। तुम्हें छोड़ कर जाने का जी नहीं होता, लेकिन जाती हूँ। अपनी एक माला तुम्हें स्मृति-चिन्ह दिए जाती हूँ। इसकी रक्षा करना।

मुझे एक ही बात कहनी है और वह यह कि तुमने मुझे समझने में भूल की है। मैंने तुम्हारे सिवा और किसी को कभी प्यार नहीं किया। शायद कर सकती ही नहीं थी। नगेन मेरा भाई है। हाँ, अनेक बार वह मेरी ओर आसक्त हुआ ज़रूर था, किन्तु मैंने उसे प्रकृत मार्ग बता दिया। यदि एक बार तुमने मुझसे बातें की होतीं तो जीवन में यह महान विप्लव न हो सकता। कौन कह सकता है, मुझे मार कर तुम सुखी हो? मुझे क्षमा करना। विदा होती हूँ।

जो सदा ही तुम्हारी रही है,

पुष्पा"

पत्र पढ़ कर रसिक रोया। उसका उन्माद उमड़ उड़ा। झटपट पोटली सँभाल कर वह उठ खड़ा हुआ और भागने को उद्यत हुआ। चिल्ला उठा—"दूर हटो, दूर हटो!" मैंने बड़ी मुश्किल से हाथ पकड़ कर उसे रोका, शान्त किया, तब वह फिर अपनी कहानी कहने लगा।

रसिक दादा ने कहा—"पुष्पा का पत्र पढ़ने पर मेरे मन की जो दशा हुई, मैं उसका वर्णन नहीं कर सकता। करना चाहता भी नहीं। मैं दौड़ा-दौड़ा जिस समय अस्पताल के दरवाज़े पर पहुँचा, उस समय लोग पुष्पा का शव लेकर बाहर निकल रहे थे। मुझे पागल की तरह दौड़ा आता देख कर सब लोग विस्मित हुए, दुखी भी। कहने लगे—'अब तक तुम कहाँ थे? पुष्पा सारी रात तुम्हें याद करते-करते सबेरे के पहर मरी है।' मैं क्या उत्तर देता? मैंने अपना सिर पीट लिया। फिर शव के साथ भी न जा सका। दौड़ा-दौड़ा कोतवाली पहुँचा। वहाँ मैंने सब बयान किया। पुष्पा का पत्र भी दिखलाया और आत्म-समर्पण कर दिया। न्यायालय में मेरा विचार हुआ और मुझे पाँच वर्ष की सज़ा भी हो गई।

"उस समय मेरे हृदय का आकाश सूना था। शराब मैंने कई दिनों से छुई तक न थी, पुष्पा मुझे छोड़ ही चुकी थी। अब मेरे पास क्या रहा? निरवलम्ब होकर मैंने चारों ओर देखा। मुझे पद्मा की याद आई, अपनी स्नेहमयी बहिन की। लेकिन मैं क़ैदी था। उसके यहाँ कैसे जाता?

"जेल के पाँच बरस भी बीत चले। लेकिन कैसे बीते, इसका लेखा न पूछिए। जेल मेरे पतन की दूसरी सीढ़ी थी। वहाँ मैंने झूठ बोलना, चोरी करना, जुआ खेलना आदि कई नवीन गुण सीखे। बड़ी दुर्दशा हुई। आख़िर, मनुष्य से पशु बन कर एक दिन जेल से बाहर निकला।

"बाहर आकर यह मैं निश्चय ही न कर सका कि अब किधर जाऊँ? संसार में मेरे लिए कहीं जगह न थी। इतने बड़े-बड़े राजपथ थे, छोटी-सकरी गलियाँ थीं, लम्बे-चौड़े मैदान थे, लेकिन उनमें से कोई भी मेरा स्वागत करने के लिए तैयार न था। मैं किधर जाऊँ! बहुत देर तक जेल के फाटक पर खड़ा-खड़ा मैं यही सोचता रहा।

"आख़िर बहिन के सिवा मुझे और कोई ऐसा न दीख पड़ा जिसके पास मैं जाऊँ। सारी लज्जा और ग्लानि का तिरस्कार करके मैंने वहीं के लिए प्रस्थान किया।

"तीसरे दिन अपने गाँव पहुँचा। वहाँ जो कुछ देखा, उससे मेरे विस्मय और दुःख की सीमा न रही। जहाँ पर मेरा टूटा-फूटा कच्चा मकान था, वहाँ एक विशाल अट्टालिका बनी हुई थी। मैंने समझा, निश्चय ही यह मेरी बहिन का प्रासाद नहीं है। तब वह क्या हुई? कहाँ गई? क्या पन्ना अब नहीं है? मेरा हृदय हाहाकार कर उठा। मैं किसी से कुछ पूछ न सका। उलटे पैरों भागता हुआ गाँव के बाहर निकल आया। गाँव के बाहर, सड़क के किनारे, एक भिखारिन पड़ी हुई थी। उसे देख कर घृणा होती थी, किन्तु मैंने आश्चर्य से पहिचाना, वह पन्ना है। मैं दौड़ कर उसके पास गया। उस समय उसकी बुरी दशा थी। दम टूट रहा था। वह कुछ ही घड़ियों की मेहमान थी। मैं उसके समीप जाकर चिल्ला उठा—'बहिन! पन्ना!' पर उसने कुछ उत्तर न दिया। आँखें फाड़-फाड़ कर मेरी ओर देखने लगी। फिर उसकी आँखें न मुँदीं। वह सदा के लिए खुली रह गईं। मैंने जीवन में अन्तिम बार जी खोल कर रोया।

"पन्ना का शव ले जाकर मैंने फूँक दिया। चिता धू-धू करके लहक उठी। उस चिता के साथ ही मेरे हृदय की समस्त कोमल भावनाएँ, समस्त सदिच्छाएँ, समस्त मनोवृत्तियाँ जल कर ख़ाक हो गईं। यह देखिए, मैं उनकी ख़ाक अब भी बाँधे हुए हूँ।"

रसिक ने पोटली के एक बँधे हुए कोने की ओर इशारा किया। फिर कहने लगा—"बाबू जी! तभी से मैं पागल हूँ। अब न मेरे मन में राग-द्वेष है, न इच्छा-आकांक्षा है और न सुख-दुःख की अनुभूति ही है। मन निर्लिप्त हो रहा है, शरीर चेष्टा-रहित हो गया है और वासनाएँ लुप्त हो गई हैं—लेकिन, फिर भी मैं पागल हूँ!! लड़के मुझे चिढ़ाते हैं, ढेला मारते हैं, मेरे पीछे दौड़ते हैं; मगर मुझे कुछ नहीं मालूम होता।

"पागल होने के बाद से, एकान्त में बैठ कर, मैंने अनेक बार अपने अतीत-जीवन पर दृष्टि दौड़ाई है। सोचा है कि किस कारण से मेरा जीवन इतनी व्यर्थता से भर गया। इसका मुझे एक ही उत्तर आज तक मिला है—अभाव और दुर्बलताएँ मनुष्य को पतन की ओर अग्रसर करती हैं और एक बार का पतन सर्वनाश का मूल है।"

रसिक दादा की कहानी समाप्त हो गई थी। मैं समाधिमग्न-सा होकर सोचने लगा कि यह कैसा अद्भुत पागल है!! ओह!!!

क्षण भर में दूर से एक करुण-कर्कश आवाज़ सुन पड़ी—"दूर हटो! दूर हटो!" मैंने चौंक कर देखा—रसिक न जाने कब वहाँ से उठ कर भाग गया है। उसकी "दूर हटो! दूर हटो!" की आवाज़ दूर से वायु-मण्डल में गूँज रही है।



श्रीमती एफ़० राजमानिकम्

आप सालेम (मद्रास) के म्युनिसिपैलिटी की कौन्सिलर मनोनीत की गई हैं।

उस समय रात आधी से अधिक बीत गई थी। मध्य आकाश में चन्द्रमा खिलखिला रहे थे। समुद्र की भयावनी लहरें गर्जन कर रही थीं। प्रकृति निस्तब्ध थी। रसिक दादा की "दूर हटो! दूर हटो!" की आवाज़ किसी टूटते हुए सङ्गीत की भाँति, धीरे-धीरे अस्पष्ट होती जा रही थी।



राष्ट्र का नव-निर्माण

[श्री० चतुरसेन जी शास्त्री]



मैं सुधारक नहीं, क्रान्तिवादी हूँ। मैं भारतीय राष्ट्र को सुधारना नहीं—उसे विध्वंस करके फिर से उसका नव-निर्माण किया चाहता हूँ। भारतीय राष्ट्र में जितना विरोध, जितने खण्ड, जितने दोष, पाप और मैल भरे हैं, उन्हें देखते कोई भी बुद्धिमान इसके सुधार की आशा नहीं कर सकता। स्वामी दयानन्द, राजा राममोहन राय और अनेक आधुनिक महापुरुषों ने इस उन्नीसवीं शताब्दी में, और इससे प्रथम दूर तक के इतिहास के सिलसिले में, प्रबल सुधारवाद का आयोजन किया; परन्तु फल यही हुआ कि एक नया खण्ड, नया सम्प्रदाय बन गया और दिमाग़ी ग़ुलामी के वातावरण ने उसमें दुर्बलताएँ ला दीं! आर्य-समाज और ब्रह्म-समाज, दादू-पन्थ और नानक-पन्थ सभी की भावना राष्ट्र में सुधार और नवजीवन उत्पन्न करने की रही, परन्तु ये सभी एक-एक नए पन्थ बन गए और इनमें वे दोष आ ही गए, जो उन कुसंस्कारी पुरुषों के संसर्ग से आने अनिवार्य थे, जो क्षणिक उत्तेजना से इन दलों में मिले तो, पर वे अपने उन पुराने कुसंस्कारों के ग़ुलाम थे। वे अपनी पुरानी बिरादरियों में, पुराने समाज में वैसे ही मिले रहे। इन सम्प्रदायों में एक और सम्प्रदाय की वृद्धि करना हो तो कोई नए सुधार की योजना रक्खे! परन्तु वह योजना चाहे जितनी कट्टर होगी—समाज का कल्याण न कर सकेगी। यह तो हम प्रत्यक्ष देखते हैं, एक तरफ़ हिन्दू गो-मांस के नाम से काँपते और गोवध के विरुद्ध आपे से बाहर हो जाते हैं, उधर ईसाई, मुसलमान खुल्लमखुल्ला गो-मांस खाते हैं। मुसलमान सुअर के नाम से हद दर्जे तक चिढ़ते हैं, पर सिक्ख खुल्लमखुल्ला सुअर खाते हैं! ईसाई सुअर और गो-मांस दोनों ही से परहेज़ नहीं करते। इस विषय की कट्टरता सैकड़ों वर्ष तक हिन्दू-मुसलमानों के निकट रहने पर भी नहीं मिटी! और हज़ारों वर्ष साथ रहने पर भी कभी न हिन्दू गो-मांस के प्रति उदासीन होंगे, न मुसलमान ही! इसी प्रकार मूर्ति-पूजा के विरोधी मुसलमानों ने जितना इसका विरोध किया, उतनी कट्टरता उत्पन्न हुई! हिन्दू-सम्प्रदाय में भी दादू, नानक, आर्य आदि मत मूर्तिपूजा के विरोधी हैं, परन्तु उनका परस्पर कुछ भी प्रभाव नहीं। सुधारक, हठधर्मी पर प्रभाव नहीं जमा सकता! ईसाइयों और मुसलमानों ने हठधर्मियों पर बल-प्रयोग किया। वह एक क्रान्ति थी—सुधार न था। फल यह हुआ कि ये दोनों सम्प्रदाय संसार में व्याप्त हो गए। बौद्ध-धर्म का प्रचार, यद्यपि प्रकट में क्रान्तिकर नहीं समझा जाता, पर वास्तव में उसकी जड़ में मार-काट, अत्याचार और क्रान्ति कम न थी!

यह तो हम अच्छी तरह समझ गए हैं कि वर्तमान हिन्दू-धर्म दिमाग़ी ग़ुलामी का एक जीर्ण-शीर्ण अस्तित्व है, उसमें अपनी रक्षा की रत्ती भर सामर्थ्य नहीं। आज राजनैतिक आन्दोलन ने जो शक्ति हिन्दू-समाज को दी है—वह बात ही दूसरी है। उस शक्ति के केन्द्र हिन्दू-धर्म की दृष्टि से तो प्रायः क्रोध और तिरस्कार के ही पात्र हैं! हर हालत में यदि हिन्दू-समाज जिसे धर्म या कर्त्तव्य के नाम से मानता है, यदि उसकी पूरी-पूरी परवा की जाय तो, जो राष्ट्रीय प्रगति देश में पैदा हुई है, वह वहीं रुक जाय! क्या वह हिन्दू-मुस्लिम और अल्प-संख्यक भारतीय जातियों के उस निकट-सम्बन्ध को सहन कर सकता है, जो इस आन्दोलन ने पैदा कर दिया है और जो दिन-दिन निकट होता जा रहा है! क्या वह स्त्रियों के उस साहस की प्रशंसा कर सकता है, जो वे आश्चर्यजनक रीति से किसी अज्ञात, दुर्ज्ञेय शक्ति के बल पर दिखा रही हैं? वह तो समाज-कल्याण से दूर एक ऐसी भावना में ओत-प्रोत है, जिसकी सारी ही शक्ति मनुष्य की आत्मा की कल्याण-कामना में लग गई है, और वह भावना भी शुद्ध नहीं, प्रायः भ्रान्त है! आत्मा की कल्याण-कामना

निस्सन्देह एक बहुत सुन्दर वस्तु तो है, परन्तु राष्ट्र और देश के कल्याण का प्रश्न भी असाधारण है! दर्शन-शास्त्र कहते हैं—"यतो अभ्युदय निःश्रेयससिद्धिस्य धर्मः", जिससे अभ्युदय और निश्रेयस की सिद्धि हो वह धर्म है। यह अभ्युदय ही सांसारिक परम स्वार्थ और निश्रेयस पारलौकिक परम स्वार्थ है। सांसारिक परम स्वार्थ राष्ट्रीय स्वाधीनता, अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति का समाज में स्वाधीन अधिकार और पारलौकिक परम स्वार्थ आत्मा का सभी बन्धनों से मुक्ति प्राप्त करना, यह निश्रेयस है। यदि मैं यह कहूँ कि निश्रेयस से अभ्युदय श्रेष्ठ है, तो अनुचित के लिए सत्कर्म करने चाहिएँ और पीछे परलोक के लिए।

परन्तु, हमारी एक भयानक भूल तो यह है कि हम जब कभी छोटा-बड़ा सत्कर्म करते हैं, वह परलोक के लिए करते हैं और जो छोटा-बड़ा कुकर्म करते हैं, इस लोक के लिए करते हैं! हम दया, सेवा, त्याग, दान, तप, संयम, विवेक आदि का जब कभी उपयोग करेंगे, उसका फल परलोक-खाते डालेंगे, पर जब कभी स्वार्थ, छल, पाखण्ड, हत्या, चोरी तथा व्यभिचार आदि दुष्कर्म करेंगे, इस लोक के लिए करेंगे। यदि हम यथासम्भव



कुनूर (मद्रास) के सेण्ट जोसेफ़ कॉलेज के विद्यार्थियों का एक ग्रूप, जिसने हाल में 'अली बाबा' का ड्रामा किया था।

नहीं। यदि श्रीकृष्ण अभ्युदय को निश्रेयस की अपेक्षा श्रेष्ठ न मानते, तो सम्भव न था कि जगत के प्रपञ्च में फँस कर ऐसे लोमहर्षण रक्तपात के विधायक बनते। क्या कुरुक्षेत्र और प्रभास का हत्याकाण्ड साधारण था? और क्या अकेले श्रीकृष्ण ही उसके पूर्ण रूप से उत्तरदाता नहीं? क्यों उन्होंने चुपचाप मुक्ति की कामना से संसार को त्याग कर समाधि नहीं लगाई? आज भी क्यों महात्मा गाँधी जेल में क़ैदी के रूप में पड़े हैं? इन उदाहरणों से हम समझ सकते हैं कि प्रथम यह लोक और पीछे परलोक है। इसलिए हमें सर्व-प्रथम इस लोक सत्कर्म इस लोक के लिए करें, तो हमारी बहुत सी कठिनाइयाँ दूर हो जायँ। प्रातःकाल हम स्नान कर माला ले, गोमुखी में हाथ डाल, भगवत्-स्मरण के लिए बैठते हैं—घण्टा दो घण्टा में जितने पवित्र वाक्य, श्लोक, दोहा, चौपाई, पद याद होते हैं, सभी रट जाते हैं—यह हमारा सारा काम परलोक में फल देगा, पर वहाँ से उठ कर जब दफ़्तर या दूकान पर आते हैं और कारबार में झूठ, दग़ा, निर्दयता आदि का व्यवहार करते हैं, तब किस पाप से जेब कितनी भारी होगी, यही देखते हैं—परलोक को बिलकुल ही भूल जाते हैं! यही तो दिमाग़ी गुलामी

है, जो हमें सुधारने में विफल करती है और जिसके संस्कार मात्र को बिना नष्ट किए हम नवराष्ट्र की रचना नहीं कर सकते और बिना नवराष्ट्र की रचना किए हम देश को न एक इञ्च बढ़ा सकते हैं और न उसका रत्ती भर भला कर सकते हैं !!

यह बात सच है कि मेरे आक्षेप की प्रधान दृष्टि केवल हिन्दू-समाज पर ही है, और वह इसलिए कि वही भारत की प्रधान जाति है। उसकी संख्या २२ करोड़ है और उसी के सङ्गठन में बहुत से खण्ड हैं! हिन्दू ही राष्ट्रीय नव-निर्माण की सब से बड़ी बाधा हैं। छुआछूत, खान-पान, ऊँच-नीच, जाति-मर्यादा आदि के भयानक बन्धनों ने हिन्दू-जाति को इतना निस्तेज और निर्वीर्य कर रक्खा है कि जब तक उसके ये बन्धन दृढ़तापूर्वक काट न दिए जायँ, वह किसी काम की नहीं बन सकती! २२ करोड़ नर-नारियों के समुदाय को इस बन्धन में विवश छोड़ कर भारत आगे बढ़ेगा कैसे? यह तो बात विचार में ही नहीं आ सकती !!

हिन्दू नवयुवकों ने इस समय उत्क्रान्ति में जो पौरुष प्रयोग किया है वह असाधारण है, परन्तु नवीन नहीं। चीन, जापान, रूस, इटली आदि देशों के नवयुवकों ने भी यही किया है। यह सच है कि हिन्दू नवयुवक अभी पीछे हैं—परन्तु उनके बन्धन भी असाधारण हैं। सौभाग्य से उन्हें राजनीति का एक गुरु गाँधी जैसा महान् पुरुष मिल गया है। गाँधी का राजनैतिक गुरु-पन कर्म-भित्ति पर है, यह बड़े आश्चर्य का विषय है। भारत के लिए यह स्वाभाविक भी है। और इसका फल हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि जो नवयुवक महात्मा गाँधी के राजनैतिक दीक्षा-प्राप्त शिष्य बनते हैं, वे हिन्दू-धर्म की रूढ़ि की ग़ुलामियों से भी साथ-साथ बहुत दूर तक स्वाधीन होते जाते हैं। छुआछूत और ऊँच-नीच के भेद उनसे दूर हो रहे हैं—वे सेवाधर्म और सात्विक जीवन के महत्व पर स्वतन्त्र विचार करने लगे हैं—उनके मन पवित्र, स्वच्छन्द और त्याग की भावना से ओत-प्रोत हो रहे हैं। महात्मा गाँधी को यह श्रेय प्राप्त है कि उन्होंने भारत के युवकों को अपनी आत्मिक और हार्दिक सद्-भावनाओं को ऐहिलौकिक कार्यों में—और उन कार्यों में, जिनमें प्रायः उनका स्वार्थ नहीं होता, लगाने की रुचि उत्पन्न कर दी है !

यह बात तो मैं स्वीकार करूँगा कि ऋषि दयानन्द की शिक्षा ने विशुद्ध धार्मिक ढङ्ग से स्वतन्त्र विचार करने की रुचि भारत के इन युवकों के पिताओं के मन में पैदा कर दी, और इसके साथ ही अङ्गरेज़ी शिक्षा-पद्धति ने उनके पुराने अन्ध-विश्वासों की जड़ें हिला डालीं। अब ये युवक किसी रूढ़ि के ग़ुलाम होंगे, यह मैं आशा नहीं कर सकता। इनमें वीरता, त्याग, स्वावलम्बन और विनम्रता उत्पन्न करने का श्रेय तो महात्मा गाँधी ही को है। यह महापुरुष शताब्दियों तक भारत में पूजा जायगा। हिन्दू-धर्म की सात्विक प्रवृत्तियों को इसने उदय किया है। दुर्दम्य क्षोभ के कारणों को प्रकट करके भी इस पुरुष ने युवकों को संयम से युद्ध करने की शिक्षा दी है !

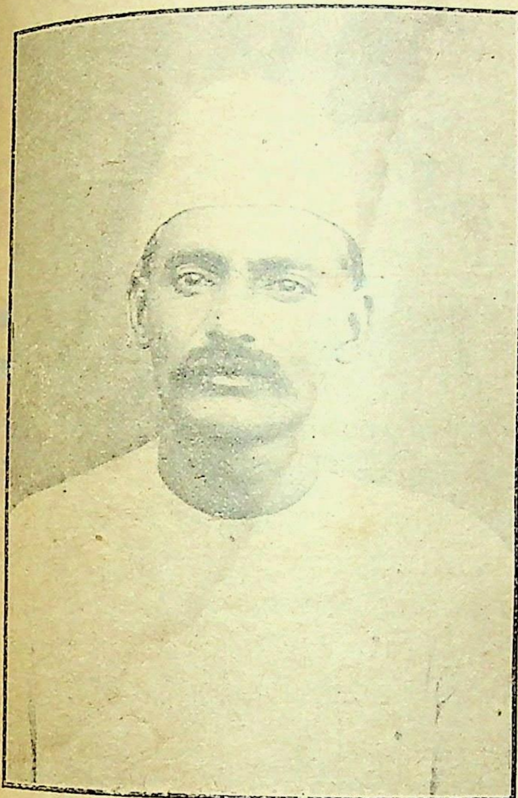
नवराष्ट्र के निर्माण की यह मूल भित्ति है! परन्तु इसमें बाधाओं की कमी नहीं है। आवश्यकता तो यह है कि जब तक भारत स्वाधीन हो, तब तक भारतीय नवराष्ट्र बन जाना चाहिए। यदि ऐसा न हुआ तो समझिए कि राजनैतिक क्रान्ति हिन्दू-जाति के शिथिल सङ्गठन को इस प्रकार छिन्न-भिन्न कर डालेगी कि जिसका स्मरण करना ही भयानक है !

अलबत्त, मैं यह कह सकता हूँ कि यदि नवराष्ट्र के निर्माण में हिन्दू मुस्तैदी और साहस से जुट जायँ और राजनैतिक भाग्य-निर्णय से प्रथम ही नया राष्ट्र बना लें—तो फिर कल्याण ही कल्याण है! फिर तो न रूस, न जर्मन, न जापान और न इटली ही की क्रान्ति भारतीय क्रान्ति के समान उज्ज्वल हो सकती है !!

यदि हिन्दू समाज अपनी दिमाग़ी ग़ुलामी को तोड़ दे; वह स्वच्छन्द हो जाय तो—इसमें सन्देह नहीं कि मुसलमान और अल्प-संख्यक जातियाँ बड़ी आसानी से उसके अन्दर लीन हो जावेंगी !!

मैं यह स्पष्ट कह देना चाहता हूँ कि जब तक यह मुख्य कठिनाई दूर नहीं हो जाती, भारत की राजनैतिक स्थिति दृढ़ नहीं हो सकती। जब तक ब्रिटेन का राज्य है, या अन्य किसी ग़ैर जाति का राज्य हो, तब तक तो किसी तरह मामला इसी भाँति चल सकता है; जैसा अब तक चलता रहा—परन्तु जब प्रजासत्ता का प्रश्न आएगा, जब देश का स्वामी देश का जनबल होगा, तब यदि जनबल में राष्ट्रीयता न पैदा हुई तो प्रजासत्ता देश में स्थापित ही नहीं हो सकती। इसके विरुद्ध उस समय

कान्यकुब्ज ब्राह्मणों में पहिला विधवा-विवाह



पं० शालिग्राम शर्मा (दुबे)



श्रीमती देवकी देवी (दुबे)

देश में ऐसी अशान्ति उत्पन्न हो सकती है, जिसे शान्त करने का कोई उपाय ही नहीं है !!

मुसलमान, ईसाई और अन्य अल्प-संख्यक ग़ैर-हिन्दू जातियाँ खान-पान और छुआछूत में इसी समय हिन्दुओं से सहयोग करने को उद्यत हैं। प्रायः सभी हिन्दुओं के हाथ का कच्चा-पक्का खाना खा सकते हैं। इसी प्रकार यदि हिन्दू अपनी कन्याएँ इन जातियों में ब्याहने लगें, तो इन जातियों को कुछ उज्र होगा, ऐसी सम्भावना नहीं। हिन्दुओं में आर्यसमाजी और ब्रह्मसमाजी तथा कुछ स्वतन्त्र विचार के पुरुष आसानी से इन जातियों से रोटी-बेटी के सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं। इसी तरह अछूत और निम्न श्रेणी की जातियाँ तथा ख़ाना-बदोश जातियाँ सभ्य और सुशिक्षित बनाई जाकर समाज का उपयोगी अङ्ग बन सकती हैं। इस नवीन सङ्गठन में यदि कोई अंश बाधक है तो वे कट्टर हिन्दू हैं, जो पुराने अन्ध-विश्वासों के ग़ुलाम हैं—और जो देश के ऊपर तेज़ी से चढ़ी चली आती हुई उस विपत्ति को देखने की योग्यता नहीं रखते—जिसके एक ही झटके में हिन्दुत्व का जीर्ण ढाँचा चूर-चूर हो जायगा !!!

एक समय था, जब भारतवर्ष एक सुदृढ़ क़िले के समान था। अपनी आवश्यकता की सभी सामग्री वह उपजा लेता था। विदेशियों से यदि इसका कोई सम्बन्ध था भी, तो सिर्फ़ इतना ही कि उसके काम में आने से जो कुछ बच जाय उसे वह विदेशियों को बेंच दे। तब विदेशी व्यापारी उसके द्वार के बाहर निरुपाय खड़े रहते थे, और जो कुछ भारत को देना होता, उसे लेकर बदले में स्वर्ण और रत्न देकर चले जाते थे ! उस समय उसकी एक देशीयता बनी हुई थी। इसका अन्य जातियों से संसर्ग न करना भी निभ गया था ; यद्यपि तब भी भारतीय बड़ी-बड़ी यात्राएँ करते थे—परन्तु वह समय ही

और था। राजसत्ता का प्रायः सर्वत्र आधिपत्य था। भारत में भी राजसत्ता थी—इसके सिवा भारत की एक जातीयता भी थी।

पर वह क़िला तो अब टूट गया। अब उसकी वह शक्ति, प्रतिष्ठा और परिस्थिति न रही। अब उसे स्वाधीन होते ही शताब्दियों तक व्यापार-वाणिज्य और शिल्प-शिक्षा आदि के लिए संसार भर में यात्रा करनी पड़ेगी। संसार की जातियों से मित्रता और सद्भाव बनाना पड़ेगा। ऐसी दशा में यदि हिन्दू अपना चौका, धोती, दाल, चावल और जनेऊ लिए फिरें, तो समझिए कि उनकी दुर्दशा और असुविधाओं का अन्त न रहेगा! देखिए तुर्क और ईरान इतना कट्टर एशियाई जीवन रहते भी, कितने शीघ्र यूरोप में मिल गया! रूस किस तेज़ी से एशिया में घुस रहा है; और जापान कैसे यूरोप के कान काटने लगा! क्या हिन्दू-जाति भी इस सरलता से पड़ोसी जातियों का बन्धु बन सकती है? उसे तो एशिया के सङ्गठन में सम्मिलित होना अनिवार्य है। यदि उसने अपनी मूर्खता और चौके-चूल्हे में फँस कर एशिया के सङ्गठन का तिरस्कार किया तो यह मानी हुई बात है कि एशिया का सर्व-प्रथम काम यह होगा कि वह अपने पहले धक्के में इस निकम्मी अछूत हिन्दू-जाति को विध्वंस कर दे और तब उसे पड़ोस के मुस्लिम राष्ट्र बाँट लें!

यूरोप और एशिया का जो सङ्घर्ष है, वह भारत पर ब्रिटेन का आधिपत्य तो रहने ही न देगा, परन्तु ब्रिटेन के पञ्जे से छूट कर भी भारत हिन्दू-जाति की सम्पत्ति नहीं बन सकेगा। जब तक कि वह अपना नया राष्ट्र न निर्माण कर ले और जिसमें हिन्दू, मुसलमान, ईसाई और अन्य अल्प-संख्यक जातियाँ मिल कर एक महाजाति के रूप में न खड़ी हो जायँ!!

भारतीय प्रजातन्त्र के ये हिस्से नहीं बँट सकते, जैसे कि अब अङ्गरेज़ी राज्य में हैं। कितनी नौकरियाँ हिन्दुओं को और कितनी मुसलमानों को मिलें—यह तुच्छ प्रश्न तब न रहेगा, तब तो यही प्रश्न होगा कि भारत की निवासिनी महाजाति का नाम क्या है? भारत की अधिपति जाति कौन सी है?

मैं प्रथम कह चुका हूँ कि नवराष्ट्र के निर्माण में सबों से बड़ी बाधक हिन्दू-जाति है, अन्य जातियाँ बहुत कुछ बढ़ी हुई हैं। यदि हिन्दू-जाति उनके बराबर पहुँच जायगी तो अन्य जातियाँ ख़ुशी से मिल जावेंगी!!

हिन्दू-सङ्गठन और शुद्धि-आन्दोलन, इन दोनों ही नीतियों से मेरा मतभेद है—मतभेद का मूल कारण यह है कि इन नीतियों से अन्य जातियों को भी हिन्दुओं के उन पुरानी रूढ़ियों के बन्धनों में बाँधा जा रहा है! प्रश्न तो यह है कि इस समय हिन्दू-संस्कृति संसार की सभ्य जातियों से सामाजिक रीति से मिलने के योग्य है या नहीं? यदि है तो अन्य जातियों को शुद्ध करना ठीक है। यदि नहीं तो जहाँ २२ करोड़ चौका-चूल्हा, जाति, छूत-अछूत, जनेऊ-धोती की चिन्ता में हैं, वहाँ ३०-३२ करोड़ हो जावेंगे? पर मुख्य और विकट प्रश्न तो बना ही रहेगा। मुझे यह कहने में ज़रा भी सङ्कोच नहीं कि भारत की अन्य जातियाँ राष्ट्रीयता की दृष्टि से कहीं अधिक सुगठित हैं; फिर उन्हें इस रूढ़ि-बन्धनों से विवश, जर्जर जाति में फाँसना देश के लिए कहाँ तक अच्छा है?

अलबत्त, हिन्दू नाम से मैं प्रेम करता हूँ! भले ही उसका चाहे भी जो भद्दा अर्थ हो—मैं यह स्वाभाविक रीति से चाहूँगा कि हिन्दुस्तान का प्रत्येक प्राणी अपने को हिन्दू कहे। मैं हिन्दू राष्ट्र के ही निर्माण का स्वप्न देखता हूँ और हिन्दू राष्ट्र के निर्माण की ही योजना सामने रखता हूँ और उसमें सभी अल्प-संख्यक भारतीय जातियों को लीन करने की कामना भी करता हूँ। पर हिन्दू राष्ट्र की वह शक्ल होनी चाहिए, कि संसार की सभी जातियों में उसके अबाध सामाजिक सम्बन्ध बन सकें—तभी भारत में एक महान राष्ट्र का उदय हो सकता है!!!

[लेखक महोदय की "तब, अब क्यों और फिर?" नामक अप्रकाशित ग्रन्थ से, जो इस संस्था द्वारा शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है।

—स० 'चाँद']

तोरूदत्त

(संक्षिप्त परिचय)

[श्री० मेघवाहन जी, बी० ए०]

Still barred thy doors ! The far east glows
The morning wind blows fresh and free,
Should not the hour that wakes the rose,
Awaken also thee ?
All look for thee, Love, Light and song,
Light in the sky deep red above,
Song, in the lark of pinions strong,
And in my heart, true love.

अर्थात्—"तेरे किवाड़ अब भी बन्द हैं। दूरवर्त्ती पूर्व अरुण हो रहा है—प्रातःकालीन ताज़ी वायु खुल कर बह रही है। क्या जिस घड़ी गुलाब खिलता है, उस घड़ी तुझे भी जागना नहीं चाहिए ?

"प्रेम, प्रकाश और सङ्गीत सब तेरी बाट जोह रहे हैं—गहरे अरुण-वर्ण आकाश का प्रकाश, मज़बूत डैनों वाले लवा-पक्षी का गान, और मेरे हृदय का सच्चा प्रेम।"

उपरिलिखित पंक्तियों ने पहिले पहल अङ्गरेज़ समालोचक, मिस्टर एडमण्ड गॉस को श्रीमती तोरूदत्त की कविता की ओर आकर्षित किया था; यही पंक्तियाँ तब से आज तक बार-बार दुहराई गई हैं; और हमारे विचार में वे अपनी प्रातःकालीन निर्मलता एवं मधुर पद-लालित्य के अतिरिक्त सब से अधिक इस कारण याद रखने योग्य हैं कि उनके भीतर से तोरूदत्त का प्रेम, प्रकाश और सङ्गीतमय स्वभाव बड़ी सुन्दरतापूर्वक प्रस्फुटित होता है।

जिस ज़माने में तोरूदत्त का जन्म हुआ था, वह समय हमारे साहित्य, कला और राष्ट्रीय गौरव के पूर्ण ह्रास का समय नहीं, तो कम से कम ऐसा अवश्य था कि जब वर्तमान साहित्यिक जाग्रति का श्रीगणेश भी मुश्किल से हुआ था। अतएव उस स्त्री-कवि का जीवन, जिसने ऐसे समय में अपनी रचनाओं द्वारा भारतीय सभ्यता का मुख दूर देशों में उज्ज्वल किया, पढ़ना और मनन करना केवल एक कौतूहल का विषय नहीं, वरन् एक महान और पवित्र राष्ट्रीय कर्त्तव्य है।

तोरूदत्त की जीवनी

तोरूलता दत्त का जन्म कलकत्ते में सन् १८५६ में हुआ था। उनके पिता श्रीयुत गोविन्दचन्द्र दत्त एक विद्वान सज्जन थे, जिन्होंने ईसाई मत ग्रहण कर लिया था। दत्त-परिवार विद्वत्ता और साहित्यिक रुचि के लिए प्रसिद्ध था। इसी परिवार की हिन्दू शाखा में भारत के विद्वान लेखक और राजनीतिज्ञ श्रीयुत रमेशचन्द्र दत्त का जन्म हुआ था, और वे तोरूदत्त के चचेरे भाई होते थे।

तोरूदत्त तीन भाई-बहिनें थीं। सब से बड़ा भाई अबजू, जिसका १४ वर्ष की अवस्था में देहान्त हो गया; उससे छोटी बहिन अरू, जिसकी मृत्यु २० वर्ष की अवस्था में हुई; और सब से छोटी स्वयं तोरूदत्त।

बाबू गोविन्दचन्द्र दत्त स्वयं धुरन्धर विद्वान होने के कारण अपने बच्चों की शिक्षा के विषय में बड़े तत्पर रहते थे। सन् १८६३ में वे अपने बच्चों के साथ बम्बई गए और थोड़े ही दिनों बाद, जब तोरू की उम्र १३ वर्ष की भी न रही होगी, वे अपनी दोनों कन्याओं को यूरोप की यात्रा के लिए ले गए।

यूरोप में तोरूदत्त को यथेष्ट रूप से यूरोपीय शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिला। पहिले तो उन्होंने चार वर्ष फ़्रान्स में स्कूली शिक्षा प्राप्त की और इसके बाद इटली और केम्ब्रिज में रह कर पाश्चात्य साहित्य का विशेष ज्ञान प्राप्त किया। सन् १८७३ में, १० वर्ष यूरोप में व्यतीत करके, तोरू अपने पिता और सम्पूर्ण परिवार सहित बङ्गाल को लौट आईं। इसके बाद के ४ वर्ष—यानी १८७७ पर्यन्त, जिस वर्ष उनका देहान्त हुआ—तोरूदत्त

ने अपने घर पर या तो बाग़मड़ी के फुलवारी-घर में अथवा रामबागान (कलकत्ता) में व्यतीत किए। यूरोपीय यात्रा के पूर्व ही उनके बड़े भाई अबज़ की मृत्यु हो



सुप्रसिद्ध कोविदा कुमारी तोरूदत्त

अपनी बहिन (बैठी हुई) अरू सहित

चुकी थी और अब अरू की १८७४ में मृत्यु हो जाने के कारण तोरू को अपना सारा मन साहित्य की सेवा में लगा देना पड़ा।

यही तोरूदत्त के अत्यल्प जीवन की करुण कथा है। परन्तु इन्हीं चार वर्षों के भीतर तोरूदत्त की सुधामयी लेखनी ने क्या-क्या चमत्कार दिखलाए, इसका ज़िक्र हम नीचे करेंगे।

तोरूदत्त की रचनाएँ

यद्यपि तोरूदत्त की एकाध कृतियाँ 'बङ्गाल मैगज़ीन' इत्यादि पत्रों में प्रकाशित हो चुकी थीं, फिर भी उनकी "A Sheaf Gleaned in French Fields" (फ़्रान्सीसी क्षेत्रों से सङ्कलित गुच्छ) नामक पुस्तक, पहली पुस्तक थी, जिसका नाम इङ्गलैण्ड और फ़्रान्स में हुआ। मिस्टर एडमण्ड गॉस ने, जिन्होंने आधुनिक भारत की दो सब से बड़ी स्त्री-कवियों को प्रोत्साहित करके भारतवासियों को चिरऋणी बनाया है, पहिले पहल इङ्गलैण्ड में इस पुस्तक की समालोचना की। "A Sheaf Gleaned in French Fields" में तोरूदत्त ने क़रीब १०० फ़्रेञ्च कवियों की कविताओं का अनुवाद अङ्गरेज़ी में किया है और यद्यपि गॉस जैसे सिद्धहस्त समालोचकों के नज़दीक उसमें कहीं-कहीं छन्द-शास्त्र सम्बन्धी और अन्य त्रुटियाँ जान पड़ती हैं, तब भी गॉस को भी मानना पड़ा है कि स्थान-स्थान पर तोरू ने अद्भुत विद्वत्ता दिखलाई है और सब बातों का ध्यान रखते हुए यह कहना ही पड़ेगा कि "A Sheaf" में तोरूदत्त को अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई। फ़्रान्स में इस पुस्तक की और भी प्रशंसा हुई और इस पुस्तक की वह कविता, जिसे हमने इस लेख के प्रारम्भ में अङ्कित किया है, बार-बार सराही गई है।

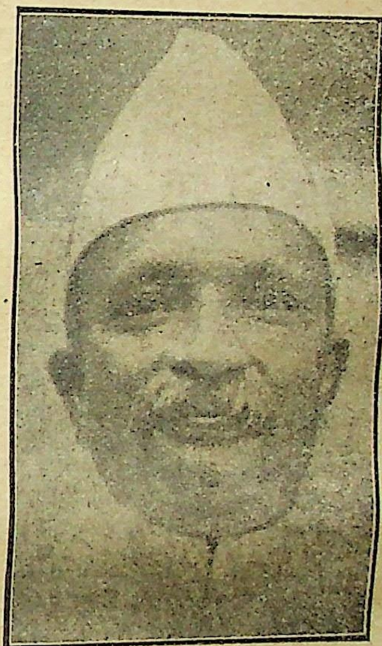
तोरूदत्त के जीवन-काल में केवल "A Sheaf" और दो-एक अन्य लेख प्रकाशित हो पाए थे। उनकी सर्वोत्तम

रचना "Ancient Ballads and Legends of Hindusthan" (भारत के प्राचीन गीत और गाथाएँ) उनकी मृत्यु के पश्चात छपी। एडमण्ड गॉस की राय में किसी आधुनिक एशियावासी ने यूरोप वालों को एशिया की आत्मा के विषय में ऐसा विचित्र और गहरा ज्ञान नहीं प्रदान किया है, जैसा कि तोरुदत्त की 'प्रह्लाद' और 'सावित्री' नामक कविताओं में पाया जाता है। "जिन कविताओं में कवि अपने हृदय में अपनी मातृभूमि के गीत गा रहा है, वे वही गीत हैं जिन्हें सुन कर उसकी आँखों में आनन्द के आँसू भर आते थे।" यह खेद का विषय है कि तोरुदत्त की एक ऐसी सुन्दर रचना को पहले-पहल केगन पॉल ट्रेञ्च ट्रबनर ने छापा था और तब से, जहाँ तक हम जानते हैं, इस पुस्तक का अनुवाद किसी देशी भाषा में अभी तक नहीं हुआ है। अपने भारत के साहित्यिक इतिहास नामक ग्रन्थ में मिस्टर फ़्रेज़र लिखते हैं—"यदि यह कविताएँ अपनी देशी भाषा में लिखी गई होतीं तो वे ऐसी अनोखी, शान्तिप्रद और मधुर-ध्वनिपूर्ण होतीं—उनके भाव ऐसे गम्भीर और मार्मिक स्थलों को स्पर्श करने वाले होते कि यद्यपि तोरुदत्त ने अपने पूर्वजों के धर्म का परित्याग करके क्रिश्चियन मत ग्रहण कर लिया था, तो भी वे हिन्दू-धार्मिक कविता के इतिहास में अमर-स्थान प्राप्त कर लेतीं और राष्ट्र के गीतों में शामिल हो जातीं।" कहा नहीं जा सकता कि तोरुदत्त की कविताओं का हिन्दी रूपान्तर भी कभी प्रकाशित होगा।

'हिन्दुस्तान की गाथाओं' के अतिरिक्त एक और पुस्तक "Mlle. D'Arvers" (मदाम्बाइज़े दआरवेर) तोरुदत्त की मृत्यु के पश्चात उनकी पुस्तकों और काग़ज़ों के बीच मिली। यह पुस्तक एक उपन्यास है, जिसमें दो भाई एक सुन्दरी और शान्त बालिका के ऊपर प्रेमासक्त होकर आपस में लड़ाई करते हैं और आख़िरकार पागल हो जाते हैं। इस उपन्यास को भी तोरुदत्त ने ऐसी ख़ूबी से निबाहा है कि शुरू से आख़ीर तक कथा की गम्भीरता भङ्ग नहीं होती।

तोरुदत्त की कविता

तोरुदत्त की कविता सरलता, प्रसाद गुण तथा विशुद्ध ऊँचे विचारों से अलङ्कृत है। उसमें सचाई और सहृदयता का एक विचित्र रङ्ग सम्मिश्रित है, जो कि तोरू की जीवनी से अलग नहीं किए जा सकते। उनकी हिन्दुस्थान की पुरातन गाथाओं में यह गुण पर्याप्त अंश में वर्तमान है। तोरुदत्त को पहले पहल फ़्रेञ्च और अङ्गरेज़ी में शिक्षा मिली थी और उन्होंने संस्कृत केवल इङ्गलैण्ड से वापस आने पर घर पर पढ़ी थी, परन्तु अपनी कविताओं में उन्होंने भारतीय वायु-मण्डल, भारतीय प्रथाओं और भारतीय आत्मा को ऐसी सफलता



श्री० नगीनदास मास्टर

आप बम्बई की 'युद्ध-समिति' के तेजस्वी 'डिक्टेटर' थे, जो नए ऑर्डिनेन्स के शिकार हुए हैं। आपने बम्बई के राष्ट्रीय वालण्टियरों के पुनर्सङ्गठन में बहुत उद्योग किया था।

और सचाई के साथ अङ्कित किया है कि अङ्गरेज़ी शब्दों के सिवा उनमें कोई ऐसा भाव नहीं आने पाया है जो पाश्चात्य होने के कारण कानों को खटके। उदाहरण के लिए हम उनकी कविताओं में से एक-आध यहाँ उद्धृत करते हैं, यद्यपि उनका पूर्ण चमत्कार पुस्तक को शुरू से आख़ीर तक पढ़ने से ही ज्ञात होता है।

जब सावित्री यम का पीछा करते-करते थक जाती है,

तो यम उसे फिर लौट जाने के लिए अनुरोध करता है। परन्तु सावित्री कहती है :—

"And if the eye at times should brim,
'Tis human weakness, give me strength
My work appointed to fulfil.
That I may gain the crown at length
The Gods give those who do their will."

अर्थात्—"यदि कभी आँखें अश्रुपूर्ण हो जाती हैं तो इसे मनुष्य की स्वाभाविक निर्बलता समझिए। मुझे शक्ति दीजिए कि मैं अपने निश्चित कर्त्तव्य को पूरा कर सकूँ, ताकि मुझे उस मुकुट का वरदान मिले जो कि देवतागण अपनी आज्ञा पालन करने वालों को देते हैं।"

इसी प्रकार 'सिन्धु' में आदर्श पुत्र, 'प्रह्लाद' और 'ध्रुव' में आदर्श भक्त, 'बट्टू' में आदर्श शिष्य तथा 'लक्ष्मण' में आदर्श भ्राता का रूप तोरू ने बड़ी सफलतापूर्वक अङ्कित किया है। गाथाएँ सब पुरानी—महाभारत अथवा रामायण से ली हुई हैं, परन्तु तोरूदत्त ने अपनी स्वर्णमयी कल्पना-शक्ति और वर्णनात्मक सुगमता, और इससे भी बढ़ कर स्वयं अपने दुर्लभ सुकोमल गुणों द्वारा उन गाथाओं में ऐसे नवीन और गम्भीर भाव भर दिए हैं कि उनका हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ता है। प्रत्येक पात्र हमारी आँखों के सामने सजीव और अपने स्वाभाविक गुणों से सम्पन्न खड़ा हो जाता है। जब बार-बार मना करने पर भी सीता, लक्ष्मण को रामचन्द्र की आज्ञा के विरुद्ध पर्णकुटी में छोड़ कर कपटी मृग का पीछा करने को कहती हैं, तो लक्ष्मण उत्तर देते हैं :—

"In going hence I disregard
The plainest orders of my chief,
A deed for me—a soldier—hard
And deeply painful; but thy grief
And language, wild and wrong, allow
No other course. Mine be the crime,
And mine alone,—but oh, do thou
Think better of me from this time."

अर्थात्—"यहाँ से जाकर मैं अपने स्वामी की साफ़ आज्ञा के विरुद्ध कार्य कर रहा हूँ, जो मुझ जैसे सैनिक के लिए अत्यन्त कष्टप्रद है, परन्तु तुम्हारा शोक और तुम्हारी अनियन्त्रित तथा अनुचित बातों को देखते हुए और कोई चारा नहीं। अतएव सारा दोष मेरे ही ऊपर आवे, परन्तु अब से मेरे विषय में तुम अपने विचार अच्छे रखना।"

इस उत्तर से लक्ष्मण का योद्धा की भाँति आज्ञा-पालन तथा स्वाभाविक भक्ति के साथ मिला हुआ आत्म-सम्मान पूर्णतया प्रकट होता है।

पात्रों की इस सजीवता के साथ-साथ तोरूदत्त ने भारतीय दृश्यों का जहाँ कहीं भी ज़िक्र किया है, बड़ी सचाई के साथ किया है। 'उमा' में ग्रामीण बिसाती का ज़िक्र आने पर वे गाँव की बड़ी सच्ची तस्वीर खींचती हैं :—

"Shell-bracelets ho! Shell-bracelets ho!,
The roadside trees still dripped with dew,
And hung their blossoms like a show.
Who heard the cry? 'Twas but a few,
A ragged herd—boy, here and there,
With his long stick and naked feet;
A ploughman wending to his care,
The field from which he hopes the wheat."

अर्थात्—"बिसाती ने ..र उठाई 'शङ्ख की चूड़ियाँ, शङ्ख की चूड़ियाँ!' स.क के किनारे वृक्षों से अब भी ओस टपक रही थी और उनमें लगे हुए पुष्प ऐसे मालूम होते थे मानो किसी तमाशे के लिए सजाए गए हों। वह आवाज़ किस-किस ने सुनी? केवल थोड़े से लोगों ने—या तो किसी चिथड़े लपेटे हुए चरवाहे के लड़के ने, जो नङ्गे पाँव, हाथ में लम्बी सी लाठी लिए हुए कहीं इधर-उधर मौजूद रहा हो, या तो किसी हल चलाने वाले ने, जो अपने खेत पर, जिससे उसे अपना गेहूँ मिलता है, जा रहा हो।"

एक बड़ी भारी विशेषता, जो सभी उच्चकोटि के सत्कवियों में पाई जाती है, यानी प्राकृतिक सौन्दर्य का हृदयग्राही वर्णन, तोरूदत्त की कविता में पर्याप्त अंश में वर्तमान है।

जिस जङ्गल में सीता जी वनवास हो जाने के पश्चात लव-कुश सहित अपना समय काट रही थीं, उस वन का

वर्णन करने में तोरू ने अद्भुत वास्तविकता दिखलाई है :—

"A dense, dense forest, where no sunbeam pores
And in its centre a clear spot. There bloom
Gigantic flowers on creepers that embrace
Tall trees ; There, in a quiet lucid lake
The white swans glide ! There, "whirring from the brake,"
The peacock springs ; there, herds of wild deer race ;"

अर्थात्—"एक घना जङ्गल, जहाँ सूर्य की किरणों का भी प्रवेश नहीं—और उसके बीच में एक स्वच्छ स्थान। वहाँ लम्बे-लम्बे वृक्षों से लपटी हुई लताओं में भारी-भारी फूल फूलते हैं। वहाँ किसी शान्त निर्मल सरोवर में सफ़ेद हंस तैरते रहते हैं, झाड़ियों में से पङ्ख फड़फड़ाते हुए मोर झपटते हैं और वहाँ जङ्गली हिरनों के झुण्ड के झुण्ड छलाँग मारते हैं।"

तोरुदत्त ने अपने जीवन का अधिकतर समय अपने बागमड़ी के घर पर व्यतीत किया। 'बागमड़ी' नामक कविता में उन्होंने अपनी फुलवारी का चन्द्रोदय-कालीन दृश्य बड़ी सहृदयतापूर्वक वर्णन किया है :—

"But nothing can be lovelier than the ranges
Of bamboos to the east ward, when the moon
Looks through their gaps and the white-lotus changes
Into a cup of silver."

अर्थात्—"परन्तु इससे सुन्दर और कोई दृश्य नहीं हो सकता कि जब चन्द्रमा पूरब की ओर की बँसवाड़ियों में से झाँकता है और कुमुदिनी खिल कर एक चाँदी के कटोरे के समान हो जाती है।"

तोरुदत्त की कविता पढ़ने वाले को स्वभावतः यह जानने का कौतूहल होगा कि उन्होंने अपने स्त्री-पात्रों को किस स्वरूप में प्रदर्शित किया है। उन्होंने शारीरिक सौन्दर्य का कहीं-कहीं बड़ा मनोमोहक वर्णन किया है। परन्तु एक विशेषता जो अक्सर उनकी कविता में वर्णित, स्त्रियों के विषय में उल्लेखनीय है, वह उन स्त्रियों के मुख-मण्डल पर एक अनुपम तेज और गम्भीरता की झलक है, जो सावित्री अथवा उमा के आख्यानों को पढ़ने पर ज्ञात होता है। सावित्री के लिए वे लिखती हैं:—

"The sweet simplicity and grace
Abashed the boldest ; but the good
God's purity there loved to trace,
Mirrored in dawning womanhood."



काशी के बङ्गाली-टोला कॉङ्ग्रेस कमिटी की सब-प्रथम स्वयं-सेविका, जो अब प्रेज़िडेण्ट नियुक्त की गई हैं।

अर्थात्—"उनकी मधुर सरलता और कोमलता धृष्टतम लोगों को लज्जित कर देती थी और सज्जन पुरुष उनके चढ़ते हुए यौवन में दैवी पवित्रता को प्रतिविम्बित हुआ पाते थे।"

और उमा की मुख-कान्ति ?

"Oh she was lovely, but her look
Had something of a high command
That filled with awe."

अर्थात्—"वह सुन्दरी थीं; परन्तु उनके मुख-मण्डल

पर एक ऐसा दिव्य रोब था कि जो हृदय को भयभीत कर दे।"

ऊपर दिए हुए उदाहरणों से और उनकी कविता के अनेक शीर्षकों से यह धारणा हो सकती है कि तोरूदत्त की कविताएँ विशेषकर शान्त और करुण-रस सम्बन्धी हैं, और यह धारणा किसी अंश में सही भी है। परन्तु उन्होंने युद्ध और आखेट आदि वीरोचित विषयों का भी बड़ा सच्चा दृश्य खींचा है :—

"Oh gallant was the long array
Pennons and plumes were seen
And swords that mirrored back the day
And spears and axes keen."

अर्थात्—"ध्वजाओं और कलगियों की क़तार और धूप में चमकने वाली तलवारें, बर्छियाँ तथा तेज़ धार वाली कुल्हाड़ियाँ—इन सबका झुण्ड बड़ा वीरतापूर्ण मालूम होता था।"

बचपन में तोरूदत्त ने फ़्रान्स में शिक्षा पाई थी और फ़्रान्स देश के लिए उनके हृदय में अगाध प्रेम था। फ़्रान्स की प्रजासत्तात्मक शासन-पद्धति तथा चरम सीमा की सभ्यता ने स्वभावतः तोरूदत्त जैसे ऊँचे विचारों वाली महिला के हृदय को मोह लिया था :—

"Well might all Europe quail before thee, France,
Battling against oppression ! years have past,
Yet of that time men speak with moistened glance.
Va nu pieds. When rose high your Marseillaise
Man knew his rights to earth's remotest bounds
And tyrants trembled."

अर्थात्—"फ़्रान्स ! तू अत्याचार से युद्ध करता रहा है, यूरोप का तेरे सम्मुख काँपना उचित ही है। वर्षों व्यतीत हो गए, परन्तु फिर भी लोग उस समय की बात अश्रुपूर्ण आँखों से करते हैं। जब तेरे राष्ट्रीय गीत मार्सेलस की ध्वनि ऊँची उठी, तब मनुष्य को अपने स्वत्वों का ज्ञान पृथिवी के अन्त तक हो गया और ज़ालिम शासक काँपने लगे।"

तोरूदत्त के कुछ सामाजिक विचार

तोरूदत्त स्वयं एक अत्यन्त उन्नतिशील और उदार विचारों वाले घराने में पैदा हुई थीं। वे भारत की पहिली महिला थीं, जिन्होंने यूरोपियन देशों की यात्रा की थी और यूरोपियन भाषाओं का फ़्रान्स और इङ्गलैण्ड में रह कर अध्ययन किया था। यह बड़े गौरव का विषय है कि पाश्चात्य साहित्य की ऐसी उच्च शिक्षा पाकर भी तोरूदत्त ने घर पर आकर संस्कृत ग्रन्थों का विशेष अध्ययन किया और पाश्चात्य और पूर्वीय सभ्यता के उच्चतम तत्वों को लेकर अपने सामाजिक विचारों को क़ायम किया।

'सावित्री' नामक कविता में परदा-प्रथा की ओर लक्ष्य करके वे कहती हैं :—

"In those far-off primeval days
Fair India's daughters were not pent
In closed zenanas."

अर्थात्—"उस पुरातन काल में भारत की सुन्दरी कन्याएँ ढके हुए ज़नानख़ानों में बन्द नहीं रहा करती थीं।"

वैधव्य की कठोर यातना का भी वर्णन उन्होंने बड़े दुःखपूर्ण और मर्मस्पर्शी शब्दों में किया है :—

"And think upon the dreadful curse
Of widowhood ; the vigils, fasts,
And penances; no life is worse,
Than hopeless life,—the while it lasts.
Day follows day in one long round,
Monotonous and blank and drear
Less painful were it to be bound
On some bleak rock, for ages to hear—
Without one chance of getting free—
The ocean's melancholy voice."

अर्थात्—"और वैधव्य के भयानक अभिशाप का ख़याल कीजिए। जागरण और उपवास और तपस्या। एक नैराश्यपूर्ण जीवन से ख़राब कोई जीवन नहीं, जब तक कि ऐसा जीवन क़ायम है। एक ही तरह, ख़ाली और शुष्क, दिन पर दिन बीतता जाता है; किसी चट्टान में

बाँध कर युगों के लिए समुद्र की दुखमयी गर्जना सुनने के लिए बन्दी बना देना भी इससे कम दुःखपूर्ण होगा।"

तोरूदत्त के पत्र

तोरू के क़रीब ४० पत्र, जो उन्होंने अपनी आजन्म सखी मिस मार्टिन को लिखे थे, बाबू हरिहरदास ने छपवाए हैं। उनके पढ़ने से मालूम होता है कि उनका स्वभाव कितना कोमल, सरल और उच्च था। उन पत्रों में उन्होंने अपने हृदय को खोल कर रख दिया है। चाहे उनमें वे अपने बाग़ के फलों का बयान कर रही हों अथवा विक्टर ह्यूगो के ग्रन्थों की विवेचना। उनका सहज-कोमल स्वभाव शब्द-शब्द से प्रदर्शित होता है।

अपने बाग़ के फलों-फूलों के विषय में वे लिखती हैं:—

"आजकल लीची, आम, तरबूज़ों, खजूर और अन्य फलों की फ़सल है। आम और लीची संसार के सब से सुन्दर फलों में से हैं। मेरी इच्छा होती है कि मैं एक टोकरी इन फ़सली फलों की आपके पास भेज सकती। उनको देख कर आपकी आँखें सन्तुष्ट होतीं—पीले या सिन्दूरी आम, सुर्ख़ लीचियाँ, सफ़ेद जमरूल और गहरे बैंजनी जामुन............।

"बाग़ में प्रातःकाल बड़ा सुहावना मालूम होता है। बड़े तड़के तीन बजे के क़रीब भीमराज (एक छोटी चिड़िया) अपना गीत शुरू करती है, आध घण्टे के बाद तमाम झाड़ियों और वृक्षों से एकाएक एक मधुर ध्वनि उठती है—और कोकिल, बाड, कोथा, कोड और पपीहा इत्यादि गाना शुरू कर देते हैं।"

ऐसी सहज कोमलता और बालिका के समान सरल, स्नेहपूर्ण स्वभाव उनके समस्त पत्रों में पाया जाता है। अपने पालतू जानवरों तक का हाल वे बड़े चाव से लिखती हैं। अपने घोड़ों के विषय में उन्होंने अपने पत्रों में बार-बार ज़िक्र किया है:—

"मैं रोज़ सवेरे उठती हूँ, जिसमें अपने घोड़ों को थपथपा सकूँ। अपने घोड़ों के विषय में बार-बार लिखने से आप शायद उकता गई हों, मगर मैं कहती हूँ कि अगर आप मेरे ज़ेनेत और जेरटील को देखतीं तो कहतीं।" (ज़ेनेत और जेरटील उनके घोड़ों का फ़्रान्सीसी नाम था, जो उन्होंने स्वयं रक्खा था)

मगर दूसरी ओर जब हम तोरूदत्त के गम्भीर विचारों का ख़्याल करते हैं, तो हमें ताज्जुब होता है कि अपनी छोटी सी अवस्था में वे किस क़दर बुद्धिमती और स्वतन्त्र विचारों वाली महिला थीं और उनमें हास्य-रस का कैसा महीन और उच्चकोटि का ज्ञान था। प्रसिद्ध डॉक्टर हण्टर से मुलाक़ात होने के विषय में वे लिखती हैं—"डॉक्टर



श्रीमती इन्दुनलिनी भट्ट

आपको कॉङ्ग्रेस की सहायता करने के अभियोग में कारावास दण्ड मिला है।

हण्टर ने मेरी और मेरी विद्वत्ता की बड़ी तारीफ़ की। सच तो यह है कि मुझे बड़ी लज्जा मालूम होती है, क्योंकि कुछ भी हो, मैंने केवल एक अनुवाद की पुस्तक लिखी है और ख़ुद डॉक्टर हण्टर ने बहुत सी पुस्तकें लिख डाली हैं।"

एक दूसरे पत्र में हँसी में वे लिखती हैं:—

"उस दिन मेरी दादी के एक भाई ने मुझसे पूछा—'तुम्हारा विवाह हो चुका है या नहीं ।' मैंने कहा कि अभी तो नहीं हुआ है, मगर आप ही की आज्ञा की प्रतीक्षा थी, आपकी आज्ञा मिल गई है, अब हो जायगा ! इस उत्तर को सुन कर वे बड़े चकित हुए और मुझे बड़ी नम्रता और सरलतापूर्वक चित्रों की एक पुस्तक पढ़ती हुई देख कर तो उनका आश्चर्य और भी ज़्यादा हो गया ।"

* * *

जब अन्य लेखक अपना साहित्यिक जीवन मुश्किल से शुरू करते हैं, तब तोरूदत्त की इहलौकिक लीला २१ वर्ष की अल्पावस्था में समाप्त हो गई । उनकी साहित्यिक ख्याति का तारा पूरी तरह चमकने भी न पाया था कि वह मृत्यु के घोर अन्धकार में विलीन हो गया । तोरूदत्त के अन्तिम दिनों की कथा बड़ी करुण है । मार्च, १८७७ में उनकी तबीयत बहुत ख़राब हो गई और अगस्त ३०, १८७७ को, साढ़े इक्कीस वर्ष की अवस्था में उनकी मृत्यु हो गई । ठीक एक महीने पहिले उन्होंने अपनी फ़्रान्सीसी सखी श्रीमती बादेर को लिखा—"प्रिय सखी ! मेरी तबीयत बहुत ख़राब हो गई थी, परन्तु दयालु परमात्मा ने मेरे माता-पिता की प्रार्थनाओं को स्वीकार कर लिया है और अब मेरी तबीयत धीरे-धीरे अच्छी हो रही है । शीघ्र ही मैं अधिक विस्तारपूर्वक लिखने के योग्य हो जाने की आशा करती हूँ ।" इस पत्र के उत्तर में श्रीमती बादेर ने जो पत्र पेरिस से ११ सितम्बर को (जब तोरू की मृत्यु हो चुकी थी) लिखा, वह बड़ा हृदय-द्रावक है । उसके परिशिष्ट में उन्होंने लिखा था—"मैं इस पत्र के साथ अपने देश का एक फूल भी भेज रही हूँ । यह मुझे अत्यन्त प्रिय है । यह सुन्दर पुष्प सूख जाने पर भी सदा मुस्कराता हुआ जान पड़ता है । मेरे विचार में यह प्रेम का सच्चा चिन्ह है ..।" परन्तु यह 'प्रेम का चिन्ह' जब भारत में पहुँचा, तब उसकी होनहार सन्तान अपने माता-पिता एवं समस्त देश की आशाओं को भग्न करके परलोक-पथ पर अग्रसर हो चुकी थी !

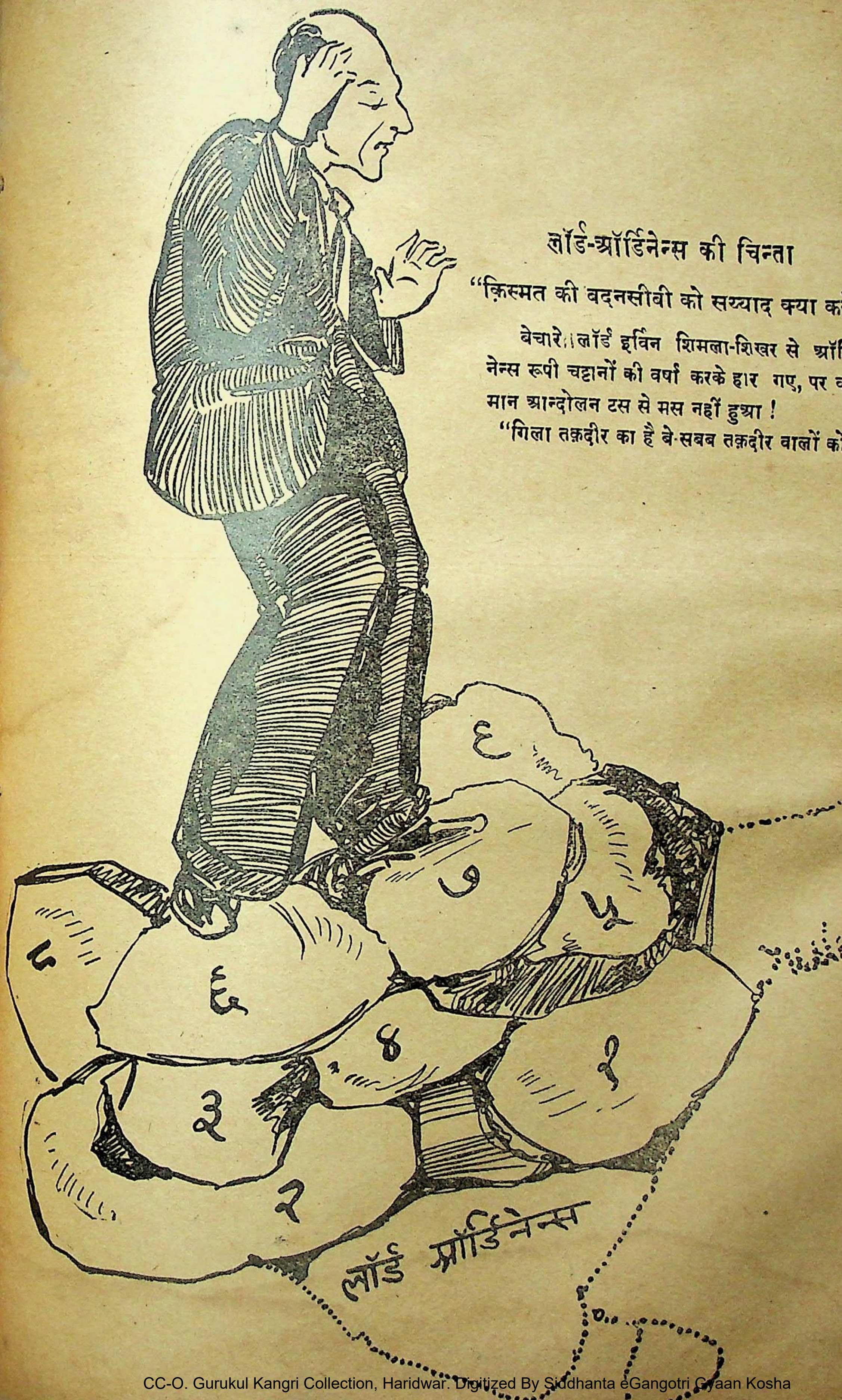
साहित्य में तोरूदत्त का स्थान कितना ऊँचा है, इस विषय पर विचारशील समालोचकों ने अपने भावों को बहुत ही साफ़ और दृढ़ शब्दों में व्यक्त किया है। श्रीयुत एडमण्ड गॉस ने लिखा है कि जब अङ्गरेज़ी साहित्य का इतिहास लिखा जायगा तो साहित्य के इस कोमल कुसुम के विषय में एक पृष्ठ अवश्य होगा । एक दूसरे अङ्गरेज़ समालोचक ने लिखा है—"तोरू अपनी बुद्धि की प्रखरता और गम्भीरता में सरोजिनी देवी से भी बढ़ कर थीं ।" इससे ज़्यादा और क्या प्रशंसा हो सकती है कि इसी समालोचक ने फिर लिखा है—"तोरूदत्त संसार की सब से अद्भुत स्त्रियों में थीं । उनका स्थान सैफ़ो और इमिली ब्राण्टी के साथ है ।"

परन्तु हम लोग अपने देश में इस अमूल्य रत्न को प्रायः भूल से गए हैं ! हममें से बहुत से लोग आज तोरूदत्त का नाम भी नहीं जानते । उस स्वर्गीय कुसुम के स्वरूप और सौरभ से परिचित होना तो दूर रहा, उसकी याद भी एक कृतघ्न जाति ने, जिसे सारहीन आन्दोलनों से छुट्टी नहीं, भुला दिया है ।

पुराने ग्रीस के अधिवासियों में यह विश्वास प्रचलित था कि जो देवताओं के स्नेह-पात्र होते हैं, उनकी मृत्यु अल्पायु में हो जाती है । कीट्स, शेली और रुपर्ट ब्रुक की अकाल मृत्यु को समस्त अङ्गरेज़ जाति ने एक महान जातीय दुर्भाग्य माना । उनकी रचनाओं और जीवन-सम्बन्धी घटनाओं को जीवित रखने के लिए वहाँ बड़ी कोशिश की जाती है । हम लोग भी तोरूदत्त की स्वर्गीय आत्मा की स्मृति को हरा-भरा रखने की कोशिश करेंगे या नहीं, यह मालूम नहीं ।

यदि तोरूदत्त जीवित होतीं तो आज उनकी कविता अत्यन्त उच्च श्रेणी की होती । एडमण्ड गॉस ने सच कहा है कि कोई भी ऐसा साहित्यिक सम्मान नहीं, जो इस बालिका की पहुँच के बाहर होता, जिसने २१ वर्ष की अवस्था में एक विदेशी भाषा में इतने स्थायी सौन्दर्य की कविता की थी । कौन कह सकता है कि यदि तोरूदत्त और कुछ दिनों जीतीं तो माइकेल मधुसूदन दत्त और रवीन्द्रनाथ टैगोर के समान उनका भी नाम आज विश्व-विख्यात और अग्रगण्य न होता ?

फूल तो दो दिन बहारे जाँफ़िज़ाँ दिखला गए !
हसरत उन गुञ्चों पै है, जो बे-खिले मुरझा गए !!



लॉर्ड-ऑर्डिनेन्स की चिन्ता

"क़िस्मत की बदनसीबी को सय्याद क्या करे"

बेचारे लॉर्ड इर्विन शिमला-शिखर से ऑर्डिनेन्स रूपी चट्टानों की वर्षा करके हार गए, पर वर्तमान आन्दोलन टस से मस नहीं हुआ !

"गिला तक़दीर का है बे-सबब तक़दीर वालों को"

धर्म और भगवान—मृत्यु-शय्या पर

[श्री० पृथ्वीपालसिंह जी, बी० ए०]



संसार भर में परिवर्तन हो रहा है। धर्म, समाज और सभ्यता—सभी अपना-अपना चोला बदल रहे हैं। क्रान्ति की दावाग्नि ने अपना आधिपत्य कहाँ नहीं जमा लिया है? पर सफ़ेद बालों वाले बूढ़े नेता अपनी वही फटी हुई पुरानी डफ़ली बजा-बजा कर बाबा आदम के समय के बेसुरे राग अलाप रहे हैं। भले ही देश ग़ारत हो जाय, समाज रसातल को चला जाय; परन्तु वे अपने पुरखों की बताई हुई लकीर पीटते चले जायँगे! अगर कोई पते की बात बताएगा, सच्चा रास्ता सुझाएगा तो उस पर बेतरह आग-बबूला हो उठेंगे। पुरानी लकीर के फ़क़ीर बुज़ुर्गों को नवीनता में हलाहल नज़र आता है, प्रलय का दृश्य दिखाई पड़ता है। दिखाई दे, उन्हें भले ही क़यामत का नज़्ज़ारा दिखाई दे, समय का प्रबल प्रवाह किसी के रोके न रुकेगा। क्रान्ति की लपट से कोई न बचेगा। जो अपने बुद्धि-बल और पौरुष के मद में चूर होकर, रास्ते में खड़ा होकर रोड़े अटकाने की चेष्टा करेगा, वह पिस जायगा।

रूस में लेनिन ने जब सर्व-प्रथम 'धिक धर्म, धिक भगवान' की आवाज़ बुलन्द की थी, उस घड़ी धर्म के पुजारी और भगवान के उपासक लेनिन के ख़ून के प्यासे हो उठे थे। लेनिन ने बड़ी निर्भीकता से अपने हृदय के क्रान्तिकारी विचारों को रूस के उत्तेजित, उमड़ते हुए जन-समूह को सुनाया था। लेनिन ने कहा था—"धर्म लोगों के लिए अफ़ीम के समान है। धर्म द्वारा मनुष्य-समाज पर घोर आध्यात्मिक अत्याचार तथा अतिशय अनिष्ट होता है। आज लाखों की संख्या में मज़दूर और किसान भूखों मर रहे हैं और पूँजीपति उनकी इस करुण अवस्था पर मूँछों पर ताव दे-देकर व्यङ्ग की हँसी हँस रहे हैं! धर्म सिखाता है कि यह अत्याचार, यह अन्धेर चुप-चाप मूक पशुओं की तरह सहते रहो, क्योंकि यह तो सारी भगवान की देनी है और भाग्य का खेल है। धर्म ग़रीबों को भावी स्वर्ग के काल्पनिक सुनहले चित्रों को दिखा-दिखा कर उन्हें अपने माया-पाश में फँसा कर इस लोक में नारकीय जीवन व्यतीत करवाता है। और दूसरी ओर उन ग़रीबों का ख़ून पी-पीकर कुप्पा होने वाले धन्नासेठों को धर्म चाँदी के कुछ टुकड़ों के व्यय से ही, उन्हें सारे पापों से मुक्त कर देता है और उन्हें स्वर्ग का अधिकारी बना देता है! ऐसा धर्म सचमुच मनुष्य-समाज के लिए अफ़ीम के समान है।" इन शब्दों को सुन कर रूस के उन दीन-दरिद्र श्रमजीवियों का सारा क्रोध काफ़ूर हो गया। लेनिन की उस वक्तृता में उसके सच्चे हृदय की अन्तर्ध्वनि थी, उसमें वेदना थी, कसक थी तथा रूस के उन पददलित, दीन-हीन, दुखी किसानों और मज़दूरों के प्रति अलौकिक सहानुभूति की अनोखी झलक थी! उन निस्सहाय दुखियों को तो कर्णधार मिल गया। जो रूसी किसान और मज़दूर लेनिन के रक्त के प्यासे थे, वे ही धीरे-धीरे उसके पुजारी बन गए और बात की बात में धर्म और भगवान को रूस से निर्वासित कर दिया। आज रूस में कृषकों की झोपड़ियों में जाकर देखिए, तो जहाँ पर ईसा और मेरी की प्रतिमाओं पर दीपक जलाए जाते थे, वहाँ लेनिन के चित्रों की पूजा होती है और उसके क्रान्तिकारी भावों का शङ्ख फूँका जाता है! रूस में अनेक गिर्जाघर, मन्दिर और मसजिद मिसमार कर दिए गए; जो बच गए वे क्लब, घर, पाठशाला और कोठार के रूप में दिखाई देते हैं! उन देव-मन्दिरों में महात्मा, साधुओं के चित्रों के स्थान पर, लेनिन और स्टैलिन के चित्र सुशोभित हो रहे हैं तथा बाइबिल से उद्धृत सूत्रों की जगह पर कार्ल-मार्क्स और लेनिन के प्रभावोत्पादक वक्तव्य अङ्कित दिखाई देते हैं। जो गिर्जाघर कभी अपने तड़क-भड़क और शृङ्गार के लिए प्रसिद्ध थे, वे आज सादगी और सरलता के आगर बन रहे हैं! उनमें प्रवेश करते ही, विराट अक्षरों में अङ्कित वाक्य—'साम्यवाद ही संसार और समाज को बन्धन-मुक्त करेगा'—आँखों के सामने नाच जाते हैं!!

रूस ने कुछ ही समय में अपना काया-कल्प कर



आधुनिक चीन का निर्माता
डॉ० सनयातसेन

FINE ART PRINTING COTTAGE ALLAHABAD

पुनर्जीवन

मूल-लेखक—महात्मा काउण्ट टॉल्सटॉय

[अनुवादक—प्रोफ़ेसर रुद्रनारायण जी अग्रवाल, बी० ए०]

डाला। संसार रूस की अवस्था में जादू भरा परिवर्तन देख कर, दाँतों तले उँगली दबाता है। क्रान्ति का वास्तविक रूप यही है। पलक मारते ही दुनिया का बदल जाना क्रान्ति का विराटतम स्वरूप है।

आज जब हम ऐसे ही परिवर्तन की कल्पना भारत के सम्बन्ध में करते हैं, तो लोग हँस पड़ते हैं। लोग कहते हैं कि भारतवर्ष रूस नहीं है। माना कि हमारा देश ही धर्म की जन्म-भूमि है, माना कि भगवान की जन्म-भूमि भारत ही है तथा वेद, भगवद्गीता, क़ुरान, इञ्जील सब गङ्गा की तराई की उपज हैं; यदि यह सब सत्य ही हो, तो भी समय और काल की गति को कौन रोक सकता है? सचमुच धर्म का प्रभाव सारे देश में महामारी की तरह फैला हुआ है तथा इस भयङ्कर महामारी के पञ्जों में अधिकांश नर-नारी फँसे हुए हैं! परन्तु सन्तोष की बात है कि ज़माने ने करवट ली है और इस घड़ी परिवर्तन-चक्र तेज़ी से घूम रहा है। बस देश में शीघ्र ही इन पण्डित-पुजारियों, पादरियों तथा मुल्लाओं, उनके भगवान तथा विविध मत-मतान्तरों के विरुद्ध विद्रोह होने ही वाला है। भारतवर्ष के नब्बे फ़ीसदी नर-नारी भूखों मर रहे हैं—न तो उनके पास पेट की आग बुझाने को मुट्ठी भर अन्न ही है और न शरीर ढकने को एक टुकड़ा कपड़ा। धर्म ने निस्सहायों पर प्रहार किया है, उनके मुँहों पर ताले डाल दिए हैं, और उन्हें अपने चरणों के नीचे दबा रक्खा है। बेचारे किसान जो एड़ी से चोटी तक का पसीना एक कर देते हैं, वे खड़े-खड़े टुकुर-टुकुर ताका करते हैं और उनके परिश्रम का मीठा फल उनके स्वामी चख जाते हैं। धर्म कहता है कि स्वामी की सेवा करना तो तुम्हारा फ़र्ज़ है; जो कुछ रूखा-सूखा तुम्हें तुम्हारी सेवा के उपलक्ष में मिलता है, वह तुम्हारे भाग्य का प्रसाद है, उसे ही खाकर, सन्तोष की नींद सो रहो। ग़रीबों की आँतें पसलियों से लग रही हैं, उनके पेटों पर नौबतें बज रही हैं और धर्म खड़ा-खड़ा उन्हें सब्र रखने का उपदेश दे रहा है।

धर्म कहता है—"अछूतों! तुम्हें भगवान ने नीच कुल में पैदा किया है, दास-कार्य तो तुम्हारा कर्त्तव्य है। आजीवन दूसरों के जूतों के तस्मे खोलना तो तुम्हारा धर्म है। तुम्हें ईश्वर ने इसीलिए बनाया है कि तुम द्विजों की सेवा-शुश्रूषा करो और उनके दिए टुकड़ों पर निर्वाह करो। तुम अन्त्यज हो, तुम्हें अधिकार नहीं कि तुम हमारे देव-मन्दिरों में प्रवेश करो तथा हमारे धर्म-ग्रन्थों को स्पर्श भी करो। यदि तुम ऊँचे उठने की चेष्टा करोगे, तो धर्म का वज्र प्रहार—भगवान का कराल-कोप तुम्हारा



कुमारी नटरञ्जन

आप बम्बई के सुप्रसिद्ध पत्रकार श्री० के० नटरञ्जन की पुत्री हैं, जिन्हें कॉङ्ग्रेस की सहायता करने के अपराध में दो मास का कारावास और ६०) रु० जुर्माने का दण्ड दिया गया है।

नाश कर देगा! तुम पतित हो, अस्पृश्य हो, निकृष्ट हो, तुम्हारे स्पर्श से हमारे प्यारे भक्त पतित हो जायँगे, हमारे देवालय छूत हो जायँगे, भगवान रूठ जायँगे तथा हमारा अपमान हो जायगा। सावधान, कहीं मस्तक उठाने का साहस न करना! तुमने मनुष्य का चोला

पाया है तो भी तुम एक विप्र के कुत्ते से पतित हो। तुम्हें ब्राह्मणों के मुहल्लों से निकलने का अधिकार नहीं, तुम्हें द्विजों के कुएँ से जल भरने का हक़ नहीं! शूद्रो! तुम्हारे दृष्टि-प्रहार मात्र ही से विप्र का भोजन अखाद्य हो जाता है! तुम समाज के कोढ़ हो—तुम दूर ही रहो, नीच-कुल में जन्म लेने का दण्ड भोगो। तुम्हारे भाग्य में यही लिखा है और भगवान की भी यही आज्ञा है कि अछूत हो, अछूत बन कर रहो।"

धर्म का यह फ़तवा है। आज भारतवर्ष में धार्मिक अत्याचार और आध्यात्मिक दमन प्रचण्ड रूप धारण किए हुए हैं। कब तक यह अन्धेर और धींगा-धाँगी चल सकती थी? अपना उल्लू सिद्ध करने वाले स्वार्थियों, धर्म और भगवान की रङ्ग-बिरङ्गी झण्डियाँ हिलाने वाले देवताओं का भण्डाफोड़ होना ही था! वह युग लद गया, जब इस प्रकार के धार्मिक फ़तवे संसार के नर-नारियों से इच्छित आचरण करवा लेते थे। इस धर्म ने जाति-पाँति, नीच-ऊँच, हिन्दू-मुसलमान आदि के भाव पैदा कर भाई-भाई का मन-मुटाव करवा दिया है। इस धर्म ने करोड़ों जीवों की आँखों में धूल झोंक कर ईश्वर और देवताओं के काल्पनिक कोप का भय दिखा कर उन्हें नर्क में डाल रक्खा है तथा उन्हें निस्तेज और अकर्मण्य कर रक्खा है। धीरे-धीरे यह माया की चादर सबकी बुद्धि पर से खिसक रही है, भ्रम और धोखे का प्रगाढ़ अन्धकार छिन्न-भिन्न हो रहा है, सभी समझ रहे हैं कि कुछ स्वार्थियों ने ही मिल कर अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए धर्म और भगवान का ढोंग रच कर समाज का जीवन कलुषित कर डाला है!

ऐसा धर्म, जो हमें दूसरों की जूतियों के तल्ले बन कर रहने का आदेश करता है; ऐसा धर्म, जो हममें असमानता के भावों का उद्रेक करता है, उसे कौन दूर ही से प्रणाम न करेगा? रूस का बच्चा-बच्चा किसी समय ईश्वरवादी था, परन्तु जब धर्म के अत्याचार दिनों-दिन बढ़ते ही गए—सारा रूस-समाज पीड़ित हो उठा, तब आग भभक उठी, क्षण भर में रूस-निवासियों ने धर्म का मुँह काला कर, भगवान सहित उसे रूस से बाहर खदेड़ दिया; जितने पोप-पुजारी थे, उन्हें राष्ट्रीय अधिकारों से वञ्चित कर दिया, मठाधीशों की जायदादें सोवियट सरकार ने छीन लीं तथा स्कूलों और कॉलेजों में धार्मिक शिक्षा का निषेध कर दिया गया। यह सब सुन कर भगवान के अन्ध-भक्त तिलमिला उठेंगे। मुँह बा देंगे—लेकिन यह बात सच है कि वह घड़ी दूर नहीं, जब भारतवर्ष भी रूस बन जायगा—तथा यहाँ से धर्म और भगवान् का अस्तित्व ही मिट जायगा। जब रूस में सामाजिक तथा धार्मिक क्रान्ति के लक्षण प्रत्यक्ष झलक रहे थे—और कोने-कोने से नवयुवक चेतावनी दे रहे थे, उस समय गिर्जाघरों में दक़ियानूसी ख़यालात वाले इकट्ठा होकर इन चेतावनियों की ओर लक्ष्य करके ख़ूब क़हक़हे लगाया करते थे। सन् १९२१ में एक दिन एकाएक सोवियट सरकार ने गिर्जाघरों के मालामाल ख़ज़ानों को अकाल-पीड़ित किसानों की सहायता के लिए ख़ाली करवाने की आज्ञा दे दी। फिर क्या था, बड़ा कुहराम मचा। जो लोग उन चेतावनियों की खिल्ली उड़ाते थे, उनके होश फ़ाख़्ता हो उठे। जिन्होंने सरकार की इस आज्ञा का अपमान या विरोध किया, उनकी ख़ूब मरम्मत की गई। अनेकों गोली के शिकार हुए, बहुतेरे जेलों में सड़ा-सड़ा कर कुत्ते की मौत मारे गए, जो शेष रह गए, उन्होंने दुबारा चूँ तक करने का साहस न किया। भारतवर्ष में तो अभी जाग्रति की यह प्रथम प्रभा है—अभी तो इब्तिदा है, आगे-आगे देखिए होता है क्या?

अनर्थ और अनाचार कहाँ तक देखा जाय। कृष्ण-कन्हैया बन कर गोविन्द-भवन में धर्म के एक सुप्रसिद्ध स्तम्भ रासलीला करते थे—भोली-भाली सुकुमार कामिनियाँ धर्म और भगवान की चेरी बन कर उन कृष्ण-कन्हैया के साथ स्वाँग भर-भर कर नृत्य करती थीं! उन 'कृष्ण-कन्हैया' का मारवाड़ी-समाज में बड़ा आदर-सम्मान था। लोग अपने 'मुरली-मनोहर' को प्रसन्न करने के लिए उनके चरणों पर सोने का अम्बार लगा देते थे, अपने 'ठाकुर' की सेवा के लिए अपनी बहू-बेटियों को भेज दिया करते थे। गोविन्द-भवन के 'भगवान कृष्ण' ने सहस्रों बहू-बेटियों की आँखों पर धर्म का पर्दा डाल कर, उनका सतीत्व हरण किया! इस बीसवीं शताब्दी में ऐसे भगवान जगह-जगह रासलीला कर रहे हैं। क्या ऐसे निकृष्ट धर्म को और ऐसे नीच भगवान को कोई भी सभ्य-समाज क्षण भर के लिए अपने यहाँ अतिथि बनाने को तैयार हो सकता है?

यही नहीं, हमारा सारा सामाजिक जीवन ही भ्रष्ट और पतित हुआ जा रहा है। मेलों-ठेलों में जिन्हें जाने का अवसर हुआ है, उन्होंने धर्म और भगवान का नग्न स्वरूप अवश्य ही देखा होगा। जिस धर्म और जिस भगवान के कारण हमें यह जघन्य से जघन्य दृश्य देखने पड़ते हैं, उसे बिना बहिष्कृत किए कल्याण न होगा। यह पण्डे और महन्त, जो अपना अँगूठा धुला-धुला कर भले घर की देवियों को पिलाते हैं; यह सूफ़ी और औलिया, जो भोली-भाली स्त्रियों को पुत्र-दान देते हैं, तथा धर्म की नक़ाब डाले हुए वे गुण्डे, जो देवियों की नाड़ी पर हाथ धर कर रोग का विश्लेषण तथा झाड़-फूँक करते हैं, उनके काले कारनामों से कौन परिचित नहीं? कौन नहीं जानता कि तारकेश्वर के महन्त के चरण हमारी ही नन्हीं-नन्हीं बहिनें देवदासियाँ बन कर दबाती हैं; कौन नहीं जानता कि हमारी ही घर की बहू-बेटियाँ उस भगवान के प्रतिनिधि को थपकियाँ दे-देकर सुलाती हैं? हम सब कुछ जानते-बूझते हुए भी मूक हैं। 'धर्म और भगवान' ही के पर्दे के पीछे आज संसार भर में यह बीभत्स नाटक हो रहा है। इस नारकीय लीला का अन्त करने के लिए हमें धर्म और भगवान—दोनों ही का अस्तित्व मिटाना पड़ेगा। न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी। जिस खूटे के बल आज धर्म का ढोंग रचने वाले आततायी कूदते हैं, हमें उसी का जड़-मूल से नाश करना होगा। यदि हम इसमें सफल हुए तो फिर संसार के सारे झगड़े ही मिट जायँगे। यही भूलोक स्वर्ग बन जायगा !!

यदि हम इतिहास के पन्ने लौटें, तो हमें पता चले कि धर्म और भगवान के कारण संसार में सदैव लड़ाई-झगड़े, रक्तपात तथा भीषण हत्याकाण्ड होते चले आए हैं। सन् १५५५ ई० में, जब कि इङ्गलैण्ड पर हत्यारिन मेरी का शासन था, उस समय टेम्स नदी में निर्मल जल के स्थान पर रक्त की उदधि-धारा प्रवाहित हो रही थी। मेरी 'कैथलिक' थी—वह ईसाई धर्म के पुराने उसूलों और आदर्शों की मानने वाली थी। वह परिवर्तनवादी 'प्रोटेस्टेण्टों' को धर्मद्रोही समझती थी। बस फिर क्या था, लूथर, रॉजर्स, फ़ेरार, क्रेनमर, लैटिमर तथा रिडले आदि—जितने भी देश के प्रमुख प्रोटेस्टेण्ट महात्मा थे, उन्हें मेरी ने, धधकती हुई अग्नि में घास-फूस की तरह झोंक दिया! वे निर्दोष, निरपराध महात्मा, उस धर्म की प्रचण्ड अग्नि में जल कर ख़ाक हो गए! मेरी खड़ी मुस्कराती रही। धर्म की रक्षा करने वाली महारानी मेरी के इन अत्याचारों के कारण इङ्गलैण्ड पर प्रलय के बादल गरजे थे—आग बरसी थी!! इसी धर्म और इसी भगवान के कारण इङ्गलैण्ड में तीस वर्षीय और



श्रीमती कमला बेन

आप उपनगर (बम्बई) की 'डिक्टेटर' हैं, जिन्हें ६ मास का कारावास दण्ड दिया गया है। देवी जी इस समय जेल में हैं।

शत वर्षीय युद्ध हुए थे। निरन्तर सौ वर्ष तक इङ्गलैण्ड में तलवारें चमकती रही थीं तथा भूधराकार तोपों की गरज से इङ्गलैण्ड गूँजता रहा था !!!

उधर हज़रत मुहम्मद ने तो धर्म की नींव ही रक्त-पात द्वारा डाली थी। कहते हैं कि हज़रत मुहम्मद ने

'ख़ञ्जर दिखा-दिखा कर कलमा पढ़ा लिया'—मालूम नहीं यह कहाँ तक सच है। परन्तु इतिहास हमें बताता है कि महात्मा मुहम्मद ने कोरेश व्यापारियों को बड़ी निर्दयतापूर्वक लूटा तथा जहाँ भी गए, इसलाम मत के प्रचार और प्रसार के लिए पृथ्वी रक्त से सींच दी ! पुराने मुर्दे कहाँ तक उखाड़े जायँ ? जब हिन्दुओं का राज्य था, तो उन्होंने अनेक बौद्धों को, केवल इस अपराध पर कि वे बौद्ध थे, बोरों में बन्द करवा कर समुद्र में फिंकवा दिया था ! जब मुसलमानों का राज्य हुआ, तो उन्होंने भी धर्म का वास्तविक नग्न-रूप संसार को दिखाया। धर्म ही की ज्वाला थी, जिसने औरङ्गज़ेब द्वारा अर्जुनदेव का बध कराया था, गुरु गोविन्दसिंह के सुकुमार बालकों को जीवित ही दीवार में चुनवाया था !! इसमें उस व्यक्ति-विशेष का क्या दोष था ? उसने जो कुछ भी किया वह धर्म की रक्षा के लिए और "अल्लाह" को ख़ुश करने के लिए। यदि धर्म और भगवान न होते, तो आज संसार के इतिहास के इतने पन्ने ख़ून से तर-बतर न दिखाई देते !!!

अधिक समय नहीं बीता कि जब कोहाट, कलकत्ता, लखनऊ तथा ढाका आदि स्थानों में मसजिद के सामने बाजा बजाने, गौ-बध आदि प्रश्नों पर धर्म-युद्ध छिड़ गए थे ! इन धर्म-युद्धों में जिनके नन्हें-नन्हें बालकों के कलेजों से लपलपाते हुए छुरे आर-पार कर दिए गए थे तथा जिनकी बहू-बेटियों का सतीत्व लुटा था, उनके दिलों से पूछिए—वे तो एक आँख भी ऐसे धर्म और ऐसे भगवान को नहीं देखना चाहते, जिसके कारण भाई-भाई एक-दूसरे के रक्त का प्यासा बन बैठता है तथा क्षण भर में समाज का सारा वातावरण विषाक्त बन जाता है !!

संसार में होने वाले लड़ाई-झगड़ों, विप्लवों, रक्त-पात तथा हत्याकाण्डों का प्रमुख कारण धर्म और भगवान ही हैं। आज यदि वायु-मण्डल धर्म और भगवान के कुत्सित पचड़ों से मुक्त होता, तो समाज का दृश्य ही कुछ और हो गया होता।

आज भारतवर्ष गुलामी की ज़ञ्जीरों में क्यों जकड़ा हुआ है ? इस सूज़ी धर्म ने विविध रूप धारण कर हमें हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई—अनेक भागों में विभाजित कर दिया है। राजनैतिक समझौता हो कैसे, जितने भी नेता हैं, वे अपने-अपने धर्म और अपने ही धर्म के पुजारियों के हक़ों के वास्ते गला फाड़-फाड़ कर चिल्लाया करते हैं। कोई चिल्ला रहा है कि जब तक सरकारी नौकरियों में तथा छोटे और बड़े लाट की कौन्सिलों में अमुक फ़ीसदी जगहें हमारे लिए निर्दिष्ट न कर दी जायँगी, हम मचले रहेंगे ; स्वराज्य-संग्राम में तुम्हारा साथ न देंगे। दूसरी ओर से आवाज़ आती है कि जब तक हमारी जाति की सङ्केत-सूचक पीले रङ्ग की एक चिट राष्ट्रीय झण्डे में न चिपका दी जायगी, हम स्वातन्त्र्य-युद्ध के पास भी न फटकेंगे। चारों ओर यही तमाशा नज़र आता है। इन धर्म वालों की चख़-चख़ और खट-पट में पड़ कर राष्ट्र पिसा जा रहा है !!!

अल्लाह मियाँ के अगणित रूप और अनेक नाम हैं तथा उन तक पहुँचने के लिए सहस्रों गली-कूचे हैं। जिसे जिधर मन आया, आँख मीच कर उधर ही चल दिया—तभी तो आज समाज में इतनी दलबन्दियाँ और इतनी धाराएँ हो गई हैं। यदि धर्म और भगवान ने आज एक ही कुटुम्ब के भाई-बहिनों को मत-मतान्तरों के झगड़े फैला कर पृथक न कर दिया होता, तो आज वह तैंतीस करोड़ नर-नारी एक ही प्रेम-रज्जु में ग्रथित होते ! आज भारत को स्वतन्त्र कराने के लिए हमें अहिंसा, सत्याग्रह और अनशन ऐसे अस्त्र-शस्त्रों का मुँह न देखना पड़ता ! हमें स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए इतना सर-दर्द न उठाना पड़ता। आज हमें न इस गोलमेज़ कॉन्फ़्रेन्स ही की आवश्यकता होती, न हमें अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए जिन्ना और मुञ्जे ऐसे नेता ही नज़र आते ! भारतवर्ष में न मुसलिम लीग होती और न हिन्दू-सभा। भारत तो इन तैंतीस करोड़ नर-नारियों का एक सुखी परिवार होता और इस भारतीय परिवार का एक ही प्रतिनिधि होता ! हम अपने उसी नायक के इशारों पर चलते। उसके सङ्केत-मात्र ही से भारतवर्ष में ख़ून की नदियाँ बह चलतीं—बैरियों का पता न चलता !! हम अपने जन्म-सिद्ध अधिकारों के लिए एक होकर भीषण युद्ध करते। ब्रिटिश साम्राज्य की क्या बिसात, यदि ऐसी-ऐसी सहस्र शक्तियाँ हमारे विरुद्ध होतीं, तब भी निस्सन्देह विजय हमारी ही होती। बिना एका के यह सब स्वप्न है ! कोसिए अपनी करनी को, रोइए धर्म और भगवान के नाम को, जिसने आज हमको इतनी धाराओं में विभाजित कर हमारा भविष्य अन्धकारमय कर दिया है ! अब भी समय है ; यदि सुबह का भूला शाम तक भी घर

स्थान पर आ जाय, तो भूला नहीं कहाता। हमें अपने उत्थान के लिए आग के साथ खेलना होगा। हमें इसके लिए अभी से शक्ति और साहस सञ्चय करना है। कौन जाने किस घड़ी रण-भेरी बज उठे!

यदि हम अपना कल्याण चाहते हैं, तो हमें भी वही करना होगा, जो ऐसी अवस्था में औरों ने किया है। रूस से धर्म और भगवान का नामोनिशान मिटा देने के लिए नाटक, सिनेमा, रेडियो, अजायब-घर तथा सचित्र व्याख्यानों द्वारा ख़ूब आन्दोलन हो रहा है। कॉलेजों और स्कूलों में धर्म और भगवान के विरुद्ध विद्यार्थियों को शिक्षा दी जाती है। ऐसे शिक्षक जो ईश्वरवादी हैं, उन्हें पदच्युत कर, उनके स्थान पर नास्तिक नियुक्त कर दिए जाते हैं। समाचार-पत्रों को सख़्त हिदायत कर दी गई है कि धर्म-पक्ष-पोषक लेख कदापि न छापे जायँ। मकान-मालिकों को हुक्म है कि धार्मिक संस्थाओं को मकान तथा भूमि किराए पर न दें। देवालय आदि पाठशाला और स्कूल के रूप में परिणत हो रहे हैं! दो ही तीन वर्ष के अनवरत परिश्रम से आज रूस में धर्म-विरोधी नास्तिकों की अपार शक्ति हो गई है। लाखों की संख्या में धर्म-विरोधी नास्तिक बड़ी धूम से अपना मत प्रचार कर रहे हैं। आज उनके कई बड़े-बड़े समाचार-पत्र निकल रहे हैं, जो लाखों की तादाद में पौ फटते ही रूस के कोने-कोने में टिड्डी-दल की तरह फैल जाते हैं! उनका प्रचार-विभाग ख़ूब ही सङ्गठित है—बड़े ढङ्ग से प्रचार-कार्य होता है। उनके प्रचार और उपदेश में भी वैसा ही अन्तर रहता है, जैसा कि स्थिति और वातावरण में भेद होता है। किसानों में जाकर, वे धर्म-विरोधी नास्तिक कहते हैं कि देखो, यह मेघों की घनघोर गर्जना और मूसलाधार वृष्टि तथा विद्युत की तड़प प्रकृति के नियमों के अनुसार ही है, यह किसी देवी-देवता की करनी नहीं है। वे प्रचारक गाँव में जाते हैं, तथा वैज्ञानिक रीति से खेती करके किसानों पर प्रदर्शित करते हैं कि यह उपज कृषि-विज्ञान के नियमों के अनुसार होती है, पूजा-पाठ तथा किसी गुप्त दैवी-शक्ति के प्रभाव से नहीं। वे मज़दूरों में जाकर उन्हें सचेत करते हैं कि धर्म की आड़ लेकर पूँजीपति उनका रक्त-शोषण कर रहे हैं। इसी प्रकार की विभिन्न प्रचारक टोलियों द्वारा आज रूस अपने को धर्म और भगवान के विकट-पाश से मुक्त कर रहा है!!

जिस दिन भारतवर्ष भी इन मत-मतान्तरों के माया-जाल तथा भगवान के विकट पञ्जों से अपने छुटकारे के लिए रण-भेरी बजाएगा, उसी दिन भारत का भाग्य चमक उठेगा। यह तैंतीस करोड़, सब एक हो जायँगे—न कोई हिन्दू होगा न मुसलमान, न कोई सिक्ख



श्रीमती कोहली

आप दिल्ली के महिला-वालण्टियर दल की प्रधान सञ्चालिका थीं, आजकल राष्ट्रीय आन्दोलन में जेल में सज़ा पूरी कर रही हैं।

होगा न ईसाई। आपस में भ्रातृ-भाव होगा—एक अलौकिक स्नेह का स्रोत प्रवाहित हो रहा होगा। हम सब एक माता के लाल कहलाएँगे। न कलह होगी न भेद-भाव। हम अपनी भारत-माता के अधिकारों की रक्षा एक होकर करेंगे। हम सब एक साथ मरेंगे, एक साथ जिएँगे। संसार यह अपूर्व परिवर्तन देख कर चकित हो जायगा!!!



कोरिया का स्वाधीनता-संग्राम

[श्री० मुन्शी नवजादिकलाल जी श्रीवास्तव]



जापान के पास महासागर के किनारे कोरिया नाम का एक छोटा सा देश है। यहाँ की जन-संख्या प्रायः एक लाख और क्षेत्रफल ८९,१८० वर्ग मील है। व्यवसाय-वाणिज्य के लिए कोरिया, आज से कुछ वर्ष पहिले एशिया के प्रधान देशों में था। कोरियन बड़े परिश्रमी, स्वतन्त्र प्रकृति वाले और अध्यवसायी थे। अपने परिश्रम और अध्यवसाय द्वारा वे अपनी सारी आवश्यकताओं की पूर्त्ति कर लिया करते थे। अभागे भारतवर्ष की तरह उन्हें कपड़े के लिए इङ्गलैण्ड का, और अन्यान्य आवश्यकीय चीज़ों के लिए अन्यान्य विलायतों का मुँह नहीं ताकना पड़ता था। वे अपनी उदर-पूर्त्ति के लिए अन्न और शरीर ढकने के लिए कपड़े स्वयं तैयार कर लिया करते थे। उन्हें न 'ऊधो का लेना और न माधो का देना।' न उन्हें विदेशों में अपना वाणिज्य फैलाने की इच्छा थी और न किसी विदेशी को अपने देश में घुसने देना चाहते थे। राज्य-शासन एक स्वतन्त्र नरेश के द्वारा होता था। उसकी अपनी फ़ौज थी और अपनी पुलिस। राज्य-व्यवस्था एक सुयोग्य मन्त्रि-मण्डल द्वारा होती थी। प्रजा राज-भक्त थी और राजा प्रजा-पालक। प्रजा की भलाई ही राज्य-शासन का उद्देश्य था। गर्ज़ कि कोरिया एक सुखी और समृद्धिशाली देश था।

परन्तु कोरिया का यह विभव और कोरियनों की स्वतन्त्रता साम्राज्य-लोलुप जापान से न देखी गई। उन्नीसवीं शताब्दी में, जापान के सम्राट मिकाडो महोदय ने कोरिया-नरेश के पास अपना एक दूत भेज कर वहाँ अपना व्यापार फैलाने की इच्छा प्रकट की, परन्तु चीन को यह बात नहीं जँची। उसने जापान की इस चेष्टा में बाधा डालनी आरम्भ की। कोरिया-नरेश सम्पूर्ण स्वतन्त्र होने पर चीन-सम्राट के पुराने मित्र थे। इसलिए चीन की सलाह मान कर उन्होंने जापान की प्रार्थना अस्वीकृत कर दी। जापान इससे कुछ रुष्ट हुआ, पर हताश नहीं। उसने सन् १८९२ में हिडेयोशी नाम के एक चतुर और धूर्त जापानी को अपना दूत बना कर कोरिया भेजा। हिडेयोशी असाधारण बुद्धिमान और कूटनीतिज्ञ मनुष्य था। उसने नाना छल-छन्दों का आश्रय लेकर कोरियनों पर जापान की वदान्यता और सौजन्यता का प्रभाव डालना आरम्भ किया। परन्तु कोरियन निरे मूर्ख न थे। वे शीघ्र ही हिडेयोशी को पहचान गए और चीन की मदद से उसे अपने राज्य से निकाल बाहर किया। साथ ही जापानियों के लिए कोरिया का द्वार भी बन्द कर दिया गया। परन्तु सारे एशिया प्रान्त पर साम्राज्य-विस्तार की आकांक्षा रखने वाले जापान को यह कब मन्ज़ूर था? उसने कोरिया-सरकार की इस निषेधाज्ञा को ठुकरा कर गुप्त रूप से अपने देश के वणिकों को कोरिया भेजने का निश्चय किया। सन् १८७६ में कुछ जापानी बनिए चोरी से कोरिया में घुस आए और अपना माल बेचने की चेष्टा करने लगे। जब कोरियनों को इस बात का पता लगा तो कोरियनों के एक दल ने उन्हें जान से मार डाला। इससे नाराज़ होकर जापान की सरकार कोरिया के विरुद्ध युद्ध का आयोजन करने लगी। कोरिया का राजा एक कमज़ोर दिल का आदमी था। जापान के आयोजन का समाचार पाकर वह डर गया; और सन्धि के लिए प्रार्थना करने लगा। जापान तो यह चाहता ही था। सन्धि हुई और उसके अनुसार उसे कोरिया के प्रधान बन्दरगाह पर अबाध रूप से वाणिज्य करने का अधिकार मिल गया। इसके बदले में जापान की सरकार ने कोरिया-सम्राट की पूर्ण-स्वतन्त्रता स्वीकार कर ली। उद्देश्य यह था कि कोरिया को चीन के मित्रता-पाश से मुक्त कर लिया जाय।

इसके बाद से जापान धीरे-धीरे कोरिया को अपने चङ्गुल में फँसाने लगा। छल-बल तथा कौशल से सारे कोरिया में अपने व्यापार का विस्तार करने लगा। इस

समय अमेरिका और रूस की नज़र भी कोरिया पर पड़ी। संसार की ये दोनों प्रबल शक्तियाँ भी कोरिया में अपने वाणिज्य का विस्तार करने की चेष्टा में लगीं। परन्तु विख्यात रूस-जापान समर के कारण जापान का ही प्रभाव कोरिया पर रहा। अमेरिका और रूस की दाल नहीं गलने पाई। जापान का प्रभाव कोरिया पर जैसे-जैसे विस्तार-लाभ करने लगा, वैसे ही वैसे उसकी स्वेच्छा-चारिता भी दिन दूनी और रात चौगुनी तरक़्क़ी करने लगी। धीरे-धीरे कोरिया का दुर्बल-हृदय राजा सम्पूर्ण रूप से जापान के शिकञ्जे में कस गया। कोरिया की सारी शासन-व्यवस्था जापान की आज्ञा अथवा परामर्श के अनुसार होने लगी। कोरिया की विशेषता और स्वतन्त्रता जापान के उदर में चली गई और वह जापान साम्राज्य का एक अङ्ग माना जाने लगा!

परन्तु कोरिया की प्रजा ने इस व्यवस्था को बिलकुल पसन्द नहीं किया। उसने एक जातीय दल का सङ्गठन कर जापान की स्वेच्छा-चारिता का विरोध आरम्भ किया। ज़ोर-शोर से आन्दोलन होने लगा। जापान की सरकार ने भी उग्र मूर्ति धारण की। प्राण-दण्ड, निर्वा-सन और कारादण्ड का बाज़ार गर्म हो उठा। राष्ट्रीय दल के प्रधान नेता श्री० सीक्रूमेनरी को फाँसी की आज्ञा दी गई और इससे पहले उन्हें सात महीने तक लोहे की ज़ञ्जीरों में जकड़ कर कालकोठरी में रक्खा गया! मातृभूमि के उद्धार के लिए इस वीर पुरुष ने जितने अत्याचार सहे, उतने बहुत कम देशभक्तों को नसीब हुए होंगे। अन्त में दीर्घ छः वर्षों के बाद उस अभागे को मुक्ति मिली। भूल से एक दूसरा व्यक्ति फाँसी पर लटका दिया गया। इसलिए बेचारे सीक्रू-मेनरी का प्राण बच गया। इसके बाद वह अमेरिका चले गए और दर्शन-शास्त्र की आलो-चना में समय अतिवाहित करने लगे।

अब जापान की स्वेच्छाचारिता और भी अबाध गति से चलने लगी। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के परिचालन के लिए कोरियन मन्त्री की जगह जापानी मन्त्री नियुक्त हुआ! पोस्ट और तार-विभाग पर जापान ने अपना सम्पूर्ण अधिकार जमा लिया। बिना अनुमति के कोरियन राज-नीतिक सङ्घ स्थापित करने की मुमानियत कर दी गई।



कुमारी कृष्णा नेहरू

आप पं० मोतीलाल जी नेहरू की छोटी पुत्री हैं, जिन्हें 'जवाहर-सप्ताह' के जुलूस में, जो ग़ैर-क़ानूनी क़रार दे दिया गया था—शामिल होने के अपराध में ५०) रु० जुर्माना या एक मास के जेल की सज़ा दी गई थी। जुर्माना किसी गुमनाम व्यक्ति के जमा करने पर देवी जी छोड़ दी गईं। आजकल आप अपने पिता की सेवा-शुश्रूषा करने के लिए उनके साथ कल-कत्ते गई हुई हैं।

सारे राजनीतिक काग़ज़ात पर जापानी सेन्सर ने अपना अधिकार जमा लिया! जिन कोरियनों ने जापान की स्वेच्छाचारिता का विरोध किया था—या जिन लोगों ने

अख़बारों में उसकी आलोचना की थी, वे जेलख़ानों में बन्द कर दिए गए। इनमें जो बाक़ी बचे, कोरिया से निकाल दिए गए! कोरिया में मज़दूरी करने के लिए हज़ारों जापानी कुली बुलाए गए और यह नियम बना दिया गया कि इन कुलियों पर कोरियन-सरकार का कोई आधिपत्य नहीं रहेगा। इसका परिणाम यह हुआ कि जापानी कुली दिन-दहाड़े कोरियन गृहस्थों को लूटने-पीटने और हत्या करने लगे! सारे देश में चोरी, लूट तथा मार-पीट का बाज़ार गर्म हो उठा और कोरियन-सरकार चुपचाप यह तमाशा देखने लगी। कोरिया को सम्पूर्ण रूपेण हड़प जाने के लिए वहाँ के शहरों के नाम तक बदल कर, जापानी नाम रक्खे जाने लगे! इसके बाद सारे देश में 'सामरिक नियम' (मार्शल लॉ) जारी कर दिया गया! और इसी सामरिक क़ानून के बहाने समस्त देश की रेलवे लाइनों के आस-पास की भूमि अत्यन्त स्वल्प मूल्य देकर ख़रीद ली गई और जापानी बसा दिए गए! इस तरह सारा कोरिया जापानी उपनिवेश बन गया। जापानियों ने बड़ी-बड़ी इमारतें बना लीं। अपने कारख़ाने खोले, और दूकानें स्थापित कीं।

परन्तु, इतने से ही जापान की मनोकामना पूरी न हुई। उसने कोरिया के दो तृतियांश में जापानियों को बसाने की चेष्टा की। यह जान कर कोरिया की प्रजा एकदम घबरा उठी और जापान की इस मनोवृत्ति का घोर प्रतिवाद आरम्भ हुआ। इतने में जापान-सरकार ने कोरिया के राजा के पास अपना एक दूत भेज कर यह इच्छा प्रकट की कि समस्त अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार जापान-सरकार के अधिकार में रहेगा और कोरिया की शासन-प्रणाली के संरक्षण जापानी मन्त्रियों को सौंप देना होगा! पहले तो कोरिया के सम्राट ने इस प्रस्ताव को नामञ्ज़ूर कर दिया और साफ़-साफ़ कह दिया कि हमें मर जाना मञ्ज़ूर है, परन्तु जापान की यह गन्दी गुलामी मञ्ज़ूर नहीं; परन्तु उस दुर्बल-हृदय मनुष्य में इतनी शक्ति न थी कि अपनी इस प्रतिज्ञा पर अटल रह सकता! शीघ्र ही डर गया और जापान की सारी अन्यायपूर्ण माँगें स्वीकार कर लीं!!

कोरियन युवकों ने यह ख़बर सुनी तो एकदम क्रुद्ध हो उठे। समस्त कोरियन सरदारों और भूतपूर्व प्रधान मन्त्रियों का एक डेपूटेशन सम्राट के पास गया और उनसे कहा गया कि जापान के साथ उन्होंने जो नई सन्धि की है, उसे तुरन्त वापस ले लें। सम्राट ने कहा कि हमने सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर नहीं किया है, परन्तु उन्होंने साफ़ शब्दों में यह नहीं बताया कि किसी नई शर्त के अनुसार उन्होंने सन्धि नहीं की है! सुतराम् जनता ने यह सिद्धान्त कर लिया कि सम्राट ने नई शर्तें स्वीकार कर ली हैं और अब वह झूठ बोल कर प्रजा को धोखे में रखना चाहते हैं। इससे राजभक्त कोरियन सरदारों को इतनी बड़ी मर्म-वेदना हुई कि कितने ही स्वाभिमानी सरदारों ने घर आकर आत्म-हत्या कर ली!! इसका प्रभाव कोरिया के सम्राट के ऊपर भी पड़ा, परन्तु बेचारा अपनी दुर्बलता से विवश था! अन्त में अपने कई पार्श्ववर्तियों की सलाह से सम्राट ने अमेरिकन राष्ट्रपति रूज़वेल्ट के पास अपना एक दूत भेज कर, उनसे केवल सहानुभूति की प्रार्थना की। इससे पहले, सन् १८८२ में अमेरिका की राष्ट्र-सभा ने प्रस्ताव स्वीकार किया था कि कोरिया की स्वाधीनता की रक्षा में सहायता दी जायगी। परन्तु उस प्रतिज्ञा की रक्षा करना तो दूर रहा, प्रेज़िडेण्ट रूज़वेल्ट ने कोरियन दूत से मुलाक़ात तक न की; बल्कि उत्तर में कहला भेजा कि "जो जाति स्वयं अपनी मर्यादा की रक्षा नहीं कर सकती, उस जाति का किसी दूसरी जाति से सहानुभूति की आशा करना पागलपन है।" यह निष्ठुर किन्तु सत्य (!!!) उत्तर सुन कर कोरियन दूत वापस चला आया!!!

हताश कोरिया-सम्राट ने अन्त में हेग-पञ्चायत की शरण ली। उन्हें आशा थी कि कमज़ोर जातियों के हितों की रक्षा की डींग हाँकने वाली हेग की सभा इस मामले में हस्तक्षेप करेगी और अभागा कोरिया जापान के सर्वग्रासी चङ्गुल से बच सकेगा; परन्तु हेग के सरदारों ने कोरियन दूत को सभा में घुसने तक की आज्ञा न दी। वहाँ से भी बेचारे को हताश होकर ही लौटना पड़ा! इधर जापान ने सुना कि कोरिया की सरकार ने बिना उसकी अनुमति लिए ही हेग की सभा में दूत भेजा था, तो वह आगबबूला हो उठा और कोरिया के सम्राट को सिंहासनच्युत करके, उसके हीन-वीर्य लड़के को कोरिया का राजा बनाया और उससे अपनी नई शर्तें भी स्वीकार करा लीं! इस शर्त के अनुसार क़ानून बनाने तथा

जॉनबुल

भारत

वायसराय

“परिस्थिति पूर्णतया हमारे हाथ में है”

FINE ART PRINTING COTTAGE ALLAHABAD



हिन्दू समाज

भारतीय महिला

नवीन राजकर्मचारी नियुक्त करने का सारा अधिकार जापानी मन्त्रियों के हाथ में चला गया। अस्तु।

कुछ दिनों के बाद, प्रेज़िडेण्ट रुज़वेल्ट के मरने पर उनके पुस्तकालय में एक पर्चा मिला। उससे मालूम हुआ कि कोरिया की स्वतन्त्रता छीनने में जापान की सहायता करने के लिए वह वचन-बद्ध हो चुके थे, इसीसे उन्होंने कोरियन दूत से मुलाक़ात तक न की और न उसके प्रति कोई सहानुभूति ही प्रगट की! हेग की सभा में इन्हीं महात्मा के कारण बेचारे को घुसने तक नहीं दिया गया था; क्योंकि ये ही उस सभा के सभापति थे। साथ ही इस घटना ने यह भी अच्छी तरह साबित कर दिया कि यूरोपियन जातियों का वह गुट, जो शान्ति-सभा के नाम से बना है, पराधीन जातियों को पीसने के लिए ही है!!

इस घटना से कोरिया वाले अत्यन्त हताश हुए और उन्हें मालूम हो गया कि संसार में कमज़ोरों का कोई मददगार नहीं है। गिरिधर कवि के कथनानुसार यहाँ—"सभी सहायक सबल के, दुर्बल कोउ न सहाय; पवन जगावत आग को, दीपहिं देत बुझाय।" ख़ैर, शीघ्र ही कोरियनों की मोह-निद्रा भी भङ्ग हो गई और वे अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए स्वयं कटिबद्ध हुए। इधर जापान ने भी भीषण मूर्ति धारण की। जापानियों के अत्याचार से कोरियनों का अपने देश में रहना तक मुश्किल हो गया। हज़ारों कोरियन अपनी जन्म-भूमि और वासस्थान छोड़ कर मन्चूरिया चले जाने के लिए विवश हुए! इस यात्रा में उन्हें नाना प्रकार की मुसीबतों का सामना करना पड़ा। कितने ही अभागों को भूख, प्यास तथा शीत के कारण रास्ते में ही प्राण विसर्जन कर देना पड़ा! कितने नाना प्रकार के रोगों से मरे और कितने ही डाकुओं द्वारा लूटे गए! परन्तु आश्चर्य है, कि इन तमाम कष्टों के होते हुए भी किसी ने कोरिया वापस आने की इच्छा न की। इससे अनुमान किया जा सकता है कि किस गम्भीर मनोवेदना के कारण इन कोरियनों ने अपना देश परित्याग किया था!

परन्तु अधिकांश कोरियन युवकों को इस तरह अपना देश छोड़ कर भागना पसन्द न था! उन्होंने निश्चय किया कि या तो स्वतन्त्र रहेंगे या स्वतन्त्रता-प्राप्ति की चेष्टा में मर मिटेंगे। उन्होंने 'धर्म-सेना' नाम का अपना एक दल बनाया और कोरिया के दुर्गम बनों तथा पर्वत की कन्दराओं में छिप कर रहने लगे। इस 'धर्म-सेना' के पास लड़ाई का कोई सामान न था। था केवल अदम्य उत्साह और अटूट देश-प्रेम! इन्होंने समय-समय पर छोटे-छोटे हमले करके, अपने जापानी-प्रभुओं के



कुमारी सूरज चुनी

आपको कॉङ्ग्रेस की सहायता करने के अपराध में १००) जुर्माना अथवा १ मास का कारावास दण्ड दिया गया था। जुर्माना न देकर, आपने जेल-यात्रा ही उचित समझा।

आराम में ख़लल डालना आरम्भ किया। इन मुट्ठी भर कोरियन युवकों को पकड़ने के लिए बड़ी-बड़ी चेष्टाएँ हुईं। जापानी फ़ौज और पुलिस ने सिरतोड़ परिश्रम किया, परन्तु सफलता न मिली। उनके अतर्कित आक्रमण से जापानी अफ़सरों की नींद-भूख हराम हो गई!

अन्त में उन्होंने इन उत्साही युवकों के आक्रमणों का बदला लेने के लिए एक पैशाचिक उपाय ढूँढ़ निकाला। अकारण ही गाँव के गाँव जला कर भस्म किए जाने लगे! जो सामने पड़ा, वही तलवार के घाट उतारा गया। असंख्य कोरियन महिलाओं पर भी पैशाचिक अत्याचार हुए। ऐसे-ऐसे राक्षसी कार्य आरम्भ हुए, कि उनका उदाहरण संसार के इतिहास में दुर्लभ है! गाँवों के गिरजाघरों में तमाम स्त्री-पुरुष और बच्चे एकत्र कर लिए जाते थे और गिरजा में आग लगा दी जाती थी! जो प्राण बचाने के लिए भागने की चेष्टा करता था, वह गोली से मार दिया जाता था! सभ्य कहलाने वाले जापानियों ने बेचारे कोरियनों पर जो अत्याचार किए, उसकी कहानी इतनी मर्मस्पर्शी—इतनी रोमाञ्चकारी है कि उसकी कल्पना भी हम नहीं कर सकते! इन अत्याचारों की कहानी पढ़ कर सहसा यह विश्वास नहीं होता कि मनुष्य, मनुष्य पर इतना ज़ुल्म कर सकता है।

अस्तु, इस भीषण अत्याचार की इति-श्री यहीं नहीं हुई। जापान के प्रधान सेनापति वीरवर (!) रोटिची की नज़र कोरिया के ईसाइयों पर पड़ी। उन्हें पता लगा कि जापान के प्रभुत्व के प्रधान बाधक यही पादड़ी हैं। इसलिए सेनापति महोदय ने १४६ पादड़ियों और शिक्षकों को गिरफ़्तार किया। कोरिया के 'सिडल' नामक स्थान में इन अभागों का विचार आरम्भ हुआ। वर्षों तक विचार-प्रहसन चलता रहा। इनमें तीन तो हवालात में ही चल बसे! तेईस को देश निकाले का दण्ड दिया गया!! सौ हत्या करने की साज़िश के अपराध में जेल भेजे गए!!! नाना प्रकार के घृणित और अमानुषिक अत्याचार करके, इनसे अपराध स्वीकार कराया गया था। यद्यपि विचार के समय उन्होंने साफ़-साफ़ कह दिया था कि हम निर्दोष हैं, पुलिस के अत्याचारों से घबरा कर हमने स्वीकारोक्ति पर हस्ताक्षर किया है, परन्तु अदालत ने उनके कथन पर विश्वास नहीं किया। इस विचार-प्रहसन में देश-भक्त बैरनहिचो तथा अन्य पाँच अभियुक्तों को दस वर्ष कठोर कारावास की सज़ा दी गई! अट्ठारह सात-सात वर्ष के लिए जेल भेजे गए, चालीस ६ वर्ष के लिए, और ४२ पाँच वर्ष के लिए क़ैद रक्खे गए और न्याय की नाक की रक्षा के लिए सत्तर बेदाग़ छोड़ दिए गए! हवालात में इन अभागों पर जो अत्याचार किए गए थे, उसका वर्णन प्रकाशित करने की उन्हें कोई सुविधा न दी गई थी; परन्तु तो भी अमेरिका तथा यूरोप में इस जापानी निष्ठुरता की घोर निन्दा हुई। यहाँ तक कि जापान को इस मामले के पुनर्विचार के लिए बाध्य होना पड़ा; और क़ैदियों को अपनी सफ़ाई के साथ ही पुलिस के अत्याचारों की कथा-कहानी सुनाने की पूर्ण सुविधा और स्वतन्त्रता दी गई। एक अपराधी ने अपील-अदालत के सामने पुलिस के अत्याचार का जो रोमाञ्चकारी विवरण सुनाया था, उसे सुन कर लोग हैरान हो गए। हवालात में अपराध स्वीकार कराने के लिए उन पर ऐसे-ऐसे भीषण अत्याचार हुए, जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता।

अस्तु, प्रायः डेढ़ महीने के बाद पुनर्विचार समाप्त हुआ। निन्नानवे मनुष्य—जिन पर भीषण अपराध लगाए गए थे और जो दस-दस वर्षों के लिए जेल भेजे गए थे, या आजन्म कालेपानी की सज़ा पाए हुए थे, निरपराध साबित हुए। छः अपराधियों को दो-दो साल की साधारण सज़ा दी गई। परन्तु यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि अपील-अदालत में पुलिस हत्या तथा राजद्रोह का अपराध प्रमाणित नहीं कर सकी। केवल निम्न अदालत की मान की रक्षा के लिए दर्जनों आदमियों को जेल जाना पड़ा।

इस समय यूरोप का महासमर समाप्त हुआ था। प्रेज़िडेण्ट विलसन ने विश्व-राष्ट्र-सङ्घ सङ्गठित करने की घोषणा प्रकाशित की। साथ ही यह भी आशा दी गई कि छोटे-छोटे राष्ट्रों की स्वाधीनता स्वीकार की जाएगी। कोरियावासी इससे अत्यन्त आनन्दित हुए और पेरिस के अधिवेशन में अपना एक प्रतिनिधि भेजने की चेष्टा करने लगे। अमेरिका प्रवासी तीन कोरियन प्रतिनिधि निर्वाचित हुए। किन्तु उन्हें अमेरिका से पेरिस जाने के लिए 'पास-पोर्ट' ही नहीं मिला। 'किउसिक किन' नाम का कोरियन प्रतिनिधि किसी तरह पेरिस पहुँचा भी तो उससे मित्र राष्ट्रों में प्रतिनिधियों ने मुलाक़ात ही न की।

अब कोरियनों को अच्छी तरह मालूम हो गया कि स्वयं मरे बिना स्वर्ग नहीं दिखाई देता। नवयुवकों ने निश्चय किया कि जापान के पशु-बल का उत्तर पशु-बल द्वारा ही दिया जावे; परिणाम चाहे जो कुछ भी हो।

परन्तु नेताओं ने ऐसा नहीं करने दिया, उन्होंने असहयोग का अवलम्बन करने की सलाह दी।

इसी समय कोरिया के सिंहासनच्युत सम्राट के मृत्यु की घोषणा प्रचारित हुई। कोरियन नेताओं ने इस अवसर से लाभ उठाया। सम्राट का अन्तिम संस्कार जातीय भाव से किया गया और साथ ही स्वाधीन प्रजातन्त्र की घोषणा भी प्रकाशित कर दी गई। नेताओं ने स्वाधीनता का एक घोषणा-पत्र तैयार किया और विश्वस्त मनुष्यों द्वारा उसकी नक़ल कोरिया के प्रत्येक नगर और गाँव में भेज दी गई। सम्राट के अन्तिम संस्कार के दिन प्रत्येक प्रमुख स्थान में एक महती सभा करने का आदेश दिया गया और यह भी निश्चय हुआ कि इसी दिन स्वाधीनता की घोषणा भी कर दी जावे। इस घोषणा-पत्र की हज़ारों प्रतियाँ छपवा कर विद्यालयों के विद्यार्थियों को दे दी गई थीं और उन्हें हिदायत कर दी गई थी कि जिस समय सम्राट के संस्कार की सभा समाप्त होने पर हो, उसी समय वे इसे पढ़ना आरम्भ कर दें। इधर जापानी अधिकारियों ने घोषणा की थी कि सम्राट के समाधि के दिन कोई सभा न की जाए। परन्तु कोरियन नेताओं ने निर्दिष्ट तिथि से एक दिन पहले ही समाधि-दिवस मना डालने का सङ्कल्प कर लिया था। साथ ही इस बात की सिरतोड़ चेष्टा भी की गई थी कि इसी दिन स्वाधीनता की घोषणा भी कर दी जावे। यह सारा आयोजन अत्यन्त गुप्त रीति से किया गया था। जापानी अधिकारियों को इस आयोजन की बिलकुल ख़बर न थी।

स्वाधीनता-प्रेमी कोरियन नायकों ने जिस ढङ्ग से अपने देश की स्वाधीनता की घोषणा की थी, वह बड़ा ही रोचक है। उन्होंने जो घोषणा-पत्र तैयार किया था, उस पर तैंतीस प्रमुख नेताओं के हस्ताक्षर थे। उन्होंने जापानी अफ़सरों को एक 'प्रीति-भोज' देने का आयोजन किया। जब आहारादि सम्पन्न हो गया और जापानी प्रभुगण अपनी स्तुतिवाद सुनने की आशा में बैठे थे, उसी समय राष्ट्रीय दल के प्रधान ने घोषणा-पत्र निकाल कर गम्भीरतापूर्वक पढ़ना आरम्भ किया। जापानी अफ़सर यह लीला देख कर अवाक् रह गए। इसके बाद प्रधान ने टेलीफ़ोन उठाया और पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट को ख़बर दी कि हम लोगों ने पूर्ण स्वाधीनता की घोषणा कर दी है, इसलिए गिरफ़्तार करने के लिए आप क़ैदियों की गाड़ी लेकर फ़ौरन चले आइए। हम आपके शुभागमन की प्रतीक्षा में हैं। थोड़ी देर के बाद सुपरिण्टेण्डेण्ट महोदय गाड़ी लेकर आ पहुँचे और बत्तीस नेताओं को उन्होंने गिरफ़्तार कर लिया। तैंतीसवें सज्जन किसी



श्रीमती चमेली देवी गुप्ता

आप राष्ट्रीय महिला-समिति की प्रेज़िडेण्ट हैं। विगत २३ जुलाई को 'पिकेटिङ्ग ऑर्डिनेन्स' के अनुसार ४ मास और एक अङ्गरेज़ कर्मचारी के अशिष्ट व्यवहार के लिए उसे एक घूँसा लगाने के अपराध में २ मास—कुल छः मास के लिए जेल भेजी गई थीं। विजयदशमी के दिन जेल ही में आपके पुत्र उत्पन्न हुआ, जो ६ दिन जीवित रह कर चल बसा। बीमारी के कारण आपकी हालत चिन्ताजनक होने से बालक की मृत्यु के दूसरे दिन आप जेल से मुक्त कर दी गई थीं। अब आपका स्वास्थ्य सुधर रहा है।

आवश्यक कार्य में लगे रहने के कारण भोज-सभा में, उन लोगों के गिरफ़्तार हो जाने के बाद आए, इसलिए उन्हें गिरफ़्तार होने के लिए अपनी ही गाड़ी पर कोतवाली जाना पड़ा।

जिस समय इन वीर बन्दियों की गाड़ी कोतवाली की ओर जाने लगी थी, उस समय 'कोरिया माता' की जय-ध्वनि से आकाश गूँज उठा। जापानियों ने आज्ञा दी थी कि जो कोरियन अपने पास जातीय झण्डा रक्खेगा, उसे फाँसी की सज़ा दी जाएगी, परन्तु कोरियन आज इस आज्ञा को भूल गए थे। उस दिन प्रत्येक गृह-चूड़ा पर राष्ट्रीय झण्डा फहरा रहा था—प्रत्येक कोरियन के हाथ में राष्ट्रीय पताका थी। आज वे स्वाधीन थे, मौत का डर उन्हें विचलित नहीं कर सकता था।

कोरियन वीरों की स्वाधीनता की घोषणा संसार के इतिहास में एक चिरस्मरणीय और स्वाधीनता चाहने वाली जातियों के लिए एक आदर्श वस्तु है, इसलिए उसका मर्मानुवाद यहाँ दे देना अनावश्यक न होगा। वह चिरस्मरणीय घोषणा इस प्रकार थी:—

"इस घोषणा-पत्र द्वारा हम लोग कोरिया देश तथा कोरियावासियों की स्वाधीनता की घोषणा करते हैं। संसार की समस्त जातियों को समान अधिकार प्राप्त हो और हम भी अपने जन्म-सिद्ध अधिकारों को प्राप्त कर अपने उत्तराधिकारी वंशधरों को उसका अधिकार प्रदान करते हैं।

"भगवान की शुभ-इच्छा हमारी सहायक हो। इस नए युग में हमारी पाँच हज़ार वर्षों की स्वाधीनता को हमारे प्रायः दो करोड़ देशवासी स्वीकार कर रहे हैं। स्वाधीनता मानव जाति का न्यायपूर्ण अधिकार है। यह स्वाभाविक अधिकार मिटा देने की चीज़ नहीं है। कोई भी हमारे इस अधिकार का ध्वंस या अपहरण नहीं कर सकता।

"जब संसार की समस्त मानव जातियाँ मनुष्यत्व के नए युग की ओर अग्रसर हो रही हैं, उस समय हम लोग, जो सैकड़ों वर्षों के स्वाधीन हैं, दुर्भाग्यवश उसी पुराने युग में पड़े हुए हैं। विगत दस वर्षों से विदेशी शासन की दुस्सह यन्त्रणा हम लोग भोग रहे हैं। जीवन के सुख से हम लोग वञ्चित हो रहे हैं। कोरिया के विदेशियों के हाथ में चले जाने से हमारी सारी स्वाधीन चिन्ताएँ सङ्कुचित हो गई हैं। जातीय जीवन की समस्त मर्यादा हीन हो गई है और आधुनिक युग के ज्ञान-विज्ञान के विकाश की सारी सुविधाएँ हमसे छीन ली गई हैं।

"वास्तव में यदि अतीत युग के दोषों का संशोधन करना हो, यदि वर्तमान समय के दुस्सह कष्ट का अवसान करना हो, यदि भविष्य के लिए इस अत्याचार को असम्भव बना देना हो और स्वाधीन भाव से काम करने का अधिकार पुनः प्राप्त करना हो, यदि पृथ्वी की अन्यान्य जातियों के साथ उन्नति-पथ की ओर अग्रसर होना हो, अपने भावी वंशधरों को दुखपूर्ण घृणित पराधीनता-शृङ्खला से विमुक्त करना हो और उन्हें अविच्छिन्न सुख-सौभाग्य का अधिकारी बनाना हो, तो सब से पहले कोरियावासियों को पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करना चाहिए। अगर हममें प्रत्येक मनुष्य के अन्दर दृढ़ सङ्कल्प हो, तो सत्य के लिए, न्याय के लिए एक सूत्र में ग्रथित होकर दो करोड़ कोरियावासी क्या नहीं कर सकते? पृथ्वी पर ऐसी कौन सी शक्तिशालिनी जाति है, जो हमारे उद्देश्य-साधन में बाधा प्रदान कर सकती है? ऐसा कौन सा कार्य है, जिसे हम नहीं कर सकते?

"हमारे प्रति जापानियों का अन्यायपूर्ण व्यवहार, हमारी सभ्यता के प्रति उनका घृणा प्रकाशित करना अथवा उनकी स्वेच्छाचारिता के सम्बन्ध में आलोचना करने की हमारी इच्छा नहीं है। अपनी हीन दशा के लिए हम स्वयं ज़िम्मेदार हैं। इस समय क्या दूसरे का दोषान्वेषण करने में अपना मूल्यवान समय अतिवाहित करना हमें उचित है? अब बीती बातों के लिए सोच-विचार करना वृथा है। हम अब अपने भविष्यत् के लिए सौभाग्य-सौध निर्माण करने में लगेंगे। अब हम अपने गृह-संस्कार में अपनी सारी शक्ति और सामर्थ्य लगा देंगे। किसने हमारे गृह का ध्वंस किया है, और किस कारण से हमारी यह दुरवस्था हुई है, इन बातों पर विचार करने की फ़ुर्सत हमें नहीं है। अपने सरल विश्वास के अनुसार भविष्य-पथ का कूड़ा-कर्कट साफ़ करना ही इस समय हमारा कर्त्तव्य है। ईश्वर करे, अतीत के कष्टों का स्मरण कर हमारे मन में विद्वेष तथा हिंसा का उदय न हो। साथ ही, ईश्वर करे, पशु-शक्ति पर विश्वास रखने वाले, न्याय और सत्य से रहित जापानियों को हम अपने आचरण के प्रभाव से न्याय और सत्य के पथ पर ला सकें।

"कोरिया को जापान साम्राज्य में मिला कर दोनों देशों का घोर अनिष्ट साधन किया गया है। इससे

जापान बड़ी तेज़ी से अत्याचार और स्वेच्छाचारिता के पथ पर अग्रसर हो रहा है। अब सत्साहस, सरलता, प्रकृत सहानुभूति और मित्रता की पवित्र वारि-धारा बहा कर तथा अतीत दुर्नीतियों का मूलोच्छेद करने को जापान और कोरिया को सम भाव से सुख और शान्ति का अधिकारी बनाना ही हमारा उद्देश्य होना चाहिए। कोरिया की स्वाधीनता कोरियावासियों को सुख और स्वच्छन्दता प्रदान करेगी, इसमें सन्देह नहीं। साथ ही जापानवासियों को भी कूटनीति और असाधु-पथ से फेर कर सुपथ पर लाएगी। जापान गौरव-मण्डित होकर पृथ्वी के पूर्वीय भाग का प्रकृत रक्षक रूप में विराजता रहे, चीन साम्राज्य से भी जापानी नीति तिरोहित हो। हम लोग नीच क्रोधवश होकर कुछ नहीं कह रहे हैं, समस्त मानव जाति की सब प्रकार से मङ्गल साधना करना ही हमारी आन्तरिक अभिलाषा है।

"हम दिव्य-दृष्टि से एक नए युग के आगमन की बाट देख रहे हैं। पाशविक शक्ति तिरोहित हो रही है, न्याय और सत्य का युग आ रहा है, अतीत के अत्याचार और स्वेच्छाचारिता से ही इस नए युग का आविर्भाव हुआ है। आज का स्थान-भ्रष्ट समस्त पदार्थ, पुनः यथा-स्थान स्थापित होगा। इस नए प्लावन में हम अपनी स्वाधीनता की नौका बहाएँगे, अब क्षण भर की भी देर न करेंगे, किसी का भय भी न करेंगे। एक मन तथा एक प्राण होकर हम समस्त कोरियावासी अन्धकारमय अतीत जीवन से निकल कर प्रकाशमय नवीन जीवन में प्रवेश करेंगे। जिस प्रकार शीत-काल के बाद नव-बसन्त का समागम होता है, उसी तरह हम भी अपने नवीन जीवन में पदार्पण करेंगे। पितृ-पितामहों की पवित्र स्मृति हमारे अन्दर से और संसार की साधु-शक्तियाँ बाहर से हमारी सहायता करेंगी। इसी आशा से अनुप्राणित और आशान्वित होकर हम लोग अग्रसर हो रहे हैं।"

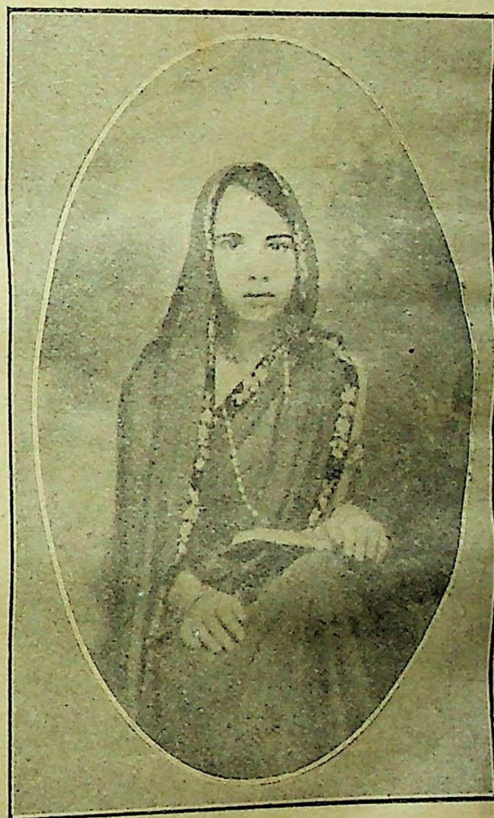
इस घोषणा-पत्र के नीचे तीन बातें और लिखी थीं, उनका सार-मर्म इस प्रकार है :—

(१) "समस्त कोरियावासी स्वाधीनता लाभ करने के लिए व्याकुल हो रहे हैं। उनके अनुरोध से न्याय, सत्य और मनुष्योचित जीवन धारण करने की इच्छा से हम यह घोषणा-पत्र प्रकाशित कर रहे हैं। आशा है, इससे शान्ति भङ्ग न होगी।"

(२) "जो लोग हमारे अनुयायी हैं, उन्हें चाहिए कि वे सदा सन्तुष्ट चित्त से यह बात स्मरण रक्खेंगे।"

(३) "सारा कार्य विशिष्ट शिष्टाचार सहित करना होगा। ताकि अन्त तक हमारा आचरण न्याय-सङ्गत समझा जाता रहे।"

कोरिया के तमाम गाँवों, क़सबों और शहरों में एक ही समय सभा करके जनता को यह घोषणा-वाणी सुनाई गई। नए युग के आगमन की आशा से सारे कोरिया देश में एक नवीन उत्साह परिलक्षित होने लगा। लोगों ने घर-घर आनन्दोत्सव मनाया। कोरियन महिलाओं ने भी इस जातीय महोत्सव में भाग लिया। पुलिस वालों ने अपना चपरास उतार कर जापानी अधिकारियों



कुमारी सरस्वती

आप श्रीमती चमेली देवी गुप्ता की १३ वर्षीय बालिका हैं जिन्हें पिकेटिङ्ग के अपराध में ४ मास का कारावास दण्ड मिला है।

को लौटा दिया। देश को लक्ष्य में रख कर समस्त श्रेणी और सम्प्रदाय के कोरियन घनिष्ट भाव से आपस में मिल गए। इस जातीय आन्दोलन में सब से बड़ी विशेषता यह थी कि सारा कार्य विचित्र शान्ति और गम्भीरता के साथ हुआ। उत्तेजना या उच्छृङ्खलता का कहीं नामो-निशान तक न था। सारे देश में कहीं भी, एक क्षण के लिए भी—शान्ति भङ्ग न हुई। नेताओं ने हिदायत कर दी थी कि जो शान्ति भङ्ग करेगा, वह देश की स्वाधीनता का घातक समझा जाएगा।

उपर्युक्त घोषणा के बाद सारे देश में कोई सभा-समिति न हुई। यह देख कर जापानी अधिकारियों ने स्वाधीनता आन्दोलन को मार डालने के लिए गुप्त आयोजन किया। उन्होंने निश्चय किया कि भविष्य में कोई सभा-समिति न होने दी जावे और अगर कोई सभा-समिति हो तो लाठी द्वारा भङ्ग कर दी जावे। पुलिस को आज्ञा दी गई कि जो कोई आन्दोलन में भाग ले, वह फ़ौरन गिरफ़्तार कर लिया जावे सभा भङ्ग करके जनता को मार भगाने के लिए पुलिस को लाठियाँ और तलवारें दी गईं। नवीन क्षमता और अधिकार पाकर पुलिस वालों ने 'खुल कर खेलना' आरम्भ कर दिया। राह चलते बेचारे कोरियन बुरी तरह घायल और तलवार द्वारा क्षत-विक्षत किए जाने लगे। एक कोरियन मारते-मारते मार डाला गया। सारे कोरिया देश में 'फ़ौजी क़ानून' (मार्शल लॉ) जारी कर दिया गया। पुलिस के अत्याचारों से लोग त्राहि-त्राहि करने लगे। देश भर के स्कूल और कॉलेज बन्द हो गए। अत्याचार, अविचार और अन्याय को अबाध गति दी गई। परन्तु कोरियन एक अपने ध्येय से क्षण भर के लिए भी विचलित नहीं हुए। अन्त में अत्याचार के भय से स्कूल और कॉलेज खोले गए, परन्तु कोई छात्र उनमें पढ़ने नहीं गया। दूकानदारों से दूकान खोलने को कहा गया, परन्तु किसी ने दूकान न खोली। पुलिस के भय से कुछ दूकानदार अपनी दूकान खोल देते और पुलिस हट जाती तो बन्द कर दिया करते! इसी तरह कई सप्ताह तक कई शहरों का सारा कारबार बन्द रहा। परन्तु कहीं भी कोई अशान्ति नहीं हुई।

इस जातीय आन्दोलन में कोरियन छात्रों ने भी काफ़ी उत्साह से भाग लिया था। देश के विद्यालयों के खुलने पर छात्रों ने उनमें प्रवेश नहीं किया। यह देख कर जापान सरकार ने घोषणा की कि जो छात्र विद्यालय से ग़ैरहाज़िर रहेगा, उसे 'सार्टिफ़िकेट' नहीं दिया जायगा। इसके बाद ही शिकल नगर में विश्वविद्यालय के अधिकारियों की सभा हुई और छात्रों को 'उपाधि' ग्रहण करने के लिए बुलाया गया। सभी छात्रों ने इस सभा में योग दिया था। यह देख कर अधिकारियों को परम प्रसन्नता हुई। उन्होंने सोचा, शायद दवा काम कर गई है। कितने ही बड़े-बड़े जापानी राजकर्मचारी भी इस सभा में सम्मिलित थे। यथारीति सभा की कार्यवाही आरम्भ हुई। उपाधि-वितरण कार्य समाप्त हो गया। अन्त में शिष्टाचार की रक्षा के लिए अधिकारियों को धन्यवाद देने के लिए एक छात्र अग्रसर हुआ। जापानी अधिकारियों की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा, वे बड़ी प्रसन्नता से अपनी बड़ाई सुनने के लिए तैयार थे। वक्ता ने अपनी वक्तृता आरम्भ की। सहपाठियों को छात्र-धर्म का आदेश दिया। इसके बाद जेब से अपना जातीय पताका निकाल कर हिलाता हुआ बोला—"यही मेरा अन्तिम वक्तव्य है।"

जापानियों ने यह क़ानून बनाया था कि जातीय पताका रखने वाले को फाँसी की सज़ा दी जाएगी। कोरियन छात्र और छात्रियाँ इस क़ानून से अच्छी तरह वाक़िफ़ थे। किन्तु उनके सामने मातृभूमि की स्वाधीनता की मूर्ति थी। मृत्यु का उन्हें कोई भय नहीं था। अपने साथी को पताका निकालते देख कर अवशिष्ट सभी छात्र और छात्रियाँ उठ कर खड़ी हो गईं, और अपनी जेबों से राष्ट्रीय पताका निकाल कर फहराने लगीं। 'स्वाधीन कोरिया' की जयध्वनि से सभा-भवन गूँज उठा। इसके बाद उन्होंने उच्च स्वर से जापानी अधिकारियों को सम्बोधन करके कहा—"हमारा देश हमें वापस कर दो।" "कोरियावासी दीर्घजीवी हों।" इसके बाद फिर 'स्वाधीन कोरिया' की जयध्वनि से दिशाएँ मुखरित हो गईं और अधिकारियों ने साश्चर्य देखा कि विद्यार्थीगण अपने-अपने उपाधि-पत्र फाड़ कर फेंक रहे हैं!

कोरिया की राजधानी सिउल नगर में छात्रों और छात्रियों ने ज़ोरदार आन्दोलन आरम्भ किया। अधिकारियों की रोक-थाम तथा उनके काले क़ानूनों की परवाह न करके, उन्होंने एक महती सभा की। सारे शहर

के छात्र और छात्रियों ने इस सभा में योगदान किया। पुलिस भी नङ्गी तलवारें लेकर पहुँची और सभा वालों पर भयङ्कर आक्रमण किया। सैकड़ों छात्र और छात्रियाँ घायल की गईं। तीन सौ छात्रों तथा छात्रियों को पुलिस ने गिरफ़्तार कर लिया। घायलों की सेवा-शुश्रूषा को जो 'दाइयाँ' (नर्स) आई थीं, वे भी पकड़ कर हवालात में बन्द कर दी गईं। ये नर्सें पादरी अस्पताल की थीं, इसलिए इनसे यह स्वीकार कराने की चेष्टा की गई कि दाइयों ने भी इस आन्दोलन में भाग लिया है। परन्तु अन्त में जब दाल नहीं गली तो वे सब की सब छोड़ दी गईं।

राजधानी की इन गिरफ़्तारियों की ख़बर शीघ्र ही सारे देश में फैल गई। फिर तो मानो भुस में चिनगारी पड़ गई। हज़ारों छात्र और छात्रियों ने सारे देश में तुमुल आन्दोलन आरम्भ कर दिया। पादरी बालिका विद्यालय की शिक्षयित्री को अधिकारियों ने बुला कर समझाया कि अपने विद्यालय की छात्रियों को आन्दोलन से अलग करो, नहीं तो ख़ैर नहीं। अधिकारियों के डर से उसने चेष्टा भी की, परन्तु कोई फल नहीं हुआ। स्वाधीनता की गगनभेदी ध्वनि से सारा कोरिया गूँज उठा।

इस आन्दोलन का फल यह हुआ कि बहुत सी सम्भ्रान्त महिलाएँ भी राष्ट्रीय पताका लेकर मैदान में उतर पड़ीं। देश के कोने-कोने में अपूर्व उत्साह फैल गया। इधर जापानियों ने भी नीचता की हद कर दी। वे कुल महिलाओं को नङ्गी करके, उन पर बेतों द्वारा प्रहार करने लगे और यथासमय वे कोरियावासियों के सामने नङ्गी की जाने लगीं। यह देख कर स्त्रियों ने ऐसी पोशाक बनवाई कि जो आसानी से खोली न जा सके। किन्तु पशु-शक्ति के सामने उनकी यह चेष्टा व्यर्थ हुई। कितनी रमणियों पर ऐसे घोर अमानुषिक अत्याचार हुए, जिसका वर्णन करते हुए लज्जा से सिर झुका लेना पड़ता है। अत्याचार की गति अबाध कर दी। स्वीकारोक्ति करने से बालिकाओं पर भीषण से भीषण अत्याचार होने लगे। जो बालिकाएँ क़ैदख़ाने में भेजी जाती थीं, उन्हें घण्टों तक घुटनों के बल चलाया जाता था। स्त्रियों के ऊपर होने वाले अत्याचारों की ख़बर पाकर कोरियन युवक खलबला उठे, प्रतिहिंसा की भीषण आग उनके हृदयों में धधक उठी। टङ्गचू नगर में हज़ारों कोरियन युवक अपनी देश-बहिनों के अत्याचार का बदला लेने के लिए एकत्र हुए। नेताओं ने उन्हें शान्त करने की चेष्टा की और अधिकारियों के पास प्रतिनिधि भेज कर कहलाया कि स्त्रियाँ नङ्गी न की जाएँ। इसके उत्तर में उन्होंने कहा कि यह जापान-सरकार द्वारा अनुमोदित क़ानून है और इसे हम असभ्यता नहीं समझते।



श्री० अमृतलाल दलपतभाई सेठ

आप राणपुर (काठियावाड़) से प्रकाशित होने वाले सुप्रसिद्ध 'सौराष्ट्र' पत्र के सम्पादक हैं। आप भी गवर्नमेण्ट के मेहमान बने हुए हैं।

जिस समय जापान का प्रतिनिधि पुलिस के प्रधान कर्मचारी से बातें कर रहा था, उस समय हज़ारों कोरियन कोतवाली के बाहर खड़े थे और ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला कर कह रहे थे, कि या तो औरतों को छोड़ दो या हमें भी क़ैद करो। उत्तेजित जनता का रुख़ देख कर पुलिस के प्रधान कर्मचारी महोदय ने बड़ी बुद्धिमानी से काम लिया और उसी वक़्त चार को छोड़, बाक़ी सभी औरतों

को छोड़ दिया। इनमें एक कोमलाङ्गी युवती को एक पुलिस कर्मचारी ने इतने ज़ोर से लात मारी थी कि बेचारी चल नहीं सकती थी। इसी तरह और भी कई औरतें पीटी और अपमानित की गई थीं। इससे जनता की उत्तेजना इतनी बढ़ी कि अगर कोरियन नेता उन्हें रोकते नहीं, तो पुलिस के लिए जान बचाना मुश्किल हो जाता।

इस घटना के बाद जापानियों का अत्याचार सीमोल्लङ्घन कर गया। धनी, दरिद्र, शिक्षित, अशिक्षित—सभी एक ही लाठी से हाँके जाने लगे। इन अत्याचारों से घबरा कर बीस सम्भ्रान्त कोरियनों ने पुलिस के प्रधान अफ़सर को लिखा कि वह पुलिस वालों को संयत रखने की चेष्टा करे। इसके उत्तर में वे बीस सज्जन धोखा देकर थाने में बुला लिए गए और गिरफ़्तार करके हवालात में भेज दिए गए। इनमें कई सज्जन ७० और ८० वर्ष के बूढ़े, कई जापानियों के ख़ैरख़्वाह और कई आन्दोलन के विरोधी थे। इनमें कई साल तथा डेढ़ साल के लिए और बाक़ी छः-छः महीने के लिए जेल भेजे गए। सारे देश में गिरफ़्तारियाँ होने लगीं। टङ्गचू शहर में तीस कोरियन मार डाले गए और दो सौ पकड़ कर जेल में भेजे गए। सैकड़ों पादरी बेतों से पीटे गए और उनके गिरजे जला दिए गए। सिउल नगर में दो सप्ताह के भीतर सहस्राधिक कोरियन पकड़े और जेल भेजे गए। सरकारी हिसाब के अनुसार, १९१९ ईस्वी की १ली मार्च से १९ जून तक, १ लाख ६६ हज़ार और ८७ कोरियन पकड़े गए, और ८ हज़ार ४१ को सज़ाएँ दी गईं। इन राजनीतिक क़ैदियों पर जेलों के अन्दर जो भीषण अत्याचार हुए उसका वर्णन आसान काम नहीं है। जेल से बाहर आने पर कोई क़ैदी ऐसा न था, जिसके शरीर पर मार के दाग़ न हों। जिस अमेरिकन लेखक के लेख के आधार पर हम ये पंक्तियाँ लिख रहे हैं, उसने लिखा है कि—"हमारे वास-स्थान के निकट प्रति दिन सैकड़ों कोरियन पीटे जाते थे। पहले वे काठ के खम्भों से बाँधे जाते। इसके बाद नग्न करके बेतों तथा लाठियों से बुरी तरह पीटे जाते थे। जब वे मार खाते-खाते बेहोश हो जाते तो उनके मुँह पर शीतल जल के छींटे दिए जाते और होश में आने पर फिर मार पड़ने लगती। कभी-कभी यह अमानुषिक काण्ड बारम्बार किया जाता था। हमें विश्वस्त-सूत्र से मालूम हुआ है कि कितने ही नागरिकों के हाथ-पैर तक तोड़ दिए गए हैं, कितने ही स्त्री-पुरुष तथा बालक-बालिकाओं को गोली मार दी गई है। और कितने ही बच्चों तक की देहों में सङ्गीनें भोंक दी गई हैं। सात सप्ताहों में प्रायः दो हज़ार स्त्री, पुरुष, बालक और बालिकाएँ तलवार के घाट उतार दी गईं। परन्तु इस भीषण काल में कोरियनों का संयम, उद्यम, सहनशीलता देख कर हम आश्चर्य में पड़ गए।"

इतनी यातना और लाञ्छना सह कर भी कोरियनों ने आन्दोलन नहीं बन्द किया। इतने पर भी हज़ारों कोरियन जेल जाने, मार खाने तथा प्राण-विसर्जन के लिए तैयार थे। ज्यों-ज्यों जापानियों का अत्याचार बढ़ता जाता था, त्यों-त्यों कोरियनों का उत्साह भी बढ़ता जाता था। प्रचार-कार्य के लिए उन्होंने 'स्वाधीनता-सम्वाद' नाम का एक पत्र निकाला था। इसकी प्रतियाँ सारे कोरिया में घर-घर पहुँचाई जाती थीं; परन्तु अधिकारियों के हज़ार सर मारने पर भी इस बात का पता न लगा कि वह कहाँ छपता है और उसे कौन घर-घर पहुँचाता है। कभी-कभी वे प्रचारित कर देते थे कि 'स्वाधीनता-सम्वाद' वाले पकड़ लिए गए। उस समय तुरन्त ही 'स्वाधीनता-सम्वाद' की हज़ारों प्रतियाँ छाप कर इधर-उधर वितरण कर दी जातीं!!

धीरे-धीरे कोरिया की अवस्था और भी भीषण हो चली। जापान के बादशाह ने अपने कोरियन प्रतिनिधि को बुला कर सलाह किया और निश्चय हुआ कि और भी दमन हो। गवर्नर ने वहाँ से लौट कर घोषणा की कि जो कोई कोरियनों में राजनीतिक परिवर्तन की चेष्टा करेगा, उसे दस वर्ष के लिए कठिन कारावास की सज़ा दी जाएगी।

यह ख़बर सुन कर कोरियन वीरों ने ख़ूब प्रसन्नता प्रगट की और तेरह प्रदेशों के प्रतिनिधियों ने स्वतन्त्र शासन-पद्धति निर्माण किया। समस्त कोरिया में प्रजातन्त्र की प्रतिष्ठा हुई। सिङ्मैनरी महाशय इस नवीन शासन-तन्त्र के प्रथम राष्ट्रपति निर्वाचित हुए। शिक्षा, शिल्प तथा राजनीति-क्षेत्र में स्त्रियों तथा पुरुषों को समान अधिकार दिया गया। सबको धार्मिक स्वतन्त्रता दी गई। प्रत्येक मनुष्य को स्वतन्त्र रूप से लिखने, बोलने तथा

सरकारी कामों की आलोचना करने की स्वतन्त्रता प्रदान की गई। साधारण सभा-समिति करने, सङ्घ बनाने का सारा अधिकार प्रजा को दिया गया। विश्व-राष्ट्र-सङ्घ द्वारा उपेक्षित होने पर भी उसकी सदस्यता के लिए इच्छा प्रगट की गई। प्रत्येक कोरियन को अपने इच्छानुसार फ़ौज में भर्ती होने का अधिकार दिया गया। इसके सिवा घोषणा की गई कि :—

"हम कोरिया-निवासी आज प्रायः चार हज़ार वर्षों से स्वतन्त्र जाति के रूप में रह कर स्वाधीनता का सुख भोग रहे हैं। हमारी सभ्यता उन्नतिशील और हमारी जाति शान्तिप्रिय है। हमारा भी दावा है कि हम मानव जाति का सर्व विधि कल्याण करें। हमारी सभ्यता समुज्ज्वल और पुरानी है। अपनी जाति की स्वाभाविक तेजस्विता का ख़याल करके अत्याचारित और उत्पीड़ित होने पर भी हम पराधीनता स्वीकार नहीं कर सकते। अपनी जाति की विशिष्टता खोकर, किसी अन्य जाति के साथ सम्मिलित होना हमें मञ्जूर नहीं है! आसुरिक और जड़भावापन्न जापानियों की अधीनता हम किसी प्रकार भी सहन नहीं कर सकते। जापान की सभ्यता हमारी सभ्यता से दो हज़ार वर्ष पीछे की है।

"संसार जानता है कि जापान ने सन्धि भङ्ग की है और हमारे जीवित रहने के अधिकारों को भी छीन लिया है। परन्तु हम यहाँ उसके अत्याचारों की आलोचना करना नहीं चाहते। इस संसार से हमारा अस्तित्व विलुप्त न हो, स्वाधीनता और साम्य का प्रचार करने का हमें अधिकार हो, हमारा सत्य और मनुष्यत्व का दावा बरक़रार रहे, इसीसे स्वतन्त्रता की घोषणा करते हैं।

"हम अपनी सभ्यता की रक्षा के लिए तैयार हैं। परन्तु जापान अपनी पशु-शक्ति द्वारा हमें कुचल रहा है। क्या अखिल-विश्व की महान मानव जाति इन अत्याचारों को चुपचाप सहन कर लेगी? दो करोड़ कोरिया-वासियों की अविचल देश-भक्ति अत्याचारों द्वारा मिटाई नहीं जा सकती। अगर जापान अपने कुकर्मों के लिए अनुतापित न होगा, तो कोरिया भी अब चुपचाप उसे बरदाश्त नहीं करेगा। जब तक एक कोरियन भी जीता रहेगा, तब तक वह अपने शरीर का अन्तिम रक्त-विन्दु देकर अपने देश की स्वतन्त्रता की रक्षा करेगा। हृदय की भक्ति, सङ्कल्प की एकाग्रता और कर्म की निष्ठा द्वारा देश-सेवा का व्रत लेकर हम लोग संसार के सामने अपनी स्वाधीनता और जातीय विशिष्टता की मुक्त-कण्ठ से घोषणा करते हैं।"

बहुत दिनों तक घोर आन्दोलन करने तथा नाना प्रकार के उपायों का अवलम्बन करने पर कोरियनों ने अभी पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त नहीं की है, परन्तु जापानियों द्वारा दिन-रात कुचले जाते रहने पर भी, उन्होंने न तो स्वाधीन होने की आशा ही परित्याग की है और न उद्योग करना ही छोड़ा है। उनकी देश को मुक्त करने की साधना अभी भी जारी है। शरीर और मन की शक्ति की वृद्धि के लिए कोरियन युवकों और युवतियों ने कठोर संयम से काम लेना आरम्भ किया है। अब वे विद्रोह द्वारा देश को स्वतन्त्र कर डालने की चेष्टा में लगे हैं। जो कोरियन युवक विदेशों में विद्याध्ययन कर रहे हैं, वे सभी अपने देश को स्वाधीन कराने के लिए तैयार हैं। ऐसे कोरियन युवकों की संख्या प्रायः दो लाख होगी।

कोरिया एक छोटा सा देश है, किन्तु स्वाधीनता-संग्राम में अद्भुत कार्य करके उसने संसार को चकित कर दिया है। आशा है, उसकी यह कठोर साधना विफल न होगी।

अब पर्दा कहाँ ?

[श्री० प्रकाशदत्त जी, एम० ए०]



पकों का आलोक होते ही सन्ध्या जैसे खिलखिला कर हँस पड़ी। मौलवी रौशनअली साहब कपड़े पहिन कर बाहर जाने के लिए तैयार हुए। इतने में ही उनकी धर्मपत्नी ज़ोहरा बेगम उनके सामने आ पहुँचीं। मुखड़े पर हवाई थी, विरस स्वर में बोलीं—कहाँ जा रहे हो? जान पड़ता है, आज भी कोई मीटिङ्ग है। तुम्हें कितना मने करती हूँ, पर तुम मानते ही नहीं। देखती हूँ कि अब तुम्हें स्वराज्य के मशविरों के सिवा कोई काम ही नहीं रह गया है। ख़ुदा इन स्वराजियों को ग़ारत करे, इन्होंने न जाने कितनी सोने की गृहस्थियाँ ख़ाक में मिला दी हैं!

"ज़ोहरा! ख़ुदा के वास्ते ऐसा न कहा करो। हिन्दोस्तान हमारा मुल्क है। इसी चमन की मिट्टी से हमारा यह जिस्म बना है, और एक दिन इसी चमन की मिट्टी में यह जिस्म मिल जाने वाला है। इस मुल्क की ख़ातिर हमारे इतने फ़रायज़ हैं कि उनकी फ़ेहरिस्त कभी ख़तम नहीं हो सकती, शायद हमारी क़ुरबानी से भी वह फ़रायज़ अदा नहीं हो सकते। ज़ोहरा, क्या अपने इस उजड़े हुए बाग़ को देख कर तुम्हें कुछ भी तर्स नहीं आता?" मौलवी साहब के चेहरे पर मुस्कान थी और कण्ठ में करुणा।

"मैं तुम्हारी बातों की तसकीन करती हूँ। पर एक बात पूछती हूँ। आख़िर अङ्गरेज़ों से तुम लोगों की इतनी दुश्मनी क्यों है? तुम लोग उन्हें हिन्दोस्तान से निकाल बाहर करने के लिए क्यों इतने परेशान हो रहे हो?"

"ज़ोहरा! कहती क्या हो! तुमसे यह किसने कहा कि हम लोग अङ्गरेज़ों के दुश्मन हैं, या उन्हें हिन्दोस्तान से बाहर निकाल देना चाहते हैं? हम तो यह समझते हैं, कि दुनिया में अगर अङ्गरेज़ों के सब से ज़्यादा कोई दोस्त हैं तो वह हम हैं। और हम तो ख़्वाब में भी यह नहीं चाहते कि वह हिन्दोस्तान छोड़ कर चले जाएँ।"

"फिर इतना तूफ़ान किस लिए?"

"यही तो समझने की बात है। हम दुनिया को अपना यह दावा सही करके दिखलाना चाहते हैं कि दुनिया में अङ्गरेज़ों के सब से बड़े दोस्त हमी हैं, और कोई नहीं। पर मौजूदा हालत में यह दावा फ़िज़ूल है। अभी हम ग़ुलाम हैं, और अङ्गरेज़ हमारे बादशाह।"

"तब तुम उनसे क्या चाहते हो?"

"यही कि वह अब हमें ग़ुलाम समझना छोड़ दें, और यह समझने लगें कि हम भी उन्हीं जैसे इन्सान हैं। वह हुकूमत के तर्ज़ को इस तरह से बदल दें कि ग़रीब हिन्दोस्तानी रोज़-रोज़ की मुसीबतों से निजात पाएँ और तरक़्क़ी के मैदान में आगे बढ़ सकें।"

"आख़िर हिन्दोस्तानियों को क्या-क्या तकलीफ़ें हैं?"

"ज़ोहरा! तकलीफ़ों की क्या पूछती हो! बेशुमार हैं, और इनके भार से सारा हिन्दोस्तान पिसा जा रहा है। हमारे दिए हुए टैक्स से ही हुकूमत का सारा कारोबार चल रहा है, पर उस कारोबार में हमारा कोई हक़ नहीं है, जैसे हम इस मुल्क के कोई नहीं हैं; यही वह बीमारी है, जिसने इस हरे-भरे मुल्क की नस-नस में से जान खींच ली है। तुम शहर से बाहर निकल कर देहात में जाओ, तो देखोगी कि बेशुमार ग़रीब लोग यतीम बच्चों की नाईं मोहताज हो रहे हैं, न उनके बदन पर सूत के तार हैं, न बेचारे दोनों वक़्त पेट भर खाना पाते हैं। एक नमक ही को लो, यह क़ुदरती चीज़ है, ग़रीब लोग थोड़ी सी मेहनत से—पैसे ख़र्च किए बिना ही इसे हासिल कर सकते हैं, पर नमक का यह सब ख़ज़ाना सरकार अपने पञ्जों में दबाए बैठी है। घास और जङ्गल को देखो, यह भी ख़ुदाई चीज़ें हैं। पर ग़रीब लोग अगर जङ्गल से सूखी लकड़ियाँ बटोर लें, और भूख से तड़पते हुए जानवर उसमें उगी हुई घास पर मुँह मार

दें तो यह सरकार की नज़र में बहुत बड़ा जुर्म है—सज़ा के क़ाबिल ! उफ़ ! कितनी ज़्यादती है ! ज़ोहरा, भला तुम्हीं बताओ ऐसी-ऐसी ज़्यादतियाँ इन्सान कब तक बर्दाश्त कर सकता है ?" मौलवी साहब की आँखों से जैसे चिनगारियाँ उड़ने लगीं, वाणी में जैसे छाती को फाड़ डालने वाला कम्प आ गया।

परन्तु ज़ोहरा ने इस ओर ध्यान न देकर, कहा—सल्तनत अङ्गरेज़ों के हाथ में है। उनके बाज़ुओं में क़ूवत है। वह तुम्हारी बातें नहीं सुनेंगे।

मौलवी साहब प्रलय की हँसी जैसा अट्टहास करते हुए बोले—"यह तो हम आज पचास साल से समझ रहे हैं। पर अब ज़माना आ गया है, वह हमारी बातें सुनेंगे, दुनिया हमारी बातें सुनेगी। वह हमारी ज़बान बन्द करेंगे, पर हमारी आहें हमारी मुसीबतों का इज़हार करेंगी। वह हमें जेल में बन्द करेंगे, पर हमारी चाल हमारी मुसीबतों का इज़हार करेगी। वह हमारे सीने सङ्गीनों से चाक करेंगे, पर हमारे ख़ून के क़तरे आसमान को फाड़ डालने वाली आवाज़ में हमारी मुसीबतों का इज़हार करेंगे। हमें अङ्गरेज़ों से लड़ना नहीं है, केवल उनके हाथ से मर कर अपने वाजिब हुक़ूक़ लेने हैं।" मौलवी साहब की वाणी में सत्य और आत्म-विश्वास का प्रवाह था। उनका मुखड़ा प्रदीप्त हो उठा। वह बोलते ही गए—"और हम करते ही क्या हैं, केवल अपने भाइयों से यही कहते हैं कि अपने देश का बना कपड़ा पहिनो—अपने देश की बनी हुई चीज़ें इस्तेमाल में लाओ। नशीली चीज़ों पर ठोकर मार दो, ताकि तुम्हारे पास चार पैसे तो बचें। क्या इसका नाम भी अङ्गरेज़ों से लड़ना है ?"

पर ज़ोहरा ने, जैसे मौलवी साहब की बातें सुनी ही नहीं, बोलीं—कुछ भी हो, है यह अङ्गरेज़ों की मुख़ालफ़त ही। मुझे तुम्हारी बातें पसन्द नहीं। बैठे-बिठाए आफ़त मोल लेना कहाँ की अक़्लमन्दी है। स्वराज्य वालों ने तो यह क़स्द ही कर लिया है कि न ख़ुद ख़ामोश बैठेंगे, न दूसरों को बैठने देंगे। तुम्हें किस बात की कमी है, ख़ुदा का दिया सब कुछ है ; फिर इन टण्टे-बखेड़ों में पड़ने की ज़रूरत ? तुम्हारी बातें सुन कर मेरी तबीयत घबराने लगती है। ख़ुदा न करे, कहीं तुम गिरफ़्तार कर लिए गए, तो हमारा क्या होगा ? इन नन्हें-नन्हें बच्चों की ख़बर कौन लेगा ?

ज़ोहरा का मुखड़ा उतर गया। आँखों में आँसू भर आए।

ज़ोहरा का उतरा हुआ चेहरा देखते ही मौलवी साहब के जोश पर जैसे हिम-वर्षा हो गई। ज़बर्दस्ती मुस्कुराहट को घसीट कर स्नेह-मिश्रित स्वर में बोले—ज़ोहरा ! सारे मुल्क में आग लग चुकी है, अब हम चैन से नहीं रह सकते। जो सबकी गति होगी, वही हमारी। मुझे इन बातों का कोई ग़म नहीं, ग़म है तो केवल तुम्हारे उतरे हुए चेहरे का ! मोहब्बत के यह मानी नहीं हैं, कि अगर मैं ठीक रास्ते पर चल रहा होऊँ, तो तुम मेरा पल्ला पकड़ कर मुझे पीछे खींचो। हाँ, अगर मैं ग़लत रास्ते पर जाता होऊँ तो दूसरी बात है। अच्छा, यह उदासी छोड़ो और एक बार मुस्कुरा दो। तुम्हारा मुस्कुराता हुआ चेहरा देख कर मेरी जान हरी हो जाती है, और तब गिरफ़्तारी की तो बात ही क्या, मैं भूमते हुए छुरी के नीचे भी गला रख सकता हूँ।"

ज़ोहरा ने अपने धानी दुपट्टे के अञ्चल से नेत्रों के कोने पोंछ लिए और थोड़ा सा मुस्कुरा दिया।

मौलवी साहब कनखियों से उनकी ओर देखते हुए धीरे-धीरे बाहर निकल गए।

* * *

शहर के लोग एक तीव्र उत्कण्ठा के आवेग में तालाब के उस लम्बे-चौड़े घाट की ओर दौड़े जा रहे थे, जहाँ आए दिन सार्वजनिक सभाएँ हुआ करती हैं और जहाँ कर्त्तव्य की पुकार जल की लोल-लहरों पर नाचने लगती है। आज की सभा अत्यन्त महत्वपूर्ण थी। गवर्नमेण्ट हाई-स्कूल के कुछ मनचले देश-भक्त विद्यार्थियों ने हाई-स्कूल के विशाल भवन पर राष्ट्रीय झण्डा फहरा दिया था। जब हेडमास्टर साहब ने नाराज़ होकर, एक भङ्गी के हाथों राष्ट्रीय ध्वजा नीचे उतरवा दी और विद्यार्थियों को बुरी तरह डाँटा, तब बहुत से स्वाभिमानी विद्यार्थी स्कूल से बाहर निकल आए। शहर में क्षोभ की बाढ़ आ गई। कुछ समझदार लोगों ने इस बात की चेष्टा की कि किसी तरह मामला शान्त हो जाए, पर अधिकारी अपनी ज़िद रखना चाहते थे, विद्यार्थी राष्ट्रीय ध्वजा का सम्मान रत्ती भर भी घटाने के लिए प्रस्तुत न थे। आज की सभा का विचारणीय विषय यही था कि अब इस सम्बन्ध में नागरिकों और विद्यार्थियों का कर्त्तव्य क्या है ?

हज़ारों आदमियों की भीड़ थी, पर सभा का कार्य अब तक शुरू न हुआ था, केवल एक व्यक्ति की प्रतीक्षा हो रही थी, और वह व्यक्ति थे हमारे मौलवी रौशनअली साहब। मौलवी साहब शहर और ज़िले के नेताओं में सर्व-श्रेष्ठ समझे जाते हैं। वह एक मशहूर हकीम और अरबी, फ़ारसी तथा उर्दू के धुरन्धर पण्डित हैं। परन्तु उनके मुख्य गुण हैं—हृदय की सरलता, वाणी की मधुरता, मिलनसारी और अनन्य देश-भक्ति। जनता उन्हें हकीम की अपेक्षा देश-भक्त के रूप में ही अधिक पहचानती है। वह उन्हें आरम्भ से ही देश-भक्त के रूप में देखती आ रही है। लोगों ने कभी उनके या उनके बच्चों के शरीर पर विदेशी तार नहीं देखे।

असहयोग आन्दोलन में मौलवी साहब ने नगर और ज़िले के बच्चे-बच्चे को देश-प्रेम का पाठ पढ़ाने की चेष्टा की थी। उस समय, देश का काम करते हुए वह परिश्रम को परिश्रम, दिन को दिन और रात को रात नहीं समझते थे। असहयोग आन्दोलन के बाद जब देश में हिन्दू-मुस्लिम-विग्रह का तूफ़ान आया, और दोनों जातियों के बड़े-बड़े ज़िम्मेदार नेता निरन्तर विष-वमन करने लगे, तब मौलवी साहब अपने नगर और ज़िले में हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य दृढ़ बनाए रखने की चेष्टा करते थे। वह दोनों को बार-बार यही समझाते थे, कि तुम्हारे विग्रह में ही भारत का सर्वनाश और हुकूमत का स्वार्थ निवास करता है। फलतः दोनों जातियों में न गाली-गलौज हुआ और न उन्हें धींगा-मुश्ती करने का ही अवसर मिला। मौलवी साहब जनता के हृदय में बैठ गए। सभी उन पर विश्वास और प्यार करने लगे।

वर्तमान स्वाधीनता आन्दोलन आरम्भ होते ही मौलवी साहब की सिंह-गर्जना से नगर, ज़िले और प्रान्त के कोने-कोने काँप उठे। लोगों ने देखा कि यह युद्ध लड़ने के लिए हमें मौलवी साहब से बढ़ कर सिपहसालार नहीं मिल सकता। बस, वह नगर और ज़िला-कॉङ्ग्रेस-कमेटी के 'डिक्टेटर' बना दिए गए। उनका डिक्टेटर बनना था कि सम्पूर्ण ज़िले में एक नवीन प्राण-प्रतिष्ठा हो गई, वर्षों का काम दिनों में और दिनों का मिनटों में होने लगा। अस्तु—

थोड़ी ही देर में दो-चार मित्रों के साथ मौलवी साहब ने मुस्कुराते हुए सभा में प्रवेश किया। अपने प्यारे नेता को देखते ही सब लोग खड़े हो गए और उसके सम्मान में उन्होंने अपने हृदय की समस्त पुण्य-प्रेरणाएँ निछावर कर दीं। 'भारतमाता की जय, महात्मा गाँधी की जय, मौलवी साहब की जय' आदि की सम्मान-पूर्ण ध्वनियों से आसमान गूँज उठा। मौलवी साहब धीरे-धीरे चल कर मञ्च पर जा विराजे। सभा का कार्य आरम्भ हो गया।



राष्ट्रपति पं० जवाहरलाल नेहरू की गिरफ़्तारी के विरोध में देहली के महान जुलूस का एक दृश्य।

कुछ नेताओं के भाषण हो जाने के बाद मौलवी साहब खड़े हुए। सम्पूर्ण सभा निस्तब्ध हो गई, हज़ारों नेत्र मौलवी साहब के प्रफुल्ल मुखड़े पर जा अटके।

मौलवी साहब के भाषण में जादू हुआ करता है, उनकी जिह्वा से शब्द नहीं, तीर निकला करते हैं, जो सीधे जाकर श्रोताओं के हृदय छेद डालते हैं। सभा में सदा बहुत से लोग तो केवल मौलवी साहब के इसी जादू से मुग्ध होने के लिए आया करते हैं। झण्डे की महिमा और अन्य देशों के लोगों के झण्डा-प्रेम का वर्णन करते हुए मौलवी साहब ने विद्यार्थियों से कहा—"मेरे छोटे-छोटे भाइयो! हम लोगों से सलाह-मशविरा किए बग़ैर यह झगड़ा उठा कर तुमने सख़्त ग़लती की है। कॉङ्ग्रेस कमेटी की हरगिज़ यह मन्शा न थी, कि तुम लोग इस झगड़े में पड़ते। पर इसके लिए मैं तुम्हारी लानत-मलामत न करूँगा। हमें इस बात का फ़ख़्र है, कि तुम्हारे छोटे-छोटे कलेजों में इतनी जान है, तुम्हारे दिलों में मुल्क की मोहब्बत का इतना हौसला और अरमान है, और तुम अपने क़ौमी झण्डे की इज़्ज़त करना जानते हो। जब तुम्हारे हौसले इतने बढ़े-चढ़े हैं, तुम्हारे दिलों में ऐसे-ऐसे जज़बात भरे हैं, तब हम तुम्हारा साथ देंगे। हर एक तालिब-इल्म से मेरा यही कहना है, कि जब तक हाई-स्कूल पर हमारा क़ौमी झण्डा न फहराया जाए, तब तक वह स्कूल के भीतर पैर रखने का भी ख़याल न करे।"

इसके बाद मौलवी साहब जनता से बोले—"और भाइयो, इस मामले में आपको हमारा और लड़कों का साथ देना पड़ेगा। इससे ज़्यादा और कुछ कहना फ़िज़ूल है, आप लोग ख़ुद अपने झण्डे की इज़्ज़त करना जानते हैं। हाँ, कुछ भाई ऐसे ज़रूर हैं, जो अब तक अपने मुल्क की और अपने झण्डे की इज़्ज़त करना नहीं जानते। उनसे मेरी यही इल्तजा है, कि वह अपने को हिन्दोस्तान से बाहर न समझें; इसमें केवल झण्डे की ही नहीं, उनकी भी बेइज़्ज़ती है। उम्मीद तो यही है, कि वह हमसे जुदा न रहेंगे, फिर भी अगर वह अपने लड़कों को स्कूल भेजेंगे, तो हमें दर्जे-लाचारी पिकेटिङ्ग करना पड़ेगा।"

इसी समय एक आवाज़ आई—"और पढ़ाई बन्द रहने से लड़कों का जो नुक़सान होगा, वह ?"

मौलवी साहब ने जवाब दिया—"हमें उसकी परवाह नहीं। मैं समझता हूँ, कि थोड़े से पढ़ने के पेश्तर आप अपनी और अपने मुल्क की इज़्ज़त का ख़याल करेंगे। इज़्ज़त के लिए अपना ख़ून भी मानिन्द पानी के बहा देना पड़ता है, पढ़ने-लिखने की तो बात ही क्या। इस मामले में आपको उन व्यापारियों से सबक़ लेना चाहिए, जो आज मुल्क की ख़ातिर विलायती माल की बिक्री बन्द कर, करोड़ों का नुक़सान बर्दाश्त कर रहे हैं! फिर हम लड़कों का नुक़सान नहीं चाहते। ऐसी कोशिश की जायगी जिससे लड़कों का थोड़ा-बहुत पढ़ना-लिखना जारी रहे।"

सहसा हथियार-बन्द पुलिस का एक दस्ता सभा के चारों ओर बिखर पड़ा। कई कॉन्स्टेबिलों को साथ लिए हुए चार पुलिस-ऑफ़िसर मञ्च की ओर बढ़े। उन्होंने मौलवी साहब को और उनके साथ ही अन्य तीन नेताओं को गिरफ़्तार कर लिया। जहाँ जादू की वर्षा हो रही थी, वहीं क्षोभ की उत्ताल तरङ्गें उठने लगीं। मौलवी साहब तथा अन्य बन्दी सज्जनों के सम्मान में अपना हृदय बिछाती हुई जनता पुलिस-दल के पीछे चल पड़ी। संसार में कितनी अस्थिरता है!

* * *

मौलवी साहब ने अगर ग़ौर से देखा होता, तो उन्हें मालूम हो जाता कि ज़ोहरा की उस मुस्कुराहट में वेदना का कैसा विराट संसार छिपा हुआ है, परन्तु उस समय वह कर्तव्य की धुन में इस प्रकार मस्त हो रहे थे कि उतनी बड़ी चीज़ न देख सके, और झूमते हुए बाहर निकल गए।

मौलवी साहब के पीठ फेरते ही ज़ोहरा के बड़े-बड़े नेत्रों से आँसू बाहर निकलने लगे—मानों हृदय की वेदना आँखों की राह बाहर निकल जाना चाहती हो। वह एक बड़े सरकारी ऑफ़िसर की बेटी हैं। उनके पिता मौलवी साहब के आचार-विचार से अपरिचित नहीं हैं, अतः वह मौलवी साहब को हमेशा राजनैतिक झगड़ों से दूर रहने के लिए लिखा करते हैं। परन्तु जब इतने से ही स्नेह-वत्सल हृदय को सन्तोष नहीं होता, तब वह कभी-कभी ज़ोहरा को भी ख़त में लिख दिया करते हैं, कि बेटी ज़रा अक्खड़ मौलवी साहब पर नज़र रक्खा करो। ख़ुदा न करे, अगर कभी वह जेल भेज दिए गए, तो हम लोगों को बड़ी ज़िल्लत उठानी पड़ेगी। अगर वह शामिल न होंगे, तो स्वराज्य वालों का कुछ बनने-बिगड़ने वाला

नहीं। हज़ारों-लाखों आदमी काम कर रहे हैं, एक रौशनअली के दूर रहने से कुछ हर्ज न होगा।

* * *

जेल ! उफ़ ! जेल कैसी ख़ौफ़नाक चीज़ है। ज़ोहरा ने सुना था कि जेल दोज़ख़ का ही एक हिस्सा है। जेल में जाना और दोज़ख़ में जाना—दोनों के मानी एक ही हैं। ज़ोहरा को मालूम था, और अख़बार उन्हें रोज़-रोज़ बतलाया करते थे, कि आजकल सियासती मामलों में सड़ी-सड़ी सी बातों पर बड़े-बड़े आदमी जेल में भेज दिए जाते हैं। मौलवी साहब भी सियासती मामलों में शामिल रहते हैं। अगर कहीं वह भी जेल भेज दिए गए तो ? यह विचार आते ही ज़ोहरा की आँखों के सामने अँधेरा छा जाता था, उनके प्राण इस तरह काँप उठते थे, जैसे छोटा सा बच्चा अपने सामने मास्टर की भयङ्कर मूर्ति और उसके लपलपाते बेत को देख कर काँप उठता है !

केवल इसी काल्पनिक भय के कारण ज़ोहरा बार-बार मौलवी साहब को राजनैतिक मामलों में पड़ने से रोका करती थीं। मौलवी साहब उनकी इस कमज़ोरी को जानते थे, पर प्रिया के सजल नेत्र देख कर कर्त्तव्य-पथ से पीछे हट जाना उन्होंने नहीं सीखा था। वह ख़ुद हँस कर, ज़ोहरा को हँसा-मुसकुरा कर अपने कार्य में व्यस्त हो जाते थे। आज जब मौलवी साहब ज़ोहरा को ज़बर्दस्ती हँसा कर बाहर चले गए, तब ज़ोहरा का नारी-सुलभ स्वाभिमान जाग्रत हो उठा। इतनी मग़रूरी—इतनी ख़ुदपरस्ती जैसे मैं इनकी कोई नहीं हूँ—इन पर मेरा कुछ भी अख़्तियार नहीं है। परन्तु दूसरे ही क्षण जेल के ख़याल से वह काँप उठीं। "आह ! मैं क्या करूँ ?" कहती हुई वह रो पड़ीं।

बुढ़िया हमीदन अभी तक आँगन के एक कोने में बैठी हुई बर्त्तन मल रही थी। वह मौलवी साहब के घर की पुरानी दासी थी। उन्हीं के घर में उसकी जवानी बीती थी, उन्हीं के घर में उसके बाल सफ़ेद हुए थे। वह विधवा थी, बाल-बच्चे उसके थे नहीं। मौलवी साहब का परिवार ही हमीदन का परिवार था। मौलवी साहब को ही वह अपना पुत्र समझती थी। मौलवी साहब का शैशव हमीदन की गोद में ही व्यतीत हुआ था। वह कहने को तो दासी थी, पर मौलवी साहब और ज़ोहरा पर उसका प्रभाव उसी प्रकार था जैसा कि माता का अपने बच्चों पर होता है।

ज़ोहरा की सिसकियाँ सुन वह उनके पास आ पहुँची। अपने दुपट्टे से उनके आँसू पोंछती हुई बोली—दुलहिन ! मत रो ! आजकल के लौंडे ऐसे ही होते हैं। जो उन्हें अच्छा लगता है, वही करते हैं। मैंने भी उसे



पं० श्रीनाथ भनोट

आप बटाला (पञ्जाब) के सुप्रसिद्ध वकील हैं। आपको राजविद्रोह के अभियोग में एक वर्ष की कड़ी क़ैद की सज़ा दी गई है। परमात्मा जेल में आपका यही स्वास्थ्य क़ायम रक्खे।

कितना मने किया, पर वह माने तब न ! जब वह मेरी नहीं सुनता, तो तेरी क्या सुनेगा ! मत रो—रो-रोकर अपने जी को न जला।

ज़ोहरा और भी रोने लगी। बोली—अम्माँ ! तुम नहीं जानतीं। वह बड़े ख़तरनाक रास्ते पर चल रहे हैं। वह चाहते हैं कि हुकूमत हिन्दोस्तानियों को भी उनके वाजिब हुक़ूक़ दे। इस बात से सरकार नाराज़

होती है। इसी बात पर उसने बड़े-बड़े लोगों को जेल में डाल दिया है। उनकी फ़िक्र से मेरा कलेजा जला जाता है—मैं कहाँ तक उन्हें समझाऊँ।

हमीदन बड़बड़ा कर बोली—बेवक़ूफ़ है बेवक़ूफ़। उस नालायक़ को कौन समझावे, कि तू क्या खाकर सरकार से लड़ेगा। मैंने तो अब उससे कुछ कहना-सुनना ही छोड़ दिया है। जो उसे अच्छा लगे, वही करे। किसी दिन रगड़े में आ जायगा, तो आप ठीक हो जायगा। पर तू अपने जी को क्यों जलाती है?

ज़ोहरा ने आँसू पोंछ लिए। कहा—अम्माँ! तुम उन्हें बेवक़ूफ़ न कहा करो! वह काफ़ी अक़्लमन्द हैं। वह भी जानते हैं कि सरकार हमारे कामों से नाराज़ होती है, पर मुल्क के करोड़ों ग़रीबों की हालत देख कर, लाखों लोगों के दिलों में जो आग लग गई है, वही आग उनके कलेजे को भी जला रही है। फिर वह सरकार से लड़ते कहाँ हैं? केवल लोगों से यही कहते हैं, कि अपने मुल्क का बना कपड़ा पहनो, अपने मुल्क की बनी चीज़ें काम में लाओ, नशीली चीज़ों से नफ़रत करो।

ज़ोहरा का चेहरा चमक उठा। आवाज़ में तेज़ी आ गई।

बुढ़िया चमक उठी। बोली—तभी वह इतना बेहाथ हो गया है। जब तू ख़ुद इन बातों को अच्छा समझती है, तब रोती क्यों है? अगर तू इन बातों को बुरा समझती, इन बातों से नफ़रत करती, तो मेरा रौशन कभी इन ख़ुराफ़ाती बातों में न पड़ता!

"अम्माँ! तुम मुल्क की ख़िदमत को ख़ुराफ़ात समझती हो—यह तुम्हारी ग़लती है।"

ज़ोहरा के कण्ठ में कम्पन और ओज था।

अभी इन लोगों में यह बातें हो ही रही थीं, कि हाँफते-हाँफते कल्लू वहाँ आ पहुँचा। वह घबराया हुआ था। आते ही बोला—हुज़ूर! ग़ज़ब हो गया! पुलिस सरकार को गिरफ़्तार कर ले गई। हज़ारों आदमी उनकी जय बोलते हुए, उनके पीछे गए हैं।

ज़ोहरा पर बिजली गिर पड़ी। वह एक चीख़ मार कर बेहोश हो गई।

* * *

सवेरा हुआ। शहर में ज़बर्दस्त हड़ताल थी। कुछ दिन चढ़ते ही हाई-स्कूल पर पिकेटिङ्ग करने की तैयारियाँ होने लगीं। नौ बजते-बजते एक विशाल दल हाई-स्कूल की ओर चल पड़ा। आगे-आगे राष्ट्रीय झण्डा लिए हुए बालिकाएँ और महिलाएँ थीं, उनके पीछे स्वयंसेवक और विद्यार्थी थे तथा उनके पीछे उत्तेजित तमाशबीनों की एक बहुत बड़ी भीड़ चल रही थी।

मौलवी साहब का मकान रास्ते में ही पड़ता था। महिलाओं और स्वयंसेवकों की राय हुई, कि मौलवी साहब की बेगम साहबा को बधाई देनी चाहिए। बस, उनके मकान के सामने पहुँचते ही राष्ट्रीय आत्माओं का वह वीर दल रुक गया। विजय-ध्वनि से रह-रह कर आसमान काँपने लगा।

ज़ोहरा उस समय उदास बैठी थी। कोलाहल सुन कर उन्होंने हमीदन से कहा—अम्माँ, ज़रा बाहर जाकर तो देखो, यह कैसा शोरो-ग़ुल है।

हमीदन ने ज्योंही किवाड़ खोले, त्योंही घोर विजय-ध्वनि के साथ आँगन महिलाओं, स्वयंसेवकों और विद्यार्थियों से भर गया! तेज़ मुस्कुराहट के साथ ज़ोहरा के चेहरे के एक-एक अणु उद्दीप्त करने लगा। वह आगत महिलाओं के स्वागतार्थ उठ कर खड़ी हो गई। दूसरे ही क्षण असंख्य पुष्प-वर्षा नगर के हृदय की ओर से उनका स्वागत कर रही थी। एक भद्र-महिला ने आगे बढ़ कर और हाथ जोड़ कर ज़ोहरा से कहा—"आपके ज़रिए हमारे नगर ने नई ज़िन्दगी पाई है। आपके ज़रिए हमारे नगर की गौरव वृद्धि हुई है। हम आपको किस मुँह से धन्यवाद दें, किस मुँह से आपके प्रति कृतज्ञता प्रकट करें। आपके दुःख में हमारा हृदय आपके साथ है।"

ज़ोहरा ने मुस्कुरा कर कहा—इसमें अफ़सोस की क्या बात! शुक्रिया अदा करने की भी ज़रूरत नहीं। मुल्क के ख़ातिर इन्सान का जो फ़र्ज़ होना चाहिए, वही उन्होंने अदा किया है।

हमीदन एक ओर खड़ी-खड़ी बड़बड़ा रही थी। उसकी समझ में नहीं आता था, कि यह सब क्या हो रहा है। इसी समय स्वयंसेवकों की ओर से आवाज़ आई—"हम भी अपनी माता का दर्शन करेंगे।" ज़ोहरा

ने महिलाओं से कहा—"आप लोग मिहरबानी कर उन लोगों को आगे आने दीजिए।"

हमीदन का मुँह तमतमा उठा। बिगड़ कर बोली—"तेरे सामने ग़ैर-मर्द आएँगे?" ज़ोहरा ने मुस्कुरा कर कहा—"नहीं, वह मेरे बच्चे हैं। बच्चों के सामने........!"

ज़ोहरा की बात अभी पूरी भी न होने पाई थी, कि बीसों स्वयंसेवक और विद्यार्थी 'माता की जय' करते हुए ज़ोहरा के चरणों में लेट गए। ज़ोहरा के नेत्रों से आँसू



आगरे के वालण्टियर ताड़ी की पिकेटिङ्ग कर रहे हैं।

बहने लगे, जैसे हृदय की समस्त शुभ्र आकांक्षाएँ आशीर्वाद-रूप से उन बच्चों पर बरस पड़ीं। स्वयंसेवकों ने हाथ जोड़ कर कहा—"माँ, तुम्हारा आशीर्वाद पाकर, हमारा बल सौगुना बढ़ गया है। अब हम लोगों को ऐसा आशीर्वाद और दो, कि हम भी अपने पूज्य मौलवी साहब का अनुकरण कर सकें।"

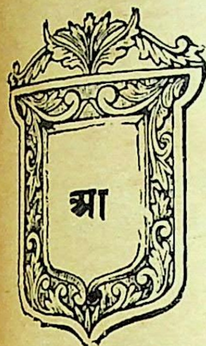
ज़ोहरा ने हमीदन से कहा—"अम्माँ! तुम बच्चों को सँभाले रहना, मैं इन लड़कों के साथ जाऊँगी।" हमीदन रोकर बोली—"बेटी, तुझे क्या हो गया है! तू पर्दा तोड़ कर बाहर जाएगी! या ख़ुदा! यह कहाँ का क़हर तूने हम ग़रीबों पर पटक दिया!"

ज़ोहरा के नेत्रों से भी अश्रुधारा बहने लगी। उन्होंने हमीदन को जवाब दिया—अम्माँ! रोओ नहीं! आज मुझ पर ही नहीं, सारे मुल्क पर यह ख़ुदाई क़हर बरस रहा है। वह अपने भाइयों को नसीहत की बातें सिखलाने के क़ुसूर में चोर-डाकुओं की नाईं पकड़ लिए गए हैं। वही मेरी इज़्ज़त और अस्मत हैं। जब वही मुझसे छीन लिए गए, तब मेरा पर्दा कहाँ रहा? जब शरीफ़ज़ादे जेलों में जा रहे हैं, तब शरीफ़ज़ादियाँ कैसे पर्दे में रह सकती हैं?

इसके बाद ज़ोहरा एक राष्ट्रीय झण्डा लेकर बाहर निकल गईं। संसार में कितनी अस्थिरता है। अस्थिरता परिवर्तन की जननी और परिवर्तन नव-जीवन का उत्पादक है, इसमें भला कौन सन्देह करेगा?

गर्भ-निरोध और मैसूर-राज्य

[श्री० गङ्गाचन्द जी अग्रवाल]



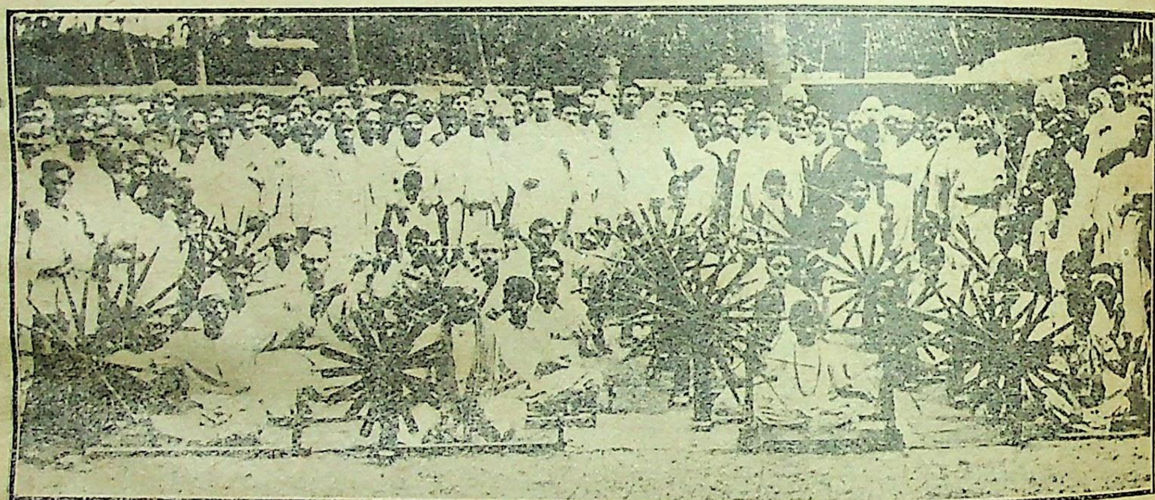
आज अभागे भारत में जिस तरह मातृत्व पददलित किया जा रहा है, उसका इतिहास अत्यन्त दयनीय और रोमाञ्चकारी है। आज स्त्रियों पर पुरुषों के द्वारा—जिनकी वे जननी हैं—दुःखों का पहाड़ लाद दिया गया है। कहीं वे स्वयं अपने पिता-भ्राताओं के हाथों लावारिसी माल की तरह तीर्थों में (जहाँ की भूमि इतनी पवित्र मानी जाती है कि लोग वहाँ की यात्रा कर अपने को धन्य मानते हैं) छोड़ दी जाती हैं, जिस तरह केंचुल साँप द्वारा छोड़ दिया जाता है; तो कहीं ८० वर्ष वाले मरणासन्न पिता के दूसरी शादी करते रहने पर भी १० वर्षीया अक्षत-योनि कन्याओं पर, उनसे अखण्ड ब्रह्मचर्य की आशा कर, आजन्म बलात-वैधव्य का असहनीय बोझ लादा जा रहा है। कहीं सवेरे उठते ही देवर महाराज की गालियाँ सहनी पड़ रही हैं, तो कहीं पतिदेव द्वारा पीठ-पलस्तर हो रही है! सारांश, आज का गृहस्थाश्रम ख़ासा नरक-धाम बन रहा है, जिसमें स्त्रियाँ अपराधिनी की तरह अपना जीवन कठोर यन्त्रणा में बिताते हुए प्रभू से प्रार्थना कर रही हैं कि, "भगवन! कब इस नरक-धाम से हमारा छुटकारा होगा?" यह है पुरुष-समाज के अन्यायी, कलुषित हृदय का अन्दरूनी स्वरूप!

आज स्त्रियों के जीवन का कोई मूल्य नहीं रह गया है! कहाँ तो प्राचीन-कालिक वीराङ्गनाओं का वह जीवन—जिसकी गाथा पढ़ कर आज भी मुर्दा-हृदय में जीवन का सञ्चार होता है, और कहाँ आधुनिक देवियों का दुःखमय जीवन!! एक भयङ्कर पतन!!! उस जीवन की कल्पना—जिसके केवल स्पर्श ने, एक साधारण स्थिति के तुलसीदास को 'भक्त-प्रवर गोस्वामी तुलसीदास' में परिणत कर दिया; मूर्ख, निरक्षर भट्टाचार्य कालिदास को 'अमर कालिदास' बना दिया—आज भी हृदय में नवीन स्फूर्ति उत्पन्न करती है। इस पतन को उत्कर्ष रूप में देखने के लिए भला पुरुष-समाज से क्या आशा की जा सकती है? पर आश्चर्य तो तब होता है, जब हम देखते हैं कि स्वयं स्त्रियाँ—पढ़ी-लिखी, अप-टू-डेट एजुकेटेड, पर्दा फ़ाश कर बाहर निकली हुईं—अपनी इन असहाय बहिनों के दुःख दूर करने की ज़रा भी परवाह न कर स्कूल, कॉलेजों के बॉयकॉट में व्यर्थ प्रयास कर रही हैं! अस्तु।

स्त्रियों के एक विशेष कष्ट की ओर आज हम 'चाँद' के पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं। जहाँ यह कष्ट पुरुषों की काम-वासना का परिचायक है, वहाँ यह स्त्रियों की अधिक मृत्यु-संख्या का भी प्रमाण है। स्त्रियों को विवाह के ५-६ वर्षों के अन्दर ही पुरुषों की काम-वासना की शिकार होकर अनिच्छापूर्वक आधे दर्जन बच्चों की माता बनना पड़ता है। कल्पना कीजिए—दो बच्चे माता की पीठ पर लदे हुए रो रहे हैं; एक बच्चा सामने खड़ा रो रहा है; एक उसके पैरों के पास घुटनों के बल बैठा हुआ, सिसक रहा है; एक उसकी गोद में दूध पी रहा है—एकबारगी इन सब बच्चों का पालन और रखवाली करना माता के लिए कितना कष्टकर होता होगा! इसका परिणाम यह होता है कि चिन्ता के कारण स्त्री का वह गुलाब-सा चेहरा—जो विवाह के पूर्व रहता है—पीला हो जाता है; ज्वर आने लगता है तथा विविध रोग आ दबाते हैं, जिससे वह बेचारी शीघ्र ही काल-कवलित हो जाती है। जल्द-जल्द बच्चे होना, न केवल स्त्री के स्वास्थ्य के लिए ही हानिकारक है; वरन् पुरुष की आर्थिक दशा पर भी बहुधा बुरा प्रभाव डालता है। इस तकलीफ़ को दूर करने के लिए अगर बहुसंख्यक बच्चों के पिताओं से यह कहा जाय कि "भाई! यदि तुम काम को नहीं रोक सकते, तो ऐसे उपाय का अवलम्बन करो कि तुम्हारी भी इच्छा-पूर्ति हो जाया करे और स्त्री को भी वृथा स्वास्थ्य न खोना पड़े।" लेकिन

ऐसा सुनते ही वे आसमान को सर पर उठा लेंगे और कहेंगे कि यह कार्य 'सनातन-धर्म' के विरुद्ध है। बस, इनका 'सनातन-धर्म' ऐसा है, जो इनकी स्वार्थपूर्ति में बाधक नहीं है। बला से, स्त्री चाहे मरे ; ये तो अपना काम करके अलग हो गए! इनको इस कार्य में पाप की दरिया ही बहती नज़र आवेगी !!

पर, वास्तव में इनके इस कथन में कोई तथ्य नहीं है। गर्भ को नष्ट करना पाप है, न कि गर्भ को रोकना। अच्छा तो लगे हाथों इन लोगों के जो-जो आक्षेप हो सकते हैं, उन पर विचार कर लिया जाय। पहिला आक्षेप यह है कि गर्भ-निरोध करने से जीव-हत्या होती हो सकती है? इसके ख़िलाफ़, अगर आपको आधुनिक शिक्षा-दीक्षा के वायु मण्डल में पले हुए विद्यार्थी-विद्यार्थिनियों के दरमियान रहने का अवसर मिले, तो आपको पता चलेगा, कि अधिकांश में इन लोगों का भी यह ख़्याल है कि प्रकृति की अन्य आवश्यकताओं की तरह विषय-भोग भी एक आवश्यकता है, जिसको कहीं भी रफ़ा कर लेने में कोई पाप नहीं है। इससे पतिव्रत और पत्नीव्रत-धर्म पर भी घोर ठेस लगती है। ख़ैर, यह आधुनिक शिक्षा का फल है। गर्भ वीर्य-जन्तुओं के कारण रहता है। इन जन्तुओं का नाश करना अगर पाप है, तो इस पाप से स्वयं आक्षेपकर्ता कदापि नहीं बच सकते; क्योंकि



यह दृश्य कोकोनाडा के गाँधी स्कूल में होने वाले चरखा और तकली की प्रतियोगिता का है। जीतने वालों को मिस स्लेड (कुमारी मीराबाई) ने पारितोषिक बाँटा था।

है। अव्वल तो यह आक्षेप उसी को करना चाहिए, जो जितेन्द्रिय हो और केवल सन्तानोत्पत्ति के हेतु स्त्री-प्रसङ्ग करता हो। पर आज इस देश में—जहाँ की शिक्षा-पद्धति में धार्मिक शिक्षा का कोई स्थान ही नहीं है ; जहाँ के विद्या-मन्दिरों में (In the temples of learning) उपस्थित होने के पूर्व गुरु और शिष्य—दोनों यह देख लेते हैं कि उनके फ़ैशन में कोई त्रुटि तो नहीं रह गई है; जहाँ के स्कूल-कॉलेज रूपी मैशीनों से प्रति वर्ष 'भविष्य के कर्णधार' विद्यार्थी ऐसे निकलते हैं, जो 'धर्म' का मख़ौल उड़ाया करते हैं—केवल सन्तानोत्पत्ति के लिए ऋतुदान करने को 'धर्म' समझने वालों की संख्या कितनी अक्सर कई बार संयोग करने पर भी गर्भ नहीं रहता, जिसका तात्पर्य यह है कि उन जन्तुओं का वृथा ही नाश हुआ, जिसका पाप पुरुष के सिर पर होगा। परन्तु यदि एक ही बार में गर्भ-धारण हो गया, तो भी इस पाप से रक्षा नहीं हो सकती ; क्योंकि गर्भ केवल एक वीर्य-जन्तु से ठहरता है। और एक बार के वीर्यपात (Ejaculation) में असंख्य जीव होते हैं। ऐसी दशा में एक के सिवा बाक़ी जीव मर ही जाते हैं—जिसका पाप हर एक के ऊपर अवश्यम्भावी है। इसी तरह से मलेरिया बुख़ार के कीड़ों को भी कुनाइन के द्वारा मारने में पाप हो सकता है!

कानपुर का एक सुधारक मारवाड़ी दम्पति





कानपुर के श्रीयुत गजानन्द खेमका और उनकी धर्मपत्नी, जो समाज-सुधार में बड़ा अनुराग रखते हैं और जिन्होंने घर वालों के घोर विरोध से विचलित न होकर हानिकारक पुरानी रूढ़ियों को त्याग दिया है।

दूसरा आक्षेप यह हो सकता है कि सन्तान की संख्या-वृद्धि न करना अधर्म है। तो क्या आवश्यकता से अधिक सन्तान उत्पन्न कर, उसका समुचित प्रकार से पालन-पोषण न कर सकना, उसकी शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध न कर सकना ही धर्म है? अधिक सन्तानोत्पत्ति के कारण स्त्री को सदैव रोगिणी बनाए रखना धर्म है? वास्तव में जिस सन्तान को उत्पन्न करके हम उसका विधि-पूर्वक पालन-पोषण नहीं कर सकते; न समुचित प्रकार से शिक्षा दे सकते हैं और न अपनी सहधर्मिणी को स्वस्थ, सुन्दर रख सकते हैं—वह अधर्म है! उत्पादन-क्रिया वह पवित्र कार्य है, जिसका आश्रय लेकर हमको ऐसी बलवती सन्तानें उत्पन्न करना चाहिए, जो अपनी शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक शक्तियों का पूर्ण विकास करते हुए समाज और देश के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकें।

तीसरा आक्षेप यह हो सकता है कि समाज में 'गर्भ-निरोध' चल निकलने पर उसका प्रयोग बुरे उद्देश्यों से होने लगेगा। इसका उत्तर यह है कि संसार में कोई भी ऐसी लाभदायक वस्तु नहीं है, जो बुरे लोगों के हाथों में पड़ कर बुरी रीतियों में न प्रयोग होने लगे। हमने माना, कि थोड़े से ऐसे पापात्मा निकलेंगे, जो अपने पापों को छिपाने के लिए इसका आश्रय लेंगे। लेकिन क्या इसका यह मतलब है कि थोड़े से पापात्माओं के पापों का भण्डा न फूटने पावेगा—इस ख़याल से बहुसंख्यक व्यक्तियों के लाभ का बलिदान किया जाय? पापी-हृदय पाप करने से तो बाज़ आवेगा नहीं। जिन पापी हृदयों को गर्भ-निरोध का उपाय नहीं मालूम होगा, वे क्या गर्भपात और भ्रूण-हत्या न करते होंगे? पर वास्तव में यह बात नहीं है। आज भी—गर्भपात का चाहे पता

न चले—भ्रूण-हत्या की ख़बरें अक्सर सुनने में आती हैं। चाक़ू से एक दुष्ट पुरुष दूसरे का गला काट सकता है; दियासलाई से एक आततायी मनुष्य दूसरे का मकान जला सकता है, तो क्या इसी से चाक़ू और दियासलाई का उपयोग अच्छे कामों में भी निषिद्ध कर दिया जायगा? इसी प्रकार स्वास्थ्य तथा आर्थिक दृष्टि से जिन स्त्री-पुरुषों को गर्भ-निरोध-उपाय की आवश्यकता प्रतीत हो, वे इसका आश्रय ले सकते हैं।

यहाँ पर गर्भ-निरोध के आन्दोलन का संक्षिप्त इतिहास भी दे देना आवश्यक है। यह सन् १७९८ ई० की बात है, जब इसके पक्ष में इङ्गलैण्ड में खुला आन्दोलन आरम्भ हुआ, जब कि माल्थ्यूस (Malthus) ने एक छोटी सी पुस्तिका 'Essay on population' लिखी। इसके बाद फ्रान्सिस प्लेस (Francis place) ने हर तरह की गाली और अपमान को सहते हुए, गर्भ-निरोध के उन उपायों का बतलाना जारी रक्खा, जिनका उस समय फ्रान्स में अवलम्बन किया जाता था। फिर सन् १८३३ ई० में युनाइटेड स्टेट्स (United States) में वहाँ के प्रसिद्ध चिकित्सक डॉक्टर चार्ल्स नोल्टन (Dr. Charles Knowlton) ने एक पुस्तिका लिखी, जिसका नाम था—"The fruits of philosophy." इस पुस्तिका में ४७ पृष्ठ थे और इसमें उन उपायों का अच्छी तरह से वर्णन किया गया था, जिनसे गर्भ निश्चय-पूर्वक रोका जा सकता था। इस पुस्तिका की हज़ारों प्रतियाँ गुप्त रीति से ग्रेट-ब्रिटेन में वितरण की गईं। परन्तु जब सन् १८७६ ई० में मिसेज़ एनी बेसेण्ट (Mrs. Annie Besant) और चार्ल्स ब्रैडलॉ (Charles Bradlaugh) ने इस पुस्तिका को दुबारा प्रकाशित किया, तब उन लोगों पर मुक़दमा चला। उन पर अपराध यह लगाया गया कि उन्होंने अश्लील साहित्य को—जिससे सर्व-साधारण के सदाचार पर बुरा प्रभाव पड़ने की सम्भावना है—प्रकाशित किया है और बेचा है। जूरी ने उन लोगों को अपराधी क़रार दिया। पर इन प्रसिद्ध व्यक्तियों पर मुक़दमा चलाने का परिणाम यह हुआ, कि अनभिज्ञ जनता को भी यह मालूम हो गया, कि वास्तव में ऐसे भी उपाय हैं, जिनसे गर्भ रोका जा सकता है। तब से यह आन्दोलन तेज़ी से बढ़ता ही गया।

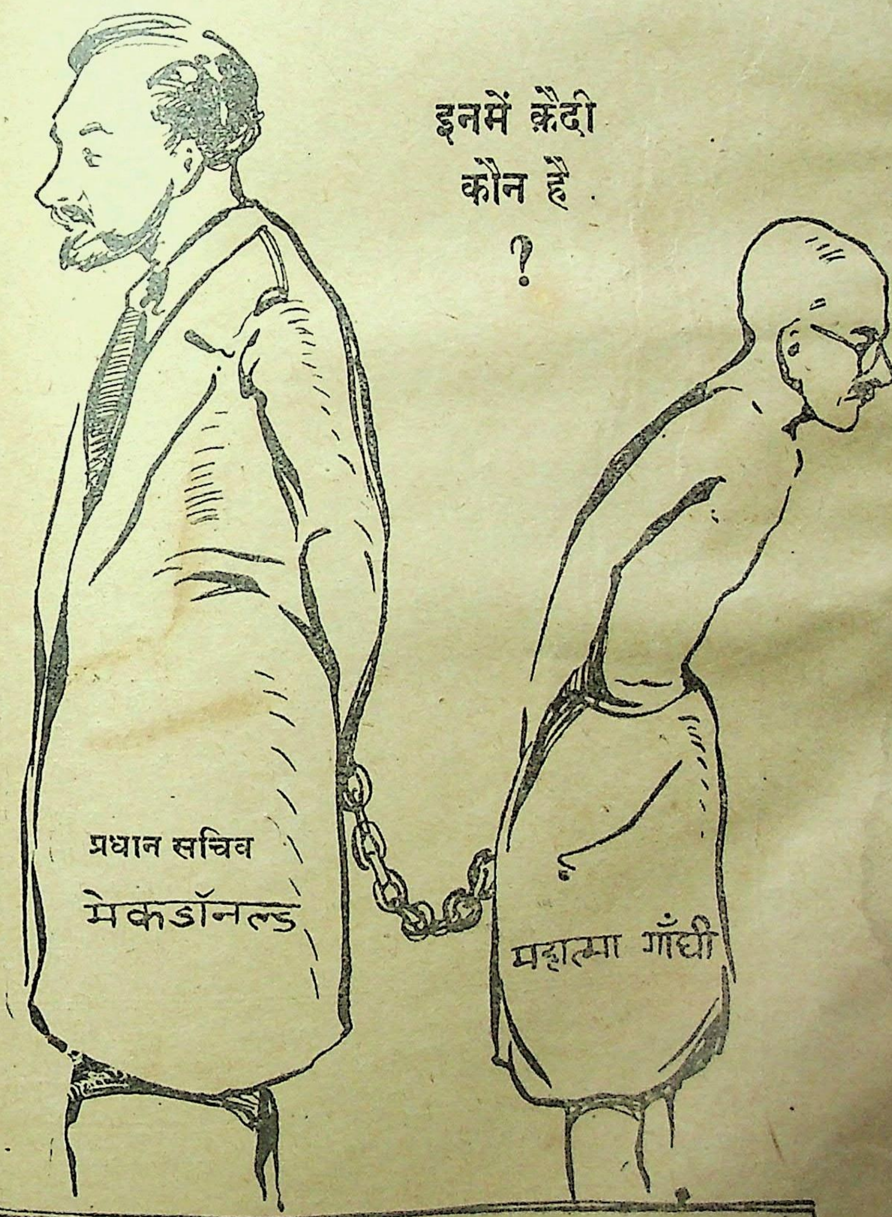
भारत में भी यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि इस विषय पर पुस्तकें छापना जायज़ है कि नाजायज़? यह प्रश्न अक्टूबर सन् १८९२ ई० में बम्बई-हाईकोर्ट में जस्टिस पार्सन्स (Justice Parsons) और जस्टिस तैलङ्ग (Justice Telang) के सामने पेश हुआ। माननीय जजों ने फ़ैसला दिया कि—"There is nothing obscene in the explanation of what these checks are and in the mere statement of the places where and the prices at which they can be procured"—

अर्थात्—यह बतलाने में, कि गर्भ-निरोध के क्या साधन हैं अथवा ये साधन कहाँ और किस मूल्य में प्राप्त किए जा सकते हैं—कोई अश्लीलता नहीं है।

अत्यन्त हर्ष का विषय है कि अब हमारे एक देशी रियासत ने इस महत्वपूर्ण विषय को कार्य-रूप में परिणत करने के लिए सब से आगे पैर बढ़ाया है। रियासत-मैसूर ने इस बात की स्वीकृति दे दी है कि मैसूर के चार मुख्य-मुख्य अस्पतालों में गर्भ-निरोध विषय की ट्रेनिङ्ग लेडी डॉक्टरों के द्वारा केवल उन विवाहित स्त्रियों को—जिन्हें आरोग्यता या आर्थिक दृष्टि से इसकी आवश्यकता है—दी जाया करे। इस पुनीत कार्य के आरम्भ का श्रेय वहाँ के सीनियर सर्जन डॉक्टर सुभाराव को प्राप्त है। डॉक्टर साहब ने डॉक्टरी की शिक्षा मद्रास और लन्दन में प्राप्त की है। आपको अपने व्यवसाय-जन्य अनुभव के आधार पर इस बात की आवश्यकता प्रतीत हुई कि बहुसंख्यक स्त्रियों के लाभार्थ गर्भ-निरोध की शिक्षा के लिए सुविधाएँ कर दी जायँ। आपने अपनी स्कीम मैसूर गवर्नमेण्ट के सामने उपस्थित करते हुए बतलाया, कि अपने पेशे के दौरान में, मैं जितनी रुग्णा स्त्रियों के सम्पर्क में आया, उनमें अत्यधिक संख्या उन स्त्रियों की थी—जो शीघ्र-शीघ्र बच्चे जनने के कारण रोग-ग्रस्ता हो गई थीं। इसलिए आपने सम्मति दी कि शीघ्र-शीघ्र बच्चे जनने के कारण स्त्रियों को जो अस्वस्थता प्राप्त होती है, उससे उनको बचाने के लिए यह उचित है कि उनको गर्भ-निरोध की शिक्षा प्राप्त करने के लिए सुविधाएँ प्रदान की जायँ। इस सम्बन्ध में औज़ार ख़रीदने के लिए भी मैसूर-गवर्नमेण्ट ने अपनी स्वीकृति दे दी है।

वास्तव में मैसूर-गवर्नमेण्ट के इस प्रशंसनीय कार्य से असहाय तथा पद-दलित मातृत्व का असीम उपकार

होने की सम्भावना है। (सम्भावना इसलिए कि आख़िर गर्भ-निरोध की आवश्यकता अनुभव करने वाली स्त्रियों की स्वाधीनता भी तो पुरुषों के ही हाथों में है। क्योंकि जब प्रथम पुरुष इसके क़ायल हो जायँ, तब तो स्त्रियों को इसकी शिक्षा ग्रहण करने का अवसर मिल सकेगा; अन्यथा ऐसे प्रबन्ध का होना इन विपद्ग्रस्ता स्त्रियों के लिए न होने के बराबर है।) आशा है, अन्य देशी रियासतें तथा भारत-सरकार भी स्त्रियों के इस दुःख-विशेष को दूर करने के लिए अपने उत्तरदायित्व का अनुभव करके 'सन्तान-निग्रह' को सर्व-प्रिय बनाने की चेष्टा करेंगी।





गृह-विज्ञान

[डॉक्टर शङ्करलाल गुप्त, एम० बी० बी० एस०, सुपरिण्टेण्डेण्ट, यू० पी० जेल-सेनेटोरियम]

क्षयोपचार में आराम और परिश्रम

Special for the CHAND.

आराम का उसूल—प्रकृति क्षयोपहत फेफड़ों को पूर्ववत् ठीक करने का बड़ा प्रयत्न करती है। परन्तु जिस रीति से प्रकृति यह कार्य करती है, उससे हम बहुत कम शिक्षा ग्रहण करते हैं। जब हम किसी क्षयी मनुष्य के वक्षस्थल का निरीक्षण करते हैं, तो फेफड़ों के रुग्ण भाग को आराम देने की स्वाभाविक प्रबल प्रवृत्ति को देख कर चकित हो जाते हैं। रोग के आरम्भ में फेफड़े के रुग्ण भाग को आच्छादित करने वाली वक्षस्थल की मांस-पेशियाँ सङ्कुचित होकर कड़ी हो जाती हैं, जिसका फल यह होता है कि फेफड़े के रुग्ण भाग की गति बहुत कम हो जाती है। बाद को फुफ्फुस कला और पार्श्व कला के बीच में प्रतिबन्ध (Pleural Adhesions) बन जाते हैं, जिनसे फेफड़े की गति में रुकावट होकर, कमी हो जाती है। फेफड़े की गति कम हो जाने से रक्त और लसिका-सञ्चालन की गति भी धीमी पड़ जाती है, जिसका परिणाम यह होता है कि क्षय-कीटाणु और उनके विष उसी स्थान पर सीमित हो जाते हैं और शरीर भर में फैलने नहीं पाते। इसलिए विषों का प्रभाव शरीर पर कम होता है, और कीटाणु शरीर के अन्य भागों में वितरित नहीं होने पाते।

डॉक्टर रुबैल ने प्रयोग द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि आराम से, क्षयाघातों के पुरने में, सहायता मिलती है। उन्होंने कुछ ख़रगोशों को लेकर उनके एक ओर के फेफड़ों को गतिहीन करके, क्षय-कीटाणुओं की, शिरा द्वारा पिचकारी लगाई थी। पिचकारी द्वारा प्रविष्ट कीटाणुओं से जो रोग उत्पन्न हुआ, वह दोनों ओर के फेफड़ों में भिन्न-भिन्न प्रकार का हुआ। गतिमान फेफड़ों में बड़ा तीव्र और वर्द्धमान क्षय हुआ, किन्तु गतिहीन फेफड़ों में बहुत हल्का क्षय उत्पन्न होकर ही रह गया।

हड्डी और जोड़ों के क्षय के इलाज में आराम का ही प्रयोग होता है। जोड़ों के क्षय का आजकल इलाज यही है, कि उनको निश्चल बना कर पूर्ण विश्राम दिया जाय। प्राचीन काल में संलग्नशील प्लास्टर (Adhesive Plaster) की पट्टियाँ चिपका कर वक्षस्थल की गति कम करने की चेष्टा की जाती थी। आजकल वक्षस्थल में हवा भर कर उसके दबाव से रुग्ण फेफड़े को पिचका कर उसकी गति कम की जाती है।

ज्वरित रोगियों के लिए आराम की विधेयता स्पष्ट है। ज्वर रोग की तीव्रता सूचित करता है और कीटाणुओं के विष और उनसे नष्ट-भ्रष्ट फुफ्फुस-तन्तुओं के शोषण से उत्पन्न होता है। रोगी के आराम करने से उसके श्वास की गति और वेग दोनों कम हो जाते हैं और साथ ही रक्त-सञ्चालन भी धीमा हो जाता है। रक्त-सञ्चालन के कम होने से विषों का शोषण कम होता है, इसलिए ज्वर कम हो जाता है। ज्वर में शरीर की सम्वर्तन क्रिया (Metorbolism) बढ़ जाती है। इसलिए ज्वर में परिश्रम करके उसको और बढ़ाना बड़ी

भूल है। ज्वर के कम होने पर खाँसी कम हो जाती है, और भूख बढ़ कर शरीर पुष्ट होने लगता है।

क्षय-रोग में आराम और परिश्रम

प्राचीन काल में पश्चिमी देशों में क्षय-रोगी को घर से हटा कर देहात में अथवा किसी संस्था में भेजना और उसको खुली हवा में परिश्रम करने को प्रेरित करना ही मुख्य इलाज समझा जाता था। पुरानी स्वास्थ्यशालाओं



दाँता के महाराना

आप माहीकण्ठा (गुजरात) के राजाओं की एसोसिएशन के प्रेज़िडेण्ट हैं।

में घण्टों तक रोगियों का खुली हवा में परिश्रम करना, टहलना, घोड़े पर सवारी करना, पहाड़ों पर चढ़ना और श्वास-सम्बन्धी व्यायाम करना, मुख्य इलाज होता था। लगभग ३० वर्ष पहले भी घर पर और क्षय-संस्थाओं में क्षय-रोग का इसी रीति से परिश्रम द्वारा इलाज होता था।

परन्तु जैसे-जैसे स्वास्थ्यशालाओं वृद्धि हुई और रोगियों पर परिश्रम के प्रभाव की ठीक-ठीक जाँच हुई, वैज्ञानिक मत का पलड़ा दूसरी ओर झुक गया और परिश्रम के स्थान पर विश्राम को क्षयोपचार में प्रधानता दी जाने लगी। धीरे-धीरे आराम द्वारा इलाज करने की प्रथा इतनी बढ़ी कि अब कुछ दिनों से इसका दुरुपयोग होने लगा है। अब कई ओर से आराम के विरुद्ध भी आवाज़ें उठने लगी हैं। इन विरुद्धवादियों का कहना है कि वर्तमान स्वास्थ्यशालाओं के आलस्यमय जीवन से अब रोगियों को पहले की विश्राम-चिकित्सा की अपेक्षा अधिक हानि होती है। इङ्गलैण्ड की फ्रिमले स्वास्थ्यशाला में, जहाँ यथाक्रम-परिश्रम (Graduated Labour) से इलाज होता है, उतनी ही सफलता प्राप्त होती है, जितनी कि अन्य स्वास्थ्यशालाओं में, जहाँ केवल आराम से काम लिया जाता है। एक आश्चर्य-जनक बात यह भी देखी गई है कि बहुत सी स्वास्थ्य-शालाओं में अनेक क्षयी कर्मचारी रक्खे जाते हैं, और वह सभी प्रायः कुछ न कुछ काम करते हैं। इन कर्मचारियों की दशा प्रायः उन रोगियों से कहीं अच्छी होती है, जो केवल विश्राम करते हैं। यद्यपि यह बात ठीक है कि कर्मचारी छाँट-छाँट कर रक्खे जाते हैं; परन्तु ठीक वैसी ही दशा वाले रोगियों को भी कुछ काम न देकर उनसे केवल आराम ही कराया जाता है, परन्तु उनकी दशा उतनी अच्छी नहीं होती, जितनी कि काम करने वाले कर्मचारियों की।

विश्राम और परिश्रम के पक्ष में उपरोक्त परस्पर विरुद्ध प्रमाणों के होने का यह कारण है कि न केवल आराम और न केवल परिश्रम से सब क्षय-रोगियों को लाभ हो सकता है, परन्तु दोनों ही, समय-समय पर रोगी की स्थिति के अनुसार विधेय और निषिद्ध होते हैं। जिन रोगियों में वेगयुक्त और वर्द्धमान रोग के लक्षण उपस्थित हों, उनसे परिश्रम कराने से बड़ी हानि होती है और प्रायः साध्य रोग असाध्य हो जाता है। परन्तु जब रोगी ज्वर-रहित होकर खाने-पीने लगे और उसमें काम करने की कुछ शक्ति आ जावे, तो अधिक विश्राम हानिकर होता है। इससे स्पष्ट है कि आराम और परिश्रम, दोनों ही समयानुसार क्षयोपचार में विधेय और निषिद्ध हैं।

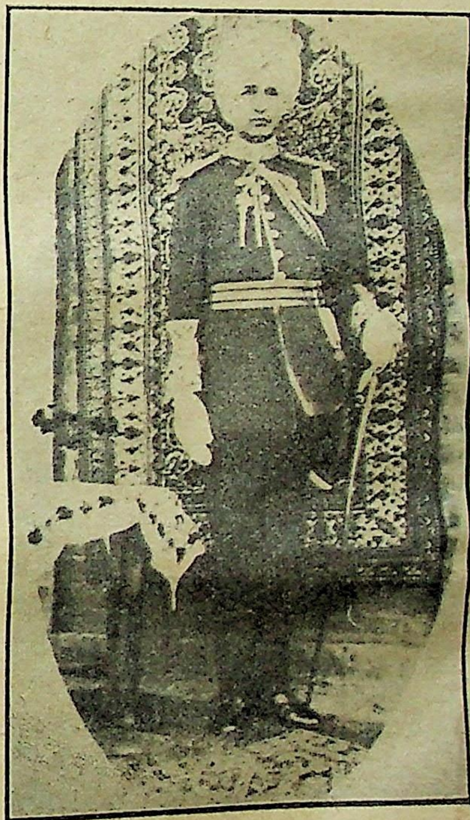
विश्राम की विधेयता

उग्र क्षय में प्रकृति देवी रोगी को आराम देने के लिए उसे शय्यागत कर देती है। निर्बल, रक्तहीन और जीर्ण होने के कारण, तथा विष-व्याप्ति आदि लक्षणों के प्रादुर्भाव से रोगी श्रम करने योग्य नहीं रहता। परन्तु पुरातन और अल्प उग्र क्षय में कभी-कभी रोगी अपनी वास्तविक दशा का अनुमान नहीं कर पाता और उस समय तक काम करता रहता है, जब तक वह शय्यागत नहीं हो जाता। और उस समय, अधिक विलम्ब हो जाने से उसकी दशा सुधरने योग्य नहीं रह जाती। तब विश्राम तथा अन्य इलाज भी किसी काम नहीं आते। ऐसे रोगियों की वही दशा होती है, जो सूख जाने पर वर्षा होने से कृषी की।

उग्र क्षय-ग्रसित रोगियों में, जिनको ज्वर आता हो, भूख न लगती हो, जिनकी नाड़ी की गति तीव्र हो, और शरीर निर्बल तथा जीर्ण हो, उनको तब तक पूर्ण आराम करना चाहिए, जब तक कि इन लक्षणों से वे मुक्त न हो जायँ। परन्तु यह बतला देना उचित है कि रोग का विस्तार, विश्राम या परिश्रम की विधेयता की उत्तम कसौटी नहीं है। ऐसे रोगियों को, जिनका रोग प्रारम्भिक अवस्था में हो और केवल फुम्फुस शिखर पर सीमित हो, परन्तु ज्वर इत्यादि लक्षण विद्यमान हों, काम करने से उन रोगियों की अपेक्षा अधिक हानि होती है, जिनका रोग दोनों फेफड़ों में विस्तृत हो, परन्तु ज्वर न आता हो और नाड़ी की गति ठीक हो।

नाड़ी की गति भी रोगी के काम करने की योग्यता का एक अच्छा चिन्ह होती है। यदि नाड़ी की गति प्रति मिनट ९० या इससे अधिक हो, अथवा थोड़ा परिश्रम करने पर इतनी हो जाती हो, तो समझना चाहिए कि रोगी को आराम करने की आवश्यकता है। क्षय-रोग में नाड़ी की गति बहुधा चञ्चल होती है। थोड़े श्रम से ही तुरन्त १२० प्रति मिनट तक पहुँच जाती है। ऐसे रोगियों को उस समय तक आराम करना चाहिए, जब तक नाड़ी की चञ्चलता कम न हो जाय। और रोगी बिना नाड़ी की गति की वृद्धि के मील-आध मील टहलने या ऐसे ही हलके परिश्रम करने योग्य न हो जाय। ऐसे चञ्चल नाड़ी वाले रोगियों में से बहुत से ज्वर-रहित होते हैं। परिश्रम करने पर भी उनका ताप-परिमाण नहीं बढ़ता, केवल नाड़ी तेज़ हो जाती है।

श्वासावरोध भी एक ऐसा लक्षण है, जो रोगी के आराम करने की विधेयता सूचित करता है। इस लक्षण के लिए चिकित्सक को स्वयं सावधान रहना चाहिए। रोगी के कहने की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए, क्योंकि बहुत से रोगी इतने आदी हो जाते हैं कि उनको श्वासावरोध से कोई कष्ट प्रतीत नहीं होता। यहाँ तक कि जब उनके श्वास की संख्या प्रति मिनट ३० तक पहुँच जाती है, तब भी वह कहते हैं कि उनका श्वास नहीं फूलता। इसलिए चिकित्सक को स्वयं, परीक्षा द्वारा देखना चाहिए कि रोगी को श्वासावरोध है या नहीं।



मेजर जनरल जनकसिंह जी, सी० आई० ई०

आप काश्मीर-मन्त्रि-मण्डल के सदस्य हैं।

और उनको रोगी के कथन पर विश्वास न करके, अपने ही परीक्षा-फल के आधार पर रोगी के लिए विश्राम अथवा परिश्रम की विधेयता का निर्णय करना चाहिए।

जिन रोगियों के होठ और नाख़ून नीले हों, उनको चारपाई पर आराम करना चाहिए। परन्तु होठ तथा नख का नीलापन भी, यद्यपि साधारणतः वह एक बुरा लक्षण है, विश्राम या परिश्रम के निर्णय में सदा सच्ची कसौटी नहीं है। क्योंकि कितने ही क्षय-रोगियों के नख क्षयाघात भर जाने पर भी, रक्त-सञ्चालन के दोष से नीलवर्ण बने रहते हैं। इनमें से बहुत रोगी, रक्त-सञ्चालन के स्वाभाविक परिमाण में कुछ कमी होने पर भी, साधारण काम-काज करने के योग्य होते हैं।

वैज्ञानिक लोग बहुमत से ज्वर में विश्राम को विधेय समझते हैं। ताप-परिमाण से बहुधा विश्राम या परिश्रम का निर्णय किया जाता है। उन क्षय-रोगियों को, जिनका ताप-परिमाण ९९, या इससे अधिक होता है, तब तक पूर्णतः विश्राम करना चाहिए, जब तक ज्वर न छूट जाय। उग्र रोग में जब रोगी को निरन्तर ज्वर रहता हो अथवा पुराने रोगियों में, जब रोग का पुनरुद्दीपन हो, या कोई नया उपद्रव उत्पन्न हो जाय, तो रोगी को पूर्ण विश्राम करना चाहिए। रोग की चरमावस्था में, जब कि ज्वर का वेग अधिक होता है, रोगी को शय्यागत होकर पूर्ण विश्राम करना चाहिए। इस सम्बन्ध में यह बतला देना उचित है कि बहुत से रोगी ज्वर के इतने आदी हो जाते हैं कि उनको थोड़े बहुत ज्वर से कोई कष्ट प्रतीत नहीं होता; इसीलिए हरारत का उनको पता नहीं चलता। इससे यह स्पष्ट है कि रोगी के कथन पर विश्वास न करके ताप-मापक यन्त्र (Thermometer) लगा कर रोगी का ताप देख लेना चाहिए।

विश्राम करने की विधि

जब विश्राम विधेय हो तो उसको विधिपूर्वक करना चाहिए। उग्र और वर्द्धमान क्षय में रोगी को शय्यागत होकर तब तक पूर्ण विश्राम करना चाहिए, जब तक ज्वर ९९° ताप-परिमाण से कम न हो जाय। पूर्ण आराम का अर्थ यह है कि रोगी को दिन-रात चारपाई पर लेटे रहना चाहिए। शौचादि के लिए भी नहीं उठना चाहिए। आदर्श-पूर्ण विश्राम तभी हो सकता है, जब रोगी चुपचाप पड़ा रहे और जहाँ तक हो सके करवट भी न ले। कुछ रोगी इसका विरोध करते हैं और कहते हैं कि वे घण्टों तक भली प्रकार चल-फिर सकते हैं, उनको व्यर्थ पड़ा रहना बड़ा बुरा लगता है और यदि उनको कुछ देर तक उठने-बैठने की आज्ञा दे दी जाय, तो उनको अवश्य लाभ होगा। परन्तु यह उनकी भूल है। चिकित्सक को चाहिए कि वह रोगी को जता दे कि चारपाई के बाहर उसका ज्वर अच्छा नहीं हो सकता। डॉक्टर पोजेड का कहना है कि चारपाई पर बहुत दिनों तक पड़ा रहना रोगी को निःसन्देह निर्बल कर देता है, परन्तु वह इतना निर्बल नहीं करता, जितना ज्वर; जो कि रोगी को न केवल निर्बल ही करता है, परन्तु उसका प्राण-घातक भी होता है।

रोगी के लिए, यदि हो सके तो दो चारपाई होनी चाहिए, एक दिन के लिए और दूसरी रात के लिए। चारपाई के बदलने का रोगी पर लाभदायक प्रभाव होता है, क्योंकि उसे चारपाई पर महीनों तक पड़ा रहना पड़ता है। ऐसे रोगी प्रायः दिन को सोते हैं और रात को नींद न आने के कारण जागते रहते हैं। दिन में सोने का एक कारण यह भी है कि रोगियों को बहुधा पढ़ने की और मित्रों से मिलने की आज्ञा नहीं दी जाती। परन्तु इतने कठोर नियमों की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। रोगी का कमरा और चारपाई बदलने से प्रायः उनको एक चारपाई पर ही सोने की आदत पड़ जाती है। इसलिए वह दिन में जाग कर केवल रात को ही सोते हैं। इसके अतिरिक्त जब रोगी एक कमरा और चारपाई छोड़ कर दूसरे कमरे में और चारपाई पर जाता है तो पहले की सफ़ाई की जा सकती है।

प्रातःकाल जब रोगी जागता है, तो शौच के बाद गरम पानी और तौलिया से उसका पूरा शरीर पोंछना चाहिए, और उसकी चारपाई बाहर निकाल कर ऐसे स्थान पर रखनी चाहिए, जहाँ से घर और बाहर की सब चीज़ें उसको दिखलाई दें।

जब ज्वर ९९° फ़॰ ताप-परिमाण से कम होने लगे, तो रोगी को दिन में आराम-कुरसी पर लेट कर आराम करने की आज्ञा दी जा सकती है। पुस्तक और समाचार-

पत्र पढ़ने की अनुमति भी दी जा सकती है। परन्तु मध्याह्न के उपरान्त जब ज्वर बढ़ने लगे तो चारपाई पर लेट कर उसे आराम करना चाहिए। यदि इतना करने पर ज्वर न बढ़े, तो रोगी को बैठने और कुछ दिल बहलाने वाले खेलों की आज्ञा दी जा सकती है। ज्वर के छूटने पर रोगी चल-फिर सकता है। कभी-कभी यह देखा गया है कि थोड़ी सी ज्वर की हरारत रहने पर भी रोगी को टहलने से या इसी प्रकार का थोड़ा सा परिश्रम करने से लाभ होता है।

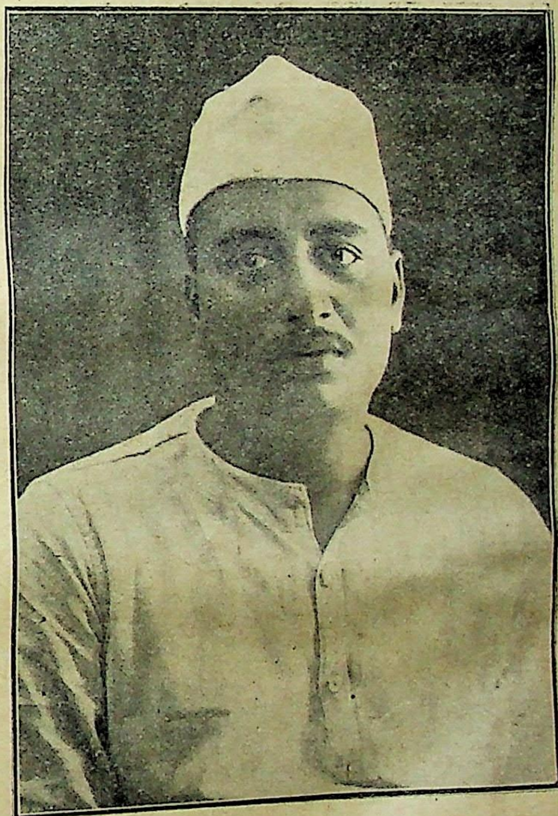
इस प्रकार चारपाई पर आराम करना कभी-कभी रोगी के लिए बड़ा कठिन हो जाता है। बहुधा यह देखा गया है कि निर्धन रोगी ज्वर की दशा में भी बहुत दिनों तक काम करते रहते हैं। ऐसे रोगियों को यदि वह घर पर आराम न कर सकें तो किसी सार्वजनिक आरोग्यशाला में, जहाँ उनके भोजन इत्यादि का उचित प्रबन्ध हो, भरती होने से लाभ होता है।

बहुत से धनी रोगी भी इस विषय में ग़रीब रोगियों से अच्छे नहीं होते। ज्वर होने पर भी अपना काम-काज किया करते हैं। और प्रायः यह देखा गया है कि निर्धनों की अपेक्षा इन लोगों पर समझाने-बुझाने का प्रभाव कम पड़ता है।

आराम का निषेध

बहुत सी स्वास्थ्यशालाओं में पहले यह बड़ी भूल थी कि रोग के भेद और लक्षणों पर बिना विचार किए ही सब रोगियों से आराम कराया जाता था। इसका परिणाम यह होता था, कि वहाँ से रोगी आलसी होकर निकलते थे। इन लोगों को काम से बड़ा भय लगता था, और बिलकुल अच्छे हो जाने पर भी यह परिश्रम को हानिकारक समझने लगते थे। परन्तु आजकल अधिकांश स्वास्थ्यशालाओं में इस प्रकार की भूल से बचने का पूरा प्रयत्न किया जा रहा है।

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, रोग का विस्तार विश्राम की विधेयता की सदा सच्ची कसौटी नहीं होती। बहुत से रोगी रोग के अधिक विस्तीर्ण होने पर और फेफड़ों में रन्ध्र बन जाने पर भी कुछ न कुछ काम करने योग्य रहते हैं। बहुत से रोगियों के लिए अधिक समय तक निरन्तर आराम करना अत्यन्त हानिकर होता है। उनका वात-संस्थान शिथिल हो जाता है, काम करने की रुचि मारी जाती है, और शरीर की निग्रह (प्रतिकार) शक्ति कम हो जाती है। डॉक्टर पिटर्सन और डॉक्टर इन्मैन का कहना है कि क्षय-रोग में शारीरिक उद्योग से जो लाभदायक प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न होती हैं, उन सबका बहुत समय तक विश्राम करने से लोप हो जाता है।



श्री० पूनमचन्द राँका

(मध्य-प्रदेश के द्वितीय डिक्टेटर)

कुछ स्वास्थ्यशालाओं में, जहाँ विश्राम-चिकित्सा का आधिक्य होता है, रोगी महीनों तक शय्यागत रहने से क्लान्त और निरुत्साही हो जाते हैं, और सांसारिक विषयों में उनको कोई उत्साह नहीं रहता। कुछ रोगी पड़े-पड़े इतने वहमी हो जाते हैं कि हर समय ताप-मापक यन्त्र (Thermometer) को लगा-लगा कर देखा करते हैं और ताप में तनिक सी भी न्यूनाधिकता मिलने पर।

घबरा उठते हैं। ऐसे लोग बहुधा निराश हो जाते हैं और उनकी निराशा का रोग की गति पर बड़ा अहितकर प्रभाव पड़ता है।



श्रीमती सत्यभामा देवी

आप ब्यावर काङ्ग्रेस कमिटी की 'डिक्टेटर' हैं और अपने दस महोने के बच्चे सहित हाल ही में जेल गई हैं। आपके पति श्री० आर० एन० मेहता, सम्पादक 'तरुण राजस्थान' और आपके श्वसुर श्री० एन० नागर, कमाण्डर इन-चीफ़, बूँदी स्टेट भी नमक का क़ानून तोड़ने के अपराध में अभी दण्ड भोग रहे हैं।

अतिशय विश्राम देने वाली स्वास्थ्यशालाओं से निकले हुए 'स्नातक' जीवन भर के लिए आलसी हो जाते हैं। डॉ० ग्रिप के कथनानुसार आराम के इलाज से बीमार कर्मकार, स्वस्थ निखट्टू बन जाते हैं। जिन रोगियों में रोग का वेग रुक गया है, ज्वर नहीं आता और नाड़ी तीव्र नहीं चलती, ऐसे मनुष्यों का शरीर अधिक विश्राम करने से शिथिल और स्थूल हो जाता है। किसी अंश तक मोटा होना अच्छा है, क्योंकि वह शारीरिक उन्नति सूचित करता है। परन्तु अधिक वसावृद्धि होने से शरीर ढीला और निकम्मा हो जाता है। ऐसे रोगियों को आराम की अपेक्षा परिश्रम से अधिक लाभ होता है। डॉ० मकलीन की यह कहावत कि "यदि क्षय-रोगी जीना चाहता है, तो उसको जीने के लिए कुछ परिश्रम करना चाहिए" ठीक प्रतीत होती है।

व्यायाम

जब रोगी ज्वर-रहित हो जाय, और उसका ताप-परिमाण तथा नाड़ी की गति स्वस्थ अवस्था के सदृश हो जाय और लगातार आठ या दस दिन तक स्वस्थ दशा में बनी रहे, तो रोगी को टहलने की आज्ञा देनी

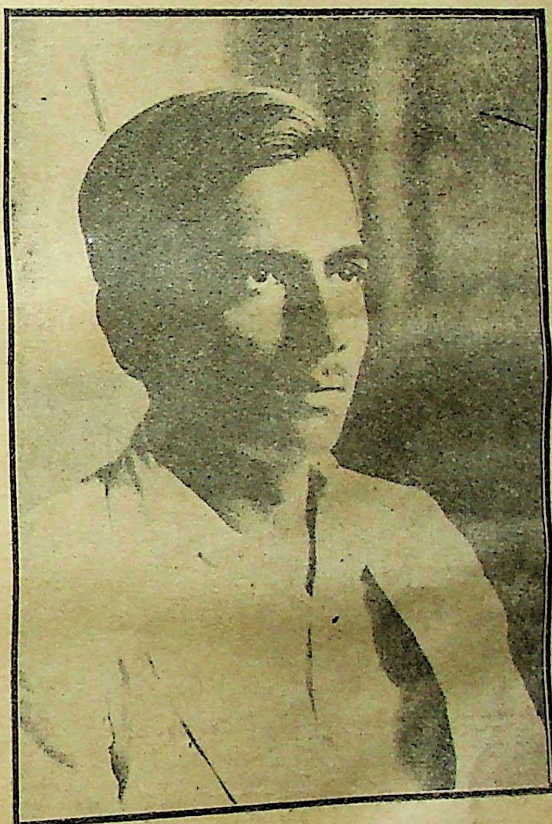
चाहिए, क्योंकि श्रम और व्यायाम से आलस्य का हानि-कारक प्रभाव दूर होता है और शरीर में सौम्य प्रति-क्रियाओं (Mild re-actions) का उद्दीपन होता है, जो बड़ा लाभदायक होता है।

पहले केवल एक मील टहल कर देखना चाहिए कि रोगी के ताप और नाड़ी पर क्या प्रभाव पड़ता है। टहलने के लिए प्रारम्भ में प्रातःकाल का समय उत्तम होता है, क्योंकि प्रातःकाल रोगी का शारीरिक ताप कम होता है। सायङ्काल जब ताप कुछ अधिक होता है, रोगी आराम कर सकता है। परन्तु उन रोगियों को, जिनको सायङ्काल भी कोई हरारत नहीं होती, और जिनकी नाड़ी की गति प्रति मिनट ८४ से अधिक नहीं होती, टहलने के लिए समय का कोई विचार नहीं करना चाहिए।

जब एक मील टहलने से हरारत न बढ़े और नाड़ी की गति तीव्र न हो, तो धीरे-धीरे टहलना बढ़ाना चाहिए। अन्त में ज्वर-रहित रोगी दस या पन्द्रह मील नित्य टहल सकता है; और पहाड़ों पर भी चढ़ सकता है। परन्तु जब टहलने से हरारत आने लगे और नाड़ी शीघ्रगामी हो जाय तो टहलना छोड़ कर आराम करना चाहिए। जब रोगी बिना किसी कष्ट के दस या पन्द्रह मील तक टहलने लगे तो उसे कुछ काम करने के लिए देना चाहिए और धीरे-धीरे उस काम को रोगी की सामर्थ्यानुसार बढ़ाना चाहिए।

यथाक्रम परिश्रम (Graduated Labour)

चिकित्सकों ने देखा होगा कि बहुत से क्षय-रोगियों में घर पर प्रतिकूल परिस्थिति में रहते हुए भी, वर्षों तक काम करने की सामर्थ्य बनी रहती है और यथाशक्ति काम करने से उनको कोई प्रत्यक्ष हानि भी नहीं प्रतीत होती है। इनमें से कुछ का रोग विरत और कुछ का अविरत होता है, परन्तु वर्द्धमान नहीं होता। यहाँ पर यह बतला देना आवश्यक है कि रोग के विस्तार से रोग की तेज़ी की अपेक्षा रोगी की कार्य-शक्ति के अनुमान करने में कम सूचना मिलती है। रोग की तेज़ी ज्वर इत्यादि लक्षणों से सूचित होती है। यह देख कर डॉ० पिटर्सन ने यथाक्रम परिश्रम से इलाज करने की एक रीति निकाली। उन्होंने विचार किया कि जब क्षय-रोगी अपने घरों पर प्रतिकूल अवस्था में रह कर, बिना प्रकट-हानि के, काम कर सकते हैं, तो यदि अनुकूल अवस्था में रख कर सामर्थ्यानुसार रोगियों से यथाक्रम परिश्रम कराया जाय, तो अवश्य लाभ होना चाहिए। इस विचार के अनुसार स्वास्थ्य-शालाओं के रोगियों को श्रम करने से अधिक लाभ होना चाहिए, और स्वास्थ्यशालाओं पर रोगियों को आलसी बनाने का जो दोषारोपण किया जाता था, वह नहीं किया जा सकेगा। इसके अतिरिक्त परिश्रम करने से रोग-निरोधक शक्ति बढ़ेगी और स्वास्थ्यशाला छोड़ने पर रोगी तुरन्त अपने काम पर वापस जा सकेंगे। रोगियों को अपने पूर्व कार्य करने योग्य बनाने के लिए केवल टहलना पर्याप्त नहीं हो सकता, क्योंकि टहलने से ऊर्द्ध शिखाओं का व्यायाम नहीं हो सकता। इस विचार के



श्री० जयन्त दलाल

बम्बई के प्रसिद्ध कॉङ्ग्रेस-बुलेटिन के प्रथम सम्पादक, जिनको दो वर्ष की सख़्त सज़ा दी गई है।

आधार पर उन्होंने अपनी यथाक्रम परिश्रम प्रणाली निकाली।

पिटर्सन की परिश्रम-पद्धति

जब रोगी दो मील टहलने लगता है और उसकी दशा में कोई विकार उत्पन्न नहीं होता, तो उसको डलिया देकर फुलवाड़ी के लिए खाद ढोने का काम दिया जाता है। तीन या चार सप्ताह इस प्रकार काम करने पर जब कोई हानि प्रतीत नहीं होती, प्रत्युत रोगी को लाभ होता है, तब उसको एक छोटा फावड़ा देकर मिट्टी खोदने का काम दिया जाता है। परन्तु प्रारम्भ में इनसे लगातार काम नहीं कराया जाता। पाँच मिनट खोदने के बाद पाँच मिनट आराम दिया जाता है और धीरे-धीरे काम बढ़ाया जाता है। कुछ दिनों के बाद यह बिना आराम के लगातार कई घण्टों तक काम करने के योग्य हो जाते हैं। इसके बाद बड़े फावड़े से और भी कठिन काम करने को दिया जाता है। यह अनुभव किया गया है कि इतना कठिन कार्य करने पर भी रोगियों को कोई हानि नहीं होती, प्रत्युत उनकी दशा क्रमशः अच्छी होती जाती है। इस प्रकार डॉ० पिटर्सन ने रोगियों की सामर्थ्यानुसार यथाक्रम परिश्रम करने की पद्धति का आविष्कार किया है। अधिक परिश्रम करने से रोगी को हानि पहुँचती है। अधिक परिश्रम से जो हानि पहुँचती है, उसके चिन्ह यह होते हैं—हरारत का उत्पन्न होना (९९° फ़० या इससे अधिक), भोजन में अरुचि, शिर में पीड़ा, इत्यादि। जैसे ही यह लक्षण प्रकट हों, रोगी को सब काम छोड़ कर आराम करना चाहिए और तब तक परिश्रम आरम्भ न करना चाहिए, जब तक उसकी दशा फिर ठीक न हो जाय। नाड़ी का शीघ्रगामी होना भी परिश्रम से हानि का चिन्ह होता है। इस प्रकार रोगियों को निरीक्षण में रख कर परिश्रम कराया जाता है और उनकी सामर्थ्यानुसार क्रमशः परिश्रम की मात्रा बढ़ाई जाती है।



मि० मुहम्मद अब्दुल क़ादिर

आप बैरिस्टरी और आई० सी० एस० परीक्षाएँ देने लन्दन गए हैं।

बाहर के खेल-कूद

ज्वर-रहित रोगियों को, जिनकी नाड़ी की गति तीव्र न हो, खुली हवा में व्यायाम करने के लिए उत्साहित करना चाहिए, क्योंकि चारपाई पर पड़े रहने से शरीर स्थूल और इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं और बराबर रोगी अपने रोग के सम्बन्ध में ही सोचता रहता है। केवल टहलना उसके मनोरञ्जन और समय काटने के लिए पर्याप्त नहीं होता। रोगी को किसी खेल-विशेष का परामर्श देने से पूर्व, उसके बीमार पड़ने से पहले की जीवनचर्या और आदतों पर विचार करना आवश्यक है। क्षय-रोगी को अति प्रबल और तीव्र खेल खेलना उचित नहीं। पहले हलके खेल खेलने चाहिए और देखना चाहिए कि उनका क्या प्रभाव पड़ता है। और फिर धीरे-धीरे उनको बढ़ाना चाहिए।

घर के अन्दर के खेल

जब रोगी का ज्वर ९९° फ़० से कम हो जाय, तो चारपाई पर लेटे हुए मनोरञ्जन के लिए कुछ खेलों की आज्ञा दी जा सकती है। परन्तु कुछ चिकित्सक ९९°

फ़० से अधिक ज्वर होने पर आराम करने को कहते हैं। मेरी राय में ६६° फ़० से निम्न बुख़ार की दशा में चारपाई पर लेटे-लेटे ताश इत्यादि मनोरञ्जक खेल खेलने से कोई हानि नहीं होती, प्रत्युत रोगी का दिल-बहलाव होता है। क्षय-रोगियों को थियेटर, सिनेमा इत्यादि बन्द और भीड़-भाड़ की जगहों में नहीं जाना चाहिए।



मौलाना मुहम्मदअली गोलमेज़ परिषद में सदस्य की हैसियत से गए हैं और मौलाना शौकतअली बिना बुलाए सलाहकार की हैसियत से !

नानी

[डॉक्टर धनीराम जी 'प्रेम', (लन्दन)]



माँ की लाश सामने पड़ी हुई थी। मेरा भाग्य फूट गया था। पिता जी का देहान्त कई वर्ष पूर्व हो चुका था। अब, जीवन का एक-मात्र आधार, मेरी माँ, मेरी जननी, मेरी सृष्टि की रचयिता भी मुझे छोटी सी आयु में छोड़ कर चल दी। मेरे लिए क्या शेष रहा था? माँ के अतिरिक्त मैं संसार में कुछ और नहीं समझता था, माँ के स्नेह के अतिरिक्त मैंने और किसी का स्नेह नहीं जाना था। माँ मेरे लिए मेरा संसार थी। पृथ्वी की ओर दृष्टि डालता था तो माँ की मूर्ति दिखाई दिया करती थी, आकाश की ओर आँखें फेंकता था, तो माँ की आकृति ही दृष्टिगोचर होती थी। आज वह चली गई। कुछ लोग कह रहे थे, वह सो रही थी। परन्तु वह इस प्रकार कभी न सोई थी। कुछ कहते थे, वह कुछ दिनों के लिए जा रही है, परन्तु इससे पहले तो वह इस प्रकार कुछ दिनों के लिए नहीं जाया करती थी।

मैं एक कोने में शिर ढँके रो रहा था। स्त्रियाँ मुझे समझा रही थीं, प्यार की बातें कह रही थीं, परन्तु उनसे मेरे रुदन की गति कम होने के बजाय और बढ़ती थी। लोगों ने शव को उठाया, मैं रोता हुआ दौड़ कर चिल्लाया—मेरी अम्माँ को कहाँ लिए जा रहे हो?

पीछे से किसी ने मेरा हाथ पकड़ा। यह नानी थी। उसकी आँखों से आँसू निकल रहे थे। वह विह्वल होकर बोली—पूरन, बेटा!

"नानी, मेरी अम्माँ कहाँ गई?"—मैं उससे लिपट कर बोला।

"अभागे, अम्माँ वहाँ गई, जहाँ से कोई लौट कर नहीं आता। वह तेरे पिता के पास गई है। क्या मैं तेरी अम्माँ नहीं हूँ? इधर देख, आज से मैं तेरी अम्माँ बनूँगी।" उसने अपने आँचल से अपने और मेरे आँसू पोंछे और कातर होकर बोली—"पूरन, मेरा बच्चा।"

मैंने उसके नेत्रों की ओर देखा। उनके नेत्रों में वही करुणा, वही मातृ-प्रेम, वही सहृदयता भरी थी, जो मेरी माँ के नेत्रों में थी। मेरे मुख से निकल गया—'अम्माँ!' और मैं उससे लिपट गया।

* * *

उस दिन से वह मेरी माँ हो गई थी। प्रत्येक दिन, हर घड़ी, उसे मेरी ही चिन्ता रहती थी। रात को अपने पास सुलाती थी। स्वयं पास बिठा कर खाना खिलाती थी। उसका सारा प्रेम मुझमें केन्द्रीभूत हो गया था। वह निर्धन थी। फिर उसे मामा के सारे परिवार का प्रबन्ध करना पड़ता था। परन्तु उस दशा में भी वह मुझे किसी प्रकार का कष्ट न होने देती थी। यदि मैं माँ की याद करके रोता तो कभी वह कहानियाँ सुनाती और कभी 'ठाकुर भले विराजे जी, उड़ीसा जगन्नाथपुरी में भले विराजे जी' गाना गा दिया करती थी।

उसके दो नाती थे। मैं था उनके अधिकारों पर आक्रमण करने वाला, अतः हममें कभी-कभी बज जाती थी। परन्तु वह सदा मेरा पक्ष लिया करती थी। कभी-कभी इसी बात पर मामी से सामना हो जाता था, परन्तु वह कह देती थी—अपने पुत्रों की तू माँ है, उसकी माँ कौन है? यदि मैं उसका पक्ष न लूँ, तो और कौन लेगा?

* * *

मेरी एण्ट्रेन्स की परीक्षा हो रही थी। वह प्रति दिन महादेव जी पर जल चढ़ाने जाती कि मुझे सफलता हो जाय।

एण्ट्रेन्स में मैं पास हो गया। उसने समाचार सुना। मैं जब घर आया तो देखता हूँ कि वह बताशे लिए बैठी है। मैंने पूछा—"अम्माँ, यह क्या ?"



श्री० पी० के० घोष

आप कलकत्ते के प्रसिद्ध तैराक हैं।

"यह परसाद के लिए बताशे हैं।"

"किसके परशाद के लिए ?"

"महादेव जी के।"

"तो बाँट दे।"

"अरे पागल, पहले महादेव जी पर चार बताशे चढ़ा कर उन्हें दण्डौत कर आ, पीछे यह औरों को बटेंगे।"

मैंने बताशे उठाए। उसकी दृष्टि जब एक ओर को हुई, तो मैं चार बताशे निकाल कर मुँह में रखने लगा। परन्तु वह तेज़ी से मुड़ कर बोली—अरे बेईमान, समझता है कि मैं देख नहीं रही। यह अछूते बताशे खाना चाहता है। रख थाली में। जब महादेव जी पर चढ़ जायँ, तब खाना।

और इस डर से कि मैं बताशे 'झूठे' न कर लूँ, वह मेरे साथ-साथ मन्दिर तक गई।

मुझे एफ़० ए० के लिए वज़ीफ़ा मिला था। जब पहले महीने के रुपए मिले तो मैंने नानी से कहा—अम्माँ, इनमें से एक तो तू धोती बनवा ले और एक ऊन की फ़तूही।

वह बोली—अरे बेटा, मैं अब क्या ऊन की फ़तूही पहनूँगी। तू अपने दूध-घी के लिए यह रुपए रख ले।

मैंने जब बहुत हठ किया, तब जाकर उसने कपड़े बनवाए। उसके हर्ष का कुछ ठीक था? कपड़े आते ही उसने पहने और मुहल्ले में चारों ओर घूम कर कहती फिरी—देखो मेरे पूरन ने यह कपड़े अपने वज़ीफ़ा में से बनवाए हैं।

२

असहयोग के दिन थे। मैं भी कॉलेज छोड़ कर असहयोग के प्रचार में शक्ति भर हाथ बँटाने लगा। और उसके उपलक्ष में मुझे तीन माह के लिए कारागार जाना पड़ा।

जेल से छूट कर मैं आया तो मेरे अनेकों मित्र मेरा स्वागत करने आए थे। परन्तु मुझे नानी को देखने की पड़ रही थी। मैं जानता था कि वह हाथ फैलाए आँखें फाड़-फाड़ कर मेरी प्रतीक्षा कर रही होगी। और वास्तव में, वह कर रही थी। प्रातःकाल से उसने भोजन नहीं किया था। मैंने पहुँचते ही दौड़ कर उसके चरण

हुए। वह मुझे गले से लिपटा कर रोने लगी। मैंने कहा—अम्माँ, तू रोती है?

"हाँ, बेटा, मैं आँसू रोक नहीं सकती। ये हर्ष के आँसू हैं। मेरा बेटा बहादुरी का काम करके आया है। आज अगर तेरी माँ होती तो ...."

मैंने बीच ही में कहा—तू माँ नहीं तो और कौन है?

उसने कुछ कहा नहीं, अपने आँसू पोंछ कर वह बर्बस हँस दी।

मैं बैठा। वह एक थाली ले आई। उसमें बताशे, रोली और दो रुपए रक्खे थे। मैंने पूछा—"अम्माँ यह क्या?"

"तेरा तिलक करूँगी, बेटा।"

"और यह रुपए?"

"रुपए, तेरे ख़र्च के लिए हैं। मेरे पास रुपए होते तो तेरे ऊपर संसार लुटा देती, बेटा।"

उसने तिलक किए। हठात् मेरी आँखों से आँसू बहने लगे। कितना स्नेह, कितनी ममता। मैं समझता था कि दो रुपए उस ग़रीबी की दशा में उसके लिए कितने मूल्यवान थे। मेरे आँसू पानी के नहीं थे। मेरे हृदय में उसके लिए जो भक्ति थी, वह उमड़ कर बह रही थी। इतना स्नेह क्या एक माँ भी दिखाती?

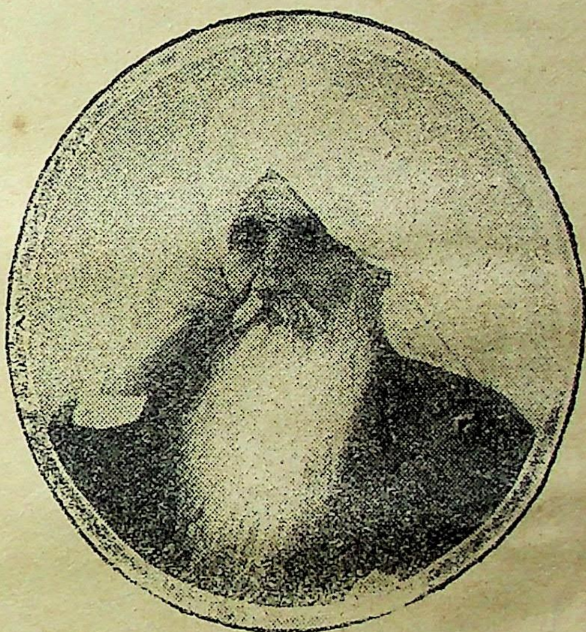
* * *

उसका अन्त आ ही गिरा। वह शय्या पर पड़ी थी। मैं उसके पास रो रहा था। वह मेरे सर पर हाथ फेर कर बोली—रोवे मत पूरन। रोने का समय तो उस दिन था, जब तेरी माँ मरी थी। अब तू समझदार है। अब क्यों रोता है?

"मेरे लिए यह समय तब से भी बुरा है, अम्माँ! उस समय माँ मरी थी, पर तू थी। अब, जब तू मर रही है तो कौन है, जिसे मैं माँ कह सकूँगा? तूने मुझे सब कुछ बनाया और अब जब मैं कुछ करने लायक़ हुआ, तू जा रही है। तेरा ऋण किस प्रकार चुकाऊँगा अम्माँ?"

"मेरा ऋण? माँ का क्या ऋण होता है, बावले? हाँ, मेरी एक साध थी कि तेरा विवाह करके तेरी बहू देख लेती! ख़ैर! तू नाम कमा रहा है, यही मेरे लिए सन्तोष की बात है।"

"अम्माँ, तेरे लिए मैं कुछ कर सकता हूँ?"



सर प्रभाशङ्कर पट्टणी
(गोलमेज़ के सदस्य)

"अच्छा, बहुत करे तो मेरे लड्डू-पूरी ब्राह्मणों को खिला देना।"

वह चल दी।

* * *

मैंने ब्राह्मणों को उसके नाम पर लड्डू-पूरी खिला दिए। शायद उसकी आत्मा इससे सन्तुष्ट हो गई हो, परन्तु मुझे इससे सन्तोष नहीं हुआ। उसका ऋण ऐसा है, जिसे मैं कई जन्मों में भी न चुका सकूँगा।



चन्दा और बन्दा

मैं हूँ, फ़ैशन है, और चन्दा है ! बस इसी कशमकश में बन्दा है !!

नारी-जीवन

[श्री० आनन्दीप्रसाद जी श्रीवास्तव]

पत्र-संख्या—१७

[वृद्ध-पत्नी की ओर से बाल-विधवा को]

बहिन,
समझ मैं गई कि तुम पर
आया था सङ्कट तब घोर,
रक्षित हो सकती थीं पाकर
केवल प्रभु की करुणा-कोर।

इस प्रकार दुष्टों के कर में
ललनाएँ देने वाले,
उन पर ला आपत्ति, प्राण मृदु
उनके यों लेने वाले

भारत में हैं बहुत, कहूँ क्या
उन्हें, करूँ निन्दा कैसे ?
इस जगती में परम क्रूर हैं
केवल वे उनके जैसे।

यदि मेरा वश चले, करूँ मैं
उन पर ऐसे अत्याचार
जो सिखला दें उन्हें चाहिए
किसके सँग कैसा व्यवहार।

सोच तुम्हारी दशा उस समय
की छाती फटती है हाय !
जब तुम छोड़ी गईं सड़क पर
भूखी-प्यासी अति निरुपाय।

जो पशु पाले जाते उन पर
होते वे यों नहीं कठोर,
क्या ललनाओं का पशु से भी
नीचे है समाज में ठौर !

बहिन सोचती थीं तब क्या तुम,
रखती थीं धीरज कैसे ?
प्राण तुम्हारे बने हुए थे
क्यों ? जाता क्या जी ऐसे ?

अच्छा था जो कुछ होता था,
इन सब बातों का परिणाम
बड़ा भयङ्कर होगा, उससे
पुरुष-जाति होगी बदनाम।

क्रान्ति उपस्थित होगी फिर, फिर
ललनाओं की स्वतन्त्रता
यों समुदित होगी, उगती ज्यों
पाहन मध्य ललाम लता।

बहिन, सुनाती हूँ तुमको फिर
अपना कुछ आगे का हाल,
चले गए वे मुझे छोड़ कर
किन्तु हो गए अति विकराल।

तब मुझको वश में लाने को
होने लगे गुप्त षड्यन्त्र
प्रथम चलाना चाहा मुझ पर
गणिका जन का मोहन-मन्त्र।

आने लगीं नित्य ही घर वे
होने लगा नित्य गाना,
मैं समीप बैठाई जाती
थी, मैंने सब कुछ जाना।

मदिरा वे पीती थीं, करते
वृद्ध महाशय भी थे पान,
मुझे पिलाने को नित मदिरा
था यह सब उद्योग प्रधान,

पर मैं सदा दूर रहती थी
उससे, उनका व्यर्थ प्रयास
मानो हँस-हँस कर करता था
उनका ही नितप्रति उपहास।

समझाती थीं वे सब मुझको,
पर मैं चुप ही रहती थी,
मन ही मन जलती थी, यह सब
किसी भाँति मैं सहती थी।

बीते विपुल दिवस ऐसे ही
काम न आया मोहन-मन्त्र,
ज्ञात हुआ तब मुझे दूसरा
होने वाला है षड्यन्त्र।

यह सब ख़बर मुझे मिलती थी
सहृदय यक ललना-द्वारा,
वृद्ध महोदय ने था जिसका
नष्ट किया जीवन सारा।

मैं भयभीत हुई, पर उसने
कुछ आश्वासन मुझे दिया,
ठीक समय पर रक्षा करने
का आयोजन तुरत किया।

पत्र-संख्या—२८

[बाल-विधवा की ओर से वृद्ध-पत्नीको]

बहिन,

भयङ्कर लोलुप था वह
वृद्ध, क्रोध मुझको आता,
ये गर्हित उपाय थे उसके !
ऐसा था पवित्र नाता।

केवल काम-वासना से हो
प्रेरित करते वृद्ध-विवाह
पत्नी की उन्नति-अवनति की
उन्हें कहाँ रहती परवाह ?

ब्याह परस्पर सत्योन्नति में
सहायता के हित होता,
यह था उच्चादर्श, किन्तु
उसके विरुद्ध अब नित होता।

अहो भरत-भूखण्ड तुम्हें था
निज संस्थाओं पर अभिमान,
किन्तु आज वे सभी बिगड़ कर
पड़तीं नहीं तनिक पहिचान।

ललनाओं का अति पवित्र, अति
सुषम सुगति का साधन तन
समय प्रगति से गया आज है
काम-वासनोद्दीपन बन।

बड़ा विषम है उनके प्रति
भारत के पुरुषों का व्यवहार,
बढ़ पातीं वे नहीं उसी से
लखतीं शीघ्र मृत्यु का द्वार।

भारत कहता है चरित्र-बल
नहीं विदेशी जन में है।
मैं कहती हूँ बहुत अधिक
पावनता उनके मन में है।

वे विकास होने देते हैं
ललनाओं के तन-मन का,
बहुत मूल्य उनकी सुदृष्टि में
है ललना-जन-जीवन का।

इसीलिए होतीं विदेश की
ललनाएँ हैं स्वस्थ, प्रवीर,
सागर पार तैर कर, करतीं,
वायुयान-चालन भी धीर !

ब्रह्मचर्य-बल से विहीन वे
कर सकतीं क्या ऐसे काम,
भारत-रमणी के जीवन का
हो सकता क्या जीवन नाम।

बहिन, सुनाती हूँ फिर तुमको
निज विपत्ति से भरी कथा,
उसको कहने में होती है
हाय आज भी मुझे व्यथा !

उस फ़क़ीर की बातें सुन मैं
गई पास उसके तत्काल,
दुख के समय फँसा लेता है
हमें सुमृदु वचनों का जाल

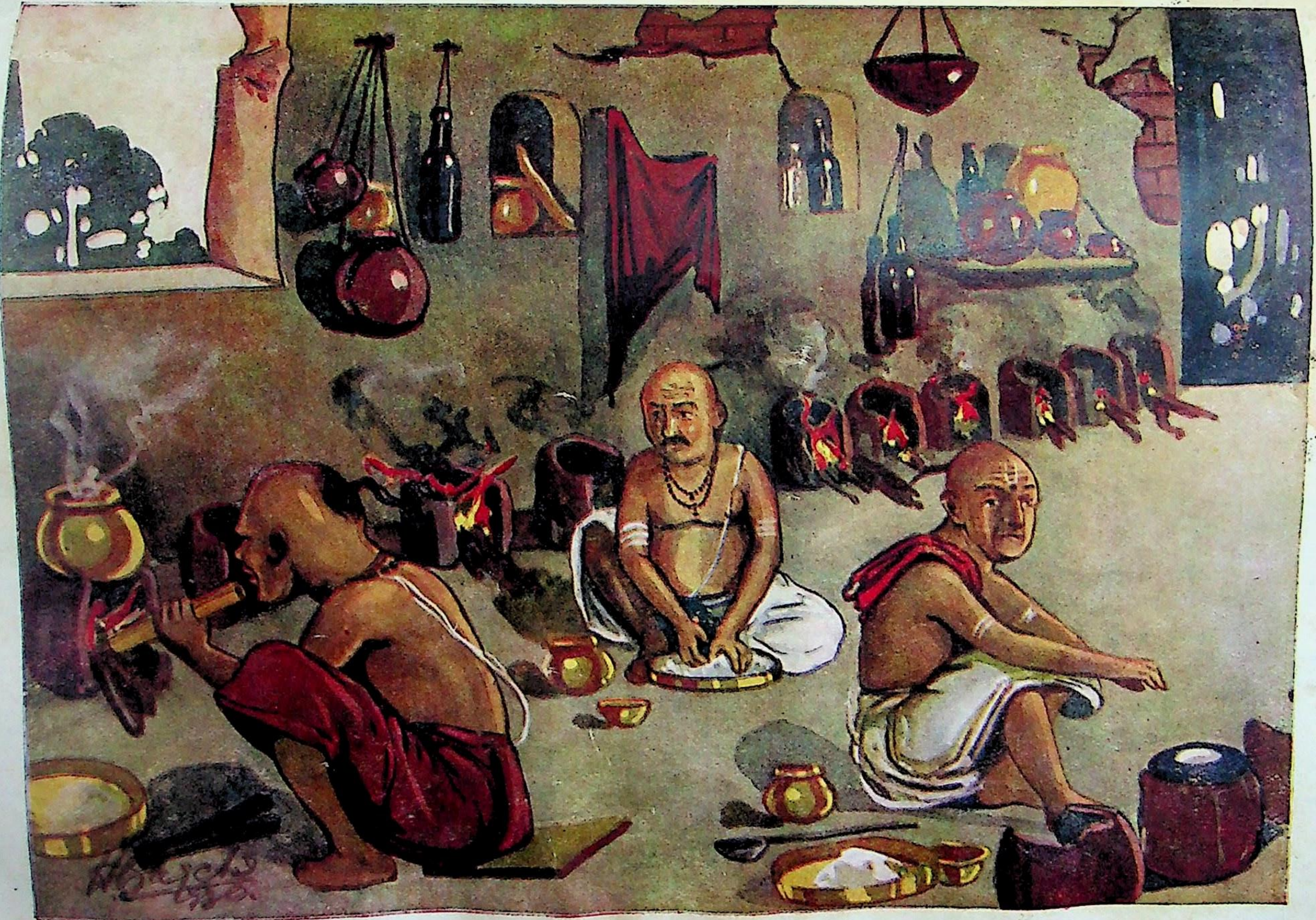
हाथ पकड़ बैठाया उसने,
कहा, तनिक भोजन कर लो,
बात करूँगा फिर, पहले तुम
अपना सुस्थिर मन कर लो।

मैंने सोचा प्रभु की भेजी
यह सहायता मुझे मिली,
साधु-वेश का देख सहारा
मेरे मन की कली खिली।

अपरिपक्व मन जल्दी होता
है प्रसन्न, जल्दी से म्लान,
दुनिया की टेढ़ी चालों से
मैं तो थी अब तक अनजान।

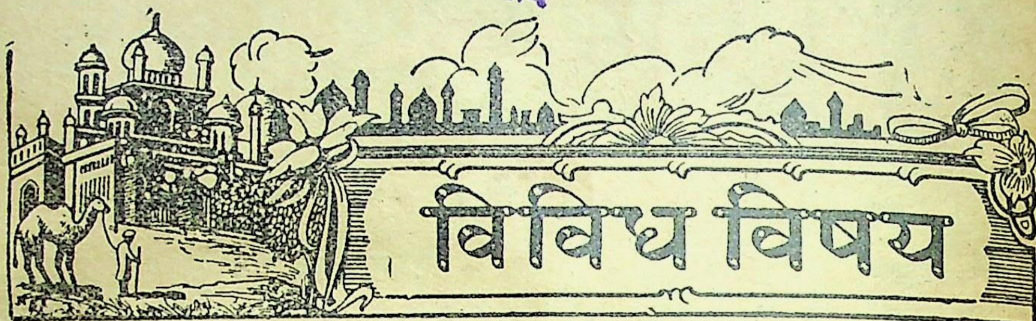
लगी हुई थी भूख बहुत तब,
किया तुरत मैंने भोजन
मांस खा गई, स्वाद ज्ञात था
नहीं, न इससे भड़का मन।





तीन कनौंजिया तेरह चूल्हा !!

FINE ART PRINTING COTTAGE ALLAHABAD



विद्यार्थी और देश-भक्ति

इस समय देश में इस छोर से उस छोर तक स्वाधीनता की लहरें उठ रही हैं। स्वाधीनता की पवित्र भावना से हमारे विद्यार्थियों के हृदय भी ओत-प्रोत हो रहे हैं। यह स्वाभाविक भी है। कोई भी देश विद्यार्थियों की इस स्वाभाविक भावना और स्फूर्ति से सजीव रहता है। प्रसन्नता की बात है कि आज हमारे देश में ऐसे बहुत से विद्यार्थी दिखाई देते हैं, जिन्हें कुछ न कुछ देश-सेवा करने की धुन दिन-रात लगी रहती है। ऐसे भी बहुत से विद्यार्थी दिखाई देते हैं, जो देश-सेवा के मार्ग में बिछे हुए काँटों की तनिक भी चिन्ता नहीं करते, माता-पिता के विरोध को हँस कर टाल देते हैं और जिन्हें अपने शारीरिक सुखों की भी कोई परवा नहीं है। देश-सेवा की इस उमङ्ग में हज़ारों विद्यार्थियों ने पढ़ना-लिखना भी त्याग दिया है और कई स्कूलों में ताले पड़ गए हैं।

परन्तु इस अच्छाई में एक बहुत बड़ी बुराई भी दिखाई देती है। अधिकांश विद्यार्थी ऐसे होते हैं, जो पढ़ने-लिखने और स्कूल जाने को मुसीबत समझते हैं। वह इसी तलाश में रहते हैं, कि कोई बहाना मिले तो स्कूल न जाना पड़े। ऐसे विद्यार्थियों की इच्छा-पूर्ति के लिए इस आन्दोलन ने बहुत अच्छा अवसर दे दिया है। और उन्होंने केवल पढ़ने-लिखने की मुसीबत से बचने के लिए ही स्कूलों का बॉयकॉट कर दिया है। यह विद्यार्थी काम-धाम तो कुछ नहीं करते, आवारा घूमते-फिरते और बढ़-बढ़ कर बातें मारने में अपना बहुमूल्य समय बरबाद किया करते हैं। खेद की बात यह है कि इन विद्यार्थियों का साथ वह विद्यार्थी भी देते हैं, जो सचमुच देश का कुछ काम करने का हौसला रखते हैं। देश के नाम पर पढ़ने-लिखने से जी चुराना, आवारा घूमना-फिरना, लम्बी-चौड़ी डींगें हाँकना और शरारतों में अपना समय बरबाद करना देश की सेवा करना नहीं है। यह तो देश के साथ विश्वासघात करना है। स्वतन्त्रता की देवी कभी यह नहीं चाहती कि उसकी पूजा का दम भरने वाले विद्यार्थी आदर्श से इस प्रकार पतित हो जायँ।

नेताओं की बातें सुन कर और अख़बारों के लेख पढ़ कर बहुत से विद्यार्थी यह भी कहने लगते हैं कि आज-कल की शिक्षा-प्रणाली बहुत बिगड़ी हुई है और हमें स्कूलों में जाने से कोई लाभ नहीं—वहाँ पढ़ाया ही क्या जाता है? एक शिक्षक होने की हैसियत से मैं यह कभी नहीं कह सकता, कि वर्तमान शिक्षा-प्रणाली बिलकुल व्यर्थ है, या लड़कों को वह बुरी बातें सिखलाती है। सच तो यह है, कि वर्तमान काल की पाठ्य-पुस्तकों का गम्भीर अध्ययन करने पर गम्भीर से गम्भीर समालोचक भी कठिनाई में पड़ जायँगे, उन्हें यह बतलाना मुश्किल हो जायगा कि पुस्तकों में कहाँ-कहाँ और क्या-क्या दोष हैं। स्कूलों में पढ़ाई जाने वाली पुस्तकों का सुन्दर सङ्कलन और सम्पादन देखकर बुद्धि हैरान हो जाती है, उनके लेखकों या सम्पादकों की सहसा निन्दा कर बैठना ज़रा साहस का काम है। फिर भी मैं यह मानता हूँ कि वर्तमान शिक्षा-प्रणाली में बहुत से दोष हैं, और उससे देश को जो लाभ होना चाहिए, वह नहीं होता। इस विषय पर मैं एक दूसरे लेख में विस्तारपूर्वक विचार करूँगा। यहाँ तो मैं विद्यार्थियों से यही कहना चाहता हूँ कि उन्हें स्कूलों का बॉयकॉट किसी भी दशा में नहीं करना चाहिए, आख़िर उन्हें स्कूलों में बुरी बातें तो सिखलाई नहीं जातीं, और वहाँ जाकर वह जो कुछ सीखते हैं, वह कुछ न होने से तो बहुत कुछ है। कॉङ्ग्रेस की भी यह मन्शा नहीं, और न हमारे प्रतिष्ठित नेता ही यह चाहते हैं कि

विद्यार्थी स्कूलों का बॉयकॉट करें—वह स्कूलों में जो कुछ सीखते हैं, वह भी न सीखें।

बहुत से विद्यार्थी यह भी कहा करते हैं कि यदि सरकारी स्कूलों पर हमारे राष्ट्रीय झण्डे को स्थान न मिलेगा तो हम उनमें न पढ़ेंगे। मेरी समझ में यदि विद्यार्थी इस मामले में राष्ट्रीय झण्डे को न घसीटें तो अच्छा है। क्योंकि इस मामले को तूल देने से उन्हें वस्तुतः फ़ायदा तो रत्ती भर नहीं हो सकता, हाँ हानि ज़रूर बहुत पहुँचती है। यदि सरकारी स्कूलों पर राष्ट्रीय झण्डे फहराए तो क्या, न फहराए तो क्या, कुछ राष्ट्रीय झण्डे फहरा देने से ही तो वर्तमान शिक्षा-प्रणाली बदल न जाएगी। फिर इस सम्बन्ध में अभी कॉङ्ग्रेस की ओर से भी कोई सूचना प्रकाशित नहीं हुई है। मेरी समझ में तो विद्यार्थियों को कोई भी काम कॉङ्ग्रेस की इच्छा के विरुद्ध न करना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से हमारे प्रमुख राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं का ध्यान बँट जाता और मुख्य आन्दोलन को हानि पहुँचती है। अस्तु—

देश-प्रेम की भावना में कोई-कोई विद्यार्थी यहाँ तक पागल हो जाते हैं, कि वे अपने माता-पिता और गुरुजनों की आज्ञा भी नहीं मानते। इतना ही नहीं, मैंने तो बहुत से विद्यार्थी ऐसे भी देखे हैं, जो देश की रागनी अलापते हुए माता-पिता और गुरुजनों की आज्ञा का तिरस्कार करते हैं, उनका अपमान करते हैं, उन्हें बेवक़ूफ़ बनाते हैं, और कभी-कभी तो उनसे लड़ने के लिए भी आमादा हो जाते हैं। वास्तव में यह आचरण अत्यन्त निन्दनीय है। भला जो आदमी अपने माता-पिता को भी प्रसन्न नहीं रख सकता, वह देश की क्या सेवा करेगा और दूसरे लोग उसकी बातों पर कहाँ तक विश्वास करेंगे? ऐसा आदमी कभी भले आदमियों में इज़्ज़त नहीं पा सकता। भारत-माता के झूठे प्रेम में डूबे हुए ऐसे लड़ाकू विद्यार्थियों को उन जननी-जनक के प्रेम पर कभी पाद-प्रहार न करना चाहिए, जिनके रक्त से उनके शरीर की रचना हुई है, और जिनके अकृत्रिम स्नेह के कारण आज वे इस योग्य हो सके हैं, कि देश-प्रेम को भी अपना कर्त्तव्य समझें। आख़िर अभी वह कच्ची बुद्धि के लड़के हैं और उनका जितना हिताहित उनके माता-पिता तथा गुरु-जन समझ सकते हैं, उतना वह नहीं।

देश-सेवा का काम छोटा नहीं, बहुत बड़ा है। यह क्षेत्र इतना बड़ा है, और इसमें करने के लिए इतने काम हैं, कि विद्यार्थी बराबर स्कूल जाते हुए, तथा माता-पिता और अन्य गुरु-जनों को प्रसन्न रखते हुए, बहुत कुछ कर सकते हैं। आगे मैं कुछ ऐसे कामों का ज़िक्र करूँगा, जिनकी ओर ध्यान देकर विद्यार्थी शान्तिपूर्वक देश की ठोस सेवा कर सकते हैं।



सर पी० सी० मित्र
(गोलमेज़ के सदस्य)

प्रत्येक विद्यार्थी का, चाहे वह छोटा हो, चाहे बड़ा, यह सर्व-प्रथम कर्त्तव्य है, कि वह आपस में कभी धार्मिकता या जातीयता की भावनाओं पर विचार न करे, न इन बातों पर कभी विवाद करे। मैं हिन्दू हूँ, तुम मुसलमान हो; मेरा धर्म अच्छा है, तुम्हारा धर्म बुरा; मैं मुसलमान हूँ, तुम हिन्दू हो; मेरा मज़हब सब धर्मों से बढ़ कर है, तुम्हारे धर्म में पाखण्ड भरा हुआ है; मैं ब्राह्मण हूँ, हिन्दुओं का गुरु हूँ, तुम छोटी जाति के हिन्दू हो; आदि बातों से आपस में घृणा पैदा होती और

वैमनस्य बढ़ता है। सच पूछो तो इन बातों से लाभ तो कुछ नहीं होता और हानि असीम होती है। जाति-पाँति और धर्म सम्बन्धी बातों को बिलकुल त्याग कर, केवल इसी पर ध्यान रखना चाहिए, कि हम सब भारतमाता के बच्चे हैं, न हममें कोई ऊँच है और न कोई नीच, केवल भारतीय हमारी जाति है, और भारतमाता की सेवा करना ही हमारा धर्म है। सब विद्यार्थियों को चाहिए, कि यह जाति-गत और ऊँच-नीच का भेद-भाव त्याग कर आपस में खान-पान का व्यवहार शुरू कर दें। दूसरे लोगों को भी नम्रता-पूर्वक यह बातें समझाया करें; चाहे वह नाराज़ हों, चाहे ख़ुश। पर इन बातों की चर्चा करते समय वह किसी से लड़ न पड़ें—इसका ध्यान ज़रूर रक्खें। प्रत्येक विद्यार्थी का, चाहे वह छोटा हो चाहे बड़ा, यह कर्तव्य है कि वह बानर-सेना या सेवा-समिति में ज़रूर भर्ती हो। इसलिए नहीं कि वह या तो हुल्लड़बाज़ी मचाता फिरे, या फिर केवल 'विजयी विश्व तिरङ्गा प्यारा' रटता फिरे, बल्कि इसलिए कि अपने देश के दीन-दुखियों की सेवा करने का अवसर आते ही कभी पीछे न हटे। सेवा-धर्म की महिमा



श्रीमती पार्वती देवी डिडवानिया

आप दिल्ली की एक प्रभावशाली प्रचारिका हैं, जिन्हें दफ़ा १२४-ए में छः मास का दण्ड दिया गया है।

इन्हीं धार्मिक और जातीय झगड़ों से आज हमारा देश इस भयङ्कर दुर्दशा में पड़ा हुआ है। अब तो

समझे, और अपने भाइयों की सेवा करने में अपना धन्य भाग समझे।

जब विद्यार्थी बानर-सेना या सेवा-समिति में भर्ती हो जावें, तब उनका यह धर्म होना चाहिए, कि वह अपने अधिकारियों की आज्ञा का उल्लङ्घन कभी न करें। उनके अधिकारी उन्हें जो अच्छी बातें समझावें, वह अपने हृदय में नोट कर लें, और मौक़ा आते ही उन्हें काम में लावें। नित्य क़वायद-कसरत में शामिल होना और अपना बल बढ़ाना उनका धर्म होना चाहिए। यदि वह स्वयं शक्तिशाली और साहसी न होंगे, तो समय आने पर दूसरों की क्या सेवा करेंगे? अतः यदि विद्यार्थी अपना शारीरिक बल बढ़ाने की सदा चेष्टा करते रहें, तो यह भी एक बहुत बड़ी देश-सेवा होगी।

स्वदेशी का प्रचार करना देश-सेवा का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अङ्ग है। हमारे पास यही एक ऐसा साधन है, जिसके द्वारा हमारी आर्थिक स्थिति सुधर सकती और देश धनवान हो सकता है। अतः प्रत्येक विद्यार्थी का यह कर्तव्य है, कि वह स्वदेशी वस्त्र ही पहने, चाहे वह हाथ के बुने हुए हों, चाहे मिलों के। अन्य कार्यों में भी यथा-सम्भव स्वदेशी वस्तुओं का उपयोग करना चाहिए। फ़ुरसत के समय में वह पास-पड़ोस वालों को भी स्वदेशी के लाभ समझाया करें। यदि हमारे विद्यार्थी स्वदेशी का प्रचार करने का व्रत ग्रहण करलें, तो इससे देश की बहुत बड़ी सेवा हो, और हमारे नेताओं को अन्य उपयोगी कार्य करने के लिए भी बहुत समय निकल आवे।

आजकल हमारे देश में नशाख़ोरी बहुत बढ़ गई है। हमारे न जाने कितने भाई, शराब, गाँजा, अफ़ीम आदि नशीली वस्तुओं का सेवन करते, और इनके द्वारा प्रति वर्ष करोड़ों रुपए स्वाहा कर डालते हैं। प्रति वर्ष यहाँ विदेशों से करोड़ों रुपयों की शराब, कोकीन, सिगरेट, आदि नशीली वस्तुएँ आतीं, और हमारी बहुत बड़ी धनराशि बाहर चली जाती है। विद्यार्थियों का काम है कि वह स्वयं नशाख़ोरी से बचें, और दूसरे लोगों को भी इस दुर्गुण की हानियाँ समझाया करें।

आजकल देश में इस छोर से उस छोर तक रोज़ न जाने कितनी भ्रान्तियाँ फैला करती हैं। कभी-कभी तो यह भ्रान्तियाँ बेवक़ूफ़ लोग अपने मन से नई-नई बातें गढ़ कर फैला देते हैं, और कभी उत्तरदायित्व का मूल्य न समझने वाले अख़बारों तथा अन्य कार्यकर्ताओं द्वारा भी फैल जाती हैं। एक रोज़ कुछ अपढ़ लोगों ने मुझसे पूछा—"तो गुरू जी स्वराज्य हो जाने पर हम लोगों को ज़मीन का कुछ भी लगान न देना पड़ेगा?" किसी बेवक़ूफ़ स्वयंसेवक ने उन बेचारों को समझा दिया था, कि अङ्गरेज़ सरकार ज़मीन पर बहुत लगान लेती है, बादशाह को ऐसा न करना चाहिए, वह रैयत



ऑन॰ सर पी॰ सेठना

(गोलमेज़ के सदस्य)

से रुपए लेवे, कि उसे देवे? इसीके लिए गाँधी जी सरकार से लड़ रहे हैं, सो तुम स्वराज्य वालों का साथ दो, जब स्वराज्य हो जायगा, तब लगान में तुम्हें एक पाई भी न देनी पड़ेगी। मैंने उन्हें बतलाया कि लगान माफ़ हो जाने की बात बिलकुल झूठ है। सरकार का काम तो प्रजा के दिए हुए टैक्सों से ही चलता है, फिर चाहे वह सरकार स्वदेशी हो, चाहे विदेशी। हाँ, स्वराज्य में कम



श्रीमती शान्ती देवी

आप आगरे की सुप्रसिद्ध कार्यकर्त्री हैं। अपने नन्हें से बच्चे 'क्रान्तिकुमार' सहित आप छः मास का कारावास दण्ड भोग रही हैं।

से कम लगान लेने और प्रजा को ज़्यादा से ज़्यादा आराम पहुँचाने की कोशिश ज़रूर की जायगी। विद्यार्थियों का काम यह होना चाहिए कि वे ऐसी भ्रान्तियों को मिटाने की चेष्टा किया करें। यदि यह भ्रान्तियाँ न मिटाई जावेंगी, तो भविष्य में देश को बहुत ख़तरा होने की सम्भावना है। भ्रान्तियाँ हटाने का सब से अच्छा तरीक़ा यह हो सकता है, कि विद्यार्थी पास-पड़ोस के लोगों को अच्छे-अच्छे अख़बार नियमित रूप से पढ़ कर सुनाया करें।

बहुत से विद्यार्थी ऐसे भी दिखाई देते हैं, जो देश-प्रेम की डींगें तो बहुत मारा करते हैं, पर वह अङ्गरेज़ी भाषा पर मरे जाते हैं। मेरे कहने का मतलब यह नहीं कि वह अपनी अङ्गरेज़ी विषयक योग्यता न बढ़ावें, पर यह बहुत ज़रूरी है, कि अङ्गरेज़ी के पण्डित बनने के पहले वह अपनी मातृ-भाषा के पण्डित बनें। अतः प्रत्येक विद्यार्थी को अपनी मातृ-भाषा का गर्व होना चाहिए। अपनी मातृ-भाषा में प्रकाशित होने वाली पुस्तकें और पत्र-पत्रिकाएँ अधिक से

अधिक संख्या में पढ़नी चाहिएँ। यदि विद्यार्थी चाहें, तो पुस्तक-मालाओं और पत्र-पत्रिकाओं के ग्राहक बन कर उनका प्रचार ख़ूब बढ़ा सकते हैं। ऐसा करने से मातृ-भाषा के साहित्य की तो उन्नति होगी ही, और उसकी उन्नति में भाग लेने वाले विद्यार्थियों का मुँह भी कभी-कभी मीठा होता रहेगा।

हमारे देश में जहाँ देखो, वहीं अपढ़ लोग दिखाई देते हैं। यदि विद्यार्थी इस ओर ध्यान दें और चाहें, तो न जाने कितने लोगों को अक्षर-ज्ञान करा सकते हैं। यदि वह ऐसा करेंगे, तो देश की बड़ी अच्छी सेवा होगी। फ़ुरसत के समय में विद्यार्थी लोग यह काम बहुत अच्छी तरह कर सकते हैं। चर्ख़ा और तकली चलाने का काम ऐसा है, जिससे देश-सेवा के साथ ही मनोरञ्जन भी होता है। विद्यार्थी यह काम घर में बैठे-बैठे मज़े से कर सकते हैं। हमारे इतना लिखने का आशय यह है, कि देश-सेवा के लिए बहुत से काम हैं, और विद्यार्थी बग़ैर हुल्लड़बाज़ी के, बग़ैर किसी से लड़े-भिड़े उन्हें शान्तिपूर्वक कर सकते हैं। अतः प्रत्येक विद्यार्थी का कर्त्तव्य है, कि वह डींगें मारना छोड़ कर देश के कुछ न कुछ काम में ज़रूर सहायक हो।

—(अध्यापक) ज़हूरबख़्श

* * *

बाल-शिक्षा

हिन्दू शास्त्रों में माता-पिता और गुरु, तीनों को आचार्य माना गया है। इनमें माता का स्थान सब से ऊँचा है। बच्चे पर माता का ही प्रभाव सब से अधिक पड़ता है, इसलिए शिक्षित माताओं को चाहिए कि वे स्वयं ही अपनी सन्तानों को शिक्षा दें। शिक्षा आरम्भ करने का समय निश्चित करना कठिन है। जिस समय बच्चा गर्भ में आता है, तभी से एक प्रकार से उसकी शिक्षा आरम्भ हो जाती है! जैसा माँ का स्वभाव होता है, जैसा वह खाती-पीती है, और जैसा वह भाषण और व्यवहार करती है, वैसा ही बच्चा बनता है। इसलिए हमारे यहाँ गर्भावस्था के समय स्त्रियों को शास्त्र-चर्चा और कथाएँ सुनाने की प्रथा है। अमेरिका और इङ्गलैण्ड के विद्वानों ने भी इस बात को माना है, कि गर्भ के समय बच्चे पर माँ के आचरण का बहुत बड़ा असर पड़ता है। डॉक्टर विलियम कोवन ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि एक मज़दूरिन रोज़ चाय ख़रीदने जाया करती थी, और चाय बेचने वाली के बच्चे को नित्य देखा करती थी। इस बच्चे के जन्म से ही हाथों में केवल चार-चार उँगलियाँ थीं। इसको नित्य देखते-देखते मज़दूरिन के दिल में यह बात जम गई कि उसके भी चार



श्री० वी० जे० पटेल

आप कोइम्बटूर जेल में सख़्त बीमार हैं।

उँगली वाला बच्चा होगा। इसका फल यह हुआ कि उसके बच्चे के वास्तव में जन्म से ही चार ही उँगलियाँ थीं। अभिमन्यु की कथा सब हिन्दू स्त्रियों को ज्ञात ही है। जब वह गर्भ में था तभी उसकी माता ने अर्जुन से चक्रव्यूह रचना का वर्णन सुना था। इसका संस्कार गर्भ-स्थित बच्चे पर इतना पड़ा कि बालक अभिमन्यु ने बिना किसी के सिखाए ही महाभारत के युद्ध में चक्रव्यूह



अब्बास तय्यब जी—भूतपूर्व जज

आपने महात्मा गाँधी की गिरफ्तारी के बाद धरसाना के नमक-गोदाम पर धावा करने वाले वालण्टियरों का नेतृत्व ग्रहण किया था और इस अपराध के लिए आपका जेल जाना पड़ा था। गत १२ नवम्बर को आप साबरमती जेल से रिहा हुए हैं। पर आपका कहना है कि, "तीन सप्ताह के भीतर फिर जेल-यात्रा करेंगे।"

की रचना करके बड़े-बड़े रण-पण्डितों को चकित कर दिया।

हम लोगों का ख़्याल है कि बच्चा अच्छी तरह बोलने से पहले कुछ नहीं समझता। यह बात नहीं है। वास्तव में बच्चा आँखें खुलते ही इस संसार के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करने लगता है। वह बोलता नहीं, पर जो कुछ देखता है उसका चित्र उसके मस्तिष्क में बनने लगता है। थोड़े ही दिन में वह आवाज़ पहिचानने लगता है। धमकाने से रोने लगता है और पुचकारने से प्रसन्न होता है। कुछ ही मास में अपने माता-पिता की शक्लों को पहिचानने लगता है। डरावनी चीज़ों से डरने लगता है, और मनोहर चीज़ों की ओर आकर्षित होने लगता है। इससे अनुमान किया जा सकता है कि माँ के उदर से निकलते ही बच्चा इस संसार की पाठशाला में भर्ती हो जाता है। इस समय उसका हृदय अत्यन्त कोमल होता है, और जो संस्कार इस समय जम जाते हैं वे जन्म भर के लिए अमिट हो जाते हैं। वास्तव में माता की गोद ही बच्चे का सब से उत्तम स्कूल है। इस समय ही उसकी शिक्षा का भवन निर्माण हो जाता है। स्कूल और कॉलेजों में उस भवन पर सिर्फ़ सफ़ेदी की जाती है। यदि ऐसा नहीं होता तो क्या कारण है, कि एक ही क्लास में पढ़ने वाले, और एक ही स्थिति में रहने वाले बच्चों में से एक महात्मा गाँधी या कमालपाशा या रवि बाबू या जगदीश बोस या जवाहरलाल बन जाय और दूसरे इतनी उन्नति करना तो दूर रहा, मनुष्यता के साधारण गुण भी ग्रहण न कर सकें?

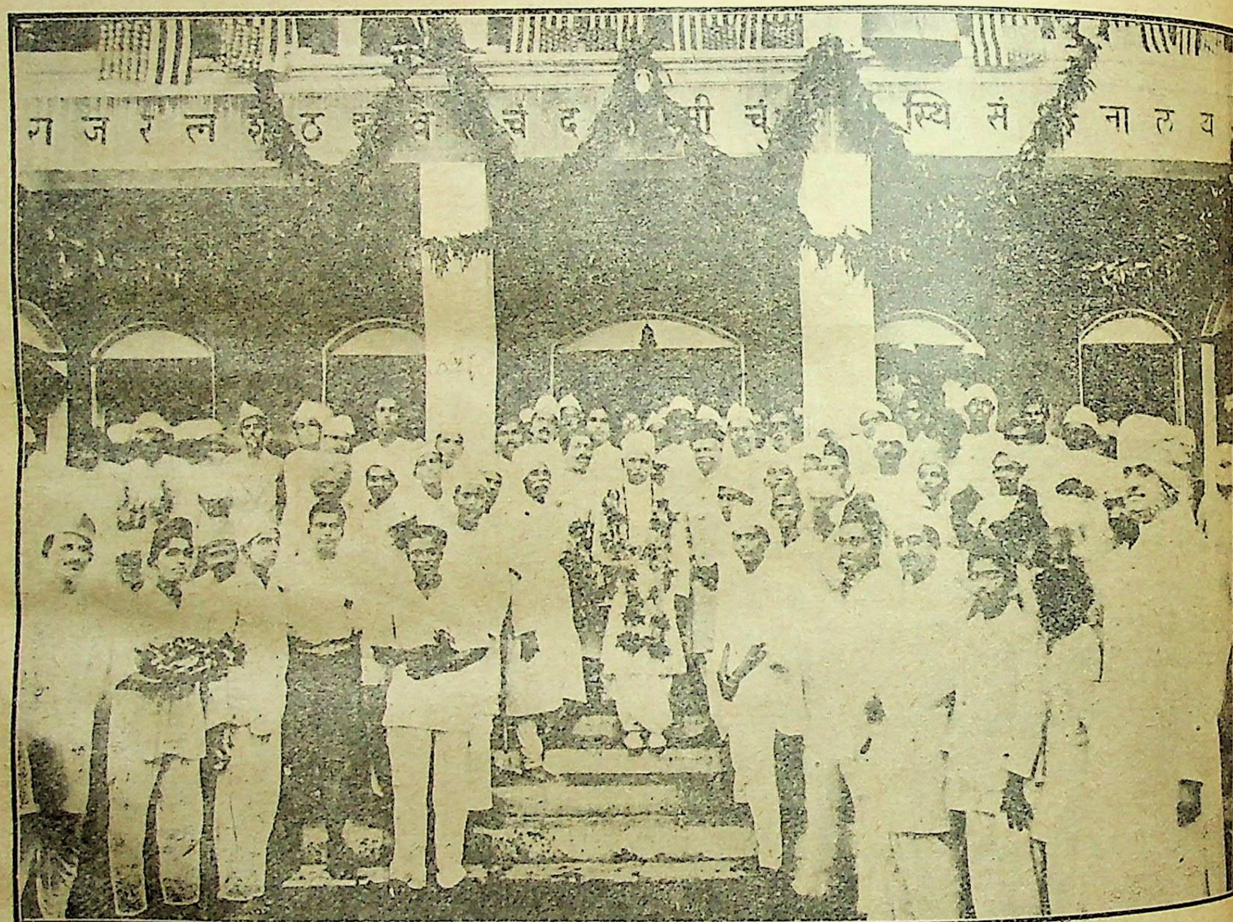
जिस समय बच्चा गर्भ में हो, या जिस समय गोद में हो, उस समय माता का रहन-सहन और आचरण कैसा होना चाहिए, इस विषय पर मैं यहाँ नहीं लिखना चाहती। इस विषय पर हिन्दी में दो-तीन पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। इस लेख में मैं यह बतलाना चाहती हूँ कि जब बच्चा बोलना सीख जाय और अच्छी तरह चलने-फिरने लगे, उस समय उसकी शिक्षा माता द्वारा कैसे आरम्भ की जा सकती है। काशी और प्रयाग में थियोसोफ़िकल सोसायटी की तरफ़ से छोटे बच्चों के लिए मदरसे खुल गए हैं, और इनमें काम करने वाली अध्यापिकाएँ अपने कार्य में बड़ी निपुण हैं। पर ऐसे मदरसे प्रत्येक शहर और गाँव में अभी नहीं हैं, और जब तक स्वराज्य न हो जायगा तब तक ऐसे मदरसों की स्थापना होना भी सम्भव नहीं है। इसके अतिरिक्त छोटे बच्चों को दूर-दूर के मोहल्लों से ऐसे स्कूलों में भेजना भी बड़ी दिक़्क़त की बात है। हमारे निर्धन देश में ऐसे लोगों की संख्या भी बहुत कम है, जो छोटे बच्चों को सवारी से स्कूल भेज सकें। विदेशी सरकार देश की आमदनी को पुलिस और फ़ौज पर निछावर कर देती है, उसको हमारे छोटे बच्चों की शिक्षा की क्या चिन्ता! मैं चाहती हूँ कि जिन-जिन माताओं के पास यह पत्र पहुँचता है, वे अपने बच्चों को नए ढङ्ग से शिक्षा दें और अपना कार्य आज ही आरम्भ कर दें।



श्री० जी० परमेश्वरम् पिल्ले
(गोलमेज के सदस्य)

मैं यह मान लेती हूँ कि इस समय बच्चा तीन वर्ष के लगभग है, और गर्भ तथा गोद में उसको भली प्रकार पाला गया है। परन्तु यदि दुर्भाग्यवश किसी माता ने अब तक इस ओर ध्यान न दिया हो तो निराश होने की कोई बात नहीं है, अब उसको उत्साह और उमङ्ग के साथ अपने सन्तान की शिक्षा आरम्भ कर देनी चाहिए।

छोटे बच्चे को पढ़ाने के लिए कोई विशेष समय नियत करने की आवश्यकता नहीं है। उठते-बैठते, काम करते, खाना बनाते, और अन्य कुछ भी कार्य करते हुए बच्चे को शिक्षा दी जा सकती है। बच्चे को यह न मालूम होना चाहिए कि उसको पढ़ाया जा रहा है। शिक्षा उसके खेल का अङ्ग बन जाना चाहिए। और उसे यह भी नहीं मालूम पड़ना चाहिए कि उसकी रुचि के विरुद्ध उससे कोई काम कराया जा रहा है। जो कुछ वह कर रहा हो उसी में उसको शिक्षा देनी चाहिए। उदाहरणार्थ, कपड़े पहिनाते समय उससे उसके कुरते के रङ्ग का नाम पूछा जा सकता है, और इस प्रकार बच्चे को कई रङ्गों का ज्ञान हो सकता है। गेंद खेलते समय उसको बतलाया जा सकता है कि गेंद किस चीज़ का बना हुआ है। साथ ही उछलना, गिरना, ऊपर उठना, आदि क्रियाओं का ज्ञान भी उसे गेंद के द्वारा हो सकता है। पानी पिलाते समय छोटी कटोरी या बड़ी बटोरी, छोटा गिलास या बड़ा गिलास, थोड़ा पानी या ज़्यादा पानी, आदि द्वारा बच्चों को आकार और परिमाण का ज्ञान कराया जा सकता है। भोजन करते समय बच्चा गर्म और ठण्डा, मीठे और खट्टे, फीके और तीखे आदि स्वादों को जान सकता है। और गेहूँ, चना, मूँग, उड़द, मसूर, शक्कर, दूध, दही, आदि पदार्थों का ज्ञान भी उसे प्राप्त हो सकता है। दूध पीते समय उससे यदि कहा जाय कि गाय का दूध सब से अच्छा होता है, बकरी का दूध हल्का होता है, और



कुछ दिन हुए पं० मदनमोहन मालवीय ने बड़ोदा में टूटी हुई हड्डियों का इलाज करने के अस्पताल का उद्घाटन किया था, जिसकी संस्थापना सेठ झवेरचन्द लक्ष्मीचन्द ने की है। मालवीय जी के बाईं तरफ़ इस संस्था के संस्थापक और दाहिनी ओर इसके प्रबन्धकर्ता प्रो० माणिकराव खड़े हैं।

भैंस का दूध भारी, तो वह सहज में ही ये उपयोगी बातें जान सकता है। यह निश्चित रूप से बतलाना कठिन है कि किस अवसर पर बच्चे को क्या शिक्षा दी जा सकती है। यह माता और बच्चे दोनों की बुद्धि और प्रतिभा पर निर्भर है, लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि कोई भी ऐसा अवसर नहीं, जिस पर बच्चे को लाभ न पहुँचाया जा सके। इस लेख में मैं केवल भोजन-समय की शिक्षा का वर्णन करूँगी।

भोजन करते समय बच्चे को सीधा बैठना सिखाना चाहिए, और उससे कहना चाहिए कि ऐसा करने से वह बलवान बनेगा। जब गाय, बकरी या भैंस दिखाई दे तो बच्चे से कहना चाहिए कि तुम इसका दूध पीते हो। बकरी और भैंस काली होती हैं, गाय प्रायः सफ़ेद होती है। कभी काली गाय दिखाई दे तो बच्चे से पूछना चाहिए कि यह भैंस है या गाय है। बकरी और भैंस का अन्तर भी उसको बतलाना चाहिए। दूध औटाते समय माँ बच्चे को पास बिठा ले और खौलता हुआ तथा उफ़नता हुआ दूध उसको दिखाए। यह भी बतलाए कि पानी डालने से उफ़ान बन्द हो जाता है। भोजन करते समय बच्चे का खेल और खाना दोनों हो सकता है। यदि दो तरकारी से रोटी खा रहा है, तो पहले उनके नाम बतला कर इनको अलग-अलग चखाइए, फिर कटोरी को पीछे छिपा कर उसमें से तरकारी निकाल कर उसे चखाइए और फिर पूछिए कि किसका साग है। इससे उसकी स्वाद-शक्ति का विकास होगा। इसी प्रकार एक ग्रास में अधिक नमक डाल कर खिलाइए और एक में साधारण नमक डालिए और एक में बिलकुल मत डालिए। इससे उसको पता लगेगा कि नमक खारा होता है। एक बार नमक और दूसरी बार शक्कर की डली खिला कर शक्कर और नमक का अन्तर बच्चे को सिखाइए। फिर शक्कर और नमक दोनों उसके सामने रख दीजिए और कहिए कि नमक बतलाओ। फल खिलाते समय भी बच्चे से पूछिए, कि इसका रङ्ग कैसा है। दो फल उठा लो, तीन फल अपने भाई को दे दो, इत्यादि। इससे उसको संख्या और रङ्ग का ज्ञान हो जायगा। फिर उससे कहिए कि आँखें बन्द कर लो। जब आँखें बन्द कर ले तो नारङ्गी खिलाइए और पूछिए क्या खाया। इसी अवस्था में दूसरा फल खिला कर पूछिए कि क्या खाया। एक कपड़े से उसकी आँखें बाँध दीजिए। फिर हाथ में सेब दीजिए और पूछिए कि क्या चीज़ है। फिर दूसरा कोई फल देकर पूछिए कि क्या चीज़ है? इससे उसका स्पर्श-ज्ञान बढ़ेगा। आँखें बन्द किए हुए माताएँ इसी प्रकार के कई खेल बच्चों को खिला सकती हैं, जिससे बच्चों का खेल भी हो जाय और उनकी शिक्षा भी होती रहे। इस विधि से एक वर्ष के अन्दर बच्चे को



छतारी के नवाब साहब

आप संयुक्त प्रान्तीय गवर्नमेण्ट को एक्ज़ीक्यूटिव कौन्सिल के मेम्बर हैं, जिनकी अवधि हाल ही में बढ़ाई गई है।

अनेक पदार्थों का ज्ञान और अनेक रङ्गों का परिचय, अनेक प्रकार के स्वादों की पहिचान, और अनेक प्रकार के खाद्य पदार्थों के विषय में विवेक हो जायगा। अपनी बुद्धि, निवास-स्थान और परिस्थिति के अनुकूल माताएँ खाने की कई चीज़ों के विषय में बच्चों से बातचीत कर सकती हैं। यहाँ पर मैंने सङ्केत-रूप से बतलाया है कि

खाते-पीते समय भी बच्चों को किस प्रकार शिक्षा दी जा सकती है।

यह स्मरण रखना चाहिए कि बच्चा आपकी बातों से ऊब न जाए। बातें रोचक हों, और बच्चे के लिए शिक्षा एक प्रकार का खेल हो। बहुत सी बातें एक ही दिन में बतलाने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। उदाहरणार्थ, नारङ्गी के विषय में एक दिन इतना बतला देना काफ़ी है कि उसका रङ्ग पीला है। फिर जब नारङ्गी आवे तो



शिवपुरम् (मद्रास) के जमींदार श्री० पी० वी० मानिकम् की तीन विदुषी कन्याएँ, जिनमें से दो बी० ए० पास कर चुकी हैं और एक एफ़० ए० में पढ़ रही है।

उसके स्वाद के विषय में बातें कीजिए। फिर कभी नारङ्गी और गेंद को पास रख कर उनके आकारों का अन्तर बतलाइए। तदनन्तर नारङ्गी का बीज दिखलाइए और नींबू और नारङ्गी के स्वाद का अन्तर समझाइए। उद्देश्य यह होना चाहिए कि बच्चे की समझ का विकास होता रहे, और दिन-दिन उसका ज्ञान बढ़ता जावे। बहुत सी बातें रटा देने की कोशिश न कीजिए। किसी चीज़ के गुणों की नामावली कण्ठस्थ कर लेना ज्ञान नहीं है। बच्चे को निरन्तर किसी एक ही काम में भी न लगाना चाहिए। वह जिस विषय की बातचीत करना चाहे करने दीजिए, और जो खेल खेलना चाहे खेलने दीजिए। आपका कर्त्तव्य इतना ही है कि उसकी प्रत्येक बात और खेल को शिक्षा का साधन बना दें। भोजन के विषय में यह ज़रूरी नहीं है कि वह सब प्रकार के फल, मेवे, अन्न और तरकारियों से तथा विविध प्रकार के व्यञ्जनों से परिचित हो जावे। सब घरों में यह बात सम्भव भी नहीं है, और बच्चे को पाक-शास्त्री बनाने की आवश्यकता भी नहीं है। अगर आपने तीन और पाँच वर्ष की अवस्था के अन्दर उसको दो-चार प्रकार के अन्न, दूध, दही, घी और तेल, साधारण तरकारियाँ और फल, खट्टा और मीठा, तीखा और फीका आदि स्वाद और हलका तथा गरिष्ठ भोजन, इनका ज्ञान करवा दिया तो काफ़ी है। बच्चे के लिए इस क्षेत्र में आगे बढ़ने का मार्ग खुल गया। स्कूल और कॉलेज में जब वह इन विषयों की बात सुनेगा या किसी पुस्तक में पढ़ेगा तो शीघ्र समझ लेगा।

—राधाबाई शर्मा

* * *

कनौजियों के कुछ सामाजिक प्रश्न

जिस प्रकार धार्मिक ग्रन्थों में पाया जाता है कि—"कान्यकुब्जा द्विजा श्रेष्ठाः" उसी प्रकार सामाजिक कुप्रथाओं के कारण वर्तमान समय में यह भी घटता है कि—"कान्यकुब्जा द्विजा नष्टाः"। उक्त वाक्य के घटने का कारण यह है कि इस जाति में अनेक कुप्रथाओं ने धार्मिक रूप पकड़ लिया है। और कुछ स्वार्थ-सिद्धि के लिए "दादा वाक्यं प्रमाणं" के अनुसार हठधर्मी के साथ कार्य-रूप में परिणत की जाती हैं। उक्त कुप्रथाओं के विषय में मैं कान्यकुब्ज जाति-बन्धुओं से कुछ प्रश्न करूँगा। यह मैं भली भाँति जानता हूँ कि आजकल कुछ शिक्षित समुदाय आगे बढ़ रहा है; किन्तु उसे कट्टर समुदाय कसरत के साथ रोकने के लिए ईसाई और धर्मच्युत आदि वाक्यों से सत्कार कर रहा है। यदि उस

कट्टर समुदाय से पूछा जाय कि क्या तुम जो कुछ भी करते हो वह ठीक है ? तो यही उत्तर मिलेगा कि भाई क्या करें, हम तो लकीर के फ़क़ीर बन कर अपनी आत्मा को कष्ट पहुँचा रहे हैं। मैंने कई बार इस तरह के प्रश्न लोगों से किए ; किन्तु यही उत्तर मिला।

१—वर्तमान समय में प्रायः सुधारक, प्रचारक और कट्टर—सभी लोग अच्छे-बुरे, बड़े-छोटे सम्पूर्ण कार्यों में, यहाँ तक कि बर्तन मलने से लेकर पूरी परोसने तक का काम नाऊ (नापित) से लिया करते हैं।

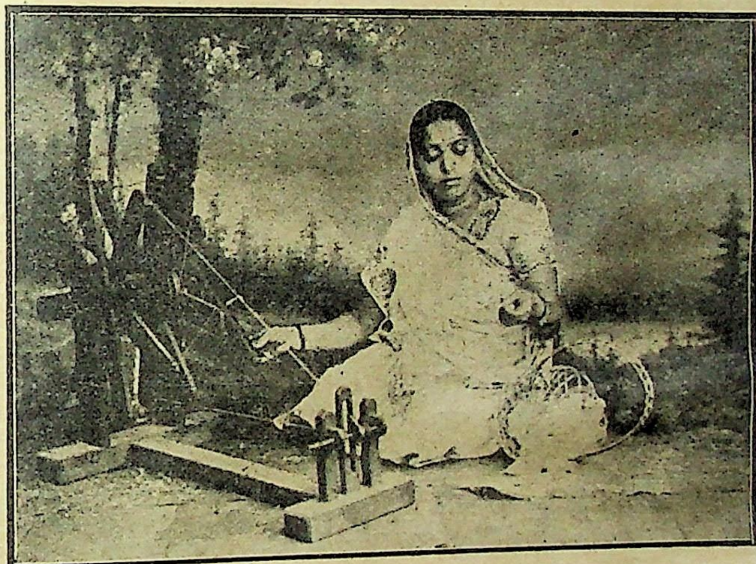
प्रायः मुझे देखने का मौक़ा मिला है कि पूरी परोस कर नाऊ पानी लेने चला गया, इतनी देर में थाली ख़ाली हो गई और पूरियों की आवश्यकता पड़ी। वहीं पर एक कान्यकुब्ज जाति-भाई और संयोग-वश साले का साला खड़ा है। वह परोसने की अभिलाषा प्रकट करता है, तो वे महाशय बोलते हैं—"तुम काहे तकलीफ़ करत हौ। नउआ तो है।" यदि शान्त प्रकृति के हुए तो; अन्यथा उसमें इतना विशेषण और जोड़ देंगे—"मैं तुम्हरे हाथ केर पानी थोड़ै पी सकहौं। तुम तो सार के सार न अहिउ।" यहीं तक नहीं, मौक़ा आ जाने पर चुपके से आप हलवाई के यहाँ की पूरियाँ भी उड़ा लेंगे। तनिक इस बुद्धिमत्ता पर विचार करिए कि कहाँ तक ठीक है।

जिस समय उपर्युक्त वाक्य वह सुनता होगा, उस समय उसके हृदय पर कितनी चोट लगती होगी! इसका अन्दाज़ा सहज ही नहीं लगाया जा सकता है। जिस जाति में इतना अहङ्कार है, वह किस प्रकार सुधर सकती है!

२—सामाजिक भेद-भाव का कारण कान्यकुब्ज समाज-गत बिश्वा-प्रथा है। इस बिश्वा-प्रथा ने भी सीमा से बाहर मतभेद पैदा कर दिया है। बिश्वा-प्रथा के लिए मैंने अनेक धार्मिक ग्रन्थ उलटे-पलटे ; किन्तु कोई प्रमाण न मिला। बिश्वा-प्रथा इस समाज में एक निराधार और कपोल-कल्पित मालूम होती है। केवल मनुस्मृति में स्थान-विशेष में निवास करने के कारण मनु भगवान विभाग करते हुए लिखते हैं—

सारस्वताः कान्यकुब्जा गौड़ मैथिल उत्कला।
पञ्चगौड़ समाख्याता विन्ध्यस्योत्तर निवासिनः॥

इससे स्पष्ट हो जाता है कि कान्यकुब्ज पञ्चगौड़ों में हैं। इसी बिश्वा-प्रथा की तरह सुकुल, द्विवेदी, चतुर्वेदी, अग्निहोत्री आदि भी हैं। पहले जिन्होंने अग्निहोत्र किया वे अग्निहोत्री हो गए। जिन्होंने वाजपेय यज्ञ किया वे



श्रीमती छोटालाल वेलाभाई गाँधी मानिक जवेरी
आप भड़ौंच (गुजरात) की एक प्रसिद्ध सार्वजनिक कार्यकर्त्री हैं।

वाजपेयी हो गए। किन्तु उन्हें यह अधिकार कहाँ से प्राप्त हुआ कि उनके वंशज भी अग्निहोत्री और वाजपेयी कहे जायँ। अस्तु।

जहाँ चार आदमी इकट्ठे हुए, तुरन्त "आप कौन हैं?" "मैं तो साहब उमरी का तिवारी हूँ।" बस जहाँ उमरी का नाम सुना; तुरन्त नाक-भौं चढ़ गई यदि संयोग-वश कोई प्रसङ्ग छिड़ गया, तो फिर क्या पूछना है—"वह तो २० बिश्वा है। यह ३ बिश्वा है।" चाहे वह तीन बिश्वा वाला बहुत ही बड़ा विद्वान और गुणी हो, उसे नीच शब्द अपने प्रति सुन कर कितनी मानसिक

पीड़ा होती होगी। यदि कहीं उसने अपनी लड़की का विवाह करना चाहा, तो बस सीमा के बाहर चलने लगे। उस समय तो अत्यधिक कर्णकटु शब्दों का प्रयोग करने लगते हैं—"हम तो धाकर के हियाँ मूतन का पानी नहीं लै सकित आय, बिआहु करब तौ दूर रहा।"



(बाईं) कुमारी मनमोहनी ज़ुतशी, एम० ए०—आप लाहौर जेल में अपनी देश-भक्ति का मूल्य अदा कर रही हैं।

(दाईं) कुमारी कृष्णा नेहरू—आपको जवाहर-सप्ताह के जुलूस में शामिल होने के लिए ५०) जुर्माना या एक मास की सज़ा हुई थी, किन्तु किसी गुमनाम व्यक्ति के जुर्माना जमा करने पर छोड़ दी गईं।

इस परिवर्त्तनशील संसार में क्या ये वाक्य सहन करने योग्य हैं? अगर उसी धाकर ने कहीं अपनी लड़की के विवाह में पाँच-सात हज़ार दे दिए, तो अच्छी तरह बड़े-बड़े २० विश्वा वाले उसके पनाले पर बैठ कर भोजन कर आएँगे।

यदि इस बीसवीं सदी में इतनी अहम्मन्यता और अकड़बाज़ी रही तो शीघ्र ही वह समय आएगा, जब बड़े-बड़े २० विश्वा वाले निम्न विश्वा वालों के यहाँ लड़की की शादी करने के लिए मारे-मारे फिरेंगे।

३—इस समाज में दहेज की प्रथा भी बहुत ही निन्दनीय है। इसी प्रथा ने समस्त कान्यकुब्जों के गौरव को नष्ट कर दिया है। और जब तक यह प्रथा रहेगी, तब तक किसी प्रकार भी इस समाज का उत्थान नहीं हो सकता। समाज का उत्थान तभी हो सकता है, जब यह प्रथा एकदम ठुकरा दी जाय। इसी प्रथा के कारण समाज में जिस व्यक्ति के दो-तीन कन्या हो जाती हैं, वह यही सोचता रहता है कि अब किस प्रकार भविष्य में मेरी मान-मर्यादा रहेगी। क्योंकि दो-तीन लड़कियों का विवाह करने के बाद साधारण स्थिति के मनुष्य की भीख माँगने की दशा हो जाती है।

यदि दहेज तक ही रह जाय तो भी कोई हानि नहीं है। किन्तु इसमें भी एक ठहरौनी की प्रथा अत्यधिक निन्द्य है। यदि किसी कारणवश तय बात में कुछ भी कमी हुई तो वहाँ फिर क्या कहना है, जितने भी उपद्रव हों, कम हैं—गाली-गलौज तो साधारण बात है। यहाँ तक कि जन्म भर उस नव-वधू के लिए चिरायते का काढ़ा समझिए। उस दारुण दुःख से वैधव्य कहीं अच्छा है। इसी

भीषण कुप्रथा के कारण आज भी समाज में असंख्य स्त्रियाँ अविवाहित बैठी हुई हैं, कितनी ही कष्ट भोग कर यमलोक सिधार गईं, और भविष्य में कितनी ही मर जायँगी। किन्तु धन्य है समाज! अब भी तेरी आँखें न खुलीं।

ठहरौनी प्रथा के कारण कितनी ही विवाहिता स्त्रियाँ अपने मायके में विधवाओं की भाँति जीवन व्यतीत कर रही हैं और कितनी अपने सतीत्व को खो चुकी हैं। जब तक इस कुप्रथा का अन्त न हो जायगा, तब तक कितनी ही अबलाओं का दुखमय जीवन व्यतीत होता रहेगा। असंख्य बलिदान होने पर भी अभी इस समाज की आँखें नहीं खुलीं। मैंने स्वयं अनुभव किया है—जिन सज्जनों ने मञ्च पर खड़े होकर इस प्रथा के विरुद्ध भाषण किया है, उन्होंने ही अपने लड़कों की शादी में दस-पन्द्रह सहस्र की रक़म गला दबा कर ली है। अतः समाज-सुधारक को वही बात कहना चाहिए, जिसे वह स्वयं करने को तैयार हो। अन्यथा केवल कोरा उपदेश काम न करेगा और समाज रसातल को चला जायगा।

४—जिस प्रकार घोर अनादर स्त्रियों का इस समाज में होता है, उस प्रकार दूसरे में नहीं। जो समाज प्रकृति की अवहेलना करेगा, वह सदैव दुःख के पञ्जे में फँसा रहेगा। स्त्रियों का हृदय स्वाभाविक कोमल होता है। कोमल प्रकृति वाले को ज़रा सा भी दुर्व्यवहार प्राणान्त कष्ट का अनुभव कराने वाला होता है। यदि अकारण ही किसी को दुःख पहुँचाया जाता है, तो ईश्वर को वह बुरा मालूम होता है।

बड़े-बड़े धनी घरों की हालत और उनके यहाँ का दुर्व्यवहार अत्यधिक कष्टदायक है, जिसे सुन कर कोई भी भद्र पुरुष दुखी हुए बिना नहीं रह सकता। और जिन्हें हर समय उसी का अनुभव करना पड़ता है, ज़रा उसका अनुमान लगाइए, कितनी व्यथा होती होगी।



आगरे के कुछ स्वयंसेवक ताड़ी के वृक्ष काट रहे हैं।

ये लोग स्त्रियों को इतनी हेय दृष्टि से देखते हैं कि प्रायः पुरुषों के लिए दूसरा और स्त्रियों के लिए दूसरा

भोजन बनता है। अच्छा-अच्छा भोजन पुरुष लोग करते हैं और ख़राब, मोटा, शुष्क भोजन स्त्रियाँ करती हैं।

जिस स्त्री के लड़की पैदा हो जाती है, उसे नाना प्रकार के कष्ट दिए जाते हैं। जिसे लड़का उत्पन्न होता है, उसका अत्यधिक आदर करते हैं। पुरुषों के लिए तरह-तरह के खाद्य पदार्थ प्रस्तुत रहते हैं और स्त्रियों के लिए उनका अभाव रहता है। दूध, मलाई, घी, आदि पदार्थ स्त्रियों को कभी भी खाने को नहीं मिलते और पुरुष उन्हीं के हाथों से सर्प की नाईं सुड़क जाते हैं। धन्य है कान्यकुब्ज-हृदय, जो उनके हाथों से खा जाय और वे मुँह ताकती रहें! यदि ऐसी दशा में समाज रसातल को जा रहा है, तो क्या आश्चर्य है! कुछ उनकी आत्मा को आश्वासन भी तो मिलना चाहिए।

दो-चार सज्जन मेरे मिलने वाले हैं, जिनके यहाँ यही दुर्व्यवहार होता है। बल्कि यों कहना चाहिए कि वे लोग उच्च पद पर आसीन होते हुए भी गृहलक्ष्मियों के साथ ऐसा निन्द्य कार्य करते हैं—उनसे चक्की तक चलवाते हैं। यदि आप यह कहें कि वे लोग स्वास्थ्य की दृष्टि से ऐसा करते होंगे, वह भी नहीं। उन लोगों का एकमात्र उद्देश्य स्त्रियों से काम कराना है। वे लोग स्त्रियों का कोई भी मूल्य नहीं समझते।

आए-दिन ऐसी कितनी ही घटनाएँ हुआ करती हैं। कई घटनाओं के देखने का मौक़ा मुझे स्वयं प्राप्त हुआ है और कई का विश्वस्त-सूत्र से पता चला है।

५—खान-पान भी इस समाज का बहुत ही दूषित है। प्रायः इस समाज में खान-पान की प्रथा बहुत ही ढोंगपूर्ण है। बनावटीपन तो इसी समाज के हिस्से में ब्रह्मा के यहाँ से पड़ा है। बाज़ार में जहाँ कोई देखे नहीं, वहाँ पर छिप कर बुरा से बुरा काम करने में ये लोग कोई हानि नहीं समझते। परन्तु जहाँ अपने समाज में गए वहाँ वही छौंक-बघार, ढोंग भरी बातें—"अजी महाराज, मैं तो कहीं जल भी नहीं पीता, खाना तो दूर रहा।"

अनेक लोगों को मैं जानता हूँ, जिनसे संसार का कोई भी भला-बुरा काम नहीं बचा है। प्रायः उनके मिलने-जुलने वाले उनकी आदतों से परिचित भी हैं; परन्तु जब कभी किसी व्यक्ति ने उनसे जलपान के लिए आग्रह किया, तो वे साफ़ नाहीं करके चलते बने।

एक महाशय जगत्-विख्यात हैं। सभी छोटे-बड़े उनसे परिचित हैं। एक दिन मेरे कान्यकुब्ज मित्र ने उनसे फलाहार खाने का अनुरोध किया। उन्होंने साफ़ नाहीं कर दी। अब इससे बढ़ कर ढोंग क्या हो सकता है?

बिना सहभोजता के कभी भी समाज में प्रेम नहीं उत्पन्न हो सकता। सहभोजता से यहाँ पर मेरा मतलब यह नहीं है कि बराबर सबके साथ दाल-चावल का व्यवहार हो जाय। कम से कम पूरी आदि का खाना तो सभी कान्यकुब्जों के साथ होना चाहिए।

सभ्यता के नाते ज़रा गम्भीर विचार कीजिए—जिस समय आप भोजन करते रहते हैं, यदि उस समय आपका कोई भाई आ जाता है तो क्या आपके हृदय में यह भावना नहीं उत्पन्न होती कि उसे भी बैठा कर अपने साथ भोजन करा दें। यदि आपके हृदय में यह भावना नहीं उठती तो आप अपने को हृदयहीन समझिए।

जब तक सहभोजता नहीं होती, तब तक इस जाति का उत्थान कठिन ही नहीं, असम्भव है। जिस दिन यह बन्धन टूट जायगा, उस दिन यह जाति पुनः अपने पद पर आसीन होकर गौरव प्राप्त करेगी। अधिक नहीं, यदि पाँच सौ नवयुवक इन कुप्रथाओं के अन्त करने का निश्चय करलें तो शीघ्र ही इस समाज का उद्धार हो जाय। वे नवयुवक यह समझ लें कि यदि कट्टर समुदाय हमें जाति-बहिष्कृत भी कर देगा तो कोई चिन्ता नहीं, हम अपने समाज में क्रान्ति मचा कर ही छोड़ेंगे।

आज वर्षों से मैं सुनता आता हूँ कि समाज के कुछ प्रमुख व्यक्तियों ने इस ओर ध्यान दिया है और बड़े लम्बे-चौड़े भाषण एवं प्रस्ताव पास हुए हैं; परन्तु कार्य-रूप में परिणत होते मैंने कभी भी नहीं सुना।

मैंने स्वयं अनुभव किया है, कितने ऐसे जातीय लीडर हैं, जिन्होंने समय-समय पर सभा-सोसाइटियों में जाकर ख़ूब ओजस्वी भाषा में सम्पूर्ण कुप्रथाओं को याद किया है; परन्तु जिस समय उनसे काम पड़ा उस समय "हमारे काका जी नहीं मानते, माता जी नहीं मानतीं"—कह कर प्राण बचाए। इसलिए सामाजिक कार्य करने के लिए विशुद्ध हृदय का व्यक्ति होना चाहिए।

अनेक बड़े आदमी इस समाज में ऐसे हैं, जो कि बहुत ही निम्न श्रेणी के थे; परन्तु दो-तीन लड़कों का विवाह करने के बाद वे ख़ासे अच्छे धनी और प्रतिष्ठित

हो गए। यदि यही दशा रही तो निकट-भविष्य में कितनी ही आश्चर्यजनक घटनाएँ हो जायँगी।

अब मेरा नम्र निवेदन उस नवयुवक-समुदाय से है, जोकि कुछ कार्य अपने समाज के लिए करना चाहता है। उन नवयुवकों को चाहिए कि अपनी सम्पूर्ण मान-मर्यादा को ताक़ पर रख, सामाजिक क्षेत्र में आक्रान्ति मचा दें और शीघ्र से शीघ्र इस कलङ्कित जाति का उद्धार कर दें। अन्यथा एक दिन वह आएगा कि इस समाज का रहा-सहा गौरव भी नष्ट हो जायगा।

—हनुमानप्रसाद शर्मा, वैद्यशास्त्री

वीरोपदेश

[कविवर पं० रामचरित जी उपाध्याय]

जब नित्य पाँचों तत्व हैं,
यह जीव भी जब नित्य है!
तो कौन मरता है बता दे?
अज्ञ बन भारत; न तू??

इन पञ्च-भूतों के मिलन का,
जन्म लेना नाम है!
इनके बिखरने को परस्पर,
मृत्यु संज्ञा है मिली!!

तू वीर है, तू धीर है;
क्यों धैर्य तू है छोड़ता?
साहस-सहित कर कर्म को,
भारत! विजय होगी न क्यों?

है शीश ही अवशिष्ट तो भी—
राहु ग्रसता सूर्य को!
तेरे सहायक हैं करोड़ों,
फिर तुझे क्या भीति है?

अपमानपूर्वक विश्व में,
जीना पड़ा तो व्यर्थ है!
सम्मानपूर्वक मृत्यु भी,
है श्लाघ्य वीरों के लिए!!

तू नष्ट हो सकता नहीं,
इस लोक या परलोक में!
यदि कष्ट से है छूटना,
तो दे चुनौती शत्रु को!!

तू ग्राम में, संग्राम में—
आराम में, या धाम में!
कर्तव्य को मत भूलना,
प्रभुता तुझे मिल जायगी!

ज्यों जल जलाता है नहीं,
गीला न करता है अनल!
त्यों लड़ न सकते भीरु हैं,
वर वीर डर सकते नहीं!!

है देह-बल से आत्म-बल—
बलवान, यह स्थिर है जिसे।
मद-मत्त गज उसके लिए,
कृमि-तुल्य है, तृण-तुल्य है!!

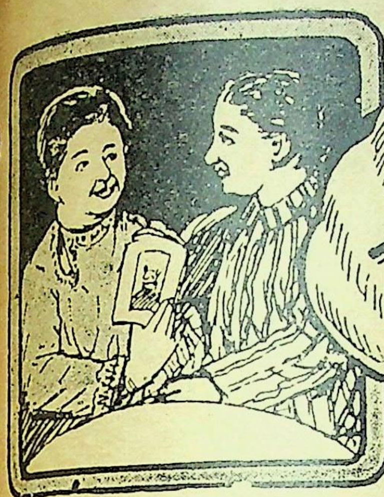
जो लात भी खाकर कृपा—
दिखला रहा हो, शत्रु पर!
वह है द्विपद पशु, नर नहीं,
वह नीचता की मूर्ति है!!

स्मृति-कुञ्ज

[लेखक—'एक निर्वासित ग्रेजुएट']

नायक और नायिका के पत्रों के रूप में यह एक दुःखान्त कहानी है। प्रणय-पथ में निराशा के मार्मिक प्रतिघातों से उत्पन्न मानव-हृदय में जो-जो कल्पनाएँ उठती हैं और उठ-उठ कर चिन्ता-लोक में अस्फुट साम्राज्य में विलीन हो जाती हैं, वे इस पुस्तक में भली-भाँति व्यक्त की गई हैं। हृदय के अन्तःप्रदेश में प्रणय का उद्भव, उसका विकाश और उसकी अविरत आराधना की अनन्त तथा अविच्छिन्न साधना में मनुष्य कहाँ तक अपने जीवन के सारे सुखों की आहुति कर सकता है, ये बातें इस पुस्तक में एक अत्यन्त रोचक और चित्ताकर्षक रूप से वर्णन की गई हैं। आशा-निराशा, सुख-दुख, साधन-उत्सर्ग एवं उच्चतम आराधना का सात्विक चित्र पुस्तक पढ़ते ही कल्पना की सजीव प्रतिमा में चारों ओर दीख पड़ने लगता है। इस पुस्तक में व्यक्त वाणी की अनुपम विलीनता एवं अव्यक्त स्वरों के उच्चतम सङ्गीत का एक हृदयग्राही मिश्रण है। छपाई-सफ़ाई दर्शनीय हुई है। तिरङ्गा आर्ट पेपर का Protecting cover भी दिया गया है। सुन्दर सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल ३) स्थायी ग्राहकों से २)

☞ व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद



बाल मनोरञ्जन



गुरु जी

गुरु जी के दिन बड़े ऐश-जैश से व्यतीत होते थे। उन्हें किसी बात की चिन्ता थी, न फ़िक्र। उनके पाँच चेलों के काम अलग-अलग बँटे थे। नटखटसिंह को नित्य नदी से पानी भरना तथा जङ्गल से लकड़ी तोड़ कर लाना पड़ता था। मूर्खराज का सब समय अनेक प्रकार के भोजन पकाने में बीतता था। बेवक़ूफ़सिंह नित्य प्रातःकाल अपने गुरु की पूजा के लिए जङ्गल से फूल तोड़ कर लाता था। गुरु जी के पास एक गाय भी थी। गाय का दूध दुहना, उसके लिए घास काट कर लाना सिड़ी शर्मा के मत्थे था। भकुआ भगत नित्य कुटी को झाड़ता-बुहारता तथा गुरु जी के साथ सदा रह कर उनकी सेवा करता था।

गुरु जी बड़े आरामतलब थे; उन्हें खाने के सिवा कोई अन्य काम नहीं था। एक दिन एक ऐसी घटना घटी कि गुरु जी की गाय दूर तक चरने के लिए चली गई और शाम तक चर कर नहीं लौटी। दूसरे दिन सिड़ी शर्मा उसे खोजने के लिए आस-पास के गाँवों में गया; किन्तु उसका प्रयास निष्फल हुआ। वह बहुत थक गया था; पर तो भी प्रसन्न-चित्त देख पड़ता था। वह गुरु जी से कहने लगा—महाशय, जब मुझे गाय नहीं मिली तो मैं निराश हो लौटा आ रहा था। मैं एक झील के किनारे पहुँचा, जहाँ चार-पाँच घोड़ियाँ घास चर रही थीं। वहाँ पर मैंने कई छोटे-छोटे घोड़ों के बच्चों को झाड़ियों में छिपे पाया। एक चरवाहा भी वहीं था। उससे पूछने पर मालूम हुआ कि जो उन बच्चों को ख़रीदना चाहेगा उसकी पीठ पर तीन डण्डे मूल्य के रूप में बजेंगे और तब उसे किसी एक बच्चे को पकड़ कर ले जाना होगा।

गुरु जी यह सुन बड़े प्रसन्न हुए। केवल तीन ही डण्डे खाने से उन्हें घोड़े का एक बच्चा मिल रहा था। गुरु जी ने तुरत ही भकुआ भगत तथा सिड़ी शर्मा को तीन डण्डे खाकर किसी एक बच्चे को पकड़ लाने की आज्ञा दी।

वह चरवाहा इन लोगों को आते देख तथा इनकी मूर्खता पर भीतर ही भीतर ख़ूब हँस रहा था। वह नहीं समझता था कि दुनिया में इस तरह के भी लोग हैं, जो खरहे और घोड़े के बच्चे को नहीं पहचान सकते।

चरवाहे ने दोनों की पीठ पर तीन-तीन डण्डे लगाए और झाड़ियों की ओर सङ्केत करते हुए कहा—देखो उन बच्चों में से किसी एक को भी पकड़ लो तो मैं तुम्हें वीर समझूँगा।

खरहे दौड़ने में प्रसिद्ध ही हैं। इन दोनों को आते देख वे सब के सब दौड़ पड़े। ये लोग भी पीछे-पीछे दौड़ने लगे। ये लोग सीधे ही दौड़ना जानते थे। कभी पेड़ों से टकराते; कभी झाड़ियों से होकर दौड़ते; कभी घुटने भर पानी में भी छप-छप करते; किन्तु खरहे दूर निकल गए थे। उनको पकड़ना इनके लिए असम्भव-सा प्रतीत होने लगा। हताश हो एक पेड़ के नीचे ये दोनों बैठ गए।

इन लोगों ने मूर्खता का हद कर दिया। इनके कपड़े फट गए थे; पैरों से ख़ून बह रहा था। यहाँ तक

कि एक डग भी चलना मुश्किल हो गया। किसी तरह कुटी में पहुँचे और सारी कथा कह सुनाई। नटखटसिंह, मूर्खराज तथा बेवक़ूफ़सिंह ने इनकी सेवा-शुश्रूषा की और कई दिनों उपरान्त इनकी तबीयत दुरुस्त हुई। किन्तु अभी तक इन मूर्खों को नहीं मालूम हुआ, वे खरहे थे या घोड़े के बच्चे।

गुरु जी ने कहा—मैं अब बूढ़ा हुआ। वह बच्चा जब छोटेपन में इतना तेज़ था तो न जाने बड़े होने पर कैसा होता। अच्छा हुआ वह नहीं पकड़ा गया; क्योंकि उतने तेज़ घोड़े की आवश्यकता मुझे नहीं थी।

(क्रमशः)

—नरेशप्रसाद बख़्शी

* * *

पीठ-पीछे किसी की निन्दा न करो

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी हिन्दी के बहुत प्रसिद्ध लेखक और कवि हो गए हैं। जिन लोगों ने हिन्दी को बनाया और सँभाला है, उनमें बाबू साहब का स्थान बहुत ऊँचा समझा जाता है। हिन्दी-भाषा की जो आज इतनी उन्नति दिखलाई देती है, इसका एक बहुत बड़ा कारण बाबू साहब का वह घोर परिश्रम भी है, जो उन्होंने पचास-साठ बरस पहले हिन्दी की उन्नति करने के लिए किया था।

बाबू साहब काशी के रहने वाले थे। वह एक बहुत बड़े धनवान के बेटे थे। पिता का देहान्त होने पर उन्हें लाखों रुपए की सम्पत्ति मिली थी परन्तु उन्होंने वह सम्पत्ति थोड़े ही दिनों में साफ़ कर डाली। उसका एक बहुत बड़ा भाग उन्होंने हिन्दी का प्रचार करने और अख़बार तथा पुस्तकें छपाने में ख़र्च किया था। वह हिन्दी के लेखकों और कवियों का बड़ा आदर करते थे। सदा हिन्दी-सेवा करने की धुन में मस्त रहते थे। उनके इन गुणों पर ही रीझ कर उन्हें, उनके मित्रों ने 'भारतेन्दु' की पदवी दे डाली थी। आज बाबू साहब संसार में नहीं हैं, परन्तु हिन्दी-प्रेमी 'भारतेन्दु बाबू' के नाम से ही उन्हें पहचान जाते हैं।

जब बाबू साहब की सब सम्पत्ति साफ़ हो गई, तब उन्हें बड़ा कष्ट होने लगा। बीसों बार उन्हें अपने मित्रों से दस-दस, पाँच-पाँच रुपए उधार लेने पड़ते थे। पटने के महाराज कुमार बाबू रामदीनसिंह, बाबू साहब के बड़े ही सहायक थे। वह भी हिन्दी के नामी सेवक थे। उन्होंने हिन्दी की बहुत सी पुस्तकें अपने छापेख़ाने में छापी थीं। भारतेन्दु बाबू की सभी पुस्तकें रामदीनसिंह जी ने प्रकाशित की थीं।

एक बार रामदीनसिंह जी के पास स्कूलों के एक डिपुटी इन्स्पेक्टर साहब पहुँचे। यह साहब भारतेन्दु बाबू के मित्रों में से थे, इनसे बाबू साहब ने कुछ रुपए भी उधार लिए थे। यह रुपए बाबू साहब अब तक नहीं चुका सके थे।

बातों ही बातों में भारतेन्दु बाबू का ज़िक्र आया। इन्स्पेक्टर साहब अपने रुपयों की बात लेकर बाबू साहब की निन्दा करने लगे। यह बात रामदीनसिंह जी को बहुत बुरी लगी। उन्होंने इन्स्पेक्टर साहब से कहा—देखिए मिस्टर, भारतेन्दु बाबू लाख ग़रीब हो गए हैं, पर हैं वह भले आदमी। आपको इस तरह उनकी निन्दा न करनी चाहिए।

इन्स्पेक्टर साहब हँस कर बोले—अख़्ख़ाह! भारतेन्दु जी की बुराई सुन कर आप नाराज़ होते हैं। क्या मैं झूठ कहता हूँ? अच्छा, आपको बुरा लगता है, तो आप मेरे रुपए दे दीजिए।

रामदीनसिंह जी भीतर चले गए। पाँच मिनट बाद ही वह लौट आए और इन्स्पेक्टर साहब के सामने रुपयों की गिन्नी रख कर बोले—यह लीजिए, आप अपने रुपए। पर मेरी एक बात याद रखिए, वह यह कि पीठ-पीछे किसी की निन्दा करना ठीक नहीं। यह भले आदमियों का काम नहीं है।

इन्स्पेक्टर साहब अपना-सा मुँह लेकर चले गए।

—ज़हूरबख़्श 'हिन्दी-कोविद'

दिल की आग उर्फ़ दिल-जले की आह

["पागल"]

पाँचवाँ खण्ड

८



वस्तु जब हाथ से निकल जाती है, तभी उसके वास्तविक गुण दिखाई पड़ते हैं। इसीलिए जब तक तारा मेरे निकट रही, मैं उसे पहचान न सका, उसके मूल्य को जान न सका। मैं सदा यही समझता रहा कि मैंने उसे पाला है। इसी के नाते मैं उसका रक्षक और शुभचिन्तक हूँ। मगर मैं कभी भी यह न सोच सका कि मेरी सहानुभूति और परोपकार के विचार किसके सहारे इतनी तत्परता से दौड़ रहे हैं। अगर तारा अब भी मेरे पास होती तो शायद मैं योंही अपने दिमाग़ के भुलावे में पड़ा रहता, जिसके फेर में पड़ कर तारा के हृदय को देखना तो अलग रहा, मैं स्वयं अपने ही हृदय की थाह न पाता। मगर उसके एकाएक लापता हो जाने से मेरी बेचैनी मेरे दिमाग़ी भ्रम की आड़ में छिपाए न छिप सकी। इसकी आँच की लपट में मैंने अपने हृदय की छटपटाहट स्पष्ट रूप से देखा और जाना कि यह कमबख़्त दिल तो चुपके-चुपके उसको न जाने कब से पूज रहा है और उसका पता भी मिला तो हाय! कब, जब वही मुझे छोड़ कर चली गई?

क्यों गई? दिमाग़, जिस पर मुझे घमण्ड था, जिसके बल पर मैं एक से एक बढ़ कर पुस्तकें लिखता था, वह इस ज़रा सी बात का रहस्य मुझे क्या बताता, जब वह ख़ुद ही इसको ठीक समझ नहीं पाता था। मगर दिल, जिसका मैं सदा अनादर करता आया, जिसकी बात कभी सुनने और समझने को मैं स्वप्न में भी अवकाश नहीं देता था, वही अब अवसर पाकर अपनी मर्मभेदी चुटकियों से मुझसे अपनी कसर निकालते हुए इस भेद पर यों प्रकाश डालने लगा—"क्यों जी दिमाग़ के पुतले, अब क्यों नहीं अपने दिमाग़ से कहते कि वह अपने ज्ञान की व्याख्याओं और विवेक की आलोचनाओं से आपका दुःख हरे? कहाँ गई वह आपकी अनोखी समझ, जो हर बात में अपनी टाँग अड़ाती थी और जिसके आगे आपने कभी भी मेरी सुधि नहीं ली? अगर ली होती तो तारा आपके शुष्क व्यवहारों से कदापि ऊब कर न भागती और न उसके वियोग में आपकी यह दुर्दशा ही होती। वह क्यों भागी, इसके उत्तर में मैं पूछता हूँ कि जिस समय आपने आधी रात को उसे अलिन्द के कमरे में देखा था, तब आप क्यों भागे थे? दिमाग़ के फुसलाने में पड़ कर समझने को तो आप समझे कि मैं तारा और अलिन्द को आपस में प्रेम करने के निमित्त निर्विघ्न अवसर देने के लिए चला गया। अगर केवल यही बात होती तो उसी क्षण भागने की क्या आवश्यकता थी? न दो-चार दिन सही तो कम से कम सुबह तक तो चैन से आराम करके जाते! क्यों नहीं ठहर सके, इसको दिमाग़ से नहीं मेरी जलन से पूछते, तब तारा के भागने का कारण भी इस समय आप ही समझ में आ जाता।" दिल की ये बातें सीधे दिल में लग कर मुझे और बेचैन करने लगीं।

तो तारा भी क्या सचमुच जल कर भागी है? मैंने तो कभी उसका अनादर नहीं किया। मेरे व्यवहारों में सदा आदर की मात्रा रहा करती थी। इसी समय दिल ने फिर ताना कसा—"जी हाँ, तभी तो वह आपके आदर-सत्कार से ऊब उठी। अजी हज़रत, जो दिल के आदर के भूखे हैं उन्हें दिमाग़ के आदर से सन्तोष कब हो सकता है? इसमें वह मिठास और वह आकर्षण कहाँ, जो मेरे व्यवहारों में है। ये लाख उत्तम और कोमल होने पर भी बिना मेरे हाथ लगाए सूखे-रूखे और फीके ही रहेंगे।" आह! तो क्या तारा मेरे सत्कारों की नहीं, मेरे प्रेम की भूखी थी? यह प्रश्न उठते ही मेरी आत्मा एकाएक चौंक उठी।

मगर उसके जलने का कारण? जहानारा के पत्र ने कहा कि इसकी आँच मेरे फटे हुए टुकड़ों में देखो। किस प्रचण्ड वेदना से यह फाड़े गए हैं। निस्सन्देह इसके फाड़ने वाले का हृदय इसके पढ़ते ही ऐसा ही विदीर्ण हो गया होगा। तब तो यह सारी आफ़त इसी पत्र की ढाई हुई है। यह विचार आते ही एकबारगी सर से पाँव तक आग लग गई। और मैंने क्रोध में उस अनर्थकारी पत्र को स्वयं ही टुकड़े-टुकड़े कर डाला। बाद को ख़याल आया कि मुझे पराया ख़त फाड़ने का कोई अधिकार न था। इसलिए मैंने फिर उन टुकड़ों को एक एक से मिला कर एक दूसरे काग़ज़ पर जोड़ा। बस रहस्य खुल गया। मेरे रोम-रोम तक उस समय मानो छाती फाड़ कर यह चिल्लाने के लिए छटपटाने लगे कि अरी तारा, यह पत्र मेरा नहीं है, नहीं है, नहीं है। मगर हाय! इसको सुनने के लिए वहाँ तारा कहाँ थी?

कई दिनों तक मैं अपने मकान में बन्द रहा। किसी से मिलना-जुलना, बोलना-चालना तनिक अच्छा नहीं मालूम होता था। नौकरों तक से मैं मुँह चुराता था। माता जी से भी भागा-भागा फिरता था। किसी को कुछ कहने या सुनने का कभी अवकाश नहीं देता था। एकान्त में पड़े-पड़े पागलों की भाँति कभी बड़बड़ाता था तो कभी दीवानों की तरह सर धुनता था। न जहानारा की लड़की ढूँढ़ने की सुधि थी और न अलिन्द ही के लिए कोई फ़िक्र थी। दिमाग़ में बस तारा ही तारा थी। अन्त में मैं अपनी दशा से ख़ुद ही घबड़ा उठा। एक-एक क्षण काटना मुशकिल हो गया। तब मैंने दिल को बहलाने के लिए देश में भ्रमण करने की ठानी।

कई महीने तक मैं लगातार इधर-उधर घूमता रहा। कहीं दिल को चैन न मिला। दो-चार दिन से अधिक कहीं भी ठहर नहीं पाता था। अन्त में मैं भटकता-भटकता एक छोटी-मोटी रियासत में पहुँचा, जिसका नाम और ठिकाना बताना कई कारणों से मैं उचित नहीं समझता। मैं जा रहा था किसी और जगह। मगर रास्ते में एक छोटे से स्टेशन पर पोएण्टस-मैन की ग़लती से इञ्जन का पहिया पटरी से उतर गया। यात्रियों के सौभाग्य से कोई दुर्घटना नहीं हुई, मगर गाड़ी कई घण्टे तक वहीं रुकी रही। नगर स्टेशन से नज़दीक ही जान पड़ा। जी में आया, चलो जब तक इसी को देखें। अपना असबाब स्टेशन के चौकीदार के सुपुर्द करके मैं शहर घूमने चला। अभी मैं शहर के बाहर ही था कि एक सवार साहबी पोशाक में अपना घोड़ा खेतों पर बेतहाशा दौड़ाए हुए चला आ रहा है। उसके रास्ते में एक छोटा सा नाला था और थोड़ी दूर हट कर उस पर पुल भी था। मगर उसने पुल की तरफ़ अपना घोड़ा नहीं मोड़ा, बल्कि उसी सीध में नाले के पास आकर उसे एकदम फँदा देना चाहा। घोड़ा तो पार हो गया। मगर सवार उस वक़्त अपना आसन ठीक सम्हाल न सका। वह मुँह के बल नीचे आ गया।

मैंने दौड़ कर उसे ज़मीन पर से उठाया और अपने डॉक्टरी स्वभाव के अनुसार जो कुछ उसकी सहायता ऐसे समय की जा सकती थी, मैं करने लगा। वह गोरे रङ्ग, दोहरे बदन और अधेड़ अवस्था का था। हाथ-पैर बहुत मेहनती नहीं थे। चेहरा भरा हुआ दबङ्ग और गम्भीर था। दाढ़ी-मूँछ सफाचट थी, आँखें बन्द थीं। मुँह से ख़ून निकल रहा था। जब मैं उसका सर और मुँह उसी नाले के पानी से अच्छी तरह से धो चुका, तब उसने आँखें खोल कर मुझे ग़ौर से देखा और कराहता हुआ बड़ी मुशकिलों से अङ्गरेज़ी में बोला—आप डॉक्टर हैं?

मैंने सर हिला कर उत्तर दिया हाँ, और उसकी बुद्धिमानी पर कुछ चकित भी हुआ।

"यहाँ हाल में आए हैं?"

"अभी सीधे स्टेशन से चला आ रहा हूँ।"

"किसके यहाँ जायँगे?"

"किसी के यहाँ भी नहीं। अभी घूम-फिर कर लौट जाऊँगा।"

"अच्छा तो आपको मेरे यहाँ ठहरना होगा। मुझे आपकी मदद की ज़रूरत है। जब तक मैं ख़ुद अपनी देख-रेख करने के योग्य न हो जाऊँ, आपको मेरे साथ रहना पड़ेगा।"

"क्या यहाँ और कोई डॉक्टर नहीं है?"

"हाँ, हैं एकाध। मगर मैं यहाँ वालों पर भरोसा नहीं करता; क्योंकि मैं भी डॉक्टर हूँ। मेरे बराबर किसी की चलती नहीं है। उन लोगों का फ़ायदा तो मुझे बीमार ही रखने में होगा।"

इतनी बातें उसने रुक-रुक कर लड़खड़ाते हुए बड़ी मुश्किलों से कीं। क्योंकि उसके नीचे के जबड़े में सख़्त चोट आई थी। कोई दाँत टूट कर बाहर नहीं निकला था। फिर भी मुझे अनुमान था कि उसके दो-चार दाँत ज़रूर बेकार हो गए होंगे, जिनको मुझे उखाड़ना पड़ेगा। मगर इतनी तकलीफ़ में भी उसकी बातों से उसके मिज़ाज का हाल मुझसे छिपा न रह सका। आदमी हद दर्जे का शक्की, होशियार और घमण्डी मालूम हुआ। उसकी बातों में अनुरोध की तनिक भी मात्रा न थी। बल्कि हुकूमत ही हुकूमत की झलक थी। उसने मेरी सेवा के लिए कुछ धन्यवाद भी नहीं दिया। एक छोटी जगह के डॉक्टर में इतना घमण्ड मुझे खटका। क्योंकि चाहे वह कितना ही पैदा क्यों न करे, फिर भी उसकी आमदनी तीन-चार सौ रुपए मासिक से अधिक नहीं हो सकती। इतनी ही आय पर हुकूमत का यह नशा? ताज्जुब हुआ! जब उससे और मुझसे बातें हो रही थीं, तभी दो-चार आदमी वहाँ और जुट गए थे। वे लोग उसे पहचानते थे और बहुत ही डर और अदब के साथ उससे पेश आए। इन लोगों की सहायता से मैं उसे उसके मकान पर ले गया। क्योंकि उसका बदन धूस जाने और घुटनों में सख़्त चोट आने से वह ख़ुद उठ-बैठ नहीं सकता था।

उसका मकान सरकारी अस्पताल से मिला हुआ था। मैंने पहुँचते ही "कोकेन" का "इन्जेक्शन" देकर उसके कई चोटीले दाँत उखाड़े। क्योंकि मैं जानता था कि थोड़ी देर में उसके मसूड़े सूज कर उसका मुँह खुलने न देंगे। इसके गिरने का हाल इधर-उधर फैल चुका था। कुछ लोग उसको देखने के लिए भी आए। मगर किसी में मैंने आत्मीयता और सच्ची सहानुभूति का भाव नहीं पाया। अन्त में एक साहब एक शानदार जोड़ी पर आए। इनके पहुँचते ही वहाँ सन्नाटा-सा हो गया। अस्पताल के कर्मचारीगण, जो मेरे साथ उस डॉक्टर की देख-रेख में लगे हुए थे, उनकी अगवानी के लिए कमरे से बाहर निकल आए और उन्हें ज़मीन तक झुक-झुक कर सलाम करके अदब से दूर खड़े हो गए। उस वक्त मैंने जाना कि आने वालों में यही सब से बड़ा आदमी है। इतने में डॉक्टर साहब का बूढ़ा अर्दली, जो अपनी ख़ुश-मिज़ाजी और मिलनसारी के कारण मुझसे वहाँ सभों से ज़्यादा बातचीत करने लगा था, मेरे कान के पास चुपके से बोला—यह मैनेजर साहब हैं। रियासत के यही मालिक हैं।

मैनेजर साहब ने डॉक्टर के लिए हद दर्जे की हमदर्दी दिखलाई। वह इसकी हालत देख कर इतने रंजीदा हुए जितना उसके सगे बाप, भाई या लड़का भी न होता। वह अपने रंज में इतने डूबे कि उन्हें मेरी बाबत भी किसी से पूछने की सुधि न रही। डॉक्टर साहब के मुँह का भीतरी हिस्सा बहुत-कुछ सूज चुका था। उनके बोलने में पहिले से अब और भी अधिक कठिनाई होने लगी। अस्तु, किसी तरह रुक-रुक कर घण्टों में उन्होंने उनसे अपना हाल कहा। उसे सुनते ही मैनेजर साहब आग हो गए और दाँत पीस कर बोले—कोई है? फ़ौरन घोड़े को गोली मार दो।

इस नादिरशाही हुकुम के सुनने वाले सर्द होकर रह गए। मैनेजर साहब का एक सिपाही, जो उनकी गाड़ी के कोच-बक्स पर बैठ कर आया था, आगे बढ़ा और "बहुत अच्छा सरकार" कह कर चला गया। मुझसे अब रहा न गया। इतना ख़ूबसूरत और जीवट का जानवर, जो लगभग हज़ार रुपए से कम का न था, उसके इस तरह बेक़सूर मारे जाने का हुकुम मैं सुन न सका। तिलमिला कर मैंने उसकी रक्षा में जो कुछ कहते बना कहा, मगर उत्तर में मैनेजर साहब मुझे तीखी दृष्टि से देख कर बोले—"आप कौन हैं, आप से मतलब?" फिर भी मैं चुप न रह सका। घोड़े को बेक़सूर साबित करने के लिए जिस तरह से दुर्घटना हुई थी, मैंने कह सुनाई। मगर उनका हृदय न पसीजा। इतने में अस्पताल के हाते से लगातार दो फ़ायर और घोड़े की चीख़ एक धमाके की आवाज़ के साथ सुनाई दी। मैं अपना कलेजा मसोस कर रह गया।

इस घटना ने मेरे दिमाग़ में एक खलबली सी मचा दी। मैं दुनिया देखे हुए था। मैं समझ गया कि घोड़ा रियासत का था और वह बेचारा अपने क़सूर के लिए नहीं, बल्कि डॉक्टर की ख़ुशामद में मारा गया। डॉक्टर भी ऐसी ख़ुशामदों का आदी है, इसीलिए उसने इस हुकुम पर ज़रा भी आनाकानी नहीं की, बल्कि गर्वित सा जान पड़ा। कोई न कोई बेढब रहस्य अवश्य है, जिसके बल पर सारी रियासत इसके चङ्गुल में है। और तभी इसका स्वभाव भी इतना अहङ्कारी हो रहा है।

ग्यारह बजे रात तक डॉक्टर को देखने के लिए मैनेजर साहब तीन दफ़े आए। इससे मेरा विचार सत्य प्रतीत होता गया। इस बीच में मैनेजर को मालूम हो गया कि मैं कौन हूँ और किस तरह मेरा यहाँ आना हुआ।

डॉक्टर के मसूड़ों में "कोकेन" का असर जब कम हुआ, तब चोट ने अपने दर्द की तीव्रता दिखानी शुरू की। रात के बारह बजते-बजते मारे बेचैनी के उसकी बुरी हालत हो गई। तब मैंने उसे "मारफ़िया" का इन्जेक्शन देकर बेहोश कर दिया, और बग़ल के कमरे में एक आरामकुर्सी डलवा कर बैठ गया। मेरे हृदय में तो मैनेजर और डॉक्टर के लिए केवल घृणा ही घृणा थी, फिर भी औपन्यासिक होने के कारण इन दोनों के रहस्यपूर्ण सम्बन्ध की कुछ थाह पाने के लिए मेरा दिल बेचैन था। और ख़ासकर इसी उत्सुकता में पड़ कर मैं उस रात को ठहर गया, वरना वहाँ के रूखे व्यवहार और न्यारेपन से तो तबीयत ऐसी खट्टी हो गई थी कि मैं तुरन्त लौट चलने के लिए सोच रहा था।

मगर थाह किस तरह मिले? इसके लिए मैंने डॉक्टर के उस पुराने और हँसमुख अर्दली को ताका, जो मुझसे ज़्यादा बातचीत करता था और जिसको मैंने अपने हेलमेल से बहुत-कुछ अपना भी लिया था। फिर भी क़ाज़ी के घर के चूहे भी सयाने होते हैं। इसलिए वह मेरे चक्करदार प्रश्नों में न फँसा। तब मैंने उससे कहा कि यह जाड़े की रात अकेले अँगीठी के बल पर न कटेगी। और डॉक्टर साहब की देख-रेख के लिए रात भर जगना ज़रूरी है, इसलिए ख़ानसामा से कहो कि एक बोतल 'ह्विस्की' को दे जाए। और तुम भी मेरे साथ बैठो, ताकि बातचीत में वक़्त कटता जाए।

पहिले कुछ अदब के कारण उसने मेरे सामने शराब पीने से आना-कानी की। मगर मैंने ज़िद करके उसे दो पेग पिला ही दिए। फिर तो वह माँग-माँग कर ख़ुद ही पीने लगा। जब सरूर गठा और उसकी ज़बान में फिसलन आई, तब मैंने भेद टटोलना शुरू किया।

"क्यों जी, यहाँ की बोली कुछ अजब ढङ्ग की है, तुम इतनी साफ़ हिन्दी कैसे बोल लेते हो?"

"हुज़ूर, डॉक्टर साहब के साथ मेरा अक्सर कलकत्ते आना-जाना होता है, इसी से मेरी बोली साफ़ है। इनके बाल-बच्चे वहीं रहते हैं। यहाँ तो साल भर में दस-पन्द्रह दिन के लिए कभी आ जाते हैं और कभी वह भी नहीं।"

"घोड़ा तो उस्ताद नाहक़ मारा गया। बड़ा ख़ूबसूरत था।"

"हाँ हुज़ूर, ख़ास राजा साहब के लिए तेरह सौ रुपए पर काठियावाड़ से अभी हाल ही में आया था। उसके तेहे का यहाँ कोई जानवर था नहीं। ख़ैर! वह तो जानवर था, यहाँ मैनेजर साहब आदमी भी मरवा दें तो कोई कुछ चूँ करने वाला नहीं है।"

"क्यों, राजा साहब का डर इनको नहीं है?"

"राजा साहब का डर? भली कही। वह ख़ुद इनके आगे भीगी बिल्ली बने रहते हैं। उस पर ठहरे वह इनके छोटे भाई। भला उनकी मजाल क्या कि वह इनसे कुछ चूँ करें। कर्ता-धर्ता सब यही हैं। वह तो बस खिलौना हैं, हुज़ूर खिलौना। ज़रा एक घूँट और दीजिए।"

"हाँ लो, मगर बड़ा भाई मैनेजर और छोटा भाई राजा, यह तो ताज्जुब की बात है। राजा तो हमेशा बड़ा लड़का होता है।"

"आहा! आप नहीं जानते। ये दो दोनों भाई राजा के लड़के थोड़े हैं? बड़ी रानी से मैनेजर ने अपने छोटे भाई को गोद बिठलवा दिया। बस वह राजा हो गए।"

"बड़ी रानी क्या मैनेजर साहब की कोई रिश्तेदार थीं?"

"नहीं, रिश्तेदारी-फ़िश्तेदारी कुछ नहीं है। मगर क्या कीजिएगा पूछ कर। आहाहाहा! बड़े लोगों की बातें निराली होती हैं हुज़ूर।" अब तो मेरे कान खड़े हुए, मगर अब भी वह बातें ज़रा सम्हाल कर करता था। आदमी गहरा पीने वाला था, इसलिए मैंने उसकी ख़ुराक और बढ़ाई। तब जाकर उसकी ज़बान क़ाबू से बाहर हुई, और उसकी बातों में नशे की बहक आई। बहुत सी इधर-उधर की पूछपाछ करने पर उसकी उखड़ी-उखड़ी नशीली बातों में यह भेद मिला कि डॉक्टर साहब और मैनेजर साहब की कहीं की लड़कपन की दोस्ती थी। जब डॉक्टर साहब यहाँ रियासत में नौकर हुए तो उन्होंने अपने मित्र को बुलवा कर ड्योढ़ी-अफ़सर करा दिया। इसी बीच में बड़े राजा का देहान्त हो गया और ड्योढ़ी-अफ़सर धीरे-धीरे ड्योढ़ी के भीतर पहुँचने लगे।

यहाँ आने के पहिले ही इनकी बीबी मर चुकी थी। और यहाँ आकर इन्हें फिर शादी करने की ज़रूरत क्या थी? बड़ी रानी इनके चङ्गुल में फँस ही चुकी थीं। ऐसे मामलों में बिना किसी डॉक्टर के मिलाए अक्सर काम नहीं चलता। इसलिए डॉक्टर साहब की भी बन आई। ख़ूब गहरी रक़म कटने लगी। और इधर ड्योढ़ी-अफ़सर रूट मैनेजर साहब हो गए और अपने देश जाकर वहाँ से वह अपने छोटे भाई को भी ले आए, जिसकी उम्र उस समय लगभग दस वर्ष की रही होगी। उसको बड़ी रानी ने सहर्ष गोद बिठाल लिया। वही आजकल राजा हैं। जब से ये बालिग़ हुए हैं, तब से बड़ी रानी की पूछ-ताछ कम हो गई और वह भी अब अधिकतर काशी में रहती हैं।

इससे अधिक उस अर्दली को और कुछ मालूम न था। मगर इतने से मुझे सन्तोष न हुआ; क्योंकि विधवा रानी से सम्बन्ध शिथिल हो जाने के बाद मैनेजर साहब ख़ुद सर्वाधिकारी होकर भी ऐसे मूर्ख न थे कि डॉक्टर को अपने रास्ते से अब तक न हटा देते।

सुबह को डॉक्टर साहब की चोटों की सूजन में कुछ कमी ज़रूर थी, मगर दर्द में तेज़ी ज्यों की त्यों बनी रही। चोट अपना प्रभाव पहिले दिन से ज़्यादा दूसरे दिन दिखलाती ही है। इसलिए दोपहर को उन्हें फिर बेहोश रखना पड़ा। इतने में मैनेजर साहब बेतहाशा मोटर दौड़ाए हुए बदहवास पहुँचे।

"कहिए, कहिए, डॉक्टर साहब कैसे हैं?"

"अच्छे हैं। मगर अभी बेहोश हैं।"

"बेहोश हैं? क्या उन्हें आप फ़ौरन होश में ला सकते हैं?"

"शाम के पहिले वह किसी तरह भी होश में नहीं आ सकते।"

"हाय! ग़ज़ब हो गया? राजा साहब को एकाएक फिर मौत का दौरा आ गया। क्या करूँ?"

"मौत का दौरा?"

"हाँ, उन्हें हर दूसरे-तीसरे महीने आ जाया करता है। इसकी दवा सिर्फ़ डॉक्टर साहब ही जानते हैं और दूसरा कोई नहीं।"

मैं 'मौत के दौरे' का नाम सुन कर दिल में चकित हुआ। क्योंकि इस बीमारी का नाम मैंने किसी भी डॉक्टरी किताब में नहीं देखा था। मैं समझ गया कि डॉक्टर ने अपनी चालाकी से, मैनेजर पर अपनी धाक जमाए रखने के लिए किसी बीमारी का यह नाम ख़ुद रख कर उन्हें डरा रक्खा है।

"अच्छा तो शाम तक सब्र कीजिए।"

"हाय! हाय! शाम तक वह बिना दवा के बचें तब तो। ......आप बिलकुल परदेशी हैं? क्या यहाँ किसी को भी नहीं जानते?"

"हाँ, मगर क्यों?"

"योंही। हाँ, क्या आप शाम तक राजा साहब को मौत के मुँह से बचाए रख सकते हैं?"

"बिना मरीज़ देखे पहिले कैसे कह दूँ? इस मर्ज़ का भला कोई पुराना नुस्ख़ा है?"

"नहीं, डॉक्टर साहब ऐसे ज़िद्दी हैं कि राजा साहब के लिए कभी भी कोई नुस्ख़ा नहीं लिखते और न उनके लिए कोई दवा कम्पाउण्डर से बनवाते हैं। हाय! क्या करूँ? अच्छा आप ही चलिए, किसी तरह डॉक्टर साहब के होश आने तक राजा साहब को ज़िन्दा रखिए। नहीं बड़ा ग़ज़ब होगा।"

राजभवन कोई क़िला या महल की तरह नहीं था। बल्कि पुराने ज़माने का एक बहुत बड़ा सा मकान था। मज़बूती और मकानियत काफ़ी थी। मगर देखने में भद्दा था। उसके चारों तरफ़ अस्तबल, मोटरख़ाना और नौकरों के रहने की जगह थी। राजा साहब की हालत देख कर मैं बहुत घबड़ाया। सचमुच उनकी दशा मौत के पञ्जे में तड़पते हुए मरीज़ की सी थी। हाथ-पैर ऐंठ रहे थे, मुँह से फेन निकलता था, पेट में आग सी जल रही थी और हद दर्जे का दर्द था। मर्ज़ कुछ समझ में नहीं आया था। लक्षण से मुझे विष का प्रभाव ऐसा जान पड़ा। मगर यह बात सोचकर कि उन्हें इस तरह का दौरा हर दूसरे-तीसरे महीने आता है, विष का विचार अशुद्ध प्रतीत होता था।

राजा साहब देखने में सुबुक-सुन्दर और सुडौल थे। मगर सूरत बिलकुल ज़नानी थी। चेहरे पर सिवाय भवों के एक भी बाल न था। उस्तरे की सफ़ाई के कारण नहीं, बल्कि प्रकृति ने ही उन्हें ऐसा हमेशा के लिए बनाया था। मगर शौक़ उन्हें मूँछों का ज़रूर था। क्योंकि डॉक्टर के अर्दली से मैं इनकी हुलिया में छोटी-छोटी मूँछों का ज़िक्र सुन चुका था। और वह मूँछ इस

समय उनकी बेचैनी की छटपटाहट में उनकी नाक से निकल कर पलँग के पाए के पास पहले से पड़ी थी, जिसे मैनेजर ने देखते ही मेरी दृष्टि बचा कर अपनी ठोकर से आड़ में कर दी थी। मगर उनकी यह कार्रवाई मेरी निगाहों से बच न सकी। कमरे में सिवाय मेरे और मैनेजर के कोई न था। जिस समय मैं उनका पेट देख रहा था, मैनेजर कपड़ा हटा कर इस तरह से अपना हाथ उनके सीने के नीचे रक्खे हुए था कि एक दफ़े मुझे शक़ हुआ कि वह मेरा हाथ ऊपर खसकने नहीं देना चाहता। मेरा दिल बड़े ज़ोरों से धड़क उठा। मगर मैंने अपने भाव को प्रकट होने नहीं दिया। मैंने मैनेजर को धोखा देने के लिए उधर कुछ भी ध्यान नहीं दिया और घबड़ा कर कहा—"जल्दी कम्पाउण्डर को बुलाइए, हालत बहुत नाज़ुक है।" वह बौखला कर दरवाज़े की ओर लपके। राजा साहब को कुछ सुध-बुध थी नहीं। मैंने मौक़ा देख [illegible]के से अपना एक हाथ उनके सीने की तरफ़ [illegible] दिया। कपड़ों के नीचे बदन के रङ्ग की रबड़ की [illegible]पकी हुई जान पड़ी। अब तो मैं अपनी उत्सुकता [illegible] सका, और झट उसके नीचे अँगुलियाँ डाल कर उसे ऊपर सरका ही दिया। मेरी आँखें निकल पड़ीं और मेरे मुँह से चीख़ निकलते-निकलते रह गई। क्या देखा? स्त्री के दो सूखे हुए स्तन, जिसके भीतरी मांस नश्तर लगा कर निकाले जा चुके थे। मेरे दिल की उस वक़्त क्या हालत थी, उफ़! मैं बता नहीं सकता। इतना बड़ा धोखा? ऐसा बेढब फ़रेब? इतना भयङ्कर जाल? उफ़! कल्पना अनुमान नहीं कर सकती थी।

मेरी यह कार्रवाई बिजली की तरह आनन-फ़ानन हुई। क्योंकि जब तक मैनेजर मेरी ओर पीठ किए द्वार तक जाए तब तक यहाँ राजा के सीने पर का कपड़ा फिर ज्यों का त्यों हो गया। मगर वह द्वार खोल कर बाहर नहीं गए, बल्कि वहाँ तक पहुँचते ही सचेत होकर पलट पड़े, और मुझे शक़ की निगाहों से ताड़ते हुए बोले—कम्पाउण्डर के आने में देर होगी। जो कुछ कहिए मैं करने को तैयार हूँ।

मैंने बिना कुछ बोले-चाले उन्हें बीमार को अपनी गोद में बिठाने का इशारा किया। क्योंकि उस समय नश्तर दिए हुए दोनों सूखे स्तन मेरी आँखों के सामने नाच कर डॉक्टर की क्रूरता, कुटिलता, चालाकी इत्यादि ही नहीं, बल्कि उसे इस अद्भुत रहस्य का मुख्य कर्ता भी बता रहे थे। अवश्य ही इसी ने अपने लाभ और समस्त राज्य की कुञ्जी अपने हाथ में लेने के लिए लड़के के बजाय लड़की को बालक का रूप देकर राजकुमार बनाने की युक्ति निकाली होगी। इस बात में इतना भयङ्कर रहस्य रच देने से राजा इसके जानने वालों के आगे कभी सर उठा नहीं सकता था। मगर कार्य-पूर्ति के उपरान्त मैनेजर ने सर्व-शक्तिशाली होकर भी ऐसे भेदिए को अब तक जीवित कैसे रहने दिया? क्या इस विचित्र बीमारी के कारण? जिसकी दवा सिवाय डॉक्टर के और किसी को मालूम नहीं है? तो क्या यह बीमारी डॉक्टर के लिए ईश्वरीय मदद है, या इसकी उत्पत्ति भी डॉक्टर ही के बेढब दिमाग़ से हुई है? मेरी विचार-धारा यहाँ तक पहुँच कर इस तरह चक्कर खाने लगी कि बार-बार मुझे शक़ होता था कि इसमें भी कुछ रहस्य है। उस वक़्त एकाएक मुझे मिश्र देश के एक पुराने ज़माने के हकीम के ज़हर का ख़्याल आया, जिसने उसे एक शाहज़ादी के लिए ईजाद किया था। उस ज़हर में विशेषता यह थी कि वह पुरुषों और जानवरों पर अपना कुछ भी असर नहीं दिखलाता था। मगर उसकी एक बूँद पानी, पान या किसी भी चीज़ में किसी औरत को खिला देने से वह अपना काम तत्क्षण नहीं, बल्कि जब उसकी माहवारी आरम्भ होती थी, तब जाकर करना शुरू करता था और बारह घण्टे में क़िस्सा तमाम कर देता था। मगर इसका प्रभाव अन्य कोई भी मामूली विष खिला देने से फ़ौरन उतर जाता था। ज़हर की बाबत अपना विचार दृढ़ करने के लिए अब मुझे बीमार की रजस्वला अवस्था जानने की आवश्यकता पड़ी। उस वक़्त मेरे मुँह से एकबारगी निकल पड़ा—ज़रा लेडी डॉक्टर को बुलवा लीजिए।

मैनेजर को जैसे गोली सी लगी। चेहरे का रङ्ग उड़ गया, हवास गुम हो गए। मारे डर और बदहवासी के वह थर-थर काँपने लगा। अब मुझे अपनी ग़लती मालूम हुई। मैंने बातों-बातों में उसे बहुत-कुछ सुधारने की कोशिश की, मगर मैनेजर की आँखें फिर मेरे सामने से नहीं उठीं। ख़ैर! अस्पताल से मैंने बहुत सी ज़हरीली दवाइयाँ मँगवाईं और ईश्वर का नाम लेकर डरते-डरते बीमार को पहिले एक हल्का ज़हर, जिसकी रोक-थाम की जा सकती थी, थोड़ी मात्रा में दिया। हालत कुछ सुधरती

हुई जान पड़ी। फिर तो बेधड़क होकर दवा देने लगा। दो घण्टे में बीमार को चैन और होश आया और सुस्ती के कारण उसे नींद आ गई। तब मैं दूसरे कमरे में लाकर बैठाया गया और शाम तक वहाँ से हटने न पाया।

डॉक्टर की चोटों की निस्बत मैनेजर के पूछने पर मैंने मूर्खतावश बता दिया था कि अब कोई चिन्ता की बात नहीं है, समय सब ठीक कर देगा। सूजन तो कम होने लगी ही है। होश आने पर दर्द में भी अब कमी होगी। यह जान कर वह उसकी तरफ़ से निश्चिन्त होकर मुझे और भी देर तक बैठाले रह गए। राजा की इस विचित्र बीमारी और उसकी दवा के विषय में भी बहुत-कुछ पूछ-पाछ होती रही, मगर सच्चा हाल बताने की मेरी किसी तरह भी हिम्मत न पड़ी। इसलिए अन्त में यह कह कर जान छुड़ाई कि इसकी दवाएँ सब ज़हरीली हैं, जो डॉक्टर इस रोग को पहचान सकता है, वही उन्हें ठीक मात्रा में घड़ी-घड़ी की दशा के अनुसार दे सकता है। यह सुन कर मैनेजर का चेहरा उतर गया।

बड़ी मुश्किलों से चिराग़ जलने के बाद मुझे छुटकारा मिला। रात की अँधियारी छा गई थी। जब मैं विदा होने लगा, मैनेजर ने मेरी सेवा के पुरस्कार में मुझे नोटों का एक बण्डल दिया, जिसे मैं लेने से इनकार करता रहा। मगर उन्होंने ज़िद करके मेरी जेब में उसे ठूँस दिया, और एक हट्टे-कट्टे सिपाही से, जो उस वक्त उसी जगह खड़ा था, कहा कि देखो आपके पास एक हज़ार रुपए के नोट हैं। आपको ख़ूब हिफ़ाज़त से पहुँचा आओ।

एक हज़ार रुपए का नाम सुन कर मुझे कुछ अचरज नहीं हुआ, क्योंकि मैं जानता था कि यह मेरी ज़बान बन्द करने के लिए रिश्वत है। मेरे लिए मोटर पोर्टिको में लगी। एक नौकर ने, जो जाड़े के मारे सर से कम्बल ओढ़े हुए था, दौड़ कर उसका दरवाज़ा खोला। मेरे साथ जाने वाला सिपाही उसमें घुस कर पिछली सीट पर बैठ गया। उसकी यह बदतमीज़ी नागवार हुई, इसलिए मैं घूम कर दूसरी तरफ़ गया और शोफ़र के साथ बैठने के लिए अगला दरवाज़ा खोलना चाहा। मगर उस कम्बली वाले नौकर ने लपक कर हैण्डिल पर मेरा हाथ पड़ने के पहिले ही झट उसे घुमा कर खोल दिया। ऐसा करने में उसका हाथ मेरे हाथ से लगा। ठीक उसी वक्त उसने मेरी मुट्ठी में चुपके से एक छोटा सा काग़ज़ खोंस कर मेरी हथेली में एक चुटकी काट ली।

मैं उस नौकर का मुँह अँधेरे के कारण देख न सका। मोटर रवाना हो गई। अगली सीट पर पुरज़े देखने वाले प्रकाश की मन्द आभा फैली हुई थी। मैं नोटों का बण्डल निकाल कर उन्हें गिनने के बहाने उन्हीं में मिला कर हाथ का पुर्ज़ा चुपके से देखने लगा। उसे देखते ही मैं अचरज की मूर्ति बन कर रह गया। क्योंकि उसमें लिखा था :—

"डॉक्टर, होशियार! तुम्हारा ख़ूनी साथ है, प्राण लेकर फ़ौरन भागो। ईश्वर के लिए एक क्षण की भी देर न करो।
—अलिन्द"

उस समय मोटर बेतहाशा दौड़ रही थी।

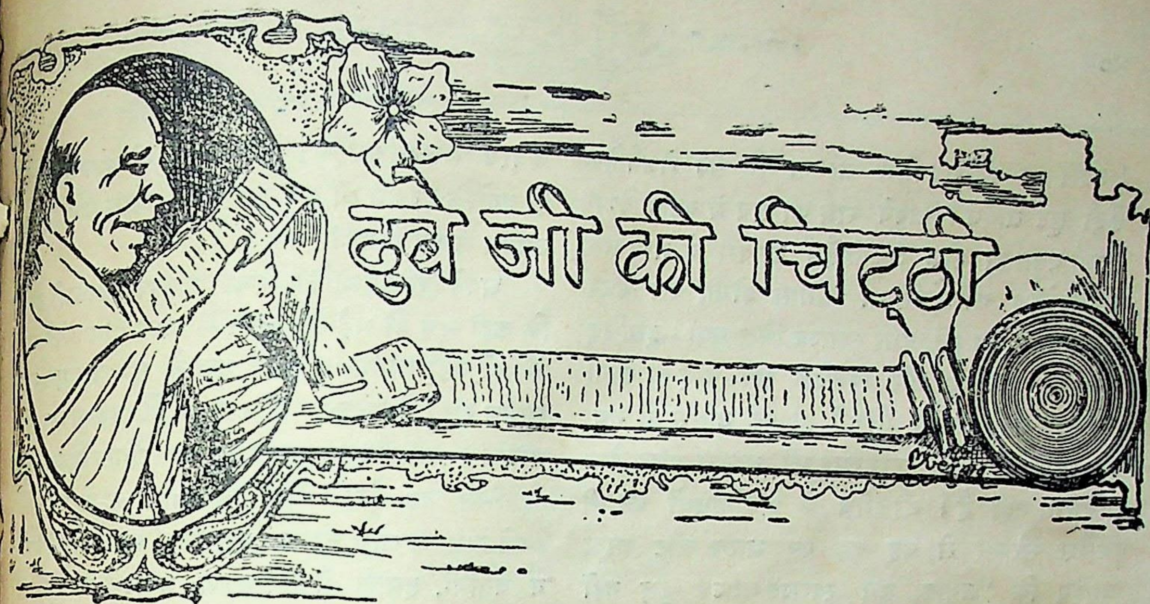
(क्रमशः)

जीवन का अभिमान

[प्रोफ़ेसर रामकुमार जी वर्मा, एम० ए०]

तुम्हें देखा था उस दिन मौन,
आज सुनता हूँ सुमधुर गान;
इन्हीं दो भावों में है छिपा,
तुम्हारे जीवन का अभिमान!

रात्रि देखी थी मैंने और—
आज मैं देख रहा दिनमान;
इन्हीं दोनों चित्रों में देव!
तुम्हारी द्युति देखी छविमान!



अजी सम्पादक जी महाराज,

जय राम जी की !

गोलमेज़ कॉन्फ़्रेन्स का छकड़ा जिस चाल से चल रहा है, उससे प्रतीत होता है कि अभी दिल्ली दूर है। नौ दिन चले अढ़ाई कोस की चाल से मञ्ज़िल तक पहुँचना सरल काम नहीं है। विशेषतः ऐसा छकड़ा, जिसके बैल भिन्न-भिन्न दिशाओं में भागने की चेष्टा कर रहे हों, उसका तो राम ही मालिक है। कॉन्फ़्रेन्स क्या है, भिखमङ्गों की जमाअत है ! सब चाहते हैं कि उनकी झोली पहले भर दी जाय। ब्रिटिश सरकार भी प्रसन्न है कि चलो अच्छा है—ख़ूब लड़ने दो। यदि इस झगड़े में आपस में करारा जूता चल जाय और कॉन्फ़्रेन्स भङ्ग हो जाय, तो भारतीयों को नालायक़ प्रमाणित करने का अच्छा अवसर मिलेगा। हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई, सिक्ख तथा अछूत—ये सब अपनी-अपनी सीटें रिज़र्व कराना चाहते हैं। अपने राम इसको बिलकुल नाकाफ़ी समझते हैं। हिन्दू है किस चिड़िया का नाम ? अजी जनाब हिन्दुओं में चार वर्ण हैं—ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र ! इन सबके लिए सीटें होनी चाहिएँ। ब्राह्मणों में अनेक शाखाएँ हैं। कॉन्फ़्रेन्स में कोई कनौजिया भाई पहुँच जाते तो बस बेड़ा पार था—सब सीटें हथियाने के पश्चात भी शुक्ल, मिश्र, दुबे अथवा अन्य कोई टापते ही रह जाते। वैश्यों में कोई मारवाड़ी सज्जन होते तो खेतान, डालमियाँ, सिंघानिया, कापड़िया इत्यादि-इत्यादि के लिए सीटें लेते-लेते हिन्दुस्तान का सफ़ाया कर देते।

ब्याह-शादियों में जब पत्तलें बँटती हैं, तो जो बच्चा गर्भ में होता है उसकी पत्तल तक ले ली जाती है। इसी प्रकार कुछ सीटें भविष्य के गर्भ में छिपी हुई जातियों के लिए भी रिज़र्व रख ली जायँ तो अच्छा है। भाई, पहले से इन्तज़ाम कर लेना अच्छा होता है—पीछे झगड़ा हो तो क्या फ़ायदा ! मुसलमान लोग भी ग़लती कर रहे हैं, उन्हें शेख़, सय्यद, मुग़ल, पठान, हाजी, हाफ़िज़—सबके लिए अलग-अलग माँग पेश करनी चाहिए। इस प्रकार सब लोग ख़ूब विस्तारपूर्वक अपने-अपने हक़ माँगें तो कुछ आनन्द भी आवे। ब्रिटिश सरकार को भी पता चले कि हाँ कॉन्फ़्रेन्स ऐसी होती है। दही, बड़े-कचालू का ख़ोनचा, जिसमें से पैसे में चार चीज़ें मिल जाती हैं, कॉन्फ़्रेन्स के आगे मात खा जाता। अपने राम भी साल-छः महीने के भीतर कॉन्फ़्रेन्स के सभापति को एक "केबिल" खटखटाने वाले हैं, कि भाई साहब, ज़रा दुबे लोगों का भी ख़याल रखना, वरना हिन्दुस्तान में ग़दर हो जायगा और आपकी बदनामी होगी ; क्योंकि अपने राम चाहे ग़म खाकर बैठ भी रहें, परन्तु सब दुबे लोग ग़म खाने वाले जीव नहीं हैं। और ग़म क्यों खायँ—क्या हम लोग हिन्दुस्तान में नहीं रहते ? यदि दुबे लोगों के लिए यथेष्ट सीटें न रक्खी गईं (क्योंकि दुबे लोगों में भी अनेक श्रेणियाँ हैं), तो अन्य जाति वाले इन्हें भारतवर्ष से निकाल बाहर करेंगे। इसलिए पहले से प्रबन्ध कर लेना अच्छी बात है—बाद को पछताना न पड़े।

एक ज्योतिषी ने भविष्यवाणी की है कि सोलह

जनवरी तक स्वराज्य मिल जायगा और सब राजनैतिक क़ैदी छूट जायँगे। अपने राम की राय में यह भविष्य-वाणी बहुत ही ठीक जँचती है। जनवरी के मध्य तक राउण्डटेबुल कॉन्फ़्रेन्स भी समाप्त होगी, बस उधर कॉन्फ़्रेन्स ख़तम हुई, इधर स्वराज्य मिल गया। इसलिए अब यह सत्याग्रह और पिकेटिङ्ग सब बन्द हो जाना चाहिए। जब स्वराज्य मिलने ही पर उतारू हो गया है तो सब व्यर्थ है। ख़ामख़ाह की झंझट मोल लेना बुद्धिमत्ता नहीं है। गोलमेज़ के प्रतिनिधियों को भी ब्रिटिश सरकार से यह कह कर भारत लौट आना चाहिए कि "जनाब, हम स्वराज्य-वराज्य कुछ नहीं चाहते—यह तो महज़ एक दिल्लगी थी, आप लोग बेफ़िक्र होकर आराम से बैठिए। स्वराज्य हमें अपने आप मिल जायगा। आप लोग झख मारेंगे और स्वराज्य देंगे, क्योंकि हमारे एक ज्योतिषी जी हुक्म लगा चुके हैं।" अपने राम भी आन्दोलन की दाँता-किटकिट से तङ्ग आ गए हैं। जी चाहता है कि क्लोरोफ़ॉर्म सूँघ कर पड़ रहें और सत्रह जनवरी को उठें, तो चारों तरफ़ स्वराज्य ही स्वराज्य देखें! हालाँकि यह युक्ति हिन्दुस्तान भर को करना चाहिए, क्योंकि सोलह जनवरी की प्रतीक्षा करते-करते एक आँख बैठ जायगी। इसलिए यह अच्छा है कि ये दिन बेहोशी में कट जायँ—पता भी नहीं लगेगा कि कब और कहाँ गए। परन्तु अपने राम की यह युक्ति हिन्दुस्तान भर मानने क्यों लगा, क्योंकि बहुतों को इसी में मज़ा आता है कि ऐसी ही बमचख़ मची रहे।

ज्योतिषी जी महाराज ने बड़ी ग़लती की, जो अभी तक इस बात को प्रकट न किया कि सोलह जनवरी तक स्वराज्य मिलेहीगा—मानेगा नहीं। यदि वह साल भर पहले भी बता देते, तो यह झगड़ा क्यों होता। गाँधी जी नमक-सत्याग्रह आरम्भ न करते, विलायती कपड़े का बॉयकॉट न होता—न पिकेटिङ्ग होती। हज़ारों आदमी क्यों पिटते और क्यों जेल जाते! भारत-सरकार भी सुख की नींद सोती। गोलमेज़ कॉन्फ़्रेन्स को भी हिन्दुस्तान से ही अँगूठा दिखा दिया जाता। क्योंकि होने वाली बात किसी के रोके नहीं रुक सकती। ज्योतिषी जी महाराज अब तक न जाने किस दरबे में बन्द रहे। यदि इनकी भविष्यवाणी ठीक हुई, तो इन्हें कालेपानी का दण्ड अवश्य मिलना चाहिए। ये क्षमा के योग्य कदापि नहीं हैं; क्योंकि इन्होंने ही अब तक मौन धारण करके इतना उपद्रव मचवा दिया!

अपने राम इसीलिए कभी भविष्यवाणी नहीं करते कि कहीं सच हो गई तो मुफ़्त में सारा दोष अपने राम के मत्थे मढ़ा जायगा। अपने राम ने एक बार एक मरणासन्न रोगी के सम्बन्ध में कहा था कि यह अच्छा हो जायगा। बस जनाब, वह मृत्यु को अँगूठा दिखा कर टइयाँ-सा उठ बैठा। फिर क्या था! उसके घर वाले अपने राम की जान को आ गए कि "आपने पहले क्यों न बताया, हमारा सैकड़ों रुपया डॉक्टरों के चूल्हे में चला गया—आप पहले बता देते तो हम डॉक्टर तो क्या, किसी अत्तार को भी न बुलाते।" रोगी भी बड़ा नाराज़ हुआ कि डॉक्टरों ने ज़हर पिला-पिला कर नाक में दम कर दिया, और भूखों मार डाला। आप यदि पहले से बता देते तो मज़े से दोनों समय ठण्डाई छानते और मलाई-रबड़ी उड़ाते। यह सब देख-सुन कर अपने राम ने प्रतिज्ञा कर ली कि अब कभी जीवन में भविष्यवाणी नहीं करेंगे—सदैव भूतवाणी और वर्तमानवाणी ही करेंगे। स्वराज्य मिलने न मिलने के सम्बन्ध में अनेक बार इच्छा हुई कि भविष्यवाणी कर डालें, परन्तु यही डर लगा रहा कि कहीं सच हो गई तो लोग ख़ुफ़िया पुलिस का आदमी समझ कर फाँसी पर लटका देंगे। इसलिए अपने राम भूतवाणी के पक्ष में हैं। अपने राम की भूतवाणी कभी ग़लत नहीं होती—यह दावा है। अपने राम की भूतवाणी सुनिए—"भारत में दस महीने से उथल-पुथल हो रही है, हज़ारों आदमी जेल जा चुके हैं, लाखों आदमी खद्दरधारी हो गए हैं, करोड़ों आदमी नित्य सवेरे उठते हैं और दिन भर अपना काम-धन्धा तथा आन्दोलन के सम्बन्ध में गप-शप करके रात में पड़ के सो जाते हैं।" क्यों सम्पादक जी, यह भूतवाणी कितनी ठीक है—हालाँकि इसमें थोड़ी वर्तमानवाणी भी मिली हुई है। इस वाणी को कोई ग़लत प्रमाणित कर दे तो मैं उसे अपना चेला बना लूँ। आजकल वह समय है कि हाथ-पैर बचा कर काम करना चाहिए। वाणी के पीछे ही हज़ारों आदमी जेल की रोटियाँ खा रहे हैं। शेरवाणी तथा क़ीलवाणी से काम न लेकर केवल नयन-वाणी से काम निकालना चाहिए—ऐसा कुछ लोगों का

मत है। सम्पादक जी, आप भी सदैव भूतवाणी तथा वर्तमानवाणी करते हैं। हालाँकि आपने अपने पत्र का नाम "भविष्य" रक्खा है, परन्तु भविष्यवाणी के पास भी नहीं फटकते। यह बड़ी अच्छी बात है। आपका और अपने राम का सिद्धान्त मिलता-जुलता है।

सम्पादक जी, सोलह जनवरी के लिए तैयारी कर रखिए। ख़ूब उत्सव होगा, ख़ूब नाच-रङ्ग होंगे। घर-घर घी के चिराग़ जलाए जायँगे। अपने राम ने अभी से विशुद्ध ताज़ा देशी घी देहात से मँगवाने का प्रबन्ध कर लिया है। बिजली की बत्ती की रोशनी नहीं होगी। बिजली की बत्तियाँ विलायती होती हैं। आप भी रोशनी का बढ़िया प्रबन्ध कीजिएगा—जिससे कि चन्द्र-लोक सूर्यलोक बन जाय।

भवदीय,

—विजयानन्द (दुबे जी)

क्रय-विक्रय

[श्री० रमाशङ्कर जी मिश्र, "श्रीपति"]

जहाँ जीवन में उठते नित्य—
न जानें कितने भीषण ज्वार।
उमड़ता रहता प्रलय-पयोधि,
घुला करता सीमित संसार॥

जहाँ उन्नति का नव उत्कर्ष,
प्रलय की उठती तरल तरङ्ग।
मचलता यौवन का उल्लास,
ठिठकता भावुकता का ढङ्ग॥

जहाँ प्राणों के पासे आह!
पलटते ही रहते दिन-रात।
चाव की चौसर बिछती नित्य,
हृदय पर होते प्रत्याघात॥

जहाँ मादकता में अमरत्व
किया करती क्रीड़ा-मुसकान।
सरसता करती है रस-रङ्ग,
रूठता भोलापन नादान॥

वहाँ कितनी बालाएँ आज—
किया करती हैं मत्त प्रलाप।
छिड़क कर कुछ शैशव का रक्त,
बुझाती हैं जीवन-परिताप॥

वहाँ धन पर तुलता है स्वर्ग,
लुटा करता वैभव बिन दाम।
ठोकरें खाता है सम्मान,
त्याग का मिटता रहता नाम॥

वहाँ घुटते रहते हैं प्राण,
वासनाओं की जलती ज्वाल।
सुधा में मिलता है अभिशाप,
ग्लानि से झुकता रहता भाल॥

प्रेम की लगती है अब हाट,
हृदय का होता है व्यापार।
धर्म के वक्षस्थल पर आह!
हो रहा कैसा अत्याचार!

हुआ करता क्रय-विक्रय हाय!
नृत्य करती तृष्णा विकराल।
न्याय का होता रहता ख़ून,
मिटा करते कितने कङ्गाल॥



दाम्पत्य जीवन

इस पुस्तक के सम्बन्ध में प्रकाशक के नाते हम केवल इतना ही कहना काफ़ी समझते हैं कि ऐसे नाज़ुक विषय पर इतनी सुन्दर, सरल और प्रामाणिक पुस्तक हिन्दी में अभी तक प्रकाशित नहीं हुई है। इसकी सुयोग्य लेखिका ने काम-विज्ञान (Sexual Science) सम्बन्धी अनेक अङ्गरेज़ी, हिन्दी, उर्दू, फ़ारसी तथा गुजराती भाषा की पुस्तकें मनन करके इस कार्य में हाथ लगाया है। जिन अनेक पुस्तकों से सहायता ली गई है, उनमें से कुछ मूल्यवान् और प्रामाणिक पुस्तकों के नाम ये हैं:—

(1) Motherhood and the Relationship of the Sexes by *C. Gasquoine Hartly* (2) Confidential Talks with Husband & Wife by *Layman B. Sperry* (3) Youth's Secret Conflict by *Walter M. Gallichan* (4) The Threshold of Motherhood by *R. Douglas Howat* (5) Radiant Motherhood (6) Married Love and (7) Wise Parenthood by *Dr. Marie Stopes.*

जिन महत्वपूर्ण विषयों पर प्रकाश डाला गया है, उनमें से कुछ ये हैं:—

सहगमन, ब्रह्मचर्य, विवाह, आदर्श-विवाह, गर्भाशय में जल-सञ्चय, योनि-प्रदाह, योनि की खुजली स्वप्न-दोष, डिम्ब-कोष के रोग, कामोन्माद, मूत्राशय, जननेन्द्रिय, नपुंसक, अति-मैथुन, शयन-गृह कैसा होना चाहिए? सन्तान-वृद्धि-निग्रह, गर्भ के पूर्व माता-पिता का प्रभाव, मनचाही सन्तान उत्पन्न करना, गर्भ पर तात्कालिक परिस्थिति का असर, गर्भ के समय दम्पति का व्यवहार, यौवन के उतार पर स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध, रबर-कैप का प्रयोग, माता का उत्तरदायित्व आदि-आदि सैकड़ों महत्वपूर्ण विषयों पर—उन विषयों पर, जिनके सम्बन्ध में जानकारी न होने के कारण हज़ारों युवक-युवतियाँ बुरी सोसाइटी में पड़ कर अपना जीवन नष्ट कर लेती हैं; उन महत्वपूर्ण विषयों पर जिनकी अनभिज्ञता के कारण अधिकांश भारतीय गृह नरक की अग्नि में जल रहे हैं; उन महत्वपूर्ण विषयों पर, जिनको न जानने के कारण स्त्री पुरुष से और पुरुष स्त्री से असन्तुष्ट रहते हैं—भरपूर प्रकाश डाला गया है। हमें आशा है, देशवासी इस महत्वपूर्ण पुस्तक से लाभ उठाएँगे। पृष्ठ-संख्या लगभग ३५०, तिरङ्गे Protecting cover सहित सुन्दर सजिल्द पुस्तक का मूल्य २॥) रु० 'चाँद' तथा पुस्तक-माला के स्थायी ग्राहकों से १॥।=) मात्र! पुस्तक सचित्र है!! केवल विवाहित स्त्री-पुरुष ही पुस्तक मँगावें!

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद



[सम्पादक—श्री० किरणकुमार मुखोपाध्याय (नीलू बाबू)]

शहाना झपताल

[शब्दकार तथा स्वरकार—नीलू बाबू]

मात्रा १०

स्थायी—हे जगदीश्वर सुध लो हमारी। तुम सब विधि मम हौ हितकारी॥

अन्तरा—१ जग के नायक, सिद्धि के दायक, दीन सहायक, सबै गुणधारी॥

अन्तरा—२ हे जग के पित, दर्शन दो नित, यही दान माँगत 'किरण' भिखारी॥

×		३			०		१		
म	—	र	—	र	सं	रे	स	—	स
हे	—	ज	—	ग	दी	ई	श्व क	—	र
स	म	म	—	म	म	प	ग	—	—
सु	ध	लो	—	ह	मा	आ	री	—	—
म	ध	ध	—	प	ध	म	प	—	प
तु	म	स	—	ब	वि	धि	म क	—	म
सं	—	ध	—	प	म	प	ग	—	—
हो	—	हि	—	त	का	आ	री	—	—

अन्तरा

म	प	नि	—	नि	सं	—	सं	—	सं
ज	ग	के	—	ए	ना क	—	य क	—	क
नि	सं	रें	—	सं	नि	सं	नि	—	ध
सि	इ	द्धि	—	के	दा	आ	य	—	क
ध	—	ध	—	प	ध	म	प	—	प
दी	—	न	—	स	हा	आ	य	—	क
सं	सं	ध	—	प	म	प	ग	—	—
स	बै	गु	—	ण	धा	आ	री	—	—

लाल बुझक्कड़

[लेखक—श्री० जी० पी० श्रीवास्तव,
बी० ए०, एल्-एल्० बी०]

श्री० श्रीवास्तव महोदय संसार के सबसे श्रेष्ठ हास्य-नाटककार फ़ान्स के 'मोलियर' (Moliere) की चुनी हुई रचनाओं का रसास्वादन हिन्दी-पाठकों को अनेक बार करा चुके हैं। प्रस्तुत नाटक मोलियर महोदय की चुनी हुई रचनाओं में से है। यह नाटक सर्व-प्रथम सन् १६५३ या १६५५ ईस्वी में लॉयन (Lyons) नगर में, उसके बाद सन् १६५८ में फ़ान्स की राजधानी पेरिस में बादशाह के समक्ष खेला गया था और सारे विश्व ने इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की थी।

श्रीवास्तव महोदय ने जिस बाने में इसे हिन्दी-संसार में उपस्थित किया है, वह देखने योग्य है। हँसते-हँसते पेट न फूल जाय तो पुस्तक का दाम वापस !!! मूल्य २)

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद



[पं० गयाप्रसाद जी शास्त्री, वैद्य]

अतिसार-शूल

अतीस, मोचरस, बेल का गूदा, आम की गुठली, लौंग, छोटी इलायची, दालचीनी, अनार की कली, सोंठ और अफ़ीम, हर एक एक-एक तोला।

विधि—ऊपर लिखी हुई सभी औषधियों को कूट-पीस, छान कर चूर्ण बना लेना चाहिए, अनन्तर १ तोला अफ़ीम के साथ चूर्ण को खरल में डाल कर त्रिफला के क्वाथ या जल से ख़ूब खरल करना चाहिए। समस्त द्रव्यों के एकरस हो जाने पर मटर के बराबर गोली बना ले। छोटे बच्चों के लिए १ या २ रत्ती की भी गोलियाँ बना लेनी चाहिएँ।

मात्रा—बड़ों के लिए मटर के बराबर १ गोली। बच्चों के लिए अवस्था के अनुसार १ या २ रत्ती की गोली।

अनुपान—बड़ों के लिए शुद्ध जल और बच्चों के लिए माता का दूध या साधारण दूध। बड़ों को जल के द्वारा गोली निगल जाना चाहिए, बच्चों को दूध में गोली घिस कर माताओं के द्वारा चम्मच से पिलाना चाहिए।

समय—प्रातः, सायं तथा रोग की अवस्था के अनुसार अधिक बार भी औषध दी जा सकती है।

रोग—शूल, मरोड़े, दस्त।

* * *

श्वेत-कुष्ठ का मरहम

बावची १ तोला, गन्धक (आँवलासार) १ तोला, हल्दी १ तोला, काले तिल १ तोला, सुहागा १ तोला, बकुची के बीज १ तोला, और १०० बार का धुला हुआ घी या वेज़लीन ५ तोला।

विधि—ऊपर लिखी हुई सब चीज़ों को कूट-पीस, छान कर धुले हुए घी में या वेज़लीन में मिला कर मरहम बना लेना चाहिए। इस मरहम को दिन-रात में दो बार "श्वेत-कुष्ठ" के दाग़ों के ऊपर मलने से बहुत ही शीघ्र लाभ होता है।

* * *

बालकों की खाँसी की औषध

काकड़ासिङ्गी २ माशे, अतीस २ माशे, पीपल छोटी २ माशे, नवसादर १ माशा, सुहागा (भुना हुआ) १ माशा, बहेड़े का बक्कल २ माशा।

विधि—सब चीज़ों को कूट-पीस, छान कर चूर्ण बना लेना चाहिए।

मात्रा—३ रत्ती, दिन में ३ बार देना चाहिए।

अनुपान—माता का दूध या शहद।

रोग—बालकों की खाँसी, श्वास।

* * *

अजीर्ण की दवा

हींग, अजवायन, बच, चित्रक, पीपर (छोटी), कूठ, सोंठ १-१ तोला और काला नमक ५ तोले।

विधि—सब चीज़ों को कूट-पीस, छान कर चूर्ण बना लेना चाहिए।

मात्रा—अवस्था के अनुसार १ माशा से ३ माशे तक।

अनुपान—गर्म जल।

समय—प्रातः तथा सायङ्काल।

रोग—सभी प्रकार का अजीर्ण, वायुगोला, शूल, मन्दाग्नि आदि।

वर्ष ९, खण्ड १] फ़रवरी, १९३१ [संख्या ४, पूर्ण संख्या १००

चाँद



सम्पादक :—

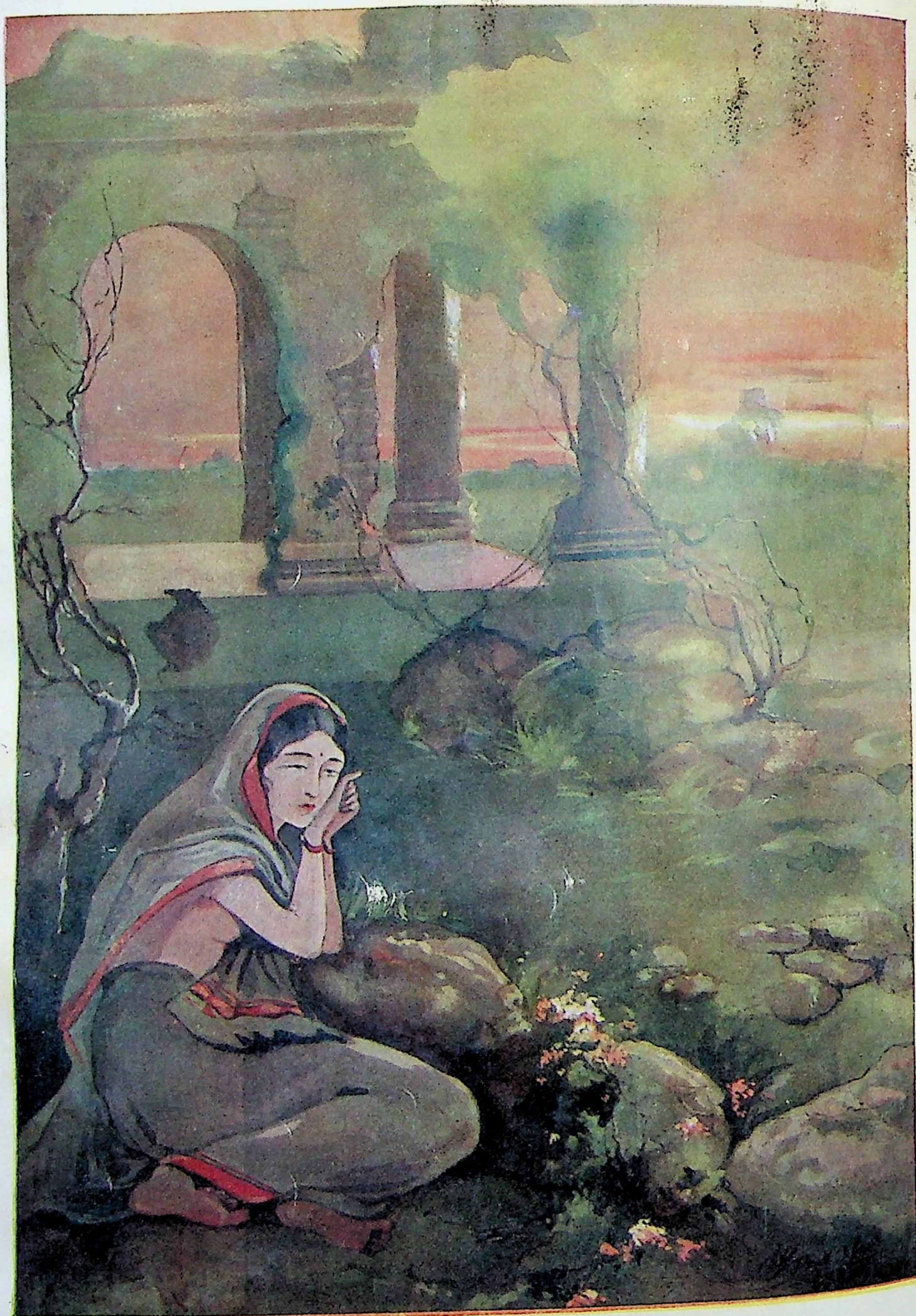
श्रीरामरखसिंह सहगल

वार्षिक चन्दा ६॥) छः माही ३॥)

Printed at the Fine Art Printing Cottage
Chandralok—Allahabad

विदेश का चन्दा ८॥) इस अङ्क का मूल्य ॥=)





जीवन-सन्ध्या

फूलों की सूखी लाली में, था जीवन-सन्ध्या का हास ।
पत्थर पर बिखरा जाता था, बुझते यौवन का मधुमास ॥

—कुमार

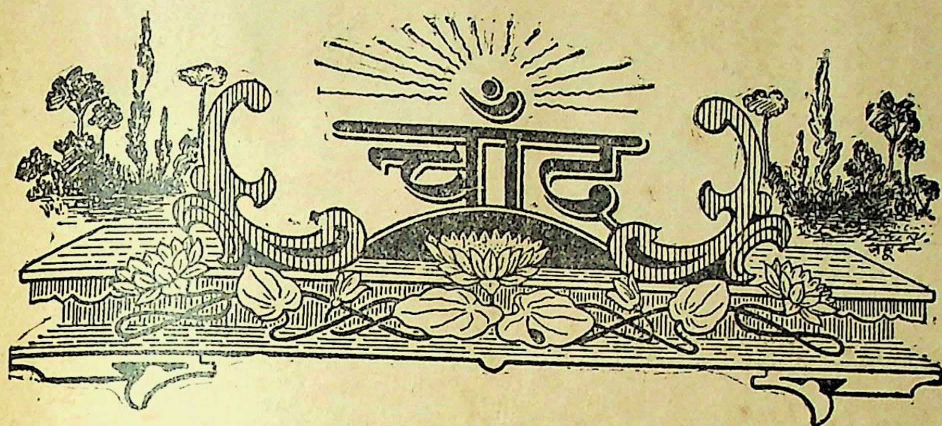


हमारा विद्यार्थी-जीवन

आर्थिक कठिनाइयाँ, पौष्टिक आहार का अभाव, बाल-विवाह की
कुरीति, शिक्षा-प्रणाली तथा कोर्स की कठिनाइयाँ;
ऊपर से बी० ए० तक पहुँचते-पहुँचते
४-५ बच्चों के बाप !!



साथ मैं प्रजा का दूँ, या मैं रहूँ दरबार में !
जान मुश्किल में पड़ी है, नाव है मँझधार में !!



आध्यात्मिक स्वराज्य हमारा ध्येय, सत्य हमारा साधन और प्रेम हमारी प्रणाली है। जब तक इस पावन अनुष्ठान में हम अविचल हैं, तब तक हमें इसका भय नहीं, कि हमारे विरोधियों की संख्या और शक्ति कितनी है।

वर्ष ६ खण्ड १ | फ़रवरी, १९३१ | संख्या ४ पूर्ण संख्या १००

नयन के प्रति

[श्री० आनन्दीप्रसाद जी श्रीवास्तव]

देख रहे हो क्या यों तन्मय—
क्षितिज-प्रान्त की सुन्दरता ?
किधर छहरती फिरती है,
हे नयन ! तुम्हारी दृष्टि-लता ?

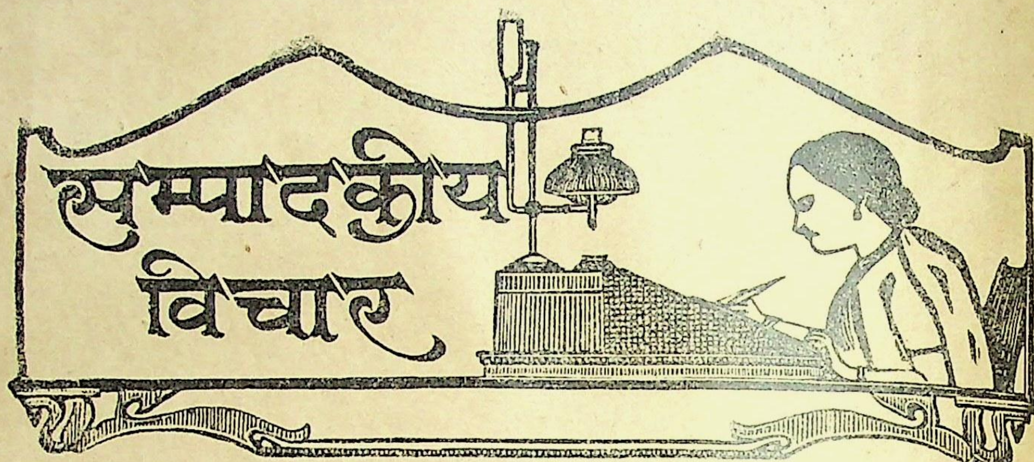
आगे बढ़ कर मिलते कैसे—
वृहत् वृत्त में भू-आकाश,
पर है अति सङ्कुचित वृत्ति का,
हाय तुम्हारा बन्धन-पाश !

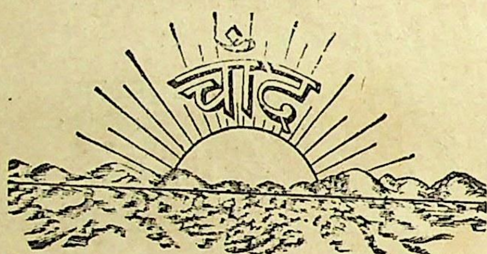
आँख उठा कर देख न सकते—
कोई वस्तु कहीं तुम तो,
रहा करो, पर बहिर्जगत के—
लिए नितान्त नहीं तुम तो !

बन्धन है सब ओर, विदेशों—
में कर सकते नहीं विहार,
नहीं तुम्हारा वश जो घूमो,
क्षितिज-प्रान्त यह गोलाकार !

भोलापन हा ! जमा हुआ है,
यह कैसा मन पर विश्वास,
है न हमारी पद-तल की भू—
और न शिर पर का आकाश !

नयन विलोको अपने भीतर,
आत्म-जगत का क्षितिज विशाल;
फिर यह बाह्य-क्षितिज अधिकृत कर—
तोड़ो बन्धन का जञ्जाल !





फ़रवरी, १९३१

एशियाई देशों का राष्ट्रीय विकास



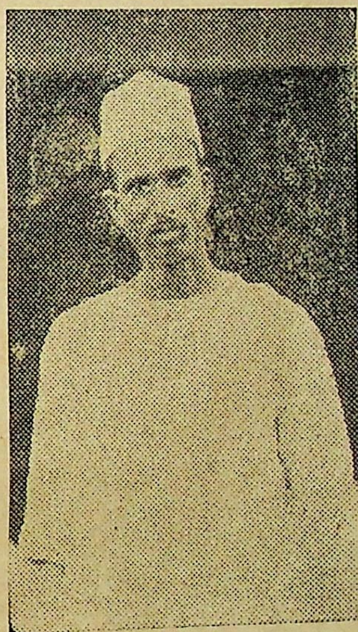
आधुनिक राष्ट्रीयता का आदर्श कोई ऊँचा आदर्श नहीं है । स्वयं यूरोप में, जो इस आदर्श की जन्मभूमि है, इसके प्रति शङ्का और विद्रोह के भाव प्रगट होने लगे हैं । विगत महायुद्ध इसी सङ्कुचित और स्वार्थमय आदर्श का परिणाम था । इस महायुद्ध ने पाश्चात्य सभ्यता को इस तरह जड़ से हिला दिया है, कि पश्चिम के बड़े-बड़े मनीषी इस घातक आदर्श से छुटकारा पाने के लिए व्याकुल हो उठे हैं । लीग-ऑफ़-नेशन्स और सोवियट-रूस इस व्याकुलता के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं । यह सच है कि लीग-ऑफ़-नेशन्स और सोवियट रूस—दोनों की नीति के बीच ज़मीन-आसमान का अन्तर है ; यह सच है कि लीग-ऑफ़-नेशन्स साम्राज्यवादी शक्तियों के हाथ की कठपुतली-मात्र है; परन्तु हैं ये दोनों संस्थाएँ मूलतः अन्तर्राष्ट्रीय । इन दोनों का अस्तित्व यह बताने के लिए काफ़ी है, कि हवा का रुख़ किधर है ।

विगत महायुद्ध के बाद से संसार की राजनीति में राष्ट्रीयता के सङ्कुचित आदर्श को त्याग कर, अन्तर्राष्ट्रीयता की ओर बढ़ने का भाव प्रत्यक्ष ही प्रबल हो उठा है । लीग-ऑफ़-नेशन्स द्वारा संसार के पीड़ित और परतन्त्र राष्ट्रों का उपकार भले ही न हुआ हो, परन्तु यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता, कि आजकल संसार के सभी राष्ट्रों के राजनीतिक जीवन में अन्तर्राष्ट्रीय विचारों और अन्तर्राष्ट्रीय समितियों को जैसा असाधारण महत्व मिल गया है, वैसा शायद मानव जाति के इतिहास में पहले कभी नहीं हुआ था । आजकल कोई राष्ट्र, चाहे वह कितना ही बलवान और कितना ही क्षमताशील क्यों न हो, कोई महत्वपूर्ण कार्य करने के पहले यह भली भाँति सोच लेता है, कि संसार के अन्य राष्ट्र उसके उस कार्य के विषय में क्या सोचेंगे, कैसी सम्मति निर्धारित करेंगे । ब्रिटेन—ग्रेट-ब्रिटेन—जैसे एक महाशक्तिशाली राष्ट्र को भारतीय स्वराज्य की समस्या के विषय में अमेरिकन जनता की सम्मति को अपने पक्ष में लाने की चिन्ता और चेष्टा करनी पड़े, यह संसार की अन्तर्राष्ट्रीय प्रवृत्ति का एक ज़बर्दस्त प्रमाण है । इसी प्रकार की और अनेक बातों से यह साफ़ मालूम होता है कि सङ्कुचित राष्ट्रीयता का युग अब समाप्त होने वाला है—उस राष्ट्रीयता का, जिसने आज संसार की दो-तिहाई जनता को ग़ुलामी की भीषण शृङ्खला में बाँध रक्खा है !

परन्तु, लक्षणों से ऐसा प्रतीत होता है, कि यह राष्ट्रीयता जाते-जाते भी समस्त संसार को अपने रङ्ग में रँग जायगी; जिन जातियों में आज राष्ट्रीयता अथवा देशभक्ति का भाव नहीं है, उनमें भी यह इन भावों को जागृत कर जायगी। वास्तव में इस राष्ट्रीयता का पूर्ण विकास ही इसके विनाश में परिणत होगा! आख़िर आधुनिक राष्ट्रीयता है क्या? सभ्यता और उन्नति के नाम पर संसार की भोली-भाली, असङ्गठित और दुर्बल जातियों को लूटना ही आजकल की राष्ट्रीयता है! एक साम्राज्यवादी राष्ट्र जब किसी दुर्बल जाति का गला दबाता है, तब वह यह नहीं सोचता, कि इससे मानव जाति का कल्याण होगा अथवा अकल्याण! वह सोचता है, केवल अपने मौज और आराम की बात—उसे रहने के लिए सर्वोत्तम भूमि, खाने के लिए अच्छे से अच्छा खाना, ऐशो-आराम के लिए मोटरकार और अट्टालिकाएँ, मनोरञ्जन और विहार के लिए सुन्दर से सुन्दर बाग़ और उपवन मिलने चाहिए, फिर शेष संसार चाहे चूल्हे-भाड़ में जाय। यह सङ्कुचित मनोवृत्ति, यह अदूरदर्शी नीति, यह भयङ्कर स्वार्थपरता ही आजकल की राष्ट्रीयता का सब से बड़ा लक्षण है; यही आजकल की देशभक्ति है; यही साम्राज्यवाद है!!

इसकी जड़ तब तक नहीं उखड़ सकती, जब तक संसार में एक भी ऐसा देश हो, जो दुर्बल हो, जो असङ्गठित हो, जिसके साम्राज्यवादी शक्तियों द्वारा, लूटे और सताए जा सकने की सम्भावना हो! जिस दिन संसार की सभी पीड़ित और परतन्त्र जातियाँ अपने को आधुनिक राष्ट्रीयता के साँचे में ढाल लेंगी; जिस दिन सभी पद्दलित और परतन्त्र देश सङ्गठित होकर ख़ूँख़्वार साम्राज्यवादियों का मुक़ाबला करने को तैयार हो जाएँगे, उसी दिन आधुनिक साम्राज्यवाद का अन्त होगा। आख़िर यूरोप के राष्ट्र इतने प्रबल, इतने सम्पन्न, इतने धन-लोलुप, इतने ख़ूँख़्वार क्यों हों, यदि उन्हें एशिया और अफ़्रिका की असङ्गठित और दुर्बल जातियों को लूटने का मनमाना मौक़ा न मिले? अब तक एशियाई राष्ट्र शिल्प और कला में पश्चिमी राष्ट्रों के मुक़ाबले पिछड़े रहे हैं; एशिया-वासियों में राष्ट्रीयता का अभाव रहा है; वे ठगी और धूर्तता में यूरोपियनों के समकक्ष नहीं प्रमाणित हो सके हैं। इसीलिए यूरोप और अमेरिका वालों को अब तक एशिया के विभिन्न देशों को लूटते रहने का मौक़ा मिला है। जिस दिन यह मौक़ा—यह स्वर्ण-सुयोग—इनके हाथ से निकल जायगा, उसी दिन पीड़ित जातियों पर साम्राज्यवादियों के अत्याचार का सदा के लिए अन्त होगा और शायद वही दिन राष्ट्रीयता और देशभक्ति के वर्तमान सङ्कुचित और घातक भावों का भी अन्तिम दिन होगा।

एशिया की जातियाँ इस रहस्य को भली-भाँति समझ गई हैं और इसीलिए वे बड़ी तेज़ी के साथ अपने



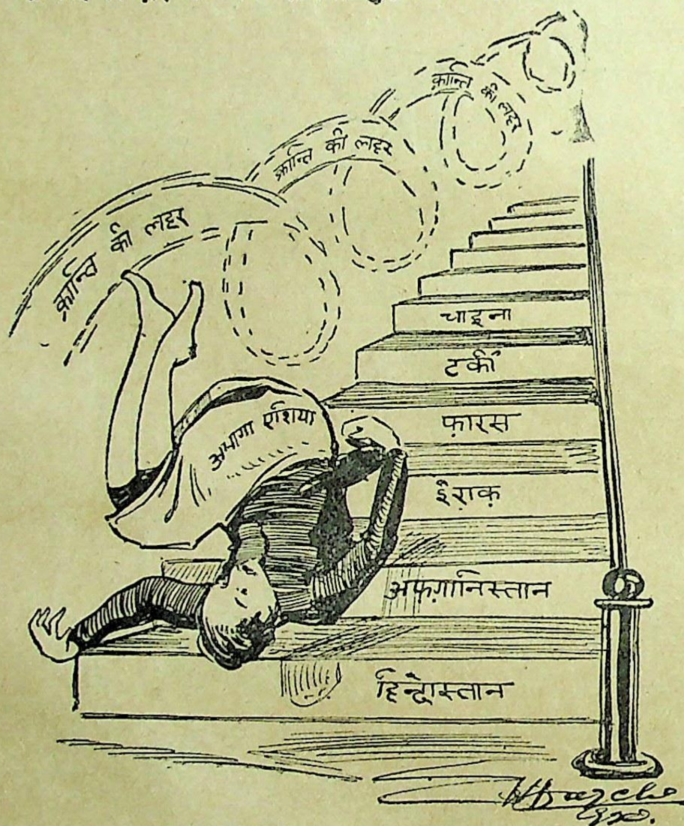
श्री० हनुमन्तराव, बी० ए०, एल्-एल्० बी०

आप करनाटक बार-कौन्सिल के 'डिक्टेटर' हैं, जिन्हें दूसरी बार ६ मास की सज़ा दी गई है।

को राष्ट्रीयता के साँचे में ढालती चली जा रही हैं। जापान का उदाहरण इन जातियों को सदा उत्साहित किया करता है। आज से केवल सत्तर वर्ष पहले जापान एक छोटा सा नगण्य टापू था; पर उसके बाद वाले चालीस वर्षों में उसने पश्चिमी देशों के ढङ्ग पर अपने को इस निपुणता के साथ सङ्गठित कर लिया, कि उसकी प्रगति को देख कर सारा संसार दङ्ग रह गया। आज जापान साम्राज्यवादी हथकण्डों में पूर्ण पटु है। वह छल-कपट में, लूट-खसोट में, धोखेबाज़ी और विश्वास-

घात में, षड्यन्त्रों और सङ्गठित-हत्याकाण्डों में (जिन्हें युद्ध कहते हैं) पश्चिम के बड़े से बड़े राष्ट्रों को मात कर दे सकता है। इसीलिए पश्चिमी राष्ट्रों की दृष्टि में अब जापान 'सभ्य' है; साम्राज्यवादी शक्तियाँ जापान के साथ मैत्री करके अपने को कृतकृत्य मानती हैं !!

एशिया के अन्य राष्ट्रों ने जापान की प्रगति के इस आश्चर्यजनक नाटक को बड़े ही सजग भाव से देखा है; और वे भी अब जापान का ही पदानुसरण करके, सभ्यता की दौड़ में अपने पश्चिमी गुरुओं से बाज़ी मार



क्रान्ति की लहर

ले जाना चाहते हैं। पिछले पचीस वर्षों में एशिया के हर एक देश के राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं। ये सभी देश, किसी अज्ञात शक्ति से प्रेरित होकर, जीवन के सभी क्षेत्रों में आँख मूँद कर यूरोप और अमेरिका की नक़ल करते चले जा रहे हैं। कला-कौशल और उद्योग-धन्धों में, कल-कारख़ानों की वृद्धि में, राजनीतिक सङ्गठन और शासन-प्रणाली में, आन्दोलन-शैली और सैनिक व्यवस्था में, शिक्षा और समाज-सुधार में एशियाई देशों ने यूरोप की नक़ल करने में अपूर्व प्रगति की है। सचमुच इसके अतिरिक्त एशिया की मुक्ति का और कोई मार्ग दिखाई नहीं पड़ता। जब तक एशिया वाले अपने जीवन-यात्रा के लिए आवश्यक सभी चीज़ें—सुई और पिन से लेकर, मोटरकार और हवाई जहाज़ों तक—स्वयं न बनाने लगेंगे, तब तक यूरोप और अमेरिका से इन चीज़ों का एशियाई देशों में आना बन्द न होगा। और जब तक ये चीज़ें आती रहेंगी, तब तक एशिया ग़ुलामी के बन्धन से मुक्त न हो सकेगा! आजकल संसार की राजनीति की कुञ्जी है अर्थ! आर्थिक पराधीनता ही एशिया की राजनीतिक ग़ुलामी का कारण है। अतः इस ग़ुलामी की शृङ्खला को पूर्णतया छिन्न-भिन्न कर देने के पहले, हमें आर्थिक क्षेत्र में पूर्ण स्वावलम्बी बन जाना पड़ेगा।

यहाँ प्रश्न यह है, कि एशियाई जातियाँ अपना आर्थिक विकास करें तो कैसे करें? उनके पास न धन है, न आधुनिक समुन्नत कला-कौशल के रहस्यों का ज्ञान है, न उनके हाथ में ऐसे अन्य साधन ही मौजूद हैं—जैसे राजनीतिक अधिकार आदि—जिनके द्वारा वे अपने नवजात शिल्पों को पश्चिमी देशों के समुन्नत शिल्पों के आक्रमण से बचा सकें। परन्तु यह प्रश्न वास्तव में कोई गम्भीर प्रश्न नहीं है। पाठकों को यह सुन कर आश्चर्य होगा, कि स्वयं साम्राज्यवादी शक्तियाँ ही एशिया के आर्थिक विकास में सहायक हो रही हैं, परन्तु वास्तव में परिस्थिति ऐसी ही है! एशिया के पास अपने शिल्प को बढ़ाने के लिए बड़ी-बड़ी मैशीनें और कल-कारख़ाने के अन्य सामान नहीं हैं; ये चीज़ें उसे पश्चिम से मिल रही हैं। एशिया वालों के पास आधुनिक कला-कौशल का समुन्नत ज्ञान नहीं है; ऐसे ज्ञान रखने वाले निपुण व्यक्ति उन्हें पश्चिम से ही मिल रहे हैं। एशियाई देशों के पास अपने कारख़ाने स्थापित करने के लिए पूँजी नहीं है; यह पूँजी भी उन्हें पश्चिमी देशों से ही मिल रही है!

पश्चिमी देशों में ये चीज़ें—कल-कारख़ानों के सामान, शिल्प का ज्ञान और पूँजी—इतनी अधिक बढ़ गई हैं, कि उन देशों में इनके लिए अब जगह न रही। अतः पश्चिमी देश इन चीज़ों को बाहर भेजने के लिए विवश हैं। उनकी इसी विवशता का लाभ उठा कर, एशिया की जातियाँ अपने शिल्प और उद्योग को बढ़ा रही हैं। उनके उद्योग का विकास ही पश्चिमी राष्ट्रों के पतन का कारण होगा। इस प्रकार स्वयं इस साम्राज्यवाद की जड़ में ही वे शक्तियाँ काम कर रही हैं, जो इसके विनाश का कारण हैं। यह साम्राज्यवाद एक ओर जहाँ सोती हुई जातियों पर रोमाञ्चकारी अत्याचार करके उन्हें जगाता है, वहाँ दूसरी ओर उनके हाथ में प्रतिकार के अमोघ साधन भी स्वयमेव उपस्थित कर देता है।

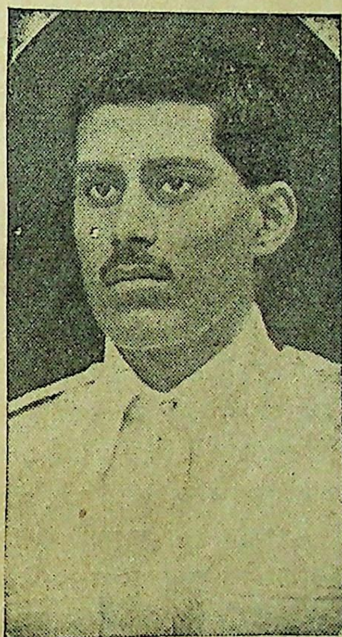
ये शक्तियाँ कौन सी हैं, इनकी क्रिया किस प्रकार होती है, अब तक एशिया के विभिन्न देशों को इन्होंने किस तरह प्रभावित किया है, आदि बातों पर यदि विश्लेषणात्मक दृष्टि से विचार करें, तो आधुनिक साम्राज्यवाद का रहस्य समझ में आ जायगा। और बहुत सम्भव है कि इस प्रकार विचार करने से भविष्य में होने वाली घटनाओं पर भी कुछ प्रकाश पड़ सके तथा हम अपने आगे के लिए कोई सिद्धान्त स्थिर कर सकें—हमें अपनी मुक्ति का मार्ग सूझ जाय!

साम्राज्यवाद का सूत्र

आधुनिक साम्राज्यवाद का सूत्र तीन मन्त्रों से बना हुआ है—(१) आर्थिक सुविधाएँ, (२) राजनीतिक प्रभुत्व, और (३) प्रचार। साम्राज्यवादी शक्तियाँ जब किसी देश में घुसती हैं, तो वहाँ अपने स्वार्थ-साधन के लिए इन्हीं तीन मन्त्रों का प्रयोग करती हैं!

पहले वे उस देश में कुछ असाधारण आर्थिक सुविधाएँ प्राप्त करती हैं; उन सुविधाओं के आधार पर अपने देश का बना हुआ पक्का माल उस देश में अन्य जातियों के मुक़ाबले, जिन्हें वैसी सुविधाएँ प्राप्त नहीं हैं, सस्ते दामों पर बेचती हैं; और उस देश का कच्चा माल तथा खनिज पदार्थ लेकर अपने शिल्प और उद्योग-धन्धों को पुष्ट करती हैं।

इन असाधारण सुविधाओं की रक्षा के लिए साम्राज्यवादी शक्तियाँ उस देश के राजनीतिक जीवन पर प्रभुत्व स्थापित करती हैं। यह प्रभुत्व कैसे स्थापित होता है और किन उपायों से उसकी रक्षा की जाती है, इसकी भी एक वैज्ञानिक पद्धति है। पीड़ित राष्ट्रों के साथ इन शक्तियों के राजनीतिक व्यवहार में "फूट डालो और राज करो" (Divide and Rule) की नीति सर्वोपरि है। जिस अभागे देश को ये अपने चङ्गुल में फँसाती हैं, उसे नाना दलों, सैकड़ों समूहों, हज़ारों जातियों और असंख्य समुदायों में बाँट देती हैं तथा उन्हें आपस में लड़ाया करती हैं! जब कभी इनमें से



श्री० रघुनाथ गनेश जोशी

आप नासिक के सुप्रसिद्ध कवि और कॉङ्ग्रेस के कार्यकर्ता हैं, जिन्हें ६ मास का कठिन कारावास-दण्ड दिया गया है।

कोई समुदाय या कोई दल इस भयङ्कर कूटनीति को समझ जाता है तथा आपस में लड़ना छोड़ कर इन षड्यन्त्रकारी शक्तियों का मूलोच्छेद करने पर उद्यत होता है, तो ये शक्तियाँ फ़ौरन "क़ानून और व्यवस्था" (Law and Order) की दोहाई देकर उसे दबा देती हैं! "क़ानून और व्यवस्था" के नाम पर इन शक्तियों ने जैसे-जैसे भीषण अत्याचार, जैसे-जैसे रोमाञ्चकारी षड्यन्त्र और अधम से अधम पाप किए हैं, उनका हाल

जान कर कोई भी सच्चा मनुष्य इनके पतन की कामना किए बिना नहीं रह सकता।

राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित करने के बाद ये शक्तियाँ उस प्रभुत्व को चिरस्थायी बनाने के लिए प्रचार का सहारा लेती हैं; प्रचार के द्वारा पीड़ित देश के सामाजिक जीवन और लोकमत को अपने अनुकूल बनाने की चेष्टा करती हैं। एक ओर ये शक्तियाँ उस देश के आर्थिक सङ्गठन और राजनीतिक स्वाधीनता पर कुठाराघात करती रहती हैं, और दूसरी ओर उसका हितैषी होनेका दम भी भरती रहती हैं। विजित जनता को शिक्षित बनाने के बहाने बड़े-बड़े स्कूल, कॉलेज, युनिवर्सिटियाँ खुल जाती हैं; मिशनरी समितियाँ जगह-जगह अड्डे जमा लेती हैं; साम्राज्य की प्रशंसा और गुणानुवाद करने वाले पत्र और पुस्तकें प्रकाशित होने लगती हैं; ऐसे लेखकों और लेखिकाओं की एक फ़सल ही पैदा हो जाती है, जो साम्राज्य के विस्तार और स्थायित्व के लिए सत्य की हत्या करने में ज़रा भी कुण्ठित नहीं होते! इन लेखक-पुङ्गवों का प्रधान काम यह होता है कि वे हर तरह की झूठी-सच्ची कहानियाँ गढ़ कर संसार की जनता के सामने विजित देशों को बदनाम करें। ये लेखक विजित जाति के अन्तर्गत विभिन्न दलों में फैले हुए वैर-फूट के, तथा आर्थिक उन्नति और सभ्यता की दौड़ में, उस जाति के पिछड़े होने के वर्णन ख़ूब बढ़ा-चढ़ा कर लिखते हैं; और इसी काल्पनिक तथा झूठे वर्णन के आधार पर साम्राज्यवादी शक्तियाँ विजित जाति पर अपने राज्य को उचित ठहराती हैं—केवल उचित ही नहीं, आवश्यक भी प्रमाणित करती हैं!

संक्षेप में, आधुनिक साम्राज्यवाद का यही त्रिगुणात्मक सूत्र है। अब देखना यह है कि वास्तविक व्यवहार में इस सूत्र के प्रयोग का पीड़ित जातियों पर क्या प्रभाव पड़ता है। इस सूत्र की व्यवहार-पद्धति को एक बार ध्यान से देखने से ही यह प्रत्यक्ष हो जायगा, कि किसी देश में इसका सफलतापूर्वक व्यवहार हो सके, इसके लिए उसमें तीन गुणों का होना अत्यन्त आवश्यक है—

(१) वह देश कृषिप्रधान हो, उसमें कल-कारख़ानों की वृद्धि न हुई हो।

(२) उस देश के लोगों में आजकल की राष्ट्रीय मनोवृत्ति का अभाव हो, अर्थात् उनमें विदेशियों के प्रति घृणा का भाव न हो; और

(३) वह देश आजकल के प्रचार के साधनों, पद्धतियों और उद्देश्यों से अपरिचित हो।

जिस देश में ये तीनों गुण पर्याप्त मात्रा में मौजूद न होंगे, उसमें आधुनिक साम्राज्यवाद के पैर अच्छी तरह नहीं जम सकते। जिस समय पश्चिमी व्यापारियों ने एशिया में प्रवेश किया था, उस समय एशियाई देशों में ये तीनों गुण मौजूद थे; यद्यपि उस समय एशिया में घरेलू उद्योग-धन्धों का अभाव न था, तथापि कल-कारख़ानों और बड़ी तादाद में माल तैयार करने की पद्धति का पूर्ण अभाव था। अच्छी सड़कों, पुलों, रेलों आदि का भी अभाव था, जिसके कारण माल एक स्थान से दूसरे स्थान पर सस्ते में ढोकर नहीं ले जाया जा सकता था। इन कारणों से पश्चिमी व्यापारियों को अपने बड़े-बड़े कारख़ानों में पैदा हुआ माल, रेलों और जहाज़ों आदि से ढो लाकर, इन देशों में सस्ते मूल्य पर बेचने का और यहाँ का कच्चा माल—रूई, जूट, रेशम, हाथी-दाँत, चाय, मसाले, गेहूँ, चावल, दलहन, तेलहन, टीक, चन्दन, रबर, लाख, तथा कुछ खनिज पदार्थ, जैसे शीशा, टिन, उल्फ़्राम, मैनगनीज़, अभरक इत्यादि—अपने यहाँ ले जाने का अपूर्व अवसर था।

उस समय एशियावासियों में राष्ट्रीयता का तो इतना अभाव था, जिसे देख कर आश्चर्य होता है। किसी एशियावासी को यह भी न मालूम था कि स्वदेशी और विदेशी में क्या भेद है? इन बातों से वे इतने अनभिज्ञ थे कि स्वयं एशियावासियों ने समय-समय पर अपने देश में विदेशियों की सत्ता स्थापित होने में सहायता दी। यदि यह सहायता उपयुक्त समय पर साम्राज्यवादी शक्तियों को न मिली होती, तो एशिया में अत्याचार का यह पौधा कभी पनपने ही न पाता!! परन्तु एशिया-वासियों की मनोवृत्ति ही कुछ ऐसी रही है कि स्वयं अपने देशवासियों के विरुद्ध विदेशियों की सहायता करने में उन्होंने कभी सङ्कोच नहीं किया। इससे पश्चिमी राष्ट्रों को पूर्व में अपनी राजनीतिक सत्ता का विस्तार करने में अपूर्व सहायता मिली।

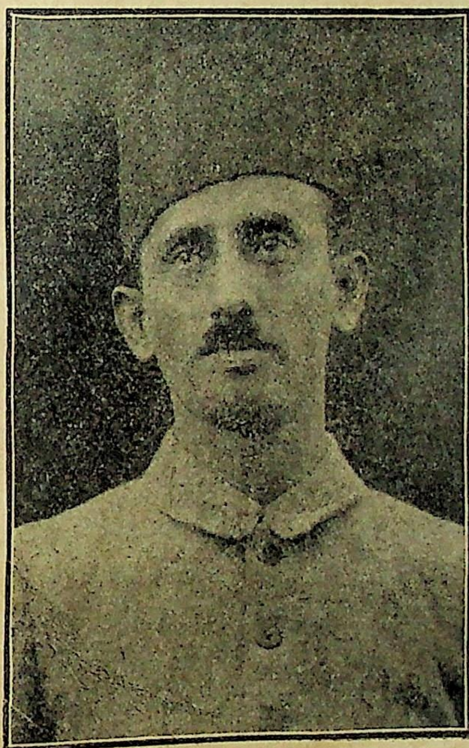
प्रचार के विषय में भी यही बात लागू है। पश्चिमी व्यापारियों ने एशिया के हरे-भरे मैदानों में रेल और

तार के जाल फैला कर, सड़कों और पुलों का निर्माण करके, तथा थोड़े से स्कूल और कॉलेज खोल कर, भोले-भाले एशियावासियों को इस तरह मोह लिया, कि वे थोड़ी देर के लिए आत्म-विस्मृत हो गए। उन्हें यह भी पता न लगा, कि यही वे अस्त्र हैं, जिनके द्वारा उनकी गुलामी के बन्धन मज़बूत किए जा रहे हैं।

परन्तु यह अवस्था बहुत दिनों तक न रही। आर्थिक साम्राज्यवाद एक ऐसी शक्ति है कि जिस देश में एक बार इसके पैर जम जाते हैं, उस देश के ये तीनों गुण स्वयमेव नष्ट होने लगते हैं। स्वयं साम्राज्यवादी शक्तियाँ ही उसके इन गुणों को नष्ट करने लगती हैं। अपने स्वार्थ-साधन के प्रयत्न में वे ऐसे-ऐसे काम करती हैं, जिनसे उस देश का शिल्प बढ़ने लगता है; वहाँ कल-कारख़ानों की वृद्धि होने लगती है; उस देश के निवासियों में राष्ट्रीयता का सञ्चार हो जाता है; वे विदेशियों को घृणा और द्वेष की दृष्टि से देखने लगते हैं; उन्हें आजकल के "प्रोपगेण्डा" के साधनों और पद्धतियों का भी ज्ञान हो जाता है। यहाँ संक्षेप में हम यह बता देना चाहते हैं, कि वे कौन-कौन से काम हैं, जिनका उपरोक्त फल होता है।

साम्राज्यवादी देशों में अनेक दल हैं, अनेक आजीविकाओं के लोग हैं, जिनका स्वार्थ एक-दूसरे से टकराता है। उदाहरण के लिए, मैनचेस्टर के कपड़े के कारख़ानों का—उनके मालिकों और उनमें काम करने वाले मज़दूरों का स्वार्थ इस बात में है, कि भारतवर्ष में कपड़े के कारख़ाने न खुलें। परन्तु स्वयं मैनचेस्टर के ही लोहे के कारख़ानों का स्वार्थ इस बात में है कि भारतवर्ष में कपड़े के कारख़ाने अधिक से अधिक संख्या में खुलें, जिससे उनमें बनी हुई मशीनों और एञ्जिनों को बिकने के लिए बाज़ार मिल सके। ब्रिटेन की गवर्नमेण्ट इन दोनों दलों में से किसी का भी दमन नहीं कर सकती, क्योंकि यदि वह कपड़े के व्यापार को प्रोत्साहन देने के लिए लोहे के व्यापार का दमन करे; अथवा लोहे को प्रोत्साहन देने के लिए कपड़े का दमन करे तो दोनों हालतों में बेकारी बढ़ेगी—एक हालत में लोहे के कारख़ानों में तो दूसरी में कपड़े के कारख़ानों में। बेकारी का बढ़ना गवर्नमेण्ट के लिए हर तरह से आपत्तिजनक है। अतः गवर्नमेण्ट के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह दोनों दलों को प्रोत्साहन दे, चाहे उनके स्वार्थ आगे चल कर आपस में टकराते ही क्यों न हों।

ऐसे ही दोहरे स्वार्थों के दबाव में पड़ कर, साम्राज्यवादी शक्तियाँ जब एशिया के कृषिप्रधान देशों के सम्पर्क में आईं, तो उन्होंने एशियाई देशों के हाथ, न केवल अपने यहाँ का बना हुआ उपभोग्य पदार्थ (Consumable goods) बेचा, बल्कि लोहे के बड़े-बड़े



श्री० ब्रेलवी

आप "बॉम्बे क्रॉनिकल" के प्रतिभाशाली सम्पादक हैं, जिन्हें ६½ मास का दण्ड दिया गया है और जो "बी" क्लास में रक्खे गए हैं।

सामान, मशीनें, रेल, बिजली के कल, कपड़े बनाने के कल आदि उत्पादक पदार्थ (Producable goods) भी बेचे। इन देशों के कृषि-प्रधान होने के कारण इनमें कल-कारख़ानों की वृद्धि के लिए स्थान तो था ही; अतः साम्राज्यवादी देशों से आए हुए कल-कारख़ानों के सामान इनमें ख़ूब बिकने लगे। इससे साम्राज्यवादी देशों को आरम्भ में तो प्रचुर लाभ रहा,

पर जब एशियाई देशों में कारख़ानों की संख्या कुछ बढ़ गई, तो इससे साम्राज्यवादी देशों के व्यापार को आघात पहुँचने लगा। पहले जो चीज़ें, केवल साम्राज्यवादी देशों से आकर एशिया के बाज़ारों में बिका करती थीं, उनमें से बहुत सी चीज़ें अब स्वयं एशिया में बनने और बिकने लगीं। पहले जिस व्यापार के लिए साम्राज्यवादियों का कोई प्रतिद्वन्दी नहीं था, उसके लिए अब एशिया में नए-नए प्रतिद्वन्दी उठ खड़े हुए। देशों का शिल्प और व्यापार जैसे-जैसे बढ़ने लगा, वैसे ही वैसे यहाँ नए ढङ्ग के व्यापारियों, कारख़ानेदारों और मज़दूरों के दल पैदा होते गए। इन दलों की सदा यह कोशिश रहती है, कि जो माल उनके मुल्क के भीतर पैदा होता है, वह बाहर से कदापि न मँगाया जाय; और यदि बाहर का कोई देश वैसा माल भेजता है, तो उस पर इतनी अधिक निषेधात्मक चुङ्गी लगा दी जाय कि देश के भीतर उसका बिकना असम्भव हो जाय! इस प्रकार साम्राज्यवादी शक्तियों ने एशिया को स्वयं शिल्प और व्यापार के क्षेत्र में अपना प्रतिद्वन्दी बना लिया है। इस प्रतिद्वन्दिता में एशिया की सफलता के लिए जितनी भी आवश्यक चीज़ें हैं, वे सब उसे पश्चिमी देशों से बे-रोक-टोक मिल रही हैं। साम्राज्यवादी शक्तियाँ इस प्रवाह को रोकने में असमर्थ हैं।

अब राजनीतिक क्षेत्र पर दृष्टिपात कीजिए। साम्राज्यवादियों की सदा यह कोशिश रहती है, कि उनके माल पर, जहाँ तक हो सके, कम चुङ्गी लगाई जाय। दूसरी ओर एशिया के विभिन्न देशों के शिल्पी और व्यापारी सदा यह चाहते हैं, कि उनके नवजात शिल्प की रक्षा के लिए विदेशी माल का आगमन रोका जाय। यहीं पर साम्राज्यवादी शक्तियाँ और परतन्त्र देशों के बीच राजनीतिक सङ्घर्ष का सूत्रपात होता है। साम्राज्यवादी राष्ट्र यह प्रयत्न करते हैं, कि परतन्त्र देशों के शिल्प और कला-कौशल को बढ़ने से रोका जाय। इसके लिए वे छल, कपट, प्रवञ्चना, झूठ, धोखेबाज़ी, षड्यन्त्र, विश्वासघात आदि—अधम से अधम पाप करने में भी कुण्ठित नहीं होते। उनका यह नग्न रूप देख कर एशियावासियों के मन में विदेशियों के प्रति घृणा और विद्वेष का भाव फैला है। पिछले एक सौ वर्षों में पश्चिमी जातियों ने एशिया को इस तरह लूटा है; उसे ऐसी बेरहमी के साथ सताया है; ऊपर से उसका मित्र बन कर, भीतर ही भीतर उसके साथ ऐसे-ऐसे घृणित विश्वासघात किए हैं कि आज एशिया में एक भी ऐसा देश नहीं है, जहाँ विदेशियों के प्रति घोर घृणा के भाव न लहरा रहे हों! आज से केवल पचास वर्ष पहले, जिस एशिया के लोगों को यह भी न मालूम था, कि देशी और विदेशी में क्या भेद होता है, उसी एशिया में आज एक सिरे से दूसरे सिरे तक—क़स्तुन्तुनिया से लेकर कैण्टन तक—सर्वत्र 'टर्की फ़ॉर टर्क्स' (Turkey for Turks), 'इण्डिया फ़ॉर इण्डियन्स' (India for Indians), 'चाइना फ़ॉर चाइनीज़' (China for Chinese), आदि की पुकार मची हुई है। इसके साफ़ माने यह हैं, कि आज एशिया का हर-एक देश अपने यहाँ से विदेशी लुटेरों को मार भगाने के लिए कटिबद्ध हो गया है। यही वह प्रभाव है, जो एशियाई देशों पर साम्राज्यवादी सूत्र के प्रयोग का हुआ है !!

जिस प्रकार साम्राज्यवादियों ने अपने ही हथकण्डों से एशिया को अपना आर्थिक प्रतिद्वन्दी बना लिया है, उसी प्रकार उन्होंने एशियावासियों के मन में उन राजनीतिक भावों का बीज भी स्वयं ही बोया है, जो उनकी राजनीतिक सत्ता के विनाश का कारण होंगे।

प्रचार के विषय में भी यही नियम लागू हुआ है। एशिया के कृषि-प्रधान, असङ्गठित देशों में रेल, तार, पुल, सड़कें आदि बनवाई थीं साम्राज्यवादी शक्तियों ने अपने स्वार्थ के लिए, परन्तु आज ये ही वस्तुएँ उनके शत्रुओं के हाथ में भी शस्त्र का काम दे रही हैं। जिन स्कूलों, कॉलेजों, युनिवर्सिटियों द्वारा वे एशियाई बच्चों के मन में ग़ुलामी का भाव भरना चाहती थीं, उन्हीं में से आज उनके भयानक से भयानक और प्रबल से प्रबल शत्रु भी पैदा हो रहे हैं! जिन समाचार-पत्रों, मिशनरी, सोसाइटियों, जिन प्रोपगेण्डा के साधनों को साम्राज्यवादी शक्तियों ने एशिया में अपनी सत्ता की दृढ़ता के लिए स्थापित किया था, उन्हींने एशियावासियों को प्रचार की वह पद्धतियाँ भी सिखा दी हैं, जिनकी सहायता से आज एशिया वाले अपने-अपने देशों के भीतर आर्थिक साम्राज्यवाद के मूल पर ही कुठाराघात कर रहे हैं! अपने देशों के बाहर भी एशिया-वालों का प्रचार-कार्य कुछ कम सफल नहीं रहा है। संसार के विभिन्न देशों में

एशिया के पीड़ित राष्ट्रों के साथ सहानुभूति रखने वालों की संख्या आज करोड़ों में है !

एशिया पर साम्राज्यवादी सूत्र के प्रयोग का असर यह हुआ है कि एशिया में नवीन ढङ्ग के कल-कारख़ानों की वृद्धि हुई है, एशियावासियों में राष्ट्रीयता का सञ्चार हुआ है और वे आधुनिक ढङ्ग के प्रोपगेण्डा के कार्यों में दक्ष हो गए हैं। और यही वे बातें हैं, जो पश्चिमी साम्राज्यवाद का मूलोच्छेद करेंगी। जिस दिन एशिया पर से यूरोपियनों का प्रभुत्व हट जायगा, उसी दिन आधुनिक साम्राज्यवाद का अन्त हो जायगा ! पिछले साठ या सत्तर वर्षों में एशिया ने इस दिशा में जो प्रगति की है, उसे देख कर विश्वास होने लगता है कि संसार में साम्राज्यवाद का अस्तित्व अब अधिक दिनों के लिए नहीं है। इसके जीवन के केवल कुछ गिनती के दिन अब बाक़ी रह गए हैं। साम्राज्यवाद के द्वारा, न तो संसार में शान्ति और सहयोग की वृद्धि हुई है, न इसने विज्ञान को उन्नत बनाया है, न जीवन को ही सौन्दर्य प्रदान किया है। इसके विपरीत इसने लोगों में पारस्परिक घृणा और स्पर्द्धा का बीज बोया है; सङ्घर्ष और युद्धों को प्रोत्साहन दिया है; तथा जिन जातियों पर इसका प्रभुत्व रहा है, उनके हर प्रकार के पतन का यह कारण हुआ है।

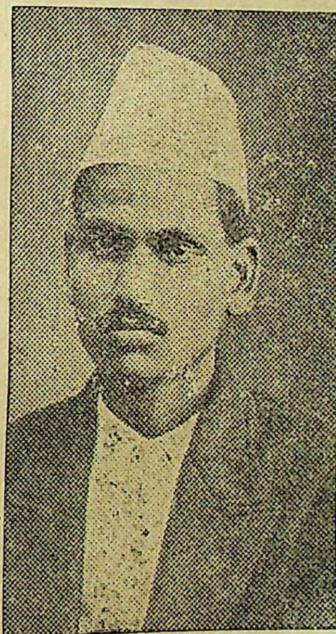
एशिया की प्रगति और संसार का भविष्य

साम्राज्यवाद का अन्त अब साफ़ दिखाई दे रहा है। यूरोप के साम्राज्यवादी देशों का पतन प्रारम्भ हो गया है और वह दिन भी दूर नहीं, जब इन देशों का वैभव सदा के लिए नष्ट हो जायगा। विगत महायुद्ध ने यूरोप के आर्थिक सङ्गठन को ऐसा धक्का पहुँचाया है कि उसका पुनः निर्मित होना असम्भव है ! भावी युद्ध उसके रहे-सहे वैभव को अवश्य नष्ट कर देगा !!

विश्व-वैभव का केन्द्र यूरोप से उठ कर, अमेरिका चला गया है। दूसरी ओर एशियाई देशों की राष्ट्रीय सम्पत्ति निश्चित-वेग से बढ़ रही है। सन् १८७० ई० में, जबकि साम्राज्यवादी शक्तियों के वैभव का विकास प्रारम्भ ही हुआ था, संसार में केवल चार बड़ी-बड़ी शक्तियाँ थीं, जिनकी राष्ट्रीय सम्पत्ति क़रीब-क़रीब एक दूसरे के बराबर थी। उसका ब्योरा इस प्रकार है :—

सन् १८७० में संसार के विभिन्न देशों की राष्ट्रीय सम्पत्ति

प्रथम श्रेणी	
ब्रिटेन	... ४० खर्ब डॉलर
जर्मनी	... ३८ " "
फ़्रान्स	... ३३ " "
संयुक्त राज्य अमेरिका ...	... ३० " "
द्वितीय श्रेणी	
रूस	... १३ " "
स्पेन	... १० " "



श्री० बी० एन० मालगी

आप हिन्दुस्तानी सेवा-दल के मन्त्री हैं, जिन्हें ४ मास का कठिन कारावास-दण्ड दिया गया है।

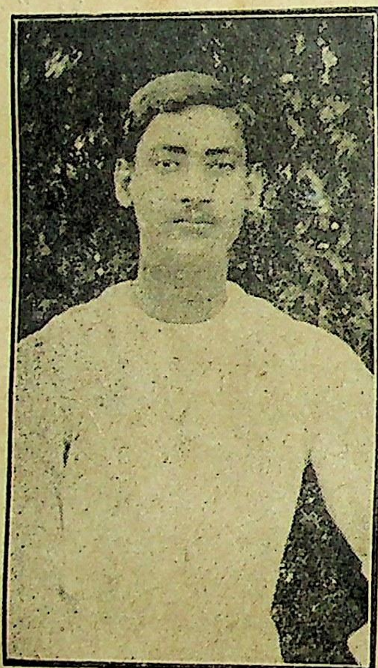
उपरोक्त तालिका में ब्रिटेन का स्थान सर्व-श्रेष्ठ है, अमेरिका का स्थान संसार में चौथा है। एशिया के किसी देश का इस तालिका में पता तक नहीं है ! परन्तु बीस वर्षों के बाद इस क्रम में बहुत परिवर्त्तन हो गया। अमेरिका का स्थान सर्व-श्रेष्ठ हो गया और ब्रिटेन, जर्मनी तथा फ़्रान्स उसके पीछे रह गए ! सन् १८६० में संसार के

विभिन्न देशों की राष्ट्रीय सम्पत्ति की तालिका इस प्रकार थी :—

सन् १८९० में संसार के विभिन्न देशों की राष्ट्रीय सम्पत्ति

प्रथम श्रेणी

संयुक्त राज्य अमेरिका	६५ खर्ब डॉलर
ब्रिटेन	५३ " "
जर्मनी	४६ " "
फ्रान्स	४३ " "



श्री० ब्रह्मप्रकाश शर्मा, एम० एस-सी०, एल्-एल्० बी०

आप मुज़फ़्फ़रनगर के वकील हैं, जिन्हें ६ मास का कारावास और ५०) रु० जुर्माने की सज़ा हुई है!

इसके बीस वर्षों बाद सन्, १९१२ के लगभग, महायुद्ध के ठीक पहले, संसार के विभिन्न देशों की आर्थिक अवस्था में और भी अधिक परिवर्तन हो गया था। अमेरिका की सम्पत्ति यूरोपियन राष्ट्रों के मुक़ाबले बहुत बढ़ गई थी। उस समय केवल अमेरिका ही प्रथम श्रेणी का राष्ट्र था। यूरोप के तीन अग्र-गण्य राष्ट्र द्वितीय श्रेणी में आगए थे। इसके अलावा रूस की सम्पत्ति यूरोप के अग्रगण्य राष्ट्रों के मुक़ाबले तक पहुँच गई थी, तथा एशिया के अनेक देशों ने आर्थिक उन्नति के क्षेत्र में प्रवेश किया था।

सन् १९१२ में संसार के विभिन्न देशों की राष्ट्रीय सम्पत्ति

प्रथम श्रेणी

संयुक्त राज्य अमेरिका	१८६ खर्ब डॉलर

द्वितीय श्रेणी

ब्रिटेन	७१ " "
जर्मनी	७७ " "
फ्रान्स	५७ " "
रूस	५६ " "

तृतीय श्रेणी

इटली	२० " "
स्पेन	२० " "
भारत	२० " "
जापान	११ " "
कनाडा	११ " "
अर्जेन्टाइन	११ " "
ऑस्ट्रेलिया	८ " "

ऊपर की तीनों तालिकाओं को देखने से, यह मालूम होता है कि सन् १८७० में लगभग संसार की सम्पत्ति का केन्द्र यूरोप था। उस समय यूरोपियन राष्ट्रों के वैभव का मुक़ाबला संसार का कोई भी अन्य देश नहीं कर सकता था। परन्तु उसके बाद ही, यह केन्द्र धीरे-धीरे हट कर अमेरिका की ओर जाने लगा तथा एशियाई राष्ट्रों का आर्थिक अभ्युदय प्रारम्भ हुआ! इसके बाद वाले बीस वर्षों में अमेरिका सब से धनी हो गया और इसके बाद और बीस वर्षों में तो अमेरिका इतना आगे निकल गया, कि उसकी राष्ट्रीय सम्पत्ति यूरोप के किसी भी दो राष्ट्रों की सम्मिलित-सम्पत्ति से अधिक थी। विगत महायुद्ध ने राष्ट्रीय सम्पत्ति के इस विभाग में और भी क्रान्तिकारी उलट-फेर किया। युद्ध में हानि केवल यूरोप की हुई; एशिया और अमेरिका को आर्थिक दृष्टि से केवल लाभ ही लाभ रहा। युद्धकाल में इन दोनों महादेशों के कारख़ानों में अधिक से अधिक उत्पत्ति हुई और

इन्होंने अपने माल को अधिक से अधिक मूल्य पर यूरोप के हाथों बेचा। जिस समय यूरोप के राष्ट्र एक-दूसरे का गला काट रहे थे, और युद्ध में पानी की तरह रुपया बहा रहे थे, उस समय अमेरिका और एशिया के कारख़ानों ने उनके हाथों युद्ध का सामान बेच कर मनमाना द्रव्य कमाया। यूरोपीय राष्ट्रों ने पीढ़ियों की लूट-खसोट द्वारा जो वैभव इकट्ठा कर रक्खा था, उसे युद्ध-काल में स्वयं अपनी तथा अपने भाइयों की हत्या करने के लिए अस्त्र-शस्त्र ख़रीद कर एशिया और अमेरिका के कारख़ाने वालों को दे दिया! युद्ध समाप्त होने के बाद सन् १९२२ में जब संसार के भिन्न-भिन्न देशों की राष्ट्रीय सम्पत्ति का हिसाब लगाया गया, तो यूरोप में एक भी प्रथम श्रेणी का राष्ट्र न निकला। इसके विपरीत अमेरिका की तथा एशिया के अनेक देशों की राष्ट्रीय सम्पत्ति में क्रान्तिकारी उन्नति हुई थी।

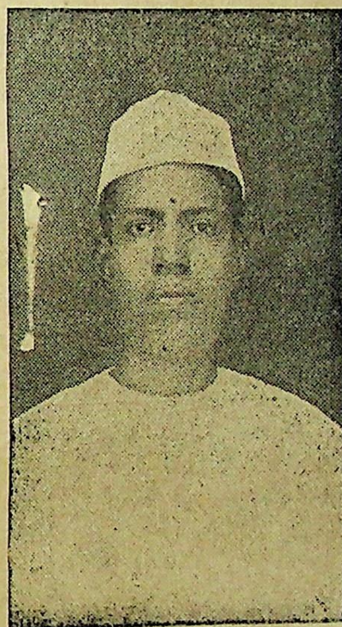
सन् १९२२ में संसार के विभिन्न देशों की राष्ट्रीय सम्पत्ति

प्रथम श्रेणी		
संयुक्त राज्य अमेरिका	... ...	३२१ खर्ब डॉलर
द्वितीय श्रेणी		
ब्रिटेन	... ...	८९ " "
फ़्रान्स	... ...	६८ " "
जर्मनी	... ...	६५ " "
रूस	... ...	५५ " "
तृतीय श्रेणी		
स्पेन	... ...	२९ " "
इटली	... ...	२६ " "
चीन	... ...	२५ " "
भारत	... ...	२५ " "
जापान	... ...	२० " "
कनाडा	... ...	२२ " "
चतुर्थ श्रेणी		
ब्रेज़ल	... ...	१३ खर्ब डॉलर
अर्जेन्टाइन	... ...	१३ " "
ऑस्ट्रेलिया	... ...	१० " "

आज संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका की राष्ट्रीय सम्पत्ति यूरोप के सभी राष्ट्रों की सम्मिलित-सम्पत्ति से भी अधिक है!

यूरोप का भविष्य अन्धकारमय है। लक्ष्मी ने यूरोप का साथ छोड़ दिया है और अमेरिका को अपनाया है। लक्षणों से ऐसा प्रतीत होता है, कि भावी युद्ध में यूरोप की रही-सही शक्ति और वैभव का भी नाश हो जायगा! एशिया, यूरोप और अमेरिका की वर्तमान आपेक्षिक शक्ति तथा संसार के भविष्य की आलोचना करते हुए, एक अमेरिकन विद्वान लिखता है :—

"Europe has already been reduced to vassalage. Her annual tribute to the



तैमिल-नैडू कॉङ्ग्रेस कमिटी के भूतपूर्व उप-प्रधान, जिन्हें एक वर्ष की सज़ा दी गई है।

United States is in the neighbourhood of three quarters of a billion dollars. The War of 1914 shattered her economic structure irrecoverably. Half of her territory and a third of her population left capitalism behind in 1917 and went Soviet. The next war for which she is so busily preparing, will still further reduce the relative economic power of Western European imperialism, while central and

southern Europe will probably join the Union of Socialist Soviet Republics at an early stage in the struggle."*

यदि इस लेखक का स्वप्न सत्य हो जाय—जिसकी बहुत-कुछ सम्भावना है—तो सचमुच पश्चिमी यूरोप की साम्राज्यवादी शक्तियों का पराभव हो जायगा और तब संसार में केवल दो ही प्रबल शक्तियाँ रह जाएँगी—एक ओर साम्राज्यवादी अमेरिका और दूसरी ओर एक सङ्घ में बँधा हुआ साम्यवादी एशिया! भविष्य में एशिया के सामाजिक सङ्गठन पर साम्यवाद के सिद्धान्तों की छाप लगी रहेगी, यह मानी हुई बात है। जब बड़े-बड़े साम्राज्यवादी तक बेकारी की समस्या से परेशान होकर साम्यवाद का मुँह ताकने लगे हैं, तब एशिया को किसी न किसी रूप में साम्यवाद को स्वीकार करना ही पड़ेगा, यह निश्चित सा मालूम होता है!!

निस्सन्देह स्वतन्त्र एशिया की शक्ति संसार में अद्वितीय होगी। एशिया का क्षेत्रफल अन्य सभी महादेशों से बड़ा है। संसार के कुछ बड़े महत्वपूर्ण खनिज पदार्थ और प्राकृतिक सम्पत्ति भी एशिया ही में केन्द्रीभूत है। जन-संख्या की दृष्टि से एशिया संसार का सब से शक्तिशाली महादेश है। सम्पूर्ण संसार की दो तिहाई जन-संख्या केवल एशिया में निवास करती है। इसकी प्राकृतिक सम्पत्तियाँ भी अभी तक प्रायः अछुरण हैं। यूरोप और अमेरिका की प्राकृतिक सम्पत्ति का, खानों की बराबर खोदाई होते रहने के कारण, बहुत कुछ ह्रास हो चुका है। परन्तु एशिया की प्राकृतिक सम्पत्तियाँ अभी ज्यों की त्यों बनी हुई हैं। इन सब कारणों से साफ़ नज़र आता है कि भविष्य एशिया के साथ है। भविष्य में संसार का कोई भी महादेश एशिया का मुक़ाबला न कर सकेगा!

इस समय जो कुछ आवश्यक है, वह यह है कि एशिया के भिन्न-भिन्न देश अपने कल-कारख़ानों को तेज़ी के साथ बढ़ाते चले जायँ और भावी महायुद्ध छिड़ने पर सभी राजनीतिक स्वाधीनता की घोषणा कर दें! विगत महायुद्ध ने यूरोप को लँगड़ा बना दिया है तथा एशिया-वासियों में जाग्रति फूँक दी है। भावी युद्ध में यूरोप की दूसरी टाँग भी टूट जायगी तथा एशिया अवश्य पूर्ण-स्वतन्त्र हो जायगा।

रूस की सामाजिक व्यवस्था और एशिया की निवृत्ति-प्रधान संस्कृति, यही दो चीज़ें हैं, जिनके सम्मेलन से भविष्य में मानव जाति का उद्धार होता हुआ दिखाई देता है।

* * *

* *Scott Nearing: Whither China?; p. 203.*

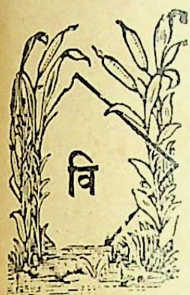


देश-दशा

कुछ लहू तन में है बाक़ी, वह लिए जाते हैं! जोंक बन-बन के मेरा ख़ून पिए जाते हैं!!

आहुति

[श्री० ललितकिशोर सिंह, एम० एस-सी०]



विधवा पार्वती की माँ उसे अनाथ करके चल बसी। अब दुनिया में उसे सहारा देने वाला कोई नहीं। दो-तीन बीघा खेत, एक छोटा सा आम का बग़ीचा और भाई मुन्नू—यही माँ की थाती थी। मरते समय माँ ने आँखों में आँसू भर कर कहा था—"बेटी, तुम्हारा विधवापन और भाई मुन्नू, यही तुम्हें सौंपे जाती हूँ। इनकी रक्षा अब तुम्हारे ही हाथ है।" माँ का यह अन्तिम आदेश क्या पार्वती पालन कर सकेगी, यही उसके जीवन की समस्या थी।

साठ वर्ष का बुड्ढा मङ्गल कोयरी पार्वती का खेत आबाद करता और जो कुछ पैदा होता, उसका आधा पार्वती के घर पहुँचा जाया करता था। जब पैदावार पूरी नहीं होती तो वह ब्राह्मणी पार्वती को अपने हिस्से में से भी कुछ देकर अपने को धन्य समझता था। पार्वती इसी आमदनी से दो जीवों का भरण-पोषण और मुन्नू की शिक्षा का प्रबन्ध किया करती थी। हाँ, अवसर पड़ने पर मङ्गल सहायता करने में कभी पीछे नहीं हटता।

अनेक कष्ट उठा कर पार्वती माँ का सौंपा हुआ भार ढो रही थी। मुन्नू की चिन्ता के सामने वह अपने जीवन की चिन्ता भूल सी गई थी। उसका यौवन खिल उठा था, पर उसे मानो इसकी सुध ही नहीं। उसके रूप का निखार दिन पर दिन बढ़ रहा था, पर इस ओर मानो उसका ध्यान ही नहीं। उसकी राह में जाने कितने काँटे बिछे हुए थे, पर इसकी उसे कुछ परवा ही नहीं। कर्त्तव्य ने उसके हृदय को नीरस बना दिया था। सङ्कल्प ने उसके नारी-जीवन में मर्दानगी ला दी थी।

आम की फ़सल के दिनों में पार्वती का अधिक समय उस छोटे से आम के बग़ीचे में ही कटता था। मङ्गल ने एक किनारे छोटा सा एक झोपड़ा बना दिया था। पार्वती दिन भर उसी में रह कर आम की रखवाली करती और शाम को मङ्गल के ऊपर रखवाली का भार छोड़, घर लौट आती थी।

दोपहर का समय था। पार्वती पेड़ों के नीचे गिरे हुए आम इकट्ठे कर रही थी। उसी समय उसने देखा, कि गाँव का युवक ज़मींदार गदाधर, हाथ में बन्दूक़ लिए बग़ीचे में घुसा। पार्वती के निकट आकर उसने पूछा—"यह बग़ीचा आप ही का है?" पार्वती ने जवाब दिया—"हाँ, मेरा ही है।"

"मैं इन पेड़ों पर चिड़ियों का शिकार करना चाहता हूँ। आप बुरा तो न मानेंगी?"

"बाबू साहब, आपका राज-पाट है। मैं मना कैसे कर सकती हूँ? पर विधवा ब्राह्मणी के बग़ीचे में जीव-हत्या न हो, तो अच्छा है। आप तो क्षत्रिय हैं, राजा हैं, पर मुझे पाप से कौन बचावेगा?"

गदाधर ने जैसे चौंक कर पूछा—"क्या रामखेलावन मिश्र की पुत्री आप ही हैं?" पार्वती ने ज़रा सहम कर जवाब दिया—"जी हाँ, मैं ही हूँ।"

गदाधर बड़े विनीत भाव से बोला—आप ब्राह्मणी होकर इतना कष्ट उठाती हैं, यह मुझसे देखा नहीं जाता। औरतों का अकेली बग़ीचे की रखवाली करना भला कौन पसन्द करेगा? आपको जिस बात का कष्ट हो, मुझे फ़ौरन कहला भेजिए। मुझसे जहाँ तक बन पड़ेगा, आपकी सहायता करूँगा। आप जानती होंगी, कि मैं इस गाँव का ज़मींदार हूँ। अपनी प्रजा का कष्ट दूर करना हमारा धर्म है।

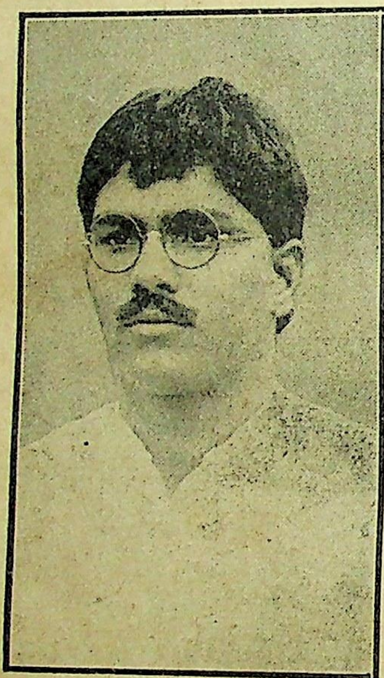
पार्वती ने बड़े सरल भाव से उत्तर दिया—"कष्ट पड़ने पर आपके पास न जाऊँगी, तो कहाँ जाऊँगी, बाबू साहब? मुझ जैसी अनाथ प्रजा की रक्षा तो आप ही के हाथ है। अभी तो किसी तरह दिन कटा ही जाता है, इसीसे आपको कष्ट नहीं दिया है।" गदाधर कुछ देर चुप रहा। फिर प्रेमभरी निगाह से पार्वती की ओर देख कर बोला—"ख़ैर, मैं जाता हूँ, पर इसमें आप सङ्कोच न करेंगी।"

"नहीं, भला सङ्कोच करके मैं कैसे निभ सकूँगी ?"

गदाधर वहाँ से चला गया। पर पार्वती बहुत देर तक सोचती रही कि इस अकस्मात दया-दृष्टि का कारण क्या है ?

२

जब तक गदाधर की आँख नहीं पड़ी थी, तभी तक चैन था। अब तो पार्वती को राह चलना कठिन हो गया। उस बग़ीचे की ओर गदाधर का खिंचाव दिन-दिन बढ़ने लगा। कभी वह स्वयं शिकार के बहाने पार्वती को देख जाता, कभी उसके दूतगण दर्शन दे जाते। भोला, काली, गिरधर जैसे कितने ही सज्जन पार्वती को घेर-घेर कर एक से एक बढ़िया सन्देशा सुना जाते थे। इन लोगों का गिद्ध की तरह मँडराना देख कर पार्वती का हृदय दुख जाता था। पर क्या करे, जो कुछ लाचार सुनना पड़ता था, सुन लेती थी।



श्री० एम० त्यागी

आप देहरादून के निवासी हैं, जिन्हें बिजनौर के एडीशनल डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट ने १०८ वीं धारा के अनुसार ५क वर्ष का कारावास-दण्ड प्रदान किया है।

कोई पार्वती के उज्ज्वल-भविष्य का चित्र उसके सामने खींच जाता, कोई उसे पटरानी बना जाता। कोई उसके भाई को साहब बहादुर बना जाता। पार्वती जब उनकी बातों से खीझ उठती, तो बड़े दीन-भाव से कहती—"भई, क्यों मुझ ग़रीब के पीछे इस बुरी तरह पड़े हो ? क्या तुम्हें और कोई काम दुनिया में नहीं है ?" पर उनके ऊपर इसका कोई भी असर न होता।

पार्वती ने एक दिन मङ्गल से पूछा—मङ्गल चाचा, गदाधर बाबू कैसे आदमी हैं ?

मङ्गल ने बड़ी वेदना के साथ कहा—बेटी, गदाधर की क्या पूछती हो ? इस गाँव में रह कर किसकी बहू-बेटी की इज़्ज़त बची है ? जिस पर एक बार गदाधर की गिद्ध-नज़र पड़ी, वह क्या फिर बच सकती है ? बतसिया गाँव छोड़ कर भाग गई। पुनियाँ के ख़सम को जेल भेजवा दिया। कञ्चनसिंह की बेवा लड़की माधुरी इस चाण्डाल के मारे कुएँ में डूब मरी। ऐसे कितने क़िस्से हैं। इस पापी से भगवान रक्षा करे।

पार्वती सुन कर काँप उठी। एक बार उसके जी में आया कि मङ्गल से सारा हाल कह दे। पर फिर उसने उस बेचारे को चिन्ता में डालना अच्छा नहीं समझा, इससे चुप हो रही।

इसके दूसरे ही दिन रमनी दाई बहुत सा सामान लेकर पार्वती के पास आई। उसने न जाने कितनी तरह की बातें कीं। पार्वती को अनेक लोभ दिखाया। गदाधर की बड़ाई करते-करते वह गद्गद हो गई। गदाधर के कितना धन है, कितनी दास-दासियाँ हैं, सोने-जड़ाऊ के गहनों की कितनी सन्दूक़ें हैं—इनका पूरा-पूरा ब्योरा दे डाला। पार्वती के रूप की प्रशंसा की। यौवनावस्था के अनमोल सुखों का बड़ा ही लुभावना चित्र अङ्कित किया। अपने जीवन का हवाला दिए बिना भी उससे रहा न गया। पर फल यह हुआ कि पार्वती ने गदाधर के बहु-मूल्य उपहार को लौटा दिया। रमनी दाई बीड़ा उठा कर आई थी, पर निराश होकर वापस गई। उसने मन में कहा—कैसी पत्थर की बनी औरत है। कितना आगा-पीछा सुझाया, पर ज़रा नहीं पसीजी।

एक दिन मुन्नू स्कूल से लौटते समय बहुत ही प्रसन्न था। पार्वती यह देख ख़ुशी से फूल उठी। पर उसकी प्रसन्नता बहुत देर तक न रही। उसने पूछा—क्यों मुन्नू, क्या बात है ? आज तू इतना प्रसन्न क्यों है ?

मुन्नू ख़ुशी के मारे उलटी-सीधी बहुत सी बातें बक गया। उनका सारांश यह था कि गदाधर बाबू सड़क पर से बुला कर उसे अपने घर ले गए और बड़ी ख़ातिर की। उसे मिठाई खिलाया, पान खिलाया, बढ़िया-बढ़िया इतर सुँघाया। मुन्नू झट अपनी जेब से एक पेन्सिल निकाल, पार्वती की नाक के पास ले जाकर बड़े गर्व से बोला—देखो दीदी! ज़मींदार बाबू ने यह पेन्सिल दी है। इसमें एक तरफ़ लाल और दूसरी तरफ़ नीला है। और उन्होंने कहा है कि तुम्हें जिस किताब का काम हो, हमसे माँग लेना। उनके पास बहुत किताबें हैं दीदी। आलमारी की आलमारी भरी पड़ी हैं।

पार्वती सब समझ गई, उसका भाव गम्भीर हो गया। उसकी गम्भीरता से मुन्नू को बड़ी निराशा हुई। पार्वती ने मुन्नू से कहा—भैया मुन्नू! तू तो बड़ा अच्छा लड़का है। मैं जो कहूँगी, वह करेगा?

"हाँ, करूँगा क्यों नहीं?"

"तो यह पेन्सिल तू अभी ज़मींदार बाबू को दे आ। मैं तुझे इससे भी अच्छी पेन्सिल मँगवा दूँगी।"

मुन्नू का चेहरा उतर गया। उसने उदासी की हँसी हँस कर कहा—यह मैं चुरा कर नहीं लाया हूँ, दीदी। उन्होंने ख़ुद अपने हाथ से मुझे दिया है।

"नहीं, मैं यह नहीं कहती कि तू चुरा कर लाया है। पर दूसरे की चीज़ लेने से दीदी का सर झुकता है।"

मुन्नू ने घबरा कर कहा—तो मैं अभी लौटा आता हूँ।

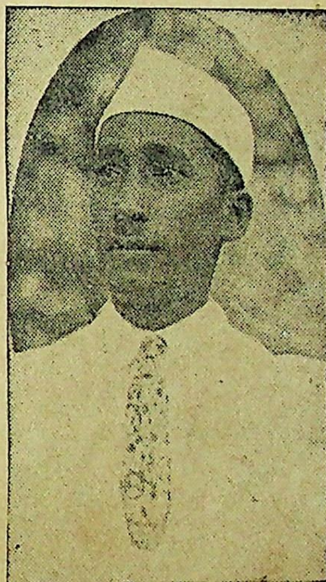
पार्वती ने प्रसन्न होकर कहा—हाँ भैया! जा लौटा आ और कहना कि किताबें मुझे दीदी मँगा देगी।

मुन्नू 'अच्छा' कह कर दौड़ गया और पेन्सिल गदाधर को वापस कर आया।

३

जब प्रलोभन से काम न चला, तो गदाधर ने अपने तरकस से दूसरा बाण निकाला। अब उसके दूत नित्य आकर पार्वती को डराने-धमकाने लगे। वे पार्वती के दिल पर यह जमाने की चेष्टा करने लगे, कि ज़मींदार की इच्छा के विरुद्ध गाँव में रहना असम्भव है। जब पार्वती अङ्गरेज़ी सरकार की दुहाई देती तो वे ऐसे बीसों क़िस्से सुना जाते, जिनमें कोतवाल ने गदाधर से घूस लेकर सच्चे मामले को झूठा बना दिया। जब पार्वती समाज का भय दिखाती तो वे ज़ोर से हँस पड़ते। क्योंकि गाँव के पण्डित-पुरोहित सब के सब ज़मींदार के दास हैं। और धर्म? भला गदाधर के बराबर दान-उपदान, पूजा-पाठ और ब्राह्मणों की सेवा करने वाला दूसरा कौन है? मतलब यह कि पार्वती यदि गदाधर की बात मानने को तैयार न हो तो उसे गदाधर के साथ-साथ न्याय, धर्म, समाज सबका सामना करना पड़ेगा।

पार्वती अपनी विषम परिस्थिति को अच्छी तरह समझती थी। इसी से किसी दूसरे के सामने अपना



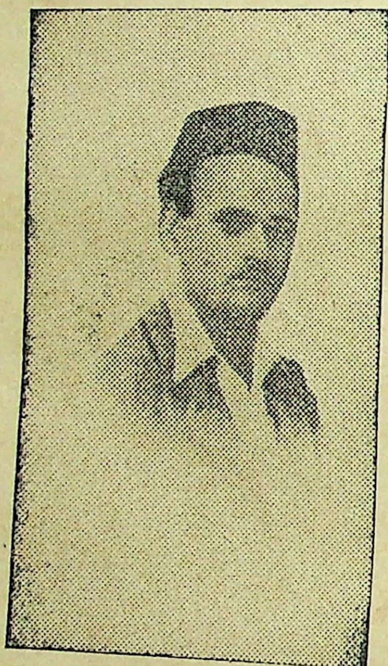
श्री० जॉर्ज लुईस

आप बम्बई के सर्व-प्रथम क्रिश्चियन हैं, जिन्हें सत्याग्रह के सम्बन्ध में हाल ही में कारावास-दण्ड दिया गया है।

दुखड़ा रोना उसने व्यर्थ समझा। जब क्लेश असह्य हो जाता था, तो रात के सन्नाटे में अपनी टूटी चारपाई पर लेट, वह कलेजा फाड़ कर रो लेती थी। उस समय उसे जान पड़ता था जैसे उसकी माँ उसे धीरज बँधा रही है—उसके आँसू पोंछ रही है। इससे उसे बड़ी शान्ति मिलती थी।

आक्रमण पर आक्रमण हुए, पर पार्वती अचल रही। गदाधर के सारे उपाय निष्फल हुए। प्रेम, प्रलोभन, भय—कोई भी पार्वती को डिगा न सका। विरोध और विलम्ब ने गदाधर की वासना को और भी तीव्र कर

दिया। जिसकी प्रबल वासना का शिकार ब्राह्मण-क्षत्रिय से लेकर चाण्डाल तक कितने ही परिवार की युवतियाँ बन चुकी हैं, भला उसके लक्ष्य से पार्वती बच निकलेगी? जो गाँव भर की युवतियों के सतीत्व पर अपना एकमात्र अधिकार समझता है, भला उसके विरुद्ध पार्वती क्रान्ति की आवाज़ उठावेगी? यौवन-पुष्प की प्रथम कली तो सदा से गदाधर-देवता पर चढ़ती आ रही है। पार्वती क्या इस प्रतिष्ठित नियम को भङ्ग कर देगी?



श्री० जी० बी० पटवर्द्धन

आप अहमदनगर के सुप्रसिद्ध वकील हैं, जिन्हें करबन्दी आन्दोलन को प्रोत्साहित करने के अपराध में ३ मास की सख़्त क़ैद की सज़ा दी गई है।

लम्बी-लम्बी पाग वाले, तिलक-चन्दन वाले, बड़ी-बड़ी मूँछों वाले जिसके आगे कुत्तों की तरह लोटते हैं, दरिद्र पार्वती क्या उसके सामने अभिमान से खड़ी रहेगी? गदाधर के लिए यह असह्य हो उठा। उसने बड़े ही निर्दय मार्ग का अवलम्बन किया।

अँधेरी रात थी। भादों का महीना था। मेघ घिर आए थे, जिससे अँधेरा और भी गहरा हो गया था। पार्वती और मुन्नू, दोनों पास ही पास सो रहे थे। मुन्नू चैन की नींद ले रहा था, पर पार्वती को नींद कहाँ? वह कभी अपने विधवापन की बात सोचती, कभी माँ के आदेश की। माँ की याद आते ही उसका हृदय टूक-टूक हो जाता और भीतर ही भीतर यह आवाज़ निकल पड़ती—"माँ, क्या तू मेरे संग्राम को देख रही है? माँ, ऐसे समाज में मुझे तूने क्यों छोड़ा? यदि विधवापन का भार सौंपा था, तो आत्म-हत्या की आज्ञा दी होती। अब मुन्नू का भार सर पर लेकर मैं आत्महत्या कैसे करूँ? यह कैसी कठिन परीक्षा है, माँ?" उसका वक्षःस्थल आँसुओं से भीग जाता। पर गदाधर की सूरत ध्यान में आते ही उसके रोम-रोम से घृणा और विरोध की ध्वनि निकलने लगती थी। उसका सारा मोह दूर हो जाता और उसका अभिमान फिर सौगुना होकर जाग्रत हो उठता था।

वह इसी उधेड़-बुन में पड़ी थी कि उसे कुछ खटका सुनाई दिया। कान लगा कर सुना, जैसे कोई किवाड़ खिसका रहा है। फिर कई आदमियों के पाँवों की आहट मालूम हुई। धीरे-धीरे उसे मालूम हुआ कि कोई उसके काँसे-पीतल के बर्तन चुरा रहा है। मुन्नू की नींद टूट गई। उसने पार्वती के कान में कहा—"दीदी, चोर है। क्या मैं चिल्लाऊँ?" पार्वती ने उसका मुँह अपनी हथेली से दबा दिया। चोर अपना काम करके बेखटके चले गए।

तड़के उठ कर पार्वती ने देखा कि घर में कोई सामान नहीं बचा। उसने मुन्नू से कहा—"देखना किसी से कहना मत कि मेरे घर चोरी हुई है।" इसके बाद वह सीधे मङ्गल के घर गई और सारा हाल कह सुनाया और कहा—"मङ्गल चाचा, पुलिस में रपट लिखवाने से क्या लाभ? और भी फ़ज़ीता उठाना पड़ेगा।" मङ्गल भी सहमत हो गया और अपने घर से कुछ बर्तन और भोजन का सामान पार्वती के घर पहुँचा गया।

शाम को गदाधर का अन्तरङ्ग मित्र काली, पार्वती के पास आया, और बोला—आपके घर चोरी हो गई, यह सुन कर बाबू साहब को बड़ा दुःख हुआ है। उन्होंने कहा है कि जहाँ तक हो सकेगा, वे चोरी का पता लगावेंगे।

पार्वती ने कहा—मेरे घर चोरी हुई, यह बाबू साहब को कैसे मालूम हुआ?

"तो क्या यह झूठी बात है ?"

"झूठ हो या सच, बाबू साहब से कह देना कि जिसका धन था, वह ले गया। जो मेरा है वह मेरे पास है। वे व्यर्थ चिन्ता न करें।"—इतना कह कर पार्वती घर के भीतर चली गई।

४

अब पार्वती का दिन बीतना कठिन हो गया। गाँठ में पैसे नहीं। गदाधर की दया से खेत का नाज खेत में ही लुट जाता है। ग़रीब मङ्गल की बिसात ही क्या, कि मदद कर सके? मुन्नू अब तेरह-चौदह का हुआ। चाहे तो कुछ कमा सकता है, पर पार्वती उसके पढ़ने में बाधा डालना नहीं चाहती।

वहाँ से चार-पाँच कोस दूर एक गाँव में मिडिल स्कूल है। पार्वती ने मुन्नू को उसी गाँव में भेज दिया। वह स्वयं घर पर रह कर धान कूटने और आटा पीसने का काम करने लगी। वह दिन भर काम करती, शाम को कुछ रूखा-सूखा खा लेती और रात भर अपने बुरे दिन की बातें सोचा करती। महीने भर में वह जो कुछ बचा सकती, अपने भाई को दे आती थी। मुन्नू जब पार्वती की फटी साड़ी देखता तो कहता—"तुम्हारी साड़ी तो फट गई दीदी। मेरी धोती क्यों नहीं ले लेतीं?" पार्वती उसकी बात हँसी में टाल देती और कहती—"भैया, तुम्हें स्कूल जाना पड़ता है। दस भले आदमियों में बैठना पड़ता है। घर में मुझे देखने कौन आवेगा?"

गदाधर के प्रभाव से पार्वती का कूटने-पीसने का धन्धा भी बन्द होने लगा। गाँव भर में बस एक ही व्यक्ति—गोपीकान्त पाण्डे—ऐसे थे, जिन पर गदाधर की नहीं चली। मङ्गल उनके घर से धान, गेहूँ, चना ढोकर पार्वती के घर पहुँचा जाता और कुट-पिस जाने पर उन्हें दे आता था।

इस प्रकार ज्यों-त्यों करके पार्वती अपना जीवन बिता रही थी, कि एक नया वज्रपात हुआ। एक दिन रामू कहार ने आकर सूचना दी कि पार्वती की ज़मीन बाक़ी लगान में नीलाम हो गई और गदाधर के आदमियों ने खेत में लगे हुए हरे धान काट गिराए! मङ्गल बहुत रोया-पीटा, पर उन लोगों ने एक न सुनी। यह समाचार सुन कर पार्वती के मुँह से एक शब्द भी न निकला, पर आँखों से आँसुओं की धारा बह चली।

वह इसी दशा में बैठी अपनी माता की शान्तिमयी मूर्ति का ध्यान कर रही थी, कि मङ्गल रोता-पीटता उसके सामने आया। पार्वती ने मङ्गल का हाथ पकड़ा, उसके आँसू पोछे और धीरज बँधाते हुए कहा—मङ्गल चाचा, तुम इस अदनी सी बात के लिए इतने अधीर क्यों होते हो? मुन्नू और तुम्हारी ज़िन्दगी चाहिए। ऐसी कितनी ज़मीन हो जायँगी।

मङ्गल ने कुछ शान्त होकर कहा—बेटी, तुम विश्वास नहीं करोगी। पर मैं साल-साल लगान चुकाए



श्री० नरायनदास मेघजी

आप घाटकोपर कॉङ्ग्रेस कमिटी के २० वर्षीय 'डिक्टेटर' हैं। आप सुप्रसिद्ध सेठ मेघजी बल्लभदास के पुत्र-रत्न हैं।

जाता था। गदाधर बाबू किसी को रसीद तो देते ही नहीं। मैं क्या जानता था, कि वे इतने बड़े आदमी होकर ऐसा विश्वासघात करेंगे?

"मैं सब समझती हूँ, चाचा! तुम व्यर्थ शोक मत करो। तुम पर मेरा अविश्वास होगा तो भगवान के सामने मैं कौन सा मुँह लेकर जाऊँगी? जो भाग्य में लिखा था, सो हो गया। अब आगे की चिन्ता करो।"

मङ्गल यह कह कर चुप हो गया—हा! न जाने मेरे

किस पाप से बेचारी ब्राह्मणी के बाप-दादे की भी रास चली गई।

सहानुभूति तो हृदय की वस्तु है। पर मुँह से सलाह देने वालों की कमी नहीं थी। किसी ने कहा—"गदाधर बाबू के पास जाकर आरज़ू-मिन्नत करो।" किसी ने कहा—"ज़मींदार की नज़र पर चढ़ना अच्छा नहीं होता। उसे ख़ुश करके अपना काम निकाल लेना चाहिए।" रमनी दाई बड़ी समवेदना के साथ बोली—"देखो पार्वती! क्यों अपने ही हाथों अपना सत्यानाश कर रही हो? ज़रा हँस कर दो बातें करने से ही गदाधर बाबू प्रसन्न हो जायँगे। वे तो प्रेम के भूखे हैं। नाहक़ रार बढ़ाने से क्या लाभ? फिर अवसर पड़ने पर तो लोग गदहे को भी बाप बनाते हैं। भीतर से न सही, ऊपर से ही प्रेम का भाव दर्शाने में तुम्हारा क्या बिगड़ता है?" पर यह किसे मालूम था कि पार्वती की दुनिया कितनी ऊँची है। वह सबकी बातें चुपचाप सुन लेती। किन-किन बातों का जवाब दे? किसका-किसका मुँह पकड़े?

बेचारा मङ्गल इन रहस्यों को क्या जाने? गदाधर के पास जाकर उसने उसके पाँव पकड़े, गिड़गिड़ाया, बहुत ही रोया-धोया। पर अन्त में बड़ी ही बुरी दशा में गदाधर की कचहरी से लौटा। जिस समय वह पार्वती के सामने आया, उस समय उसका मुँह ग़ुस्से से लाल हो रहा था, आँखों में आँसू छलछला आए थे, होठ फड़क रहे थे, सारा शरीर काँप रहा था। उसने आते ही बकना शुरू किया—"ऐसे नीच आदमी का मुँह देखना भी पाप है। मैं गया उसके सामने दुखड़ा रोने और उसने ऐसी बात कही कि मेरा देह में आग लग गई। अफ़सोस कि उस समय मेरी लठिया नहीं थी, नहीं तो इस बुढ़ापे में भी उसको रस का मज़ा चखा देता। ओह! मेरे सामने ऐसी बात बोल कर बच गया!! ब्राह्मणी विधवा के बारे में वह ऐसी बात बोल गया और उस पापी की जीभ न गल गई?"

पार्वती ने बड़े ही शान्त भाव से कहा—मैं जानती हूँ मङ्गल चाचा, कि गदाधर किस राह पर जा रहा है। पर तुम नाहक़ ग़ुस्सा करके क्यों फ़साद मोल लेते हो?

"तुम निश्चिन्त रहो, बेटी! इस बुड्ढे मङ्गल के रहते तुम्हारा कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता। अभी मैं पण्डित गोपीकान्त के यहाँ जाता हूँ और उनसे सारा हाल कहता हूँ। वह भी एक ही मर्द है। बचा को पूरा पाठ पढ़ा कर छोड़ेगा।

पार्वती ने घबरा कर कहा—चाचा, मुझ पर जो बीतेगी झेल लूँगी। तुम क्यों बैठे-बैठाले रार मोल लेते हो? तुम ख़ुद भी विपद में पड़ोगे और पण्डित जी को भी फँसाओगे। मुझ पर दया करो, चाचा! मैं नहीं चाहती कि मेरे लिए तुम लोग आग में कूदो।

पर अभी मङ्गल को कौन रोक सकता था? उसका शरीर जल रहा था। हृदय में आँधी चल रही थी। वह पल भर में बिजली की तरह वहाँ से ग़ायब हो गया।

५

कातिक का महीना था। थोड़ी-थोड़ी सर्दी पड़ रही थी। तड़के उठ कर पार्वती ने हाथ में डलिया ली और ठाकुरबारी के गौशाले में ताज़ा गोबर उठाने चली। उसकी दीन दशा देख कौन कह सकता था, कि यह वही पार्वती है? शरीर दुबला हो गया था। कपड़े चिथड़े-चिथड़े हो गए थे। कोमल पाँवों में बिवाई फट गई थी। बालों में महीनों से तेल नहीं पड़ने से लटें बँध गई थीं। फिर भी वह दीप-शिखा की तरह एक रूप से जल रही थी।

वह गोबर उठाने झुकी ही थी, कि पीछे से आवाज़ आई—"पार्वती"। उसने चौंक कर पीछे देखा, गदाधर खड़ा था। पार्वती का सारा शरीर काँप गया। छाती धक्-धक् करने लगी उसने मुँह फेर लिया। गदाधर ने फिर कहा—पार्वती इस तरह नाराज़ क्यों होती हो?

पार्वती झोंक से पीछे मुड़ी और झुँझला कर बोली—तुम क्यों मेरे पीछे पड़े हो? मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है?

इतना कहते-कहते पार्वती का गला भर आया। गदाधर बोला—तुमने तो मेरा बहुत कुछ बिगाड़ा है पार्वती। मेरा राजपाट, मेरी जान, सब कुछ तुम पर निछावर है।

"मुझसे ऐसी बातें करने में तुम्हें तनिक भी लज्जा नहीं आती?"

"जहाँ जान के लाले पड़े हैं, वहाँ लज्जा से कैसे काम चलेगा पार्वती?"

"तुम कायर हो, जो एक दीन अबला पर इस तरह अत्याचार कर रहे हो।"

"मैं अबला पर अत्याचार कर रहा हूँ? मैं तो अबला को सिर-आँखों पर बैठाना चाहता हूँ, अपनी पटरानी बनाना चाहता हूँ।"

पार्वती ने चिल्ला कर कहा—मैं थूकती हूँ तेरी धन-दौलत पर, और तेरी सूरत पर!

इतना कह कर पार्वती वहाँ से चली। उसे जाते देख गदाधर ने अट्टहास करके कहा—आज तुम मेरे फन्दे से नहीं बच सकतीं। और आगे बढ़ कर पार्वती का हाथ थाम लिया। पार्वती चीख़ उठी। उसकी आँखों के सामने अँधेरा छा गया। रोम-रोम से जैसे बिजली की लपट निकलने लगी। वह हाथ छुड़ाने की प्राणपन से चेष्टा करने लगी।

गदाधर दूसरे हाथ से पार्वती की कमर पकड़ना ही चाहता था, कि किसी ने ज़ोर से आवाज़ दी—ख़बरदार जो हाथ आगे बढ़ाया!

उसने पीछे घूम कर देखा, गोपीकान्त पाण्डे खड़े हैं। गदाधर को जैसे काठ मार गया। वह अलग जा खड़ा हुआ।

गोपीकान्त ग़ुस्से से तिलमिला उठे और उसकी ओर देख कर बोले—तुझे शर्म नहीं आती कि एक अनाथ विधवा पर अत्याचार करना चाहता है? नीच! पाजी!! दुनिया को धर्म का ढोंग दिखाता फिरता है!

कुछ देर तक सन्नाटा रहा। फिर गदाधर ने बहुत साहस करके कहा—इसमें हाथ डालने का तुम्हें क्या अधिकार है?

"नीच! पापी! तू मेरा अधिकार पूछता है? क्या तुझमें नाम को भी आदमीयत नहीं रही? ख़ैर, तुझे अधिकार समझाने का मुझे समय नहीं। और न मुझे आशा है कि तुझ-सा पाखण्डी मनुष्य का अधिकार समझ सकता है।"

गदाधर के मुँह से एक शब्द भी नहीं निकला। गोपीकान्त ने पार्वती से कहा—छोड़ो इस पाप के कीड़े को। चलो बहिन, मैं तुम्हें घर पहुँचा दूँ।

गोपीकान्त के पीछे-पीछे पार्वती चल दीं। गदाधर पत्थर की मूर्ति की नाईं खड़ा रह गया।

६

इस घटना के दूसरे ही दिन से सैकड़ों मनगढ़न्त क़िस्सों का प्रचार होने लगा। गदाधर का तो कोई नाम भी नहीं लेता। सभी की ज़बान पर पार्वती और गोपीकान्त के गुप्त-प्रेम की बात थी। युवा-वृद्ध, औरत-मर्द सब के सब एक दूसरे से बड़े आश्चर्य के साथ कहते—कहीं ऐसा भी सुना है? भला विधवा का ऐसा करम? राँड़ ब्राह्मणी होने को मरी थी। बीसों आदमी तो अपनी आँख देखी कहते और बाक़ी सुनी-सुनाई, पर पार्वती के कुकर्म की कहानी पर अविश्वास कोई नहीं करता।



श्री० के० के० सम्पत, एम० ए० (ऑक्सन)

आप बिलेपार्ले (बम्बई) के ८वें 'डिक्टेटर' हैं।

यह बात पार्वती के कानों तक भी पहुँच गई। उसे अपनी चिन्ता तो लेशमात्र भी नहीं थी। पर गोपीकान्त के लिए उसे दुःख था अवश्य। वह सोचती थी—मैं कितनी अभागिनी हूँ। जिस पर मेरी छाया पड़ती है, वही विपद में फँस जाता है। मङ्गल बेचारा मेरे ही पीछे मटियामेट हो गया। अब गोपीकान्त की बारी है।

गोपीकान्त ने जब सारा हाल सुना तो क्रोध, घृणा, क्षोभ, करुणा, आदि कितने ही भाव एक साथ उठ कर उनके हृदय को मथने लगे। गोपीकान्त एक शिक्षित युवक थे। उनके दिमाग़ में समाज-सुधार के कितने ही विचार। नित्य चक्कर लगाया करते थे। ग्राम्य-जीवन को

सुखमय बनाने के कितने ही उपाय वे नित्य सोचा करते थे। उनकी आत्मा उच्च थी, विचार पवित्र थे, प्रवृत्ति परोपकार की थी। पर इस भूकम्प ने उनकी सारी भावनाओं को हिला दिया। वह समझ गए, कि यह चक्र उन्हीं पर चलाया जा रहा है। सम्भव है, कि उनका अब गाँव में रहना भी कठिन हो जाय। पर गोपीकान्त ऐसी धातु के बने हुए नहीं थे, जो आसानी से झुक जाय। उन्होंने निश्चय कर लिया, कि इस बवण्डर का सामना करना ही पड़ेगा।

कर्त्तव्य-मार्ग निश्चय करना बड़ा ही कठिन काम है। गोपीकान्त ने कई रातें जाग कर बिताईं, पर यह ठीक नहीं कर सके कि पार्वती की समस्या किस प्रकार हल हो? राक्षस गदाधर से उसकी रक्षा कैसे हो। अन्त में इसी अनिश्चित अवस्था में वे पार्वती के घर गए। पार्वती ने बड़े ही प्रेमभाव से उन्हें भीतर लाकर बिठाया। गोपीकान्त आसन पर बैठते ही पार्वती से बोले—मुझसे इस प्रकार मिलने में तुम्हें समाज का भय नहीं होता पार्वती?

पार्वती ने रूखी हँसी हँस कर कहा—यदि आप अब भी मुझे पहचान न सके पाण्डे जी, तो इसमें मेरा ही दुर्भाग्य है।

"तुम्हें पहचान सका हूँ पार्वती। इसी से आज एक बड़े कठिन प्रश्न पर तुम्हारा विचार जानने तुम्हारे पास आया हूँ। मेरी बात स्वीकार नहीं होने पर, क्या मुझे क्षमा कर सकोगी?"

"आप क्षमा की पूछते हैं? आपके उपकार का बदला क्या मैं सौ जन्मों में भी चुका सकती हूँ?"

"तुमने सारा हाल तो सुना ही होगा। इस आग को शान्त करने का कोई उपाय तुमने सोचा है?"

"हाँ, सोचा है। मेरी आहुति पाकर यह आग शान्त हो जायगी।"

"यह मैं नहीं चाहता।"

"तो फिर आप ही कोई उपाय ढूँढ़ निकालिए।"

"तुम क्या मुझे ग्रहण कर सकोगी?"

थोड़ी देर तक सन्नाटा छाया रहा। पार्वती की दोनों आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी। गोपीकान्त ने फिर कहा—मैं जानता हूँ पार्वती, कि मैं तुम्हारी जैसी सती के योग्य नहीं। फिर भी क्या मुझसे विवाह कर सकोगी?

पार्वती चुप रही!

"विधवा-विवाह के विचार को शायद तुम पसन्द नहीं करतीं। पर यह विश्वास मानो, कि इसमें कोई पाप नहीं है।"

"मैं जानती हूँ कि इसमें कोई पाप नहीं है। मूर्ख होने पर भी दुनिया की ठोकरों ने मुझे पाप और पुण्य का सच्चा रूप दिखा दिया है।"

"तो फिर मेरी बात स्वीकार है?"

"इस जीवन में नहीं।"

"कारण?"

"माँ का आदेश!"

"तो फिर तुम्हारे लिए क्या उपाय होगा?"

"भगवान मालिक है।"

"मैं तो कॉलेज खुलते ही काशी चला जाऊँगा। फिर तुम्हारी रक्षा कैसे होगी?"

"उसका उपाय मैं कर लूँगी, आप उसकी चिन्ता न करें।"

ऐसे समाज में सतीत्व-रक्षा बड़ा कठिन है पार्वती!"

"हिन्दू विधवा इस अधम समाज में रह कर भी अपने सतीत्व की रक्षा करना जानती है।"

इस दरिद्र विधवा की तेजस्विता और आत्मबल देख कर गोपीकान्त मूक हो गए। आगे कुछ कहने का साहस न हुआ। थोड़ी देर के बाद लम्बी साँस लेकर बोले—अच्छा, तो मैं जाता हूँ पार्वती! अवसर पड़ने पर मुझे अवश्य याद करना।

पार्वती ने आँखों में आँसू भर कर कहा—पाण्डे जी, जहाँ तक हो सके शान्ति से काम लीजिएगा, जिसमें अधिक कष्ट न उठाना पड़े।

गोपीकान्त हृदय पर बहुत बड़ा बोझ लेकर पार्वती के घर से विदा हुए।

७

पार्वती मुन्नू को गाँव वालों के कुचक्र से सदा दूर रखने की चेष्टा में रहती थी। इसी से मुन्नू को गदाधर के अत्याचार का कुछ भी हाल मालूम न था। उसके लिए संसार बड़ी शान्ति से चल रहा था। पर इस बार वह गदाधर के जाल से बच न सका। गाँव में प्रवेश

करते ही उसे गोपीकान्त के गुप्त-परिणय की कहानी लोग गढ़-गढ़ कर सुनाने लगे। वह सुन कर सन्न रह गया। पार्वती को वह देवी समझता था। उसी के लिए ऐसी बातें? पर कहने वालों ने इस ढङ्ग से कहा कि सरल स्वभाव का मुन्नू इस घोर कलङ्क पर अविश्वास नहीं कर सका।

मुन्नू जहाँ जाता, वहाँ यही चर्चा होती। कोई कहता—मैं होता तो गोपीकान्त का सिर उतार लेता। कोई कहता—पार्वती मेरी बहिन होती तो विष खिला कर मार देता। मुन्नू का कोमल हृदय ऐसी बातें सुन-सुन कर क्षोभ-परिताप से क्षत-विक्षत हो जाता था। घृणा और अपमान से वह मूर्छित सा हो जाता था। पर घर आकर पार्वती का मुख देखता तो ऐसी कुत्सित बातों पर विश्वास करने का उसका जी नहीं चाहता था। इस प्रकार उसका चित्त निरन्तर ज्वार-भाटा से पीड़ित होने लगा।

पार्वती के साथ उसका व्यवहार दिन-पर-दिन रूखा होने लगा। अब वह पार्वती के पास अधिक नहीं बैठता और न अधिक बातें करता। बात-बात पर खीझ उठता और पार्वती को कभी-कभी खरी-खोटी भी सुना देता था। पार्वती समझती थी, कि लिखने-पढ़ने में अधिक परिश्रम पड़ने से मुन्नू का स्वभाव कुछ गर्म हो गया है। वह कल्पना भी नहीं कर सकती थी कि मुन्नू के ऊपर भी इस अपवाद का असर हो सकता है।

जो ताप मुन्नू के हृदय में धीरे-धीरे इकट्ठा हो रहा था, वह एक मामूली सी ठोकर खाकर फूट पड़ा। एक दिन पार्वती ने बड़े प्यार से पूछा—भैया मुन्नू, अब तुम्हारे मिडिल पास करने में कितने दिन हैं?

मुन्नू ने बड़ी रुखाई से जवाब दिया—एक वर्ष।

"ओह! एक वर्ष! मैं सोचती थी कि तुम जल्दी पास कर जाते तो तुम्हें पाण्डे जी के पास भेज कर मैं निश्चिन्त हो जाती।"

मुन्नू की भौंहों पर बल पड़ गया। वह बोला—कौन पाण्डे जी?

"वही पाण्डे गोपीकान्त।"

मुन्नू एकाएक चिल्ला उठा—उसका नाम मेरे सामने मत लो।

पार्वती उसकी चिल्लाहट से घबरा गई। वह धीमी आवाज़ में बोली—क्यों? इसमें दोष ही क्या है?

"दोष तुम मुझ ही से पूछती हो? कुल में कलङ्क लगा कर भी तुम्हें दोष नहीं दीखता?"

पार्वती के देह से जैसे प्राण निकल गए। वह सिर पटक कर ज़मीन पर बैठ गई। कुछ सँभल कर उसने कहा—मुन्नू, क्या तुम इस पर विश्वास करते हो?

"सारी दुनिया एक मुँह से जिस बात को कह रही है, उस पर विश्वास न करूँ?"



श्री० शिवलाल दीपचन्द

आप बम्बई के 'सी' वार्ड के 'डिक्टेटर' हैं। आप पटना के निवासी हैं।

पार्वती का गला भर आया। उसने भर्राई हुई आवाज़ में कहा—मुन्नू, क्या तुम मेरी बात सुनोगे?

"मैं अब कुछ नहीं सुनना चाहता। मैं नहीं चाहता कि गुस्से में आकर कुछ कर बैठूँ।"

इतना कह, मुन्नू बाहर जाने लगा। पार्वती ने बड़े ही दृढ़ स्वर से पुकारा—मुन्नू! क्या मेरी बात नहीं सुनोगे? पर मुन्नू नहीं लौटा।

"अच्छा, तो जाओ!" कह कर पार्वती वहाँ से उठ गई।

* * *

शाम को मुन्नू घर लौटा। वह चोर की तरह घर में घुसा। उसे भय था कि कहीं पार्वती पर नज़र न पड़ जाय। पर पार्वती कहीं नहीं दीख पड़ी। जिस पार्वती को क्षण भर पहले वह देखना नहीं चाहता था, उसी के लिए उसका चित्त अब बेचैन होने लगा। उसकी आँखें बड़ी बेकली के साथ पार्वती को ढूँढ़ने लगीं। उसने देखा कि एक चटाई पर पार्वती पड़ी हुई है। वह उलटे पाँव लौट पड़ा। पर जी न माना, वह फिर पार्वती के निकट गया। देखा, चेहरा काला हो गया है। गालों पर आँसू के दाग़ पड़े हुए हैं। मुन्नू का कलेजा धड़कने लगा। उसने दौड़ कर पार्वती का बदन छुआ तो बिलकुल ठण्ढा पाया। नाड़ी पकड़ी—एकदम शान्त। कलेजे पर हाथ रक्खा—धड़कन बन्द। पास ही एक खुली हुई पुड़िया पड़ी थी। देखते ही मुन्नू के होश उड़ गए। मुँह से एक चीख़ निकल पड़ी। वह बदहवास मङ्गल के यहाँ दौड़ गया। मङ्गल ने आकर जब पार्वती की दशा देखी तो पछाड़ खाकर गिर गया। रोते-रोते उसने मुन्नू से गदाधर का पाशविक अत्याचार और गोपीकान्त की उदारता का सारा हाल कह सुनाया।

मुन्नू मङ्गल की बातें सुन कर व्याकुल हो उठा। मङ्गल के गले से लिपट कर रोते-रोते उसने कहा—मङ्गल चाचा, तुम लोगों ने क्यों मुझे धोखे में रक्खा? दीदी ने मुझसे सच्चा-सच्चा हाल क्यों न बताया चाचा? हाय! आज मैं अपनी दीदी का हत्यारा हो गया, चाचा।

मङ्गल ने मुन्नू को सान्त्वना देते हुए कहा—चुप रहो, मुन्नू! तुम्हारी दीदी स्वर्ग की देवी थी। इस काली दुनिया में उसके योग्य स्थान नहीं है।

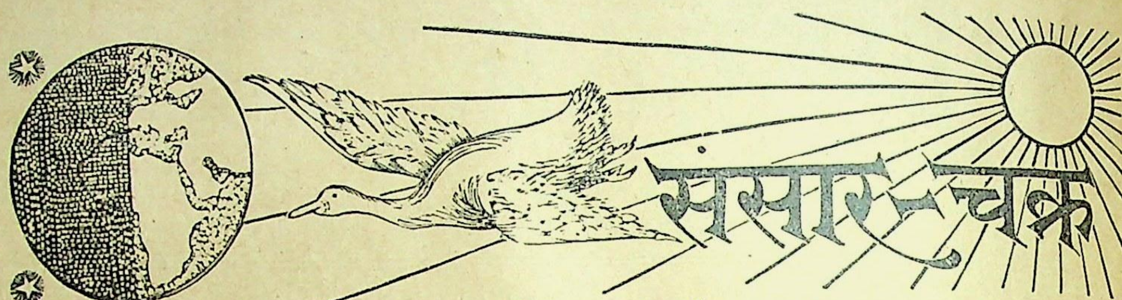
माता की अनुभूति

[श्री० केदारनाथ जी मिश्र 'प्रभात']

जब मैं तुम्हें चूम लेती हूँ
बड़े प्यार से हे सुकुमार!
विश्व प्रतीत मुझे तब होता
है मधु का अक्षय भण्डार!
उठती गूँज तान ममता की,
हो जाता विस्मृत संसार!
तभी जान मैं पाती हूँ है—
फूलों में क्या रस, क्या सार?

करती हूँ शृङ्गार तुम्हारा
जब सहर्ष मैं हे सुकुमार!
विश्व प्रतीत मुझे तब होता
शोभा का अक्षय भण्डार!
तभी जान पाती हूँ—क्यों
इतना सौन्दर्य भरा अभिराम!
किरणों में, तारों में, शशि में,
मोहक सुमनों में छवि-धाम!

जब मैं मुग्ध अतृप्त दृगों से
तुम्हें देखती हे सुकुमार!
विश्व प्रतीत मुझे तब होता
स्वर्गिक दृश्यों का भण्डार!
तभी जान पाती हूँ मैं उस—
मधुमय आकर्षण का हाल।
बाल-प्रकृति के अङ्गों में जो
छिप कर आता प्रातःकाल।



[श्री० मुन्शी नवजादिकलाल जी श्रीवास्तव]

आयलैंण्ड का स्वाधीनता-संग्राम

प्राचीन-काल में, जिस समय आयलैंण्ड में डेन जाति के समुद्री डाकुओं ने उत्पात मचा रक्खा था, तब से लेकर आज तक आइरिश जाति स्वतन्त्रता के लिए लगातार संग्राम करती आई है। इसलिए एक शब्द में, अगर आइरिश इतिहास को स्वाधीनता का इतिहास कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी।

ईसा की आठवीं शताब्दी में सब से पहले आयलैंण्ड को विदेशियों का मुक़ाबिला करना पड़ा था। उसके बाद से इस वीर जाति ने जितने अत्याचारों का सामना किया है, वह इतिहास के पाठकों से छिपा न होगा। मातृ-भूमि की स्वाधीनता की रक्षा के लिए आइरिशों को जितना रक्त बहाना पड़ा है, उतना शायद बहुत कम जातियों ने बहाया होगा। पर-राज्य-लोलुप निर्दय शत्रुओं ने, प्रायः एक हज़ार वर्षों से इस जाति को विश्राम नहीं लेने दिया है। ऐसे-ऐसे अमानुषिक अत्याचार इन पर हुए हैं, जिनका ठिकाना नहीं। परन्तु इतने पर भी इस जाति ने शान्ति से कभी पराधीनता स्वीकार न की। पराधीनता-युग के आरम्भ से लेकर अन्त तक न तो स्वयं चैन लिया और न अपने विजेताओं को चैन लेने दिया है।

सब से पहले डेन जाति के डाकुओं ने आयलैंण्ड पर अधिकार जमाया। इनका मुक़ाबिला ब्रियन-ब्रू नाम के एक पन्द्रह वर्ष के आइरिश बालक ने किया था। इस युद्ध में आइरिश हार गए; आयलैंण्ड डेनों के क़ब्ज़े में चला गया। परन्तु वीर-बालक ब्रियन ने उनकी वश्यता स्वीकार न की। यह केवल अपने अट्ठारह साथियों के साथ घोर वनों में रह कर मातृ-भूति को बन्धन-मुक्त करने की चेष्टा करने लगा। वीर ब्रियन मौक़ा पाते ही अपने शत्रुओं पर बिजली की तरह टूट पड़ता और मार-पीट कर फिर घने जङ्गलों में छिप जाता। डेनों ने उसे ढूँढ़ने की बड़ी-बड़ी चेष्टाएँ कीं। आयलैंण्ड में वनों का झाड़ी-झाड़ी टटोल डाला, पर ब्रियन को न पा सके। अन्त में ब्रियन ने शत्रुओं के दिलों पर ऐसा आतङ्क जमाया कि उनके लिए सुख से सोना तक हराम हो गया। ब्रियन केवल समय-समय पर आक्रमण करके उन्हें भयभीत ही नहीं रखता था, वरन् धीरे-धीरे उसने एक सेना का भी सङ्गठन कर डाला और एक दिन सुयोग पाकर युद्ध-घोषणा कर दी। डेन भाग खड़े हुए और आयलैंण्ड फिर आइरिशों के क़ब्ज़े में आ गया।

परन्तु विश्वनियन्ता की इच्छा आयलैंण्ड को स्वतन्त्र रहने देने की न थी, इसलिए डेनों के अत्याचारी चङ्गुल से छुटकारा पाते ही उसे अङ्गरेज़ों के कठोर शिकञ्जे में फँस जाना पड़ा। जिस तरह आग लगने पर घर धीरे-धीरे जलता है, उसी तरह अङ्गरेज़ों के अत्याचार की आग से आयलैंण्ड भी जलने लगा। दल के दल अङ्गरेज़ इङ्गलैण्ड से आकर आयलैंण्ड में बसने लगे और ऐसे-ऐसे अत्याचार आरम्भ हुए, जिनका ठिकाना नहीं। यहाँ तक कि अगर कोई अङ्गरेज़ किसी आइरिश को मार भी डालता तो वह अपराधी नहीं समझा जाता था। आइरिशों को 'ज़र-ज़मीन' के झञ्झटों से मुक्त करना ही अङ्गरेज़ों का एकमात्र उद्देश्य था। इसलिए वे निःसङ्कोच भाव से जाल-फ़रेब, अन्याय और अविचार द्वारा उन्हें बल-हीन बनाने लगे। धीरे-धीरे अत्याचार की मात्रा पराकाष्ठा तक पहुँच गई। इसका परिणाम यह हुआ कि सारे आयलैंण्ड में विद्रोह की भीषण आग धधक उठी। अङ्गरेज़ों को अपने देश से निकाल बाहर करने के लिए आइरिशों ने कई दलों की सृष्टि की। सन्

१४१४ ईस्वी से लेकर, सन् १६०७ तक, देश की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए ह्यूग, ओनेल तथा रेड् ह्यूग आदि आइरिश वीरों ने जिस दुर्जय साहस, विक्रम और दृढ़ता से काम लिया था, वह प्रत्येक आइरिश के हृत्पट पर अमिट अक्षरों में अङ्कित है और रहेगा। दुःख है कि इन वीरों को जीते जी सफलता नहीं मिली; मातृ-भूमि को बन्धन-मुक्त देखने की उनकी आन्तरिक अभिलाषा पूरी न हुई, परन्तु उनकी अलौकिक वीरता, उनके असीम साहस और अदम्य उत्साह की कहानी आज भी आइरिशों के दिलों में नव-जीवन का सञ्चार करती है। जिस तरह हम महाराणा प्रताप, दुर्गादास, शिवाजी और गुरु गोविन्दसिंह के लिए गर्व करते हैं, उसी तरह आइरिश भी अपने ह्यूग और ओनेल आदि के लिए गर्व करते हैं।

अङ्गरेज़ विजेता धर्म के पक्के अनुयायी हैं। विजितों के साथ अमानुषिक व्यवहार करने में उन्होंने कभी कृपणता नहीं की है। विजित आयर्लैंण्ड के साथ भी उन्होंने वही अपना चिर-अभ्यस्त व्यवहार आरम्भ कर दिया। स्वनामधन्या रानी एलिज़ाबेथ के ज़माने में आयर्लैंण्ड की छाती पर जो अशान्ति का बीज वपन हुआ था, उसका कटु फल बेचारे आइरिश आज भी चख रहे हैं। कैथलिक आयर्लैंण्ड को सदैव नज़रों के सामने रखने के लिए आयर्लैंण्ड का अलस्टर प्रान्त प्रोटेस्टेण्टों का वास-स्थान बनाया गया। राजनीति-विशारद अङ्गरेज़ों ने पहले ही सोच लिया था, कि अगर किसी समय आयर्लैंण्ड ब्रिटेन के प्रेम-पाश से विमुक्त होने की चेष्टा करेगा, तो सब से पहले उसके शरीर का एक अङ्ग—अलस्टर—ही उसका विरोध करेगा।

ख़ैर, आइरिशों के विद्रोह आरम्भ करते ही अङ्गरेज़ों ने भी द्विगुण अत्याचार आरम्भ कर दिया। आइरिशों को उजाड़ कर, उनके स्थान पर अङ्गरेज़ बसाए जाने लगे। आयर्लैंण्ड का एक प्रान्त आइरिश-शून्य हो गया। न्यायान्याय का विचार छोड़ कर अङ्गरेज़ों ने आयर्लैंण्ड की छाती पर कोदो दलना आरम्भ कर दिया। रानी एलिज़ाबेथ ने नियम बनाया कि आयर्लैंण्ड के गिरजों और स्कूलों में आइरिश भाषा का व्यवहार न होने पाएगा। इसके बाद आयर्लैंण्ड की सभ्यता पर आक्रमण आरम्भ हुआ। आइरिश पोशाक, धर्म और चाल-चलन के विरुद्ध भी ऐसी ही निषेधाज्ञाओं का प्रचार हुआ। आयर्लैंण्ड का इतिहास नए ढङ्ग से लिखा जाने लगा। स्कूलों तथा कॉलेजों में ऐसे ढङ्ग से शिक्षा देने का प्रबन्ध हुआ, जिससे आइरिश बच्चे अपनी जाति को हीन और अङ्गरेज़ों को महान समझना सीखें। अगर कोई इस शिक्षा-प्रणाली का विरोध करता, तो सुयोग्या रानी महोदया के आज्ञानुसार उसकी सारी सम्पत्ति ज़ब्त कर ली जाती और उसके प्राणों के लाले पड़ जाते!



मिस्टर एस० साको

आप हाल ही में जापान की ओर से भारत में एलची (Consul General) नियुक्त हुए हैं।

आयर्लैंण्ड का इतिहास पढ़ने से मालूम होता है कि अङ्गरेज़ों की प्रचलित की हुई शिक्षा-प्रणाली का विरोध करने के लिए, कितने ही आइरिशों को जान से भी हाथ धोना पड़ा था।

विद्रोह और अत्याचार दोनों ही दिन दूनी और रात चौगुनी गति से बढ़ने लगे। अङ्गरेज़ों ने आइरिशों पर इतना कर लादा कि थोड़े ही दिनों में सारे आय-

लैंगड में दरिद्रता और दुर्भिक्ष फैल गया। अङ्गरेज़ों की कृपा से आइरिश जाति का अधःपतन नाना प्रकार से अनिवार्य हो उठा। हज़ारों आइरिश देश छोड़ कर अमेरिका चले गए।

इसके कुछ दिन बाद ही अमेरिकनों ने अपने देश को अङ्गरेज़ों के चङ्गुल से निकाला था। उस समय आइरिश युवक भी चञ्चल हो उठे। उनके मन में बार-



मि० सी० एफ़० ल्यो

आप चीन की प्रजातन्त्र सरकार की ओर से भारत में एलची (Consul General) नियुक्त हुए हैं।

बार यह प्रश्न उठने लगा कि अगर अमेरिका अङ्गरेज़ों को हटा कर स्वाधीन हो सकता है, तो आयलैंगड क्यों नहीं हो सकता। इसलिए उत्साहित होकर उन्होंने 'युनाइटेड आइरिशमैन' (United Irishmen) नाम की एक संस्था क़ायम की। सैकड़ों मुक्तिकामी युवक इस दल में सम्मिलित हुए। दिन-रात इस बात पर तर्क-वितर्क होने लगा कि किस तरह देश को स्वाधीन किया जाए। इसके कुछ दिन बाद ही फ़्रान्सीसी विप्लव आरम्भ हुआ। इसलिए सैकड़ों युवक आइरिश विप्लव-कला का अध्ययन करने के लिए फ़्रान्स चले गए। इसके साथ ही उन्होंने इस बात की भी चेष्टा की कि समय पड़ने पर फ़्रान्स वाले उनकी सहायता करें।

'युनाइटेड आइरिशमैन' का उद्देश्य अङ्गरेज़ों से छिपा न रह सका। फलतः उन्होंने भी भयङ्कर रूप से दमन आरम्भ कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि 'युनाइटेड आइरिश' दल एक गुप्त समिति के रूप में परिणत हो गया। आइरिश नवयुवकों तथा नवयुवतियों ने बड़े उत्साह से समिति के कार्यों में भाग लिया। समिति बड़े ज़ोर-शोर से चलने लगी। सन् १७६९ में एडवर्ड फ़िगरॉल्ड नाम के एक उत्साही सज्जन ने इस समिति में भाग लिया। फ़िगरॉल्ड के अनवरत परिश्रम और चेष्टा से समिति ने बड़ी उन्नति की। इस दल के दूसरे लीडर उल्फ़टन महोदय थे इनकी वाणी, मस्तिष्क और बाहु में विचित्र बल था।

अङ्गरेज़ भी निश्चिन्त न थे। मौक़ा पाकर उन्होंने इस दल के कई प्रमुख नेताओं को गिरफ़्तार कर लिया। यह देख कर समिति के अन्यान्य युवकों ने फ़ौरन विद्रोह आरम्भ कर दिया। अशान्ति की भीषण आग समस्त आयलैंगड में धधक उठी। यद्यपि विप्लवी विजयी न हुए, परन्तु उन्होंने अङ्गरेज़ों से नाकों चने चबवा कर छोड़े। अङ्गरेज़ों की चेष्टा और अन्धाधुन्ध अत्याचार से विप्लव तो दब गया, परन्तु आइरिशों की गुप्त समिति को वे नहीं तोड़ सके। कुछ दिनों के बाद ही वीरवर रॉबर्ट एमेट ने फिर आयलैंगड को जाग्रत किया। उन्होंने अपना यथासर्वस्व बेच कर बहुत सा अस्त्र-शस्त्र संग्रह किया। परन्तु दैव-दुर्विपाक वश इस वीर के मन की आशा मन में ही विलीन हो गई। जिस दिन एमेट ने युद्ध छेड़ने का विचार किया था, ठीक उसी दिन किसी ने उसके अस्त्रागार में आग लगा दी। इसके साथ ही आपस में भी भयङ्कर मतभेद हो गया। कितने ही युवक उच्छृङ्खल हो उठे। समिति वालों की पारस्परिक फूट से अङ्गरेज़ों ने ख़ूब लाभ उठाया। मि० रॉबर्ट तथा उनके अन्य कई साथी पकड़ कर फाँसी पर लटका दिए गए। परन्तु विद्रोह की आग, जो सदियों पहले लग चुकी थी, उसे हज़ार प्रयत्न करने पर भी अङ्गरेज़ बुझा

न सके। थोड़े दिनों के बाद ही आयर्लैंण्ड में कोड़ियों गुप्त समितियाँ स्थापित हो गईं। चारों ओर एक विचित्र जाग्रति फैल गई। गुप्त हत्याओं का बाज़ार गर्म हो उठा। सैकड़ों राज-कर्मचारी तलवार के घाट उतारे गए। यहाँ तक कि गुप्त समिति के वीर विद्रोहियों ने इङ्गलैण्ड जाकर भी अङ्गरेज़ों का ध्वंस करना आरम्भ कर दिया। इसके साथ ही अङ्गरेज़ी भाषा और अङ्गरेज़ी सभ्यता का भी घोर विरोध आरम्भ हुआ। अङ्गरेज़ी को हटा कर उसके स्थान पर आइरिश भाषा का प्रचार करने के लिए पूर्ण उद्योग आरम्भ हुआ। मि० हाइड नाम के एक सज्जन ने जातीय भाषा के प्रचार और विस्तार के लिए 'गेलिक लीग' की स्थापना की। सारे देश में गेलिक भाषा (आयर्लैंण्ड की जातीय भाषा) की चर्चा होने लगी। इस उद्योग का परिणाम भी अच्छा हुआ। देशात्मबोध ख़ूब तरक़्क़ी कर गया। इसी तरह विद्रोह और जाति-गठन में पूरी एक शताब्दी बीत गई। इन सौ वर्षों में देश की स्वतन्त्रता के लिए कितने आइरिश युवक अङ्गरेज़ों के हाथ से मारे गए, उसका ठीक-ठीक हिसाब शायद यमराज के दफ़्तर में ही मिल सकता है। इन्हीं वीरों के रक्त से बनी हुई नींव पर नवीन आयर्लैंण्ड की प्रतिष्ठा हुई है!

नवीन आयर्लैंण्ड के प्रतिष्ठाताओं का परिचय और उनके आदर्श कार्यों का दिग्दर्शन हम आगे चल कर कराएँगे। यहाँ तो हम थोड़े शब्दों में यह बता देना चाहते हैं कि विदेशियों ने अपने स्वार्थ के लिए आयर्लैंण्ड पर कैसे भीषण अत्याचार किए हैं, और आइरिश वीरों ने किस धीरता के साथ उन राक्षसी उत्पीड़नों का सामना किया है। लगातार कई शताब्दियों तक विद्रोह का झण्डा उड़ा कर आइरिशों ने संसार को दिखा दिया है कि आयर्लैंण्ड का शरीर पराधीन होने पर भी उसकी आत्मा कभी पराधीन नहीं हुई थी! इसके ज्वलन्त प्रमाण सन् १६४१ का कैथलिक विद्रोह, सन् १६८९ का सारसफ़िल्ड ग़दर, सन् १७८२ का फ़्लड (Flood) और ग्रटन (Grattan) का नियम-तान्त्रिक आन्दोलन, १७९८ का थिओबोल्ड उल्फ़स का मचाया हुआ विद्रोह, १८०३ का रॉबर्ट इमेट का विद्रोह, १८४८ का विलियम स्मिथ ओब्रियम का विद्रोह, १८६७ में फ़िनियन-मण्डली की लाल क्रान्ति आदि इतिहास-प्रसिद्ध घटनाएँ हैं।

यद्यपि आइरिशों ने, गत शताब्दियों में अपनी मातृ-भूमि को बन्धन-मुक्त करने के लिए जितने उद्योग किए, वे सभी विफल हुए, परन्तु इससे उनके अदम्य उत्साह को धक्का नहीं लगा।

इङ्गलैण्ड आयर्लैंण्ड की स्वाधीनता अपहरण करके ही निश्चिन्त न था। उपर्युक्त कथन से पाठकों को मालूम हो गया होगा कि वह आइरिशों की आध्यात्मिक, आर्थिक और नैतिक पतन के लिए भी सतत उद्योगशील था। उनके धार्मिक विचारों को कुचलने की भी कम चेष्टाएँ



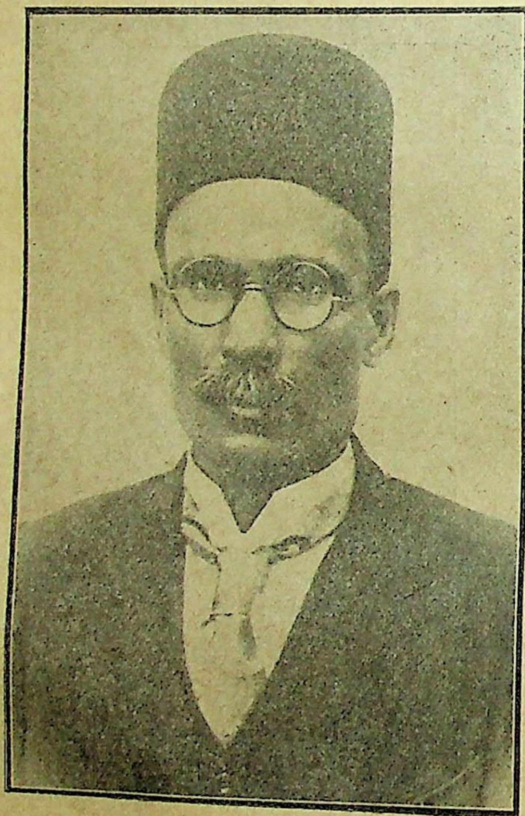
श्री० कृष्णाराव मुदावेरकर

आप धारवाड़ के सुप्रसिद्ध पत्र "करनाटक-वृत्ति" के वयोवृद्ध सम्पादक हैं, जिनके राष्ट्रीय लेखों का ओज करनाटक प्रान्त में प्रसिद्ध है और जिन्हें दो बार चेतावनी दी जा चुकी है।

नहीं हुईं। इसके बाद क्रॉमवेल का अत्याचार आरम्भ हुआ। निर्दय क्रॉमवेल के वीभत्स अत्याचारों से आयर्लैंण्ड जन-शून्य हो गया। रोमन कैथलिकों के हाहाकार से आकाश गूँज उठा। लाखों मनुष्य अपना घर-बार और धन-जन छोड़ कर अन्यत्र चले गए। क्रॉमवेल ने वह समस्त सम्पत्ति को अपने सैनिकों तथा दूसरे अङ्गरेज़ों में बाँट दिया। इस घोर अत्याचार ने आयर्लैंण्ड को अधःपतन की पराकाष्ठा तक पहुँचा दिया। वह अपनी सभ्यता, भाषा, गाथा, गान तथा इतिहास, सभी खो

बैठा। एक ओर विदेशियों का दुःसह अत्याचार और दूसरी ओर अपनी प्राचीन सभ्यता (Culture) के प्रति अश्रद्धा-भाव ने आयर्लैंण्ड को सब प्रकार से हीन और दरिद्र बना डाला।

वैदेशिक शासन और शोषण के कारण अट्ठारहवीं शताब्दी में ही आयर्लैंण्ड की दुरवस्था पराकाष्ठा को पहुँच गई थी। राष्ट्रीय चिन्ता-धारा तो इससे पहले ही विकृत हो उठी थी। परन्तु अट्ठारहवीं शताब्दी की आइरिश



सय्यद मोहम्मद पादशा साहब बहादुर

आप हाल ही में कौन्सिल ऑफ़ स्टेट के सदस्य चुने गए हैं।

जाति मानो अपने अतीत को भूल कर एक सम्पूर्ण नई जाति के रूप में उठने लगी। इङ्गलैण्ड ने आरम्भ में ही उसका सर्वस्व अपहरण कर लिया था। वह सब प्रकार से अङ्गरेज़ों का ग़ुलाम बन गया। उस समय आयर्लैंण्ड के शासन की बागडोर इङ्गलैण्ड के राज-प्रतिनिधि लॉर्ड लेफ़्टिनेण्ट के हाथों में थी। आप साल में केवल दो बार डबलिन के कैसल में पधारने की कृपा किया करते थे और पार्लामेण्ट का कार्य समाप्त होते ही अपने घर चले जाते थे! राजकार्य का निर्वाह एक पादरी और दो उच्च कर्मचारियों द्वारा सम्पन्न हुआ करता था। इसका फल जो होना चाहिए था, वही हुआ। अराजकता और अत्याचार की ख़ूब वृद्धि होने लगी। परन्तु इस व्यवस्था के समर्थकों की राज-दरबार में काफ़ी प्रतिष्ठा थी, इसके कारण आयर्लैंण्ड की सामाजिक अवस्था क्रमशः अति भीषण हो गई। अङ्गरेज़ों की नक़ल करने वालों तथा उनकी हाँ में हाँ मिलाने वालों की संख्या दिन-प्रति-दिन बड़े वेग से बढ़ने लगी और यह ख़ुशामदी दल चैन की वंशी बजाने लगा। फलतः प्राचीन गेलीय सभ्यता और रीति-रिवाज देशवासियों के लिए उपेक्षा और अपमान की सामग्री बन गए।

महात्मा क्रॉमवेल आदि की कृपा से कैथलिक आयर्लैंण्ड के सभी आइरिश अपनी ज़मींदारियों से हाथ धो चुके थे। कोई भी किसान या ज़मींदार तीस वर्ष से ज़्यादा, अधिक काल तक किसी ज़मीन को अपने क़ब्ज़े में नहीं रख सकता था। इसलिए कितने ही तो अपना देश और पैतृक वास-स्थान छोड़ कर अन्यत्र चले गए और कितने धनी परिवार वालों ने दाने-दाने के लिए तरस कर अन्त में शयन-सदन की राह ली। ज़मींदाराना हक़ केवल अङ्गरेज़ों को, या उन दो-चार भाग्यवान विभीषणों को प्राप्त था, जिन्होंने अपना धर्म छोड़ कर अङ्गरेज़ों का पालतू प्रोटेस्टेण्ट धर्म स्वीकार कर लिया था। ज़मींदार लोग प्रायः "स्वदेश" अर्थात् इङ्गलैण्ड में रहा करते थे। ज़मींदारी का प्रबन्ध उनके कारिन्दे या गुमाश्ते किया करते थे। इन कारिन्दों को अपनी ऊपरी आमदनी की अधिक फ़िक्र रहती थी, इसलिए ये किसानों को अच्छी तरह पीसा करते थे। इनमें अधिकांश तो परले दर्जे के विलासी, नीच और धूर्त होते थे। इनकी विलासिता का सारा सामान बेचारे आइरिशों को मुहय्या करना पड़ता था!!

इङ्गलैण्ड की सदाशया सरकार ने कैथलिक आइरिशों का सारा नागरिक अधिकार छीन लिया था। पार्लामेण्ट, कॉरपोरेशन, म्युनिसिपैलिटी तथा अन्य किसी भी सार्वजनिक संस्था में उनका कोई स्थान न था। यही नहीं, कभी-कभी दर्शक के रूप में भी वे ऐसे सार्वजनिक जलसों में घुसने नहीं पाते थे। केवल टैक्स और

मालगुज़ारी देना तथा अङ्गरेज़-प्रभुओं की राक्षसी क्षुधा की तृप्ति का सामान इकट्ठा करना ही, मानो उनके जीवन का प्रधान उद्देश्य था !

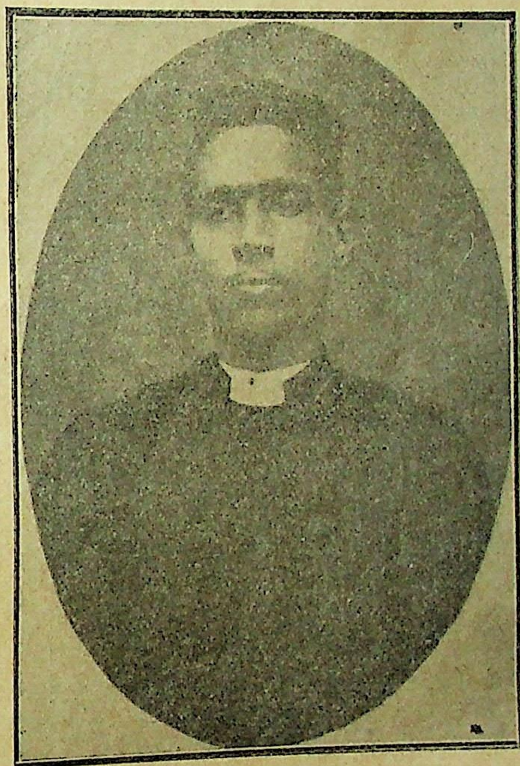
आइरिशों की शिक्षा के सूत्र पर जो कुठाराघात किया गया था, उसका दिग्दर्शन हम ऊपर करा आए हैं। आयर्लैण्ड के चीफ़ सेक्रेटरी राइट ऑनरेबल अगस्टिन बिरेल ने लिखा है—

"In the opinion of most member of Parliament every peny of public money spent on teaching the Irish language was money thrown away educationally and mis-spent politically."

इस पर रायज़नी करने की आवश्यकता नहीं। इतने से ही पाठक समझ जायँगे कि किस तरह बेचारे आइरिश शिक्षा आदि से वञ्चित किए गए थे।

कैथलिक आयर्लैण्ड के सभी गिरजाघरों के दरवाज़े बन्द कर दिए गए थे। क़ानून के अनुसार सारे धर्मयाजकों को अपना देश छोड़ कर अन्यान्य देशों में चले जाने के लिए बाध्य होना पड़ा था। गर्ज़ कि अङ्गरेज़ों ने आयर्लैण्ड को धर्म, शिक्षा, सभ्यता आदि से वञ्चित कर उसे गुलामी के नागपाश में अच्छी तरह जकड़ डाला था !

परन्तु आयर्लैण्ड की मुक्ति के इतिहास ने यह बात अच्छी तरह प्रमाणित कर दी है कि अत्याचार वा बर्बरता द्वारा कोई जाति चिरकाल तक पराधीन नहीं रह सकती। जब अत्याचारों की प्रतिक्रिया आरम्भ होती है, तो सारा पशु-बल एक क्षण में ही हवा हो जाता है। वही बात आयर्लैण्ड में भी हुई। अत्याचारियों के पाप का घड़ा भर चुका था। हम ऊपर बता चुके हैं कि अत्याचार और उत्पीड़न के साथ ही साथ आयर्लैण्ड में जाग्रति भी फैल रही थी। बीसवीं शताब्दी में एक ओर विप्लव की तैयारियाँ होने लगीं और दूसरी ओर कुछ लोग वैध आन्दोलन द्वारा होमरूल (स्वराज्य) प्राप्त करने की चेष्टा में लगे। गत सन् १९१४ में लिबरल गवर्नमेण्ट विशेषतः इङ्गलैण्ड के विख्यात राजनीतिक मि० आसक्वीथ की चेष्टा से 'होमरूल बिल' पास हो गया। इसके बाद ही सारे आयर्लैण्ड में जो तीव्र आन्दोलन आरम्भ हुआ, उसीने इस नव-जाग्रत जाति को मुक्ति का पथ दिखाया। होमरूल बिल के पास होने के साथ ही अल्स्टरवासी भूतपूर्व अङ्गरेज़ों की सन्तान ने सर एडवर्ड कॉरसन की अधीनता में एक विराट वाहिनी का सङ्गठन कर डाला। इङ्गलैण्ड के बहुत से बड़े आदमियों ने इस कार्य के लिए उदारतापूर्वक थैलियों का मुँह खोल दिया। सर एडवर्ड ने स्पष्ट रूप से घोषणा की कि



रेवरण्ड टी० जे० जोज़फ़

आप कोज़ेनचेरी (ट्रावनकोर) के एक प्रतिष्ठित सीरियन 'डीकन' हैं। आप उच्च कोटि की धार्मिक शिक्षा ग्रहण करने के अभिप्राय से टोरण्टो के ट्रिनिटी कॉलेज में गए हैं। आपको छात्रवृत्ति भी दी गई है।

आयर्लैण्ड की मुक्ति हमें किसी प्रकार भी स्वीकार नहीं है, और अगर आवश्यकता होगी, तो स्वतन्त्रता चाहने वालों के विरुद्ध तलवार धारण करने में भी कोताही न की जायगी। परन्तु राष्ट्रीय दल को इन थोथी धमकियों का कोई डर न था। उसने थोड़े ही परिश्रम से एक विराट स्वयं-सेवक दल का सङ्गठन कर डाला !

लोहा बजना ही चाहता था, कि इतने में यूरोप का महासमर छिड़ा। उस समय उदार आयर्लैण्ड समस्त अपमान और निर्यातन भूल कर, अङ्गरेज़ों की मदद करने के लिए तैयार हो गया। परन्तु उसे शीघ्र ही अपनी ग़लती मालूम हो गई। वह समझ गया कि धूर्त अङ्गरेज़ केवल अपना मतलब गाँठने के लिए उससे ख़ून कराना चाहते हैं। यह सोच कर उसने फ़ौरन इस कार्य से



मि० वी० चेल्लिया पीटर

आप सेण्ट जोन्स कॉलेज, पालमकोटा (मद्रास) के छात्र हैं। खेलों में सर्वोत्तम सिद्ध होने के उपलक्ष में आपको "ग्रिग मेमोरियल" नाम का स्वर्णपदक प्रदान किया गया है।

हाथ खींच लिया और भयङ्कर रूप से अङ्गरेज़ों के विरुद्ध प्रचार-कार्य आरम्भ हो गया। इसके बाद ही मशहूर इस्टर का विद्रोह आरम्भ हुआ। अनेक विज्ञ व्यक्ति इस विद्रोह के विरुद्ध थे, परन्तु गरम मिज़ाज वाले आइरिश युवकों ने किसी के विरोध की कोई परवाह न की। कुछ लोगों का अनुमान है कि इस विद्रोह में जर्मनों का भी कुछ हाथ था। विद्रोहियों ने डबलिन नगर पर अपना अधिकार जमा लिया। परन्तु शत्रुओं की भीषण तोपों के सामने वे अधिक देर तक न रुके। अन्त में आत्म-समर्पण के लिए उन्हें बाध्य होना पड़ा। अङ्गरेज़ों ने पन्द्रह प्रमुख विद्रोहियों को फाँसी की सज़ा दी और पन्द्रह सौ स्वयंसेवक जेलों में भरे गए। इस विद्रोह में आयर्लैण्ड की साधारण जनता शामिल न थी। वह भय, विस्मय और क्षोभ से अभिभूत हो उठी थी। लोगों का कहना है, कि डबलिन में सब मिला कर केवल एक हज़ार मनुष्य इस विद्रोह में शामिल थे, परन्तु अङ्गरेज़ों के साधारण सिपाहियों ने भी विचार का ढोंग रच कर, साधारण लोगों को क़त्ल करना आरम्भ कर दिया। दूसरी ओर ब्रिटिश सरकार ने भी शान्ति के लिए चेष्टा न करके, लगातार पन्द्रह दिनों तक गोलाबारी करके अपनी असाधारण वीरता का परिचय दिया था। एक आश्चर्यमय मर्मस्पर्शी वीरता दिखा कर, हँसते-हँसते लोग मृत्यु को आलिङ्गन करने लगे!

यद्यपि आयर्लैण्ड की जनता इस अकाल विद्रोह के पक्ष में न थी; परन्तु अङ्गरेज़ों के अत्याचार ने उसे जाग्रत कर दिया और वह जिन विद्रोहियों की निन्दा किया करती थी, आज उन्हें मुक्ति का अग्रदूत मान कर, उनके प्रति श्रद्धा दिखाने लगी। इस विद्रोह के सञ्चालकों में महात्मा पियर्स नाम के एक देशभक्त थे। इनके अलौकिक त्याग, वीरता, देशभक्ति और शहादत ने देश के नवयुवकों में एक नवीन उत्साह का सञ्चार कर दिया। पियर्स महोदय की धर्मपत्नी ने अपने पति, पुत्र तथा उनके साथियों को लक्ष्य कर कहा था—"They knew that they should fail but they desired to save the soul of Ireland." इस विद्रोह के सम्बन्ध में इससे अच्छी उक्ति और नहीं हो सकती। वास्तव में इन वीरों की क़ुर्बानियों ने वह काम किया, जो सैकड़ों वर्षों के प्रचार और आन्दोलन से नहीं हो सकता।

ठीक इसी समय नवीन आयर्लैण्ड की नींव पड़ी। महात्मा आर्थर ग्रिफ़िथ नाम के एक वीर पुरुष ने 'सिन-फ़िन' (अर्थात् अपना देश) का सङ्गठन किया। बड़े ज़ोर-शोर तथा नवीन ढङ्ग से स्वाधीनता का आन्दोलन आरम्भ हुआ। ग्रिफ़िथ के साथ जिन लोगों ने मुक्ति का व्रत लिया था, उनमें एक से एक बढ़ कर शक्तिशाली

और स्वनामधन्य वीर थे। ईश्वर की प्रेरणा से मानो असंख्य वज्र स्वाधीनता-यज्ञ सम्पन्न करने के लिए सम्मिलित हुए। इनमें माइकेल एलिन्स, महात्मा मेक्स्विनी और डि वेलेरा का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

सन् १८६३ ई० में डॉ० डिपुगिसहेयी ने जिस "गेलिक लीग" की स्थापना की थी, उसका उद्देश्य तो था देशी भाषा और शिल्प की उन्नति करना, परन्तु न जाने किस अलौकिक शक्ति के प्रभाव से उसने सारे आयलैंण्ड में देशात्मबोध का सञ्चार कर दिया। लीग ने अङ्गरेज़ियत के विरुद्ध घोषणा की थी, इसीसे शायद उसने अपने अन्तिम ध्येय की ओर भी लक्ष्य किया। थोड़े दिन के बाद ही उसने अनुभव किया कि केवल देशी भाषा और शिल्प की उन्नति करके चुपचाप बैठने से काम नहीं चलेगा। देश जब तक राजनीतिक स्वाधीनता प्राप्त नहीं कर लेगा, तब तक किसी तरह उसका कल्याण नहीं होगा। ग्रिफ़िथ ने अपनी ज्वालामयी लेखनी और वक्तताओं द्वारा देश के नवयुवकों को नए तरीक़े से उद्बुद्ध करना आरम्भ किया। थोड़े दिनों के बाद सारे आयलैंण्ड में मुक्तिकामियों की संख्या बढ़ गई। मानो मुक्ति के नशे में सारी जाति पागल हो उठी हो।

सन् १६१८ के मई में लॉर्ड फ्रेञ्च आयलैंण्ड के वायसराय होकर गए और चीफ़ सेक्रेटरी नियुक्त हुए मि० शरट और उनके बाद मि० आर० मेकफ़र्सन। इसी समय से आयलैंण्ड में फिर भयङ्कर दमन प्रारम्भ हुआ। दिसम्बर तक प्रायः आधे सिनफ़िन नेता पकड़ कर जेलों में भर दिए गए। परन्तु इससे आन्दोलन को ज़रा भी धक्का न लगा। अवशिष्ट सिनफ़िनरों ने प्रजातन्त्र की प्रतिष्ठा का आयोजन आरम्भ कर दिया। सन् १६१६ की २१वीं जनवरी को समस्त सिनफ़िन लीडरों ने आइरिश पार्लामेण्ट में योग दिया और सर्व-सम्मति से प्रजातन्त्र की अधीनता स्वीकृत की गई। मि० डि वेलेरा प्रजातन्त्र के सब से पहले राष्ट्रपति नियुक्त हुए। प्रत्येक शासन-विभाग के लिए अलग-अलग मन्त्रियों की नियुक्ति हुई। इसके साथ ही एक विराट सेना का भी सङ्गठन हुआ। बहुत से आइरिशों ने अपनी नवगठित स्वाधीनता की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व निछावर कर दिया।

आयलैंण्ड की इस जातीय सरकार ने सब से पहले अर्थ संग्रह की ओर मनोनिवेश किया। नया टैक्स लगा कर रुपए एकत्र करने की सम्भावना न देख, नेताओं ने सर्व-साधारण से २,५००,०० पौण्ड और १०,००,००० पौण्ड अमेरिका-प्रवासी आइरिशों से ऋण-स्वरूप ग्रहण करने का विचार किया। यद्यपि अङ्गरेज़ी सरकार के क़ानून के अनुसार जातीय सरकार को इस तरह की आर्थिक सहायता करना अक्षमाजनीय अपराध बताया गया था। तथापि इसमें नई सरकार को आशातीत सफलता मिली।

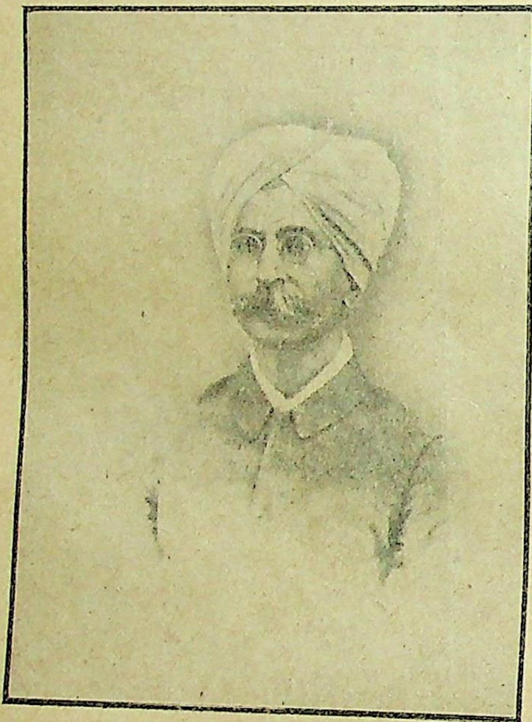


श्री० आर० के० राणादिवे, एम० ए०

आप बड़ोदा स्टेट के राजनैतिक विभाग के सुयोग्य मैनेजर हैं। आप अच्छे इतिहासज्ञ भी हैं।

आयलैंण्ड की जनता ने ढाई लाख पौण्ड की जगह चार लाख पौण्ड और अमेरिकन आइरिशों ने दस लाख की जगह एक करोड़ डॉलर प्रदान किया! इस अर्थ द्वारा जातीय सरकार ने नाना प्रकार के कल्याणकारी कार्यों का अनुष्ठान किया। प्रत्येक नगर और गाँव में पञ्चायती अदालतें खोल दी गईं। उसके साथ ही

स्वतन्त्र पुलिस-विभाग भी खोला गया। इन दोनों विभागों ने अङ्गरेज़ी सरकार का सारा दबदबा नष्ट कर दिया। साथ ही इससे प्रजातन्त्र के प्रति जनता का विश्वास भी बढ़ गया। अधिकांश वकीलों और बैरिस्टरों ने अङ्गरेज़ी अदालत छोड़ कर, प्रजातन्त्र की अदालतों में प्रेक्टिस करना आरम्भ कर दिया। प्रजा को भी अपनी देशी अदालतों द्वारा अपने झगड़ों का फ़ैसला



श्री० बी० जी० खापर्डे

आप मध्य-प्रान्तीय लेजिस्लेटिव कौन्सिल के उप-प्रधान और नेशनलिस्ट पार्टी के अगुआ थे। आपने सरकार की वर्तमान दमन-नीति के विरोध-स्वरूप अपने पद से इस्तीफ़ा दे दिया है।

करा लेने में बड़ी सुविधा हुई। व्यर्थ के अदालती ख़र्च से भी वे बच गए। आइरिशों ने बड़ी प्रसन्नता और श्रद्धा से अपनी देशी अदालतों को अपना लिया। थोड़े ही दिनों में यह हालत हो गई कि अङ्गरेज़ी अदालतों में चूहे कबड्डी खेलने लगे !!!

अदालतों की भाँति ही प्रजातन्त्र के पुलिस-विभाग ने भी शीघ्र ही काफ़ी तरक़्क़ी कर ली। स्वयंसेवकों ने बड़ी प्रसन्नता और योग्यता के साथ इस विभाग का कार्य सँभाल लिया। अङ्गरेज़ी पुलिस की बर्बरता और कठोरता से ऊबी हुई जनता ने भी इस नई पुलिस का प्रेमपूर्ण शासन स्वीकार कर लिया। इस विभाग द्वारा चोर-डाकुओं को उचित दण्ड दिया जाता। यहाँ तक कि गुरुतर अपराध करने वालों को देश-निकाले की भी सज़ा दी जाती थी। जो सब से गुरुतर अपराध करता वह इङ्गलैण्ड भेज दिया जाता था।

अदालत और पुलिस की व्यवस्था कर लेने पर प्रजातन्त्र की सरकार ने देश में प्रचलित ज़मींदारी प्रथा के विरुद्ध आन्दोलन आरम्भ किया। हम पहले ही बता चुके हैं कि आयर्लैण्ड में प्रायः सभी बड़े-बड़े ज़मींदार अङ्गरेज़ थे। इस स्वार्थपर कुप्रथा के कारण देश की दुरवस्था पराकाष्ठा को पहुँच गई थी। विदेशी अङ्गरेज़ सैकड़ों एकड़ ज़मीन के मालिक बन कर, विलास-सागर में मौजें ले रहे थे, और उनके आस-पास की आइरिश प्रजा दाने-दाने को तरस रही थी। धनवान ज़मींदारों की नज़रों में वे पशु से भी घृणित और अस्पृश्य समझे जाते थे! फलतः प्रत्येक आइरिश की यह आन्तरिक कामना हो गई थी कि शत्रु जाति के इन ज़मींदारों का शीघ्रातिशीघ्र ध्वंस कर डाला जाय। इसलिए शीघ्र ही यह आन्दोलन अच्छी तरह ज़ोर पकड़ गया। सारी पुरानी व्यवस्था बलपूर्वक उलट दी गई और ज़मीन ज़मींदारों से छीन कर जन-संख्या के अनुसार ग़रीबों को बाँट दी गई। प्रजातन्त्र की सरकार का प्रधान बल था उसका देश-प्रेम। उसी के भरोसे वह आशातीत सफलता प्राप्त करने लगी।

इन सङ्गठनमूलक कार्यों के साथ ही प्रजातन्त्र की सरकारी फ़ौज ने शत्रुओं के साथ 'गोरिला-वार' (आकस्मिक आक्रमण-मूलक संग्राम) आरम्भ कर दिया। अङ्गरेज़ी पुलिस के अड्डे और सिपाहियों के 'बैरेक' जला दिए गए। एक ही दिन सारे देश भर के 'इनकमटैक्स-ऑफ़िसों' में आग लगा दी गई। सारे काग़ज़ात के साथ एक दिन अङ्गरेज़ों का 'कस्टम हाउस' भी जल कर ख़ाक हो गया। अचानक हमलों द्वारा अङ्गरेज़ी फ़ौज की कई छावनियाँ लूट ली गईं। अङ्गरेज़ों के जासूस जहाँ कहीं मिलते थे, क़ैद कर लिए जाते थे। इस गोरिला-वार में महावीर डैन ब्रियन ने जिस अदम्य साहस, अपूर्व उत्साह और विलक्षण बुद्धिमत्ता का परिचय दिया





इटली की २३ वर्षीया राजकुमारी ग्लोवन्ना और किङ्ग बॉरिस—जिनका हाल ही में शुभ-विवाह हुआ है

था, वह वास्तव में अपूर्व था—अलौकिक था। इस मनुष्य के अद्भुत कार्यों का विवरण पढ़ कर आश्चर्य-चकित रह जाना पड़ता है। इस विकट देश-प्रेमी के लिए सब कुछ सम्भव था। उसका अलौकिक कीर्ति-कलाप पढ़ने वालों के हृदयों में स्वतः ही श्रद्धा का सञ्चार कर देता है। बहादुर ब्रियन के चरणों पर मस्तक झुका कर जीवन सफल कर लेने की इच्छा उत्पन्न होती है।

सचमुच आयलैंण्ड के इतिहास के वे पन्ने बड़े रोचक हैं, बड़े मनोरम। एक ओर वीर-वर ब्रियन का गोरिला वार चल रहा था, और दूसरी ओर सारे देश के श्रमिकों ने हड़तालें कर दी थीं। अङ्गरेज़ मुँह बाकर रह गए। शस्त्रास्त्रों से लदे हुए जहाज़ खड़े-खड़े समुद्र की तरल-तरङ्गों के मज़े ले रहे थे और आइरिश खलासी किनारे पर खड़े तालियाँ बजा रहे थे। जहाज़ से रसद और माल उतारने वाला कोई न था। रेल द्वारा पुलिस और पल्टन लाने का कोई उपाय न था। समस्त देशी रेल के कर्मचारियों ने काम छोड़ दिया था। पराधीन ग़ुलामों की यह स्पर्धा देख कर साम्राज्य-मद-गर्विता अङ्गरेज़ी सरकार ग़ुर्रा उठी। उस समय यूरोप का मशहूर महा-समर समाप्त हो चुका था। अङ्गरेज़ों के त्रिगुट्ट ने अमेरिका के राष्ट्रपति विलसन को अपने माया-जाल में फँसा कर अपना उल्लू सीधा कर लिया था। इस विजय की ख़ुशी में समस्त अङ्गरेज़ी साम्राज्य में घी के दिए जल रहे थे। ऐसे समय आयलैंण्ड की यह मुक्ति की चेष्टा भला अङ्गरेज़ कैसे बर्दाश्त कर सकते थे। वे अपनी समस्त शक्ति के साथ आयलैंण्ड पर टूट पड़े। क्रॉमवेल, पिट, रानी एलिज़ाबेथ से जो कार्य नहीं हो सका था, उसे पूरा कर डालने के लिए ब्रिटिश सरकार तन, मन और धन से लग गई। आयलैंण्ड को संसार के पर्दे से मिटा डालने में कोई क़सर बाक़ी नहीं रक्खी गई। सारी अङ्गरेज़ जाति ने प्रलयङ्करी मूर्ति धारण कर ली। आयलैंण्ड में पुलिस की संख्या बरसाती मेंढक की तरह बढ़ने लगी। शीघ्र ही चौदह हज़ार नौजवान पुलिस-विभाग में भर्ती हो गए। ५५,००० अस्त्र-शस्त्र से सज्जित सैनिक साम्राज्य की रक्षा के लिए नियुक्त हुए। सभी बड़े-बड़े रणपोत आयलैंण्ड के बन्दरगाहों पर खड़े कर दिए गए। इसके सिवा आइरिशों को अच्छी तरह दुरुस्त कर देने के लिए अगणित Blacks and Tans भी बुला लिए गए। इसके बाद आयलैंण्ड की छाती पर रक्त की पताका उड़ा दी गई। 'सब धान बाइस पसेरी' के अनुसार दोषी-निर्दोषी का विचार बालाए ताक़ रख कर "सार्वभौम" दलन आरम्भ कर दिया गया। दनादन गोलियाँ चलने लगीं, गाँव के गाँव जला कर भस्म कर दिए जाने लगे। समस्त आयलैंण्ड में भीषण ध्वंस-लीला

आरम्भ कर दी गई। आयलैंण्ड की अङ्गरेज़ी सरकार के चीफ़ सेक्रेटरी मि० विवेक ने इस सम्बन्ध में लिखा है :—

"The Auxilliary Forces (Blacks and Tans) were let loose upon the population of Ireland and these forces it may be truely said, by their doings astonished natives."

इस समय के चीफ़ सेक्रेटरी के बारे में "लण्डन मेगज़ीन" ने जो राय दी थी, वह भी कम मज़ेदार नहीं है। उसने लिखा था :—

"In the old Irish days it was always said that the latest Chief Secretary was the worst that had ever been sent to Castle. There is no need to say that of Sir Humar Greenwood, for though the latest he is also the last of his tribe."

केवल इतने से ही अङ्गरेज़ों को सन्तोष नहीं हुआ। एक ओर मैशीनगनें भिड़ाई गईं और दूसरी ओर क़ानूनी भाग-पाश तैयार किया गया। Defence of Realm Act, Restoration of Order Act, और 'मार्शल लॉ' आदि नए-नए क़ानूनों की कृपा से आयलैंण्ड के सभी अख़बार बन्द हो गए। हाट, बाज़ार तथा मेले तोड़ दिए गए। देश की सारी सार्वजनिक संस्थाएँ ग़ैर-क़ानूनी घोषित कर दी गईं। यहाँ तक कि बहुत से बैंक भी ग़ैर-क़ानूनी क़रार देकर बन्द कर दिए गए। दल के दल देश-सेवक पकड़-पकड़ कर जेलों में बन्द कर दिए गए। शान्ति-रक्षा के नाम पर कितने ही भले आदमियों को निर्वासन दण्ड भी भोगना पड़ा। प्रजातन्त्र की 'पब्लिक सिनेट' के ७३ निर्वाचित सदस्यों में नौ को छोड़, बाक़ी सभी जेल भेजे गए। ये नौ सज्जन उस समय आयलैंण्ड से बाहर थे, इसलिए बच गए। इस महानरमेध यज्ञ में महात्मा मेक्स्विनी, मेयर क्लान्सी आदि कितने ही नर-पुङ्गवों को अपने प्राणों की आहुति प्रदान करनी पड़ी। मेक्स्विनी ने अङ्गरेज़ों के जेलख़ाने में ७० दिन तक उपवास करके प्राण दे दिया। इनके उपवास की आलोचना करते हुए, इङ्गलैण्ड के सहृदय अख़बारों ने लिखा था कि किसी तरह खा लेता होगा। फ़ादर ग्रिफ़िन मेकफ़ारनेट को भी इस महायज्ञ की आहुति बनना पड़ा। व्यवसाय और वाणिज्य के सारे पथ बन्द कर दिए गए। मक्खन और पनीर के सैकड़ों कारख़ाने जला कर ख़ाक कर दिए गए!

एक छोटी जाति देश की स्वाधीनता के लिए अपने कलेजे का कितना ख़ून बहा सकती है—यह आयलैंण्ड ने अच्छी तरह दिखला दिया। आइरिशों ने इस बात को अच्छी तरह समझ लिया कि जीवन का सदुपयोग देश-सेवा ही है। सिनफ़िन-सङ्घ के देश-प्रेमियों को मालूम हो गया था कि प्राणों की बाज़ी लगाए बिना देश-माता की बेड़ी नहीं कटेगी। इसी से प्रत्येक आइरिश युवक देश की स्वाधीनता के लिए जीवन उत्सर्ग कर देने को तैयार हो गया था।

यह अलौकिक त्याग, यह निर्भीकतापूर्वक मृत्यु को आलिङ्गन करने की प्रवृत्ति और सर्वस्व त्याग ख़ाली नहीं गया। अन्त में विजय देवी ने आयलैंण्ड पर थोड़ी सी कृपा की। प्रचुर रक्त-पान कर स्वतन्त्रता देवी ने तृप्ति लाभ की। अन्त में इङ्गलैण्ड के राजनीति के धुरन्धर और ब्रिटिश साम्राज्य की अधीनस्थ जातियों के भाग्य-विधाता मि० लॉयड जॉर्ज कुछ पसीजे। मानों आइरिशों के प्रचुर रक्त से उनके राजनीतिक दिमाग़ की गर्मी कुछ शान्त हुई। आयलैंण्ड की राजनीतिक समस्या की आलोचना के लिए उन्होंने डि वेलेरा और अलस्टर के लीडर सर जेम्स क्रेप को निमन्त्रण देकर इङ्गलैण्ड बुलाया। पहले तो डि वेलेरा महोदय ने यह निमन्त्रण अस्वीकार कर दिया। परन्तु अन्त में मित्रों के दबाव में पड़ कर इङ्गलैण्ड गए और एक सप्ताह तक लॉयड जॉर्ज महोदय के पास रह कर आयलैंण्ड की समस्याओं की आलोचना में लगे रहे। इसके बाद अङ्गरेज़ों ने अपनी शर्तें प्रकाशित कीं। उनमें एक शर्त यह भी रक्खी गई कि अलस्टर-निवासी चाहें तो आयलैंण्ड के जातीय दल के साथ रह सकते हैं अथवा स्वयं अपने लिए अलग प्रजातन्त्र क़ायम कर सकते हैं। डि वेलेरा को यह शर्त पसन्द न आई। आदर्शवादी डि वेलेरा को मातृ-भूमि का यह विच्छेद स्वीकार न था। इसलिए सन्धि नहीं हुई।

अन्त में इङ्गलैण्ड वालों ने जब देखा कि आयलैंण्ड हर तरह से चङ्गुल से निकल जाना चाहता है तो उन्होंने फ़ौरन एक नया फन्दा फेंका। डि वेलेरा तो इस फन्दे में नहीं फँसे, परन्तु अन्यान्य कई लीडर आ गए। फिर कॉन्फ्रेन्स बैठी। कनाडा, ऑस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैण्ड

की तरह आयलैंण्ड को साम्राज्यान्तर्गत स्वायत्त शासन प्रदान किया गया। उसे 'फ़्री स्टेट' की संज्ञा प्रदान की गई। उत्तर आयलैंण्ड अर्थात् अलस्टर प्रान्त स्वतन्त्र प्रदेश स्वीकार किया गया। परन्तु डि वेलेरा, कैथल ब्रूथा, लॉयनलिञ्च, अमर मेक्स्विनी की पत्नी और बहिन डेम-ब्रियन ने यह लँगड़ा स्वायत्त शासन स्वीकार नहीं किया। इन्होंने अपनी मातृ-भूमि की पूर्णस्वाधीनता के लिए अपनी एक 'रिपब्लिक पार्टी' बनाई। इनकी यह अटल प्रतिज्ञा है कि—या तो आयलैंण्ड को स्वतन्त्र करेंगे या इसी चेष्टा में मर मिटेंगे।



ज़िम्मेदार कौन है ?

उत्थान और पतन*

[कविवर 'सनेही']

तप-तेज से मन्द दिनेश हुए, दिल दिग्गजों के दहलाते रहे ।
फिर कौन महीपतियों की कथा, सुर भी तलवे सहलाते रहे ॥
बसुधा को सनेह-सुधा से 'सनेही' निरन्तर ही नहलाते रहे ।
बन मण्डन पण्डित-मण्डली के, द्विज-श्रेष्ठ सदा कहलाते रहे ॥

अति हेय परिग्रह को समझा जप-यज्ञ ही के अभिमानी रहे ।
यश फैल गया महि-मण्डल में निगमागम के गुरु ज्ञानी रहे ॥
धन पै नहीं बेच दिया मन को, तन प्राण दिए वह दानी रहे ।
अब पूर्वजों के वह कृत्य कहाँ ? कविता रहे—राम कहानी रहे ॥

जब वेद-विरुद्ध प्रचार हुआ था अनीश्वरता-ध्वनि छा रही थी ।
बलवान हुए थे महा जब बौद्ध अधर्म से काँप धरा रही थी ॥
कहीं कौल दिखाते कला अपनी, कहीं नास्तिकता अपना रही थी ।
रही धर्म की लाज कनौजियों से, यहाँ धर्म-ध्वजा फहरा रही थी ॥

गति काल कराल की देखिए तो किस भाँति वे पेट जिला रहे हैं ।
निज पूर्वजों के कुल के अभिमान को धूल में कैसे मिला रहे हैं ॥
कहीं दम्भ में दत्त हैं दीक्षित जी, कहीं मिश्र जी बेच तिला रहे हैं ।
कहीं शुक्ल जी झण्डी हिला रहे हैं, कहीं पाँडे जी पानी पिला रहे हैं !!

अति आकुल धाकर ब्याह बिना कुलवान दहेज को रो रहे हैं ।
ससुराल का है जो भरोसा बड़ा, लड़के भी कुलक्षणी हो रहे हैं ॥
हुए छिद्र हैं सौ-सौ स्वजाति की नाव में नाम समेत डुबो रहे हैं ।
चिर-सञ्चित गौरव खो रहे हैं, बिसुए बसए बिस बो रहे हैं !!

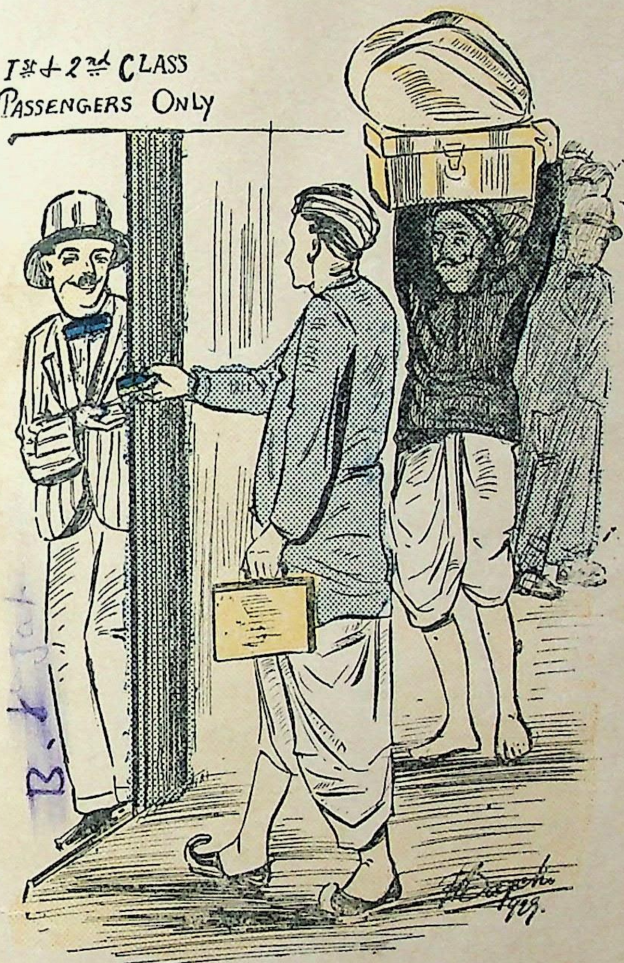
कहीं पुत्रियाँ बैठी विवाह को हैं, बहुमोल कहीं बिकते वर हैं ।
कहलाते त्रिवेदी द्विवेदी हैं यद्यपि जानते एक न अक्षर हैं ॥
जल लाते कोई, कोई पाचक हैं, कोई भार के बाहक चाकर हैं ।
जब पीर रहे, तब पीर रहे, अब भिश्ती, बबर्ची हैं या खर हैं !!

तप तो नहीं चूल्हे में तापते हैं, जप है विधि वाम को कोस रहे हैं ।
बलहीन हैं भीरुता ही है क्षमा, हत तेज कलेजा मसोस रहे हैं ॥
अबलाओं पै वीरता पौरुष है, दिखला उनपै रिस-रोस रहे हैं ।
कलिकाल कराल के पायक से, द्विजनायक हा अफ़सोस ! रहे हैं ॥

कुछ लाज है पूर्वजों की मन में, तो दशा निज देख लजाते नहीं क्यों ?
अभिमान है उच्चता का कुछ भी, तो स्वजाति को ऊँचे उठाते नहीं क्यों ?
प्रतिभा है, प्रभाव है, तो अपनी, पटुता जग को दिखलाते नहीं क्यों ?
मुँह मोड़ के छोड़ के भागते क्यों, अब जीवन-युद्ध में आते नहीं क्यों ?

* कनौजिया समाज को लक्ष्य कर यह कविता लिखी गई है ।





टिकट-कलेक्टर के पौ-बारह

टिकट-चेकर—ठहरो, ओ मारवाड़ी, बोझा तुलेगा। इधर लाओ! बिल्टी किधर है?

मारवाड़ी (दक्षिणा हाथ में लेकर) लो हजूर! पान-बीड़ी रो खर्च। म्हाने खोटी न करावो। म्हाने जावण दो।

छप रही है !

रहस्यमयी

छप रही है !!

[ले० श्री० ऋषभचरण जैन]

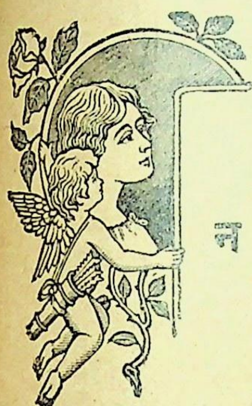
समाज-सेवा, देशभक्ति तथा एक देशोपकारी संस्था की आड़ में यदि अत्यन्त भयङ्कर तथा वीभत्स घटनाओं का नग्न चित्र देखना हो अथवा 'महाशय जी' व 'देवी जी' नामधारी नर-पिशाचों के आन्तरिक पापों का भण्डाफोड़ देखना हो तो इस पुस्तक को उठा लीजिए। कुछ ही पन्ने पढ़ कर आप आश्चर्य की मूर्ति बन जायँगे, आपके रोम-रोम काँपने लगेंगे। जो स्त्री कि वाह्य जगत् में अत्यन्त पूज्य, अनिन्द्य सुन्दरी, विदुषी, सुशीला तथा समाज-सेविका है, वह वास्तव में व्यभिचारिणी, कलङ्किनी, पापिनी, हत्यारिणी तथा एक वेश्या से भी घृणित है। समाज में प्रतिष्ठित रहते हुए वह भीतर ही भीतर इन पापों की पूर्ति के लिए कैसे-कैसे रहस्य रचती है—इसका अत्यन्त रोमाञ्चकारी वर्णन इसमें किया गया है।

सुखवती देवी नाम्नी एक अत्यन्त सुन्दरी तथा विदुषी महिला किस प्रकार अपने पति का गला घोंट कर, एक प्रेस तथा मासिक पत्र की सञ्चालिका बन जाती है, समाज-सेवा की आड़ में किस प्रकार देवी जी ने अनेक धनिक पुरुषों को अपने जाल में फँसा कर रुपया ऐंठा तथा ब्रह्मचर्य के पवित्र नाम पर किस प्रकार दर्जनों होनहार नवयुवकों का सर्वनाश किया और एक नवयुवक के प्राण लेकर ही अपने प्राण त्यागे; इतना नाटक खेलते हुए भी किस प्रकार देवी जी समाज में पूज्य ही बनी रहीं—इसका सारा रहस्य जादू की क़लम से लिखा गया है। पुस्तक के एक-एक शब्द में रहस्य भरा हुआ है। पुस्तक की छपाई-सफ़ाई दर्शनीय है। पृष्ठ-संख्या लगभग २०० ; मूल्य लागत मात्र १॥) रु०, स्थायी ग्राहकों से १=) मात्र। शीघ्रता कीजिए। पुस्तक छप रही है। अभी से अपना नाम रजिस्टर करा लीजिए।

व्यवस्थापक 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

कान्यकुब्ज ब्राह्मण-परिचय

[मेजर एम० एल० भार्गव, आई० एम० एस०]



नवम्बर १९३० के 'चाँद' में श्री० रजनीकान्त जी शास्त्री, बी० ए०, बी० एल्० का लेख पढ़ा। शोक है कि लेखक महोदय ने अपना लेख पूर्णतया ऐतिहासिक दृष्टिकोण से नहीं लिखा। यद्यपि उन्होंने कहीं-कहीं जन-श्रुतियों की अवहेलना करके उनको प्रमाण नहीं माना, परन्तु न जाने क्यों, जहाँ जी चाहा जन-श्रुतियों और पौराणिक गाथाओं को ही अपना आधार मान लिया। मेरे तुच्छ मतानुसार यदि वर्तमान काल में ऐसे विषयों को यथाशक्ति शुद्ध ऐतिहासिक दृष्टि से ही लिखा जावे तो देश और जाति को अधिक लाभ होगा।

१म, २य और ३य

यह सत्य है कि गुप्त-सम्राटों के समय के पश्चात मौखरी राजाओं के काल (पाँचवीं शताब्दी ईसा) से महाराज जयचन्द राठौड़ के काल (१२ वीं शताब्दी ई० के अन्त) तक महोदय या कन्नौज भारत की मुख्य राजधानी रही। परन्तु यह मान लेना कि "भगवान रामचन्द्र के समय से भी पूर्व कान्यकुब्ज नामक एक विख्यात देश था" तथा "इस देश का प्रसिद्ध नगर इसीके नामानुसार कान्यकुब्ज कहलाया" सर्वथा अप्रामाण्य है। जान पड़ता है कि योग्य लेखक ने रामायण के ही कुछ श्लोकों को आधार मान लिया है। परन्तु उन्होंने यह नहीं विचारा कि संस्कृत साहित्य के प्रायः सब ही ऐतिहासिकों के मतानुसार वर्तमान रामायण का थोड़ा सा भाग ही आदिकवि की रचना है। इस ग्रन्थ का अधिक भाग लगभग ईस्वी सन् से एक शताब्दी पूर्व अपने वर्तमान रूप में आया। परन्तु गत २०० वर्ष से पूर्व तक इसमें परिवर्तन और बढ़ाई-घटाई होती रही। अतएव रामायण का प्रत्येक श्लोक स्वतः प्रमाण नहीं माना जा सकता।

वास्तव में योग्य लेखक के उद्धृत श्लोक क्षेपक हैं। महर्षि विश्वामित्र महाराज 'राम' इक्ष्वाकु के समकालीन नहीं थे, जो उनका सम्वाद होना सम्भव हो। आदि विश्वामित्र जी ऋग्वैदिक ऋषि थे। उनको तथा उनकी सन्तान मधुछन्दस आदि को ऋग्वेद के कुछ मन्त्रों के ऋषि माना गया है। ऋग्वेद ३-५३ तथा बृद्ध देवता ४-११२ से १२० तक से पता चलता है कि महर्षि विश्वामित्र महाराज सुदासऋत्सु के समकालीन थे, जो राम से बहुत पीढ़ियों से पहले हो चुके थे। उनके समय में आर्य लोग 'सप्त-सिन्धव' देश में रहते थे, जो यमुना के पश्चिम में था। उस काल में न तो महोदय नगर बसा था और न आर्य लोग पश्चात काल के पाञ्चाल देश में पहुँचे थे। राजा कुशनाभ को विश्वामित्र का भी दादा बताया गया है। अतएव उनका गङ्गा-यमुना के दोआबे के दक्षिण भाग में महोदय नगर या किसी अन्य नगर का राजा होना और उनकी कुब्जा कन्याओं के कारण उस देश का नाम कान्यकुब्ज हो जाना सर्वथा असम्भव है। यह तो मैं नहीं जानता कि महोदयपुर का नाम कन्नौज या कान्यकुब्ज क्यों पड़ा। परन्तु यह स्पष्ट है कि किसी बाल की खाल निकालने वाले ने इसका शब्दार्थ यह किया कि जिस देश में कन्याएँ कुब्जा हो गईं वह कान्यकुब्ज कहलाया, और इस अर्थ को देख कर किसी मनचले ने यह विचित्र और अनोखी कथा गढ़ दी कि इस देश के सम्भवतः प्राचीनतम आर्य राज-वंश कौशिकों के पूर्वज कुशनाभ की कन्याओं के पवन-देव के शाप से कुब्जा हो जाने के कारण इस देश का नाम कान्यकुब्ज पड़ा। समय पाकर यह कथा रामायण में भी जोड़ दी गई।

सत्य तो यह है कि यजुर्वैदिक काल से लगा कर मसीह की पाँचवीं शताब्दी तक इस देश का नाम केवल पाञ्चाल था। महाभारत के काल में यह दो भागों में विभक्त था। उत्तर पाञ्चाल की राजधानी अहिच्छत्र थी, दक्षिण पाञ्चाल की राजधानी काम्पिल्य थी। पाँचवीं शताब्दी ईसा में मौखरी वंश वालों ने दक्षिण पाञ्चाल की

महोदय या कन्नौज नगरी में अपना राज्य स्थापित किया। इस वंश का चौथा राजा इशान वर्मा छठी शताब्दी ईसा में आसपास के राज्यों का महाराजाधिराज बन गया और कन्नौज का राज्य विख्यात हुआ। तब यह देश अपनी राजधानी के नाम से कन्नौज या कान्यकुब्ज कहलाया। सातवीं शताब्दी में सम्राट हर्षवर्धन के काल में इस राज्य का विस्तार और भी बढ़ा, और तब से अन्तिम हिन्दू सम्राट पृथ्वीराज चौहान के काल तक यह



बम्बई स्टेशन पर 'ऑटोमेटन' नामक एक ऐसा यन्त्र रक्खा गया है, जिससे सर्दी में गरम चाय आदि और गरमी में ठण्डा पानी और शर्बत निकलता है। यह चित्र उसी 'ऑटोमेटन' का है, जिससे लेमोनेड निकाला जा रहा है।

प्रायः उत्तर भाग के सम्राटों का मुख्य राज्य रहा, तत्पश्चात् पृथ्वीराज के सम्राट होने पर उसका स्थान दिल्ली ने ले लिया। स्पष्ट है कि इस देश का यह नाम प्राचीन नहीं है और नगर का नाम देश के नाम पर न पड़ कर, उसके विपरीत देश का नाम राजधानी के नाम पर पड़ा।

४र्थ

श्री० रजनीकान्त जी के इस सन्दर्भ से कि "उन (द्राविड़ों) में से जो......ब्राह्मणोचित षटकर्म में प्रवृत्त हुए वे ही द्राविड़ ब्राह्मण कहलाए" जान पड़ता है कि वह पञ्च द्राविड़ ब्राह्मणों को द्राविड़-जाति (Race) का मानते हैं। उनका यह विचार भी सर्वथा निर्मूल है। यह तो सत्य है कि पञ्चद्राविड़ों के पूर्वज आर्य ब्राह्मणों ने उन प्रान्तों में जाकर वहाँ की स्त्रियों से विवाह किए और इस प्रकार उनकी आकृति, भाषा तथा रीति-रिवाज में वहाँ की जातियों का प्रभाव पड़ा। परन्तु यह निस्सन्देह सत्य है कि पिता की ओर से वह आर्य-जाति के हैं। उनकी उत्पत्ति की गाथाओं को छोड़ कर इसका मुख्य प्रमाण यह है कि उनमें भी वही गोत्र-प्रवर पाए जाते हैं, जो पञ्चगौड़ों में। गोत्र शब्द का लौकिक अर्थ सन्तान या वंश है। श्रौत सूत्रों के प्रवराध्यायों और गोत्रावलियों से लगा कर निर्णयसिन्धु व धर्मसिन्धु तक में एक गोत्र के जनों को उस गोत्र के प्रवर्तक ऋषि की सन्तान ही माना गया है। "अपत्यं पौत्र प्रभृति गोत्रम्" का अर्थ यही है कि बेटा-पोता आदि सन्तान गोत्र कहलाती है। प्रवर ऋषि भी केवल अपने ही वंश के मन्त्रर्षि हो सकते हैं। इसी कारण सगोत्र तथा समान प्रवरों में विवाह वर्जित हैं। इस सम्बन्ध के सभी ग्रन्थों में, भारतवर्ष के समस्त ब्राह्मणों में (१) भार्गव, (२) आङ्गिरस (३) वासिष्ठ, (४) काश्यप, (५) आगस्त्य, (६) अत्रिय, (७) कौशिक या वैश्वामित्र, केवल यही सात मूल-गोत्र या वंश बताए गए हैं। इनमें से भार्गवों के—(१) जामदग्न्य, (२) शौनक या गात्समंद, (३) यास्क या वैतहव्य, (४) वाध्यश्व या मैत्रयुव, (५) वैन्य या पार्थ, यह पाँच, और आङ्गिरसों के—(१) गौतम, (२) भारद्वाज, (३) राथीतर, (४) मौदुल्य, (५) वैष्णववृद्ध, (६) हारित या कौत्स या यौवनाश्व, (७) काण्व, (८) सांकृत्य, यह आठ गुण बताए हैं। शेष पाँच मूल गोत्रों में एक-एक ही गण हैं। इन १८ गणों (पश्चात्काल के गोत्रों) में लगभग ७४ पक्ष हैं, जिनके लगभग ४०३६ शाखा गोत्र हैं। प्रत्येक पक्ष के एक या अधिक प्रवर-समूह हैं। समस्त भारतवर्ष के दोनों (गौड़ द्राविड़) समुदायों, दशों आवान्तर भेदों तथा उनके सैकड़ों उपभेदों का प्रत्येक जन इन्हीं ४०३६ वर्गों में से किसी न किसी को अपना वर्तमान गौत्र मानता है। एक ही गोत्र (मूल-गोत्र, गण, पक्ष और वर्ग) के जन भिन्न-भिन्न समुदायों, आवान्तर भेदों तथा उपभेदों में पाए जाते हैं।

धर्मानुसार कोई भी ब्राह्मण अपने वास्तविक या आश्रय-दायक पूर्वजों के अतिरिक्त किसी को भी अपना गोत्र-कारक या प्रवर ऋषि नहीं मान सकता। पूर्वजों ने यज्ञों के समय प्रवरों के वरण की प्रथा डाल कर इसका भी प्रबन्ध कर दिया था कि ब्राह्मण अपने गोत्र, प्रवरों को न भूलें। अतः कोई कारण नहीं कि पञ्चद्राविड़ों के गोत्र-प्रवरों को जाली और बनावटी माना जावे। पञ्च-गौड़ों में और प्रवरों की समानता होने से यही सिद्ध होता है कि दोनों के पूर्वज समान थे। और पञ्चद्राविड़ ब्राह्मणों के प्रथम प्रवर ऋषि भृगु, अङ्गिरा आदि सात में से कोई एक होने से यह स्पष्ट है कि वह भी उन्हीं आर्य ब्रह्मर्षियों की औरस या कृत्रिम सन्तान हैं।

श्री० रजनीकान्त जी लिखते हैं कि "इन द्राविड़ों का रङ्ग आर्यों की अपेक्षा ईषत् श्याम था," "आर्य ब्राह्मण द्राविड़ों से अपनी भिन्नता तथा श्रेष्ठता दिखाने के लिए अपने को 'गौर' ब्राह्मण कहने लगे, और यह 'गौर' शब्द ही कालान्तर में 'गौड़' रूप को प्राप्त हुआ।" लेखक महोदय ने इसके भी कोई प्रमाण नहीं दिए। जैसा कि पहले दिखाया जा चुका है, पञ्चगौड़ों और पञ्चद्राविड़ों दोनों समुदायों के पूर्वज वही ७ या १८ आर्य ऋषि थे। अतः यह असम्भव है कि आदि-काल में ब्राह्मणों में रङ्ग का कोई भेद हो। जब तक उनका संसर्ग अनार्य, दस्युओं, नागों, राक्षसों, यक्षों इत्यादि (द्राविड़, कोल, इत्यादि) जातियों से नहीं हुआ, वह स्वच्छ गौर वर्ण के रहे। मेरा विचार है कि सप्तसिन्धव देश में रहते उनका वर्ण अधिक करके गौर ही रहा। आज भी सारस्वत आवा-न्तर भेद के ब्राह्मण औरों की अपेक्षा प्रायः गौर ही पाए जाते हैं। परन्तु यमुना-तट पर पहुँचने के पश्चात उनको द्राविड़ों और कोल आदि अनार्यों के साथ रहना पड़ा। इस समय उन्होंने दस्युओं, नागों, यक्षों आदि जातियों की स्त्रियों से विवाह सम्बन्ध किए। महाभारत और पुराणों में इनके अनेक उदाहरण पाए जाते हैं। यही कारण है कि गौड़ों, कान्यकुब्जों, मैथिलों और उत्कलों में बहुत से व्यक्ति नाटे, काले तथा गेहुँआ रङ्ग, चपटी तथा चौड़ी नाक, और चपटे, सीधे तथा गोल और घुँघ-राले बालों वाले पाए जाते हैं। यह सब अनार्य माताओं का प्रभाव है। यह भी सर्वमान्य है कि ब्राह्मण विन्ध्या-चल को पार करने के बहुत पहले ही उत्तर भारत में फैल चुके थे। शतपथ ब्राह्मण के रचे जाने से पहले ही ब्राह्मण सदानीरा (गण्डकी) नदी के पार विदेह या



श्री० एम० पी० पॉलसन

आप बङ्गलोर के वीर-युवक हैं, जिन्होंने २४ घण्टों में रात-दिन (बिना रुके हुए) साइकिल चला कर २७६ मील का सफ़र कर डाला। वे पहिली दिसम्बर को शाम के ४ बजे साइकिल पर बैठे थे और दूसरी दिसम्बर को ठीक चार बजे उतरे थे।

मिथिला देश में पहुँच गए थे (शतपथ १-४ वा १-१४ वा १७), फिर शनैः-शनैः पूर्व की ओर से उत्कल देश में और पश्चिम की ओर से सौराष्ट्र, आनर्त और परान्त (वर्तमान गुजरात) तथा विदर्भ (बरार) प्रदेश में पहुँचे।

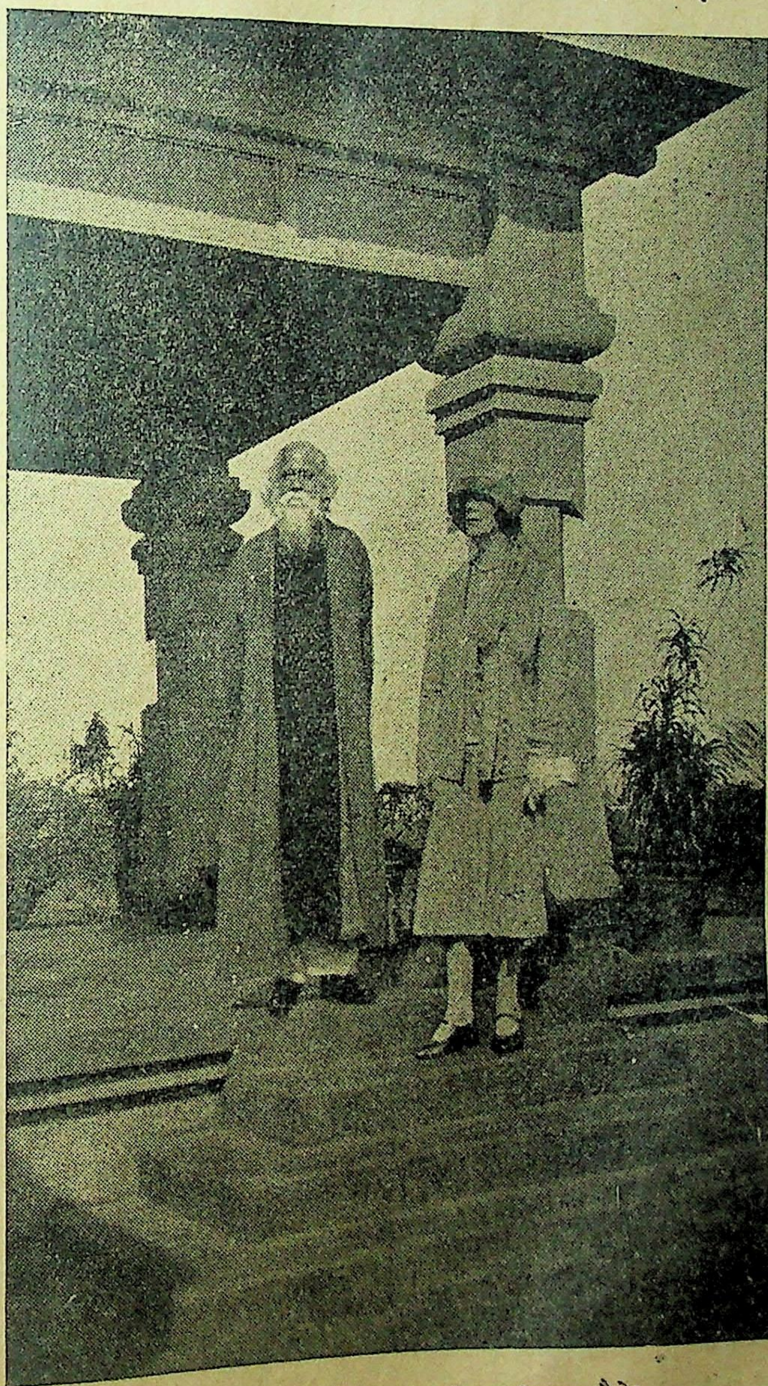
तत्पश्चात् एक ओर से अश्मक (पैथान या प्रतिष्ठान), पाण्डुराष्ट्र, गोपराष्ट्र और मल्लराष्ट्र (यह चारों पश्चात-काल में मिल कर महाराष्ट्र कहलाए) में और दूसरी ओर से आन्ध्र (तिलङ्गाना) देश में पहुँचे। इसके भी पश्चात पश्चिम की ओर से कर्नाटक और पूर्व की ओर से द्राविड़ देश में ब्राह्मणों का पदार्पण हुआ। अतः ब्राह्मणों के विन्ध्या पार करने से बहुत पहले ही पञ्चगौड़ों के आवान्तर भेदों के रङ्ग-रूप में परिवर्तन हो चुका था और उन्हें अपने को गौर कहने का अधिकार नहीं रहा था।

इसके उपरान्त जहाँ तक मेरा अल्प ज्ञान है, किसी भी वैदिक या संस्कृत ग्रन्थ तथा लेख में उत्तर भारत के ब्राह्मणों का "गौर" नाम से वर्णन नहीं है। और स्कन्द-पुराण के श्लोकों से पहिले किसी भी ग्रन्थ या लेख में गौड़ और द्राविड़ आदि भेदों का वर्णन नहीं पाया जाता। बुलन्दशहर ज़िला-गज़ेटियर में अनूपशहर के पास इन्दौर नामक ग्राम में पाए गए सन् ४६५ ई० के लिखे ताम्र-पत्र के सम्बन्ध में जो यह लिखा गया है कि उसमें ब्राह्मणों के गौड़-भेद का वर्णन है, केवल लेखक का भ्रम है। पत्र में शब्द "गौरान्वय सम्भूत' आते हैं, जिनका अर्थ गौरवंश में उत्पन्न है। स्पष्ट है कि गौर नाम एक वंश का बताया गया है। यह वैश्वामित्र मूल-गोत्र के औदल पक्ष का एक वर्ग है। गौड़ और द्राविड़ आदि प्रान्तिक का आवान्तर (Geographical, Provincial and Tribal) भेद है, वंश (Clan; Sub-Clan, Family)-भेद नहीं है। प्रत्येक आवान्तर-भेद भिन्न-भिन्न वंशों के ब्राह्मण में पाए जाते हैं। एक ही वंश के जन भिन्न-भिन्न आवान्तर भेदों में उपस्थित हैं। जैसा कि आगे चल कर बतलाया जायगा, ११वीं शताब्दी ई० तक के लेखों में ब्राह्मणों के गोत्रों में (वंशों) तथा वर्णों (वैदिक शाखाओं) का वर्णन तो बहुत पाया जाता है, परन्तु समुदायों, आवान्तर-भेदों तथा उपभेदों का वर्णन कहीं नहीं मिलता। स्पष्ट है कि "गौर" का आशय गौर या गौड़ समुदाय या आवान्तर-भेद नहीं है, वंश ही हो सकता है। अतः श्री० रजनीकान्त जी की कल्पना निराधार है और स्कन्दपुराण के इन श्लोकों की रचना से कुछ दिनों पहले तक गौड़ व द्राविड़ समुदायों का कोई भेद नहीं था।

यह भी विचारणीय है कि पञ्चद्राविड़ों में से दो अर्थात् गुर्जर और महाराष्ट्र ब्राह्मणों की आकृति, भाषा और लिपि अन्य तीनों से नहीं मिलती, पञ्चगौड़ों से मिलती है। गुर्जरों और चित्तपावन महाराष्ट्रों का रङ्ग गौड़ों, कान्य-कुब्जों, मैथिलों और उत्कलों से प्रायः अधिक गौर पाया जाता है। गुजराती और महाराष्ट्री दोनों भाषाएँ आर्य-समूह की हैं। महाराष्ट्र की लिपि तो देवनागरी है ही, गुजराती लिपि भी उसका ही बिगाड़ है। उनमें द्राविड़ जाति के रज का मिश्रण अवश्य है, परन्तु गौड़ों, कान्य-कुब्जों, मैथिलों और उत्कलों में द्राविड़ और कोल दोनों के रज का मिश्रण उनसे कम नहीं जान पड़ता। मलाबार के नम्बूद्री ब्राह्मण भी रङ्ग-रूप तथा कुछ रिवाजों में कर्णाटकों तथा द्राविड़ों से भिन्न हैं और शुद्ध आर्यों से अधिक मिलते हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि गुर्जरों, महाराष्ट्रों तथा नम्बूद्रियों का सम्बन्ध तैलङ्गों, द्राविड़ों और कर्णाटकों की अपेक्षा पञ्चगौड़ों से अधिक है और उनको द्राविड़ कहना एक प्रकार अनुचित है।

जान पड़ता है कि लेखक महोदय स्कन्दपुराण और उसके "सारस्वताः कान्यकुब्जा" आदि दो श्लोकों को बहुत प्राचीन मानते हैं। उनके मतानुसार कान्यकुब्ज देश के ब्राह्मण पहले गौड़ कहलाते थे, फिर महाराज कुशनाभ के काल के पश्चात वह कान्यकुब्ज कहलाए। उनका यह निर्णय भी निराधार है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, ब्राह्मणों के दो समुदायों तथा दस आवान्तर भेदों का वर्णन स्कन्दपुराण के अन्यत्र किसी प्राचीन ग्रन्थ में नहीं है। संस्कृत साहित्य के ऐतिहासिकों के मतानुसार वर्तमान पुराण प्राचीन ग्रन्थ नहीं हैं, उनके कोई-कोई भाग प्राचीन अवश्य हैं, परन्तु उनमें से प्राचीनतम पुराण भी गुप्त सम्राटों के काल में चौथी या पाँचवीं शताब्दी ई० में अपने वर्तमान रूप में आया है, अन्य पाँचवीं शताब्दी के पश्चात के रचे हुए हैं। स्कन्दपुराण को लगभग नवीं शताब्दी ई० का रचा माना जाता है। परन्तु इन ग्रन्थों में भी महाभारत और रामायण की तरह बहुत पश्चात-काल तक परिवर्तन और घटाई-बढ़ाई होती रही। तात्पर्य यह है कि इन ग्रन्थों के श्लोक स्वतः प्रमाण नहीं माने जा सकते। अतः स्कन्दपुराण के इन दो श्लोकों से यह सिद्ध नहीं होता कि ब्राह्मणों का दो समुदायों तथा दस आवान्तर भेदों में विभाग बहुत प्राचीन काल से चला आता है।

इन सम्बन्धों में निम्न-लिखित बातें विचारणीय हैं। आजकल जिस प्रान्त को गुजरात और जहाँ के ब्राह्मणों को गुर्जर कहते हैं, ११वीं शताब्दी तक वह इस नाम से विख्यात नहीं था। इसका एक भाग (काठियावाड़) तो सौराष्ट्र कहलाता था। दक्षिण गुजरात को महाभारत में परान्त कहा गया है, फिर यह लाट या लार देश कहलाया, मध्य गुजरात पहले आनर्त कहलाता था, फिर इसका नाम भारुकच्छ या भृगुकच्छ पड़ा। उत्तर गुजरात आनन्दपुर राज्य कहलाता था। कभी-कभी जब भाग-विशेष का राजा अन्य राज्यों का महाराजाधिराज हो गया तो समस्त प्रान्त का उस भाग-विशेष के नाम से भी वर्णन हुआ। इस प्रकार कहीं-कहीं इस प्रान्त को सौराष्ट्र, आनर्त और लाट भी कहा गया। वराहमिहर, हुएनसाङ्ग, सुलेमान, राजशेखर, अलबेरूनी आदि किसी ने भी इस प्रान्त का गुजरात नाम से वर्णन नहीं किया। स्कन्दपुराण में भी इसको गुजरात नहीं लिखा। इन सबने गुजरीत या गुजरात नाम वर्तमान राजपूताने के पश्चिम भाग का बताया है, जिसकी राजधानी भिनमाल थी और जिसके स्थान पर वर्तमान जोधपुर वा बीकानेर राज्य है। १३ वीं शताब्दी के आदि में कन्नौज के राठौड़ तुर्कों से हार कर इस गुजरात देश में पहुँचे और उन्होंने यहाँ अपना राज्य स्थापित किया। तब इस देश का यह नाम बदला और इससे भी पीछे प्राचीन आनर्त और परान्त (भारुकच्छ और लाट)



शान्ति-निकेतन विश्वविद्यालय के संस्थापक डॉक्टर रवीन्द्रनाथ टैगोर

तथा आनन्दपुर और सौराष्ट्र सब मिल कर गुजरात कहलाने लगे। जहाँ तक मुझे ज्ञान है, ऐतिहासिकों में सबसे पहिले फ़रिश्ता ने इस प्रान्त का नाम गुजरात लिखा है। अतः यहाँ के ब्राह्मण कन्नौज के तुर्कों द्वारा विजय किए जाने के पश्चात ही गुर्जर कहाए होंगे और स्कन्दपुराण के यह श्लोक उस काल के पश्चात के बने हुए हैं।

यह निश्चय नहीं है कि आन्ध्र देश का तिलङ्गाना नाम कब पड़ा, परन्तु समस्त प्राचीन ग्रन्थों में इसका नाम आन्ध्र ही पाया जाता है। स्कन्दपुराण में भी इसको आन्ध्र कहा गया है। अनुमान से यह नाम भी तुर्कों के आने के पश्चात विख्यात हुआ जान पड़ता है। अतः आन्ध्र देश के ब्राह्मणों का तैलङ्ग नाम भी प्राचीन नहीं है।

वर्तमान महाराष्ट्र भी पहले इस नाम से नहीं पुकारा जाता था। जैसा कि पहले कहा गया है, तीसरी शताब्दी ई० पूर्व के पहले यह देश चार भागों में बँटा हुआ था। अस्मक, पाण्डुराष्ट्र, गोपराष्ट्र और मल्लराष्ट्र। महाराज अशोक के शिला-लेखों में अश्मकों, पैथानिकों तथा राष्ट्रिकों का वर्णन है। तत्पश्चात इसका नाम राष्ट्र देश या रट्ट देश रहा जान पड़ता है। छठी शताब्दी ई० के मध्य काल के पश्चात यहाँ के चालुक्य वंशी राजा बहुत विख्यात हुए। ७वीं शताब्दी में इस वंश का पुलाकेशिन द्वितीय समस्त दक्षिण भारत का सम्राट हुआ। तत्पश्चात यह देश महाराष्ट्र कहलाया। अतः महाराष्ट्र के ब्राह्मणों का महाराष्ट्र नाम भी प्राचीन नहीं है।

समस्त भारत में जो प्राचीन दानपत्र इत्यादि पाए गए हैं, उनमें ११वीं शताब्दी ई० के अन्त तक के पत्रों में ब्राह्मणों के वर्णन में गोत्रों, प्रवरों तथा चरणों का ही वर्णन है। उनके आवान्तर भेदों या समुदायों का वर्णन नहीं है। आवान्तर भेदों का वर्णन १२वीं शताब्दी के आरम्भ के पश्चात के दानपत्रों में पाया जाता है।

यजुर्वेद से लगा कर किसी भी वैदिक या स्कन्दपुराण से पहिले के संस्कृत ग्रन्थों में जहाँ वर्ण, कर्म या जाति-भेदों का वर्णन है, कहीं भी ब्राह्मणों के इन दो समुदायों या दस आवान्तर भेदों का वर्णन नहीं है।

यद्यपि आजकल के रिवाज के अनुसार ब्राह्मणों के एक ही आवान्तर भेद के एक उपभेद का ब्राह्मण दूसरे उपभेद की कन्या से विवाह नहीं कर सकता। किसी भी धर्मशास्त्र ग्रन्थ में, जहाँ विवाह सम्बन्धी नियमों का वर्णन है, कोई और दोष न होते सगोत्र और समान प्रवरों को छोड़ कर ब्राह्मण को किसी भी ब्राह्मण की कन्या से विवाह करने का निषेध नहीं है। उनके अपने उपभेद, आवान्तर भेद या समुदाय के बाहर विवाह निषेध नहीं बताया गया। और न अपने ही समुदाय, आवान्तर भेद या उपभेद में विवाह प्रशस्त माना गया है।

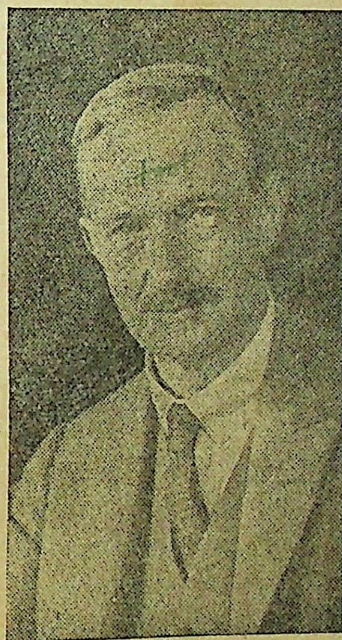
स्पष्ट है कि ब्राह्मणों में यह भेद प्राचीन नहीं हैं। जहाँ तक पता चलता है, यह मसीह की ११वीं शताब्दी के पश्चात उत्पन्न हुए।

प्रश्न

यह निश्चय नहीं होता कि सारस्वत, गौड़, कान्य-कुब्ज, मैथिल और उत्कल, पञ्चगौड़ और गुर्जर, महाराष्ट्र, तैलङ्ग, द्राविड़ और करणाटक, पञ्चद्राविड़ क्यों कहलाए। परन्तु यह विचार कि पञ्चगौड़ किसी गौड़ नाम के देश से निकल कर और पञ्चद्राविड़, एक द्राविड़ नाम के देश से निकल कर अन्य प्रान्तों में बसे और इस कारण यह नाम पड़े, सर्वथा अप्रामाण्य है। वास्तव में आर्य लोग भारत में सब से पहिले 'सप्तसिन्ध' में बसे थे। यहाँ से चल कर पहले पूर्व, फिर दक्षिण के प्रान्तों में फैले। सारस्वत वह हैं जो सरस्वती के पश्चिम में रह गए। यह लोग गौड़ नाम के किसी भी देश से सरस्वती के पश्चिम में नहीं गए। जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है, द्राविड़ देश की अपेक्षा ब्राह्मण लोग गुजराती, महाराष्ट्र और तिलङ्गाना में पहिले पहुँचे। यह स्पष्ट है कि दोनों समुदायों के इन नामों का कारण कुछ और ही है। अनुमान यही होता है कि स्कन्दपुराण के इन श्लोकों के रचे जाने के समय, उत्तर भारत में गौड़ और दक्षिण भारत में द्राविड़ मुख्य माने जाते होंगे। इस कारण गौड़ों के नाम से उत्तर के ब्राह्मण पञ्चगौड़ और दक्षिण के ब्राह्मण पञ्चद्राविड़ कहलाए।

पता नहीं चलता की श्री० रजनीकान्त जी ने भुवनेश का अर्थ अमरनाथ कैसे किया और उसको पञ्जाब की पूर्वीय सीमा पर कैसे मान लिया। अमरनाथ काश्मीर के उत्तर भाग में है। बङ्गाल और पञ्जाब के बीच का देश पहिले आर्यवर्त और फिर मध्य देश कहलाया। यह देश

कभी भी गौड़ देश नहीं कहलाया। वास्तव में बङ्ग देश का अर्थ पूर्व बङ्गाल है—भुवनेश्वर नाम उत्कल या ओड़ (वर्तमान उड़ीसा) की राजधानी का था, जहाँ केशरी वंशी शैव राजा राज्य करते थे। यह देश अपनी राजधानी के नाम से भुवनेश्वर भी कहलाया। भुवनेश का आशय यहाँ इसी भुवनेश्वर या उत्कल से है और इस प्रकार शक्तिसङ्गम तन्त्र का गौड़ देश बङ्ग और उड़ीसा के बीच का पश्चिम बङ्गाल है। इस देश का नाम वराहमिहर ने भद्रगौड़क बताया है। बाण ने 'हर्ष-चरित' में शशाङ्क या नारेन्द्रग्रहा इसी गौड़ देश का राजा कहा है। ह्वनसाङ्ग ने शशाङ्क को कर्णस्वर्ण का राजा लिखा है। कर्णस्वर्ण इसी गौड़ देश की राजधानी थी। सम्राट हर्षवर्धन के मित्र माधवगुप्त के पुत्र आदित्यसेन गुप्त और उसके वंशजों के शिला-लेखों में भी इस देश को गौड़ देश लिखा गया है। गौड़वहो नामक काव्य में कन्नौज के सम्राट यशोवर्मन के इसी गौड़ देश के राजा को युद्ध में मारने का वर्णन है। राजतरङ्गिणी में काश्मीर के राजा ललितादित्य के इसी गौड़ देश के राजा पर विजय पाने का वर्णन है। यह सब छठी, सातवीं तथा आठवीं शताब्दी ई० की कथा है। ८वीं शताब्दी ई० के अन्त में गौड़ देश का राजा गोपाल समस्त बङ्गाल का महाराजाधिराज हो गया। इसकी राजधानी मुङ्गेर थी। तब से गौड़ और बङ्ग दोनों मिल कर गौड़ बङ्गाल या गौड़ देश कहलाए। स्कन्दपुराण में समस्त बङ्गाल को ही गौड़ देश लिखा है। शक्तिसङ्गम-तन्त्र इस काल से पहले का बना ग्रन्थ नहीं है। १२ वीं शताब्दी ई० के आरम्भ में बङ्ग देश या पूर्व बङ्गाल में सेन वंश का स्वतन्त्र राज्य स्थापित हुआ। इनकी राजधानी श्री० रजनीकान्त जी की बताई "गौड़" या वास्तव में "गौर" नगरी थी। वह इसी समय विख्यात हुई। वह वर्तमान 'माल्दा' ज़िले में थी। राजा लक्ष्मणसेन ने इसके पास लक्ष्मणवती (लखनौती) नामक नगरी बसाई थी। देवपरा के शिला-लेख में गौर के राजा विजयसेन के गौड़ देश के राजा (मुङ्गेर के पालवंशी राजा) पर विजय पाने का वर्णन है। उसके पुत्र वल्लालसेन ने भी गौड़ देश के पाल राजा से युद्ध किया था। स्पष्ट है कि पूर्व बङ्गाल की गौर या गौड़ नामक राजधानी का पश्चिम बङ्गाल के गौड़ देश से कोई सम्बन्ध नहीं है। और बङ्गाल इस नगरी के कारण नहीं, वरन् पश्चिम बङ्गाल का नाम गौड़ देश होने के कारण गौड़ बङ्गाल कहलाया। परन्तु यह गौड़ देश न तो कभी गौड़ ब्राह्मणों का केन्द्र था, न अब है। वहाँ के गौड़ाद्य ब्राह्मण, जो अन्य बङ्गाली ब्राह्मणों की तरह अपने को कान्यकुब्ज आवान्तर भेद का नहीं मानते, अपना प्राचीन देश पश्चिम का गौड़ देश बताते हैं। इधर गौड़ ब्राह्मणों के गौड़ बङ्गाल से आने के कोई प्रमाण नहीं मिलते। सत्य तो यह है कि इस प्रान्त (कुरु, मत्स्य और शूरसैनक देशों) में, ब्राह्मणों के गौड़



मि० चार्ल्स एबटविसिल
आप मैन्चेस्टर के सुप्रसिद्ध व्यवसाय-विशेषज्ञ हैं, जो बम्बई में मिलों की स्थिति का अध्ययन करने आए हैं।

बङ्गाल में पहुँचने से कई सहस्रों वर्ष पहिले से, ब्राह्मण बसते आए हैं। अतः ब्राह्मणों के गौड़ आवान्तर भेद का यह नाम गौड़ बङ्गाल पर नहीं पड़ा।

कौशल देश की उत्तरीय सीमा और नैपाल की दक्षिणीय सीमा सदैव से मिलती आ रही है। इन दोनों के बीच में कोई अन्य देश नहीं हो सकता। "उत्तरा कौशले राज्यम्" का अर्थ "कौशल देश के उत्तर में" नहीं है, उत्तर कौशल राज्य में है। यह अवध राज्य का

सरयू से उत्तर का भाग था और उत्तर कौशल नाम से इस कारण पुकारा जाता था कि इससे दक्षिण की ओर दक्षिण-कौशल या महाकौशल नाम का एक और देश था, जिसका मुख्य भाग आजकल मध्य प्रान्त में सम्मिलित है और गौड़वाना या छत्तीसगढ़ कहलाता है, और जिसका मुख्य नगर रायपुर है। इसी उत्तर कौशल देश की एरावती (रावी) और सरयू (घाघरा) नदियों के बीच के भाग को, जिसमें श्रावस्ती नगर था, मत्स्यपुराण में गौड़ देश कहा गया है। रामायण में अवध राज्य को कोशल भी कहा गया है। उत्तर कौशल और उसका भाग "गौड़ देश" अवश्य ही इसमें पहले से सम्मिलित होंगे, तभी मत्स्यपुराण में श्रावस्ती को दशरथ के पूर्वज श्रावस्त के पुत्र वत्सक और विष्णुपुराण में युवनाश्व के पुत्र श्रावस्त का बसाया कहा गया है। और वायुपुराण में उसको राम के पुत्र उत्तर कौशल के राजा लव की राजधानी बताया गया है। अतः श्रावस्ती वाला गौड़ देश उत्तर कौशल से पृथक् देश नहीं था, जो उसके उत्तर में उसके और नैपाल के बीच हो सके। यदि थोड़ी देर के लिए उत्तर कौशल और नैपाल के बीच कोई स्वतन्त्र देश मान भी लिया जाय तो भी उसका विस्तार बङ्गाल की पूर्वी सीमा से पञ्जाब की पश्चिमी सीमा तक नहीं हो सकता; क्योंकि नैपाल और कौशल दोनों की सीमा ही इन प्रान्तों से नहीं मिलती। स्पष्ट है कि लेखक महोदय भ्रम में पड़ गए हैं। ह्युनसाङ्ग ने इस देश का नाम श्रावस्ती देश और इसका आकार ४,००० ली या ६६७ मील बताया है। कनिङ्घम के मतानुसार इसकी सीमाएँ—हिमालय, सरयू, कर्नाली, धवलगिरि और फ़ैज़ाबाद जान पड़ती हैं। अतः इस गौड़ देश का, जिसकी राजधानी श्रावस्ती थी, अधिक भाग वर्तमान गोंडा ज़िले में सम्मिलित है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, प्राचीन दक्षिण कौशल या महाकौशल का मुख्य भाग पश्चात्-काल में गोंड़वाना कहलाया। इससे यही अनुमान होता है कि उत्तर कौशल या उसके एक भाग का भी वास्तविक नाम गोंड़ देश होगा, जिसको संस्कृत के लेखकों ने संस्कृत रूप देकर गौड़ देश बना दिया। यह भी सम्भव है कि वास्तव में मत्स्यपुराण में गोंड देश ही बताया गया है, जिसको किसी नक़ल करने वाले ने भ्रम से बिन्दु को ग़लत जगह पढ़ कर गौड़ देश बना दिया हो। प्राचीन उत्तर कौशल के एक भाग के आजकल गोंडा तथा दक्षिण कौशल के एक भाग के आजकल गोंडवाना कहलाने से तो यही ठीक जान पड़ता है कि इस देश का वास्तविक नाम गोंड देश था, जो संस्कृत में गौड़ देश हो गया। परन्तु यह देश भी न तो कभी गौड़ आवान्तर भेद के ब्राह्मणों का केन्द्र था, न अब है और न गौड़ ब्राह्मणों के यहाँ से आकर अपने वर्तमान देश में बसने के कोई ऐतिहासिक प्रमाण हैं। इस देश के ब्राह्मण सरयूपारीण ब्राह्मण कहलाते हैं। सत्य तो यह है कि सरस्वती और दृषद्वती के मध्यवर्ती देश में, जो ब्रह्मावर्त कहलाया तथा दृषद्वती के पूर्व और दक्षिण के देश में जो ब्रह्मर्षि देश कहलाया, ब्राह्मणों का निवास उनके सरयू नदी के पार पहुँचने से बहुत काल पहले से चला आता है। स्वयं ऋग्वेद में ही सरस्वती और दृषद्वती के मध्यवर्ती देश में आर्यों और ब्राह्मणों के बसने का उल्लेख है। अतः यहाँ सरयू पार से ब्राह्मणों के आकर बसने की कोई आवश्यकता नहीं थी। वास्तव में ब्राह्मण यहाँ से जाकर पूर्व की ओर पाञ्चाल, कोशल, काशी, विदेह आदि तथा दक्षिण की ओर मत्स्यशूर, सैनक, चेद्य, कुन्तिभोज, आदि देशों में बसे थे और यही गौड़ ब्राह्मणों का केन्द्र है। सरस्वती और गङ्गा के उत्तरीय भाग के बीच तथा हिमालय और मत्स्य (वैराट) तथा शूरसैनक देशों के बीच का देश पहले कुरु देश कहलाता था। परन्तु छठी शताब्दी ई० के आरम्भ में विख्यात ज्योतिषाचार्य वराहमिहर ने इस देश का नाम गौड़ देश लिखा है। अवश्य ही उसके समय से पहले से कुछ शताब्दियों तक यह देश गौड़ देश कहलाया होगा। ह्युनसाङ्ग ने इसका नाम इसकी उस काल की राजधानी पर स्थानेश्वर बताया है। पुराणों में इस देश का नाम कुरु देश ही रहा। परन्तु साधारण लोगों में इसको गौड़ देश ही कहा जाता होगा। इसी कारण जब ब्राह्मण वर्ण का आवान्तर भेदों में विभाग हुआ, तो यहाँ के और ऐसे आसपास के राज्यों के ब्राह्मण, जिनका इस कुरु देश के ब्राह्मणों से सम्बन्ध था तथा अन्य देशों के ऐसे ब्राह्मण, जिनको अपना प्राचीन निवास-स्थान भूला नहीं था और जो बहुत प्राचीन समय के गए नहीं थे, गौड़ ब्राह्मण कहलाए। फिर जब इस गौड़

आवान्तर भेदों में से बहुत से उपभेद, जिनकी संख्या लगभग ४५ है, पृथक हुए तो शेष अर्थात् गौड़ों का मुख्य उपभेद आदि-गौड़ कहलाया।

६म

इस प्रकार गौड़ ब्राह्मण अपने निवास के मुख्य देश के नाम पर गौड़ कहलाए। अब प्रश्न यह होता है कि यह देश गौड़ देश क्यों कहलाया? इस पर श्री० रजनीकान्त जी की संगृहित कल्पनाएँ सर्वथा निर्मूल हैं।

(१) जैसा कि पहले सिद्ध किया जा चुका है, सब ही ब्राह्मण पिता की ओर से आर्य-जाति के हैं। यमुना के तट पर पहुँचने के पश्चात विन्ध्योत्तरवासी ब्राह्मणों के ४ आवान्तर भेदों का वर्ण गौर नहीं रहा होगा। और किसी भी ग्रन्थ में ब्राह्मणों के इस समुदाय को गौर नहीं बताया गया।

(२, ३, ४, ५, ६, और ८) यह बाल की खाल निकालने वालों के मस्तिष्क की उपज हैं। इनमें से किसी के भी सत्य होने का कोई प्रमाण नहीं है।

(७) न तो पूर्व-वर्णित तीनों देशों में से कोई देश प्राचीन काल में गौड़ देश कहलाता था और न यह आवान्तर भेदों में विभाग प्राचीन है। गौड़ देश के नाम की यह व्याख्या भी (२)—की तरह किसी बाल की खाल निकालने वाले के मस्तिष्क की उपज है।

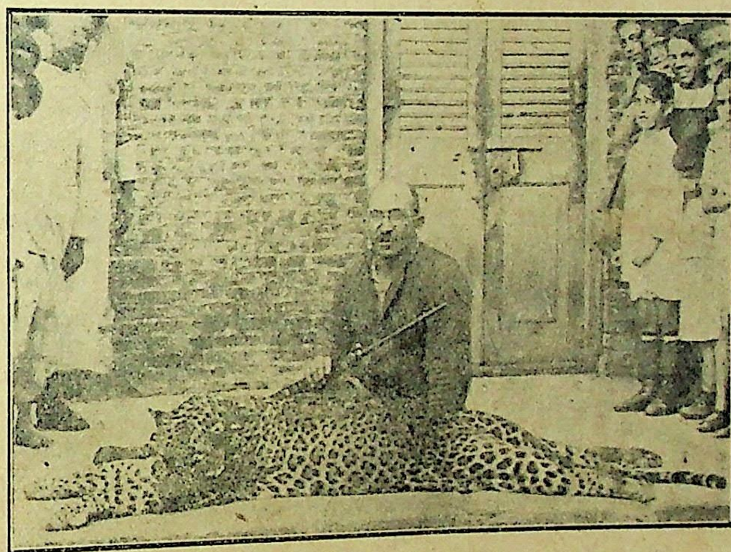
(९) यह सत्य है कि गौड़ ब्राह्मण प्रायः शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिनी शाखा के हैं। परन्तु भारतवर्ष में इसी शाखा के ब्राह्मण अन्य प्रान्तों में भी पाए जाते हैं, जो गौड़ नहीं कहलाते। अतः यह कल्पना भी सत्य नहीं हो सकती।

(१०, ११) जैसा कि श्री० रजनीकान्त जी लिखते हैं, यह दोनों माननीय नहीं हैं। यदि पहली कल्पना सत्य होती तो समस्त गौड़ों का मूल-गोत्र और गण तथा सबका प्रथम प्रवर वासिष्ठ होता, परन्तु इनमें भृगु, अङ्गिरा आदि शेष ६ आदि-ऋषियों की सन्तान भी पाई जाती हैं। आदि-गौड़ों में भी यही दशा है, अतः दसवीं कल्पना भी निर्मूल है।

७म

गौड़ ब्राह्मणों का आदि निवास-स्थान, कुरुक्षेत्र को केन्द्र मानने वाला देश ही था। सारस्वतों को छोड़ कर अन्य आठों आवान्तर भेदों के पूर्वज प्राचीन काल में इस देश में से अवश्य गए होंगे। परन्तु वे इस कारण गौड़ नहीं कहलाए, कारण कि उन दिनों यह देश गौड़ देश नहीं कहलाता था। कान्यकुब्ज आदि-वंश नहीं है, आवान्तर भेद है, जिसमें भार्गव, आङ्गिरस आदि भिन्न-भिन्न वंश सम्मिलित हैं। आदि-गौड़, गौड़ आवान्तर भेदीय ब्राह्मणों का मुख्य उपभेद अवश्य है, परन्तु इस देश में तगा आदि अन्य उपभेदीय गौड़ ब्राह्मण भी पाए जाते हैं।

ब्राह्मणोत्पत्ति-मार्तण्ड में लिखी आदि-गौड़ों की उत्पत्ति की कथा कान्यकुब्जों की उत्पत्ति की कथा की भाँति केवल जन-श्रुति है। इसके सत्य होने के कोई



पूना के श्री० एन० एस० पटेल

जिन्होंने एक बड़े ख़ूँख़्वार चीते का हाल ही में शिकार करके ग्राम-निवासियों का आशीर्वाद भाजन किया है।

ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलते। महाराज जन्मेजय की कथा महाभारत में विस्तारपूर्वक पाई जाती है। उनके यज्ञ की कथा भी उसी ग्रन्थ में दी हुई है, वहाँ वटेश्वर मुनि तथा उनके १,४४४ शिष्यों का कहीं वर्णन नहीं है।

का नाम ही गौड़ देश पड़ा था। उत्तर कोशल के अन्तर्गत गौड़ देश का वास्तविक नाम गौंड देश जान पड़ता है। परन्तु यदि वह गौड़ देश भी हो तो भी वह नाम वराहमिहर के पश्चात-काल का पड़ा हुआ है। इसी प्रकार पश्चिमी बङ्गाल का गौड़ देश नाम भी ६ठी शताब्दी ई०

मिश्र जी (घर में)



न पूछो रङ्ग इनका, ढङ्ग इनका और है घर में !
पड़े हैं मिश्र जी क्या ख़ूब अब मज़हब के चक्कर में !!

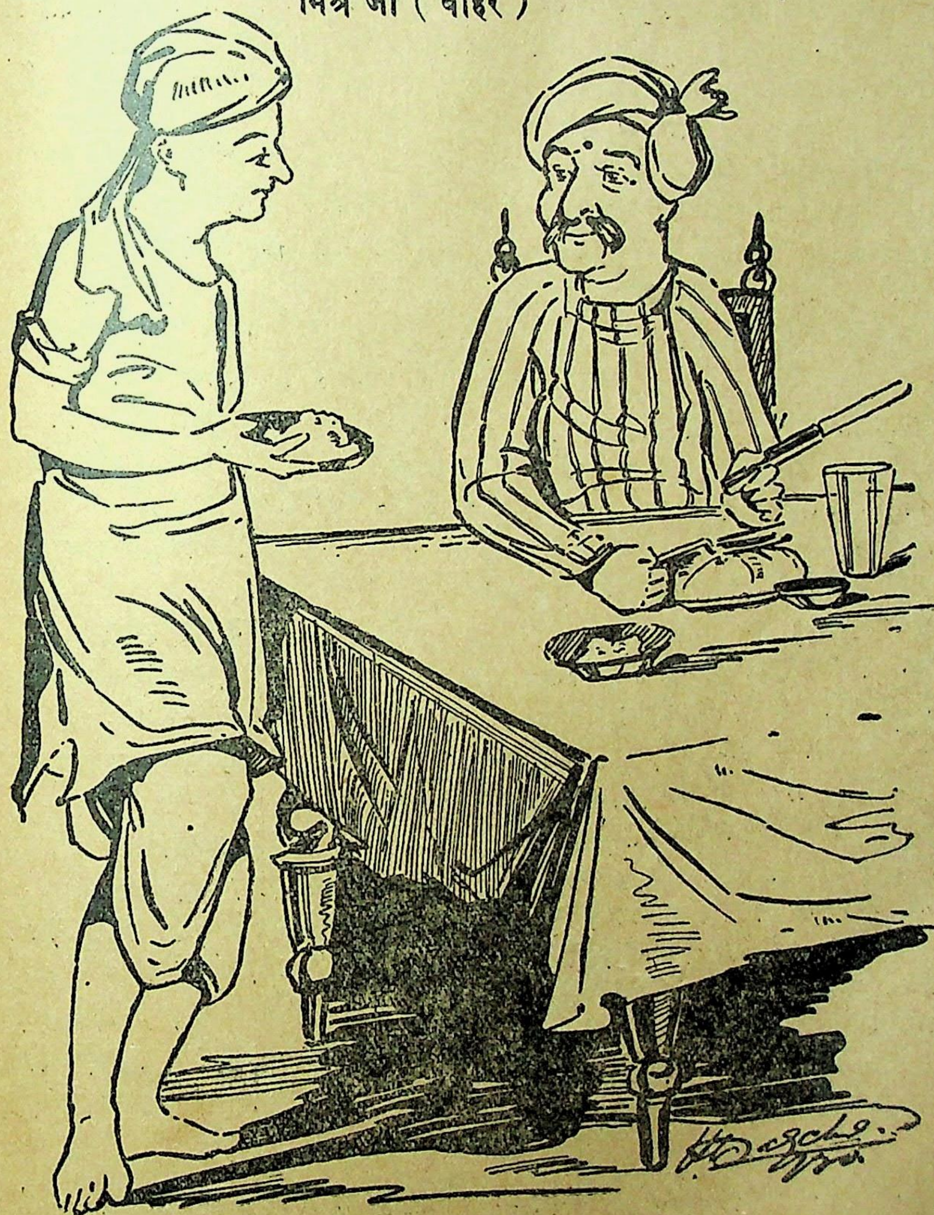
श्री० रजनीकान्त जी का यह विचार, कि गौड़ देश कुरुक्षेत्र से पृथक था और राजा जन्मेजय ने गौड़ ब्राह्मणों को अपने देश कुरुक्षेत्र में बसाया, सर्वथा निराधार है। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, सर्व-प्रथम कुरु देश

के पश्चात का है। इसके विपरीत कुरु देश वराहमिहर के काल से पहिले गौड़ देश कहलाया था। इसके उपरान्त कुरु देश और विशेषकर कुरुक्षेत्र में ब्राह्मण, कौशल और पश्चिमी बङ्गाल में पहुँचने से बहुत पहले से, बसते

थे। महाभारत में जन्मेजय के, ब्राह्मणों को किसी अन्य देश से बुला कर अपने देश में बसाने का वर्णन नहीं है, परन्तु यदि थोड़ी देर के लिए यह घटना सत्य भी मान

दूर था। वैसे तो महाभारत के अनुसार हस्तिनापुर में भी ब्राह्मणों की कमी नहीं थी, परन्तु यदि जन्मेजय ने किसी कारण अपने यज्ञ में गौड़ देश से ब्राह्मण बुलाए और

मिश्र जी (बाहर)



निकल कर घर से बाहर, मिश्र जी क्या रङ्ग लाते हैं !
वह जब होटल में जाते हैं, तो अण्डा केक, खाते हैं !!

ली जावे तो भी यह भूलना नहीं चाहिए कि महाराज जन्मेजय की राजधानी हस्तिनापुर में थी, जो कुरुक्षेत्र से

फिर उनको हस्तिनापुर के आसपास बसाया तो इससे केवल यही सम्भावना नहीं होती कि उसने उनको कुरु-

क्षेत्र में ही बसाया हो। हस्तिनापुर गङ्गा के तट पर था और कुरुक्षेत्र यमुना और दृषद्वती के दूसरी ओर। वैदिक साहित्य में जन्मेजय को कुरु और पाञ्चाल दोनों देशों का राजा बताया गया है। महाभारत के अनुसार वह उत्तर भारत के बहुत से भाग का सम्राट था। अतः वह वटेश्वर आदि ब्राह्मणों को कुरुक्षेत्र के अन्यत्र अपने विस्तृत साम्राज्य में या अपने कुरु-पाञ्चाल राज्य में कहीं भी बसा सकता था। परन्तु जैसा पहले कहा जा चुका है, महाभारत में इस कथा की सत्यता के कोई प्रमाण नहीं हैं। वहाँ जन्मेजय के मुख्य ऋत्विजों के नाम, च्यवन वंशी चण्डभार्गव (होता), जैमिनि (ब्रह्मा), कौत्स (उग्दाता) और शारङ्गरव तथा पिङ्गल (अध्वर्यु) बताए गए हैं।

अब प्रश्न यह होता है कि कुरु देश का गौड़ देश नाम क्यों पड़ा। वैदिक और प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों से विदित होता है कि लगभग छठी शताब्दी ई० तक भारत में राज्यों और जना (Tribes) के नाम उनके राज्य-वंश के नाम पर पड़ते थे। ऋग्वेद के भारत, त्रत्सु, यदु, तुर्वसु, पुरु, अनु, भ्रुयु इत्यादि और पश्चात काल के कुरु-पाञ्चाल, मत्स्य, शूरसैनक, वार्ष्णेय, सात्वत, अन्धक, भोज, कुन्तिभोज, विदर्भ, आनर्त, भाद्र, केके, त्रिगर्त, मालव, सेव्य, कोशल, काशी, विदेह, अङ्ग, बङ्ग, पुण्ड्र, ओड्र, कलिङ्ग, आन्ध्र आदि इसके अनेक उदाहरण हैं। आज तक राजपूतों (क्षत्रियों) में एक वंश (गोत्र) उपस्थित है, जो गौड़ कहलाता है। इनके इतिहास के अनुसार यह लोग लगभग पाँचवीं शताब्दी ई० में अपने प्राचीन देश गौड़ देश को छोड़ कर अजमेर के आस-पास के देश में बसे। लगभग ८वीं शताब्दी में चौहान राजपूतों ने उनको परास्त करके उनके राज्य पर अपना अधिकार जमा लिया। तब यह लोग चौहानों के साथ रहे। सम्राट पृथ्वीराज चौहान के युद्धों की कथाओं में इनकी वीरता का वर्णन बार-बार आता है। फिर जब अजमेर तुर्कों के हाथ आया तो यह लोग वहाँ से भी प्रस्थान कर गए। आजकल इनमें से थोड़े से तो जयपुर तथा मेवाड़-राज्यों में बसते हैं, पर अधिक लोग मध्य-प्रान्त और आगरा-अवध के संयुक्त प्रान्त में पाए जाते हैं। सर हरिसिंह गौड़ इसी गोत्र के राजपूत हैं। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, वराहमिहिर ने सर्व-प्रथम छठी शताब्दी के आरम्भ में कुरुक्षेत्र के आसपास के देश अर्थात् प्राचीन कुरु देश को ही गौड़ देश लिखा है। अतः इन गौड़ गोत्री राजपूतों का गौड़ देश, जहाँ से यह पाँचवीं शताब्दी ई० के लगभग, सम्भवतः हूणों के आक्रमण के कारण, भागे यही प्राचीन कुरु देश था, जो उनके राज्य-काल में उनके नाम से गौड़ देश कहलाया था।

९म

अन्य ब्राह्मणों की तरह कान्यकुब्ज भी वर्गों को ही गोत्र मानते हैं, परन्तु वास्तव में यह गोत्र नहीं है। धर्म-ग्रन्थों में ब्राह्मणों के कुल १८ गोत्र (गण) माने गए हैं। इनमें से प्रत्येक के जनों का परस्पर विवाह-सम्बन्ध निषेध है। इस विचार से इनके यह १६ गोत्र (वर्ग) वास्तव में केवल ७ या ८ गोत्र (गण) हैं।

(१) कश्यप, शाण्डिल्य, काश्यप, यह तीनों काश्यप गोत्र में सम्मिलित हैं।

(२) भरद्वाज, गर्ग और भारद्वाज, यह तीनों भारद्वाज आङ्गिरस हैं।

(३) साङ्कृति, साङ्कृति आङ्गिरस।

(४) कात्यायनि, धनञ्जय और कौशिक, यह तीनों कौशिक या विश्वामित्र हैं।

(५) उपमन्यु, वासिष्ठ और पाराशर, यह तीनों वासिष्ठ हैं।

(६) गौत्तम, गौत्तम आङ्गिरस।

(७) वत्स, जामदग्न्य भार्गव।

(८) कविस्त नाम का कोई गोत्र वैश्वामित्रों में या अन्य किसी मूल गोत्र के वर्गों में मुझे नहीं मिला। इससे मिलता नाम गविष्टर मिलता है, जो आत्रेय गोत्र की शाखा है। धर्मानुसार पहले, दूसरे, चौथे और पाँचवें समूहों के वर्गों में परस्पर विवाह नहीं होना चाहिए।।

१३श

यह हो सकता है कि कान्यकुब्ज ब्राह्मण यही प्रवर शुद्ध मानते हों। परन्तु वास्तव में यह अशुद्ध हैं। श्रौत सूत्रों के अनुसार प्रवर इस प्रकार होने चाहिए :—

(१) कश्यप } कश्यप, (या शाण्डिल्य) असित,
(२) शाण्डिल्य } दैवल।

(३) यदि शुद्ध नाम काश्यप है तो (१) वा (२) के समान और यदि शुद्ध नाम काश्येप है तो काश्यप,

अवत्सार, नैध्रुव । कौशिक और लोहित इस वर्ग के प्रवर नहीं हो सकते ।

(४) भरद्वाज
(५) भारद्वाज } आङ्गिरस, वार्हस्पत्य, भारद्वाज ।

(६) गर्ग—आङ्गिरस, वार्हस्पत्य, भारद्वाज, गार्ग्य, शैन्य । शौनक इस वर्ग का प्रवर नहीं हो सकता ।

(७) साङ्कृति—आङ्गिरस (या शाक्त्य), गौरुवीत, साङ्कृत्य, सांख्यायन और किल प्रवर ऋषि नहीं हैं ।

(८) कात्यायन—वैश्वामित्र, आचील, कात्य । किल और कात्यायन प्रवर ऋषि नहीं हैं ।

(९) धनञ्जय—वैश्वामित्र, माधुच्छन्दस, धानञ्जय ।

(१०) कौशिक—वैश्वामित्र, आघमर्षण, कौशिक । देवरात इस वर्ग का प्रवर नहीं है ।

(११) उपमन्यु—वाशिष्ठ, आभरद्वसव्य, ऐन्द्रप्रमद । याज्ञवल्क्य प्रवर ऋषि नहीं हैं ।

(१२) वशिष्ठ—वाशिष्ठ, यह एक या वाशिष्ठ, ऐन्द्रप्रमद, आभरद्वसव्य यह तीन हैं । शक्ति और पराशर इस वर्ग के प्रवर ऋषि नहीं हैं ।

(१३) पराशर—वाशिष्ठ, शाक्त्य, पाराशर । साङ्कृत इस वर्ग का प्रवर नहीं है ।

(१४) गौतम—आङ्गिरस, औच (त) थ्य, गौतम । बृहस्पति इस वर्ग का प्रवर नहीं हो सकता ।

(१५) वत्स—भार्गव, च्यावन, आप्नवान्, और्व, जामदग्न्य । वत्स प्रवर ऋषि नहीं हैं ।

(१६) कविस्त—यदि गविष्ठर है तो आत्रेय, पौर्वातिथि (या आर्चनानस) गाविष्ठर ।

१९४१

मिश्र, अग्निहोत्री, द्विवेदी, त्रिवेदी, चतुर्वेदी आदि उपाधियाँ अन्य आवान्तर भेदीय ब्राह्मणों में भी पाई जाती हैं । अतः इनके कान्यकुब्जों में पाए जाने से यह सिद्ध नहीं होता कि "इनकी विद्वत्ता की प्रखर ज्योति के सामने अन्य ब्राह्मण निस्तेज मालूम पड़ते थे ।"

इस लेख के लिखने का हेतु इतिहास की शुद्धता के अतिरिक्त यह भी है कि ब्राह्मण पाठक समझ जावें कि



इस बार बम्बई की पाश्चात्य एवं एङ्गलो-इण्डियन महिलाओं ने सन्धि-दिवस (Armistice Day) बड़ी धूम-धाम से मनाया था । वे सड़कों पर 'पॉपीज़' बेच रही हैं ।

गौड़, कान्यकुब्ज आदि अवान्तर-भेद है, जाति-भेद नहीं । तथा यह भेद-भाव प्राचीन नहीं है, केवल लगभग ७०० वर्ष का पुराना है । और अवान्तर-भेद वा उपभेद का विचार न करके समस्त ब्राह्मणों को एक वर्ण मान कर परस्पर विवाह सम्बन्ध करने से प्राचीन मर्यादा भङ्ग नहीं होती ।

मैं आशा करता हूँ कि ब्राह्मण पाठक और पाठिकाएँ इस विषय पर पक्षपात छोड़ कर विचार करेंगे ।

बिहार के गाँधी, त्याग-मूर्त्ति बाबू राजेन्द्रप्रसाद जी

[एक सत्याग्रही विद्यार्थी]



ज भारतमाता पराधीनता की बेड़ियों से जकड़ी हुई नाना प्रकार के अत्याचार सह रही है। सौभाग्य से माता की बेड़ी काटने वाले भी अनेक वीर पैदा हो गए हैं। उन वीरों में 'बिहार के गाँधी' कहलाने वाले श्री० राजेन्द्रप्रसाद जी का स्थान बहुत ऊँचा है। यहाँ आपका संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

जन्म और वंश-परिचय

श्री० राजेन्द्र बाबू का जन्म सन् १८८४ ई० की तीसरी दिसम्बर को बिहार प्रान्त के छपरा-ज़िलान्तर्गत जीरादेई नामक ग्राम में हुआ था। आपके पूज्य पिता वैद्य-भूषण बाबू महादेवसहाय जी एक सुप्रसिद्ध कायस्थ ज़मींदार एवम् यशस्वी वैद्य थे। बाबू राजेन्द्रप्रसाद जी दो भाई हैं। आपके बड़े भाई माननीय बाबू महेन्द्रप्रसाद जी हैं, जो पहले काउन्सिल ऑफ़ स्टेट के प्रभावशाली सदस्य थे। परन्तु कॉङ्ग्रेस की आज्ञा पालन कर उक्त पद त्याग कर देश-सेवा कर रहे हैं। राजेन्द्र बाबू के दो सुपुत्र भी हैं। बड़े का नाम बाबू मृत्युञ्जयप्रसाद जी, बी० ए० है तथा छोटे का नाम बाबू धनञ्जयप्रसाद है, जो वर्तमान आन्दोलन में छपरा ज़िला के 'डिक्टेटर' हैं। आपका सारा परिवार ही देश-सेवा में लीन है।

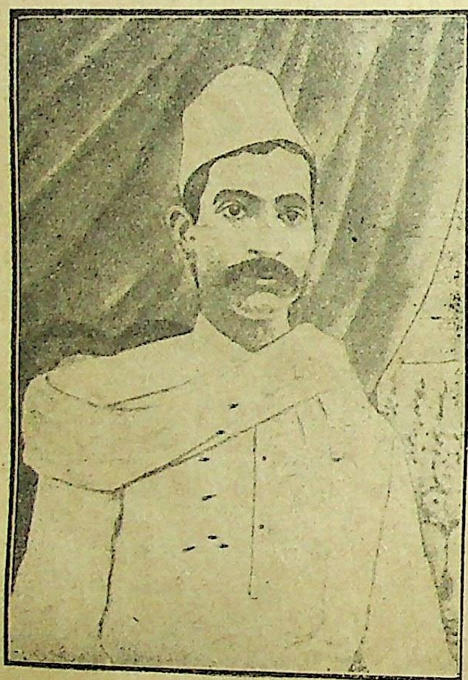
विद्यार्थी-जीवन

श्री० राजेन्द्र बाबू का विद्यार्थी-जीवन आदर्श जीवन है। पहले-पहल आप ग्राम की एक पाठशाला में बैठाए गए। आपको उर्दू और फ़ारसी की शिक्षा दी गई। केवल आठ साल की छोटी आयु में आपने फ़ारसी की अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। इसके बाद पटने के एक मिडिल स्कूल में आप हिन्दी-अङ्गरेज़ी पढ़ने लगे। मिडिल-परीक्षा में आप सर्व-प्रथम आए। छात्रवृत्ति के साथ ही आपको एक रजत-पदक भी मिला। यहीं से जो स्कॉलरशिप मिलना आरम्भ हुआ, विद्यार्थी-जीवन तक मिलता ही गया। इसके बाद छपरा ज़िला स्कूल से कलकत्ता यूनिवर्सिटी में एन्ट्रेन्स की परीक्षा में आप यूनिवर्सिटी भर में फ़र्स्ट हुए। आपके पहले कोई भी बिहारी कलकत्ता यूनिवर्सिटी में फ़र्स्ट नहीं हुआ था। इसलिए आप 'बिहार-रत्न' कहलाने लगे। छात्र-वृत्ति के साथ ही स्वर्ण-पदक तथा कई अन्य पारितोषिक भी आपको मिले। अब आप कलकत्ता के प्रेज़िडेन्सी कॉलेज में पढ़ने लगे। क्रमशः एफ़० ए० और बी० ए० में भी आप कलकत्ता यूनिवर्सिटी में फ़र्स्ट हुए। छात्रवृत्ति के साथ ही कई स्वर्ण-पदक मिले। इसी समय आपका परिचय एक अङ्गरेज़ से, आपके प्रिन्सिपल ने यह कहते हुए कराया था कि—"This is the man who never stood second in the University" अर्थात्—"यह वही आदमी है जो कभी भी यूनिवर्सिटी में सेकेण्ड नहीं हुआ।" पाठकों को यह जान कर आश्चर्य होगा कि आप 'फ़ुटबॉल' आदि खेलों के भी अच्छे खिलाड़ी थे। बी० ए० पास करने के बाद आप अपनी 'फ़ुटबॉल-टीम' के कैप्टेन भी हो गए। इस खेल में भी आपको पारितोषिक मिला था। जब आप एम० ए० क्लास में पढ़ रहे थे, उसी समय क़ानून का भी अध्ययन करने लगे। एम० ए० परीक्षा के साथ ही बी० एल० परीक्षा भी दी। दोनों में प्रथम श्रेणी में छात्रवृत्ति के साथ पास हुए। परन्तु अबकी बार यूनिवर्सिटी में फ़र्स्ट नहीं हुए। इससे आपको हार्दिक दुःख हुआ। पुनः यूनिवर्सिटी भर में फ़र्स्ट होने की आपने दृढ़ प्रतिज्ञा ठानी। कुशाग्र बुद्धि तथा परिश्रम द्वारा एम० एल० परीक्षा में आप इतने अधिक नम्बर लाए कि उतने कलकत्ता यूनिवर्सिटी में उस समय तक कोई नहीं ला सका था। अबकी बार आप सारे भारतवर्ष में फ़र्स्ट हो गए। आपका नाम सारे देश और विदेशों में भी फैल गया। आप विद्यार्थी-समाज के आराध्य एवं पथ-प्रदर्शक नेता बन गए। विद्यार्थी-जीवन ही में आपने 'बिहारी-छात्र सम्मेलन" नाम की संस्था को जन्म दिया, जो अब तक बिहारी विद्यार्थियों का उपकार कर रही है। आप लड़कपन ही से सादे वेष में रहते हैं। आज तक किसी ने

आपको पान तक खाते हुए न देखा होगा। आपके विद्यार्थी-जीवन का फ़ोटो मैंने अपनी आँखों से देखा है। उस समय आप किसी गुरुकुल के ब्रह्मचारी प्रतीत होते थे। शौक़ की तो क्या बात, कोट तक बदन पर नहीं है। केवल एक धोती, एक कुरता, एक सादी टोपी तथा एक पञ्जाबी जूता पहने हुए हैं।

अध्यापकी और वकालत

विद्यार्थी-जीवन के बाद श्री० राजेन्द्रप्रसाद जी कलकत्ते के प्रेज़िडेन्सी कॉलेज में अङ्गरेज़ी के प्रोफ़ेसर हुए।



बाबू राजेन्द्रप्रसाद जी

आप गत २१ वीं दिसम्बर को ६ मास का कारावास-दण्ड भोग कर हज़ारीबाग़ जेल से मुक्त किए गए हैं।

आप विद्यार्थियों को पाठ्य पुस्तकों के अतिरिक्त राजनैतिक एवं धार्मिक उपदेश भी देते थे। इसी समय से धर्म और नीति का अध्ययन करने लगे। कुछ दिनों के बाद आप मुज़फ़्फ़रपुर (बिहार) के भूमिहार-ब्राह्मण-कॉलेज में अङ्गरेज़ी के प्रोफ़ेसर होकर चले गए। आप ही इस कॉलेज के प्रिन्सिपल भी होने वाले थे; पर कई अनिवार्य कारणों से आपने कॉलेज से सम्बन्ध छोड़ दिया। सन् १६११ ई० में ३७ वर्ष की उम्र में कलकत्ता हाईकोर्ट में आप वकालत करने लगे। आपके क़ानून सम्बन्धी ज्ञान का लोहा बड़े-बड़े जज तक मानते थे। आप शीघ्र ही कलकत्ते के एक सुप्रसिद्ध वकील हो गए। सन् १६१६ ई० में पटना हाईकोर्ट खुलने पर आप पटना में वकालत करने लगे। पटना हाईकोर्ट में आपकी वकालत यहाँ तक चमकी कि शीघ्र ही हाईकोर्ट की जजी के लिए आपका नाम लिया जाने लगा। उस समय आपकी मासिक आमदनी लगभग पन्द्रह हज़ार के थी। अपनी चलती वकालत त्याग कर आप महात्मा गाँधी के साथ चम्पारन चले गए। वहीं से आपका सार्वजनिक जीवन आरम्भ हुआ।

चम्पारन-सत्याग्रह

सन् १६१७ ई० के अप्रैल मास में महात्मा गाँधी जी पहले-पहल बिहार में आए। आपने राजेन्द्र बाबू का नाम सुन रक्खा था। अतएव आते ही वे पटना में राजेन्द्र बाबू के यहाँ पहुँचे। आपने राजेन्द्र बाबू की सहायता चाही, और वे फ़ौरन अपने परम मित्र बिहार के वयोवृद्ध नेता ब्रजकिशोर बाबू के साथ चम्पारन गए। उस समय निलहे-गोरों का अत्याचार ग़रीब किसानों पर अत्यन्त बढ़ गया था। चारों तरफ़ त्राहि-त्राहि मची हुई थी। उस समय राजेन्द्र बाबू और ब्रजकिशोर बाबू आदि नेताओं के साथ चम्पारन का सत्याग्रह महात्मा जी ने चलाया। सत्याग्रह का शङ्ख बजा और घोर आन्दोलन शुरू हुआ। राजेन्द्र बाबू तथा ब्रजकिशोर प्रसाद जी ने सारा ख़र्च अपनी जेब से दिया। सत्याग्रह की विजय हुई, निलहों का राज्य सर्वदा के लिए चम्पारन से चला गया। राजेन्द्र बाबू के सेवा-भाव को देख कर महात्मा जी भी दङ्ग रह गए। आपकी प्रशंसा करते हुए महात्मा जी ने 'अपनी आत्म-कथा' के दूसरे भाग में लिखा है कि—"राजेन्द्र बाबू और ब्रजकिशोर बाबू की जोड़ी अद्वितीय है। आपने प्रेम से मुझे ऐसा अपङ्ग बना डाला है कि आपके बिना मैं एक पग भी आगे नहीं बढ़ सकता हूँ।" पाठकों को चम्पारन के सत्याग्रह का इतिहास जानना हो तो राजेन्द्र बाबू की लिखी 'चम्पारन में महात्मा गाँधी' नामक प्रसिद्ध पुस्तक पढ़ें। सन् १६१७ ई० से आप कॉङ्ग्रेस में भाग लेने लगे।

असहयोग आन्दोलन

आप सन् १६२० ई० से पूर्ण असहयोगी बन गए। कम से कम बिहार प्रान्त में तो आपके समान कोई भी त्याग न कर सका। आपने महात्मा गाँधी का सन्देश बिहार के देहातों तक पहुँचाने का बीड़ा उठाया। सारे प्रान्त में घूम-घूम कर असहयोग का प्रचार किया। फलस्वरूप अनेक वकीलों ने अपनी चलती वकालत त्याग दी। जिनमें से बहुत से वर्तमान आन्दोलन में भी जेल में तपस्या कर रहे हैं। राजेन्द्र बाबू ने असहयोग आन्दोलन में कॉलेज और स्कूलों के बहिष्कार का प्रचार करते हुए सन् १६२० ई० में पटने में 'बिहार-विद्यापीठ' नामक राष्ट्रीय कॉलेज स्थापित किया, जो अब भी अनेक देशभक्तों को तैयार कर रहा है। आपके इस कॉलेज को, अभी थोड़े दिन हुए, बिहार के एक शिक्षा-प्रेमी ने तीन लाख रुपया दिया है। आप पहले उक्त कॉलेज में प्रिन्सिपल के पद पर थे। अब भी उसके वाइस-चान्सलर हैं। आपने ख़ासकर बिहार में चर्खे और खद्दर का प्रचार बहुत ही अच्छे ढङ्ग से किया और अब भी कर रहे हैं। स्वयं महात्मा जी ने आपकी प्रशंसा करते हुए 'हिन्दी-नवजीवन' में लिखा था—"बिहार-रत्न राजेन्द्र बाबू जिस प्रकार चर्खे और खद्दर का प्रचार कर मेरी सहायता कर रहे हैं, यदि सब प्रान्त के नेता वैसी ही सहायता करें, तो मैं विश्वास दिलाता हूँ कि स्वराज्य बहुत जल्द आप से आप मिल जाय। मुझे दूसरा कुछ काम करने की आवश्यकता ही न पड़े।" राजेन्द्र बाबू अखिल भारतवर्षीय चर्ख़ा-सङ्घ के सम्माननीय एजेण्ट हैं। खद्दर-प्रचार में महात्मा गाँधी के बाद आप ही का स्थान माना जाता है। आप नित्य नियमपूर्वक चर्ख़ा कातते हैं। आप कई प्रकार की हाथ की कारीगरी भी जानते हैं।

अन्य सेवाएँ

पटना यूनिवर्सिटी स्थापित होने पर आप ही उसके सीनेटर के पद पर बैठाए गए। आप कलकत्ता और पटना यूनिवर्सिटी के एम० ए० और क़ानून के परीक्षक भी होते थे। आपके समय में यूनिवर्सिटी का बहुत सुधार हुआ। 'अण्डर-एज' (Under age) का झगड़ा पटना यूनिवर्सिटी से आप ही ने मिटाया। आप पटना म्युनिसिपैलिटी के चेयरमैन भी थे, परन्तु रचनात्मक काम में बाधा पड़ने से उक्त पद आपने त्याग दिया। आप हिन्दी के सुप्रसिद्ध विद्वान एवं सुलेखक हैं। पटने का राष्ट्रीय पत्र 'देश' आप ही ने निकाला। बहुत दिन तक आप ही उसके सम्पादक भी थे। आपकी हिन्दी-सेवा से प्रसन्न होकर हिन्दी-संसार ने आपको अखिल भारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन कोकोनाडा तथा बिहार प्रान्तीय सप्तम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन दरभङ्गा का सभापति बनाया था। उक्त सम्मेलन जब पटना और कलकत्ता में हुआ था, तब आप ही स्वागत-मन्त्री थे। कायस्थ महासभा, जौनपुर के भी आप सभापति थे और कायस्थ जाति तो आपको श्री० चित्रगुप्त जी का दूसरा अवतार ही मानती है। सन् १६२८ ई० में आप यूरोप गए थे। कई भागों में भ्रमण कर भारत के दुःख की कथा विदेशियों को आपने सुनाया था। फ़्रान्स का जगत-प्रसिद्ध विद्वान रोमा रोलाँ ने आपके आचरण पर मुग्ध हो, आपको कई दिन तक अपने यहाँ ठहराया था। आप कई भाषाओं के विद्वान हैं, जैसे अङ्गरेज़ी, फ़ारसी, बँगला, हिन्दी, संस्कृत, गुजराती, मराठी आदि। आप अछूतोद्धार सभा के सभापति भी रह चुके हैं।

वर्तमान आन्दोलन

सत्याग्रह संग्राम में बिहार प्रान्त के आप 'डिक्टेटर' तथा प्रान्तीय कॉङ्ग्रेस के सभापति थे। आप अखिल भारतवर्षीय कॉङ्ग्रेस महासभा की कार्यकारिणी के सदस्य थे। आप महासभा के प्रधान-मन्त्री भी रह चुके हैं। वर्तमान आन्दोलन में बिहार का नेतृत्व करते हुए तारीख़ ५ जुलाई को छपरा में आप गिरफ़्तार कर लिए गए थे। ऑर्डिनेन्स ५-६ के अनुसार आपको छः मास की सादी क़ैद की सज़ा दी गई थी। गत २१ वीं दिसम्बर को, सज़ा पूरी हो जाने पर, आप हज़ारीबाग़ जेल से छोड़ दिए गए हैं।



हिन्दू-त्योहारों का इतिहास

हिन्दू-त्योहार इतने महत्व-पूर्ण होते हुए भी, लोग इनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानते। स्त्रियाँ, जो विशेष रूप से इन्हें मानती हैं वे भी अपने त्योहारों की वास्तविक उत्पत्ति से बिलकुल अनभिज्ञ हैं। कारण यही है कि हिन्दी-संसार में अब तक एक भी ऐसी पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई है। वर्त्तमान पुस्तक के सुयोग्य लेखक ने छः मास कठिन परिश्रम करने के बाद यह पुस्तक तैयार कर पाई है। शास्त्र-पुराणों की खोज कर त्योहारों की उत्पत्ति लिखी गई है। इन त्योहारों के सम्बन्ध में जो कथाएँ प्रसिद्ध हैं, वे वास्तव में बड़ी रोचक हैं। मूल्य केवल १।।); स्थायी ग्रा० से १=) मात्र! ६,००० पुस्तकें हाथोंहाथ बिक चुकी हैं।

मूर्खराज

यह वह पुस्तक है, जो रोते हुए आदमी को भी एक बार हँसा देती है। कितना ही चिन्तित व्यक्ति क्यों न हो, केवल एक चुटकुला पढ़ने से ही उसकी सारी चिन्ता काफ़ूर हो जायगी। दुनिया की झञ्झटों से जब कभी आपका जी ऊब जाय, आप इस पुस्तक को उठा कर पढ़िए, मुँह की मुर्दनी दूर हो जायगी। हास्य की अनोखी छटा छा जायगी। पुस्तक को पूरी किये बिना आप कभी न छोड़ेंगे—यह हमारा दावा है।

भाषा अत्यन्त सरल तथा मुहावरेदार लिखी गई है। पुस्तक की छपाई और काग़ज़ के बारे में प्रशंसा करना व्यर्थ है। मूल्य केवल २)

व्यवस्थापिका—
'चाँद' कार्यालय,
चन्द्रलोक, इलाहाबाद

"त्रिया-चरित जाने नहीं कोय"

[श्री० मोहनलाल जी बड़जात्या]



केवल यही नहीं कि यह एक हिन्दी का वाक्य हो, बल्कि संस्कृत में भी कहा गया है कि "स्त्रियश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं देवो न जानाति कुतो मनुष्यः" "स्त्री का चरित्र कोई नहीं जान सकता।" इस कहनगत का केवल यही साधारण अर्थ नहीं है कि स्त्री का चरित्र कोई नहीं जान सकता। पर दुःख है कि इसके भीतर नारी-जाति के प्रति लाञ्छन का भाव छिपा हुआ है। जो रमणी संसार का सार, गृहस्थ-आश्रम का प्रधान अवलम्ब है, जिसके बिना पुरुष पूर्णाङ्ग नहीं होता—चाहे जितना बड़ा पुरुष हो, पर संसार-यात्रा में जिसने नारी को जीवन-सङ्गिनी नहीं बनाया, वह पूर्णता प्राप्त नहीं कर सकता। इसीलिए हमारे यहाँ स्त्री को अर्द्धाङ्गिनी कहा गया है—उसी रमणी के प्रति इस स्वार्थी, अभिमानी मनुष्य ने यह वाक्य कैसे गढ़ दिया, यह समझ में नहीं आता। नारी के प्रेम, स्नेह, भक्ति, श्रद्धा, दया, ममता, मोह आदि गुणों की समता यह पुरुष कदापि नहीं कर सकता। उसके इन गुणों के वर्णन के लिए यहाँ पर्याप्त स्थान नहीं है, हमारे प्राचीन शास्त्र इस वर्णन से भली-भाँति भरे हैं। और गुणों को जाने दीजिए, एक प्रेम ही को लीजिए। नारी प्रेममयी ही नहीं, वरन् प्रेम की मूर्त्ति है। प्रेम के प्रभाव से वह क्या नहीं कर सकती, प्रेमी को वह क्या नहीं दे सकती? वह अपने प्रेमी के दोष पहचान नहीं पाती, प्रेम उसके प्रेमी के सब दोषों को छिपा लेता है। इसीलिए दम्पति में नारी जिस प्रकार पुरुष को प्राण और मन अर्पण करके प्रेम करती है, पुरुष वैसा कभी नहीं कर सकता। नारी का प्रेम ही पुरुष को प्रेमी बनाता है। पुरुष का प्रेम प्रायः स्वार्थपूर्ण एवं काम-वासनायुक्त देखा जाता है, पर नारी का ऐसा नहीं। नारी का प्रेम उसका सर्वस्व है, पुरुष का प्रेम उसके जीवन के कई भावों में से एक स्वतन्त्र भाव मात्र है। इसीलिए बायरन ने कहा है :—

> Man's love is of man's life a thing
> apart.
> 'Tis woman's whole existence.

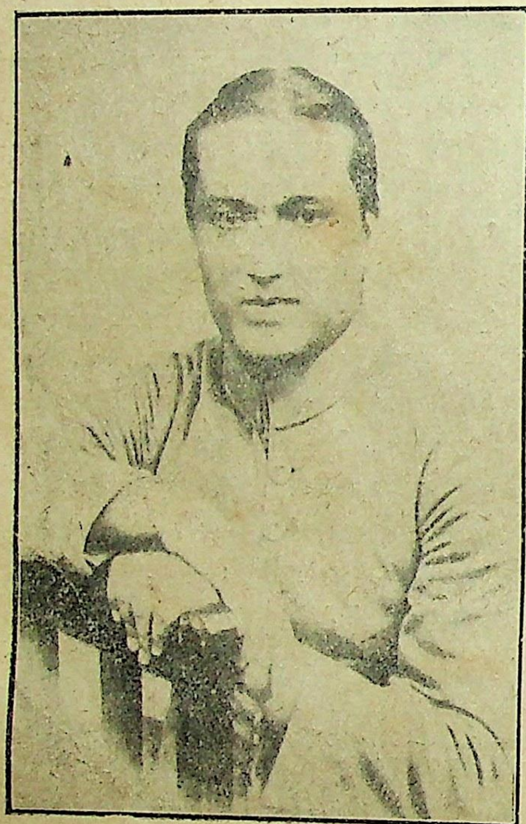
कृष्ण-प्रेमिका गोपियों ने कृष्ण-विरह में जिस प्रकार सारे विश्व को कृष्णमयी देखा, उसी प्रकार प्रेममयी नायिका नायक के विरह में उसी की चिन्ता में पागल हो जाती है, उसे और कुछ नज़र नहीं आता। इसीलिए सत्यवान के लिए सावित्री ने जो त्याग स्वीकार किया, वैसा सत्यवान सावित्री के लिए कभी नहीं कर सकता। नल के विरह में दमयन्ती की जो दशा हुई, दमयन्ती के विरह में नल की वैसी दशा न हुई। राम के विरह में सीता किस तरह से ज्ञान-शून्य हो गई, पर सीता-विरही राम ने एक विराट युद्ध का आयोजन कर राक्षस वंश का नाश किया। सीता-प्रेमी रामचन्द्र ने समाज-हित के लिए या कर्त्तव्यवश जानकी को घर से बाहर तक कर दिया, पर निरपराधिनी, निर्वासिता सीता अपने प्रेमी पर क्रुद्ध न होकर केवल कहती है :—

> साहं तपः सूर्य निविष्ट दृष्टि,
> ऊर्द्ध्वं प्रसूतेश्चरितुं यतिष्ये।
> भूयो यथा मे जननान्तरेऽपि
> त्वमेव भर्ता न च विप्रयोगः।

"तुमने निश्चय ही अविचार किया है, पर तो भी जन्मान्तर में मैं तुमको ही पाने के लिए कठिन तपस्या करूँगी।" यह बात ऐसी दशा में कोई भी पुरुष अपनी स्त्री के प्रति नहीं कह सकता।

इस तरह की अपनी जीवन-सङ्गिनी, सहचरी, अनन्य-भक्ता, सेवापरायण स्त्री-जाति के प्रति "त्रिया-चरित जाने नहीं कोय" वाक्य कह कर, पुरुष-जाति ने अपने दुष्ट, पाषाण-हृदय का पता देकर भारी अन्याय किया है। हम यह नहीं कहते कि सभी स्त्रियाँ सीता, सावित्री हैं। मान लीजिए, किसी ग्राम में एक विधवा के गर्भ रह गया या वह किसी के साथ भाग गई, या किसी दादा के सदृश वृद्ध पति वाली चञ्चला स्त्री अपने वृद्ध खूसट पति के चरणों

में अपना मन स्थिर न रख कर पड़ोसी नवयुवक को अपने मकान की छत पर से झाँकती है, या सिर पर घड़ा रख कर जल-स्थान पर इधर-उधर जाती है। गाँव के लोग मिल कर उसकी चर्चा का तूल मचा देते हैं और चट से नीति-वाक्य "त्रिया चरित जाने नहीं कोय" मुँह पर ले आते हैं। हम कहते हैं कि यदि गाँव भर में एकाध ऐसा उदाहरण निकल आया तो उससे यह वाक्य



श्री० शफ़ी अहमद

आप हैदराबाद के उस्मानिया कॉलेज के प्रतिभाशाली छात्र हैं, जो हाल ही में डोवर से राम्स गेट तक (२२ मील) सफलतापूर्वक तैरे थे।

कदापि प्रयुक्त नहीं हो सकता। कहना होगा कि ऐसी एकाध घटना नितान्त असम्भव न होने पर भी हमारी नारी-जाति के चरित्र के प्रति ऐसी लाञ्छना वाला वाक्य या जिसे एक आम घोषणा कहना चाहिए—करके इस मानव-पशु ने अपने हज़ारों अन्यायों में एक और अन्याय की अभिवृद्धि की है।

समाज में ऐसी सदाचारिणी स्त्री का अस्तित्व मान लेने पर भी इस तरह के वाक्य की उपयुक्तता नहीं ठहर सकती। जो यमराज द्वारा आमन्त्रित वृद्ध, अशक्त नर-राक्षस अपने पैसे या किसी अन्य साधन के बल पर एक अबोध बालिका को फाँस लाया है, वह भली-भाँति जानता है, जान सकता है या अनुमान लगा सकता है कि उसकी नवयुवती भार्या कामदेव के वेग को न सँभाल सकने पर क्या करेगी। इसमें न जानने वाली कुछ भी बात नहीं है। वह अच्छी तरह जानते हुए भी भोला बने तो उसकी मर्ज़ी है। इसी भाँति एक उच्छृङ्खल नवयुवक घर पर अपनी परम सुन्दरी नवयौवना भार्या की कुछ परवाह न करके रात्रि भर व्यभिचार के बाज़ार में गश्त लगाता है और घर की व घरवाली की कुछ सुध नहीं लेता। यदि उसकी पत्नी संयमशीला न रह सके तो क्या वह अपने कुचरित्र के साथ ही साथ गृहिणी के चरित्र के लिए भी दोषी नहीं है? कहने की आवश्यकता नहीं कि हमारी नारी-जाति का चरित्र इतना उज्ज्वल, आचरण इतना पवित्र और आदर्श इतना उच्च है कि जिसकी समता पुरुष कदापि नहीं कर सकता। इसलिए इस वाक्य का अर्थ स्त्री-जाति के चरित्र पर लाञ्छन के अर्थ में कभी नहीं माना जा सकता और यदि पुरुष उक्त वाक्य को मुँह पर लाता है, तो कहना होगा कि वह अपनी करतूत का फल प्रगट होने पर अपना दोष छिपाने के लिए इस कहावत की शरण लेता है।

हमारी नारी-जाति का चरित्र इतना उच्च और आदर्श है कि उसी के बल पर आज भी हमारा गार्हस्थ्य संसार टिका हुआ है। उसके चरित्र के विषय में कोई भी प्रश्न नहीं रहता। अब यदि उक्त वाक्य का यही अर्थ किया जाय कि वह क्या करती है, सो कोई नहीं जान सकता, तो कहना होगा कि वह क्या करती है, उसमें से पुरुष कुछ भी नहीं जान सकता। यह बात कदापि नहीं है। उसकी कोई बात पुरुष न जाने या न जान सकता हो, यदि यही माना जाय तब भी इसका कारण क्या है, यह पता लगाने पर कहना होगा कि इस विषय में सर्वांश जानने का मार्ग स्वयं पुरुष ने ही अवरुद्ध कर दिया है। यदि स्त्री की कई बातें कितने ही अंशों में नहीं जानी जाती हैं, तो इसके लिए भी पुरुष ही दोषी ठहरेगा और आश्चर्य है कि ऐसा होने पर भी उसने अपने ही

दोष का सब भार एक कहावत गढ़ कर टाल दिया। बात यों है कि इस संसार में स्त्री-पुरुष का जोड़ा एक दूसरे का अर्द्धाङ्ग होने पर भी पुरुष प्रतिपालक और स्त्री प्रतिपालित है। इस प्रकार का सम्बन्ध इतने काल से चला आ रहा है कि उसकी प्रत्येक बात को भली-भाँति जानने का मानो उपाय ही नहीं रहा है। प्रतिपालक के समक्ष प्रतिपालित को कई बातें छिपानी होती हैं और कई भाव बनाने पड़ते हैं, उसी भाँति चिर-प्रतिपालक पुरुष के समक्ष चिर-प्रतिपालित स्त्री-जाति की कई बातें गुप्त रहनी पड़ेंगी। जो चरित्रगत स्वाधीनता चरित्र-विकाश का एकमात्र पथ है, वह उसे प्राप्त ही कहाँ है! इसीलिए यदि पूर्णरूप से स्त्री-चरित्र नहीं जाना जा सकता तो उसका कारण स्त्री का कोई जाति-स्वभाव नहीं है, वरन् उस पर पूर्ण अधिकार-प्राप्त पुरुष-जाति पर ही इसका कारण ठहरता है।

वर्तमान समय में ही नहीं, बल्कि प्राचीन काल से—इतना प्राचीन कि जिसे मनुष्य-जाति का आदि-काल ही क्यों न कह दिया जाय—स्त्री-जाति को पुरुष-जाति के सहवास में रहना पड़ा है। पुरुष-जाति की चाहे जैसी दशा रही हो, वह चाहे धर्मात्मा, पवित्र, न्यायवान हो चाहे स्वार्थी, कलह-परायण, उच्छृङ्खल, निष्ठुर ही क्यों न हो, स्त्री को उसी के साथ जीवन यापन करना पड़ा है। इसी पुरुष-जाति के समक्ष अपने मन के भावों को गुप्त रख कर स्त्री-जाति को चलना पड़ा है। मनुष्य हो चाहे अन्य कोई जीव हो, जिस अवस्था में रहता है, क्रमशः तदुपयोगिता धारण कर लेता है। अर्थात् वैसी ही प्रकृति गठित हो जाती है, इसमें किसी का कुछ वश नहीं चलता। जिसे दूसरे का मुँह जोह कर चलना पड़ता है, उसे अपने मन की बहुत सी कथा, हृदय की अनेक व्यथा, चित्त का वेग एवं कामना गुप्त रखना ही होता है। परतन्त्रता सब बुराइयों की जड़ है। कौन नहीं जानता कि एक सेवक को अपने स्वामी के प्रति क्या-क्या भाव नहीं बनाने पड़ते हैं। यदि उक्त कहावत थोड़ी-बहुत भी सच है, तो उसका भी कारण चिरकाल से स्त्री-जाति का पुरुष-जाति के आश्रित चली आना ही है। पुरुष स्त्री को स्वतन्त्रता दे दे और देखे कि यह कहावत कितने क्षण ठहरती है। यदि यह कहावत किसी भी अंश में सच है तो निश्चय ही उसका कारण पुरुष-जाति है।

देखना चाहिए कि स्त्री को पुरुष के साथ कैसी-कैसी दशा में रहना पड़ता है। किसी पड़ोसिन के कान में नवीन बालियाँ या कोई सुन्दर वस्त्र पहिने देख कर उसके साथ अपने कर्णाभूषण और जीर्ण वस्त्र के साथ तुलना करने से स्त्री के मन में पीड़ा पैदा हो, तो उसे मन में ही रखना पड़ता है और वह अपने दुःख, ईर्ष्या या अभिमान को साहसपूर्वक मुँह से बाहर नहीं निकाल सकती—हीनावस्था के कारण अपने स्वामी के समक्ष ज़ोरदार शब्दों



ख़ान बहादुर ख़्वाजा मोहम्मद नूर, सी० आई० ई०
आप श्री० पी० आर० दास की जगह पटना हाईकोर्ट के जज नियुक्त हुए हैं।

में वह दो बात भी कह नहीं पाती। अपने लिए चार-चार जोड़ी जूता मौजूद रहने पर भी पतिदेव सन्ध्या-समय के लिए पम्प-शू की एक बढ़िया जोड़ी लाने में देर नहीं करेंगे; पर एक साधारण सी वस्तु के लिए गृहिणी की माँग को प्रतिदिन कुछ न कुछ कह कर न जाने कितनी बार टाल दिया जाता है और अन्त में जब वह आँखों में आँसू लाकर अपनी माँग पेश करती है, तब कहीं सुनाई होती है। घर में पहिनने को केवल एक जोड़ा

साड़ी का है, सो भी कितना मैला और कितनी जगह से सिलाई किया हुआ। उसी को वह सुबह सुखा कर शाम को और शाम को सुखा कर सुबह पहिन लेती है। कड़ाके की ठण्ड पड़ती हो, चाहे असह्य गर्मी हो, उसे बड़े तड़के उठ कर जब तक सब सो न जायँ, गृहस्थी का कारबार चलाना ही पड़ता है। काम में उसे ठण्ड या गर्मी कुछ मालूम ही नहीं पड़ती, और न उसे अपने पतिदेव के बढ़िया से बढ़िया सर्ज़, काश्मीरे के कोट और सूटों पर कुछ ईर्ष्या ही होती है। रात्रि को बाहर जाने के लिए एक ८ रुपए गज़ के कपड़े का बढ़िया सिलाई का चेस्टर कम्पनी में और तैयार करवा लिया गया है, पर गृहिणी के लिए एक गज़ कपड़ा लाना तक याद नहीं रहता।

पति जी थिएटर से निकलने पर अधिक रात बीती जान कर समीपस्थ मित्र के यहाँ सो गए। उन्होंने विचार किया, कौन घर चले—चलो यहीं सो जायँ सुबह उठ कर चले चलेंगे! पर उधर गृहिणी उनके न आने पर रात भर व्याकुल रही, नींद न आई और उसे चैन न पड़ा। पति के लौटने पर यदि वह पूछ बैठती है कि रात को कहाँ रहे? तो सीधा जवाब देने के बदले कि, थिएटर में गया था और रात अधिक बीत जाने के कारण एक मित्र के यहाँ सो गया—शौहर साहब चट से पाजामे के बाहर होकर फ़र्माते हैं—"कहाँ रहा था! राँड़ के यहाँ रहा था।" कहीं भी रहे हों, पत्नी बेचारी कर ही क्या सकती है। अपने पति की दुष्प्रवृत्ति की निवृत्ति के लिए उपाय, परिश्रम और फ़िक्र भी उसी को करना पड़ता है। अपने दुराचार की पतिराम को कुछ भी चिन्ता या विचार नहीं, प्रत्युत बेचारी पत्नी को ही पति-सुधार के लिए मिन्नतें मनानी पड़ती हैं, देवी के सम्मुख प्रार्थना करनी पड़ती है कि किसी प्रकार उसके पति को सद्बुद्धि प्राप्त हो। अब देखिए, यदि स्त्री कहीं एकाध मिनिट के लिए अपने मन बहलाने अपनी सखी, सहेली या पड़ोसिन के पास चली जाती है, तो घर लौटने पर पति की गर्मी का पारा अन्तिम डिग्री को पहुँच जाता है और 'राँड़ कहाँ गई थी' यही प्यार-भरे शब्द मुँह से निकलते हैं। इसी भाँति अपने किसी पितृ-पक्ष के सम्बन्धी से भी वह बात करती देख ली जाती है, तो पति महाराज 'राँड किससे बात कर रही थी?' आदि कह कर चट से पिनल-कोड का चार्ज लगा देते हैं। इतना ही नहीं इन मर्म-भेदी वाक्यों से ही उस बेचारी को छुटकारा नहीं मिल जाता, बल्कि अनुचित सन्देह हो जाने से उसे दूर करने के लिए उसको सैकड़ों उपाय करने पड़ेंगे एवं उसमें कृत-कार्य होने पर ही उसका कल्याण है। क्या किया जाय, इस बात में उस बेचारी को सिद्ध-हस्त होना पड़ता है। इस काम के लिए जो राह-रीति, तन्त्र-मन्त्र हैं, उन सब में उसे निपुण होना पड़ता है।

पुरुष अपनी परिणीता पत्नी की छाती पर एक या अधिक सौत ही नहीं ले आता, बल्कि उसके सम्मुख खुला व्यभिचार करने में भी नहीं सकुचाता; वह अपनी आचरण सम्बन्धी कमज़ोरियों को अपनी जीवन-सङ्गिनी से छुपाने की कुछ परवाह तक नहीं करता। इन सब सैकड़ों बातों की आग पत्नी को मन में छिपा कर ऊपर से अपने आराध्य देवता, पति परमेश्वर के प्रति सद्भाव, सद्भक्ति और शुभाकांक्षा दिखाना ही नहीं पड़ता, बल्कि उसके हृदय में ये गुण ओत-प्रोत भरे भी मौजूद रहते हैं। आँखों से जल का स्रोत बहाना उसके बाँए हाथ का खेल है। झूठ को वह इस तरह से सजा कर बोल सकती है कि मानो मूर्तमान सत्य भी उसके सामने झूठ हो जायगा। इसी भाँति वह मन की बात छिपाने में अभ्यस्त हो गई है और उसके चित्त में यह अभ्यास ऐसा बना हुआ है कि उसकी बात बाहर निकाल लेना कठिन ही नहीं, बल्कि असम्भव है। इस सबका कारण यही है कि उसे उच्छृङ्खल, निष्ठुर तथा स्वार्थ पर मनुष्य के हाथों न जाने क्या-क्या सहना पड़ता है। क्षुधा की वेदना, अपमान, यातना, तर्जना, भर्त्सना, लाञ्छना, यहाँ तक कि घर से निर्वासन तक की मर्म-पीड़ाएँ उसे सहनी पड़ती हैं। अनेक दिन अनाहार या अल्पाहार रह कर स्वामी और पुत्र की सेवा करना पड़ता है। पुरुष की बीमारी में उसकी शय्या के पास बैठी-बैठी धात्री और चिकित्सक का कार्य वह इस तरह निभाती है कि अपने शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक स्वच्छन्दता, सुविधा-असुविधा सब कुछ भूल कर रोगिणी ही बन जाती है। क्रोधी एवं निर्दय पुरुष के हाथों प्रहारित होने पर वह उसके विरोध में एक शब्द भी नहीं कहती; बल्कि सारी यातनाएँ सहते हुए भी वह उसके प्रेम की भूखी रहती है। जिस मुख से उसके लिए अनेकों अपशब्द निकलते

है, उसी मुख पर हास्य-रेखा देखने के लिए वह लालायित रहती है। यह सब कुछ उसे चुपचाप सहना पड़ता है। किसी के समक्ष अपने मन की बात, मर्म-व्यथा कहने का उसे साहस नहीं होता। क्योंकि ऐसा करने पर स्वामी के कानों कहीं यह बात पड़ जाय तो और भी अधिक अपमानित, तिरस्कृत, प्रहारित होना पड़ता है। दुखी हृदय की व्यथा उस दुखी हृदय के सिवा और कोई नहीं जानता। कातर मन की बात उस कातर मन के सिवा और कोई नहीं सुनता। जानने को तो वह अन्तर्यामी परमात्मा अवश्य जानता है, पर सुनता वह भी नहीं। शायद उसने स्त्री-जाति को पुरुष के हाथों सब कुछ सहने के लिए और ऊपर से यह "त्रिया चरित जाने नहिं कोय" सुनने ही के लिए बनाया है। यदि मन की वेदना एकदम ही असह्य हो उठे, तो भले ही समीपस्थ तरङ्गिणी की तरङ्ग में अपने नयनों की तरङ्ग या किसी जलाशय में अपनी आँखों का जल भले ही मिला कर चली आए, अथवा अपने घर की छत पर एकान्त वायुमण्डल में अपने निराशापूर्ण, कातर, यातना-पीड़ित श्वास को भले ही छिपा कर मिला दे, पर किसी के समक्ष सहानुभूति की भिक्षा माँगने या मन की व्यथा प्रकाश करने का साहस नहीं होता।

रोग, शोक, अनादर, अपमान, क्लिष्ट, आर्त, खिन्न, पीड़ित, व्यथित तथा मर्माहत होने पर भी स्त्री गृह-धर्म से उदासीन या स्वामी-सेवा से कभी विरक्त नहीं होती। जो पीड़ा होने पर पुरुष बिछौना नहीं छोड़ता, स्त्री उससे उग्रतर पीड़ा होते हुए भी यथासम्भव गृह-कार्य में सहयोग दिए बिना नहीं रहती। जिस व्याधि में पुरुष इहलोक, परलोक भूल जाता है, उससे कई गुना तीव्र बीमारी होने पर भी स्त्री सामान्य गृह-कार्य को नहीं भूलती। नन्हें बच्चे ने दूध नहीं पिया, बड़ी लड़की ने स्नान नहीं किया, चूल्हा जला या नहीं, स्वामी को पान मिला या नहीं, आदि बातें मानो उसे जपमाला हो रही हैं। पति के साथ सहस्रों अत्याचार करने पर भी वह उसके सिवा कुछ नहीं जानती। वह उसे पाँव से ठुकराता है, पर वह उन्हीं पदारविन्द का ध्यान धरती है। भोजन पास लिए बैठी ही रहती है, पति की राह जोहते वह जागती रहती है, पल, घण्टा और पहर बीत जाता है, पर उसका ध्यान पति के आगमन की ओर लगा रहता है।

स्त्री-जाति को प्रचुर काल से पुरुष का मन रख कर चलना पड़ता है। उसका मन प्राप्त करने के लिए यत्न करना पड़ता है, और चित्ताकर्षण के लिए सैकड़ों उपाय, अनुष्ठान करने पड़ते हैं। पुरुष के लिए ही शरीर की सजावट, वाक्य-चातुरी, हास्य-रेखा लाना पड़ता है एवं सेवा द्वारा उसे अपने वशीभूत करना पड़ता है। इसीलिए स्त्री-चरित्र में इन सब बातों का बड़ा भारी सन्निवेष पाया जाता है। इसीलिए स्त्री के चरित्र में पुरुष को मोहित, वशीभूत रखने के योग्य अत्यन्त बलवती चेष्टा, एवं कई विलास-वैभव के रङ्ग-ढङ्ग पाए जाते हैं, इसीलिए उसके चरणों में मेंहदी, ओठों में मिस्सी, नयनों में काजल, और समस्त देह पर असंख्य आभूषणों का आयोजन है। पुरुष ही के लिए उसका सब कुछ है और उसीके लिए वह सब कुछ करती है। इसी में यदि उसका चरित्र गुप्त है तो वह भी पुरुष ही के लिए है और वही इसके लिए उत्तरदायी है, स्त्री का इसमें कोई दोष नहीं। पुरुष अपने चरित्र सम्बन्धी भयङ्कर से भयङ्कर बात या दोष भी प्रकट हो जाने में कुछ भी सङ्कोच या भय नहीं करता, किन्तु स्त्री के लिए एक अत्यन्त तुच्छ बात—जिसे दोष तो किसी दशा में नहीं कह सकते, बल्कि एक सन्देह मात्र कहना चाहिए—भी प्रकट हो जाने में न जाने कितना विचार करता है और अन्त में उसका गुप्त रहना ही चाहता है। इसलिए स्त्री का चरित्र जाना जाता है या नहीं, इसका कारण या उत्तरदायित्व पुरुष पर ही है, स्त्री पर नाम मात्र को भी नहीं। कहावत बनाना पुरुष के हाथ में है, सो वह चाहे जैसी बना दे; उसे कौन मना करता है।



अन्धी

['मुक्त']



सुनयना अगर अन्धी थी, तो इसमें उसका क्या दोष था, यह बात अपने जीवन में वह कभी न समझ सकी। उसने समझने की चेष्टा ही न की हो, यह बात नहीं; उसने अनेक बार, गम्भीरता-पूर्वक इस प्रश्न पर विचार किया था, लेकिन सदा ही यह बात उसे एक अबोध्य पहेली जान पड़ी थी।

सुनयना सुन्दरी थी। उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग से लावण्य की आभा फूटी पड़ती थी। काले-काले, जानुओं तक लटकते हुए, उसके घुँघराले बाल थे, सँवारी हुई नाक थी, सुन्दर गोल-गुलाबी गाल थे, मुँह में—हँसी से सदा ही खिली रहने वाली—चमकते हुए, सुन्दर दाँतों की श्रेणी थी; किन्तु यौवन के मद से भरी हुई दो अनियारी आँखों के अभाव में उसके सारे सौन्दर्य का सारा मूल्य नष्ट हो गया था। हाय! वह कैसी अभागिनी थी।

सुनयना जन्मान्ध थी। वह जन्म की अभागिनी भी थी। माता-पिता का सुख वह अपने जीवन में नहीं जान सकी। जब वह गर्भ में थी, पिता का देहान्त उसी समय हो गया। प्रसव होने के डेढ़ महीने बाद, प्रसूत-ज्वर से माता ने भी इस संसार का त्याग कर दिया। डेढ़ महीने की अनजान बालिका शायद संसार में पग-पग पर प्रताड़ित और लाञ्छित होने के लिए ही इस संसार में बनी रही।

मामा के आश्रय और मामी के स्नेह की छाया में रह कर सुनयना ने यौवन की देहरी पर पाँव रक्खा। उसके मामा अतुल के घर में अतुल सम्पत्ति होते हुए भी उसके भोग करने का अधिकारी कोई नहीं था। इसीसे अतुल तथा उनकी स्त्री चपला का सारा आदर-यत्न और स्नेह-ममता—स्वभावतः ही—अन्धी सुनयना पर ढल पड़ा।

सुनयना जिस समय चौदह वर्ष की हुई, उस समय चपला ने एक पुत्र-रत्न प्रसव किया। पुत्र-प्राप्ति का एक मात्र कारण सुनयना को समझ कर, मामा-मामी की माया-ममता उसके प्रति और भी बढ़ गई। किन्तु यह भाव बहुत दिनों तक न रह सका। नवजात शिशु ज्यों-ज्यों बड़ा होने लगा, उसने अपने पिता-माता की समस्त कोमल वृत्तियों पर एकान्त अधिकार स्थापित कर लिया और उन लोगों के मन में सुनयना के प्रति कोई आकर्षण न रह गया। क्रम से उस घर में सुनयना की उपेक्षा, तिरस्कार और फिर अपमान भी होने लगा।

सुनयना चुपचाप सब कुछ सह लेती थी। अनेक बार वह सोचती कि जिसे देखने का अधिकार विधाता ने नहीं दिया, वह मौन होकर सबकी उपेक्षा और सबका तिरस्कार क्यों न सहेगा? अन्धे का जन्म ही शायद इसीलिए होता है।

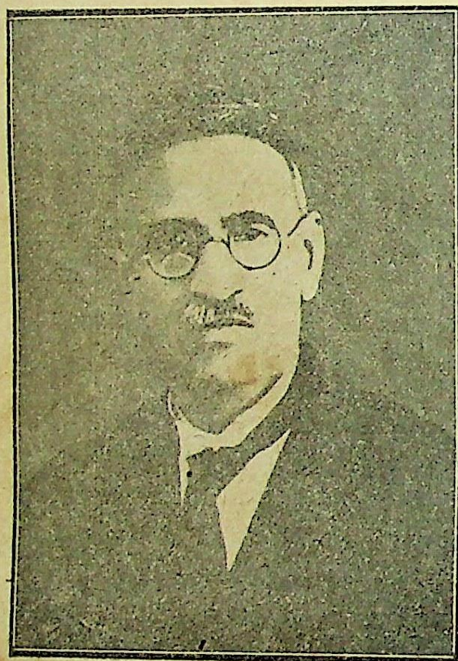
शान्ति और सहनशीलता की सुनयना प्रति मूर्ति थी; वह सबकी उपेक्षा, सबका तिरस्कार मौन रह कर ही सह लेती थी। किन्तु अपने न देख सकने की पीड़ा उसे प्रति क्षण व्यथित करती रहती थी। बड़ी-बूढ़ियाँ जब उसे देखतीं तो कहतीं—अहा! बेचारी कैसा भाग्य लेकर आई थी! इतना सुन्दर गुलाब जैसा खिला हुआ मुखड़ा और दो आँखों के बिना......

'आँखों' का उल्लेख होते ही सुनयना सिहर उठती थी। क्यों सारा संसार उसके एकान्त को स्पर्श करने के लिए व्याकुल हुआ रहता है?

अपनी हमजोलियों से वह पूछती—क्यों सखी, संसार कैसा है? कितना सुन्दर है? बता सकती हो?

सखियाँ कहतीं—नैना, न जाने किस अपराध में विधाता ने तुम्हें अन्धी बनाया है! अहा! संसार कितना सुन्दर है? तुम कैसे जान सकोगी? नीले-नीले आसमान में जब लोहित-सूर्य की चमकीली किरणें चमचमा उठती हैं, उस समय मन में कैसी गुदगुदी का अनुभव

होता है !! रङ्ग-बिरङ्गे फूल खिलते हैं, भौंरे उन पर मँडराते हैं, तितलियाँ उनकी फेरी लगाती हैं। ऊपर नीलम-सा नीला आकाश फैल कर उनकी रखवाली करता है। नदियाँ कल-कल करके बहती हैं। ईषत् धूमिल वर्ण की बनानी उस पार अपनी मनोहर छटा से आँखों को लुभाया करती है। सवेरे ओस की किरणों पर सूर्य की किरणें पड़ कर हीरे की तरह चमक उठती हैं। दोपहर की शून्यता प्राणों में एक अपूर्व पुलक-कम्पन की सृष्टि करती है। सन्ध्या और गो-धूलि के सौन्दर्य में कितनी



मुन्शी नारायण प्रसाद जी अस्थाना

आप आगरा विश्वविद्यालय के वाइस चेन्सलर, कौन्सिल ऑफ़ स्टेट के सदस्य और इलाहाबाद हाईकोर्ट के सुप्रसिद्ध एडवोकेट हैं।

मादकता होती है और ज्योत्स्नामयी निशीथिनी का रजत-रूप ही कितना उन्मादकारी, कितना मनोहर और आकर्षक होता है—जब सोलहों कला से चन्द्रमा आकाश में उठ आते हैं, उनकी श्वेत-शीतल किरणें भू-मण्डल पर जाल की तरह बिछ जाती हैं और सारा संसार नीरव होकर यह दृश्य देखा करता है !! हाय ! तुम इन सब सुखों से वञ्चित हो !!!

सुनयना तल्लीन होकर सखियों की बातें सुनती और उन्हें समझने की चेष्टा करती थी। इन बातों को सुनते-सुनते अनेक बार वह विभोर हो उठती, आविष्ट की तरह जड़ हो जाती और जब बातों का स्रोत रुक जाता, वह एक दीर्घ-निश्वास लेकर कहती—हाय ! विधाता कैसा अन्यायी है ? किस अपराध में उसने मुझे यह दारुण दुःख दिया है ?

एक दिन सुनयना ने अपनी एक सखी से पूछा था—क्यों बहिन, अपराध क्या है ? अपराध करने पर ईश्वर क्यों मनुष्य को दण्ड देते हैं ?

सुनयना की अबोध सखी, इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकी। सुनयना स्वयं भी इस पहेली को नहीं सुलझा सकती थी। अतः वह इस पहेली को अपने मन में ही रक्खे रही।

हाय ! अपराधों से अनजान सुनयना के प्रति ईश्वर का यह दारुण अन्याय किसे सह्य होगा ?

सखी से अपने प्रश्न का उत्तर न पाकर सुनयना ने फिर पूछा—अच्छा, यह बात तुम्हें मालूम है कि ईश्वर कहाँ रहते हैं ? अगर मिल सकती तो मैं उनसे मिल कर सब बातें पूछती। लल्लू जब मिठाई चुरा कर खा लेता है, तो मामी उसे मारती हैं। यही तो अपराध है ? लोग कहते हैं, ईश्वर बड़े दयालु हैं; फिर क्यों वे अपराध करने पर—मामी की तरह—मनुष्य को दण्ड देते हैं ? और इतना कठोर ??

विधाता ने अगर उसका एक हक़ छीन लिया था, तो एक दिया भी था और वह था, उसके गले का मीठा स्वर। गाने की उसमें विलक्षण और दैवी प्रतिभा थी। यद्यपि वह लोगों के सामने बहुत कम गाती थी, लेकिन फिर भी जिन लोगों ने उसका गाना सुन पाया है, उनका कहना है कि उन्होंने वैसा गाना दूसरी बार नहीं सुना।

सुनयना ज्यों-ज्यों बड़ी होने लगी, दुनिया को समझने लगी, उसके व्यवहारों को स्पर्श करने लगी, त्यों ही त्यों उसके मन में एक प्रकार का विशेष भाव उत्पन्न होने लगा। धीरे-धीरे उसमें उन्माद के लक्षण दीख पड़ने लगे। मामा-मामी ने सिर पीट लिया—हाय अभागिनी ! तेरी क़िस्मत में क्या लिखा है ?

लोग जिसे उन्माद समझते थे, वह सुनयना का स्वभाव हो गया था। वह स्वयं कुछ देख तो न पाती

थी, किन्तु दूसरों की दृष्टि से जो कुछ समझ सकती, अनुभव कर सकती थी, उससे उसे मालूम पड़ा कि दुनिया उतने सुख की जगह नहीं है। उसे मालूम पड़ा कि ये आँख वाले देख कर भी कुछ नहीं समझ पाते! ये कैसे अन्धे हैं? सुनयना एक बार उनके अज्ञान पर हँसी। उसकी यह हँसी क्या दुनिया की नज़रों में पागलपन नहीं था।

सुनयना शीघ्र ही संसार के आकुल कोलाहल से ऊब उठी। उसकी अन्धी आँखों में एक स्वर्गीय आलोक फूट उठा। उसने अपने अन्तर की निर्जनता में एक अपूर्व सुख, अननुभूत शान्ति का अनुभव किया। छल, प्रपञ्च और मक्कारी से भरी हुई दुनिया को इतनी जल्दी पहिचान कर वह अपेक्षाकृत सुखी हुई। कौन बतला सकता है, सुख की परिभाषा क्या है?

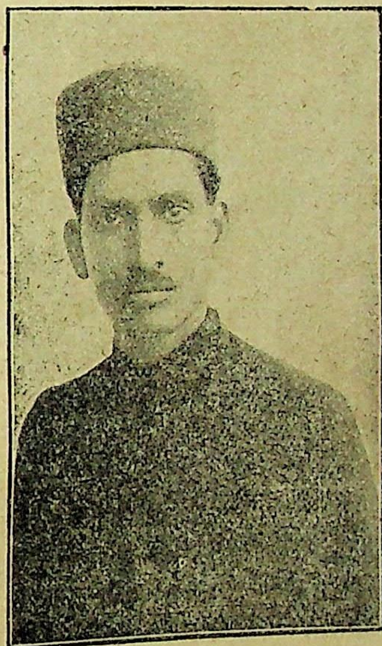
सुनयना अवकाश पाते ही नदी के तट पर—एकान्त में जाकर बैठती थी। वहाँ उसके मन में कितने भावों के तूफ़ान उठते-गिरते थे। कभी वह तन्मय होकर गाती और कभी जी खोल कर हँसती थी। इसी हास्य-रोदन में उसके अन्तर के भाव झनकार उठते थे। उसके दिन, इस प्रकार, एक तरह अच्छे ही ढङ्ग से बीते जा रहे थे।

सुनयना शैशव का सायबान पार करके यौवन के रङ्गमञ्च पर उतर आई थी। शैशव-यौवन की इस सन्धि में उस कोमल कुसुम-कामिनी के अङ्ग-अङ्ग सिहर कर खिल उठे थे। सुनयना ने कभी शृङ्गार न किया था—शृङ्गार करना वह जानती ही न थी; लेकिन स्वभाव-कुञ्चित-कुन्तल, इधर-उधर उसके मुँह पर बिखरे हुए, उसकी शोभा बढ़ाया करते थे। जब अनमनी सी, अकेले में बैठी हुई, अपने को भूल कर वह गाने लगती थी और उसके रूखे और उलझे हुए केश हवा के थपेड़ों से उन्मत्त शराबी की भाँति इधर-उधर झोंके खाया करते थे, उस समय उसकी रूप-माधुरी को देख कर कौन ठगा-सा नहीं रह जाता था?

अपने अन्तर के इसी एकान्त, इसी सूनेपन को यत्नपूर्वक हृदय में सञ्चित करके, सुनयना अपने दिन बिताने लगी।

❦

एक दिन गाँव की नदी के घाट पर एक सजी-सजाई डोंगी आ लगी। डोंगी से उतर कर जिस समय कञ्चन ने पक्के घाट की सीढ़ियों पर पैर रक्खा, उस समय सन्ध्या हो आई थी। पूर्णिमा का चन्द्रमा आकाश में खिल उठा था। शुभ्र-ज्योत्स्ना से निशीथिनी पुलकित हो उठी थी। नदी के घाट पर निर्जनता साँय-साँय कर रही थी, घाट से थोड़ी दूर पर कुछ डोंगियाँ बँधी हुई थीं और लहरों के थपेड़ों से हिल-हिल कर एक श्रुति-मधुर स्वर उत्पन्न कर रही थीं। कञ्चन को यह दृश्य बड़ा भला



आनन्दीप्रसाद जी श्रीवास्तव

आप 'चाँद' तथा 'भविष्य'-परिवार के सुपरिचित प्रतिभाशाली कवि हैं।

मालूम पड़ा। क्षण भर रुक कर, मुग्ध होकर, वह इस दृश्य को देखने में अपने को भूल गया।

इसी समय सहसा एक मधुर सङ्गीत की करुण-ध्वनि कञ्चन के कानों में झनझना उठी। उसने चौंक कर चारों ओर देखा—सर्वत्र शान्ति विराजमान थी। माँझी डोंगी को एक किनारे बाँध कर चले गए थे। कञ्चन अकेला घाट पर खड़ा होकर चकित दृष्टि से इधर-उधर देख रहा था।

कञ्चन ने गीत के स्वर को लक्ष्य करके देखा—बँधी

हुई एक डोंगी पर बैठ कर एक बालिका निःसङ्कोच मन से गा रही है। उसके गीत की प्रत्येक कड़ियाँ जैसे कञ्चन को उन्मत्त बनाने लगीं। वह आत्म-विस्मृत होकर, निस्पन्द भाव से गीत सुनने लगा।

बालिका जिस समय गाने में और कञ्चन उसका गीत सुनने में विभोर हो रहा था, ठीक उसी समय पश्चिम चितिज में काले बादलों का एक समूह दीख पड़ा। धीरे-धीरे बादल सारे आसमान में फैल गए। चन्द्रमा बादलों के अन्तराल में छिप गया। चण भर में प्रकृति ने भयानक वेष धारण कर लिया। दूर पर आँधी उठने के चिन्ह दीख पड़े, लेकिन सङ्गीत की सुललित ध्वनि उस समय भी आकाश में उठ कर गूँज रही थी।

कञ्चन ने सोचा—यह बालिका मानवी है या देवी? रात्रि की इस निर्जनता में, आँधी-पानी के इस उपद्रव में भी यह अम्लान-भाव से सङ्गीत-सुधा-निर्भर में सुख-पूर्वक प्रवाहित हो रही है? यह कौन है?

इसी समय हवा के एक भयानक झोंके ने डोंगी को झकझोर दिया। बालिका जल में पैर लटकाए हुए बैठी थी। डोंगी के हिलते ही वह छप-से पानी में गिर पड़ी।

कञ्चन यह सब देख रहा था। वह और विलम्ब न कर सका। दौड़ कर नदी में कूदा और देखते ही देखते बालिका को लेकर बाहर निकल आया। आँधी इतनी देर में निकल गई थी। प्रकृति चण भर में शान्त हो गई। चन्द्रमा पहले ही की तरह खिलखिलाने लगा। वायु का वेग भी क्रम से शान्त हुआ।

चन्द्रमा के धुँधले और हलके प्रकाश में कञ्चन ने देखा—बालिका अन्धी है। उसका आश्चर्य थोड़ा और बढ़ गया। उसने पूछा—तुम कौन हो? कैसे पानी में गिर गईं?

बालिका हँसी। बोली—जल की लहरें जैसे थपकी दे रही थीं; नदी की गोद, माँ की गोद से कम मुलायम नहीं थी। क्यों तुमने मुझसे वह सुख छीन लिया? कौन हो तुम??

कञ्चन बालिका के प्रश्न से अप्रतिभ हुआ। वह ज़मींदार का बेटा था। ऐसा उत्तर सुनने का उसे अभ्यास नहीं था। इसीसे इस प्रगल्भा ग्रामीण बालिका के उत्तर से उसे आश्चर्य हुआ। चण भर अवाक् होकर वह बालिका की ओर चुपचाप देखता रहा।

बालिका ने अपने प्रश्न का उत्तर न पाकर फिर कहा—मालूम होता है, तुम नाराज़ हो गए। तुम कौन हो? तुम्हारा घर यहाँ नहीं है, शायद तुम नैना को नहीं जानते, इसीसे उसकी बातों पर क्रोध किया है? बताओ तुम कौन हो? किस देश में रहते हो? नीला-नीला आसमान जहाँ फैला हुआ है, समुद्र की लहरें जहाँ गरजा करती हैं, तुम क्या वहीं रहते हो?

कञ्चन ने समझा, बालिका पागल है। उसकी इन असम्बद्ध बातों का क्या अर्थ हो सकता है? लेकिन उसकी बातें सहज ही टाल देने लायक़ न थीं। उसकी मधुर वाणी से वीणा की झनकार निकलती थी। उसका गीत ही कितना मोहक, कितना उन्मादकारी था!! यही सब बातें सोचते-सोचते कञ्चन को उत्तर देने में फिर भी देर हो गई। तब बालिका ने एक उसाँस ली। बिखरे हुए अपने बालों को मुँह पर से हटा कर उसने कहा—शायद चले गए! अन्धी की बातें सुनने की फ़ुर्सत किसे है?

कञ्चन ने नैना के हृदय की व्यथा का अनुभव किया। कहा—नहीं नैना, मैं कहीं गया नहीं हूँ। तुमने सच ही कहा है, मैं यहाँ का रहने वाला नहीं हूँ। मेरा घर यहाँ से बड़ी दूर है। मैं पटना में डॉक्टरी पढ़ता हूँ। मेरा नाम कञ्चन है। तुम्हारा नाम क्या नैना ही है?

"हाँ, नाम सुनयना है; लोग 'नैना-नैना' कह कर पुकारते हैं। तो तुम यहाँ किसके घर आए हो कञ्चन?"

"दूर के रिश्ते की एक विधवा मौसी हैं, उन्हीं के घर आया हूँ। आजकल गर्मी की छुट्टियाँ हैं। तबियत भी कुछ ख़राब है। सोचा, यहाँ हो आने से मौसी का दिल भी बहलेगा और मेरी तबियत में भी कुछ फेर-फार हो जायगा। तुम उनका घर जानती हो नैना?"

कञ्चन ने अपनी मौसी का पता बता दिया। नैना ने कहा—उन्हें कौन नहीं जानता? उनके यहाँ रोज़ ही भागवत का पाठ होता है। कोई न कोई पूजा-पाठ हमेशा ही हुआ करता है। जब-तब मैं भी उनके घर गई हूँ। चलो, मैं तुम्हें वहाँ पहुँचा आऊँ।

यद्यपि कञ्चन बचपन में दो-एक बार मौसी के घर आया-गया था और आज भी उसकी धुँधली स्मृति उसके मन में बनी हुई थी, लेकिन फिर भी नैना के साथ चलने का लोभ वह न छोड़ सका। दोनों ही साथ-साथ चले। उस समय गाँव की गलियाँ निस्तब्ध हो

गई थीं। टेढ़ी-मेढ़ी और ऊबड़-खाबड़ गलियों को पार करते हुए दोनों निःशब्द चलने लगे।

कञ्चन शहर का रहने वाला था। गाँव का शान्त-सुन्दर जीवन उसे लुभावना सा प्रतीत हुआ। और यह सरला बालिका? हाय! विधाता ने इसके साथ कैसा अन्याय किया है? वह कितनी भोली-भाली, कितनी निश्छल और स्नेहमयी है। आडम्बर जैसे इसे छू नहीं गया, शिष्टाचार से मानो कभी परिचय नहीं हुआ। थोड़ी ही देर में वह मुझ जैसे अपरिचित से भी इस तरह हिल-मिल गई, जैसे बरसों की जान-पहिचान हो!

यही सब बातें सोचता हुआ, स्वप्नाविष्ट की तरह, कञ्चन नैना के पीछे-पीछे चला जा रहा था। नैना धीरे-धीरे कुछ गुनगुनाती हुई आगे चल रही थी। सहसा एक जगह वह रुक गई। बोली—देखो, यहीं इस ओर तुम्हारी मौसी का घर है। अब तुम जाओ। मैं भी जाती हूँ।

कञ्चन ने कहा—तुमने तो मुझे मौसी के घर पहुँचा दिया नैना! अब चलो मैं तुम्हें तुम्हारे घर पहुँचा आऊँ।

कञ्चन ने सोचा था, इसके उत्तर में—शहर की शिक्षिता बालिकाओं के समान—नैना भी धन्यवाद देती हुई, अस्वीकृति के रूप में स्वीकृति देगी। लेकिन नैना ने जो कुछ कहा, वह बिलकुल अप्रत्याशित बात थी। उसने कहा—क्या ज़रूरत है कञ्चन, मैं चली जाऊँगी।

"देर होने से तुम्हारे घर वाले नाराज़ नहीं होंगे?"

"कौन नाराज़ होता है? मैं तो रोज़ इतनी देर कर देती हूँ।"

लेकिन जब कञ्चन ने विशेष आग्रह किया तो नैना चुप हो रही। दोनों फिर गाँव की गलियों में आगे बढ़े।

प्रायः छः-सात फ़र्लाङ्ग चल कर नैना फिर रुकी—कञ्चन मेरा घर तो आ गया। अब तुम जाओ।

"यही तुम्हारा घर है?"

"हाँ।"

"फिर तुम कब मिलोगी?"

"कह नहीं सकती। तुम कब तक यहाँ रहोगे?"

"कुछ ठीक नहीं। जब तक रहूँ!"

"अच्छा देखा जायगा, जाओ।"

कञ्चन के उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही नैना झट से अपने घर में घुस गई। उस आश्चर्यमयी बालिका की बात सोचते-सोचते कञ्चन भी अपनी मौसी के घर लौट आया।

❦

उसके बाद कई दिन बीत गए। कञ्चन से नैना की मुलाक़ात फिर न हो सकी। जब कभी वह अपनी मौसी से उसके बारे में पूछता, वे कहतीं—अरे, वह पागल है बेटा! उसकी क्या बात पूछते हो? जब जहाँ मन में आया, वह तहाँ चली जायगी!!



नवाब अग़ियार जङ्गबहादुर

आप निज़ाम-गवर्नमेण्ट के अर्थ-विभाग के संयुक्त मन्त्री थे। आपने अभी हाल ही में पेन्शन ले ली है।

कञ्चन ने दो-एक बार नैना के घर की ओर भी चक्कर लगाया, पर उसे देख न सका। अन्त में, लाचार होकर, उसने नैना को भुला देना चाहा; लेकिन यह सब से मुश्किल था। वह ज्यों-ज्यों नैना को भूलने की चेष्टा करता, त्यों ही त्यों नैना के गीत, उसकी भोली-भाली सरल बातें उसे बार-बार याद आने लगती थीं। नैना

की एक सुन्दर और करुण तस्वीर उसके सामने खिंच जाती और उसकी सारी झुँझलाहट क्षण भर में न जाने कहाँ खो जाती।

गाँव के बाहर, नदी के किनारे, थोड़ी दूर पर एक छोटी सी पहाड़ी थी—पहाड़ी न कह कर उसे ऊँची ज़मीन कहना ही अधिक उपयुक्त होगा। कञ्चन जब-तब वहीं जाकर बैठा करता था। उसे मौसी के यहाँ आए कई दिन बीत गए थे। अब किसी साथी-सङ्गी के अभाव में उसका जी ऊबने लगा था। वह सोच रहा था कि एक बार नैना से मुलाक़ात हो जाती, तो वह घर वापस लौट जाता।

उस दिन सन्ध्या को वह उसी पहाड़ी पर जा बैठा था। गोधूलि की धूमिल बेला गाँवों में एक अपूर्व शोभा धारण करके आती है और जो गाँव नदी के किनारे बसे होते हैं उनकी शोभा तो उस समय और भी कई गुनी अधिक बढ़ जाती है। कञ्चन उसी गोधूलि की शोभा देखने में तन्मय हो रहा था। नदी के वक्ष पर कई नौकाएँ तेज़ी से एक ओर चली जा रही थीं। उन पर बैठे हुए माँझियों में कोई चिलम सुलगा रहा था, कोई डाँड़ खे रहा था और कोई बिरहा अलाप रहा था। किसान हल-बैल लेकर घर लौटे आ रहे थे। सभी को घर पहुँचने की जल्दी थी, सभी तेज़ी से अपने निवास की ओर चले जा रहे थे। केवल कञ्चन ही स्थिर भाव से उन सबों की गति-विधि का निरीक्षण कर रहा था।

धीरे-धीरे रात अधिक हो आई। चारों ओर सन्नाटा छा गया। कञ्चन का जी ऊबने लगा। तब उसने अपनी बाँसुरी निकाली। फूँक मारते ही बाँसुरी से एक मधुर किन्तु करुण रागिनी निकल कर आकाश में गूँज उठी। कञ्चन आत्म-विस्मृत होकर बाँसुरी बजाने लगा।

बाँसुरी बजाते-बजाते जब थक कर वह चुप हो गया उस समय रात साँयँ-साँयँ कर रही थी। वह धीरे-धीरे पहाड़ी से नीचे उतरा।

उतर कर उसने जो कुछ देखा वह उसके लिए आश्चर्य की ही बात थी। उसने देखा अन्धी नैना स्वप्नाविष्ट की तरह नीचे—एक मिट्टी के चबूतरे पर बैठ कर उसकी बाँसुरी सुन रही है। बाँसुरी का बजना जब सहसा बन्द हो गया तो वह जैसे सोते से चौंक कर जाग उठी। पास जाकर कञ्चन ने पुकारा—नैना!

नैना ने कहा—कौन? तुम हो कञ्चन?? मैं पहले ही समझ गई थी कि तुम्हारे सिवा और कोई इस तरह बाँसुरी नहीं बजा सकता।

"किस तरह?"

"इसी तरह—इतनी सुन्दर, इतनी करुण!"

"कैसे तुमने जाना नैना?"

"न जाने कैसे! अन्धों के मन में शायद जानने की शक्ति कुछ अधिक होती है। वे देख नहीं सकते न—इसी से। अच्छा, यह बतलाओ, मुझे भी इसी तरह बाँसुरी बजाना सिखा दोगे?"

"क्यों न सिखा दूँगा? बाँसुरी बजाना तुम्हें बड़ा अच्छा लगता है?"

"हाँ।"

"लेकिन तुम्हारा गीत तो बाँसुरी से भी मीठा लगता है नैना! तुम भी मुझे अपना गीत सिखा दोगी?"

"मैं तो कुछ नहीं जानती कञ्चन! तुम झूठ बोलते हो!"

तब कञ्चन ने बात फेरी। कहा—अच्छा, यह बतलाओ, अब तक तुम कहाँ थीं? मैं कई बार तुम्हें यहाँ-वहाँ ढूँढ़ आया।

नैना हो-हो करके हँस पड़ी! कञ्चन उसे क्यों ढूँढ़ने जायगा, यह बात उसकी समझ में न आ सकी। उसने कहा—तुम मुझे ढूँढ़ कर कहाँ पा सकते थे कञ्चन! मैं जो घर में बीमार पड़ी थी!

"बीमार?" आश्चर्य प्रकट करते हुए कञ्चन ने कहा—"क्या हो गया था तुम्हें?"

"बुख़ार आ गया था। देखो, अभी भी अच्छी नहीं हो सकी हूँ।"—कह कर नैना ने अपना दाहिना हाथ आगे फैला दिया। कञ्चन ने उसे छूकर देखा, वह गरम था। नैना का हाथ छूते ही उसके नस-नस में एक तरह की बिजली सी खेल गई। वह सिहर उठा। मन ही मन उसने इस बात से सन्तोष का अनुभव किया कि नैना अन्धी है, वह उसका भाव-विपर्यय देख नहीं सकी।

क्षण भर में ही अपने को सँभाल कर कञ्चन ने कहा—सचमुच ही, बुख़ार तो अभी भी बना हुआ है। अभी तुम क्यों घर से भाग आईं नैना?

"मेरा जी नहीं लगा कञ्चन! मैं सोचती थी कि

[ज़रूर] तुम मुझे ढूँढ़ रहे होगे। तुम बड़े अच्छे हो, अन्धी को भी प्यार कर सकते हो—इसीसे।"

कञ्चन फिर चौंक उठा। उसने कहा—लेकिन तुम्हें यह कैसे मालूम हुआ कि मैं यहाँ होऊँगा?

"यह कैसे मालूम होता? तुम संयोग से ही मिल गए हो। सच्ची बात यह है कि घर में मेरा जी ऊबता है।"

"अच्छा, अब घर चलो नैना! तुम अच्छी हो जाओगी तो मैं तुम्हें बाँसुरी बजाना सिखा दूँगा।"

"अच्छा और क्या होना है? मैं तो अच्छी ही हूँ। कल से ही तुम मुझे सिखाना शुरू कर दो।"

"कल से?"

"हाँ।"

"अच्छा! लेकिन तुम कहाँ मिलोगी? तुम्हें ढूँढ़ लेना भी तो बहुत आसान नहीं है।"

नैना हँसी। बोली—नहीं ढूँढ़ने की ज़रूरत न पड़ेगी। मैं ख़ुद ही कल से यहाँ आ जाया करूँगी। इसी वक़्त। देखो, लेकिन तुम भूलना नहीं।

"न भूलूँगा।"

"तब चलो, चलें।"

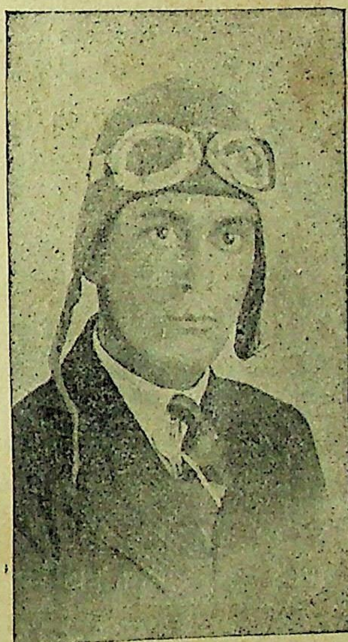
दोनों अपने-अपने घर की ओर चल पड़े।

❦

दूसरे दिन यथासमय उसी पहाड़ी पर पहुँच कर कञ्चन ने नैना की बड़ी देर तक प्रतीक्षा की, लेकिन वह कहीं न दीख पड़ी। बैठे-बैठे वह ऊब गया और अकेले ही उसने बाँसुरी बजानी शुरू कर दी। जब उसकी बाँसुरी बन्द हो गई, उसने उत्सुक नेत्रों से चारों ओर देखा; लेकिन नैना का उस समय भी कहीं पता न था। तब वह चिन्तित हुआ। उसके मन में तरह-तरह की बातें उठने लगीं—कहीं नैना और अधिक बीमार तो नहीं हो गई? वह रास्ता भूल कर और किसी तरफ़ तो नहीं चली गई? कौन कह सकता है?

आख़िर कञ्चन घर लौट आया। रात भर उसे अच्छी नींद न आई। सवेरा होते ही वह नैना के घर पहुँचा। उसके मामा उस वक़्त बाहर गए हुए थे। मामी ने बतलाया कि नैना की तबियत और ज़्यादा ख़राब हो गई है और वह चारपाई पर पड़ी हुई है। नैना को देखने के लिए कञ्चन के प्राण छटपटा उठे, पर वह कुछ कह न सका। चुपचाप घर लौट आया।

उस दिन, दिन भर में कञ्चन कई बार नैना के घर गया। छोटे से गाँव में, ज़मींदार का बेटा कञ्चन किसी से अपरिचित रहा हो, यह बात नहीं; लेकिन उस दिन उसने नैना के मामा अतुल से विशेष घनिष्टता कर ली। उनके बच्चे को प्यार किया, उनकी पत्नी को चाची-चाची कह कर बच्चों की तरह आदर-अभिमान करने लगा,



श्री० आर० पी० धरगालकर

आप समस्त भारत में सब से छोटे उड़ाकू हैं, जिन्हें ब्रिटिश एयर मिनिस्ट्री की ओर से केवल १८ वर्ष की अवस्था में 'बी' क्लास के उड़ने वाले का लाइसेन्स प्रदान किया गया है।

अतुल इतने ही में उसके हो गए और सन्ध्या होते-होते उसने उस घर में इतना अधिकार प्राप्त कर लिया कि वह निर्बाध रूप से नैना से मिल-जुल सके और उसकी सेवा-शुश्रूषा कर सके।

नैना के मामा-मामी ने इस अवसर से लाभ उठाना चाहा। उन्होंने मन ही मन सोचा कि अगर कञ्चन सचमुच ही नैना को प्यार करने लगा हो और वह उससे विवाह कर ले तो वह नैना और अतुल, दोनों ही

के सौभाग्य की बात होगी। इस विचार ने भी नैना और कञ्चन की मुलाक़ात में विशेष बाधा न डालने दी। अनेक बार कञ्चन रात-रात भर वहीं रह कर अन्धी नैना की सेवा-शुश्रूषा करने लगा। हाँ, उसके प्रति कञ्चन के मन में इतनी ही सहानुभूति और ममता उत्पन्न हो गई थी।

नैना को त्रिदोष हो गया था; किन्तु वैद्य की चिकित्सा और विशेषतः कञ्चन की सेवा से नैना धीरे-धीरे अच्छी हो चली। एक दिन सन्ध्या के समय अतुल टहलने चले गए थे। चपला अपने बच्चे को लेकर मन्दिर में ठाकुर जी की आरती देखने चली गई थी। घर में केवल कन्चन और नैना रह गए थे। नैना ने अपना दुर्बल हाथ फैला कर कञ्चन का हाथ पकड़ा। कहा—कञ्चन! मैं तुम्हारी कौन हूँ, जो तुम मेरे लिए इतनी तकलीफ़ उठाते हो?

नैना के शब्दों में उसके प्राणों का उच्छ्वसित आवेग भरा हुआ था। कञ्चन ने उसका यह भाव लक्ष्य किया। कहा—तकलीफ़ क्या उठाता हूँ नैना? तुम्हें देख कर मुझे बड़ी रुलाई आती है।

"रुलाई? क्यों कञ्चन! क्या मैं इतनी बुरी हूँ?"

"यह बात नहीं नैना! मैं सोचता हूँ, सब कुछ देकर विधाता ने दो आँखों के अभाव में तुम्हें कितना असमर्थ, कितना विवश बना दिया है!!"

नैना, कञ्चन की बात सुन कर हँसी। उसकी हँसी में उसके अन्तर का गम्भीर विषाद निहित था। बोली—तब तो अन्धी होने में भी मुझे सुख है कञ्चन! जिसे अनायास ही तुम्हारे जैसा साथी मिल जाय और जिसे तुम्हारे जैसे साथी की इतनी गहरी सहानुभूति और आदर-प्यार मिले, वह क्या बड़ी भाग्यशालिनी नहीं है। मुझे तो कन्चन, आज अपने अन्धी होने के कारण एक प्रकार के हर्ष और गर्व का अनुभव हो रहा है!

कञ्चन ने फिर कुछ उत्तर नहीं दिया। उसने नैना के सिर पर हाथ फेरा, फिर ललाट और आँखों पर भी। नैना ने अपने हाथों से उसका हाथ दबा लिया। कहा—ओह! कितनी शीतलता है, कितनी तृप्ति मालूम पड़ती है!! कञ्चन थोड़ी देर तक और इसी तरह मेरे सिर पर हाथ रक्खे रहो।

"क्यों? क्या सिर में दर्द मालूम पड़ता है?"

"कह नहीं सकती। जो कुछ मालूम पड़ता है, उसका अनुभव मुझे अकेले ही करने दो कञ्चन!!"

कन्चन उसके सिर पर हाथ फेरता रहा और अन्धी नैना एक अपूर्व स्वर्गीय सुख का अनुभव करते-करते न-जाने कब सो गई। कञ्चन विचारों की लहरों में डूबता-उतराता उसके सिर पर हाथ फेरता ही रह गया।

❦

एक दिन नैना और कन्चन फिर उसी पहाड़ी पर मिले। नैना अब बिलकुल अच्छी हो गई थी। उन दोनों के परिचय ने गाढ़ी मैत्री का रूप धारण कर लिया था।

नैना की बाँसुरी की शिक्षा प्रारम्भ हो गई। दोनों रोज़ सन्ध्या को—कभी नदी के किनारे, कभी पहाड़ी पर और कभी महुआ के सघन बग़ीचे में—मिलते और वहाँ कन्चन नैना को बाँसुरी बजा कर सुनाता, नैना गीत गाकर कन्चन को विभोर बना देती थी। उस समय, बीच-बीच में, न जाने कहाँ-कहाँ की बातें होतीं। एक-एक दिन नैना पूछती—क्यों कन्चन, दुनिया बहुत सुन्दर है?

"हाँ!"

"कितनी?"

"इतनी"—कह कर कञ्चन अपने दोनों हाथ फैला देता। सुन्दरता के इस परिमाण पर दोनों हो-हो करके हँस पड़ते थे।

फिर किसी दिन नैना पूछती—कञ्चन! इस समय कैसा लगता है?

कञ्चन जैसे अपनी सारी अनुभूति नैना के हृदय में ढाल देना चाहता हो, इस भाव से कहता—फैले हुए नीले आसमान में झलमलाते हुए, असंख्य तारे उग आए हैं; चन्द्रमा किरणों के रथ पर बैठा मुस्करा रहा है। इठलाती हुई सरिता, अपने दोनों किनारों को थपकी देकर सुला रही है। महुआ के वन में अन्धकार छिप कर टहल रहा है। सारी धरित्री पर एक अपूर्व सुखदायिनी नीरव-निर्जनता व्याप्त हो रही है। हाय नैना! तुम यह सब कुछ नहीं देख पाती हो!!

नैना स्थिर-धीर भाव से—जैसे कन्चन को आश्वासन देने के लिए ही कहती—क्या चिन्ता है कञ्चन! मैं

अपनी आँखों से नहीं देख पाती,—लेकिन तुम्हारी आँखें जैसे मेरी ही होकर मुझे सब कुछ दिखा देती हैं। अन्धी की अनुभव करने की शक्ति कुछ ज़्यादा प्रबल होती है। तुम्हारे जैसा साथी क्या मुझे सदा के लिए मिल सकेगा ?

नैना ने यह बात सरल भाव से ही कही थी, लेकिन कञ्चन के हृदय पर आघात लगा। मन ही मन उसने सोचा कि थोड़े ही दिनों में जब मैं चला जाऊँगा, तब नैना को कितना कष्ट होगा ! सचमुच इन थोड़े दिनों में वह मुझसे कितना स्नेह करने लगी है !!

थोड़ी देर में यह बात नैना ने स्वयं ही कह दी—कञ्चन ! तुम भी एक दिन मुझे छोड़ कर चले जाओगे ?

"जाना ही पड़ेगा नैना ! मैं क्या करूँगा ?"

"तुम चले जाओगे, तब तो मुझे यहाँ बिलकुल अच्छा न लगेगा। तुम अपने साथ ही मुझे न लेते चलोगे ?"

"तुम्हारे घर के लोग जाने देंगे नैना ? और हमारे यहाँ के लोग ही इससे प्रसन्न होंगे या अप्रसन्न, यह कौन कह सकता है ?"

सजल मेघ-मण्डल की तरह नैना का मुँह गम्भीर हो गया। फिर उस दिन और कोई बातचीत न हो सकी।

❦

वह दिन भी एक बार आ ही गया। उक्त घटना के बाद बहुत दिन नहीं बीते थे। एक दिन कञ्चन के पिता की चिट्ठी आई—फ़ौरन चले आओ। विवाह की तिथि निश्चित हो गई है।

कञ्चन बड़े असमञ्जस में पड़ा। वह कैसे नैना को यह सम्बाद सुनावेगा ? कैसे उसे छोड़ कर, निर्मोही की तरह, चला जा सकेगा ? वह स्नेह की मूर्तिमयी प्रतिमा कैसे यह आघात सहेगी ?

आज कञ्चन को मालूम पड़ा कि संसार के अलक्ष्य में नैना ने उसके हृदय पर कितना अधिकार जमा लिया है !

सन्ध्या हो आई। नैना नदी के किनारे आ गई होगी। कञ्चन का हृदय वहाँ जाने से आगा-पीछा करने लगा। कैसे वह नैना से कहेगा कि मैं सदा के लिए तुम्हें छोड़ कर चला जा रहा हूँ।

लेकिन समय जब हो गया, तो वह रुक भी न सका। साँस रोक कर वह नैना के पास दौड़ गया। नैना सचमुच ही वहाँ पहले से आ बैठी थी।

कञ्चन की आहट पाकर नैना ने कहा—तुम आ गए ? इतनी देर क्यों कर दी ? मैं कब से तुम्हें हेर रही हूँ।

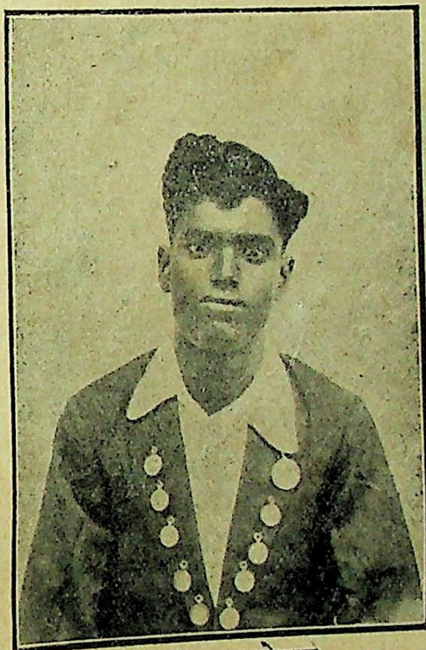
कञ्चन उसकी इस बात का क्या उत्तर देता। वह चुप ही रहा। आज उसका जी उचट रहा था। बातें करने में तबियत न लगती थी। नैना ने उसका यह भाव लक्ष्य किया। पूछा—आज तुम उड़े-उड़े से क्यों जान पड़ते हो कञ्चन ? क्या बात है ?

कञ्चन ने उदास होकर कहा—ऐसी ही बात है नैना ! आज मेरा मन बड़ा उदास और चिन्तित हो उठा है।

"क्यों ? क्या बात है ?"

"पिता जी की चिट्ठी आई है नैना !"

"तो इससे इतना चिन्तित और उदास हो उठने की क्या बात है ? क्या लिखा है उन्होंने ?"



श्री० एल० दामोदरन

आप विरुदूनगर (मद्रास) के क्षत्रीय वैद्यशाला हाई-स्कूल के एक प्रतिभाशाली छात्र हैं, जिन्हें हाल ही में खेलों में सर्व-प्रथम आने के लिए 'ग्रिग मेमोरियल' नामक स्वर्ण-पदक प्रदान किया गया है।

"बुलाया है।"

"बुलाया है ? इतनी जल्दी ??"

"हाँ।"

"कोई काम है ?"

"लिखा है मेरे ब्याह का दिन ठीक हो गया है।"

ब्याह का नाम सुन कर नैना के हृदय में एक अद्भुत सी पीड़ा-टीस उठी। गम्भीर होकर वह थोड़ी देर चुप हो रही ; फिर उसने पूछा—तुमने अपनी दुलहिन को देखा है कञ्चन ?

"हाँ।"

"कैसी हैं ? ख़ूब सुन्दर ??"

"हाँ।"—अन्यमनस्क भाव से कञ्चन ने कह दिया।

नैना ने समझा कि जो एक दुराशा दिन-दिन उसके हृदय में बद्धमूल होती जा रही थी, वह यही दुराशा थी। आज वह सपना टूट गया, वह नशा उतर गया। हाय ! क्या कञ्चन उसका होकर रह सकता था ??

नैना ने कहा—क़द की लम्बी होंगी ?

"हाँ।"

"काले-काले घुँघराले बाल होंगे ?"

"हाँ।"

"मोती से चमकते हुए सफ़ेद दाँतों की पंक्तियाँ होंगी ?"

"हाँ।"

"बड़ी-बड़ी आँखें होंगी ?"

"हाँ।"

"हँसते समय गालों पर गढ़े पड़ जाते होंगे ?"

"हाँ, तुम कैसे जानती हो नैना !! तुम तो ऐसे बतला रही हो, जैसे उसे तुमने देखा हो।"

"देखा कैसे होगा कञ्चन ? तुम मेरे सामने बैठे हो, मैं तुम्हें भी नहीं देख सकती। उन्हें कैसे देखूँगी ?"

दोनों ही चुप रहे। थोड़ी देर बाद नैना ने पूछा—तुम कब जाओगे कञ्चन ?

"परसों।"

"मुझे क्या दे जाओगे ?"

"तुम्हें क्या चाहिए नैना ? तुम जो चाहोगी, मैं वही दूँगा।"

"अपनी एक तस्वीर दोगे ?"

"दूँगा; लेकिन तुम क्या करोगी नैना !"

"यह न पूछो।"

"अच्छा।"

"तब फिर कब मिलोगे कञ्चन ? एक बार उन्हें भी लेकर यहाँ आना। उनसे भी एक बार मिलने-बोलने की इच्छा होती है।"

"अच्छी बात है नैना ! ज़रूर ले आऊँगा।"

तब दोनों ही, न जाने कितने भावों का तूफ़ान अपने हृदय में लेकर घर की ओर चल पड़े। आज नैना के सुख का सपना टूट गया था, साध का संसार उजड़ गया था। शत-शत वृश्चिक-दंशन की ज्वाला अन्तर में छिपा कर वह चुपचाप चली जा रही थी।

कञ्चन इधर-उधर दौड़ कर अपना सामान बाँध रहा था। नैना से कहा—समय नहीं है नैना ! अबकी बार यह जगह छोड़ते हुए बड़ा दुःख होता है।

नैना ने कहा—दुःख की क्या बात है कञ्चन ! जाओ भगवान तुम्हारा मङ्गल करेंगे। सुख के दिनों में इस अन्धी को भूल मत जाना।

कह कर नैना रोई। कञ्चन ने कहा—यह क्या नैना ! तुम रोती हो ? तब, इस बार मेरा जाना न हो सकेगा। लो मैं चुपचाप बैठता हूँ। पिता जी को लिख देता हूँ, मैं ब्याह न कर सकूँगा।

नैना ने दाँतों से जीभ काट ली। कहा—यह भी क्या हो सकता है कञ्चन ? तुम्हारे ब्याह का दिन ठीक हो गया है और तुम पगली नैना के लिए घर न जाओगे ? यह नहीं हो सकता। तुम्हें जाना पड़ेगा।

कञ्चन फिर सामान बाँधने लगा। उसने अपनी एक छोटी सी तस्वीर लाकर नैना को दी। नैना ने उसे लेकर उस पर हाथ फेरा। इधर-उधर उलटा-पुलटा, फिर आँचल में छिपा कर रख लिया। उसके बाद बोली—अब मैं जाती हूँ कञ्चन ! भगवान ने मुझे अन्धी बना कर अच्छा ही किया है। मैं तुम्हारा जाना अपनी आँखों से देख न सकूँगी।

नैना ने ज़मीन पर सिर झुका कर कञ्चन को प्रणाम किया, फिर धीरे-धीरे दरवाज़े से बाहर निकल गई। जाते समय उसने एक और चीज़ अपने आँचल में छिपा कर रख लिया, पर उसे कोई देख नहीं सका। अपना अधीर और अशान्त मन लेकर कञ्चन अकेला रह गया।

मजूरे जब सामान लेकर नदी की ओर चल पड़े तो ढूँढ़ने पर भी कञ्चन को अपना जूता न मिल सका। मन ही मन वह सोचने लगा कि उसे कहीं पगली नैना तो नहीं उठा ले गई?

लेकिन अधिक समय नहीं था। बक्स में से दूसरा जूता निकाल कर कञ्चन ने पहना और घाट पर आ पहुँचा। नाव लगी हुई थी। उसके बैठते ही खुल गई और माँझियों ने डाँड़ खेना प्रारम्भ कर दिया। कञ्चन शून्य की ओर देखता हुआ चुपचाप बैठा रहा।

नाव जब नदी के किनारे-किनारे कुछ दूर निकल गई, तो कञ्चन ने गाँव की ओर देखा। उसके कानों में सहसा सङ्गीत की एक मृदु-मधुर ध्वनि गूँज उठी। चौंक कर उसने देखा, उसी पहाड़ी पर अकेली बैठी हुई नैना गा रही है। उसके गीत में कितनी वेदना, कितना आर्त्तनाद छिपा हुआ था !!!

इसके बाद छः वर्ष बीत गए।

कञ्चन की प्रैक्टिस ख़ूब चल निकली थी। एक दिन उसके एक मित्र ने आकर कहा—डॉक्टर, मैं तो बुरी तरह ठगा गया यार, जिससे मैंने पार साल शादी की थी वह अन्धी है और उसे यक्ष्मा भी हो गया है। मैं तो इस जीवन से ऊब गया हूँ। चल कर एक बार उसे देख लो भाई!

सहसा कञ्चन के मन में अन्धी नैना की स्मृति जाग उठी। विवाह के बाद वह उसकी कुछ भी ख़बर नहीं ले सका। एक प्रकार से वह उसे भूल ही गया था। आज सहसा उसकी स्मृति ने उसे चञ्चल बना दिया। गाड़ी तैयार करा कर शीघ्र ही वह अपने मित्र के साथ उसके घर आया।

आकर देखा, उसके सामने अन्धी नैना पड़ी हुई है। उसका अस्थि-पञ्जर अवशिष्ट रह गया है। हाय! उसकी यह दशा कैसे हुई?

कञ्चन ने पुकारा—नैना!

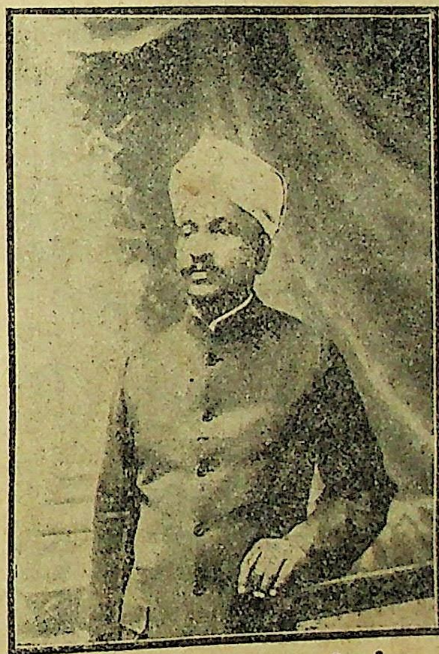
नैना परिचित स्वर का स्पर्श पाकर चौंक उठी। बोली—कौन मुझे पुकारता है? मैं यह किसकी आवाज़ सुन रही हूँ??

"मैं हूँ नैना! मेरा नाम कञ्चन है!!"

"अच्छा, तुम आ गए? बड़ा विलम्ब कर दिया! तुम अन्धी को याद भी न रख सके कञ्चन? लेकिन तुम क्या करोगे? संसार ऐसा ही है!!"

कञ्चन ने नैना की परीक्षा की। नैना हँसी। बोली—अब इसकी ज़रूरत नहीं है कञ्चन! तुम्हारी डॉक्टरी मेरे लिए शेष हो चुकी। अब मेरी दवा ईश्वर करेंगे। देखो, इस कुञ्जी के गुच्छे से मेरा बक्स खोलो।

कञ्चन ने वैसा ही किया! बक्स खोल कर उसने जो कुछ देखा, उससे वह अपनी रुलाई न रोक सका—बक्स में एक जूता और एक शीशी राख ही थी।



श्री० जी० रङ्गैय्या, बी० ए०, बी० ई०
आप हाल ही में मैसोर गवर्नमेण्ट के मन्त्री और चीफ़ इञ्जीनियर नियुक्त हुए हैं।

नैना ने कहा—देखो, यही मेरी सम्पत्ति थी। तुम्हारी दी हुई थी, मैं तुम्हें ही वापस करती हूँ। यह मेरे बड़े आदर की वस्तुएँ थीं। मैंने तुम्हारी तस्वीर जला कर उसकी राख शीशी में भर ली है—संसार के सन्देह के भय से, समझे! ईश्वर तुम्हारा मङ्गल करे।

कञ्चन फूट कर रो पड़ा। यह रहस्य कुछ न समझ पाने के कारण नैना के पति अवाक् होकर दोनों का मुँह देखने लगे।

शीघ्र मँगा लीजिए ! थोड़ी सी प्रतियाँ शेष बची हैं !!

दुबे जी की चिट्ठियाँ

सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय पत्र

कर्मवीर का कहना है :—"श्री० विजयानन्द दुबे के सामाजिक विनोद बहुत चुटीले और शिष्ट हुआ करते हैं !!"

सुन्दर छपी हुई सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल ३) रु०, 'चाँद' के समस्त ग्राहकों से २।) रु० मात्र !

PIONEER

MAY 25, 1930

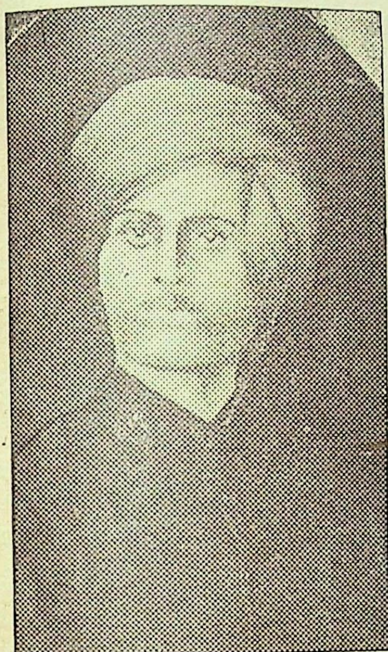
This book contains a series of letters by "Vijyanand" dealing mostly with current social topics and especially Hindu society. The letters are written in lighter vein, and do credit to the writer. Most of his jokes are against himself. When he wanted to begin writing these letters, he asked his wife (whom he calls "Lalla ki Mahtari"—the mother of his son, Lall!) to give him two annas to buy some paper. He could not satisfy her that he really would buy paper and not bhang, and could not explain how he needed as much paper as would cost two annas! He was assaulted, and saved the earthen pitcher by letting the poker fall on him rather than the utensil containing cold water! The Hindi is very easy, simple enough even to be followed by "the Collector Sahib who wanted to give a Rai Sahibship" to "Vijyanand" for writing these letters, but who insisted that the Rai Sahibship should be given to "Lalla ki Mahtari." The book is neatly printed in the usual style of the CHAND Press Publications.

प्रत्येक चिट्ठी में समाज तथा देश का नङ्गा चित्र खींचा गया है। पढ़ने वाला हँस-हँस कर लोट-पोट न हो जाय तो पुस्तक का मूल्य वापस !!

☞ व्यवस्थापक 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

शोलापुर-काण्ड में फाँसी पाने वाले चार अभागे नवयुवक

सारे देश के विरोध करने पर भी जो यरवदा जेल में १२वीं जनवरी को लटका दिए गए



नवयुवक-सङ्घ (Youth League)
के नेता—श्री० जगन्नाथ शिन्धे
(आयु २३ वर्ष)



मज़दूर-दल के नवयुवक नेता—
श्री० कुर्बान हुसेन
(आयु २२ वर्ष)

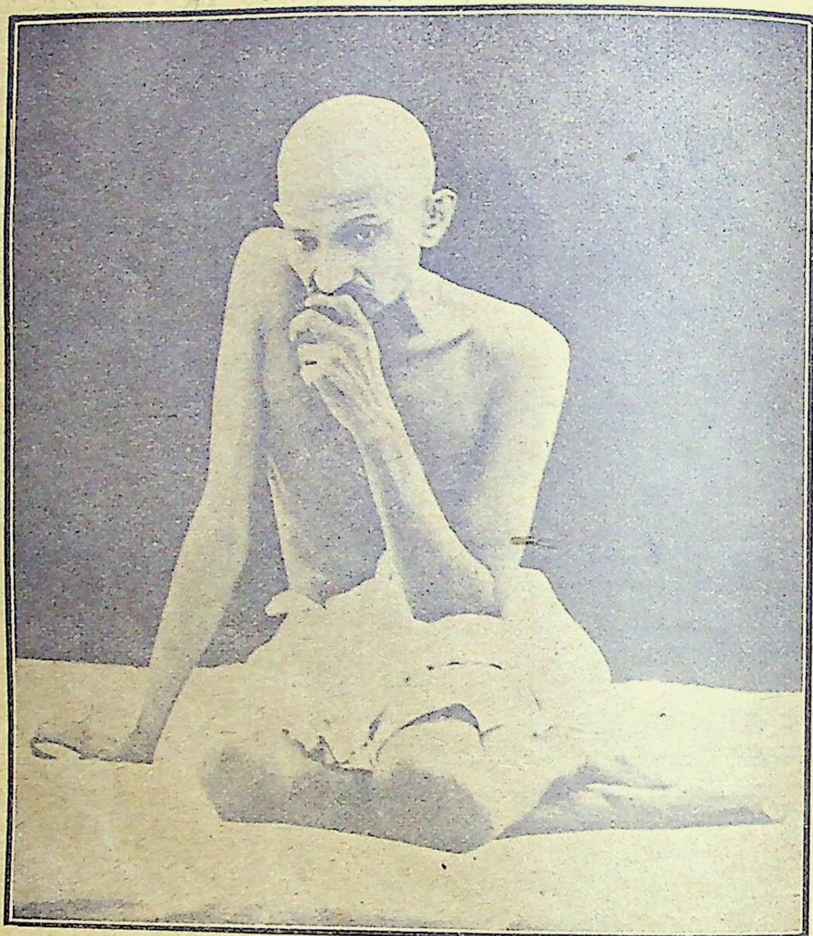


मारवाड़ी नेता—श्री० किशनलाल शारदा
(आयु २८ वर्ष)



लिङ्गयात-नेता—श्री० मालप्पा धानशेटी
(आयु २८ वर्ष)

भारतीय काँङ्ग्रेस वर्किङ्ग कमिटी

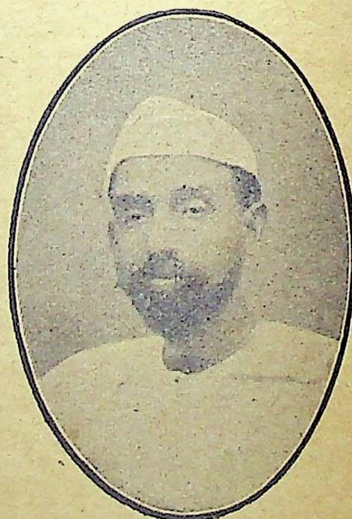


महात्मा गाँधी

B. Jagat vir singh

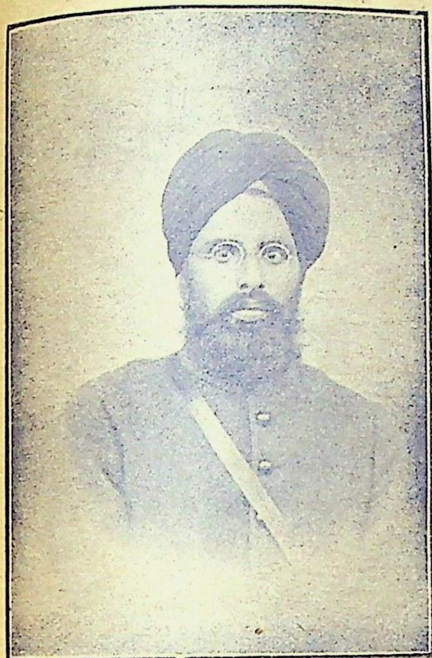


श्रीमती देवी सरोजिनी नायडू



श्री० बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन

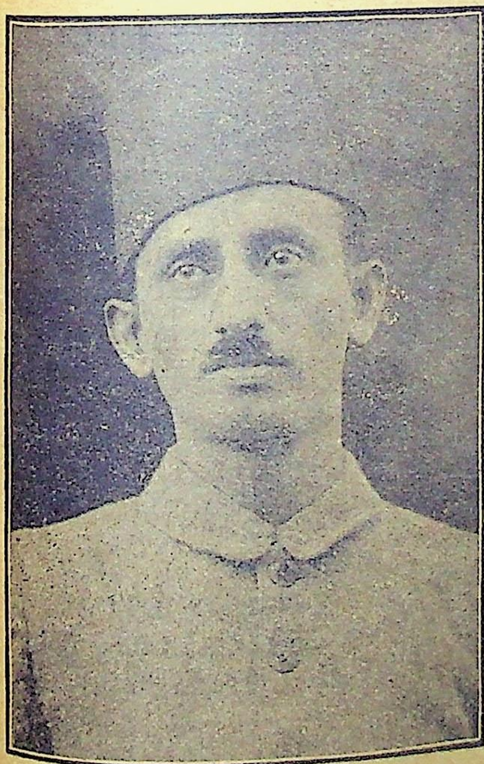
के कुछ प्रतिभाशाली सदस्य



श्री० सरदार मङ्गलसिंह



श्री० जे० एम० सेन गुप्ता



सय्यद अब्दुल्ला ब्रेलवी

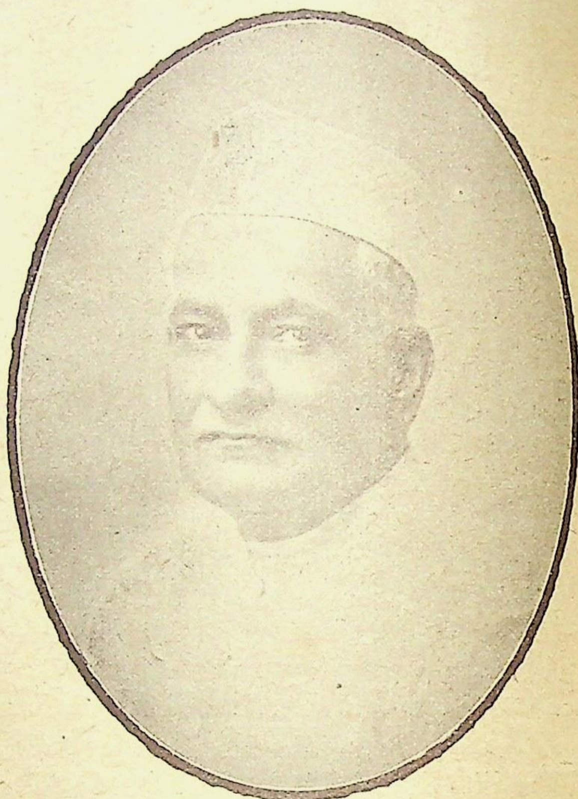


श्रीमती हंसा मेहता

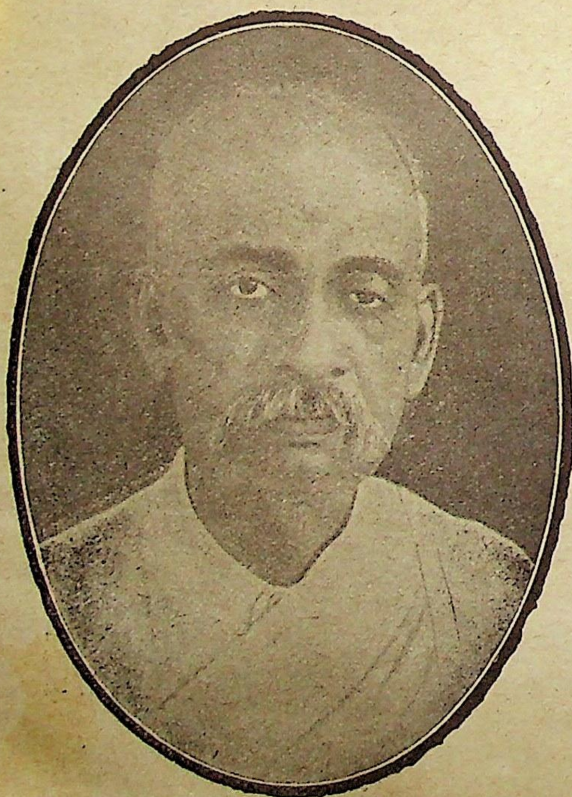
भारतीय काँङ्ग्रेस वर्किङ्ग कमिटी



पं० मदनमोहन मालवीय



पं० मोतीलाल नेहरू



सरदार वल्लभभाई पटेल



मौलाना अबुल कलाम आज़ाद

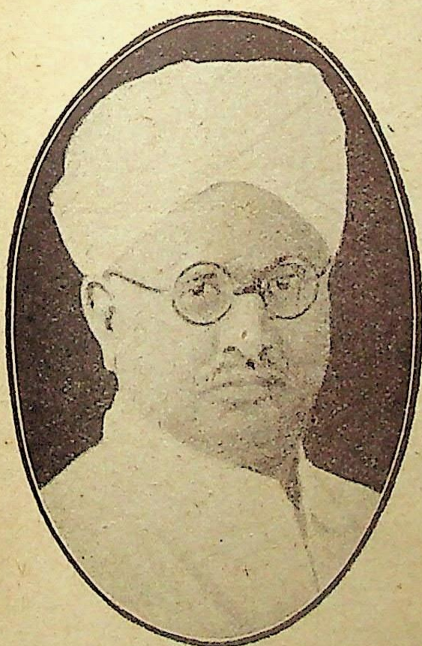
के कुछ प्रतिभाशाली सदस्य



डॉक्टर अन्सारी



श्री० विट्ठलभाई पटेल

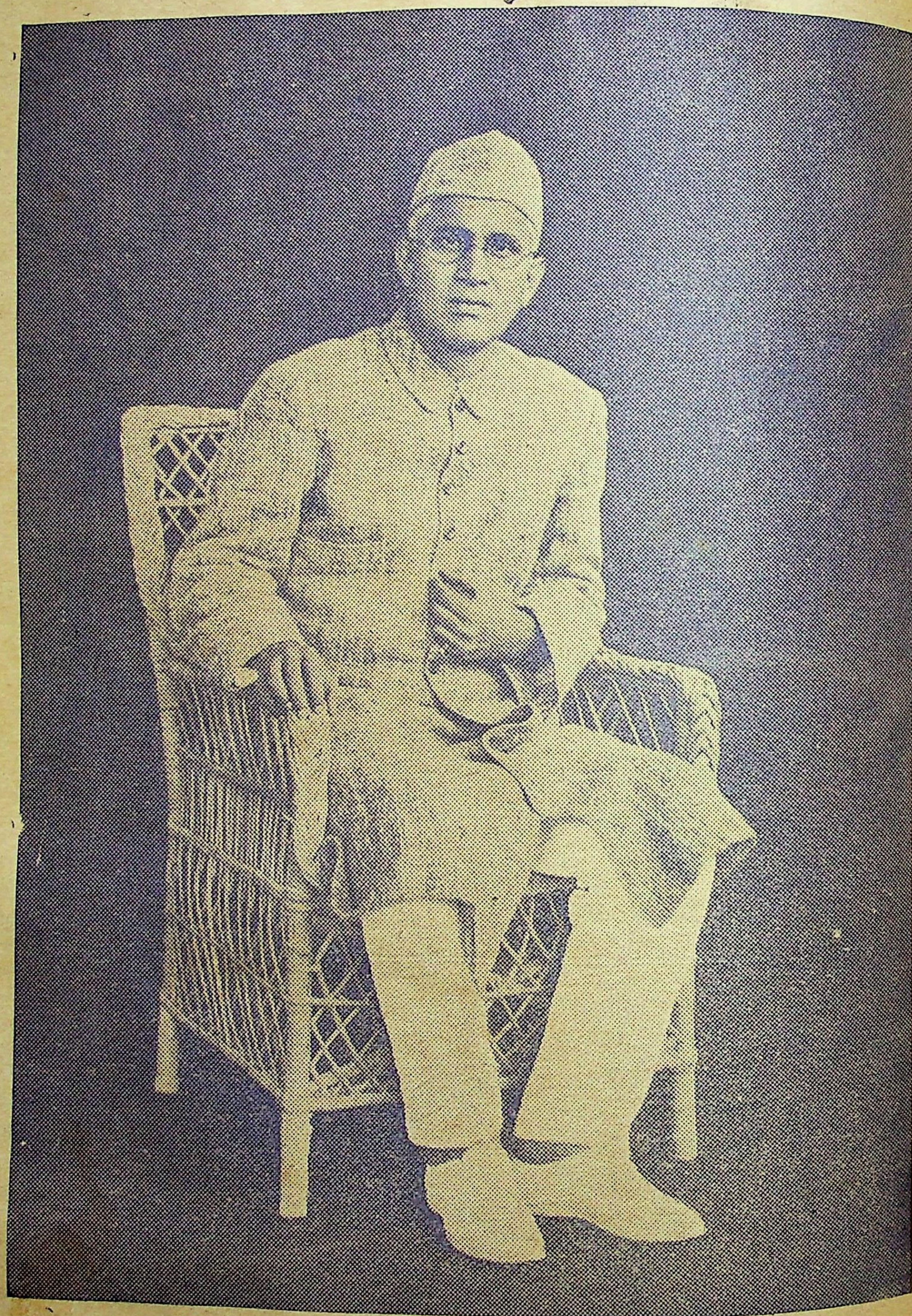


श्री० डॉक्टर सत्यपाल

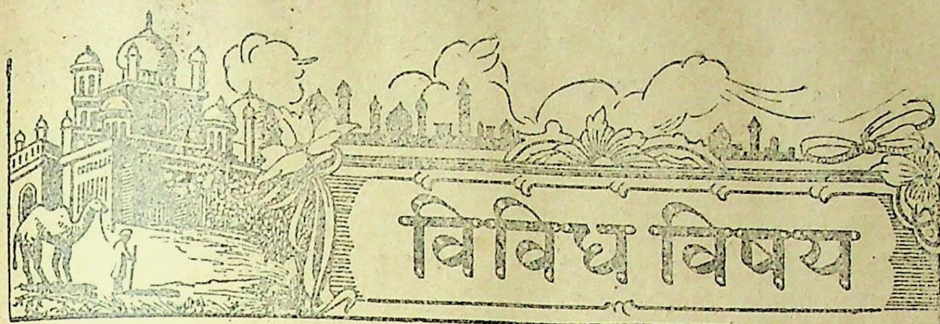


श्री० के० एफ़० नॉरिमन

भारतीय कॉङ्ग्रेस वर्किङ्ग कमिटी के प्रतिभाशाली सदस्य



डॉक्टर सय्यद महमूद



लक्ष्मण की वीरता

दुर्जय राक्षसों का संहार कर रामचन्द्र अयोध्या लौट आए ; उन्हें राजतिलक दिया गया। इसके बाद दूर-दूर से राजे, मुनि, ऋषि आदि उनका कुशल-समाचार पूछने आने लगे। एक दिन महामुनि अगस्त्य भी आए। जिस समय वे आए, उस समय सभा लगी हुई थी, रामचन्द्र जी सिंहासन पर बैठे हुए थे। वहाँ बहुत से राजे उपस्थित थे। सबों ने उठ कर मुनि को प्रणाम किया और उन्हें सर्वोच्च आसन पर बैठाया। दोनों ओर से कुशल-समाचार पूछ लेने के बाद, मुनि ने कहा—हे राम! राक्षस बड़े ही वीर और दुर्जयी थे, उन्हें तुम लोगों ने किस प्रकार मारा? किनको तुमने मारा और किनको लक्ष्मण ने? तुम्हारी युद्ध-वार्ता सुनने की बड़ी इच्छा है, उसे कहो।

रामचन्द्र जी ने मुनि की ख़ुशामद करते हुए उत्तर दिया—हे तपोश्रेष्ठ! आपसे कौन बात छिपी है? आप सर्वज्ञाता ठहरे। फिर भी जब आप पूछ रहे हैं, तब मुझे कहना ही पड़ेगा। मृत्यु के समान अनेक राक्षसों को हम दोनों भाइयों ने युद्ध में मारा, जिनकी गणना नहीं हो सकती। इनमें प्रधान रावण और कुम्भकर्ण को हमने मारा और इन्द्रजित की हत्या लक्ष्मण ने की।

मुनि ने कहा—लङ्का के योद्धाओं में इन्द्रजित अद्वितीय था। वह इन्द्र को बाँध कर लङ्का ले गया था, जिन्हें ब्रह्मा ने जाकर छुड़ा दिया। वह बादल की आड़ में छिप कर युद्ध करता था, इसलिए उससे पार पाना कठिन था। इसके अतिरिक्त, उसकी बाण-शिक्षा भी सब से बढ़-चढ़ कर थी। ऐसे राक्षस को जिस लक्ष्मण ने मारा, उसके समान वीर तीनों लोक में कोई नहीं है।

मुनि की इस बात से राम को दुःख हुआ, उन्होंने अपने मन का भाव छिपाते हुए कहा—मुनि जी! आप यह क्या कहते हैं? महावीर कुम्भकर्ण और दुर्जय रावण का सामना करने का साहस देवता और गन्धर्व भी नहीं कर सकते थे। उन्हें छोड़ कर आप इन्द्रजित की वीरता की बड़ाई करते हैं? यह कैसी बात है?

इस पर मुनि ने उत्तर दिया—हे राम! तुम्हें मेरी बातों में सन्देह हुआ है। उसे दूर करने के लिए मैं जो कहता हूँ, उसे ध्यान से सुनो। इन्द्रजित को ऐसा वर मिला था कि जो मनुष्य चौदह वर्ष न तो सोया हो, न किसी स्त्री का मुँह देखा हो और न भोजन ही किया हो, वही उसे मारेगा। क्या ऐसे मनुष्य का मिलना असम्भव नहीं है? इसी असम्भव को सम्भव कर तुम्हारे भाई ने उस दुष्ट को मारा। यदि इस पर भी तुम्हें विश्वास न हो, तो मैं लक्ष्मण से इसका प्रमाण देने को कहूँगा।

रामचन्द्र आश्चर्य-चकित होकर बोले—आप यह क्या कहते हैं? मैंने अपने हाथों से लक्ष्मण को १४ वर्ष फल दिया, सीता के साथ वह चौदह वर्ष भ्रमण करता रहा, हम सीता के साथ एक कुटी में और लक्ष्मण दूसरी कुटी में रहते थे, फिर वह किस प्रकार चौदह वर्ष नहीं सोया? मुनि जी! आप ऐसी बातें कह रहे हैं, जिन पर हम क्या, कोई भी मनुष्य विश्वास नहीं कर सकता।

अगस्त्य मुनि ने सभा में लक्ष्मण को बुलाने की इच्छा प्रकट की। रामचन्द्र जी ने सुमन्त्र को, लक्ष्मण को बुला लाने की आज्ञा दी। सुमन्त्र ने जाकर देखा कि लक्ष्मण अपनी माता सुमित्रा के घर में बैठे हुए हैं। उन्होंने उनसे रामचन्द्र जी का सम्वाद कह सुनाया। उसे सुन, वे राम के सामने जा उपस्थित हुए। लक्ष्मण को देख कर राम ने कहा—देखो लक्ष्मण, मैं तुमसे कई बातें पूछता हूँ। उसका सच-सच उत्तर सभा के लोगों के सामने दो। पहली बात यह है कि बन में हम तीनों व्यक्ति एक साथ रहते थे, फिर तुमने किस प्रकार

सीता का मुँह चौदह वर्ष तक नहीं देखा ? प्रति दिन फल तोड़ कर तुम लाते थे। मैं उनका तीन भाग कर, एक भाग तुमको दे दिया करता था। यह कैसे सम्भव है कि तुमने चौदह वर्ष में एक दिन भी भोजन नहीं किया ? अन्तिम बात यह है कि वन में हम लोग भिन्न-भिन्न कुटी में रहते थे, तिस पर भी तुम चौदह वर्ष न सोए। क्या इस बात को कोई मान सकता है ?

लक्ष्मण हाथ जोड़ कर कहने लगे—"हे राजीव-लोचन ! जिन बातों को मैंने आपसे आज तक गोपनीय

बम्बई की श्रीमती विद्यागौरी पुरुषोत्तमदास फाडिया, जो हाल ही में विलेपार्ले पर गिरफ़्तार हुई हैं।

रक्खा था, उन्हें ही आप पूछ रहे हैं। अस्तु, जब पापी रावण सीता जी को हर कर ले गया और हम दोनों आदमी दुःखित, खिन्न-मन, विषादयुक्त घूमते-घूमते ऋष्यमूक पर्वत पर पहुँचे, तब सुग्रीव ने हमें सीता जी के कुछ गहने दिखाए थे। आपने जब मुझसे उन्हें पहचानने को कहा, तब हम न तो उनके हार ही पहचान सके और न केयूर ही, हमने पहचाना तो उनके पैर के नूपुर ही को पहचाना। हम लोग चौदह वर्ष साथ रहे सही, किन्तु हमने कभी नज़र उठा कर सीता जी के मुँह की ओर नहीं देखा। प्रति दिन उनके पैरों में वन्दना करने के कारण मैं उनके पैर के गहने को ही पहचानता था।

"चौदह वर्ष न सोने का कारण सुनिए। जब आप और सीता जी कुटी में सोते थे, उस समय मैं हाथ में धनुष-बाण लेकर पहरा दिया करता था। एक दिन की बात है कि जब मैं इस प्रकार पहरा दे रहा था, तब निद्रा ने आकर मेरी आँखों पर बैठना चाहा। मैं क्रोध में आकर उसे बेध डालने का उपक्रम करने लगा। इस पर निद्रा देवी ने हाथ जोड़ कर माफ़ी माँगते हुए पूछा—'हे लक्ष्मण ! मैं तुम्हारे पास कब आऊँगी ?' मैंने उत्तर दिया—'हमारे वनवास-काल में तुम हमारे पास फटको तक नहीं। राम जब अयोध्या के राजा होंगे और सीता देवी उनके वाम भाग में बैठेंगी, तब मैं हाथ में छत्र लेकर खड़ा होऊँगा, उसी समय तुम मेरे पास आना।' इसका प्रमाण आपको नहीं देना होगा, क्योंकि आपको ख़याल ही होगा कि जब आप सीता जी के साथ सिंहासनारूढ़ हुए, उस समय मैं छत्र लेकर खड़ा हुआ था। इसी समय निद्रा देवी का मुझ पर आक्रमण हुआ और छत्र मेरे हाथ से गिर गया।

"अब अनाहार की बात कहता हूँ। यह सच है कि मैं प्रतिदिन फल तोड़ कर लाया करता था और उसका तीन हिस्सा कर आप एक हिस्सा हमें देते थे। फल देते समय आप कहते थे—'लो लक्ष्मण, अपना हिस्सा लो।' मैं फल ले लिया करता था और उसे अपनी कुटी में लाकर रख दिया करता था। आपने कभी मुझे खाने को नहीं कहा। बिना आपकी आज्ञा के मैं फल कैसे खाता ? चौदह वर्षों के फल ज्यों के त्यों रक्खे हुए हैं।"

रामचन्द्र जी ने कहा—हे लक्ष्मण, उन फलों को तुमने किस प्रकार रक्खा है ? सभा में लाकर सब लोगों के समक्ष उपस्थित करो ?

इस पर लक्ष्मण ने हनूमान को वन की अपनी कुटी से फल लाने की आज्ञा दी। हनूमान ने वन में जाकर देखा कि आश्रम फल से भरा हुआ पड़ा है। उसने अपने मन में [illegible] कि लक्ष्मण ने हमें यह छोटा सा तरकस लाने को कहा, इसे तो कोई मामूली से मामूली बन्दर भी [illegible] जा सकता था। उसे अपने बल का अहङ्कार [illegible] अहङ्कार का फल अवश्य ही मिलता है। हनूमान को भी उसका फल हाथों-हाथ मिल गया। वह

जब तरकस उठाने लगा, तब वह इतना भारी हो गया कि टस से मस नहीं होता था। हनूमान ने बड़ी चेष्टा की, सारी शक्ति लगा दी, किन्तु कोई फल न निकला। अन्त में, निराश होकर लज्जा के मारे सिर झुकाए, सभा में जा खड़ा हुआ। राम ने पूछा—क्यों हनूमान, तरकस नहीं लाए ?

हनूमान लज्जा से गड़ा जा रहा था। उसने सिर नीचा किए ही उत्तर दिया—"स्वामिन्, लछमण का तरकस कोई मामूली चीज़ नहीं है। उसे लाना तो दूर रहा, मैं उठा भी नहीं सका।" राम ने लछमण की ओर देख कर कहा—"तुम्हीं तरकस लाओ।" आज्ञा पाकर लछमण गए और क्षण भर में अपने बाएँ हाथ से पकड़े हुए तरकस को सभा में ला रक्खा। तत्पश्चात् राम ने कहा—"फलों को गिन डालो।" सब फल ठीक मिले, किन्तु सात दिनों के फल नहीं मिले। इस पर राम ने कहा—"तुम झूठे निकले, तुमने सात दिनों का फल खाया है, अन्यथा वे क्या हो जाते ?" लछमण ने उत्तर दिया—"भैया ! आप मुझे बिना जाने-बूझे झूठा न बनाइए। सात दिनों के फल न मिलने के कारण ये हैं—जिस दिन हम लोगों ने पिता की मृत्यु का समाचार सुना था, उस दिन किसी ने कुछ नहीं खाया। उस दिन हम लोग विश्वामित्र के आश्रम में थे। वे इसके साक्षी हैं। दुष्ट रावण ने जिस दिन सीता देवी को हरा था, उस दिन हम दोनों शोक-सागर में डूबे हुए थे। उस दिन खाने-पीने की सुध नहीं रही। इसलिए उस दिन का फल भी नहीं मिलेगा। इन्द्रजित ने हम दोनों को नागपाश में जिस दिन बाँध कर अचेत किया था, वह दिन आपको भूला न होगा। वह दिन अनाहार ही में बीता था। माया-रूपी सीता का सिर कटा हुआ देख कर हम दोनों कितने दुःख में पड़ गए थे। आप स्मरण कीजिए, हम उस दिन भी फल नहीं लाए थे। पाँचवें दिन का फल न मिलने का कारण यह है कि उस दिन महिपासुर हमें बन्दी कर पाताल में ले गया था। इसका साक्षी हनूमान है। आप उससे पूछ लीजिए, हम दोनों का उस दिन अनशन था। जिस दिन हमें मेघनाद का शक्तिशेल लगा था, उस दिन मैं स्वयं अचेत था। फल लाता तो कौन ? इसलिए एक वह दिन भी निकाल दीजिए। अन्तिम दिन की बात क्या कहूँ ! जिस दिन रावण मारा गया था, उस दिन सब लोग आनन्द में खाना-पीना भूल गए थे। उस दिन मैं फल लाना भूल गया और हम लोग अनाहार ही रहे। ये ही सात दिन हैं, जिनके फल नहीं मिल रहे हैं।"

लछमण की इन बातों को सुन कर सभा के सभी लोग आश्चर्य में पड़ गए और राम की आँखों से आँसू गिरने लगे।

—रमेशप्रसाद, बी० एस-सी०

* * *



बम्बई की श्रीमती लक्ष्मीबाई गिरधरलाल हेमदेव—जिन्हें विदेशी वस्त्रों की दूकान पर धरना देने के अपराध में ४ मास का दण्ड प्रदान किया गया है।

कान्यकुब्ज बहिनों पर अत्याचार

कान्यकुब्ज समाज में जितनी कुप्रथाएँ हैं, जितने दुर्गुण हैं, उनके वर्णन का अन्त नहीं। इसी जाति में ठहरौनी जैसी पैशाचिक प्रथा है, जिससे बालिकाओं के प्रति होने वाले महा अन्याय का प्रतिकार होना अशक्य नहीं, अपितु असम्भव है। बीघा-बिस्वा, ऊँच-नीच, स्थान व स्थानान्तर का भेद-भाव, और अनेक पाप-वृत्तियाँ इस समाज के लोगों का जीवन शैतान से भी

पतित बनाए हुए हैं। इससे तो पशु-पक्षियों का जीवन कहीं श्रेष्ठ होता है।

संसार को बतलाने के लिए समाज के नामधारी नेता जाति का ऐसा रूप प्रकट करते हैं कि, मानो वह उन्नति के शिखर पर चढ़ी जा रही है। पर वस्तु-स्थिति देखने पर पूर्ण अधःपतन का साम्राज्य छाया हुआ प्रकट होता है। कुरीतियाँ दूर करने के प्रस्ताव पास होते हैं, बाल, वृद्ध, और बहु-विवाह हानिकारक बतलाए जाते हैं; दहेज, पर्दा-प्रथा और सहभोजता पर बड़े-बड़े ज़ोरदार निश्चय होते हैं; किन्तु यह सब दिखाने के लिए। इस बीसवीं शताब्दी में भी पुराने विचार के लोग तो विरोध करने की मूर्खता करते ही हैं; किन्तु समाज-सेवा का दम भरने वाले युवा भी दिखाने के लिए हाथ उठाते हैं।

यह सब कनौजियों के ढोंग हैं। यदि इस ढोंग का पर्दाफ़ाश किया जाय तो यह कहा जाता है कि तुम समाज का नङ्गा चित्र क्यों रखते हो? जाति को बदनाम न करो। तुममें और मिस मेयो में क्या फ़र्क है? इस प्रकार समाज के दुर्गुण बतलाना अश्लीलता है। इस कायरता की भी कोई सीमा है। समाज में नङ्गा नृत्य दिन-रात, चौबीस घड़ी होते हुए तो लज्जा नहीं आती; पर यदि उस बीभत्स गाथा को समाचार-पत्र तथा पुस्तिकाओं में प्रकट किया जाय तो आप नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं! इस मूर्खता और अन्धेपन का जितना जल्द नाश हो, उतना ही अच्छा है।

इसका भी तो कारण है, इससे पुरुष-समाज के अत्याचार प्रकट होते हैं। जाति की स्त्रियों का कहाँ तक अधःपतन होता है, और कितनी दुर्गति होती है, इसे देखने के लिए उनमें शक्ति कहाँ है।

आज का पुरुष-समाज निर्जीव और कायर हो गया है। कनौजिया युवक सभाओं में प्रस्ताव पास करके आते हैं, और घर आते ही लड़के का पिता लड़के के बेचने का संयोग रचता है, लड़की का पिता लड़की को जहाँ-तहाँ ढकेलने का उद्योग करता है, और सब के सब सभा में की हुई सभी प्रतिज्ञाओं को धीरे-धीरे तोड़ डालते हैं। अब सभ्य समाज ही बतलाए कि ऐसे लोगों को क्या कहा जाय। इन अलापों से समाज की स्त्रियों पर कितना अत्याचार होता है, सती सीता और सावित्री कहाँ तक बनती हैं, इसे परमात्मा ही जाने।

इस समाज की स्त्रियाँ पशुओं की भाँति घर के कोने में पड़ी रहती हैं। पशु-पक्षी भी स्वच्छन्द हैं, उन्हें भी स्वच्छ वायु सेवन करने को मिलती है। किन्तु भारतवर्ष की श्रेष्ठ ब्राह्मण जाति में भी सर्व-श्रेष्ठ कान्यकुब्जों में देवियों की अवस्था नरक के कीड़ों से भी बदतर है। यही कारण है कि हमारी बहिनें अधिकांश में रोगिणी रहती हैं। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यही है कि उनके रहन-सहन, खान-पान, और शिक्षा की ओर किञ्चित ध्यान नहीं दिया जाता है। ऐसे अनेक घर हैं, जहाँ स्त्रियाँ रोगावस्था में भी सूर्यदर्शन व शुद्ध वायु से वञ्चित रहती हैं। कोई भी उनकी ओर निगाह उठा कर नहीं देखता। अँधेरी कोठरी में गन्दे बिस्तर पर पड़ी कराहा करती हैं। सेवा-शुश्रूषा की कौन कहे, एक बूँद पानी के लिए तड़पा करती हैं। ऐसी अवस्था में वैद्य या डॉक्टर को दिखाना तक पाप समझा जाता है। कारण, पैशाचिक पर्दा। पर-पुरुष स्त्रियों को देख लेगा, इसलिए उन्हें अपनी इज़्ज़त का बड़ा भय रहता है। किन्तु सच्ची इज़्ज़त क्या है, यह सोचने का शायद उन्हें अवकाश ही न मिलता होगा। परिणाम-स्वरूप स्त्रियाँ शक्तिहीन होती जाती हैं, वैसी ही उनकी सन्तान पैदा होती है।

नव-विवाहिता बालिका विवाह के पश्चात शीघ्र ही रोगग्रस्त हो जाती है, किन्तु उसके इलाज का प्रबन्ध नहीं होता। कुछ ही दिनों में वह शान्ति की गोद में विश्राम लेती है। इसके अतिरिक्त उपाय ही क्या है? दयामय ईश्वर सबका रक्षक है, इसलिए शायद वह अपनी असहाय पुत्रियों को कष्ट में देख कर शीघ्र ही अपने समीप बुला लेता है।

जब यह सब अत्याचार मैं देखती हूँ, तो मेरे हृदय में तूफ़ान-सा उठता है, हृदय में हलचल मच जाती है, चित्त अशान्त हो जाता है; किन्तु यह सब कुछ ही देर के लिए। कारण, हम स्त्री हैं, पुरुषों की ग़ुलाम हैं, बन्दिनी हैं, हमारा कुछ अधिकार इन बातों में हस्तक्षेप करने का नहीं है। हम उनकी इच्छा के विरुद्ध कुछ भी करने में असमर्थ हैं। हम केवल अत्याचार सहने के लिए हैं, यही हमारा अधिकार है।

यदि ध्यान से दृष्टिपात किया जाय तो स्त्री-जाति में कनौजियों की स्त्रियाँ अधिक दुखी एवं रोग-ग्रसिता हैं। उन पर इन अत्याचारों के कारण ये हैं:—

(१) ठहरौनी का पूरा न होना।
(२) व्याह के १ साल ही बाद पुत्र उत्पन्न न करना।
(३) कुरूपा होना।
(४) लड़कियाँ ही होना।
(५) भाग्यवश कुछ शिक्षिता होना।

इनमें से यदि एक भी बात स्त्रियों में हुई, तो फिर अत्याचारों की कमी नहीं होती। कोई यह विचार करने का कष्ट नहीं उठाता है कि इनमें इन बेचारी अबलाओं का क्या दोष है ?

यदि कभी स्त्रियों के सम्मेलन में प्रसङ्गवश उनके पराधीन जीवन की बात छिड़ जाती है, और सब अपने-अपने समाज की कुरीतियाँ प्रदर्शन करती हैं, तो वे एक स्वर से कह उठती हैं—बहिनो, कान्यकुब्जों की स्त्रियाँ जितना अधिक कष्ट पाती हैं, उतना हम लोग भी नहीं ! तभी तो देखती नहीं हो, फलाँ घर की बहू ज़हर खाकर मर गई, कुएँ में डूब कर मरी व कपड़ों में आग लगा कर जल मरी। यह सब जानती हो कहाँ होता है ? बहिनो ! कनौजियों के यहाँ।

यह क्यों होता है ? इसीलिए कि पतन के गर्त में गिरने की अपेक्षा, व्यथित-हृदया अबलाएँ यही उपाय खोजती हैं। और सदैव के लिए इस भीषण दुःख से छुटकारा पा जाती हैं। इसी में उन्हें शान्ति मिलती है !

इस ग्लानि से मेरा मस्तक भले ही झुक जाए, पर धर्म और जाति पर डींग हाँकने वाले कनौजियों के सरदारों के सिर की पगड़ी और साफ़ा नहीं सरकेगा। कैसी मर्दानगी है ! ऐसा क्यों न हो; क्योंकि स्त्रियों के सम्बन्ध का प्रश्न है। यदि आज कान्यकुब्ज देवियों में शक्ति होती तो वे समाज के इन पाखण्डियों का दर्प चूर कर देतीं। इन अभिमानियों से पूछा जाय कि स्त्रियों के सम्बन्ध में तुम्हें न्याय करने का क्या अधिकार ? समाज के स्त्री और पुरुष—दो समान अङ्ग हैं। फिर दूसरे अङ्ग की इतनी उपेक्षा कैसी ? बाबा तुलसीदास ने शायद कान्यकुब्ज बहिनों के लिए ही इस चौपाई की रचना की है :—

ढोल, गँवार, शूद्र, पशु, नारी।
ये सब ताड़न के अधिकारी॥*

—विन्ध्यवासिनी देवी शुक्ल

* * *

भारतीय ज्योतिःशास्त्र में पृथ्वी की गति

आधुनिक पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि हमारे ग्रह-जगत (Planetary system) का केन्द्र पृथ्वी नहीं, बल्कि सूर्य है, जो अपनी धुरी (Axis) पर नाचता हुआ एक जगह स्थिर रहता है और इसके चारों तरफ़ मङ्गलादि अन्य ग्रहों की भाँति हमारी यह पृथ्वी भी, जो वस्तुतः एक ग्रह है, बराबर चक्कर लगाया करती है। उन विद्वानों का यह भी मत है कि हमारे सूर्य की यह स्थिरता वास्तविक नहीं, बल्कि आपेक्षिक है, अर्थात् वह अपने चारों तरफ़ चक्कर लगाने वाले ग्रहों के सम्बन्ध में उनकी कक्षाओं का केन्द्र होने से स्थिर सा जान पड़ता है; पर वस्तुतः वह भी एक दूसरे सूर्य के चारों तरफ़, जिसे हम महासूर्य कह सकते हैं, चल रहा है। वह महासूर्य हमारे सूर्य की कक्षा का केन्द्र है और इस सूर्य-कक्षा की परिधि इतनी भारी है कि सूर्य अभी सरल रेखा में जा रहा है। इसका प्रमाण वे यह देते हैं कि हरकुलेश (Hercules) नामक तारा-मण्डल में कतिपय अनेक नवीन तारे देखे जा रहे हैं, जिनका उल्लेख प्राचीनों के ज्योतिष-ग्रन्थों में कहीं नहीं मिलता तथा उस मण्डल के जो तारे क्षीण-कान्ति थे, अब उनकी कान्ति बढ़ी हुई मालूम पड़ती है। इस दृश्य के दो ही कारण हो सकते हैं—(१) उक्त हरकुलेश-मण्डल दिन पर दिन हमारे सूर्य के समीप आ रहा है अथवा (२) हमारा सूर्य सीधे हरकुलेश-मण्डल की ओर बड़े वेग से भागा जा रहा है। इन दोनों कल्पनाओं में पहली कल्पना आकर्षण-शक्ति के नियमों (Laws of Gravitation) के विरुद्ध होने से अमान्य है; दूसरी कल्पना ठीक जँचती है कि हमारा ही सूर्य हरकुलेश की ओर खिंचता जा रहा है। वेद-मन्त्रों का अनुशीलन करते हुए उन पर ज़रा

* देवी जी सुप्रसिद्ध समाज-सेवी पं० रमाशङ्कर शुक्ल, एम० ए० (पथिक जी के अनुज) की धर्मपत्नी हैं।

ध्यानपूर्वक विचार कीजिए तो आपको स्फुरित होगा कि सम्बन्धित मन्त्रों के द्रष्टा ऋषियों को सूर्य तथा पृथ्वी की पूर्वोक्ति गति भली भाँति मालूम थी। निम्न-लिखित वेद-मन्त्रों पर विचार कीजिए —



बम्बई की एक महिला-वालरिटयर, जो प्रातःकाल बिगुल बजा कर देशवासियों को भारत-माता के प्रति अपने कर्तव्य से सचेत कर रही है।

(क) आकृष्णेन रजसाऽवर्त्तमानो
निवेशयन्न मृतं मर्त्यं च।
हिरण्मयेन सविता रथेन
देवोयाति भुवनानि पश्यन्॥

—यजु० अ० ३३, मं० ४३

सान्वय अर्थ—सविता देवः (सूर्य देव) आकृष्णेन रजसा (अपने आकर्षण गुण से) अमृतं (बुध, वृहस्पति, शुक्र आदि अमर लोकों) च (तथा) मर्त्यं (मर्त्य लोक पृथ्वी को) निवेशयन् (अपनी-अपनी कक्षा में यथास्थान रखते हुए) आवर्त्तमानः (तथा उन्हें अपने चहुँ ओर घुमाते हुए) हिरण्मयेन (सुवर्णवत् देदीप्यमान) रथेन (अपने शरीर के द्वारा) भुवनानि (लोक लोकान्तरों को) पश्यन् (प्रकाशित करते हुए) याति (चले जा रहे हैं)।

नोट—इससे स्पष्ट हो गया कि सूर्य अपने आकर्षण से ग्रहगण को उनकी कक्षाओं से च्युत नहीं होने देता तथा उन्हें अपने चारों ओर नचाता हुआ अनाद्यन्त आकाश में स्वयं भी कहीं जा रहा है।

(ख) यदा सूर्यममुं दिवि शुक्रं ज्योतिरधारयः।
आदित् ते विश्वा भुवनानि येमिरे॥

—ऋ० अ० ६, अ० १, व० ६, मं० ५

सान्वय अर्थ—यदा (जिस समय विश्वस्रष्टा ने) अमुं (इस) शुक्रं ज्योति (अत्युज्ज्वल ज्योतिःस्वरूप) सूर्यं (सूर्य को) दिवि (आकाश में) अधारयः (रच कर स्थापित किया) ते आदित् (उस समय के प्रारम्भ में ही) विश्वा (विश्व के) भुवनानि (पृथ्वी आदि लोकों को) येमिरे (नियमपूर्वक अपनी-अपनी कक्षा में नियन्त्रित कर दिया।

(ग) या गौर्वर्त्तनिं पर्य्येति निष्कृतं
पयोदुहाना व्रतनीर धारतः।
सा प्रब्रुवाणा वरुणाय दाशुषे
देवेभ्यो दाशद्धविषा विवस्वते॥

—ऋ० अ० ८, अ० २, व० १०, मं० १

सान्वय अर्थ—या (जो) गौः (पृथ्वी) व्रतनीः (अपने नियम का पालन करती) दाशुषे वरुणाय (दानी और श्रेष्ठ जनों के लिए) देवेभ्यः (और देवतास्वरूप विद्वानों के लिए) अधारतः (चहुँ ओर धारा प्रवाह से) निष्कृतं (निरन्तर) पयोदुहाना (अन्न, रस, फल, फूलादि भोग्य पदार्थों को उत्पन्न करती) हविषा दाशत् (तथा अनेक प्रकार की सुख-सामग्रियों को प्रदान करती [है) सा (वह गौ) प्रब्रुवाणा (परमात्मा की महिमा का उपदेश करती हुई) वर्त्तनिं (अपनी कक्षा में) विवस्वते पर्य्येति (सूर्य के चारों ओर घूमती है)।

नोट—इस वेद-मन्त्र में "विवस्वते पर्य्येति" शब्द ध्यान देने योग्य है, जिससे स्पष्ट है कि वैदिक ऋषियों को पृथ्वी की सूर्य केन्द्रक गति का पूरा-पूरा ज्ञान था।

(घ) आयं गौः पृश्नि रक्रमी दसदन् मातरं पुरः
पितरं च प्रयन्त् स्वः ॥

—यजु० अ० ३, मं० ६

सान्वय अर्थ—आयं (यह) गौः (पृथ्वी) मातरं (जननी स्वरूप जल को) असदन् (प्राप्त होती हुई अर्थात् उसे अपने साथ लेती हुई) च (तथा) पितरं स्वः (निःशेष प्राणियों को पितृवत् उत्पन्न तथा पालन करने वाले सूर्यलोक के) पुरः (चारों तरफ़) प्रयन् (चलती हुई) पृश्निः (अन्तरिक्ष में) आक्रमीत् (परिभ्रमण करती हैं)।

(ङ) अहस्ता यदपदी वर्द्धतक्षा शचीभिर्वेद्यनाम्।
शुष्णं परि प्रदक्षिणित् विश्वायवे निशिश्नथः ॥

—ऋ० मण्ड० १०, २२ (१४)

सान्वय अर्थ—क्षा (यह पृथ्वी) यद् (यद्यपि) अहस्ता (हस्त-रहित) अपदी (तथा पैर से भी शून्य है) तथापि शुष्णं परि (सूर्य के चारों तरफ़) प्रदक्षिणित् (प्रदक्षिणा करती हुई) वेद्यानाम् (जानने योग्य जो परमाणु हैं अथवा जानने योग्य जो पञ्चमूल तत्व हैं उनकी) शचीभिः (क्रियाओं से प्रेरित होकर अथवा उनकी क्रियाओं के साथ-साथ) वर्द्धत (अपनी कक्षा में आगे बढ़ रही है अर्थात् चली जा रही है) विश्वायवे (विश्व के उपकारार्थ) निशिश्नथः (हे ईश्वर! तूने ऐसा प्रबन्ध रचा है)।

नोट—इस वेद-मन्त्र में "शुष्णं परि प्रदक्षिणित्" वाक्यांश पर ध्यान दीजिए, जिसका अर्थ "सूर्य के चारों ओर घूमती हुई" है।

(च) सविता यन्त्रैः पृथिवीमरम्णाद—
स्कम्भने सविता द्यामदृंहत्।
अश्वमिवाधुक्षद् धुनिमन्त—
रिक्षमतूर्त्तं बद्धं सविता समुद्रम् ॥

—ऋ० मण्ड० १०, १४६ (१)

सान्वय अर्थ—सविता (सूर्य) यन्त्रैः (रज्जु के समान अपने आकर्षण से) पृथिवीम् (पृथ्वी को) अरम्णात् (बाँधे हुए है); सविता (सूर्य) अस्कम्भने (अनायन्त निराधार आकाश में) द्याम् (अपने परितः स्थित द्युलोकस्थ अन्यान्य ग्रहों को भी) अदृंहत् (दृढ़ किए हुए है); सविता (सूर्य) अतूर्त्ते (टूटने योग्य जो नहीं है। उस आकर्षण-रूप रज्जु में) बद्धम् (बँधे हुए) धुनिम् (नाद करते हुए) समुद्रम् (बड़े ज़ोर से भागने वाले पृथ्वी आदि लोकों को) अन्तरिक्षम् (आकाश में) अश्वमिव (घोड़े के ऐसा) अधुक्षत् (घुमा रहा है)।



मिस श्यामकुमारी नेहरू, बी० ए०, एल्-एल्० बी०
एडवोकेट, इलाहाबाद हाईकोर्ट

जो हाल ही में "जवाहर-दिवस" में निकाले हुए जुलूस के ग़ैर-क़ानूनी क़रार दिए जाने पर गिरफ़्तार हुई थीं और जिन्हें ५०) रु० जुर्माना, अथवा जुर्माना न देने पर एक मास का कारावास दण्ड दिया गया था और जो किसी अज्ञात व्यक्ति के जुर्माना जमा कर देने पर छोड़ दी गई हैं।

(छ) कतरा पूर्वा कतरापरायोः
कथा जाते कवयः कोविवेद।
विश्वंत्मना बिभ्रतो यद्धनाम
विवर्त्तते अहनी चक्रियेव ॥

—ऋ० मण्ड० १, १८५ (१)

सान्वय अर्थ—अगस्त्य ऋषि विद्वानों से पूछते हैं कि—कवयः (हे विद्वानो) अयोः (इन दोनों पृथ्वी और द्युलोक में) कतरा (कौन सा) पूर्वा (आगे या ऊपर है) कतरा (और कौन सा) परा (पीछे वा नीचे है) कथा (कैसे) जाते (ये दोनों उत्पन्न हुए) कोविवेद (ये बातें कौन जानता है ?) इस प्रश्न का उत्तर वे स्वयं देते हैं कि—यद्‌नाम (जो कुछ है सो सारे) विश्वम् (विश्व को) बिभ्रतोः (धारण करते हुए) अना (ये पृथ्वी और द्युलोक) अहनि (अहर्निश) चक्रिया इव (रथ के चक्र के ऐसा) विवर्त्तेते (चक्कर लगा रहे हैं) । इसलिए कौन ऊपर है और कौन नीचे है, यह नहीं कहा जा सकता । यहाँ द्युलोक से तत्रस्थ अन्यान्य ग्रहों का अभिप्राय है, जो पृथ्वी की तरह ही चक्कर लगा रहे हैं, जिससे वे कभी पृथ्वी के ऊपर तो कभी पृथ्वी के नीचे से चलते हुए मालूम पड़ते हैं ।

उक्त वैदिक प्रमाणों से यह बात निर्विवाद रूप से सिद्ध है कि वैदिक ऋषियों को पृथ्वी का सूर्य की परिक्रमा करना भली-भाँति विदित था । तथा उनको इस बात का भी ज्ञान था कि यह पृथ्वी अपने अक्ष पर भी लट्टू की तरह नाच रही है, जिससे दिन और रात हुआ करते हैं । ऐतरेय ब्राह्मणों के निम्न-लिखित उद्धरण पर निगाह डालिए :—

(ज) अथ यदेनं प्रातरुदेतीति मन्यन्ते रात्रेरेव तदन्तमित्वा अथात्मानं विपर्यस्यते अहरेव दिनं कुरुते रात्रिं परस्तात् । स वै एष न कदाचन विपर्यस्यते न ह वै कदाचन निम्रोच्चति ।

अर्थ—लोग जो यह मानते हैं कि सूर्य रात के अन्त में पहुँच कर पूर्व दिशा में उदय लेता है और फिर दिन के अन्त में प्राप्त होकर अपने को पच्छिम दिशा में छिपा लेता है, जिससे वह दिन और रात किया करता है, सो बात नहीं है; न कभी वह छिपता है, न निकलता है ।

ऐतरेय ब्राह्मण के रचयिता ऋषि को दिन-रात के होने का यथार्थ कारण मालूम था और वह कारण पृथ्वी का अपने अक्ष पर दैनिक आवर्त्तन (Daily Rotation) के अतिरिक्त और कुछ नहीं है । यदि कहो कि आकाश-मण्डल के भी घूमने से सूर्य के उदयास्त के साथ-साथ दिन-रात हो सकते हैं, तो नहीं । आचार्य आर्यभट अपने आर्यभटीय नामक सिद्धान्त ज्योतिष ग्रन्थ में लिखते हैं—

(झ) भपंजरः स्थिरो भूरेवावृत्यावृत्य प्रातिदैवसिकौ ।
उदयास्तमयौ सम्पादयति ग्रह नक्षत्राणाम्॥

अर्थ—आकाश-मण्डल स्थिर है ; पृथ्वी ही बार-बार घूम कर प्रतिदिन ग्रहों और नक्षत्रों के उदयास्त का सम्पादन करती है । यदि शङ्का करो कि आकाश घूमता सा क्यों मालूम देता है, तो इस शङ्का का समाधान आर्यभट्ट यों करते हैं —

(ञ) अनुलोम गतिर्नौस्थः पश्य—
त्यचलं विलोमगं यद्वत् ।
अचलानि भानि तद्वत्
लङ्कायां समपश्चिमगानि ॥

अर्थ—जैसे नौका में बैठ कर सीधे जाता हुआ मनुष्य किनारे के स्थिर वस्तुओं को अपने से प्रतिकूल दिशा में चलती हुई देखता है, वैसे ही भूलोक-वासियों को सूर्यादि स्थिर गगनस्थ पिण्ड, लङ्का से ठीक पच्छिम की ओर जाते हुए दीख पड़ते हैं । पृथ्वी किस हिसाब से अपने अक्ष पर घूम रही है, इसे आर्यभट्ट यों बतलाते हैं :—

(ट) प्राणेनैति कलां भूः ।

अर्थ—एक बार श्वास लेने में जितना समय लगता है, उतने समय में पृथ्वी अपने अक्ष पर एक कला चलती है । एक प्राण १० विपलों का होता है, जो ४ सेकण्ड के तुल्य है । एक चतुर्युग में पृथ्वी का दैनिक आवर्त्तन कितना होता है, उसे भी आर्यभट्ट ने बतलाया है :—

(ठ) ङिशिबुणॢष्खृ ।

अर्थ—एक चतुर्युग में पृथ्वी की भगण संख्या १,५८,२२,३७,५०० (१ अर्ब, ५८ करोड़, २२ लाख, ३७ हज़ार, ५ सौ) है । यहाँ पर यह याद रखना चाहिए कि यह संख्या पृथ्वी की कुछ सूर्य केन्द्रक भगण संख्या नहीं है, प्रत्युत उसकी दैनिक आवर्त्तन संख्या है ।

पृथ्वी के चलत्व प्रतिपादक पूर्वोक्त अकाट्य प्रमाणों के रहते भी पीछे के भारतीय विद्वानों के मस्तिष्क में धरणी देवी को अचल मानने का कुसंस्कार कैसे उत्पन्न हुआ, इस पर भी विचार करना परमावश्यक है ; कारण कि इस कुसंस्कार का प्रभाव न केवल ज्योतिर्विदों पर ही

पड़ा; बल्कि इसका प्रभाव सारे संस्कृत साहित्य पर पड़ गया। यहाँ तक कि जहाँ वैदिक ऋषिगण पृथ्वी के लिए बार-बार "गो" शब्द का व्यवहार करते थे, जिसका अर्थ "गच्छतीति गौः (गम् × डो)" है अर्थात् जो चलती है वह गौ है, वहाँ कोषकार-शिरोमणि अमरसिंहादिकों ने "पृथ्वी" शब्द के विविध पर्यायों में "अचला" "स्थिरा" आदि शब्दों को भी लिख मारा :—

"भूर्भूमिरचलाऽनन्ता रसा विश्वम्भरा स्थिरा।"

इस कुसंस्कार के केवल दो ही कारण प्रतीत होते हैं—(१) वेदों के सबोध (Intelligent) पठन-पाठन का ह्रास और (२) यवनों के साथ भारतीयों का सम्पर्क। वेदों के सबोध पठन-पाठन के अभाव से सच्चे वैदिक ज्ञान का लोप हुआ और वेद-मन्त्रों का मनमाना ऊटपटाङ्ग अर्थ होने लगा, जिससे देश में नाना प्रकार के अनर्थ फैल गए। इतिहास से पता चलता है कि यह घटना उस समय से सम्बन्ध रखती है, जिस समय बौद्धमत की पताका देश के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक फहरा रही थी और बौद्धों के प्रहार से हिन्दू-धर्म की रक्षा के लिए पुराणों की रचना हो रही थी। इस समय वेदों की अपेक्षा पुराणों के ही पठन-पाठन पर अधिक ज़ोर दिया जाने लगा था। यवन (Greeks) भी इसी समय भारत में आने लगे थे। सभी इतिहासवेत्ता इस बात को एक स्वर से स्वीकार करते हैं, यवन ज्योतिष का प्रभाव भारतीय ज्योतिष पर पड़ा है। आचार्य वाराहमिहिर, जो सम्राट् विक्रमादित्य के नवरत्नों में से थे, यवनों की देखा-देखी राशि-चक्र को १२ भागों में बाँट कर उनके नाम क्रमशः मेषादि रख दिए और २८ नक्षत्रों में से अभिजित को निकाल कर केवल २७ ही नक्षत्र रक्खे, जिससे प्रत्येक राशि के लिए २¼ नक्षत्रों की कल्पना हुई। यवनों में उस समय टालमीय मत (Ptolemaic System) का प्रचार था, जिसके अनुसार पृथ्वी राशि-चक्र का केन्द्र-स्वरूप होकर स्थिर मानी जाती थी। सम्भव है कि भारतीय विद्वान् पृथ्वी को अचल मानने की नासमझी के लिए यवनों के ही ऋणी हों। इस मूर्खता ने भारतीयों पर अपना रङ्ग इतना गहरा जमाया कि भास्कराचार्य जैसे गोलविद्या के अद्वितीय विद्वान भी इसके चङ्गुल में आ फँसे। उन्होंने अपने "सिद्धान्तशिरोमणि" में "मरुच्चलो भूरचला स्वभावतः" लिख डालने की ग़लती कर दी, जिसका अर्थ है कि स्वभाव से ही वायु चल तथा पृथ्वी अचल है। जब आचार्य आर्यभट ने पहले-पहल शाकाब्द ४२३ में पृथ्वी के दैनिक आवर्त्तन रूपी सच्चे वैदिक सिद्धान्त की घोषणा की, तो उन पर तत्कालीन तथा बाद के ज्योतिषियों के ऐसे-ऐसे बेसिर-पैर के आक्षेपों की बौछार होने लगी जिन्हें देख हँसी आती है। तुर्रा तो यह है कि वे सब आक्षेप वैसे ही हैं, जैसे आजकल के गँवार



श्रीमती प्रकाशवती देवी

आप मेरठ के महिला-सत्याग्रह-दल की प्रधाना हैं, जिन्हें ५½ महीने की सज़ा दी गई है।

अशिक्षित मनुष्य प्रायः किया करते हैं। पाठकगण के चित्तविनोदार्थ तथा जानकारी के लिए उन आक्षेपों का भी उल्लेख किए देते हैं। ब्रह्मगुप्त ने अपने "ब्रह्म सिद्धान्त" में लिखा—

प्राणेनैति कलां भूर्यदि
तर्हि कुतो व्रजेत् कमध्वानम्।
आवर्त्तनमुर्व्याश्चेन्न
पतन्ति समुच्छ्रयाः कस्मात्॥

अर्थ—आर्यभट ने "प्राणेनैति कलां भूः" लिख कर एक श्वास में पृथ्वी का एक कला पूर्व की ओर चलना बतलाया। इस पर ब्रह्मगुप्त ने आक्षेप किया कि यदि पृथ्वी एक श्वास में एक कला पूर्व की ओर चलती है तो यह कहाँ से चलती है और किस मार्ग से चलती है? यदि कहो कि पृथ्वी अपने अक्ष पर घूमती है तो बड़ी-बड़ी अट्टालिकाएँ तथा मीनार आदि क्यों नहीं टूट कर गिर जाते? लल्ल ने आक्षेप किया कि—



श्रीमती अम्बावा बाई

आप अथानी (बेलगाँव) की विदुषी हैं, जिन्हें सत्याग्रह-आन्दोलन में भाग लेने के कारण २ मास की सज़ा दी गई है। करनाटक की जेल जाने वाली आप प्रथम महिला हैं।

यदि च भ्रमति क्षमा तदा
स्वकुलायं कथमाप्नुयुः खगाः।
इषवोऽभिनभः समुज्झिता
निपतन्तः स्युरपांपतेर्दिशि॥
पूर्वाभिमुखे भ्रमे भुवो
वरुणाशाभिमुखो व्रजेद् धनः।
अथ मन्दगमात्तथा भवेत्
कथमेकेन दिवा परिभ्रमः॥

अर्थ—यदि पृथ्वी घूमती है तो चिड़ियाएँ अपने-अपने घोसलों को कैसे पाती हैं? फिर आकाश की ओर चलाए हुए बाण, चलाने के स्थान से पश्चिम की ओर गिरने चाहिए। यदि पृथ्वी का घूमना पूर्व की ओर है तो बादलों को सर्वदा पश्चिम की ओर चलना चाहिए। यदि कहो कि पृथ्वी की गति के मन्द होने से वैसा नहीं होता, तो फिर केवल एक ही दिन में पृथ्वी का पूरा आवर्त्तन कैसे हो जाता है? श्रीपति ने लिखा :—

यद्येवमम्बरचरा विहगा स्वनीड़
मासादयन्ति न खलु भ्रमणे धरित्र्याः।
किंचाम्बुदा अपि न भूरिपयोमुचः
स्युर्देशस्य पूर्वगमनेन चिराय हन्त॥
भूगोलवेगजनितेन समीरणेन
केत्वादयोऽप्यपरदिग्गनयः सदा स्युः।
प्रासाद भूधर शिरांस्यपि सम्पतन्ति
तस्माद् भ्रमत्युडुगण स्त्वचलाऽचलैव॥

अर्थ—यदि पृथ्वी चलती है तो आकाश में उड़ने वाले पक्षियों को अपना घोंसला न मिलना चाहिए। यदि देश पूर्व की ओर जा रहा है तो किसी एक स्थान में देर तक वृष्टि नहीं होनी चाहिए। भूमण्डल के वेग से उत्पन्न हुए वायु के वश होकर पताका आदि को सदा पश्चिम की ओर उड़ना चाहिए; तथा मकान, पहाड़ आदि की चोटियों को भी गिर जाना चाहिए; पर ये सब बातें नहीं होतीं; अतः नक्षत्र-चक्र ही चल रहा है; अचला (पृथ्वी) अचला (गतिहीन) ही है।

ये ही सब आक्षेप आर्यभट के मत (Theory) के विरुद्ध अन्य ज्योतिषियों ने करना प्रारम्भ किया, जिनका सन्तोषजनक उत्तर भारत की तत्कालीन विद्वन्मण्डली को नहीं मिलने के कारण उक्त मत किसी को स्वीकृत न हुआ। पर सत्य के अनुरोध से यह बात माननी ही पड़ेगी कि पूर्वोक्त आक्षेपों का ठीक-ठीक उत्तर पहले-पहल कोपर्निकस् (Copernicus), गैलीलियो (Galileo), न्यूटन (Newton) आदि यूरोपीय विद्वानों ने ही देकर भूकेन्द्रक ज्योतिष का बहिष्कारपूर्वक सूर्य-केन्द्रक ज्योतिष की नींव अटल रूप से जमा दी, जिसे आज सारा संसार मान रहा है। कोपर्निकस् एक जर्मनी का विद्वान था। उसने "De Re-

volutionibus Orbium Coelestium" (Revolution of the Celestial Orbs) नामक पुस्तक लिख कर इस बात की घोषणा की कि पृथ्वी अपनी धुरी पर नाचती है, जिस कारण नक्षत्र-मण्डल पूर्व से पश्चिम की ओर चलता सा मालूम होता है और वह अन्य ग्रहों की भाँति सूर्य की भी वार्षिक परिक्रमा करती है। वास्तव में सूर्य ही, न कि पृथ्वी, ग्रह-जगत का केन्द्र है। इस पुस्तक को उसने १५३० में लिखी, पर यह प्रकाशित हुई उसकी मृत्यु के पश्चात् १५४३ ई० में। इसका कारण यह था कि पृथ्वी को चल मानना बाइबिल की शिक्षा के विरुद्ध था; अतः उसको यह भय था कि कहीं पोप साहब को उसके सिद्धान्तों का पता लगा तो फिर जीवन से हाथ धोना पड़ेगा। वे उसे नास्तिक समझ प्राणदण्ड देंगे। जैसी उसने आशङ्का की थी वैसा ही हुआ। जब उसकी पुस्तक प्रकाशित हुई तो उसके सिद्धान्तों के मानने वाले पोप के द्वारा नाना प्रकार से सताए जाने लगे। कितने तो ज़िन्दा ही जला दिए गए, जिनमें ब्रूनो (Bruno) नामक एक प्रसिद्ध विद्वान भी था। गैलीलियो ने इटली से भाग कर अन्य देश में शरण ली। यह वही प्रसिद्ध विद्वान गैलीलियो था, जिसने दूरदर्शक (Telescope) यन्त्र तथा दोलक यन्त्र के हिलने के नियम (Laws of Oscillation) आविष्कार किए थे। पर अन्त में सत्य की विजय हुई और अन्ध-परम्परा का समूल उत्पाटन हुआ।

ऊपर लिख आए हैं कि कोपर्निकस् जर्मनी का विद्वान था, जिस देश में वेदों का पठन-पाठन चिरकाल से आज तक प्रचलित है। क्या आश्चर्य है कि उसे सूर्य-केन्द्रक ज्योतिष तथा पृथ्वी के चलत्व का इशारा (Hint) स्वदेश में प्रचलित वैदिक ज्ञान से ही मिला हो।

अब यहाँ पाठकों की उत्सुकता-निवृत्ति के लिए भूभ्रम विषयक पूर्वोक्त शङ्काओं का समाधान कर इस लेख का उपसंहार करते हैं। पृथ्वी के आकर्षण के वश में होकर सारा वायु-मण्डल तथा उसमें उड़ने वाले पक्षी आदि भी पृथ्वी के साथ-साथ घूम रहे हैं। उनके घोंसले भी उन्हीं के साथ-साथ चल रहे हैं। ये ही कारण हैं, वे छुटने नहीं पाते। और इमारतों तथा पर्वतों की चोटियाँ इस कारण टूट कर नहीं गिरतीं कि पृथ्वी इतने वेग से भागती हुई भी तनिक नहीं हिलती, और नहीं हिलने का यह कारण है कि इसे अपने मार्ग में किसी बाहरी वस्तु के साथ सङ्घर्ष (Collision) नहीं होता। हाँ, जब कभी किसी अन्य कारण से, जैसे भूकम्प के अवसर पर, हिलती है, तो बड़ी-बड़ी इमारतें अवश्य टूट कर गिर जाती हैं तथा अन्यान्य भी उपद्रव हुआ करते हैं। बादल तथा छूटे हुए बाण भी पृथ्वी की दैनिक तथा वार्षिक गति में उसका साथ बराबर देते जाते हैं, जिससे उनका सदा पश्चिम की ओर जाना आवश्यक नहीं होता। यही दशा पताका की भी समझनी चाहिए। वायु-मण्डल कुछ पृथ्वी से पृथक तथा स्वतन्त्र पदार्थ नहीं है, जो ऊपर लिखे हुए आक्षेपों की गुञ्जायश हो।

—रजनीकान्त शास्त्री, बी० ए०, बी० एल०

* * *



श्री० राघवेन्द्र राव

आप बेलारी काँङ्ग्रेस कमिटी के मन्त्री हैं जिन्हें एक वर्ष की सज़ा हुई है।

बालकों पर होने वाले अत्याचार

आज भारतीय वायु-मण्डल क्रान्ति के तुमुल लहरों से लहरा रहा है, जिसकी भयङ्कर ज्वाला से यह विराट विश्व रह-रह कर काँप उठता है। जल में, स्थल में, जन में, मन में, परिवार में, संसार में, समाज में, साहित्य में, शिक्षा में, दीक्षा में, भाव में, भाषा में, कहाँ तक कहें, वायु-मण्डल में भी क्रान्ति ही क्रान्ति है। संसार की दृष्टि में, इतिहास के पृष्ठों में, यह युग क्रान्ति का युग होगा।

वर्तमान युग में होने वाले सभी कार्य, चाहे वे राजनैतिक, पारिवारिक, सांसारिक, किम्वा धार्मिक क्यों न हों, सभी क्रान्ति की कसौटी पर कसे जा रहे हैं। इस परीक्षा में जो ठीक उतरा वह रहा और जो ज़रा भी खोटा निकला वह क्रान्ति-चक्र पर पीस कर चूर्ण-विचूर्ण कर दिया गया। उसी चूर्ण से वह पुनः नवीन रूप में निर्मित होता है। यही क्रान्ति-चक्र का विश्वव्यापी विशाल कार्य है।

जिस प्रलयङ्कर ज्योति को जगाने के लिए, जिस अग्नि को प्रज्वलित करने के लिए, देश भर के युवक हँसते-हँसते जेलों को भर रहे हैं, अधिकारियों के पशुतापूर्ण व्यवहार को शान्तिपूर्वक सह लेते हैं, लाठी और गोलों की मार को सिर झुका कर स्वीकार कर लेते हैं; जिसके आगे स्वर्गीय प्रेम को, पारिवारिक नन्दन-कानन को, तुच्छ समझ कर उमङ्ग के साथ बलिवेदी पर चढ़ जाते हैं; जिस अग्नि को भयङ्कर और प्रलयङ्कर बनाने के लिए कितनी ही कोमल-प्राण महिलाएँ और सुकुमार देवियाँ असंख्य कष्ट झेलती हैं, रोष को पी जाती हैं, अपमान को सह लेती हैं, वह अनल अब जल उठा है। इस अनल की रुद्र ज्वाला में दासता, परतन्त्रता और ग़ुलामी जल कर खाक़ हो जायँगी। देश भर में पुनः सदियों के बाद स्वतन्त्रता की सुनहली किरण जगमगाएगी, सभी मुक्त होंगे, बन्धन-रहित होंगे, स्वतन्त्र विचरणशील होंगे। यही इस समय देश भर का ध्येय है, प्रेय है।

यह जो कुछ क्रान्ति और शान्ति का तुमुल युद्ध हो रहा है, सभी भविष्य में स्वच्छन्दता, स्वाधीनता और सुख प्राप्त करने के लिए ही हो रहा है, इसी एक चिन्ता से आज देश भर के जन-मन व्याकुल और त्रस्त हैं। जिस भविष्य के लिए हम इतनी शक्ति लगा रहे हैं, बलि पर बलि दे रहे हैं, प्राणों की आहुति कर रहे हैं, उस भविष्य के अधिकारी कौन हैं? स्वतन्त्रता की सुनहली मुकुट धारण करने वाले और स्वाधीनता के सिंहासन पर आसीन होने वाले कौन हैं? हमारे भविष्य के उज्ज्वल नक्षत्र कौन हैं? देश की भावी सम्पत्ति कौन हैं? सभी का एकमात्र उत्तर होगा—"हमारे भविष्य के उत्तराधिकारी हमारे बालक!" अब प्रत्येक विचारवान मनुष्य की शोचनीय समस्या यह है कि "हमारे उत्तराधिकारी ये बालक, जो आज ग़ुलामों की तरह रक्खे जाते हैं, जिन्हें आज स्वतन्त्रता का नाम तक नहीं सुनाया जाता, कैसे स्वाधीनता का उपभोग कर सकेंगे?"

स्वतन्त्रता ईश्वरीय शक्ति है। उसमें प्राणी मात्र का अधिकार है। मनुष्य तो सभी प्राणियों से श्रेष्ठ जीव है। अतएव उसे तो इस ईश्वरीय दान से कभी वञ्चित न रखना चाहिए।

जिस स्वतन्त्रता को प्राप्त करने के लिए आज यह जगतव्यापी महासमर हो रहा है, जिस स्वतन्त्रता के पीछे आज हमने अपने जान और माल की परवाह करना तक छोड़ दिया है, जिसके लिए आज आबाल-वृद्ध इतने व्याकुल हो रहे हैं, उस स्वतन्त्रता से हमारे बच्चे कहाँ तक भिज्ञ हैं, यह एक प्रश्न है, जिस पर हमें विचार करना चाहिए। अधिकतर लोग इसी परिणाम पर पहुँचेंगे कि हमारे देश के बच्चे, जिनके ऊपर हमारे देश का भविष्य निर्भर है, आज स्वाधीनता का अनुमान तक करने में असमर्थ हैं, यह बात हमारे देश के लिए सब से अधिक हानिकारक है।

आज हमारे नवयुवक अपने देश का करुण-क्रन्दन सुनते हैं, बहिनों और माताओं पर अपमान होता देखते हैं, पर वे आगे बढ़ने और दुखियों का दुःख दूर करने से हिचकते हैं। वे ऐसा क्यों करते हैं? क्या उनकी रगों में यौवन का ऊष्ण रक्त प्रवाहित नहीं हो रहा है? क्या उनके निर्बल हृदय में साहस का एक कण भी नहीं है? पर उनमें दब्बूपन, झेंप और सशङ्कता अधिक भरी है। यही कारण है कि आज हमारे नवयुवक आगे क़दम उठा कर भी आगे नहीं बढ़ते, उनकी समस्त शक्तियाँ दबी पड़ी हैं। उनमें चैतन्यता की शक्ति रहते हुए भी वे बेकार और निष्क्रिय हैं।

पर इसमें युवकों का कुछ दोष नहीं है, दोष है उनके माता-पिता और अभिभावकों का। मनुष्य के हृदय पर माता का जो प्रभाव शैशव में पड़ता है, वही उसका भविष्य-जीवन निर्माण करता है, यह मत निर्विवाद सिद्ध है। हमारी माताएँ हमें क्या शिक्षा देती हैं? उनमें न तो स्वाधीनता है और न साहस। वे तो हमें दब्बू और झेंपू ही बनाती हैं। आज देश भर की स्त्रियाँ ग़ुलामी की ज़ञ्जीर से जकड़ी हुई हैं। उन्हें अपने जीवन में कभी भी स्वतन्त्रता की कल्पना करने का भी सौभाग्य प्राप्त नहीं होता, वे तो हवा और रोशनी को भी नहीं पा सकतीं। बात-बात में उनको गालियों और लाठियों की बौछार सहनी पड़ती हैं। उनकी जीवनी घर की दासियों से भी निकृष्ट है। दासियाँ गाली और मार नहीं खा सकतीं, पर स्त्रियाँ उन्हें चुपचाप सहती हैं। ऐसी ही माताओं के प्रभाव से हमारे बालकों का भविष्य-जीवन निर्माण होता है। फिर उनमें स्वाधीनता कहाँ से आएगी।

माता के प्रभाव से छूटने पर बच्चों को स्कूल आना पड़ता है। यहाँ उन्हें क्या शिक्षा मिलती है, इसे प्रायः देश भर के सभी मनुष्य जानते हैं। आजकल प्रायः सभी माता-पिता अपने बच्चों को नौकरी की आशा से ही पढ़ाते हैं। नौकरी की आशा से ही बच्चों को जैसे-तैसे कम उमर में ही पास कराने के लिए चिन्तित रहते हैं। इसके फल-स्वरूप छोटी अवस्था के बच्चों को भी अपना कोमल शैशव दिन-रात की पढ़ाई में रगड़-रगड़ कर क्षय करना पड़ता है। ६ बजे सवेरे से ३ बजे तक प्रायः प्रत्येक विद्यार्थी को पिता अथवा ट्यूटर की देख-रेख में बिताना पड़ता है। इस समय बच्चों पर जो बीतती है, उसका अनुभव प्रायः सभी विद्यार्थियों को रहता है। पढ़ाते समय कठिन अथवा सरल सभी तरह की बातों को मस्तिष्क में प्रविष्ट कराने के लिए बेंत, लात, घूसों, और थप्पड़ों से काम लिया जाता है। यहाँ से छुट्टी मिली तो वह नहा-खाकर स्कूल जाता है। वहाँ पाँच-छः घण्टों में उसे सात-आठ विषयों पर सबक़ लेना और सुनाना पड़ता है। इतने विषयों को तैयार करना उसकी शक्ति से बाहर है। पर वहाँ इसे कौन सोचे। सबक़ याद न हुआ कि फिर वही बेंत, थप्पड़ें, गालियाँ उसके लिए मौजूद हैं; सन्ध्या को उसे थोड़ा सा अवकाश खेल-कूद करने को मिलता है। फिर छः-सात बजे से नौ बजे रात तक उसी दण्ड-नीति का व्यवहार उससे किया जाता है। बेचारे बच्चे वर्तमान शिक्षा-प्रणाली के भार से इतने लद गए हैं कि उन्हें सिर उठाने की फ़ुरसत नहीं मिलती। आनन्द, उत्साह और साहस तो उनसे कोसों भागते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि शिक्षा ही प्राप्त करते-करते हमारे बच्चे, प्रसन्नता-रहित, आलसी और उत्साहहीन हो जाते हैं। उनका मन शान्तिहीन और शरीर कान्ति-विहीन हो जाता है। उनकी आँखों का तेज नष्ट होता जाता है। उनकी बुद्धि सदा के लिए परमुखापेक्षी बन जाती है।



बम्बई के १७वें "वार-कौन्सिल" के मन्त्री, जो ४थी दिसम्बर को जेल भेजे गए हैं।

मस्तिष्क पर अत्याचार करने के साथ शरीर पर भी बड़ा अत्याचार होता है। जिनके ट्यूटर होते हैं, वे तो कुछ बच भी जाते हैं, पर जिन बच्चों के पिता ही ट्यूटर होते हैं, उन पर तो आफ़त का पहाड़ ही टूट पड़ता है। ज़रा-ज़रा सी भूल पर इतने बेंत लगाए जाते हैं कि उनके चमड़े उधड़ जाते हैं। मलते-मलते कान लाल हो जाते हैं। कभी-कभी तो वे हाथ-पैर बाँध कर दोपहरी की कड़ी धूप में घण्टों के लिए डाल दिए जाते हैं, या कङ्कड़ियों पर घुटनों के बल खड़े किए जाते हैं। कोई-कोई निर्दयी पिता तो लड़कों को कड़ी दुपहरी में आँगन के जलते

सिमेण्ट पर घण्टों लिटा रखते हैं। बेचारा बच्चा रोता-चिल्लाता और तड़फड़ाता रहता है। अगर इधर-उधर खसकने की ज़रा भी कोशिश की, तो उस पर बेंत बरसने लगते हैं। आह! अभागे बालक के मर्मभेदी आर्तनाद से पाषाण तक पसीज उठता है। पर निर्दयी पिता अधिक क्रूर होता जाता है। बेचारी माता अपने हृदय के धन को, कलेजे के टुकड़े को, रोते-कलपते, चिल्लाते और चीख़ते देखती है, पर रक्त के आँसू बहा कर चुप रह जाती है। वह बेचारी क्या करे! वह तो पराधीन है। अपने ही बच्चे पर उसका कोई अधिकार नहीं है।



अहमदनगर ज़िले के 'डिक्टेटर', जिन्हें सत्याग्रह-आन्दोलन में ६½ मास का कठिन कारावास-दण्ड दिया गया है।

वह क्या कहे, उसकी कोई सुनता है? वह तो मूर्खा है, अशिक्षिता है, शिक्षा-सम्बन्धी बातों में हस्तक्षेप करना उसकी अनधिकार चेष्टा है।

कोई-कोई महोदय तो इतनी निष्ठुरता से बच्चों को पीटते हैं कि उनको मूर्च्छा आ जाती है, या उनके मुँह से ख़ून निकलने लगता है, इनमें सब गँवार, उजड्ड और मूर्ख पिता ही नहीं होते, बल्कि सरस्वती के वर-पुत्र बड़े-बड़े डिग्री और पदवीधारी पिता भी होते हैं। एक महाशय जी एम० ए० हैं, और वकील भी हैं, अपने बच्चे के साथ वे इतनी निष्ठुरता और क्रूरता से पेश आते हैं कि देखते हुए कलेजा काँपता है। निष्ठुरता तक सिहर उठती है। वे महाशय ज़रा-ज़रा सी भूल पर अपने बच्चे को कभी धूप में लिटाते और कभी घण्टों घुटनों के बल कङ्कड़ पर खड़ा कराते हैं। एक बार तो उन्होंने बच्चे को पाख़ाने में आध घण्टे तक बन्द रक्खा! सो भी रात को! बेचारा लड़का भय से काँप रहा था। गँवार और मूर्ख बच्चे तो आनन्द और उत्साह से शैशव के सुन्दर प्रवाह में बह चलते हैं, पर इन ज्ञानी और बाबू बनने वाले बच्चों का शैशव चक्षुओं की क्षारमय अश्रुधारा के रास्ते बह जाता है।

मैं समझती हूँ कि इस लेख को पढ़ कर प्रायः सभी पाठक यह कहेंगे कि "यह तो उन्हीं के भविष्य को उज्ज्वल बनाने के लिए किया जाता है।" यद्यपि वर्तमान समय में प्रत्येक माता-पिता शिक्षा का अर्थ "पास करना" और "नौकरी पाना" ही समझते हैं, परन्तु शिक्षा का वास्तविक अर्थ तो आत्माभिमान, स्वदेशानुराग और मानसिक शक्तियों का विकास है, जिसे प्राप्त किए बिना मनुष्य संसार में मनुष्य कहलाने योग्य नहीं होता। वर्तमान स्कूलों की शिक्षा-प्रणाली, तथा माता-पिता और गुरू की अशेष ताड़ना से बच्चे शिक्षित होने के बदले अशिक्षित बन जाते हैं। शिक्षा के नाम पर आज हम शिक्षा का गला घोंटते हैं। बेचारी शिक्षा अब केवल नाम-मात्र को रह गई है। उसका अङ्ग-प्रत्यङ्ग अनेक बन्धनों से जकड़े होने के कारण निर्बल और दुर्बल हो गया है। उसमें सजीवता और ऊष्णता अब नाम मात्र को भी नहीं रही। इसी से आज शिक्षित मनुष्य भी पशुओं से गए-बीते मिलते हैं।

माता-पिता और गुरू के अत्याचार, और आधुनिक शिक्षा-प्रणाली के प्रचार से देश भर के युवक निर्बल, शान्तिहीन और कान्ति-विहीन हो गए हैं। उनमें स्वाधीनता के बदले पराधीनता, पौरुषता के बदले अकर्मण्यता और साहस के बदले निरुत्साहता कूट-कूट कर भरी पड़ी है। इसी से हमारे पूज्य नेतागण वर्षों परिश्रम करने पर भी कृतकार्य नहीं हो रहे हैं। क्योंकि देश की सम्पत्ति और जाग्रति नवयुवकों पर ही अवलम्बित है। हम अपने हाथों से ही अपने बच्चों के भविष्य का ख़ून करते हैं, जिससे हमारे बच्चे जवान हो जाने पर भी



भावनगर में पिकेटिङ्ग करने वाली गुजराती महिलाओं का ग्रूप

फ़र्श पर बैठी हुईं—(बाईं ओर से) अपने बच्चों सहित सौभाग्यवती बालूबेन और जयाबेन।
कुर्सी पर बैठी हुईं—(बाईं ओर से) सौभाग्यवती गावरीबेन, मनीबेन, अखिलेश्वरीबेन, शारदाबेन और सोनीबेन।
पीछे खड़ी हुईं—(बाईं ओर से) सौभाग्यवती जयाकुँवरबेन, ललिताबेन और बच्चूबेन।

कायर, असाहसी, निरुत्साही तथा स्वार्थी ही बने रहते हैं। उनमें ज़रा-सी भी स्वावलम्बता नहीं रहती। वे पग-पग पर दूसरों का मुँह ताका करते हैं। दूसरों की सहायता के बिना उनका कोई कार्य ही पूरा नहीं हो सकता।

शैशव में मनुष्य का हृदय गीली मिट्टी के समान कोमल तथा स्वच्छ जल के समान निर्मल होता है। उस समय उसके हृदय पर जो संस्कार डाला जाता है, वह स्वभाव रूप से पत्थर की लकीर के समान अमिट हो जाता है। इस स्थिति में माता-पिता अपने बच्चे को संसार का श्रेष्ठतम व्यक्ति बना सकते हैं, अथवा संसार की सब से निकृष्ट श्रेणी में रख सकते हैं। यह उनकी प्रबल इच्छा-शक्ति पर निर्भर है। संसार के प्रायः सभी माता-पिता चाहते हैं कि उनकी सन्तान श्रेष्ठ बने, जिससे उनकी चिर-सञ्चित मनोकामनाएँ सफल हों। परन्तु अपने इस सिद्धान्त को कार्य-रूप में परिणत करने के लिए, वे एक अनुचित मार्ग का अनुसरण करते हैं। पिता-माता अपने सुकुमार शिशु पर शत्रु की तरह प्रहार करते हैं, उनको तरह-तरह के भय दिखलाते हैं। उनसे गुलामों

की तरह बर्ताव करते हैं। उन्हें ज़रा-ज़रा सी भूलों पर गुरुतर दण्ड देते हैं। कभी-कभी तो प्राणान्तकारी मार तक मारते हैं। नादान लड़का माता-पिता के सिवाय संसार में और किससे परिचित रहता है? अपने स्नेहाधार को, अपने आश्रयदाता को, जब वह अपने ऊपर इस तरह कुपित और रौद्र रूप में पाता है, उस समय उसके नन्हें से असहाय और सम्पदहीन प्राण कैसे आकुल स्वर से विलाप करते होंगे, इसका अनुमान सभी सहृदय व्यक्ति कर सकते हैं।

बात-बात में उसे बैल, गधा, उल्लू इत्यादि की उपाधि मिलती है। इसके अलावा ज़रा-ज़रा सी भूलों पर लात, घूँसे और बेतों की बौछार पड़ने लगती है। बेचारा कहाँ जाय? क्या यही संसार है? क्या संसार में उसके लिए कोई जगह नहीं है? वह तो अपने पिता-माता को ही संसार में श्रेष्ठ समझता था, जब वे ही उससे ऐसे व्यवहार करते हैं, तो फिर संसार में उसे और कौन पूछेगा? इन्हीं सब धारणाओं के कारण बच्चा हज़ार अत्याचार सह कर भी ग़ुलामों की तरह उनका साथ नहीं छोड़ता।

माता-पिता के अत्याचार से, और उनके प्रति होने वाले निन्दनीय व्यवहार से बालकों के हृदय से आत्माभिमान और आत्म-विश्वास जाता रहता है। इसके फलस्वरूप वे अपने वास्तविक उच्च जीवन को भूल जाते हैं; और जीवन भर यत्न करने पर भी अपने शैशव के आत्माभिमान और आत्म-विश्वास को पुनर्जीवित नहीं कर सकते। इसी से उनका समस्त जीवन शौर्य-वीर्य-हीन, कीड़े-मकोड़ों सा बन जाता है।

शैशव काल से किशोरावस्था तक शिक्षा देने का कार्य ख़ास कर माता-पिता के हाथों में होता है और यही ख़ासकर शिक्षा प्राप्त करने का समय भी है। पर क्या वे सचमुच उनसे शिक्षा प्राप्त करते हैं? क्या उनके मन और आत्मा में इस काल में कुछ भी उन्नति होती है? कुछ नहीं, कारण, माता-पिता ही तो शुरू से उन्हें बैल, गधा, उल्लू आदि की उपाधि दे-देकर उन्हें वैसा ही बना देते हैं, जिससे बालक का हताश हृदय अपने को मनुष्य होने के योग्य ही नहीं समझता। इसी के फल-स्वरूप वह शिक्षा प्राप्त करके भी शिक्षित नहीं हो सकता; उसमें आजीवन मनुष्यता के गुणों की कमी रहती है, जिसे वह पीछे लाख चेष्टा करने पर भी पूरी नहीं कर सकता।

बहुतों का अनुमान है कि बिना दबाव डाले, बच्चे कभी सुधरते ही नहीं। दबाव के ज़ोर से ही वे आज्ञाकारी और मातृ-पितृ-भक्त बन सकते हैं। किन्तु उनकी यह धारणा निर्मूल और ग़लत है। कारण, दबाव और मार-पीट के भय से लड़के आज्ञाकारी तो बनाए जा सकते हैं, पर इससे उनमें वह भक्ति नहीं उत्पन्न की जा सकती, जो प्रत्येक सुपुत्र में अपने पिता-माता के प्रति होनी चाहिए। वे बचपन में पिता की आज्ञाओं को उसी तरह मानते हैं, जिस तरह कोई निर्बल प्रजा एक निर्दय शासक की आज्ञा बेकसी से सिर झुका कर मान लेती है, चाहे वह आज्ञा निकृष्ट से निकृष्ट ही क्यों न हो।

प्रेम से जो भक्ति होती है, वह स्वर्गीय है। भय से जो भक्ति होती है वह तो नगण्य है। दोनों में स्वर्ग और नर्क का अन्तर है। जो लड़का अपने पिता से उसी तरह भय रखता है, जिस तरह एक कोमल प्राणी बाघ और भालू से रखता है, तो उसमें वह भक्ति नहीं हो सकती जो भगवान और भक्त में होती है। उसमें वह भक्ति नहीं होती, जो पिता के प्रति पुत्र में होना हमारे देश में अनिवार्य समझा जाता है।

यदि हम अपने लड़कों को यथार्थ में शिक्षित बनाना चाहते हैं, यदि हम उनको संसार की दौड़ में औरों के समान रखना चाहते हैं, यदि हम उनसे भविष्य में कुछ भी आशा रखते हैं, तो हमें उचित है कि हम उनके शैशव को ग़ुलामी के साँचे में न ढालें, और उनके मानसिक भावों को, जो स्वाभाविक हैं, अत्याचार से न कुचलें। यही एक सिद्धिदायक मन्त्र है।

प्रत्येक माता-पिता को अपने लड़कों के हित के निमित्त, इस बात का अध्ययन करना चाहिए कि स्वतन्त्र देशों में, जहाँ मनुष्यता का आदर किया जाता है, जहाँ सन्तानों को स्वाधीनता का मन्त्र सिखलाया जाता है, जहाँ के बच्चे युवावस्था को पहुँच कर अपने पिताओं के सफल उत्तराधिकारी होते हैं, किस प्रकार बच्चों को शासन में रक्खा जाता है और किस प्रकार उन्हें शिक्षा दी जाती है।

—सुशीला देवी सामन्त



बङ्गाल के सुप्रसिद्ध नेता श्री० सेन गुप्ता की धर्मपत्नी श्रीमती नेली सेन गुप्ता
जो ३० अक्तूबर को दिल्ली में गिरफ़्तार हुई थीं

पुनर्जीवन

मूल-लेखक--महात्मा काउण्ट टॉल्सटॉय

[अनुवादक—प्रोफ़ेसर रुद्रनारायण जी अग्रवाल, बी० ए०]

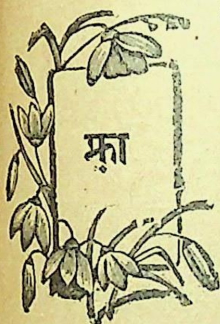
यह रूस के महान् पुरुष काउण्ट लियो टॉल्सटॉय की अन्तिम कृति है। यह उन्हें सबसे अधिक प्रिय थी। इसमें दिखाया गया है कि किस प्रकार कामान्ध पुरुष अपनी अल्प-काल की लिप्सा-शान्ति के लिए एक निर्दोष बालिका का जीवन नष्ट कर देता है; किस प्रकार पाप का उदय होने पर वह अपनी आश्रयदाता के घर से निकाली जाकर अन्य अनेक लुब्ध पुरुषों की वासना-तृप्ति का साधन बनती है; और किस प्रकार अन्त में वह वेश्यावृत्ति ग्रहण कर लेती है। फिर उसके ऊपर हत्या का झूठा अभियोग चलाया जाना, संयोगवश उसके प्रथम भ्रष्टकर्ता का भी जूररों में सम्मिलित होना, उसकी ऐसी अवस्था देख कर उसे अपने किए पर अनुताप होना, और उसका निश्चय करना कि चूँकि उसकी इस पतित दशा का एक मात्र वही उत्तरदायी है, इसलिए उसे उसका घोर प्रायश्चित भी करना चाहिए—सब एक-एक करके मनोहारी रूप से सामने आते हैं, और वह प्रायश्चित का कठोर निर्दय-स्वरूप, वह धार्मिक भावनाओं का प्रबल उद्रेक, वह निर्धनों के जीवन के साथ अपना जीवन मिला देने की उत्कट इच्छा, जो उसे साइबेरिया तक खींच कर ले गई थी! पढ़िए और अनुकम्पा के दो-चार आँसू बहाइए। इसमें दिखाया गया है कि उस समय रूस में त्याग के नाम पर किस प्रकार मनुष्य-जाति पर अत्याचार किया जाता था। उन्हें सुधारना तो एक ओर—वे समाज के पहले से भी घोरतर शत्रु बना दिए जाते थे। आप इसमें रूस के वर्तमान साम्यवाद का बीज-रूप में दर्शन पाएँगे। द्रव्य तैयार था, प्रस्फुटित होने की देर थी। मानवी हृदय का विश्लेषण जिस दक्षता के साथ किया गया है, उसके लिए इतना ही कहना पर्याप्त है कि यह उस व्यक्ति की प्रकृष्ट रचना—उनकी पकी हुई आयु का सर्वोत्तम प्रसाद है—जिसके जोड़ का व्यक्ति संसार में दूसरा नहीं है। छपाई-सफ़ाई दर्शनीय, सजिल्द पुस्तक का मूल्य लागत-मात्र केवल ५) स्थायी ग्राहकों से ३।।।)

व्यवस्थापिका; 'चाँद' कार्यालय चन्द्रलोक —इ-ला-हा-बा-द

इटली-महाक्रान्ति की कुछ स्मृतियाँ

[श्री० देवकीनन्दन जी विभव, एम० ए०]

Italia ! by the passion of the pain,
That bent and rent thy chain
Italia ! by the breaking of the bonds
The shaking of the lands
Beloved, O men's mother, O men's Queen,
Arise, appear, be seen.
—*Swinberne*.



फ़्रान्स की राज्यक्रान्ति के अग्नि-कुण्ड में प्राचीन रूढ़ियाँ धायँ-धायँ कर जल रही थीं और उन्हीं के साथ जल रहे थे 'एकतन्त्रवाद' और उसकी सहचरी 'स्वेच्छाचारिता'! इस महायज्ञ से निकली हुई चिनगारियाँ यूरोप के सब ही देशों में पहुँच गई थीं और वहाँ के शासक प्रजासत्ता के इस रौद्र रूप को देख कर काँप रहे थे। बाहुबल की शक्ति बाहुबल को रोक सकती है, परन्तु बाहुबल विचार-धारा को रोकने में सदैव असमर्थ रहा है। जब-जब संसार में विचारों की उत्ताल-तरङ्गें उठी हैं, शक्ति-बल ने उसके सामने माथा झुका दिया है। बुद्ध का अहिंसावाद उठा और उसने एशिया को भिन्न रूप में बदल कर यूरोप तक अपना डङ्का बजाया, ईसा की प्रेम और भक्ति ने संसार को और ही रङ्ग में रँग दिया और धार्मिक 'जहाद' की मतवाली तलवारों ने संसार की बड़ी-बड़ी शक्तियों पर पदाघात किया! वह धार्मिक युग था, उस समय राजनीति धर्म का एक अङ्ग मात्र थी, परन्तु फ़्रान्स की राज्यक्रान्ति ने राजनीतिक विषयों को सब से आगे लाकर रख दिया था।

इस महायज्ञ की चिनगारियाँ रोम राज्यों में पहुँचीं, वहाँ के नवयुवक आँख मल कर उठ बैठे। हा! रोम! यूरोप की आदि सभ्यता का आधार रोम, पराधीन और परतन्त्र! आग लग गई, उन तरुण-हृदयों में! ऑस्ट्रियन शासक, पीडमोण्ट और पोप की रियासतों ने उनके वीर-हृदय को कुचलना चाहा, पर स्वाधीनता के मतवाले युवक नहीं रुके। हज़ारों निर्वासित हुए और सैकड़ों ने मृत्यु का आलिङ्गन किया। इटली की जेलें और क़िले राजनीतिक क़ैदियों से भर गए!

* * *

बालक ऐटिलियो बेण्डियरा और ऐमीलो बेण्डियरा अभागे राजनीतिक क़ैदियों की दयाजनक स्थिति को देखते थे और उनका हृदय करुण-क्रन्दन करने लगता था। इनका अपराध क्या है? यही न कि यह अपनी मातृ-भूमि को प्रेम करते हैं; उसको स्वतन्त्र करना चाहते हैं! उन्होंने ग़रीबों को पीसा, सभ्य महान रोम को अनाथ और असहाय कर दिया, फिर यह क्यों चुप रहते? क्या भयङ्कर स्वेच्छाचार और निरङ्कुशता को सहन करने से इनकार करना भी कोई पाप है?

बेण्डियरा बन्धुओं ने धन और ऐश्वर्य में जन्म लिया था, उनके पिता एक ऑस्ट्रियन जङ्गी बेड़े के अध्यक्ष थे। विदेशियों ने धन देकर उन्हें ग़ुलाम बना लिया था, वे एक बड़े वेतन के परिवर्तन में अपने ही देश की आकांक्षा कुचलने में अपनी शान समझते थे। जनता उनकी धन-लोलुपता देखती और उन पर थूकती थी। बेण्डियरा-बन्धु सोचते, ऐसा धन किस काम का, जिससे आत्मा का हनन हो? लोकमत के परिवर्तन में इस पद का मूल्य ही क्या है?

अपने पिता के प्रभाव से दोनों बन्धुओं को जल-विभाग में अच्छी नौकरी मिल गई, परन्तु उनके हृदय में तो क्रान्ति की आग धधक चुकी थी। देश स्वतन्त्र कैसे हो? यह उनकी मानसिक चिन्ता उनमें घुन का काम कर रही थी।

* * *

आज 'तरुण-इटली' का प्रत्येक सदस्य एक विचित्र धुन में व्यस्त है। कल ज्योंही सूर्य भगवान अपनी प्रलयङ्करी रश्मियों सहित प्रकट होंगे, त्योंही शताब्दियों

की परतन्त्रता के अन्त करने का अनुष्ठान प्रारम्भ हो जायगा। विप्लव महायज्ञ की आहुतियों से संसार चौंक उठेगा, इटली के नवयुवकों की तलवार वायु में कँपकँपी पैदा कर देगी, अत्याचार और निरङ्कुशता बिल में भागने के लिए स्थान खोजते हुए दिखाई देंगे। ओह! कैसा पवित्र रोमाञ्चकारी दिन होगा वह!

पर यह क्या? शासकों का यह ताण्डव-नृत्य क्यों? क्या सूर्य अस्त होते ही इटली के देशभक्तों की आशाएँ भी अस्त हो गईं? एक क्षण में सरकारी दूतों ने हज़ारों देशभक्तों की मुश्कें कस लीं। चारों ओर त्राहि-त्राहि मच गई।



ऐटिलियो बेण्डियरा

मेज़िनी का मार्सलीज़ से भेजा हुआ एक बक्स जिनेवा के पोतालय में पकड़ा गया। इसमें कुछ काग़ज़ात और पत्र-व्यवहार करने के गुप्त चिन्हों की पुस्तक थी। पीडमोण्ट के शासकों को इस योजना का सारा भेद मालूम हो गया।

विप्लववादियों के एक नेता डॉक्टर जेकोपो सफ़ियानी ने चारों ओर क्रान्तिकारियों को सन्देश भेजा कि शीघ्र सब विप्लववादी कार्यकर्ता इटली से बाहर हो जायँ और फ़्रान्स या स्विट्ज़रलैण्ड में शरण लें। सैकड़ों इटली के देशभक्तों ने अपनी मातृ-भूमि को प्रणाम किया और निर्वासन का दण्ड स्वयं अपने ऊपर ले, मातृ-भूमि से बिदाई ली। लेकिन जेकोपो सफ़ियानी? उसकी माता ने अश्रुपूरित नेत्रों से उससे अपनी रक्षा के लिए अन्य देश में शरण लेने की प्रार्थना की, पर यह क्या उसके लिए सम्भव था? फिर क्रान्ति का झण्डा किसके हाथ में रहेगा? मृत्यु के भय से सफ़ियानी के हाथ से पताका न छूटेगी। क्या वह झण्डे की रक्षा के लिए मृत्यु से खेल खेलने में डरता है? माँ! मैं अपनी पताका लिए खड़ा होऊँगा, उधर से मृत्यु का झोंका आएगा, पताका और मैं एक साथ ही गिरेंगे, तनिक भी अन्तर न होगा। कैसा सुखद स्वप्न है यह! इसके विचार-मात्र से ही आनन्दमय रोमाञ्च हो आता है। ऐसे आनन्द को छोड़ कर मैं कहाँ भागूँगा?

सफ़ियानी पकड़ा गया! सफ़ियानी का पिता मैजिस्ट्रेट था, उसके प्रभाव से जज ने कहा—"बच्चे! हमसे सब साफ़-साफ़ कह दो! हम तुम्हें छोड़ देंगे।" सफ़ियानी हँसा और उसने जज से कहा—"कल आइएगा, इसका उत्तर मैं कल दूँगा।" जज बड़ी आशाएँ लेकर गया और शासक बचे हुए देशभक्तों की गिरफ़्तारी की तैयारी करने लगे।

दूसरे दिन सूर्य उदय हुआ। जेलर ने सफ़ियानी को जज के पास ले जाने के लिए उसकी कोठरी में प्रवेश किया, पर फिर घबड़ा कर पीछे हटा। उसके शरीर को काठ मार गया, आँखें पथरा गईं और उसके मुँह से हल्की-सी एक चीख़ निकल गई। सफ़ियानी की लाश ख़ून से तर-बतर ज़मीन पर पड़ी थी और दीवार पर ख़ून ही से लिखा था—"आततायियों को यही मेरा उत्तर है।"

सत्ता के पुजारियों ने उसकी प्राण-रहित देह गिद्धों को डाल दी, पर उसकी अमर आत्मा इटली के प्रत्येक शरीर में व्याप्त हो गई थी।

* * *

बेण्डियरा-बन्धुओं ने अन्त में धन के लोभ को लात मार दी और तरुण इटली के सदस्य बन गए। बेण्डियरा-बन्धु और निकोला फ़ेवरिनी के नेतृत्व में रोमाङ्गना और केलेबरिया प्रान्तों में विप्लव-अनुष्ठान की योजना की गई। अस्त्र-शस्त्र इकट्ठे किए जाने लगे।

परतन्त्रता भयङ्कर विष है। गुलाम मनुष्य की अन्तरात्मा निर्बल होती है, वह स्वार्थी और तुच्छ हो जाता है। यही कारण था कि इटली की आत्मा का हनन करने के लिए शासकों को इटली के ही मनुष्य कुछ चाँदी के टुकड़ों के लोभ में मिल जाते थे। सरकार का ख़ुफ़िया-विभाग इन्हीं लोगों से भरा पड़ा था। शायद ही कोई ऐसा कुटुम्ब हो, जिसमें एक ख़ुफ़िया-विभाग का आदमी न हो। भाई-भाई से और पिता पुत्र से शङ्काशील रहता था, कैसी भयावह स्थिति थी वह! बेण्डियरा-बन्धुओं के एक मित्र ने सारा भण्डाफोड़ कर दिया। बेण्डियरा-बन्धु आत्म-रक्षा के लिए भागे।

अपने देश को छोड़ कर अज्ञात यात्रा की तैयारी करना कितना कठिन है। माता-पिता का मोह! नव-यौवना सुन्दरी पत्नी का प्रेम! मित्रों का सहयोग! नवजात शिशु का स्नेह! सबको ठुकराना! और वह भी सम्भवतः अनन्तकाल के लिए! ऐटिलियो ने अपनी माता और पत्नी को लिखा:—

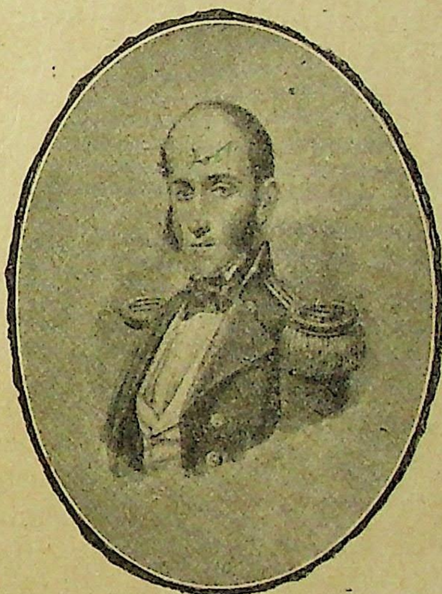
"Near or far, happy or unhappy, I shall ever love and desire thee, my Mariana, but I wish for thine own sake that thou should'st love me less and so suffer less...If only instead of writing I could wake up in thy arms!"

अर्थात्—"मैं दूर रहूँ या समीप! सुखी रहूँ या दुखी, पर मेरे हृदय में तेरे प्रति प्रेम और आकांक्षा सदैव बनी रहेगी; परन्तु मेरी मेरियाना! मैं तेरे हित के लिए चाहता हूँ, कि तू मुझे कम प्यार कर, जिससे तुझे कम पीड़ा हो...यदि मैं यह लिखने के स्थान में केवल तेरे बाहुओं में जग सकता......!" मेरियाना वीर-पत्नी थी, देश के दुख में पति के भावों के साथ सहयोग करती थी, परन्तु उसने कब सोचा था, कि क्रान्ति के झोंके इतना शीघ्र उसके जीवन की नौका को बहा कर उसकी आँखों से विलीन कर देंगे!

* * *

बेण्डियरा-बन्धु सीरिया में निर्वासित जीवन व्यतीत करते थे। फ़्रान्स की सरकार की आज्ञा से मेज़िनी को भी मार्सलीज़ छोड़ कर लन्दन में शरण लेनी पड़ी थी। उसने सोचा, अङ्गरेज़ जाति स्वातन्त्र्य-प्रिय है, वहाँ दिन-दहाड़े अन्याय नहीं होता। इधर बेण्डियरा-बन्धु अत्यन्त आर्थिक कष्ट में थे, परन्तु उनकी आत्मा सब कष्टों को छोड़ कर एक ध्येय में लगी हुई थी। हाय! अगर बेण्डियरा-बन्धुओं को यही हृदय दिया था, तो उन्हें ऐश्वर्य-शाली माता-पिता के घर क्यों जन्म दिया था? ग़रीब परिस्थितियों में जन्म लेने से निर्वासन की यह कठिनाइयाँ सहज तो हो जातीं!

बेण्डियरा-बन्धुओं की आत्मा आकुल थी। 'हम कब तक इस तरह देश को निरङ्कुशता में पिसते देखेंगे और शान्त रहेंगे? यदि महान क्रान्ति का दिवस अभी नहीं आया, तो कब आवेगा? फूँक-फूँक कर पैर आगे रखने



ऐमीलो बेण्डियरा

की यह नीति क्या यह प्रकट नहीं करती, कि हमारी आत्माओं में भी अभी बल की कमी है? जब हमें विदेशी पीस ही डालेंगे, तब क्या हो सकेगा?' बेण्डियरा ने अपने तप्त-अश्रुओं से भीगे हुए पत्र मेज़िनी को भेजे, पर चोर की तरह लन्दन-सरकार इन पत्रों को पढ़ती थी और उनका तात्पर्य लन्दन-स्थित ऑस्ट्रियन दूत तक पहुँचा देती थी।

* * *

मेज़िनी ने बेण्डियरा-बन्धुओं को अभी अवसर की प्रतीक्षा करने के लिए लिखा। उनकी आत्मा विद्रोह कर

बैठी। जब देश में आग लग रही हो, तब कैसी प्रतीक्षा? कार्य करने का भी अवसर शीघ्र मिल गया। कर्फ़ू के सागर में रुपया, अस्त्र और लड़ाई के सामान से भरा हुआ जहाज़ आया। उसके दो कप्तानों ने उन्हें सुनाया कि इटली में क्रान्ति की सब तैयारियाँ हो चुकी हैं, कोसेञ्जा, सिगलियानो और सेनग्यूबानी के पहाड़ों में अनन्त सशस्त्र क्रान्तिकारी इकट्ठे हो गए हैं, साधन की भी कमी नहीं है। आवश्यकता है केवल कुछ प्रभावशाली व्यक्तियों की, जो उन्हें महाक्रान्ति के अनुष्ठान में दीक्षित कर सकें। सरल हृदय बेण्डियरा-बन्धु ख़ुशी से उछल पड़े। देशभक्ति की ज्वाला ने उनके तर्क की आँखों को बन्द कर दिया। अट्ठारह साथियों सहित बेण्डियरा-बन्धु जहाज़ पर सवार हो गए।

* * *

बेण्डियरा-बन्धु केलेबरिया प्रान्त में काट्रोन के तट पर उतरे। उन्होंने इटली की भूमि का चुम्बन किया और कहा—"तूने हमें अपना जीवन दिया है, हम तुझे अपना जीवन देते हैं।" और फिर उन्होंने अपने मस्तक उठाए। पर यह क्या? यहाँ तो कोई क्रान्तिकारी नहीं मालूम होते? विश्वासघात! वे फिर तट की ओर दौड़े, पर जहाज़ चल दिया था। वे यह सोच ही रहे थे, कि उनकी ओर एक सरकारी सैनिकों की टुकड़ी आती हुई दिखाई दी, सैनिकों के आगे-आगे उनके ही अट्ठारह साथियों में से एक साथी वोशेम्पाई भी था। फिर क्या वोशेम्पाई सरकारी दूत है?

बेण्डियरा-बन्धु और उनके साथी आत्म-रक्षा के लिए तैयार हो गए। दुश्मन की जेलों में सड़ कर मरने से सैनिक-मौत मरना अच्छा है।

देशभक्तों की वीरता अद्भुत थी, एक सरकारी सैनिक मारा गया और कई घायल हुए, पर अधिक देर तक इतने अधिक सैनिकों का सामना करना सम्भव न था। बेण्डियरा-बन्धु और उनके साथी पकड़े गए।

फ़ौजी न्यायालय बैठा, बेण्डियरा-बन्धुओं और उनके साथियों ने अपनी ओर से कोई वकील करना या सफ़ाई पेश करने से इनकार कर दिया। जहाँ मुद्दई और न्यायाधीश एक ही हों, वहाँ न्याय कैसा? तीन को फाँसी और बाक़ी को गोली से उड़ा देने की सज़ा मिली।

देश पर बलिदान होने वाली वीर आत्माओं ने फ़ैसला सुना और मृदु-हास्य से मुस्करा दिया।

* * *

आज २५ जुलाई सन् १८४५ का पवित्र दिन है। चारों ओर बेण्डियरा-बन्धु और उनके साथियों का ही ज़िक्र है। पापी शासक क्या सचमुच ही इन विकसित सुन्दर पुष्पों को कुचल ही डालेंगे? क्या उनके देखते ही उनकी आशा-लता इस तरह नष्ट कर दी जायगी? हा! इटली का दुर्भाग्य! हज़ारों स्त्री, बच्चे, पुरुष उस ओर चल दिए, जहाँ देशभक्तों को गोली से उड़ाया जाने वाला था।

ऐमीलो बेण्डियरा अपने सात साथियों सहित मृत्यु-भूमि में लाया गया। सबके शरीर काले बुर्क़ों से ढके हुए थे। शासकों ने सोचा था, इन वीरों की प्रतिभा बुर्क़ों की कालिमा में छिप जायगी, पर जिस तरह दिनकर का प्रकाश अन्धकार के कलेवर को फाड़ कर संसार की गोदी को आभा से भर देता है, उसी तरह अज्ञात मार्ग से इन शहीदों का तेज जनता के हृदय में आलोकित हो रहा था।

शहीदों की टोली में से एक ध्वनि निकली, उसमें सङ्गीत का माधुर्य था, पर इस्पात की दृढ़ता। *Chi per la patria muroro lissu to ha assai* (स्वदेश के लिए शहीद होने वाले अमर हैं) चारों ओर वायु-मण्डल स्तब्ध था, जनता एकटक शहीदों की ओर देख रही थी।

सैनिकों ने बन्दूक़ें चढ़ाईं। अभियुक्तों को तैयार होने के लिए आज्ञा हुई। उनमें से प्रत्येक ने इटली की पवित्र भूमि को घुटने टेक कर नमस्कार किया, उसकी पवित्र रज माथे से लगाई। फिर आपस में एक-दूसरे से गले लग कर मिले और प्रेम से एक-दूसरे का चुम्बन किया। हज़ारों का जन-समूह इस तरह खड़ा था, जिस तरह वे मानो किसी कुशल-चित्रकार की क़लम के चमत्कार हों। सरकारी कर्मचारी भी 'किंकर्त्तव्य-विमूढ़' खड़े थे और सैनिकों को तो काठ मार गया था!

इतने में ही एक लड़खड़ाती, पर तीखी आवाज़ सुनाई दी—"हाँ! छोड़ो!" सैनिकों ने हड़बड़ा कर बन्दूक़ें सँभालीं, जैसे वे नींद से जगे हों और निशाना लगा कर गोलियों की बाढ़ छोड़ी! 'दायँ! दायँ!' पर

यह क्या ? गोलियाँ शहीदों के लगने के बजाय, हवा में ऊपर चली गई थीं। जनता ने हर्ष-ध्वनि की।

"साहस करो! अपना कर्त्तव्य-पालन करो! हम भी सैनिक हैं!"—एक देशभक्त ने सैनिकों को लक्ष्य करके कहा। सैनिकों ने रोते-रोते फिर बन्दूकें सँभालीं, जनता ने ऊँचे स्वर से शासकों को उनके मुँह पर ही गालियाँ देनी शुरू कीं। गोलियों की एक बाढ़ और छूटी, देश-भक्तों के शरीर भूमि पर गिर कर तड़पने लगे, परन्तु '*Viva'l Italia*' 'इटली अमर हो' 'इटली की जय हो' आदि नारे उनके मुँह से तब भी निकलते रहे। फिर सब शान्त हो गया।

ऐमीलो बेण्डियरा ने अपने एक पत्र में फ़ेब्रिज़ी को लिखा था—"और यदि हम अपना जीवन देश के लिए उत्सर्ग ही कर दें तो क्या चिन्ता है! इटली तब तक जीवित नहीं हो सकता, जब तक इटली-निवासी मरना न सीखें।" शीघ्र ही उसने इसे कार्य-रूप में भी करके दिखा दिया! धन्य है।

* * *

बेण्डियरा-बन्धुओं के आत्म-बलिदान ने इटली के नवयुवकों में जीवन फूँक दिया और शीघ्र ही सारा देश क्रान्ति की लहरों में सराबोर हो गया। जो काम वे जीकर न कर सके थे, वही उन्होंने मर कर कर दिया।

डॉउनिङ्ग स्ट्रीट की सरकार ने बेण्डियरा-बन्धुओं के पत्रों को ऑस्ट्रिया के राजदूत तक पहुँचा कर अपना दामन उनके रक्त से रँग लिया था। पार्लामेण्ट में गर्म चर्चा चली, सर ग्राहम पोल ने पत्रों में हस्तक्षेप करने की बात को स्वीकार किया। फिर तो चारों ओर से उसे इटली के देशभक्तों का हत्यारा कहा जाने लगा। डन्कोम्ब ने इस मामले की जाँच करने के लिए एक पार्लामेण्टरी कमीशन नियुक्त करने का प्रस्ताव पेश करते हुए बेण्डियरा-बन्धुओं के सम्बन्ध में कहा—"They died for their country, betrayed by the British Government of the day."

न्याय-प्रिय अङ्गरेज़ों ने व्यक्तिगत पत्रों में हस्तक्षेप करने के क़ानून का घोर विरोध किया। कार्लायल (Carlyle) ने इस कार्य-प्रणाली का घोर विरोध करते हुए 'टाइम्स' में लिखा था:—

"Whether the extraneous Austrian Emperor and miserable old Chimera of a pope shall maintain themselves in Italy, is not a questions in the least vital to Englishman. But it is a question vital to us that sealed letters in an English Post Office be, as we all fancied they were, respected as things sacred, that opening of men's letters, a practice near of kin to picking men's pockets, and to other still viler and far fataler forms of scoundrelism, be not restored to in England, except in cases of the very last extremity........To all Austrian Kaisers, and such like, in their time of trouble, let us answer, as our fathers from of old have answered: 'Not by such means is help for you! such means allied to picking of pockets and viler forms of scoundrelism, are not permitted in this country for your behoof."

लॉर्ड ऐबरडीन ने इस आन्दोलन का उत्तर दूसरी ही तरह दिया। उन्होंने कहा कि बेण्डियरा-बन्धु और उनके साथियों की हत्या नेपिल्स की सरकार ने नहीं की। वहाँ की जनता देश में उनके आने के विरुद्ध थी, इसलिए उसने उन पर आक्रमण किया और उन्हें मार डाला। सत्य की पराकाष्ठा! धन्य ब्रिटिश-न्याय!

* * *

बेण्डियरा-बन्धुओं के रक्त से जो खेती सींची गई थी, वह समय आने पर लहलहा उठी। इटली स्वतन्त्र हो गया और इस घटना के सोलह वर्ष बाद जब गेरीबाल्डी और उसके विजेता सैनिक इस स्थान से गुज़रे, तो सबने घुटने टेक कर ईश्वर से शहीदों की आत्मा को शान्ति प्रदान करने की प्रार्थना की। इनमें वीर सैनिक-वेश में मेरियाना भी थी।





यदि आपको अपने बच्चे प्यारे हैं, यदि आप उन्हें रोग और मृत्यु से बचाना चाहते हैं, तो इस पुस्तक को स्वयं पढ़िए और गृह-देवियों को अवश्य पढ़ाइए, परमात्मा आपका मङ्गल करेंगे।

सुन्दर छपी हुई सचित्र Protecting Cover सहित सजिल्द पुस्तक का मूल्य लागत मात्र केवल २) रु०; 'चाँद' तथा पुस्तक-माला के स्थायी ग्राहकों के लिए १।।) मात्र !

सफल माता

[लेखिका—श्रीमती सुशीलादेवी जी निगम, बी० ए०]

आज हमारे अभागे देश में शिशुओं की मृत्यु-संख्या अपनी चरम-सीमा तक पहुँच चुकी है। अन्य कारणों में माताओं की अनभिज्ञता, शिक्षा की कमी तथा शिशु-पालन सम्बन्धी साहित्य का अभाव प्रमुख कारण हैं।

प्रस्तुत पुस्तक भारतीय गृहों की एकमात्र मङ्गल-कामना से प्रेरित होकर, सैकड़ों अङ्गरेज़ी, हिन्दी, बङ्गला, उर्दू, मराठी, गुजराती तथा फ्रेञ्च पुस्तकों को पढ़ कर लिखी गई है। कैसी भी अनपढ़ माता एक बार इस पुस्तक को पढ़ कर अपना उत्तरदायित्व समझ सकती है।

गर्भावस्था से लेकर ९-१० वर्ष के बालक-बालिकाओं की देख-भाल किस तरह करनी चाहिए, उन्हें बीमारियों से किस प्रकार बचाया जा सकता है, बिना कष्ट हुए दाँत किस प्रकार निकल सकते हैं, रोग होने पर क्या और किस प्रकार इलाज और शुश्रूषा करनी चाहिए, बालकों को कैसे वस्त्र पहनाने चाहिएँ, उन्हें कैसा, कितना और कब आहार देना चाहिए, दूध किस प्रकार पिलाना चाहिए, आदि-आदि प्रत्येक आवश्यक बातों पर बहुत उत्तमता और सरल बोल-चाल की भाषा में प्रकाश डाला गया है।

☞ व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय,

चन्द्रलोक, इलाहाबाद

वेश्या

[श्री० देवीप्रसाद जी गुप्त, 'कुसुमाकर' बी० ए०, एल्-एल्० बी०]

थी हिन्दू समाज की नारी, मुझ पर अत्याचार हुआ।
व्याकुल हृदय पतित होने को, तब मेरा लाचार हुआ॥
थी अबोध तब मुझको ब्याही, बुड्ढे से धन के पीछे।
नहीं जानती थी आता है, यौवन बचपन के पीछे॥

लगी विकसने मैं कलियों सी, लगा काँखने तब बूढ़ा।
जब मैं खिली, मृत्यु-दरवाज़ा लगा झाँकने, तब बूढ़ा॥
घर का नौकर सम-वयस्क था, यद्यपि काला-काला था।
रेखें भींज रही थीं उसकी, बाँका था, मतवाला था॥

मस्त चाल, भोली सी सूरत, उसकी आँखों की लाली।
करती थी जब वार हृदय पर, एक न जाता था ख़ाली॥
प्यासी थी, मैं मुँह के आगे, यौवन-मद का प्याला था।
बहती थी, सन्मुख ही मेरे, हाथ पकड़ने वाला था॥

बूढ़ा भी मेरी सेवा-हित, उसको सदा पठाता था।
जान-बूझ कर या अनजाने, मुझको जोश दिलाता था॥
चञ्चल चित्त न रुका, गले का हार हुआ मुनुआ मेरा।
निकल चलें दोनों, समझाया, यह फिर उसने बहुतेरा॥

थे सुहाग के बूढ़े बाबा, मेरे एक बहाने से।
कहलाने को राँड हुई मैं, फिर उनके मर जाने से॥
बदले तेवर देवर ने फिर, मुझे ख़ूब हैरान किया।
तब मुनुआ कहार के सङ्ग में, मैंने भी प्रस्थान किया॥

करते रहे मौज, सब ज़ेवर, बेच-बेच कर खा डाला।
मुनुआ ने भी किया किनारा, ढुलक गया रस का प्याला॥
भूखों मरने लगी पेट की, प्रज्वलित मेरी थी ज्वाला।
कोई विषय-वासना को भी, तृप्त न था करने वाला॥

करती क्या ? आई मण्डी में, मिली जानकीबाई से।
धीरे-धीरे सब कामों को, करने लगी सफ़ाई से॥
बन बैठी अब सीता बाई, निशि-दिन मौज उड़ाती हूँ।
किन्तु मूर्खता पर समाज की, अब भी अश्रु बहाती हूँ॥

मुझ सी ही कितनी बहिनें हैं, जिन्हें योग्य वर मिला नहीं।
मूक-वेदनाएँ लज्जावश, पहले उनने ख़ूब सहीं॥
किन्तु न जब सह सकीं, विवश हो पावन-पथ से दूर हुईं।
हुआ पतन, वे गिरीं यहाँ तक, मुझ-सी चकनाचूर हुईं॥

रूसी राज-क्रान्ति में स्त्रियों का हाथ

[श्री० प्रेमनारायण जी अग्रवाल]



ज़ार के क्रूर, स्वेच्छाचारपूर्ण शासन, अमानुषिक अत्याचार और भोग-विलासमय जीवन ने रूस की जनता में हाहाकार मचा दिया था। सारे का सारा देश ज़ार का नाम सुनते ही काँप उठता, लोगों की पिंडुलियाँ तक काँप जाती थीं। छोटे से छोटे किसान-मज़दूर से लेकर बड़े से बड़े ज़मींदार और पूँजीपतियों तक का शरीर ज़ार का नाम मात्र सुनने ही से सिहर उठता, हृदयों की गति रुकने लगती, मस्तिष्क चक्कर काटने लग जाता। इसका क्रूर फ़ौलादी पञ्जा सारे देश पर बड़ी नृशंसता से शासन कर रहा था। शक्ति और ऐश्वर्य के मद से मदान्ध कुछ थोड़े पूँजीपति और ज़मींदार भी उसके साथ कन्धे से कन्धा मिला कर चल रहे थे। साथ क्यों न होते, जबकि स्वयं उनको तक उसके विरुद्ध सर उठाने में कल्याण की स्वप्न में भी आशा न थी। कुछ दुष्ट देश-द्रोही ज़ार की कृपा के भिखारी बने हुए थे और अपने देश-भाइयों को उनके स्वदेशानुराग का मज़ा अत्यन्त क्रूर और पाशविक कार्यों द्वारा चखाने का व्यर्थ प्रयत्न कर रहे थे। उनको यह ज्ञात नहीं था कि उनके इस घोर दमन-नीति का परिणाम सर्वथा उल्टा ही होगा। इसके परिणाम-स्वरूप वह आग इस देश में भभकेगी, जिसका दबाना ज़ार और ज़ारशाही की लाड़ली पुलिस और सशस्त्र पुलिस तक के लिए असम्भव हो जायगा। यह भीषण अग्नि इन्हीं के अत्याचारों की प्रतिध्वनि होगी, जो रूस देश के कोने-कोने से भड़केगी और ज़ारशाही को समूल नष्ट किए बिना कदापि ठण्डी नहीं पड़ेगी—पूँजीपतियों और ज़मींदारों का भी सारा वैभव नष्ट करके भस्मीभूत कर देगी। अन्त को क्या हुआ? वही, जिसकी आशा वहाँ का क्षुधा-पीड़ित, अत्यन्त जर्जर और शक्तिहीन किसान, मज़दूरों का समुदाय चिरकाल से कर रहा था। यह प्रचण्ड अग्नि-ज्वाला रूस के ज़ार के कट्टर समर्थकों—ज़मींदारों, पूँजीपतियों और बड़े-बड़े अधिकारियों—के राजप्रासादों में ही से भभकी और इधर-उधर साइबेरिया आदि के बर्फ़ीले बन्दीगृहों में फैलती हुई, निर्जन ग्रामों की झोपड़ियों में ठिठकती और विश्राम करती हुई, अन्त में प्रबल स्वरूप धारण करके अपने उद्देश्य में सफल हुई। और ज़ार की क्रूर ज़ारशाही को उसके कल-पुर्ज़ों सहित भस्मीभूत करती हुई प्रजातन्त्र के रूप में परिणत हो गई, जो अनुकूल समय और वातावरण पैदा करके साम्यवाद के रूप में परिवर्तित तथा परिवर्द्धित होकर सारे संसार को शान्ति तथा उन्नति का दिव्य सन्देश सुना रही है।

संसार के अन्य स्वाधीन तथा पराधीन देश भी इसकी प्रबल ज्वालाओं से न बच सके। हालाँकि इनमें से कुछ साम्राज्यवादी तथा साम्राज्यवाद के पोषक देश इस नवीन शासन (साम्यवाद) की लहर को अत्यन्त घृणा की दृष्टि से देख रहे हैं। पूँजीपति और पूँजीवाद के समर्थक ऐसे मनुष्यों तथा देशों के साथ कन्धे से कन्धा मिला कर चलने का सरतोड़ परिश्रम कर रहे हैं*, फिर भी इस नवीन लहर को रोकने की शक्ति उनमें नहीं है। वे अपने को इसके प्रचण्ड प्रवाह के रोकने में सर्वथा असक्त पा रहे हैं। वास्तव में इसके न रुकने का कारण स्पष्ट है, और वह है किसान-मज़दूरों का अपनाना। साम्राज्यवादी और पूँजीपति इसका विरोध करने में तत्पर हैं और निम्न-श्रेणी का चिर-पीड़ित समुदाय इसको अपनाने में। इसके विरोधियों की संख्या उँगलियों पर ही गिनने योग्य है, जबकि इसके अपनाने वाले सैकड़ों नहीं, हज़ारों नहीं, वरन् लाखों-करोड़ों की विशाल संख्या में हैं! इस संसार का अधिक भू-भाग इन्हीं करोड़ों की संख्या में ढका हुआ है।

---

* हाल ही का समाचार है कि एक ऐसे षड्यन्त्र का पता चला है, जो सोवियट सरकार को समूल नष्ट कर देना चाहता है और जिसमें फ़्रान्स के कर्मचारियों का भी भाग है।

मेरठ कॉन्सपिरेसी केस भी इसी का उदाहरण कहा जाता है।

—लेखक

अमानुषिक अत्याचारों की जब पराकाष्ठा हो जाती है, स्वेच्छाचारपूर्ण शासन से प्रजा व्यथित होने लगती है, क्रूरता के भीषण आघातों से आत्म-सम्मान की भावना जाग्रत होने लगती है, भूख से पीड़ित होकर जब राष्ट्र की होनहार सन्तान दो-दो दानों को तरसने लगती है और दूसरी ओर जब अमानुषिक अत्याचार शासकों के मन-बहलाव की सामग्री होते हैं, स्वेच्छाचारिता उनका चित्त प्रसन्न करती है, अपने क्रूर कुकृत्यों पर जब पश्चात्ताप तथा प्रायश्चित्त नहीं होता, छोटे-छोटे बालकों से लेकर बड़ों-बड़ों की भयङ्कर भूख को देख कर जब चित्त में व्याकुलता और सहृदयता का आविर्भाव नहीं होता और भोग-विलासमय जीवन बिताने में ही स्वर्ग का आनन्द आने लगता है—उस समय इन्हीं पीड़ितों की भीषण चीत्कारपूर्ण आहों से एक क्रान्ति—महाभीषण क्रान्ति—का प्रादुर्भाव होता है, जो संसार के इतिहास में कोई नई बात नहीं।

नित्य नए हृदय-वेधक दृश्यों और वर्णनों को देख-सुन कर देश के भावी नागरिकों के सुकुमार और कोमल हृदयों में—जो उस समय तक किन्हीं अज्ञात कारणों से पाषाण न बन सके थे—सहानुभूति और समवेदना का स्रोत उमड़ पड़ा, जिसने रूस राष्ट्र के इस नारकीय जीवन को सदैव के लिए नष्ट कर दिया। रूस की इस इतिहास-प्रसिद्ध क्रान्ति में और उज्ज्वल भविष्य-निर्माण में अबला का—जिसने अपने को इस क्रान्ति में सबला साबित कर दिया—का कितना हाथ था, यही अब विचार करना अवशेष है।

क्रान्ति में भाग

रूस को ज़ारशाही के फ़ौलादी पन्जे से छुड़ाने वाली 'रूसी क्रान्ति की दादी' कैथराइन ने एक स्थान पर किसानों की दयनीय दशा का चित्र खींचते हुए लिखा है—"मेरे चारों ओर बसने वाले निर्धन किसान, सूर्योदय से पहिले ही उठ कर दिन भर खेतों, चरागाहों, बाग़ों, जङ्गलों, अस्तबलों अर्थात् चारों ओर काम करते और बड़ी रात तक आराम न पाते। जब कोई ज़मींदार या उसका कोई सम्बन्धी पास आता, तो हाथ जोड़ कर ज़मीन तक झुक कर प्रणाम करते, किन्तु इस पर भी यदि ज़रा सा काम बिगड़ जाता, तो गाली खाते तथा पीटे जाते और यदि कोई अधिक दोष होता तो साइ-बेरिया को निर्वासित कर दिए जाते थे। किसानों के छोटे-छोटे बालक बड़े घरों के सेवकों की सेवा किया करते थे। यदि इनमें कोई मालिकों के पास जाकर बच्चों के भोजन की प्रार्थना करता था, कोई स्त्री अपने बच्चों को देने में आनाकानी करती, तो मार खाती और धक्का देकर बाहर निकाल दी जाती! यह दृश्य बहुधा मैंने अपनी आँखों से देखे हैं। मुझे भली-भाँति याद है, कि मैंने कई बार अपने पिता के चरणों पर गिर कर अपने नौकरों को पिटने से बचाया। बहुधा मैं छिप कर निकट



श्री० जे० सी० स्मिथ, आई० सी० एस०

आप संयुक्त प्रान्तीय गवर्नमेण्ट की कार्यकारिणी सभा के नए सदस्य नियुक्त हुए हैं।

के ग्रामों में जाया करती और किसानों की झोपड़ियों को देखा करती। वहाँ वृद्ध घास पर पड़े हुए खाँस रहे हैं, पास ही कूड़े का ढेर लगा हुआ है। बेचारे दिन भर अकेले पड़े-पड़े भूख से कराहा करते, क्योंकि और सब लोग खेतों पर चले जाते थे। छोटे-छोटे बच्चे बीच में खेला करते और सूअरों तथा कुत्तों के जूठे बर्तनों में पानी पिया करते!"

नारी का हृदय कोमलता, दया और सहानुभूति की सजीव प्रतिमा है। रूस के इन हृदय-विदारक दृश्यों को

देखने-सुनने का अवसर प्रायः इनको मिल जाता था। कोमल-हृदया रमणियों के हृदय ज़ार के पैशाचिक कृत्यों से भर आते और सहानुभूति तथा दया का सञ्चार हो आता, तब वे अपने स्वाभाविक गुणानुसार गम्भीरता-पूर्वक विचार करतीं और अन्त में इन सब कृत्यों की जड़ ज़ारशाही को ही पातीं। अतएव उसको समूल नष्ट-भ्रष्ट करने के लिए कटिबद्ध हो गईं। कैथराइन के कोमल हृदय को भीषण धक्का लगा और वह एक महान क्रान्ति-कारिणी बन गईं। रूस का अबला स्त्री-समाज भड़क उठा और फिर उसने क्रान्ति की सफलता में जिस देशभक्ति, कर्तव्यपरायणता, त्याग और मर्दानगी से भाग लिया, वह केवल रूस के स्त्री-समाज का ही नहीं, वरन् संसार के स्त्री-समाज का मुखोज्ज्वल तथा गौरवान्वित कर रही है। स्वदेश-प्रेम में मस्त हो अपने प्राणप्यारे पुत्रों को छोड़ा, पतियों को छोड़ा और छोड़ा अपने सुख तथा भोग-विलासमय जीवन को! रूस देश की उन जेलों की कठोर, भीषण यातनाएँ सहीं, जिनमें रह कर अधिकांश अभियुक्त न्यायालय में मुक़दमा प्रारम्भ होने के पहले ही यह जीवन-लीला समाप्त कर देते हैं। संसार में रूस ही ऐसा अभागा देश था, जहाँ की जेलों में बन्द क़ैदी युवतियाँ अफ़सरों और सैनिकों की कामेच्छा-पूर्ति का साधन होती थीं! इन्हीं जेलों में राजनैतिक क़ैदियों को दवा देने की ज़ार की ओर से सख़्त मनाही थी; चाहे, जैसा भीषण रोग क्यों न हो। क्रान्ति-कारियों की हीन दशा का वर्णन देशभक्त रमणी कैथ-राइन ने इस प्रकार किया है—"क्रान्तिकारियों की हीन दशा का वर्णन करना मानव शक्ति के बाहर है। उन लोगों को ऐसे कष्ट दिए जाते हैं, जो संसार के पापी से पापी और हत्यारे से हत्यारे को दिए जाते हैं। संसार का कोई भी ऐसा कष्ट नहीं, जो इन देश-प्रेमियों को न दिया जाता हो! इन्हीं कष्टों के कारण हज़ारों कोमल हृदय तथा बड़े घरों में आराम से पले हुए युवक तथा युवती अपने प्राण देते थे। अत्याचारों का वर्णन कहाँ तक किया जाय, इन शिक्षित देशभक्तों (रूस के जेल-ख़ाने पढ़े-लिखे विद्वानों के निवास-स्थान थे। उन्हें विद्वानों का अजायबघर ही कहना चाहिए; क्योंकि वहाँ दार्शनिक, इतिहासज्ञ, अर्थशास्त्री, गणितज्ञ, वैज्ञानिक, राजनीतिज्ञ, चित्रकार, डॉक्टर, लेखक और कवि आदि देखने में आते थे। स्कूल और कॉलेज के लड़कों का तो छात्रावास ही बन रहा था।) के मृत-शरीर सड़क के किनारे फेंक दिए जाते थे।"

इन्हीं नारकीय जेलों में उच्च कुल की रमणियों ने देश के ख़ातिर, अपने जीवन के उज्ज्वल प्रभात को व्यतीत किया। माताओं ने अपने पुत्र-पुत्रियों को रूसी क्रान्ति में भाग लेने को तैयार तथा उत्साहित किया। पत्नियों ने पतियों को अपना साथ देने को बुला भेजा, बहिनों ने भाइयों को उकसाया और अध्यापिकाओं ने अपनी विद्यार्थिनियों को सहायता देने का उपदेश दिया और फिर सब इस राष्ट्रीय यज्ञ में अपनी-अपनी आहुति लेकर कूद पड़ीं।

सामाजिक जीवन भी रूस का उस समय अत्यन्त विषम था, विशेषतः स्त्री-समाज पर ही इसका नाशकारी प्रभाव पड़ा था। राजनैतिक क्षेत्र में प्रविष्ट होने से पूर्व उनको सामाजिक जीवन से लड़ना पड़ा। उन वीरा-ङ्गनाओं के असीम साहस की कल्पना कीजिए—पहले सामाजिक बन्धन ढीला करना और फिर राजनैतिक क्षेत्र में कार्य करना। कैसी भीषण स्थिति थी? अनेक वीर रमणियों ने क्रान्तिकारी आन्दोलन में भाग लेने के उद्देश्य से क्रान्तिकारियों से झूठे विवाह-सम्बन्ध केवल इसीलिए किए थे।

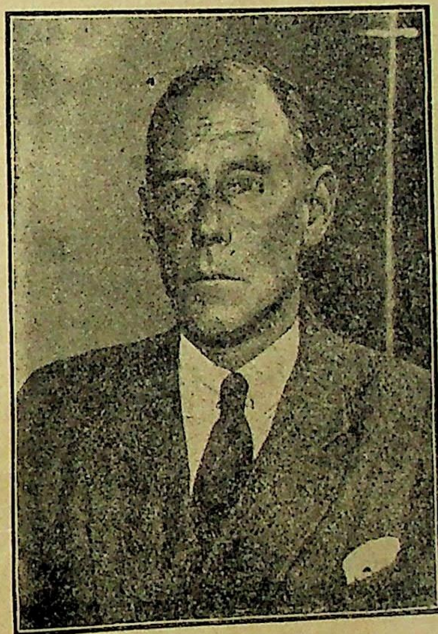
विचारपूर्वक देखने से पता लगता है कि वास्तव में स्त्री का जीवन कितना झञ्झटयुक्त है और पुरुष का कितनी स्वतन्त्रता का। पुरुष अपने गार्हस्थ्य जीवन में स्वतन्त्र ही होता है और लड़कियाँ अपने बाल्यकाल में भी स्वतन्त्र नहीं रक्खी जातीं। वे उतनी स्वतन्त्रता-पूर्वक अपना जीवन कदापि व्यतीत नहीं कर सकतीं जितना कि पुरुष। पुरुषों के लिए सम्भव है कि वे किसी भी कार्य में सरलतापूर्वक भाग ले सकें, परन्तु स्त्रियों के लिए यह अत्यन्त कठिन है—वे किसी भी कार्य में स्वतन्त्रतापूर्वक भाग नहीं ले सकतीं। रूस के स्त्री-समाज का अपने सारे झञ्झटों से छुटकारा पाना और फिर राज-क्रान्ति में भाग लेना, जहाँ पर नहीं मालूम कि कब साइबेरिया की बर्फ़ीली जेलों में और कब फाँसी के तख़्ते पर भेज दिए जायँ! स्त्रियों को क्रान्ति के पथ पर आरूढ़ होने में कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा होगा; भगवान ही जानते हैं कि

इनको कितनी दृढ़ता का परिचय देना पड़ा होगा ! धन्य है स्त्री-समाज, जिसने इन सबके होते हुए भी सफलता—वह सफलता, जो संसार के इतिहास में एकदम नवीन है—प्राप्त की ।

कार्य-प्रणाली

क्रान्तिकारी साहित्य के प्रचार से शिक्षित-समुदाय में यह राज-क्रान्ति अपनाई ही जा रही थी । प्रचार की आवश्यकता थी ग्रामों में—क्योंकि वे लोग पढ़ना-लिखना नहीं जानते थे और फिर फ़ुरसत भी नहीं थी । क्रान्तिकारियों ने अपनी इस कमज़ोरी को अनुभव कर लिया था । वास्तव में इनकी सफलता ग्राम-सङ्गठन और ग्रामों में क्रान्ति के बीज वपन करने पर ही अवलम्बित थी । मज़दूरों में भी प्रचार की उतनी ही आवश्यकता थी । अतः अधिक लोगों ने अपना कार्य क्षेत्र ग्रामों और फ़ैक्टरियों को बनाया, स्त्रियों ने इसमें भरपूर सहायता दी । कुछ ग्रामों में गईं, कुछ फ़ैक्टरियों में और कुछ विदेश-प्रचार के गुरुतर कार्य में लग गईं । संसार के अन्यान्य देशों में प्रचार की बड़ी आवश्यकता होती है, विशेषतः उस समय, जब देश में स्वतन्त्रता का युद्ध छिड़ रहा हो । गत महासमर में अङ्गरेज़ों की ओर से हज़ारों प्रचारक अमेरिका में प्रचारार्थ भेजे गए थे । वर्तमान समय के भारत के स्वातन्त्र्य संग्राम में भी इङ्गलैण्ड के लोग अमेरिका में प्रचारार्थ भेजे गए हैं । सर जॉन साइमन तो अभी प्रचार करके वापस ही आए हैं । क्रान्तिकारियों ने प्रसिद्ध रमणी कैथराइन को लन्दन, अमेरिका आदि देशों में भेजा था । इस रमणी-रत्न ने वहाँ जाकर अत्यन्त सफलतापूर्वक प्रचार किया, जिसके परिणाम-स्वरूप उन देशों का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ और अन्त में सहानुभूति भी मिलने लगी । यही नहीं, कैथराइन को विदेश-यात्रा में बहुत धन भी राजक्रान्ति के सहायतार्थ मिला था !

स्त्रियों का जो भाग ग्रामों और मज़दूरों में काम कर रहा था, उसे घोर कष्टों का सामना करना पड़ा । ज़ारशाही इस उथल-पुथल को शान्त करने में अपनी पूरी शक्ति लगा रही थी । एक कोने से दूसरे कोने तक सी० आई० डी० का एकछत्र राज्य था । उच्च कुल में पली हुई रमणियाँ अपने सुन्दर शरीर को किसान-मज़दूरों में छिपा न सकतीं, यद्यपि वे अपना रहन-सहन उन्हीं की भाँति रखती थीं । कहावत प्रसिद्ध है कि 'हीरा गुदड़ी में कभी नहीं छिपता'—इसीके अनुसार ये भी न छिप सकतीं और पकड़ कर जेलों में निर्दयता से भर दी जातीं । अतएव इनको अपना वेश छिपाने के लिए अपने मुख तथा हाथ-पैरों पर तेज़ाब डालना पड़ा । विचारणीय है कि जिस सुन्दरता को बनाने के लिए स्त्रियाँ तेल, पाउडर, वैज़लीन इत्यादि अनेक वस्तुओं में हज़ारों रुपया बरबाद किया करती हैं, उसी सुन्दरता को नष्ट-भ्रष्ट करने के लिए रूस की स्त्रियाँ तेज़ाब लगाती हैं—कितना हृदय-विदारक दृश्य है ? तेज़ाब के लगने से शरीर का रङ्ग काला



कमाण्डर आर० एम० रेनॉल्ड्स

आप रॉयल इम्पायर सोसाइटी के कमिश्नर हैं, जो हाल ही में भारत की वर्तमान दशा का निरीक्षण करने यहाँ पधारे हैं ।

पड़ जाता है, अतः किसान-मज़दूरों में छिपने योग्य रङ्ग हो जाता है । एक-दो नहीं, बल्कि हज़ारों स्त्रियों ने अपनी सुन्दरता को इस निर्दय तरीक़े से बरबाद कर दिया ! इस तरफ़ से बेफ़िक्र हो वे आनन्द और स्वच्छन्दतापूर्वक ग्रामों में भ्रमण करके किसानों को उनके उद्धार का उपाय समझातीं । उनके साथ खेतों में काम करती जातीं और प्रचार करतीं, रूस के ज़ार के अत्याचारों का दिग्दर्शन करातीं, किताबें पढ़-पढ़ कर सुनाया करतीं ।

मज़दूरों में सफलतापूर्वक कार्य करना अत्यन्त कठिन था। उनमें जाग्रति की भी बड़ी आवश्यकता थी। जो क्रान्तिकारिणी फ़ैक्टरियों में रहती थीं, सबको अपने नाम बदलने पड़ते थे। उस समय की फ़ैक्टरियों के मज़दूरों का जीवन जेलों से भी अधिक कष्टमय था। सोलह घण्टे तक कारख़ाने में काम करना और अवशेष समय में खाना-पीना और सोना! कभी उन्हें इस समय में भी काम करना होता। इतना होने पर यदि उनको कहीं दस-पाँच मिनट मिल जाते तो अन्य आनन्द की बातें छोड़ कर देश-प्रेम और राजनीति की बातें किसे सुनातीं। परन्तु इससे हतोत्साह न होकर अपना कार्य सफलतापूर्वक चलाती रहीं। स्वयं कार्य करने के बाद शेष समय में खाना-पीना तक छोड़ कर वे मज़दूरों में विप्लव की तैयारी करतीं। लाड़-प्यार से पला हुआ यह कोमल समुदाय इन सारे कष्टों को देश-प्रेम के आगे तुच्छ समझता!

प्रचार-कार्य में ही नहीं, गुप्त-समितियों में भी इनका पूरा-पूरा भाग था। वहाँ के न्यायाधीश ने एक क्रान्तिकारिणी के फ़ैसले में लिखा था—"राजनैतिक षड्यन्त्रों की कल्पना हम सहज ही कर सकते हैं। हम क्रान्तिकारियों के भयानक और कठोर उपद्रवों की भी कल्पना अनायास ही कर सकते हैं। उपद्रवों और क्रान्ति में स्त्रियों का भाग लेना भी कोई आश्चर्य की बात नहीं है। किन्तु एक स्त्री क्रान्तिकारियों की अभिनेत्री हो सकती है और ऐसे भयानक हत्याकाण्ड की नायिका हो सकती है—सम्राट के ख़ून का कुल प्रबन्ध अपने कोमल हाथों में ले सकती है, तथा निर्भयता और साहस के साथ ऐसे काम को पूरा कर सकती है—ये बातें बहुत यत्न करने पर भी कल्पना में नहीं आतीं।" परन्तु वास्तव में यह कथन अक्षरशः सत्य है। स्त्रियों का क्रान्तिकारी दलों में विशेष भाग था*, वे अपना काम बड़ी निर्भयता और चतुरता से निभाती थीं। जब इनके क्रान्तिकारी पति जेलों में भर दिए जाते और वे उनसे मिलने जातीं तो गुप्त-समिति सम्बन्धी अनेक आवश्यक कार्यों को कर लाती थीं। पुलिस राजनैतिक क़ैदियों के साथ जितनी कठोरता और चालाकी करती थी, राजनैतिक बन्दी उनसे सदा एक हाथ आगे रहते थे। भारत में भी यही बात दृष्टिगोचर हो रही है। जब उन्हें अपने पतियों तक से एकान्त में बात नहीं करने दी जाती, तो उन्होंने अपने अभीष्ट सिद्ध करने के लिए एक दूसरे उपाय की शरण ली—काम तो किसी न किसी प्रकार करना ही होता था। जो गुप्त बातें कहनी-सुननी होतीं, काग़ज़ में लिख ली जातीं और फिर एक गोली बना कर उसके ऊपर सीसे का वर्क़ चढ़ा लिया जाता और मुख में छिपा लेते। जिस समय जेल की चहारदीवारी के अन्दर पति-पत्नी आपस में मिलते, उस समय दोनों एक-दूसरे का आलिङ्गन-चुम्बन इत्यादि करते। ओंठ से ओंठ मिलते ही वह गोली इधर से उधर चली जाती! इस रीति से केवल पत्र-व्यवहार होता हो, सो नहीं, छोटे-छोटे पेन्सिल के टुकड़े या अन्य छोटी-छोटी चीज़ें, भी पहुँचा दी जाती थीं। स्त्रियाँ ऐसे सैकड़ों काम सरलता और सफलतापूर्वक सम्पादन करती थीं, जिनमें पुरुष सर्वथा अपने को असमर्थ पाते थे। काम निकालने में ही नहीं, लगभग प्रत्येक बात में पुरुषों से आगे रहतीं और यदि इस सेवा का पुरस्कार मिलता तो उसे भी बड़ी मर्दानगी से स्वीकार करतीं। फाँसी के तख़्ते पर झूलना होता तो भी बहादुरी से झूलतीं। एक वीराङ्गना फाँसी के तख़्ते पर खड़ी, फाँसी की बाट जोह रही थी। उपस्थित अधिकारी ने गले का कॉलर खोलने को कहा। वह उसी क्षण कॉलर खोलने लगी। शीघ्रता के कारण कॉलर बटन में फँस गया तो उसे एक ही झटके में उसने फाड़ कर फेंक दिया। अपने हाथों को बँधवाना स्वीकार नहीं किया। फाँसी लगाने वाले से फाँसी लगाने की विधि सीख कर स्वयं उसने अपने हाथों से रेशम की रस्सी गले में बाँध ली और कूद कर पैरों के नीचे वाले तख़्तों को पाँव से धक्का दिया कि वह दूर जा पड़ा। उस देवी के प्राण-पखेरू उड़ गए! लोग देख कर आश्चर्यान्वित हो गए।

ऐसे ही वीर-कृत्यों से रूस के स्त्री-समाज ने अपने आपको रूस के स्वतन्त्रता के इतिहास में सदा के लिए

---

* लाहौर का जो नया षड्यन्त्र रचा गया है और जिसमें अनेकों गिरफ़्तारियाँ हुई हैं, कहा जाता है, उसमें तीन स्त्रियाँ भी शामिल हैं। कलकत्ते में भी जो केस चल रहा है, उसमें स्त्रियाँ पकड़ी गई हैं।

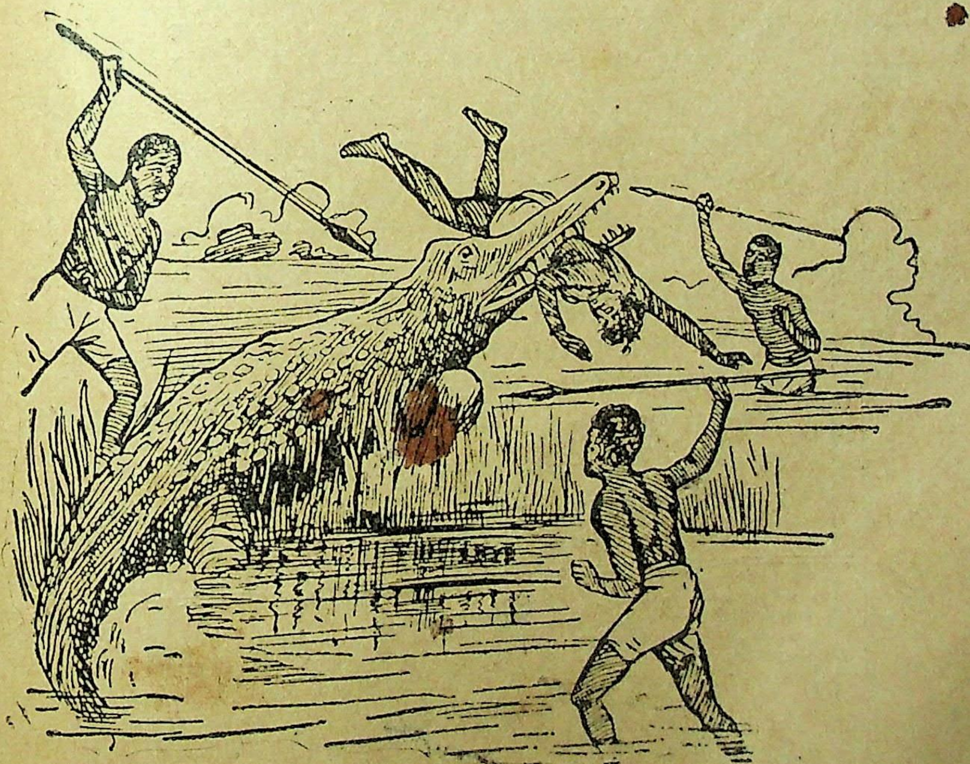
—लेखक

अमर कर दिया। स्वाधीनता की देवी कैथराइन, जिनका इस क्रान्ति में बहुत अधिक हाथ था, कहा करती थीं:—

"We may die in exile, and our children may die in exile, and our children's children may die in exile, but something will come of it at last."

अर्थात्—"मातृभूमि से सैकड़ों और सहस्रों कोस दूर पर, अज्ञात स्थानों में भले ही हमारी मृत्यु क्यों न हो, हमारे लड़के और लड़कों के भी लड़के मातृभूमि के बाहर क्यों न मर जायँ, पर यह निश्चित है कि हमारी मृत्यु व्यर्थ न जायगी और कभी न कभी वह दिन आ ही जावेगा, जब हमारे सिद्धान्तों की विजय होगी तथा अत्याचारियों का नाश होगा।"

जहाँ की रमणियों के यह भाव हों, वहाँ सफलता क्यों न मिले? अन्त में सफलता मिली, इसी समाज के अपूर्व त्याग से। इसका श्रेय है, इसी अबला कहलाने वाली जाति को! वर्तमान समय में रूस दिन पर दिन उन्नति कर रहा है। इस अल्पकाल में उसने जो उन्नति कर दिखलाई है, वह संसार के इतिहास में एकदम नवीन है। इस साम्राज्य में स्त्रियों का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है और उनको जो सुविधाएँ तथा अधिकार प्राप्त हैं—सामाजिक जीवन में जो आनन्द हैं—वह संसार के अन्य किसी भी स्वाधीन या पराधीन देश में नहीं हैं।



अफ़्रिका के लोग घड़ियाल के मुँह में पकड़े गए व्यक्ति को छुड़ाने का सतत प्रयत्न कर रहे हैं!



देखता हूँ सामने रख कर तेरी तस्वीर को ! एक दुनिया मोल लेती है तेरी तस्वीर को !

[नाख़ुदाए-सख़ुन हज़रत "नूह" नारवी]

जब नहीं होती है ज़हमत आशिक़े-दिलगीर को,
फेंक देते हैं, वह मल कर चुटकियों से तीर को !
होश आता है कभी जब, आशिक़े दिलगीर को,
आँख उठा कर देख लेता है, तेरी तस्वीर को !
वह तमाशा जानते हैं, नालए-शबगीर को,
कौन रोकेगा मेरे, इस आसमानी-तीर को ?
मुझसे फिरना क़हर है, तेरी निगाहे-नाज़ का,
चीर कर मैं दिल में, रख लूँ किस तरह इस तीर को ?
हो गया है रात दिन का, अब यह मेरा मशग़ला,
देखता हूँ सामने रख कर, तेरी तस्वीर को !
लोग क्यों कहते हैं, वह तेरे मुक़द्दर में नहीं,
कौन हूँ मैं, कोई क्या जाने मेरी तक़दीर को !
आज दो बिछुड़े हुए, मिलते हैं एक मुद्दत के बाद,
तीर छोड़ेगा न दिल को, दिल न उसके तीर को !
एक मुझी को हुस्न पर, इस दर्जा हैरानी नहीं,
बन गया तस्वीर, देखा जिसने उस तस्वीर को !
सर्द-मेहरी की यहाँ कसरत, वहाँ सर्दी का ज़ोर,
"नूह" क्यों "नारे"[1] पे हम, तरजीह दें 'कश्मीर' को ?

[कविवर "बिस्मिल" इलाहाबादी]

हुक्म क्या देते हो, अपने आशिक़े-दिलगीर को ?
दिल में रक्खे, या कलेजे, में तुम्हारे तीर को !
चाहिए पासे-वफ़ा, कुछ आपके नख़चीर को,
दिल में तीर आए, तो क्यों दिल से निकाले तीर को !
गुफ़्तगू कैसी, कहाँ की बात, क्या लुत्फ़े-कलाम,
देखता हूँ हर घड़ी चुप, मैं तेरी तस्वीर को !
दिल में दी मैंने जगह, किस शौक़ किस अरमान से,
जब इधर आते हुए, देखा तुम्हारे तीर को !
इसका खिंचना, इसके खिंचने की अदाएँ देख कर,
एक दुनिया मोल लेती है, तेरी तस्वीर को !
यह मेरे दिल में, किसी पहलू ठहरता ही न था,
मैंने दम दे दे के रक्खा है, तुम्हारे तीर को !
महफ़िले-दुशमन में, दुशमन का फ़िसाना छेड़ कर,
कर दिया ख़ामोश हमने, आपकी तस्वीर को !
मैं रहा दुनिया में जब तक, दिल शिकस्ता ही रहा,
कोई देखे, इस मेरी फूटी हुई तक़दीर को !
है अगर "बिस्मिल" तुम्हारा नाम, तो यह चाहिए—
सर पे रोको तेग़ को, दिल में जगह दो तीर को !

१—"नूह" साहब का वतन है। यह एक क़सबा है, जो इलाहाबाद के जिले में है।

तालीम एडिटरी

[श्री० जी० पी० श्रीवास्तव, बी० ए०, एल्-एल्० बी०]



दा ग़ारत करे स्कूल और कॉलेजों की सनद और डिग्रियों को, जिनके बिना हम ऐसे ज़ाद-शरीफ़ों का किसी भी मुहकमे में गुज़र नहीं है। वह तो बड़ी ख़ैरियत हो गई कि 'लॉटरी' (Lottery) में बन्दे के हाथ एक 'प्रेस' लग गया, जिससे गुज़र-बसर की बहुत-कुछ उम्मीद हुई। मगर क्या बताऊँ, प्रेस की तक़दीर में मुझसे भी ज़्यादा आराम-तलबी लिखी हुई थी। हफ़्तों बेलन चलाने की नौबत नहीं आती थी। अन्देशा हुआ कि अगर यही हाल रहा तो 'टाइपों' में बेकार पड़े-पड़े कहीं ज़ङ्ग न लग जाए। उन्हें कहाँ तक मैं साफ़ करता रहूँगा। इसलिए इस मुसीबत से बचने की जब कोई तरकीब न सूझी, तो बन्दे ने झट एक अख़बार निकाल दिया। मगर हाथी के खाने के दाँत और होते हैं और दिखाने के और। इसलिए मुझे भी यही कहना पड़ा कि अपने ज़ाती फ़ायदे के लिए नहीं, बल्कि क़ौम व मुल्क की सच्ची ख़िदमत के लिए यह पर्चा निकाला गया है; क्योंकि इसकी बड़ी सख़्त ज़रूरत थी। और तारीफ़ है ख़रीदारों की अक़्ल की, उन्होंने इसकी सच्चाई हर्फ़-ब-हर्फ़ मान ली। किसी ने भी ज़रूरत का हाल कुछ न पूछा।

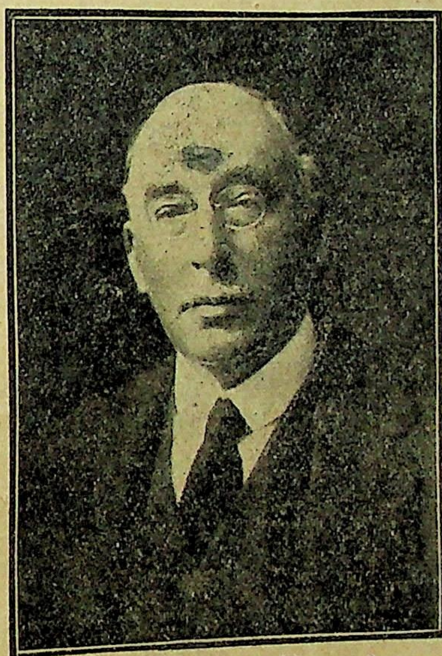
यह बात पूछने की थी भी नहीं। क्योंकि सभी जानते थे कि यहाँ से क़रीब आधे दर्जन जो रिसाले और अख़बार निकलते हैं, वे बेचारे दूकानदारों को सौदा लपेटने के लिए काफ़ी काग़ज़ नहीं पहुँचा पाते। इसके अलावे वे ख़ुद अपनी तरक़्क़ी की जड़ दिनों-दिन ऐसी मज़बूत करते जाते हैं कि अगर इनकी ख़ुराक पर फ़ौरन छापा मार कर इन्हें अभी से अधमरा न कर दिया जाएगा, तो बाद को इन्हें मारना तो दूर रहा, इनकी मोटाई तक एक इञ्च भी दूर न की जा सकेगी। उस वक़्त 'लिटरेचर' का कितना बड़ा नुक़सान होगा, इसे वही लोग समझ सकते हैं, जो हम ऐसे इसके सच्चे ख़ैरख़्वाह हैं। क्योंकि तब इसका एक निहायत ही ज़बर्दस्त मसला कि "हर कमाले राज़वाल" बिलकुल ग़लत हो जाएगा। इसलिए उन लोगों ने यह ज़रूर सोचा होगा कि इसने (यानी हमने) यह नया अख़बार निकाल कर दौगर चलते हुए पर्चों के पैर उखाड़ने की अच्छी तदबीर निकाली। इस तरह लिटरेचर की आबरू भी रह गई और मसला भी सही साबित हो गया। तभी तो हमारी क़द्र हुई और हमारा अख़बार चल निकला। हमारी ही क्या, अगर इस वक़्त हमारी तरह लिटरेचर के दस-पाँच ख़ैरख़्वाह और पैदा हो जाते और सभी अपना-अपना अख़बार निकाल देते तो सभों की ऐसी ही आवभगत होती। क्योंकि तब यह नुक़सान और भी आसानी और मुनाफ़े के साथ पूरा होता। जिस चरागाह में मुश्किल से पाँच जानवर गुज़र कर पाते हों, वहाँ अगर दस-बीस नए फट पड़ें तो क्या नतीजा हो? बस यही हाल ख़रीदारों का है। चाहे उन्हें कोई दस मिल कर चरे या पचास; क्योंकि हैं तो वे वही इने-गिने। उस पर ज़माने की तङ्गदस्ती की वजह से किसी में इतना दम और शौक़ कहाँ कि एकाध अख़बार से ज़्यादा मँगावे?

यह खुली हुई बात है कि नए के आगे पुराने की क़द्र नहीं होती, इसलिए ख़रीदारों का मेरी तरफ़ झुकना कोई ताज्जुब न था। उस पर मैंने अख़बारी दुनिया में पैदा होते ही दो-चार मशहूर रिसालों पर ताबड़तोड़ दोलत्ती झाड़ दी। फिर तो वह काँय-काँय मची कि तोबा ही भली, इसके आगे सराय की भठियारिनें तक अपना हापा लड़ना भूल गईं। इस थू-थू, मैं-मैं का शोर मुल्क के कोने-कोने में पहुँचा और सैकड़ों ने इस पर अपनी रायज़नी का ताँता बाँध दिया। नतीजा यह हुआ कि जो शोहरत मेरे अख़बार को दस बरस नाक रगड़ने और हज़ारों ख़र्च करने से भी नहीं मिलती वह इस छीछालेदर से आनन-फ़ानन और मुफ़्त में मिल गई। जब हर शख़्स की ज़बान पर मेरे अख़बार का नाम पहुँच गया, तो ख़रीदारों का दुगुने और तिगुने की तादाद

में बढ़ जाना लाज़मी ही था। ऐसे मौक़े पर मैंने एक अक़्लमन्दी और की। झट यह मशहूर कर दिया कि मेरे साढ़े पचपन हज़ार ख़रीदार हो गए। फिर क्या पूछना था। इश्तहार छपाने वाले अपनी बड़ी-बड़ी थैलियाँ लिए हुए कूद पड़े। इनमें एक साहब बड़े चलते-पुर्ज़े थे। अपने इश्तहार का ऑर्डर देने के क़ब्ल ख़रीदारों की फ़ेहरिस्त देख कर अपना इत्मीनान कर लेना चाहते थे। मैंने भी फ़ौरन रजिस्टर खोल कर साढ़े पचपनों हज़ार नाम गिना दिए। उनकी सारी चालाकी धरी रह गई। उन्हें क्या ख़बर कि इस फ़ेहरिस्त के हर सफ़े में सिर्फ़ तीसरा ही नाम ख़रीदार का है, बाक़ी सब फ़र्ज़ी हैं?

मज़ामीन के लिए मुझे ज़रा भी तरद्दुद नहीं करनी पड़ी। क्योंकि जिस दिन से मैं एडिटर बना उसी दिन से सारी दुनिया भी नामेनिगार हो गई। ख़सम अपनी जोरुओं की शिकायत लिखने लगे तो बीबियाँ अपने मियाँ की बुराई। आशिक़ों को अपने माशूक़ों के नाज़-नख़रे और बेवफ़ाई बयान करने से छुट्टी नहीं मिलती थी। जिसके जोरू-जाँता, आशिक़-माशूक़ कोई भी नहीं होता था, वह दूसरों ही पर अपने दिल का ग़ुबार निकाल कर अपना कलेजा ठण्डा करता था। ग़रज़ यह कि सभी हमारे अख़बार को अपने क़लम की तख़्तिए-मश्क़ बनाने की कोशिश में थे। यहाँ तक कि स्कूल के लड़के भी, जो अपने तरजुमे की कॉपी ग़लतियों के डर से अपने मास्टरों के सामने रखने से हिचकते थे, उसकी नक़ल अख़बार में छापने के लिए मेरे पास बेधड़क भेजा करते थे। जहाँ मज़ामीन की इतनी भरमार हो, वहाँ किसका दिमाग़, वक़्त या आँखें इस क़दर फ़ालतू हैं कि उनको पढ़ने की तकलीफ़ गवारा करता। इसलिए उनके भेजने वालों के सिर्फ़ नाम पढ़ लिए जाते थे। उससे अगर पता चल गया कि ये पुराने नामानिगार हैं, यानी इनके एकाध मज़मून और भी कहीं छप चुके हैं, तब तो उनका यह मज़मून भी रख लिया जाता था और बाक़ी सब ज्यों के त्यों पन्सारी के हवाले कर दिए जाते थे। और वहाँ से उनके बदले हल्दी, मिर्च, मसाला, नमक, शक्कर रोज़ाना काफ़ी आ जाते थे। हाँ, ख़तूत उसके काम के नहीं होते थे। क्योंकि पोस्टकार्ड और लिफ़ाफ़े से पुड़िया नहीं बाँधी जा सकती। फिर भी ये बेकार नहीं जाते थे। इनसे मुझे चाय बनाने में बड़ी आसानी होती थी। अगर इन तरकीबों से काम न लेता तो हफ़्ता भर में ही मेरा घर ख़तूत और मज़ामीन से इतना ठसाठस भर जाता कि मुझे मय सामान के बाहर निकल कर दरख़्तों के नीचे रहना पड़ता।

लोग अपने ख़तों के जवाब के इन्तज़ार में रहा करते थे, मगर इतना समझने की अक़्ल नहीं रखते थे कि उनकी तरह ख़त लिखने वाले हज़ारों हैं और जवाब देने वाला अकेला एक एडिटर, वह बेचारा अगर रातों-दिन दोनों हाथों से लिखता रहे तो भी तो वह एक दिन की



हिज़ एक्सेलेन्सी सर हर्बर्ट स्टानली

आप सीलोन (लङ्का) के गवर्नर थे, जो हाल ही में दक्षिण अफ़्रिका के हाई कमिश्नर नियुक्त किए गए हैं।

डाक का जवाब महीने भर में नहीं दे सकता। ऐसी हालत में वह जवाब देने की कैसे बेवक़ूफ़ी कर सकता है? दूसरे वह जवाब क्या दे अपना सर, जब उसे पूरा ख़त तक पढ़ने की नौबत नहीं आती। हाँ, बहुत तङ्ग किए जाने और दर्जनों ख़त मय जवाबी टिकट बार-बार भेजते रहने पर अगर कभी वह छपा हुआ एक पोस्टकार्ड भेज देवे तो उसके लिए यही बहुत है।

लोगों को इन्तज़ार में रखने से एक फ़ायदा भी था। क्योंकि अक्सर लोग इस उम्मीद में मेरे ख़रीदार हो

जाते थे कि न जाने किस तारीख़ के पर्चे में मेरा मज़मून निकले और कहाँ तक दूसरों से माँग-माँग कर पर्चा देखा करें। बन्दा भी ऐसे शौक़ीनों की कभी-कभी हिम्मत बढ़ा देता था, ख़ास कर तब, जब उनसे सूखी ख़ुशामदों के अलावे कुछ नक़दी फ़ायदा भी किसी न किसी ढङ्ग से होने लगता था। रहा मज़मून की अच्छाई-बुराई पहचान कर चुनना महज़ अपनी अवक़ात ख़राब करना है। क्योंकि जिस तरह से आलमे-शबाब पहुँच कर एक गधी भी परी हो जाती है, उसी तरह छपने पर सभी मज़मून, मज़मून हो जाते हैं। फिर भी क्या कहूँ, इस बेवक़ूफ़ी के ज़माने में कुछ नामानिगारों ने अपने नाम को शैतान की तरह मशहूर करके किसी दोआ-तावीज़ से पढ़ने वालों पर ऐसा जादू डाल रक्खा है कि वे लोग एक न एक मज़मून इन लोगों का हर पर्चे में ज़रूर देखना चाहते हैं। वरना बेदुम के जानवर की तरह पर्चे की वक़त घट जाती है। मगर ये हज़रत मज़मून देने में वह-वह शुतुरग़म्ज़े दिखाते और दून की लेते हैं कि कलेजा जल के ख़ाक हो जाता है। जब मुल्क में हज़ारों शौक़ीन ऐसे पड़े हैं, जो सौ-सौ ख़ुशामदों के साथ मज़मून देकर उसकी छपाई वग़ैरा तक का ख़र्चा भी मुझे देने को तैयार बैठे हैं, तो इन लोगों का मज़मून देने में इतने नख़रे दिखाना और उलटे मुझी से उसके बदले में कुछ ऐंठने की उम्मीद करना लाहौल बिलाक़ूवत किस क़दर बेहूदापन और बेहयाई है। ख़ैर! मैं भी इन लोगों का उस्ताद हूँ। जब देखा कि आरज़ू, मिन्नत, ख़ुशामद और ज़िद से काम नहीं चलता, तब सचाई को दूर भगा कर उन्हें उजरत देने के लिए एक से एक बढ़ कर वादा करता हूँ और अपनी लन्तरानी में उन्हें ऐसा सब्ज़-बाग़ दिखाता हूँ कि उनका दिमाग़ फिर जाता है। अगर यह तरकीब भी न कारगर हुई तो उनकी कोई मशहूर और मारूफ़ किताब पर जली-कटी नुक़्ताचीनी करने और उनका 'कार्टून' निकालने लगता हूँ। बस हज़रत ढीले पड़ जाते हैं, क्योंकि मसल है कि पाजी से अल्ला मियाँ भी डरते हैं। फिर क्या, जहाँ मज़मून हाथ आ गया, तहाँ बन्दा अपने सब वादे ही नहीं, बल्कि उनके ख़तों के जवाब तक लिखना भूल जाता है। और उनकी क़द्र वैसी ही करता है, जैसे वापसी के बाराती, वोट दे चुकने पर वोटर या गुज़रे हुए गवाह की होती है।

हाल ही में एक बेढब से पाला पड़ गया था। माँगता तो वह बहुत था। ख़ैर, किसी न किसी तरह उसे चार आने पेज के हिसाब से उजरत देकर अपनी जान छुड़ाई। यह बहुत खला, क्योंकि पन्सारी उसके मज़मून के पूरे बण्डल के लिए दो पैसे भी न देता। ख़ैर, बाद को मैंने उस मज़मून को अलग किताब की शक्ल में शाया करके अपने टके के दस गुने की तादाद में सीधे कर लिए। तब तो वह बहुत चकराया। लगा कहने कि मैंने उसे अख़बार में देने का दाम लिया था। उसका कोई किताबी हक़ नहीं बेचा था। मगर उसका सर। हमारे पर्चे की शरायत में साफ़ तौर से लिखा है कि जो मज़मून इसमें शाया हो, उस पर जुमला हक़ूक़ एडीटर का है। और मैंने तो उसके लिए उजरत भी दी थी। बस वह रह गया अपना सा मुँह लेकर।

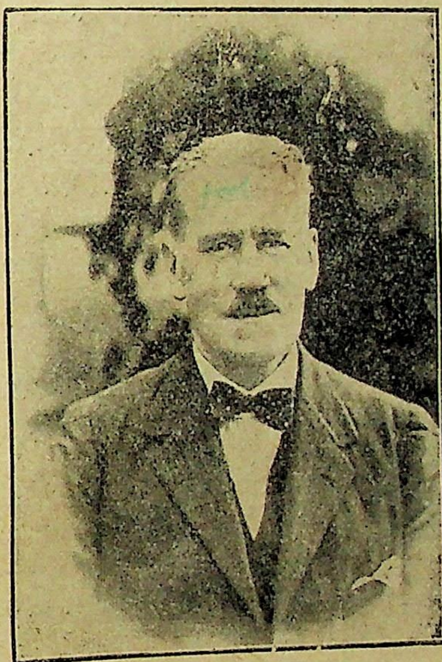
चीदा ख़बरों के लिए मुझे किसी की भी ख़ुशामद नहीं करनी पड़ती है। क्योंकि हमारा चपरासी जिस वक़्त चाण्डू की निगाली मुँह में लगाता है, उस वक़्त उसे इलहाम होता है। और वह बेतार की ख़बर की तरह दुनिया भर की अजीब-वो-ग़रीब ख़बरें सुनाने लगता है। उन्हीं को बन्दा ज़रा हाशिया लगा कर पढ़ने वालों के सामने पेश कर देता है। एक दफ़ा उसने पीनक में बताया कि एक औरत की नाक से गाय का बच्चा पैदा हुआ है। मैं फ़ौरन समझ गया कि यह औरत अफ़रीका की होगी। बस यह ख़बर अख़बार में दे दी। फिर तो इसकी वह धूम मची है कि दस-बीस अख़बारों ने इसकी नक़ल की। और महीने भर तक काफ़ी सनसनी रही। यहाँ तक कि कुछ लोग अफ़रीका जाकर उस औरत की ज़ियारत करने के लिए तैयार भी हो गए थे।

मज़ामीन दुरुस्त करने के वास्ते कुछ काट-छाँट करना एडीटर के लिए ज़रूरी होता है। मगर इसमें मुझे ज़्यादा दिक़्क़त नहीं पड़ती थी। हालाँकि तालिबइल्मी की उम्र में मैंने ज़रूरत से ज़्यादा पढ़ने की कभी ज़हमत नहीं उठाई थी। तो भी दो-चार नाविलें मैं पढ़े हुए था, जिनसे अख़बार और किताब में इस्तेमाल करने वाले अल्फ़ाज़ मुझे बख़ूबी मालूम हो गए थे, जैसे घर में पानी को पानी और बाप को बाप कहो तो अख़बार में पानी को 'आब' और बाप को 'पिदर' कहो। इनके अलावा क़वायद का एक क़ायदा भी मैं जानता था कि हर जुमले में पहिले

'क़ायल' तब 'मफ़ूलवे' उसके बाद 'फ़ेल' होना चाहिए। और शायरी के मिसरे नापने के लिए एक परकार मेरे पास था ही। बस इतनी ही बातें एडीटरी बर्तने के लिए काफ़ी थीं। और बाक़ी तो सब करते-करते आ ही जाता है। इन्हीं के बल पर बन्दा लाल रोशनाई का क़लम ज़न से फेर देता था। इसके लिए और तो कोई नहीं, मगर नामी नामानिगार बड़ी चिल-पों मचाते थे। हालाँकि यही लोग मारे लापरवाही के क़वायद की सब से ज़्यादा भूलें करते हैं। मिसाल के तौर पर इनका एक जुमला आप ख़ुद ही देख लीजिए—"हुस्न में परी थी तो बोलने में कोयल।" असल में यह एक नहीं, दो जुमले हैं। दोनों में फ़ायल ग़ायब है और दूसरे में फ़ेल भी नदारद है। इसलिए इनको इस तौर पर मुझे सही करना ही पड़ता था कि—"वह हुस्न में परी थी तो वह बोलने में कोयल थी।" इसी तरह एक कहानी लिखने वाले ने अपनी कहानी में एक आदमी के मुँह से, जो डण्डों से मारा जाता था, कहलवाया—"अरे! बाप रे बाप!" मैंने झट उसे काट कर—"अरे! पिदर रे पिदर!" कर दिया। उस पर नामेनिगार साहब बहुत बिगड़े। बिगड़ा करें। आख़िर हम एडीटर हैं किस लिए?

'एडिटोरियल' लिखने में ज़रा परेशानी मुझे ज़रूर होती थी। इसलिए इस झगड़े में बन्दा पड़ता ही नहीं। इसे मैं हमेशा शागिर्दों के मत्थे छोड़ देता हूँ। और उन्हीं लोगों से अङ्गरेज़ी अख़बार और नाविलों के तर्जुमे भी अपने नाम से करा लेता हूँ। शागिर्द मेरे पास बहुतेरे हैं। क्योंकि काम-काज बढ़ने के साथ आदमी बढ़ाने की जब ज़रूरत हुई और मेरे ईमान के बजट में इतनी गुञ्जाइश न थी कि माक़ूल उजरत देकर मैं किसी से काम लूँ, तब बन्दे ने फ़न्ने-एडिटरी सिखाने की नोटिस दे ही दी। बस दर्जनों कॉलेज के पढ़े-लिखे लोग मेरी शागिर्दी के लिए रोज़ ही टपकने लगे और यों मेरा सारा कारबार मुफ़्त में होने लगा। अगर कभी मुझी को एडिटोरियल लिखना पड़ गया, तो बन्दा दस अख़बार मेज़ पर रख लेता है और हरेक के एडिटोरियल में से एक-एक पारा निकाल कर अपना एडिटोरियल बना लेता है। इसी से मेरी पॉलिसी किसी की समझ में नहीं आती। मगर अब पॉलिसी ही क्या, सब कुछ समझ में आ जाएगा। और अगर अब भी आप न समझें, तो जनाब मेरा क़ुसूर नहीं।

नोट—जनाब मिहरबानी करके आइन्दा साल का चन्दा आप फ़ौरन भेज दें। क्योंकि अख़बार अब मेरा



श्री० आर० बोकेट, जे० पी०

आप मैसोर गवर्नमेण्ट के खानों के चीफ़ इन्सपेक्टर थे, जो हाल ही में छुट्टी लेकर बिलायत गए हैं।

पुराना हो चला है। इसकी काया-पलट करना ज़रूरी है। इसलिए हफ़्ते-अशरे में इन्शाअल्लाहताला इसका निकालना मैं एकदम बन्द कर दूँगा। फ़क़त आपके चन्दे का इन्तज़ार है।

('चाँद' के उर्दू-संस्करण से)



[पं० गयाप्रसाद जी शास्त्री, वैद्य]

पेशाब में जलन होने का उपाय

शुद्ध सफ़ेद राल ५ तोले, मिश्री ५ तोले—दोनों चीज़ों को कूट, पीस, छान कर चूर्ण बना लेना चाहिए। १ तोला की मात्रा से दिन में ३ बार इस औषध को सेवन करना चाहिए। जिस दिन औषध को सेवन करे, उस दिन दूध, जल, शर्बत आदि अधिक पीना चाहिए। भोजन में भी दूध, चावल या खीर खाना आवश्यक है। इस उपचार से बहुत शीघ्र ही पेशाब की जलन दूर होती है।

* * *

मस्तक-पीड़ा की चिकित्सा

आँवला ५ तोले, बहेड़ा ढाई तोले, हरड़ ढाई तोले, मिश्री १० तोले—सब चीज़ों को कूट-पीस, छान कर चूर्ण बना लेना चाहिए। ३ माशे से १ तोला तक अवस्था के अनुसार सायं-प्रातः सेवन करना चाहिए।

* * *

वृक्क-शूल की दवा

बुझा हुआ चूना ४ रत्ती, पुराना गुड़ १ तोला, दोनों औषधों को मिला कर केवल दो गोली बना लेना चाहिए। पहले १ गोली गर्म पानी के साथ सेवन करना चाहिए, ५ मिनट के मध्य में ही दर्द दूर हो जायगा। यदि किन्हीं अनिवार्य कारणों से १ गोली के सेवन कराने से दर्द शान्त न हो तो १ घण्टा के बाद पूर्वोक्त विधि से दूसरी गोली भी खिला देनी चाहिए। दर्द अवश्य शान्त होगा।

* * *

ज्वर की दवा

गुलाबी फिटकिरी १ तोला लेकर हलकी आँच में तवे के ऊपर उसका फूला कर लेना चाहिए। इस औषध को पीस-छान कर शीशी में भर ले। अवस्था के अनुसार १ रत्ती से ३ रत्ती तक की मात्रा बताशे में रख कर ज्वर आने के १ घण्टा प्रथम ताज़े जल के साथ खिलाने से विषम-ज्वर (मलेरिया-फ़ीवर) दूर हो जाता है। प्रातः-सायं नियमपूर्वक इस औषध के प्रयोग से सभी प्रकार के ज्वरों में लाभ होता है।

* * *

जलोदर की दवा

छोटी हरड़ का बकला ५ तोले, सेंधा नमक १ तोला। हरड़ के बकले को लेकर गुठली फेंक देना चाहिए, अनन्तर तवे के ऊपर मीठी आँच से हरड़ को भून कर सेंधा नमक के साथ कूट, पीस, छान कर चूर्ण बना लेना चाहिए। प्रातः तथा सायङ्काल ३ माशे चूर्ण १ छटाँक गो-मूत्र के साथ देने से जलोदर के रोगी को बहुत ही शीघ्र लाभ होता है।

* * *

ख़ूनी आँव के दस्तों की दवा

ईसबगोल की भूसी ५ तोले, मिश्री ५ तोले लेकर मिश्री को पीस कर साफ़ की हुई ईसबगोल की भूसी के साथ मिला कर रख लेना चाहिए। अवस्था के अनुसार ३ माशे से १ तोला तक औषध दिन में ३ बार देना चाहिए। अनुपान—जल।

* * *

पौष्टिक पाक

अकरकरा डेढ़ तोले, लताकस्तूरी डेढ़ तोले, लवङ्ग डेढ़ तोले, छोटी इलायची ३ तोले, जायफल ३ तोले, जावित्री ३ तोले, असगन्ध १० तोले, सफ़ेद मूसली १० तोले, गरी १ पाव, किशमिश १ पाव, पिस्ता १ पाव, चिरौंजी १ पाव, बादाम ३ सेर, खोवा २ सेर, घी १ सेर, शक्कर या मिश्री ५ सेर, केसर १ तोला, मकरध्वज ६ माशे, वङ्गेश्वर १ तोला, शिलाजीत २ तोले, चाँदी के वर्क़ १०० नग।

विधि—ऊपर लिखी हुई औषधों को कूट, पीस, छान कर चूर्ण बना लेना चाहिए। सभी मेवे साफ़ करके कतर ले। बादाम की गिरी को दूध या पानी में भिगो कर छिलका उतार कर पीस लेना चाहिए। अनन्तर १ पाव घी में सभी मेवों को भून कर पृथक रख लेना चाहिए। इसी प्रकार खोए को भी मन्द आँच से घी में भून कर हलके लाल रङ्ग का कर लेना चाहिए।

५ सेर जल में ५ सेर मिश्री या शक्कर की ३ तार की पक्की चाशनी बना कर, कढ़ाई को उतार कर क्रमशः औषधें, मेवा तथा खोवा को मिला देना चाहिए। इन सब चीज़ों को मिलाने के बाद, केसर, मकरध्वज, वङ्गेश्वर तथा शिलाजीत आदि को गुलाब-जल में घोंट कर मिला देना चाहिए। समस्त वस्तुओं के एक रूप हो जाने पर अवशिष्ट घृत के द्वारा दो-दो तोले के लड्डू बना, चाँदी के वर्क़ चढ़ा कर रख लेना चाहिए। प्रातः तथा सायं १ लड्डू खाकर डेढ़ पाव गो-दुग्ध पीना चाहिए। यह प्रयोग कम से कम ४० दिन करने से आश्चर्यजनक बल-वीर्य की वृद्धि होती है। सब प्रकार की निर्बलता, वीर्य-दोष तथा स्त्रियों के प्रदर आदि रोगों की यह अव्यर्थ रामबाण औषधि है। ऐसा तात्कालिक, अद्भुत चमत्कार दिखाने वाली औषधें बहुत कम हैं।

* * *

तिल्ली की दवा

समुद्रफेन १ तोला, मिश्री १ तोला—दोनों चीज़ों को कूट, पीस, छान कर चूर्ण बना लेना चाहिए। प्रातः तथा सायङ्काल ६ माशे औषध जल के साथ सेवन करना चाहिए।

प्रमेह की दवा

बरगद की कोमल जटा १ तोला, कालीमिर्च १ माशा, मिश्री ढाई तोले। बरगद की जटा तथा कालीमिर्च को पानी के साथ महीन पीस कर १ पाव जल में ठण्डाई की तरह छान ले। अनन्तर पिसी हुई मिश्री मिला कर प्रातः तथा सायङ्काल इस औषध को सेवन करना चाहिए।

* * *

पेट के दर्द की दवा

मदार (आक) के फूल की लौंग १ रत्ती, हींग १ रत्ती, दोनों चीज़ों को महीन पीस कर १ गोली बना ले। गरम जल के द्वारा इस गोली को निगल जाना चाहिए।

* * *

पाण्डु-रोग की दवा

३ माशे हरड़ का चूर्ण फाँक कर ऊपर से १ छटाँक गो-मूत्र पीने से पाण्डु रोग समूल नष्ट हो जाता है। यह प्रयोग कम से कम २१ दिन तक करना चाहिए।

* * *

श्वित्रकुष्ठ की दवा

अञ्जीर की लकड़ी या फल पानी के साथ साफ़ पत्थर के ऊपर घिस कर चन्दन के समान श्वित्रकुष्ठ पर कुछ समय तक लगाते रहने से विशेष लाभ होता है।

* * *

अपस्मार (मृगी) की दवा

सफ़ेद आक (मदार) के फूल १ माशा, पुराना गुड़ ३ माशे। आक के फूलों को पीस कर गुड़ के साथ दो गोली बना लेना चाहिए। ४० दिन तक नियमानुसार ताज़े जल के साथ प्रातः-सायङ्काल १-१ गोली खिलाने से अपस्मार रोग अवश्य नष्ट होता है।

* * *

पेट के कीड़ों का उपाय

बायविडङ्ग, जवाखार, सेंधानमक और कबीला १-१ तोला और हड़ का वक्कल १ तोला। सब चीज़ों को कूट-पीस, छान कर चूर्ण बना लेना चाहिए। १ माशा से ३ माशे तक अवस्था के अनुसार प्रातः-सायं सेवन करे।

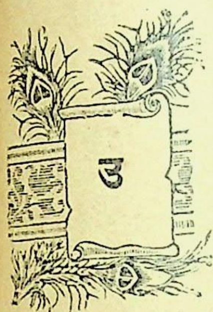


दिल की आग उर्फ़ दिल-जले की आह

["पागल"]

छठा खण्ड

(अलिन्द)



उफ़ ! डॉक्टर को मैं इतना हृदय-हीन नहीं जानता था। उन्हें अनुभवी, ज्ञानी, हृदयगाथा का मर्मज्ञ जान कर ही मैंने उन्हें अपना दिल चीर कर उसकी वेदना दिखलाई थी। जिनके विचारों की सूक्ष्मता, ज्ञान की उच्चता, हृदय की विशालता, भावों की धारा और प्रकृति की उपासना पुस्तक में देख कर मैं समझता था कि यदि संसार में मुझे कहीं भी सहानुभूति के दो आँसू मिल सकते हैं, तो बस इन्हीं से। मगर जब ऐसे नरश्रेष्ठ भी किताबी दुनिया से पृथक होकर वास्तविक संसार में समाज-कोल्हू के निरे नर-पशु निकले, तो आह! मेरे लिए कहीं भी ठिकाना नहीं था। ऐसे निकृष्ट संसार में, जहाँ प्रेम का आदर नहीं, प्रकृति का सत्कार नहीं, भावों के महत्व का कोई समझने वाला नहीं, वहाँ मेरे लिए अब दो घड़ी भी रहना असहनीय था। सरोज, जिसे मैं पूर्णरूप से अपनी मानता था, दिल जिसे हर प्रकार अपना ही सर्वस्व जानता था, प्राण जिसे अपना आधार समझता था, उसी सरोज को संसार मेरे लिए पराई बताए? वश चलता तो ऐसे संसार को मैं आग लगा देता। उसमें भला अब मैं किसी तरह रह सकता था? स्वप्न में भी नहीं। इसीलिए डॉक्टर साहब की फटकार सुनते ही मेरे दिल की अग्नि और भी प्रचण्ड वेग से भड़क उठी और मैं वहाँ से भागा। कहाँ? जहाँ संसार न हो, समाज न हो, मेरी सरोज को पराई बताने के लिए कोई बनावटी नियम का ढोंग न हो। मगर ऐसी जगह कहाँ थी और वहाँ मैं किस तरह पहुँच सकता था? यही मैं हवा से, तारों से और दिशाओं से पूछता हुआ भागता जाता था। अन्त में जब मैं दरिया के पुल पर पहुँचा तो पानी की लहरें मेरी दशा पर खिलखिला पड़ीं, मानो वे मेरे प्रश्नों की थाह पा गई हैं। मैं चौंक कर ठिठुका। मन ने कहा, हो न हो उनके उत्तर भी इन्हीं लहरों की थाह में हैं। वैसे ही हृदय की ज्वाला तड़प कर बोल उठी—बेशक, और मुझे भी शान्ति अब इन्हीं की गोद में मिल सकती है, अन्यत्र कहीं भी नहीं। सरोज का नाम लेकर बस कूद पड़ो। तनिक भी विलम्ब करके मुझ जली को अब और न जलाओ।

आँखों के सामने सरोज की मूर्ति नाचने लगी। मगर उस समय वह कैसी विवशता की मूर्ति और कितनी क्षीण, कान्तिहीन और करुणाजनक थी। उस पर वह अपनी डबडबाई आँखों में सम्पूर्ण प्राण लाकर टकटकी बाँधे किस मूक वेदना से मेरे अन्तिम प्रणाम को स्वीकार कर रही थी कि मेरा कलेजा काँप उठा। हृदय विचलित होते ही मेरे हाथ से एक बन्द लिफ़ाफ़ा छूट पड़ा। यह ख़त कहाँ से आया? एकाएक ख़्याल आया कि इसे रास्ते में डाकिए ने मुझे दिया था, जिस पर अभी तक अपनी बदहवासी के कारण मैंने निगाह तक नहीं डाली थी। म्युनिसिपैलिटी के लम्प का धुँधला प्रकाश उस पर पड़ रहा था और मैं कौतुकवश उसे निहार रहा था। उदासीनता ने कहा—जाने दो, जब तुम संसार से जा ही रहे हो तो तुम्हें अब किसी के पत्र से प्रयोजन? फिर सोचा, ख़त किसी का क्यों न हो, फिर भी इस पर अन्य किसी की दृष्टि पड़ना ठीक नहीं है। इसलिए उसे मैंने बेपढ़े ही नष्ट कर देने के लिए उठाया। वैसे ही उस पर सरोज की लिखावट दिखाई पड़ी। एक बिजली-सी मेरे तमाम बदन में दौड़ गई। मेरी उदासीनता झट तीव्र उत्सुकता में बदल गई और मैं पलक मारते ही एक दूसरा ही व्यक्ति हो गया। मैंने तुरन्त पत्र को चूम कर सर-आँखों से लगा लिया और उसे लिए दौड़ता हुआ लम्प के पास पहुँचा।

सरोज ने मुझे बरसों से एक अक्षर भी नहीं लिखा

था। उसने अपने सांसारिक विवाह के एक साल पहिले ही मुझसे पत्र-व्यवहार बन्द कर दिया था। इतनी मुद्दतों के बाद सहसा उसका पत्र पाकर मेरे आश्चर्यमय और कौतूहलपूर्ण आनन्द की सीमा न रही। बड़ी व्यग्रता और उतावली से लिफ़ाफ़ा फाड़ कर मैं पत्र पढ़ने लगा :—

"आप समझते होंगे मैं बड़े सुख में होऊँगी। आह! यह महलों का सुख मेरे लिए मृत्यु की यन्त्रणा है। ऐश्वर्य की गोद, नरक का धधकता हुआ कुण्ड है। उसी



कुमारी हेस्टर स्मिथ, बी० ए०

आप हाल ही में ट्रावनकोर में होने वाली अखिल भारतवर्षीय महिला कॉन्फ़्रेन्स की प्रधाना नियुक्त हुई थीं।

में जल रही हूँ। सन्ताप की आग में भस्म हो रही हूँ। जब तक जीऊँगी, यों ही सदा जला करूँगी।

"क्या मैं आपको हमेशा नहीं चाह सकती थी? हाय! तब मैं इस दशा को क्यों पहुँचती? सुख नहीं, शान्ति नहीं, प्रेम नहीं, जीवन का सहारा, हाय! कुछ भी नहीं। मन कहीं और तन कहीं। दाम्पत्य प्रेम ईश्वर ने मेरे भाग्य में लिखा ही नहीं। मैं इसकी आशा तक त्याग बैठी। आह! यह मैं क्या लिख गई? सच है, मैं हूँ और यह नीरस और सन्तापमय जीवन। कब अन्त होगा, बड़ी आशापूर्ण नेत्रों से देख रही हूँ। ख़ून के घूँट पी-पीकर जीती हूँ।

"मुझ कलङ्किनी के लिए आपका इतना प्यार? मेरी बेवफ़ाई और विश्वासघात पर भी इतनी प्रगाढ़ और अटल भक्ति? उफ़! सोचते ही परेशान हो जाती हूँ। मुझे भूल जाइए। प्रेम के बदले मुझे नफ़रत कीजिए। मैं प्रेम के योग्य नहीं, घृणा की पात्री हूँ। मैं अपने कर्तव्यों को भूली हुई, आदर्श से बहकी हुई और अपनी निगाहों से भी गिरी हुई हूँ। मुझे ख़ुद अपने से नफ़रत है, आप भी मुझे नफ़रत कीजिए, तभी मुझे कुछ सन्तोष मिलेगा।

"क्या लिखने बैठी हूँ, समझ नहीं पाती। मन की बात लिखने का साहस नहीं। किधर जा रही हूँ, पता नहीं। मैं क्या हूँ, ख़ुद ही नहीं जानती। अपने हृदय को मैं ही नहीं समझ पाती। बस इतना जानती हूँ कि इस जीवन से तङ्ग आ गई हूँ। बेहयाई अब नहीं सही जाती। सन्ताप खाए डालता है। बचाइए, बचाइए! मुझे शक्ति दीजिए, आत्मबल दीजिए। ईश्वर से प्रार्थना कीजिए कि मेरे हृदय को पत्थर कर दे। आपके सिवाय मेरा......"

अभी इसके दो सफ़े और पढ़ने को बाक़ी थे कि एकाएक आँसुओं ने मेरी आँखों पर पर्दा डाल दिया। हृदय की छटपटाहट ने मुझे आपे से बाहर कर दिया। अङ्ग-अङ्ग बेक़ाबू हो गए। उँगलियाँ ढीली पड़ गईं। पत्र हाथ से छूट गया। वैसे ही हवा के झोंके ने उसे पुल के किनारे पर पहुँचा दिया। मैं आँसू पोंछ कर उसके पीछे दौड़ा। मगर मेरे पहुँचने के पहिले ही अफ़सोस! वह बीच धारा में गिर पड़ा। मैं कलेजा मसोस कर रह गया।

चिन्ताओं ने मुझे पागल बना दिया। तरह-तरह के विचारों में डूबा उसी पुल पर घण्टों चक्कर लगाता रहा। उसने आगे क्या लिखा होगा, दिमाग़ के चिथड़े-चिथड़े उड़ा देने पर भी भाँप न सका। उसके मन में क्या है, बुद्धि किसी तरह भी थाह न पा सकी। जितना अंश पढ़ पाया था, वह भी ज़ालिम ने इस विचित्र ढङ्ग से लिखा था कि उसका आशय स्पष्ट रूप से समझ न पाया। दिमाग़ किसी जगह भी उसके विचारों का ठीक अन्दाज़ टटोल न सका। उसके प्रत्येक शब्द से बस एक तीव्र वेदना का चीत्कार सुनाई पड़ता था। उसके वाक्यों से उसके हृदय की ज्वाला निकल रही थी। इसके अतिरिक्त



लाहौर में होने वाली अखिल भारतवर्षीय महिला कॉन्फ्रेन्स की कार्यकारिणी समिति का ग्रूप। बीच में कॉन्फ्रेन्स की सभानेत्री—मद्रास व्यवस्थापिका सभा की भूतपूर्व उप-प्रधाना—श्रीमती मूथू लक्ष्मी रेड्डी बैठी हैं।

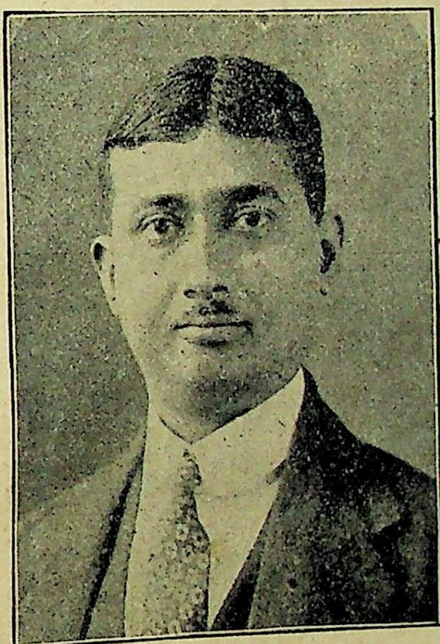


अखिल भारतवर्षीय महिला कॉन्फ्रेंस में सम्मिलित होने वाली विभिन्न प्रान्तों की प्रतिनिधियों का ग्रुप

और कुछ भी साफ़ तौर से मालूम न हुआ। सरोज मेरे लिए तो हमेशा ही एक गहरी पहेली रही। मगर इस पत्र में वह जैसी जटिल और पेंचीली समस्या हो गई थी कि क्या कहूँ? उसको सुलझाने के लिए स्वयं ज्ञान भी हारी मान गया। सम्भव है, आगे उसने कुछ प्रकाश डाला हो, इसलिए उसको जानने के लिए कभी उत्सुकता से मैं बेचैन हो जाता था, कभी उसकी व्यथा पर हज़ार जान से तड़प कर सर धुनता था, और कभी उसके शब्दों के सौ-सौ मानी लगा कर कुढ़-कुढ़ कर मरने लगता था।

अन्तिम बार जब मैंने सरोज को देखा था तो उसकी शोचनीय दशा से, करुणाजनक स्थिति से, नैराश्यपूर्ण जीवन से, उखड़े हुए रङ्ग से, उल्टी-सुल्टी बातों से मैंने उसकी परेशानी का कारण कुछ ताड़ा था। नहीं, ताड़ने के लिए मजबूर था। वह क्या था? आह! यह न पूछिए। सोचते ही दिमाग़ फटा जाता है, अङ्ग-अङ्ग सुलग उठता है। ज़बान पर बात आते ही ज़बान टुकड़े-टुकड़े हो जाती है। इसीलिए उसे मैं डॉक्टर साहब से भी न कह सका। मेरा अनुमान कहाँ तक सच था, ईश्वर ही जाने। उसे हर प्रकार से झूठ समझने की कोशिश करने पर भी मेरी दशा पागल कुत्ते से भी बत्तर है। जो कहीं उसे तृण-मात्र भी सच जानता तो न जाने अब तक मेरी क्या हालत हो जाती। मगर हाय! इस पत्र पर मैं जितना ही ग़ौर करता था, वही अनर्थकारी बात इसके प्रत्येक शब्द से मेरे दिल पर एक छिपा हुआ विषमय तीर चला रही थी।

"क्या मैं आपको हमेशा नहीं चाह सकती थी?" यह वाक्य मेरे दिल में शूल की तरह लग रहा था। क्योंकि इससे तो यही मतलब निकलते थे कि वह चाह सकती थी, मगर नहीं चाहती। क्या सचमुच वह मुझे अब नहीं चाहती? आख़िर क्यों? बार-बार यही प्रश्न उठ रहा था। वह चाहत क्या हुई? किस तरह नष्ट हो गई? क्या उसे किसी ने छीन लिया? दाम्पत्य प्रेम की भी सराहना नहीं है। आह! तब उसे किसने छीना? सराहना होती तब भी मेरे लिए मौत थी और न होकर उसका अपने हृदय की कोमलता को कोसना उफ़! मेरे लिए और भी घोर नरक की यन्त्रणा से बढ़ कर थी। उस पर यह कहना कि "तन कहीं और मन कहीं; मन की बात लिखने का साहस नहीं, किधर जा रही हूँ, पता नहीं; अपने हृदय को मैं ही नहीं समझ पाती। ईश्वर से प्रार्थना कीजिए कि उसे पत्थर कर दे।" क्यों, क्यों, हाय! क्यों? आह! तब क्या मेरा अनुमान आख़िर सच निकला? इससे परिस्थिति की विवशता की नहीं, बल्कि हृदय की स्वच्छन्द बहक की बू टपकती थी, वह हृदय जिसको रिझाने के लिए, अपनाने के लिए तपस्वी से भी बढ़ कर मैंने तपस्या की, अपनी लहलहाती ज़िन्दगी की जड़ खोद कर फेंक दी, उसकी उपासना में मैंने क्या नहीं किया; फिर भी वह मेरा न हुआ और हाय! उसी हृदय



श्री० पी० मुकर्जी

आप पञ्जाब चेम्बर ऑफ़ कॉमर्स की ओर से कौन्सिल के सदस्य नियुक्त हुए हैं।

का यह हाल कि अन्यत्र अनायास ही पिघला जा रहा है। अन्यथा उसे वह पत्थर बनाने की प्रार्थना क्यों करती? उफ़! यह वज्राघात मेरे विदीर्ण हृदय के लिए कैसा भयङ्कर था, अनुमान नहीं किया जा सकता। मुझसे भूल जाने के लिए अनुरोध करना, अपने को प्रेम के योग्य नहीं, बल्कि कलङ्किनी और घृणा की पात्री बता कर मुझे नफ़रत करने को कहना, ज़िन्दगी से बेज़ारी, बेहयाई का उल्लेख, सन्ताप की यन्त्रणा इत्यादि तो और ही प्रकार का ज़हर उगल रहे थे। इन बातों में हाय!

कौन से निकृष्ट रहस्य की ग्लानि थी, कौन से भ्रम-पथ पर पदार्पण का पश्चात्ताप था कि सुनते ही मेरे नसों का ख़ून जम गया और मैंने अपना सर पीट लिया। अब किसकी भक्ति, किसकी पूजा और किस आशा के सहारे जीवन-पथ पर मैं चल सकता था? इससे तो इस पत्र को बिना पढ़े ही मेरे लिए मर जाना लाख बार अच्छा था। मगर अब तो मरते वक़्त की भी शान्ति छिन गई।

एकाएक उसके शब्दों के मतलब ने करवट बदले और उनकी तह में मुझे आशा की एक अपूर्व जगमगाहट दिखाई पड़ी। मैं झिझक कर अपने सङ्कल्प पर से पिछड़ा। फिर सोचने लगा कि कहीं वह अपने सामाजिक बन्धन को मेरे ईश्वरीय रिश्ते से भी ऊपर समझ कर, अपने हृदय की प्रेरणाओं को सामाजिक दृष्टि से देखती हुई "तन कहीं और मन कहीं" की दशा पर अपने को कलङ्किनी और घृणा की पात्री न समझती हो। और परिस्थिति बदल जाने से अपने भावों को दबाती हो और इसीलिए उन्हें प्रकट करने का उसे साहस नहीं होता। अस्तु, ऐसे ही भिन्न-भिन्न विचारों के झोंके में दिमाग़ चक्कर खाकर मुझे बुरी तरह रुला रहा था। और हृदय लिखने वाली की वेदना पर अलग आठ-आठ आँसू बहा रहा था। क्यों न बहाता? जिसकी कुम्हलाई हुई सूरत देखते ही यह मर मिटता था, जिसके एक बूँद पसीने पर अपना ख़ून कर देने के लिए यह सदा अहोभाग्य समझता था, उसको सङ्कट में पाकर यह भला किस तरह चुप रह सकता था? बिलख-बिलख कर रोता था और सौ-सौ ढङ्ग से समझाता था कि बला से वह मुझे पराया समझे, बला से उसके हृदय में मेरे लिए प्रेम न हो, मगर तू तो उसे पराई नहीं जान सकता। यह दिल तो उसी का है। उस पर यही क्या कम है कि उसने अपनी ऐसी विपत्ति में तुझे याद किया? वह तुझे अपना न समझती तो ऐसी बातें तुझे लिख ही कैसे सकती थी? इससे भी बढ़ कर उसकी आत्मीयता और प्रेम का सबूत हो ही क्या सकता है? उसके दिल के भीतर यह तेरा प्रेम ही था, जिसके आवेश में वह अपना दुखड़ा तेरे आगे इस तरह रो बैठी। इसको चाहे तू न समझे, वह न समझे, या अब जैसी भी दृष्टि से वह या दुनिया इस प्रेम को देखने का उद्योग करे, परन्तु इसके अस्तित्व को वह मिटा नहीं सकती। दिल की इस तरह की बातों में मेरी मानसिक आलोचनाओं पर पानी पड़ गया और मैं अपना सारा दुखड़ा भूल गया; अपना मरना भूल गया, दीन-दुनिया सब कुछ भूल गया; याद रहा तो बस सरोज का सन्ताप। वह चाहे जिस भी कारण से हो, इसकी मुझे अब परवाह न थी। उसके दुखड़े पर अपने को आहुति चढ़ा देना ही ध्यान रहा। यद्यपि मैं उसकी कुछ भी सहायता नहीं कर सकता था, फिर भी उसके लिए अपनी जान तो दे सकता था। सम्भव है इसी से उसकी वेदना कुछ हलकी हो और इसीलिए उसने मुझे याद किया हो। क्योंकि जो काम कोई भी उसका नहीं कर सकता था उसकी आशा उसे मुझी से होती। मुमकिन है उसने मुझे बुलाया भी हो, जिसे पत्र के एकाएक हाथ से छूट जाने के कारण मैं पढ़ न सका। मगर किस तरह उसके पास पहुँचता? मैं तो बे-सरो-सामान के डॉक्टर साहब के यहाँ से मरने के लिए भागा था! ऐसे वक़्त रुपयों की चिन्ता हुई और उसीके साथ अपने सौ रुपयों के नोटों का भी ख़्याल आया, जो तारा को देकर मेरे पास बचे थे। 'पर्स' अकसर जेब में पड़ा रहता था। इस वक़्त भी देखा तो संयोग से उसे पास ही पाया! इसलिए अब और कुछ बिना सोचे-समझे मैं सरोज की ससुराल जाने के लिए सीधे स्टेशन लपका।

(क्रमशः)



नारी-जीवन

[श्री० आनन्दीप्रसाद जी श्रीवास्तव]

पत्र-संख्या १९

[पत्र वृद्ध-पत्नी की ओर से बाल-विधवा को]

बहिन,

जाल में फँसी दुष्ट के
तुम निश्चय ही, बड़ी विपत्ति
आई होगी तुम पर, कैसे
बची परम सतीत्व-सम्पत्ति ?

अब था तुम्हें सहारा केवल
अपने ही बल का—छल का,
कौन कहे भगवान सदा है
होता रक्षक निर्बल का ?

उसकी ही इस अगम सृष्टि में
उसके नयनों के नीचे,
जाते हैं निर्बल-शोणित से
विपुल स्वार्थ-पौधे सींचे।

लक्ष-लक्ष सतियों की शुचिता
नष्ट यहाँ की जाती है,
उच्च मनोगतियों की शुचिता
भ्रष्ट यहाँ की जाती है।

आदि काल से चला आ रहा—
है ललना जन-हित-बन्धन,
इसीलिए है आज बन गया
उनका इतना कोमल तन।

कोमलता सजीव कह-कह कर,
तनिक प्यार उनको देकर,
रक्खा है पुरुषों ने उनको
उनके तन का बल लेकर।

यदि उनको भी रण करने की
शिक्षा सदा मिला करती,
एक अपूर्व दृश्य को देखा
करती तब तो यह धरती—

लक्ष-लक्ष पुरुषों का मुख नित
विनत, तथा गर्वोन्नत भाल।
लक्ष-लक्ष ललना-समूह का
दिखलाता निज छटा रसाल।

रुष्ट मुखश्री लख ललना की,
पुरुष दूर रहता उससे,
फिर विरुद्ध उसके सतीत्व के
बात नहीं कहता उससे।

बहिन, बचाया होगा तुमने
निज सतीत्व, यह है निश्चय,
उत्सुक हूँ उपाय सुनने को,
अगली बातों से न सभय।

केवल परम विवश हो करके
खोती है सतीत्व ललना,
और उसे परवश करते हैं
नर का बल, नर की छलना।

बहिन कहूँगी फिर मैं तुमसे
अब अपना आगे का हाल,
गणिकाएँ जब कुछ न कर सकीं,
हुए क्रोध से वे विकराल !

आए एक दिवस वे मेरे
पास किए निज लोचन लाल,
कहा—"नहीं मानेगी यों तो
बुरा करूँगा तेरा हाल।

बँधवा कर दासों से तुझको
इच्छा पूर्ण करूँगा मैं,
तेरे इस सारे घमण्ड को
पल में चूर्ण करूँगा मैं।"

मुझे क्रोध आ गया, न बोली
मैं सुन कर ऐसी बातें,
किन्तु बहुत डरती थी मन में
लख-लख कर ऐसी घातें।

और क्रुद्ध वे हुए देख कर
धारण मुझे किए यों मौन,
क्रोध-पात्र को मौन देख कर
अधिक न क्रोधित होगा कौन ?

चले गए वे शीघ्र वहाँ से,
लाए एक मनुज विकराल,
जो शिर से पद तक काला था,
जिसके दृग थे भयंकर लाल।

इसी बीच में वह दासी
दे गई छुरी थी एक मुझे,
अब तो शुचि जीवन रखने की
हुई और भी टेक मुझे।

उसे देख कर हुई भयङ्कर
बाघिन सी मैं तो विकराल,
कहा—"चला जा शीघ्र यहाँ से,
लाया तुझको तेरा काल,

छुरी ज़हर से बुझी हुई है
यदि छू जावेगी तन से,
शीघ्र हाथ धोवेगा तो तू
अपने कलुषित जीवन से।"

सहम गया वह, छिपी हुई
दासी ने उस पर किया प्रहार,
चिल्ला कर वह गिरा, वृद्ध
लख सके न वह प्रहार-व्यापार।

चकित हुए वे, हुई बात क्या?
मैं हँस कर उनसे बोली,
मानों उनके मृदु कानों में
कोई कटु बूटी घोली—

"दवा करो इसकी जाकर तुम,
फिर न इस तरह से आना,
प्राण तुम्हारे छोड़ रही हूँ,
भूल बात यह मत जाना।"

पत्र-संख्या २७

[पत्र बाल-विधवा की ओर से वृद्ध-पत्नी को]

बहिन,

किया जो कुछ था तुमने
वह था वीरों के उपयुक्त,
वह प्रहार दासी का निश्चय
था छल-धीरों के उपयुक्त।

तुम दोनों का यह छल तो अति—
पावन अति सुन्दर छल था,
बलि है उस पर निश्छलता,
वह निर्मलता से निर्मल था।

विपत्काल में अबला का तो
छल सब से भारी बल है,
जो न बना छल उसके हित तो
क्यों वह ऐसी निर्बल है?

फिर वह उत्तर अन्त्य तुम्हारा
धैर्यपूर्ण था—सुन्दर था,
बस यह है आश्चर्य कि
बुड्ढे पर क्यों नहीं चला कर था?

छोड़ दिया था तुमने उसको
ज्यों छोड़े सिंहनी शृगाल,
चला गया होगा वह अपना
सा मुँह ले, कर नीचा भाल!

दुष्टों की दुश्चेष्टाओं का
यों न मिल रहा है उत्तर,
इसीलिए यह सब जगती है
गई आज पापों से भर।

स्त्री का निज-पावनता-रक्षा
कर लेना ही श्रेय परम,
चाहे जिन विधियों से हो वह—
उत्तम अथवा निन्द्य चरम।

जो बत्ती की देह जलाने
से ही होवे तिमिर-विनाश,
उसे जलाना ही समुचित है,
क्योंकि ध्येय है प्राप्ति-प्रकाश।

मैं यह कहती हूँ कि जिन्होंने
किया तुम्हारा ब्याह-विधान,
उनका भी था दण्ड मृत्यु ही,
उपद्रवी थे वही प्रधान।

बहिन सुनाती हूँ फिर तुमको
अपना कुछ आगे का हाल,
नहीं जानती थी मैं, मेरे
लिए बिछ रहा है क्या जाल।

जब भोजन कर चुकी, कहा उसने
कि—"चलो तुम मेरे साथ",
चली साथ मैं, बड़े प्यार से
पकड़ा उसने मेरा हाथ।

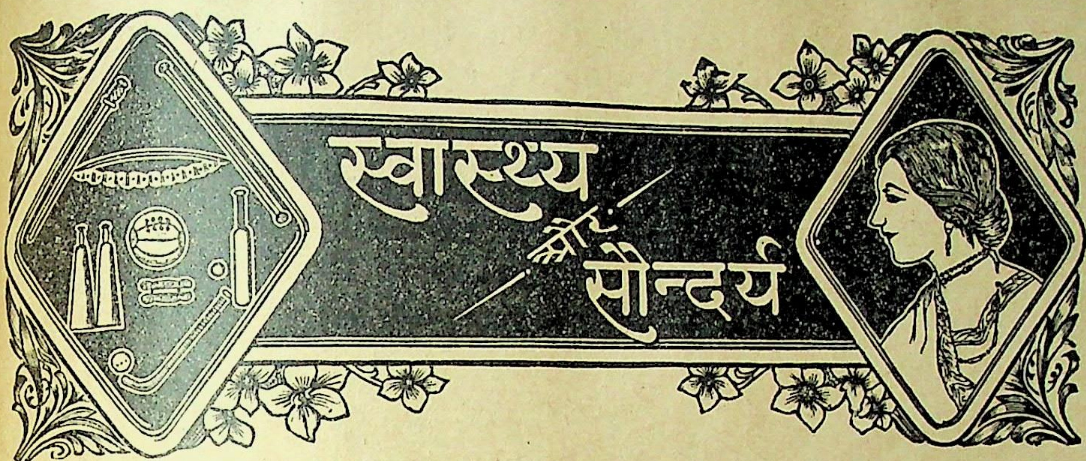
एक झोपड़ी में ले जाकर
उसने मुझको ठहराया,
मैंने उसमें एक ओर यक
गद्देदार पलँग पाया।

"बैठो-लेटो इसी पलँग पर",
बोला बन गम्भीर फकीर,
कुछ शङ्का तब मुझे हो गई
भर आया नयनों में नीर।

चला गया वह बाहर, बाहर
आहट मिलती थी जन की,
उसको सुन-सुन करके सहमी,
दशा विचित्र हुई मन की।

चली गई मैं पास द्वार के,
सुनने उनकी बात लगी—
"फन्दे में आई है अब, थी
बहुत दिनों से घात लगी।

एक हज़ार रुपया लूँगा,
उसे तुम्हें मैं तब दूँगा,
पर पहले तो एक बार मैं
उसका मज़ा उठा लूँगा"



[श्रीमती किरणबाला दत्त]

नारी-स्वास्थ्य

अगर पूछा जाय कि गार्हस्थ्य जीवन में सच्चा सुख और आनन्द देने वाला कौन है? तो इस प्रश्न का उत्तर यही होगा—"नारी-जाति"।

यथार्थ ही में, गार्हस्थ्य जीवन नारी-जाति पर अवलम्बित है। जिस गृह में नारी नहीं, वहाँ लक्ष्मी कहाँ? जहाँ लक्ष्मी नहीं, वहाँ सुख और आनन्द कहाँ? अतः शास्त्र ने नारी ही को "गृहलक्ष्मी" कह कर पुकारा है।

जिस नारी-जाति पर गृहस्थ का सम्पूर्ण भार है, उस जाति की ओर दृष्टिपात करने से प्रश्न उठने लगता है—आज उनकी देह इतनी दुर्बल क्यों है? आज वे इतनी शक्तिहीन क्यों हैं? आज वे इतनी ज्योतिहीन क्यों हैं?

आजकल पुरुष तो अपनी उन्नति के लिए नाना मार्ग खोज रहे हैं; किन्तु बेचारी स्त्रियाँ चुपचाप बैठी ताक रही हैं। अपनी उन्नति की उन्हें ज़रा भी फ़िकर नहीं। अगर देखा जाय तो प्रजा-सृष्टि की एकमात्र आधार स्त्रियाँ ही हैं।

आज भारत-सन्तान इतनी निर्बल और इतनी अल्पायु क्यों है? क्यों आज हिन्दू-जाति का नाश होने का एक विशेष कारण है? क्यों दुराचारी लोग स्त्रियों को अबला जान उन पर अत्याचार कर रहे हैं? अगर हम इस दुर्दशा के प्रति एक बार विचार करते हैं, तो हमारे अन्तःकरण से बुलन्द आवाज़ उठती है—अवरोध! अवरोध!! अवरोध!!! सचमुच में यही नारी-जाति की दुर्दशा का मूल है।

पुरुषों ने हमारी सारी आत्म-शक्ति अवरोध में रख कर नाश कर दी, पर तो भी हम स्त्रियाँ उस नाशकारी अवरोध में रहना अपना सम्मान और मर्याद समझती हैं। क्या हम असुरों को नाश करने वाली, सिंहवाहिनी, असुरदलनी महाशक्ति का नाम भूल गईं? हम लोग उन्हीं महीयसी और गरीयसी आर्य-नारियों की सन्तान हैं।

राजपूताने की वीराङ्गनाओं के अपूर्व वीरत्व की कथाओं को पढ़ कर आज भी बड़े-बड़े पुरुषों के अन्तःकरण में उनके प्रति श्रद्धा और भक्ति उत्पन्न होती है।

भारत की वह वीर-ललना, झाँसी की रानी, लक्ष्मीबाई की पवित्र कथा स्मरण करो, जिसने अपनी जन्म-भूमि की मर्याद रख कर स्वदेश-भक्ति और स्वदेश-प्रेम का पाठ पढ़ाया था। अहा हा! कैसा उनका स्वदेश-प्रेम था! कैसी उनकी स्वदेश-भक्ति थी!! लेकिन आज वही भारत की सन्तान हम स्त्रियाँ हैं, जिनमें न वह वीरता है, न वह जोश।

आजकल तो हमारी माताएँ, कन्याएँ और बहिनें इतनी सुकुमारियाँ बन गई हैं कि ज़रा-सा दुःख आते ही व्याकुल होने लगती हैं। न अब उनमें धैर्य रखने की शक्ति है, न साहस रखने की। तब भला इनकी सन्तान में वह प्राचीन शक्ति कहाँ से उत्पन्न होगी?

सीता, सावित्री, दमयन्ती, द्रौपदी आदि की ओर नज़र डालो, तो देखोगी कि वे भी हम लोगों से लाखों

गुना सुकुमारियाँ थीं। वे लोग राजकुमारियाँ होने पर भी सहिष्णुता की प्रतिमाएँ थीं, और अपार दुःख की कुछ भी परवाह न करती थीं। धर्म-रक्षार्थ आनन्द-चित्त हो, छाया की भाँति वे पतियों की अनुगामिनी हुई थीं। कभी अपनी व्याकुलता से उन्हें वनवास में किसी प्रकार का दुःख नहीं दिया; बल्कि विपद के समय में अटल होकर पुरुषों का साहस बढ़ाया था। अपने कर्त्तव्य-पालन में ज़रा भी त्रुटि नहीं की। आजकल की स्त्रियाँ अपने



श्री० विडमन ए० भुवाराहम

आप एक टैमिल छात्र हैं, जिनकी प्रतिभा से प्रसन्न होकर मद्रास विश्वविद्यालय ने आपको १,०००) रु० की थैली भेंट की है।

को भाग्यहीना कहती हैं और दुःख की दीर्घ स्वास खींचा करती हैं।

भगवान की सृष्टि में पुरुष और स्त्री का अधिकार बराबर है। दोनों का पलड़ा बराबर होना चाहिए। जहाँ दोनों का पलड़ा सम है, वहाँ देश की उन्नति है। केवल भारत ही एक अभागा देश है, जहाँ स्त्रियों का पलड़ा हल्का है। फलतः आज भारत की यह दुर्दशा है। जब लों स्त्री-पुरुष का पलड़ा बराबर न होगा, तब तक भारत की मुक्ति कहाँ? स्त्रियों का पलड़ा कम होने की वजह से ही उनमें शारीरिक दुर्बलता है।

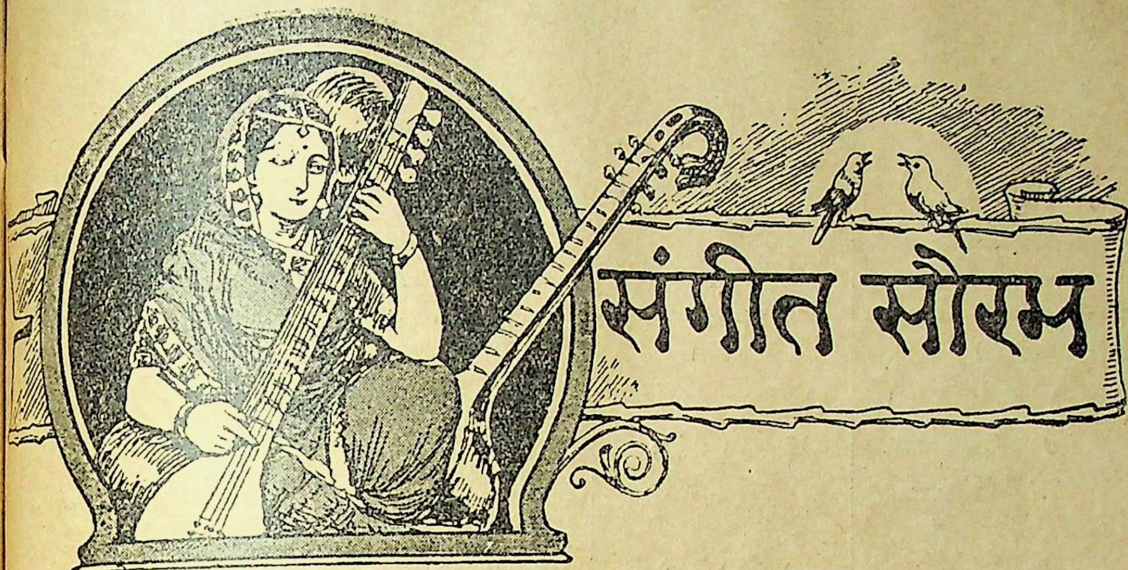
अवरोध प्रथा ने भारत की स्त्रियों को इतना दुर्बल बना दिया है कि वे अपनी आत्म-रक्षा तक नहीं कर सकतीं। बङ्गाल में इस प्रथा का आधिक्य है, अतः वहाँ मूर्ख मुसलमान गुण्डों का अत्याचार स्त्रियों पर अधिक सुना जाता है। आत्म-रक्षा ही इस अत्याचार से बचने का उपाय है।

भगवान ने केवल पुरुषों के लिए ही शुद्ध वायु, शुद्ध जल और मुक्त प्रकाश नहीं दिए हैं; बल्कि ये सब चीज़ें स्त्रियों के लिए भी उतना ही आवश्यक हैं जितना कि पुरुषों के लिए। क्योंकि पहिले यह कह चुके हैं कि भगवान की सृष्टि में दोनों का बराबर अधिकार है। तब यह घोर अन्याय है कि पुरुष खुले तौर से चल-फिर कर शुद्ध वायु, शुद्ध जल और खुला प्रकाश लेता है और स्त्रियाँ इनके न पाने की वजह से अपना शरीर नष्ट कर रही हैं। अवरोध में रहते-रहते वे रोगों से ग्रसित हो गई हैं। और हर साल सैकड़ों नवयुवतियाँ अनेक भयानक रोगों से काल-कवलित हो रही हैं।

जिस राष्ट्र की नारियाँ इतनी कमज़ोर हैं, भला उसकी सन्तान अपने देश की रक्षा कहाँ तक करेगी? भारत के वीर—राम, कृष्ण, हनुमान, भीष्म, अर्जुन, शिवाजी, पृथ्वीराज आदि—वीर-प्रसविनी माताओं की कोख से ही जन्म लिए थे। जब तक माता स्वस्थ न होगी, तब तक उनकी सन्तान हरगिज़ स्वस्थ न होगी।

अतः बहिनो! अब हमें स्वावलम्बी और साहसी बनने की ज़रूरत है। अवरोध की ज़ञ्जीर को तोड़ कर शारीरिक शक्ति बढ़ावें। स्वास्थ्य पर ध्यान दें तथा उसे प्राप्त करने के लिए शारीरिक व्यायाम सीखें।

आज चीन, जापान, तुर्की आदि की स्त्रियाँ हमारी तरह दुर्बल अबला नहीं हैं। हम सबला बनें और अपनी कन्याओं को सबल बनावें, तभी देश की उन्नति होगी। हमें अब संसार में कुछ कर दिखाना चाहिए। अपनी आत्म-शक्ति को पहिचानना चाहिए। इसी से स्त्रियों में जाग्रति होगी और पुरुषों का भी लाभ होगा; क्योंकि पुरुषों की शक्ति स्त्री ही है।



[सम्पादक—श्री० किरणकुमार मुखोपाध्याय (नीलू बाबू)]

भूपाली

(ताल-रूपक ७ मात्रा)

[शब्दकार तथा स्वरकार—श्री० केदारनाथ जी 'बेकल' बी० ए०, एल-टी०]

रे मन राम से कर प्रीत।

१

करत भोग विलास में नर
व्यर्थ वयस व्यतीत,
बन्धु बैरी, जगत सपना,
वोहि साँचा मीत।

२

विषय चौसर खेल चातुर
समय है विपरीत,
राम-पासे फेंक पल छिन,
लोक तीनों जीत।

३

अमर जीव सदा है 'बेकल'
हो न तू भयभीत,
जन्म-मरण को फन्द काटत
राम-नाम पुनीत।

स्थायी

धिन् २	नक्	धिन् ३	नक्	तिन् ×	तिन्	नक्
सं	—	ध	प	ग	र	ग
रे	—	म	न	रा	—	म
स	—	र	ग	प	—	प
से	—	क	र	प्रो	—	त
गप	धसं	ध	प			
रे—	——	म	न			

अन्तरा

२		३		×		
				प क	ग र	ग त
प भो	— —	ध ग	प वि	०स ला	— —	०स स
०स में	— —	०स न	०स र	०स व्य	ध —	ध र्थ
०स व	०स य	०र स	०स व्य	०ग ती	०र —	०स —
ध —	प —	ध —	* — त	प ब	ग —	ग न्धु
प वै	— —	ध री	प —	०स ज	०स ग	०स त
०स स	०र प	०स ना	— —	०ग वो	०र —	०ग हि
०ध साँ	०ग —	०र चा	०स —	ध मी	प —	ध त

शेष अन्तरे भी इसी प्रकार बजाए जाएँगे।

राग-विवरण—कल्याण ठाठ का औड़व राग—मध्यम और निषाद वर्जित ग वादी और ध सम्वादी—रात के पहले पहर में गाया जाता है।

दोहा—आरोही अवरोहि में सुर म नि कीन्हे त्याग।
ध ग सम्वादी वादि तें कहो भूपाली राग॥

—रागचन्द्रिकासार



अजी सम्पादक जी महाराज,

जय राम जी की !

मि० चर्चिल की स्पीच पढ़ कर तो जी ख़ुश हो गया। क्या बेलाग बातें कही हैं। कहने वाला हो तो कम से कम ऐसा तो हो। आख़िर बेचारे क्या करें? तबीयत ही तो है, क़ाबू में न रही। परन्तु इसमें बहुत बड़ा सन्देह नहीं है कि उन्होंने यह बातें जान-बूझ कर नहीं कहीं। जान पड़ता है उस दिन ज़्यादा ढाल गए होंगे। मुफ़्त की जब मिलती है तब ज़्यादा ढल ही जाती है। और जब ज़्यादा ढल जाती है तो आदमी राजा हरिश्चन्द्र का एक बहुत ही सस्ता संस्करण बन जाता है। उस समय यही जी में आता है कि "क्या परवाह है! हमारा कोई क्या कर लेगा? हम तो साफ़ ही साफ़ कहेंगे, चाहे किसी को बुरा लगे या भला।" अब वलायती अख़बार तथा राजनीतिज्ञ बिगड़ रहे हैं कि—"चर्चिल बड़े ख़राब आदमी हैं, जो ऐसी बातें कहते हैं। उनकी बात का कोई मूल्य नहीं है—इत्यादि-इत्यादि।" अपने राम का भी यही ख़याल है कि चर्चिल साहब बड़े वैसे आदमी हैं, उन्हें ज़रा समझ नहीं है। भाइयो, आप लोग उनके कहने का कुछ बुरा मत मानिए—वह तो यों ही बका करते हैं। उनका स्वभाव ही कुछ नटखटपन का है। छप्पन वर्ष के होने आए, परन्तु उनका लौण्डापन नहीं गया। यह नहीं देखते कि कौन बात किस समय कहना चाहिए और किस समय नहीं कहना चाहिए। ऊँट की तरह से मुँह उठाया और बलबलाने लगे। यह माना कि नशे में कह गए; परन्तु ऐसा नशा किस काम का जिससे कि अपनी पोल खुले। ऐसी बातें कहीं यों कही जाती हैं। वह तो कहिए यही ख़ैरियत है कि हिन्दुस्तानी बेचारे बड़े भोले हैं—लीपापोती को मान लेते हैं, नहीं तो बड़ा गड़बड़ हो जाय। बस आज से यह नियम कर दिया जाय कि जब कभी वह किसी सभा-सोसायटी में जायँ तो जब तक वह अपना भाषण न देलें तब तक उन्हें बोतल की झलक न दिखाई जाय। अजी जनाब उनका क्या बिगड़ेगा? वह तो यह कह कर अलग हो जायँगे कि भाई माफ़ करो, नशे में मुँह से निकल गया; परन्तु ब्रिटिश सरकार का तो सब भण्डा-फोड़ हो जायगा। यदि राउण्ड-टेबुल कॉन्फ़्रेन्स के प्रतिनिधि बिगड़ कर चल देते तो जनाब, नाक कट जाती या नहीं? सारा करा-धरा चौपट हो जाता। यह तो लोग जानते ही हैं कि देना-लेना क्या, मुहब्बत अजब चीज़ है, परन्तु जो गुड़ दिए मरे उसे ज़हर क्यों दिया जाय? अपने मुँह से यह क्यों कहा जाय कि कुछ नहीं मिलेगा, हवा खाओ। ऐसा कहने में ख़राबी है। और मि० चर्चिल, आपके भाषण की कटु आलोचना की जायगी—आपको बुरा-भला कहा जायगा; परन्तु आप बुरा मत मानिएगा, सुन कर सोंठ हो जाइएगा। इस समय ऐसा ही मौक़ा है। ऐसा न हो कि फिर बलबलाने लगो, समझे? ख़ैर, अब तो जो होना था हो गया; परन्तु भविष्य में ज़रा ध्यान रखना।

और एक हिसाब से मि० चर्चिल ने कुछ बेजा भी नहीं किया। यह तो होना ही चाहिए कि एक तमाचा रसीद करे और दूसरा सोहरा दे। काम इसी तरह से होता है। सब मारते ख़ाँ ही हो जायँ तब भी ठीक नहीं और सब दयालु बन जायँ तब भी बुरा है। इसलिए यही ठीक है कि कुछ लोग तो यह आशा दिखाते रहें कि वाह! यह क्या बात है, सब कुछ दिया जायगा, आप लोग घबराते क्यों हैं? और दो-एक यह कहते रहें कि यह सब ढकोसला है—कानी कौड़ी भी नहीं दी जायगी। इससे यह लाभ होगा कि समय पर जिस ओर उचित समझा जायगा उस ओर का पक्ष लिया जायगा। और फिर इससे यह लाभ भी तो है कि जब याचक लोग यह देखेंगे कि यहाँ से तो कुछ भी मिलने की आशा नहीं तो वे जो कुछ थोड़ा-बहुत मिलेगा, उसी को ग़नीमत समझ कर सन्तोष कर लेंगे। यदि घर भर दाता बन जाय तो जनाब, याचक लोग घर खोद ले जायँ, और फिर भी सन्तुष्ट न हों। इसी दातापन की बदौलत राजा हरिश्चन्द्र को यार लोगों ने बेच खाया था। इससे यही नीति ठीक है कि कुछ दाता बने रहें और कुछ सूम! मि० चर्चिल, आपने बहुत अच्छा किया जो ऐसी स्पीच दे डाली। परन्तु अब कुछ दिनों ख़ामोश रहिए, कुछ दिन बाद फिर एक फुलझड़ी छोड़ देना। लेकिन इस बार जो स्पीच देना वह ज़रा सोच-समझ कर देना। पिछली स्पीच वैसे तो अच्छी रही, परन्तु उसमें दो-चार बातें आप बौड़मपन की कह गए हैं। जैसे आपने यह बक डाला कि गाँधीवाद को कुचल डालना चाहिए, नेताओं को निर्वासित कर देना चाहिए था, गाँधी जी को क़ानून तोड़ने के समय तुरन्त ही गिरफ़्तार कर लेना चाहिए था। ब्रिटिश सरकार को दिखा देना चाहिए कि वह कितनी शक्तिशाली है, इत्यादि-इत्यादि! ये बातें कहने योग्य नहीं थीं। इससे हिन्दुस्तानी और ज़्यादा भड़क जायँगे। क्या आपको नहीं मालूम कि आज प्रत्येक देश में कुछ ऐसे लोग मौजूद हैं, जो गाँधी जी को संसार का महापुरुष समझते हैं। यह माना कि वे बिलकुल अहमक़ हैं, परन्तु भाईजान, वे साधारण आदमी नहीं हैं—वे सब आपकी ही तरह स्वतन्त्र तथा शक्तिशाली हैं—आप लोग उनको नाराज़ करने का साहस नहीं कर सकते। इससे उन लोगों में भी आप लोगों के प्रति विरोध-भावना उत्पन्न हो जायगी। एक तो आपके दिन वैसे ही ख़राब हैं—तमाम ज़माना दुश्मन हो रहा है, आपके पाले-पोसे बच्चे तक बग़ावत पर कमर बाँध रहे हैं; इस पर आप ऐसी बातें कहते हैं जो और भी नाराज़ी फैलावे। यह समय अदावत बढ़ाने का नहीं है। हिन्दुस्तान से इस समय सबको सहानुभूति है। इसलिए आप अपनी शक्ति को ज़रा समझ-बूझ कर ख़र्च कीजिए। यह तो अपने राम को अच्छी तरह पता है कि आप बड़े शक्तिशाली हैं। आप चाहें तो हिन्दुस्तान को भारत-महासागर में डुबो सकते हैं; परन्तु आपकी शक्ति में थोड़ा पिलपिलापन यह है कि हिन्दुस्तान को नष्ट-भ्रष्ट करने में आपके लिए साठों दण्ड एकादशी हो जायगी। आपकी जाति के अनाथ, आवारा और ऐसे नवयुवक, जिनके न बाप का पता, न माँ का ठिकाना, और जो हिन्दुस्तान की बदौलत चैन की बंसी बजाते हैं, इङ्गलैण्ड में धँधे रहने के कारण चूहों और खटमलों की तरह आपके आराम में ख़लल डालेंगे। कनाडा और ऑस्ट्रेलिया ये दो आपके कमाऊ पूत हैं—यह हमने माना, परन्तु आपकी बदक़िस्मती और कलिकाल के प्रभाव से दोनों बज्र नालायक़ और हरामी निकले। आपके चलते हाथ-पैरों जब ये दूर से अँगूठा दिखाते हैं, तो बुढ़ौती में क्या काम आएँगे। इसके अतिरिक्त आप यदि हिन्दुस्तान को तबाह कर डालेंगे तो अमेरिका, जापान, रूस इत्यादि को आपके साथ धौल-धप्पा करने का मौक़ा मिल जायगा; क्योंकि आपकी घुटी चाँद देख-देख कर अक्सर इन लोगों का हाथ खुजलाया करता है; मगर क्या करें, मौक़ा न मिलने से मजबूर होकर रह जाते हैं। फिर, हिन्दुस्तानी कमबख़्त भी मार खाने में आशातीत मज़बूत साबित हुए। तादाद भी कम्बख़्तों की इतनी ज़्यादह है कि इन्हें मारते-मारते आपको फ़ालिज़ मार जायगा और इनका अन्त न होगा। इसलिए भाई साहब, ग़ुस्से को थूक डालिए। एक बात और कीजिए—कुछ दिनों के लिए बोतल चढ़ाना बन्द कर दीजिए—ठण्डा पानी पिया कीजिए। बोतल ग़ुस्से को बढ़ाती है, ठण्डा पानी शान्त करता है। ऐसा ग़ुस्सा, जिससे अपनी ही जान पर बवाल हो, बुरा है। हाँ, ज़रा यह तो बताइए कि आपने यह क्या बक डाला कि चौबीस हज़ार कॉङ्ग्रेसवादी जेलों में बन्द हैं। बूढ़े हो

गए, मगर अक़िल न आई। इतनी लम्बी तादाद बताने की क्या ज़रूरत थी? अधिक से अधिक दस-पन्द्रह हज़ार बताते। सच बोलने का माद्दा आप में कुछ आवश्यकता से अधिक है। आपने शायद भारत-मन्त्री मि० बेन की बात को सच मान लिया। मि० बेन तो हिन्दुस्तानियों से मिले हुए हैं, वह ऐसी ही बात कहेंगे जिससे हिन्दुस्तानियों का हित हो। आप जैसे पुराने घाघ भी उनके चकमे में आ गए। मि० बेन की बात का तो किसी को विश्वास नहीं हुआ था; क्योंकि वह हिन्दुस्तान के लाभ के लिए बात को बढ़ा कर ही कहते हैं—परन्तु आपकी बात को सब ब्रह्म-वाक्य मानते हैं। जब आपने उनके कथन पर अपनी मुहर लगा दी तो वह बात पक्की हो गई। आप जानते हैं कि इस बात का क्या प्रभाव पड़ेगा? इतनी लम्बी तादाद सुन कर आपके जाति-भाइयों तथा अन्य देश के लोगों का हार्ट फ़ेल होने लगेगा। वे तो इस तादाद को सुन कर सहम जायँगे। भला कुछ ठिकाना है—चौबीस हज़ार आदमी जेलों में बन्द हैं! आपने किया बड़ा लौण्डापन; मगर ख़ैर अब तो जो होना था हो गया। भविष्य में किसी स्पीच में इसका सुधार इस प्रकार कर दीजिएगा कि चौबीस हज़ार में से बीस हज़ार माफ़ी माँग कर छूट गए हैं और केवल चार हज़ार रह गए हैं। यह काम याद करके कीजिएगा, भूल न जाइएगा। चार-पाँच हज़ार की तादाद सुन कर कोई न चौंकेगा। इतने आदमी तो जेल आया-जाया ही करते हैं, यह एक साधारण बात है। परन्तु चौबीस हज़ार!!! ओफ़-ओह! ज़रा ठहर जाइए, एक गिलास ठण्डा पानी पी लूँ तो फिर कुछ कहूँ। यह तादाद सुन कर तो अपने राम का गला भी ख़ुश्क हो गया। हालाँकि यहाँ हिन्दुस्तानी कमबख़्त साठ-सत्तर हज़ार की गिनती गिनाते हैं, परन्तु अपने राम को उनकी बात पर कभी विश्वास नहीं हुआ; क्योंकि अपने राम को यह अच्छी तरह मालूम है कि हिन्दुस्तानी परले सिरे के गप्पी होते हैं। और यह भी बड़ी अच्छी बात है कि भारत-सरकार हिन्दुस्तान की गप्पें बाहर जाने नहीं देती, अन्यथा साठ-सत्तर हज़ार की तादाद सुन कर तो इङ्गलैण्ड का एक कोना समुद्र में डूब जाता। हाँ, नेताओं के निर्वासित करने की सलाह जो आपने दी है, उसके लिए आप अधिक चिन्ता मत कीजिए। नेता लोग सब जेलों में निर्वासित हैं और जो उन नेताओं का स्थान ले सकते थे, उन लोगों को भारत-सरकार ने कॉन्फ़्रेन्स के बहाने निर्वासित करके इङ्गलैण्ड भेज दिया। अब यह आपका काम है कि आप ऐसा प्रबन्ध करें कि वे जल्दी हिन्दुस्तान न लौटने पावें। उनको लौटने देने में हर प्रकार से ख़तरा है। यदि स्वराज्य लेकर लौटे तब भी आपकी शामत है, और यदि ख़ाली हाथ लौटे तब भी आपकी ख़राबी हैं; क्योंकि खिसियाया हुआ आदमी क्या नहीं करता। इसलिए अपने राम की सलाह तो यह है कि आप उन्हें दो-चार बरस वहीं बन्द रखिए—तब तक यहाँ सब मामला ठण्ढ़स हो जायगा। परन्तु आप जैसी बातें करते हैं, उससे यह भय है कि कहीं ये लोग रस्सियाँ तुड़ा कर थान की तरफ़ न भागें। इससे भाई जी, अपने राम की अन्तिम प्रार्थना या सलाह (जो कुछ आपकी खोपड़ी शरीफ़ा में आवे समझ लें) मान कर ज़रा अपनी चोंच सम्हाल कर खोला कीजिए।

सम्पादक जी, कृपया मेरा उपर्युक्त सन्देश मि० चर्चिल तक पहुँचाने की चेष्टा कीजिएगा। हालाँकि सन्देश में कही हुई बातें आपको विष-समान प्रतीत होंगी; क्योंकि आप भी ठेठ हिन्दुस्तानी हैं।

भवदीय,

—विजयानन्द (दुबे जी)



१५,००) रु० का आदर्श गुप्त दान

१००० निर्धन स्त्री-पुरुषों को 'चाँद' ६॥) रु० की जगह ५) रु० में साल भर दिया जायगा

५०० निर्धन स्त्री-पुरुषों को 'भविष्य' ९) रु० की जगह ७) रु० में साल भर दिया जायगा

शपथपूर्वक केवल निर्धन स्त्री-पुरुष ही इस रियायत से लाभ उठावें

एक सुप्रसिद्ध दानी सज्जन ने, जिन्हें इस संस्था से अपार प्रेम है, हमारे पास १५,००) रु० इसलिए भेजे हैं, कि इनसे ऐसे व्यक्तियों को 'चाँद' तथा 'भविष्य' रियायती मूल्य पर दिए जावें, जो इच्छा रखते हुए भी, अपनी निर्धनता के कारण पूरा चन्दा नहीं दे सकते। इस दान से प्रोत्साहित होकर संस्था ने भी—केवल प्रचार की दृष्टि से इस मद में १,०००) रु० की रियायत करना निश्चय किया है, अतएव १,००० निर्धन स्त्री-पुरुषों को ६॥) रु० के स्थान पर ५) रु० में ही साल भर तक (छः मास के लिए 'चाँद' रियायती मूल्य पर जारी नहीं किया जायगा, इसे स्मरण रक्खें) 'चाँद' जारी कर दिया जायगा।

इसी प्रकार ९) रु० के स्थान पर ७) रु० में ही ५०० निर्धन ग्राहकों के नाम साल भर तक 'भविष्य' भी जारी करने का निश्चय किया गया है (जो लोग छः मास के लिए मँगाना चाहें, उन्हें ४) रु० देना होगा, इसे स्मरण रक्खें)

देशवासियों से प्रार्थना है, कि परमात्मा को साक्षी देकर इस दान से केवल ऐसे भाई-बहिन ही लाभ उठावें, जो वास्तव में पूरा चन्दा देने में असमर्थ हों, नहीं तो अनेक निर्धन व्यक्तियों की हक़तलफ़ी होगी, एकमात्र जिनके लिए यह त्याग किया गया है।

रियायती मूल्य में 'चाँद' अथवा 'भविष्य' मँगाने वालों को अपना चन्दा मनीऑर्डर द्वारा भेजना चाहिए

वी० पी० नहीं भेजी जायगी

व्यवस्थापक 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

Regd. No. A—1154

Prnited aud Published by Mr. R. SAIGAL—Editor—at the Fine Art Printing Cottage 28, Edmonstone Road Chandralok, Allahabad.

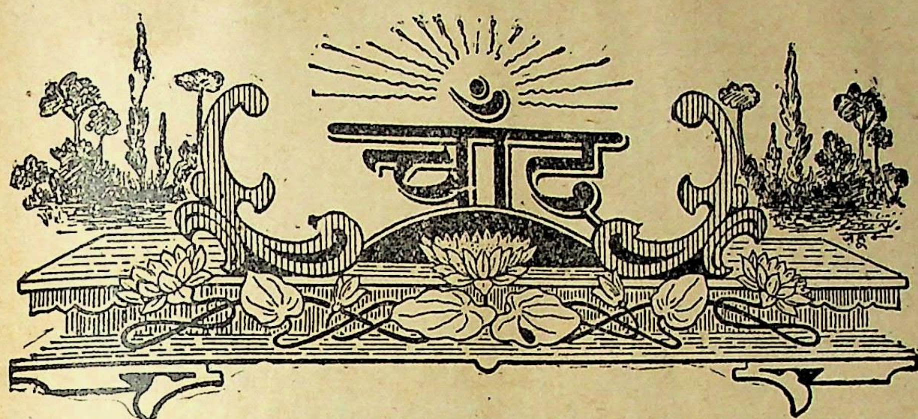
विभूति-श्रृङ्गार

रूप-राशि की दो विभूतियों का जब नव श्रृङ्गार हुआ !
हाथ, हाथ का हार हुआ था, हृदय, हृदय का प्यार हुआ !!

—कुमार



[चित्रकार श्री० ए० आर० चग़ताई]



आध्यात्मिक स्वराज्य हमारा ध्येय, सत्य हमारा साधन और प्रेम हमारी प्रणाली है। जब तक इस पावन अनुष्ठान में हम अविचल हैं, तब तक हमें इसका भय नहीं, कि हमारे विरोधियों की संख्या और शक्ति कितनी है।

वर्ष ९ खण्ड १ | अप्रैल, १९३१ | संख्या ६ पूर्ण संख्या १०२

नयन के प्रति

[श्री० आनन्दीप्रसाद जी श्रीवास्तव]

कैसी सुन्दर हर-हर करती
बहती है सरिता की धार,
'हर-हर' नहीं नयन ! यह तो है
बस तुम पर उसका धिक्कार !

करती है वह कार्य निरन्तर,
रक्खे स्वतन्त्रता को हाथ;
हाल तुम्हारा क्या है समझा,
तनिक झुका दो अपना माथ !

रुकी हुई है कलुषित कितनी
भारत की जीवन-धारा,
देखा किए उसे तुम योंही
दोष तुम्हारा है सारा !

नयन ! नदी को देख बहा दो
तुम भी आँसू की नदियाँ,
नहीं अभी हँसने का अवसर
लाई हैं गत दो सदियाँ।

कभी देश की जीवन-धारा
भी स्वतन्त्र होगी इस भाँति ?
तोड़ेगी दुर्धर प्रवाह से
पथ की दृढ़ पर्वत की पाँति ?

हरा-भरा करती जगती को
जाएगी अनन्त के पास?
अपने में करती प्रतिबिम्बित
ब्रह्म-तरणि का गुप्ताभास !

राष्ट्रपति सरदार पटेल का भाषण

बहिनो और भाइयो !

मैं अपने संक्षिप्त भाषण के प्रारम्भ में पण्डित मोतीलाल जी की मृत्यु पर श्रीमती स्वरूपरानी नेहरू, पण्डित जवाहरलाल और अन्य कुटुम्बियों के दुःख में हार्दिक सहानुभूति प्रकट करता हूँ। मैं जानता हूँ, कि समस्त राष्ट्र की सहानुभूति के कारण यह दुःख बहुत कुछ कम हो गया है। देश की इस भीषण परिस्थिति में उनकी मृत्यु होने से उस पर भयङ्कर वज्रपात हुआ है। पण्डित मोतीलाल की सहायता की उस समय सब से अधिक आवश्यकता प्रतीत हुई थी, जब महात्मा गाँधी लॉर्ड इर्विन से सन्धि की बातचीत कर रहे थे। मौलाना मुहम्मद अली की मृत्यु के शोक के अभी हमारे आँसू सूखने भी न पाए थे, कि राष्ट्र पर यह एक नया प्रहार हो गया। यद्यपि दुर्भाग्यवश मौलाना मुहम्मद अली के और हमारे विचारों में मतभेद था, परन्तु हम उनकी वीरता, देश-भक्ति और निर्भीकता को कभी विस्मृत नहीं कर सकते। उन्होंने अपने हार्दिक विचारों को कभी छिपाने का प्रयत्न नहीं किया। मैं बेगम मुहम्मद अली, मौलाना शौकत अली और उनके समस्त कुटुम्ब के साथ अपनी हार्दिक सहानुभूति प्रदर्शित करता हूँ। इन महापुरुषों के अतिरिक्त मैं उन अख्यात वीरों की मृत्यु पर भी समवेदना प्रदर्शित करता हूँ, जिन्होंने गत बारह महीनों में सत्याग्रह आन्दोलन में बिना किसी प्रसिद्धि की इच्छा से आत्म-बलिदान किया है। ईश्वर उनकी आत्माओं को शान्ति दे और उनका वह आत्म-बलिदान इस विकट युद्ध में हमें अधिकाधिक आत्मोत्सर्ग के लिए प्रोत्साहित करे।

विप्लववादियों को फाँसी

सरदार भगतसिंह, श्री० सुखदेव और श्री० राजगुरु की फाँसी से समस्त देश में असन्तोष की आग फैल गई है। मैं उनकी कार्य-पद्धति से सहमत नहीं हो सकता और इसमें सन्देह नहीं कि राजनैतिक हत्या उतनी ही अवाञ्छनीय है, जितनी एक साधारण हत्या। परन्तु सरदार भगतसिंह और उनके साथियों के अनन्य देश-प्रेम, उनके अतुल त्याग, साहस और निर्भीकता की मैं स्तुति किए बिना नहीं रह सकता। एक विदेशी गवर्नमेण्ट की निष्ठुरता का परिचय उतना अधिक और कभी नहीं मिला, जितना इन तीन वीरों को फाँसी पर लटकाते समय। समस्त राष्ट्र ने एक स्वर से उनकी फाँसी का विरोध किया और उनकी फाँसी की सज़ा रद्द करने की प्रार्थना की, परन्तु सब प्रार्थनाएँ निष्ठुरतापूर्वक ठुकरा दी गईं। परन्तु हमें इस फाँसी से आवेश में आकर अपने पथ से भ्रष्ट न हो जाना चाहिए। पशुबल के इस नृशंस प्रदर्शन से हृदयहीन शासन-विधान की ओर हमारी घृणा बढ़ती जा रही है; और यदि हम अपने निश्चित पथ पर आरूढ़ रहेंगे तो उससे हमारी शक्ति की वृद्धि होगी और हमें अपने उद्देश्य की प्राप्ति में भी सफलता प्राप्त होगी। ईश्वर इन वीर देश-भक्तों की आत्माओं को शान्ति दे और उनके कुटुम्बियों को इस बात से सन्तोष मिले, कि समस्त राष्ट्र ने उनकी मृत्यु पर ख़ून के आँसू बहाए हैं।

आत्म-निवेदन

आपने एक सीधे-सादे किसान को जिस प्रतिष्ठित पद पर आरूढ़ किया है, उस पर किसी भी देशभक्त को अभिमान हो सकता है। मैं यह अच्छी तरह से जानता हूँ कि आपने मुझे यह सम्मान एक तुच्छ सेवक की हैसियत से नहीं दिया, बल्कि इस ज़िम्मेदारी को सौंप कर आपने गुजरात के आश्चर्य-जनक बलिदान का स्वागत किया है। गत बारह महीनों में जो अपूर्व राष्ट्रीय जागृति हुई है, उसका श्रेय यद्यपि सभी प्रान्तों को समान रूप से है, परन्तु आपने अपनी उदारता से उसका मुकुट गुजरात को पहिना दिया है। हमें इसके लिए ईश्वर को धन्यवाद देना चाहिए, कि यह राष्ट्रीय जागृति आत्म-शुद्धि के रूप में अवतरित हुई है।

युद्ध के प्राङ्गण में

यद्यपि आन्दोलन में भूलें हुई हैं, परन्तु इसमें किञ्चित सन्देह नहीं, कि भारत ने संसार के सम्मुख इस

बात का ज्वलन्त उदाहरण रख दिया है, कि सार्वजनिक अहिंसात्मक आन्दोलन, न तो केवल मनुष्य की महत्वाकांक्षा है और न स्वप्न; उसका निर्माण ऐसे दृढ़ सिद्धान्तों पर हुआ है, जिनमें मनुष्य मात्र को उन दुःखों से निवारण करने की शक्ति है, जो हिंसात्मक प्रवृत्ति के कारण उत्पन्न हो गए हैं। हमारे अहिंसात्मक आन्दोलन की सफलता का सब से बड़ा सबूत किसानों का सङ्गठन है। लोगों का विश्वास था कि उन्हें अहिंसात्मक युद्ध के लिए सङ्गठित करना कठिन ही नहीं, बल्कि असम्भव है; परन्तु इस युद्ध में उन्होंने जो वीरता दिखाई है वह किसी से छिपी नहीं है। किसानों के अतिरिक्त स्त्रियों और बच्चों ने भी इस युद्ध में बड़ी वीरतापूर्वक भाग लिया है। युद्ध का बिगुल बजते ही वे युद्ध में कूद पड़े और उसमें उन्होंने जो कार्य किया, उसका इस अवसर पर अनुमान लगाना सम्भव नहीं है। परन्तु यह कहना अत्युक्ति न होगा, कि उन्होंने अन्तिम दिनों में युद्ध को सजीव अहिंसात्मक बनाए रखने की बहुत चेष्टा की है। यदि अहिंसा के सिद्धान्तों के अनुसार इस आन्दोलन पर विचार किया जाय, तो हमारा युद्ध विश्व की शान्ति के लिए है और संसार ने—विशेषतः अमेरिका ने—उससे अपनी सहानुभूति प्रदर्शित की है और उस सहानुभूति से हमें सन्तोष और शक्ति मिली है।

कॉङ्ग्रेस और गोलमेज़ परिषद

हाल ही में दिल्ली में जो सन्धि हुई है, उसमें हमें अपने राष्ट्रीय जीवन के इस वीर युग पर अधिक प्रकाश डालने की आवश्यकता नहीं रह जाती। आपकी कार्यकारिणी समिति ने आपकी स्वीकृति की आशा से सन्धि की थी और अब आप उसे स्वीकृत करने के लिए यहाँ एकत्रित हुए हैं। आपको उसे अस्वीकृत करने तथा वर्किङ्ग-कमिटी पर अविश्वास का प्रस्ताव पास करने का अधिकार है। परन्तु मुझे इसमें किञ्चित सन्देह नहीं, कि सन्धि दोनों दलों के हित की कामना से की गई है और आप उसे स्वीकृत करेंगे। यदि हम सन्धि स्वीकार न करते तो वह हमारी भूल होती और हमारे गत एक वर्ष के आत्म-बलिदान का कोई उपयोग न होता। हम सत्याग्रही हैं और उस हैसियत से हमें सदैव सन्धि के लिए तैयार रहना चाहिए। और इसलिए जब हमारे सम्मुख सन्धि का अवसर आया तब हमने गोलमेज़ परिषद में ब्रिटिश प्रतिनिधियों के सम्मुख पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रस्ताव रखने की आशा से तथा प्रधान मन्त्री, वायसराय और कुछ सुप्रसिद्ध भारतीय नेताओं की प्रार्थना से हमारी वर्किङ्ग कमिटी ने इस बात का विचार किया कि यदि कॉङ्ग्रेस को देश के स्वतन्त्र अधिकारों पर ज़ोर देने की स्वतन्त्रता दी जायगी तो निमन्त्रण मिलने पर कॉङ्ग्रेस गोलमेज़ परिषद में भाग लेगी और भारत के लिए उपयुक्त शासन-विधान का निर्णय करेगी। यदि हमें कॉन्फ़्रेन्स में सफलता न मिली, तो अपना पुराना आत्म-बलिदान का मार्ग हमें फिर से ग्रहण करना पड़ेगा। और फिर संसार की कोई शक्ति हमें कलङ्क का टीका न लगा सकेगी। हम अपने इच्छानुसार पूर्ण स्वराज्य लेंगे और फ़ौज, विदेशी नीति, अर्थ-विभाग के पूर्ण अधिकारों पर ज़ोर देंगे और यदि कोई प्रतिबन्ध रहेगा तो वह केवल भारत की हित-कामना के लिए होगा। जब सन्धि के द्वारा शक्ति दूसरे के हाथों में सौंपी जाती है, तब उस दल के हित के लिए प्रतिबन्धों की आवश्यकता होती है। भारत की रूढ़ियों की ग़ुलामी के कारण उसे बाहरी सहायता की आवश्यकता हो गई है। यदि ब्रिटेन हमें सहायता देने के लिए तैयार होगा, तो हम उसे सहर्ष स्वीकार करेंगे। हमें अपनी फ़ौज को दक्ष बनाने की आवश्यकता है और हमें उसमें अङ्गरेज़ों की सहायता लेने में कोई विरोध नहीं है। मैंने उदाहरणार्थ केवल एक का उल्लेख किया है। इस प्रकार फ़ौज में कुछ ब्रिटिश ऑफ़िसर और कुछ ब्रिटिश सैनिक रक्खे जा सकते हैं, परन्तु हम अपनी फ़ौज का शासन अङ्गरेज़ों के हाथों में नहीं सौंप सकते। हम कृतज्ञतापूर्वक उनका उपदेश ग्रहण कर सकते हैं, परन्तु उनका नेतृत्व कभी स्वीकृत नहीं कर सकते। वास्तव में बात यह है कि शान्ति-रक्षा के नाम पर ब्रिटिश फ़ौज भारत पर अपना प्रभुत्व स्थापित रखने के लिए यहाँ रक्खी गई है। स्पष्ट रूप से यह कहा जा सकता है, कि ब्रिटिश फ़ौज यहाँ अतिरिक्त विद्रोह के समय अङ्गरेज़ों के अधिकारों और अङ्गरेज़ स्त्री-पुरुषों की रक्षा के लिए रक्खी गई है। मुझे ऐसी एक भी घटना स्मरण नहीं आती, जहाँ विदेशियों के आक्रमण से भारतीयों की रक्षा के लिए भारतीय फ़ौज का उपयोग किया गया हो। सीमा प्रान्त पर अफ़ग़ानी हमले हुए हैं और ब्रिटिश ऐतिहा-

सिज़ों ने उनसे हमें यह पाठ पढ़ाया है कि वे युद्ध के हमले थे। ब्रिटिश ऐतिहासिज़ों की इस धमकी से हमें भयभीत न हो जाना चाहिए। हमें फ़ौज की आवश्यकता अवश्य है, परन्तु ऐसी फ़ौज की आवश्यकता नहीं, जिसका ख़र्च हमारा रक्त चूस कर चलाया जाता हो। यदि कॉङ्ग्रेस ने अपने अधिकार प्राप्त कर लिए तो फ़ौज में बहुत कमी होने की सम्भावना है।

अर्थ-व्यवस्था

फ़ौज की तरह हम अर्थ-विभाग की व्यवस्था भी ब्रिटिश गवर्नमेण्ट के हाथों में नहीं सौंप सकते। यदि राष्ट्र के हाथों में अर्थ-व्यवस्था नहीं रहेगी तो वह कभी फल-फूल नहीं सकता।

हमसे यह भी कहा जाता है, कि यदि लम्बे-लम्बे वेतन वाले ब्रिटिश सिविल ऑफ़िसर भारत में नियुक्त न किए जायँगे, तो शासन सुसङ्गठित न हो सकेगा और उसका नैतिक पतन भी हो जायगा। कॉङ्ग्रेस ने अपने कुछ ही वर्षों के सङ्गठन में अपने अवैतनिक या कम वेतन वाले कार्यकर्त्ताओं के द्वारा जिस शासन-योग्यता का परिचय दिया है, उससे उनकी योग्यता स्पष्ट हो जाती है। शासन को इस नैतिक पतन से बचाने के लिए हमारे धन का जिस प्रकार अपव्यय किया जाता है, वह ग़रीब जनता के लिए सह्य नहीं है। इसलिए यदि भारत अपना उद्धार करना चाहेगा तो उसे बड़े-बड़े वेतनभोगियों के वेतनों में बहुत न्यूनता करनी पड़ेगी।

राष्ट्रीय ऋण

राष्ट्रीय ऋण के सम्बन्ध में हम पर बहुत से दोष आरोपित किए जाते हैं। ये दोष अन्याय-सङ्गत हैं। हमने ऋण के सम्बन्ध में कभी कोई विरोध नहीं किया। हाँ! हम यह अवश्य चाहते हैं, कि उस ऋण की निरपेक्ष जाँच हो जाय और उससे इस बात का निर्णय कर लिया जाय कि इस देश पर सच्चा ऋण कितना है।

पूर्ण-स्वतन्त्रता

लाहौर कॉङ्ग्रेस स्वतन्त्रता का जो प्रस्ताव पास कर चुकी है, हम उससे एक इञ्च भी पीछे नहीं हट सकते। परन्तु इस स्वतन्त्रता का यह अर्थ नहीं है कि हम ब्रिटेन या किसी अन्य स्वतन्त्र राष्ट्र से सम्बन्ध ही न रक्खें। इसलिए ब्रिटेन और भारत के बीच में समानता का सम्बन्ध रहना कुछ असम्भव नहीं है। हम अपने आपस के लाभ के लिए यह स्थापित कर सकते हैं और अपनी इच्छानुसार उसे भङ्ग भी कर सकते हैं। यदि परस्पर सन्धि से भारत स्वतन्त्रता प्राप्त करेगा तो उसे ब्रिटेन से सम्बन्ध रखना पड़ेगा। मुझे अच्छी तरह मालूम है कि देश में एक ऐसा भी दल है, जो इस बात पर विश्वास करता है कि यदि भारत और ब्रिटेन में सम्बन्ध रहे तो उसकी अवधि निश्चित हो जाना चाहिए। मेरे विचार उस दल से भिन्न हैं। मेरी सम्मति में ऐसा करना हमारी कमज़ोरी की निशानी है।

संयुक्त शासन

भारत के लिए भविष्य में संयुक्त शासन-प्रणाली की रचना करना, इस समय जितना आकर्षक प्रतीत होता है, उसमें उतनी ही अधिक कठिनाइयाँ हैं। राजा-महाराजा अपने शासन की बागडोर ढीली करने के लिए शीघ्र ही तैयार न होंगे; परन्तु यदि वे अपनी प्रजा के लिए शासनाधिकार देने के लिए तैयार हो जायँ तो उससे भारत को बहुत लाभ होगा। उनके सहयोग से भारत में जन-सत्तात्मक शासन-प्रणाली की नींव डालने में कोई बाधा उपस्थित नहीं हो सकती। मुझे आशा है, कि राजा लोग इस शासन-विधान की रचना में रोड़े न अटकाएँगे और उसमें पूर्ण सहयोग देंगे। उनकी जनता को भी उतने ही अधिकार दिए जाने चाहिएँ, जितने बाक़ी भारत के निवासियों को हों। संयुक्त भारत के निवासियों को कुछ समानाधिकार दिए जाने चाहिएँ और यदि उन्हें समानाधिकार हों तो उन अधिकारों की रक्षा के लिए न्यायालय भी एक ही हो। यह कहना अयुक्ति न होगा कि देशी रियासतों के प्रतिनिधियों का संयुक्त असेम्बली में निर्वाचित होना अत्यन्तावश्यक है।

ब्रह्मा की समस्या

गवर्नमेण्ट की ख़बरें रोक लेने की नीति के कारण हमें वहाँ की सच्ची परिस्थिति का हाल मालूम नहीं होने पाता। इस समस्या का निर्णय कि ब्रह्मा भारत के साथ मिल कर रहेगा या अलग—वही स्वयं कर सकता है; परन्तु हमारा यह कर्तव्य है कि हम उसकी समस्या के सब पहलुओं पर विचार करें। ब्रह्मा में दो दल हैं, एक ब्रह्मा को भारत के साथ रखने के पक्ष में है और दूसरा विपक्ष

हैं। और यदि विपक्षी दल को अपनी आवाज़ उठाने का अधिकार है, तो दूसरे दल को भी अपनी आवाज़ उठाने में स्वतन्त्रता देना आवश्यक है। इसलिए कॉङ्ग्रेस को जो यह सन्देश भेजा गया है कि ब्रह्मा को भारत के साथ मिलाए रखने वाले पक्ष को अपनी सम्मति प्रकट करने की स्वतन्त्रता नहीं है, उसका विरोध करना चाहिए। इस सम्बन्ध में जो यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया है, कि ब्रह्मा की समस्या का निराकरण उसकी जनता के ऊपर छोड़ दिया जाय, उससे मैं पूर्णतया सहमत हूँ।

हिन्दू-मुस्लिम एकता

परन्तु अन्य सभी समस्याओं के पहले हिन्दू-मुस्लिम समस्या का सुलझाना अत्यन्तावश्यक है। कॉङ्ग्रेस ने अपनी परिस्थिति लाहौर कॉङ्ग्रेस में बिल्कुल स्पष्ट कर दी थी। इस सम्बन्ध में उसने निम्न प्रस्ताव पास किया था :—

"नेहरू रिपोर्ट का निर्णय अस्वीकृत हो जाने के कारण जातीय मामले में कॉङ्ग्रेस सम्मति देना अनावश्यक समझती है। क्योंकि कॉङ्ग्रेस का विश्वास है कि स्वतन्त्र भारत में यह समस्या राष्ट्रीय ढङ्ग से स्वयं सुलझ जावेगी। परन्तु चूँकि मुसलमान, सिक्खों, और अन्य अल्प-संख्यक जातियों ने नेहरू-रिपोर्ट के निर्णय को अस्वीकृत कर दिया है; इसलिए कॉङ्ग्रेस भारत के भावी विधान में उस समय तक कोई निर्णय स्वीकृत नहीं करेगी, जब तक वे जातियाँ उसे मन्ज़ूर न कर लें।"

इस प्रस्ताव के अनुसार कॉङ्ग्रेस किसी शासन-विधान की रचना में उस समय तक भाग नहीं ले सकती, जब तक इन अल्प-संख्यक जातियों की समस्या न सुलझ जाय। एक हिन्दू की हैसियत से, अपने भूतपूर्व सहयोगियों के निर्णय के अनुसार मैं इन अल्प-संख्यक जातियों को एक काग़ज़ और स्वदेशी फ़ाउण्टेनपेन दूँगा और उस पर उनसे अपनी शर्तें लिखने का आदेश दूँगा; और बिना किसी हिचकिचाहट के उस पर अपने दस्तख़त कर दूँगा। मैं जानता हूँ कि समस्या सुलझाने के लिए यह सब से सरल उपाय है और उसके लिए हिन्दुओं में साहस की आवश्यकता है। वास्तव में हमें काग़ज़ पर अङ्कित एकता की नहीं, बल्कि हार्दिक एकता की आवश्यकता है। और वह हार्दिक एकता उसी समय प्राप्त हो सकती है, जब हिन्दू अपना समस्त साहस एकत्र कर अल्प-संख्यक जातियों को उनकी माँगें समर्पित करने के लिए तैयार हो जायँ। एकता चाहे उपर्युक्त रीति से प्राप्त हो और चाहे किसी अन्य रीति से, परन्तु यह बात दिन प्रति दिन स्पष्ट होती जाती है कि जब तक इस समस्या का निर्णय न हो जाय, तब तक किसी कॉन्फ़्रेन्स में भाग लेना निरर्थक है। कॉन्फ़्रेन्स ब्रिटेन और हमारे बीच में समझौता कर सकती है। वह हमें राजाओं के निकट ला सकती है, परन्तु हम में एकता नहीं ला सकती। यह एकता हमें अपने में स्वयं लानी पड़ेगी। कॉङ्ग्रेस को भी उसका लाभ करने में कोई यत्न न उठा रखना चाहिए।

विदेशी कपड़े का बहिष्कार

यह सब को स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए, कि कॉङ्ग्रेस जितनी शक्ति प्राप्त कर सकेगी उतनी ही पूर्ण स्वराज्य ध्येय की प्राप्ति में उपयोगिनी सिद्ध होगी। गत बारह महीनों में उसने निश्चय ही बहुत शक्ति प्राप्त की है और उसे वे ही समझ सकते हैं, जो समय के साथ चल रहे हैं। परन्तु वह पर्याप्त नहीं है और जल्दबाज़ी और घमण्ड से जल्दी खो भी जा सकती है। जो अपनी पूँजी पर गुज़र करता है वह फ़िज़ूलख़र्च कहा जा सकता है। इसलिए हमको और भी अधिक शक्ति प्राप्त करनी चाहिए। उसे प्राप्त करने का एक उपाय है इस समझौते को अक्षरशः पूरा करना और दूसरा है प्राप्त-शक्ति को दृढ़तापूर्वक अपने में रखना। इसलिए मैं अपने कार्य के उस अङ्ग के विषय में कुछ पंक्तियाँ कहना चाहता हूँ। हम विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार-सम्बन्धी कार्य बहुत-कुछ कर चुके हैं। यह उचित है और हमारा कर्तव्य है। बिना उसके भारतवर्ष की दरिद्र जनता भूखों मरती रहेगी। क्योंकि यदि सस्ता विदेशी कपड़ा भारत के ग्रामों में आता ही रहा, तो चरख़े वालों का रोज़गार नहीं चल सकता। अतएव विदेशी कपड़े को इस देश से निकाल बाहर करना चाहिए। यदि वह मुफ़्त भी मिले, तो भी मँहगा है। भारतवर्ष के लाखों आदमी इसलिए नहीं भूखों मरते कि देश में धन नहीं है, वरन् इसलिए कि उन्हें काम नहीं मिलता, वे इसलिए भूखों मरते हैं कि उनके गाँवों में उनको सरलतापूर्वक फ़सल के बाद कोई काम ही नहीं मिलता। देश को इस बेकारी के रोग से छुड़ाने के लिए लगातार आन्दोलन की आवश्य-

कता है। कोई उपयुक्त काम न होने के कारण बेकारी हमारे ग्राम-निवासियों की रग-रग में समा गई है। इसके लिए सब से अच्छी युक्ति है, अनावश्यक होने पर भी स्वयं चर्ख़ा कातना और खादी पहनना।

भारतीय मिलों का कर्तव्य

अखिल भारतवर्षीय चरख़ा-सङ्घ ने बहुत महत्वपूर्ण काम किया है, परन्तु कातने और खद्दर का वायु-मण्डल पैदा करना कॉङ्ग्रेस का काम है। मेरी समझ में सब से अच्छा और प्रभावशाली बहिष्कार का आन्दोलन है। ऐसा इशारा किया जाता है, कि जो तर्क विदेशी वस्त्र के विषय में लागू होता है, वही स्वदेशी मिल के कपड़े के लिए भी लागू होता है। यह कुछ हद तक ठीक है, परन्तु जितने कपड़े की भारतवर्ष में खपत है, उतना मिलों से नहीं बनता। बहुत वर्षों तक वे हमको उतना कपड़ा देती रहेंगी, जितने की हमें हाथ के कते-बुने कपड़े के अतिरिक्त आवश्यकता होगी। परन्तु यदि वे खद्दर के साथ प्रतिद्वन्दिता करेंगी, यदि उनका माल खद्दर के विरुद्ध अनुचित उपायों से बेचा जायगा, तो वे भी मार्ग-कण्टक ही सिद्ध होंगी। सौभाग्य से बहुत सी मिलें कॉङ्ग्रेस के साथ मिल कर काम कर रही हैं और उनकी वृत्ति देश-भक्तिपूर्ण है। उनके व्यापारी खद्दर के गुणों को समझ रहे हैं। वे समझ रहे हैं, कि उससे लक्ष-लक्ष ग्रामीण जनता को क्या लाभ हो रहा है। परन्तु मैं निश्चयपूर्वक कहता हूँ, कि यदि खद्दर के व्यापारी देश-भक्ति का लिहाज़ न रखते हुए खद्दर को सहायता पहुँचाने के बदले, उसे हानि पहुँचाने का प्रयत्न करेंगे, तो उनको वैसे ही विरोध-भाव का सामना करना पड़ेगा, जैसा विदेशी वस्त्र के व्यापारियों को करना पड़ता है। विदेशी वस्त्र के व्यापारियों को यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि विदेशी वस्त्र-बहिष्कार राजनैतिक शस्त्र रूप से नहीं है, वरन् एक सामाजिक और आर्थिक उपाय के रूप में सर्वदा व्याप्त रहने के उद्देश्य से इस आन्दोलन का प्रादुर्भाव हुआ है। यदि ये व्यापारी भविष्य का ध्यान रक्खें तो इन्हें जनता के हित की दृष्टि से विदेशी वस्त्र का व्यापार छोड़ देना चाहिए। उनको सहायता पहुँचाने के लिए सब कुछ किया जा रहा है, परन्तु उनके द्वारा बहुत अधिक त्याग किया जाना आवश्यक है।

विदेशी व्यापारियों का कर्तव्य

हम आशा करते हैं कि अङ्गरेज़, जापानी और अन्य देशीय विदेशी वस्त्र के व्यापारी कॉङ्ग्रेस की इस नीति का कोई बुरा अर्थ न लगावेंगे। यदि वे भारतवर्ष में अपने वस्त्रों का व्यापार न करके, भारतवर्ष की सहायता करेंगे तो उनको भारतवर्ष में अन्य वस्तुएँ विक्रय करने को मिलेंगी और इसके उद्योग भी करने को मिलेंगे।

पिकेटिङ्ग

इस बात से मेरा ध्यान पिकेटिङ्ग की ओर जाता है। यह न त्यागी गई है और न त्यागी जा सकती है। मैं यहाँ समझौते का वाक्य उद्धृत करता हूँ—"पिकेटिङ्ग शान्तिपूर्ण होगी। अशान्त विरोध, उत्तेजनापूर्ण नीति, बलपूर्वक रोका आदि बातें न होंगी और साधारण क़ानून को भङ्ग करने वाली कोई बात न होगी और यदि किसी स्थान पर इनमें से कोई बात की जायगी, तो वहाँ पिकेटिङ्ग बन्द कर दी जायगी।" पिकेटिङ्ग एक साधारण क़ानूनी अधिकार है और निर्धारित सीमा के भीतर वह केवल क़ानूनन ही जायज़ नहीं है, वरन् बहुत अधिक शिक्षात्मक भी है।

स्त्रियों का कर्तव्य

उसका काम नम्र प्रार्थना द्वारा समझाना है, न कि विरोध तथा स्वतन्त्रता का हिंसात्मक अवरोध। मैं हिंसात्मक शब्द का प्रयोग समझ-सोच कर कर रहा हूँ। सार्वजनिक मत की अवरोधात्म शक्ति सदैव रहेगी। वह सार्वजनिक उन्नति करने वाली और स्वतन्त्र भाव की वृद्धि करने वाली है। अहिंसात्मक पिकेटिङ्ग सार्वजनिक मत पैदा करने वाली वस्तु है। वह ऐसा वायु-मण्डल ला देती है जो निर्बाध होता है। यह स्त्रियों के द्वारा बड़ी उत्तमतापूर्वक व्यवहार में लाई जा सकती है। इसलिए मैं आशा करता हूँ, कि भारतीय स्त्रियों ने जिस महान कार्य का आरम्भ किया है, उसे वे करती जायँगी। इसके लिए उनके प्रति राष्ट्र अत्यन्त कृतज्ञ होगा और लाखों भूखों मरने वाले उन्हें आशीर्वाद देंगे।

बृटिश वस्तुओं का बहिष्कार

इसके बाद मैं ब्रिटिश माल के बहिष्कार के बारे में कुछ कहना चाहता हूँ। यह विचार उतने ही दिनों से चला आ रहा है, जितने दिनों से कॉङ्ग्रेस चली आ रही है। हमें भली-भाँति ज्ञात है कि गाँधी जी के राजनैतिक

क्षेत्र में आने के पश्चात ब्रिटिश माल के बहिष्कार के बदले विदेशी वस्त्र का बहिष्कार आरम्भ हुआ (केवल ब्रिटिश वस्त्र का नहीं)। उन्होंने उसे आर्थिक और सामाजिक उन्नति के भाव से किया। परन्तु ब्रिटिश माल का बहिष्कार एक अतिरिक्त राजनैतिक शस्त्र है। गत युद्ध की आँधी में इसका महत्वपूर्ण व्यवहार हुआ। अब कम से कम कुछ दिन के लिए समझौता हो गया है और हम विचार-विनिमय और सभाओं द्वारा अपने उद्देश्य की प्राप्ति करना चाहते हैं। अतएव हमको अब राजनैतिक शस्त्र का उपयोग न करना चाहिए। जब तक हम अङ्गरेज़ों को इस प्रकार हानि पहुँचाते जावेंगे, तब तक उनसे मित्रतापूर्वक बात और विचार नहीं कर सकेंगे। अतएव हमको कम से कम इस समय तो ब्रिटिश माल के बहिष्कार-शस्त्र का प्रयोग न करना चाहिए। हमको स्वदेशी पर अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहिए, क्योंकि यह सब राष्ट्रों का जन्म-सिद्ध अधिकार है। जो कुछ हम अपने देश में पैदा कर सकते हैं, उसको अवश्य उत्साहित करना चाहिए। उसको छोड़ कर हमें विदेशी नहीं ग्रहण करना चाहिए, चाहे वह ब्रिटिश हो चाहे अन्य देश का। यह जातीय उन्नति के लिए आवश्यक है। अतएव हमें देशी बीमा कम्पनियों, बैङ्कों, जहाज़ी कम्पनियों और इसी प्रकार की अन्य कम्पनियों के पक्ष में भारी आन्दोलन करके उन्हें उत्साहित करना चाहिए। यह कह कर, कि वे निम्न कोटि की हैं या महँगी हैं, हमें उनका तिरस्कार नहीं करना चाहिए। केवल सहायतापूर्ण समालोचना और व्यावहारिक सहायता से हम उन्हें सस्ती और उच्चकोटि के बना सकते हैं।

समानाधिकार का प्रश्न

समान स्वत्व के बारे में बहुत सी अनर्गल बातें कही जाती हैं, परन्तु बली और कमज़ोर, राक्षस और बौने, हाथी और चींटी में समान स्वत्व की बात ही क्या?

यदि अपनी अपार सम्पत्ति और सामान लेकर लॉर्ड इञ्चकेप स्वर्गीय सेठ नरोत्तम मुरारजी के साथ समान स्वत्व चाहें, तो वह समान स्वत्व का परिहास मात्र होगा। लॉर्ड इञ्चकेप और सेठ नरोत्तम के उत्तराधिकारियों में समान स्वत्व की बात तो तभी हो सकती है, जब सेठ नरोत्तम के उत्तराधिकारी धन-सम्पत्ति और सामान में उनके बराबरी पर पहुँच जायँ। अत्यन्त असमानों के बीच में समान स्वत्व की बात करना तो बहुत ग़रीब से बड़े अमीर की बराबरी करना है। इसी प्रकार उनके साथ, जिन्हें कुछ लोग 'उच्च जातियाँ' कहते हैं, उनसे 'नीच जातियों' के समान स्वत्व की बात करना दोनों की बराबरी करना है और नीच जातियों का अपना बड़प्पन छोड़ कर, अपने को नीचे झुकाना है। अङ्गरेज़ों की तुलना में हम लोगों की नीच जातियों से भी गई-बीती अवस्था है। अतएव भारतीय उद्योग-धन्धों की रक्षा करना और अङ्गरेज़ी या विदेशी का त्याग करना हम लोगों के राष्ट्रीय अस्तित्व के लिए आवश्यक है। यह रक्षा संयुक्त शासन की अवस्था में भी रहनी चाहिए। ब्रिटिश संयुक्त राज्य के भीतर भी रक्षा की बात कोई बुरी नहीं है। उपनिवेशों में उनकी उन्नति के लिहाज़ से उसका व्यवहार है।

नशीली वस्तुओं का त्याग

जैसे विदेशी वस्त्र का बहिष्कार लाखों भूखों मरने वालों के लिए आर्थिक आवश्यकता है, उसी प्रकार राष्ट्र की नैतिक उन्नति के लिए नशीली वस्तुओं का बहिष्कार भी आवश्यक है। नशीली वस्तुओं के बिल्कुल त्याग करने के विचार का आविर्भाव उसके राजनैतिक प्रभाव के दमन के बहुत पहले हुआ था। कॉङ्ग्रेस ने उसको आत्म-शुद्धि के उपाय के रूप में बहुत पहले सोचा था। नशीली वस्तुओं पर जो कर उपार्जित होता है, उसको सरकार, यद्यपि निषेधात्मक कार्यों के उपयोग में लाती है, तिस पर भी उनकी दूकानों पर हमारा धरना जारी रहेगा, परन्तु उसका व्यवहार निर्धारित सीमा में ही रहेगा।

मैं सरकार से अनुरोध करता हूँ, कि इस परिवर्तन-काल में वह केवल दो वस्तुओं की पिकेटिङ्ग को ही अधिक लक्ष्य न समझे, बल्कि वह पहले ही से समझ ले कि राष्ट्र अपने क़ानून बनावेगा और उसके साथ एकमत होकर उसे काम करना चाहिए, चाहे वह ऐसा करे चाहे न करे। हम लोग तब तक शान्ति से न बैठेंगे, जब तक एक भी गज़ कपड़ा विदेश से आवेगा या यहाँ हमारे भूले हुए भाइयों को बिगाड़ने के लिए एक भी शराब की दूकान रहेगी!

नमक की समस्या

मैं थोड़ा सा नमक के बारे में भी कहना चाहता हूँ। नमक पर आक्रमण बन्द हो जाना चाहिए। नमक-

क़ानून-भङ्ग भी बन्द हो जाना चाहिए। परन्तु वे ग़रीब, जो नमक के पड़ोस में बसते हैं, अपने पड़ोस में नमक बनाने और बेचने के लिए स्वतन्त्र हैं। यह सत्य है कि नमक-कर अभी रद्द नहीं हुआ है।

कदाचित् कॉङ्ग्रेस कॉन्फ़्रेन्स में भाग ले, चाहे इस समय हम नमक-कर बन्द करने के लिए ज़ोर न दें, पर वह आगे चल कर बन्द होगा ही। इस समय तो वे ग़रीब लोग, जिनके लिए यह युद्ध जारी किया गया था, इस कर से बच गए हैं। मैं आशा करता हूँ कि कोई भी नमक का व्यापारी सरकार की इस ढिलाई का अनुचित लाभ न उठावेगा।

ग्यारह शर्तें

उपरोक्त भाषण से मालूम होता है कि ज़िन बातों में शिक्षित जनता दिलचस्पी लेती है, उन बातों में मैं दिलचस्पी नहीं लेता। मुझे रोटी, मछली और क़ानूनी सम्मान से कोई दिलचस्पी नहीं है। किसान उन्हें नहीं समझते और न उनका उनके ऊपर कुछ असर पड़ता है। मैं यही विश्वास करता हूँ कि गाँधी जी की ग्यारह शर्तें ही स्वराज्य का सार हैं। जो उन शर्तों के अनुसार नहीं है वह स्वराज्य नहीं है। यद्यपि मैं ज़मींदार, राजा-महाराजा आदि के अधिकारों को वहाँ तक मानता हूँ, जहाँ तक वे पसीना बहाने वाले करोड़ों किसानों को हानि नहीं पहुँचाते, तथापि मैं पददलित जनों को अपनी दुर्दशा से ऊपर उठने में सहायता देने में दिलचस्पी लेता हूँ और उनको इस देश के किसी बड़े से बड़े के बराबर बनाना चाहता हूँ। ईश्वर को धन्यवाद है, सत्य और अहिंसा के सिद्धान्त ने उन्हें अपनी इज़्ज़त और शक्ति का परिचय दिया है। तब भी अभी बहुत काम करने की आवश्यकता है। हमें यह सोच लेना चाहिए, कि हम उनके लिए बने, हैं न कि वे हमारे लिए। अपने क्षुद्र ईर्षा-द्वेष को हमें दूर कर देना चाहिए। धार्मिक लड़ाइयों को बन्द कर देना चाहिए। सबको यह समझ लेना चाहिए, कि कॉङ्ग्रेस का अस्तित्व पसीना बहाने वाले करोड़ों किसानों के लिए है और वह निर्लोभ, मनुष्य मात्र के लिए काम करने वाली एक दुर्दमनीय शक्ति हो जावेगी।

अस्पृश्यता का कोढ़

व्यावहारिक कार्य-क्रम का एक और अङ्ग है, जिसके बारे में अभी मैंने कुछ नहीं कहा है। वह अस्पृश्यता को नष्ट करने का महत्वपूर्ण कार्य है। इस समस्या में मरहम-पट्टी से काम न चलेगा। यदि हिन्दुओं ने अपने में से यह बुराई निकाल दी होती, तो राष्ट्र का विगत शान्त-युद्ध और भी गौरवपूर्ण होता। परन्तु गौरव और बहादुरी को एक ओर रखिए, इस आत्म-शुद्धि के प्रधान कार्य के बिना स्वराज्य भी प्राप्त करने योग्य वस्तु नहीं रह जायगी। हिन्दू-धर्म पर यह धब्बा रहते हुए, यदि स्वराज्य मिल भी जाय, तो ऐसा ही अस्थायी होगा, जैसा विदेशी वस्त्र के पूर्ण बहिष्कार के बिना स्वराज्य हो सकता है।

प्रवासी भाइयों का प्रश्न

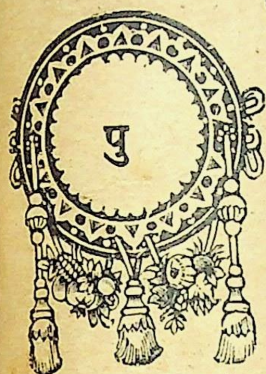
अन्त में हमें अपने प्रवासी भाइयों को नहीं भूलना चाहिए। दक्षिण अफ़्रिका, पूर्वीय अमेरिका और संसार के अन्य भागों में उनका भाग्य अब भी अधर में टँगा हुआ है। सौभाग्य है कि दीनबन्धु एण्ड्रूज़ दक्षिण अफ़्रिका में हमारे देशवासियों की सेवा कर रहे हैं। पण्डित हृदयनाथ कुँज़रू ने पूर्व अफ़्रिका के हिन्दुस्तानी मामलों में विशेष भाग लिया है। उन्हें आश्वासन देने के लिए कॉङ्ग्रेस उन्हें उनसे अपनी सहानुभूति का विश्वास दिला सकती है। वे जानते हैं, कि उनकी दशा उतनी ही सुधरेगी जितना हम अपने उद्देश्य की ओर बढ़ेंगे। आपकी ओर से मैं उन सरकारों से, जिनके अधिकारों में हमारे भाई हैं, प्रार्थना करता हूँ, कि वे हमारे भाइयों से उचित बर्ताव करें, क्योंकि वे उस राष्ट्र के व्यक्ति हैं, जो अपना पूर्व गौरव शीघ्र ही प्राप्त करने वाला है और जो किसी को हानि पहुँचाना नहीं चाहता। हम उनसे प्रार्थना करते हैं, कि वे हमारे भाइयों के साथ वही बर्ताव करें, जो वे हमसे उस समय चाहेंगे, जब उनके साथ व्यवहार करने के लिए हम स्वतन्त्र होंगे। यह माँग बहुत बड़ी माँग नहीं है।

राष्ट्रपति का निमन्त्रण

अब मैं आपको वह कार्यवाही करने के लिए आमन्त्रित करता हूँ, जिसका समयानुसार निमन्त्रण करने के लिए आपने मुझे आमन्त्रित किया है। मतभेद अवश्य होगा, परन्तु मैं विश्वास करता हूँ कि उपस्थित महाशयों में से हर एक हमें इस कार्य को गौरवपूर्ण और उद्योग की ओर प्रगतिशील बनाने में सहायता देंगे।

वैभव की समाधि

["मुक्त"]



पुष्पा ने जीवन के सोलह वर्ष सपनों में ही बिता दिए थे। आज, जब पहले-पहल उसे संसार का स्पर्श करना पड़ा, वह सिहर उठी। भविष्य-जीवन की कठोर कल्पना ने उसे अस्थिर बना दिया। सपनों के हिंडोले पर झूलती रहने वाली पुष्पा, कैसे जीवन के कठोर सङ्घर्षों में होकर आगे बढ़ सकेगी?

खुली हुई खिड़की पर बैठ कर, बाएँ हाथ पर कपोलों का भार देकर, वह बाहर होने वाली अजस्र वर्षा की धाराएँ गिनने का विफल प्रयास कर रही थी। आसमान झुक्सा हो उठा था। जहाँ तक दृष्टि जाती थी, तीर की तरह गिरने वाली केवल वर्षा की धाराएँ ही दीख पड़ती थीं। पुष्पा आत्म-विस्मृत होकर प्रकृति का यह उत्पात देख रही थी। उसकी आँखें और उसका मस्तिष्क, दोनों अलग-अलग काम कर रहे थे। मन ही मन वह ज़मीन-आस्मान के कुलाबे मिला रही थी।

पुष्पा एक सम्भ्रान्त कुल की कन्या थी। उसके पिता सामान्य धनाढ्य थे। इसी से पुष्पा के जीवन का उषा-काल बड़े सुख-सौभाग्य और लाड़-प्यार की गोद में बीता था। जब वह दस वर्ष की हुई, उसके पिता उसे विद्यालय में भेज कर निश्चिन्त हो गए। उसके बाद लगातार छः वर्षों तक वह दुनिया से अलग, एक सीमित किन्तु सुखद वायुमण्डल में, रह कर पली; वहीं उसने लिखना-पढ़ना सीखा और सपना देखना भी।

कल्पना के सपने पुष्पा को बहुत प्यारे थे। उसने अपने जीवन में कभी किसी अभाव का अनुभव नहीं किया था, इसीसे वह सदा ही सपनों के इन्द्रजाल में बेसुध रहा करती थी। सपनों के कोहरे से, एक प्रकार से, उसका जीवन घिर गया था। उसने कभी यह बात सोचने की तकलीफ़ न उठाई थी कि कभी इन सपनों के सुखद स्पर्श से अलग होकर उसे वास्तव जग के धूप-वर्षा और प्रकाश-अन्धकार को भी अपनाना पड़ेगा, उनका कठोर अनुभव अपने जीवन में जड़ित करना पड़ेगा। वह कितनी अज्ञान थी! कैसी पागल थी!!

पुष्पा के स्कूल का जीवन अनेक मधुर-स्मृतियों का सङ्कलन था। आज अपने स्कूल-जीवन की एक-एक बात याद करके उसका हृदय अधीर हो रहा था। हाय! वे दिन एक बार फिर लौट आते!! लेकिन क्यों लौटेंगे?

बचपन से पुष्पा के मन में सौन्दर्य की तीव्र पिपासा थी। सौन्दर्य की जितनी प्रबल अनुभूति वह अपने अन्तर में प्रत्यक्ष कर सकती थी, उतनी और किसी की नहीं। वह स्वयं भी अद्वितीय सुन्दरी थी। उसका निर्दोष मुँह, उसके कोमल-कोमल अङ्ग, उसकी पुष्प-पङ्खड़ियों-सी उँगलियाँ, उसकी भोली-भाली चितवन, उसका वीणा-विनिन्दित स्वर, देखने वाले को मन्त्र-मुग्ध सा बना देता था। स्कूल में पुष्पा के सौन्दर्य का प्रकाश चारों ओर फैला हुआ था। सभी उसका आदर करते थे, सभी उसे प्यार करते थे। वह सदा ही अपनी सह-पाठिनियों और शिक्षयित्रियों के हाथ का खिलौना बन कर रही थी।

पुष्पा को बचपन में ही मातृ-वियोग सहना पड़ा था, अतः वह माँ का प्यार न पा सकी थी। इसी से उसके अन्तर में प्रेम की भूख भी बहुत थी। पहले-पहल जब वह स्कूल में आई, तो उसे स्कूल का वायुमण्डल बिलकुल अपरिचित-सा जान पड़ा और उसे असुविधा मालूम हुई। लेकिन यह असुविधा अधिक समय तक न रह सकी। अपने सौन्दर्य, अपने प्रेममय स्वभाव और अपनी मिलनसारी से, शीघ्र ही, उसने स्कूल में अपने लिए स्थान बना लिया। उसने देखा कि यह संसार एक नए ही ढङ्ग का था; और कितने सुख, कितने आनन्द से भरा हुआ!!

धीरे-धीरे पुष्पा के स्वभाव में परिवर्तन दीख पड़ने लगा। वह एकान्त अधिक पसन्द करने लगी। लोगों

से कम मिलती-जुलती और अकेली विद्यालय के बगीचे में घूमा करती थी। उसका सरल हास्य गम्भीरता के रूप में बदल गया था। पूर्व आकाश में जब बाल-रवि उदित हो जाता और उसकी अरुण-कनक-किरणें ओस के हीरक-बिन्दुओं पर पड़ कर चमक उठतीं तो पुष्पा विभोर होकर उनके क्षण-भर में नष्ट हो जाने वाले इस अतुल सौन्दर्य को देखा करती थी। उद्यान में तरह-तरह के फूल खिले रहते, काले-काले भौंरे उन पर मँडराया करते और पुष्पा उनकी प्रणय-लीला देखा करती थी। इधर-उधर उड़ती-फिरने वाली तितलियों के सुनहले पङ्ख जब धूप में चमचमा उठते, पुष्पा पागल होकर अपलक नयनों से उन्हें निहारा करती थी। हरी-हरी,



कानपुर की वे महिलाएँ, जो नियमित रूप से घर-घर घूम कर चर्खा तथा खादी का नित्य प्रचार करती हैं।

दूर तक फैली हुई, मख़मली दूब पर बैठ कर उसने कितनी ही सन्ध्याएँ और गोधूलियाँ बिता दी थीं। नीले आसमान की ओर देखते-देखते आकाश में चन्द्रमा खिलखिला उठता, एक धुँधला और मादक प्रकाश धरित्री पर बिछ जाता। किसी स्वप्निल जगत में विचरण करती हुई पुष्पा सोचा करती कि इन्हीं मुलायम, मख़मली दूबों पर, आसमान के चन्दोवे के नीचे, चन्द्र-ज्योत्स्ना की धुँधली छाया में बैठ कर जीवन बिता दिया जा सकता, तो कितना अच्छा होता !!

कभी-कभी पुष्पा जमुना के किनारे घूमने भी जाया करती थी। वहाँ वह जल के ऊपर उड़ती फिरने वाली चिड़ियों को, ऊँचे स्वर से गीत-गाते हुए तेज़ी से डाँड़ खेकर एक ओर भागे जाने वाले माझियों को, और उस पार की सघन-श्यामल वन-राशि को टकटकी लगा कर देखा करती थी। लहरों के मिस जमुना की अगणित अभिलाषाएँ आ-आकर तट को चूम जाया करती थीं। पुष्पा के मन में न जाने कितने भावों का संसार बनता-बिगड़ता रहता था।

संसार कितना मनोहर था !

उसके बाद उसने एक दिन सस्मित नयनों से देखा कि पढ़ाई समाप्त हो जाने के कारण, उसके पिता उसे घर ले जाने के लिए आए हैं। उसके सुख के सपनों में आघात लगा। तब क्या उसे भी संसार में जाना पड़ेगा? संसारी बन कर रहना पड़ेगा?

और, आज पुष्पा विवाहिता होकर पति के घर में आई थी। आज उसने पहले-पहल संसार को स्पर्श किया था। इससे वह इतनी चिन्तित थी, इतनी घबराई हुई थी !!

संसार में कितनी झञ्झटें हैं !!!

२

जिस समय पुष्पा अपने विचारों में तन्मय हो रही थी, उसके पति सरोज ने उसी समय दरवाज़ा खोल कर अन्दर प्रवेश किया। सन्ध्या हो आई थी। बादल और भी सघन हो उठे थे। अन्धकार धीरे-धीरे फैल रहा था। पुष्पा के कमरे में एक अजीब उदासी-भरा सन्नाटा छाया हुआ था।

पति के प्रवेश करने की आहट पुष्पा न पा सकी। पहले ही की तरह तल्लीन होकर वह खिड़की से बाहर देखती रही। सरोज उसके समीप चले गए।

पीछे से पुष्पा के कन्धे पर हाथ रख कर स्नेह-विकम्पित स्वर में सरोज ने पुकारा—पुष्पा !

पुष्पा का ध्यान भङ्ग हो गया। उसने मुँह फेर कर पति की ओर देखा, फिर लज्जित होकर सिर झुका लिया।

यह बात नहीं कि पुष्पा ने विवाह के पहले सरोज को न देखा हो या बातचीत न की हो। विवाह के पहले सरोज कितनी ही बार पुष्पा के यहाँ आया-गया

था, उससे हँसा-बोला था और उसके मन में अपने प्रति अनुराग की एक अरुण रेखा जगा आया था। लेकिन, आज लज्जा की लालिमा स्वभावतः ही उसके कपोलों पर खेल गई, सङ्कोच का आवरण बरबस उसके पलकों पर पड़ गया। लज्जा से, सङ्कोच से वह धरती में गड़ी सी जाने लगी। सरोज मुग्ध होकर उसका लज्जावनत मुँह अपलक नयनों से देखता रहा।

थोड़ी देर में सरोज ने ही वह निस्तब्धता भङ्ग की। कहा—पुष्पा! मैं तुम्हें कब से पुकार रहा हूँ! तुम नाराज़ हो क्या?

पुष्पा क्या उत्तर देती? वह सोच कर भी कुछ निश्चय न कर सकी। उसने केवल अपनी भोली-भाली, सरल आँखों से पति की ओर देखा; मानो उनके इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए उसके पास कोई शब्द नहीं है, कोई बात नहीं है! वह कितनी असमर्थ है!!

सरोज ने फिर कहा—पुष्पा, मैं तुम्हें कितना प्यार करता हूँ! क्या तुम्हारे मन में मेरे लिए ज़रा भी प्रेम नहीं है? तुम मुझसे बोलती क्यों नहीं हो?

पुरुष का हृदय, पग-पग पर, स्त्री से प्रेम की स्वीकृति चाहता है। वह कितना अधीर है, कितना छिछला है!! इसके विपरीत अपने हृदय में प्रेम का अन्तहीन सागर छिपा कर भी स्त्री समुद्र की तरह ही स्थिर-गम्भीर रहती है। उसके हृदय में भी ज्वार-भाटे आते हैं, लेकिन उसे कोई देख नहीं सकता, परख नहीं सकता, उन्हें स्पर्श भी नहीं कर सकता। स्त्री इसीलिए महान् है, स्त्री इसीलिए उन्नत है।

सरोज के प्रश्न के उत्तर में फिर भी पुष्पा का मुँह न खुला। वह कुछ बोलना चाहती थी, लेकिन भाषा उसका साथ न देती थी, वाणी ने मौन का आश्रय लिया था, चेतना उसकी तल्लीनता के साथ मिल गई थी। वह किसी अज्ञात भावना से काँप रही थी। उसके हृदय में एक आँधी सी चल रही थी, एक तूफ़ान सा उठ रहा था, एक दरिया सी उमड़ रही थी। मन के उन सब भावों को भाषा की ज़ञ्जीर में बाँध कर वह सरोज के चरणों पर उँड़ेल देना चाहती थी; लेकिन हाय! वह क्या करे? उसके मुँह से आवाज़ तो निकलती ही नहीं। कैसे वह अपना हृदय चीर कर सरोज को दिखला दे कि वहाँ क्या हो रहा है?

पुष्पा ने फिर एक बार उमड़ती हुई आँखों से पति की ओर देखा। उन आँखों में न जाने कैसी मादकता थी, उसने पुष्पा के हृदय की सारी बात सरोज के कानों में कह दी। सरोज ने पुष्पा को अपनी ओर खींच लिया। आत्म-विस्मृत होकर पुष्पा ने पति की छाती में अपना मुँह छिपा लिया।

३

थोड़े दिनों में लाज-शर्म की यह बढ़िया मन्द पड़ गई, सङ्कोच की उत्ताल तरङ्गों ने सिर झुका कर मन की



श्रीमती कलादेवी जी

आप इलाहाबाद की कायस्थ महिला-सभा की सभानेत्री, स्त्री आर्य-समाज की प्रधाना, विधवा-आश्रम की उप-प्रधाना तथा आदर्श आर्य-कन्या-पाठशाला की कार्यकारिणी सभा की सदस्या हैं, आपने हाल ही में स्थानीय डी० ए० वी० हाई-स्कूल को १,०००) रु० दान दिए हैं।

वश्यता स्वीकार कर ली। उस समय पुष्पा प्रेम की सरिता में अपने को भूल कर बह रही थी। प्रेम कितना मधुर है! कितना मादक!!

बिना आगा-पीछा सोचे, जिस दिन पागलिनी पुष्पा ने प्रेम की सरिता में डुबकी लगाई थी, उसे उसी दिन अनुभव हुआ कि स्त्री और पुरुष के प्रेम में थोड़ा अन्तर

होता है। स्त्री का हृदय जितना गम्भीर और अथाह है, पुरुष का उतना ही अधीर और छिछला। पुरुष प्रेम करता है तो पागल हो जाता है; स्त्री प्रेम करती है तो अपने उन्माद को हृदय के बाँध में बन्दी बना कर रखती है। पुरुष शीघ्र ही ऊब जाता है; स्त्री ऊबती नहीं। थोड़े दिनों तक प्रेम करके पुरुष प्रेम के पिंजड़े से भाग जाना चाहता है; स्त्री सदा प्रेम की बन्दिनी बनी रहना चाहती है। पुरुष प्रेम में तैरता है; स्त्री उसमें डूब जाती है। पुरुष प्रेम की नदी में थाह लेकर ऊपर आ जाना चाहता



श्रीमती के० सी० दे

आप बङ्गाल ओलेम्पिक एसोसिएशन की कार्यकारिणी सभा का सदस्या नियुक्त की गई हैं।

है; स्त्री उसमें डूब कर अपना अस्तित्व मिटा देना चाहती है। स्त्री चिर-स्नेहमयी है, वह देवी है, उसके अन्तर का प्रेम सब लोग देख नहीं सकते। वह पुरुषों की तरह अपने प्रेम का विज्ञापन नहीं करती। स्त्री कितनी दुर्ज्ञेय है! कितनी महान है!!

पुष्पा ने अकेले में इन बातों को न जाने कितनी बार सोचा था—इसलिए नहीं कि वह स्वयं स्त्री थी, लेकिन इसलिए कि यही सच्ची बात थी। किन्तु, यह सब जान कर भी वह प्रेम की सरिता में बह रही थी।

वह यौवन का उन्माद था!!

इसमें सन्देह की गुञ्जाइश नहीं कि सरोज ने पुष्पा को प्यार किया था। पुष्पा के प्यार के लिए उसने अपना हृदय बिछा दिया था। वे दिन कैसे सुख के थे! कितने मनोहर थे!!

पुष्पा सरोज के साथ नित्य सन्ध्या को क्लब जाती, वहाँ टेनिस खेलती और अपने प्रेममय सरल स्वभाव, अपनी मीठी बातों और अपने सौहार्द से सरोज के मित्रों का मन मोह लेती थी। सभी मित्र सरोज के सौभाग्य की प्रशंसा करते, उसे बधाई देते और उसकी विशेष कृपा प्राप्त करने के लिए लालायित रहते थे। संसार की यही प्रवृत्ति है।

जब-तब मित्रों के यहाँ पार्टियाँ होती थीं, सरोज को उनमें सस्त्रीक सम्मिलित होना पड़ता। कभी-कभी सरोज भी मित्रों को निमन्त्रित करता। उस समय पुष्पा उनकी ख़ूब ख़ातिरदारी करती, उन्हें बड़े प्रेम से खिलाती-पिलाती और उनका यथोचित सम्मान करती थी।

प्रेम की गति बड़ी कुटिल है। एक साथ ही वह अमृत भी है और विष भी; सुख भी है और दुःख भी; हर्ष भी है और विषाद भी। प्रेम की माया किसने जानी है?

प्रेम करने में पुरुष जितना अधीर होता है, उतना ही सङ्कीर्ण भी। वह चाहता है कि मैं जिसे प्यार करता हूँ, वह भी मुझे प्यार करे। मुझे तो प्यार करे ही, लेकिन साथ ही साथ उसके मन में यह बात भी होती है कि वह और दूसरे किसी को प्यार न करे, स्नेह की आँख से भी न देखे। अपने प्रेमी को किसी दूसरे पर स्नेह करते देख कर वह अधीर हो जाता, उन्मत्त हो जाता है। पुरुष का यह स्वभाव इसलिए है कि वह प्रेम करता है, प्रेम करना सीखता है। लेकिन स्त्री के लिए ठीक यही बात नहीं कही जा सकती। स्त्री प्रेममयी है, उसका जीवन केवल प्रेम है। जन्म से लेकर मृत्यु-पर्यन्त वह प्रेम की छाया में ही क्रीड़ा करती है। उसके रक्त की प्रत्येक गति में प्रेम है, हृदय के प्रत्येक स्पन्दन में प्रेम है, प्राणों के प्रत्येक उच्छ्वास में प्रेम है। वह प्रेममयी है, प्रेम-स्वरूपिणी है। प्रेम के अतिरिक्त वह और कुछ नहीं है। प्रेम उसका स्वभाव है, प्रेम उसकी प्रकृति है और प्रेम ही उसका आहार है। स्त्री भूखी रह कर जी

सकती है, पर बिना प्रेम किए नहीं रह सकती। स्त्री के प्रेम की सीमा इसी से विस्तृत होती है और पुरुष की सङ्कीर्ण। स्त्री सभी को प्यार कर सकती है, लेकिन पुरुष नहीं।

पुष्पा को तो प्रेम की निधि शायद कुछ अधिक मिली थी, इसी से वह सबको प्यार करती थी। उसके प्रेम की सघन-शीतल छाया पाकर घर-बाहर के सभी लोग प्रसन्न रहते और अपने सौभाग्य की सराहना करते थे। प्रेम करना पुष्पा के लिए कोई नई बात न थी।

सरोज के साथियों में पुष्पा कुसुम को सब से ज़्यादा प्यार करती थी, और इसलिए कि उसे प्यार करने वाला कोई न था। सरोज की नज़रों में यह बात शीघ्र ही खटकने लगी। वह पुष्पा और कुसुम की निगरानी करने लगा। भोली पुष्पा को इस बात का कुछ भी ख़याल न था।

धीरे-धीरे पुष्पा ने लक्ष्य किया कि सरोज का मन कुसुम की ओर से बिगड़ता जा रहा है। सरोज ज्यों-ज्यों कुसुम का तिरस्कार करने लगा, पुष्पा के मन में त्यों ही त्यों उसके प्रति अधिक से अधिक स्नेह-ममता उत्पन्न होने लगी। वह कुसुम को अपना हृदय खोल कर प्यार करने लगी। इस बात से सरोज का सन्देह और भी बढ़ता गया। सन्देह तो बढ़ गया, लेकिन उसके पास कोई ऐसा प्रमाण न था, जिससे वह खुल कर कुछ कह सके। उसके प्रति पुष्पा का जो प्रेम था, यद्यपि उसमें कुसुम के कारण तिल भर भी अन्तर न आ सका था—आने का कोई कारण भी न था—लेकिन तो भी सरोज अन्दर ही अन्दर ईर्ष्या से जला जा रहा था। यह बात उसके लिए असह्य थी कि पुष्पा उसके अतिरिक्त और किसी को भी प्यार करे। उसकी समझ थी कि कुसुम उसी के प्रेम में से हिस्सा बटा रहा है। पुष्पा के प्राणों पर जो उसका ही एकान्त आधिपत्य था, कुसुम उसी पर आक्रमण कर रहा था। यह बात कौन बर्दाश्त कर सकता है?

और, बेचारा कुसुम? वह प्रेम के मैदान में बिलकुल अनाड़ी खिलाड़ी था। उसने कभी किसी का प्रेम या स्नेह पाया नहीं था। इसी से पुष्पा के स्नेह की शीतल छाया पाकर वह इतना सुखी हुआ कि सब कुछ भूल गया। अन्दर ही अन्दर बात यहाँ तक बढ़ गई है; इसका उसे सपने में भी ध्यान न था।

पुष्पा और सरोज दोनों ही बड़े सरल थे, बड़े भावुक थे और बड़े प्रेमी थे। किन्तु थोड़ी सी असहनशीलता ने उनकी सोने की गृहस्थी मिट्टी में मिलाने का उपक्रम कर दिया। सरोज के मन में सन्देह का विष पड़ गया था। धीरे-धीरे वह सारे शरीर में व्याप्त होने लगा।

एक दिन सरोज कहीं बाहर गया हुआ था, घर में पुष्पा अकेली थी, इसी समय कुसुम ने आकर दरवाज़ा खटखटाया। पुष्पा ने ज़ञ्जीर खोल दी। कुसुम अन्दर चला आया।



श्रीमती कमलाबाई किबे

आप इन्दौर के रावबहादुर एम० वी० किबे की धर्मपत्नी हैं, जो ऐतिहासिक रैकॉर्ड्स कमीशन की सदस्या नियुक्त हुई हैं।

उस दिन कुसुम बड़ा उदास था। उसकी आँखों में आँसू भरे हुए थे। मुँह पर विषाद की कालिमा छाई हुई थी। देखते ही पुष्पा के मन में आया कि हो न हो, आज कोई विशेष घटना हो गई है। उसने बड़े प्रेम से कुसुम को अपने पास बैठाया और उदासी का कारण पूछा।

कुसुम को उस दिन किसी को कुछ रुपए देने थे; दे न सका था, इसी से उसने कुसुम को बहुत बुरा-भला कहा और अपमानित किया था। ग़रीबी की पीड़ा कौन अनुभव कर सकता है। अपमानित होकर, आत्म-ग्लानि

के बोझ से दबा हुआ कुसुम पुष्पा के पास आया। पुष्पा के पास जाने से ही, उसके सारे पाप-ताप, दुख-दर्द, चिन्ता-शोक मिट जायँगे, ऐसा उसका विश्वास था। विश्वास की क्षमता अनूठी है!

पुष्पा को जब यह बात मालूम हुई तो उसने अपने बक्स में से आवश्यकतानुसार रुपए निकाल कर कुसुम को दिए और कहा कि तुम इससे अपना काम करो। भला इस ज़रा सी बात के लिए इतना चिन्तित होने की क्या ज़रूरत थी?



कुमारी रुद्राणी अम्मा

आप आर्य-वंशोद्धारिणी महासभा की महा-मन्त्रिणी हैं। आप हाल ही में ट्रावङ्कोर एसेम्बली की सदस्या भी चुनी गई हैं।

कुसुम अब तक पुष्पा के स्नेह-भार से ही दबा हुआ था, आज पुष्पा ने उसे कृतज्ञता की ज़ञ्जीर से भी कस कर बाँध लिया। न जाने कितनी श्रद्धा, आदर और प्रेम से कुसुम का मस्तक पुष्पा के चरणों पर झुक गया। उसकी आँखों से रुके हुए आँसुओं की धारा बह चली। पुष्पा ने अपने हाथों से उन्हें पोंछ दिया। कहा—छिः! पागल! रोते हो?

थोड़ी देर रो लेने पर कुसुम के जी का भार हल्का हुआ। जाते वक्त उसने रुक कर पुष्पा के कानों में कुछ कहा और सीढ़ियों के पास गया। वहाँ उस समय सरोज खड़ा हुआ था। कुसुम को आते देख कर वह फ़ौरन सीढ़ियों से उतर कर वापस चला गया।

जिस समय कुसुम रो रहा था और पुष्पा उसके आँसू पोंछ रही थी, सरोज ने ठीक उसी समय घर में प्रवेश किया था। देख कर वह ठिठक गया। छिप कर और कुछ भी देखने की प्रतीक्षा करने लगा। शीघ्र ही उसने देखा भी। जिस समय पुष्पा के कानों में कुछ कह कर कुसुम जाने लगा, उस समय क्रोध से उन्मत्त होकर सरोज नीचे उतर गया।

दौड़ा-दौड़ा वह अपने एक प्रिय और अभिन्न मित्र के पास गया। जीवन में जब-जब मनुष्य बाधाओं और विपत्तियों के आघात से पागल होकर किंकर्तव्य-विमूढ़ हो जाता है, उसे एक आधार की आवश्यकता जान पड़ती है। सरोज इसीसे अपने मित्र के पास गया था। जाकर वह उबल पड़ा—हाय भाई! स्त्री इतनी विश्वास-घातिनी होती है?

मित्र तो अवाक् होकर सरोज की ओर ताकने लगा—अरे सरोज! तुम्हें क्या हो गया है? स्त्री को क्या हुआ? कुछ बतलाओ भी?

सरोज ने कहा—भैया! पुष्पा विश्वासघातिनी है! मैं क्या जानता था कि इस सोने के घड़े में विष भरा हुआ था! हाय, उसका प्रेम दिखावटी था। उसने मुझे बड़ा धोखा दिया।

मित्र ने पूछा—आख़िर क्या हुआ, कुछ बतलाओगे कि अपना ही राग अलापते जाओगे?

सरोज ने कहा—आज मैंने अपनी आँखों से कुसुम को पुष्पा का चुम्बन करते देखा है। यह देखने के पहले मेरी मौत क्यों न हो गई?

४

उस दिन, दिन भर सरोज घर नहीं गया। सन्ध्या हो गई और फिर भी जब सरोज का कुछ पता नहीं मिला तो पुष्पा अधीर हो गई। धीरे-धीरे रात हो आई। पुष्पा की अधीरता बढ़ने लगी। आख़िर, वह कुछ न समझ पाने के कारण रोने लगी। ज़रा सा खटका होता और उसे जान पड़ता कि वे आ गए। दौड़ कर छज्जे पर जाती, पर वहाँ कुछ न दीख पड़ता। पत्तियाँ हिलतीं और वह

सजग हो जाती; इक्कों के रुकने का स्वर सुन पड़ता और वह चौंक उठती। रात बीतती जाती थी; लेकिन सरोज का कुछ पता न था।

पुष्पा ने सारी रात आँखों में काट दी। सारी रात उसने पति की प्रतीक्षा की। रात बीत जाने पर जब पूर्व-गगन का द्वार खोल कर सूर्य की किरणें झाँकने लगीं, तो पुष्पा घर से बाहर निकली। स्वयं वह एक-एक करके सरोज के सब मित्रों के घर गई। आख़िर सरोज का पता मिला। सरोज को देखते ही वह फूट-फूट कर रोने लगी। रात भर जागने के कारण वह कुम्हला गई थी। रात भर रोने के कारण उसकी आँखें लाल हो गईं और सूज गई थीं। किन्तु सरोज के मन पर इसका कुछ प्रभाव न पड़ा। उसे जान पड़ा कि यह सब मक्कारी है। तबियत ख़राब होने का बहाना करके उसने बात टाल दी। पुष्पा उसे घर ले गई। दोनों के मन की बात दोनों से छिपी रही। कोई किसी के भावों को न जान सका।

सरोज के मन पर उस दिन की घटना से बड़ा धक्का लगा। वह अब पुष्पा से खिंचा-खिंचा सा रहने लगा। पुष्पा इस बात को लक्ष्य करके भी चुप रहती थी।

मन में आदमी कोई असहनीय पीड़ा पाल कर कब तक रख सकेगा? सरोज भी जब सह न सका, तो बीमार रहने लगा। धीरे-धीरे उसकी दशा ख़राब होने लगी। पुष्पा को संसार अन्धकारमय दीख पड़ा। इस विपत्ति के समय वह किसकी शरण ले।

अन्त में उसे कुसुम की याद आई। कुसुम इन दिनों उसके पास नहीं आता था। वह कुछ समझ न सकी कि एक के बाद एक होने वाली इन घटनाओं का अर्थ क्या है? उसने एक पत्र लिख कर कुसुम को बुलाया और इस विपत्ति में सहायता देने की प्रार्थना की।

पुष्पा का पत्र पाकर कुसुम आया। इन दिनों वह अपनी पारिवारिक विपत्तियों में इतना उलझा हुआ था कि इच्छा रहने पर भी एक बार पुष्पा से मिलने न आ सका था। आज आकर उसने पुष्पा की जो हालत देखी, उससे वह स्तब्ध रह गया। पति की बीमारी से पुष्पा पागल सी हो गई थी। उसके मुँह की सारी श्री, सारी शोभा, न जाने कहाँ खो गई थी। उसने वेदना-व्यथित स्वर में कुसुम का अभिवादन स्वीकार किया। कहा—चल कर देख लो कुसुम! न जाने मेरे भाग्य में क्या लिखा है! मैं बड़ी अभागिनी हूँ।

सुन्दरी पुष्पा सीढ़ी पर बैठ कर रोने लगी। उसकी आँखों से गालों पर ढुलक पड़ने वाले आँसू उसकी साड़ी का अञ्चल भिगोने लगे। कुसुम से यह दृश्य देखा न गया। उसने कहा—भैया अच्छे हो जायँगे भाभी! तुम इतना अधीर क्यों होती हो?

पुष्पा किसी तरह, चुप हुई। दोनों सरोज के पास आए। सरोज उस समय सो रहा था। आहट पाकर



कुँवरानी महाराजसिंह साहिबा

आप इलाहाबाद डिवीज़न के सुविख्यात कमिश्नर कुँवर महाराज-सिंह जी की धर्मपत्नी हैं। आप हाल ही में इलाहाबाद विश्व-विद्यालय-कार्ट की सदस्या नियुक्त हुई हैं।

उसने आँखें खोलीं। देखा—पुष्पा और कुसुम दोनों पास-पास खड़े हैं।

सरोज के शरीर में आग लग गई। वह तड़प उठा। चिल्ला कर बोला—पुष्पा! पुष्पा!! तुम सुख से मुझे मरने भी न दोगी? अब मैं बहुत दिनों तक न जिऊँगा पुष्पा! मेरे मर जाने पर फिर तुम कुसुम को लेकर सुख से रहना। मेरे जीते जी इतना न जलाओ। मुझसे सहा नहीं जाता।

कह कर सरोज रो पड़े। पुष्पा अवाक् रह गई। दौड़ कर वह पति के पास गई। बोली—स्वामी! तुम यह क्या कहते हो? आज क्या सुन रही हूँ?

रोते ही रोते सरोज ने कहा—मुझसे छिपा कर क्या करोगी पुष्पा? मैंने तुम पर बहुत विश्वास किया था। इसी का यह फल है। मैं सब जानता हूँ, मुझसे छिपा कर क्या करोगी?

एक क्षण में पुष्पा की समझ में सारी बातें आ गईं। क्रोध और अभिमान से उसने मस्तक तान लिया।



कुमारी पेड्डा कामेश्वरम्मा, बी० ए०

आप पूर्वीय गोदावरी कॉङ्ग्रेस कमिटी की प्रेज़िडेण्ट निर्वाचित हुई हैं।

फिर कुछ सोच कर ग्लानि से झुक गई। कुसुम पत्थर की तरह अचल खड़ा था। पुष्पा ने कहा—कुसुम! तुम जाओ भैया!

कुसुम मन्त्र-मुग्ध की तरह चला गया। पुष्पा भी तत्काल ही कमरे से बाहर हो गई।

५

पुष्पा ने सरोज से कुछ कहा नहीं, कुछ कह ही नहीं सकती थी। वह अपने कमरे में जाकर, उछलते हुए हृदय को तकिए से दबा कर, उच्छ्वसित क्रन्दन के आवेग को मुँह में कपड़ा ठूँस कर रोकते हुए अन्दर ही अन्दर फफक-फफक कर, छटपटा-छटपटा कर रोई। रोते-रोते उसने आधी से अधिक रात बिता दी। सारा बिछौना भीग गया था। तकिया आँसुओं से लथपथ हो गया था, जैसे पुष्पा के हृदय की सारी कोमल वृत्तियों का रस उसने चूस लिया हो। पुष्पा यह अविश्वास सह न सकती थी। उसके प्राण छटपटा रहे थे, उसका हृदय तड़प रहा था, उसका अन्तर उच्छ्वसित हो रहा था। उसे याद आया कि घर में तीव्र विष की एक शीशी अभी कल ही डॉक्टर दे गए हैं। सरोज की छाती में जो दर्द होता है, वह उसी की दवा थी। इस समय उसी का उपयोग करने का निश्चय करके पुष्पा उठ खड़ी हुई।

उसने पति के कमरे में प्रवेश किया। सरोज उस समय सो गए थे। पुष्पा ने दवा की शीशी अपने आँचल में छिपा ली, फिर पति की चारपाई के पास आई।

सरोज गाढ़ी नींद में था, साँस ज़ोर-ज़ोर से चल रही थी। शरीर निस्पन्द था, मुँह पर रोग का पीलापन छाया हुआ था। बीच-बीच में माथे पर सिकुड़न पड़ जाती थी। जान पड़ता था, जैसे नींद में भी वह सुखी नहीं है। तरह-तरह के विचारों की विभीषिका उसे डरा रही है। पुष्पा और न देख सकी। सहम कर वह दूर हट गई। इसी समय सरोज ने करवट बदली। साथ ही साथ एक लम्बी उसाँस उसके मुँह से निकल गई।

क्षण भर में फिर कमरे में निस्तब्धता छा गई। पुष्पा ने सरोज के चरणों में सिर झुका कर प्रणाम किया। मन ही मन कहा—तुम चाहे जितना अविश्वास करो, लेकिन ईश्वर जानता है, मन, वचन और कर्म से सदा, मैं तुम्हारी ही होकर रही हूँ। अब जब तुमने मुझ पर अविश्वास किया है, मेरा जीवन व्यर्थता से भर गया है। मैं जाती हूँ। इन चरणों से चिर-बिदा लेते हुए मन में जो क्लेश हो रहा है, उसे कौन स्पर्श कर सकेगा! मैं यह भी जानती हूँ कि आत्म-हत्या महापाप है, किन्तु जीवन मेरे लिए असह्य है।

इसी तरह की और भी न जाने कितनी बातें क्षण भर में पुष्पा के मन में आईं-गईं। फिर वह एक बार रोई। आँसुओं से पति का चरण धोया और फिर आँख मूँद कर एक घूँट में सारी शीशी खाली कर गई।

६

प्रातःकाल जब सरोज की नींद खुली, उसने पुष्पा का शव अपनी चारपाई के नीचे पाया। उसका सारा शरीर काला पड़ गया। आँखें अधखुली रह गई थीं, मुँह पर सदा की भाँति एक विषादमयी मुस्कराहट अब भी बनी हुई थी। देख कर सरोज अपनी बीमारी भूल गया।

पागल सा चारपाई से उछल कर वह पुष्पा के पास गया। हिला-डुला कर, नाक पर उँगली रख कर, हृदय की परीक्षा करके जब उसने देखा कि प्राण के अब कोई चिन्ह शेष नहीं रह गए हैं, तो वह फूट-फूट कर रोने लगा। पुष्पा पर उसने अविश्वास किया था ज़रूर, लेकिन उसके प्रति उसके मन में जो प्रेम था, वह अब भी अन्तर के किसी निभृत प्रदेश में जाग रहा था। उसने इस बात की कल्पना भी न की थी कि इस तरह पुष्पा को खो देना पड़ेगा। इसी से, इस अभावनीय घटना को देख कर वह स्थिर न रह सका।

रोकर जब वह कुछ हलका हुआ, उसने पास ही ज़मीन पर एक स्लिप पाया। उठा कर देखा तो वह पुष्पा का पत्र था, जो कुसुम के नाम लिखा गया था। सरोज ने उसे पढ़ा—

"भैया,

मैं इस समय बड़ी विपत्ति में हूँ। असहाय हूँ। सहायता करने वाला कोई दीखता नहीं। उनकी तबियत दिन पर दिन बिगड़ती जाती है। मुझसे कुछ कहते नहीं हैं। मैं तो चिन्ता के मारे पागल हुई जाती हूँ। इस समय तुम्हारे सिवा और किसे याद करूँ? इतने दिन से तुम आए क्यों नहीं? विश्वास है, इस विपत्ति के समय तुम मेरी रक्षा करोगे।

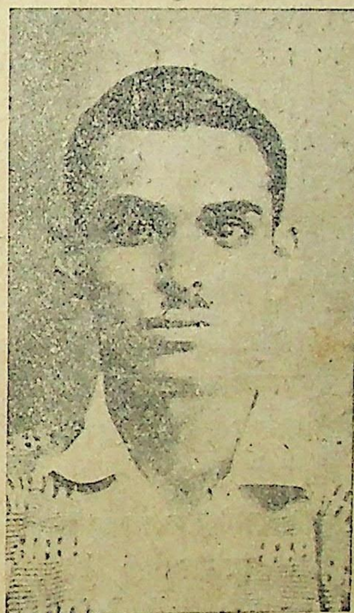
एकमात्र तुम्हारी बहिन—पुष्पा"

पत्र पढ़ कर सरोज की आँखें सिर पर चढ़ गईं। तब क्या वह जो कुछ समझता था, सब भ्रम था? क्या उसी के अमूलक सन्देह ने प्यारी पुष्पा के प्राण लिए हैं? हाय! वह अपनी आँखों पर कैसे अविश्वास करे?

उस समय सरोज के मन की जो अवस्था थी, उसका वर्णन करना आसान नहीं है। दिन भर वह शव को अगोरता रहा। रात्रि के अन्धकार में—पड़ोसियों की सहायता से—शव का संस्कार किया गया। सरोज के हृदय को सदा के लिए अन्धकार से भर कर पुष्पा किसी दिव्य आलोक में विलीन हो गई।

७

सरोज को अपनी भूल मालूम हो गई—लेकिन कितनी देर से? अभी भी कभी-कभी उसके मन में दुविधा का बवण्डर उठ खड़ा होता था, लेकिन पुष्पा के अभाव में सारा संसार उसके लिए सूना था। जिस कमरे में पुष्पा मरी थी, वह अब सरोज का उपासना-गृह था।



श्री० फ़िरोज़ पी० नाज़िर

आप जी० आई० पी० रेलवे के बिजली के इञ्जीनियर हैं। हाल ही में आपको कराची ऐरो क्लब से वायुयान चलाने का 'ए' श्रेणी का लाइसेन्स मिला है।

सदा वह उसमें ताला बन्द रखता और जब-तब उसमें जाकर चुपचाप उसकी स्मृति में चार आँसू बहा आया करता था। जिस दिन उस कमरे का दरवाज़ा खुलता, उस दिन सरोज के लिए अतीत की डायरी का एक पृष्ठ खुलता था। हाय! उन दिनों की स्मृति भी कितनी मधुर थी!!

कमरे के फ़र्श पर एक चौकी थी। चौकी पर पुष्पा की एक बस्ट फ़ोटो रक्खी हुई थी। उसके नीचे उसी के

अक्षरों में उसका नाम लिखा हुआ था। जब कभी सरोज वह कमरा खोलता तो उसे अतीत के न जाने कितने हास-विलास, मान-अभिमान और कितने क्रीड़ा-सोहाग की कहानियाँ याद आ-आकर विह्वल बना देती थीं।

एक दिन दोपहर को डाकिया एक बीमा दे गया। बीमा पुष्पा के नाम था और कानपुर से भेजा गया था। खोल कर सरोज ने देखा—दो सौ रुपए के नोट और एक चिट्ठी थी। चिट्ठी कुसुम की थी। सरोज ने पढ़ा :—

"मैं उसी दिन शहर छोड़ कर चला आया। जीवन में शायद फिर कभी तुम्हारे चरणों का दर्शन न कर सकूँगा। रुपए तुम्हें वापस भेज रहा हूँ। यदि तुम उस दिन मेरी सहायता न करतीं, तो शायद आज संसार में मेरा अस्तित्व न होता। और एक बात और भी। मैंने तुम्हारे कान में जो बात कही थी, वह सच ही निकली। ईश्वर जानता है, मैंने अपनी ओर से कुछ भी नहीं किया। इति।"

पत्र पढ़ कर सरोज के मन का सारा सन्देह जाता रहा। उसने एक लम्बी उसास ली। कहा—सचमुच अब कभी उस देवी के दर्शन न कर सकोगे कुसुम !!

८

कितने दिन बीत गए। सारा संसार समय के प्रवाह में बहता जाता है, लेकिन सरोज के हृदय में एक चिनगारी सुलगा करती है। एक दिन एक मित्र ने पूछा कि तुमने उस कमरे को बन्द क्यों कर रक्खा है सरोज ?

सरोज ने उत्तर दिया—वह मेरे वैभव की समाधि है भाई !

उसके उत्तर में कितनी वेदना थी, कितना दर्द !! ओह !!!

"प्रेम करना है सत्य विचार"*

[श्री० श्यामापति जी पाण्डेय, बी० ए०]

प्रेम ही है जीवन का सार,
प्रेम करना है सत्य विचार।
प्रेम के मतवाले संसार
सम्हल कर करना यह व्यापार॥
इसी में है जीवन का खेल
खेल कर लो कष्टों को झेल।
साधना ही जीवन का प्राण
इसीसे पा सकते निर्वाण॥
सुखी तो है सारा संसार,
यहाँ दुख है केवल अज्ञान।
त्याग ही है सच्चा आनन्द,
प्रेम ही है देता यह ज्ञान॥

आत्म-विस्मृति इसका परिणाम,
मुक्ति इससे पाता संसार,
और जीवन के सारे मोह,
हैं दुखों के केवल आगार॥
"निशा करती है नियमित प्यार
चन्द्र से मिल कर सौ-सौ बार।"
कालिमा हो जाती है दूर,
सुखों की हो जाती आगार॥
प्रेम में होता है परिताप,
किन्तु इसमें है चिर-आनन्द।
स्वार्थ जल कर हो जाता भस्म,
नष्ट होते हैं सारे द्वन्द॥

प्रेम से मिलते हैं भगवान,
प्रेम करता अमरत्व प्रदान।
यही है सत्य, शान्ति का द्वार,
यही केवल जीवन का सार॥

* 'चाँद' के दिसम्बर के अङ्क में प्रोफ़ेसर रामकुमार वर्मा, एम० ए० की 'प्रेम करना है पापाचार' शीर्षक कविता प्रकाशित हो चुकी है। उपर्युक्त कविता उसी के उत्तर में लिखी गई है।

शिशु-पालन के प्राकृतिक उपाय

[श्री० रतनलाल जी मालवीय, बी० ए०]

"I am the baby—my mission is to leave the earth a better place than I found. I want to live, laugh, love, work and play. I need pure milk and fresh air. If you will make my way easy now, I will help you when I grow up. I am your hope, I am the baby."

—*Cry of a Child*

"मैं शिशु हूँ—मेरे जीवन का उद्देश्य, पृथ्वी को जैसा पाया है उससे अधिक समुन्नत छोड़ जाना है। मैं रहना, हँसना, प्रेम करना, काम करना और खेलना चाहता हूँ। मुझे शुद्ध दूध और ताज़ा हवा की आवश्यकता है। यदि तुम इस समय मेरा मार्ग सुगम बना दोगे तो बड़ा होने पर मैं तुम्हारी सहायता करूँगा। मैं तुम्हारी आशा हूँ, मैं शिशु हूँ।"

—एक शिशु का करुण-क्रन्दन

भारत की स्वास्थ्य-समस्याओं में सब से अधिक भयङ्कर समस्या है, यहाँ के बच्चों की भयानक मृत्यु-संख्या। संख्या-शास्त्रज्ञों ने हिसाब लगा कर बतलाया है कि हर साल कम से कम २० लाख भारतीय बच्चे अपने शैशव-काल में ही कुछ दिनों सूर्य का प्रकाश देख कर अपनी जीवन-लीला समाप्त कर देते हैं! और शेष जो अपने सौभाग्य या दुर्भाग्य से किसी प्रकार जीवित रह जाते हैं, वे अस्वस्थ वायु-मण्डल में पालित-पोषित होने के कारण भारत के बन्धन दृढ़ करने और उसके दुखों की मात्रा बढ़ाने के लिए ही विकसित होते हैं। बच्चों के सम्बन्ध में बहुत से मातृ-मन्दिर खुलने और सुधार की अन्य आयोजनाएँ होने पर भी भारत में उनकी मृत्यु-संख्या संसार के हर एक देश से अधिक है। निम्न अङ्कों से संसार के मुख्य-मुख्य शहरों के बच्चों की प्रति सहस्र मृत्यु-संख्या से भारत का मिलान कर इस दुर्दशा का सहज ही में अनुमान लगाया जा सकता है:—

बम्बई	...	...	४५०
कलकत्ता	...	...	३१७
इलाहाबाद	...	...	२६५
मास्को	...	...	१७७
बर्लिन	...	...	९२
पेरिस	...	...	८९
शिकागो	...	...	७७
लन्दन	...	...	६६
न्यूयार्क	...	...	६४

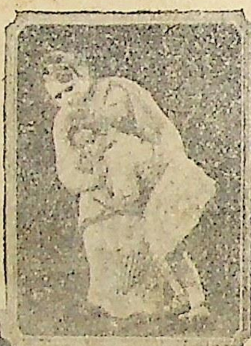
जिस देश के स्त्री-पुरुष अपने बच्चों की भी रक्षा नहीं कर सकते, उसके पतन की सीमा का अन्त ही समझना चाहिए। परन्तु यह दोष माता-पिता का नहीं, उस ग़ुलामी का है, जो उन्हें शिक्षाभाव के कारण स्वास्थ्य, आरोग्य और सुखद जीवन के साधारण नियमों से भी अनभिज्ञ रखती है। इस लेख में बच्चों की रक्षा के सम्बन्ध में कुछ ऐसे ही प्राकृतिक नियमों का उल्लेख किया जायगा, जिनका ज्ञान प्राप्त कर वे इस भयावह मृत्यु-संख्या को कम कर सकते हैं।

शिशुओं का व्यायाम

बच्चों की मृत्यु के दो कारण हो सकते हैं। एक तो उनके स्वास्थ्य और आरोग्य सम्बन्धी नियमों की अनभिज्ञता, और दूसरा माता-पिता की उदासीनता। यदि संसार का प्रकाश देखने के दिन बच्चे के शरीर में जीवन स्थिर रखने के योग्य जीवनी शक्ति है, तो उसका समुचित पालन-पोषण होने पर उसकी मृत्यु होना असम्भव है। और यदि उसे नियमित रूप से उपयुक्त आहार दिया जाता है, अपने नन्हें-नन्हें हाथ-पाँव चलाने की स्वाभाविक स्वतन्त्रता मिलती है और वह मैदानों की स्वच्छ, प्राणप्रद वायु का उपभोग कर सकता है, तो उसे दिन-प्रतिदिन जीवनी-शक्ति और बल सञ्चित करते जाना चाहिए।

जिस प्रकार जीवन को आदर्श बनाने के लिए बच्चों

को अच्छी आदतें डालने और उनमें सद्विचार भरने की आवश्यकता पड़ती है, उसी प्रकार उनमें स्वस्थ और बलिष्ठ पुरुषत्व की नींव डालने के लिए भी प्रारम्भ से ही उनके अङ्गों का व्यायाम प्रारम्भ कर देना अत्यन्तावश्यक है। नवजात शिशुओं का सब से अच्छा व्यायाम उन्हें पेट के बल औंधा लिटाना है। माताएँ अपने बच्चों को प्रायः सीधा लिटाती हैं और उन्हें औंधा लिटाने में आपत्ति करती हैं। वे कहती हैं कि इससे बच्चों की साँस रुक



बच्चे को अपने घुटनों पर औंधा लो और अपना एक हाथ उसके पेट के नीचे रक्खो। फिर बच्चे के गले में उङ्गली डाल कर उस समय तक कै कराओ जब तक उसका पेट बिल्कुल खाली न हो जाय।



इस चित्र में पेट की पट्टी बाँधने की रीति समझाई गई है। उबलते हुए पानी में दोनों छोर पकड़ कर तौलिया डुबाओ और उसे निचोड़ कर सहती-सहती बच्चे के पेट और छाती के चारों ओर लपेट दो।



चित्र के अनुसार यदि गरम पट्टी के साथ गर्म पानी भर कर बोतल बच्चे के पेट या पीठ पर बाँध दी जाय तो उससे उसका प्रभाव बहुत बढ़ जायगा।

जाती है और उनका दम घुटने लगता है। परन्तु उनके कथन में कोई सार नहीं मालूम होता। औंधी स्थिति में सोते समय बच्चे अपने आप एक कनपटी के सहारे लेट जाते हैं, जिससे उनकी नाक बन्द नहीं होने पाती और इस प्रकार उनकी दम घुटने का डर नहीं रहता। माताओं को बच्चा उत्पन्न होने के कुछ ही दिनों बाद व्यायाम प्रारम्भ कर देना चाहिए। उस समय तक न ठहरना चाहिए, जब बच्चे में स्वयं औंधने और करवट लेने की शक्ति आ जाती है!

औंधी स्थिति में सुलाने से प्रारम्भ से ही बच्चों की रीढ़ का दृढ़ होना आरम्भ हो जाता है, क्योंकि जैसे ही वे अपनी छोटी सी नर्म तकिया पर से सिर ऊपर उठाते हैं, उन्हें रीढ़ पर कुछ न कुछ ज़ोर अवश्य लगाना पड़ता है और इसी प्रकार बल-प्रयोग करने में उनकी रीढ़ का व्यायाम हो जाता है। जिन्हें शरीर की रचना का थोड़ा भी ज्ञान है, वे यह अच्छी तरह समझते हैं कि बलिष्ठ रीढ़ का स्वास्थ्यप्रद प्रभाव सम्पूर्ण शारीरिक अवयवों पर पड़ता है।

शिशुओं के वस्त्र

सर्दी और ज़ुकाम आदि के भय से सदैव बच्चों को कपड़ों में लपेटे रहने या उन्हें अधिक वस्त्र पहना देने से वास्तव में उनका दम घुटने लगता है। इससे एक तो उन्हें शुद्ध प्राणप्रद वायु नहीं मिलने पाती और दूसरे उसकी हाथ-पाँव हिलाने की स्वतन्त्रता में बाधा आती है। इसका परिणाम यह होता है कि शिशु अपने विकास के लिए समुचित जीवनी-शक्ति संग्रहीत नहीं करने पाता।

माताओं की इस युक्ति से हम पूर्णरूप से सहमत हैं कि बच्चों को गरम रखने की अत्यन्त आवश्यकता है। परन्तु एक तो भारत की गर्म आबोहवा में ठण्ढ का विशेष डर नहीं रहता; और यदि शीत-काल में गरम रखने की विशेष आवश्यकता भी पड़े, तो उन्हें अधिक कपड़ों में लपेटने की अपेक्षा उनके रहने का स्थान गरम रखना अधिक श्रेयस्कर है। बच्चों के पहिनने के वस्त्र इतने ढीले होने चाहिए कि उनसे उनके सञ्चालन में किसी प्रकार की बाधा न पहुँचने पावे। बच्चों को गरम रखने या सर्दी से बचाने के लिए चारों ओर से बन्द कर वायु का प्रवेश बिल्कुल न रोक देना चाहिए। उनके विकास के लिए जितनी शुद्ध वायु की आवश्यकता पड़ती है, उतनी युवकों के लिए नहीं पड़ती। परन्तु भारतीय माताएँ अपने बच्चों को प्रायः कमरे में बिल्कुल बन्द कर ही गरम रखती





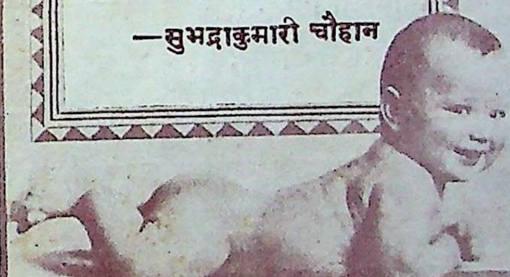
भावी आशा





परिचय पूछ रहे हो मुझसे,
कैसे परिचय दू इसका ?
वही नान सकता है इसको;
माता का है दिल जिसका !

—सुभद्राकुमारी चौहान



माताओं को अन्यत्र प्रकाशित शिशु-पालन सम्बन्धी लेख ध्यान से पढ़ना चाहिए ।



THE ART PRINTING COTTAGE ALLAHABAD

मालिका

जिसके रचयिता हैं—हिन्दी-संसार के सुपरिचित कवि और लेखक—

पं० जनार्दनप्रसाद झा, 'द्विज' बी० ए०

यह वह 'मालिका' नहीं, जिसके फूल मुरझा जायँगे, यह वह 'मालिका' नहीं, जो दो-एक दिन में सूख जायगी; यह वह 'मालिका' है, जिसकी ताजगी सदैव बनी रहेगी। इसके फूलों की एक-एक पङ्खुरी में सौन्दर्य है, सौरभ है, मधु है, मदिरा है। आपकी आँखें तृप्त हो जायँगी, हृदय की प्यास बुझ जायगी, दिमाग़ ताजा हो जायगा, आप मस्ती में झूमने लगेंगे।

आप जानते हैं, द्विज जी कितने सिद्धहस्त कहानी-लेखक हैं। उनकी कहानियाँ कितनी करुण, कोमल, रोचक, घटनापूर्ण, स्वाभाविक और कवित्वमयी होती हैं। उनकी भाषा कितनी वैभवपूर्ण, निर्दोष, सजीव और सुन्दर होती है। इस संग्रह की प्रत्येक कहानी करुण-रस की उमड़ती हुई धारा है, तड़पते हुए दिल की जीती-जागती तस्वीर है। आप एक-एक कहानी पढ़ेंगे और विह्वल हो जायँगे; किन्तु इस विह्वलता में अपूर्व सुख रहेगा।

इन कहानियों में आप देखेंगे मनुष्यता का महत्व, प्रेम की महिमा, करुणा का प्रभाव, त्याग का सौन्दर्य! आप देखेंगे कि प्रत्येक कहानी के अन्दर लेखक ने किस सुगमता और सचाई के साथ ऊँचे आदर्शों की प्रतिष्ठा की है।

इसलिए हमारा आग्रह है कि आप 'मालिका' की एक प्रति अवश्य मँगा लीजिए, नहीं तो इसके बिना आपकी आलमारी शोभाहीन रहेगी। हमारा दावा है कि ऐसी पुस्तक आप हमेशा नहीं पा सकते। अभी मौक़ा है—मँगा लीजिए! मू० केवल ४) रु०

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

है। केवल इस क़ैद में न जाने कितने बच्चे अपने प्राणों की आहुति देते हैं।

माता के और अन्य दुग्ध की उपयोगिता

बच्चों की रक्षा की अन्य समस्याओं में उसके भोजन की समस्या सब से अधिक महत्वपूर्ण है। पाश्चात्य सभ्यता के प्रवाह में बह कर भारतीय माताएँ भी अपने बच्चों को प्रायः रबरदार शीशियों से दूध पिलाने लगी हैं। उनकी कुछ ऐसी धारणा हो गई है कि बच्चों को अपना दूध पिलाने से यौवन ढल जाता है। अपनी इस आशङ्का के भय से वे अपने प्यारे बच्चों को उस पुष्टि से वञ्चित रखती हैं, जिसके अभाव में उन्हें जीवन भर निर्बल, रोगी और अविकसित रहना पड़ता है। बहुत सी सभ्य और धनवान कुटुम्ब की महिलाएँ अपने बच्चों को दूध पिलाने के लिए धाय रख लेती हैं; परन्तु इस उपाय के अवलम्बन से बच्चे उसके घातक प्रभाव से नहीं बच सकते। उससे उनका शरीर भले ही पुष्ट बना रहे, परन्तु उनकी मनोवृत्ति भ्रष्ट हो जाती है और उनमें माता के गुण अधिक मात्रा में प्रवेश नहीं करने पाते। भारत के सभी स्त्री-पुरुष इस बात पर विश्वास करते हैं कि माताएँ अपने बच्चों को दूध पिलाते समय ही उनमें उन सद्गुणों का प्रवेश करती हैं, जो आगे चल कर उसके जीवन का आदर्श स्थापित करते हैं। इसी समय माता के हृदय की सुखद लालसाओं, सद्भावनाओं और संस्कृति की बच्चे के हृदय पर छाप लगती है। शिशु-काल के इन्हीं प्रभावों की संग्रहीत शक्ति, युवा होने पर, उसके चरित्र का निर्माण करती है और जीवन में उसकी पथ-प्रदर्शिका बनती है। इसलिए जहाँ तक हो सके, बच्चों को धाय से दूर रखना ही श्रेयस्कर है। परन्तु यदि माता के रोगी या निर्बल होने, या दूध की न्यूनता और अन्य किसी कारणवश धाय रखने की आवश्यकता प्रतीत हो, तो उसका चुनाव बड़ी सावधानी से करना चाहिए। धाय ऐसी हो कि जिसमें आदर्श माता बनने और जीवन को सत्पथ पर लगाने वाले सभी गुण मौजूद हों। इस चुनाव के समय यह कभी न भूलो कि संसार में माता ही बच्चे की सर्वश्रेष्ठ गुरु होती है और धाय माता का यह सर्वोत्कृष्ट आसन ग्रहण कर रही है।



रोग के आकस्मिक आक्रमण के समय गर्म पानी की बोतलों के उपयोग के द्वारा शरीर की गर्मी सुरक्षित रक्खी जा सकती है। काँच की बोतल जब बच्चे के शरीर पर लगाई जायँ तब उन्हें किसी तौलिया या अन्य कपड़े में लपेट देना चाहिए।



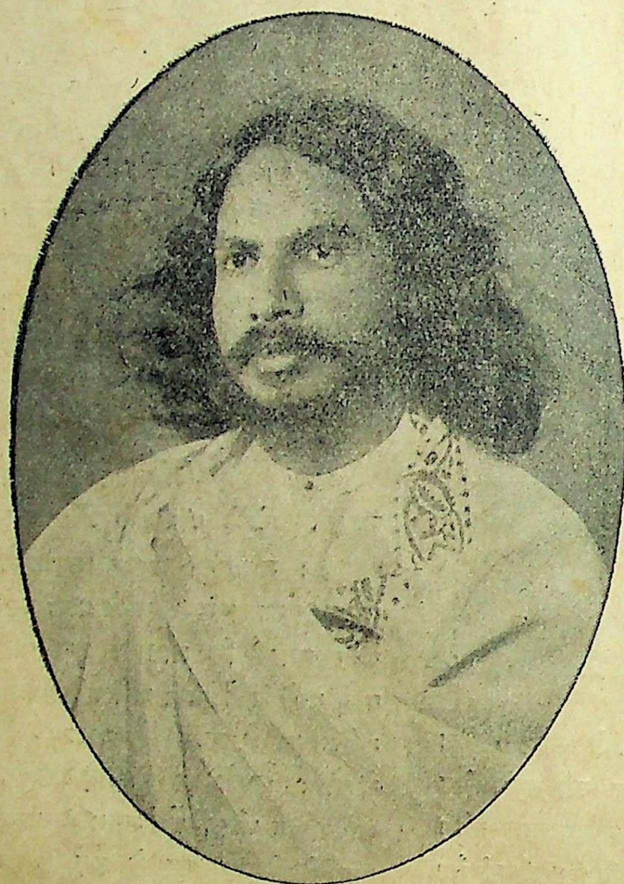
रीढ़ पर गरम पट्टी बाँधते समय तौलिया उबलते हुए पानी में भिगो कर उसे ख़ूब निचोड़ लो, जिससे वह सूखी सी मालूम पड़ने लगे। चित्र में उसके उपयोग की विधि बतलाई गई है। इस पट्टी का शरीर के समस्त स्नायु-मण्डल पर अत्यन्त लाभदायक प्रभाव पड़ता है।

प्रायः सभी परिस्थितियों में माता का दूध बच्चे के पोषण के लिए श्रेयस्कर है। माता की अस्वस्थावस्था को छोड़ कर साधारण रीति से प्रायः यही देखा गया है कि माता का दूध पीने वाले बच्चों में जितनी अधिक जीवनी-शक्ति होती है, उतनी किसी अन्य रीति से पोषित बच्चों में नहीं। यदि अस्वस्थ, अविकसित और निर्बल माता के दूध में बच्चे के पालन-पोषण के सब तत्व न मिल सकें, तो ऐसी परिस्थिति में दूसरा नम्बर बकरी या गाय के दूध का आता है। बच्चों की असाधारण मृत्यु-संख्या का एक कारण उन्हें अस्वाभाविक रीति से पोषित करना भी है। इसलिए पालन-पोषण में प्राकृतिक उपायों का जितना अधिक अवलम्बन किया जायगा, उनके लिए वह उतना ही अधिक हितकर है।

दुबले शिशुओं को मोटा-ताज़ा करने के उपाय

एक बार एक प्राकृतिक चिकित्सक किसी बच्चे की चिकित्सा के लिए गया। उसकी आयु आठ मास की थी

और उसका वज़न ३॥ सेर से कुछ ही अधिक। शरीर हड्डियों का ढाँचा मात्र था। उसके भोजन के सम्बन्ध में ख़ूब जाँच कर चुकने के बाद डॉक्टर ने यह निष्कर्ष निकाला कि उसे पानी समुचित मात्रा में नहीं मिलता। उसने बच्चे को तीन-तीन घण्टे के उपरान्त तीन से चार



पं० देवकीनन्दनसिंह दीक्षित

आप बनारस ज़िले के एक धनाढ्य ज़मींदार के लड़के हैं। काकोरी-दिवस के उपलक्ष में की गई कलकत्ते की एक सभा में आपत्ति-जनक भाषण देने के कारण आपको एक वर्ष की सख़्त सज़ा हुई थी। हाल ही में आप जेल से छूट कर आए हैं।

छटाँक तक गाय के शुद्ध दूध का आहार और हर एक आहार के डेढ़ घण्टे बाद थोड़ा शहद या शक्कर मिला हुआ मीठा पानी भी उतनी ही मात्रा में देने के लिए कहा। इस उपचार के परिणाम-स्वरूप बच्चे का वज़न प्रति सप्ताह एक पौण्ड बढ़ने लगा और कुछ ही दिनों में अपना साधारण वज़न प्राप्त कर लेने पर वह मोटा-ताज़ा दिखने लगा।

बच्चों को आवश्यकता से अधिक खिला देना प्रत्येक माता के लिए साधारण सी बात है। जब कभी उन्हें बच्चे में जीवनी-शक्ति का ह्रास मालूम पड़ता है, तभी वे उसके विकास के लिए बच्चे के भोजन की मात्रा बढ़ा देती हैं। वास्तव में, इस स्थिति में, बच्चे को अधिक भोजन की नहीं, अधिक पानी की आवश्यकता है। उचित तो यह है कि पेट को भोजन से लादने की अपेक्षा उसे एक-दो दिन का आराम दे दिया जाय।

अपने नन्हें से बच्चे को उपवास कराने के विचार-मात्र से बहुत सी माताएँ भयभीत हो जायँगी। परन्तु कभी-कभी ऐसी परिस्थिति आ जाती है कि बच्चे का बिगड़ा हुआ स्वास्थ्य लौटाने के लिए इसके अतिरिक्त कोई दूसरा मार्ग ही नहीं रह जाता। ऐसे अवसर पर बच्चे को दूध न देकर थोड़ी शक्कर या शहद मिले हुए पानी से ही उसकी पूर्ति की जा सकती है। इस उपाय से पूर्ण उपवास के हानिप्रद प्रभाव की आशङ्का भी न रहने पावेगी और पेट को आराम भी पहुँच जायगा। समय-समय पर इस प्रकार के उपवास बच्चों के स्वास्थ्य के लिए बहुत हितकर होते हैं।

जो माताएँ अपने बच्चों को बोतल से दूध पिलाती हैं, उन्हें यह सदैव याद रखना चाहिए कि दूध उन्हें जितने धीरे-धीरे और जितनी देर में पिलाया जायगा, वह उतनी ही जल्दी पच भी जायगा। और इसलिए बच्चों को दूध जल्दी पी लेने की सुविधा के लिए शीशियों में रबर की चुसनी न लगाना चाहिए। यदि चुसनी लगाना ही है तो इतने बारीक छेद की लगाना चाहिए कि दूध की पूरी ख़ुराक पीते उन्हें कम से कम पन्द्रह मिनट लगें।

बच्चों की निर्बलता और दुबलेपन का सब से बड़ा कारण वर्तमान अङ्गरेज़ी दवाइयों का अधिकाधिक उपयोग है। बड़े से बड़ा डॉक्टर किसी औषधि के सम्बन्ध में यह निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता कि वह रोगी को चङ्गा

कर देगी। वे तो एक प्रकार के प्रयोग हैं, जिनका परिणाम अनिश्चित रहता है, वह प्रयोग चाहे युवा पुरुष पर ही क्यों न किया गया हो। फिर ऐसी अनिश्चित औषधियों का प्रयोग बच्चों के कोमल शरीर पर करना अत्यन्त हानिकारक है। इन दवाइयों की तरह अफ़ीम के उपयोग का भी बच्चों पर अत्यन्त घातक प्रभाव पड़ता है। जब बच्चों के किसी अङ्ग में पीड़ा होती है या बीमारी की बाढ़ आती है, तब अफ़ीम के सहारे उन्हें शान्त कर सुलाने का जितना अधिक प्रयत्न किया जायगा, उनकी जीवनी-शक्ति का भी उतना ही अधिक ह्रास होगा।

अपने बच्चे को पानी अधिक मात्रा में पिलाओ

दुर्भाग्य से जिन शिशुओं को अपनी माता का दूध नसीब नहीं होता और गाय या बकरी के दूध पर निर्भर रहना पड़ता है, उन्हें पानी बहुत अधिक मात्रा में पिलाना चाहिए। यदि माँ का दूध पीने वाले शिशुओं को भी पानी अधिक मात्रा में पिलाया जाय तो कोई हानि नहीं है। थोड़ी शक्कर या शहद मिला कर उसे रुचिकर बना देने से बच्चे यह पानी बड़े चाव से पीते हैं। इसके साथ ही जितना अधिक हो सके, उसे शुद्ध वायु में रक्खो। उसे इतनी शारीरिक स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए कि जिससे मुड़ने, औंधने, घूमने और हाथ-पैर चलाने में उसे कोई रुकावट न हो। यदि इन आवश्यक नियमों के पालन के साथ ही आवश्यकता पड़ने पर उपर्युक्त प्रकार का उपवास करा दिया जाय तो उनका पिण्ड बहुत से रोगों से छूट जाय। यद्यपि, इन साधारण से नियमों के स्वास्थ्यप्रद प्रभाव का माता-पिता उसी क्षण अनुभव न कर सकेंगे, पर उनके पालन से वे अपने शिशुओं के सम्बन्ध में सदैव निश्चिन्त रहेंगे। उनका स्वस्थ, बलिष्ठ और जीवनी-शक्तिपूर्ण शरीर, प्रफुल्लित और मुस्कान भरा चेहरा, सुर्ख़ गाल और ओजपूर्ण चमकीली आँखें देख कर उन्हें अपने जीवन में सन्तोष और आनन्द मिलेगा।

जब बच्चा अपनी शैशवावस्था समाप्त कर बाल्यावस्था में पदार्पण करता है या उसकी दूध पीने की आयु समाप्त हो जाती है, तब उसके भोजन के चुनाव में बड़ी उलझनें आती हैं। परन्तु यदि उसके भोजन के सम्बन्ध में निम्न बातों का ध्यान रक्खा जाय, तो हानि की बहुत कम सम्भावना रह जाती है।

प्रत्येक बालक को दिन में नियमित रूप से तीन बार भोजन देना पर्याप्त है; इनके बीच में उसे कोई चीज़ किसी परिस्थिति में खाने को न देना चाहिए। यदि उनमें प्रारम्भ से ही भोजन-सम्बन्धी इस साधारण नियम की आदत डाल दी जायगी तो ऐसे बहुत कम अवसर



डॉक्टर बी० के० दास, डी० एस-सी० (लन्दन)

आप कलकत्ता विश्वविद्यालय के ज़ूलोजी विषय के प्रतिभाशाली प्रोफ़ेसर हैं, जिन्हें विलायत से अपनी विशेष योग्यता के कारण कई स्वर्ण-पदक तथा अन्य वस्तुएँ भेंट की गई हैं।

आएँगे जब उसे बीच में भोजन की आवश्यकता पड़ेगी। भोजन के इस नियम के उल्लङ्घन से ही बच्चों पर रोगों का आक्रमण शीघ्र होता है। शरीर के अन्य अवयवों की नाईं पेट को विश्राम देने की आवश्यकता होती है और इसकी अवहेलना का परिणाम यह होता है कि पाचन-क्रिया शरीर पर बिना किसी हानिकारक प्रभाव के अपना कार्य सुचारु रूप से नहीं चला सकती।

क्या रोगी बच्चे को बिस्तर पर लिटाए रखना चाहिए ?

बच्चे स्वभाव से ही चञ्चल होते हैं और अपने इस स्वभाव के कारण, जब तक वे असमर्थ नहीं हो जाते, बिस्तरों पर लेटने का नाम नहीं लेते। परन्तु प्रायः देखा जाता है कि माताएँ रोगावस्था में बच्चों को कपड़ों में लपेट कर बिस्तरों में ज़बरदस्ती लिटाए रखने का प्रयत्न करती हैं। इससे बच्चों को लाभ के बदले हानि होती है। जब तक बच्चे में आराम की इच्छा स्वयं उत्पन्न न



मि० एच० ब्लैकर, सेशन्स-जज

आप ही लाहौर के नए षड्यन्त्र-केस के ट्रिब्यूनल के प्रधान जज नियुक्त किए गए हैं।

हो, तब तक उसे ज़बरदस्ती सुलाने का प्रयत्न न करना चाहिए। यदि बच्चे में समुचित चञ्चलता है और बीमार होने पर भी वह उठने की इच्छा करता है तो स्वतन्त्रता देने ही में वह शीघ्र निरोग हो सकता है।

सुप्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक बर्नर मैकफ़ेडन का कहना है कि 'जब मेरी कोई बच्ची बीमार पड़ती है उस समय यदि वह बिस्तरों पर लेटे रहना चाहती है, तो उसे लेटने दिया जाता है और यदि वह बाहर जाकर खेलना चाहती है तो उसकी प्राकृतिक इच्छाओं की पूर्ति की जाती है, क्योंकि यह चञ्चलता उसकी उस समय की शारीरिक आवश्यकताओं की द्योतक है। मनुष्य के अन्तःकरण की स्वाभाविक प्रेरणाएँ ही उसकी सर्वोत्कृष्ट पथ-प्रदर्शिका हैं। यह सिद्धान्त विशेषतः शैशवावस्था और बाल्यावस्था में अक्षरशः सत्य सिद्ध होता है। जितने जीर्ण रोग होते हैं, उनका प्रधान कारण शरीर में विषाक्त पदार्थों का एकत्रित हो जाना है; इसलिए बच्चे को बिस्तरों में लिटा कर उसके अङ्गों का सञ्चालन बन्द न करना चाहिए। उसे इच्छानुसार घूमने-फिरने और खेलने दो; इससे आमाशय उत्तेजित होगा और बिना किसी औषधि के सहारे विषाक्त पदार्थ बाहर निकल जाने पर बच्चा स्वयं स्वस्थ हो जायगा।

असाध्य रोगों में प्राकृतिक उपचार

कभी-कभी ऐसे अवसर आ जाते हैं, जब आपका बच्चा किसी असाध्य रोग के आक्रमण से बिस्तर पर पड़ा हुआ अपने जीवन की अन्तिम घड़ियाँ गिनता रहता है और आप असहाय होकर एक दुख-भरा निःश्वास छोड़ने के सिवाय और कुछ नहीं कर सकते।

यदि आपके बच्चे का रोग बढ़ गया है, अचानक उसे सर्दी, लाल बुख़ार, जूड़े आदि ने धर दबाया है और डॉक्टर बच्चे की रक्षा के लिए ठीक समय पर न आ सके, तो ऐसी परिस्थिति में आपका सब से पहला कर्तव्य बच्चे को क़ै करा कर उसका पेट ख़ाली कर देना है। क़ै कराने का सब से सरल उपाय यह है। बच्चे को अपने घुटनों पर औंधा कर उसके गले में अँगुलियाँ डालो और पेट दबाते जाओ। इससे उसे क़ै अवश्य हो जायगी।

इसके बाद कमरे की खिड़कियाँ बिल्कुल खोल दो और कमरे में प्राणप्रद वायु का ख़ूब प्रवेश होने दो। शुद्ध वायु में जीवन-रक्षक ऑक्सिजन की मात्रा अधिक रहती है, यदि बच्चे को ऑक्सिजन समुचित मात्रा में मिलता रहे तो उसमें रोग-निवारक शक्ति स्वयं संग्रहीत हो जाती है।

बच्चे को रोगावस्था में गर्म रक्खो और जहाँ तक हो सके सर्दी से बचाओ। परन्तु इसका मतलब उसे किवाड़ लगा कर किसी कमरे में बन्द कर देना नहीं है। शुद्ध वायु और प्रकाश के प्रवेश के लिए खिड़कियों का

खुला रहना अत्यन्तावश्यक है। शरीर गरम रखने के लिए गरम कपड़ों का ही विशेष उपयोग करना चाहिए।

इसके बाद बच्चे के पेट पर गरम पट्टी बाँध दो। एक साधारण तौलिया लो और उसके दोनों छोर पकड़ कर उबलते हुए पानी में डुबा दो। फिर उसे निचोड़ कर उसकी तह बना लो और बच्चे की जाँघों से लेकर हाथों की काँखों तक सहती-सहती पट्टी बाँध दो। इस बात का सदैव ध्यान रक्खो कि बच्चा जलने न पावे; वह जितनी गर्मी सह सके तौलिया उतनी ही गर्म रहे। बुख़ार की दशा में या अन्य कारणों से ताप-क्रम बढ़ जाने पर महात्मा गाँधी ने अपनी 'आरोग्य-साधन' पुस्तक में तौलिया या चद्दर ठण्डे पानी में डुबा कर शरीर से लपेटने की सलाह दी है और उससे लाभ भी होता है; परन्तु प्राकृतिक चिकित्सकों का विश्वास गरम पट्टी पर अधिक है। उनका कहना है कि गरम पट्टी से पसीना इतना ज़्यादा निकलता है कि इससे शरीर की गर्मी शीघ्र निकल जाती है। ठण्डी पट्टी से कभी-कभी हानि की भी सम्भावना है और प्रायः भारत की माताएँ ऐसे उपचार से भयभीत और अत्यन्त सशङ्कित रहा करती हैं। गरम पट्टी का न तो वे अधिक विरोध ही करती हैं और न उससे हानि की ही कोई सम्भावना है।

गरम पट्टी के प्रयोग के पहले या बाद में शीघ्र ही बच्चे को 'रेक्टल साइरिञ्ज' (Rectal Syringe) से एक हलका सा एनीमा दे देना चाहिए। इससे पेट के नीचे की आँतों की सफ़ाई में बहुत सहायता मिलेगी। इसके बाद बच्चे को ख़ूब आराम करने दो। बहुत अधिक उपचार से भी कभी-कभी मृत्यु हो जाती है। किसी आकस्मिक आपत्ति से छुटकारा पाने के लिए इतना उपचार यथेष्ट है, इसके बाद किसी चतुर डॉक्टर या वैद्य से सलाह ले लेना चाहिए। यदि आप बच्चे को दवाइयों के घातक प्रभाव से बचाना चाहते हैं, तो बाद में डॉक्टर से किसी प्राकृतिक उपचार के सम्बन्ध में ही परामर्श लीजिए।

उपर्युक्त उपचार के एक दिन के प्रयोग से यदि बच्चा रोग से, पूर्णरूप से निवृत्त न हो सके तो प्रति दिन गरम पट्टी सवेरे दो-तीन घण्टे तक लगातार पेट पर बाँधो और सन्ध्या समय रीढ़ पर। रीढ़ पर गरम पट्टी के प्रयोग से बच्चा शीघ्र ही निद्रा-मग्न हो जायगा। यदि पट्टी के प्रयोग को आप अधिक स्थायी और प्रभावशाली बनाना चाहते हैं, तो पट्टी के साथ गरम पानी भर कर बोतल भी बाँधी जा सकती है।

रुग्णावस्था में बच्चे को उस समय तक कोई भोजन न देना चाहिए, जब तक रोग के सब चिन्ह लुप्त न हो जायँ। इस अवस्था में उपर्युक्त विधि से पानी ही देना अधिक श्रेयस्कर है। रोग के चिन्ह दूर होते ही उसे दूध और फलों के रस का आहार देना चाहिए और उसकी भूख की वृद्धि के अनुसार उनकी मात्रा बढ़ाते जाना चाहिए। जब तक बच्चा पूर्णरूप से निरोग न हो जाय उसे दूसरा भोजन देना हानिकारक होगा। यह सदैव याद रक्खो कि जब बच्चा बीमार रहता है, तब आमाशय में भोजन पचाने की शक्ति नहीं रहती। ऐसी दशा में भोजन के कुछ ही कौर समस्त शरीर को विषैला बना सकते हैं, जिससे मृत्यु तक की सम्भावना है।

यदि आपको अपने अन्धविश्वासों और रूढ़ियों के कारण बच्चों को स्वस्थ और निरोग बनाने वाले इन प्राकृतिक नियमों पर विश्वास नहीं होता तो फिर उन्हें भाग्य के भरोसे छोड़ दीजिए। परन्तु जब वे अपने बिस्तर पर पीड़ा से कराह रहे हों और अपने अल्प जीवन की अन्तिम साँसें ले रहे हों, तब अदृश्य शक्ति के माथे उस कलङ्क का टीका न मढ़िए। यह उसका अपराध नहीं है, उसके नियमों के अपवाद का दण्ड है। आपका बच्चा आपके इस अज्ञान और असावधानी पर अपने जीवन की आहुति चढ़ा रहा है, जिसके लिए आप क्षमा नहीं किए जा सकते। यदि आपने बच्चा उत्पन्न किया है, तो उसकी रक्षा का भार भी आपके ही ऊपर है; और यदि आप उसकी रक्षा और पालन-पोषण में असावधानी करते हैं तो उस पाप का परिणाम भी आपको ही भोगना पड़ेगा। इस छोटे से प्रबन्ध में उल्लिखित उपचारों का ज्ञान प्राप्त कर आप बच्चों के प्रति अपनी ज़िम्मेदारी पूरी कर सकते हैं।



दाम्पत्य जीवन

इस पुस्तक के सम्बन्ध में प्रकाशक के नाते हम केवल इतना ही कहना काफ़ी समझते हैं कि ऐसे नाज़ुक विषय पर इतनी सुन्दर, सरल और प्रामाणिक पुस्तक हिन्दी में अभी तक प्रकाशित नहीं हुई है। इसकी सुयोग्य लेखिका ने काम-विज्ञान (Sexual Science) सम्बन्धी अनेक अङ्गरेज़ी, हिन्दी, उर्दू, फ़ारसी तथा गुजराती भाषा की पुस्तकें मनन करके इस कार्य में हाथ लगाया है। जिन अनेक पुस्तकों से सहायता ली गई है, उनमें से कुछ मूल्यवान् और प्रामाणिक पुस्तकों के नाम ये हैं:—

(1) Motherhood and the Relationship of the Sexes by *C. Gasquoine Hartly* (2) Confidential Talks with Husband & Wife by *Layman B. Sperry* (3) Youth's Secret Conflict by *Walter M. Gallichan* (4) The Threshold of Motherhood by *R. Douglas Howat* (5) Radiant Motherhood (6) Married Love and (7) Wise Parenthood by *Dr. Marie Stopes.*

जिन महत्वपूर्ण विषयों पर प्रकाश डाला गया है, उनमें से कुछ ये हैं:—

सहगमन, ब्रह्मचर्य, विवाह, आदर्श-विवाह, गर्भाशय में जल-सञ्चय, योनि-प्रदाह, योनि की खुजली स्वप्न-दोष, डिम्ब-कोष के रोग, कामोन्माद, मूत्राशय, जननेन्द्रिय, नपुंसक, अति-मैथुन, शयन-गृह कैसा होना चाहिए? सन्तान-वृद्धि-निग्रह, गर्भ के पूर्व माता-पिता का प्रभाव, मनचाही सन्तान उत्पन्न करना, गर्भ पर तात्कालिक परिस्थिति का असर, गर्भ के समय दम्पति का व्यवहार, यौवन के उतार पर स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध, रबर-कैप का प्रयोग, माता का उत्तरदायित्व आदि-आदि सैकड़ों महत्वपूर्ण विषयों पर—उन विषयों पर, जिनके सम्बन्ध में जानकारी न होने के कारण हज़ारों युवक-युवतियाँ बुरी सोसाइटी में पड़ कर अपना जीवन नष्ट कर लेती हैं; उन महत्वपूर्ण विषयों पर जिनकी अनभिज्ञता के कारण अधिकांश भारतीय गृह नरक की अग्नि में जल रहे हैं; उन महत्वपूर्ण विषयों पर, जिनको न जानने के कारण स्त्री पुरुष से और पुरुष स्त्री से असन्तुष्ट रहते हैं—भरपूर प्रकाश डाला गया है। हमें आशा है, देशवासी इस महत्वपूर्ण पुस्तक से लाभ उठाएँगे। पृष्ठ-संख्या लगभग ३५०, तिरङ्गे Protecting cover सहित सुन्दर सजिल्द पुस्तक का मूल्य २॥) रु० 'चाँद' तथा पुस्तक-माला के स्थायी ग्राहकों से १॥।=) मात्र! पुस्तक सचित्र है!! केवल विवाहित स्त्री-पुरुष ही पुस्तक मँगावें!

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

नेपाल का कुछ वृत्तान्त

[श्री० भैरव]



नेपाल या नैपाल नाम का छोटा सा किन्तु एकमात्र स्वतन्त्र हिन्दू राज्य भारत की पूर्वोत्तर सीमा पर अवस्थित है। इसकी लम्बाई ५२५ मील, चौड़ाई ६० से १४० मील तक और क्षेत्रफल ५४,००० वर्ग मील है। इसके उत्तर में तिब्बत, पूर्व में भूटान और तिब्बत, दक्षिण में पुर्निया, भागलपुर, दरभङ्गा, मुज़फ़्फ़रपुर, चम्पारन, गोरखपुर और अवध प्रान्त के कुछ ज़िले तथा पश्चिम में संयुक्त प्रान्त का कमाऊँ विभाग है। नेपाल में कस्तूरी, चावल, ऊन, घी और लकड़ी की पैदावार अच्छी होती है और ये चीज़ें यहाँ से बाहर भी भेजी जाती हैं। इस देश की जन-संख्या प्रायः पचास लाख और यहाँ की राजधानी या प्रधान नगर काठमाँडू है।

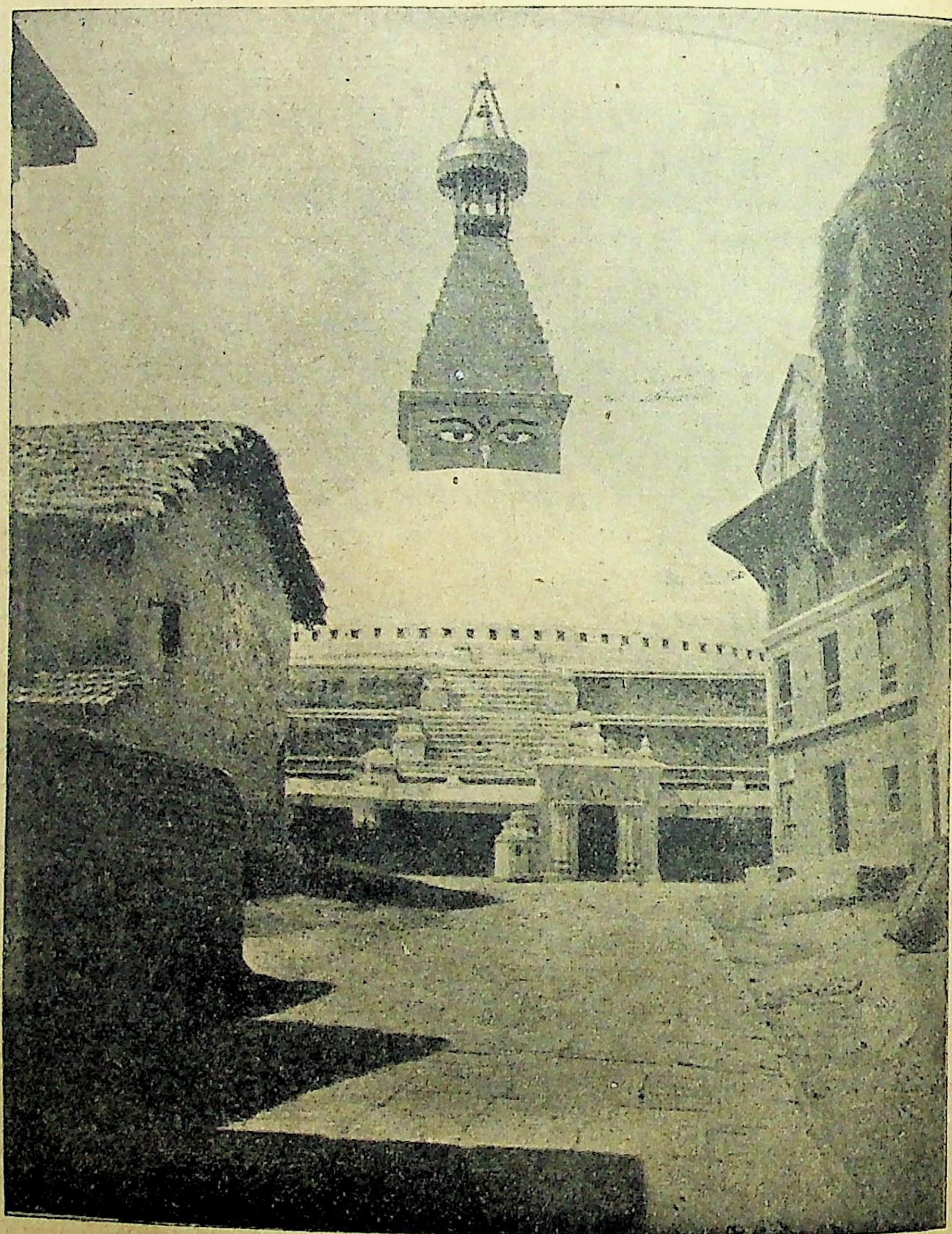
'नेपाल' नाम के सम्बन्ध में विद्वानों ने कई प्रकार के अनुमान लगाए हैं। कुछ लोगों का कथन है कि तिब्बत तथा उसके आस-पास की अनार्य जातियाँ, अपनी भाषा में उस देश को, जहाँ गोरखे बसते हैं, 'पाल' कहती हैं, और सिकिम तथा भूटान वाले नेपाल के पूर्वी भाग को 'ने' कहते हैं, इसीसे इस देश का नाम 'नेपाल' या 'नैपाल' पड़ गया है। तिब्बती भाषा में पशम या ऊन को 'पाल' कहते हैं और लेपचा तथा नेवार आदि जातियों की भाषा में 'ने' का अर्थ है, पहाड़ की गुफ़ा। फलतः इन्हीं दोनों शब्दों के संयोग से 'नेपाल' शब्द बन गया होगा। तिब्बत तथा ब्रह्मदेश के बौद्ध 'ने' शब्द का अर्थ पवित्र गुहा या देवताओं द्वारा रक्षित स्थान मानते हैं। कुछ लोग नेवार जाति से ही नेपाल की सृष्टि मानते हैं। परन्तु संस्कृत भाषा के पण्डितों की राय है, कि शुद्ध शब्द 'नयपाल' है और उसका अर्थ होता है, न्याय का पालन करने वाला। रामायण और महाभारत आदि ग्रन्थों में नेपाल देश का कोई उल्लेख नहीं पाया जाता। पुराणों में, स्कन्द-पुराण के रेवा खण्ड में, जहाँ श्रीसत्यनारायण की कथा का उल्लेख है तथा उसी पुराण के नागर और सह्यादि खण्डों में भी नेपाल का उल्लेख मिलता है; इसके अतिरिक्त गरुड़-पुराण में भी थोड़ा-बहुत उल्लेख मिलता है। बृहत्संहिता में भी नेपाल का नाम आया है। शक्ति-सङ्गम-तन्त्र, बृहन्नील-तन्त्र तथा वाराही-तन्त्र आदि तन्त्रशास्त्र के कई ग्रन्थों में नेपाल का वर्णन पाया जाता है। शक्ति-सङ्गम-तन्त्र के अनुसार जटेश्वर से लेकर योगेश्वर तक के भूभाग को नेपाल कहा गया और उसे अत्यन्त सिद्धिदायक माना गया है। जैनियों के विख्यात ग्रन्थ जैन-हरिवंश, और जैनियों के प्रसिद्ध आचार्य हेमचन्द्र, जो गुजरात के राजा कुमारपाल के गुरु थे, जो कितने ही जैन-ग्रन्थों तथा संस्कृत व्याकरण और कोष ग्रन्थों के रचयिता हैं, अपने 'स्थविरावली' नामक ग्रन्थ में, नेपाल का उल्लेख किया है। हेमचन्द्र का आविर्भाव-काल सन् १०८९ और ११७३ ईस्वी के बीच माना जाता है। अस्तु, इसके अतिरिक्त नेपाली बौद्धों के तन्त्र ग्रन्थों तथा पुराणों में भी नेपाल का विशद वर्णन और माहात्म्य पाया जाता है।*

नेपाल के राजघराने का सम्बन्ध मेवाड़ के प्रसिद्ध सीसोदिया क्षत्रिय वंश से है और उदयपुर के महाराणाओं की तरह इस वंश के नरेश भी 'महाराणा' कहे जाते हैं। सम्भवतः मुसलमान राजत्व काल में इन लोगों ने राजपूताने से जाकर नेपाल पर क़ब्ज़ा किया था। क्षत्रियोचित वीरता, शौर्य, दानशीलता और हिन्दुत्व की रक्षा के लिए यह राजवंश भी उसी तरह विख्यात है, जिस तरह राजपूताने के क्षत्रिय नरेश हैं।

नेपाल प्राकृतिक सौन्दर्य का आगार है। इसका अधिकांश भाग पर्वतों, कङ्करीले मैदानों और घने जङ्गलों से परिपूर्ण है। राज्य की उत्तरी सीमा के साथ-साथ हिमाचल की गगनचुम्बी चोटियों का सिलसिला दूर

* हिन्दी शब्द-सागर

तक चला गया है। जब बादल बिखर जाते और आकाश निखर जाता है तो काठमाँडू की पहाड़ियों से इन हिमाच्छादित शुभ्र चोटियों का सिलसिला बड़ा ही हैं। इनके दक्षिण में इनसे कम ऊँची और दूर तक फैली हुई नीलाम्बर-धारिणी चोटियों का सुहावना सिलसिला दिखाई देता है, जिनकी ऊँचाई समुद्र की



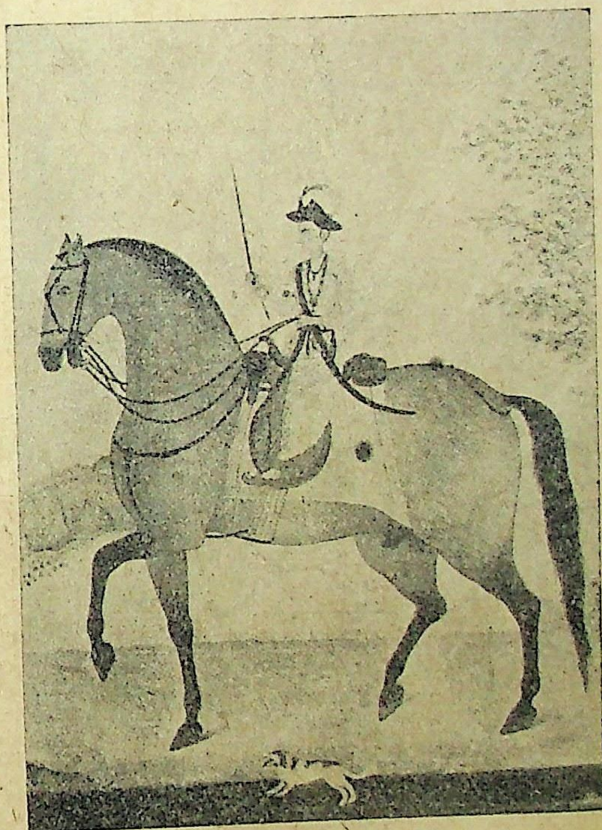
बोधनाथ का मन्दिर, नेपाल

सुन्दर दिखाई पड़ता है। मालूम होता है, मानो प्रकृति के सफ़ेद वर्दीधारी पासबान सतर्कतापूर्वक सिर उठाए हुए प्रकृति देवी के लीला-निकेतन की रक्षा कर रहे सतह से ६ हज़ार फ़ीट से लेकर १६ हज़ार फ़ीट तक है। यह पार्वतीय सिलसिला बीच-बीच में टूट गया है, जिससे जगह-जगह सुन्दर दर्रों तथा पहाड़ी पथों की

सृष्टि हो गई है। इस पर्वत-माला के आस-पास की हरी-भरी घाटियों का सौन्दर्य बड़ा ही नेत्र-रञ्जक है। इस पर्वत-माला के दामन से कई टेढ़ी-मेढ़ी नदियाँ निकली हैं, जो आगे जाने पर चार बड़ी धाराओं में विभक्त होकर गङ्गा की गोद में समा जाती हैं। वस्तुतः इन नदियों तथा पहाड़ों ने नेपाल को चार विभिन्न भागों में बाँट दिया है।

नेपाल कई जातियों के मनुष्यों का निवासस्थान है। उत्तर नेपाल के ऊँचे पर्वतों और घाटियों में तिब्बती अनार्यों का निवास है। पश्चिम में 'गुरङ्ग' और 'मगर' जातियों के मनुष्य हैं। ये भी अनार्य हैं। मध्य भाग में मगियन, गोरखे और नवार जाति वाले रहते हैं, पूर्वी भाग किराती, लम्बूप और कास जाति के लोगों से आबाद है। इनके सिवा वहाँ कुछ ऐसे मनुष्य भी बसते हैं, जो वास्तव में नेपाल के आदि निवासी नहीं हैं। इसके अलावा नेपाल के पूर्वी भाग में भारत के कोल, भील तथा मुसहर जाति के जङ्गली भी रहते हैं। इनका आचार-विचार तथा रहन-सहन भारतीय अनार्यों का सा है। इसलिए कुछ लोगों का अनुमान है, कि ये नीच जाति के हिन्दुओं की सन्तान हैं। परन्तु साधारणतः ये सभी जातियाँ मङ्गोलियन हैं। इनके चेहरे की बनावट, चिपटी नाक, चौड़े मुँह और चारों ओर से छिपी हुई आँखें, खड़े और काले केश तथा शरीर का पीला रङ्ग उनके मङ्गोलियन होने के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। ये नाटे, बलिष्ट और घोर परिश्रमी होते हैं। गोरखा जाति के मनुष्य साधारणतः ब्राह्मणों और क्षत्रियों के वंशज समझे जाते हैं। कहा जाता है कि प्राचीन काल में मुसलमान आक्रमणकारियों के डर से इनके पूर्वज भारत छोड़ कर नेपाल के दुर्गम पर्वतों और घने बनों में चले गए थे तथा अपने बाहुबल और अपूर्व अध्यवसाय द्वारा वहाँ काफ़ी जायदाद और सम्मान प्राप्त कर लिया था, जो अब तक उनके अधिकार में है। यद्यपि यहाँ के आदिम निवासियों के साथ वैवाहिक सूत्र में आबद्ध हो जाने के कारण वे एक सीमा तक उन्हीं में मिल गए हैं, परन्तु इनकी सूरत-शक्ल आज भी इनके पूर्व पितामह का पता बता रही है।

नेपाल के अधिकांश निवासी बौद्ध मतावलम्बी हैं। परन्तु वास्तव में यहाँ के बौद्धों पर हिन्दू-धर्म का इतना गहरा प्रभाव पड़ गया है कि इन्हें बौद्ध कहना उचित नहीं। यों तो जिस महान उद्देश्य की पूर्ति के लिए महात्मा शाक्य मुनि ने अपने महान धर्म का प्रचार किया था, उसे सारा बौद्ध-संसार भूल गया है। अब न तो वैसे तपोनिष्ठ, त्यागमूर्ति और परोपकार-परायण बौद्ध भिक्षु ही कहीं हैं और न बौद्ध धर्म का वह प्राचीन रूप ही मौजूद है। परन्तु नेपाल का बौद्ध धर्म तो मानो अपने जीवन की अन्तिम घड़ियाँ गिन रहा है। बौद्धों



गर्विन योद्धा विक्रमशाह, नेपाल

के वे विशाल 'विहार' या मठ, जो कभी त्यागमूर्ति बौद्ध संन्यासियों के निवास-स्थान थे, आज उजड़े पड़े हैं। बौद्ध-धर्म की सार्व-भौमिकता, साम्यता और एकता का स्थान, छुआछूत, जाति-पाँति और ऊँच-नीच के बखेड़ों ने ले लिया है। परन्तु इसके साथ ही आधुनिक विचार-धारा का प्रभाव भी पड़ रहा है और कुछ लोग जहाँ-तहाँ पुरानी रूढ़ियों को ठुकराते हुए नज़र आते हैं। 'अहिंसा परमोधर्मः' वाला भाव भी बड़ी तेज़ी से तिरो-

हित हो रहा है। फलतः नेपालियों की सामाजिक और धार्मिक परिस्थिति किस परिणाम की ओर जा रही है, यह कहना अभी कठिन है। इनके कितने ही रीति-रिवाज़ भी बड़े ही विचित्र हैं। ये अपने मुर्दे जलाते हैं। उसकी सद्गति के लिए श्राद्धादि भी करते हैं। इनके खान-पान, रहन-सहन और धार्मिक-विश्वास भी अजीब हैं। कुछ लोग भैंसों को बहुत पवित्र मानते और जिस तरह हिन्दू गायों की पूजा करते हैं, उसी तरह वे भी भैंसों



राणा बहादुरशाह, नेपाल

की पूजा करते हैं। इसके विपरीत कुछ ऐसे हैं जो भैंसों का मांस बड़ी प्रसन्नता से खा जाते हैं। चीन और जापान की तरह सब प्रकार के जानवरों का मांस खाने वाले भी यहाँ मौजूद हैं, और कुछ ऐसे हैं जो शूकर आदि कई जानवरों का मांस नहीं खाते। इनकी विवाह-पद्धति भी बड़ी विचित्र है, जो न तो हिन्दुओं की विवाह-पद्धति से मिलती-जुलती है और न बौद्धों से।

नेपाल की विभिन्न जातियों में विभिन्न प्रकार की भाषाएँ—बोलियाँ—प्रचलित हैं। परन्तु एक विशेष प्रकार की भाषा, जिसे वर्तमान संस्कृत का एक नया रूप कह सकते हैं, नेपाल के अधिकांश भागों में बोली जाती है। इसे गोरखा भाषा कहते हैं और हिन्दी जानने वाले इसे स्वल्प परिश्रम और मनोयोग से ही समझ सकते हैं। हमारी समझ में नेपालियों की गोरखा भाषा तिब्बती, हिन्दी और संस्कृत का सम्मिश्रण कही जा सकती है। इसके अतिरिक्त नेपाल के उत्तरी भागों में एक दूसरी भाषा बोली जाती है, जिसे तिब्बती का अपभ्रंश कह सकते हैं। परन्तु इसमें बहुत से शब्द संस्कृत भाषा के मौजूद हैं, यद्यपि उनका वास्तविक रूप आजकल इतना विकृत हो गया है कि पहचानना कठिन है। यहाँ की साधारण लिपि किञ्चित रूपान्तरित देवनागरी है, परन्तु कहीं-कहीं बिगड़ी हुई तिब्बती लिपि भी काम में लाई जाती है।

नेपाल में शिक्षा की बड़ी दुरवस्था है। विद्यालयों की तादाद बिल्कुल अपर्याप्त है। थोड़े शब्दों में, नेपाल इस सम्बन्ध में सदियों पीछे है। कुछ धनवान तथा कुछ साधारण श्रेणी के गृहस्थ अपने लड़कों को स्वयं थोड़ी सी शिक्षा दे दिया करते हैं या उनके कुल-पुरोहित जी आकर पढ़ा जाया करते हैं। कुछ रईस और बड़े-बड़े धनवान उच्च शिक्षा दिलाने की इच्छा से अपने लड़कों को कलकत्ता, पटना या बनारस भी भेजते हैं। सुनते हैं, वहाँ की सरकार आजकल इस विषय की ओर कुछ ध्यान देने लगी है और जहाँ-तहाँ कुछ प्राथमिक पाठशालाएँ स्थापित की गई हैं और हाई स्कूलों का सम्बन्ध पटने के अङ्गरेज़ी विश्व-विद्यालय के साथ कर दिया गया है। विगत सन् १९१९ में, राज्य की ओर से काठमाँडू में एक कॉलेज भी खोला गया है, जिससे नेपाली विद्यार्थियों का विशेष उपकार हो रहा है। इस कॉलेज ने थोड़े ही दिनों में अपनी आशातीत उन्नति की है। पढ़े-लिखे लोगों ने अङ्गरेज़ी भाषा सीखने की ओर विशेष ध्यान दिया है। सन् १९०१ में अङ्गरेज़ी जानने वाले नेपालियों की तादाद कुल १७ थी और अठारह साल के बाद, सन् १९१९ में फिर से उनकी गिनती हुई तो बढ़ कर वह १,०४२ तक पहुँच गई थी।

इस शिक्षा-विस्तार सम्बन्धी कार्य के साथ ही नेपाल-सरकार ने कला-कौशल के विस्तार और प्रचार की ओर भी कुछ ध्यान दिया है। हम ऊपर कह आए हैं कि नेपाल प्रकृति का लीला-निकेतन है; वैज्ञानिक शिक्षा और उन्नति के लिए वहाँ यथेष्ट प्राकृतिक साधन मौजूद हैं। अगर वहाँ की सरकार कला-कौशल की उन्नति के साथ वैज्ञानिक शिक्षा की ओर भी ध्यान दे तो नेपाल शीघ्र ही एक समुन्नत देश के रूप में परिणत हो सकता है। परन्तु उसे पाश्चात्य सभ्यता से बड़ा भय है। इसलिए वह बड़ी सावधानी से अपने देश को उसके प्रभाव से बचाए रखने की चेष्टा किया करता है। सौभाग्यवश स्वर्गीय महाराणा जङ्गबहादुर और महाराणा चन्द्रशमशेर अपनी प्रजा के सच्चे शुभचिन्तक थे। इन दोनों नरेशों ने उसे शिक्षित और समुन्नत करने की विशेष चेष्टा की है। इनकी यह आन्तरिक इच्छा थी कि अपनी प्राच्य विशेषताओं की रक्षा के साथ ही हम उन्नति के पाश्चात्य साधनों से भी लाभान्वित हों। फलतः इन लोगों ने ऐसी ही चेष्टा की, परन्तु इसमें कहाँ तक सफल हो सके, यह तो समय ही बताएगा।

स्वर्गीय महाराणा चन्द्रशमशेर ने अपने जीवन-काल में कला-कौशल की शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा से कई होनहार विद्यार्थियों को जापान भी भेजा था। ये विद्यार्थी विशेष रूप से 'इञ्जिनियरी' की शिक्षा प्राप्त करने के लिए जापान भेजे गए थे। इन शिक्षाओं के लिए विदेशों से शिक्षक बुलाना महाराज को पसन्द न था। क्योंकि वे जानते थे कि ये विदेशी जिस किसी देश में पदार्पण करते हैं, वहाँ अपने साथ अपने धार्मिक और राजनीतिक विचारों को भी लिए जाते हैं। फिर भी महाराज के इस विचार की काफ़ी आलोचना की गई थी।

नेपाल में कोई ऐसा साहित्य नहीं, जिसका उल्लेख विशेष प्रकार से किया जाय। जीवनोपयोगी विषयों की उन्नति के साथ-साथ धीरे-धीरे भाषा की भी थोड़ी-बहुत उन्नति हो रही है। आशा है कि वह वन-पुष्पों की तरह कभी खिल उठेगी और उसके मधुर सौरभ में नेपाल की पहाड़ी नदियों और निर्झरों की कलकल-ध्वनि भी सम्मिलित होगी जो अभी देहाती स्त्रियों की ज़बानों पर है। परन्तु प्राचीन संस्कृत साहित्य के लेहाज़ से नेपाल साहित्य का एक मूल्यवान कोष कहा जा सकता है। जानकारों का कहना है कि वहाँ अभी भी संस्कृत भाषा के कितने ही अलभ्य प्राचीन ग्रन्थ मौजूद हैं। परन्तु इसी प्रसङ्ग में हमें बड़े दुःख से यह कहना पड़ता है कि स्वर्गीय महाराज ने, कई साल हुए, बहुत सी संस्कृत की प्राचीन हस्तलिखित पोथियाँ लन्दन के अजायब-घर (London Musium) को दे डाली थीं। यह सच है, कि लगडन का अजायब-घर आजकल संसार का सब से बड़ा पुस्तकालय है और संसार के विद्वान उससे लाभ उठाते हैं। इसलिए उन पोथियों का नेपाल के एक निभृत स्थान में बन्द रहने की अपेक्षा वहाँ रहना अच्छा है। उसे देख कर लोग महाराज की उदारता की प्रशंसा करेंगे। परन्तु वास्तव में वे नेपाल अथवा भारत की ही सम्पत्ति थीं और उचित था कि वहीं किसी अच्छे स्थान पर वे सुरक्षित रहतीं। अस्तु,

देव-मन्दिरों और मठों की नेपाल में भरमार है। अभी भी वहाँ २,७३३ मठ हैं, जहाँ लाखों साधु-संन्यासी रहते हैं। हिन्दुओं तथा बौद्धों के पुरोहितों और पुजारियों की तादाद भी कम नहीं है। वहाँ असंख्य धार्मिक त्योहार प्रचलित हैं, जिनके कारण सरकारी कार्यालय और पाठशालाएँ आदि साल में प्रायः छः महीने बन्द रहती हैं। राजगुरु का मान रोम के पोप की तरह है। राज-कार्य में उनका काफ़ी दख़ल है। महाराज की 'इग्ज़-क्यूटिव कमिटी' के वे अन्यतम सदस्य भी हैं और सरकार की आय का एक प्रधान अंश उन्हें 'गुरु-दक्षिणा स्वरूप' मिल जाती है। इसके अतिरिक्त वे धार्मिक अपराध करने वालों से जुर्माने भी वसूल कर सकते हैं। इन राजगुरु महोदय के अतिरिक्त और भी बहुत से मठाधीश, धर्मपालक और पुरोहित आदि हैं, जो बड़ी-बड़ी जायदादों के मालिक होते हैं। प्रत्येक प्रतिष्ठित वंश के पुजारी अलग-अलग होते हैं और दान-दक्षिणा के बहाने देश का विपुल धन इनके पेट में चला जाता है। इनके सिवा ज्योतिषियों और भविष्यवक्ताओं की भी वहाँ एक संख्या है। नेपाली साइत और मुहूर्त के बड़े भक्त होते हैं, प्रत्येक कार्य में वे ज्योतिषियों से सम्मति लिया करते हैं। जब तक ज्योतिषी महोदय शुभ मुहूर्त नहीं बतलाते तब तक विवाह, यात्रा, मकान की नींव देना, युद्ध-यात्रा तथा अन्यान्य सभी प्रकार के शुभ और नए कार्य नहीं आरम्भ किए जा सकते। यहाँ तक कि बिना

शुभ मुहूर्त के रोगी को दवा का सेवन भी नहीं आरम्भ कराया जाता। शुभाशुभ मुहूर्त का विचार करने में हमारे नेपाली भाई हम हिन्दुओं से भी दो क़दम आगे हैं।

कुल-पुरोहित की तरह नेपाल में कुल-चिकित्सक भी होते हैं। ये पारिवारिक चिकित्सक भी समाज के भार-स्वरूप होते हैं। इनका सारा ख़र्च उन्हीं परिवार वालों को सहन करना पड़ता है, जिनके ये आश्रित होते हैं। इनके अतिरिक्त चिकित्सा व्यवसायी भी वहाँ बहुत हैं। सुनते हैं, नेपाली वैद्य चिकित्सा-शास्त्र के निष्णात विद्वान् होते हैं और वहाँ आयुर्वेदिक जड़ी-बूटियाँ भी बहुतायत से पाई जाती हैं। आजकल जहाँ-तहाँ सरकारी चिकित्सालय भी खोले गए हैं, जहाँ ग़रीबों की चिकित्सा की व्यवस्था होती है।

नेपाल में दीवालिया क़ानून नहीं है। फलतः पिता के ऋण का देनदार पुत्र भी माना जाता है और वह रक़म उसकी जायदाद से ही नहीं, बल्कि उसकी ज़ात से भी वसूल की जा सकती है।

नेपाल में विवाह-सम्बन्धी नियम भी विचित्र है। हिन्दुओं की तरह वहाँ भी विधवा-विवाह निषिद्ध माना जाता है। परन्तु पुरुषों को एक से अधिक विवाह करने का अधिकार है। बड़े आदमियों के कई बीबियाँ होती हैं। व्यभिचारिणी स्त्रियों को जन्म भर के लिए क़ैद कर दिया जाता है और उसके साथ व्यभिचार करने वाले को, अदालत में अपराधी सिद्ध हो जाने पर जन-समूह के सामने टुकड़े-टुकड़े कर दिया जाता है। प्रथम-प्रथम व्यभिचारिणी स्त्री का पति अपनी खुखड़ी से अपराधी पर तीन वार करता है। उस समय अगर वह बच कर भाग सके तो उसे फिर कोई दण्ड नहीं दिया जाता। परन्तु उसे भागने का कोई अवसर नहीं दिया जाता। अगर वह भागने की चेष्टा करता है तो दर्शक उसे पकड़ कर आक्रमणकारी के सामने कर देते हैं। पहाड़ी जातियों की स्त्रियाँ बहुधा एक से अधिक पति कर सकती हैं।

राज्य की ओर से कुछ सामाजिक सुधार भी हो रहा है। ग़ुलामी की प्रथा एकदम बन्द कर दी गई है। इसी तरह के और भी सुधार हुए हैं।

राज्य-सञ्चालन सम्बन्धी समस्त अधिकार वहाँ के मन्त्री को होता है। वह राजा की अपेक्षा अधिक अधिकार रखता है और इसीलिए राजघराने के सिवा दूसरा कोई राजमन्त्री नहीं नियुक्त हो सकता। आवश्यक परामर्श देने के लिए एक शासन-व्यवस्था-समिति होती है, जिसमें राजघराने के लोग, राजगुरु, सेनाध्यक्ष और कुछ उच्च पदस्थ सरकारी कर्मचारी होते हैं। मन्त्री महोदय समय-समय पर इस समिति से परामर्श लिया करते हैं। अदालत के फ़ैसलों की अपील भी होती है। दीवानी तथा फ़ौजदारी अदालतें अलग-अलग हैं।

पहले अपराधियों को बहुधा अमानुषिक सज़ाएँ दी जाती थीं। किसी-किसी अपराध के अपराधी को जीते ही आग में झोंक देने की व्यवस्था थी। अपराधियों के हाथ तोड़ या काट डाले जाते थे। परन्तु महाराजा सर जङ्गबहादुर ने इङ्गलैण्ड से लौटने पर ऐसी सज़ाएँ एकदम उठा दीं। लड़ाई के समय जान बचा कर भागने वाले सैनिक को मृत्यु-दण्ड दिया जाता है। घूस लेने वाले राजकर्मचारी को क़ैद और अर्थ-दण्ड की सज़ा दी जाती है और वह हर हालत में नौकरी से अलग कर दिया जाता है। मनुष्य अथवा गाय की हत्या करने वाले को फाँसी की सज़ा दी जाती है। किसी गाय का अङ्ग-भङ्ग कर देने के अपराध में आजन्म क़ैद की सज़ा दी जाती है। राज्य में तीन बड़े-बड़े क़ैदख़ाने हैं, जिनमें दो केवल स्त्रियों के लिए हैं। इससे मालूम होता है कि पुरुष क़ैदियों की अपेक्षा स्त्री क़ैदियों की संख्या अधिक होती है!

नेपाल राज्य की वार्षिक आय प्रायः एक करोड़ है। नेपाल एक प्रकार से सैनिकों का देश है। सैनिक बल की ओर विशेष दृष्टि रक्खी जाती है। वहाँ की वर्तमान सैनिक संख्या बीस हज़ार है। इनमें पैदल सिपाहियों की सेनाएँ २६ और घोड़सवारों की २ हैं। इनके सिवा ऐसे लोग भी हैं, जो आवश्यकता पड़ने पर बुलाए जा सकते हैं। ऐसे सैनिक कुछ दिन सेना में काम करने पर अपने घर चले जाते हैं और आवश्यकता पड़ने पर पुनः सेना में आ जाते हैं। सैनिक शिक्षा अङ्गरेज़ी ढङ्ग से दी जाती है। युद्ध में आधुनिक हथियारों के अतिरिक्त प्राचीन ढङ्ग के हथियार भी व्यवहार में लाए जाते हैं।

वास्तव में नेपाल कई दृष्टियों से एक विचित्र देश है।



नेपाल के महाराजा सर चन्द्र शमशेरजङ्ग बहादुर कमाण्डर इन चीफ़,
जनरल भीम शमशेरजङ्ग बहादुर और कमाण्डिङ्ग जनरल
योद्धा शमशेरजङ्ग बहादुर

FINE ART PRINTING COTTAGE ALLAHABAD

पुनर्जीवन

मूल-लेखक—महात्मा काउण्ट टॉल्सटॉय

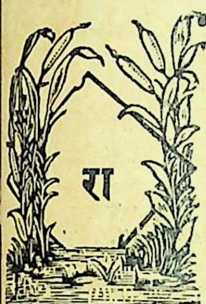
[अनुवादक—प्रोफ़ेसर रुद्रनारायण जी अग्रवाल, बी० ए०]

यह रूस के महान् पुरुष काउण्ट लियो टॉल्सटॉय की अन्तिम कृति है। यह उन्हें सबसे अधिक प्रिय थी। इसमें दिखाया गया है कि किस प्रकार कामान्ध पुरुष अपनी अल्प-काल की लिप्सा-शान्ति के लिए एक निर्दोष बालिका का जीवन नष्ट कर देता है; किस प्रकार पाप का उदय होने पर वह अपनी आश्रयदाता के घर से निकाली जाकर अन्य अनेक लुब्ध पुरुषों की वासना-तृप्ति का साधन बनती है; और किस प्रकार अन्त में वह वेश्यावृत्ति ग्रहण कर लेती है। फिर उसके ऊपर हत्या का झूठा अभियोग चलाया जाना, संयोगवश उसके प्रथम भ्रष्टकर्ता का भी जूररों में सम्मिलित होना, उसकी ऐसी अवस्था देख कर उसे अपने किए पर अनुताप होना, और उसका निश्चय करना कि चूँकि उसकी इस पतित दशा का एक मात्र वही उत्तर-दायी है, इसलिए उसे उसका घोर प्रायश्चित्त भी करना चाहिए—सब एक-एक करके मनोहारी रूप से सामने आते हैं, और वह प्रायश्चित का कठोर निर्दय-स्वरूप, वह धार्मिक भावनाओं का प्रबल उद्रेक, वह निर्धनों के जीवन के साथ अपना जीवन मिला देने की उत्कट इच्छा, जो उसे साइबेरिया तक खींच कर ले गई थी! पढ़िए और अनुकम्पा के दो-चार आँसू बहाइए। इसमें दिखाया गया है कि उस समय रूस में न्याय के नाम पर किस प्रकार मनुष्य-जाति पर अत्याचार किया जाता था। उन्हें सुधारना तो एक ओर—वे समाज के पहले से भी घोरतर शत्रु बना दिए जाते थे। आप इसमें रूस के वर्तमान साम्यवाद का बीज-रूप में दर्शन पाएँगे। द्रव्य तैयार था, प्रस्फुटित होने की देर थी। मानवी हृदय का विश्लेषण जिस दक्षता के साथ किया गया है, उसके लिए इतना ही कहना पर्याप्त है कि यह उस व्यक्ति की प्रकृष्ट रचना—उनकी पकी हुई आयु का सर्वोत्तम प्रसाद है—जिसके जोड़ का व्यक्ति संसार में दूसरा नहीं है। छपाई-सफ़ाई दर्शनीय, सजिल्द पुस्तक का मूल्य लागत-मात्र केवल ४) स्थायी ग्राहकों से ३॥)

व्यवस्थापिका, 'चाँद' कार्यालय
चन्द्रलोक
—इ-ला-हा-बा-द

रानी

[श्री० प्रेमनारायण जी श्रीवास्तव]



रानी एक निरर्थक—नीरस कहानी सी थी।

बारह बजा था। घनी काली रात थी। शान्ति चारों ओर जादू सी छाई हुई थी। एक मनुष्य नवजात शिशु को मन्दिर की देहरी पर लिटा कर चला गया।

मन्दिर में घी का दिया जल रहा था। उसके प्रकाश की ओर शिशु निहारने लगा। उस अबोध-सरल दृष्टि में दैवी अन्याय व सामाजिक अत्याचार का उलाहना न था। प्रदीप की स्निग्ध आभा के प्रति हलका सा कौतूहल—थोड़ा सा प्रेम मात्र था!

शिशु एकाएक दीनतापूर्वक रो उठा। वह अपने क्षीण रुदन से इस विचित्र खेल के सूत्रधार को द्रवित करने का प्रयत्न करने लगा। देवालय इस करुण-क्रन्दन से प्रतिध्वनित हो उठा। अनन्त नीलाकाश के नीचे—इस विराट संसार में उस असहाय, अनाथ शिशु को चुप करने वाला कोई न था!

अन्त में शिशु रोते-रोते थक कर सो गया!

मन्दिर के वृद्ध पुजारी की नींद खुली। वह बाहर आया! शिशु की ओर आश्चर्य से देख कर उसे उठा लिया। उसे हृदय से लगाते हुए, तिमिराच्छन्न आकाश की ओर देख कर वह भरे हुए कण्ठ से बोला—"हे प्रभु!"

२

माघ मास का ठिठुराने वाला एक शान्त प्रातःकाल था। सफ़ेद, हलके बादल आकाश में मँडरा रहे थे। घरों के ऊपर धुआँ के समान कुहासा छाया हुआ था। चिथड़ों को लपेटे हुए पन्द्रह वर्ष की एक दुबली-पतली सुन्दर बालिका पथिकों की ओर करुण दृष्टि से देख रही थी।

एक युवक ने रुक कर पूछा—तुम्हारे कोई नहीं है?

"मेरे पिता राममन्दिर के महन्त थे। उनकी मृत्यु हो गई। और कोई नहीं है।"—वेदना-गुम्फित हार के मानो मोती बिखर गए!

"नौकरी करोगी?"—युवक ने पूछा।

"हाँ"—बालिका ने अत्यन्त कष्ट से उत्तर दिया।

"तुम्हारा नाम क्या है?"—युवक हर्षित हो कर बोला।

"रानी!"—बालिका ने पन्द्रह वर्ष की व्यथा का इतिहास प्रकट कर दिया।

"अच्छा, तो मेरे साथ चलो।"—युवक ने कहा।

अनाथ बालिका एक रुन्ध जल-प्रवाह की भाँति अलक्ष्य भाव से चल पड़ी। युवक के साथी दोनों की ओर देख कर मुस्करा उठे।

कुहासा घट रहा था।

३

रानी वेश्या थी।

एक दिन रानी ने देखा कि सामने का ख़ाली घर एक सज्जन ने किराए पर ले लिया है। वे अकेले ही थे। किसी स्कूल में शिक्षक थे।

वह देखा करती कि ये सुबह आरामकुर्सी पर बैठ कर पढ़ते रहते। दोपहर को खादी का लम्बा सा कुर्ता पहिन कर स्कूल चले जाते। रात को उनके बरामदे में बड़ी देर तक लैम्प जलता रहता।

रानी को इस एकान्त जीवन में कुछ नवीनता ज्ञात हुई। उनके प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई। उसके शून्य हृदय में एक अपरिचित भावना का सञ्चार हुआ।

उसने अब सन्ध्या के समय कोठे पर शृङ्गार कर बैठना छोड़ दिया। प्रातःकाल पत्थर की मूर्ति की भाँति बैठी हुई उन्हें देखती रहती। दोपहर को उनकी अनुपस्थिति में शून्य-दृष्टि से उनकी ख़ाली आराम-कुर्सी की ओर निहारा करती। रात को अपनी शय्या पर पड़ी हुई, उनके लैम्प की ओर दृष्टि गड़ाए रहती। जब वह बुझ जाता तब बड़ी देर तक न जाने क्या सोचती हुई सो जाती!

ठण्ढी आहों से भरे हुए, गरम आँसुओं से भीगे हुए, मूक हृदय के अनन्त रोदन से कम्पित, न जाने कितने दिन इसी प्रकार बीत गए।

४

एक दिन रानी ने देखा कि उनके द्वार पर ताँगा खड़ा है। बहुत दिनों के एकत्रित प्रेम के बादल एकाएक बरस पड़े। उनका वेग रोकना असम्भव हो गया। रानी का छोटा साव्यथित हृदय फट पड़ा। वे ताँगे पर बैठ गए।

रानी ने दौड़ कर उनके पैर पकड़ लिए। रुद्ध कण्ठ से बोली—कहाँ जाते हो?

"मेरी बदली सागर की हो गई है।"—उन्होंने रानी की ओर आश्चर्यपूर्वक देख कर कहा।

"मुझे भी ले चलो।"—रानी का स्वर अत्यन्त करुण हो उठा।

"क्यों?"—उन्होंने त्रस्त हो कर प्रश्न किया।

"हाय! क्यों? मेरा हृदय तुम्हारा है, मेरे जीवन!"—रानी उनके पैरों से गुँथ गई, उनके पैर उसके आँसुओं से भीग गए।

"वेश्या के हृदय भी होता है, मायाविन!"—उन्होंने पैर हटा लिए।

ताँगा आगे बढ़ा। रानी निश्चल खड़ी रही। उसके अश्रुपूर्ण, दीन नेत्र उनकी ओर निहार रहे थे। ताँगा बाईं ओर मुड़ गया। अन्तिम दर्शन का भी अन्त हो गया।

केवल ताँगे के पहियों की खड़खड़ाहट व घोड़े की टापों का शब्द शेष था।

५

कृष्ण-पक्ष की वही रात्रि थी—वही देवालय था।

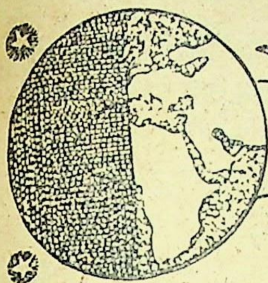
बारह बजा था। घनी काली रात थी। शान्ति चारों ओर जादू सी छाई हुई थी। रानी का शव मन्दिर की देहरी पर रक्खा हुआ था।

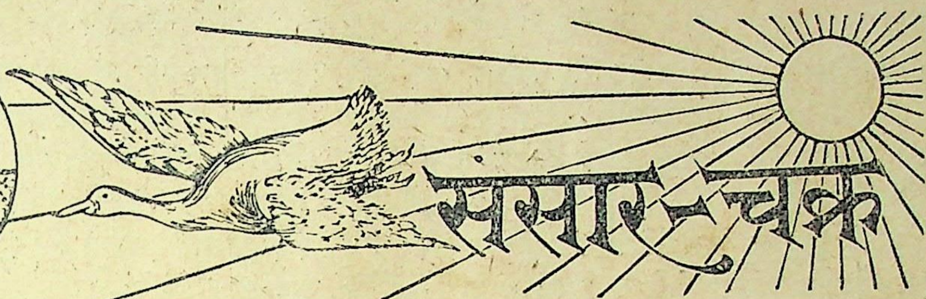
मन्दिर में घी का दिया जल रहा था। रानी के स्थिर, विस्तृत नेत्र उसके प्रकाश की ओर निहार रहे थे। उस अबोध—शून्य दृष्टि में दैवी-अन्याय व सांसारिक अत्याचार का उलाहना न था, प्रेम की विषमता के प्रति हलका सा कौतूहल—थोड़ी सी थकावट मात्र थी!

पानी का एक अशान्त बुलबुला फूट कर अपार जलराशि में लीन हो गया—विरह-गान का अन्तिम कम्पित आलाप अनन्त वातावरण में अन्तर्हित हो गया! अनन्त नीलाकाश के नीचे, इस विराट संसार में असहाय, अनाथ रानी के शव पर दो आँसू बहाने वाला कोई न था! रानी रोते-रोते थक कर सो गई थी!

दूराकाश में स्थित तारिकाएँ विधि के नग्न हास्य से लज्जित हो, नीले घूँघट में मुँह छिपाने लगीं। दीपक का पवित्र आलोक व्यथित हो, मन्द पड़ने लगा। बुझते हुए दीपक के क्षीण प्रकाश में देवालय की पाषाण-मूर्ति का मुख कालिमा से व्याप्त जान पड़ने लगा!

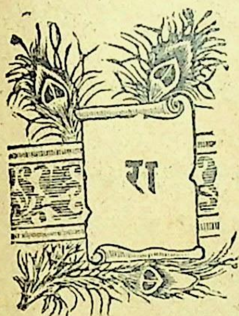
नीरव प्रकृति ने अँगड़ाई ली। वृक्ष की निश्चल पत्तियाँ जाग उठीं। इमली के झाड़ पर से एक पक्षी अलसाता हुआ धीरे से कूक उठा।





[श्री० मुन्शी नवजादिकलाल जी श्रीवास्तव]

रूस का स्वाधीनता-संग्राम



राष्ट्र और समाज-विप्लव संसार ने कितने ही देखे। पृथ्वी का इतिहास इन विप्लवों और क्रान्तियों की भीषण कहानियाँ ही तो है। राज्य-लिप्सा ने कितने घर घाले, राज-सिंहासन के लिए कितने रक्तपात हुए—कितनी जातियों और राष्ट्रों का ध्वंस हुआ, इसका ठीक-ठीक पता लगाना कठिन ही नहीं, असम्भव है। कौन कह सकता है कि राज्य-लिप्सा के कारण वसुन्धरा का एक-एक कण कितनी बार नर-शोणित से सींचा नहीं जा चुका है! ऐतिहासिक काल के इधर भी न जाने कितने साम्राज्य बने और चार दिन चमक कर विप्लव के शिकार बन गए। कितने ही प्रबल पराक्रमी राष्ट्र उठे और सारे संसार को अपनी विजय-दुन्दुभी से मुखरित कर, काल के अनन्त उदर-गह्वर में समा गए। आज न तो फ़्रान्स के बुर्बो-वंशीय निर्मम नरेशों का कहीं पता है और न रूस के अत्याचारी ज़ारों का।

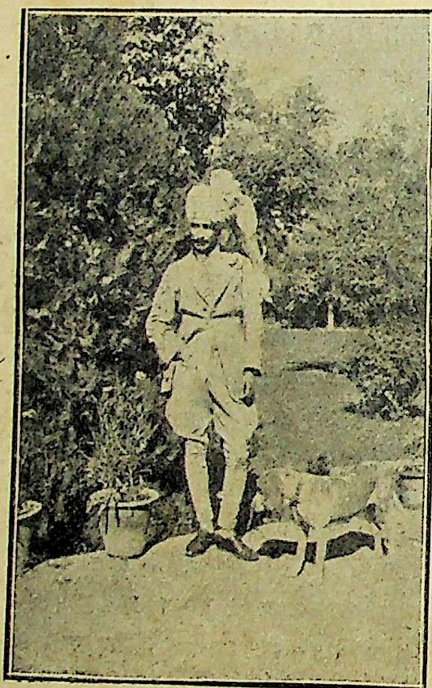
वास्तव में विप्लव प्रकृति का अटल नियम है। राज्य-लिप्सा जब पराकाष्ठा को पहुँच जाती है, अमानुषिक अत्याचार जब सीमोल्लङ्घन कर जाता है, तब ध्वंस और निर्माण के अमोघ अस्त्रों के साथ विप्लव का आविर्भाव होता है और जिस तरह स्पन्दनहीन, निस्तब्ध प्रकृति क्षण भर के बाद हवा का एक झोंका खाकर भीषण तूफ़ान के रूप में परिणत हो जाती है, उसी तरह घोर अत्याचारों द्वारा पिसी हुई, आशा और शक्तिहीन जाति में एकाएक भीषण विप्लव दिखाई देता है। दरिद्रता और निष्पेषण की क्षीणातिक्षीण धूम्र-रेखा एक दिन सहसा धधक उठती है और सदियों की सुदृढ़ नींव पर खड़ी अत्याचार और उत्पीड़न की गगन-चुम्बी अट्टालिका को एक क्षण में भस्मीभूत कर डालती है। विप्लव की उत्पत्ति स्वार्थपरता से होती है। अत्याचार उसका पृष्ठपोषक है। परन्तु अन्त में उसी के द्वारा इन दोनों की कपाल-क्रिया भी हो जाती है। यही विधाता का विधान है। और रूस की क्रान्ति तथा सुदृढ़ ज़ारशाही का पतन इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

रूस में पहले-पहल विप्लव का बीज पड़ा था तेरहवीं शताब्दी के अन्त में। इससे पहले वह स्वतन्त्र था। एक दिन एकाएक मुग़लों ने उस पर चढ़ाई कर दी। तत्कालीन सम्राट ने आत्म-रक्षा की बड़ी चेष्टा की। बहुत दिनों तक शत्रुओं का मुक़ाबला करता रहा, परन्तु अन्त में हार गया। उस समय मध्य एशिया में मुग़लों की तूती बोलती थी। उनका प्रखर प्रताप मध्याह्न की ओर अग्रसर हो रहा था। इसलिए रूस ने बाध्य होकर मुग़लों की आधीनता स्वीकार कर ली और उनका करद राज्य बन गया। इसी तरह प्रायः पूरी शताब्दी बीत गई।

अन्त में एक दिन समय ने पलटा खाया। मुग़ल अपने घरेलू झगड़े में फँस गए। साम्राज्य-विस्तार का उद्योग ज़रा धीमा पड़ गया। रूस को मानो भाग्य-परीक्षा का मौक़ा मिल गया। सौभाग्यवश उस समय रूस के राज्य-सिंहासन पर दिमित्री डन्स्कोई नाम का एक स्वतन्त्रता-प्रेमी तथा प्रजाप्रिय नरेश आसीन था। मौक़ा पाते ही उसने अपने राष्ट्र का सङ्गठन किया और मुग़लों को ललकारा कि या तो युद्ध करो या भले आदमी की तरह यहाँ से चल दो। मुग़ल यह सुन कर आग-बबूला हो गए और डन्स्कोई को उसकी गुस्ताख़ी का मज़ा चखाने के लिए फ़ौरन रूस की ओर चढ़

दौड़े। परन्तु डन्स्कोई की तैयारी काफ़ी थी। उसने बड़ी दिलेरी से शत्रुओं का सामना किया। अन्त में मुग़ल भाग खड़े हुए। रूस पराधीनता के घृणित बन्धन से विमुक्त हो गया।

परन्तु मुग़ल इस अपमान को भूलने वाले न थे। घर लौट कर वे डन्स्कोई से अपने पराजय का बदला लेने की तैयारी करने लगे। इधर डन्स्कोई भी निश्चिन्त न था। उसे यह बात अच्छी तरह मालूम थी कि मुग़ल चुपचाप रह जाने वाले नहीं हैं। अवसर पाते ही अपने



केप्टेन दयालसिंह वेदी

आप मदास की स्टेटों के पोलिटिकल एजेण्ट के सहायक नियुक्त किए गए हैं।

अपमान का बदला कौड़ी-कौड़ी चुका लेंगे। वह तन-मन और धन से भविष्य के लिए तैयारी करने लगा। उसने समस्त रूस को सङ्घबद्ध करके, एक शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में परिणत कर देने की चेष्टा की। रूसी नवयुवकों को बाक़ायदा समर की शिक्षा दी जाने लगी। सैकड़ों प्रचारक लोगों को स्वतन्त्रता का महत्व समझाने के लिए इधर-उधर भेजे गए। नए-नए हथियारों का संग्रह होने लगा। देखते-देखते दल के दल रूसी नौजवान अपनी प्यारी मातृ-भूमि की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए वीरवर डन्स्कोई की पताका के नीचे समवेत हो गए। डन्स्कोई ने उन्हें अच्छी तरह समझा दिया कि समस्त भेद-भाव भूल कर दुर्दिन में देश-मात्र की रक्षा करना ही मनुष्य का प्रधान कर्तव्य है। प्राण के मोह में पड़ कर जो इस महान कर्तव्य से विमुख होता है, वह नर नहीं, नर-पशु है! ऐसे निकम्मे मनुष्य जाति के कलङ्क और मातृभूमि की छाती के भार-स्वरूप होते हैं।

रूसी युवकों पर डन्स्कोई की इस शिक्षा का यथेष्ट प्रभाव पड़ा। मातृ-भूमि के मान-रक्षार्थ लाखों रूसी वीर जान पर खेल जाने को तैयार हो गए। इधर मुग़लों ने भी ख़ूब तैयारी की। दोनों अवसर की प्रतीक्षा करने लगे।

पूर्व-निश्चय के अनुसार, कुछ दिनों के बाद मुग़लों ने रूस पर चढ़ाई कर दी। डन्स्कोई के रणबाँकुरे तो उन्हें ढूँढ़ते ही थे। घोर घमासान छिड़ गया। दोनों के हज़ारों वीर धराशायी हुए। रणचण्डिका का खप्पर नर-शोणित से भर गया! परन्तु अन्त में, इस बार भी, मुग़लों को हार खानी पड़ी। रूसियों ने उन्हें बुरी तरह पछाड़ दिया। बेचारों ने धूल झाड़ते हुए अपने घर की राह ली।

रूसियों को इतने दिनों तक अपनी आत्म-शक्ति का ज्ञान न था। वे मुग़लों को 'हौवा' समझते थे। उनकी यह धारणा थी कि ख़ुदा ने समस्त बल-पौरुष का ठेका मुग़लों को ही दे रक्खा है। रूसियों में उनका सामना करने की शक्ति न है, और न कभी होगी। परन्तु डन्स्कोई के प्रयत्न ने उनकी इस धारणा को भ्रान्ति प्रमाणित कर दिया। उनकी आँखें खुल गईं। वे मुग़लों की शक्ति का थाह पा गए। फिर तो उन्होंने मुग़लों को बार-बार मार भगाया। और बहुत दिनों तक हज़ार प्रयत्न करने पर भी रूस में मुग़लों का क़दम नहीं जम सका।

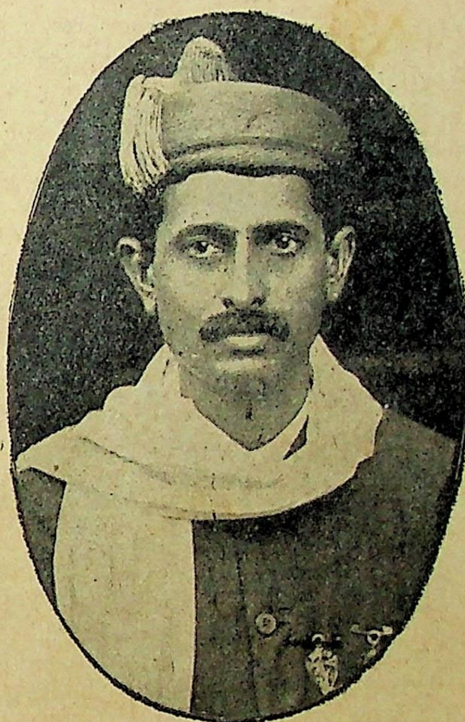
परन्तु डन्स्कोई की मृत्यु के बाद रूस के शासन की बागडोर ऐसे नरेशों के हाथों में पड़ गई, जो विलासिता के कीड़े और ऐहिक ऐश्वर्य के ग़ुलाम थे। अपनी अदूरदर्शिता, मूर्खता और लापरवाही के कारण उन्होंने थोड़े ही दिनों में डन्स्कोई की मानवोचित शिक्षा पर पानी फेर दिया! इसलिए मुग़ल फिर प्रबल हो गए। धीरे-धीरे उन्होंने फिर रूस को पदानत कर डाला—रूस पुनः उनका करद राज्य बन गया।

इसी तरह बहुत दिन बीत गए। अन्त में सम्राट तीसरे आइवन ने रूस का शासन-सूत्र ग्रहण किया। डन्स्कोई की तरह इसके हृदय में भी स्वदेश-प्रेम था। रूस जैसे महान राष्ट्र की पराधीनता उसे काँटे की तरह खटकती थी। उसने सिंहासनारूढ़ होते ही देश को स्वतन्त्र करने की चेष्टा आरम्भ कर दी। सेना का सङ्गठन आरम्भ किया। देश की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए नवयुवकों को उत्साहित किया। प्रजा को सुखी और समृद्धिशाली बनाने की चेष्टा की। जब उसे विश्वास हो गया कि मुग़ल अब उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते, तो एक दिन एक वृहत् दरबार करके अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी और उसी दिन से मुग़लों को कर देना भी बन्द कर दिया। मुग़लों ने रुष्ट होकर रूस को ध्वंस कर डालने की धमकी दी। आइवन ने घृणा से उसे सुन कर दरगुज़र कर दिया। इससे मुग़ल और भी नाराज़ हुए और एक दिन अचानक आइवन पर चढ़ाई कर दी। परन्तु वह सावधान था। उसके रणदुर्मद सिपाहियों ने लोहे के चने चबा कर मुग़लों को बिदा किया। इतना मारा कि मुग़लों ने फिर रूस की ओर आँख उठाने का भी साहस न किया।

रूसियों ने अपने इस त्राण-कर्ता सम्राट का यथेष्ट आदर किया। वे आज भी उसे 'आइवन दी ग्रेट' के सम्मान-सूचक नाम से याद करते हैं।

सोलहवीं शताब्दी के अन्त में फिर रूस के राज-सिंहासन पर विपत्ति के बादल मँडराने लगे। अब की बार मुग़ल नहीं, पोलैण्ड-वासियों ने रूस पर चढ़ाई की। दुर्भाग्यवश इस समय भी रूस के राज्य-सञ्चालक कायर और कपूत थे। रूसी प्रजा ने देश की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए यथासाध्य ख़ूब प्रयत्न किया। परन्तु कोई फल न हुआ। सम्राट ने पोलैण्ड के चरणों पर अपना राजमुकुट रख दिया।

पोलैण्ड का एक राजकुमार रूस का सम्राट बना। परन्तु प्रजा उससे सन्तुष्ट न थी। फलतः विद्रोह और विप्लव का आविर्भाव हुआ। चारों ओर विषम विशृङ्खलता फैल गई। विदेशी शासनकर्ता ने अत्याचार और दमन का आश्रय लिया। मानो जलती हुई आग में घी पड़ गया। समस्त राष्ट्र विदेशी शासन के विरुद्ध उठ खड़ा हुआ। तीव्र आन्दोलन आरम्भ हुआ। अराजकता, उत्पात और हत्याएँ होने लगीं। रूस के धर्म-याजक इस महान राष्ट्रीय आन्दोलन के सञ्चालक थे। वे हमारे देश के धर्म-याजकों की तरह धर्म-ढोंगी, विलासी और कूपमण्डूक न थे। 'महामहोपाध्याय' पदवी प्राप्त कर लाट साहब के दरबार में हाज़िर होना ही उनके जीवन का उद्देश्य न था और न वे हमारे मोटी तोंद वाले महन्तों की तरह चेलों का रक्त चूस कर, आजन्म लकीर के फ़क़ीर बना रहना चाहते थे। देश की



वैद्यराज उमाशङ्कर पीताम्बर भट्ट

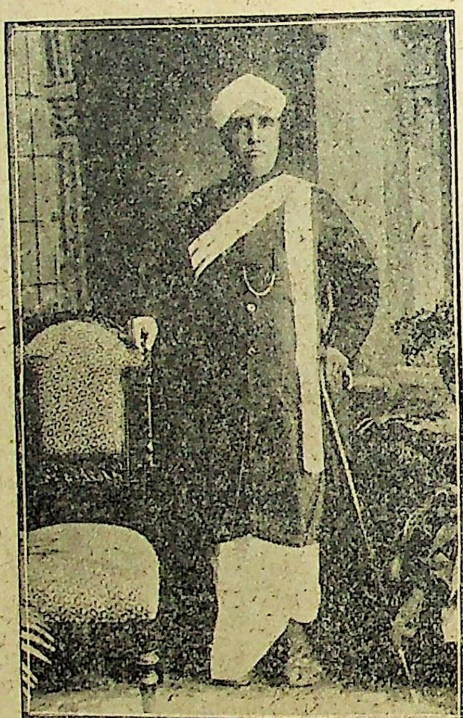
आपको अखिल भारतीय वैद्य-सम्मेलन की ओर से सर्वोत्तम औषधियों और उन पर वैज्ञानिक लेख लिखने के लिए स्वर्ण-पदक प्रदान किए गए हैं।

स्वाधीनता के लिए वे सब से पहले आग में कूदने को तैयार हो गए। उन्होंने अपने अनुयायियों को स्पष्ट शब्दों में समझा दिया कि स्वतन्त्र रहना ही सर्व-श्रेष्ठ मानव-धर्म है। यही ईश्वर की सच्ची उपासना है। अगर तुम धर्म-प्रेमी हो तो मातृभूमि की स्वतन्त्रता के लिए अपना सर्वस्व निछावर कर दो। प्राणों की बाज़ी लगा कर अपने देश से विदेशियों को मार भगाओ। मातृ-

भूमि के पराधीन रहते हुए तुम्हें ईश्वर की स्तुति करने का कोई अधिकार नहीं।

धर्माधीशों की यह वाणी व्यर्थ न गई। देशवासियों ने प्रण कर लिया कि मातृ-भूमि की रक्षा के लिए मर मिटेंगे। देश के लिए शरीर की बोटी-बोटी अर्पण कर देंगे; पर जीते जी पोलैण्ड की वश्यता न स्वीकार करेंगे।

प्रिन्स पोयारस्की और कोज़ा मेनिन इस आन्दोलन के प्रधान नायक थे। दोनों परम देशभक्त और अभिन्न-



श्री० ए० वेङ्कटरमा अय्यर, बी० ए०, बी० एल०

आप ट्रावणकोर स्टेट के नए दीवान नियुक्त किए गए हैं। आपका शिक्षक जीवन बड़ा प्रतिभापूर्ण बतलाया जाता है।

हृदय सहयोगी थे। कोज़ा मेनिन के दिमाग़ में और पोयारस्की के बाहु में भीषण शक्ति थी। पोयारस्की रूसी राजवंश का रत्न था, और मेनिन था जूता बनाने वाला 'चमार वंशावतंस !' परन्तु देश-भक्ति की आग दोनों के दिलों में समान रूप से धधक रही थी। दोनों मातृ-भूमि की स्वतन्त्रता के लिए अपना सर्वस्व होम देने को तैयार हो गए। देश के इस सङ्कट के समय महाप्राण मेनिन ने 'सूई-सुतली' एक किनारे रख दिया और एक दिन विप्लव की रक्त-पताका लेकर मैदान में खड़ा हो गया। देशद्रोही विभीषणों ने व्यङ्ग की मुस्कराहट से मुँह फेर लिया। परन्तु देशवासी कमर बाँध कर उसकी पताका के नीचे आकर खड़े हो गए। सबने समवेत भाव से अपने श्रद्धेय 'चमार-गुरु' की आज्ञा शिरोधार्य की। सबने एक स्वर से प्रतिज्ञा की—"विदेशियों को मार भगाएँगे, देश को ग़ुलामी के बन्धन से विमुक्त करेंगे या समर-क्षेत्र में प्राण विसर्जन कर देव-दुर्लभ वीर-गति लाभ करेंगे।" हज़ारों रूसी वीरों ने अपनी सारी सम्पत्ति—अपना सर्वस्व—राष्ट्र-गुरु मेनिन के चरणों में अर्पण कर दिया !

इस प्रकार जब सारी तैयारी हो गई तो एक दिन युवराज पोयारस्की ने पोलों के विरुद्ध युद्ध-घोषणा कर दी। पोल भी कम दुर्धर्ष न थे। रूसियों के इस राष्ट्रीय अभिमान को उन्होंने एक मज़ाक़ समझा। उन्होंने सोचा था कि विजयिनी सेना का हुङ्कार सुनते ही रूसी उनके चरणों पर टोपी उतार कर रख देंगे और भविष्य में फिर कभी ऐसी गुस्ताख़ी करने का साहस न करेंगे। परन्तु बात ऐसी न थी। कोज़ा मेनिन ने उन्हें अच्छी तरह 'ठोंक-बजा कर' मैदान में उतारा था। वे अपने देश की स्वतन्त्रता के लिए प्राण विसर्जन कर देने की अटल प्रतिज्ञा करके आए थे। उन्हें पोलैण्ड तो क्या, समस्त विश्व के बिगड़ जाने का भी कोई भय न था। उन्होंने अल्प प्रयास में ही पोलों को अपने देश से सदा के लिए विताड़ित कर दिया—रूसी राष्ट्र फिर स्वतन्त्र हो गया।

इसके कुछ दिन बाद ही (सत्रहवीं शताब्दी के अन्त में) 'पिटर दी ग्रेट' का आविर्भाव हुआ। उस समय रूस की अन्दरूनी हालत बड़ी शोचनीय हो गई थी। तत्कालीन सम्राट की मृत्यु के बाद राजसिंहासन को लेकर एक भयङ्कर घरेलू झगड़ा खड़ा हो गया। पिटर के प्रतिद्वन्दी केवल उसे राजसिंहासन से ही वञ्चित करना नहीं चाहते थे, वरन् उसका अस्तित्व तक मिटा देना चाहते थे। इसलिए पिटर की माता उसे लेकर देहात के एक निर्जन स्थान में रहने लगी। वहाँ उसकी शिक्षा-दीक्षा का कोई समुचित प्रबन्ध न था। परन्तु पीटर एक प्रतिभाशाली बालक था। देहात के असभ्यता-पूर्ण स्थान में रह कर भी उसने यथेष्ट सद्गुण सञ्चय कर

लिए। वह रूस का 'अकबरे-आज़म' था और बेनिता मुसोलिनी की सी विचित्र प्रतिभा प्राप्त की थी।

जिस समय पिटर सिंहासनारूढ़ हुआ, उस समय स्वतन्त्र होने पर भी, रूस की दशा अच्छी न थी। उसमें न शिक्षा थी, न सभ्यता, और न बल ही था। चारों ओर कुसंस्कारों का घोर अन्धकार—सङ्कीर्णता, क्षुद्रता और दीनता फैली हुई थी।

पिटर ने देखा, ऐसी महापतित जाति की स्वाधीनता कभी चिरस्थायिनी नहीं हो सकती, इसलिए देश की स्वाधीनता की रक्षा के लिए जाति को नए सिरे से शिक्षित, योग्य और बलशाली बनाना चाहिए। जब तक देश के शिल्प, विज्ञान, शिक्षा और धार्मिक विचारों की उन्नति न होगी, तब तक उसे स्वाधीनता की रक्षा की योग्यता भी प्राप्त न होगी। इसलिए बड़ी दृढ़ता और निपुणता के साथ उसने संस्कार-कार्य आरम्भ कर दिया। विदेशों से विविध विषय के जानकारों को बुला कर उसने प्रजा की समुचित शिक्षा का प्रबन्ध किया। जहाज़ बनाने की शिक्षा देने वाला कोई न मिला, तो स्वयं इङ्गलैण्ड जाकर यह काम सीख आया और स्वदेश लौट कर जहाज़ बनाने का एक वृहत् कारख़ाना क़ायम कर दिया। परन्तु रूसी प्रजा उस समय दक़ियानूसी विचार वाले 'कट्टर सनातनियों' के हाथ में थी। वे 'बाबा वाक्यम् प्रमाणम्' के अनुयायी और पक्षपाती थे। नवीन संस्कार का नाम सुनते ही उनके पेट में चूहे कूदने लगे। उन्होंने पिटर के कार्यों का घोर विरोध आरम्भ किया। और जिस तरह आजकल हमारे देश के 'सनातनी' सुधार और संस्कार का नाम सुनते ही 'धर्म गया, धर्म गया!' कह कर हल्ला मचाने लगते हैं, उसी तरह रूस के सनातनी भी पिटर के विरुद्ध हो-हल्ला मचाने लगे।

परन्तु पिटर को ऐसे कूपमण्डूकों के विरोध या प्रतिवाद की परवाह न थी। उसने बड़ी सख़्ती से अपने सिद्धान्तों को कार्य में परिणत करना आरम्भ किया और जिसने उसकी आज्ञा का विरोध किया, उसके साथ सख़्ती से पेश आया। उसकी आज्ञा 'वेद-वाक्य' की तरह पालनीय थी। वह अपनी आज्ञा के उल्लङ्घनकारी को कड़ी से कड़ी सज़ा देने में ज़रा भी सङ्कोच नहीं करता था। इसलिए इच्छा न रहने पर भी कोई उसके आदेश पालन करने में आनाकानी नहीं कर सकता था।

अन्त में लोगों को पिटर का उद्देश्य मालूम हो गया। विरोधी भी इस बात को समझ गए कि वह राष्ट्र का शुभचिन्तक है। पिटर ने अपने अध्यवसाय द्वारा अपने देश की असाधारण उन्नति की। उसी के ज़माने से सारे संसार पर रूस के बल की धाक जम गई और फिर किसी ने उसकी ओर आँख उठाने का साहस नहीं किया।

रूस के सम्राटों को 'ज़ार' कहते हैं। पिटर के बाद जितने ज़ार रूस के सिंहासन पर बैठे, वे सभी एक से



मि० एस० आर० पाटनिस

आप प्रथम श्रेणी के पाँच स्काउटों में से एक हैं, आपको कोल्हापुर स्टेट का सर्वश्रेष्ठ स्काउट होने का गौरव प्राप्त है।

एक बढ़ कर अत्याचारी और विलासी थे। प्रजा के प्राणों को लेकर खिलवाड़ करना तो उनके लिए एक मामूली बात थी, बात-बात में सूली और फाँसी, बात-बात में जेल और जलावतन! ज़ार महोदयगण अपने को 'सर्वशक्तिमान' (Almighty) समझते थे। मानो ईश्वर ने प्रजा पर अत्याचार करने के लिए ही उनकी सृष्टि की है। प्रजा का जीवन-मरण उनकी इच्छा के अधीन है। वे जिसे चाहें जीवित रहने दें। ज़ारों तथा उनके मुट्ठी

भर पिट्ठुओं की सुख-स्वच्छन्दता के लिए ऐश्वर्य और उपकरण एकत्र करने के सिवा मानो रूस की प्रजा के जीवन का कोई उद्देश्य ही न था। किसानों तथा मज़दूरों की सारी कमाई ज़ारों, फ़ौजी अफ़सरों, सरकारी कर्मचारियों तथा देश के धनवानों के विलास-भोग के लिए थी। सारी ज़मीन या तो ज़ार की थी या उसकी चापलूसी करने वाले 'बड़े आदमियों' की! कृषक अपने खेतों में अन्न उपार्जन करके उसे 'ज़मींदार' के कोठिलों में रख



श्री० एम० सुभाराव

आप बङ्गलोर के सुप्रसिद्ध रावबहादुर डॉक्टर सी० बी० रामाराव के पोते हैं, जिन्होंने हाल ही में आई० सी० एस० की परीक्षा पास की है।

दिया करते थे और स्वयं कदन्न तथा सड़ा मांस खाकर जीवन-निर्वाह किया करते थे। ठीक यही दशा थी, जो आजकल हमारे देश के अभागे किसानों की है। बेचारे साल भर घोर परिश्रम करके धान और गेहूँ उपार्जन करते हैं, परन्तु उनके बच्चों को बरस में दो महीने भरपेट चोकर की रोटी भी नसीब नहीं होती। इन पंक्तियों का लेखक ऐसे बहुत से किसानों को जानता है, जो गेहूँ और धान की खेती करते हैं, जिनके पास सदैव दूध देने वाली गाएँ और भैंसें रहती हैं, परन्तु उन्होंने अपने घर में कभी गेहूँ की 'चुपड़ी हुई रोटी' नहीं खाई है !!!

ज़ारशाही के दिनों में रूस के किसानों की अवस्था भी ऐसी ही विचित्र दशा में थी। ज़ार तथा देश के बड़े आदमियों के रोमाञ्चकारी अत्याचारों के विरुद्ध चुपचाप दीर्घ-निश्वास लेना भी भयङ्कर अपराध समझा जाता था। थोड़े शब्दों में ज़ार अत्याचार के मूर्त्तिमन्त अवतार होते थे। आइए, उनकी नृशंसता की एक रोमाञ्चकारी कहानी सुनाएँ :—

किसी ज़ार का अभिषेकोत्सव था, राजधानी के बाहर एक विस्तृत मैदान में, करोड़ों रुपए की लागत से, एक सुविशाल 'दरबार-भवन' बना था। सारे संसार से मनोरञ्जन की सामग्री बटोर कर एकत्र की गई थी। एक से एक चकित और स्तम्भित करने वाले तमाशे मौजूद थे। दर्शकों के लिए एक गहरी खाई पाट कर विशाल मञ्च निर्माण किया गया था। हज़ारों मनुष्य तमाशा देखने के लिए आए थे। इतने में एकाएक मञ्च टूट गया और उस पर बैठ कर जो लोग तमाशा देख रहे थे, वे सब के सब नीचे गहरी खाई में जा पड़े! परन्तु जलसे में विघ्न पड़ जाने के कारण उनके उद्धार की कोई तदबीर न की गई और शायद वे अब तक वहीं तमाशा देख रहे हैं।

इसी तरह कितने ही युग बीत गए। रूस की प्रजा ज़ारशाही का शिकार होती रही। इतने में फ़्रान्स का भीषण विप्लव आरम्भ हुआ। उसके साथ ही रूस की अत्याचार-पीड़ित प्रजा भी कुछ चञ्चल हो उठी। उधर ज़ार ने भी भीषण मूर्ति धारण की। अत्याचार मानो सीमोल्लङ्घन कर गया। बात-बात में लोग पकड़ कर बिना विचारे ही साइबेरिया भेजे जाने लगे। जेल, जुर्माना और निर्वासन रूसियों के जीवन की एक नैमित्तिक घटना हो गई। बीस वर्षों में एक लाख रूसी केवल साइबेरिया में निर्वासित करके भेजे गए थे—अन्यान्य प्रकार से दण्डितों का तो कोई हिसाब ही न था।

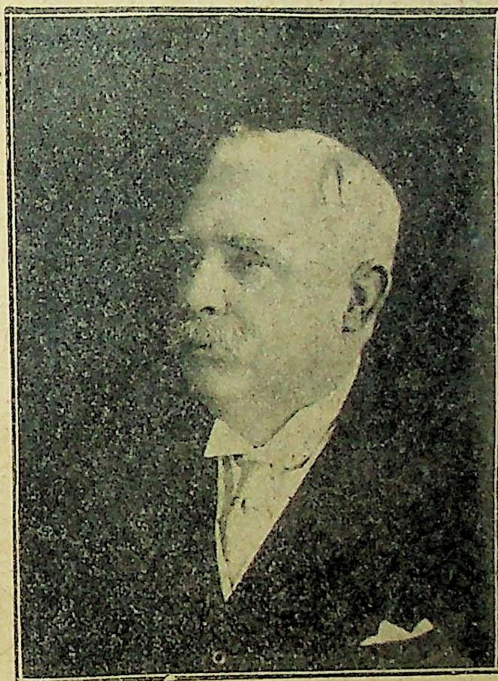
परन्तु अत्याचार निष्फल नहीं गया। ज़ारशाही के दिन पूरे हो चले थे। अत्याचारों से कुचली हुई, प्राणहीन जाति में भी मानो अलक्ष्य भाव से विप्लव का बीज पड़ गया। रूस के युवक यूरोप के वालटेयर, स्पेन्सर, डारविन, मिल, कोमत्, रूसो तथा अन्यान्य क्रान्तिवादी लेखकों का साहित्य बड़े चाव से पढ़ने लगे। दिमित्री

डान्सकोई, आइवन, पोयारस्की और कोज़ा मेनिन की जीवन-गाथाएँ भी पढ़ी जाने लगीं। इसके कुछ दिन बाद ही ऋषि टॉल्स्टॉय आदि रशियन साहित्यिकों की लेखनियाँ भी उन्हें कोंच-कोंच कर जगाने लगीं। प्रजा के हाहाकार ने भीषण रूप धारण करना आरम्भ कर दिया और अन्त में सब से पहले विद्यार्थियों ने विप्लव का भण्डा बुलन्द किया। इसके बाद अन्यान्य श्रेणी के नवयुवकों ने साथ दिया। 'निहिलिज़्म' और 'अनारकिज़्म' का आविर्भाव हुआ। सन् १८६२ में 'विप्लव-समिति की घोषणा' नाम का एक इश्तहार निकला कि—"रूस की प्रजा को ज़ार-वंश के रक्त से अपने पापों का प्रायश्चित्त करना पड़ेगा।" यह इश्तहार मानो रूस की अनुपम भीषण क्रान्ति का मङ्गलाचरण था।

ज़ार ने भी बिना विलम्ब प्रचण्ड दमन आरम्भ कर दिया। सैकड़ों स्कूल, कॉलेज, सण्डे-स्कूल और अख़बार बन्द कर दिए गए। कितने ही भले आदमियों को निर्वासन दण्ड प्रदान किया गया। परन्तु आन्दोलन नहीं रुका। उत्पीड़ित जाति का चोभ ज्वालामुखी से निकली हुई 'तरलाग्नि' की भयङ्कर धारा की तरह बह चला था। उसे रोकने की शक्ति किसमें थी? अवशिष्ट स्कूलों, कॉलेजों, कारख़ानों और क्लबों में भी राज-शक्ति को संयत करने के सम्बन्ध में तर्क-वितर्क होने लगे। साथ ही ज़ार के जासूस भी चक्कर मारने लगे। नतीजा वही हुआ,जो होना चाहिए। फिर निर्वासन, कारा-दण्ड और मृत्यु-दण्ड का बाज़ार गर्म हो उठा। प्रजा काँप उठी, चारों ओर त्राहि-त्राहि मच गई, परन्तु विप्लव का दमन न हो सका। बम और रिवॉल्वर द्वारा, सुविधा और सुयोग के अनुसार, राजपुरुषों की हत्याएँ तथा रेलगाड़ियों और सरकारी ऑफ़िसों को उड़ा देने के षड्यन्त्र होने लगे। सैकड़ों युवक देवी स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर जीवनोत्सर्ग करने लगे, हज़ारों साईबेरिया के प्रकाशहीन, निर्जन वनों में जाति के दुर्भाग्य का प्रायश्चित्त करने चले गए।

सन् १८६६ ईस्वी में मास्को की गुप्त-समिति के कैरा कोज़फ़ नाम के एक युवक ने ज़ार को पिस्तौल का निशाना बनाया। परन्तु लक्ष्य भ्रष्ट हो जाने के कारण उसका प्राण बच गया। कैरा कोज़फ़ को फाँसी की सज़ा दी गई और समस्त देश के विद्यार्थियों पर कड़ी नज़र रक्खी जाने लगी। जासूसों की काफ़ी भरमार कर दी गई। अत्याचार की मात्रा भी ख़ूब बढ़ा दी गई। परन्तु कोई फल न हुआ। विप्लव दिन दूनी और रात चौगुनी गति से अग्रसर होने लगा।

सन् १८७९ में एक बार फिर ज़ार को मार डालने की चेष्टा की गई, परन्तु सफलता न मिल सकी। क्योंकि उसके जीवन के दिन अभी पूरे नहीं हुए थे। अन्त में सन् १८८१ में एक नवयुवक ने उसे मार डाला।



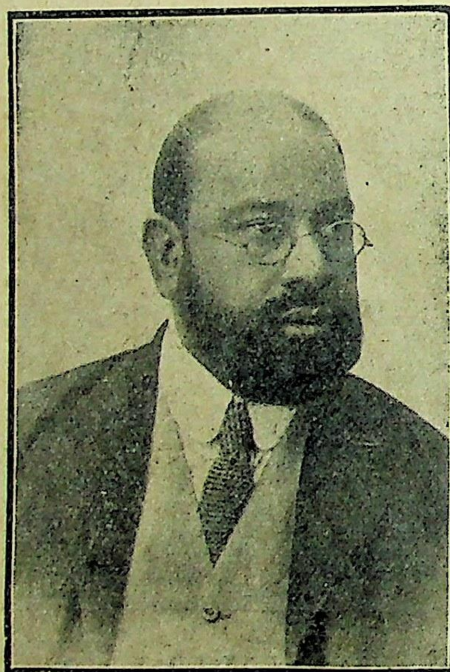
श्री० आर० बी० रशल, एम० बी० ई०

आप रङ्गन कॉरपोरेशन के मेयर थे। आपने हाल ही में विश्राम लिया है।

इसके बाद अन्तिम बार ज़ार निकोलस रूस का भाग्य-विधाता बना। उसने सोचा, दमन की मात्रा अच्छी तरह बढ़ाई नहीं गई थी, इसी से विप्लव-पन्थियों के मन बढ़े हुए हैं। इसलिए एक बार समस्त बल-बूता लगा कर उन्हें कुचल डालना चाहिए। उसके अनुचरों और मन्त्रियों ने भी इस राय की ताईद की। फिर एक बार महाभयङ्कर दमन आरम्भ हुआ। ऐसे-ऐसे अमानुषिक अत्याचार हुए कि जिनका वर्णन नहीं हो सकता। स्त्रियों तक का अपमान होने लगा। रूसी सेना हिंसक

पशु की तरह देशवासियों का रक्त बहाने लगी। समस्त रूस में हाहाकार मच गया। साथ ही ज़ार निकोलस को थोड़ी सी सफलता भी प्राप्त हो गई। उसके अत्याचार से निहिलिस्टों का नाश हो गया।

परन्तु किसी दल विशेष के नाश से विप्लव का अन्त नहीं होता। 'निहिलिज़्म' के अवसान के साथ ही 'सोशल डिमोक्रेट' दल की सृष्टि हुई। इन्होंने निश्चय किया कि अब की श्रमिकों द्वारा विप्लव की आग भड़का दी जानी चाहिए। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए "श्रमिक-मुक्ति-समिति' नाम की एक गुप्त-समिति की



ख़ानबहादुर हाफ़िज़ मोहम्मद हलीम

आप यू० पी० व्यवस्थापिका सभा के नए सदस्य तथा कानपुर के प्रसिद्ध एवं धनवान चमड़े के व्यापारी हैं।

स्थापना हुई। श्रमिकों को उनकी वास्तविक परिस्थिति का ज्ञान कराया जाने लगा। इसी समय 'विप्लववादी' सोशलिस्टों का भी आविर्भाव हुआ। ये रिवॉल्वर, बम और हत्या के भयङ्कर पक्षपाती थे। उन्होंने भीषण रक्तपात आरम्भ किया। विप्लव आन्दोलन तीव्र गति से चलने लगा।

इसी समय इतिहास-प्रसिद्ध रूस-जापान युद्ध छिड़ा और रूस को बुरी तरह हार खानी पड़ी। इस पराजय में सब से अधिक क्षति रूसी मज़दूरों की हुई थी। इसलिए ये बेतरह खलबला उठे और सरकार के प्रति खुल्लमखुल्ला असन्तोष प्रकट करने के लिए एक दिन सारे देश में श्रमिक हड़ताल मनाई गई और श्रमिकों के एक बड़े भारी दल ने निश्चय किया कि ज़ार निकोलस से इस बात की कैफ़ियत तलब की जाय कि उन्होंने क्यों इतना बड़ा युद्ध ठाना था और अब हमारे लिए क्या करना चाहते हैं? वह वृहत्तर श्रमिक-दल ज़ार के महल की ओर अग्रसर हुआ। वह सम्राट के सामने अपना दुःख रोने जा रहा था। परन्तु सम्राट की सेना ने गोलियों से उसका स्वागत किया। हज़ारों श्रमिक सरे-राह हताहत होकर समस्त दुःख-शोक से विमुक्त हो गए।

यह घटना मानो ज़ारशाही के निश्चित पतन की पूर्व सूचना थी। उसने सारे देश में धधकी हुई विप्लव की भीषण अग्नि को प्रचुर ईंधन प्रदान किया। जो अब तक राजनीतिक व्यापार से तटस्थ रहना चाहते थे, उन्होंने भी श्रमिकों से सहानुभूति प्रकट की। विप्लव ने रौद्र मूर्ति धारण की। सरकारी अफ़सरों तथा सरकार के पृष्ठ-पोषकों की ख़ूब ख़बर ली जाने लगी। प्रतिहिंसा के भाव ने श्रमिकों को पागल बना दिया था। इस विप्लव का नेतृत्व 'केप्रस्टलेव्ह' नाम के एक वीर ने ग्रहण किया था। वह सरकारी कर्मचारियों का यमराज था।

अन्त में इस भयङ्कर उत्पात से ज़ार भी घबरा उठा। उसने शासन में सुधार करने की इच्छा से 'डूमा' नाम की एक प्रतिनिधि-सभा का सङ्गठन किया। परन्तु वास्तव में 'डूमा' की सृष्टि रूसियों को धोखा देने की इच्छा से की गई थी। सम्राट ने शासन सम्बन्धी सारा अधिकार अपने हाथ में रक्खा था। ज़ार की इस मूर्खता ने जले पर नमक का काम किया। अब लोगों को मालूम हुआ कि 'डूमा' महज़ 'धोखे की टट्टी' है, तो वे और भी असन्तुष्ट हो गए।

ज़ार की आयु के दिन पूरे हो चले थे। सन् १९१५ में, यूरोपियन महासमर आरम्भ होने पर, विप्लववादियों ने सदा के लिए ज़ारशाही का अन्त कर डाला। ज़ार निकोलस सपरिवार मार डाला गया। विप्लववादियों ने उसके कुत्ते तक को जीवित न छोड़ा। उसके साथ ही और भी कितनी ही हत्याएँ हुईं। विप्लववाद ने विजय प्राप्त की। परन्तु इससे कृषकों और श्रमिकों का कोई

विशेष उपकार न हुआ। इस महाकाण्ड में उन्होंने जितना रक्त बहाया उसका प्रतिफल उन्हें कुछ भी प्राप्त न हुआ। इसलिए ज़ारशाही का अन्त हो जाने पर भी रूसी प्रजा के असन्तोष का अन्त न हो सका।

रूस के इस अन्तिम महान विप्लव में एक अद्भुत-कर्मा महापुरुष शामिल था। वह रूस का त्राता और कृषकों तथा श्रमजीवियों का परम-बन्धु था। उसका आदरणीय नाम था, निकोली लेनिन। उसकी अपार महिमा का वर्णन इस लेखनी द्वारा नहीं हो सकता। एक शब्द में वह अवतार था—मूर्तिमान विप्लव था। उसके उच्च आदर्शवाद की कहानी बड़ी लम्बी-चौड़ी है। उसके विप्लवमय जीवन की रोचक कथा जिन्हें पढ़नी हो, उन्हें सन् १८७० से लेकर १९२४ तक का रूस का इतिहास पढ़ना चाहिए। हम तो यहाँ सूत्र-रूप में उसके कार्यों का थोड़ा सा परिचय मात्र प्रदान करेंगे।

रूस में विप्लव की आँधी चल रही थी। हिंसा, हत्या और षड्यन्त्र सीमा पर पहुँच रहा था। चारों ओर निरानन्द का साम्राज्य फैला हुआ था। उसी समय (सन् १८७०) में, एक छोटे से गाँव में संसार के इस अद्वितीय महापुरुष ने जन्म लिया था। उसका पिता किसान था। परन्तु पढ़-लिख कर 'स्कूल-इन्स्पेक्टर' बन गया था। उसकी इच्छा थी बुढ़ौती में विश्राम करने की, इसलिए उसने लेनिन को पढ़ा-लिखा कर वकील बनाया। परन्तु लेनिन अपने बड़े भाई अलेक्ज़ेण्डर आइलिच विलनफ़ की मदद से विप्लवपन्थियों विशेषतः विप्लववादी छात्रों से परिचित हो चुका था। उसने क़ानून की पुस्तकें समेट कर रख दीं और सोचने लगा कि क्या यही जीवन का लक्ष्य है—हिन्दुस्तान के वकीलों की तरह देशवासियों के झगड़े में सहायक बन कर माल पैदा करना? इतने में, एक दिन सुना कि बड़े भाई को फाँसी की सज़ा हो गई! उस समय वह केवल अट्ठारह वर्ष का बालक था। उसके कोमल हृदय पर इस घटना का गहरा प्रभाव पड़ा, साथ ही उसे जीवन का लक्ष्य भी मिल गया। वह फ़ौरन विप्लव की धधकती आग में कूद पड़ा।

उसने तत्कालीन विप्लवपन्थियों की कार्य-प्रणाली तो पसन्द की, परन्तु उनके उद्देश्यों से सहमत न हो सका। इसलिए अपने पूर्ववर्त्तियों के प्रति श्रद्धा प्रकाश करते हुए उनके उद्देश्यों का विरोध करने लगा। छात्रावासों के सिवा कारख़ानों और खेतों को भी उसने अपना कार्यक्षेत्र बनाया। 'श्रमिक-सङ्घ' स्थापित किया, अख़बार निकाला और 'कुलीटोले' (!) में घूम-घूम कर मौखिक प्रचार करने लगा। उसके युक्तिपूर्ण अर्थनैतिक प्रबन्ध और राष्ट्रीय समस्या की नई व्याख्या पढ़ कर प्रजातन्त्रवादी नेता चञ्चल हो उठे और अपने मतवाद को इस नई आफ़त से बचाने की चेष्टा करने लगे। परन्तु उसके विचारों की बिजली चमक चुकी थी।



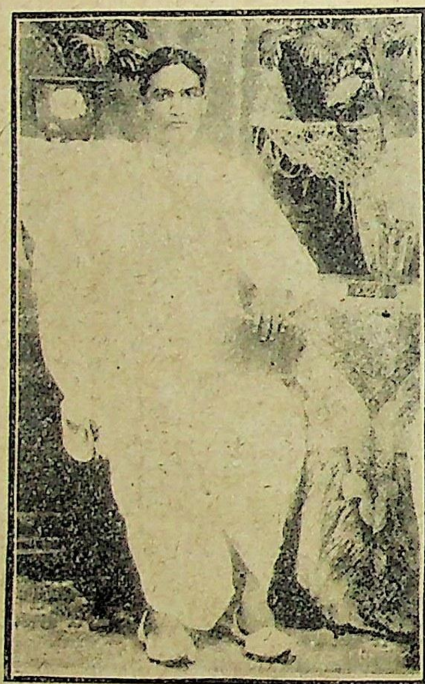
श्री० एच० ए० लाल जी

आप बम्बई के मेयर और भारतीय व्यापार-संघ के प्रधान हैं, जिन्हें गवर्नमेण्ट ने १९३१ में होने वाली अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर-सभा के १५ वें अधिवेशन के लिए भारतीय प्रतिनिधि चुना है!

'हड़ताल की मार' से पूँजीवाद की कमर में दर्द पैदा होने लग गया था। इसी समय उसने 'जुर्माना' नाम की एक पुस्तिका लिखी। उन दिनों रूस के मज़दूरों पर ज़रा-ज़रा सी बात के लिए जुर्माने हुआ करते थे। श्रमिक घबराए हुए थे। इसलिए उस पुस्तिका में लिखे अर्थनैतिक विचारों का मज़दूरों पर काफ़ी प्रभाव पड़ा। उन्होंने इस अन्याय के प्रतिकार के लिए 'हड़ताल' का आश्रय लिया।

परन्तु बहुत परिश्रम करने पर भी लेनिन के अनुगामियों की संख्या मुष्टिमेय की परिधि को पार न कर सकी। इसलिए जिस तरह महात्मा गाँधी ने केवल सोलह साथियों को लेकर दक्षिण अफ़्रिका में महान सत्याग्रह-संग्राम छेड़ दिया था, उसी तरह महात्मा लेनिन ने भी अपने अल्पसंख्यक साथियों को लेकर कार्यारम्भ कर दिया। वह निराश होना नहीं जानता था, उसे अपने आत्मबल पर अटल विश्वास था।

ख़ैर, इसी समय पुलिस ने उसे गिरफ़्तार करके क़ैद कर लिया और दीर्घ काल के बाद जब वह छूट कर लौटा



स्वर्गीय कालीशङ्कर जी वाजपेयी

आप बम्बई में पुलिस की लाठी से आहत होकर मृत्यु को प्राप्त हुए थे। आपकी अस्थि काशी विसर्जनार्थ लाई गई थी।

तो उस समय रूस की हालत अच्छी न थी। पुलिस के अत्याचारों के कारण लेनिन जैसे देशभक्त का एक क्षण भी रूस में ठहरना मुश्किल था। इसलिए जेलख़ाने से छूटते ही उसने यूरोप की यात्रा कर दी। परन्तु थोड़े दिनों के बाद उसे मालूम हो गया कि देश की सेवा देश में रह कर जितनी अच्छी हो सकती है, उतनी विदेश में रह कर नहीं हो सकती, इसलिए वह गुप्त रूप से फिर रूस में आकर रहने लगा और अपने सिद्धान्तों का प्रचार करने लगा। परन्तु शीघ्र ही पुलिस ने उसे फिर पकड़ा और अबकी वह आजन्म के लिए साइबेरिया भेजा गया।

उस समय स्वीटज़रलैण्ड यूरोपियन राजविद्रोहियों का प्रधान आश्रय-स्थल था। इसलिए साइबेरिया पहुँचते ही लेनिन ने वहाँ से भाग कर स्वीटज़रलैण्ड चले जाने का प्रयत्न आरम्भ कर दिया और एक दिन मौक़ा पाते ही निकल पड़ा।

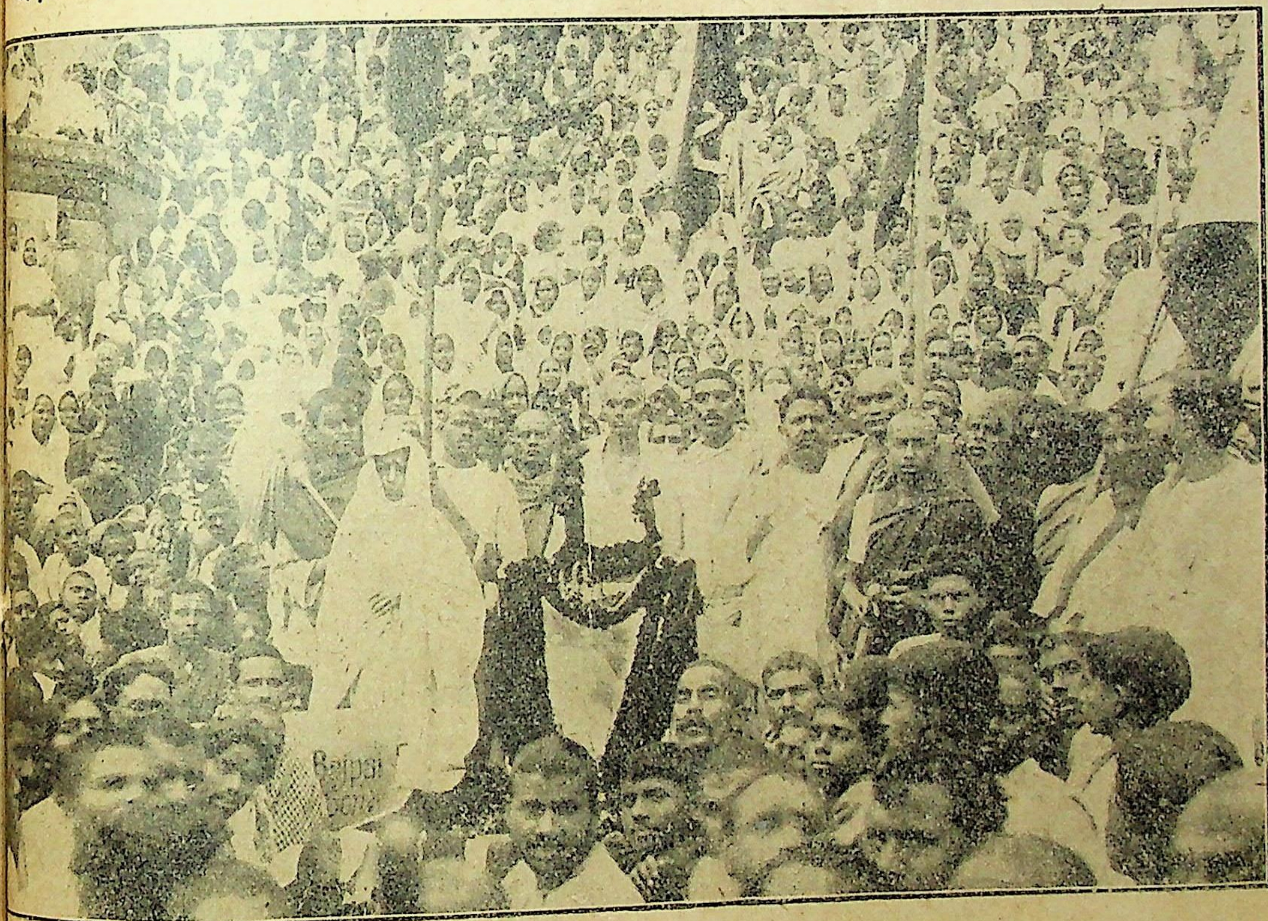
स्वीटज़रलैण्ड पहुँच कर लेनिन ने अन्तर्जातीय मज़दूर सङ्घ से सम्बन्ध स्थापित किया और दिन-रात उसी की उन्नति और प्रचार में व्यस्त रहने लगा। परन्तु इसके साथ ही रूस के आन्दोलन की प्रगति पर भी उसकी तीक्ष्ण दृष्टि थी। समय-समय पर वह गुप्त रूप से वहाँ अपने सिद्धान्तों का प्रचार भी करता रहा। इसके बाद, सन् १९०१ में, उसने 'इस्क्रा' (चिनगारी) नाम का एक अख़बार निकाला और उसकी हज़ारों प्रतियाँ रूस के श्रमिकों और किसानों में वितरित होने लगीं। वास्तव में इस पत्र के सहारे लेनिन ने रूस के किसानों और मज़दूरों में नवजीवन का सञ्चार कर दिया। उसके अक्लान्त परिश्रम की सफलता उसे प्रत्यक्ष रूप से दृष्टिगोचर होने लगी। परन्तु इसके साथ ही उसके सिद्धान्त के विरोध ने भी प्रबल रूप धारण किया। प्रतिद्वन्दी नेताओं ने अपना सारा बल लगा कर उसे हीन, ढोंगी और बकवादी प्रतिवादित करने की चेष्टा की। यहाँ तक कि उसके व्यक्तित्व और चरित्र पर भी ख़ूब आक्रमण हुए। परन्तु साथ ही लेनिन की आग उगलने वाली लेखनी भी चुप न थी। उसने अकेले ही अपने तीक्ष्ण शब्द-बाणों द्वारा सारे प्रतिद्वन्दियों को जर्जरित कर दिया। उन्होंने उसे चरित्रहीन बताया तो लेनिन ने भी उन्हें धनतन्त्रवादी, प्रभुत्वकामी, सुविधावादी और नर-खादक आदि विशेषणों से विभूषित करना आरम्भ किया। उस समय रूस में 'सोशल रिमोल्यूशरी' दल का बड़ा ज़ोर था। वे कुछ लोगों को उत्तेजित कर एक विद्रोह करा देने का मौक़ा देख रहे थे। लेनिन ने इसका विरोध आरम्भ किया। उसने लोगों को समझाया कि यह विद्रोह व्यर्थ होगा। बात भी वही हुई। राजशक्ति ने अल्प प्रयास द्वारा ही विद्रोहियों को कुचल डाला।

इस समय रूस के राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं में दो दल हो गए थे—(१) 'मानशेविक' (बहुसंख्यक) और

(२) 'बोलशेविक' (अल्पसंख्यक)। लेनिन इसी दूसरे दल का आविष्कारक, अनुयायी और पृष्ठपोषक था। सन् १९०३ में गुप्त रूप से बोलशेविक कॉङ्ग्रेस का अधिवेशन हुआ। रूस के कितने ही प्रतिभाशाली नेता इससे पहले ही लेनिन के पक्षपाती हो गए थे। परन्तु लेनिन का कठोर आदर्शवाद उन्हें सह्य न था, इसलिए कुछ दिनों के बाद वे अलग होकर फिर 'मानशेविकों' से जा मिले।

ही अपने उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए काफ़ी हूँ।" साथियों ने कहा—"हमारे हट जाने पर लेनिन मुर्दा है! उसकी बात कोई नहीं सुनेगा।" लेनिन ने दृढ़-स्वर से उत्तर दिया—"सब के अन्त में जो हँसता है, उसी की हँसी सार्थक होती है। देखा जाय, देश किसकी आवाज़ सुनता है?"

शीघ्र ही मानशेविकों की परिस्थिति डावाँडोल हो



काशी के केदार-घाट का वह दृश्य, जिनमें अपार जन-समूह स्वर्गीय कालीशङ्कर वाजपेयी के अस्थि-विसर्जन के समय एकत्र हुआ था। कहा जाता है, आपकी राख ले-लेकर उपस्थित जनता ने टीका लगा कर अपने को धन्य समझा था।

फिर वही सुविधावाद और राजविधान-सङ्गत अर्थनैतिक आन्दोलन आदि की बातें होने लगीं। यहाँ तक कि अन्त में उसके अन्तरङ्ग मित्रों ने भी उसका साथ छोड़ दिया। परन्तु लेनिन अपने सिद्धान्तों पर पर्वत की तरह अचल-अटल भाव से डटा था। उसने साथियों से कहा—"परवाह नहीं, तुम मुझे छोड़ कर चले जाओ? मैं अकेला

गई। कभी वह एक क़दम आगे बढ़ाते और कभी दो क़दम पीछे हट जाते। इस समय लेनिन का 'इस्का' अख़बार उन्हीं मानशेविकों के अधिकार में था। जो एक दिन आग उगलता था, वह अब बर्फ़ बन गया था। इसलिए लेनिन ने 'यूपीरियड' (Yperiod) नाम का एक दूसरा अख़बार निकाला। देश-त्यागी रूसियों तथा

विदेशस्थ रूसी छात्रों की दी हुई भीख के भरोसे यह पत्र चलने लगा। यह था तो छोटे ही आकार-प्रकार का, परन्तु बड़े-बड़े दिग्गजों को विचलित कर दिया। लेनिन के प्रतिद्वन्द्वी प्रधान नेताओं का प्रभाव ख़ाक में मिल गया।

सन् १६०५ में जब सारे रूस में बोलशेविकों की तूती बोलने लगी तो 'सोशल डिमाक्रेट' दल वाले लेनिन और उसके अनुयायियों पर सख़्त नाराज़ हो गए। बड़े ज़ोर-शोर से बोलशेविकों का विरोध आरम्भ हुआ।



श्री० सुन्दरलाल जी खन्ना

आप मुज़फ़्फ़रपुर के प्रसिद्ध वकील बाबू अमरनाथ खन्ना के १८ वर्षीय भतीजे हैं, जो हाल ही में पुलिस के डण्डे से आहत होकर बेहोश तक हो गए थे।

सन् १६०५ में 'सोशल डिमोक्रेटिक लेबर-पार्टी' का तीसरा अधिवेशन हुआ तो लेनिन भी गुप्त रूप से उसमें शामिल हुआ। उसने मानशेविकों को समझाने की चेष्टा की। परन्तु कोई फल न हुआ। उसके एक पुराने साथी ने समझौता कर लेने की सलाह दी। परन्तु अपने उच्च आदर्श को बिगाड़ कर वह समझौते के लिए राज़ी नहीं हुआ।

सन् १६०५ में फिर विद्रोह हुआ और राज-शक्ति द्वारा कुचल डाला गया। परन्तु अन्त में मानशेविकों ने बड़े विलाप-कलाप के बाद स्वीकार किया कि श्रमिक बोलशेविक के हाथों में हैं और देश में अब मानशेविकों का नेतृत्व नहीं रहा।

विद्रोह व्यर्थ होने पर लेनिन को कोई चिन्ता नहीं हुई। वरन् वह इस घटना से प्रसन्न हुआ और भावी भयङ्कर क्रान्ति की तैयारी करने लगा। इसी समय मौक़ा देख कर उसने गुप्त रूप से 'सोवियट सङ्घ' की स्थापना भी कर डाली। ज़ारशाही की नज़र बचा कर उसके कई गुप्त अधिवेशन हुए। कुछ लोग 'सोवियट' का अर्थ श्रमिकों के अभाव, अभियोगों को दूर करने वाली संस्था समझे बैठे थे। परन्तु लेनिन उसे एक महान राष्ट्रीय संस्था समझता था। इस समय लेनिन को फिर रूस छोड़ना पड़ा। क्योंकि पुलिस को मालूम हो गया था कि वह यहीं है। फलतः प्रचार का कार्य अपने अनुयायियों को सौंप कर वह फिर यूरोप चला गया। इसके सिवा सन् १६०३ के विद्रोह की व्यर्थता के कारण रूस में कुछ अवसाद भी आ गया था। ज़ार के अत्याचारों से पुराने दल के लोग तितर-बितर हो गए थे। केवल थोड़े से बोलशेविक स्वतन्त्रता का महामन्त्र जपते-जपते सुअवसर की प्रतीक्षा करने लगे। लेनिन अपने मतवाद के अनुसार अर्थनैतिक प्रबन्ध और पुस्तिकाएँ लिखने लगा और सैकड़ों नवयुवक साथी उसके मत के प्रचार में लगे। इधर ज़ार की सरकार ने भी निर्मम भाव से स्वतन्त्रतावादियों को कुचलना आरम्भ कर दिया था। हत्या, निर्वासन और कारादण्ड की धूम सी मच गई थी। इस तरह प्रायः पाँच वर्ष बीत गए।

सन् १६१०-११ में फिर आशा के कुछ चिन्ह दिखाई पड़े। लेना की सोने की खानों में काम करने वाले मज़दूरों ने हड़ताल कर दी थी। इससे नाराज़ होकर सरकार ने उन पर गोली चलाने की आज्ञा दी। कितने ही मज़दूर मार डाले गए। इसीलिए एक बार फिर मज़दूर जाग उठे। लेनिन भी सुयोग पाकर पेट्रोग्राड के निकट गैलीलिया नाम के स्थान में आकर रहने लगा। बोलशेविक धीरे-धीरे शक्ति सञ्चय करने लगे। प्रचार-कार्य के लिए 'प्रविदा' नाम का एक पत्र भी निकलने लगा। लेनिन का साम्यवाद धीरे-धीरे रूस की रगों में प्रवेश करने लगा। सन् १६१३ में पेट्रोग्राड की एक

महती श्रमिक-सभा ने बहु-सम्मति से लेनिन का 'बोल-शेविकवाद' स्वीकार कर लिया। उस समय लेनिन बीमार था। पेट्रोग्राड से सैकड़ों कोस की दूरी पर रोग-शय्या पर पड़ा हुआ जब उसने यह शुभ-सम्वाद सुना तो उसकी आँखों से आनन्द के आँसू बहने लगे। इस घटना के कुछ दिन बाद ही समस्त रूस के श्रमिकों ने निर्वासित और लाञ्छित लेनिन का नेतृत्व स्वीकार कर लिया।

यूरोपीय महासमर के समय लेनिन अपने कुछ विश्वासी अनुयायियों के साथ गेलीशिया के एक छोटे से गाँव में था। उसे आशा थी कि समस्त संसार के श्रमिक नेता इस महासमर को गृह-विवाद के रूप में परिणत कर राष्ट्र की बागडोर धनवानों के हाथों से छीन लेंगे। उसने मज़दूरों को सलाह दी कि वे इस युद्ध में सहायता न दें। परन्तु किसी ने उसकी बातों पर ध्यान न दिया। यहाँ तक कि ख़ास रूस के श्रमिक नेता भी उसके शत्रु बन गए। उसके एक सहकर्मी ने यहाँ तक कह डाला कि "तुम महा अनर्थ कर रहे हो। श्रमिकों को गृह-कलह की सलाह देकर उनका सत्यानाश कर डालना चाहते हो। इस समय अगर तुम रूस में होते तो तुम्हें इसका कटु फल चखना पड़ता।" लेनिन ने शान्त भाव से उत्तर दिया—"तुम्हें मानव-जाति के भविष्य का ज्ञान नहीं है। इसीलिये ऐसी बातें कर रहे हो।"

अन्त में महासमर समाप्त हुआ। अर्थनैतिक सङ्कट के कारण चारों ओर दरिद्रता फैल गई। यह लेनिन के लिए शुभ अवसर था। उसने फ़ौरन तीसरे अन्तर्जातिक सङ्घ की प्रतिष्ठा की। जर्मनी, इटली तथा अन्यान्य स्थानों के बहुत से समाजतन्त्रवादी नेता इस सङ्घ में शामिल हुए। निश्चय हुआ कि समस्त यूरोप में अन्तर्जातिक विप्लव कराया जाय। लेनिन के सहकर्मियों की समझ में आ गया कि यह महावज्र एक दिन साम्राज्यवाद और प्रजातन्त्रवाद आदि को चूर्ण-विचूर्ण करके दम लेगा। इसलिए वे भी सहमत हो गए।

लेनिन अब तक स्वीटज़रलैण्ड में था। परन्तु सन् १९१७ में वह फिर रूस लौट आया। महायुद्ध के कारण उस समय रूस की अवस्था अत्यन्त शोचनीय हो गई थी। दरिद्रता सीमा पार कर गई थी और लोग भूखों मर रहे थे। अवसर देख कर 'मानशेविक' और 'सोशल-डीमोक्रेट' दल वालों ने विद्रोह आरम्भ कर दिया। ज़ारशाही का पतन हुआ और देश का शासन-सूत्र



श्री० टॉमस डि० अन्यूक्यूरिक कैमारा

आप रूस के क्रान्तिकारी दल के १२ वर्षीय सफल-सदस्य हैं, जो अपनी बहादुरी में अपना सानी नहीं रखते।

प्रजातन्त्रवादियों के हाथों में चला गया। लेनिन बड़ी गम्भीरता से परिस्थिति का अध्ययन कर रहा था। उसकी

इच्छा थी कि अवसर मिलते ही देश का शासन-सूत्र श्रमिकों के हाथों में दे दिया जाय। उसने अपने अन्यान्य सहकर्मियों को भी बुला लिया। इसी समय सेनापति क्रेनेस्की अपनी सेना के साथ जर्मन सीमान्त से लौट कर पेट्रोग्राड आया। मध्य श्रेणी के विप्लववादियों ने बड़े समारोह के साथ देश का शासन-भार अपने कन्धों पर लिया। रूस के प्रत्येक नगर में रक्त-स्रोत बह चला।



पं० भजनलाल जी पाण्डेय

आप फ़र्रुख़ाबाद कॉङ्ग्रेस कमिटी के उप-सभापति और ज़िला कॉङ्ग्रेस कमिटी के उप-मन्त्री हैं, जिन्हें नमक-क़ानून तोड़ने के अपराध में ६ मास का कठिन कारा-वास-दण्ड दिया गया था। आप हाल ही में फ़ैज़ाबाद जेल से छूट कर आए हैं।

लेनिन सुयोग की प्रतीक्षा में था। मानशेविकों ने बोलशेविकों से सुलह की बातचीत की। परन्तु लेनिन तथा उसके अनुयायियों ने इन्कार कर दिया। इसलिए मानशेविक और मध्य श्रेणी के विद्रोही मिल कर बोलशेविकों का मूलोच्छेद करने पर उतारू हो गए। बहुत से बोलशेविक मार डाले गए। विप्लवियों और बोलशेविकों में भयङ्कर सङ्घर्ष आरम्भ हुआ। क्रेनेस्की ने लेनिन को पकड़ लेने की आज्ञा दी। इसलिए लेनिन ने गुप्त रूप से बोलशेविकों को भड़काना शुरू किया। गृह-कलह सीमा पर पहुँच गया। देश का कारबार बन्द हो गया। बैङ्कों ने दिवाला बोल दिया। अन्न महँगा हो गया। समस्त देश में आतङ्क छा गया। परन्तु अन्त में विजयश्री बोलशेविकों को प्राप्त हुई। लेनिन की महान शोणित-साधना सफल हुई। मध्य श्रेणी के विप्लववादी हार कर भाग गए।

इस महाविप्लव में लेनिन ने अपने अपूर्व साहस, दृढ़ता और विचित्र व्यक्तित्व का परिचय दिया था। इस समय केवल शत्रु ही उसके विरोधी नहीं थे, वरन् अधिकांश बोलशेविक प्रतिनिधि भी उसकी जड़ खोद देना चाहते थे। परन्तु इस भयङ्कर परिस्थिति में भी वह विचलित न हुआ। फिर तो समस्त देश ने एक साथ ही अपना मस्तक उसके चरणों पर रख दिया। उसका एक-एक शब्द वेद-वाक्य की तरह माना जाने लगा। इस विद्रोह में वह घायल होकर शय्याशायी हो गया था, परन्तु उसका दिमाग़ उस वक्त भी काम कर रहा था।

इस राष्ट्रीय महायज्ञ में आरम्भ से अन्त तक छाया की भाँति जिसने लेनिन का साथ दिया था, वह उसकी अलौकिक क्षमताशालिनी धर्मपत्नी मादम कनस्टायटीनोवा थी। वास्तव में नोवा उसकी सच्ची सहधर्मिणी थी। उसे ईश्वर ने कमाल का साहस और विचित्र शक्ति दी थी। उसके कार्यों का, उसकी शक्ति का और उसकी पतिभक्ति का सम्यक् परिचय प्रदान करना सहज नहीं। वह देवी थी, लेनिन की मूर्त्तिमती शक्ति थी। उसमें बहुत से अलौकिक और असाधारण गुण थे। हमारा तो यह दृढ़ मत है कि नोवा के कारण ही लेनिन को शीघ्र सफलता प्राप्त हो सकी थी।

अस्तु। विद्रोहियों के परास्त हो जाने पर लेनिन की ज़िम्मेदारी और भी बढ़ गई। क्योंकि एक तो उस समय रूस की अवस्था अत्यन्त शोचनीय हो गई थी और दूसरे सारा संसार बोलशेविकों का विरोधी था। ख़ास कर, यूरोप के साम्राज्यवादी तो उसे फूटी आँख भी देखना नहीं चाहते थे। परन्तु इन पहाड़-से विघ्नों की ओर भ्रूक्षेप न करके लेनिन ने महात्मा कार्ल मार्क्स के आदर्श पर 'सोवियट रूस' का सङ्गठन आरम्भ

कर दिया। ध्वंस का विकराल देवता अब निर्माण का वरद पाणि पसार कर नवीन उद्यम और नवीन उत्साह के साथ आविर्भूत हुआ। रूसी राष्ट्र ने उसे अपना जन-नायक निर्वाचित किया। लेनिन ने घोषणा की कि हमने राजशक्ति और पूँजीवाद को परास्त किया है, परन्तु अभी हमें अपनी कमज़ोरियों और अयोग्यताओं से लड़ना बाक़ी है। इसलिए हमें यथेष्ट दृढ़ता और साहस से काम लेना चाहिए। सन् १९०४ में जिस महान आदर्श को लेकर हम कार्यक्षेत्र में अवतीर्ण हुए थे, उससे हम तिल-मात्र भी विचलित न होंगे। राष्ट्र ने सिर झुका कर उसकी यह आदेशवाणी स्वीकार की। महात्मा कार्ल मार्क्स की कल्पना कार्य में परिणत हुई। रूस की ज़मीन रूस के किसानों को मिली। कारख़ानों की आय मज़दूरों के लिए रही। कोई किसी का मालिक नहीं। किसी पर किसी का प्रभुत्व नहीं। न कोई ग़रीब, न कोई अमीर; न कोई लाट साहब, न कोई चपरासी। सभी भाई-भाई। भेद-भाव का कहीं नामोनिशान नहीं। यद्यपि कुछ लोग कहते हैं कि यह व्यवस्था चिरस्थायिनी न होगी। न सही। संसार में चिरस्थायिनी है कौन सी वस्तु? अस्थिरता ही तो इसकी विशेषता है। परन्तु इस समय तो सारा संसार रूस की ओर समुत्सुक दृष्टि से देख रहा है। सभी लेनिन के बताए हुए तरीक़े के मुताबिक़ देश के कृषकों और मज़दूरों की अवस्था सुधारने की फ़िक्र में हैं। इसे कौन नहीं स्वीकार करेगा कि मेहनत का फल मेहनत करने वाले को मिलना चाहिए। बस, यही तो बोलशेविज़्म है। संसार विरोध करता रहे, परन्तु लेनिन और लेनिन की महान कीर्त्ति को विश्व के पर्दे से पोंछ कर फेंक देना सम्भव नहीं है।

ख़ैर, सन् १९१८ से लेकर १९२४ तक परिश्रमपूर्वक नवीन राष्ट्र का निर्माण कर, मित्रों को आनन्द और शत्रुओं को आतङ्क प्रदान कर, मानव-महत्व का गगन-चुम्बी विजय-स्तम्भ इतिहास के वक्षस्थल पर स्थापित कर, रूस से दीनता और दरिद्रता का नामोनिशान मिटा कर, चिर-पददलित, निराश्रय रूसी किसानों और मज़दूरों को मुक्ति प्रदान कर तथा सुयोग्य साथियों के हाथों में राष्ट्र की बागडोर देकर मानव-मित्र लेनिन ने सन् १९२४ में महाप्रस्थान किया। रूस ने शोक-गम्भीर भाव से अपने महान नेता को श्रद्धाञ्जलि प्रदान की और समस्त संसार के निपीड़ित और निर्यातित कृषकों और श्रमिकों ने उसके लिए शोकाश्रु विसर्जन किए। लेनिन का पार्थिव शरीर अब नहीं रहा, परन्तु वह जीता है और सदा जीता रहेगा।

भिक्षा

[श्री० माहेश्वरीसिंह जी 'महेश']

पार कर सागर मरू प्रदेश,
पार कर कण्टक-पूरित राह।
सहन कर बेबसता की चोट,
छिपा कर अन्तस्तल की चाह॥

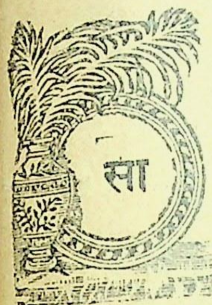
भुला कर भूत सुखद इतिहास,
भुला कर स्वर्गिक निर्मल शान्ति।
नाथ! आई हूँ तेरे पास,
देखती तेरी मनहर कान्ति॥

न दो मुझको सेवा में ठौर,
न दो मुझको मन का सम्मान।
न दो अपनी गोदी में वास,
न दो हे नाथ! प्रेम का दान॥

किन्तु लघु कृपा करो हे देव!
ज़रा दो निज चरणों की धूलि।
हृदय के ऊपर उसको लगा,
भूल जाऊँ जीवन के शूल॥

साम्यवाद का आचार्य—कार्ल मार्क्स

[श्री० सत्यभक्त जी]



साम्यवाद आजकल दुनिया का एक बहुत महत्वपूर्ण और शक्तिशाली आन्दोलन है। दुनिया के तमाम देशों में इसका दौर-दौरा है और इसके अनुयायियों की संख्या दिन पर दिन बढ़ती जाती है। यूरोप और अमेरिका के आधुनिक वैज्ञानिक सभ्यता वाले देशों में ही नहीं, वरन् चीन, भारत, ईरान जैसे प्राचीन सभ्यता वाले देशों में भी साम्यवाद का प्रचार होता जा रहा है और साधारण जनता का ध्यान उसकी तरफ़ अधिकाधिक आकर्षित होता जा रहा है। ग़रीब और कष्ट-ग्रसित लोगों को एक प्रकार से विश्वास हो गया है कि हमारी दुर्दशा का अगर किसी उपाय से अन्त हो सकता है, तो केवल इसी आन्दोलन द्वारा।

साम्यवाद को इतना महत्व और शक्ति जिन व्यक्तियों के परिश्रम और बलिदान से प्राप्त हुई है, उनमें कार्ल मार्क्स का स्थान सब से ऊँचा माना जाता है। यद्यपि उससे पहले भी अनेक लोग साम्यवाद का प्रचार करते रहते थे और श्रमजीवियों तथा अन्य लोगों को इसकी उपयोगिता और युक्तियुक्तता बतलाते रहते थे, पर उनके सिद्धान्त अधिकांश में कल्पनामय थे और वे ख़ासकर शासकों और बड़े लोगों की उदारता पर भरोसा रखते थे। पर मार्क्स ने इस धारा को बिल्कुल ही पलट दिया। उसने साम्यवाद को वैज्ञानिक रूप दिया और सिद्ध किया कि यह कोई धर्म-कर्म या नेकी से सम्बन्ध रखने वाली चीज़ नहीं है, वरन् संसार के विकास का एक स्वाभाविक दर्जा है, जो वर्तमान घटनाओं के फल से अवश्य उत्पन्न होगा। साथ ही उसने यह भी बतलाया कि इस आन्दोलन की सफलता और ग़रीब मज़दूरों के कष्टों का अन्त स्वयं इन लोगों के परिश्रम और दृढ़ता द्वारा ही होगा, न कि राजा-महाराजाओं और सेठ-साहूकारों की दया-अनुकम्पा द्वारा!

कार्ल मार्क्स का जन्म ५ मई, सन् १८१८ को जर्मनी के ट्रेव्स नामक नगर में हुआ था। उसका बाप जाति का यहूदी था और वकील का धन्धा करता था। सन् १८२४ में उसने सकुटुम्ब ईसाई-धर्म ग्रहण कर लिया। इस धर्म-परिवर्तन का कारण कुछ तो सरकारी दबाव और कुछ राष्ट्रीयता का भाव था। मार्क्स की आरम्भिक शिक्षा स्थानीय स्कूल में हुई। स्कूल में वह होनहार विद्यार्थी समझा जाता था। स्कूल में पढ़ते समय उसका परिचय वेस्टफ़ेलन नाम के एक जर्मन अफ़सर से हो गया, जिसने उसे कविता का शौक़ लगा दिया और उसकी उन्नति के लिए बहुत कुछ चेष्टा की। बाद में इसी वेस्टफ़ेलन की कन्या गेनी से उसने विवाह किया। स्कूल की शिक्षा ख़तम होने के बाद उसने बोन और बर्लिन के विश्वविद्यालय में क़ानून और दर्शन का अध्ययन किया। उसका बाप चाहता था कि वह क़ानून की परीक्षा पास करके सरकारी नौकरी करे, पर उसे सांसारिक उन्नति की कुछ भी आकांक्षा न थी और वह अपना जीवन दार्शनिक ढङ्ग से व्यतीत करना चाहता था। दर्शन-शास्त्र में वह जर्मनी के प्रसिद्ध विद्वान हेगल का अनुयायी था। बीस वर्ष की उम्र में एक महत्वपूर्ण निबन्ध लिखने के कारण उसको पी० एच० डी० की उपाधि मिल गई। उसका इरादा था कि किसी विश्वविद्यालय में प्रोफ़ेसरी करके जीवन-निर्वाह करे, पर अपने स्वाधीन विचारों के कारण वह इस कार्य में सफल न हो सका। तब वह सम्पादन-कला की तरफ़ झुका।

सन् १८४२ में वह 'राइनिशजीटुङ्ग' नाम के पत्र का सम्पादन करने लगा। यह पत्र राजनीतिक था और सरकार के कामों की कड़ी आलोचना करता था। इसलिए उसे कुछ ही दिनों में सरकारी अधिकारियों का कोप-भाजन होना पड़ा और वह जर्मनी से निकाल दिया गया। 'राइनिशजीटुङ्ग' भी इसी समय बन्द हो गया। सन् १८४३ में वह अपनी नव-विवाहिता स्त्री सहित पेरिस आया और 'फ़्रेंको-जर्मन इयरबुक' नाम के सामाजिक

पत्र में काम करने लगा। वहाँ पर उसकी मित्रता एञ्जिल्स से हुई। एञ्जिल्स एक जर्मन-व्यवसायी का पुत्र था और भिन्न-भिन्न देशों में रह कर, अपने पिता के कारखानों का प्रबन्ध करता रहता था। वह बड़ा विद्वान और योग्य व्यक्ति था। उसके साथ मार्क्स की मित्रता अन्त समय तक क़ायम रही और उसकी सहायता से मार्क्स वह काम कर सका, जिसके लिए आज समस्त संसार में उसका नाम फैला हुआ है। मार्क्स के प्रधान ग्रन्थ 'कैपिटल' के दूसरे और तीसरे भाग को एञ्जिल्स ने



श्रीमती आर० एम० लज़ारूस

आप बम्बई की सुप्रसिद्ध सामाजिक कार्यकर्त्री हैं। आप ग्रांट रोड (बम्बई) की म्युनिसिपैलिटी की उप-प्रधाना नियुक्त हुई हैं।

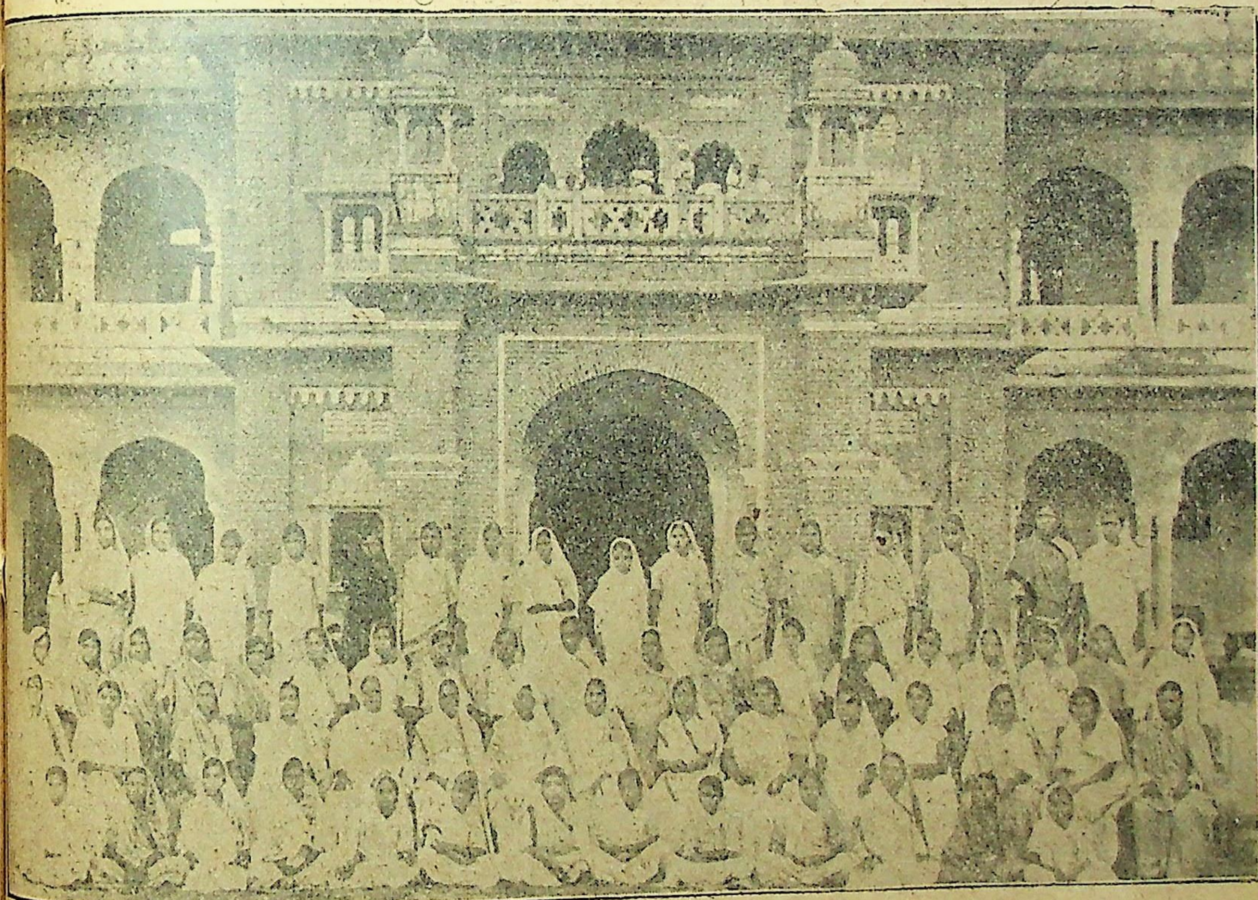
ही लिखा है, क्योंकि साधनों की कमी से वह स्वयं पहिला भाग ही तैयार कर सका था और शेष दो भागों का केवल मसाला इकट्ठा कर सका था। एञ्जिल्स बहुत वर्षों तक मार्क्स को उसका ख़र्च भी देता रहा और यदि उसकी सहायता न मिलती, तो सम्भवतः उसका जीवन असमय में ही विदेशों में नष्ट हो जाता।

सन् १८४५ में फ़्रान्स के अधिकारियों ने जर्मन सरकार के आग्रह करने पर मार्क्स को अपने यहाँ से देश-निकाला दे दिया। वह बेलजियम की राजधानी ब्रसेल्स को चला गया और सन् १८४८ तक वहीं पर साम्यवाद और अर्थशास्त्र का अध्ययन करता रहा। सन् १८४८ में यूरोप के समस्त देशों में क्रान्ति की ज्वाला भड़क उठी और बेलजियम की सरकार ने डर कर उसको अपने यहाँ से निकाल दिया। वह कुछ दिनों तक पेरिस में रहा, जहाँ की सरकार क्रान्ति के कारण बदल गई थी। तत्पश्चात् जर्मनी के क्रान्तिकारी आन्दोलन में भाग लेने के लिए वह जर्मनी चला गया, और राइनलैण्ड प्रदेश से, जहाँ जर्मनी की सरकार का प्रभाव कुछ कम था—'न्यू राइनिशज़ीटुङ्ग' नाम का पत्र निकालने लगा। पर इस बार भी उसको सफलता न मिल सकी और सरकारी दमन के कारण एक ही वर्ष में इस पत्र का अन्त हो गया। इतना ही नहीं, इस कार्य में मार्क्स को अपनी कुल जमा-पूँजी लगा देनी पड़ी और वह पैसे-पैसे को मुहताज हो गया। वहाँ से वह फिर फ़्रान्स में लौट आया, पर वहाँ भी नई सरकार क़ायम हो गई थी और उससे उसकी न बन सकी। अन्त में सन् १८४६ में वह इङ्गलैण्ड पहुँचा और अपने जीवन के अन्तिम समय तक वहीं रहा।

सन् १८४७ में, जब कि मार्क्स बेलजियम में था, उसने एञ्जिल्स के साथ मिल कर 'कम्यूनिस्ट मैनिफ़ेस्टो' तैयार किया, जो कम्यूनिज़्म सिद्धान्त की पहली पुस्तक थी और जिसको श्रमजीवी अब तक आदर की दृष्टि से देखते हैं। उसका उद्देश्य संसार भर के श्रमजीवियों को सङ्गठित करके, उनका एक अन्तर्राष्ट्रीय सङ्घ बनाना था, जिसके द्वारा वे पूँजीपतियों पर विजय प्राप्त कर सकें। इसके लिए वह बराबर लेखों और पुस्तकों द्वारा अपने सिद्धान्तों का प्रचार करता रहा। निरन्तर १६ वर्ष तक परिश्रम करने के पश्चात उसको अपने उद्देश्य में सफलता मिली और सन् १८६४ में प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय सङ्घ की स्थापना हो गई। इस सङ्घ में यूरोप के प्रायः सभी देशों के प्रतिनिधि शामिल थे। तीन-चार वर्ष तक इसके वार्षिकोत्सव नियमित रूप से होते रहे और उसने विभिन्न देशों के श्रमजीवी-आन्दोलन की वृद्धि में कुछ काम भी किया। पर बाद में उसके कार्यकर्त्ताओं में मतभेद उत्पन्न हो गया, जिसके फल से सन् १८७२ में उसकी इतिश्री हो गई।

यद्यपि कुछ लोग अन्तर्राष्ट्रीय सङ्घ के इस तरह बन्द हो जाने को बड़ी शोचनीय बात समझते हैं और इसके लिए मार्क्स को दोष देते हैं, कि उसने अपनी सत्ता को क़ायम रखने की ज़िद में आकर उसकी हत्या कर डाली। पर वास्तव में उस ज़माने में श्रमजीवी-आन्दोलन जैसी निर्बल दशा में था, उसमें इस प्रकार का सङ्घ सिवाय साधारण प्रचार के कोई महत्वपूर्ण अथवा समाप्त हुआ है और इतना गहन तथा तत्वपूर्ण है, कि साधारण योग्यता का व्यक्ति उसका अध्ययन भी नहीं कर सकता।

'कैपिटल' के सिवाय मार्क्स ने और भी अनेक छोटी-बड़ी पुस्तकें लिखी हैं, जिनकी संख्या क़रीब १५-१६ है। पर उनमें सब से प्रसिद्ध और प्रचलित उसका लिखा एक छोटा सा ट्रैक्ट है, जिसका नाम 'कम्यूनिस्ट



प्रयाग महिला-विद्यापीठ की परीक्षा में सम्मिलित होने वाली कानपूर की महिलाओं तथा बालिकाओं का ग्रूप

श्रमजी काम नहीं कर सकता था। पर इसका अन्त हो जाने से कार्ल मार्क्स को इतना अवकाश मिल गया कि अपने प्रधान ग्रन्थ 'कैपिटल' के दूसरे और तीसरे भागों के लिए बहुत-सा मसाला इकट्ठा कर सका। यह 'कैपिटल' ग्रन्थ वर्तमान श्रमजीवी-आन्दोलन की नींव-स्वरूप है और उसे लोग 'साम्यवादियों की बाइबिल' कहते हैं। यह ग्रन्थ बड़े साइज़ के क़रीब ढाई हज़ार पृष्ठों में मैनिफ़ेस्टो' है। यह सन्, १८४७ में कम्यूनिस्ट-सङ्घ के प्रस्ताव करने पर लिखा गया था और इसमें उसके मित्र एञ्जिल्स ने भी सहयोग दिया था। इस ४०-५० पृष्ठों के ट्रैक्ट में मार्क्स ने कम्यूनिज़्म का सारांश ऐसे स्पष्ट और सीधे-सादे शब्दों में भर दिया है कि आज ८० वर्ष से अधिक हो जाने पर भी लोग उसे बड़े चाव से पढ़ते हैं और उससे असीम लाभ उठाते हैं। इस मैनिफ़ेस्टो के

विषय में जर्मनी के सुप्रसिद्ध साम्यवादी नेता विलियम लिबनेट ने कहा था कि—"अगर मार्क्स और एन्जिल्स इस मैनिफ़ेस्टो को लिखने के सिवाय और कोई काम न करते और उसी दिन क्रान्ति के भीषण उदर में समा जाते तो भी उनका नाम संसार में अजर-अमर रहता।"

मार्क्स के जीवन का अन्तिम भाग शारीरिक व्याधियों के कारण कुछ दुःखमय रहा। वैसे जन्म से उसका शारीरिक सङ्गठन बहुत दृढ़ था, पर साम्यवाद के अध्ययन



श्रीमती अक्षयकुमारी

गुरुकुल (वृन्दावन) में बड़े दिन की छुट्टियों में होने वाले "महिला-सुधार-मण्डल" की आप सभानेत्री हैं। हाल ही में आपका अन्तर्जातीय विवाह प्रोफ़ेसर महेन्द्रप्रताप शास्त्री, एम० ए०; एम० ओ० एल० से हुआ है।

और प्रचार में उसको इतना अधिक परिश्रम करना पड़ा कि ४० वर्ष की अवस्था से ही उसकी तन्दुरुस्ती ख़राब हो गई। साम्यवाद और अर्थशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थों के अध्ययन और लिखने में वह प्रतिदिन १६ घण्टे तक ख़र्च करता था और प्रायः रात-रात भर जाग कर काम करता रहता था। साथ ही सारा समय और शक्ति श्रमजीवी-आन्दोलन में ख़र्च करने के कारण वह आमदनी का कोई काम भी नहीं कर सकता था और इस कारण उसको दरिद्रता में जीवन व्यतीत करना पड़ता था। वह सन् १८४६ से अपने जीवन के अन्तिम समय तक लन्दन में रहा और उसको अपना तमाम जीवन छोटे-छोटे घरों और तङ्ग कोठरियों में बिताना पड़ा! खाने-पीने का भी विशेष आराम न था और धन की कमी तथा उचित सेवा-शुश्रूषा के अभाव से उसके कई बच्चों की मृत्यु भी हो गई।

सन् १८७० से उसका स्वास्थ्य इतना ख़राब रहने लगा कि उसे अध्ययन और प्रचार का काम छोड़ देना पड़ा। उस समय उसका नाम चारों तरफ़ फैलने लग गया था और आर्थिक दशा भी कुछ सन्तोषजनक हो चली थी। पर अब इन बातों से विशेष लाभ न था, क्योंकि उसकी जीवन-शक्ति बहुत-कुछ क्षीण हो चुकी थी। बारह वर्ष उसने इसी तरह की अवस्था में काटे। जब कुछ अच्छा हो जाता तो 'कैपिटल' के लिए मसाला इकट्ठा करने लगता और जब फिर परिश्रम के फल से बीमारी बढ़ जाती, तो किसी स्वास्थ्यकर स्थान में जाकर इलाज कराता। इसी बीच में सन् १८८१ में उसकी स्त्री और सन् १८८३ के जनवरी मास में बड़ी पुत्री का देहान्त हो गया। इन घटनाओं ने उसके कलेजे को और भी चूर-चूर कर दिया और १४ मार्च, १८८३ को उसकी जीवन-लीला समाप्त हो गई।

यद्यपि मार्क्स को अपने जीवन-काल में बहुत कम सफलता प्राप्त हुई और सिवाय लिखने-पढ़ने के वह अपने उद्देश्यों में कुछ भी सफलता न पा सका, पर आज उसके दिखलाए मार्ग से संसार की काया-पलट होती जा रही है। रूस का बोलशेविक शासन मार्क्स के सिद्धान्तों का जीता-जागता उदाहरण है। अन्य देशों में भी उसके अनुयायियों का सङ्गठन काफ़ी मज़बूत है और कितने ही स्थानों में उनके हाथों में शासन की बहुत कुछ शक्ति भी है। इन बातों से अनुमान होता है कि वह दिन अधिक दूर नहीं है, जब कि इस दरिद्रता और असहायावस्था में जीवन बिताने वाले इस दार्शनिक तथा प्रचारक के सिद्धान्त संसार पर शासन करेंगे और दुनिया की समस्त शक्तियाँ उनके आगे मस्तक झुकाएँगी।

तोता

[श्री० वाचस्पति पाठक]



"जवाहरलाल की जय !"—मलका के आकर खड़े होते ही पिंजड़े का तोता पुकार उठा।

मलका ने हँस कर उल्लास से पूछा—मसक-क़ानून ?

"तोड़ डाला"—ज़ोर से पिंजड़े में झुक कर मलका के मुँह को देखते हुए तोते ने कहा।

मलका बाहर बैठक से पढ़ कर अभी लौटी थी। वह ज़रा साँवले रङ्ग की लड़की थी, पाँव में कामदार लाल मख़मल की चट्टी, काले रङ्ग का सुन्दर लहँगा पहने, ऊपर हल्के धानी रङ्ग का दुपट्टा ओढ़े, वह बड़ी भोली मालूम पड़ती थी। उसके नाक की सोने की छोटी सी नथनी और कान की बालियाँ उसके साथ क्रीड़ा कर रही थीं। उसकी बड़ी-बड़ी आँखों से बालपन का विस्मय सदैव हँसता रहता था।

वह शहर-कोतवाल की लड़की थी। उसके पिता ख़ानबहादुर नज़रुद्दीन साहब बड़े मशहूर और अपने काम के बड़े पक्के आदमी थे। अपनी मेहनत के ही बल पर सिपाही के ओहदे से कोतवाल हो गए थे। आज भी उनकी सफ़ेद लम्बी दाढ़ी में जवानी की अकड़ थी।

कोतवाली के बग़ल में टाउन हॉल का विस्तृत मैदान था। प्रति दिन सवेरे सैकड़ों स्वयंसेवक उस मैदान में खड़े होकर 'झण्डा ऊँचा रहे हमारा' के मधुर नाद से आकाश को प्लावित कर देते थे, मलका कोतवाली की छत पर से रोज़ यह दृश्य देखती, सुनती और सिहर उठती। दस वर्ष की बालिका का हृदय उद्वेग से भर जाता।

एक दिन, दो दिन, चार दिन उसने देखा। एक दिन धीरे से, अपने आगे-पीछे देख कर, अपने प्यारे तोते के निकट आकर मलका ने प्रथम बार बड़े स्नेह से उसे सम्बोधन करके कहा—"परबत्ते ! कहो बेटा ! जवाहरलाल की जय !" वाक्य ख़तम करके उसके अधर ज्यों ही बन्द हुए, उसी समय जैसे उसके हृदय में आनन्द का स्रोत फूट पड़ा। उसके गुणी तोते ने अपने इस छोटे, पर एकान्त मित्र की बात मान कर शान्त स्वर में प्रतिध्वनि की—"जवाहरलाल की जय !"

बस, बालिका नाच उठी। जिस लय के अभाव से उसका सारा राग भ्रष्ट हो गया था, उसका आविर्भाव हो गया। और साथ ही उसका सम्पूर्ण विषाद भी उल्लास में परिणत हो गया। तोता भी नारे का अभ्यस्त हो चला।

दाई ने देखा, मलका पढ़ कर आते ही तोते से उलझ गई। उसने झुँझला कर कहा—बेटी, पहले नाश्ता कर लेती। तू तो दिन-रात एक यही खेल लिए बैठी रहती है।

"आई झाला बीबी"—मलका ने पिंजड़े के पास से हट कर कहा। दाई का नाम झाला था।

"एक दिन हुज़ूर तुझ पर ज़रूर नाराज़ होंगे ?" आगन्तुक-भय का नाट्य दिखलाते हुए झाला ने कहा—"मैं तो यही सोच कर मरी जाती हूँ। तू मानती ही नहीं।"

मलका ने तिनक कर कहा—ओह, मैं कब से खड़ी हूँ। तू नाश्ता लेकर आती भी तो नहीं। अब्बा इस पर नहीं बिगड़ेंगे ?

नाश्ते की तश्तरी लेकर आते हुए झाला ने देखा—मलका अब भी हाथ में किताबें लिए खड़ी है। अभी उन्हें रखने की भी उसने कोई चेष्टा नहीं की। इस पर झाला ने नाराज़ होकर कहा—वाह री मलका ! कब से तैयार खड़ी है, जो मुझे डाँटती है ?

"देख मैं तो तैयार हूँ झाला बीबी"—काँपियाँ एक ओर फेंकते हुए मलका ने हँस कर कहा—"आ बैठ, देख मैं बैठी हूँ। तू अपने ही हाथ से मुझे खिला दे।" कह कर मलका वहीं एक चटाई पर बैठ गई।

झाला छोटे-छोटे नवाले उसे खिलाने लगी। मलका, अब भी जब जी में आता, प्रसन्न होती, या झाला को ख़ुश करना होता, तो ऐसे अवसर पर उसे खाना खिलाने

के लिए कहती और कभी-कभी तो केवल उसे तङ्ग करने के ही लिए वह ऐसा करती। खाना खाकर आज वह शान्तिपूर्वक बैठी मन की साधारण प्रेरणा के वशीभूत होकर धीरे, अर्धस्फुट स्वर में, स्वयंसेवकों का गान गुनगुनाने लगी :—

हम सरे दार वसद, शौक़ जो घर करते हैं;
ऊँचा सर क़ौम का हो, सर ये नज़र करते हैं!
सूख जाए न कहीं, पौदा ये आज़ादी का।
ख़ून से अपने इसे, इसलिए तर करते हैं!

२

आषाढ़ मास प्रारम्भ हो चुका था। क्षितिज के बादलों का जमघट चिर-सुप्त भारत के आन्दोलन का



श्री० आर० एम० चैटर्जी सॉलिसिटर

आप कलकत्ता कॉरपोरेशन के नए डिपुटी-शेरिफ़ हैं, जो इस वर्ष निर्वाचित हुए हैं।

भयङ्कर और विराट रूप उद्वेलित कर रहा था। देश का एक-एक बच्चा क्रान्तिकारी सत्याग्रही हो गया। कल और आज का अन्तर विद्वानों के लिए अध्ययन की चीज़ हो गई थी। मलका सब कुछ देखती। वे दृश्य रहस्य बन कर उसके मन से उलझ जाते। वह बैठी क़सीदा काढ़ रही थी।

"मलका! क्या कर रही है?"—एक सुन्दर बालक ने भीतर प्रवेश करके कहा।

"अरे, हनीफ़ भैया? तुम इलाहाबाद से कब आए?"—मलका ने क़सीदे से अपना ध्यान हटा कर आश्चर्य से उससे पूछा।

"पाँच-छः दिन हुए मलका!"—हनीफ़ ने उत्तर दिया।

हनीफ़ उसके मामू का लड़का था। उसके मामा इलाहाबाद में रोज़गार करते थे और हनीफ़ वहीं पढ़ता था।

"कोई छुट्टी पड़ गई क्या?"—हाथ की चीज़ें एक टीन के डब्बे में रखते हुए मलका ने प्रश्न किया।

"छुट्टी तो नहीं है, पर स्कूलों पर धरना दिया जा रहा है। ऐसी हालत में कोई कैसे पढ़ने जा सकता है।"

"क्यों हनीफ़! ये पढ़ने से क्यों रोकते हैं?"—मलका ने बड़ी गम्भीरता से पूछा।

"तुम यहाँ देखती नहीं हो मलका! लोग आज़ादी के लिए पागल हो रहे हैं। जब 'मर मिटेंगे, या आज़ाद होंगे' का निश्चय हो चुका हो, तब विद्यार्थियों का पढ़ने जाना, उनका अज्ञान है न! इसी शर्म से हमें बचाने के लिए ही तो वे सब यह कर रहे हैं मलका!"—हनीफ़ ने रटी हुई कविता की तरह सब एक साँस में कह कर मलका की ओर देखा।

मलका कुछ बोली नहीं। वह ठीक समझ नहीं रही थी। पर उसकी बातें बड़े ध्यान से सुन रही थी। यही देख कर हनीफ़ फिर से कहने लगा—मलका! इलाहाबाद में बड़े-बड़े घरों की स्त्रियाँ स्कूलों पर धरना देती हैं। पण्डित जवाहरलाल की स्त्री, बहिन, माँ, हाँ—उनकी छोटी लड़की—बस तुम्हारी इतनी है, मैं क्या कहूँ, स्मरण कर मेरे रोएँ खड़े हो जाते हैं—धरना देती हैं। मैंने अब्बा से कह कर स्कूल जाना इसीलिए बन्द कर दिया।

"हाँ"—मलका का जैसे ध्यान टूटा, उसने ज़ोर से पूछा—"तुम इस साल न पढ़ोगे हनीफ़?"

"नहीं मलका"—हनीफ़ ने कहा—"मैं तो इसमें कुछ काम भी करना चाहता हूँ।"

"अब्बा सुनेंगे तो नाराज़ न होंगे हनीफ़? और तुम जेल जा सकोगे?"—मलका ने ज़रा चिन्तित होकर पूछा।

"क्यों न जा सकूँगा? जब जवाहरलाल ऐसे लोग जेल जा सकते हैं, तो क्या मैं उनसे भी सुकुमार हूँ मलका?"—बालक ने तेज़ी से कहा। उसका चेहरा दीप्त था।

"जवाहरलाल!"—बालिका ने बड़ी उत्सुकता से कहा। फिर कुछ सोच कर पूछा—"वे कैसे हैं हनीफ़? तुमने देखा है?"

"ओह......मैंने उन्हें कई बार देखा है, मलका! उनकी बड़ी-बड़ी आँखें, तेज से भरा मुख-मण्डल एक अव्यक्त वेदना से झुलस कर बड़ा करुण हो गया है। आह! वे बड़े सुन्दर हैं। करोड़पति अमीर होकर भी वे ग़रीबी की पूजा करते हैं। चने खाकर ही दिन बिता देना और फटे कपड़े पहने रहना, उन्हें ज़रा भी नहीं अखरता।"

बालिका चुपचाप सुन रही थी। उसके हृदय में एक दर्द, एक चित्र अपनी छाया डाल रहा था, वह व्याकुल हो गई। उसने पूछा—"उन्हें बड़ा कष्ट होगा, क्यों भैया?" उसकी आँखें भर आई थीं।

"नहीं मलका, वे बड़े प्रसन्न हैं, अपनी जान भी देश के लिए वे हँसते हुए दे सकते हैं।"—कह कर हनीफ़ ने एक लम्बी साँस ली और कहा—"अब चलूँ मलका! आज अब्बा को एक ख़त भी लिखना है।"

"यहाँ खाना खाकर जाना हनीफ़"—मलका ने स्नेह से कहा।

"नहीं मलका, जाने दो। कई काम हैं।"—कह कर वह उठ पड़ा।

मलका भी उसी के सङ्ग उठ खड़ी हुई।

३

प्रभात की स्वर्ण-किरणों से कोतवाली का वह प्राचीन पीपल का वृक्ष नहा उठा। उसका एक-एक पत्ता नाच रहा था। 'हर-हर' की मधुर ध्वनि उसके सङ्गीत की तरह पवन में प्रकम्प उत्पन्न कर रही थी।

स्थानीय कॉङ्ग्रेस कमिटी ने आज कोतवाली के सामने नमक-क़ानून तोड़ने का निश्चय किया था। ठीक समय पर टिड्डी-दल की भाँति लोगों का समूह राष्ट्रीय झण्डे के नीचे उल्लास से गान गाते हुए आने लगा। थोड़े ही समय में राष्ट्रीय सङ्गीत की लहरी आकाश को व्याप्त करने लगी।

मलका उधर बरामदे में पढ़ रही थी, उसके कोमल हृदय में उत्पात मचने लगा। उसने अपने वृद्ध मास्टर से कहा—"मास्टर साहब, सर में बड़ा दर्द हो रहा है।" कह कर उसने पढ़ने से छुट्टी चाही।



लेडी बैराम जी जीजीबाई, जे० पी०

आप हाल ही में बम्बई की ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट नियुक्त हुई हैं।

"जाओ मलका, चुपचाप सो रहो।"—कह कर उन्होंने छुट्टी दे दी। बाहर के कोलाहल और एक आगन्तुक-भय की आशङ्का से वे सहम गए। सबकी आँख बचा कर वे चले गए।

मलका के सर में दर्द नहीं था। वह कोतवाली के ऊपर, बाहर वाले कमरे की खिड़की में बैठ, एकत्रित जन-समुद्र को देखने लगी।

सहसा नमक बनाने वालों का जत्था अधिनायक के



संयुक्त प्रान्त के "महिला-सुधार-मण्डल" की कार्यकर्त्री महिलाओं का ग्रुप। कुर्सी पर बैठी हुई देवियों में बाईं ओर से पाँचवीं देवी मण्डल की अवैतनिक मन्त्रिणी श्रीमती लक्ष्मीदेवी जी हैं।

साथ आता दीख पड़ा। उनके गान को स्वयंसेवक दुहराते हुए धीमी गति से चले आ रहे थे।

बना कर कुटिया स्वतन्त्रता की,
सपूत जेलों में रम रहे हैं।
निकल के देखेंगे वे तपस्वी,
स्वतन्त्र भारत, स्वतन्त्र भारत !

मलका के हृदय के समस्त तार झनझना उठे—"स्वतन्त्र भारत, स्वतन्त्र भारत"।

उपस्थित लोगों ने बढ़ कर उस जत्थे का स्वागत किया।

"भारत-माता की जय !"

मलका भी धीरे से कह उठी—"भारत-माता की जय !"

कोतवाली की चहारदीवारी से सटी हुई पटरी और सड़क पर गिट्टियाँ बिछी थीं। सड़क की मरम्मत हो रही थी। उसी पर स्वयंसेवक डट कर बैठ गए। ईंटों को जोड़ कर चूल्हा बनाया और उसी पर उन्होंने कड़ाही चढ़ा दी। नमक बनाना प्रारम्भ कर दिया। कोई भय नहीं, कोई सङ्कोच नहीं। पचास-साठ पुलिस के जवान कोतवाली के हाते में खड़े यह दृश्य देख रहे थे। उनकी सत्ता को तुच्छ कर, स्वयंसेवक 'महात्मा गाँधी की जय', 'भारत-माता की जय' और 'नमक-क़ानून तोड़ो' का घोष ज़ोरों से कर रहे थे।

"कड़ाही छीन लो"—कोतवाल ने अपने सिपाहियों को आदेश दिया।

सिपाही स्वयंसेवकों के दल पर टूट पड़े। कड़ाही डण्डे से मार कर गिरा देनी चाही, पर स्वयंसेवक वहाँ प्राण टेके अड़े थे। हाथा-पाई शुरू हुई। पुलिस बल-प्रयोग कर कड़ाही छीन लेने की चेष्टा करने लगी। किन्तु स्वयंसेवक योंही उसे छोड़ना नहीं चाहते थे। पूरी दलबन्दी कर उसकी रक्षा में सचेष्ट थे।

कोतवाल को क्रोध आ गया। उसने यह दृश्य कभी



इन्दौर राज्य के अछूताश्रम में कार्य करने वाले स्त्री-पुरुषों का ग्रुप—बीच में 'हिज़ होलीनेस' श्री० शङ्कराचार्य जी बैठे हैं, जो हाल ही में निरीक्षणार्थ वहाँ गए थे। यह आश्रम इन्दौर की नई महारानी शर्मिष्ठाबाई की कृति है।

न देखा था कि १० छोकरे पुलिस की अवज्ञा कर मनमानी करें। वह हण्टर लिए उनमें घुस पड़ा और एक की कलाई पर उसके डण्डे से ऐसी चोट मारी कि बेचारा तिलमिला उठा। फिर भी उसने कड़ाही नहीं छोड़ी।

कोतवाल ने सिपाहियों को ललकारा। डण्डे पर डण्डे पड़ने लगे। स्वयंसेवक घायल होने लगे। किसी के कलेजे पर, किसी की छाती पर चोटें लगने लगीं। कितनों के ही खोपड़े लहू-लुहान हो गए। उसी समय एक सिपाही कड़ाही लेकर कोतवाली की ओर भाग आया।

मलका देख रही थी। वह देखती थी कि इतनी मार पड़ने पर भी सब स्वयंसेवक छाती ताने अविचलित भाव से खड़े हैं। उसे क्रोध आगया। उसने धीरे से कहा—"अब्बा, इन्हें क्यों मारते हैं ?" उसका कोमल हृदय विद्रोही भावनाओं का केन्द्र बन गया। छोटी सी बालिका आँखों में आँसू भरे बैठी थी।

कितने ही स्वयंसेवक और दर्शक घायल हुए, पर उन्होंने बिना किसी हिचकिचाहट के दूसरी कड़ाही चढ़ा कर नमक बनाना प्रारम्भ कर दिया।

पुलिस ने तीन बार लाठी के बल पर स्वयंसेवकों से नमक की कड़ाही छीनी। सभी स्वयंसेवक चिकित्सालय पहुँच चुके थे। किन्तु जनता ही में से दूसरे लोग आकर फिर से नमक बनाना प्रारम्भ कर देते थे। बिना नमक बनाए वहाँ से हटना उनकी हार थी।

चौथी बार पुलिस को हस्तक्षेप करने की हिम्मत नहीं पड़ी। सारा शहर उमड़ कर कोतवाली के सामने प्रस्तुत था। पुलिस सत्याग्रह का मुख्य उद्देश्य—अहिंसा जान कर भी भय-त्रस्त हो रही थी।

नमक तैयार हुआ। स्वयंसेवकों ने अपार हर्ष का अनुभव किया। सब नमक जनता में वहीं बाँट दिया गया। लोगों ने बदले में रुपयों से उनकी थैलियाँ भर दीं। मलका चाह कर भी वह नमक न पा सकी।

४

रुई के पहल की तरह छोटे-छोटे सफ़ेद बादल तमाम आकाश में सूर्य की सान्ध्य किरणों से लिपट कर सुनहले चँदवे की तरह पृथ्वी के ऊपर फैले थे। किन्तु मलका के लिए आज उसमें कुछ भी आकर्षण न था।

कोतवाली में आज २-३ सिपाहियों को छोड़ कर कोई भी न था। मुन्शी अपना काम अलग कर रहे थे। झाला किसी काम से बाज़ार गई थी। नौकर मलका के



श्री० एम० कमय्या, एम० ए०, एल० टी०

आप विज़गापटम (मद्रास) के श्रीमती ए० वी० एन० कॉलेज के नए प्रिन्सिपल नियुक्त हुए हैं।

कमरे को पानी से साफ़ कर रहा था। वह ऊपर चली आई थी।

मलका का हृदय कल ही से व्याकुल था। उसने उन निरीह स्वयंसेवकों को मार खाते देखा था, जो शान्ति-पूर्वक नमक बना रहे थे। नमक बनाने के मूल में जो रहस्य था, उसे वह न जानती थी। किन्तु उसके पिता की निष्ठुरता उसके कोमल हृदय में पके फोड़े की तरह कष्ट पहुँचा रही थी। उसी दर्द के कारण न जाने कब से वह बड़ी अन्यमनस्क थी। कोई ऐसा न मिला जिससे वह दिल खोल कर बातचीत करती। हनीफ़ आया ही नहीं और उसके पिता इधर कई दिन से उसे प्यार भी न कर सके थे। आज यदि वे उसका प्यार भी करते, तो वह भय और सङ्कोच से उनके समीप खड़ी रह कर केवल एक कठोर आघात की तरह उसे सह लेती। आज उसका हृदय उनके विरुद्ध प्रज्वलित हो उठा था। कल जब दोपहर के बाद वे अधिनायक को पकड़ कर कोतवाली ले आए, उस समय—ओह ! सारी जनता, उनका कितना अपमान कर रही थी! वही उसके पिता हैं? सोचते-सोचते वह उद्विग्न हो उठी। वह टहलने लगी।

आज से नगर में १४४ दफ़ा जारी कर दी गई थी। उधर सभा की घोषणा थी। उसे रोकने का पूरा इन्तज़ाम था। इसीसे मलका रह-रह कर कुछ सोचने लगती थी। वह चाहती थी कि कहीं उसके अब्बा दिखलाई पड़ जायँ, तो वह उनका पाँव पकड़ उनको आज मार-पीट करने से रोक ले। वह अपने स्नेह के अधिकार का प्रयोग करना चाहती थी। उसके पिता उसका अनुरोध मान जायँगे। इसका उसको पूरा विश्वास था। जब से उसकी अम्माँ मरी, तब से यही अकेली लड़की उनके साथ रहती थी, इसको प्यार करते समय वे अपनी सम्पूर्ण कठोरता भूल जाते थे। प्यार की भाषा में ही उसने अपने पिता को पढ़ा था। उस खँखाड़ पर्वत-प्रदेश में विशाल वृक्षों की शीतल छाया के नीचे जैसे एक निर्मल जल की कल-कल करती, अपनी ही छोटी लहरों में उलझी हुई एक धारा बहती थी, वैसे ही उनके स्नेह की एक मात्र निर्झरिणी मलका थी। मलका की आँखें टाउन हॉल में जाते हुए जनसमुदाय में उन्हें खोज रही थी। इसीलिए बिना इच्छा के भी वह ऊपर टहल रही थी। समीप जाकर देखने की उसमें हिम्मत न थी।

"बेटी ऊपर हो ?"—झाला ने नीचे आकर पुकारा।

"हाँ आती हूँ।" कह कर मलका नीचे उतर आई। झाला बाज़ार से आई हुई चीज़ों को ठीक से रख रही थी। उसी समय मलका ने नीचे आकर कहा—"उधर बड़ी भीड़ है झाला, ज़रा मुझे दिखा दे।" कह कर वह उसका हाथ पकड़ कर खींचने लगी।

झाला ने शीघ्रता से कहा—"नहीं बेटी! बड़ी आफ़त है। उधर नहीं जाना चाहिए।" भय-विजड़ित कण्ठ से उसने कहा।

"ना, मैं जाती हूँ।"—कह कर मलका चल पड़ी।

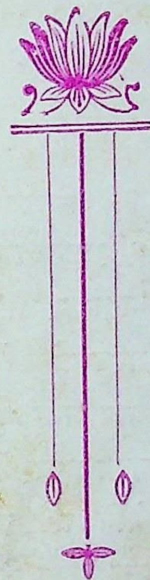
लाहौर-काण्ड के तीन विप्लवकारी

(जिन्हें सारे देश के विरोध करने पर भी २३ मार्च की शाम को ७ बजे लाहौर सेन्ट्रल जेल में फाँसी पर लटका दिया गया)

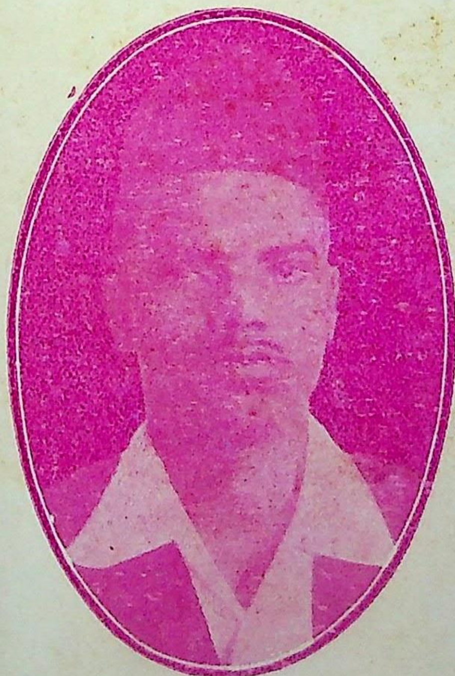
"खुश रहो अहले-वतन, हम तो सफ़र करते हैं"







स्वर्गीय सरदार भगतसिंह



स्वर्गीय श्री० राजगुरु





स्वर्गीय श्री० सुखदेव

छप गई !

रहस्यमयी

छप गई !

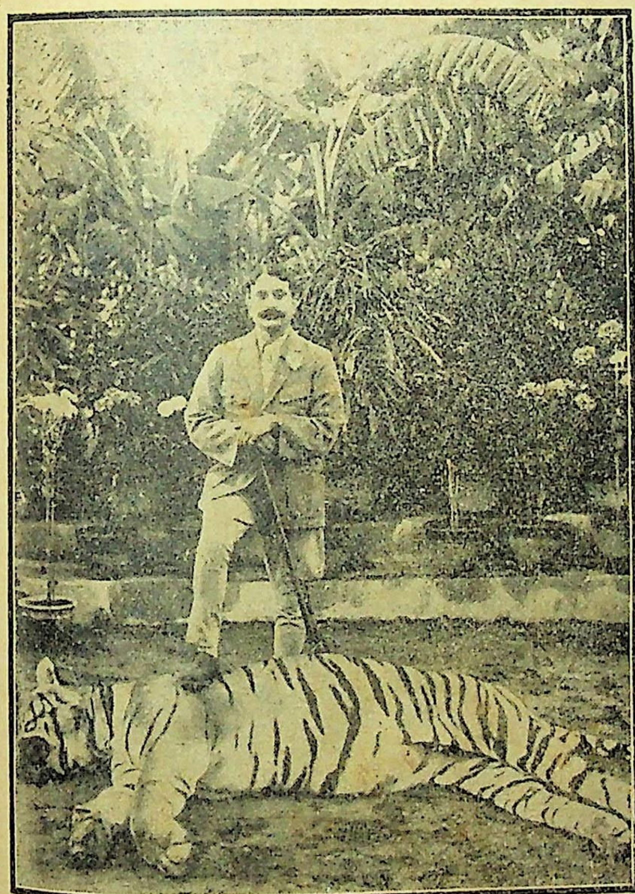
[ले० श्री० ऋषभचरण जैन]

समाज-सेवा, देशभक्ति तथा एक देशोपकारी संस्था की आड़ में यदि अत्यन्त भयङ्कर तथा वीभत्स घटनाओं का नग्न चित्र देखना हो अथवा 'महाराज जी' व 'देवी जी' नामधारी नर-पिशाचों के आन्तरिक पापों का भण्डाफोड़ देखना हो तो इस पुस्तक को उठा लीजिए। कुछ ही पन्ने पढ़ कर आप आश्चर्य की मूर्ति बन जायँगे, आपके रोम-रोम काँपने लगेंगे। जो स्त्री कि वाह्य जगत् में अत्यन्त पूज्य, अनिन्द्य सुन्दरी, विदुषी, सुशीला तथा समाज-सेविका है, वह वास्तव में व्यभिचारिणी, कलङ्किनी, पापिनी, हत्यारिणी तथा एक वेश्या से भी घृणित है। समाज में प्रतिष्ठित रहते हुए वह भीतर ही भीतर इन पापों की पूर्ति के लिए कैसे-कैसे रहस्य रचती है—इसका अत्यन्त रोमाञ्चकारी वर्णन इसमें किया गया है।

सुखवती देवी नाम्नी एक अत्यन्त सुन्दरी तथा विदुषी महिला किस प्रकार अपने पति का गला घोंट कर, एक प्रेस तथा मासिक पत्र की सञ्चालिका बन जाती है, समाज-सेवा की आड़ में किस प्रकार देवी जी ने अनेक धनिक पुरुषों को अपने जाल में फँसा कर रुपया ऐंठा तथा ब्रह्मचर्य के पवित्र नाम पर किस प्रकार दर्जनों होनहार नवयुवकों का सर्वनाश किया और एक नवयुवक के प्राण लेकर ही अपने प्राण त्यागे; इतना नाटक खेलते हुए भी किस प्रकार देवी जी समाज में पूज्य ही बनी रहीं—इसका सारा रहस्य जादू की क़लम से लिखा गया है। पुस्तक के एक-एक शब्द में रहस्य भरा हुआ है। पुस्तक की छपाई-सफ़ाई दर्शनीय है। पृष्ठ-संख्या लगभग २०० ; मूल्य लागत मात्र १॥) रु०, स्थायी ग्राहकों से १=) मात्र। शीघ्रता कीजिए। पुस्तक छप रही है। अभी से अपना नाम रजिस्टर करा लीजिए।

☛ व्यवस्थापक 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

झाला मलका को जाते हुए देख कर उसके पीछे-पीछे हो ली। उसने अभी राह में आते समय जो दृश्य देखा था, उससे उसके प्राण सूख रहे थे। वह मलका को तीखी चेतावनियाँ देने लगी। कोतवाली से टाउन हॉल जाने के लिए एक छोटा सा निकास बना था। ठीक उसी के एक पार्श्व में मलका आकर खड़ी हो गई। उस समय जुलूस आ रहा था। उसके समीप से जत्थे पर जत्था क़ौमी नारे लगाता बढ़ रहा था। वह उसे बड़े



श्री० राजा सागी सत्यनारायण राजू

आप नारासापाटम (मद्रास) के तालुक़ेदार हैं, जिन्होंने हाल ही में एक १० फ़ीट ८ इञ्च के शेर का शिकार किया है।

हर्ष से देख रही थी। सहसा एक जत्थे के पीछे मलका ने देखा, हनीफ़ एक लाल पट्टा पहने गाता आ रहा है। उसका उत्साह अपूर्व था। समीप आते ही मलका ने पुकारा—हनीफ़ भैया !

हनीफ़ ने घूम कर देखा—मलका खड़ी है। उसने बिना सोचे ही कहा—"चलोगी मलका ?" वह अपने जत्थे से अलग होकर उसके समीप आ गया था।

मलका ने झाला की ओर देख कर कहा—मैं वहाँ चल कर क्या करूँगी, हनीफ़ ?

हनीफ़ ने कहा—"आओ न मलका ! देखो, तुमसे कितने ही छोटे-छोटे बच्चे और लड़कियाँ हाथ में झण्डियाँ लिए घूम रही हैं !" हनीफ़ उत्साह से पागल हो रहा था। उसने मलका को खींच लिया।

मलका जल्दी से बाहर निकल आई। झाला उसे जाते देख कर अवाक् रह गई। कुछ बोल न सकी। बात ही उसकी ज़बान से न निकली। मलका जब दूर चली गई, तब उसे ज्ञान हुआ। वह रोने लगी, पर वहाँ से हिली-डुली नहीं।

मलका भी हनीफ़ के सङ्ग गाने लगी। उस मैदान में अपार भीड़ एकत्रित हुई थी। पर सभी शान्त, अपने जीवन की जैसे निधि खोज रहे थे ! उनमें उद्विग्नता, अधीरता और विद्रोह की कोई भावना दृष्टिगोचर नहीं होती थी। उसी समय सशस्त्र पुलिस की एक फ़ौज और कुछ ऑफ़िसरों के साथ ज़िला मैजिस्ट्रेट आ डटे।

मैजिस्ट्रेट ने आते ही सभा बन्द करने की आज्ञा दी। सभापति ने सबको शान्त रहने का आदेश दिया और उन्होंने मैजिस्ट्रेट को विनम्रता-पूर्वक उनकी आज्ञा न मानने की सूचना भिजवा दी। जनता हर्ष से पागल हो रही थी। उसमें अपनी शक्ति का ज्ञान तथा आत्म-मर्यादा का भाव जाग्रत हो रहा था। उसने एक स्वर से कहा—"आज जनता की आकांक्षा को रौंद कर इङ्गलैण्ड के व्यवसायियों का हम पर प्रभुत्व करना असम्भव है।" असहाय जनता का ऐसा दुस्साहस सहना, अधिकार के दर्प से चूर मैजिस्ट्रेट के लिए एक असम्भव कल्पना थी। उसने अधिकारियों को भीड़ तितर-बितर करने की आज्ञा दे दी। उन्मत्त गोरे सैनिक और देशी सिपाही अपने तीव्र प्रहार से लोगों को घायल करने लगे।

मलका एक छोटी सी बच्चों की टोली के सङ्ग हाथ में राष्ट्रीय झण्डी लिए घूम रही थी। टोली के बच्चे लाठियों की वर्षा होते देख कर एक-दूसरे का मुँह देखने

लगे। उनकी लम्बी-पतली आँखें एक दूसरे के चेहरे पर स्थिर दृष्टि से जम गईं। दूसरे ही क्षण सबों ने एक स्वर से कहा—"महात्मा गाँधी की जय!" और वे फिर एक ओर को चल पड़े।

मलका आगे थी। उसके हाथ में छोटी सी झण्डी और पीछे उसकी टोली थी। राष्ट्रीय नारे लगाता वह दल निःशङ्क होकर सब से आगे बढ़ रहा था।

पुलिस ने पहले बैठी हुई भीड़ पर आक्रमण किया। परन्तु जब लोग इधर-उधर होने लगे, तब उसकी वर्षा घूम-घूम कर होने लगी। गोरे सैनिक भी घोड़े पर दौड़ लगा रहे थे। उनके हण्टर अबाध गति से लोगों पर पड़ रहे थे। जिधर ही वे समूह देखते, टूट पड़ते। एक ने बच्चों की टोली पर भी प्रहार किया। मलका के हाथ की झण्डी दूर जा पड़ी और वह कोड़े की चोट से चीख़ उठी।

"अभी भागो"—उस गोरे सार्जेण्ट ने डाट कर बच्चों से कहा। वह बढ़ना ही चाहता था कि सभी बच्चे एक स्वर में बोल उठे—"जवाहरलाल की जय!"

मलका जय बोल कर अपनी आँखों के आँसुओं को पोंछते हुए अपनी पताका में लगी धूल झाड़ रही थी, कि सार्जेण्ट घूम पड़ा और उसने तीव्र गति से अपने हण्टर से वार किया। कई बच्चे गिर पड़े। गोरा बच्चों को डरते न देख कर, दूसरी बार हाथ उठा रहा था।

मलका ने ज़ोर से कहा—"मारो—मैं न जाऊँगी। जवाहरलाल की जय!" वह उत्तेजित थी। उसका चेहरा तमतमा उठा था। किन्तु उसने देखा, सार्जेण्ट के पीछे उसके अब्बा आ रहे हैं। उसी क्षण वह काली पड़ गई। तब तक हण्टरों की वर्षा ने उसे ज़मीन पर गिरा दिया।

"अब्बा!"—एक कातर ध्वनि उस रौंद कर जाते सार्जेण्ट के कानों में गूँज पड़ी।

मलका के अब्बा विचलित हो उठे। वे जैसे भविष्य के अन्धकारपूर्ण आँगन में अपनी राह न पा रहे हों, अवाक् खड़े होकर कुछ पहचानने की चेष्टा कर रहे थे, हनीफ़ उस मार-पीट में मलका की खोज कर रहा था। वह दौड़ा-दौड़ा वहीं आ गया। उसने देखा, मलका के मुँह से ख़ून आ रहा है। वह बेहोश है और मलका के अब्बा खड़े उसे देख रहे हैं। क्षण भर के लिए वह विचार-विमूढ़ हो गया। किन्तु शीघ्र ही उसने पूछा—"जल्दी कहिए, क्या किया जाय?" वह बहुत गम्भीर था।

मलका की बेहोशी में कोई स्मृति मँडरा रही थी। उसने परिचित कण्ठ की ध्वनि पाकर आँखें खोल दीं। हनीफ़ का चेहरा सर के ख़ून से तर होकर काला हो गया था। उसने देखा—आह! अब्बा भी तो हैं। उसके दर्द में जैसे शीतल हवा लगी। वह काँप कर फिर बेहोश हो गई। उसने धीरे से कहा—"हनीफ़ भैया!" और उसकी आँखें फिर मुँद गईं। मलका के अब्बा ने कहा—"इसे



श्री० ठाकुर शिवपतिसिंह जी, एम० एल० सी०

आप चन्द्रपुर स्टेट के ताल्लुक़ेदार हैं, जिन्होंने हाल ही में गोंडा ज़िले में एक १० फ़ीट ३ इञ्च लम्बे शेर का शिकार किया है।

अस्पताल......" वे इससे अधिक कुछ न बोल सके। हनीफ़ यह सुनने के लिए वहाँ न था।

उनकी आँखों से आँसू बह रहे थे। उस कोलाहल के बीच अकेले खड़े वे मलका के लिए फटफटाने लगे। वे अपने को भूल गए। मलका के शरीर को सहलाते हुए उन्होंने कई बार पुकारा—"बेटी!"

* * *

मलका के तोते का पिंजड़ा आँगन में पड़ा था। वहाँ उसकी सुध लेने वाला कोई न था। दो दिन तक वह मलका के लिए उस पिंजड़े में विकल होकर घूमता रहा।

दूसरे दिन शाम को, जब मलका के अब्बा ने आकर दरवाज़ा खोला, तब तोता एक आशा से उत्फुल्ल होकर पुकार उठा—"मलका! जवाहरलाल की जय!" वह अपना सहज प्रत्युत्तर सुनने के लिए अपने दोनों डैने फैला कर दरवाज़े की ओर देखने लगा।

मलका के अब्बा की आँखों से आँसू गिरने लगे। उस तोते की आवाज़ में मलका के वियोग की ज्वाला जैसे साँस ले रही थी। तोते की पीड़ा उनकी वेदना की वीणा में झनझना उठी। वे पिंजड़े के पास बैठ कर फूट-फूट कर रोने लगे।

तोता फड़फड़ाने लगा। उन्होंने रोते-रोते कहा—मलका तुझे छोड़ कर कहाँ चली गई, परबत्ते?

तोता कुछ बोला नहीं। वह उनसे जैसे डर रहा था। अब भी अकेले में कभी-कभी तोता मलका को वैसे ही पुकार उठता है। उस समय उसका पुकारना सुन कर मलका के अब्बा की आँखों में आँसू आ जाते हैं। वे मलका की कण्ठ-ध्वनि से जैसे विकलित हो उठते थे, उसी तरह वे उसकी ओर बड़े प्यार से देखने लगते; किन्तु तोते ने उनके सामने कभी नहीं कहा—"मलका! जवाहरलाल की जय!"

सार्थकता

[श्री० राजाराम जी 'पुनीत']

लखते-लखते राह नयन ये
हो जावें प्रभु! ज्योति-विहीन।
सुनते-सुनते गुन प्रियतम के
श्रवण-शक्ति हो जाय विलीन॥
रटते-रटते नाम टेरते,
रुद्ध कण्ठ भी हो जाए।
आँसू बुझा सकें न दाह को
और न आह निकल पाए॥
हस्त शिथिल नभ-ओर स-अञ्जलि
रहें, और हो पद गति-हीन।
प्रियतम-नाम समेत निकल कर
प्रियतम में हो प्राण विलीन॥

यह मेरा सौभाग्य-भस्म मम,
यदि प्रिय-पद-तल-गत हो जाय।
अथवा मेरी देह एक—
सुन्दर तरु में परिणत हो जाय॥
पाँव मूल हो, बाहु-बाहु हों,
रोम-रोम हों शाखा-पत्र।
कभी दे सकूँ छाया अपनी
प्रियतम को बन कर यों छत्र॥
बैठ जायँ वे श्रमित, गिराऊँ—
उनके चरणों पर फल-फूल।
धीरे-धीरे व्यजन डुलाऊँ
और हिलाऊँ कन्ध-दुकूल॥

सार्थक हो जाएगा जीवन,
अगर किसी जाड़े की रात—
प्रियतम को आराम दे सके
जल कर मेरा सूखा गात।

कमला के पत्र

एक स्त्री-द्वारा लिखे हुए क्रान्तिकारी पत्रों का अपूर्व संग्रह

यह पुस्तक 'कमला' नामक एक शिक्षित मद्रासी महिला के द्वारा अपने पति के पास लिखे हुए पत्रों का हिन्दी-अनुवाद है। इन गम्भीर, विद्वत्तापूर्ण एवं अमूल्य पत्रों का मराठी, बँगला तथा कई अन्य भारतीय भाषाओं में बहुत पहले अनुवाद हो चुका है। पर आज तक हिन्दी-संसार को इन पत्रों के पढ़ने का सुअवसर नहीं मिला था।

इन पत्रों में कुछ पत्रों को छोड़, प्रायः सभी पत्र सामाजिक प्रथाओं एवं साधारण चर्चाओं से परिपूर्ण हैं। पर उन साधारण चर्चाओं में भी जिस मार्मिक ढङ्ग से रमणी-हृदय का अनन्त प्रणय, उसकी विश्व-व्यापी महानता, उसका उज्ज्वल पतिभाव और प्रणय-पथ में उसकी अक्षय साधना की पुनीत प्रतिमा चित्रित की गई है, उसे पढ़ते ही आँखें भर आती हैं। दुर्भाग्यवश रमणी-हृदय की उठती हुई सन्दिग्ध भावनाओं के कारण कमला की आशा-ज्योति अपनी सारी प्रभा छिटकाने के पहले ही सन्देह एवं निराशा के अनन्त तम में विलीन हो गई। इसका परिणाम वही हुआ जो होना चाहिए—कमला को उन्माद-रोग हो गया! जो हो, इन पत्रों में जिन भावों की प्रतिपूर्त्ति की गई है, वे विशाल और महान् हैं। अनुवाद में इस बात का विशेष रूप से ध्यान रक्खा गया है कि भाषा सरल, सरस और सुबोध हो और मूल-लेखिका की स्वाभाविकता किसी प्रकार नष्ट न होने पाए। काग़ज़ ४० पाउण्ड एण्टिक, पृष्ठ-संख्या ३००, मूल्य केवल ३) रु० ! स्थायी ग्राहकों के लिए २।) मात्र ! पुस्तक सुनहरी जिल्द से मण्डित है और ऊपर तिरङ्गा Protecting Cover भी दिया गया है !! नवीन संस्करण प्रेस में है !!

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

सीमा-प्रान्त के "गाँधी" और उनका सङ्गठन



वार्षिक सम्मेलन के अवसर पर अपने अनुयायियों (ख़ुदाई ख़िदमतगारों) सहित सीमा प्रान्त के 'गाँधी'—श्री० अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ाँ

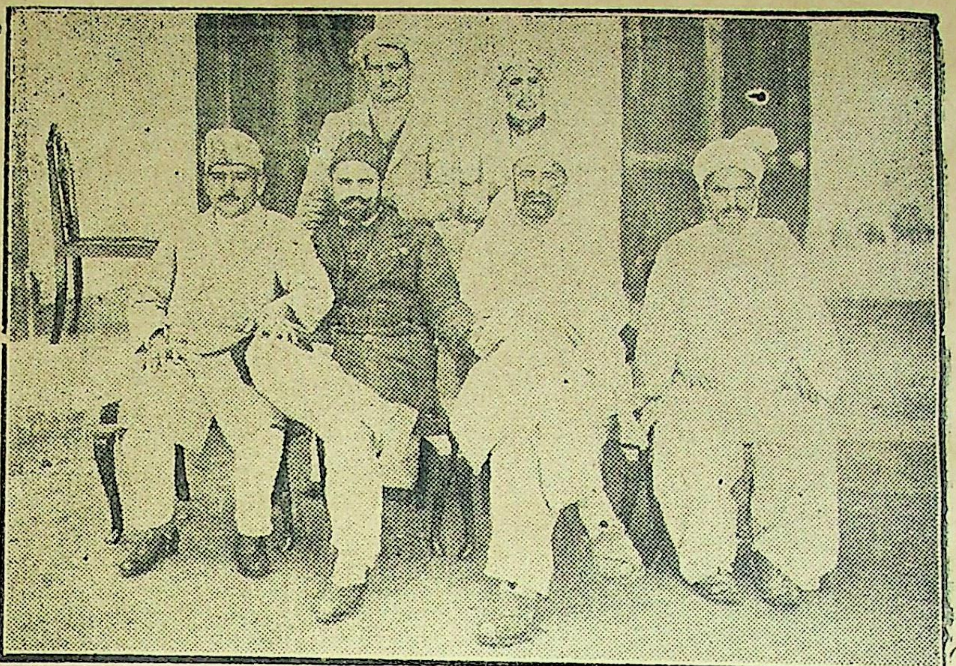
[आप ही बीच में शुद्ध खादी की पोशाक में खड़े हैं]

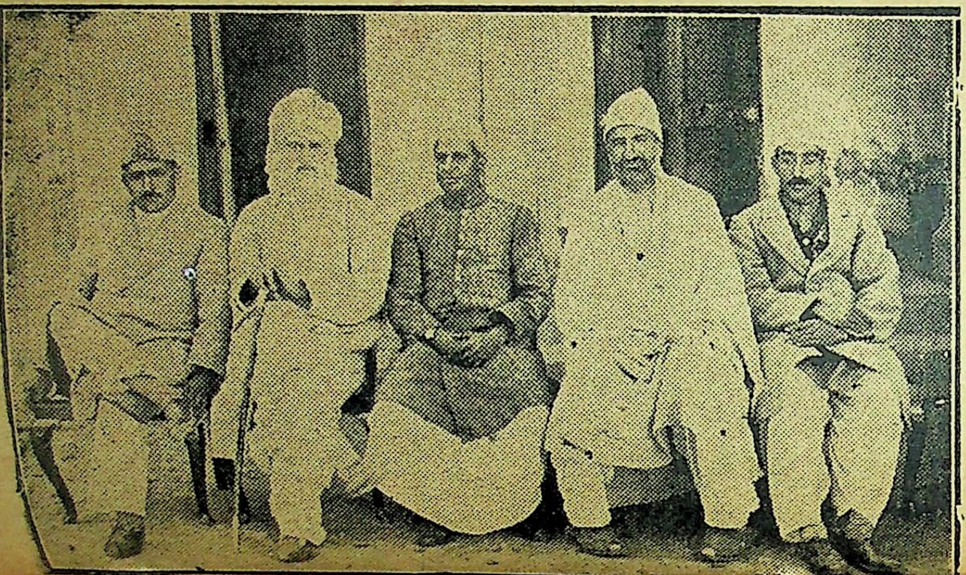


सीमा प्रान्त के 'गाँधी'—
श्री० अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ाँ, जो अभी जेल से छूटे हैं।



चारसद्दा (सीमा प्रान्त) के राष्ट्रीय नेताओं सहित श्री० अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ाँ।





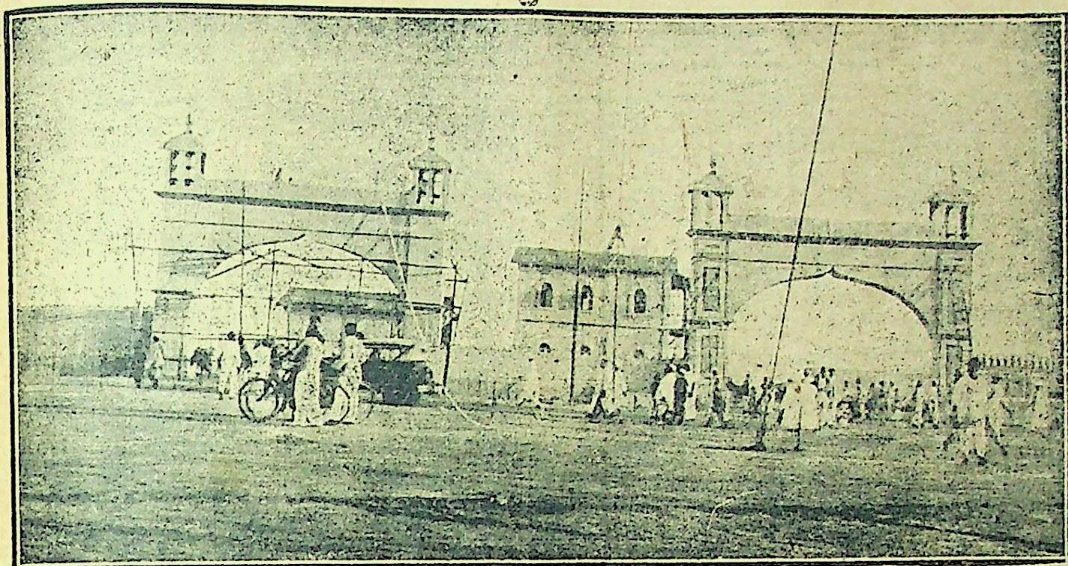


पेशावर के पठान नेताओं सहित—
श्री० अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ाँ

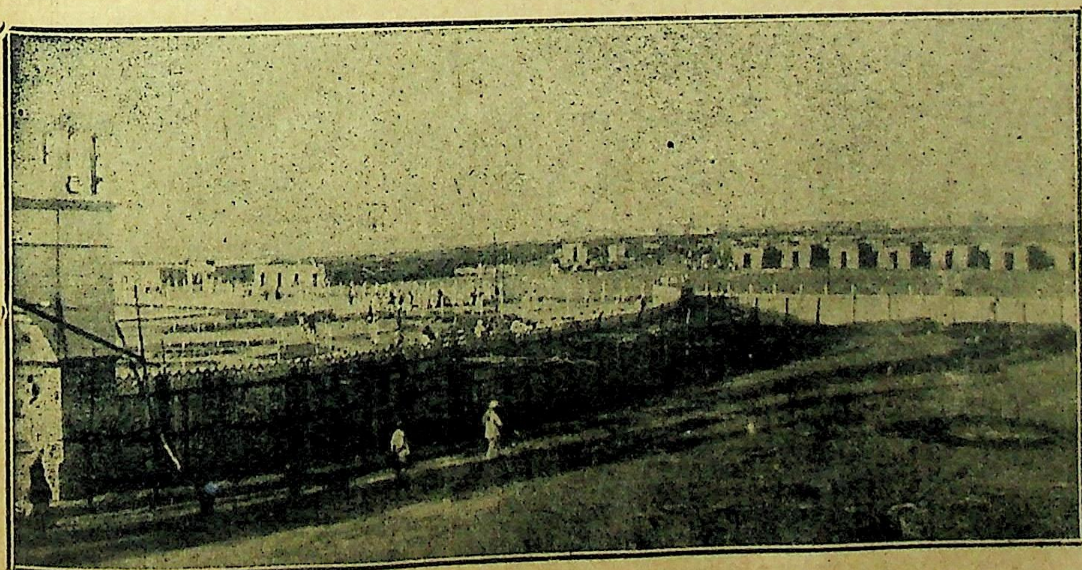
बाईं ओर से बैठे हुए—श्री० ख़ाँ अब्दुल अम्बर ख़ाँ, श्री० सय्यद लालबादशाह, लाहौर के राष्ट्रीय पञ्जाबी नेता—श्री० के० सान्तनम, श्री० ख़ाँ अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ाँ और श्री० ख़ान अलीगुल ख़ाँ।

पाठकों को स्मरण होगा, अभी हाल ही में श्री० अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ाँ साहब ने फ़र्माया है, कि आगामी राष्ट्रीय युद्ध में, जब कभी ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हुई, तो वे अहिंसात्मक युद्ध के लिए एक लाख ख़ुदाई-ख़िदमतगार भेंट करेंगे।

'चाँद' की कराची-कॉङ्ग्रेस सम्बन्धी चित्रावली का एक पृष्ठ

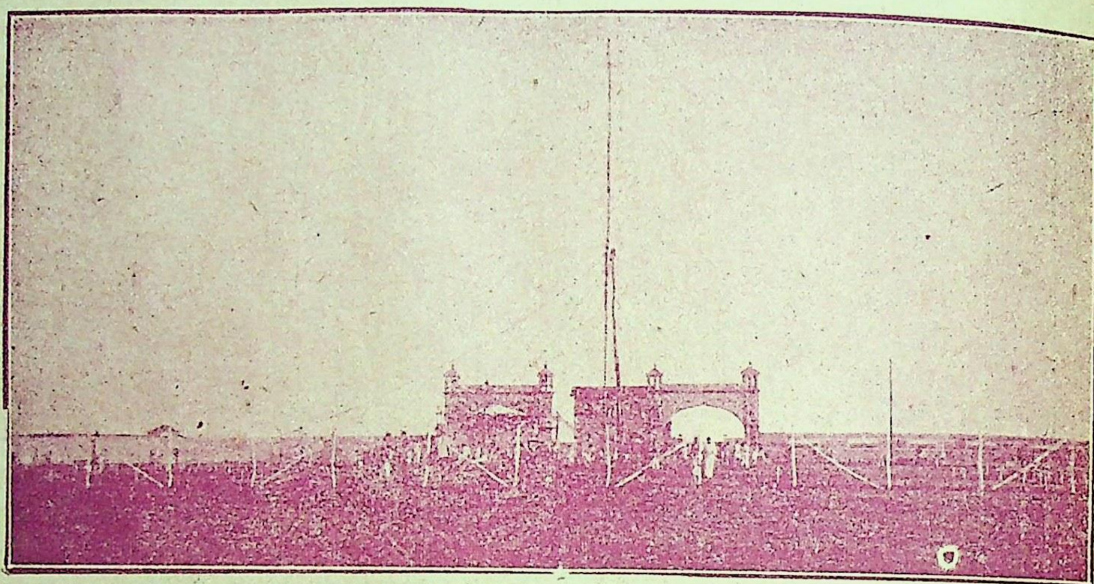


कॉङ्ग्रेस-भवन के दो प्रधान प्रवेश-द्वार—दाहिनी ओर वाले द्वार का नाम 'भुर्गरी द्वार' और बाँई ओर वाले का 'अमर दत्तात्रेय और मेघराज द्वार' है। प्रथम द्वार सिन्ध के स्वनामधन्य मुसलमान नेता स्व० भुर्गरी के पवित्र नाम की स्मृति है, जो बम्बई कौन्सिल के सदस्य थे और हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रबल पक्षपाती थे। दूसरे द्वार का सम्बन्ध उन अमर स्वदेश-सेवकों की स्मृति से है, जो विगत १६ अप्रैल, १९३० को, कराची सत्याग्रह समिति के नेताओं के मुक़द्दमे के समय कराची की अदालत में पुलिस की गोलियों से शहीद हुए थे।

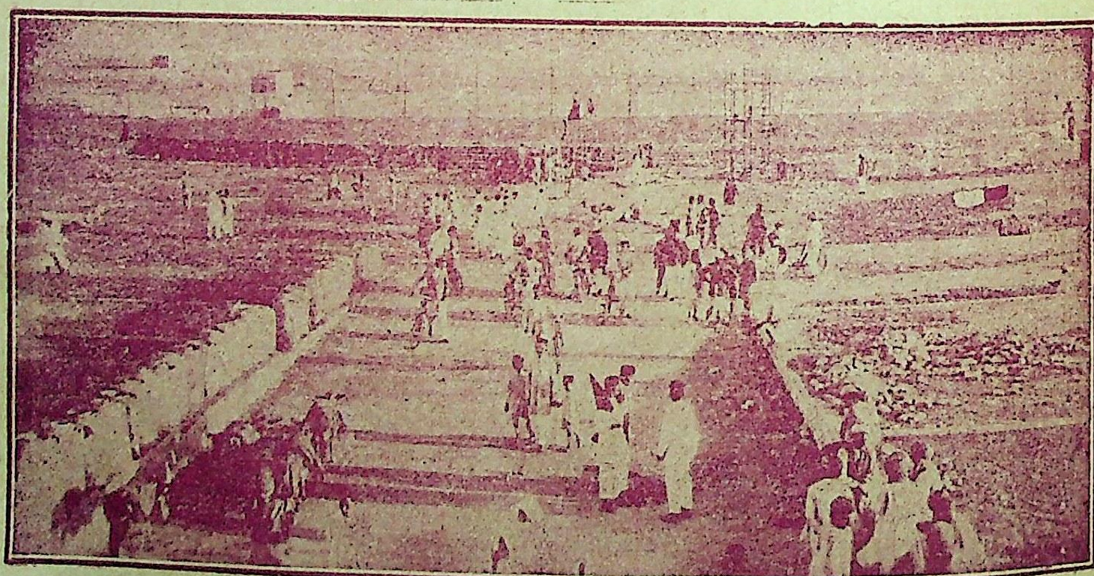


इस चित्र में, दाहिनी ओर कराची।कॉ ग्रेस के नेताओं के निवास स्थान तथा बाईं ओर हरचन्द्र [नगर के अन्यान्य स्थानों का दृश्य है।

'चाँद' की कराची-काँङ्ग्रेस सम्बन्धी चित्रावली का एक पृष्ठ

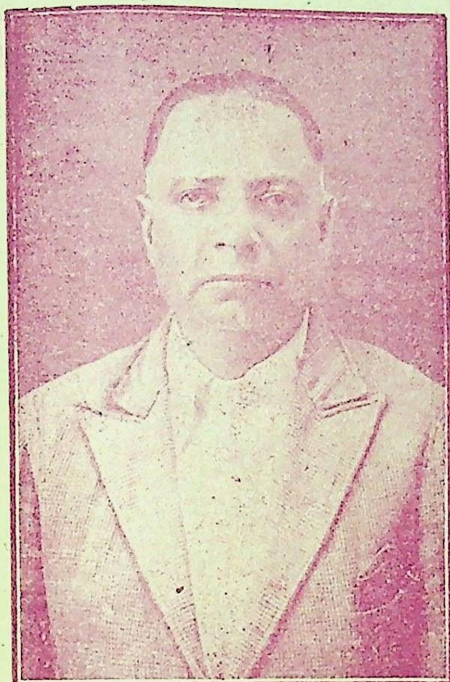


कराची कॉङ्ग्रेस-भवन के सामने राष्ट्रीय पताका-स्तम्भ का दृश्य—सभा-भवन के दो प्रधान द्वारों का दृश्य तथा सामने का खुला मैदान, जहाँ से बाहरी दर्शक राष्ट्रीय समारोह की झाँकी ले सकते हैं।

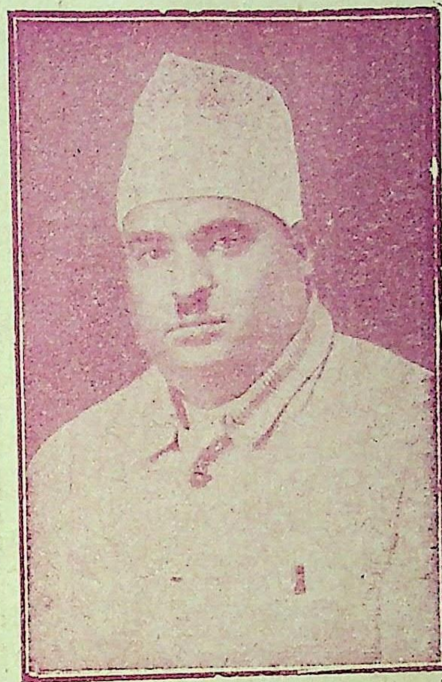


इस चित्र में कराची कॉङ्ग्रेस-भवन का भीतरी दृश्य दिखाया गया है। एक ओर वक्ता-मञ्च, तथा स्वागत समिति का स्थान, और दूसरी ओर दर्शकों की गैलरियाँ तथा बीच में प्रतिनिधियों के बैठने के स्थान का दृश्य है।

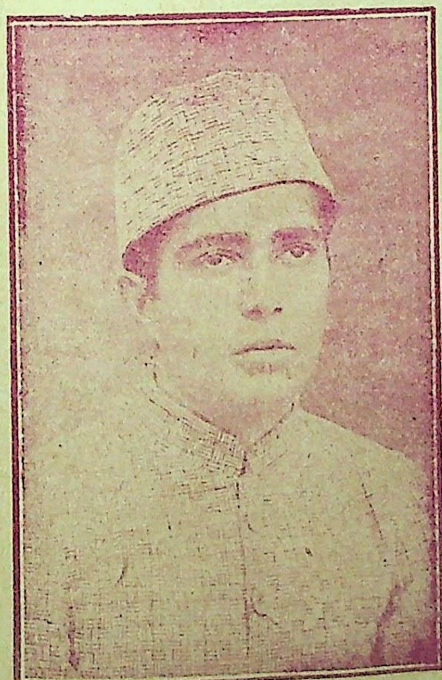
'चाँद' की कराची-काँङ्ग्रेस सम्बन्धी चित्रावली का एक पृष्ठ



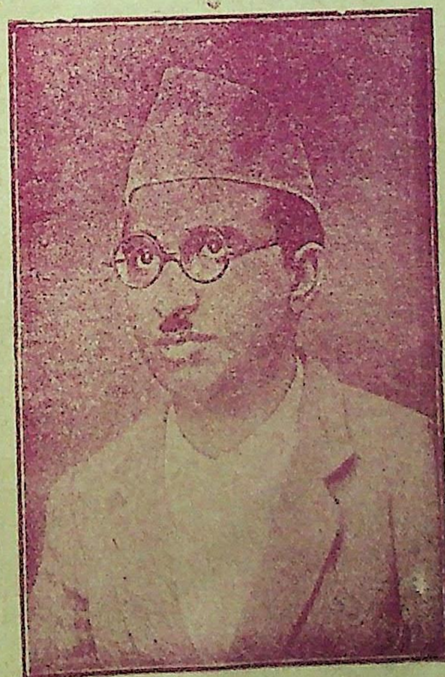
श्री० गुलराजमल जयरामदास—आप कराची काँङ्ग्रेस के प्रतिनिधियों को स्टेशन से उनके निवास-स्थान पर पहुँचाने वाली समिति के मन्त्री हैं।



श्री० डी० डी० चौधरी—आप कराची काँङ्ग्रेस की एडवाइसरी कमिटी के सदस्य और रेलवे-सुविधा-विधायिनी उप-समिति के मन्त्री हैं।

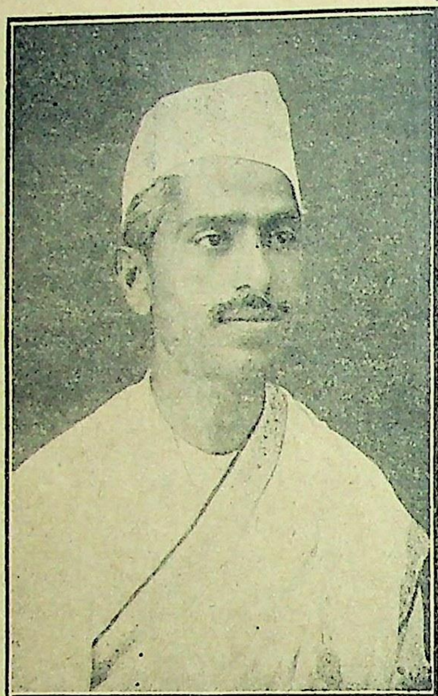


श्री० जी० एच० लालवानी—कराची काँङ्ग्रेस की स्वागतकारिणी समिति के प्रकाशन-विभाग के सेक्रेटरी इञ्चार्ज।

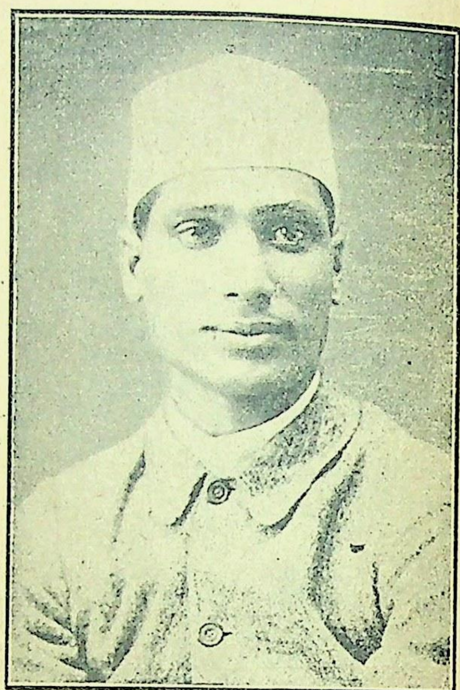


श्री० चैथराम टी० वलेछा, बी० ए०—आप कराची काँङ्ग्रेस के मुद्रण और प्रकाशन-विभाग के मन्त्री हैं।

'चाँद' की कराची-कॉङ्ग्रेस सम्बन्धी चित्रावली का एक पृष्ठ



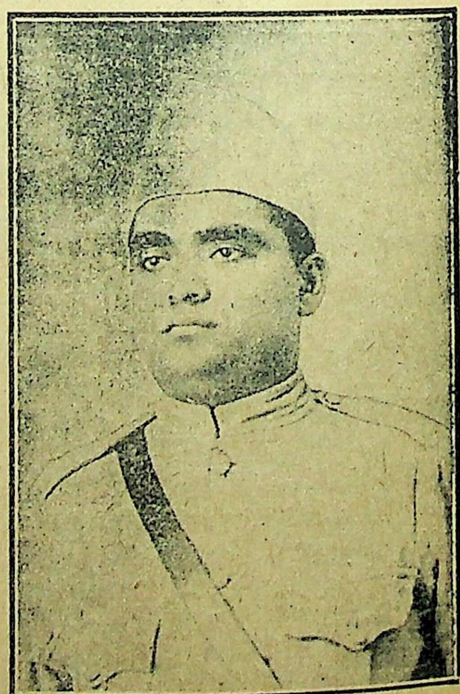
प्रो० एन० आर० मलकानी—पण्डाल डिकोरेशन (सजावट) कमिटी के सेक्रेटरी ।



श्री० लालजी एम० मेहरोत्रा, बी० ए० बी० एल०—स्पेशल कैम्प कमिटी के सेक्रेटरी ।



डॉक्टर जेमी एन० आर० सेठना—कराची कॉङ्ग्रेस की स्वयंसेवक-सेना के शिक्षादाता ।

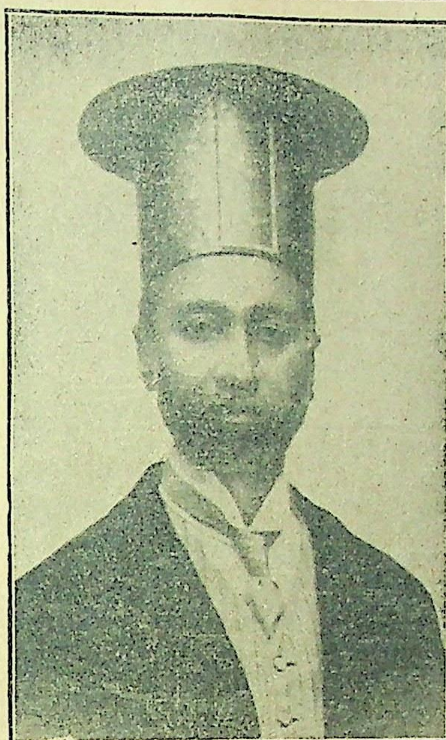


सेठ ज्येष्ठाराम भवनजी—कराची कॉङ्ग्रेस कमिटी के मन्त्री तथा स्वयंसेवक-सेना के अन्यतम सीनियर ऑफ़िसर ।

'चाँद' की कराची-कॉङ्ग्रेस सम्बन्धी चित्रावली का एक पृष्ठ



स्वर्गवासी सेठ हरचन्दराय विशनदास, भूतपूर्व एम० एल० ए०। आप कॉङ्ग्रेस के एक उत्साही कार्यकर्ता और विगत सन् १९१३ की कराची कॉङ्ग्रेस की स्वागतकारिणी समिति के सभापति थे। आपकी आकस्मिक मृत्यु सन्

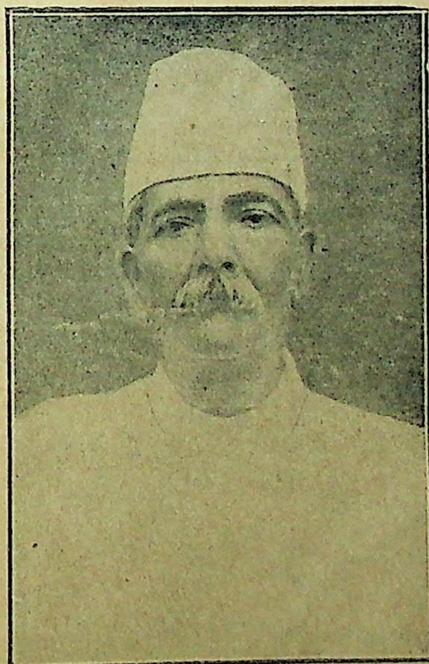




१९२९ में दिल्ली में हुई थी। आप स्वर्गीय लाला लाजपतराय के बुलाने पर, एसेम्बली में साइमन कमीशन के विरुद्ध वोट देने गए थे। आप ही की अमर-स्मृति में कराची कॉङ्ग्रेस-स्थान का नाम सेठ हरचन्दराय विशनदास नगर रक्खा गया है।

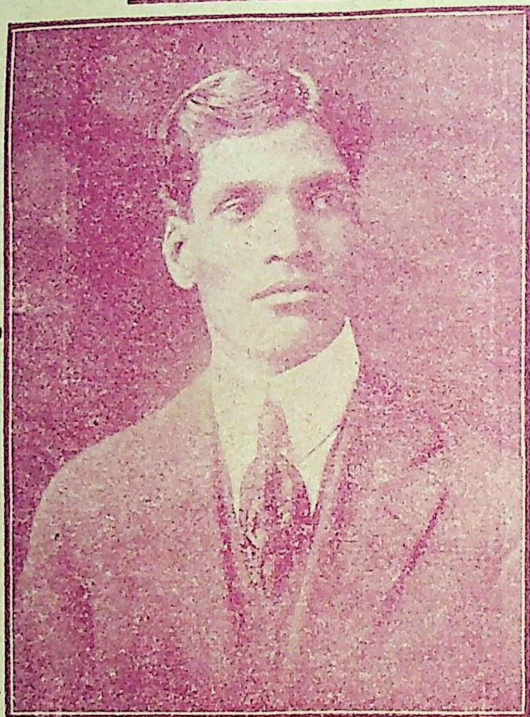


कुमारी जेठी सिपाहीमलानी, बी० ए०—आप कराची के 'हरचन्द नगर' अस्पताल की मन्त्रिणी हैं, जो गाँधी अस्पताल के तत्वावधान में कॉङ्ग्रेस अवसर के लिए खोला गया है।



सेठ रवजी जेठाभाई—आप सभा-भवन सुसज्जित-कारिणी समिति के मन्त्री हैं।

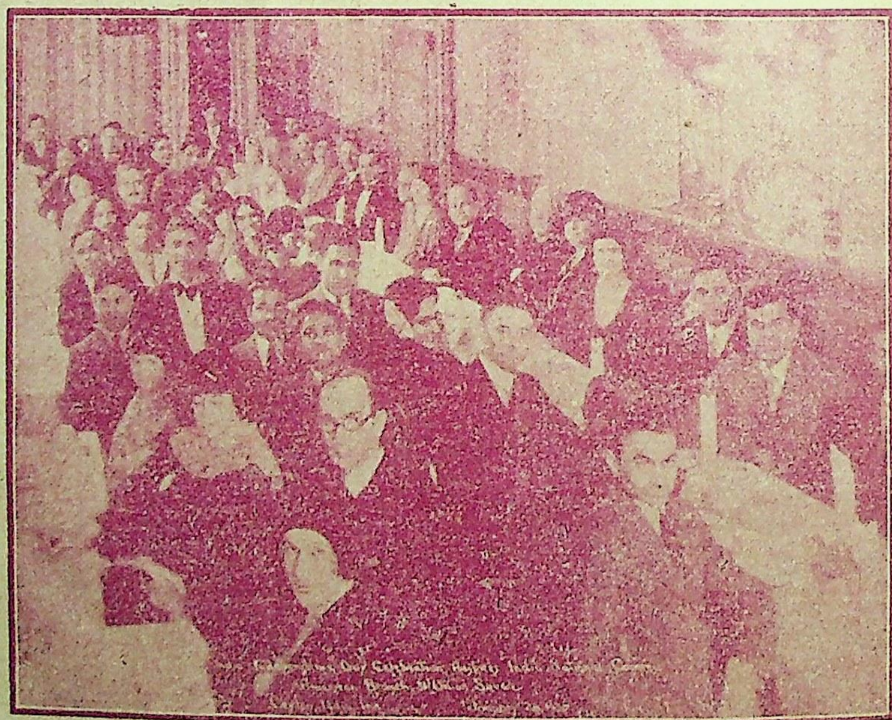
भारतीय स्वतन्त्रता के लिए अमेरिका कॉङ्ग्रेस का उद्योग



अमेरिका-स्थित भारतीय कॉङ्ग्रेस के प्रधान—
श्री० रामलाल बालाराम वाजपेयी।



अमेरिका-स्थित भारतीय कॉङ्ग्रेस के प्राण और
सुप्रसिद्ध देश-भक्त बाबू शैलेन्द्रनाथ घोष।



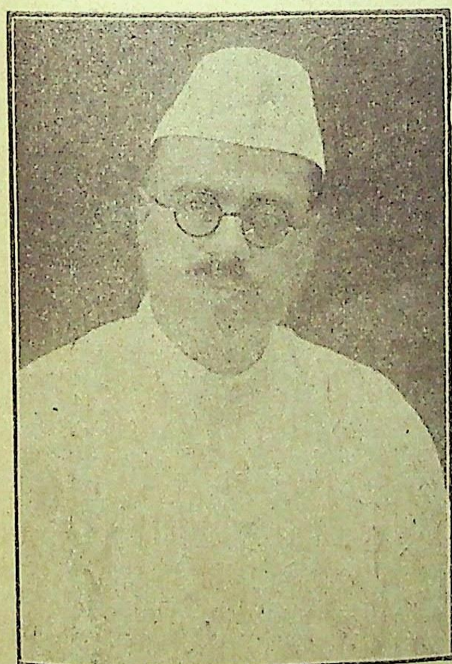
अमेरिका की भारतीय कॉङ्ग्रेस की अध्यक्षता में मनाया जाने वाला 'स्वतन्त्रता-दिवस'
(१९३०) के प्रीतिभोज का दृश्य—जिसमें डॉक्टर सण्डरलैण्ड आदि
सैकड़ों सुप्रसिद्ध अमेरिकन शरीक हुए थे।

[अमेरिका से श्रीमती रागिनी देवी द्वारा भेजे हुए 'चाँद' के खास चित्र]

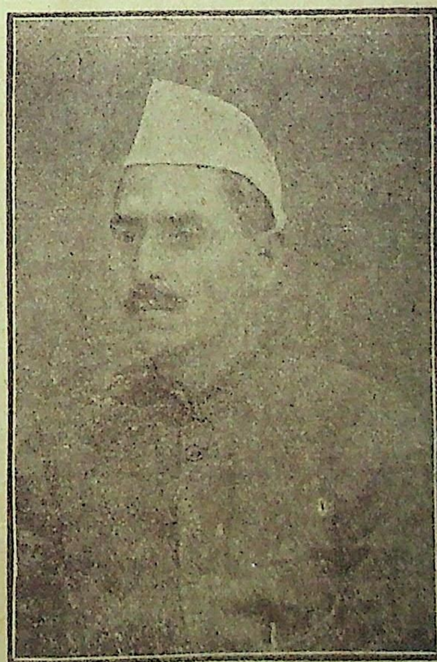
'चाँद' की कराची-काँङ्ग्रेस सम्बन्धी चित्रावली का एक पृष्ठ



कराची-काँङ्ग्रेस की स्वागतकारिणी-समिति का कार्यालय



प्रो० जयरामदास दौलतराम—काँङ्ग्रेस-वर्किङ्ग-कमिटी के अन्यतम-सदस्य और कराची काँङ्ग्रेस के प्रमुख कार्यकर्ता।

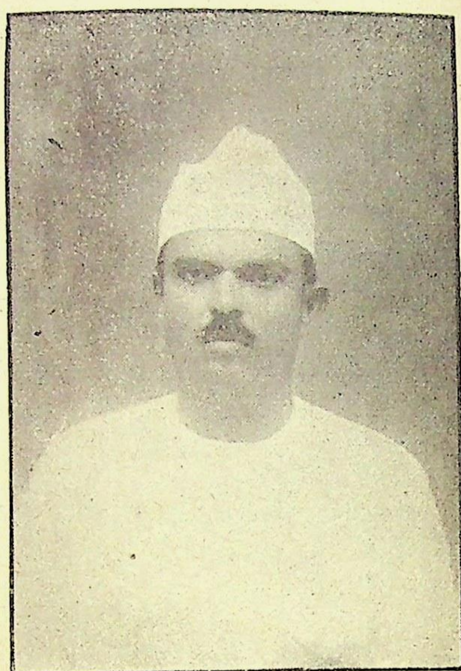


डॉ० चैतराम पी० गिडवानी—कराची काँङ्ग्रेस की स्वागतकारिणी-समिति के सभापति।

'चाँद' की कराची-कॉङ्ग्रेस सम्बन्धी चित्रावली का एक पृष्ठ



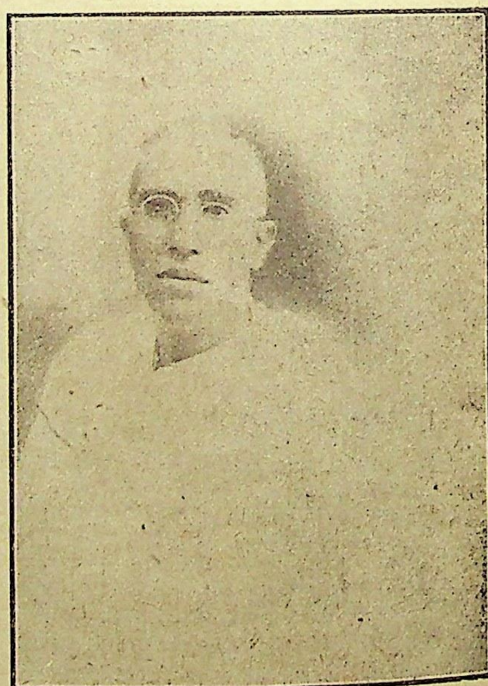
आचार्य ए० टी० गिडवानी, एम० ए०—कराची कॉङ्ग्रेस की स्वागतकारिणी समिति के अन्यतम उप-सभापति।



श्री० नारायणदास आनन्दजी बेचर—कराची कॉङ्ग्रेस की स्वागतकारिणी समिति के अन्यतम उप-सभापति।

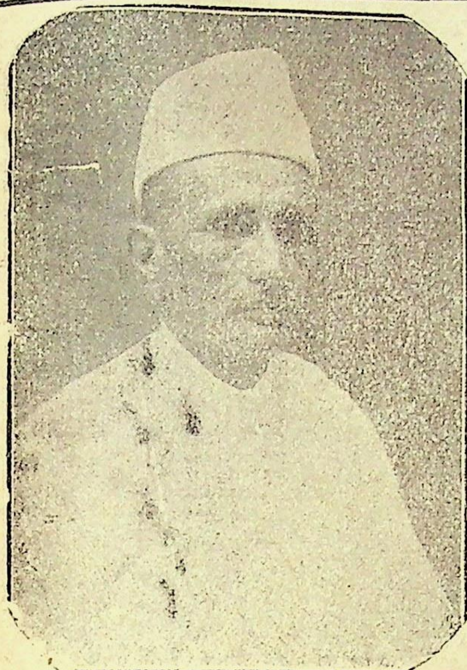


श्री० मणिलाल जी व्यास—कराची कॉङ्ग्रेस की स्वागतकारिणी समिति के उप-सभापति।



स्वामी गोविन्दानन्द जी—कराची कॉङ्ग्रेस की स्वागतकारिणी समिति के अन्यतम उप-सभापति।

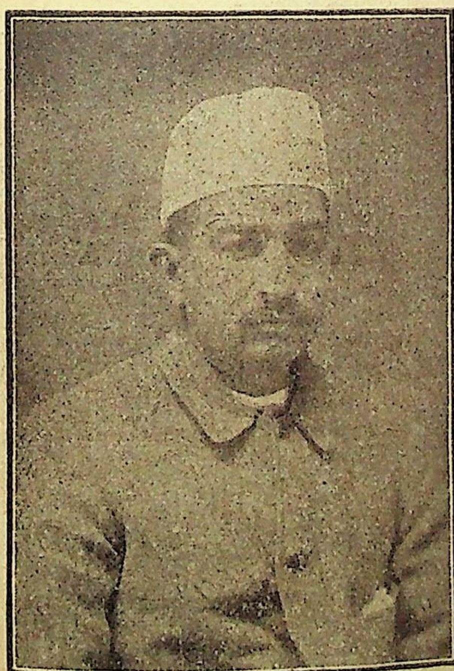
'चाँद' की कराची-कॉङ्ग्रेस सम्बन्धी चित्रावली का एक पृष्ठ



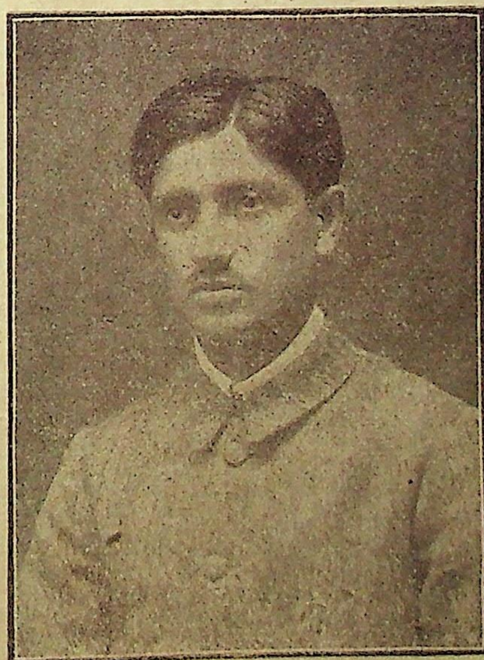
सेठ लालचन्द पानाचन्द—कराची कॉङ्ग्रेस की स्वागतकारिणी समिति के अन्यतम कोषाध्यक्ष



सेठ हरिदास लाल जी—कराची कॉङ्ग्रेस स्वागतकारिणी समिति के अन्यतम उप-सभापति।



सेठ ईसरदास वारानमल—कराची कॉङ्ग्रेस की स्वागतकारिणी समिति के अन्यतम कोषाध्यक्ष।



सेठ मूल जी विसराम नर्सी—कराची कॉङ्ग्रेस की स्वागतकारिणी समिति के अन्यतम सेक्रेटरी।

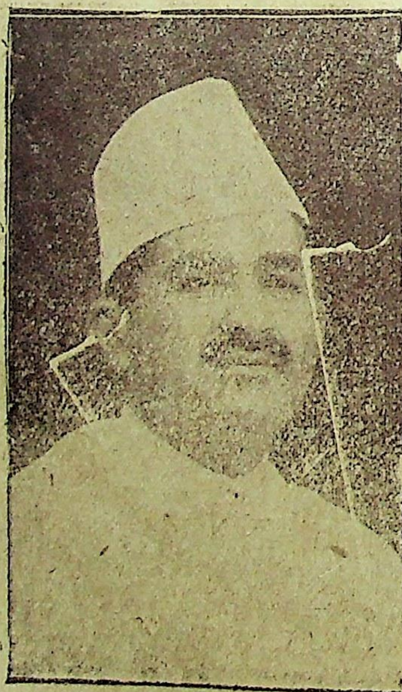
'चाँद' की कराची-काँङ्ग्रेस सम्बन्धी चित्रावली का एक पृष्ठ



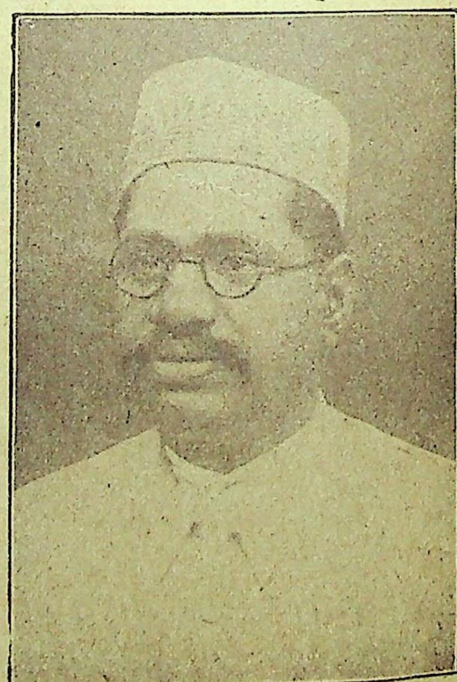
श्री० राम बी० मोटवानी—आप कराची काँङ्ग्रेस की स्वागतकारिणी समिति के अन्यतम सेक्रेटरी और सिन्ध प्रान्त के प्रमुख राष्ट्रीय कार्यकर्ता हैं।



श्री० दुर्गादास अडवानी—कराची काँङ्ग्रेस की स्वागतकारिणी समिति के आप प्रमुख कार्यकर्ता हैं। आप की ही देखरेख में कराची काँङ्ग्रेस का सभा-भवन बना है।



श्री० आर० के० सिधवा—कराची काँङ्ग्रेस की स्वागतकारिणी-समिति के अन्यतम जनरल सेक्रेटरी।

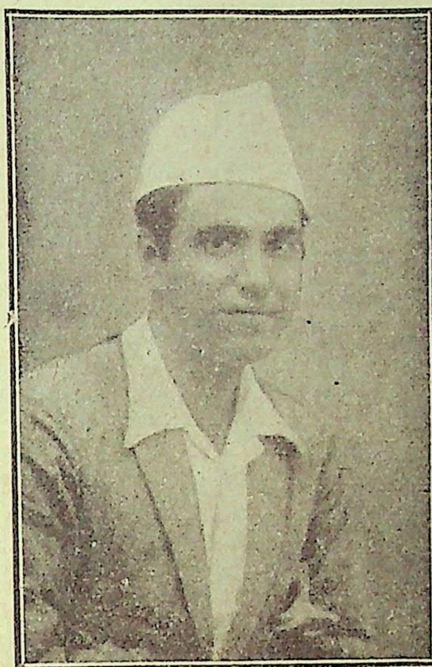


लाला यशवन्तराय चूड़ामणि—कराची काँङ्ग्रेस की स्वागतकारिणी-समिति के अन्यतम उप-सभापति।

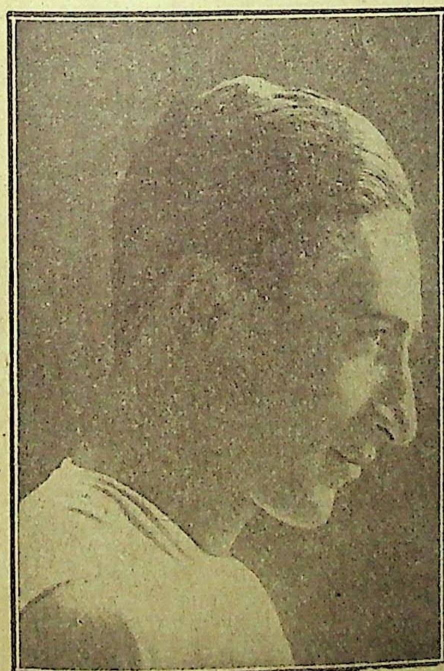
'चाँद' की कराची-कॉङ्ग्रेस सम्बन्धी चित्रावली का एक पृष्ठ



श्री० हाफ़िज़ नसीर अहमद—आप कराची में होने वाले 'जमायतुल-उलमाए-हिन्द' की स्वागत-समिति के सेक्रेटरी हैं।



श्री० तीरथ जी० सवानी बी० ए०—कराची में होने वाले अखिल भारतवर्षीय विद्यार्थी-सम्मेलन के संयोजक।

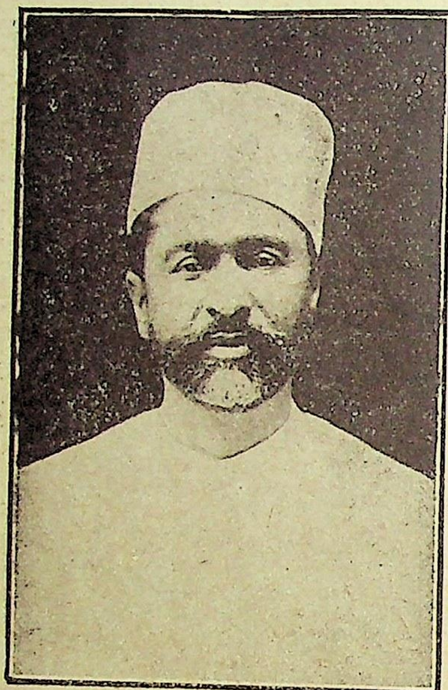


श्री० जयन्तीलाल पारिख—आप कराची कॉङ्ग्रेस की स्वागत-समिति के कोषाध्यक्ष और मुनीम हैं।



प्रो० घनश्याम जेठानन्द, एम० ए०, एल्-एल्० बी०—विषय-निर्वाचिनी समिति के मन्त्री।

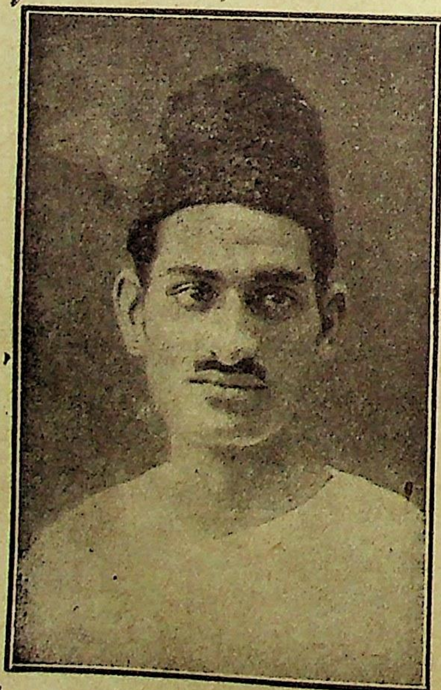
'चाँद' की कराची-कॉङ्ग्रेस सम्बन्धी चित्रावली का एक पृष्ठ



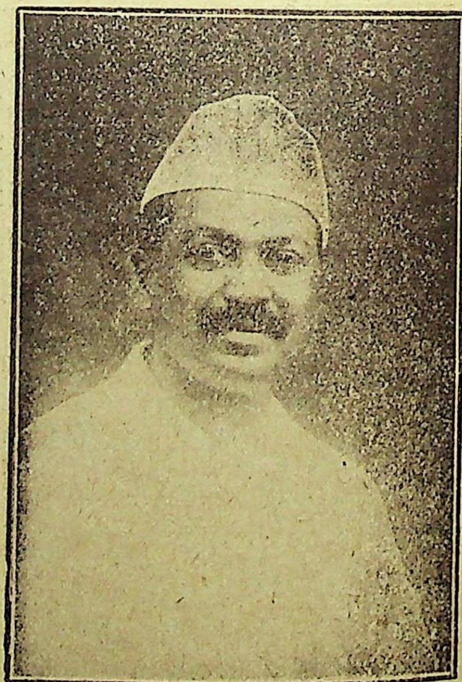
हकीम फ़तह मुहम्मद सेहवानी—आप कराची में होने वाले 'जमायतुल-उलमाए हिन्द' कॉन्फ्रेन्स की स्वागत-समिति के प्रधान मन्त्री हैं।



सेठ शिवदास वी० मानेक—आप कराची कॉङ्ग्रेस की स्वागत-समिति की 'स्टीमर-सुविधा-विधायिनी समिति' के मन्त्री हैं।



कॉमरेड मुबारकअली—कराची में होने वाले अखिल भारतीय नवजीवन सभा—सम्मेलन के प्रधान मन्त्री।



श्री० शिवराम चवन—आप कराची कॉङ्ग्रेस की प्रतिनिधि स्वागत-कारिणी समिति के मन्त्री हैं।

'चाँद' की कराची-कॉङ्ग्रेस सम्बन्धी चित्रावली का एक पृष्ठ



श्रीमती कुसुमबेन मुन्शी—आप भड़ोच के वकील श्री० ठाकोरलाल मुन्शी की पुत्री और भड़ोच के देश-सेविका सङ्घ की सभानेत्री हैं।



कुमारी पार्वती टी० गिडवानी—आप कराची कॉङ्ग्रेस की स्वागतकारिणी समिति के महिला-विभाग की मन्त्रिणी हैं।



श्री० काशीबेन जी० कोटक—आप कराची सत्याग्रह समिति की अन्तिम डिक्टेटर की हैसियत से छः महीने की कठिन कारागार की सज़ा भोग कर आई हैं।

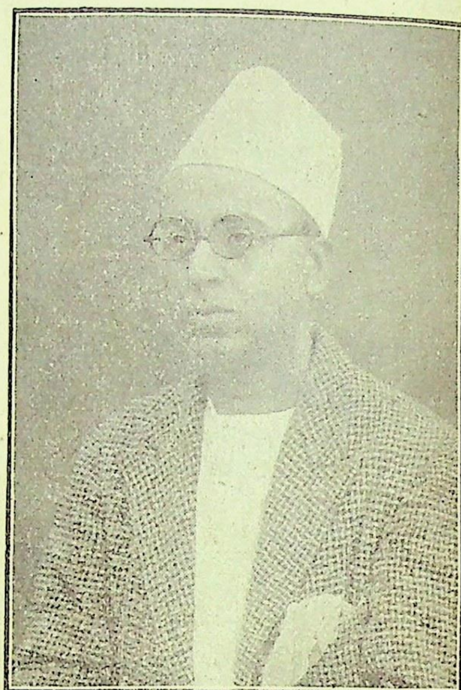


श्री० कीकीबेन चावलदास लालवानी—आप कराची कॉङ्ग्रेस स्वागतकारिणी समिति की अन्यतम उप-सभानेत्री हैं।

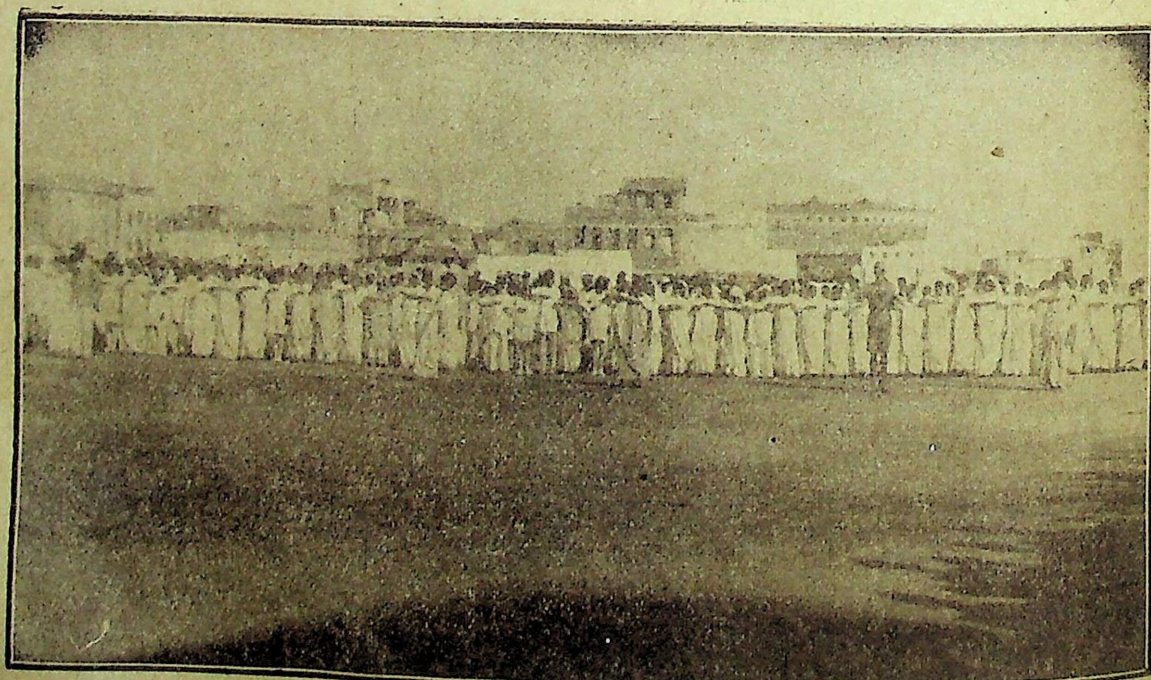
'चाँद' की कराची-कॉङ्ग्रेस सम्बन्धी चित्रावली का एक पृष्ठ



डॉ० ताराचन्द जे० लालवानी, एम० बी०-बी० एस०—कराची कॉङ्ग्रेस कमिटी के अन्यतम जनरल सेक्रेटरी।



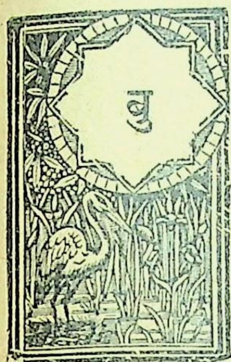
श्री० सन्तदास ईदानमल, बी० ए०, एल०-एल० बी०—कराची कॉङ्ग्रेस वालण्टियर-कोर के जनरल कमाण्डिङ्ग ऑफ़िसर।



कराची कॉङ्ग्रेस की स्वयंसेविकाओं का जत्था अपने ऑफ़िस के प्रति सम्मान प्रदर्शन कर रहा है।

धर्म-व्यवसाइयों का नाश

[प्रोफ़ेसर चतुरसेन जी शास्त्री]



बुज़ुर्गान भाइयो, मैं आपसे पूछता हूँ कि क्या धर्म भी व्यवसाय की वस्तु है? क्या धर्म बेचा और ख़रीदा जा सकता है? क्या यह भण्ड-पाखण्ड नहीं, कि धर्म को एक आदमी पुण्य समझे और दूसरा उसे पैसा पैदा करने का ज़रिया?

आप सारे हिन्दुस्तान में घूम जाइए, धर्म के व्यवसाइयों की सर्वत्र भरमार है। इन व्यवसाइयों की करोड़ों की आय को देख कर आप कलेजा थाम कर बैठ जायँगे। चाहे और किसी रोज़गार में नफ़ा हो या नुक़सान, पर इसमें नफ़ा ही नफ़ा है। अमीर और ग़रीब लोग, अन्धों और कुबड़ों की भाँति अपनी गाढ़ी कमाई धर्मखाते लगाते हैं। हज़ारों मन्दिर, हज़ारों क्षेत्र और हज़ारों ठाकुरद्वारे—न जाने कितनी और ऐसी ही संस्थाएँ—इस खाते में खोली गई हैं, और उनका करोड़ों रुपयों का अबाध व्यापार चल रहा है।

आप जाइए प्रयाग के गङ्गा-सङ्गम पर। फूल-बताशे वाला कहता है, एक पैसे के फूल चढ़ा कर पुण्य लूटो। दूध वाला कहेगा, एक पैसे का दूध चढ़ा कर पुण्य लूटो। पर ये लोग स्वयं न एक फूल, न एक बूँद दूध ही चढ़ाते हैं। या तो इन्हें पुण्य लूटने की अपेक्षा पैसा लूटना अधिक प्रिय है और या ये जानते हैं कि इसमें पुण्य-उण्य कुछ नहीं, कोरा ढकोसला है।

हम त्रिवेणी-स्नान को गए। ये लोग डाकुओं और शिकारी कुत्तों की भाँति पीछे पड़ गए। दूध चढ़ाइए गङ्गा माई पर, फूल-बताशे चढ़ाइए यजमान। एक दूध वाला गङ्गा में घुस कर हमारे पास ही आ गया और स्नान में बाधा डाल कर बोला—दूध चढ़ाइए महाराज!

हमने गुस्सा पीकर कहा—इससे क्या होगा?

"पुण्य होगा—गङ्गा में दूध चढ़ाना हिन्दू-धर्म है।"

हमने कहा—चढ़ा दो।

उसने ज़रा सी लुटिया में दूध उलट कर कहा—कितना, यजमान!

हमने कहा—उसमें है ही कितना, सब चढ़ा दो।

"दो सेर है बाबू!"

"सब उलट दो।"

बदनसीब ने सारा दूध गङ्गा में बहा दिया। और निश्चिन्त हो, घाट पर बैठ, हमारे स्नान की प्रतीक्षा करने लगा। जब हम निवृत्त होकर चलने लगे तो बोला—पैसे दीजिए यजमान?

"पैसे कैसे?"

"दूध चढ़ाया था न।"

"फिर बुरा क्या किया था?"

"तब पैसे दीजिए।"

"पैसे क्यों दें?"

"आपके कहने से दूध चढ़ाया था।"

"हमारे कहने से पुण्य ही तो किया? हर्ज क्या है?"

"परन्तु आपके नाम का चढ़ाया गया था।"

"अपने नाम का तुमने क्यों नहीं चढ़ाया? क्या तुम हिन्दू नहीं हो?"

"मैं ब्राह्मण हूँ।"

"यदि तुम चढ़ाओ तो पुण्य नहीं होगा?"

"होगा क्यों नहीं।"

"फिर पुण्य लूटो। पैसे क्या करोगे? क्या पैसे पुण्य से भी बढ़ कर हैं?"

हम चल दिए और वह घबरा कर पीछे दौड़ा, बोला—महाराज, पुण्य आप लीजिए, मुझे तो पैसे दीजिए।

"क्यों, क्या पुण्य से तुम्हारा पेट भर गया है?"

हम और आगे बढ़ गए, तब उसने रास्ता रोका। अन्त में पुलिसमैन को बुला कर हमने उसका विरोध किया।

आप कहेंगे, चार पैसे के लिए ग़रीब को ठग लिया। पर ये जो पीढ़ियों से चार-चार पैसे ठगते चले आ रहे हैं, इसका क्या जवाब है?

प्रयाग में जाइए—काशी, अयोध्या—जी चाहे जहाँ जाइए। उत्तर-दक्षिण में जहाँ भी तीर्थ हैं, धर्म-व्यवसाइयों को अतिशय दुष्ट, निर्लज्ज, बेईमान, धूर्त, पाखण्डी और गुण्डे पावेंगे।



श्री० सय्यद मुनौवर, बी० ए०

आप बम्बई प्रान्तीय कौन्सिल के सदस्य हैं। सामाजिक सेवा-संघ की ओर से मुक्त क़ैदियों की शिकायतों की जाँच करने के लिए जो कमिटी बनी है, आप उसके सदस्य नियुक्त किए गए हैं।

यदि आपने काशी और गया के पण्डों की गुण्डा-गिरी देखी है, तो आप समझ जाइए।

तमाम भारतवर्ष में मिला कर १,२०० से ऊपर प्रसिद्ध तीर्थ हैं, जिनमें अनगिनत मन्दिर और बेशुमार देवता बैठे-बैठे यात्रियों की प्रतीक्षा करते रहते हैं। इन तीर्थों में प्रति वर्ष लगभग ५ करोड़ यात्री पहुँचते हैं और डेढ़ अरब से ऊपर धन जनता का इस मध्ये ख़र्च होता है। जिसमें से ६० करोड़ के लगभग मन्दिरों, महन्तों और पुजारियों के पेट में जाता है!

इनमें बहुत से पुजारी और महन्त राजा की तरह वैभव से रहते हैं। उनके हाथी-घोड़े, महल, ठाठ-बाट सब हैं। बहुतों को राजा के अधिकार तक मिले हुए हैं। इनकी आमदनी अबाध है। ये सोलह आने उस धन के स्वामी हैं, जो देवता को चढ़ाया जाता है। ये लोग बहुधा वेश्यागामी, पर-स्त्रीगामी, लुच्चे-पाखण्डी और कुपद हैं। दक्षिण के मन्दिरों में देवदासियों की घटना जिसने सुनी है, वह इस बात पर बिना अफ़सोस किए नहीं रह सकता कि धर्म के नाम पर व्यभिचार का समर्थन कितना गर्हित है! और भी बहुतेरे मन्दिर और सम्प्रदाय व्यभिचार की प्रवृत्ति को प्रश्रय देते हैं। वाम-मार्ग और चार्वाक सम्प्रदाय के सिद्धान्त जगत-व्यापक हैं। वल्लभ-सम्प्रदाय का बहुत सा भण्डाफोड़ स्वामी ब्लाकटानन्द और बम्बई में चलाए हुए महाराज लाइ-बिल केस में बहुत-कुछ हो गया है।

वल्लभ सम्प्रदाय में शिष्य को यह उचित है कि अपनी प्रत्येक भोग्य वस्तु को गुरु के समर्पण करे। इस सम्प्रदाय के ९ भाव प्रसिद्ध हैं। सुनिए, कैसे मज़ेदार हैं:—

१—सब तरह केवल गुरु का आसरा पकड़ना।

२—श्रीगुरु की भक्ति से ही मुक्ति मिल सकती है।

३—लोक-लाज तथा वेद-शास्त्र की आज्ञा तज, गुरु की शरण आना।

४—देव और गुरु के सम्मुख नम्र रहना।

५—मैं पुरुष नहीं हूँ, किन्तु वृन्दावन की गोपी हूँ, यह समझना।

६—गुसाईं जी के गुण गाना।

७—गुसाईं जी के नाम का महत्व बढ़ाना।

८—गुसाईं जी जो कहें या करें, उसी पर विश्वास करना।

९—वैष्णवों का समागम और सेवा करना।

इन नौ नियमों में जो गुप्त भेद हैं, वह तो विचार-शील पाठक समझ सकते हैं। पर दिमाग़ को ग़ुलाम करने के लिए इस सम्प्रदाय की पुस्तकों में और भी विचित्र बातें लिखी गई हैं। जैसे—

"तन, मन, धन गुरु जी के अर्पण!"

"जो कोई गुरु और भगवान में भेद रक्खे, वह पक्षी बने !"

"जो गुरु की बात ज़ाहिर करे, वह तीन जन्म तक कुत्ता बने !"

पाठक सोचें कि उपरोक्त नियम स्त्री-शिष्याओं के लिए कैसे भयानक हैं !!

व्यभिचार के समर्थन में सुनिए, क्या लिखा है :—

"........इसलिए ईश्वर और गुरु की सेवा अवश्य करनी चाहिए।.........पराई वस्तु भोगने का दोष तो सृष्टि को लगता है। ईश्वर के लिए तो कुछ पराया है ही नहीं। इसलिए व्यभिचार का दोष ईश्वर ने सृष्टि को ही दिया है। अज्ञानी (?) कहते हैं कि कोई पुत्र-पुत्री पिता से कहे कि मैं तुम्हारी स्त्री हूँ, इसमें कितनी अनीति है। इसलिए ईश्वर के साथ जार-भाव की प्रीति रखने वाले भी अधर्मी हैं। इसमें यह बात सोचने के योग्य है कि गोपियों ने जो कृष्ण के साथ जार-भाव की प्रीति की थी, तो क्या उन्होंने अधर्माचरण किया था ?........."

इस सम्प्रदाय की और भी गन्दी आज्ञा का नमूना सुनिए :—

"श्री० स्वामी जी ने अपने शरीर से करोड़ों सखी प्रकट कीं, जिनके नाम ललिता, विशाखा आदि हुए। जो सुन्दर जार-कर्म में अत्यन्त चतुर थीं, उन्हें ललिता कहते थे और जो उलटे आसन (!!!) से जार-कर्म कराने में चतुर थीं, उन्हें विशाखा.........!!!"

एक बार 'भारत-सुदशा-प्रवर्तक' नामक मासिक पत्र में स्वामी ब्लाकटानन्द ने एक पत्र-व्यवहार छपाया था। पाठकों के ज्ञानार्थ उसका मनोरञ्जक उद्धरण हम यहाँ देते हैं:—

"जानना चाहिए कि वल्लभ-सम्प्रदाय के महापुरुषों ने भारतवर्ष के देशोद्धार का एक महामन्त्र निर्धारण किया था। हमारे पूज्यपाद गुरुवरों ने उस मन्त्र का जप सिखाया था और हज़ारों पुरुष ही नहीं, बल्कि इस देश की स्त्रियाँ भी दीक्षित बनाई थीं। उस पवित्र मन्त्र में जो अद्भुत शक्ति थी, उससे लाखों कुलाङ्गनाओं का उद्धार होता था और हो रहा है। मन्त्र का शुद्ध पाठ इस प्रकार है—'तन-मन-धन श्रीगोसाईं जी के अर्पण !' मुझे भी गुरु-भक्ति के अनुरोध से अपने गोलोकवासी स्वामियों की महिमा प्रकाश करने का उत्तेजन हुआ और मेरी वह भक्ति इतनी दृढ़ होती गई कि मैंने तीन पुस्तकें तैयार कीं—(१) वल्लभ-कुल-चरित्र दर्पण (२) वल्लभ-कुल-दम्भ दर्पण, और (३) वल्लभ-कुल छल-कपट दर्पण नाटक। इनका गोला उड़ने से 'कान फूकागढ़' में आग लग गई और गद्दी पर श्री १९० गोवर्धनलाल जी महाराज ने अपने भण्डारी को भेजा। उसने यहाँ आकर एक चिट्ठी हमारे पास अपने नौकर के हाथ भेजी, जिसका



कुमारी लक्ष्मी

आप बङ्गलोर के "सूर्य फ़िल्म कम्पनी" की सर्व-श्रेष्ठ एक्ट्रेस हैं।

अविकल उद्धरण यहाँ प्रकाशित करते हैं। (सही) ब्लाकटानन्द।"

"स्वस्ति श्री सर्वोपमा स्वामी ब्लाकटानन्द जी जोग लिखी इलाहाबाद से भण्डारी हरविलास राय का भागवत स्मरण बाँचना। आगे मैं यहाँ ख़ास तुम्हारे साथ मिलने के लिए आया हूँ और यहाँ पर गोवर्धननाथ के मन्दिर में उतरा हूँ। श्रीटिकैत १०८ श्री० गोवर्धनलाल जी महाराज ने मुझे भेजा है कि तुमने ये जो तीनों

पुस्तकें छापी हैं—(१) वल्लभ-कुल-चरित्र दर्पण (२) वल्लभ-कुल-दम्भ-दर्पण, (३) वल्लभ-कुल छल-कपट-दर्पण—सो इन कुल बातों का गुप्त-भेद हमारे महाराज और अन्य स्वरूपों का तुम्हें किसने बताया? धर्म से कहो, क्योंकि तुम हमारे मित्र हो। यदि फ़र्ज़ कर लिया जाय कि ये बातें सच्ची भी हैं, तो भी ये गुरु के घर की बातें तुम्हें लिखनी उचित नहीं थी। ख़ैर, आदमी से भूल हो जाती है, अब आप कृपा करके उन लोगों का



लाला बाबूराम जी

आप हल्द्वानी (यू० पी०) के सुप्रसिद्ध रईस हैं, जिन्होंने हाल ही में एक अङ्गरेजी स्कूल खोला है और उसके सञ्चालन की आर्थिक जिम्मेदारी भी ग्रहण की है।

नाम लिखो, जिन्होंने इस गुप्त चरित्र का भेद दिया है और अब यह भी लिखो कि आपकी मन्शा क्या है। हम सब तरह तैयार हैं। हमारे महाराज की यही आज्ञा है। मिती मगशिर, सुदी ४।१९६४।

द० भण्डारी हरविलास"

"भण्डारी जी ने जिस काम की प्रेरणा की है, उसमें हमारी सम्मति है।

द० मथुराप्रसाद पुजारी"

इस पत्र का रजिस्टर्ड उत्तर ता० १७।१२।०७ ई० को श्री १०८ महाराजाधिराज श्री० गोस्वामी जी को दिया गया, जिसका आशय यह था:—

"आप तथा वल्लभ-कुल के समस्त भूषण-स्वरूप नीचे लिखी चार बातों को मानने की प्रतिज्ञा करो, तो मैं अपनी बनाई समस्त पुस्तकों को मिट्टी का तेल डाल कर भस्म कर दूँ अथवा आप स्वयं जिस रीति से चाहो उसी रीति से अपने सामने उन्हें जला दो। आपके लाखों चेले भारत में हैं। वे भले ही इन बातों को धर्म समझते हों, परन्तु न्याय-दृष्टि से ये बातें सर्व-साधारण के विरुद्ध हैं।

(१) चेलियों को पुत्री समान समझो......धर्म-व्यवहार रक्खो।

(२) विवाह में वेश्या का नाच बन्द कराओ—क्योंकि यह नीच कर्म शूद्रों ने निकाला है। यह कर्म गोवध की सहायता करता है।

(३) स्त्री-पुरुषों को मर्यादा में रक्खो। अर्थात् एक-दूसरे के हाथ का छुआ न खाय। परस्पर सहभोज बन्द कराना चाहिए।

(४) शिष्य तथा सेवकों को जूठा भोजन देना वाम-मार्ग का अनुकरण है, जो वैष्णव धर्म के सर्वथा विरुद्ध है............।"

इस पत्र-व्यवहार से पाठक बहुत-कुछ समझ गए होंगे। इस सम्प्रदाय के बम्बई के मन्दिर के गुसाईं जी के सम्बन्ध में एक बार बम्बई के पत्र 'टाइम्स' ने लिखा था कि—

"महाराजों की करतूत निन्द्य है और इसीलिए वे प्रकाश्य में नहीं आते। यदि कोर्ट में साक्षी देने को खड़े हों, तो उनके नीच कर्म के लिए पब्लिक की फटकार बिना पड़े न रहे। और इससे उनकी अज्ञानी शिष्य मण्डली में कमी हो जाय......।"

'आप अख़्तियार' नाम का एक अख़बार लिखता है:—

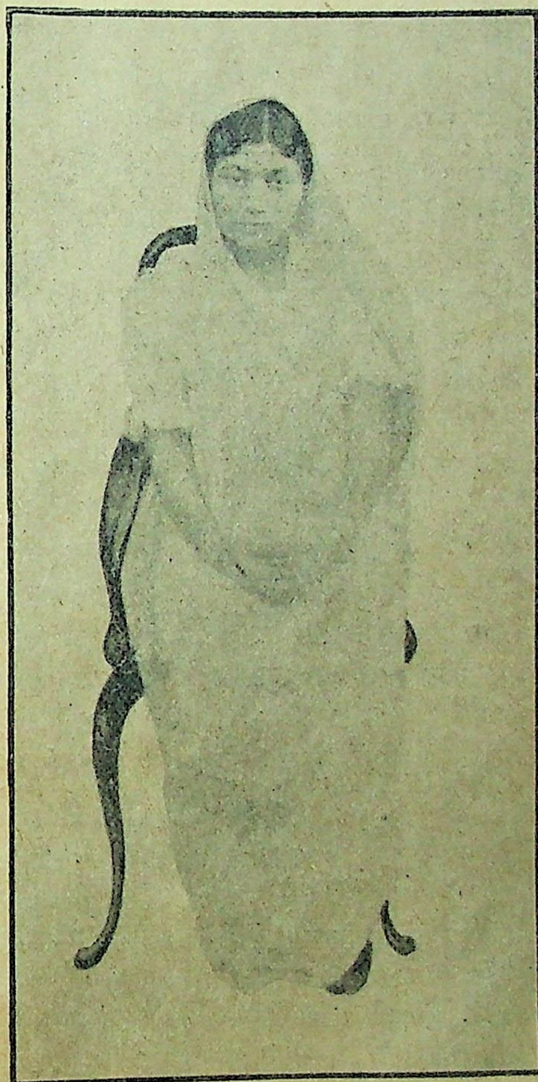
"हिन्दुओं के महाराज का मन्दिर एक छिनालख़ाना, उनकी बैठक एक बेआबरू कुटनी का घर, उनकी दृष्टि वेश्यागमन, उनका अङ्ग नीच हविस का घर, और उनके शरीर का सब ठाठ-बाट अपवित्रता, मैलापन और नीचता-युक्त है। उन्हें ईश्वरावतार की जगह राक्षस का अवतार कहना चाहिए।"

लोगों में मूर्खता यहाँ तक फैल गई है, कि बहुत लोग तीर्थों में अपनी स्त्रियों तक को दान कर देते हैं और फिर कुछ रुपयों में मोल ले लेते हैं। यह बात स्त्रियों के लिए, तो घोर अपमान की है ही, साथ ही इस मूर्खता का कभी-कभी मज़ेदार परिणाम भी निकलता है। पण्डे दान की हुई स्त्री को वापस देने से इन्कार कर देते हैं और बड़ा फ़ज़ीता होता है।

जिस देश में ४० वर्ष के भीतर १७ अकाल पड़ें और उसमें डेढ़ करोड़ आदमी भूख से तड़प-तड़प कर मर जायँ। जिस देश में प्रति वर्ष १० लाख, प्रति मास ८६ हज़ार, प्रति दिन २,८८०, प्रति घण्टे १२० और प्रति मिनिट २ मनुष्य 'हाय अन्न ! हाय अन्न !!' करते मर रहे हों; जहाँ ५० लाख भिखारी टुकड़ा माँगते फिरें; जहाँ १० करोड़ किसान एक पेट खाएँ; जहाँ ये मुस्टण्डे धर्म-व्यवसायी, जिनसे देश को कुछ भी लाभ नहीं हो रहा है, प्रजा की गाढ़ी कमाई का ६० करोड़ रुपया प्रति वर्ष खा जायँ, जिनका सिर्फ़ सूद ही १० वर्ष में पहाड़ के समान हो जाता है। क्या देश इस पर विचार न करेगा ?

उदयपुर रियासत में नाथद्वारा एक स्थान है। वहाँ आप जाइए। देख कर अक़्ल हैरान हो जायगी। उस ऊबड़ और बीहड़ प्रान्त में कोई वस्तु दुष्प्राप्य नहीं। एक से एक बढ़िया खाद्य द्रव्य वहाँ आपको प्रस्तुत मिलते हैं। वह सब श्रीठाकुर जी की भोग के बदौलत। चार पैसे में ऐसा दूध लीजिए, जैसी रबड़ी—केसर, कस्तूरी, मेवा मिला हुआ। वहाँ केसर-कस्तूरी चक्कियों में पिसती है। गुजरात और दक्षिण के भक्तजन टूट पड़ते हैं। स्त्रियों की भक्ति की क्या कही जाय ! ठाकुर जी के भोग की कथा सुनिएगा ? एक बार किसी राजा ने एक बहुमूल्य मोती मूर्ति पर चढ़ाया—उसे पीस कर उसका चूना बना कर ठाकुर जी को भोग लगा दिया गया। सवा लाख रुपयों का भोग लगना साधारण है। बीस मन दूध का भोग लगता है, फिर यह सब अनावश्यक खाद्य पदार्थ पण्डे लोग बाज़ार में बेचते हैं और इस प्रकार यहाँ सदैव ही 'टके सेर भाजी टके सेर खाजा' का मामला बना रहता है। यहाँ पुजारी जी को अपनी राज्यसत्ता प्राप्त है।

काशी के और गया के पण्डों और पुरोहितों का क्या कहना है ? करोड़ों की सम्पदा के वे स्वामी बने हुए हैं। जगद्गुरु शङ्कराचार्य की सम्पत्ति भी असाधारण है ! हरद्वार, ऋषिकेश में भी लाखों के स्वामी अनेक धर्म-व्यवसायी हैं। ग़रज़ भारत का कोई कोना ऐसा नहीं बचा, जो इन धर्म-व्यवसायियों से ख़ाली हो !!



श्रीमती सीतादेवी

आप 'महिला-सुधार' (कानपुर) की सम्पादिका हैं, जो राष्ट्र-सेवा के कारण १ साल की सज़ा भोग कर हाल लखनऊ जेल से छूटी हैं।

मैं एक बहुत साधारण उदाहरण आपके सामने रखना चाहता हूँ। यहाँ नई दिल्ली में, जहाँ मैं रहता हूँ, नई दिल्ली आबाद होने से प्रथम एक रद्दी-सा पुराना

हनुमान जी का मन्दिर था। नई दिल्ली की बस्ती होते ही इसकी तक़दीर चेत गई। गर्मियों में तो साधारण ही दशा रहती है, मगर सर्दियों में ज्योंही शिमला उतर आता है, मङ्गलवार को हज़ारों आदमियों का ठठ लग जाता है। मारे मिठाइयों के ढेर लग जाता है। इनमें बड़े-बड़े पढ़े-लिखे ऊँचे दर्जे के ऑफ़ीसर लोग ही रहते हैं। स्त्रियों का दल-बल सब से अधिक रहता है। यह अभी प्रारम्भ है। मैं समझता हूँ कि अति शीघ्र वह दिन आएगा, जब यह मन्दिर एक बड़ी भारी जागीर बन जाएगा। मैंने इसके पुजारी को भी देखा है, जो अति साधारण आदमी है।

यह डेढ़ अरब धन का प्रति वर्ष अपव्यय देश के लिए कितना घातक है और इसके सदुपयोग की कितनी आवश्यकता है, यह विचारना चाहिए। आर्य-समाज ने गुरुकुलों को खोल और उनके वार्षिकोत्सवों को धार्मिक मेले का रूप देकर हमारे सामने एक नई स्कीम रक्खी है। आज भारत के लगभग ७० लाख विद्यार्थियों को जो इस समय स्कूल, कॉलेजों में पढ़ते हैं, नई-नई विद्या सीखने के लिए इन डेढ़ अरब रुपयों का सच्चा सद्व्यय हो सकता है। स्कूलों और कॉलेजों में बच्चे किस महँगे ढङ्ग पर पढ़ते हैं और ग़रीब बच्चों का पढ़ना कितना कठिन है। क्या किसी मन्दिर के पुजारी या महन्त ने कभी किसी होनहार युवक को स्कॉलरशिप देकर किसी उच्च श्रेणी की शिक्षा प्राप्त करने में सहायता दी है?

हम यह मानते हैं कि कुछ महन्तों ने कुछ धर्मार्थ संस्थाएँ खोल रक्खी हैं। जैसे बाबा काली कमलीवाले के औषधालय और क्षेत्र। इसी प्रकार और अनेक मन्दिरों में पाठशाला आदि हैं। पर वास्तव में ये सब सेवाएँ नगण्य हैं। बहुत करके तो धोखे की टट्टी हैं, इन्हीं जालों पर कबूतर चुगते हैं और मुर्ग़ियाँ फँसती हैं।

जिन्होंने कलकत्ते के मारवाड़ियों का धर्म-अड्डा गोविन्द भवन का हाल सुना है, वे समझ सकते हैं कि इन धर्म-व्यवसायियों के जो भेद न खुलें, वही अच्छे हैं।

हम ऐसे महन्तों को जानते हैं, जो यहाँ, दिल्ली से लड़कियाँ ख़रीद कर ले जाते हैं और उन्हें रखेली बनाते हैं। वेश्यागमन तो उनकी प्रसिद्ध बातें हैं। हम ऐसे महन्तों को भी जानते हैं, जिनकी २-२ धर्म-रखेलियाँ हैं।

क्या इन मन्दिरों, महन्तों, धर्म-व्यवसायियों से किसी को शरीर या आत्मा को लाभ होना सम्भव है? आपके घर बैठ कर एक आदमी पूजा-पाठ, जप कर जाय और आप उसकी मज़दूरी दे दें, तो क्या उसका पुण्य आपको मिल जायगा? एक तो यही बात घोर सन्देहास्पद है कि ऐसे पूजा-पाठों में कुछ पुण्य है या नहीं। फिर भी हो तो वह करने वाले को मिलेगा या कुछ पैसे देकर आपको? क्या आपने काशी के दशाश्वमेध पर गोदान नहीं देखा, कि किस भाँति उसी ब्राह्मण की बछिया की पूँछ को छू-छूकर उसी को पैसा देने से लोग गोदान का पुण्य लूट लेते हैं, धर्म और भगवान को इस प्रकार ठगना वास्तव में आश्चर्य का विषय है—नीच कर्म भी है।

एक समय था कि ईसाई लोग पादरियों के पाप क्षमा कराते और स्वर्ग के लिए हुण्डी भेजा करते थे। भारतवर्ष में भी मरे हुए इष्ट-मित्रों को आश्विन में खाना पहुँचाया जाता है, पर हम यह पूछते हैं कि नव्य भारत में भी क्या ये ढकोसले जीवित रहने चाहिए? इनका नाश न होना चाहिए?

हम कहते हैं कि इन धर्म-व्यवसायियों का बिना नाश किए हिन्दू बच्चों की दिमाग़ी ग़ुलामी कभी दूर नहीं होगी। श्रद्धा और भक्ति एक बड़ी चीज़ ज़रूर है, परन्तु उसमें विवेक और विचार-स्वातन्त्र्य होना परमावश्यक है, अन्ध-विश्वास और मूढ़ता के कारण आत्मा के विरुद्ध केवल दिमाग़ी ग़ुलामी से बचने के लिए आवश्यक है। हम धर्म के पुराने ढकोसलों को दृढ़तापूर्वक नष्ट कर दें। धर्म, गङ्गा में फूल और दूध चढ़ाना नहीं, महन्तों और गुसाइयों की सेवा करना नहीं, घण्टा-घड़ियाल हिलाना नहीं, घण्टों मूढ़ की भाँति आँख बन्द करके बैठना भी नहीं।

धर्म है—दया, विश्वप्रेम, लोकहित और आत्म-बलिदान।*

---

* "तब, अब, क्यों और फिर ??" नामक अप्रकाशित ग्रन्थ से, जो शीघ्र ही इस संस्था द्वारा प्रकाशित होने वाला है।



महात्मा गाँधी के प्रति—

[श्री० आनन्दीप्रसाद जी श्रीवास्तव]

(१)

नवयुग-नाटक-सूत्रधार तुम,
शान्त क्रान्ति के पूज्य-पिता,
तुम में वज्रों की दृढ़ता है
और कुसुम की कोमलता !

(२)

छोटे से तन के भीतर है
छिपा क्षीर-सागर सा मन !
नेता भी हो, परमहंस भी,
वह हँसमुख मोहक आनन !

(३)

सब से बड़े परन्तु बन्धु हो—
तुम सब से छोटे जन के,
मृगपति पावनता-कानन के,
आश्वासन गिरते मन के।

(४)

परहित जीवी, अपनेपन के
रूप, जगत जीवन की आन,
भारत-गत-वैभव प्रमाण गुरु
इस युग के आदर्श प्रधान।

(५)

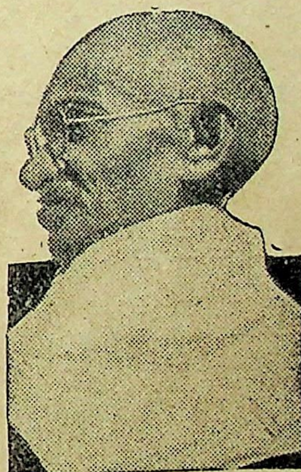
विदेशियों की चरम मुग्धता,
गर्व-नम्रता के अभिमान,
सरस्वती के सर्व-श्रेष्ठ तुम—
सुवन, वचन पटुता रसखान !

(६)

त्याग-मूर्ति, अनुराग-मूर्ति, तुम,
नीति-निपुणता सरल सुजान,
सब धन त्यागी, धनिक श्रेष्ठ तुम
भारत भावी-भाग्य विधान।

(७)

दुख सहने को, सुख देने को
हुआ तुम्हारा है अवतार,



महात्मा गाँधी

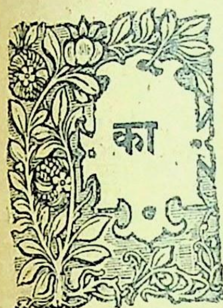
जग-सेवक बन, जन-सेवित हो
भार-हरण लेकर गुरु भार !

(८)

दोषपूर्ण भी पास तुम्हारे
आकर हो जाता निर्दोष,
तुम्हें चरम-गौरव कह कर भी
होता नहीं हमें सन्तोष।

कान्यकुब्जों की संगठन-समस्या और उनकी संस्थाएँ

[पं० देवीदत्त जी मिश्र, बी० ए०, एल्-एल्० बी०]



कान्यकुब्जता एक ख़ास प्रकार का संशोधित ब्राह्मणत्व है। वे संशोधन, जो ब्राह्मणत्व को कान्यकुब्जता का रूप प्रदान किए हुए हैं, कुछ खान-पान, रीति-रस्म और बीघा-बिस्वा सम्बन्धी नियम हैं। इन्हीं नियमों का नाम कान्यकुब्जता है। इन नियमों के निकाल डालने पर शेष केवल व्यापक ब्राह्मणत्व रह जाता है।

कान्यकुब्जता के इन खान-पान, रीति-रस्म और बीघा-बिस्वा सम्बन्धी नियमों को विचारपूर्वक देखने से मालूम होता है कि कान्यकुब्जता ब्राह्मणत्व के अन्तर्गत अन्य संशोधित स्वरूपों की तरह नहीं है। कान्यकुब्जता का सञ्चालन-कार्य 'संस्था के मुक़ाबले संस्था' की नीति से नहीं होता। वह अन्य ब्राह्मण-संस्थाओं के मुक़ाबले में एक इकाई होकर नहीं उपस्थित होती। यही कारण है कि उन साम्प्रदायिक मामलों में कान्यकुब्ज सम्प्रदाय बहुत कम नज़र आता है, जहाँ प्रत्येक सम्प्रदाय इकाई होकर अपना दावा पेश करते हैं और जहाँ किसी इकाई की सफलता-विफलता तमाम इकाइयों की दृढ़ता और कमज़ोरी की प्रतियोगिता पर निर्भर करती है। बात यह है, कान्यकुब्जता स्वयं ही अगणित व्यक्ति-सम्प्रदायों का एक बड़ा परन्तु ढीला सम्प्रदाय है, जिसकी मूल-शक्ति बड़े सम्प्रदाय में न रह कर उसके व्यक्ति-सम्प्रदायों में निवास करती है। इसी से उसका युद्धक्षेत्र कान्यकुब्ज जाति की सीमा तक ही विशेषकर परिमित है।

कान्यकुब्ज-सम्प्रदाय और अन्य प्रकार के सम्प्रदायों में मौलिक भेद है। साधारणतया दूसरे सम्प्रदाय अपना साम्प्रदायिक बल उस सम्प्रदाय के व्यक्तियों का बल बटोर कर प्राप्त करते हैं। उसके अलग-अलग व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को उस सम्प्रदाय के कुछ निश्चित उसूलों पर समर्पण कर देते हैं। इन आत्म-समर्पणों का ही संग्रह उनका साम्प्रदायिक बल होता है। लेकिन कान्यकुब्ज सम्प्रदाय का हाल इसके विपरीत है। उसमें सम्प्रदाय का कोई बल ही नहीं है। उसमें व्यक्ति अपने व्यक्तित्वों का समर्पण नहीं करते। व्यक्ति का व्यक्तित्व वहाँ अक्षुण्ण बना रहता है। व्यक्तित्व का समर्पण उस सम्प्रदाय के उसूल के ख़िलाफ़ है। परिणाम-स्वरूप व्यक्तित्व की यह स्वाधीनता सम्प्रदाय के प्रत्येक व्यक्ति को कट्टर होने का अवसर प्रदान करती है, और अगर यह कहा जाय कि कान्यकुब्ज-सम्प्रदाय इन वैयक्तिक कट्टरताओं की व्यायाम-शाला है, तो अत्युक्ति न होगी। जहाँ समाज के अन्दर ही आपस में सबको कट्टर से कट्टर बनने और अपना व्यक्तित्व बढ़ाने का अवसर दिया जाता है। इसलिए इस सम्प्रदाय का बल इसके अलग-अलग व्यक्ति हैं, जो कभी मिलते नहीं। इस व्यायामशाला के नियम उन्हें मिलने नहीं देते। इसका एक कारण हो सकता है। शायद मिलने न देने का नियम इसलिए हो कि वैसा करने से व्यक्तित्व का ह्रास होने लगेगा और समाज के व्यक्ति आत्म-निर्भरता से विमुख हो, समाज के काल्पनिक बल के सहारे हो जायँगे। शायद इसलिए भी कि साम्प्रदायिक बल कोई विश्वसनीय बल नहीं है, उसमें क्षीणता आना अनिवार्य है, और जिस क्षीणता का असर व्यक्तियों पर भी पड़े बिना नहीं रह सकता। जो हो, कान्यकुब्ज सम्प्रदाय का बल उसका सामूहिक बल नहीं है, उसके व्यक्तियों के आत्म-समर्पणों का संग्रह नहीं है, बल्कि उसके व्यक्तियों का अलग-अलग बल है। वह है प्रत्येक व्यक्ति का अपना-अपना व्यक्तित्व और अपनी-अपनी कट्टरता, बीघा-बिस्वा की अपनी-अपनी श्रेणी और अपना-अपना निवास-स्थान। निस्सन्देह इस बल से कान्यकुब्जों को सांसारिक जीवन के उपयोगी कुछ गुण भी प्राप्त हुए हैं। जैसे आत्म-निर्भरता, आत्माभिमान और ऊँचा होकर रहने का भाव।

कान्यकुब्जता की इस विशेषता अर्थात् व्यक्तियों के बिस्वा-बीघा आँक के छोटे-छोटे अनेक दायरों में बन्द

होने के कारण कान्यकुब्जों में कोई जातीयता नहीं है। एक कान्यकुब्ज किसी दूसरे कान्यकुब्ज के सहारे उन्नति करता हुआ प्रायः बहुत कम देखा गया है। एक-दूसरे का सहारा कान्यकुब्जीय संस्कार के विपरीत है। कान्यकुब्ज-समाज प्रतिद्वन्दिता का क्रीड़ाक्षेत्र है। जहाँ प्रतिद्वन्दिता की मात्रा ढीली हो, वहाँ समझना चाहिए कि कान्यकुब्जता ढीली है। कान्यकुब्ज अज्ञात स्थानों में भी अपना स्थान बना लेता है, लेकिन जाने हुए स्थान में, जहाँ कान्यकुब्ज हैं, जगह करना मुश्किल होगा।



श्री० परमानन्द विद्यार्थी

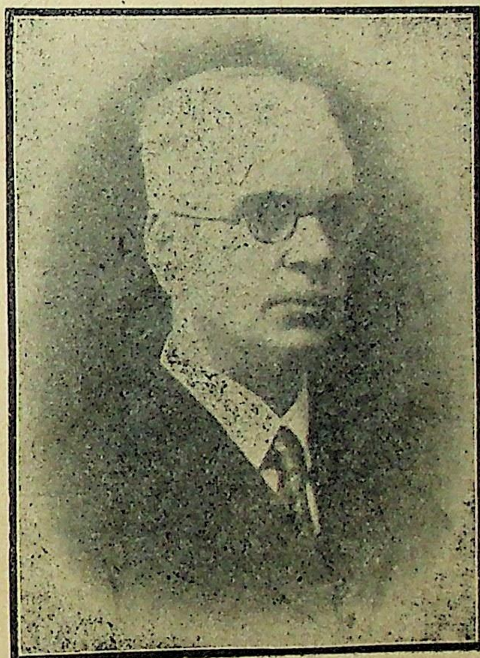
आप मेरठ से प्रकाशित होने वाले "दि स्काउट ब्रदर" के सम्पादक हैं, जिन्हें बालचर सङ्गठन और उसकी सेवा के उपलक्ष में एक पदक प्रदान किया गया है।

कान्यकुब्ज का अनुयायी कान्यकुब्ज बहुत कम होता है, उसके अनुयायी दूसरे अधिक से अधिक संख्या में मिलेंगे। कान्यकुब्ज यह बात जानता है और इसलिए उसे अपनी बात जमाने के लिए अपने समाज के बाहर की वस्तुओं का उपयोग करना पड़ता है। इन कारणों से कान्यकुब्जों में एक गुण भी उत्पन्न हुआ है। वह है आश्रित वृत्ति से विद्रोह। दीन से दीन कान्यकुब्ज बड़े से बड़े कान्यकुब्ज की प्रतिस्पर्धा करता है। प्रायः इस समाज के व्यक्तियों को संसार-सागर में अपना शिकार अपने आप ग़ोता लगा कर ढूँढ़ना पड़ता है। यह एक कारण है कि इस जाति के लोग दूर-दूर प्रान्तों में भी पाए जाते हैं।

अब प्रश्न उठता है कि क्या कान्यकुब्जों में बीघा-बिस्वा, खान-पान, आँक, घर आदि नियमों के रहते हुए और तदनुसार व्यक्ति-व्यक्ति को बिलकुल अलग-अलग रखने की कड़ी व्यवस्था करते हुए कभी यह सम्भव है कि कान्यकुब्ज सङ्गठित हो सकें? मेरा विचार है कि उपस्थित परिस्थितियों में कान्यकुब्जों का सङ्गठन कदापि नहीं हो सकता। सिर्फ़ कान्यकुब्जता का नाता ऐसा नहीं है, जिसको आधार बना कर सब कान्यकुब्ज सङ्गठित हो सकें। कारण, कान्यकुब्जता और सङ्गठन (जैसा सङ्गठन कि सोचा जा रहा है) बिलकुल विपरीत वस्तुएँ हैं। कान्यकुब्जता का अर्थ ही पृथक्करण है और यह पृथक्करण ही उसका एक प्रकार का सङ्गठन है। इस सङ्गठन के अतिरिक्त और किसी प्रकार का सङ्गठन सोचने की बात प्रचलित कान्यकुब्जता के सङ्गठन की बात न होकर, कान्यकुब्जता के काया-पलट की बात होगी। दूसरा कोई ऐसा नाता या आधार कान्यकुब्जों में नज़र नहीं आता, जिसको वे अपने सङ्गठन की सञ्चालक-शक्ति बना सकें। सङ्गठन उन्हीं परमाणुओं या व्यक्तियों का होता है, जिनमें परस्पर तमाम भिन्नताओं के होते हुए भी किसी न किसी प्रकार का, किसी एक वस्तु के लिए, सार्वजनिक आकर्षण होता है। कान्यकुब्जों में ऐसे जातीय आकर्षण उत्पन्न होने के द्वार चारों ओर से बन्द हैं। कान्यकुब्जों का कान्यकुब्जता के नाते ऐसा कौन सा आदर्श ही है, जिसके प्रचार या जिसकी पुष्टि के लिए उनके सङ्गठन की ज़रूरत है? हम तो समझते हैं कि तमाम प्रकार के भेद रहते हुए सब कान्यकुब्ज कहलाते हैं, इससे बढ़ कर और कान्यकुब्जों का सङ्गठन ही क्या हो सकता है? इस नाम से सिर्फ़ कहलाने के आगे उनका कोई सङ्गठन नहीं हो सकता। इससे आगे के लिए किया जाने वाला प्रयत्न कान्यकुब्जों का सङ्गठन करने वाला नहीं, बल्कि कान्यकुब्जता को विश्रृङ्खल करने वाला सिद्ध होगा। कान्यकुब्जता की मौजूदा रचना में जितने सङ्गठित और जिस ढङ्ग के सङ्गठित कान्यकुब्ज हैं, इससे अधिक की आशा नहीं। अन्य समाजों या आधुनिक ढङ्ग की पार्टियों के

ढङ्ग के सङ्गठनों को देख कर जो इसका भी सङ्गठन सोचा करते हैं, वे कान्यकुब्ज-समाज के मौलिक तत्वों और दूसरे समाजों के तत्वों का भेद नहीं देखते। जिस समाज का ध्येय ही व्यक्तियों का विविध भाँति का पृथक्करण है, उसका इस पृथक्करण वाले सङ्गठन के अतिरिक्त और कौन सा सङ्गठन हो सकता है। उस समाज का श्रेणी-विभाजन ही उसका सङ्गठन है। लोग इस मर्म को न समझ कर बहुधा कहा करते हैं कि दूसरी जातियाँ सङ्गठित हो चुकीं, सङ्गठन का युग है, कान्यकुब्जों का भी सङ्गठन होना चाहिए। कहना न होगा कि ये सङ्गठन सोचने वाले कान्यकुब्जता की मर्यादाओं में किसी तरह की बिना कमी किए यह सङ्गठन सोचते हैं। लेकिन मेरे विचार से जैसा सङ्गठन ये लोग सोचते हैं, वैसा कान्यकुब्जता के नियमों में एक भारी परिवर्तन किए बिना नहीं हो सकता। यह परिवर्तन कान्यकुब्जता के मौलिक तत्वों पर ही आक्रमण होगा और जिसके लिए शायद ये सङ्गठन-प्रेमी तैयार न हों। सङ्गठन और कान्यकुब्जता, जिसकी परिभाषा शुरू में की जा चुकी है, एक-दूसरे की विरोधी बातें हैं। सङ्गठन सोचने वाले दोनों बातें साथ-साथ नहीं कर सकते। यदि वे प्रचलित कान्यकुब्जता के मौलिक तत्वों और मर्यादा में हेर-फेर नहीं करना चाहते तो उन्हें जैसा सङ्गठन है, उसी से सन्तुष्ट रहना चाहिए। लेकिन अगर उनका सङ्गठन-प्रेम इन कान्यकुब्जी आधारों और मर्यादाओं के उस पार छलाँग मार चुका हो, तो वे अवश्य ही जातीयतायुक्त एक समाज बना सकते हैं, जिस समाज का नाम तो कान्यकुब्ज रहेगा, लेकिन उसके अन्दर की जो असंख्य घेरेबन्दियाँ हैं, वे टूट कर समतल बन जायँगी।

कान्यकुब्जता के नियमों को बिलकुल रक्षित रखते हुए कान्यकुब्जों के सङ्गठन के आज तक जितने प्रयत्न हुए हैं, सब निष्फल हुए हैं। इनसे बार-बार इसी सत्य की पुष्टि हुई है कि कान्यकुब्जों का सङ्गठन बिना उसकी काया-पलट के सम्भव नहीं है। कान्यकुब्ज ऐसी कोई संस्था नहीं स्थापित कर सके, जिसे वे वास्तव में संस्था कह सकें, जिससे कोई सामाजिक बिजली प्रकट होती हो और वह समाज भर के व्यक्तियों को शक्ति प्रदान करती हो! निस्सन्देह कान्यकुब्ज-समाज में उच्च व्यक्तियों की कमी नहीं है। जीवन के सभी विभागों में उसके बड़े से बड़े लोग देखे जा सकते हैं। लेकिन तारीफ़ यही है कि ये बड़े-बड़े लोग मिल नहीं सकते। कहने का तात्पर्य यह नहीं कि उनके बड़ेपन ही में कोई ऐसी कमी या दोष है, जिससे वे मिल न सकते हों। वे बड़े नेक, उदार और सार्वजनिक हो सकते हैं, लेकिन समाज उन्हें मिलने नहीं देता। राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय भावना उनमें हो सकती है और राष्ट्र और संसार के लिए वे उपयोगी भी सिद्ध होते हैं, लेकिन समाज उन्हें मिलने न देगा। यही है कान्यकुब्जता। कान्यकुब्जता के रङ्ग-मञ्च पर आते ही देश या समाज-सेवक बड़े से बड़ा कान्यकुब्ज, कान्यकुब्जता के मैदान में फैले हुए बीघा-बिस्वा के असंख्य परस्पर विरोधी मोर्चों में से एक में अपने आपको साश्चर्य खड़ा हुआ पाता है। वहाँ युद्ध करे या मैदान छोड़ कर बाहर साँस ले। जिन्हें खुली हवा पसन्द है, वे बाहर चले आते हैं और फिर कभी कनौजिया-मञ्च पर न आने की प्रतिज्ञा कर लेते हैं।

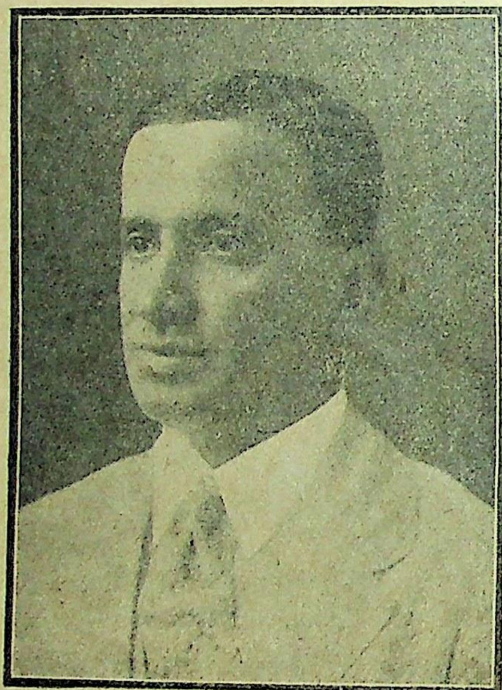


रेवरेण्ड डॉक्टर जे० एफ़० मेकफ़ाइडन

आप नागपुर-विश्वविद्यालय के वाइस चान्सलर हैं।

कान्यकुब्ज-सम्मेलनों, ब्याह-शादियों आदि में आए हुए कान्यकुब्ज आजकल के व्यवस्था और अधिकारहीन अभिमानी भारतीय नरेशों की तरह इकट्ठे होते हैं।

अपने-अपने आँक, बीघा-बिस्वा आदि की विवर्ण कलगियाँ और तलवारें लटकाए एक-दूसरे से ऐंठ की बाज़ी लगाते हैं। कोई अपने मुरादाबाद-नरेश होने की ऐंठ में हैं, तो कोई माँझगाँव, बैसवाड़ा या किसी खेड़ा-नरेश होने की ऐंठ में त्योरियाँ चढ़ाए बैठे हैं। जिसके पास जितने ही बिस्वा की फ़ौज है, उसकी उतनी ही अकड़ है। यह मनोवृत्ति इतनी व्यापक रहती है कि इन अनियन्त्रित नरेशों के ऐसे सम्मेलन (सभा, व्याह, पार्टी, बारात वग़ैरह, चाहे जिस सम्बन्ध में ये सम्मेलन हों)



श्री० प्रफुल्लनाथ टैगोर

आप कलकत्ते के नए शेरिफ़ हैं, जो हाल ही में सन् १९३१ के लिए निर्वाचित हुए हैं।

कम होते हैं, जिनमें ईंट-पत्थर न बरसते हों या अनबन न होती हो।

यह तो हुई कान्यकुब्जता और कान्यकुब्जों के सङ्गठन की बात। रहीं इनकी संस्थाएँ। इनमें से स्कूलों पर ही मैं अपने कुछ विचार प्रकट करना चाहता हूँ। इसके पहले मैं यह कह देना चाहता हूँ कि उन साम्प्रदायिक संस्थाओं का कोई महत्व नहीं, जो उस सम्प्रदाय भर के उत्साह को आकर्षित न कर सकें। और संस्थाएँ ऐसी तभी हो सकती हैं जब वे किसी ऐसे आदर्श को लेकर स्थापित हुई हों, जो उस सम्प्रदाय को ऊँचा उठाने वाला हो। सिर्फ़ सम्प्रदाय के नामकरण के लिए संस्थापित संस्थाएँ व्यर्थ और राष्ट्रीय दृष्टि से हानिकारक हैं। ऐसी संस्थाएँ राष्ट्रीय अर्थनीति के अनुसार अपव्यय-स्वरूप होने के अतिरिक्त सामाजिक माध्यम को नीचा करने वाली होती हैं। कान्यकुब्ज स्कूलों की गिनती ऐसी संस्थाओं में की जा सकती है। पता नहीं, वह कौन सा आदर्श है, जो इन कान्यकुब्ज स्कूलों के ही सहारे विद्यार्थियों में पहुँचाया जा सकता है। कान्यकुब्ज-स्कूल की हैसियत से कौन सी विशेष बात वे अपने पाठ्य विषय में विद्यार्थियों को पढ़ा देते हैं, यह समझ में नहीं आता। रहन-सहन और आचार-विचार में कौन सा आदर्श वे विद्यार्थियों के सामने रख सकते हैं, उसकी कल्पना सहज ही है। कान्यकुब्जीय रहन-सहन और आचार-विचार का पाठ देने के लिए तो कान्यकुब्जों के घर ही काफ़ी हैं। इतने के लिए स्कूलों की स्थापना व्यर्थ का अपव्यय है। अगर इन स्कूलों से यह हो सकता कि कान्यकुब्जों में ग़ैर पढ़े-लिखे कम से कम रह जायँ तो भी सार्थकता सिद्ध हो जाती। लेकिन वास्तविकता यह है कि जैसे दूसरे स्कूल बाज़ार की भाँति खुले हैं वैसे ही कान्यकुब्ज-स्कूल भी उस बाज़ार की दूकानों की संख्या बढ़ा रहे हैं। ज़रूरत संख्या बढ़ाने की उतनी नहीं है जितनी उन साधनों के उत्पन्न करने की, जिनसे जो लोग इस बाज़ार की महँगी से सौदा नहीं ख़रीद सकते, वे भी आकर किसी तरह उसे पा सकें। यह न करके केवल कान्यकुब्ज, क्षत्रिय और खत्री आदि तरह-तरह की नामधारी शिक्षा-संस्थाएँ खोलना सिवा सङ्कीर्ण मनोवृत्ति का परिचय देने तथा अपव्यय के और कुछ नहीं। अगर जितना धन इन अलग-अलग संस्थाओं में लगता है, वह इस तरह न लग कर समाज के उन विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति देने में लगाया जाता, जो कान्यकुब्ज विद्यार्थी धनाभाव के कारण शिक्षा नहीं पा सकते, तो उस धन का अधिक सदुपयोग होता। ये विद्यार्थी चाहे जहाँ पढ़ते हों, ज़रूरी नहीं है कि कान्यकुब्ज विद्यार्थी के लिए कान्यकुब्ज स्कूल ही हों। साम्प्रदायिक अभिमान को प्रकट करने के इससे अधिक उपयोगी मार्ग हो सकते हैं।

नारी-जीवन

[श्री० आनन्दीप्रसाद जी श्रीवास्तव]

पत्र-संख्या—२३

[वृद्ध-पत्नी की ओर से बाल-विधवा को]

बहिन,

तुम्हारा कहना कुछ-कुछ
सच है, क्यों न स्वयं दक्षा
बन जीवन-रण की सुनीति में
की न उन्होंने निज रक्षा ?

किन्तु दोष सारा उनका हम
कैसे कह दें एकाएक,
आदि काल में रही न होवें
स्थितियाँ कहीं विरुद्ध अनेक,

कम न रहा हो पहले ही से
पुरुषों से उनका तन-बल,
रहा न हो कुछ अधिक हृदय में
कोमलता का भाव विमल !

क्या जाने क्या रहा क्या नहीं,
जाने दो तब की बातें,
तब की बातें सोच भला क्या
हट सकतीं अब की बातें !

यही मान लो ललनाओं ने
की थी प्रथम भूल भारी,
उसके, उसके फलवारण की
करना है अब तैयारी।

बहिन, यही सोचो अब क्या है
ललना-जन-उद्धार उपाय,
जो कुछ उन पर बीत रही है
क्या उसका प्रतिकार-उपाय !

कोई भूल न ऐसी जग में
जो न सुधर सकती हो अन्त,
नहीं परिस्थिति कोई आई
जग में लेकर शक्ति अनन्त।

अब भी चाहें यदि ललनाएँ
उनकी दशा बदल जावे,
नए सिरे से उनकी नर—
समता का सिक्का चल जावे।

अधिक काम घर का वे ही तो
करती हैं, उन पर निर्भर
पुरुषों का जीवन रहता है,
उनका गुरु प्रभाव उन पर।

लेकर उसका सदा सहारा
कर सकतीं वे युक्ति प्रबल,
जिससे पुरुष समान समझ लें
उनको होकर अन्त विकल।

बहिन, सुनाती हूँ फिर तुमको
अब अपना आगे का हाल,
करके कुछ बातें मुझसे फिर
चला गया वह मनुज रसाल।

आने-जाने लगा नित्य वह,
करता था रसमय बातें
मुझसे वह तो, समझ पड़ रही
थीं मुझको उसकी घातें।

पर थी मेरी युवा अवस्था
दबी उमङ्गें थीं भीतर,
मुझ पर भी था मदन-देव का
वह प्रभाव जो है सब पर।

खिंचती जाती थी मैं उसकी
ओर, सँभलती भी थी कुछ,
मन-गति उससे हटती, उसकी
ओर मचलती भी थी कुछ।

जब वह मुझसे मीठी-मीठी
बातें करता रहता था,
तब मेरे भीतर विद्युत का
मन्द-वाह सा बहता था।

किन्तु सोच कर स्वदशा उससे
अलग-अलग मैं रहती थी,
किसी भाँति कुछ सुखानुभवयुत
इस दुविधा को सहती थी।

मुझे जान पड़ता था कोई
बातें सुनता है बाहर,
रखता कोई सब बातों की
भीतर-भीतर सभी ख़बर !

इसीलिए मैं अति सतर्क थी,
बचती रहती थी मैं नित्य,
पर न डाटती कभी, धृष्टता
उसकी सहती थी मैं नित्य।

पर उस अति दुर्धर प्रवाह में
बही जा रही थी मैं हाय !
करती थी उपाय बचने का,
पर हो जाती थी निरुपाय।

बहिन बताऊँ क्या मैं तुमको
तत्कालीन हृदय का हाल,
चुप रहना अच्छा है, उसका
कहना-सुनना है जञ्जाल।

योंही बीत गए कुछ दिन तो,
एक दिवस की है यह बात,
कोयल की कूकों से कूजित
था वह एक वसन्त प्रभात।

लगा बात करने वह मुझसे
कर में लेकर मेरा कर,
लगा घात करने वह मुझसे
चला-चला नयनों के शर !

फिर उसने रख हाथ पीठ पर
करना चाहा आलिङ्गन,
था उमङ्ग में तिस पर भी द्रुत
सम्हल गया तब मेरा मन।

इसी समय बस वृद्ध महोदय
ने कमरे में किया प्रवेश,
मानो उनके नयनों में था
इस जगती का रोष अशेष।

पत्र-संख्या—२४

[बाल-विधवा की ओर से वृद्ध-पत्नी को]

बहिन,

तुम्हारा पत्र देख कर
होता बड़ा वृद्ध पर रोष,
तुम्हें प्रलोभन देना यों था
उसका सब से भारी दोष।

किसी प्रकार तुम्हें वश करने
की थी उसके मन में चाह,
पावनता की भी न तुम्हारी
हा ! करता था वह परवाह !

हाय तुम्हारी वह कुपरिस्थिति
थी प्रमत्त करने वाली,
रमणी-जन का शुद्ध हृदय भी
थी वह तो हरने वाली।

बहिन तुम्हारा मन पवित्र था,
पर वह था मोहक जञ्जाल,
ठीक समय पर सम्हल गया वह
समझ कुटिल उस नर की चाल।

सब ललनाओं का होता है
इसी प्रकार हृदय निर्मल,
उनको तो दूषित करता है
केवल पुरुषों का छल-बल !

उन्हें प्रलोभन देकर अतिशय
जो कर लेते हैं नर भ्रष्ट,
एक बार कर भ्रष्ट, त्याग फिर
करते उनका जीवन नष्ट,

क्या उसको भी कह सकते हैं
उनका स्वयं भ्रष्ट होना,
क्या उसको भी कह सकते हैं
उनका स्वयं नष्ट होना !

बड़ा कठिन है अति प्रलोभनों,
में मन को रोके रखना,
नर के धृष्ट बाहुपाशों में
पड़ तन को रोके रखना !

अति प्रलोभनों में स्वधर्म से
डिगतीं जो ललना सुकुमार,
वे नितान्त पावन हैं, उनको
कहा करे कुछ भी संसार !

साधारण स्थितियों में रह कर
ही होवे जब नारी नष्ट,
तब कह सकते हैं हम उसके
लिए कि वह है पथ से भ्रष्ट।

कितना था वह क्रूर वृद्ध, हा !
कितना था वह कुटिल हृदय !
उसको नर की भीति नहीं थी
और न था ईश्वर का भय !

उत्सुक हूँ मैं बहुत, शीघ्र ही
लिखना तुम आगे का हाल,
बहिन ठीक कहती हो तुम
जो आज परिस्थिति है विकराल,

उनसे बचना है ललना-जन
को तज पहले की बातें,
हटें किस तरह ये सङ्कट के
दिन ये सङ्कट की रातें।

समझी मैं, तुम यह कहती हो,
कर सत्याग्रह का सदुपाय,
कर ले अपना समुद्धार अब
भारत की ललना-समुदाय !

मैं कहती हूँ, हों सशस्त्र वे
शीघ्र, और छेड़ें संग्राम,
तब होगा उद्धार हमारा,
तब न रहेंगे ये नर वाम !

बहिन, सुनाती हूँ मैं तुमको
फिर अपना आगे का हाल,
शीघ्र भगी मैं, (सभय उसी क्षण)
छोड़ झोपड़ी का जञ्जाल।

चलते-चलते पहुँच गई मैं
एक नगर में वह था भव्य,
नहीं जानती थी मैं उसको,
मुझको था नितान्त वह नव्य।

देख रूप मेरा धूर्तों ने
मुझे घेरना शुरू किया,
पर इस घटना पर मैंने तो
नहीं तनिक भी ध्यान दिया।

इतने में ही एक सभ्य जन
वहाँ आ गए मेरे पास,
कहा कि "बेटी किधर चली हो
क्यों दिखती हो बहुत उदास !"

उनकी मृदु वाणी से मेरा
हृदय उस समय भर आया।
कुछ न कह सकी मैं उनसे,
बस आँखों में आँसू छाया।

कुछ पूछा फिर नहीं उन्होंने,
कहा चलो तुम मेरे साथ,
तुम्हें सौंप दूँगा मैं विधवा-
आश्रम के अधिपति के हाथ।

इससे ढाढ़स बँधा मुझे कुछ,
चली गई मैं उनके सङ्ग,
बड़ा कठिन होता है जग में
असहायावस्था-कुप्रसङ्ग।

तब पहुँची विधवा-आश्रम में,
वह था एक विशाल भवन।
अपने को पा वहाँ सुरक्षित
हुआ तनिक स्थिर मेरा मन।

स्मृति कुञ्ज

[लेखक—'एक निर्वासित ग्रेजुएट']

नायक और नायिका के पत्रों के रूप में यह एक दुःखान्त कहानी है। प्रणय-पथ में निराशा के मार्मिक प्रतिघातों से उत्पन्न मानव-हृदय में जो-जो कल्पनाएँ उठती हैं और उठ-उठ कर चिन्ता-लोक में अस्फुट साम्राज्य में विलीन हो जाती हैं, वे इस पुस्तक में भली-भाँति व्यक्त की गई हैं। हृदय के अन्तःप्रदेश में प्रणय का उद्भव, उसका विकाश और उसकी अविरत आराधना की अनन्त तथा अविच्छिन्न साधना में मनुष्य कहाँ तक अपने जीवन के सारे सुखों की आहुति कर सकता है, ये बातें इस पुस्तक में एक अत्यन्त रोचक और चित्ताकर्षक रूप से वर्णन की गई हैं। आशा-निराशा, सुख-दुख, साधन-उत्सर्ग एवं उच्चतम आराधना का सात्विक चित्र पुस्तक पढ़ते ही कल्पना की सजीव प्रतिमा में चारों ओर दीख पड़ने लगता है। इस पुस्तक में व्यक्त वाणी की अनुपम विलीनता एवं अव्यक्त स्वरों के उच्चतम सङ्गीत का एक हृदयग्राही मिश्रण है। छपाई-सफ़ाई दर्शनीय हुई है। तिरङ्गा आर्ट पेपर का Protecting cover भी दिया गया है। सुन्दर सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल ३) स्थायी ग्राहकों से २।)

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

सुप्रसिद्ध भारतीय राजनीतिज्ञों के मुक़द्दमे

१—लोकमान्य बाल गङ्गाधर तिलक :: १६०८

सन्, १६०८ के जून मास की २४वीं तारीख़ को लोकमान्य बाल गङ्गाधर तिलक, बम्बई के उस समय के चीफ़ प्रेज़िडेन्सी मैजिस्ट्रेट मि० एस्टन के वारण्ट के अनुसार अपने निवास-स्थान 'सरदार-गृह' में गिरफ़्तार किए गए थे। उन पर अपने पूना से प्रकाशित साप्ताहिक मराठी 'केसरी' में क्रमशः १२वीं मई और ६वीं जून के संस्करणों में दो लेख प्रकाशित करने के कारण दण्ड-विधान की १२४वीं 'ए' और १५३वीं 'ए' धाराओं के अनुसार दो अभियोग लगाए गए थे। पहले लेख का शीर्षक 'देश का दुर्भाग्य' था, जिसमें उन्होंने मुज़फ़्फ़रपुर (बङ्गाल) की बम की दुर्घटनाओं का उल्लेख किया था और दूसरे का शीर्षक 'ये औषधियाँ चिरस्थायी नहीं हैं' था, जिसमें उन्होंने गवर्नमेण्ट की दमन-नीति की धज्जियाँ उड़ाई थीं। जिस समय पुलिस उनके पास वारण्ट लेकर पहुँची थी, उस समय वे अपने मित्रों से वार्तालाप कर रहे थे। वारण्ट देखते ही उन्होंने कहा, कि वे उसकी बाट पहले से ही जोह रहे थे और इतना कह कर वे पुलिस के साथ जाने के लिए तैयार हो गए। पुलिस पहले उन्हें पुलिस-कमिश्नर के ऑफ़िस में और उसके बाद एस्प्लेनेड पुलिस कचहरी के हवालात में ले गई!

श्री० तिलक के पूना के निवास-स्थान में, जहाँ 'केसरी' का दफ़्तर भी था, उसी दिन सन्ध्या को ताला डाल दिया गया था और दूसरे दिन सवेरे उसकी तलाशी ली गई थी। इस तलाशी में पुलिस बहुत सी पुरानी फ़ाइलें, रजिस्टर, किताबें और हस्त-लिखित लिपियाँ ज़ब्त कर, बम्बई ले गई थी; परन्तु इनमें एक पोस्टकार्ड के सिवाय, जिसमें विस्फोटक द्रव्यों से सम्बन्ध रखने वाली कुछ पुस्तकों का विज्ञापन था और जिससे मुक़द्दमे में बहुत सहायता ली गई थी, पुलीस को ऐसी कोई वस्तु प्राप्त न हो सकी, जिससे वह श्री० तिलक पर लगाए हुए अभियोग साबित कर सकती। श्री० तिलक के सिंहगढ़ के निवास-स्थान की भी तलाशी ली गई थी, परन्तु पुलिस को वहाँ भी कोई मनोवाञ्छित चीज़ न मिल सकी।

दूसरे दिन श्री० तिलक, मि० एस्टन के सम्मुख पेश किए गए। सरकार की ओर से सरकारी वकील मि० बोविन खड़े हुए और श्री० तिलक की ओर से श्री० डावर, श्री० दीक्षित, श्री० बोदस और कुछ अन्य वकील। मुक़द्दमा पेश होते ही उसे स्थगित कर देने के सम्बन्ध में गरमागर्म बहस प्रारम्भ हो गई। श्री० तिलक के वकील ने मुक़द्दमे को शीघ्र ही सेशन सुपुर्द कर देने को कहा। क्योंकि उनकी राय से ऐसी अवस्था में, जब कि उनका मवक्किल लेख का प्रकाशित होना क़बूल करता है, छोटी अदालत में व्यर्थ समय नष्ट करने की कोई आवश्यकता न थी। परन्तु मैजिस्ट्रेट ने उनकी प्रार्थना पर ध्यान न दिया और मुक़द्दमा दूसरे दिन के लिए स्थगित कर दिया गया। तदुपरान्त श्री० तिलक को ज़मानत पर छोड़ाने के लिए प्रार्थना की गई, और इसके लिए मि० डावर ने दलीलों द्वारा यह स्पष्ट कर दिया कि श्री० तिलक एक प्रतिष्ठित और सम्माननीय नागरिक हैं। उन्होंने यह भी कहा कि यदि आवश्यकता होगी तो लोग एक लाख तक की ज़मानत देने के लिए तैयार हो जायँगे। परन्तु सरकारी वकील मि० बोविन ने हाईकोर्ट की दलील पेश करते हुए इस प्रस्ताव का विरोध किया। उन्होंने श्री० तिलक के लेखों के विरोधपूर्ण अंशों की विवेचना करते हुए कहा, कि वे इतने भयङ्कर हैं कि उन्हें ज़मानत पर

छोड़ना क़ानून की दृष्टि से अनुचित होगा। मैजिस्ट्रेट ने उनकी सम्मति स्वीकार की और श्री० तिलक की ज़मानत नामञ्ज़ूर कर दी गई।

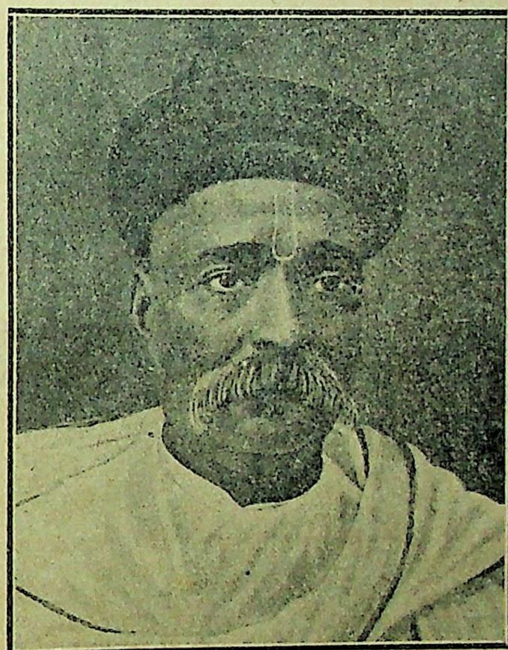
मुक़द्दमे का श्रीगणेश, चीफ़ प्रेज़िडेन्सी मैजिस्ट्रेट के सम्मुख सोमवार २६वीं जून को हुआ। सरकार की ओर से मि० डी० बी० विनिङ्ग बैरिस्टर नियुक्त हुए और सरकारी वकील मि० बोविन उनके सलाहकार बनाए गए। श्री०तिलक की ओर से श्री० जे० डी० डावर बैरिस्टर खड़े हुए और श्री० इन्द्रजीत कालाभाई और गाडगिल बैरिस्टर तथा बोदस और एस० एम० दीक्षित वकील उनके सहायतार्थ उपस्थित हुए। दोनों अभियोगों की कार्यवाही अलग-अलग हुई। गवर्नमेण्ट के 'ओरिएण्टल ट्रान्सलेटर' के सर्व-प्रथम सहायक मि० बी० वी० जोशी की गवाही सब से पहले हुई। उन्होंने अपने बयानों में कहा कि उन्होंने उन लेखों का अनुवाद किया था और वह अनुवाद बिलकुल ठीक था। दूसरी गवाही 'केसरी' के बम्बई के एजेण्ट मि० एन० जी० दलार की हुई। उन्होंने अपने बयानों में कहा, कि बम्बई में 'केसरी' की बिक्री बहुतायत से होती है। तदुपरान्त बम्बई की फ़्रिया पुलिस के इन्सपेक्टर सलीवान की गवाही हुई, जिसमें उन्होंने कहा कि उन्होंने 'केसरी' के दफ़्तरों की तलाशी ली थी; और वह 'पञ्चनामा' जिसमें ज़ब्त-शुदा लेखों की सूची है, बिल्कुल ठीक है। गवाही की जिरह और श्री० तिलक के बयान दूसरे दिन के लिए स्थगित कर दिए गए। और उनका मुक़द्दमा हाईकोर्ट की सेशन के सुपुर्द कर दिया गया।

हाईकोर्ट में श्री० तिलक को ज़मानत पर छोड़ने के लिए मि० एम० ए० जिन्ना बैरिस्टर ने जो दरख़्वास्त दी थी, वह नामञ्ज़ूर कर दी गई। मुक़द्दमे की कार्यवाही के लिए सात यूरोपियनों और दो पारसियों की एक विशेष-जूरी नियुक्त की गई। मुक़द्दमे की कार्यवाही सोमवार १३वीं जुलाई को बम्बई हाईकोर्ट की तृतीय 'क्रिमिनल सेशन्स' के अध्यक्ष मि० जस्टिस डावर के सम्मुख प्रारम्भ हुई। श्री० तिलक मुक़द्दमा प्रारम्भ होने के एक दिन पहले सन्ध्या को हाईकोर्ट की इमारत के तृतीय मञ्ज़िल के एक कमरे में भेज दिए गए थे और वे मुक़द्दमे की कार्यवाही के अन्त तक विशेष यूरोपियन कॉन्स्टेबिलों की निगरानी में वहीं रक्खे गए। हाईकोर्ट में मुक़द्दमे की पैरवी के लिए सरकार की ओर से एडवोकेट-जनरल मि० ब्रैन्सन नियुक्त किए गए थे। और उनके सहायतार्थ पब्लिक प्रॉसीक्यूटर मि० बोविन और मि० इन्वेरारिटी और मि० विनिङ्ग बैरिस्टरों की नियुक्ति हुई थी। श्री० तिलक ने अपने मुक़द्दमे की पैरवी स्वयं की, परन्तु उनकी सहायता के लिए श्री० जोज़ेफ़ बेप्टिस्टा बैरिस्टर और अन्य कई वकील भी उनकी ओर से खड़े हुए थे। एडवोकेट-जनरल, इस बात पर, कि उनके दोनों अभियोगों की पैरवी अलग-अलग होना चाहिए, वाद-विवाद कर अदालत से चले गए और उनके जाने के उपरान्त श्री० तिलक, जो इस समय तक सॉलिसिटर की टेबिल के पास बैठे हुए थे, कठघरे में बैठा दिए गए और वहाँ उन्हें एक कुर्सी दी गई। इसके बाद मैजिस्ट्रेट ने उन्हें उनके अभियोग पढ़ कर सुनाए। श्री० तिलक ने उत्तर दिया कि "अभियोग स्पष्ट नहीं हैं और न लेखों के विरोधपूर्ण अंश ही स्पष्ट किए गए हैं।" इसके बाद वे लेख, जिनके कारण उन पर अभियोग लगाया गया था, पढ़ कर सुनाए गए। परन्तु श्री० तिलक ने कहा कि "वे अपराधी नहीं हैं।"

सरकार की ओर से मुक़द्दमे की पैरवी का प्रारम्भ मि० इन्वेरारिटी ने किया। उन्होंने श्री० तिलक का १२वीं मई का प्रकाशित लेख पढ़ा और कहा कि सम्पूर्ण लेख का तात्पर्य यह है, कि ब्रिटिश गवर्नमेण्ट का शासन अब इतना नादिरशाही और नृशंसतापूर्ण हो गया है कि अब उसके अत्याचारों को सहन करना एकान्त असम्भव है। दूसरे लेख के सम्बन्ध में, जो ६वीं जून को प्रकाशित हुआ था, उन्होंने कहा कि अभियुक्त ने उस लेख में अपने पत्र के पाठकों को दूसरे देशों में बम फेंकने के परिणाम बतलाए थे और उन्होंने इस बात की धमकी दी थी कि यदि गवर्नमेण्ट भारतीयों को उनके अधिकार न देगी, तो वह इस देश में भी किसी उपाय से बम फेंकना बन्द नहीं कर सकती। इसके बाद गवाहियाँ प्रारम्भ हुईं। पहले गवाह गवर्नमेण्ट ट्रान्सलेटर मि० जोशी की जिरह में श्री० तिलक ने यह साबित कर दिया कि उनके लेखों का अनुवाद आदि से अन्त तक ग़लत था। अन्य दो गवाह मि० दतार और मि० सल्लीवान थे। श्री० तिलक ने जिरह में उनकी भी ख़ूब ख़बर ली। इसके बाद उन्होंने अपना बयान पढ़ा, जिसमें उन्होंने अपने मराठी

लेख के बहुत से शब्दों का अङ्गरेज़ी में ठीक-ठीक अनुवाद किया था। पोस्टकार्ड के सम्बन्ध में उन्होंने अपने बयानों में कहा कि वे गवर्नमेण्ट के 'एक्सप्लोज़िव्ज़ एक्ट' की आलोचना करना चाहते थे और इसलिए एक्ट में उल्लिखित विस्फोटक द्रव्यों के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करने के लिए उन्हें कुछ पुस्तकों की आवश्यकता पड़ी थी, वह पोस्ट-कार्ड उन्हें उसी सम्बन्ध में एक विज्ञापन-दाता से प्राप्त हुआ था। अन्त में उन्होंने कहा कि उन पर जो अभियोग लगाए गए, वे उनमें से किसी के भी दोषी नहीं हैं।

इसके बाद श्री० तिलक ने अपना वह प्रतिभाशाली भाषण प्रारम्भ किया, जो उन्होंने जूरी के सम्मुख दिया था और जो १९वीं जुलाई से २२वीं जुलाई तक जारी रहा था। अपने इस भाषण में उन्होंने अपने पक्ष की पुष्टि के लिए इङ्गलैण्ड के बहुत से मुक़द्दमे और दलीलें पेश कर, यह साबित कर दिया कि पत्रों को गवर्नमेण्ट की किसी भी नीति की आलोचना करने का स्वतन्त्र अधिकार है। उन्होंने ओजस्वी शब्दों में ये दलीलें भी पेश कीं, कि केवल सम्मति प्रकट करना अपराध नहीं है, मुक़द्दमे में यह बात साबित नहीं की गई कि पत्र के पाठकों पर उनके लेखों का कैसा प्रभाव पड़ा और उनके ऊपर जो अभियोग लगाए गए हैं, वे उनके लेखों के कारण नहीं, बल्कि गवर्नमेण्ट अनुवादक के असङ्गत और भ्रष्ट अनुवाद के कारण लगाए गए हैं। इसके बाद उन्होंने जजों से उचित न्याय करने की प्रार्थना की और उन्हें बाह्य दलबन्दी में न फँसने की चेतावनी दी। उनके बाद मि० ब्रेन्सन खड़े हुए और उन्होंने जूरी को सम्बोधित करके कहा, कि श्री० तिलक का लम्बा-चौड़ा भाषण, जिसे सुनते-सुनते वे उकता गए थे, बिल्कुल असङ्गत था और उसका मुक़द्दमे से कोई सम्बन्ध नहीं था। उन्होंने अपनी बहस में भी केवल उन्हीं के लेखों के अंश पढ़े और इस बात पर ज़ोर दिया कि उनके लेख, जिसमें अप्रत्यक्ष रूप से गवर्नमेण्ट को धमकियाँ दी गई हैं, और पोस्ट-कार्ड उनकी मानसिक विचार-धारा के सच्चे प्रदर्शक हैं। इसके बाद बेञ्च के अध्यक्ष जज मि० डावर ने अभियोगों और केस का सारांश कहते हुए, जूरी को मुक़द्दमे के सम्बन्ध में विधान की आज्ञा और उनके कर्त्तव्य समझाए। और इस बात पर अधिक ज़ोर दिया, कि पाठकों पर उनके लेखों के प्रभाव का निराकरण करते समय उन्हें इस बात पर अवश्य विचार करना चाहिए कि श्री० तिलक ने अपने लेखों को समझाने के लिए उनके सम्मुख २१ घण्टे और १० मिनिट तक जो लम्बी-चौड़ी वक्तृता दी है, उसका सौभाग्य उन लेखों के पाठकों को प्राप्त न हुआ था। सवा घण्टे से ऊपर के वाद-विवाद के उपरान्त जूरी के अधिकांश सदस्य इस निश्चय पर पहुँचे कि श्री० तिलक पर लगाए हुए अभियोग सच्चे हैं। उनमें से सात इस सम्मति के पक्ष में थे और दो विपक्ष में। जब अदालत ने सज़ा सुनाने के पहिले उनसे यह पूछा कि क्या वे इस मामले में कुछ और कहना चाहते हैं? तब उन्होंने उत्तर में कहा—"इस संसार में मनुष्यों और राष्ट्रों के भाग्य पर शासन करने वाली और भी उच्च और प्रबल शक्तियाँ हैं। और शायद उस परम-पिता की यही इच्छा हो, कि जिस कार्य का सम्पादन मेरे जीवन की एकमात्र महत्वाकांक्षा रही है, उसकी सिद्धि मेरे कष्टों और बलिदान से ही हो सकेगी।"


स्वर्गीय लोकमान्य बाल गङ्गाधर तिलक

इसके बाद जज महोदय ने अधिकांश जूरियों की

सम्मति से सहमत होकर, श्री० तिलक को १२४वीं 'ए' धारा के अनुसार राजविद्रोह के दो अभियोगों में अलग-अलग तीन-तीन साल के लिए कालेपानी की सज़ा और १५३वीं 'ए' धारा के दो अभियोगों में से एक में एक हज़ार रुपए जुर्माने की सज़ा सुना दी और १५३वीं 'ए' धारा के दूसरे अभियोग से उन्हें मुक्त कर दिया।

* * *

२—अरविन्द घोष : १९०८—१९०९

भारत में आज तक जितने राजनैतिक मुक़द्दमे हुए हैं, उनमें सब से अधिक सनसनीपूर्ण १९०८-९ का अलीपुर का मुक़द्दमा है। वह समय भारत में हिंसात्मक क्रान्ति का प्रारम्भिक काल था और उसी समय बम का आविर्भाव हुआ था। पहिले ही बम के धड़ाके ने दो निर्दोष यूरोपियन मेमों की हत्या कर डाली थी। उस समय इससे अधिक सनसनीपूर्ण दुर्घटना न घट सकती थी। इस सम्बन्ध में कलकत्ते के बहुत से प्रतिष्ठित व्यक्तियों के घरों की तलाशियाँ ली गईं और बहुत से गिरफ़्तार कर लिए गए। मुक़द्दमे की पैरवी के समय इस भयङ्कर षड्यन्त्र के रहस्य का जो भण्डा-फोड़ हुआ था, उससे केवल उस समय की राजधानी कलकत्ता ही नहीं, वरन् समस्त भारत भय और आश्चर्य से डूब गया था। इस मुक़द्दमे में जो मुख़बिर हुआ था, वह मैजिस्ट्रेट के सम्मुख गवाही देने के उपरान्त, मुक़द्दमे के अलीपुर सेशन्स कोर्ट में पहुँचने के पहले ही, अलीपुर जेल के अन्दर गोली से उड़ा दिया गया था। सरकार की ओर से कलकत्ता हाईकोर्ट के प्रतिभाशाली वकील एर्डले नार्टन कई अन्य सहायकों के साथ खड़े हुए थे और श्री०अरविन्द घोष की ओर से पहले तो श्री० बी० एम० चटर्जी और श्री० बी० चक्रवर्ती खड़े हुए थे, परन्तु बाद में श्री०सी० आर० दास ने मुक़द्दमा अपने हाथ में ले लिया था। ऐसे प्रतिभाशाली वकीलों की कार्यवाही ने मुक़द्दमे को और भी अधिक सनसनीपूर्ण बना दिया था।

२री मई सन् १९०८ को जिस समय बाबू अरविन्द घोष अपने स्कॉट्स लेन वाले घर में सोकर उठे, उस समय उन्हें मालूम हुआ कि उनका घर पुलिस वालों से घिरा हुआ है। थोड़ी देर के उपरान्त उन्हें एक वारण्ट दिखाया गया और उनके घर की तलाशी ली गई। उसके बाद पुलिस उन्हें पुलिस-कमिश्नर के पास ले गई और वे लाल बाज़ार की हवालात में बन्द कर दिए गए। उन्होंने कमिश्नर के सम्मुख अपना बयान देने से साफ़ इन्कार कर दिया। इस मुक़द्दमे में अभियुक्त तीन दलों में विभक्त कर दिए गए थे और अरविन्द बाबू तीस अभियुक्तों के उस दल में थे, जिसमें उनके छोटे भाई वीरेन्द्रकुमार घोष भी सम्मिलित थे।

अरविन्द बाबू का दल दूसरा था और उसकी पैरवी अलीपुर के डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट मि० बिर्ले के सम्मुख १८वीं मई को प्रारम्भ हुई थी। सरकारी वकील मि० नार्टन ने अपने प्रारम्भिक भाषण में अरविन्द बाबू की अद्वितीय प्रतिभा, उच्च शिक्षा, अनन्य देशभक्ति और आत्म-बलिदान के ख़ूब गुण गाए और अन्त में यह कह कर कि वे ही बङ्गाल के क्रान्तिकारी आन्दोलन के निर्माता और सर्वस्व हैं, उसे समाप्त कर दिया। मुक़द्दमे की पैरवी केवल इसीलिए सनसनी फैलाने वाली नहीं थी कि उसमें भयङ्कर षड्यन्त्रों के रहस्यों का पता लगा था, बल्कि उसमें बीच-बीच में वकीलों में जो बहस होती थी, उसके कारण भी लोगों की उसमें बहुत दिलचस्पी बढ़ गई थी। और इसीलिए मुक़द्दमे की कार्यवाही भी प्रायः सभी पत्रों में अक्षरशः प्रकाशित होती जाती थी। ऐसी ही एक मनोरञ्जक घटना निम्न-प्रकार है:—

मि० नार्टन—मेरा ख़याल है कि अरविन्द घोष के फ़ोटो की बहुत सी प्रतियाँ बाँटने के लिए तैयार की गई होंगी।

मि० चटर्जी—आप यह कैसे जान सकते हैं कि वे बाँटने के लिए तैयार की गई थीं। आपको ऐसा कहने का कोई अधिकार नहीं है।

मि० नार्टन—मुझे अनुमान करने का पूरा अधिकार है।

मि० चटर्जी—नहीं, आपको कोई अधिकार नहीं है।

मि० नार्टन—मुझे वक्तृता न दो। (दूसरी ओर मुँह फेर कर) इन्हीं नवयुवकों ने ही तो बङ्गाल के वकालत के पेशे को गन्दा कर दिया है। (उनकी इस युक्ति पर,

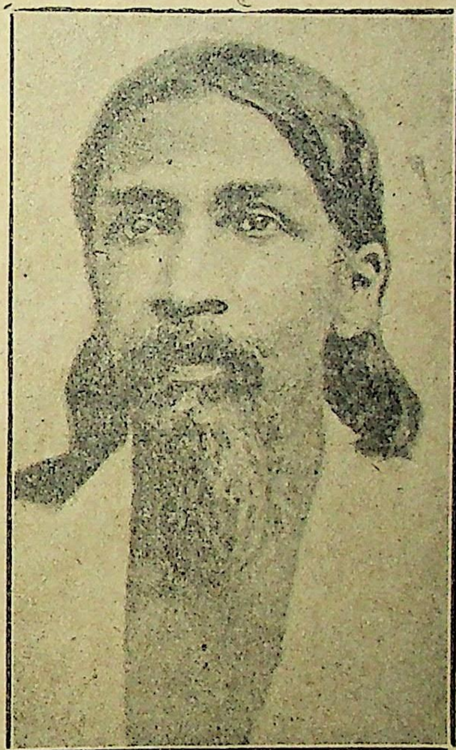
वहाँ जितने आदमी उपस्थित थे, सभी खिलखिला कर हँस पड़े।)

मालूम होता है कि मि० नार्टन को क्रान्तिकारी दल के बहुत से पत्र मिले थे, जिनमें उन्हें जान से मार डालने की धमकी दी गई थी। एक दिन पैरवी के अन्त में उन्होंने कहा—"मैंने आप लोगों का क्या बिगाड़ा है, जो आप मेरी जान लेने पर तुले हैं।" उत्तर में अभियुक्तों ने कहा कि "तुमने हमें दोषी क़रार दिया है।" इस पर मि० नार्टन ने कहा कि "अभी तक तो मैंने दोषी क़रार नहीं दिया, परन्तु अब जितना जल्दी हो सकेगा, कर दूँगा।" एक अभियुक्त ने फिर क्रोधपूर्वक उत्तर दिया कि "उस समय के आने के पहिले ही आप रसातल भेज दिए जायँगे।" इस उत्तर से मि० नार्टन एक रूखी हँसी हँस कर एक ओर को चले गए।

सरकारी गवाहियों की भरमार के कारण पैरवी की प्रगति बहुत धीमी थी। केवल गवाहियाँ ही नहीं, बहुत सी किताबों, हस्त-लिपियों, चिट्ठियों और फ़ोटो के सबूतों से भी कुछ कम विलम्ब नहीं हुआ। अन्त में १८वीं अगस्त, सन् १६०८ को मुक़द्दमा सेशन्स सुपुर्द कर दिया गया।

बाबू अरविन्द घोष पर भारतीय दण्ड-विधान की कई धाराओं के अभियोग लगाए गए थे, जिनमें से १२१ और १२१ ए मुख्य थीं, जिनके अनुसार वे क्रमशः राजविद्रोहात्मक षड्यन्त्र और सम्राट के विरुद्ध युद्ध छेड़ने के अपराधी ठहराए गए थे। उनके ऊपर 'शस्त्र-क़ानून' (Arms Act) के भी अभियोग लगाए गए थे। इनके भाई पर उपर्युक्त सभी अभियोगों के अतिरिक्त हत्या और हत्या करने के लिए दूसरे व्यक्तियों को भड़काने के भी अभियोग लगाए गए थे। श्री० बी० चक्रवर्ती, जो 'बन्देमातरम्' केस में, बाबू अरविन्द घोष की ओर से खड़े हुए थे; उनकी ओर से सेशन्स की पैरवी में भी खड़े हुए। इस मुक़द्दमे के ख़र्च के लिए बाबू अरविन्द घोष की ओर से उनकी भगिनी ने देश से अपील की और देश ने कुछ ही महीनों में छब्बीस हज़ार की थैली उनकी झोली में डाल दी।

सेशन्स की पैरवी ठीक १६वीं अक्टूबर, सन् १६०८ को अलीपुर के सेशन्स जज मि० बीचक्राफ़्ट आई० सी० एस० की अदालत में प्रारम्भ हो गई। दो बङ्गाली महाशय असेसर नियुक्त किए गए। मि० नार्टन ने २० तारीख़ को मुक़द्दमा प्रारम्भ कर दिया। जिस समय मुक़द्दमे की पैरवी हो रही थी, उसी समय अरविन्द बाबू के केम्ब्रिज के पुराने सहपाठी मि० फ़ैरर्स भारत-भ्रमण के लिए निकले थे। उन्होंने अदालत से आज्ञा लेकर श्री० अरविन्द से मुलाक़ात की और उनकी घण्टों बातें हुईं। अरविन्द बाबू के इस परिवर्तन से मि० फ़ैरर्स के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। क्योंकि इङ्गलैण्ड में अरविन्द घोष क्रान्ति के लिए नहीं, अपनी साहित्यिक प्रतिभा के लिए



तपस्वी अरविन्द घोष

प्रसिद्ध थे, और उस समय तक उनके पुराने मित्र उनकी प्रतिभा की प्रशंसा के गीत गाया करते थे।

सेशन्स कोर्ट की पैरवी में भी मनोरञ्जन का कुछ कम भाग न था और उसका बहुत-कुछ श्रेय मि० नार्टन को भी था। एक बार जब पैरवी में यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि मनीऑर्डर पर दस्तख़त किस प्रकार किए जाते हैं, तब मि० नार्टन ने कहा कि "मुझे अपने जीवन में कभी मनीऑर्डर नहीं मिला और न उस पर कभी दस्त-

ख़त करने की ही आवश्यकता पड़ी। मैं अपने मवक्किलों से सदैव पेशगी रुपया ले लिया करता हूँ।" इसी प्रकार जब प्रफुल्ल चाकी की फ़ोटो पेश की गई, जिन्होंने अपनी आत्म-हत्या कर ली थी, तब मि० नार्टन बच्चों का सा भोलापन दिखाते हुए बोले कि "फ़ोटो किसी मकान का है या घोड़े या ऊँट का।" उनके मुँह से ये शब्द निकलते ही अदालत में हँसी का फ़व्वारा फूट पड़ा।

अन्त में स्वर्गीय देशबन्धु दास ने मुक़दमे में हाथ लगाया और उनके सामने मि० नार्टन को लेने के देने पड़ गए। उनकी प्रतिभा के सामने उनका टिकना मुश्किल हो गया। उन दोनों के वाक्-युद्ध की खींचा-तानी और उसका मनोरञ्जन अपूर्व था। मि० नार्टन ने अरविन्द बाबू के पत्रों के उस 'आध्यात्मिक' भाव को, जिसमें एक रुपया में पन्द्रह आने दान करने का उल्लेख था, तोड़-मरोड़ कर उन्हें दुश्चरित्र साबित करने का बहुत प्रयत्न किया, परन्तु उनकी दाल नहीं गली।

पैरवी के अन्त में मि० नार्टन ने पूरे १४ दिनों तक अदालत के सम्मुख अपना भाषण दिया और उसके पर एक शब्द में उन्होंने अरविन्द बाबू को दोषी साबित करने का प्रयत्न किया। उनके विरुद्ध श्री० दास ने अपनी वक्तृता के लिए केवल दस दिन लिए और उसमें उन्होंने अरविन्द बाबू की प्रतिभा की प्रशंसा करते हुए उन्हें एक उच्च कोटि के साधु के रूप में चित्रित कर दिया और यह भी साबित कर दिया कि वे साधारण राजनीति से बिलकुल परे थे। उन्होंने हृदय-विदारक शब्दों में अदालत और असेसरों से इस बात पर विचार करने की अपील की, कि अरविन्द बाबू पर जिन-जिन अपराधों के अभियोग लगाए गए हैं, उनमें गवाहियाँ एक अपराध भी साबित करने में असमर्थ हैं। अन्त में उन्होंने कहा कि अरविन्द बाबू शान्ति के अवतार, देश-भक्ति के साक्षात् कवि, दयालु और अत्यन्त उच्च-कोटि के फ़िलॉसफ़र हैं।

असेसरों ने अपने निर्णय में उन्हें निर्दोष क़रार दिया और अदालत ने भी उन्हीं के निर्णय से अपनी सहमति प्रकट की। अरविन्द बाबू सभी अभियोगों में छोड़ दिए गए और उनके साथ उनके १७ साथी भी मुक्त किए गए। उनके भाई को पहले फाँसी की सज़ा दी गई, परन्तु बाद में वह आजन्म कालेपानी के दण्ड में परिवर्तित कर दी गई। अन्य अभियुक्तों को क़ैद की विभिन्न सज़ाएँ दी गईं।

आह की आग

[श्री० राजाराम जी शुक्ल]

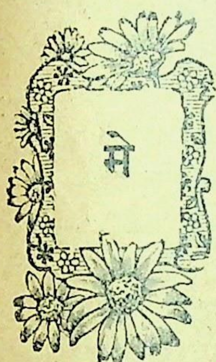
जगत को जल कर जला सकेगी यह आग ऐसी धधक रही है;
कभी बुझाए नहीं बुझेगी विशेषिका से भभक रही है।
न हमसे पूछो, लगी है कैसे ? तुम्हारे सीने में ठेस ऐसी;
न चैन है रात-दिन, घड़ी-पल, कसक उसी की कसक रही है।
हमारे कोमल कलेजे पर है कहाँ से यह ऐसी चोट आई ?
तड़प रहा हूँ तपक से उसकी, तड़प से ऐसी तपक रही है।
हमारे उर में बुझी-बुझी सी, जो एक चिनगारी आह की थी;
सुलग गई जाने किस हवा से, लपट उसी की लपक रही है।
हँसे थे तुम ख़ूब खिलखिला कर समझ के जुगुनू की ज्योति जिसको,
गिरेगी अब जाने किसके ऊपर, वह बिजली बन कर कड़क रही है!

दिल की आग उर्फ़ दिल-जले की आह !

["पागल"]

छठा खण्ड

३



मेरे भाग्य में शायद डॉक्टरों ही की सङ्गत अधिक लिखी हुई थी। क्योंकि काशी में डॉक्टर सन्तोषानन्द का साथ था तो यहाँ परदेश में आकर मुझे डॉक्टर धर्मावतार का पाला पड़ा। नाम इनका कुछ और था, मगर यहाँ की जनता पर इनकी धाक ऐसी जमी हुई थी कि सभी इन्हें धर्मावतार ही कहके सम्बोधन करते थे। और इसी नाम से मैं भी इन्हें यहाँ पर परिचित कराना उचित समझता हूँ। यही महाशय कई मील की दूरी से मुझे गूँगा और बहरा जान कर अपने साथ मोटर पर पकड़ लाए थे। पहिले घबड़ाहट, कौतुक और आश्चर्यवश मैं क्षण भर के लिए गूँगा या बहिरा सा हो गया था, मगर बाद को इस भ्रम को तोड़ने का मुझमें साहस न होने के कारण मुझे जान-बूझ कर ये उपाधियाँ धारण करनी पड़ीं। और सच तो यह है कि इसीमें मैंने अपनी भलाई देखी। क्योंकि न तो मैं उस प्रान्त की बोली बोल सकता था। और अगर बोलने की कोशिश भी करता तो कहता क्या? और अपना परिचय क्या देता? मेरा दुखड़ा किसी से कहने योग्य था भी नहीं। इसलिए कर्म ठोंक कर मैंने अपने को तक़दीर के मत्थे छोड़ दिया। इस तरह परदेश में बेपैसे-कौड़ी के भूखों मरने के बदले ज़रा दम लेने का सहारा हुआ।

कई मीलों का चक्कर लगा कर मोटर एक बङ्गले के सामने रुकी। सभों के साथ मुझे भी वहीं उतरना पड़ा। बङ्गला दो-मञ्ज़िला था। मुझे ऊपर ले जाकर मेरे रहने के लिए एक छोटी सी कोठरी दिखाई गई और मैं वहीं छोड़ दिया गया। थोड़ी देर के बाद धर्मावतार साहब—वही, जिनके हुक्म से मैं मोटर में पकड़ कर बैठाला गया था—ऊपर आए और मेरे गूँगे और बहरे होने की बाबत अपना हर तरह से इतमीनान करने लगे। सैकड़ों तरकीबों से वह मुझे बोलने के लिए बाध्य करते थे, बीच-बीच में वह बहुत बुरी-बुरी गालियाँ भी देते जाते थे, ताकि मुझे ग़ुस्सा चढ़ जाए और उसके आवेश में मैं कुछ बोल बैठूँ। मगर मैं उनकी बातों पर कुछ भी ध्यान न दे सका। मैं स्वयं ही चिन्ता में लीन था। और उस समय मैं अपनी तक़दीर को कोस रहा था कि हाय रे दुर्भाग्य! सरो के इतने निकट आकर भी उसके पास न पहुँच सका!

जो कुछ शक मेरे सम्बन्ध में धर्मावतार को रहा होगा, वह इस जाँच के समय मेरी उदासीनता और चुपकी से हमेशा के लिए मिट गया। क्योंकि तब से मुझसे बराबर इशारों में बातचीत की जाने लगी, जिन्हें समझने में मैं बड़ी बुद्धिमानी दिखलाता था। मुझे इशारों ही में बताया गया कि मुझे आठ रुपए माहवार मिलेंगे और मोटर साफ़ करने का काम लिया जाएगा। मैंने सर हिला कर और उँगलियाँ दिखला कर बताया कि नहीं, मैं दस रुपए माहवार लूँगा और खाना अलग। धर्मावतार ने इसे बड़ी ख़ुशी से मञ्ज़ूर कर लिया। दो-तीन दिन तक मुझे मालूम हुआ मानो मैं पहरे में हूँ, मगर जब लोगों ने देखा कि मैं अपना काम करके सीधे अपने कमरे में हो रहता हूँ और फिर उसमें से निकलने का नाम तक नहीं लेता, तो मुझ पर निगाह रखने वालों को बेफ़िक्री हुई और मैं बेखटके भीतर-बाहर आने-जाने लगा।

बङ्गले भर में सिवाय नौकरों के कोई स्त्री या बच्चा या धर्मावतार का कोई आत्मीय जन नहीं जान पड़ा। पास ही अस्पताल था, जिसमें धर्मावतार सुबह-शाम कुछ देर के लिए जाया करते थे। बङ्गले पर भी दवाइयों और डॉक्टरी सामानों का कुछ भण्डार था। इससे समझा कि हमें नौकर रखने वाले डॉक्टर हैं। नौकरों की आपस

की बातचीत से यह भी मालूम हुआ कि यह अपनी नौकरी में एक न एक गूँगा नौकर ज़रूर रखते हैं। मगर तक़दीर के ऐसे खोटे हैं कि वह कभी बहुत समय तक नहीं टिकता। कुछ दिनों के बाद वह एकाएक ऐसा लापता हो जाता है कि उसकी गर्द तक नहीं मिलती। यही अनुमान वह लोग मेरे बारे में भी करते थे और कहते थे—क्योंकि मुझे बहरा जान कर किसी को मेरे सामने किसी क़िस्म की बातचीत करने में हिचक न होती थी—कि यह मिला तो है बहुत दिनों के बाद, मगर



कुमारी वी० एन० तुलसी

मद्रास के सङ्गीत-परिषद से वॉयलिन बजाने में आपने प्रथम पुरस्कार प्राप्त किया है। आपकी अवस्था केवल ११ वर्ष की है।

जहाँ दाना लगा तहाँ यह भी चम्पत हुआ। चम्पत तो मैं होता ही, क्योंकि मुझे सिर्फ़ लौटने भर का ख़र्चा किसी तरह कमा लेने की ज़रूरत थी। मगर यह बात मेरे दिल में बुरी तरह खटकने लगी कि धर्मावतार अद-बदा कर गूँगा नौकर क्यों रखते हैं, क्या केवल इसीलिए कि गूँगे ज़बान नहीं लड़ा सकते, या इसमें और कोई भेद है? उस पर ऐसे नौकर का कुछ दिनों बाद एकाएक लापता हो जाना कुछ कम रहस्यपूर्ण नहीं जान पड़ा। ख़ैर, नौकरी तो मुझे अपनी इस समय की धजा के अनुकूल मिली। जिसके सर पर न टोपी, न पैर में जूता और कपड़े मैले हों, उस पर वह गूँगा और बहरा दोनों समझा जाता हो, उसे इससे बेहतर नौकरी और मिल ही क्या सकती थी?

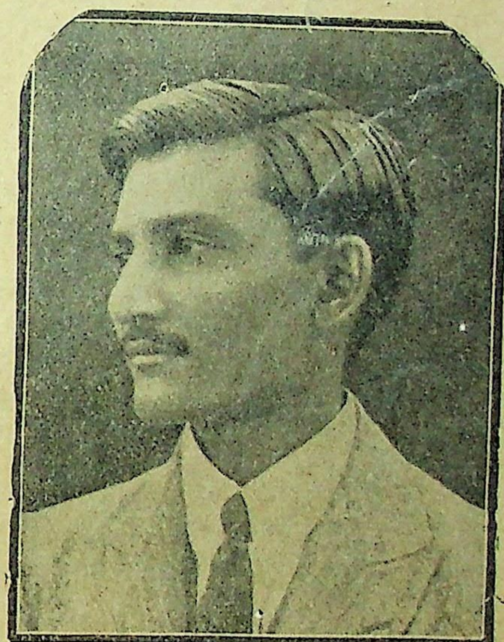
मुझे यह मालूम न हो सका कि मैं किस स्थान पर हूँ और यहाँ से सरोज की ससुराल कितनी दूर और किधर है, क्योंकि मैं किसी से कुछ पूछने के लिए ज़बान हिला नहीं सकता था। बस दूसरों की चुपचाप सुन लेना मेरा काम था। यों तो मुझे किसी से बोलना-चालना ख़ुद ही पसन्द नहीं था, मगर इतनी सी बात जानने के लिए मुझे गूँगा बना रहना खल गया।

सरोज की चिन्ता इस फटी हुई और बेबसी की हालत में भी मुझे छोड़ न सकी। बल्कि यह ख़याल, कि वह दस-पन्द्रह ही कोस की दूरी पर कहीं है, मुझे और भी उस प्यासे की तरह सता रहा था, जो दरिया के पास पहुँचते-पहुँचते थक कर गिर जाए और आगे बढ़ने का उसमें दम न हो। मेरी इस दुर्दशा में तारा की कलपती हुई मूर्त्ति भी कभी-कभी मेरी आँखों के सामने खड़ी होकर, मेरे हृदय को पश्चात्ताप की बर्छियों से बेधा करती थी। क्योंकि उसके ध्यान के साथ डॉक्टर सन्तोषानन्द के उसके प्रति शुष्क आदर का भी विचार मुझे तङ्ग करने को उत्पन्न हो जाता था। उनके भावहीन व्यवहारों में उस दुखिया की ख़ातिर, उनकी आँखें किसी तरह खोल कर मिठास का सञ्चार करने के लिए मैंने प्रतिज्ञा की थी और हाय! बिना अपना प्रण पालन किए मैं वहाँ से भाग खड़ा हुआ। मेरे ज़रा सा उद्योग से उस बेचारी की बिगड़ी बन जाती। उसकी सूखी हुई फुलवारी एक दफ़ा फिर लहलहा उठती। मगर अफ़सोस! जो मैं कर सकता था वह भी नहीं कर सका। जब मुझसे किसी का इतना भी उपकार नहीं हो सकता, तब मेरे जीवन से क्या फ़ायदा? उधर सरोज के लिए दिल की बेकली और छटपटाहट, और इधर तारा के लिए पश्चात्ताप की सोच; उस पर परिस्थिति की यह विवशता कि रोटियों का केवल मुहताज ही नहीं, बल्कि बोलने तक को भी तरसता था। इस उलझन, परेशानी और मजबूरी में पड़ कर दो ही चार दिनों में मेरे प्राण ऊब उठे। एक एक क्षण काटना दूभर हो गया। ऐसा मालूम होता

था कि अब मैं यहाँ किसी तरह भी जीवित न रह सकूँगा। अगर मेरी जान अपने आप न भी निकली तो मैं स्वयं ही घबड़ा कर प्राण त्याग बैठूँगा। ऐसे वक़्त जी में आता था कि मरने के पहिले एक पत्र सन्तोषानन्द को भेज कर, तारा का हृदय देखने के लिए उनकी आँखें खोल सकता, तो मेरे सर से पश्चात्ताप का बोझ बहुत-कुछ हलका होता।

मेरे कमरे में अस्पताल के बहुत से पुराने रजिस्टर जमा थे। उन्हीं को एकान्त में उलट-पुलट कर मैं समय बिताया करता था। जिनमें बहुत से आधे से ज़्यादे बेलिखे-पढ़े थे, उन्हीं में से एक सफ़ा काग़ज़ निकाल कर और धर्मावतार की मेज़ पर से चुपके से एक पेन्सिल लाकर मैंने पत्र लिखने का इरादा किया! मगर जब लिखने बैठा तो मेरी तबीयत डॉक्टर साहब के शुष्क हृदय से उस समय कुछ ऐसी जली हुई थी कि उसमें मैं अपने ही दिल के फफोले फोड़ने लगा, जिससे मेरा उद्देश्य पूरा होता नज़र नहीं आया। तब मैंने सोचा कि बेहतर यह होगा कि पत्र के बजाय मैं जब से डॉक्टर साहब और तारा से मेरा परिचय हुआ है, तब से अब तक का कुल ब्योरा डायरी के ढङ्ग पर लिख डालूँ। इस तरह यह उस ऐब से बचा रहेगा, जो पत्र में है, और जो-जो बातें जिस रूप में मुझे दिखाई पड़ी हैं, उन्हें डॉक्टर साहब भी स्वयं अपनी आँखों से देख कर तारा को नहीं, बल्कि उसके साथ अपने को भी अच्छी तरह पहचान सकें। तभी वह अपने अन्याय को जानेंगे और उस बेचारी के साथ न्याय कर सकेंगे। यह युक्ति मुझे बहुत पसन्द आई और मैं उसी दिन से चुपके-चुपके डॉक्टर साहब के लिए अपनी डायरी लिखने लगा। इस तरह पुरानी याद में उलझे रहने से मेरे एकाकीपन का कष्ट भी कुछ कम हुआ।

धर्मावतार की कृपा-दृष्टि मुझ पर दिनोंदिन बढ़ती ही नज़र आई। उन्होंने मेरे लिए एक नई वर्दी के साथ धोती और कुर्त्ता भी बनवा दिया और अपने नाई से मेरी हजामत भी बनवा देते थे। शाम को अब अधिक अपने ही हाथ से मोटर चलाते थे, ताकि 'शोफ़र' के बदले में उनके साथ रह सकूँ। इनकी बैठक सिर्फ़ सरकार साहब के यहाँ रहती थी। सरकार साहब के नाम ओहदे के बारे में मेरे सामने कोई बातचीत नहीं हुई। मगर रङ्ग-ढङ्ग से मैंने ताड़ा कि यह यहाँ के कोई बहुत ही बड़े अफ़सर हैं और इनसे और धर्मावतार से गूँगा नौकर रखने के विषय में कुछ बेढब साँट-गाँठ है। क्योंकि मेरे सामने उनकी पहली भेंट में धर्मावतार से मेरे सम्बन्ध में जो बातचीत हुई थी, उसमें कुछ बातें ऐसे अजीब ढङ्ग की थीं कि उनका ठीक मतलब मैं समझ न सका। उन्होंने मुझे विचित्र निगाहों से घूर कर कहा था कि "डॉक्टर, यह सचमुच ईश्वर का देन समझिए कि यह आपको मौक़े से मिल गया। अगर यह भी कहीं 'वर्मी' होता तो क्या कहना था।"



श्री० एम० पी० गाँधी, एम० ए०

आप कलकत्ते के भारतीय व्यापार-संघ के मन्त्री हैं। जनेवा में होने वाली अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर-परिषद् के आप सलाहकार चुने गए हैं।

इस पर धर्मावतार कुछ चिन्ता-मग्न होकर बोले—हाँ, तब इसकी दाढ़ी-मूँछों की बाबत कुछ झञ्झट न पड़ती। इसीलिए अब मैं ढूँढ़-ढूँढ़ कर बर्मी गूँगों ही से बराबर काम निकालता आया। ख़ैर! जब यह ढङ्ग पर आ जाएगा तो यह चिन्ता दूर हो जाएगी। क्योंकि तब यह आप से आप अपनी दाढ़ी-मूँछें बनाने लगेगा।

"मगर ढङ्ग पर लाने के लिए कुछ वक़्त तो लगेगा। और यहाँ मैं ढ गने गूँगे से इतना तङ्ग आ गया

हूँ कि उसे जितना ही जल्द ठिकाने लगा सकूँ, उतना ही अच्छा।"

"भई देर आयद दुरुस्त आयद। इतनी बड़ी ज़मींदारी के काम पर किसी अनाड़ी को बिना अच्छी तरह से सिखाए-पढ़ाए और उसे मुट्ठी में किए भिड़ा देना ठीक नहीं है। कुछ दिनों और सब्र कीजिए।"

"मगर मुश्किल तो यह है कि वह कमबख़्त अब कभी-कभी बाहर निकलने की कोशिश करता है।"

प्रोफ़ेसर राधाकृष्णन

कलकत्ते में होने वाले अखिल भारतवर्षीय शिक्षा-सम्मेलन के आप सभापति चुने गए थे।

"ख़ैर! इसके लिए परेशानी की ज़रूरत नहीं है। मैं कल ही उसका दिमाग़ ठीक कर दूँगा। शुक्र है कि यह नया आदमी इस मामले में बहुत अच्छा है। इसे घूमने-फिरने का ज़रा भी शौक़ नहीं मालूम होता। रातों-दिन बस कमरे में बन्द रहना जानता है।"

"यहीं तक बात होती तो ज़्यादे परेशानी न होती। मगर कुछ दिनों से तो उसके रङ्ग कुछ ऐसे बिगड़े हुए हैं कि वह अपनी ज़िम्मेदारी ज़रा भी नहीं समझता।"

"यह कैसे?"

"मैंने दो-एक दफ़े उसे एक दासी पर ललचाई हु निगाहें डालते देखा, इसी से मुझे इतनी घबड़ाहट है।"

धर्मावतार को जैसे बिजली सी लगी और वह कुर पर उछल कर बोल उठे—अरे! यह क्या ग़ज़ब हुआ हाय! हाय! तब तो सारा भण्डा ही फूट जाएग ईश्वर के लिए उस दासी को वहाँ से फ़ौरन हटाइए।

"यह मैं पहिले ही कर चुका। मगर मेरी राय तो अब झगड़े की ज़रूरत नहीं। क्योंकि अन्नदाता की इस तरफ़ कोई ख़ास दिलचस्पी नहीं जान पड़ती

"यह डॉक्टरों के समझने की बात है, आपके नहीं

बातें अङ्गरेज़ी में होती रहीं। कमरे में उन लो को छोड़ कर सिवाय मेरे उस समय और कोई नहीं थ क्योंकि सरकार साहब के आने पर उनको दिखाने लिए मैं वहाँ बुलाया गया था। और वहाँ मैं धर्माव का इशारा पाकर एक कोने में सर झुकाए बैठ गया

मेरे आने के पाँच-छः दिनों के बाद मुझसे मोटर सफ़ाई के अतिरिक्त पत्र ले जाने और ले आने का काम लिया जाने लगा। इसके लिए मैं सरकार सा ही के पास अधिकतर भेजा जाता था और चिराग़ ज के बाद। उनके मकान के दरवाज़ों पर दरबानों का प रहा करता था। मगर मेरे लिए सरकार साहब तक पहुँ में कुछ भी रोक-टोक न थी। जब वह बाहर गोल क में नहीं मिलते थे, तो मैं बाहर के कई कमरे नाँघ कर स उनके आराम-कमरे तक जा सकता था। एक दिन तरह जब सरकार साहब मुझे कहीं नहीं मिले तो मैं उ आराम-कमरे में जाकर उनका इन्तज़ार करने ल नौकरों की हैसियत से मैं नीचे फ़र्श पर एक को पायों के पास बैठा हुआ था। मेरे पीछे आतशदान लैम्प जल रहा था, जिसकी रोशनी कोच और आ दान के साए के कारण मुझ पर नहीं, बल्कि सामने प थी, जिधर ज़नानख़ाने में जाने के लिए दरवाज़ा इतने में एकाएक उस दरवाज़े पर छुनछुनाहट की आ हुई और उसका पर्दा हटा। वैसे ही मैं "अरे!" कह ताज्जुब में चिल्ला उठा। क्योंकि मेरी निगाहों के सा सरोज खड़ी थी!

(क्रमशः

करांची कांग्रेस निर्णयावली पृ० ८२६ से आगे
महात्मा गांधी के प्रति (कविता) पृ० ८३८